

जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालजी-महाराज-

विरचितयाऽऽचारचिन्तामणि-व्याख्यया समलङ्कृतं

हिन्दीगुर्जरभाषाऽनुवादसहितम्-

43770

# आचाराङ्गसूत्रम् ।

## ACHARANGA SUTRA

( तृतीयो भागः अध्या० ५-४ )

[ प्रथमः श्रुतस्कन्धः ]

नियोजक :



संस्कृत-प्राकृतज्ञ-जैनागमनिष्णात-प्रियव्याख्यानि-

पाण्डित-मुनिश्रीकन्हैयालालजी-महाराजः

प्रकाशकः

अ० भा० श्वे० स्था० जैनशास्त्रोद्धारसमितिप्रमुखः

श्रेष्ठि-श्री-शान्तिलाल-मङ्गलदासभाई-महोदयः

मु० राजकोट

मूल्यम् रु. १०-०-०



મળવાનું ઠેકાણું:

શ્રી. અ. ભા. પ્રવે. સ્થાનકવાસી

જેન શા સો દ્વા ર સ મિ તિ

ગ્રીન હોજ પાસે, રાજકોટ

\*

પ્રથમ આવૃત્તિ : પ્રત ૧૦૦૦

વીર સંવત : ૨૪૮૩

વિક્રમ સંવત : ૨૦૧૩

ઈસ્વી સન : ૧૯૫૭

\*

: સુદ્રક :

મણિલાલ છગનલાલ શાહ

ધી નવપ્રભાત પ્રિન્ટીંગ પ્રેસ

ધીકાંટા રોડ : : અમદાવાદ

રૂા. ૧૦,૦૦૦] આપનાર આઘ મુરબી  
સમિતિના પ્રમુખ; દાનવીર શેઠશ્રી,



શેઠ શાંતિલાલ મંગળદાસભાઈ  
અમદાવાદ.



---

શ્રી-વર્ધમાન-શ્રમણ-સંઘના આચાર્યશ્રી

પૂજ્ય આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ

આપેલ

## સમ્મતિપત્ર

\*

ઉપરાંત

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ-રચિત

ખીજ સૂત્રોની ટીકા માટે તેઓશ્રીના મંતવ્યો

\*

તેમજ

અન્ય મહાત્માઓ, મહાસતીજીઓ, અદ્યતન-પદ્ધતિવાળા કેલેજના પ્રોફેસરો

તેમજ

શાસ્ત્રજ્ઞ શ્રાવકોના અભિપ્રાયો

ઠે. શ્રીન લોજ પાસે  
ગરેડીયા કુવારોડ  
રાજકોટ : સૌરાષ્ટ્ર

}

શ્રી અખિલ ભારત શ્રવે. સ્થા. જૈન.  
શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

जैनागमवेत्ता जैनधर्मदिवाकर उपाध्याय श्री १००८ श्री आत्मारामजी  
महाराज तथा न्याय व्याकरणके ज्ञाता परम पण्डित मुनिश्री १००७  
श्रीहेमचन्द्रजी महाराज, इन दोनों महात्माओंका दिया हुआ  
श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रका प्रमाण पत्र निम्न प्रकार है—

### सम्मइवत्तं

सिरि-वीरनिव्वाण-संवच्छर २४५८ आसोई

( पुण्णमासी ) १५ सुक्कारो लुहियाणाओ ।

मए मुणिहेमचंदेण य पंडियरयणमुणिसिरि-घासीलालविणिम्मिया सिरिउवा-  
सगसुत्तस्स अगारधम्मसंजीवणीनामिया वित्ती पंडियमूलचन्दवासाओ अज्जोवंतं  
सुया, समीईणं, इयं वित्ती जहाणामं तहा गुणेवि धारेइ, सच्चं अगाराणं तु इमा  
जीवण ( संजमजीवण ) दाई एव अत्थि । वित्तिकत्तुणा मूलसुत्तस्स भावो उज्जु-  
सेलीओ फुडीकओ, अहय उवासयस्स सामणविसेसधम्मो, णयसियवायवाओ,  
कम्मपुरिसट्ठवाओ, समणोवासयस्स धम्मदढया य, इच्चाइविसया अस्सि फुडरीइओ  
वणिया, जेण कत्तणो पडिहाए सुटुप्पयारेण परिचओ होइ, तह इइहासदिट्ठिओवि  
सिरिसमणस्स भगवओ महावीरस्स समए वट्ठमाण-भरहवासस्स य कत्तुणा विसय-  
प्पयारेण चित्तं चित्थियं, पुणो सक्कयपाढीणं, वट्ठमाणकाले हिन्दीणामियाए भासाए  
भासीणं य परमोवयारो कडो, इमेण कत्तुणो अरिहत्ता दीसइ, कत्तुणो एयं कज्जं  
परमप्पसंसणिज्जमत्थि । पत्तेयजणस्स मज्झत्थभावाओ अस्स सुत्तस्स अवलोयणमईव  
लाहप्ययं, अवि उ सावयस्स तु (उ) इमं सत्थं सव्वस्समेव अत्थि, अओ कत्तुणो  
अणेगकोडीसो धन्नवाओ अत्थि, जेहिं अच्चंतपरिस्समेण जइणजणतोवरि असीमो-  
वयारो कडो, अह य सावयस्स वारस नियमा उ पत्तेयजणस्स पढणिज्जा अत्थि,  
जेसिं पहावओ वा गहणाओ आया निव्वाणाहिगारी भवइ, तहा भवियव्वयावाओ  
पुरिसकारपरकमवाओ य अवस्समेव दंसणिज्जो, किंहुणा इमीए वित्तीए पत्तेय-  
विसयस्स फुडसदेहिं वण्णणं कयं, जइ अन्नोवि एवं अम्हाणं पसुत्तप्पाए समाजे विज्जं  
भवेज्जा तथा नाणस्स चरित्तस्स तहा संघस्स य खिप्पं उदयो भविस्सइ, एवं हं मन्ने॥

भवईओ—

उवज्झाय--जइणमुणि--आयाराम, पंचनईओ,



## सम्मतिपत्र

( भाषान्तर )

श्री वीरनिर्वाण सं० २४५८ आसोज

शुक्ला ( पूर्णिमा ) १५ शुक्रवार बुधियाना

मैंने और पंडितमुनि हेमचन्द्रजीने पंडितरत्नमुनिश्री घासीलाल-जीकी रची हुई उपासकदशांग सूत्रकी गृहस्थधर्मसंजीवनी नामक टीका पंडित मूलचन्द्रजी व्याससे आद्योपान्त सुनी है। यह वृत्ति यथानाम तथागुणवाली-अच्छी बनी-है। सच यह गृहस्थोंके तो जीवनदात्री-संयमरूप जीवनको देनेवाली-ही है। टीकाकारने मूलसूत्र के भावको सरल रीतिसे वर्णन किया है, तथा श्रावकका सामान्य धर्म क्या है ? और विशेष धर्म क्या है ? इसका खुलासा इस टीकामें अच्छे ढंगसे बतलाया है। स्याद्वादका स्वरूप कर्म-पुरुषार्थ-वाद और श्रावकको धर्मके अन्दर दृढ़ता किस प्रकार रखना, इत्यादि विषयोंका निरूपण इसमें भलीभांति किया है। इससे टीकाकारकी प्रतिभा खूब झलकती है। ऐतिहासिक दृष्टिसे श्रमण भगवान् महावीरके समय जैनधर्म किस जाहोजहाली पर था ? और वर्तमान समय जैनधर्म किस स्थितिमें पहुंचा ? इस विषयका तो ठीक चित्र ही चित्रित कर दिया है। फिर संस्कृत जाननेवालोंको तथा हिन्दीभाषाके जाननेवालोंका भी पुरा लाभ होगा, क्योंकि टीका संस्कृत है उसकी सरल हिन्दी कर दी गई है। इसके पढ़नेसे कर्ताकी योग्यताका पता लगता है कि वृत्तिकारने समझानेका कैसा अच्छा प्रयत्न किया है। टीकाकारका यह कार्य परम प्रशंसनीय है। इस सूत्रको मध्यस्थ भावसे पढ़ने वालोंको परम लाभकी प्राप्ति होगी। क्या कहें श्रावकों ( गृहस्थों ) का तो यह सूत्र सर्वस्व ही है, अतः टीकाकारको कोटिशः धन्यवाद दिया जाता है, जिन्होंने अत्यन्त परिश्रमसे जैनजनताके ऊपर असीम उपकार किया है। इसमें श्रावकके बारह नियम प्रत्येक पुरुषके पढ़ने योग्य हैं, जिनके प्रभावसे अथवा यथायोग्य ग्रहण करनेसे आत्मा मोक्षका अधिकारी होता है, तथा भवितव्यतावाद और पुरुषकार-

पराक्रमवाद हरएकको अवश्य देखना चाहिये। कहां तक कहें इस टीकामें प्रत्येक विषय सम्यक् प्रकारसे बताये गये हैं। हमारी सुसंप्राय ( सोई हुईसी ) समाजमें अगर आप जैसे योग्य विद्वान् फिर भी कोई होंगे तो ज्ञानचारित्र तथा श्रीसंघका शीघ्र उदय होगा, ऐसा मैं मानता हूँ—

आपका

उपाध्याय जैनमुनि आत्माराम पंजाबी.



इसी प्रकार लाहोरमें बिराजते हुए पण्डितवर्य विद्वान् मुनिश्री १००८  
श्री भागचन्दजी महाराज तथा पं० मुनिश्री त्रिलोकचन्दजी  
महाराजके दिये हुए, श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रके  
प्रमाणपत्रका हिन्दी सारांश निम्न प्रकार है—

श्री श्री स्वामी घासीलालजी महाराज कृत श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रकी संस्कृत टीका व भाषाका अवलोकन किया, यह टीका अतिरमणीय व मनोरञ्जक है, इसे अपने बड़े परिश्रम व पुरुषार्थसे तय्यार किया है सो आप धन्यवादके पात्र हैं। आप जैसे व्यक्ति-योंकी समाजमें पूर्ण आवश्यकता है। आपकी इस लेखनीसे समाजके विद्वान् साधुवर्ग पढ़ कर पूर्ण लाभ उठावेंगे, टीकाके पढ़नेसे हमको अत्यानन्द हुआ, और मनमें ऐसे विचार उत्पन्न हुए कि हमारी समाजमें भी ऐसे २ सुयोग्य रत्न उत्पन्न होने लगे—यह एक हमारे लिये बड़े गौरवकी बात है।

वि. सं. १९८९ मा. आश्विन  
कृष्ण १३ वार भौम लाहोर.



श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र की 'अनगारधर्माऽमृतवर्षिणी' टीका पर  
जैनदिवाकर साहित्यरत्न जैनागमरत्नाकर परमपूज्य श्रद्धेय  
जैनाचार्य श्री आत्मारामजी महाराजका  
सम्मतिपत्र

लुधियाना, ता. ४-८-५१

मैंने आचार्यश्री घासीलालजी म. द्वारा निर्मित 'अनगार-धर्माऽमृत-वर्षिणी' टीका वाले श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्रका मुनिश्री रत्नचन्द्रजीसे आद्योपान्त श्रवण किया।

यह निःसन्देह कहना पड़ता है कि यह टीका आचार्यश्री घासीलालजी म. ने बड़े परिश्रम से लिखी है। इसमें प्रत्येक शब्दका प्रामाणिक अर्थ और कठिन स्थलों पर सार-पूर्ण विवेचन आदि कई एक विशेषतायें हैं। मूल स्थलोंको सरल बनानेमें काफी प्रयत्न किया गया है, इससे साधारण तथा असाधारण सभी संस्कृतज्ञ पाठकोंको लाभ होगा ऐसा मेरा विचार है।

मैं स्वाध्यायप्रेमी सज्जनों से यह आशा करूंगा कि वे वृत्तिकारके परिश्रम को सफल बना कर शास्त्रमें दी गई अनमोल शिक्षाओं से अपने जीवनको शिक्षित करते हुए परमसाध्य मोक्षको प्राप्त करेंगे।

### श्रीमानजी जयवीर

आपकी सेवामें पोष्ट द्वारा पुस्तक भेज रहे हैं और इस पर आचार्यश्रीजी की जो सम्मति है वह इस पत्रके साथ भेज रहे हैं पहुंचने पर समाचार दें।

श्री आचार्यश्री आत्मारामजी म. ठाने ६ सुखशान्तिसे विराजते हैं। पूज्य श्री घासीलालजी म. सा. ठाने ४ को हमारी ओरसे वन्दना अर्जकर सुखशान्ति पृष्ठें।

पूज्य श्री घासीलालजी म. जी का लिखा हुआ (विपाकसूत्र) महाराजश्रीजी देखना चाहते हैं इसलिये १ कापी आप भेजनेकी कृपा करें; फिर आपको वापिस भेज देंगे। आपके पास नहीं हो तो जहांसे मिले वहांसे १ कापी जरूर भिजवाने का कष्ट करें, उत्तर जल्द देनेकी कृपा करें। योग्य सेवा लिखते रहें।

लुधियाना ता. ४-८-५१

निवेदक  
प्यारेलाल जैन

जैनागमवारिधि-जैनधर्मदिवाकर-उपाध्याय-पण्डित-मुनि  
श्रीआत्मारामजी महाराज (पंजाब) का आचाराङ्गसूत्र की  
आचारचिन्तामणि टीका पर

### सम्मतपत्र

मैंने पूज्य आचार्यवर्य श्री घासीलालजी (महाराज) की बनाई हुई श्रीमद् आचाराङ्गसूत्रके प्रथम अध्ययन की आचारचिन्तामणि टीका सम्पूर्ण उपयोगपूर्वक सुनी।

यह टीका-न्याय सिद्धान्त से युक्त, व्याकरण के नियम से निबद्ध है। तथा इसमें प्रसङ्ग २ पर क्रमसे अन्य सिद्धान्त का संग्रह भी उचित रूप से मालूम होता है।

टीकाकारने अन्य सभी विषय सम्यक् प्रकार से स्पष्ट किये हैं, तथा प्रौढ विषयोंका विशेषरूप से संस्कृत भाषा में स्पष्टतापूर्वक प्रतिपादन अधिक मनोरंजक है, एतदर्थ आचार्य महोदय धन्यवादके पात्र हैं।

मैं आशा करता हूँ कि-जिज्ञासु महोदय इसका भलीभाँति पठन-द्वारा जैनागम सिद्धान्तरूप अमृत पी-पी कर मन को हर्षित करेंगे, और इसके मनन से दक्ष जन चार अनुयोगों का स्वरूपज्ञान पावेंगे। तथा आचार्यवर्य इसी प्रकार दूसरे भी जैनागमोंके विशद विवेचन द्वारा श्वेताम्बर-स्थानकवासी समाज पर महान उपकार कर यशस्वी बनेंगे।

वि. सं. २००२  
मृगसर सुदि १

}

जैनमुनि-उपाध्याय आत्माराम  
लुधियाना (पंजाब) शुभमस्तु ॥

✱

बीकानेरवाला समाजभूषण शास्त्रज्ञ भेरुदानजी शेठियानो अभिप्राय-

✱

आप जाँ शास्त्रका कार्य कर रहे हैं यह बड़ा उपकारका कार्य है।  
इससे जैन जनताको काफी लाभ पहुंचेगा।

( ता. २८-३-५६ना पत्रमांथी )



॥ श्रीः ॥

जैनागमवारिधि-जैनधर्मदिवाकर-जैनाचार्य-पूज्य-श्री आत्मारामजी-  
महाराजानां पञ्चनद-(पंजाब)स्थानामनुत्तरोपपातिकसूत्राणा-  
मर्थबोधिनीनामकटीकायामिदम्-

### सम्मतिपत्रम्

आचार्यवर्यैः श्री घासीलालमुनिभिः सङ्कलिता अनुत्तरोपपातिकसूत्राणामर्थ-  
बोधिनीनाम्नी संस्कृतवृत्तिरूपयोगपूर्वकं सकलाऽपि स्वशिष्यमुखेनाऽश्रावि मया, इयं  
हि वृत्तिर्मुनिवरस्य वैदुष्यं प्रकटयति । श्रीमद्विमुनिभिः सूत्राणामर्थान् स्पष्टयितुं  
यः प्रयत्नो व्यधायि तदर्थमनेकशो धन्यवादानर्हन्ति ते । यथा चेयं वृत्तिः  
सरला सुबोधिनी च तथा सारवत्यपि । अस्याः स्वाध्यायेन निर्वाणपदमभीप्सु-  
भिर्निर्वाणपदमनुसरद्भिर्ज्ञान-दर्शन-चारित्र्येषु प्रयतमानैर्मुनिभिः श्रावकैश्च ज्ञान-  
दर्शन-चारित्र्याणि सम्यक् सम्प्राप्याऽन्येऽप्यात्मानस्तत्र प्रवर्तयिष्यन्ते ।

आशासे श्रीमदाशुक्विर्मुनिवरो गीर्वाणवाणीजुषां विदुषां मनस्तोषाय  
जैनागमसूत्राणां सारावबोधाय च अन्येषामपि जैनागमानामित्थं सरलाः  
सुस्पष्टाश्च वृत्तिर्विधाय तांस्तान् सूत्रग्रन्थान् देवगिरा सुस्पष्टयिष्यति ।

अन्ते च “मुनिवरस्य परिश्रमं सफलयितुं सरलां सुबोधिनीं चेमां  
सूत्रवृत्तिं स्वाध्यायेन सनाथयिष्यन्त्यवश्यं मुयोग्या हंसनिभाः पाठकाः ।”  
इत्याशास्ते—

विक्रमाब्द २००२  
श्रावणकृष्णा प्रतिपदा  
लुधियाना

उपाध्याय आत्मारामो जैनमुनिः

\*



( श्री दशवैकालिकसूत्रका सम्मतिपत्र )

॥ श्री वीरगौतमाय नमः ॥

सम्मतिपत्रम् ।

मए पंडियमुणि-हेमचंदेण य पंडिय-मूलचन्दवासवारा पत्ता पंडिय-रयण-मुणि-घासीलालेण विरइया सकय-हिंदी-भाषाहिं जुत्ता सिरि-दसवेयालिय-नामसुत्तस्स आगारमणिमंजूसा वित्ती अवलो-इया, इमा मणोहरा अत्थि, एत्थ सद्दाणं अइसयजुत्तो अत्थो वणिणओ, विउजणाणं पाययजणाण य परमोवयारिया इमा वित्ती दीसइ । आगारविसए वित्तीकत्तारेण अइसयपुव्वं उल्लेहो कडो, तहा अहिंसाए सरूव जे जहा-तहा न जाणंति तेसिं इमाए वित्तीए परमलाहो भविस्सइ, कत्तुणा पत्तेयविसयाणं फुडरूवेण वण्णणं कडं, तहा मुणिणो अरहत्ता इमाए वित्तीए अवलोयणाओ अइसय जुत्ता सिज्झइ । सकयछाया सुत्तपयाणं पयच्छेओ य सुबोहदायगो अत्थि, पत्तेयजिण्णासुणो इमा वित्ती दट्ठ्वा । अम्हाणं समाजे एरिसविज्ज-मुणिरयणाणं सम्भावो समाजस्स अहोभगं अत्थि, किं ? उत्तविज्जमुणिरयणाणं कारणाओ जो अम्हाणं समाजो सुत्तप्पाओ, अम्हकेरं साहिच्चं च लुत्तप्पायं अत्थि तेसिं पुणोवि उदओ भविस्सइ जस्स कारणाओ भविप्पा मोक्खस्स जोगो भवित्ता पुणो निव्वाणं पाविहिइ अओहं आगारमणिमंजूसाए कत्तुणो पुणो पुणो धन्नवायं देमि- ॥

वि. सं. १९९० फाल्गुन-  
शुक्लत्रयोदशी मङ्गले  
( अलवरस्टेट )

इइ-

उवज्जाय-जइण-मुणी, आगारामो  
( पचनईओ )

ऐसे ही :-

मध्यभारत सैलाना-निवासी श्रीमान् रतनलालजी डोसी श्रमणोपासक जैन लिखते हैं कि—

श्रीमान् की की हुई टीकावाला उपासकदशांग सेवक के दृष्टिगत हुवा, सेवक अभी उसका मनन कर रहा है यह ग्रन्थ सर्वाङ्ग-सुन्दर एवम् उच्च कोटि का उपकारक है ।

निरयावलिकामूत्रका सम्मतिपत्र  
आगमवारिधि-सर्वतन्त्रस्वतंत्र-जैनाचार्य पूज्यश्री  
आत्मारामजी महाराजकी तरफका आया हुवा  
सम्मतिपत्र

लुधियाना ता. ११ नवम्बर ४८

श्रीयुत् गुलाबचन्दजी पानाचंदजी ! सादर जयजिनेन्द्र ॥

पत्र आपका मिला, निरयावलिका विषय पूज्यश्रीका स्वास्थ्य ठीक न होनेसे उनके शिष्य पं. श्री हेमचन्द्रजी महाराजने सम्मतिपत्र लिख दिया है आपको भेज रहे हैं। कृपया एक कोपी निरयावलिका की और भेज दीजिये और कोई योग्य सेवा कार्य लिखते रहें ! !

भवदीय.

गुजरमल-वलवंतराय जैन

॥ सम्मति ॥

( लेखक जैनमुनि पंडित श्री हेमचंद्रजी महाराज )

सुन्दरबोधिनीटीकया समलङ्कृतं हिन्दी-गुर्जर भाषानुवादसहितं च श्रीनिरयावलिकामूत्रं मेधाविनामल्पमेधसां चोपकारकं भविष्यतीति सुदृढं मेऽभिमतम्, संस्कृतटीकेयं सरला सुबोधा सुललिता चात एव अन्वर्थनाम्नी चाप्यस्ति। सुविशदत्वात् सुगमत्वात् प्रत्येकदुर्बोधपद-व्याख्यायुतत्वाच्च टीकेषा संस्कृतसाधारणज्ञानवतामप्युपयोगिनी भाविनीत्यभिप्रेमि। हिन्दी-गुर्जरभाषानुवादावपि एतद्भाषाविज्ञानां महीयसे लाभाय भवेतामिति सम्यक् संभावयामि।

जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालजी-महाराजानां परिश्रमोऽयं प्रशंसनीयो धन्यवादाहर्षाश्च ते मुनिसत्तमाः। एवमेव श्री-समीरमल्लजी-श्री-कन्हैलालजी-मुनिवरेण्ययोर्नियोजनकार्यमपि श्लाघ्यं, तावपि च मुनिवरौ धन्यवादाहर्षौ स्तः।

सुन्दरप्रस्तावनाविषयानुक्रमादिना समलङ्कृते सूत्ररत्नेऽस्मिन् यदि शब्दकोषोऽपि दत्तः स्यात्तर्हि वरतरं स्यात्। यतोऽस्यावश्यकतां सर्वेऽप्यन्वेषकविद्वांसोऽनुभवन्ति।

पाठकाः सूत्रस्याध्ययनाध्यापनेन लेखकनियोजकमहोदयानां परिश्रमं सफलधिष्यन्तीत्याशास्महे। इति।

श्री उपासकदशाङ्ग सूत्र परत्वे जैन समाजना अग्रगण्य जैनधर्ममूषण  
महान् विद्वान् संतोष तेमज विद्वान् श्रावकोष सम्मतिओ समर्पी  
छे तेमना नामो नीचे प्रमाणे छे-

- (१) लुधियाना-संवत् १९८९, आश्विन पूर्णिमा का पत्र, श्रुतज्ञान के  
भंडार आगमरत्नाकर जैनधर्मदिवाकर श्री १०००८ श्री उपाध्याय श्री  
आत्मारामजी महाराज, तथा न्यायव्याकरणवेत्ता श्री १०००७ तच्छिष्य  
श्री मुनि हेमचन्द्रजी महाराज.
- (२) लाहौर-वि० सं० १९८९ आश्विन वदि १३ का पत्र, पण्डितरत्न श्री  
१००८ श्री भागचंदजी महाराज तथा तच्छिष्य पण्डितरत्न श्री १००७  
श्री त्रिलोकचंदजी महाराज.
- (३) खिचन-से ता. ९-११-३६ का पत्र, क्रियापात्र स्थविर श्री १००८  
श्री भारतरत्न श्री समरथमलजी महाराज.
- (४) वालाचोर-ता. १४-११-३६ का पत्र, परम प्रसिद्ध भारतरत्न श्री  
१००८ श्री शतावधानी श्री रत्नचंदजी महाराज.
- (५) बम्बई-ता. १६-११-३६ का पत्र, प्रसिद्ध कवीन्द्र श्री १००८ श्री  
कवि नानचंद्रजी महाराज.
- (६) आगरा-ता. १८-१२-३६, जगत् वल्लभ श्री १००८ जैनदिवाकर  
श्री चौथमलजी महाराज, गुणवन्त गणीजी श्री १००७ श्री साहित्यप्रेमी  
श्री प्यारचन्दजी महाराज.
- (७) हैद्राबाद-(दक्षिण) ता. २५-११-३६ का पत्र, स्थिवरपदभूषित  
भाग्यवान् पुरुष श्री ताराचंदजी महाराज, तथा प्रसिद्धवक्ता श्री १००७  
श्री सोभागमलजी महाराज.
- (८) जयपुर-ता. २७-११-३६ का पत्र, संप्रदाय के गौरववर्धक शांत-  
स्वभावी श्री १००८ श्री पूज्य श्री खूबचन्दजी महाराज.
- (९) अम्बाला-ता. २९-११-३६ का पत्र, परमप्रतापी पंजाबकेशरी श्री  
१००८ श्री पूज्य श्री काशीरामजी महाराज.

- (१०) सेलाना-ता. २९-११-३६ का पत्र, शास्त्रोंके ज्ञाता श्रीमान् रतनलालजी डोसी.
- (११) खीचन-ता. ९-११-३६ का पत्र, पंडितरत्न न्यायतीर्थ सुश्रावक श्रीयुत् माधवलालजी.

सादर जय जिनेन्द्र

आपका भेजा हुआ उपासकदशांग सूत्र तथा पत्र मिला यहां विराजित प्रवर्तक वयोवृद्ध श्री १००८ श्री ताराचंदजी महाराज पण्डित श्री किशनलालजी महाराज आदि ठाणा १४ सुख शांति में विराजमान हैं आपके वहां विराजित जैनशास्त्राचार्य पूज्यपाद श्री १००८ श्री घासीलालजी महाराज आदि ठाणा नव से हमारी वन्दना अर्ज कर सुख शांति पूछे, आपने उपासकदशांग सूत्र के विषय में यहां विराजित मुनिवरों की सम्मति मंगाई उसके विषय में वक्ता श्री सोभागमलजी महाराजने फरमाया है कि वर्तमानमें स्थानकवासी समाजमें अनेकानेक विद्वान् मुनि महाराज मौजूद हैं मगर जैनशास्त्र की वृत्ति रचनेका साहस जैसा घासीलालजी महाराजने किया है वैसा अन्यने किया हो ऐसा नजर नहीं आता। दूसरा यह शास्त्र अत्यन्त उपयोगी तो यों है ही संस्कृत प्राकृत हिंदी और गुजराती भाषा होने से चारों भाषा वाले एक ही पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं। जैन समाज में ऐसे विद्वानों का गौरव बढे यही शुभ कामना है। आशा है कि स्थानकवासी संघ विद्वानों की कदर करना सीखेगा।

योग्य लिखे शेष शुभ

भवदीय

जमनालाल रामलाल कीमती

आगरा से—

श्री जैनदिवाकर प्रसिद्ध वक्ता जगद्वल्लभ मुनि श्री चोथमलजी महाराज व पंडितरत्न सुव्याख्यानी गणीजी श्री प्यारचन्द जी महाराज ने इस पुस्तक को अतीव पसन्द की है।



श्रीमान् न्यायतीर्थ पण्डित

माधवलालजी खीचनसे लिखते हैं कि—

उन पंडितरत्न महाभाग्यवंत पुरुषों के सामने उनकी अगाध-  
तत्त्वगवेषणा के विषय में मैं नगण्य क्या सम्मति दे सकता हूँ।

परन्तु—

मेरे दो मित्रों ने जिन्होंने इसको कुछ पढ़ा है बहुत सराहना की है, वास्तवमें ऐसे उत्तम व सबके समझने योग्य ग्रन्थों की बहुत आवश्यकता है और इस समाज का तो ऐसे ग्रन्थ ही गौरव बढ़ा सकते हैं। ये दोनों ग्रन्थ वास्तव में अनुपम हैं। ऐसे ग्रन्थरत्नों के सुप्रकाशसे यह समाज अमावास्या के घोर अन्धकारमें दीपावली का अनुभव करती हुई महावीर के अमूल्य वचनों का पान करती हुई अपनी उन्नति में अग्रसर होती रहेगी।

\*

ता. २९-११-३६

अम्बाला (पंजाब)

पत्र आपका मिला श्री श्री १००८ पंजाबकेसरी पूज्य श्री काशी-  
रामजी महाराज की सेवा में पढ़ कर सुना दिया। आपकी भेजी हुई  
उपासदशाङ्गसूत्र तथा गृहिधर्मकल्पतरु की एक २ प्रति भी प्राप्त हुई।  
दोनों पुस्तकें अति उपयोगी तथा अत्यधिक परिश्रम से लिखी हुई हैं।  
ऐसे ग्रन्थरत्नों के प्रकाशित करवानेकी बड़ी आवश्यकता है। इन पुस्तकों  
से जैन तथा अजैन सबका उपकार हो सकता है। आपका यह पुरुषार्थ  
सराहनीय है।

आपका

शशिभूषण शास्त्री

अध्यापक जैन हाईस्कूल

अम्बाला शहर



शान्तस्वभावी वैराग्यमूर्ति तत्त्ववारिधि, धैर्यवान श्री जैनाचार्य पूज्यवर श्री श्री १००८ श्री खूबचंदजी महाराज साहेबने सूत्र श्री उपासकदशाङ्गजी को देखा। आपने फरमाया कि पण्डित मुनि घासीलालजी महाराज ने उपासक-दशाङ्ग सूत्रकी टीका लिखने में बड़ा ही परिश्रम किया है। इस समय इस प्रकार प्रत्येक सूत्रोंकी संशोधनपूर्वक सरल टीका और शुद्धहिन्दी अनुवाद होने से भगवान निर्ग्रन्थों के प्रवचनों के अपूर्व रस का लाभ मिल सकता है।

\*

बालाचोर से भारतरत्न शतावधानी पंडित मुनि श्री १००८ श्री रतनचन्दजी महाराज फरमाते हैं कि—

उत्तरोत्तर जोतां मूल सूत्रकी संस्कृत टीकाओ रचवामां टीकाकारे स्तुत्य प्रयास कर्यो छे, जे स्थानकवासी समाज माटे मगरूरी लेवा जेवुं छे, वली करांचीना श्री संघे सारा कागळमां अने सारा टाईपमां पुस्तक छपावी प्रगट कर्युं छे जे एक प्रकारनी साहित्य सेवा बजावी छे.

\*

बम्बई शहरमें विराजमान कवि मुनि श्री नानचन्दजी महाराजने फरमाया ह कि पुस्तक सुन्दर है प्रयास अच्छा है।

\*

खोचन से स्थविर क्रियापात्र मुनि श्री रतनचन्दजी महाराज और पंडित रत्न मुनिश्री समर्थमलजी महाराजश्री फराते हैं कि—विद्वान् महात्मा पुरुषोंका प्रयत्न सराहनीय है, जैनागम श्रीमद् उपादशाङ्गसूत्र की टीका, एवं उसकी सरल सुबोधनी शुद्ध हिन्दी भाषा बड़ी ही सुन्दरता से लिखी है।

\*

श्री वीतरागय नमः ॥

श्री श्री श्री १००८ जैनधर्मदिवाकर जैनागमरत्नाकर श्रीमज्जे-  
नाचार्य श्री पूज्य घासीलालजी महाराज चरणवन्दन स्वीकार हो ।

अपरञ्च समाचार यह है कि आपके भेजे हुए ९ शास्त्र मास्टर  
शोभालालजी के द्वारा प्राप्त हुए, एतदर्थ धन्यवाद ! आपश्रीजीने तो ऐसा  
कार्य किया है जो कि हजारों वर्षों से किसी भी स्थानकवासी जैनाचार्यने  
नहीं किया ।

आपने स्थानकवासीजैनसमाज के ऊपर जो उपकार किया है वह  
कदापि भुलाया नहीं जा सकता और नहीं भुलाया जा सकेगा ।

हम तीनों मुनि भगवान महावीर से अथवा शासनदेव से प्रार्थना  
करते हैं कि आपकी इस वज्रमयी लेखनीको उत्तरोत्तर शक्तिप्रदान  
करें ता कि आप जैनसमाज के ऊपर और भी उपकार करते रहें और  
आप चिरञ्जीवी हों ।

हम हैं आपके मुनि तीन  
मुनि सत्येन्द्रदेव, मुनि लखपतराय, मुनि पद्मसेन,

## इतवारी बाजार

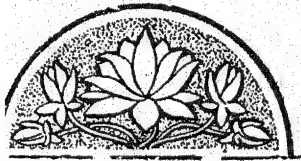
नागपुर ता. १९-१२-५६

प्रखर विद्वान् जैनाचार्य मुनिराज श्री घासीलालजी महाराजद्वारा जो आगमोद्धारा हुआ और हो रहा है सचमुच महाराजश्री का यह स्तुत्य कार्य है। हमने प्रचारकजी के द्वारा नौ सूत्रोंका सेट देखा और कई मार्मिक स्थलोंको पढ़ा, पढ़ कर विद्वान् मुनिराजश्री की शुद्ध श्रद्धा तथा लेखनीके प्रति हार्दिक प्रसन्नता फूट पड़ी।

वास्तव में मुनिराज श्री जैन समाज पर ही नहीं इतर समाज पर भी गहरा उपकार कर रहे हैं। ज्ञान किसी एक समाज का नहीं होता वह सभी समाज को अनमोल निधि है जिसे कठिन परिश्रम से तैयार कर जनता के सम्मुख रक्खा जा रहा है, जिसका एक एक सेट हर शहर गांव और घर घर में होना आवश्यक है।

साहित्यरत्न

मोहनमुनि सोहनमुनि जैन



## શ્રી દશવકલિક સૂત્રનું સમ્મતિ પત્ર

શ્રમણ સંઘના મહાન આચાર્ય આગમ વારિધિ સર્વતન્ત્રસ્વતંત્ર જૈનાચાર્ય પૂજ્યશ્રી આત્મારામજી મહારાજે આપેલા સમ્મતિપત્રનો ગુજરાતી અનુવાદ.

\*

મેં તથા પંડિત મુનિ હેમચંદ્રજીએ પંડિત મુલચંદ વ્યાસ (નાગૌર મારવાડવાળા) દ્વારા મળેલી પંડિત રત્ન શ્રી ઘાસીલાલજી મુનિ વિરચિત સંસ્કૃત અને હિન્દી ભાષા સહિત શ્રી દશવકલિક સૂત્રની આચારમણિમંજૂષા ટીકાનું અવલોકન કર્યું. આ ટીકા સુંદર બની છે. તેમાં પ્રત્યેક શબ્દોનો અર્થ સારી રીતે વિશેષભાવ લઈને સમજાવવામાં આવેલ છે.

તેથી વિદ્વાનો અને સાધારણ બુદ્ધિવાળાઓ માટે ઉપકાર કરવાળી છે. ટીકાકારે મુનિના આચાર વિષયનો સારો છદ્દોષ કરેલ છે. જે આધુનિક-મતાવલંબી અહિંસાના સ્વરૂપને નથી જાણતા, દયામાં પાપ સમજે છે તેમને માટે ‘અહિંસા શું વસ્તુ છે’ તેનું સારી રીતે પ્રતિપાદન કરેલ છે. વૃત્તિકારે સૂત્રના પ્રત્યેક વિષયને સારી રીતે સમજાવેલ છે. આ વૃત્તિના અવલોકનથી વૃત્તિકારની અતિશય યોગ્યતા સિદ્ધ થાય છે.

આ વૃત્તિમાં એક બીજી વિશેષતા એ છે કે મૂલસૂત્રની સંસ્કૃત છાયા હોવાથી સૂત્ર, સૂત્રનાં પદ અને પદચ્છેદ સુબોધદાયક બનેલ છે.

પ્રત્યેક જાણસુએ આ ટીકાનું અવલોકન અવશ્ય કરવું જોઈએ. વધારે શું કહેવું? અમારી સમાજમાં આવા પ્રકારના વિદ્વાન મુનિરત્નનું હોવું એ સમાજનું અહોભાગ્ય છે. આવા વિદ્વાન મુનિરત્નોના કારણે સુમપ્રાય—સુતેલો સમાજ અને લુપ્તપ્રાય એટલે લોપ પામેલું સાહિત્ય એ બન્નેનો ફરીથી ઉદય થશે. અમે વૃત્તિકારને વારંવાર ધન્યવાદ આપીએ છીએ.

વિક્રમ સંવત ૧૯૬૦ કાદશુન શુકલ } ઈઈ  
તેરસ મંગળવાર }  
(અલ્પવર સ્ટેટ )

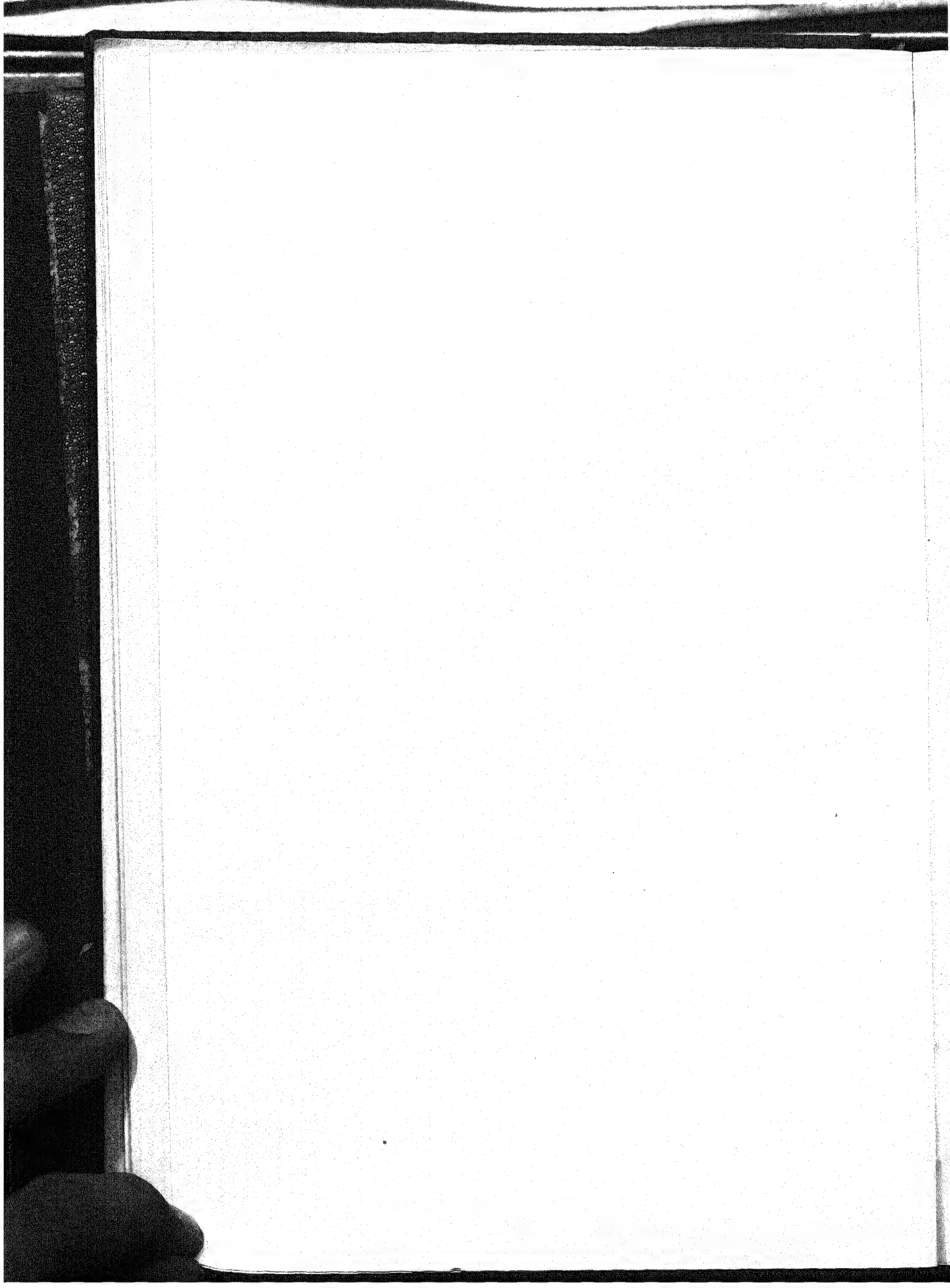
ઉવજાગ્ય જઈણી  
મુણી આચારામે  
પંચનઈઓ

રૂા. ૬૦૦૦ આપનાર આદ્ય મુરજીશ્રી



શે ડ હરખચંદ કાળીદાસ વારીયા  
ભાણવડ.





શ્રમણ સંઘના પ્રચારમંત્રી પંજાબકેશરી મહારાજ શ્રી પ્રેમચંદણ મહારાજ જેઓશ્રી રાજકોટમાં પધારેલા હતા ત્યારે તેઓના તરફથી શસ્ત્રોને માટે મળેલો અભિપ્રાય.

\*

શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ તરફથી પૂજ્યપાદ શાસ્ત્રવારિધિ પંડિતરાજ સ્વામીશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ દ્વારા શાસ્ત્રોદ્ધારનું જે કાર્ય થઈ રહ્યું છે તે કાર્ય જૈનસમાજ તેમાં ખાસ કરીને સ્થાનકવાસીજૈનસમાજને માટે મૂળભૂત મૌલિક સંસ્કૃતિની જડને મજબુત કરવાવાળું છે.

એટલા ખાતર આ કાર્ય અતિ પ્રશંસનીય છે માટે દરેક વ્યક્તિએ તેમાં યથાશક્તિ ભોગ દેવાની ખાસ આવશ્યકતા છે અને તેથી એ ભગીરથ કાર્ય જદ્દીથી જદ્દી સંપૂર્ણપણે પાર પાડી શકાય અને જનતા શ્રુતજ્ઞાનનો લાભ મેળવી શકે.

\*

દરીયાપુર સંપ્રદાયના પૂજ્ય આચાર્યશ્રી ઈશ્વરલાલજી મહારાજ સાહેબના

## સૂત્રો સંબંધે વિચારો

નમામિ વીરં ગિરિસારધીરં

પૂજ્યપાદ જ્ઞાનિપ્રવરશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ તથા પંડિતશ્રી કનૈયાલાલ મહારાજ આદિ થાણા છની સેવામાં—

અમદાવાદ શાહપુર ઉપાશ્રયથી મુનિ દયાનંદજીના ૧૦૮ પ્રણિપાત.

આપ સર્વે થાણાઓ મુખ સમાધિમાં હશે નિરંતર ધર્મધ્યાન ધર્મારાધનામાં લીન હશે.

સૂત્ર પ્રકાશન કાર્ય ત્વરિત થાય એવી ભાવના છે દશવૈકલિક તથા આચારાંગ એક એક ભાગ અહીં છે. ટીકા ખુબ સુંદર, સરળ અને પંડિતજનોને સુગ્રિય થઈ પડે તેવી છે. સાથે સાથે ટીકા વિનાના મુખ અને અર્થ સાથે પ્રકાશન થાય તો શ્રાવકગણ તેનો વિશેષ લાભ લઈ શકે, અને પૂજ્ય આચાર્ય ગુરુદેવને આંખે મોતીયો ઉતરાવ્યો છે અને સાફ છે એજ.

આસો શુદ્ધ ૧૦, મંગળવાર, તા. ૨૫-૧૦-૫૫

પુનઃ પુનઃ શાતા ઈચ્છતો,  
દયામુનિના પ્રણિપાત.

\*

દરીયાપુર સંપ્રદાયના પંડિતરત્ન ભાઈચંદ્ર મહારાજનો અભિપ્રાય  
શ્રી

રાણપુર તા. ૧૬-૧૨-૧૯૫૫

પૂજ્યપાદ જ્ઞાનિવર પંડિતરત્ન પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આદિ  
મુનિવરોની સેવામાં, આપ સર્વ સુખસમાધીમાં હશે.

સૂત્રપ્રકાશનનું કામ સુંદર થઈ રહ્યું છે તે બધી અત્યંત આનંદ આપના  
પ્રકાશિત થયેલાં કેટલાંક સૂત્રો એવાં જોયાં. સુંદર અને સરલ સિદ્ધાંતના ન્યાયને પુષ્ટિ  
કરતી ટીકા પંડિતરત્નોને સુપ્રિય થઈ પડે તેવી છે. સૂત્રપ્રકાશનનું કામ  
ત્વરિત પૂર્ણ થાય અને ભવિ આત્માઓને આત્મકલ્યાણ કરવામાં સાધનભૂત  
થાય એજ અભ્યર્થના.

લી. પંડિતરત્ન બાળપ્રદ્યારી  
પૂ૦ શ્રી ભાઈચંદ્ર મહારાજની  
આજ્ઞાનુસાર શાન્તિમુનીના  
પાયવંદન સ્વીકારશે.

\*

તા. ૧૧-૫-૫૬

વીરમગામ

ગચ્છાધિપતિ પૂજ્ય મહારાજ શ્રી જ્ઞાનચંદ્રજી મહારાજના સંપ્રદાયના  
આત્માર્થી, ક્રિયાપાત્ર, પંડિતરત્ન, મુનિશ્રી સમરથમલજી મહારાજનો અભિપ્રાય.  
ખીચનથી આવેલ તા. ૧૨-૨-૫૬ના પત્રથી ઉદ્ધૃત.

પૂજ્ય આચાર્ય ઘાસીલાલજી મહારાજના હસ્તક જે સૂત્રોનું લખાણ સુંદર  
અને સરળ ભાષામાં થાય છે તે સાહિત્ય, પંડિત મુનિશ્રી સમરથમલજી મહારાજ  
સમય ઓછો મળવાને કારણે સંપૂર્ણ જોઈ શક્યા નથી. છતાં જેટલું સાહિત્ય  
જોયું છે, તે બહુ જ સારું અને મનન સાથે લખાયેલું છે, તે લખાણ શાસ્ત્ર-આજ્ઞાને  
અનુરૂપ લાગે છે. આ સાહિત્ય દરેક શ્રદ્ધાળુ જીવોને વાંચવા યોગ્ય છે. આમાં  
સ્થાનકવાસી સમાજની શ્રદ્ધા, પ્રરૂપણા અને ફરસણાની દૃઢતા શાસ્ત્રાનુકૂળ છે.  
આચાર્યશ્રી અપૂર્વ પરિશ્રમ લઈ સમાજ ઉપર મહાન ઉપકાર કરે છે.

લી. કિશનલાલ પૃથ્વીરાજ માલુ.

મુ. ખીચન.

\*

## લીમડી સંપ્રદાયના સદાનંદી મુનિશ્રી છોટાલાલજી

### મહારાજનો અભિપ્રાય

શ્રી વીતરાગદેવે જ્ઞાનપ્રચારને તીર્થંકર-નામ-ગોત્ર ખાંધવાનું નિમિત્ત કહેલ છે. જ્ઞાનપ્રચાર કરનાર, કરવામાં સહાય કરનાર, અને તેને અનુમોદન આપનાર જ્ઞાનાવરણીય કર્મને ક્ષય કરી કેવળ જ્ઞાનને પ્રાપ્ત કરી પરમપદના અધિકારી બને છે. શાસ્ત્રજ્ઞ, પરમ શાન્ત અને અપ્રમાદી પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે અવિશ્રાન્તપણે જ્ઞાનની ઉપાસના અને તેની પ્રભાવના અનેક વિકટ પ્રસંગોમાં પણ કરી રહ્યા છે. તે માટે તેઓશ્રી અનેકશઃ ધન્યવાદના અધિકારી છે. વંદનીય છે. તેમની જ્ઞાનપ્રભાવનાની ધગસ ઘણા પ્રમાદિઓને અનુકરણીય છે. જેમ પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે જ્ઞાન પ્રચાર માટે અવિશ્રાન્ત પ્રયત્ન કરે છે. તેમજ-શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના કાર્યવાહકો પણ એમાં સહાય કરીને જે પવિત્ર સેવા કરી રહેલ છે. તે પણ ખરેખર ધન્યવાદના પૂર્ણ અધિકારી છે.

એ સમિતિના કાર્યકરોને મારી એક સુચના છે કે:—

શાસ્ત્રોદ્ધાર પ્રવર પંડિત અપ્રમાદી સંત ઘાસીલાલજી મહારાજ જે શાસ્ત્રોદ્ધારકનું કામ કરી રહેલ છે. તેમાં સહાય કરવા માટે-પંડિતો વિગેરેના માટે જે ખર્ચો થઈ રહેલ છે તેને પહેંચીવળવા માટે સારું સરખું ફંડ જોઈએ. એના માટે મારી એ સુચના છે કે:—શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના મુખ્ય કાર્યવાહકો:—જો બની શકે તો પ્રમુખ પોતે અને બીજા બે ત્રણ જણાઓ ગુજરાત, સૌરાષ્ટ્ર, અને કચ્છમાં પ્રવાસ કરી મેમ્બરો બનાવે અને આર્થિક સહાય મેળવે.

જો કે અત્યારની પરિસ્થિતિ વિષમ છે. વ્યાપારીઓ, ધંધાદારીઓને પોતાના વ્યવહાર સાચવવા પણ મુશ્કેલ બન્યા છે. છતાં જો સંભવિત ગૃહસ્થો પ્રવાસે નીકળે તો જરૂર કાર્ય સફળ કરે એવી મને શ્રદ્ધા છે.

આર્થિક અનુકૂળતા થવાથી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ પણ વધુ સરલતાથી થઈ શકે. પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ ન્યાં સુધી આ તરફ વિચરે છે ત્યાં સુધીમાં એમની જ્ઞાનશક્તિનો જેટલો લાભ લેવાય તેટલો લઈ લેવો, કદાચ સૌરાષ્ટ્રમાં વધુ વખત રહેવાથી તેમને હવે બહાર વિહરવાની ઇચ્છા થતી હોય તો શાન્તિભાઈશેઠ જેવાએ વિનંતિ કરી અમદાવાદ પધારવા, અને ત્યાં અનુકૂળતા મુજબ બે-ત્રણ વર્ષની સ્થિરતા કરાવીને તેમની પાસે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ પૂર્ણ કરાવી લેવું જોઈએ.

થોડા વખતમાં જમજોધપુરમાં શાસ્ત્રોદ્ધારકમીટી મળવાની છે, તે વખતે ઉપરની સૂચના વિચારાય તો ઠીક.



ફરી શાસ્ત્રોદ્ધારક પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજને એમની આ સેવા અને પરમ કલ્યાણકારક પ્રવૃત્તિને માટે વારંવાર અભિનંદન છે. શાસનનાયક દેવ તેમના શરીરાદિને સશક્ત અને દીર્ઘાયુ રાખે જેથી સમાજ ધર્મની વધુ ને વધુ સેવા કરી શકે ૐ અસ્તુ.

ચાતુર્માસ સ્થળ લીંબડી } લી.  
સ. ૨૦૧૦ શ્રાવણ વદ ૧૩ ગુરુ } સદાનંદી જૈનમુનિ છેટાલાલજી

\*

### શ્રી વર્ધમાન સંપ્રદાયના પૂજ્યશ્રી પુનમચંદ્રજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શાસ્ત્રવિશાદ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ જૈન આગમો ઉપર જે સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચેલ છે તે માટે તેઓશ્રી ધન્યવાદને પાત્ર છે. તેમણે આગમો ઉપરની સ્વતંત્ર ટીકા રચીને સ્થાનકવાસી જૈન સમાજનું ગૌરવ વધાર્યું છે, આગમો ઉપરની તેમની સંસ્કૃત ટીકા ભાષા અને ભાવની દૃષ્ટિએ ઘણી જ સુંદર છે. સંસ્કૃતરચના માધુર્ય તેમજ અલંકાર વગેરે ગુણોથી યુક્ત છે. વિકાનોએ તેમજ જૈન સમાજના આચાર્યો, ઉપાધ્યાયો વગેરે એ શાસ્ત્રો ઉપર રચેલી આ સંસ્કૃતરચનાની કદર કરવી જોઈએ. અને દરેક પ્રકારનો સહકાર આપવો જોઈએ.

આવા મહાન કાર્યમાં પંડિતરત્ન પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જે પ્રયત્ન કરી રહ્યા છે તે અલૌકિક છે. તેમનું આગમ ઉપરની સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચવાનું ભગીરથકાર્ય શીઘ્ર સફળ થાય એ જ શુભેચ્છા સાથે.

અમદાવાદ  
તા. ૨૨-૪-૫૬ રવીવાર }  
મહાવીર જયંતિ

મુનિ પુનમચંદ્રજી

\*

ખંભાત સંપ્રદાયના મહાસતી શારદાબાઈ સ્વામીનો અભિપ્રાય  
લખતર તા. ૨૫-૪-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાંતીલાલભાઈ મંગળદાસભાઈ  
પ્રમુખ સાહેબ અખિલ ભારત ૨૧૦ સ્થાન જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ  
મુ. અમદાવાદ

અમો અત્રે દેવગુરુની કૃપાએ સુખરૂપ છીએ. વિ. મા. આપની સમિતિદ્વારા પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ સાહેબ જે સૂત્રોનું કાર્ય કરે છે તે પૈકીનાં સૂત્રોમાંથી ઉપાસકદશાંગસૂત્ર, આચારાંગસૂત્ર, અનુત્તરોપપતિકસૂત્ર

દશવૈકલિકસૂત્ર વિગેરે સૂત્રો જોયાં તે સૂત્રો સંસ્કૃત હિન્દી અને ગુજરાતી ભાષાઓમાં હોવાને કારણે વિદ્વાન અને સામાન્ય જનોને ઘણું જ લાભદાયક છે. તે વાંચન ઘણું જ સુંદર અને મનોરંજન છે. આ કાર્યમાં પૂજ્ય આચાર્યશ્રી જે અઘાત પુરૂષાર્થે કાર્ય કરે છે તે માટે વારંવાર ધન્યવાદને પાત્ર છે. આ સૂત્રોથી સમાજને ઘણું લાભનું કારણ છે.

હંસ સમાન બુદ્ધિવાળા આત્માઓ સ્વપરના ભેદથી નિખાલસ ભાવનાએ અવલોકન કરશે તો આ સાહિત્ય સ્થાનકવાસી સમાજ માટે અપૂર્વ અને ગૌરવ લેવા જેવું છે. દરેક ભવ્ય આત્માઓને સૂચન કરું છું કે આ સૂત્રો પોતા-પોતાના ઘરમાં વસાવાની સુંદર તકને ચુકસો નહિ. કારણ આવા શુદ્ધ પવિત્ર અને સ્વપરંપરાને પુષ્ટિરૂપ સૂત્રો મળવાં બહુ મુશ્કેલ છે. આ કાર્યને આપશ્રી તથા સમિતિના અન્ય કાર્યકરો જે શ્રમ લઈ રહ્યા છે તેમાં મહાન નિર્જરાનું કારણ જોવામાં આવે છે તે બદલ ધન્યવાદ. એ જ

લી. શારદાબાઈ સ્વામી

ખંભાત સંપ્રદાય.

\*

### બરવાળા સંપ્રદાયના વિદુષી મહાસતીજી મોંઘીબાઈ સ્વામીનો અભિપ્રાય

ધંધુકા તા. ૨૭-૧-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાન્તીલાલ મંગળદાસભાઈ

પ્રમુખ અં ભાં સ્વેં સ્થાં જૈનશાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

મું રાજકોટ

અત્રે બીરાજતા ગું ગુંના ભંડાર મહાસતીજી વિદુષી મોંઘીબાઈ સ્વામી તથા હીરાબાઈ સ્વામી આદિકાણું બન્ને સુખશાતમાં બીરાજે છે. આપને સૂચન છે કે અપ્રમત્ત અવસ્થામાં રહી નિવૃત્તિ ભાવને મેળવી ધર્મધ્યાન કરશો એજ આશા છે.

વિશેષમાં અમને પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના રચેલાં સૂત્રો ભાઈ પોપટ ધનજીભાઈ તરફથી ભેટ તરીકે મળેલાં તે સૂત્રો તમામ આદ્યોપાન્ત વાંચ્યાં મનન કર્યાં અને વિચાર્યાં છે તે સૂત્રો સ્થાનકવાસી સમાજને અને વીતરાગમાર્ગને ખુબ જ ઉન્નત બનાવનાર છે. તેમાં આપણી શ્રદ્ધા એટલી ન્યાયરૂપથી ભરેલી છે તે આપણા સમાજ માટે ગૌરવ લેવા જેવું છે. હંસ સમાન



આત્માઓ જ્ઞાનઝરણુઓથી આત્મરૂપવાડીને વિકસિત કરશે, ધન્ય છે આપને અને સમિતિના કાર્યકરોને જે સમાજ ઉત્થાન માટે કોઈની પણ પરવા કર્યા વગર જ્ઞાનનું દાન ભવ્ય આત્માઓને આપવા નિમિત્તરૂપ થઈ રહ્યા છે. આવા સમર્થ વિદ્વાન પાસેથી સંપૂર્ણ કાર્ય પુરું કરાવશે તેવી આશા છે.

એજ દિ ઝરવાળા સંપ્રદાયના વિદુષી

મહાસતીજી મોંઘીબાઈ સ્વામી

ના કરમાનથી લી. ખોડીદાસ ગણેશભાઈ—ધંધુકા

સ્થાનકવાસી જૈન સંઘના પ્રમુખ

\*

### અદ્યતન પદ્ધતિને અપનાવનાર વડોદરા કોલેજના એક વિદ્વાન પ્રોફેસરનો અભિપ્રાય

સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયના મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારજ જૈનશાસ્ત્રોના સંસ્કૃત ટીકાખંડ, ગુજરાતીમાં અને હિન્દીમાં ભાષાંતરે કરવાના ઘણા વિકટ કાર્યમાં વ્યાસ થયેલા છે. શાસ્ત્રો પૈકી જે શાસ્ત્રો પ્રસિદ્ધ થયાં છે તે હું જોઈ શક્યો છું, મુનિશ્રી પોતે સંસ્કૃત, અર્ધભાંગધી હિન્દી ભાષાઓના નિબળાત છે. એ એમનો ટુંક પરિચય કરતાં સહજ જણાઈ આવે છે. શાસ્ત્રોનું સંપાદન કરવામાં તેમને પોતાના શિષ્ય વર્ગનો અને વિશેષમાં ત્રણ પંડિતોનો સહકાર મળ્યો છે. તે જોઈ મને આનંદ થયો. સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયના અગ્રેસરોએ પંડિતોનો સહકાર મેળવી આપી, મુનિશ્રીના કાર્યને સરળ અને શિષ્ટ બનાવ્યું છે. સ્થાનકવાસી સમાજમાં વિક્રતા ઘણી ઓછી છે, તે દિગંબર મૂર્તિપૂજક શ્વેતાંબર વગેરે જૈનદર્શનના પ્રતિનિધિઓના ઘણા સમયથી પરિચયમાં આવતાં હું વિરોધના ભય વગર કહી શકું. પૂ. મહારાજનો આ પ્રયાસ સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયમાં પ્રથમ છે એવી મારી માન્યતા છે. સંસ્કૃત સ્પષ્ટીકરણો સારાં આપવામાં આવ્યાં છે, ભાષા શુદ્ધ છે એમ ચોક્કસ કહી શકું છું. ગુજરાતી ભાષાંતરે પણ શુદ્ધ અને સરળ થયેલાં છે. મને વિશ્વાસ છે કે મહારાજશ્રીના આ સ્તુત્ય પ્રયાસને જૈનસમાજ ઉત્તેજન આપશે અને શાસ્ત્રોના ભાષાંતરોને વાચનાત્રયમાં અને કુટુંબોમાં વસાવી શકાય તે પ્રમાણે વ્યવસ્થા કરશે.

પ્રતાપગંજ, વડોદરા

કામદાર કેશવલાલ હિંમતરામ

તા. ૨૭-૨-૧૯૫૬

એમ. એ.

## મુંબઈની એ કોલેજોના પ્રોફેસરોનો અભિપ્રાય

મુંબઈ તા. ૩૧-૩-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાન્તિલાલ મંગળદાસ

પ્રમુખ : શ્રી અખિલ ભારત સ્વે. સ્થા. જૈનશસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ,  
રાજકોટ.

પૂજ્યાચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે તૈયાર કરેલાં આચારાંગ દશવૈકાલિક, આવશ્યક, ઉપાસકદશાંગ વગેરે સૂત્રો અમે જોયાં. આ સૂત્રો ઉપર સંસ્કૃતમાં ટીકા આપવામાં આવી છે અને સાથે હિંદી અને ગુજરાતી ભાષાંતરો પણ આપવામાં આવ્યાં છે. સંસ્કૃતટીકા અને ગુજરાતી તથા હિંદી ભાષાંતરો જોતાં આચાર્યશ્રીના આ ત્રણે ભાષા પરના એક સરખા અસાધારણ પ્રભુત્વની સચોટ અને સુરેખ છાપ પડે છે. આ સૂત્ર ગ્રંથોમાં પાને પાને પ્રગટ થતી આચાર્યશ્રીની અપ્રતિમ વિદ્વત્તા મુગ્ધ કરી દે તેવી છે. ગુજરાતી તથા હિંદીમાં થયેલાં ભાષાંતરમાં ભાષાની શુદ્ધિ અને સરળતા નોંધપાત્ર છે. એવી વિદ્વદ્જન અને સાધારણ માણસ ઉભયને સંતોષ આપે એવી એમની લેખનીની પ્રતીતિ થાય છે. ૩૨ સૂત્રોમાંથી હજી ૧૩ સૂત્રો પ્રગટ થયાં છે. બીજાં ૭ સૂત્રો લખાઈને તૈયાર થઈ ગયાં છે. આ બધાં જ સૂત્રો જ્યારે એમને હાથે તૈયાર થઈને પ્રગટ થશે ત્યારે જૈન-સૂત્ર-સાહિત્યમાં અમૂલ્ય સંપત્તિરૂપ ગણાશે એમાં સંશય નથી. આચાર્યશ્રી આ મહાન કાર્યને જૈનસમાજનો વિશેષતઃ સ્થાનકવાસી સમાજનો સંપૂર્ણ સહકાર સાંપડી રહેશે એવી અમે આશા રાખીએ છીએ.

પ્રો. રમણલાલ ચીમનલાલ શાહ

સેન્ટ જેવિયર્સ કોલેજ, મુંબઈ.

પ્રો. તારા રમણલાલ શાહ

સોફીયા કોલેજ, મુંબઈ

\*

રાજકોટ ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજના પ્રોફેસર સાહેબનો અભિપ્રાય

જયમહાલ

જાગનાથ પ્લોટ

રાજકોટ, તા. ૧૮-૪-૫૬

પૂજ્યાચાર્ય પં. મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આજે જૈનસમાજ માટે એક એવા કાર્યમાં વ્યાપ્ત થયેલા છે કે જે સમાજ માટે બહુ ઉપયોગી થઈ પડશે. મુનિશ્રીએ તૈયાર કરેલાં આચારાંગ, દશવૈકાલિક, શ્રી વિપાકશ્રુત વિ. મેં જોયાં.

આ સૂત્રો જોતાં પહેલીજ નજરે મહારાજશ્રીનો સંસ્કૃત, અર્ધભાગધી, હિન્દી તથા ગુજરાતી ભાષાઓ ઉપરનો અસાધારણ કાબુ જણાઈ આવે છે. એક પણ ભાષા મહારાજશ્રીથી અબ્બણી નથી. આપણે જોઈએ છીએ કે એ સૂત્રો ઉચ્ચ અને પ્રથમ કોટીના છે. તેની વસ્તુ ગંભીર, વ્યાપક અને જીવનને તલસ્પર્શી છે, આટલા ગહન અને સર્વગ્રાહ્ય સૂત્રોનું ભાષાંતર પૂ. ઘાસીલાલજી મહારાજ જેવા ઉચ્ચ કોટીના મુનિરાજને હાથે થાય છે તે આપણાં અહોભાગ્ય છે. યંત્રવાદ અને ભૌતિકવાદના આ જમાનામાં જ્યારે ધર્મભાવના ઓસરતી જાય છે એવે વખતે આવા તત્ત્વજ્ઞાન આધ્યાત્મકતાથી ભરેલાં સૂત્રોનું સરળ ભાષામાં ભાષાંતર દરેક જણાસુ, મુમુક્ષુ અને સાધકને માર્ગદર્શક થઈ પડે તેમ છે. જૈન અને જૈનેતર, વિદ્વાન અને સાધારણ માણસ સાધુ અને શ્રાવક દરેકને સમજણ પડે તેવી સ્પષ્ટ, સરળ અને શુદ્ધ ભાષામાં સૂત્રો લખવામાં આવ્યાં છે. મહારાજશ્રીને જ્યારે જોઈએ ત્યારે તેમના આ કાર્યમાં સંકળાયેલા જોઈએ છીએ. એ ઉપરથી મુનિશ્રીના પરિશ્રમ અને ધગશની કલ્પના કરી શકાય તેમ છે. તેમનું જીવન સૂત્રોમાં વણાઈ ગયું છે.

મુનિશ્રીના આ અસાધારણ કાર્યમાં પોતાના શિષ્યોનો તથા પંડિતોનો સહકાર મળ્યો છે. મને આશા છે કે જો દરેક મુમુક્ષુ આ પુસ્તકોને પોતાના ઘરમાં વસાવશે અને પોતાના જીવનને સાચા સુખને માર્ગે વાળશે તો મહારાજશ્રીએ ઉઠાવેલી શ્રમ સંપૂર્ણપણે સફળ થશે.

પ્રો. રસિકલાલ કસ્તુરચંદ ગાંધી

એમ. એ. એલ. એલ. બી

ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજ

રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર)

\*

મુંબઈ અને ઘાટકોપરમાં મળેલી સભાએ લિનાસર કોન્ફેરન્સ તથા સાધુસંમેલનમાં મોકલાવેલ ઠરાવ

હાલ જે વખતે શ્રી શ્રવેતાંબર સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ માટે આગમ સંશોધન અને સ્વતંત્ર ટીકાવાળા શાસ્ત્રોદ્ધારની અતિ આવશ્યકતા છે અને જે મહાનુભાવોએ આ વાત દીર્ઘ દૃષ્ટિથી પહેલી પોતાના મગજમાં લઈ તે પાર પાડવા મહેનત લઈ રહ્યા છે તેવા મુનિ મહારાજ પંડિતરત્ન શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કે જેઓને સાદહી અધિવેશનમાં સર્વાનુમતે સાહિત્યમંત્રી નીમ્યા છે તેઓશ્રીની દેખરેખ નીચે અ. ભા. શ્વે. સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ જે એક મોટી વળવાળી કમિટી છે તેની મારફતે કામ થઈ રહ્યું છે. જેને પ્રધાનાચાર્યશ્રી તથા પ્રચારમંત્રીશ્રી



તંથા અનેક અનુભવી મહાનુભાવોએ પોતાની પસંદગીની મહોર છાપ આપી છે. અને છેલ્લામાં છેલ્લા વડોદરા યુનિવર્સિટીના પ્રોફેસર કેશવલાલ કામદાર એમ. એ. પોતાનું સવિસ્તર પ્રમાણપત્ર આપ્યું છે તે શાસ્ત્રોદ્ધાર કમિટીના કામને આ સંમેલન તથા કેન્દ્રોદ્ધાર હાર્દિક અભિનંદન આપે છે. અને તેમના કામને જ્યાં જ્યાં અને જે જે જરૂર પડે-પડિતની અને નાણાંની પોતાની પાસેના ફંડમાંથી અને બાહર જનતા પાસેથી મદદ મળે તેવી ઇચ્છા ધરાવે છે.

આ શાસ્ત્રો અને ટીકાઓને જ્યારે આટલી બધી પ્રશંસાપૂર્વક પસંદગી મળી છે ત્યારે તે કામને મદદ કરવાની આ કેન્દ્રોદ્ધાર પોતાની ફરજ માને છે અને જે કોઈ તુટી હોય તે પં. ર. શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજની સાંનિધ્યમાં જઈ, બતાવીને સુધારવા પ્રયત્ન કરવો. આ કામને ટલ્લે ચઢાવવા જેવું કોઈ પણ કામ સત્તા ઉપરના અધિકારીઓના વાણી કે વર્તનથી ન થાય તે જોવા પ્રમુખ સાહેબને લક્ષ્યમણુ કરે છે.

(સ્થા. જૈન પત્ર તા. ૪-૫-૫૬)

\*

સ્વતંત્રવિચારક અને નિહર લેખક ‘જૈનસિદ્ધાંત’ના તંત્રી  
શેઠ નગીનદાસ ગીરધરલાલનો અભિપ્રાય

શ્રી સ્થાનકવાસી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સ્થાપીને પૂ. ઘાસીલાલજી મહારાજને સૌરાષ્ટ્રમાં બોલાવી તેમની પાસે બત્રીસે સૂત્રો તૈયાર કરવાની હિલચાલ ચાલતી હતી ત્યારે તે હિલચાલ કરનાર શાસ્ત્રજ્ઞ શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ સાથે મારે પત્રવ્યવહાર ચાલેલો ત્યારે શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈએ તેમના એક પત્રમાં મને લખેલું કે—

“આપણા સૂત્રોના મૂળ પાઠ તપાસી શુદ્ધ કરી સંસ્કૃત સાથે તૈયાર કરી શકે તેવા સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયમાં મુનિશ્રી ઘાસીલાલ મ. સિવાય મને કોઈ વિશેષ વિદ્વાન મુનિ જોવામાં આવતા નથી. લાંબી તપાસને અંતે મેં મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીને પસંદ કરેલા છે.”

શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ પોતે વિદ્વાન હતા. શાસ્ત્રજ્ઞ હતા તેમ વિચારક પણ હતા. શ્રાવકો તેમજ મુનિઓ પણ તેમની પાસેથી શિક્ષા વાંચના લેતા, તેમ જ્ઞાનચર્યા પણ કરતા. એવા વિદ્વાન શેઠશ્રીનો પસંદગી યથાર્થ જ હોય એમાં

નવાઈ નથી. અને પૂ. શ્રી ઘાસીલાલજીના બનાવેલાં સૂત્રો જોતાં 'સૌ કોઈને ખાત્રી થાય તેમ છે કે દામોદરદાસલાઈએ તેમજ સ્થાનકવાસી સમાજે જેવી આશા શ્રી ઘાસીલાલજી મ. પાસેથી રાખેલી તે બરાબર ફળીભૂત થયેલ છે.

શ્રી વર્ધમાન શ્રમણસંઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજે શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સૂત્રો માટે ખાસ પ્રશંસા કરી અનુમતિ આપેલ છે તે ઉપરથી જ શ્રી ઘાસીલાલજી મ. ના સૂત્રોની ઉપયોગિતાની ખાત્રી થશે.

આ સૂત્રો વિદ્યાર્થીને, અભ્યાસીને તેમજ સામાન્ય વાંચકોને સર્વને એક સરખી રીતે ઉપયોગી થઈ પડે છે. વિદ્યાર્થીને તેમજ અભ્યાસીને મૂળ તથા સંસ્કૃત ટીકા વિશેષ કરીને ઉપયોગી થાય તેમ છે. ત્યારે સામાન્ય હિંદી વાંચકને હિંદી અનુવાદ અને ગુજરાતી વાંચકને ગુજરાતી અનુવાદથી આપું સૂત્ર સરળતાથી સમજાય છે.

કેટલાકનો એવો ભ્રમ છે કે સૂત્રો વાંચવાનું કામ આપણું કામ નહિ, સૂત્રો આપણને સમજાય નહિ. આ ભ્રમ તદ્દન ખોટો છે. ખીજા કોઈ પણ શાસ્ત્રીય પુસ્તક કરતાં આ સૂત્રો સામાન્ય વાંચકને પણ ઘણી સરળતાથી સમજાઈ જાય છે. સામાન્ય માણસ પણ સમજી શકે તેટલા માટે જ લગવાન મહાવીરે તે વખતની લોકભાષામાં (અર્ધમાગધી ભાષામાં) સૂત્રો બનાવેલાં છે. એટલે સૂત્રો વાંચવાં તેમજ સમજવામાં ઘણું સરળ છે.

માટે કોઈ પણ વાંચકને એનો ભ્રમ હોય તો તે કાઢી નાંખવો અને ધર્મનું તેમજ ધર્મના સિદ્ધાંતોનું સાચું જ્ઞાન મેળવવા માટે સૂત્રો વાંચવાને ચૂકવું નહિ. એટલું જ નહિ પણ જરૂરથી પહેલાં સૂત્રો જ વાંચવાં.

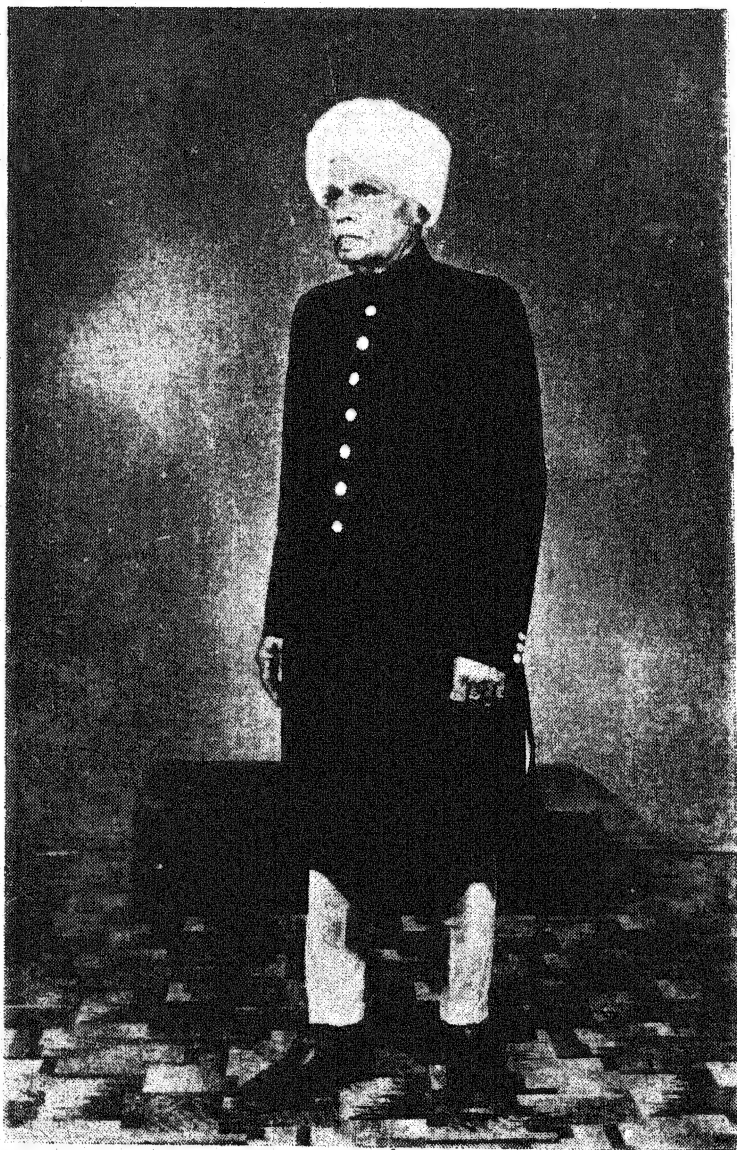
સ્થાનકવાસીઓમાં આ શ્રી સ્થાન જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ જે કામ કર્યું છે. અને કરી રહી છે તેવું કોઈ પણ સંસ્થાએ આજ સુધી કર્યું નથી. સ્થાન જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના છેલ્લા રિપોર્ટ પ્રમાણે બીજાં છ સૂત્રો લખાયેલ પડ્યાં છે, બે સૂત્રો-અનુયોગદ્ધાર અને ઠાણાંગ સૂત્ર-લખાય છે તે પણ થોડા વખતમાં તૈયાર થઈ જશે. તે પછી બાકીના સૂત્રો હાથ ધરવામાં આવશે.

તૈયાર સૂત્રો જલ્દી છપાઈ જાય એમ ઈચ્છીએ છીએ અને સ્થા. બંધુઓ સમિતિને ઉત્તેજન અને સહાયતા આપીને તેમનાં સૂત્રો ઘરમાં વસાવે એમ ઈચ્છીએ છીએ.

‘જૈન સિદ્ધાંત’ પત્ર-મે ૧૯૫૫



શ્રી. પરપણુ આપનાર આદ્ય સુરભીશ્રી



કો ઠા રી હર ગો વિંદ ભા ઈ જો ચંદ  
રા જ કો ૨.



## શ્રુત-ભક્તિ

(૫૦ આચાર્ય શ્રી ધાસીલાલજી મં સાંની આજ્ઞા અનુસાર લખનાર)

દ. સ. ના જૈન મુનિ શ્રી દયાનંદજી મહારાજ

તા. ૨૩-૬-૫૬ શાહપુર, અમદાવાદ

આજે લગભગ ૨૦ વર્ષથી શ્રદ્ધેય પરમપૂજ્ય, જ્ઞાનદિવાકર પં. મુનિશ્રી ધાસીલાલજી મં ચરમ તીર્થંકર ભગવાન મહાવીરના અનુત્તર, અનુપમ ન્યાય યુક્ત, પૂર્વાપર અવિરોધસ્વરૂપ કલ્યાણકારક, ચરમ શીતળ વાણીના દ્યોતક એવા શ્રી જિનાગમ પર પ્રકાશ પાડે છે, તેઓશ્રી પ્રાચીન, પૌર્વાત્ય સંસ્કૃતાદિ અનેક ભાષાના પ્રખર પંડિત છે અને જિનવાણીનો પ્રકાશ સંસ્કૃત, ગુજરાતી અને હિંદીમાં મૂળ શબ્દાર્થ, ટીકા, વિસ્તૃત, વિવરણ સાથે પ્રકાશમાં લાવે છે એ જૈન સમાજ માટે અતિ ગૌરવ અને આનંદનો વિષય છે.

ભ. મહાવીર અત્યારે આપણી પાસે વિદ્યમાન નથી. પરંતુ તેમની વાણી રૂપે અક્ષરદેહ ગણધર મહારાજેએ શ્રુતપરંપરાએ સાચવી રાખ્યો શ્રુતપરંપરાથી સચવાતું જ્ઞાન જ્યારે વિસ્મૃત થવાનો સમય ઉપસ્થિત થવા લાગ્યો ત્યારે શ્રી દેવર્દિગણિ ક્ષમાશ્રમણે વલ્લીપુર-વળામાં તે આગમોને પુસ્તકો રૂપે આરૂઢ કર્યો. આજે આ સિદ્ધાંતો આપણી પાસે છે. તે અર્ધમાગધી ભાષામાં છે. અત્યારે આ ભાષા ભગવાનની, દેવોની તથા જનગણની ધર્મભાષા છે- તેને આપણા શ્રમણો અને શ્રમણીઓ તથા સુમુક્ષુ શ્રાવક શ્રાવિકાઓ મુખપાઠ કરે છે, પરંતુ તેનો અર્થ અને ભાવ ઘણા થોડાઓ સમજે છે.

જિનાગમ એ આપણાં શ્રદ્ધેય પવિત્ર ધર્મસૂત્રો છે. એ આપણી આંખો છે. તેનો અભ્યાસ કરવો એ આપણી સૌની-જૈન માત્રની ફરજ છે. તેને સત્ય સ્વરૂપે સમજાવવા માટે આપણા સદ્ભાગ્યે જ્ઞાનદિવાકર શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજે સત્ સંકલ્પ કર્યો છે અને તે લિખિત સૂત્રોને પ્રગટાવી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિદ્વારા જ્ઞાન પરબ વહેતી કરી છે. આવા અનુપમ કાર્યમાં સકળ જૈનોનો સહકાર અવશ્ય હોવો ઘટે અને તેનો વધારેમાં વધારે પ્રચાર થાય તે માટે પ્રયત્નો કરવા ઘટે.

ભ. મહાવીરને ગણધર ગૌતમ પૂછે છે કે હે ભગવાન, સૂત્રની આરાધના કરવાથી શું ફળ પ્રાપ્ત થાય છે? ભગવાન તેનો પ્રતિ ઉત્તર આપે છે કે શ્રુતની આરાધનાથી જીવોના અજ્ઞાનનો નાશ થાય છે, અને તેઓ સંસારના કલેશોથી નિવૃત્તિ મેળવે છે, અને સંસાર કલેશોથી નિવૃત્તિ અને અજ્ઞાનનો નાશ થતાં મોક્ષ ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે.

આવા જ્ઞાનકાર્યમાં મૂર્તિપૂજક જૈનો, દિગંબરો અને અન્ય ધર્મિઓ હબરો અને લાખો રૂપિયા ખર્ચે છે. હિંદુ ધર્મમાં પવિત્ર મનાતા ગ્રંથ ગીતાના સેંકડો નહિ પણ હબરો ટીકા ગ્રંથો દુનિયાની લગભગ સર્વ ભાષાઓમાં પ્રગટ થયા છે. ઇસાઈ ધર્મના પ્રચારકો તેમના પવિત્ર ધર્મગ્રંથ બાઈબલના પ્રચારાર્થે તેનું જગતની સર્વ



ભાષાઓમાં ભાષાંતર કરી તેને પડતર કરતાં પણ ઘણી ઓછી કિંમતે વેચી ધર્મ-સૂત્રોનો પ્રચાર કરે છે. મુસ્લિમ લોકો પણ તેમના પવિત્ર મનાતા ગ્રન્થ કુરાનનું અનેક ભાષાઓમાં ભાષાંતર કરી સમાજમાં પ્રચાર કરે છે. આપણે પૈસા પરનો મોઢ ઉતારી ભગવાનના સિદ્ધાંતોનો પ્રચાર કરવા માટે તન, મન, ધન સમર્પણ કરવાં જોઈએ. અને સૂત્ર પ્રકાશનના કાર્યને વધુ ને વધુ વેગ મળે તે માટે સક્રિય પ્રયત્નો કરવા જોઈએ. આવા પવિત્ર કાર્યમાં સાંપ્રદાયિક મતભેદો સૌએ ભૂલી જવા જોઈએ અને શુદ્ધ આશયથી થતા શુદ્ધ કાર્યને અપનાવી લેવું જોઈએ. સમિતિના નિયમાનુસાર રૂ. ૨૫૧૭ ભરી સમિતિના સભ્ય બનવું જોઈએ. ધાર્મિક અનેક ખાતાઓના મુકાબલે સૂત્ર પ્રકાશનનું-જ્ઞાનપ્રચારનું આ ખાતું સર્વશ્રેષ્ઠ ગણવું જોઈએ.

આ કાર્યને વેગ આપવાની સાથે સાથે એ આગમો-ભગવાનની એ મહાવાણીનું પાન કરવા પણ આપણે હરહંમેશ તત્પર રહેવું જોઈએ. જેથી પરમ શાંતિ અને જીવનસિદ્ધિ મેળવી શકાય. (સ્થા. જૈન તા. ૫-૭-૫૬)

\*

શ્રી. અ. ભા. શ્રે. સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનાં પ્રમુખ શ્રી વગેરે. રાણપુર પરમ પવિત્ર સૌરાષ્ટ્રની પુણ્ય ભૂમિ પર જ્યારથી શાંત-શાસ્ત્રવિશારદ અપ્રમાદિ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનાં પુનીત પગલાં થયાં છે ત્યારથી ઘણા લાંબા કાળથી લાગુ પડેલ જ્ઞાનાવરણીય કર્મનાં પડળ ઉતારવાનો શુભ પ્રયાસ થઈ રહ્યો છે. અને જે પ્રવચનની પ્રભાવના તેઓશ્રી કરી રહ્યા છે તે અનંત ઉપકારક કાર્યમાં તમે જે અપૂર્વ સહાય આપી રહ્યા છો તે માટે તમો સર્વને ધન્ય છે અને એ શુભ પ્રવૃત્તિના શુભ પરિણામોનો જનતા લાભ લે છે, મને તો સમન્નય છે કે સાધુજી છઠે ગુણસ્થાનકે હોય છે પણ પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ તો બહુધા સાતમે અપ્રમત્ત ગુણસ્થાનકે જ રહે છે. એવા અપ્રમત્ત માત્ર પાંચ-સાત સાધુઓ જ સ્થાનકવાસી જૈનસમાજમાં હોય તો સમાજનું શ્રેય થતાં જરાએ વાર ન લાગે સમાજ-કાશમાં સ્થા. જૈન સંપ્રદાયનો દિવ્ય પ્રભાકર જળહળી નીકળે. પણ વો દિન.....

શ્રી શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિને મારી એક નમ્ર સુચના છે કે-પૂજ્યશ્રીની વૃદ્ધાવસ્થા છે, અને કાર્યપ્રણાલિકા યુવાનોને શરમાવે તેવી છે. તેમને ગામેગામ વિહાર કરવું અને શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય કરવું તેમાં ઘણાં શારીરિક માનસિક અને વ્યવહારિક મુશ્કેલી વેઠવી પડે છે, તો કોઈ યોગ્ય સ્થળ કે જ્યાંના શ્રાવકો ભક્તિ વાળા હોય. વાડાનાં રાગના વિષથી અલિપ્ત હોય. એવા કોઈ સ્થળે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય પૂર્ણ થાય ત્યાં સુધી સ્થિરતા કરી શકે એના માટે પ્રબંધ કરવો જોઈએ. બીજા કોઈ એવા સ્થળની અનુકુળતા ન મળે તો છેવટ અમદાવાદમાં યોગ્ય સ્થળે રહેવાની સગવડતા કરી અપાય તો વધુ સારું. મહારી આ સુચના પર ધ્યાન આપવા ફરી યાદ આપું છું. ફરીવાર પૂજ્ય આચાર્યશ્રીને અને તેમના સત્કાર્યના સહાયકોને મારા અભિનંદન પાઠવું છું તે સ્વીકારશો. લી. સદાનંદી જૈનસુનિ છોટાલાલજી



## “ જૈનસિદ્ધાંતના ” તંત્રીશ્રીનો અભિપ્રાય

સ્થાનકવાસીઓમાં પ્રમાણભૂત સૂત્રો બહાર પાડનારી આ એકની એક સંસ્થા છે. અને એના આ છેલ્લા રિપોર્ટ ઉપરથી જણાય છે કે તેણે ઘણી સારી પ્રગતી કરી છે તે જોઈ આનંદ થાય છે.

મૂળ પાઠ, ટીકા, હિંદી તથા ગુજરાતી અનુવાદ સહિત સૂત્રો બહાર પાડવાં એ કાંઈ સહેલું કામ નથી એ એક મહાભારત કામ છે અને તે કામ આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ ઘણી સફળતાથી પાર પાડી રહી છે તે સ્થાનકવાસી સમાજ માટે ઘણા ગૌરવનો વિષય છે અને સમિતિ ધન્યવાદને પાત્ર છે.

સમિતિ તરેફથી નવસૂત્રો બહાર પડી ચુક્યાં છે, હાલમાં ત્રણ સૂત્રો છપાય છે. નવ સૂત્રો લખાઈ ગયાં છે અને જંબૂદ્વીપ પ્રશ્નસિ તથા નંદીસૂત્ર તૈયાર થઈ રહ્યાં છે.

હાલમાં મંત્રી શ્રી સાકરચંદ્ર ભાઈચંદ સમિતિના કામમાં જ તેમનો આખો વખત ગાળે છે અને સમિતિના કામકાજને ઘણો વેગ આપી રહ્યા છે. તેમની ખાત માટે ધન્યવાદ.

અને આ મહાભારત કામના મુખ્ય કાર્યકર્તા તો છે વયોવૃદ્ધ પંડિત મુનિશ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ. મૂળ પાઠનું સંશોધન તથા સંસ્કૃત ટીકા તેઓશ્રી જ તૈયાર કરે છે. મુનિશ્રીનો આ ઉપકાર આખાય સ્થા. જૈન સમાજ ઉપર ઘણો મહાન છે. એ ઉપકારનો બદલો તો વાળી શકાય તેમજ નથી.

પરંતુ આ સમિતિના મેમ્બર બની તેના બહાર પડેલાં સૂત્રો ઘરમાં વસાવી તેનું અધ્યયન કરવામાં આવે તો જ મહારાજશ્રીનું થોડું ઋણ અદા કર્યું ગણાય.

ભગવાને કહ્યું છે કે પદ્મં ણાણં તઓ દયા પહેલું જ્ઞાન પછી દયા, દયા ધર્મને યથાર્થ સમજવો હોય તો ભગવાનની વાણીરૂપ આપણા સૂત્રો વાંચવાં જ જોઈએ તેનું અધ્યયન કરવું જોઈએ અને તેનો ભાવાર્થ સમજવો જોઈએ.

એટલા માટે આ શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના સર્વ સૂત્રો દરેક સ્થા. જૈન પોતાના ઘરમાં વસાવવાં જ જોઈએ સર્વ ધર્મજ્ઞાન આપણા સૂત્રોમાંજ સમાયેલું છે અને સૂત્રો સહેલાઈથી વાંચીને સમજી શકાય છે, માટે દરેક સ્થા. જૈન આ સૂત્રો વાંચે એ ખાસ જરૂરનું છે.

“ જૈનસિદ્ધાંત ” ડીસેમ્બર-૫૬

### શ્રી ઉપાશક દશાંગ સૂત્રને માટે અભિપ્રાય

મૂળ સૂત્ર તથા પૂજ્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીએ બનાવેલ સંસ્કૃત છાયા તથા દીકા અને હિંદી તથા ગુજરાતી-અનુવાદ સહિત.

પ્રકાશક-અ. ભા. શ્વે. સ્થાનકવાસી જૈનશાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ, ગરેડીઆ કુવા રોડ, શ્રીન લોજ પાસે, રાજકોટ. (સૌરાષ્ટ્ર) પૃષ્ઠ ૬૧૬ બીજી આવૃત્તિ બેવડું (મોટું) કદ. પાકું પુઠું, જેકેટ સાથે સને ૧૯૫૬ કિંમત રૂ. ૮-૮-૦

આપણા મૂળ બાર અંગ સૂત્રોમાંનું ઉપાશકદશાંગ એ સાતમું અંગ સૂત્ર છે. એમાં ભગવાન મહાવીરના દશ ઉપાસકો-શ્રાવકોનાં જીવનચરિત્રો આપેલાં છે, તેમાં પહેલું ચરિત્ર આનંદ શ્રાવકનું આવે છે.

આનંદ શ્રાવકે જૈનધર્મ અંગીકાર કર્યો અને બાર વ્રત ભગવાન મહાવીર પાસે અંગીકાર કરી પ્રતિજ્ઞા (પ્રત્યાખ્યાન) લીધાં તેનું સવિસ્તર વર્ણન આવે છે. તેની અંતર્ગત અનેક વિષયો જેવા કે, અભિગમ, લોકલોકસ્વરૂપ, નવતત્ત્વ, નરક, દેવલોક વગેરેનું વર્ણન પણ આવે છે.

આનંદ શ્રાવકે બાર વ્રત લીધાં તે બાર વ્રતની વિગત અતિચારની વિગત વગેરે બધું આપેલું છે. તે જ પ્રમાણે બીજા નવ શ્રાવકોની પણ વિગત આપેલ છે.

આનંદ શ્રાવકની પ્રતિજ્ઞામાં અરિહંત્ત્વેદ્યાઈ શબ્દ આવે છે. મૂર્તિપૂજકો મૂર્તિપૂજા સિદ્ધ કરવા માટે તેનો અર્થ અરિહંતનું ચૈત્ય (પ્રતિમા) એવો કરે છે. પણ તે અર્થ તદ્દન ખોટો છે. અને તે જગ્યાએ આગળ પાછળના સંબંધ પ્રમાણે તેનો એ ખોટો અર્થ બંધ બેસતો જ નથી તે મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીએ તેમની દીકામાં અનેક રીતે પ્રમાણે આપી સાબિત કરેલ છે અને અરિહંત્ત્વેદ્યાઈનો અર્થ સાધુ થાય છે. તે બતાવી આપેલ છે.

આ પ્રમાણે આ સૂત્રમાંથી શ્રાવકના શુદ્ધ ધર્મની માહિતી મળે છે તે ઉપરાંત તે શ્રાવકોની ઋદ્ધિ, રહેઠાણ, નગરી વગેરેના વર્ણનો ઉપરથી તે વખતની સામાજિક સ્થિતિ, રીતરિવાજ રાજવ્યવસ્થા વગેરે બાબતોની માહિતી મળે છે.

એટલે આ સૂત્ર દરેક શ્રાવકે અવશ્ય વાંચવું જોઈએ, એટલું જ નહિ પણ વારંવાર અધ્યયન કરવા માટે ઘરમાં વસાવવું જોઈએ.

પુસ્તકની શરૂઆતમાં વર્ધમાન શ્રમણસંઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજનું સંમતિપત્ર તથા બીજા સાધુઓ તેમજ શ્રાવકોના સંમતિપત્રો આપેલ છે, તે સૂત્રની પ્રમાણભૂતતાની ખાત્રી આપે છે.

“જૈનસિદ્ધાંત” જાન્યુઆરી-૫૭

રૂ. ૫૦૦૧ આપનાર આદ્ય સુરબીશ્રી



(સ્વ.) શેઠ ધારસીભાઈ જીવણભાઈ  
સોલાપુર.





## आचाराङ्गसूत्रके पञ्चम अध्ययनकी

### विषयानुक्रमणिका-

#### प्रथम उद्देश

विषय	पृष्ठाङ्क
१ चतुर्थ अध्ययनके साथ पञ्चम अध्ययनका सम्बन्धप्रतिपादन	१
२ पञ्चम अध्ययनके छ उद्देशों में वर्णित विषयोंका सूचन	२-३
३ प्रथम सूत्र का अवतरण	३
४ प्रथम सूत्र और उसकी छाया	४
५ इस लोकमें कितनेक मनुष्य, प्रयोजन अथवा विना प्रयोजन के त्रस-स्थावर जीवों की हिंसा करते हैं, वे दुर्गतिभागी होते हैं। वे अति तीव्र शब्दादिविषयोंकी अभिलाषा के कारण इन त्रस-स्थावर जीवों की हिंसा करते हैं और इसके फल स्वरूप उन्हें जन्म-मरण के दुःखों से छुटकारा नहीं मिलता; अत एव विषयों के सुखोंसे उन्हें तृप्ति भी नहीं होती। और जो अपूर्वकरण से ग्रन्थि को भिन्न कर चुके हैं वे न कर्मोंके बीचमें हैं और न बाहर ही; अथवा जिन्होंने चारित्र का लाभ कर लिया है वे न तो कर्म या संसार के मध्य में हैं और न बाहर; अथवा-अर्थरूप से द्वादशाङ्ग उपदेशक तीर्थकर भगवान् न संसार के मध्यमें हैं न उसके बाहर ही।	४-१६
६ द्वितीय सूत्र का अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया	१७
७ सम्यक्त्व के प्रभाव से संसार की असारता समझनेवाले भव्य जीव अपने जीवन को वायुप्रकम्पित कुशाग्रस्थित जलबिन्दु के समान समझते हैं, उसी प्रकार वे बालजीवों के जीवनको भी अतिचञ्चल समझते हैं। बालजीव क्रूर कर्मोंको करते रहते हैं, वे उनके दुष्परिणामको नहीं समझते हैं और जन्ममरण के चक्र से कभी भी छुटकारा नहीं पाते।	१७-२६

## विषय

## पृष्ठाङ्क

- ८ तृतीय सूत्र का अवतरण । २६
- ९ तृतीय सूत्र और छाया । २७
- १० संशय के परिज्ञान से जीव संसार के प्रति संशयशील हो उसका परित्याग करता है, और संशय के अपरिज्ञान से जीव न तो संसार के प्रति संशयशील होता है और न उसका परित्यागही करता है । २७-३१
- ११ चतुर्थ सूत्र का अवतरण, चतुर्थ सूत्र, छाया । ३२
- १२ संसारके कटुविपाकको जाननेवाले चतुर पुरुष, किसी भी प्रकारके सागारिकका सेवन नहीं करते । जो मूढ पुरुष महोदयसे सागारिक सेवन करते हैं, उनकी प्रथम बालता सागारिक सेवन करना है और दूसरी बालता पूछे जाने पर उसको छिपानेके लिये असत्य भाषण करना है । इस लिये प्राप्त शब्दादि विषयोंको परित्याग कर और अप्राप्त विषयोंको मनसे भी चिन्तन नहीं करते हुए भव्य जीव, उन विषयों को इहलोक और परलोकमें कडुका फल देनेवाले जान कर दूसरे लोगोंको भी 'मैथुन अनासेवनीय है'—ऐसा उपदेश दें । ३३-३५
- १३ पञ्चम सूत्र और छाया । ३५
- १४ कितनेक मनुष्य रूपमें और कितनेक स्पर्शमें शृद्ध हो कर नरकादि गतियों के भागी होते हैं । सावध व्यापार करनेवाले मनुष्य, इन सावधव्यापारतत्पर मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं, अथवा षड्जीवनिकायों में उत्पन्न होते हैं । साधु होकर भी कितनेक विषयस्पृही हो जाते हैं, फिर पापकर्मों में रत रहने लगते हैं, वे अशरणको ही शरण मानते हैं, कोई २ उनमें एकलविहारी भी हो जाते हैं । ये अत्यन्त क्रोध आदि दुर्गुणोंसे युक्त होते हैं, सुसाधु बननेका ढोंग करते हैं, 'मेरे दोषोंको कोई

समझे नहीं' इसके लिये सर्वदा प्रयत्नशील होते हैं। ये अज्ञानप्रमाद दोषसे युक्त होनेसे धर्मके मर्मज्ञ नहीं होते। विषयकषायोंसे पीडित ये कर्म बांधनेमें दक्ष होते हैं, सावध-व्यापारोंमें लगे रहते हैं, और ये 'रत्नत्रयके आराधन बिना ही मोक्ष होता है' ऐसा उपदेश देते हैं। इनका कभी भी मोक्ष नहीं होता। ये तो संसारचक्रमें ही फिरते रहते हैं।

३५-४९

॥ इति प्रथम उद्देशः ॥

\*

॥ अथ द्वितीय उद्देशः ॥

- १ प्रथम उद्देशके साथ द्वितीय उद्देशका सम्बन्धकथन ५०
- २ प्रथम सूत्र और छाया। ५०-५१
- ३ इस लोकमें कितनेक षड्जीवनिकायोंके रक्षक संयमी मुनि होते हैं। वे मनुष्यजन्म-आर्यक्षेत्रादिको कर्मक्षपणका अवसर समझते हैं। वे कर्मक्षपणके क्षणका अन्वेषण करते रहते हैं। इस सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूप मार्गका उपदेश तीर्थंकरोंने किया है। साधु कभी भी प्रमाद नहीं करें किसी भी जीवको आसाता नहीं पहुँचावे। इस संसारमें मनुष्योंकी रुचि भिन्न होती है इस लिये सुखदुःख भी सबके लिये समान नहीं है। इसलिये मुनि हिंसा मृषावाद आदिसे रहित होकर, परीषहोपसर्गोंसे स्पृष्ट होता हुआ भी उन शब्दस्पर्शादिविषय-जनित परीषहोंको जीतनेका प्रयत्न करे। ५१-५९
- ४ द्वितीय सूत्र और छाया। ५९
- ५ परीषहोंको जीतनेवाला मुनि शमितापर्याय अथवा सम्य-कूपर्याय कहा जाता है। इस प्रकारका मुनि चास्त्रिमोहनी-यादि अथवा हिंसादि पापकर्मोंमें आसक्त नहीं होता है। यदि उसको कभी शीघ्र प्राण लेनेवाले शूलादि रोग, जो कि आतङ्क



कहे जाते हैं हो जाते हैं तो वह उनकी वेदनाको शान्तिपूर्वक सहता है, और वह इस प्रकार विचारता है-यह स्वकर्मजनित वेदना पहेले या पीछे मुझे हो सहनी होगी। यह शरीर विनाशशील है, विध्वंसनशील है, अध्रुव है, अनित्य है, अशाश्वत है, चया-पचयिक है, परिणमनशील है। अतः ऐसे शरीरको और सुकुलजन्म और बोधिलाभ आदिके अवसरको पा कर तप संयम आदि द्वारा अपने जीवनको सफल बनाना चाहिये।

५९-६८

६ तृतीय सूत्र का अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया।

६८

७ शरीर की विनाशशीलता आदि देखनेवाला मुनि नरकादि गति के भागी नहीं होता है।

६९-७१

८ चतुर्थसूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया।

७१

९ इस लोकमें कितनेक मनुष्य परिग्रही होते हैं। थोड़ा या बहुत, अणु या स्थूल, सचित्त या अचित्त जो भी परिग्रह इनके पास होते हैं उन्हीं परिग्रहों में ये मग्न रहते हैं। यह शरीर ही किसी-को महाभयदायक होता है। मुनि, असंयमी लोगों के धन को या व्यवहार को महाभय का कारण जानकर उससे दूर रहता है। द्रव्यपरिग्रह के संबन्धके त्यागी परिग्रहजनित भय नहीं होता है॥

७१-७५

१० पञ्चम सूत्र और छाया

७६

११ निष्परिग्रह मुनि अपने कर्तव्य मार्ग में जागरूक होता है, प्रत्यक्षज्ञानियोंने ऐसे शिष्यों के लिये ही ज्ञान, दर्शन, चास्त्रि का उपदेश किया है। इसलिये हे भव्य ! मोक्ष की ओर लक्ष्य रखकर संयममें विशेषतः पराक्रमशाली बनो। ऐसे संयमी ही ब्रह्मचारी होते हैं। यह सब मैंने तीर्थङ्कर भगवान् के मुख से सुना है, इसलिये यह सब मेरे हृदयमें स्थित है। ब्रह्मचर्यमें स्थित मनुष्य का ही बन्ध से प्रमोक्ष (छुटकारा) होता है। अथवा-ज्ञानावरणीयादि अष्टविध कर्मों का सम्बन्ध-



रूप बन्ध और उन कर्मों से पृथक् होना रूप, प्रमोक्ष, ये दोनों अन्तःकरणमें ही हैं। आरम्भपरिग्रह या अप्रशस्त भाव से रहित साधु, सभी प्रकारों के परीषहों को यावज्जीवन सहे। असंयतों को तीर्थकरोपदिष्ट मार्ग से बहिर्वर्त्ती समझो। तीर्थकरोपदिष्ट मार्ग के अन्तर्वर्त्ती मुनि अप्रमत्त होकर विचरे। भगवत्प्ररूपित इस चारित्र का परिपालन, हे शिष्य ! तुम अच्छी तरह करो। उद्देश समाप्ति।

७६-८१

॥ इति द्वितीय उद्देश ॥

\*

॥ अथ तृतीय उद्देश ॥

- १ द्वितीय उद्देश के साथ तृतीय उद्देश का संबन्ध कथन। ८२
- २ प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया। ८२
- ३ जो कोई इस लोकमें अपरिग्रही होते हैं, वे संयमीजन, अल्प स्थूल आदि वस्तुओंमें ममत्व के अभाव से ही अपरिग्रही होते हैं। मेधावी मुनि तीर्थकर आदियों की वाणी सुनकर और उसीको धर्म समझकर, तदनुसार आचरण कर के अपरिग्रही हो जाता है इस मार्गमें मैंने कर्मपरम्परा दूर करने का जैसा सरल उपाय बतलाया है वैसा अन्यमार्ग में नहीं है। इसलिये इस मार्गमें स्थित मुनि अपनी शक्ति को न छिपावे। ८३-८८
- ४ द्वितीयसूत्र का अवतरण, द्वितीयसूत्र और छाया। ८८
- ५ तीन प्रकार के लोग होते हैं—कोई संयम ग्रहण करता है और मरणपर्यन्त पूर्णतत्परता के साथ उसे निभाता है; कोई संयम ग्रहण करता है और परिषहोपसर्ग से बाधित हो उसे छोड़ देता है; और कोई न संयम लेता है न उसे छोड़ता है। जो

संयम लेकर गृहस्थों के आश्रित होकर रहने लगता है वह भी गृहस्थ-जैसा ही है ॥

८९-९२

६ तृतीय सूत्र का अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया ।

९३

७ तीर्थंकरोंने यह सब अपने केवलज्ञान से प्रत्यक्ष करके कहा है। इस तीर्थङ्करोक्त प्रवचनमें व्यवस्थित मुनि, तीर्थंकर के आज्ञानुसार चलनेवाला, पण्डित और स्वजन तथा विषय संबन्धी स्नेहरहित होता है; पूर्व और अपर रात्रिमें प्रतिक्रमण स्वाध्याय आदि सद्गुणानमें प्रयत्नशील होता है; शील के स्वरूप को जानकर उसका पालन करता है; शील के आचरण और अनाचरण के फलको सुनकर वह कामरहित और झंझारहित हो जाता है। भव्यों को इन ज्ञानावरणीयादिकर्मरूप आन्तरिक शत्रुओं से ही युद्ध करना चाहिये, बाह्य शत्रुओं से युद्ध करने से क्या लाभ ?

९३-१००

८ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया ।

१०१

९ परीषह आदिके साथ युद्ध करने योग्य यह औदारिक शरीर दुर्लभ है । इस संसारमें कुशल तीर्थङ्करादिकोंने ज्ञपरिज्ञा और प्रत्याख्यान परिज्ञाका विवेक कहा है । धर्मसे च्युत अज्ञानी जीव, गर्भादिमें निवासजनित दुःखका अनुभव करता है । यह विषय, आर्हत प्रवचनमें ही कहा गया है । धर्मसे च्युत जीव रूप आदिमें और हिंसा आदिमें प्रवृत्ति करता है । जो मुनि होता है वह धर्मपथमें सतत प्रवृत्त, आस्रवरहित और रत्नत्रयके अभ्यासी होता है । वह असंयत लोगोंको जानता है; इस लिये वह ज्ञानावरणीयादि कर्मोंको और उनके कारणों को अच्छी तरह ज्ञपरिज्ञासे जान कर प्रत्याख्यानपरिज्ञासे परित्याग करता है, और वह हिंसासे सर्वथा विरत होता है, संयमी होता है, धृष्टता नहीं करता है, सभीके सुखदुःखके जाननेवाला होता है, स्वपरके कल्याणामिलापी होता है, मोक्षमार्गमें ही

## विषय

## पृष्ठाङ्क

सतत प्रवृत्त रहता है, सावधाचरणसे रहित होता है, बाह्यआ-  
भ्यन्तर अभिष्वङ्गके परित्यागी होता है और जीवोंमें आसक्ति  
नहीं करता है। इस प्रकारका मुनि कोई भी सावधाचरण नहीं  
करता है।

१०१-११५

१० पञ्चम सूत्रका अवतरण, पञ्चमसूत्र और छाया।

११५

११ वसुमान् मुनि पदार्थज्ञानयुक्त आत्मासे संपन्न होकर, अकरणीय  
पापकर्मोंका अन्वेषी नहीं होता है। जो सम्यक्त्व है वही  
मौन है, जो मौन है वही सम्यक्त्व है—इस वस्तु को समझो।  
इस सम्यक्त्वका आचरण वह नहीं कर सकता है जो शिथिल  
होता है, पुत्रादिकों के प्रेममें फसा रहता है, शब्दादि विषयों  
में जिसकी अभिरुचि होती है, जो प्रमादी है और जो गृह-  
स्थित है, जो इस सम्यक्त्वका आचरण करता है ऐसा मुनि,  
सर्व सावद्यव्यापारपरित्यागरूप मुनिभाव को सम्यक् प्रकार  
से ग्रहण कर कर्मण और औदारिक आदि शरीरों को दूर  
करे। ऐसा मुनि वीर होता है, अन्तर्प्रांत आहारको सेवन  
करता है। ऐसा मुनि ही संसारसागर को तिरनेवाला, मुक्त  
और विरत कहा गया है। उद्देशसमाप्ति।

११६-१२१

॥ इति तृतीय उद्देश ॥

\*

॥ अथ चतुर्थ उद्देशः ॥

१ तृतीय उद्देश के साथ चतुर्थ उद्देश का संबन्धकथन।

१२२

२ प्रथम सूत्र और छाया।

१२२

३ शास्त्रानभिज्ञ और अल्पवयस्क मुनि को एकाकी ग्रामानुग्राम  
विहार नहीं करना चाहिये।

१२२-१२६

४ द्वितीय सूत्र और छाया।

१२७



विषय

५ कोई कोई एकाकि-विहारी मुनि, गृहस्थोंसे शिक्षावचनद्वारा उपदिष्ट होनेपर भी कुपित हो जाता है। ऐसा अभिमानी मुनि महामोहसे युक्त होता है। इसको विविध प्रकारके परीषहोप-सर्गजनित वेदनाओंका अनुभव करना पड़ता है, इसलिये विवेकी मुनिको ऐसा नहीं होना चाहिये। उसे तो भगवान्‌के कथनानुसार गुरुकी आज्ञामें रहते हुए सावधानताके साथ विहार करना चाहिये।

१२६-१३२

६ तृतीय सूत्र और छाया।

१३३

७ आचार्यके आज्ञानुसार चलनेवाला मुनि गमनागमनादि क्रियायें शास्त्रोक्त रीतिके अनुसार करता हुआ गुरुकुलमें निवास करे। कभी कभी मुनिगुणोंसे युक्त मुनिके द्वारा भी द्विन्द्रियादि प्राणियोंकी विराधना हो जाती है, परन्तु उनके वह विराधनाजनित कर्म उसी भवमें क्षीण हो जाते हैं, क्योंकि अप्रमादपूर्वक उन कर्मोंके क्षणार्थ प्रायश्चित्त करता है।

१३३-१३८

८ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया।

१३९-१४०

९ ऐसे मुनिकी दृष्टि और ज्ञान विशाल होता है। ये सर्वदा ईर्यासमिति आदिसे युक्त होता है। वह स्त्री आदिके भोगोंकी निरर्थकतासे पूर्ण परिचित होता है। वह स्त्री विषयक वासना को विविध उपायोंसे दूर करता है। ऐसा मुनि स्त्रियोंसे उनके घर सम्बन्धी कुछ भी नहीं पूछता, स्त्रियोंसे मेल-जोल बढ़ानेकी कभी भी चेष्टा नहीं करता। यह सर्वदा वागुप्त, अध्यात्मसंतुष्ट हो कर पापोंसे सदा दूर रहता है। हे शिष्यों ! इस प्रकारके मुनिधर्मका पालन करो।

१४०-१४९

॥ इति चतुर्थ उद्देशः ॥

\*



विषय	पृष्ठाङ्क
१ चतुर्थ उद्देशके साथ पञ्चम उद्देशका सम्बन्ध-कथन ।	१५०
२ प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया ।	१५१
३ आचार्य महाराज हृदके समान निर्मल और अक्षोभ्य होकर निर्भय हो विचरते हैं ।	१५१-१५९
४ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया ।	१६०
५ संशयात्मा शिष्य कभी भी समाधि नहीं पाता । कोई२ गृहस्थ भी तीर्थकरादिके उपदेशानुसार प्रवृत्ति करनेमें तत्पर रहता है और कोई कोई अनगार भी । किसी ज्ञानी मुनिके द्वारा तीर्थकरादि-उपदेशानुसार प्रवृत्ति-निमित्तप्रेरित शिष्य कभी भी निर्विण्ण [दुःखित] न होवे ।	१६०-१६६
६ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया ।	१६६-१६७
७ तीर्थकरोंने जो कुछ कहा है वह सभी सत्य और निश्चङ्क है ।	१६७-१६९
८ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया ।	१६९-१७०
९ कोई२ श्रद्धालु विश्वासी मनुष्य, दीक्षा लेनेके बाद जिनोक्त जीवादि तत्त्वोंमें सन्देह होने पर 'जिनोक्त सभी तत्त्व यथार्थ ही हैं, अन्यथा नहीं हो सकता' इस प्रकार उन तत्त्वोंको सम्यक् मानता है और वह बादमें भी उनको सर्वदा सम्यक् ही मानता है । कोई२ सम्यक् माननेवाला बादमें असम्यक् मानने लगता है । कोई२ असम्यक् माननेवाला बादमें सम्यक् मानने लगता है । कोई२ सम्यक् माननेवाला बादमें भी सर्वज्ञोक्त पदार्थों को सम्यक् और असर्वज्ञोक्त पदार्थों को असम्यक् ही मानता है । जिन भगवान् से कथित होनेके कारण जो पदार्थ सम्यक् ही हैं उनको असम्यक् माननेवाला कोई२ बादमें भी मिथ्यादृष्टियों के	

तत्त्वोंको सम्यक् मानता है और जिनोक्त तत्त्वोंको असम्यक् मानता है। सन्देहरहित संयमियोंको चाहिये कि वह सन्देह-शील लोगोंको संयममें उद्योगशील होनेकी प्रेरणा करें। इस प्रेरणासे संयमके विरोधी ज्ञानावरणीय आदि कर्मोंकी परम्परा नष्ट हो जाती है। संयमाराधनमें सतत जागरूक मुनियों के आचरणका अनुकरण करो। बालभावमें कभी भी मत पडो।

१७०-१८२

१० पञ्चम सूत्रका अवतरण, पञ्चम सूत्र और छाया।

१८२-१८३

११ तुम जिसे हन्तव्य मानते हो, वह कोई दूसरा नहीं है; अपि तु वह, तुम स्वयं ही हो। इसी प्रकार तुम जिसको आज्ञापयितव्य मानते हो, जिसे परितापयितव्य मानते हो, जिसे परिग्रहीतव्य मानते हो और जिसे अपद्रावयितव्य मानते हो, वह कोई दूसरा नहीं; अपितु तुम्हीं हो। इस प्रकारके परिज्ञानवाला ऋजु-सरल होता है। इसलिये किसी भी जीवका घात न करो और न करवाओ। जो घातक होता है उसे भी उसी प्रकार घातका अनुभव करना पड़ता है। इसी लिये किसी को भी हन्तव्य नहीं समझे।

१८३-१८८

१२ छठा सूत्रका अवतरण, छठा सूत्र और छाया।

१८९-१९०

१३ जो आत्मा है वही विज्ञाता है और जो विज्ञाता है वही आत्मा है। जिससे जाना जाता है वह आत्मा है। वह ज्ञानस्वरूप आत्मा भी उस आत्मशब्दसे ही कहा जाता है, अर्थात् ज्ञान भी 'आत्म' शब्दसे व्यवहृत होता है। यह आत्मवादी सम्यक्पर्याय कहा जाता है।

१९०-१९९

॥ इति पञ्चम उद्देश ॥

## विषय

## पृष्ठाङ्क

- १ पञ्चम उद्देशके साथ छठे उद्देशका सम्बन्धकथन, और प्रथम सूत्रका अवतरण । २००-२०१
- २ प्रथम सूत्र और उसकी छाया । २०१
- ३ कितनेक लोग तीर्थकरसे अनुपदिष्ट धर्माभास मार्गमें उद्योगशाली होते हैं और अपनेको तीर्थकरोपदिष्ट धर्ममार्ग के संयमी समझते हैं निन्दित मार्गके अनुयायी कितनेक लोग तीर्थकरोंसे अनुपदिष्ट धर्ममार्गमें सर्वथा अनुद्योगी होते हैं । हे शिष्य ! तुम ऐसे मत बनो पूर्वोक्त दोनों प्रकारका न बनना यह तीर्थकरोंका अभिमत है । शिष्यको सर्वदा आचार्यके संकेतानुसारी होना चाहिये । २०१-२०४
- ४ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया । २०५
- ५ जो परीषहोपसर्ग अथवा घातिकर्म चतुष्टयको पराजित करके स्वयं उन परीषहोपसर्गोंसे या परतीर्थकोंसे पराजित न हो कर जिनोक्त तत्त्वकी जिज्ञासा करते हैं वह किसीका आलम्बन नहीं लेते हैं । रत्नत्रयकी आराधना करनेवाले उन महापुरुषोंका मन बहिर्वर्त्ती नहीं होता । वे पूर्वाचार्य का पारम्परिक उपदेशसे वीतरागके वचनोंका अभिज्ञ हो जाते हैं, वे परतीर्थकोंका मतका खण्डन करते हैं । तीर्थकरोक्त तत्त्वोंको कितनेक संयमी अपनी सहज बुद्धिसे समझ लेते हैं, आर्हत आगमके अभ्याससे उन्हें समझते हैं, और कितनेक आचार्य आदिके उपदेशद्वारा उन्हें समझते हैं । २०५-२१५
- ६ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया । २१६
- ७ मेधावी मुनि, वीतरागोपदेश और मिथ्यादृष्टियोंके मतकी तुलनात्मक समीक्षा करके, वीतरागोपदेशको उपादेय और मिथ्यादृष्टियोंके मतको हेय समझे, कभी भी वीतरागोपदेशका



- अतिक्रमण न करे । मोक्षाभिलाषी वीर मुनि संयमका स्वरूपको जान कर उसका आचरण करता हुआ विचरे । हे शिष्य ! तुम सर्वदा वीतरागोपदेश और आचार्योपदेशका अवलम्बन करके संयमाचरणमें पराक्रम करो । २१६-२२०
- ८ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया । २२०
- ९ ऊर्ध्वलोक अधोलोक और तिर्यग्लोक, इन सभी स्थानोंमें मिथ्यात्व, अविरति आदि स्रोत, अर्थात्-आस्रवद्वार हैं । ये आस्रवद्वार नदीके स्रोत समान कहे गये हैं । इन्हीं आस्रवोंसे जीव कर्मोंको बांधते हैं । २२०-२२३
- १० पञ्चम सूत्रका अवतरण, पञ्चम सूत्र और छाया । २२४
- ११ वीतरागोपदिष्ट आगमके परिज्ञाता मुनि, आवर्त्तको पर्यालोचना करके आस्रवद्वारोंसे विरत होता । कर्मोंके आस्रवोंको दूर करनेके लिये प्रव्रजित ये महापुरुष मुनि अकर्मा होता है, और ज्ञान-दर्शनसे युक्त होता है । परमार्थ जाननेवाला ये मुनि, अच्छी तरह विचार कर किसी भी वस्तुकी अभिलाषा नहीं करता । मोक्षप्राप्तिके लिये उद्युक्त ये मुनि मुनुष्यलोकमें रहता हुआ भी जीवोंकी आगति और गतिको जानकर जन्म मरणके मार्गका उल्लङ्घन कर जाता है, अर्थात् मुक्त हो जाता है । २२४-२२८
- १२ छठे सूत्रका अवतरण, छठा सूत्र और छाया । २२८-२२९
- १३ सिद्धावस्थाका वर्णन । २२९-२३८
- १४ सप्तम सूत्रका अवतरण, सप्तम सूत्र और छाया । २३९
- १५ मुक्तात्मा जीवोंका वर्णन । २३९-२४१

॥ इति षष्ठ उद्देश ॥

॥ इति पञ्चम अध्ययन सम्पूर्ण ॥ ५ ॥



## ॥ अथ षष्ठ अध्ययन ॥

विषय

पृष्ठाङ्क

- १ पञ्चम अध्ययनके साथ षष्ठ अध्ययनका सम्बन्धकथन ।  
धृत शब्दका अर्थ और भेद । इस अध्ययनके पाचों उद्देश्योंमें  
प्रतिपाद्य विषयोंका क्रमिक वर्णन । प्रथम सूत्रका अवतरण,  
प्रथम सूत्र और छाया । २४२-२४४
- २ इन मनुष्योंमें जो 'मनुष्य' सम्यग्ज्ञानवान् है, वे ही अन्य  
मनुष्यों के लिये सम्यग्ज्ञानका उपदेश देते हैं । वे सम्य-  
ग्ज्ञानी केवली और श्रुतकेवली होते हैं । वे एकेन्द्रियादि  
जीवोंको यथार्थरूपसे जानते हैं । वे ही इस अनुपम सम्य-  
ग्ज्ञानके उपदेशक होते हैं । २४४-२४७
- ३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया । २४७
- ४ तीर्थंकर गणधर आदि, हिंसानिवृत्त, धर्माचरणके लिये  
उद्यत और हेयोपादेयबुद्धियुक्त मनुष्योंके लिये मुक्तिमार्गका  
उपदेश देते हैं । इन उपदेश प्राप्त लोगों में कितनेक महा-  
वीर कर्मशत्रुओं के नाशार्थ पराक्रम करते हैं । इनसे भिन्न  
मोहविवश प्राणी कि जिनकी बुद्धि अन्यत्र लगी हुई है, वे  
विषादयुक्त रहते हैं । २४७-२४९
- ५ तृतीय सूत्र का अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया । २४९
- ६ शैवाल आदिसे युक्त पुराने हृदमें रहनेवाला कच्छप, जैसा  
उसीमें निविष्ट चित्त होनेसे उससे बाहर नहीं हो सकता,  
उसी प्रकार हेयोपादेय बुद्धिरहित मनुष्य, कभी भी इस  
संसाररूपी महाहृदसे बाहर नहीं निकल सकता । २४९-२५२
- ७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया । २५२
- ८ जैसे वृक्ष शाखाछेदनादि दुःखों सहते हुए अपने ही स्थान  
पर रहते हैं, वहांसे हट नहीं सकते; उसी प्रकार कितनेक

मनुष्य, स्त्री, पुत्रादिसे अपमानित, अनेक आधि व्याधियोंसे ग्रस्त, और राजपुरुषादिकोंसे हृतसर्वस्व होते हुए भी गृह-त्याग नहीं कर सकते। वे दुःखी हो कर सकरुण विलाप करते हैं और निदान करते रहते हैं, इस कारण इन्हें मोक्ष नहीं मिलता।

२५२-२५४

९ पञ्चम सूत्रका अवतरण और पञ्चम सूत्र।

२५५

१० हेयोपादेय विवेकरहित मनुष्य जन्म-मरणके चक्रमें पड़े रहते हैं।

२५५

११ षष्ठ सूत्रका अवतरण, षष्ठ सूत्र और छाया।

२५६

१२ हेयोपादेय विवेकरहित अनात्मज्ञ पुरुष स्वकृत कर्मोंके फल स्वरूप कुष्ठादि रोगोंसे और विविध परीषहोंसे आक्रान्त होते रहते हैं।

२५६-२५९

१३ सप्तम सूत्रका अवतरण, सप्तम सूत्र और छाया।

२५९-२६०

१४ जो प्राणी तममें अर्थात् नरकादि अथवा मिथ्यात्वादिमें पड़े हुए हैं वे अन्धे हैं। ऐसे जीव कुष्ठादिसे आक्रान्त हो कर दुःख भागी होते हैं।

२६०

१५ अष्टम सूत्रका अवतरण, अष्टम सूत्र और छाया।

२६१

१६ वासक रसग आदि जो जीव हैं ये सभी दूसरे जीवोंको कष्ट देते हैं।

२६१

१७ नवम सूत्रका अवतरण, नवम सूत्र और छाया।

२६२

१८ यह लोक महाभययुक्त है, और इसमें रहनेवाले सभी प्राणी अत्यन्त दुःखी हैं।

२६२

१९ दशम सूत्रका अवतरण, दशम सूत्र और छाया।

२६३

२० कामासक्त मनुष्य, इस क्षणभंगुर निस्तार शरीरकी पुष्टि-

विषय	पृष्ठाङ्क
निमित्त प्राणिहिंसा और तज्जनित कर्मबन्ध किया करते हैं ।	२६३-२६४
२१ ग्यारहवें सूत्रका अवतरण, ग्यारहवां सूत्र और छाया ।	२६४
२२ आर्त्त और बहुदुःखयुक्त अज्ञानी मनुष्य, अनेक विध दुष्कर्म करके सोलह प्रकारके रोग आतङ्कके भागी होते हैं, और फिर वे उन रोगोंकी चिकित्सानिमित्त एकेन्द्रियादि जीवोंकी हिंसा करते हैं ।	२६४-२६५
२३ बारहवें सूत्रका अवतरण, बारहवां सूत्र और छाया ।	२६६
२४ कर्मोदयजनित रोगोंकी निवृत्तिमें चिकित्साये समर्थ नहीं हैं । अतः रोगनिवृत्त्यर्थ प्राणिवधसे निष्पन्न चिकित्सा, विवेकियों के लिये हेय हैं । इस प्रकारकी चिकित्साविधि, जन्म-मरणादिरूप महाभयोंकी कारण है । इस लिये किसी भी प्राणीका उपमर्दन नहीं करना चाहिये ।	२६६-२६७
२५ तेरहवां सूत्र और छाया ।	२६८
✓ २६ अष्टविध कर्मके विनाशक धृतवादको समझो; सुनो । इस संसारमें आत्मकृत कर्मके परिणामस्वरूप जीव उच्चनीचादि कुलोंमें जन्म लेते २ क्रमिक मुनित्वको प्राप्त करते हैं ।	२६८-२७१ ✓
२७ चौदहवें सूत्र और अवतरण ।	२७१
२८ दीक्षाके लिये उद्युक्त मनुष्यके लिये माता-पिता आदि विलाप करते हैं, और आक्रोश वचन बोलते हैं ।	२७२
२९ पन्द्रहवें सूत्रका अवतरण, पन्द्रहवां सूत्र और छाया ।	२७३
३० संयमाभिलाषी मनुष्य, दीक्षाके समयमें रोते हुए अपने माता पिता आदिकी ओर बिल्कुल ध्यान नहीं देता । उसका इस प्रकारका व्यवहार उचित ही है, क्योंकि वह संसारकी वास्तविकतासे अभिज्ञ, नरक-जैसे गृहवासमें रह ही कैसे	



विषय

पृष्ठाङ्क

सकता ! हे शिष्य ! इस धृतवादोक्त ज्ञानका सर्वदा चिन्तन करो ।

२७४-२७६

॥ इति प्रथम उद्देश ॥

\*

॥ अथ द्वितीय उद्देश ॥

- १ प्रथम उद्देशके साथ द्वितीय उद्देशका सम्बन्धकथन । प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया । २७७-२७८
- २ इस षड्जीवनीकायरूप लोकको आतुर जान कर, गृहस्थावास को छोड़ कर, विरतियुक्त हो कर ब्रह्मचर्यमें स्थित कितनेक मुनि अथवा एकादश प्रतिमाधारीश्रावक श्रुतचारित्रधर्मके वास्तविकतत्त्वको जानते हुए भी मोहोदयके कारण संयमके पालनमें असमर्थ हो संयमोपकरणका परित्याग कर देते हैं । इनमेंसे कितनेक देशविरत हो कर रहते हैं और कितनेक तो मिथ्यात्वी हो जाते हैं । शब्दादि विषयोंमें ममत्व करनेवाले इन संयम छोड़नेवालोंमें से कितनेक अन्तर्मुहूर्त में मर जाते हैं और कितनेक अहोरात्रमें कितनेक इससे अधिक कालमें । इस प्रकार ये भोगार्थी, दुःखसार शब्दादि विषयोंमें आसक्त हो इस मनुष्य जीवनको व्यर्थमें नष्ट कर डालते हैं । २७८-२८१
- ३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया । २८२
- ४ कितनेकमनुष्य संयमी हो कर, संयम ग्रहणके कालसे ले कर संयमानुष्ठान में सर्वदा तत्पर रहते हैं । ऐसे महा-मुनि ही कर्मधूननमें सम्यक् प्रकारसे प्रवृत्ति-शील होते हैं । २८२-२८३
- ५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया । २८४



## विषय

## पृष्ठाङ्क

- ६ ममत्व भावनासे रहित, अत एव 'अहमेक एवास्मि'—ऐसी भावनासे भावित अन्तःकरणवाला मनुष्य, सभी प्रकारके बन्धनोंको छोड़ कर प्रव्रजित हो जाता है और अचेल वह मुनि अवमोदरिकासे ही रहा करता है । २८४
- ७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया । २८५
- ८ ऐसे अवमोदरिकायुक्त मुनि, धर्मानभिज्ञ मनुष्योंद्वारा विविध प्रकारसे अपमानित होता हुआ भी उन अपमानोंको समतापूर्वक सहता हुआ विचारता है, और वह सभी परीष-होंको समतापूर्वक सहता है । २८५-२८७
- ९ पञ्चम सूत्र और छाया । २८७
- १० सम्यग्दृष्टि मुनि परीषहप्रयुक्त सभी दुश्चिन्ताओंका परि-त्याग कर परीषहोंकी सहे । २८७
- ११ षष्ठ सूत्र और छाया । २८७
- १२ प्रव्रज्याको किसी दुष्परिस्थितिमें नहीं त्यागता, ऐसा मुनि ही निर्ग्रन्थ है । २८७-२८८
- १३ सप्तम सूत्र और छाया । २८८
- १४ 'जिनागमके अनुसार ही जिनधर्मका पालन करना चाहिये' यही तीर्थकरोंका उत्तम उपदेश मनुष्योंके लिये है । २८८
- १५ आठवां सूत्र और छाया । २८९
- १६ कर्मधूननके उपाय इस संयममें संलग्न हो कर, अष्टविध कर्मको खपाते हुए विचरे । सभेद कर्मोंको जान कर मनुष्य, उन कर्मों को, श्रमणधर्मका आराधन करके खपाता है । २८९
- १७ नवम सूत्रका अवतरण, नवम सूत्र और छाया । २८९-२९०
- १८ इस जिनशासनमें रह कर जिन्होंने कर्मबन्धको शिथिल कर दिया है ऐसे कितनेक मुनि एकाकिविहार प्रतिमाधारी होते हैं, उन्हें अनेक प्रकारके परीषह प्राप्त होते हैं, उन परीषहोंको वे धीरे मुनि समतापूर्वक सहे । २९०-२९३

॥ इति द्वितीय उद्देश ॥

\*

## ॥ अथ तृतीय उद्देश ॥

विषय	पृष्ठाङ्क
१ द्वितीय उद्देशके साथ तृतीय उद्देशका सम्बन्धकथन । प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया ।	२९४
२ ममतारहित, ज्ञानाचारादिके प्रतिपालक मुनि, धर्मोपकरणके अतिरिक्त कर्मबन्धके कारण वस्त्रादिकों को छोड़ कर विचरता है ।	२९४-२९५
३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया ।	२९५
४ जो साधु, अचेल ( अल्पवस्त्रधारी ) और साधुमर्यादामें व्यवस्थित होते हैं उन्हें जीर्णवस्त्रसम्बन्धी चिन्ता कभी भी नहीं होती ।	२९६-२९८
५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया ।	२९८-२९९
६ कर्मबन्धोंके विनाशके निमित्त प्रयत्नशील उस अचेल मुनिको उस अचेलवस्थामें अनेक प्रकारके परीषद प्राप्त होते हैं, वे परीषद उस मुनिके लिये तपःस्वरूप ही हैं ।	२९९-३०१
७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया । भगवान्की आज्ञानुसार, अपनी २ सामर्थ्यके अनुकूल उत्कृष्ट या अपकृष्ट साध्वाचार पालनमें प्रवृत्त सभी मुनि सम्यक्त्वही हैं । सभी तीर्थङ्करोंके शासनकालमें अचेल मुनि विविध परीषदोंको सहते हैं ।	३०२
८ पञ्चम सूत्रका अवतरण, पञ्चम सूत्र और छाया ।	३०६
९ जो सम्यग्ज्ञानको प्राप्त हो चुके हैं उनकी बाहें अथवा बाधाये कृश ( क्षीण ) हो जाती हैं कर्मक्षपणार्थ प्रवृत्त इन सम्यग्ज्ञानियोंके मांसशोणित सूख जाते हैं । ये अपनी सम- भावना और क्षमा आदि गुणोंसे संसारपरम्पराको छिन्न करके रहते हैं । इस प्रकारके साधु, तीर्थङ्करों द्वारा तीर्थ मुक्त और विरत कहे गये हैं ।	३०२-३०५
१०	३०६
११ षष्ठ सूत्रका अवतरण, षष्ठ सूत्र और छाया ।	३०६-३०८
	३०८

## विषय

## पृष्ठाङ्क

- १२ असंयमसे निवृत्त, उत्तरोत्तर बढ़ते हुए शुभाध्यवसायमें प्रवृत्त और बहुत कालसे संयममें स्थित ऐसे मुनिको क्या संयममें अरति हो सकती है ? । ३०८-३०९
- १३ सप्तम सूत्रका अवतरण, सप्तम सूत्र और छाया । ३०९
- १४ पूर्वोक्त प्रकारके साधु, उत्तरोत्तर अधिकाधिक प्रशस्त परिणामधारा अथवा गुणस्थानपर आरूढ होते हैं, अतः उनको अरति हो ही कैसे ? । जैसे द्वीप, असन्दीन-बाढ़के उपद्रवसे रहित होता है, उसी प्रकार यह मुनि भी, उपसर्ग आदिसे बाधित नहीं होता है, अथवा-जैसे असन्दीन द्वीप यात्रिकों के लिये आश्वसनीय होता है, उसी प्रकार संसारसागरको तिरनेकी इच्छावाले मनुष्य, इस प्रकारके साधुओंके ऊपर विश्वास करते हैं । ३१०
- १५ आठवें सूत्र और छाया । ३११
- १६ असन्दीन द्वीपके समान भगवद्भाषित धर्म भी है । ३११
- १७ नवम सूत्रका अवतरण, नवम सूत्र और छाया । ३११-३१२
- १८ वह मुनि, निस्पृही अहिंसक सर्वलोकप्रिय साधुमर्यादामें व्यवस्थित और पण्डित होता है । ३१२
- १९ दशम सूत्रका अवतरण, दशम सूत्र और छाया । ३१२-३१३
- २० आचार्य महाराजको चाहिये कि जैसे पक्षी अपने बच्चोंको उड़ना सिखाते हैं उसी प्रकार वे भी धर्मानुष्ठानमें अनुत्साही शिष्योंको दिन-रात क्रमशः एकादश अङ्गोंकी शिक्षा दें । आचार्यद्वारा शिक्षित वे शिष्य, सकल परिषदों के सहन और संसारसागरके पार करनेमें समर्थ हो जाते हैं । ३१३-३१४

॥ इति तृतीय उद्देश ॥



## ॥ अथ चतुर्थ उद्देश ॥

विषय

पृष्ठाङ्क

- १ तृतीय उद्देशके साथ चतुर्थ उद्देशका संबंधकथन, प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया । ३१५
- २ आचार्यद्वारा परिश्रमपूर्वक शिक्षित किये गये उन शिष्योंमें से कितनेक अहंकारयुक्त हो कर उपशमको छोड़ गुरुजनोंके साथ भी कठोर व्यवहार करते हैं । ३१५-३१६
- ३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया । ३१७
- ४ कितनेक शिष्य ब्रह्मचर्यमें रह कर भी, भगवान्की आज्ञा की आराधनामें सर्वथा तत्पर नहीं हो कर देशतः भगवान् की आज्ञाकी अवहेलना करते हुए सातागौरवकी अधिकतासे बाकुशिक हो जाते हैं । ३१७
- ५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया । ३१८
- ६ कितनेक शिष्य, आचार्यद्वारा कुशीलाचारके विपाकका प्रतिपादन करनेपर, उन आचार्यों के ऊपर ही क्रुद्ध हो जाते हैं ।
- ७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया । ३२०-३२१
- ८ ये अवसन्न पार्श्वस्थादि, शीलवान् उपशान्त और हेयोपादेय ज्ञानपूर्वक संयममार्ग में प्रवृत्ति करनेवाले साधुओंको 'चारित्रहीन' कहा करते हैं, यह उनकी द्वितीय बालता है, पहली बालता तो इनकी यह है जो ये स्वयं भ्रष्ट हैं । ३२१-३२२
- ९ पञ्चम सूत्रका अवतरण और पञ्चम सूत्र । ३२२
- १० कितनेक स्वयं संयमाचरणमें असमर्थ होते हुए भी मूलगुण और उत्तरगुणकी शुद्ध रूपसे व्याख्या करते हैं, उनको द्वितीय बालता नहीं होती है । ३२२
- ११ षष्ठ सूत्रका अवतरण, षष्ठ सूत्र और छाया । ३२३



## विषय

## पृष्ठाङ्क

- १२ कितनेक सम्यक्त्वपतित ज्ञानभ्रष्ट मुनि, द्रव्यतः आचार्यादिको प्रणाम आदि करते हैं, परंतु वे भावतः अपनी आत्माको सम्यक्चारित्र्यरूप मोक्षमार्गसे भ्रष्ट ही करते रहते हैं । ३२३
- १३ सप्तम सूत्रका अवतरण, सप्तम सूत्र और छाया । ३२४
- १४ कितनेक परीषहोपसर्गसे आक्रान्त हो जीवनके मोहसे संयमका परित्याग कर देते हैं, उनका सब कुछ व्यर्थ ही है । ३२४
- १५ अष्टम सूत्रका अवतरण, अष्टम सूत्र और छाया । ३२५
- १६ जीवनके सुखके निमित्त जो चारित्र्यका परित्याग करते हैं वे पामरजनोंसे भी निन्दित होते हैं, और वे एकेन्द्रियादि दुर्गतिके भागी होते हैं, संयमस्थानसे गिरकर भी वे अपने को पण्डित मानते हुए अपनी प्रशंसा करते हैं और उत्तम साधुओंकी निन्दा करते हैं, उनके ऊपर असत्य दोषोंका आरोप करते हैं । मेधावी मुनिको ऐसा नहीं होना चाहिये । ३२५-३२७
- १७ नवम सूत्रका अवतरण, नवम सूत्र और छाया । ३२८
- १८ आरम्भार्थी साधु, हिंसाके निमित्त दूसरों को प्रेरित करते हैं, हिंसाकी अनुमोदना करते हैं । 'तीर्थङ्करोक्त धर्म घोर अर्थात्-दुरनुचरणीय है'—ऐसा मान कर तीर्थङ्करोक्त धर्मकी उपेक्षा करते रहते हैं 'से मनुष्योंको तीर्थङ्करोंने विषण्ण अर्थात् कामभोग-मूर्च्छित और वितर्द अर्थात् षड्जीविकायोंके उपमर्दनमें तत्पर कहा है । ३२८-३२९
- १९ दशम सूत्रका अवतरण, दशम सूत्र और छाया । ३२९
- २० कितनेक जन, मातापिता, ज्ञातिबन्धु और धन-धान्यादिकोंको छोड़ कर संयम लेते हैं और उस संयमका पालन अच्छी तरह करते हैं, परन्तु बादमें वे ही कर्मदोषवश संयमसे गिर पड़ते हैं, दीन-हीन हो कर व्रतविध्वंसक हो जाते हैं । ३३०-३३३

## विषय

पृष्ठाङ्क

- २१ ग्यारहवें सूत्रका अवतरण, ग्यारहवां सूत्र और छाया । ३३३
- २२ संयमसे च्युत लोगोंकी सर्वत्र निन्दा होती है । ३३३-३२५
- २३ बारहवें सूत्रका अवतरण, बारहवां सूत्र और छाया । ३३५
- २४ कितनेक अभागे साधु, उग्रविहारियोंके साथ रहते हुए भी शीतलविहारी होते हैं, विनयशील साधुओंके साथ रहते हुए भी अविनयी होते हैं, विरतोंके साथ रहते हुए भी अविरत होते हैं, संयमाराधकोंके साथ रहते हुए भी असंयमी होते हैं । अतः संयमी साधुओंकी संगति प्राप्त कर सर्वदा संयमाराधनमें तत्पर रहना चाहिये । ३३५-३३६

॥ इति चतुर्थ उद्देश सम्पूर्ण ॥ ४ ॥

\*

॥ अथ पञ्चम उद्देश ॥

- १ चतुर्थ उद्देशके साथ पञ्चम उद्देशका सम्बन्ध-कथन । प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया । ३३६-३३८
- २ उन मुनियोंको अनेक स्थानोंमें अनेक प्रकारके उपसर्ग प्राप्त होते हैं, उन उपसर्गोंको वे मुनि अच्छी तरह सहें । ३३८-३३९
- ३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया । ३३९-३४०
- ४ जैनागमके ज्ञाता मुनि, लोकस्वरूपको तथा पूर्वादि दिग्विभागोंको भी अच्छी तरह जान कर दयाधर्मकी प्ररूपणा करे और धर्मानुष्ठानका फल कहे । ३४०
- ५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया । ३४१
- ६ वह आगमज्ञ मुनि, सुननेकी इच्छावाले उत्थित, अनुत्थित सभी प्रकारके लोगोंको शान्ति, विरति, उपशम, निर्वाण, शौच, आर्जव, मार्दव और लाघवकी व्याख्या आगमानुसार करके समझावे । ३४१-३४२

## विषय

पृष्ठाङ्क

- ७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया । ३४२
- ८ मुनि एकेन्द्रियादि सभी प्राणियोंके हितकी ओर दृष्टि रखते हुए धर्मोपदेश करे । ३४३
- ९ पञ्चम सूत्रका अवतरण, पञ्चम सूत्र और छाया । ३४३-३४४
- १० धर्मोपदेश करते हुए मुनि, न अपने आत्माकी विराधना करें, न दूसरे मनुष्योंकी विराधना करे और न अन्य प्राण, भूत, जीव और सत्त्वोंकी विराधना करे । ३४४-३४५
- ११ छठे सूत्रका अवतरण, छठा सूत्र और छाया । ३४५
- १२ जीवोंके अनाशातक मुनि सभी प्राणियोंके शरण होते हैं । ३४६-३४७
- १३ सातवें सूत्रका अवतरण, सातवां सूत्र और छाया । ३४७-३४८
- १४ कर्मविनाशके लिये उत्थित मुनि, श्रुतचारित्र धर्म में स्थिर हो कर, बलवोर्यको नहीं छिपाते हुए, सभी प्रकारकी परिस्थिति में निष्पकम्प, स्थिरवासरहित अर्थात् उग्रविहारी और संयमकी ओर लक्ष्य रखते हुए विहार करे । ३४८
- १५ अष्टम सूत्रका अवतरण, अष्टम सूत्र और छाया । ३४९
- १६ सम्यग्दृष्टि जीव जिनोक्तधर्मको जानकर परिनिर्वृत हो जाता है । ३४९
- १७ नवम सूत्रका अवतरण, नवम सूत्र और छाया । ३४९-३५०
- १८ आसक्तियुक्त प्राणी, बाह्याभ्यन्तर परिग्रहोंसे निबद्ध होते हैं, उनमें निमग्न रहते हैं, कामभोगमें अभिनिविष्ट चित्तवाले होते हैं । मुनिको चाहिये कि वे आसक्तिरहित हो कर संयम पालन करें, संयमसे कभी भी भयभीत न हों । ३५०-३५१
- १९ दशम सूत्रका अवतरण, दशम सूत्र और छाया । ३५२
- २० वह आरम्भ कि जिससे हिंसक जन भयभीत नहीं होते हैं, उसको सम्यक् प्रकारसे जान कर और चार कषायोंका वमन करके मुनिजन संयममार्गमें विचरते हैं । ऐसे मुनिजनके सभी कर्म बन्धनतूट जाते हैं । ३५२-३५४



## विषय

## पृष्ठाङ्क

- २१ ग्यारहवें सूत्रका अवतरण, ग्यारहवां सूत्र और छाया । ३५५
- २२ इस औदारिक आदि शरीरके विनाशको तीर्थकरोंने संग्रामका अग्र भाग कहा है । मुनिजन ज्ञानाचारादिरूप नौकाका अवलम्बन कर संसार महासागरके पारगामी होते हैं । परीषह और उपसर्गोंसे हन्यमान मुनि, रागद्वेषरहित अपने मरणकालसे अभिज्ञ हो कर बारह वर्षकी संलेखनासे शरीरका संलेखन करके भक्तप्रत्याख्यान आदिमेंसे किसी एक मरणसे अपने मरणकालकी प्रतीक्षा करें । इस प्रकारके मुनि सकल कर्मक्षय करके मोक्षगामी होते हैं । ३५५-३६०
- २३ अध्ययनविषयोपसंहार । ३६०-३६१

॥ इति षष्ठ अध्ययन ॥

\*

॥ अथ अष्टम अध्ययन ॥

( प्रथम उद्देश )

- १ सप्तम अध्ययनके विच्छेदका कारण । ३६३-३६५
- २ अष्टम अध्ययनका उपोद्घात । ३६५-३६६
- ३ अष्टम अध्ययनमें प्रतिपादित विषयोंका उद्देशक्रमसे संक्षेपतः कथन । ३६७-३७०
- ४ प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और उसकी छाया । ३७०
- ५ अवसन्न पार्श्वस्थ आदि स्वमतावलम्बियोंका और शाक्यादि परमतावलम्बियोंको, साधु कभी भी आहार आदि न देवे, न उन्हें निमन्त्रित करे, और न उनकी शुश्रूषा ही करे । ३७०-३७१
- ६ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया । ३७१-३७२



- ७ अवसन्न पार्श्वस्थादिक स्वमतावलम्बियोंद्वारा और शाक्यादि परमतावलम्बियोंद्वारा आहारादि निमित्त आमन्त्रित होनेपर साधु, कभी भी उनके आमन्त्रणका स्वीकार न करे। ३७२-३७३
- ८ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया। ३७४
- ९ कितनेक लोगोंको आचारगोचर अर्थात् सर्वज्ञोपदिष्ट संयम मार्गका परिचय नहीं होता है, अतः वे आरम्भार्थी होते हैं, और उन आरम्भार्थी लोगोंकी तत्त्वके सम्बन्धमें परस्पर भिन्न भिन्न दृष्टि होती है। इस लिये उनका धर्म वास्तविक नहीं होनेके कारण भव्योंके लिये सर्वदा परित्याज्य है। ३७४-३९६
- १० चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया। ३९६-३९७
- ११ इस अनेकान्त धर्मका प्ररूपण भगवान् तीर्थकरने किया है। उन्होंने अपने साधुओंके लिये कहा है कि परवादियोंके साथ वादमें भाषासमितिका ध्यान सतत रखें। वे परवादियोंसे इस प्रकार कहें कि आपके शास्त्रोंमें षड्जीवनिकयोपमर्दनरूप आरम्भ, धर्मरूपमें स्वीकृत किया गया है वह हमें ग्राह्य नहीं है; क्यों कि आरम्भ नरकनिगोदादिके कारण होने से पाप है। हम सावद्याचरणके त्यागी हैं, अतः हमें इस विषयमें आपके साथ वाद नहीं करना है और यही हमारे लिये उचित भी है। 'धर्म न ग्राममें है और न अरण्यमें, धर्म तो जीवाजीवादि-तत्त्व-परिज्ञानपूर्वक निरवद्यानुष्ठानमें ही है'-यह माहन-भगवान् महावीरका उपदेश है। भगवान् ने तीन यामोंका प्ररूपण किया है; इन यामोंमें संबुध्यमान और समुत्थित आर्यजन जो कि पापकर्मोंसे निवृत्त हैं वे ही अनिदान कहे गये हैं। ३९७-४०३
- १२ पञ्चम सूत्रका अवतरण, पञ्चम सूत्र और छाया। ४०३

विषय

पृष्ठाङ्क

- १३ 'ऊर्ध्वादि सभी दिशाओं एवं विदिशाओंमें सूक्ष्मवादरादि सभी प्राणियोंकी विराधनारूप कर्मसमारम्भ होता है'—  
 इस बातको जान कर मेधावी साधु न स्वयं इन षड्जीव-  
 निकायोंके विषयमें दण्डका समारम्भ करे, न दूसरोंसे  
 करावे, न करते हुए की अनुमोदना ही करे। हे शिष्य !  
 तुम्हें इस प्रकारसे विचारना चाहिये कि इन दण्डसमारंभ  
 करनेवालोंके साथ वार्तालाप करनेमें भी मुझे लज्जा होती  
 है, फिर मैं दण्डसमारम्भका अनुमोदन कैसे करूँ ? मैं कभी  
 इसका अनुमोदन नहीं कर सकता। इस प्रकार निश्चय कर  
 के साधुमर्यादामें व्यवस्थित, प्राणातिपातसे भयभीत तुम,  
 उस अनर्थकर प्राणातिपातादिरूप दण्डका, अथवा-अन्य दण्ड  
 का समारम्भ कभी नहीं करना।

४०४-४०५

॥ इति प्रथम उद्देश ॥

\*

॥ अथ द्वितीय उद्देश ॥

- १ द्वितीय उद्देशका प्रथम उद्देशके साथ सम्बन्धकथन, प्रथम सूत्र  
 और उसकी छाया। ४०६-४०७
- २ श्मशान आदिमें स्थित साधुको अकल्पनीय अशनादिक  
 छेनेके लिये यदि कोई गृहपति आग्रह करे तो साधु उसके  
 आग्रहको कभी भी नहीं स्वीकारे। ४०८-४१२
- ३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया। ४१२-४१३
- ४ उस साधुके समीप आ कर कोई गृहपति उस साधुको,  
 अकल्पनीय अशन आदि ला कर देवे, या रहनेके लिये  
 अकल्पनीय उपाश्रय देवे, तो साधुको चाहिये कि वह उस  
 गृहपतिके वचनोंको कभी भी स्वीकार नहीं करे। ४१३-४१६
- ५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया। ४१६

- ६ श्मशानादिस्थित साधुके, गृहपतिद्वारा प्रदत्त अकल्पनीय अशनादिक न लेनेपर, यदि वे गृहपति उस साधुकी ताडना आदि करें तो साधु उस ताडनादिकको शान्तिपूर्वक सहन करे। अथवा वह साधु उस गृहपतिके सम्यग्दृष्टित्व और मिथ्यादृष्टित्वका अनुमान कर, यदि वह सम्यग्दृष्टि हो तो उसे साधुके आचारका परिज्ञान करावे। अथवा—यदि देखे कि यह गृहपति मिथ्यादृष्टि है तो कुछ भी नहीं कहे। चुपचाप उसके द्वारा किये गये उपसर्गों को शान्तचित्त हो कर सहे। ४१६-४२२
- ७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया। ४२२-४२३
- ८ वह साधु गृहपतिद्वारा प्रदत्त उस आहारादिको कभी भी स्वीकार न करे। इतना ही नहीं वह साधु शाक्यादि पर-तीर्थिकों को कभी भी अशनादिक नहीं देवे, न उन्हें निमन्त्रित करे, न उनकी सेवा करे, और न उनका आदर ही करे। ४२३
- ९ पञ्चम सूत्रका अवतरण और पञ्चम सूत्र। ४२३-४२४
- १० भगवान्की आज्ञा है कि साधु अपने साधर्मिक साधुको अशनादिक प्रदान करे, उसको निमन्त्रित करे, उसकी सेवा करे और उसका आदरसत्कार करे। ४२४-४२५

॥ इति द्वितीय उद्देश ॥

\*

॥ अथ तृतीय उद्देश ॥

- १ तृतीय उद्देशका द्वितीय उद्देशके साथ सम्बन्धकथन। प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया। ४२६-४२७



२ कितनेक मनुष्य युवावस्थामें ही संबुद्ध हो मुनि हो जाते हैं। उनमें जो बुद्धबोधित होते हैं वे पण्डितों अर्थात् तीर्थ-करगणधर आदिके समीप धर्मवचन सुन कर, उन्हें हृदयमें उतार कर समताभावका अवलम्बन करें; क्यों कि तीर्थकर-गणधर आदिकोंने समतासे ही धर्मका प्ररूपण किया है। उन साधुओंको चाहिये कि वे शब्दादिक विषयोंकी अभिलाषासे रहित हो कर, प्राणियोंकी हिंसा और परिग्रह नहीं करते हुए विचरते हैं। ऐसे मुनि कभी भी परिग्रहोंसे लिप्त नहीं होते हैं, और न ये प्राणियोंके ऊपर मनोवाकायदण्डका ही प्रयोग करते हैं। ऐसे मुनियोंको तीर्थकरोंने महान् और अग्रन्थ कहा है। ऐसे मुनि मोक्ष और संयमके स्वरूपके परिज्ञाता होते हैं, और वे देव, नारक, मनुष्य और तिर्यञ्चके जन्म-मरणादिक दुःखोंको जान कर कभी भी पापकर्म नहीं करते हैं।

४२७-४३०

३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया।

४३१

४ आहारसे परिपुष्ट प्राणियों के ये शरीर, परीषहोंके आनेपर विनष्ट हो जाते हैं। देखो; कितनेक प्राणी क्षुधापरीषहसे कातर हो जाते हैं, और इनके विपरीत कोई २ रागद्वेष-वर्जित मुनि क्षुधापरिषहके प्राप्त होने पर भी निष्प्रकम्प हो कर षड्जीवनिकायके ऊपर दया करनेमें ही संलग्न रहते हैं।

४३१-४३३

५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया।

४३३-४३४

६ पूर्वोक्त मुनि आगममें कुशल होते हैं और वे काल, बल, मात्रा, क्षण, विनय और समयके ज्ञाता होते हैं। वे परिग्रहमें ममत्व नहीं रखते हैं, यथाकाल अनुष्ठान करनेवाले होते हैं और अप्रतिज्ञ होते हैं। ऐसे मुनि रागद्वेषको छिन करके मोक्षको प्राप्त करते हैं।

४३४



विषय

पृष्ठाङ्क

७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया ।

४३५

८ शीतस्पर्शसे कम्पितशरीर मुनिको देख कर यदि गृहपति पूछे कि 'हे आयुष्मन् ! क्या आपका शरीर कामजनित पीडासे कम्पित हो रहा है ?' तो मुनि उससे कहे—'हे गाथापति ! मेरा शरीर कामविकारसे नहीं कँप रहा है, किन्तु शीतकी बाधाको मैं नहीं सह पा रहा हूँ इसलिये कँप रहा है।' इस पर यदि गृहपति कहे कि 'हे आयुष्मन् ! तो आप अग्निसेवन क्यों नहीं करते ?' इस पर वह साधु कहे कि 'हे गाथापति ! मुझे अग्निको प्रज्वलित करना या उसका सेवन करना नहीं कल्पता।' इस प्रकार कहने पर यदि वह गृहपति या अन्य गृहस्थ आग जला कर उस मुनिके शरीरको तापित करे तो वह मुनि गृहस्थको समझा कर अग्निसेवनसे दूर ही रहे।

४३५-४३९

॥ इति तृतीय उद्देश ॥

\*

॥ अथ चतुर्थ उद्देश ॥

१ चतुर्थ उद्देशका तृतीय उद्देशके साथ सम्बन्धप्रतिपादन, प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया ।

४४०-४४१

२ मुनिको तीन वस्त्र और चौथा पात्र का रखना कल्पता है। इस प्रकारके साधुको यह भावना नहीं होती है कि चौथे वस्त्रकी याचना करूँगा। साधु एषणीय वस्त्रकी याचना करते हैं, जैसा वस्त्र मिल जाता है उसीको धारण करते हैं, वस्त्रोंको धोते नहीं हैं और रंगते ही हैं। साधु धौतरक्त वस्त्रको धारण नहीं करते हैं। वे कभी भी वस्त्रोंको छिपाते नहीं; क्योंकि उनका वस्त्र जीर्ण और मलिन होनेके कारण

मूल्यवान नहीं होता है। इस प्रकारके साधु ग्रामान्तरों में निर्द्वन्द्व विचरते हैं। वस्त्रधारी साधुओंकी यही तीन वस्त्र और चौथा पात्ररूप सामग्री होती है।

४४१-४४४

३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया।

४४४

४ हेमन्त ऋतुके वीतने पर ग्रीष्म ऋतुके प्रारम्भमें साधुको जीर्ण वस्त्रोंका परित्याग कर देना चाहिये। अथवा शीतसमय वीतने पर भी क्षेत्र, काल और पुरुष स्वभावके कारण यदि शीतबाधा हो तो तीनों वस्त्रोंको धारण करे, अर्थात्-शीत लगने पर तीनों वस्त्रोंको धारण करे, शीत न लगे और उसकी आशङ्का हो तो अपने पास रखे, त्यागे नहीं। अथवा शीतकी अल्पतामें एक वस्त्रको धारण करे, और जब शीत बिल्कुल ही न रहे तब अचेत अर्थात् प्रावरणवस्त्र रहित हो जाय। इस प्रकारसे मुनिकी आत्मा लघुतासे युक्त हो जाती है। इस प्रकारसे वस्त्रत्याग करनेवाले मुनिको कोयक्लेशनामक तप भी होता है।

४४५-४४७

५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया।

४४८

६ यह सब भगवान् महावीरने कहा है; इस लिये मुनि इस सबका अच्छी तरह विचार कर सचेत और अचेत अवस्थाओं में साम्यभाव ही रखे।

४४८

७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया।

४४९

८ जिस मुनिको यह होता है कि मैं रोगातङ्गोंसे अथवा शीतादि या स्त्रीके उपसर्गसे स्पृष्ट हो गया हूँ, मैं इनको सह नहीं सकता हूँ, वह वसुमान् मुनि उस समय अपने अन्तःकरणसे हेय और उपादेयका विचार कर उन उपसर्गोंका प्रतिकार नहीं करते हैं। ऐसे तपस्वी मुनि स्त्रियोंके उपसर्ग उपस्थित होने पर वैहायस आदि मरणद्वारा शरीर छोड़ देते हैं परन्तु चारित्रिको नहीं छोड़ते हैं। ऐसे मुनिका वह मरण बालमरण

नहीं है, अपि तु वह पण्डित मरण ही है। वह मुनि वस्तुतः संसारान्तकारी ही होता है। इस प्रकार वह विमोहका आयतनस्वरूप वैहायस मृत्यु ही उस साधुके हित आदिकी करनेवाली होती है।

४४९-४५६

॥ इति चतुर्थ उद्देश सम्पूर्ण ॥

\*

॥ अथ पञ्चम उद्देश ॥

१ पञ्चम उद्देशका चतुर्थ उद्देशके साथ संबन्धप्रतिपादन, प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया।

४५७-४५८

२ जो भिक्षु, दो वस्त्र और एक पात्र धारण करनेके लिये अभि-  
ग्रहसे युक्त है उसे यह भावना नहीं होती कि तीसरे वस्त्रकी  
याचना करूँगा। वह यथाक्रम एषणीय वस्त्रोंकी याचना  
करता है, उसकी इतनी ही सामग्री होती है। जब हेमन्त  
ऋतु बीत जाती है और ग्रीष्म ऋतु आने लगती है तब वे  
परिजीर्ण वस्त्रोंको छोड़ देवे। अथवा शीत समय बीतने पर  
भी क्षेत्र, काल और पुरुषस्वभावके कारण यदि शीतबाधा  
हो तो दोनों वस्त्रोंको धारण करे। शीतकी आशङ्का हो तो  
अपने पास रखे, त्यागे नहीं। अथवा अवमचेल हों, अथवा  
एकशाटकधारी होवे, अथवा अचेल हो जावे। इस प्रकारसे  
मुनिकी आत्मा लाघव गुणसे युक्त हो जाती है। भगवान्ने  
जो कहा है वह सर्वथा समुचित है, इस प्रकार मुनि सर्वदा  
भावना करे। यदि मुनिको ऐसा लगे कि रोगादिकोंसे स्पृष्ट  
हो गया हूँ, निर्बल हूँ, मैं भिक्षाचर्याके लिये गृहस्थके घर  
जानेमें असमर्थ हूँ, उस समय यदि कोई गृहस्थ मुनिके लिये  
अशनादिक सामग्रीकी योजना करे तो मुनि उसे अकल्पनीय  
समझकर कभी भी नहीं स्वीकारे।

४५८-४६१



३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया ।

४ जिस भिक्षु का आचार इस प्रकार का होता है कि—

(१) जिसको किसीने वैयावृत्य करने की प्रेरणा नहीं की वह यदि अग्लान होगा और वह आकर मुझ ग्लान को निवेदित करेगा कि मैं आपकी वैयावृत्ति करूँगा तो मैं साधर्मिकों द्वारा निर्जरा के लिये की जाती हुई वैयावृत्ति स्वीकार करूँगा । और अग्लान तथा दूसरों से अप्रेरित मैं ग्लान साधु की वैयावृत्ति अपने कर्मनिर्जरा की इच्छा से करूँगा उसके लिये आहारादि की गवेषणा करूँगा और दूसरों के लाये हुए आहार का भी स्वीकार करूँगा । (२) दूसरों के लिये आहारादि का अन्वेषण करूँगा और दूसरों के लाये हुए आहार का स्वीकार नहीं करूँगा । (३) दूसरों के लिये आहार का अन्वेषण नहीं करूँगा परन्तु दूसरों के लाये हुए आहार का स्वीकार करूँगा । (४) दूसरों के लिये आहार का अन्वेषण नहीं करूँगा और न दूसरों के लाये हुए आहार का स्वीकार ही करूँगा । इस प्रकार अभिग्रहधारी मुनि अपने अभिग्रह को पालते हुए, शान्त, विरत, होकर और अन्तःकरण की वृत्तियोंको विरुद्ध कर ग्लानावस्थामें भक्तप्रत्याख्यान से ही अपने शरीर का परित्याग करे । उस मुनि का वह कालपर्याय ही है । उस का इस प्रकार से शरीर त्याग करना विमोहायतन—महापुरुषकर्तव्य ही है और, हित, सुख, क्षम, निश्रेयस एवं आनुगामिक ही है । उद्देश समाप्ति ।

४६३-४६८

॥ इति पञ्चम उद्देश ॥

\*

॥ अथ षष्ठ उद्देश ॥

१ षष्ठ उद्देश का पञ्चम उद्देश के साथ सम्बन्धप्रतिपादन, प्रथम सूत्र का अवतरण, प्रथमसूत्र और छाया ।

४६९-४७०



- २ जो भिक्षु एक वस्त्र और एक पात्र के अभिग्रहधारी है, उसको यह भावना नहीं होती कि द्वितीय वस्त्र की याचना करूँगा। वह भिक्षु एषणीय वस्त्र की याचना करे, जो वस्त्र मिले उसी को धारण करे, यावत् ग्रीष्म ऋतु आवे जीर्ण वस्त्र का परित्याग कर देवे। अथवा—एक शटक धारण करे, अथवा अचेल होजावे। इस प्रकार के मुनि की आत्मा लघुता-गुण से युक्त हो जाती है। उस भिक्षु का इस प्रकार का आचार तप ही है। भगवानने जो कहा है वह सर्वथा समुचित है, इस प्रकार वह भिक्षु सर्वदा भावना करे। ४७०
- ३ द्वितीय सूत्र का अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया। ४७०-४७१
- ४ जिस भिक्षु को यह होता है कि—मैं अकेला हूँ, मेरा कोई नहीं है, मैं भी किसी का नहीं हूँ। वह साधु अपने को अकेला ही समझे। इस प्रकार के साधु की आत्मा लघुता गुण से संपन्न होती है उस साधु की यह भावना तप ही है। भगवानने जो कहा है वह समुचित ही है, ऐसी भावना वह साधु सर्वदा रखे। ४७१-४७२
- ५ तृतीय सूत्र का अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया। ४७२-४७३
- ६ साधु अथवा साध्वा आहार करते समय आहार को मुँह के दाहिने भागसे बाँये भाग की ओर स्वाद लेते हुए नहाँ ले जावे, उसी प्रकार बाँये से दाहिने की ओर नहीं ले जावे। इस प्रकार स्वाद की भावना से रहित होकर आहार करना तप ही है। भगवानने जो कहा है वह सर्वथा समुचित ही है, ऐसी भावना साधु को सर्वदा करनी चाहिये। ४७३-४७५
- ७ चतुर्थ सूत्र का अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया। ४७६
- ८ जिस भिक्षु को यह होता है कि—मैं इस समय ग्लान हूँ, इसलिये इस शरीर को पूर्ववत् परिचर्या करने में असमर्थ हूँ।

उस मुनि को चाहिये कि आहार को क्रमिक अल्प करे, आहार को अल्प कर के और कषायों को कृश कर के अपनी आत्मा को समाहित करते हुए, और संसारजनित कर्म के क्षपण करने की भावना रखते हुए इङ्गित मरण करे।

४७६-४७९

९ पञ्चम सूत्र का अवतरण, पञ्चम सूत्र और छाया।

४८०

१० ग्रामादि किसी स्थानमें जाकर साधु तृण की याचना करे, तृण लेकर एकान्त स्थानमें जायँ। वहाँ कल्पनीय भूमि की प्रतिलेखना प्रमार्जना कर के वहाँ पर तृण का संथारा करे और फिर इङ्गित मरण से शरीर त्याग करे। ऐसा मुनि सत्यवादी, रागद्वेषरहित, तीर्ण, दृढ, जीवाजीवादिपदार्थज्ञ और अपारसंसार का पारगामी होता है। वह मुनि इस इङ्गितमरण को सत्य समझकर अनेकविध परीषहोपसर्गों को सह कर, इस जिनशासनमें विश्वस्त हो कातर जनों के असाध्य साधुओं के आचार का आचरण करता है। व्याधिनिमित्त इङ्गित मरण करने वाले साधु का वह मरण पण्डित मरण ही है, यावत् वह आनुगामिक है। उद्देश समाप्ति।

४८१-४८७

॥ इति षष्ठ उद्देश संपूर्ण ॥

\*

॥ अथ सप्तम उद्देश ॥

१ सप्तम उद्देशका षष्ठ उद्देशके साथ सम्बन्धप्रतिपादन, प्रथम सूत्रको अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया

४८८-४८९

२ जो प्रतिमाधारी साधु वस्त्ररहित हो कर संयममें तत्पर रहता है उस मुनिके चित्तमें यह भावना होती है कि मैं तृणस्पर्श, शीतस्पर्श, उष्णस्पर्श और दंशमशकस्पर्श सह सकता हूँ, और भी विविध स्पर्शों को सह सकता हूँ; परन्तु लज्जाको नहीं छोड़ सकता हूँ। ऐसे साधुको कटिबन्धन धारण करना कल्पता है।

४८९-४९१

## विषय

पृष्ठाङ्क

३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया । ४९१

४ उस संयममें पराक्रम करते हुए उस अचेल साधुको तृणस्पर्श, शीतस्पर्श, उष्णस्पर्श और दंशमशकस्पर्श प्राप्त होते हैं । वह साधु उन स्पर्शों को तथा अन्य भी विविध स्पर्शों को सहता है । उसकी आत्मा लाघवयुक्त होती है । उसका यह अचेलत्व तप ही है । उस साधुकी यह भावना सर्वदा होनी चाहिये कि भगवान् ने जो कहा है वह सर्वथा संगत है । ४९१-४९२

५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया । ४९२-४९३

६ जिस भिक्षुको यह होता है कि मैं दूसरे भिक्षुओंके लिये अशन आदि ला कर दूंगा और दूसरोंके लाये हुए अशनादिकको स्वीकार भी करूंगा १ । जिस भिक्षुको यह होता है कि मैं दूसरे भिक्षुओंके लिये अशनादिक ला कर दूंगा और दूसरेके लाये हुए अशनादिकको स्वीकार नहीं करूंगा २ । जिस भिक्षुको यह होता है कि मैं दूसरे भिक्षुओंके लिये अशनादिक लाकर नहीं दूंगा, परन्तु दूसरेके लाये हुए अशनादिकको स्वीकार करूंगा ३ । जिस भिक्षुको यह होता है कि मैं दूसरे भिक्षुओंके लिये अशनादिक ला कर नहीं दूंगा और न दूसरेके लाये हुए अशनादिकको स्वीकार करूंगा ४ । ये चार प्रकारके अभिग्रहधारी मुनि होते हैं । पांचवे प्रकारके अभिग्रहधारी मुनि होता है । जिसका अभिग्रह इस प्रकारका होता है कि मैं अपनेसे बचे हुए एषणीय अशनादिकद्वारा साधर्मियों की वैयावृत्य करूंगा और साधर्मिकोंके द्वारा भी अपनेसे अवशिष्ट दिये गये एषणीय अशनादिकको स्वीकार करूंगा । ४९४-४९६

७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया । ४९७

८ जिस साधुको यह मालूम हो कि मेरा शरीर अब सशक्त नहीं है वह साधु संधारा करे । उद्देश समाप्ति । ४९८-४९९

॥ इति सप्तम उद्देश ॥

\*



विषय	पृष्ठाङ्क
१ अष्टम उद्देशका सप्तम उद्देशके साथ सम्बन्धप्रतिपादन, प्रथम गाथा और उसकी छाया ।	५००
२ बुद्धिमान् धीर मुनि क्रमशः भक्तपरिज्ञा, इङ्गितमरण और पादपोषगमनरूप विमोहको प्राप्त कर, उस भक्तपरिज्ञानादिक के औचित्य अनौचित्यको विचार कर समाधिका परिपालन करे ।	५०१-५०२
३ द्वितीय गाथाका अवतरण, द्वितीय गाथा और छाया ।	५०२
४ मुनि बाह्य और आभ्यन्तर तपका सेवन कर, शरीरके अशक्त हो जाने पर भक्तप्रत्याख्यान आदिमें से किसी एकको स्वीकार कर आहारादिकी गवेषणासे निवृत्त हो जाता है ।	५०२-५०३
५ तृतीय गाथाका अवतरण, तृतीय गाथा और छाया ।	५०३
६ वह भिक्षु अल्पाहारी होता है, कषायादिको कुश करके दूसरोंके दुर्वचनोंको सह लेता है । यदि उस भिक्षुको आहार न मिले तो वह आहारका परित्याग कर देता है ।	५०४-५०५
७ चतुर्थ गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५०५
८ संलेखना करनेवाले मुनिको जीवन-मरणको अभिलाषासे रहित होना चाहिये ।	५०६
९ पांचवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५०६
१० संलेखनाकारी मुनि निर्जराकी अपेक्षा रखता हुआ मध्यस्थ हो कर समाधिकी परिपालना करे, और कषाय एवं शारीरिक उपकरणों को छोड़ कर अन्तःकरणको शुद्ध करे ।	५०६-५०७
११ छठी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५०७
१२ अपनी आयुके उपक्रमको जान कर मुनि संलेखनाकालके बीचमें ही भक्तप्रत्याख्यान करे ।	५०७-५०८



विषय	पृष्ठाङ्क
१३ सातवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५०८
१४ मुनि ग्राम अथवा अरण्यमें प्राणिवर्जित स्थण्डिलका प्रति- लेखन करके वहाँ पर दर्भका संधारा बिछावे ।	५०८
१५ आठवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५०९
१६ मुनि आहारको छोड़ कर उस दर्भसंधाराके ऊपर शयन करे, अनुकूल प्रतिकूल सभी परिषद्‌होंको सहे ।	५०९-५१०
१७ नवमी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५१०
१८ उस शय्या पर उस मुनिके मांसशोणितको कीड़ियां और गृध्र आदि पक्षी खावें तो उनकी हिंसा न करे और न क्षतस्थानका प्रमार्जन ही करे ।	५१०
१९ दशवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५११
२० साधु यह विचार करे कि ये प्राणी मेरे शरीरकी हिंसा करते हैं रत्नत्रयकी तो नहीं करते। ऐसा विचार कर वह उन्हें निवारित न करे। अपनी शय्यासे कभी दूर न जाय और परीषहो- पसर्गोंका सहन करे ।	५११
२१ ग्यारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया	५१२
२२ बाह्याभ्यन्तर ग्रन्थसे रहित अपनी आत्माको भावित करते हुए मुनि अन्तिमश्वासोच्छ्वासपर्यन्त समाधियुक्त रहे । इस प्रकारका मुनि कर्मके निश्शेष होने पर मोक्षगामी होता है और यदि कर्म अवशिष्ट रह जाता है तो देवलोकगामी होता है । गीतार्थ संयमी इस इङ्गित मरणको सम्यक् प्रकारसे स्वीकृत करता है ।	५१२-५१३
२३ बारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५१३
२४ यह इङ्गितमरणरूप धर्म भगवान् महावीरने कहा है, यह मरण भक्तपरिज्ञामरणसे भिन्न है । इस मरणका अभिलाषी मुनि	

## विषय

## पृष्ठाङ्क

- शरीरके आवश्यक कार्य को छोड़ कर अन्य सभी कार्यों को छोड़े । ५१३-५१४
- २५ तेरहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५१४
- २६ वह मुनि दूर्वादि हरितकार्योंसे युक्त स्थानों पर नहीं बैठे, हरितकायरहित स्थानपर शयन करे, आहार छोड़कर चुपचाप सभी परीषद्दोषसगों को सहे । ५१४-५१५
- २७ चौदहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५१५
- २८ इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण हो जाने पर यदि ग्लानिका अनुभव होने लगे तो मुनि साम्यभावको धारण करे, वह मुनि पर्वतके समान अचल और समाहितचित्त होवे । इस प्रकारका मुनि सर्वदा अनिन्द्य होता है । ५१६
- २९ पन्द्रहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५१६
- ३० वह मुनि उस इज्जितमरणमें शरीरमें पीडा होने पर उस क्षेत्रके अन्दरमें अर्थात् मर्यादित भूमिमें इधर-उधर भ्रमण करे, अथवा शुष्क काष्ठके समान निश्चल रहे । ५१७
- ३१ सोलहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५१७
- ३२ इज्जितमरणमें मुनिके शरीरमें जब पीडा होवे तो उसे जो करना चाहिये उसका कथन । ५१८
- ३३ सत्रहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५१९
- ३४ इस इज्जित मरणको स्वीकार करनेवाला मुनि अपनी इन्द्रियों को विषयोंसे निवृत्त करे, वह प्रतिलेखनयोग्य पीठ-फलादिका अन्वेषण करे । ५१९-५२०
- ३५ अठारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५२०
- ३६ प्रतिलेखनके अयोग्य पीठफलकादिके ग्रहणसे ज्ञानावरणीयादि कमौंका बन्ध होता है, अतः ऐसे पीठफलादिकका

- ग्रहण नहीं करना चाहिये। इङ्गित मरणमें स्थित मुनि अपनी आत्माको काययोग और मनोयोगसे पृथक् करे और सभी परीषहोपसर्गोंको सहन करे। ५२०-५२२
- ३७ उन्नीसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया। ५२२
- ३८ इङ्गित मरणकी अपेक्षा श्रेष्ठ पादपोषगमन मरणमें जो मुनि स्थित होता है उसके सभी अङ्ग अकट जायें तो भी वह अपने स्थानसे नहीं उठे। ५२२-५२३
- ३९ बीसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया। ५२३
- ४० यह पादपोषगमन मरण भक्तपरिज्ञा और इङ्गितमरणसे श्रेष्ठ है, अतः मुनि पादपोषगमनमरण स्वीकार करे। ५२४-५२५
- ४१ इक्कीसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया। ५२५
- ४२ मुनि चतुर्विधाहारको छोड़कर अचित्त स्थण्डिलमें पर्वतके समान अप्रकम्प रह कर विहित प्रत्युपेक्षणादि क्रिया करते हुए सभी प्रकारसे शरीर समत्वका परित्याग करे। यदि उसे परिषहोपसर्गकी बाधा उपस्थित हो तो विचार करे कि यह शरीर जब मेरा नहीं है तो उसमें होनेवाली परिषहोपसर्गकी बाधासे मेरा क्या सम्बन्ध? वह मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। ५२६
- ४३ बाईसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया। ५२७
- ४४ इन परिषहोपसर्गों को तो यावज्जीवन सहना ही है। ऐसा विचार कर शरीर परित्यागनिमित्त, सकल शारीरिक व्यापारसे रहित हो कर पादपोषगमनमरणके विधिज्ञ वह मुनि सभी परिषहोपसर्गों को सहे। ५२७
- ४५ तेईसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया। ५२७-५२८



## विषय

## पृष्ठाङ्क

- ४६ यह मुनि ऐहिक कामभोगोंका अनुरागी न बने,  
और मोक्षके स्वरूपका पर्यालोचन कर इन्द्रादि देवपदोंकी  
भी अभिलाषा न करे। ५२८
- ४७ चौबीसवीं गाथाका अवतरण; गाथा और छाया। ५२९
- ४८ यदि राजा जीवनपर्यन्त निर्वाहके लिये धनादिक प्रदान  
करे, और कोई देव दिव्य ऋद्धि देनेके लिये प्रगट होवे तो  
भी मुनि अपने तपको खण्डित नहीं करे। वह मुनि राज-  
प्रदत्त ऐश्वर्यको और देवप्रदत्त दिव्य ऋद्धिको आत्मकल्याण  
के प्रतिकूल जान कर ज्ञानावरणीयादि सभी कर्मोंको  
विनष्ट करे। ५२९-५३०
- ४९ पच्चीसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया। ५३०-५३१
- ५० पांचों प्रकारके शब्दादिकोंमें अथवा उनके साधक धनोंमें  
गृद्धि छोड़ कर मुनि पादपोषगमन मरणसे आयुकालका पार-  
गामी होवे। मुनि तितिक्षाको उत्कृष्ट समझ कर भक्तपरिज्ञा,  
इङ्गितमरण और पादपोषगमन, इन तीनोंमेंसे किसी एकको  
अपनी शक्तिके अनुसार स्वीकार करे; क्यों कि ये तीनों  
ही कर्मनिर्जराकारक हैं। अष्टम उद्देशकी समाप्ति। ५३१-५३२
- ५१ अध्ययनस्थ विषयोंका उपसंहार। ५३२-५३५

॥ इति अष्टम अध्ययन ॥

\*

॥ अथ नवम अध्ययन ॥

( प्रथम उद्देश )

- १ नवम अध्ययनका पूर्वोक्त अध्ययनोंके साथ सम्बन्धप्रतिपा-  
दन, 'उपधानश्रुत' शब्दकी व्याख्या, अध्ययनके चारों  
उद्देशोंमें आये हुए विषयोंका दिग्दर्शन। ५३६-५३८

## विषय

## पृष्ठाङ्क

- २ प्रथम गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५३८
- ३ भगवान् महावीरस्वामीके चरित्रवर्णन का प्रस्ताव । भगवान् महावीरस्वामी उत्थित हो प्रव्रज्याकालको जान कर हेमन्त ऋतुमें प्रव्रजित हुए, और प्रव्रज्या ग्रहण कर तुरन्त ही वहां से विहार किये । ५३८-५३९
- ४ दूसरी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५३९
- ५ भगवान्ने जो वस्त्र धारण किया था वह तीर्थङ्करपरम्पराके रक्षार्थ; नहीं कि हेमन्तऋतुमें शरीरप्रच्छादन निमित्त । ५४०-५४१
- ६ तीसरी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५४१
- ७ भगवान्के शरीरपर भ्रमरादि प्राणी कुछ अधिक चार महीनों तक चन्दनादिकी गन्धसे आकृष्ट हो कर विचरते थे और रक्तमांसकी अभिलाषासे उनके शरीरको डसते थे । ५४२
- ८ चौथी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५४३
- ९ भगवान्ने एक वर्षसे कुछ अधिक काल तक वस्त्र धारण किया, उसके बाद वस्त्र त्याग कर वे अचेत हो गये । ५४२-५४३
- १० पांचवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५४३
- ११ भगवान् जब रास्तामें विहार करते थे तो बालकगण उन्हें देख कर धूलि-पत्थर आदिको प्रक्षेप करते थे, और उनको देखनेके लिये दूसरे बालकोंको भी बुलाते थे । ५४३-५४४
- १२ छठी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५४४
- १३ भगवान् जब किसी वासस्थानमें विराजते थे, जहां कि स्त्री पुरुष आदि सभी रात्रिवासके लिये ठहरते थे । वहां किसी स्त्रीद्वारा प्रार्थित होने पर भी भगवान् उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं करते, अपि तु संयम मार्ग में अपनी आत्माको स्थापित कर ध्यान करते थे । ५४४-५४५

विषय	पृष्ठाङ्क
१४ सातवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५४५
१५ गृहस्थलोग भगवान्‌के पास एकत्रित होते तो वे उनकी ओर लक्ष न दे कर अपने ध्यानमें ही मग्न रहते । यदि वे गृहस्थ उनसे कुछ पूछते तो चुपचाप वहांसे चल देते । वे ध्यानसे कभी भी विचलित नहीं होते ।	५४६
१६ आठवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५४६
१७ भगवान्‌को कोई अभिवादन करता था तो वे उससे प्रसन्नता नहीं प्रगट करते थे, और यदि कोई अभिवादन न करे तो उस पर क्रुद्ध भी नहीं होते थे । अनार्य देशोंमें भगवान्‌ को यदि कोई ताड़न आदि करता तो भी उनका भाव कलुषित नहीं होता ।	५४६-५४७
१८ नवमी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५४७
१९ भगवान्‌ महावीरस्वामी कठोर वचनोंको सहते थे, नृत्य, गीत, दण्डयुद्ध और मुष्टियुद्ध आदिको सुनने और देखनेके लिये उन्हें कुतूहलता नहीं होती ।	५४८
२० दसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५४८
२१ भगवान्‌ने कभी कभी परस्पर कामकथामें संलग्न स्त्रियोंको देखा, परन्तु उन्हें राग नहीं हुआ । भगवान्‌ने संयमकी आराधनानिमित्त परीषद्‌ोपसगों को कुछ भी नहीं गिना ।	५४८-५४९
२२ ग्यारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५४९
२३ भगवान्‌ साधिक दो वर्ष सचित्त जलका परित्याग कर एकत्व भावना भाते और क्रोध छोड़ते हुए, सम्यक्त्वभावना एवं शान्तिसे युक्त हो कर प्रव्रज्या ग्रहण की ।	५४९-५५०
२४ बारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५५०



विषय	पृष्ठाङ्क
२५ भगवान् षड्जीवनिकायोंके स्वरूपको जान कर उनके आरम्भ का परिहार करते हुए विचरते थे ।	५५०
२६ तेरहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५५१
२७ 'ये पृथिवी आदि षड्जीवनिकाय सचित्त हैं' । ऐसा विचार कर उनके स्वरूप और भेद-प्रभेदोंको जान कर उनके आरम्भ को परिवर्जित करके विचरते थे ।	५५१
२८ चौदहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५५१-५५२
२९ स्थावर जीव त्रस हो कर उत्पन्न होते हैं, और त्रस जीव स्थावर हो कर । अथवा सभी जीव अपने उपार्जित कर्मानुसार सभी योनियोंमें उत्पन्न होते हैं ।	५५२-५५३
३० पन्द्रहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५५३
३१ भगवानने इस प्रकार समझा कि ये मोहयुक्त प्राणी द्रव्य और भाव उपधिसे युक्त हो कर कर्मके प्रभावसे क्लेशका अनुभव करते हैं । इस लिये भगवान् ने सभी प्रकारके कर्मों का परित्याग कर दिया ।	५५३
३२ सोलहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५५४
३३ भगवानने दोनों प्रकारके कर्मोंको जानकर और आदानस्रोत, अतिपातस्रोत और दुष्प्रणिहित मनोवाक्कायको कर्मबन्धका कारण जान कर संयमको पाला ।	५५४-५५५
३४ सत्रहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५५५
३५ भगवानने हिंसाको सर्वथा छोड़ कर अहिंसाका उपदेश दिया उन्होंने स्त्रियोंको सकल कर्मबन्धका मूल समझा, इस प्रकार उन भगवानने संसारके यथावस्थित स्वरूपको देखा ।	५५५
३६ अठारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५५६
३७ वे भगवान् आधाकर्मादिदोषयुक्त आहारादिको ज्ञानावरणीयादि कर्मोंका बन्ध समझा, इसीलिये उन्होंने उसका सेवन	

## विषय

## पृष्ठाङ्क

- नहीं किया । तथा भगवान् ने पापकारण सदोष अन्नादिकको स्वीकार नहीं करते हुए प्रासुक आहारका सेवन किया । ५५६
- ३८ उन्नीसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५५६-५५७
- ३९ उन भगवान् ने दूसरोंके वस्त्रका कभी भी सेवन नहीं किया, दूसरेके पात्रमें भी उन्होंने भोजन नहीं किया। भगवान् अपमानकी गणना नहीं करके आहार बननेके स्थानमें आहारके निमित्त जाते थे । ५५७
- ४० बीसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५५७
- ४१ भगवान् अशनपानके मात्राज्ञ थे, वे कभी भी मधुरादिरसोंमें आसक्त नहीं हुए । भगवान् सर्वदा अप्रतिज्ञ रहे । उन्होंने न आखें कभी भी, नहीं धोयीं, और न उन्होंने ने कभी शरीर को खजुआया । ५५८
- ४२ इक्कीसवीं गाथा का अवतरण, गाथा और छाया । ५५९
- ४३ भगवान् मार्ग में चलते हुए न अपनी दृष्टि को तिरछी करते थे और न पीछे की ओर वे दृष्टिपात करते थे, कोई कुछ पूछता था तो कोई उत्तर भी नहीं देते थे, किन्तु आगे की ओर अपने शरीरप्रमाण भूमि को देखते हुए यतनापूर्वक विहार करते थे । ५५९
- ४४ बाईसवीं गाथा का अवतरण, गाथा और छाया । ५५९
- ४५ मार्गमें चलते हुए भगवान् महावीर शिशिर ऋतुमें वस्त्र छोड़ कर, दोनों बाहुओं को कन्धों पर नहीं रख कर किन्तु दोनों बाहुओं को पसार कर परीषह और उपसर्गों को सहने के लिये यत्न करते थे । ५६०
- ४६ तेईसवीं गाथा का अवतरण, गाथा और छाया । ५६०
- ४७ भगवान् ने इस प्रकार का आचार का सेवन किया । उन्होंने यह आचार इसलिये पाला कि दूसरे मुनि भी इसी तरह आचारकापालन करें । उद्देश समाप्ति । ५६०-५६१

॥ इति प्रथम उद्देश संपूर्ण ॥

\*

## ॥ अथ द्वितीय उद्देश ॥

विषय	पृष्ठाङ्क
१ द्वितीय उद्देश का प्रथम उद्देश के साथ संबन्धप्रतिपादन, प्रथम गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	५६२
२ विहार में भगवानने जिन आसनों को, शय्याओं को सेवित किया उन्हें कहें—इस प्रकार जम्बू स्वामी का प्रश्न ।	५६२
३ द्वितीय गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	५६३
४ सुधर्मा स्वामी का उत्तर—भगवानने विहारकालमें शून्य गृहोंमें, सभाओंमें, प्रपाशालाओंमें, पण्यशालाओंमें, कारखानोंमें, पुआल की बनी कुटियोंमें निवास किया ।	५६३-५६४
५ तीसरी गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	५६४
६ भगवानने कभी धर्मशालाओंमें, उद्यान स्थित गृहोंमें, नगर के मध्यभागमें, श्मशानमें, शून्यगृहमें, वृक्षमूलमें निवास किया ।	५६४
७ चौथी गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	५६५
८ भगवानने इस प्रकारके आवासोंमें कुछ अधिक तेरह वर्षों तक निवास किया, और वहाँ पर निद्रादिप्रमाद और विस्रोत-सिका से रहित भगवान् ध्यानावस्थामें रहे ।	५६५
९ पाँचवीं गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	५६५
१० भगवान् महावीर स्वामी अधिक सोते नहीं थे, यदि निद्रा आने लगती थी तो भगवान् सावधान होकर जागते रहते थे, अप्रितिक्ष भगवान् छद्मस्थावस्थामें रात्रि के अन्तिम प्रहरमें अन्तर्मुहूर्त्तमात्र शयन करते थे ।	५६६
११ छठी गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	५६६
१२ भगवान् महावीरस्वामी निद्राके दोषोंको अच्छी तरह जानते हुए निद्रा आनेके समय उठ कर, बाहर निकल कर, एक मुहूर्त्त भ्रमण कर फिर ध्यानमें बैठ जाते थे ।	५६६-५६७



विषय	पृष्ठाङ्क
१३ सातवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५६७
१४ आश्रयस्थानोंमें भगवान्को भयंकर, अनेक प्रकारके उपसर्ग हुए और सांप, नेवले तथा गीध आदिके भी उपसर्ग हुए ।	५६७
१५ आठवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५६७-५६८
१६ चोर व्यभिचारी आदि, शक्तिधारी ग्रामरक्षक, व्यभिचारिणी स्त्रियां और अन्य पुरुष लोग भगवान्को उपसर्ग करते थे ।	५६८-५६९
१७ नवमी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५६९
१८ भगवान् ऐहलौकिक पारलौकिक अनेक प्रकारके उपसर्गों को सहते थे, और अनेक प्रकारके सुरभि-दुर्भगिन्धों को भी सहते थे ।	५६९
१९ दसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५७०
२० भगवान् पांच समितियोंसे युक्त होकर अनेक प्रकारके स्पर्शोंको सहन किये, अल्पभाषी भगवान् संयममें अरति और विषयानन्दमें रति को दूर कर संयमके आराधनमें प्रवृत्त हुए ।	५७०
२१ ग्यारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५७०
२२ शून्य घरोंमें अथवा निर्जन प्रदेशोंमें लोग भगवान्से विविध प्रश्न पूछते थे, परन्तु भगवान् मौन रहते थे । कभी कभी कोई कोई जार पुरुष आदि आ कर भगवान्से पूछते थे, परन्तु भगवान् मौन रहते थे, तब वे क्रुद्ध हो कर भगवान् को दण्ड मुष्टि आदिसे ताड़ते थे; लेकिन भगवान् निर्विकार हो कर सब सह लेते थे ।	५७१
२३ बारहवीं गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	५७२
२४ भगवान्से कभी कोई पूछता-‘तुम कौन हो?’ तब भगवान् कहते मैं भिक्षु हूं । तब वे भगवान् को निकल जानेके लिये कहते तब भगवान् वहांसे चले जाते । यदि नहीं जानेको कहते तो भगवान् कषाययुक्त उन मनुष्योंके प्रति समभावसे मौन होकर धर्मध्यानमें संलग्न रहते ।	५७२
२५ तेरहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५७३

## विषय

## पृष्ठाङ्क

- २६ शिशिर ऋतुमें पवनके चलने पर कितनेक अनगार कांपते थे, कितनेक अनगार उस हिमवातसे बचनेके लिये निर्वात स्थानकी खोज करते थे । ५७३
- २७ चौदहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५७३
- २८ उस हिमऋतुमें कितनेक अनगार शीतनिवारणके लिये संघाटी ओढते थे । परतीर्थिक तापसादि धूनी जला कर शीतवारण करते थे और गृहस्थ लोग विविध प्रकारके वस्त्र धारण करते थे । ५७४
- २९ पन्द्रहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५७४-५७५
- ३० भगवान् महावीरने उस शिशिर ऋतुके हिमवातमें भी अनावृत स्थानमें ही रह कर हिमस्पर्शको समभावसे सहते थे । ५७५
- ३१ सोलहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५७६
- ३२ भगवान् महावीरने इस प्रकारके दुःसह शीतोंको अनेकवार सहा । भगवान्का उद्देश इसमें यह था कि दूसरे साधु भी इसी प्रकार शीतका सहन करें । उद्देश समाप्ति । ५७६-५७७

॥इति द्वितीय उद्देश संपूर्ण॥

\*

॥ अथ तृतीय उद्देश ॥

- १ तृतीय उद्देशका द्वितीय उद्देशके साथ सम्बन्धकथन, प्रथम गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५७८
- २ भगवान् सर्वदा सभी प्रकारके स्पर्शों को सहते थे । ५७८-५७९
- ३ द्वितीय गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५७९
- ४ भगवान्ने दुश्चर लाढ देशकी वज्रभूमि और शुभ्रभूमिमें विहार किया । वहां अन्तप्रान्त शय्या आदिका उन्होंने सेवन किया । ५७९-५८०

## विषय

## पृष्ठाङ्क

- ५ तृतीय गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५८०
- ६ लाढ देशमें वहाँके लोगोंने भगवान् को बहुत उपसर्ग किये । कितनेक तो भगवान् की ताड़ना करते थे, और कुत्ते भगवान् को काटते थे और गिरा कर उनके ऊपर चढ़ बैठते थे । ५८०-५८१
- ७ चौथी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५८१
- ८ बहुत थोड़े ऐसे लोग थे जो हिंसक मनुष्योंको और काटते हुए कुत्तों का रोकते थे; अधिकतर तो ऐसे ही मनुष्य थे जो भगवान् को ताड़न करके उनके ऊपर कुत्तों को हुलकाते थे । ५८१
- ९ पांचवीं गाथाका अवतरण, और छाया । ५८२
- १० लाढ देशकी वज्रभूमिके लोग तुच्छअन्नभोजी और क्रूर स्वभावके थे । वहाँ पर अन्यतैर्थिक श्रमण लाठी और नालिका ले कर विहार करते थे । ५८२-५८४
- ११ छठी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५८४
- १२ उस लाढदेशमें लाठी और नालिका ले कर यद्यपि अन्य तैर्थिक श्रमण विहार करते थे तो भी उन्हें कुत्ते काट लेते थे । यह लाढ वस्तुतः बड़ा ही दुश्चर था । ५८५
- सातवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५८५
- १४ भगवान् लाढदेशकी उस अनार्य भूमिमें भी डंडे आदिके बिना ही विचरण करते हुए सभी प्रकारके उपसर्गों को सहें । ५८६
- १५ आठवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५८७
- १६ संग्रामके अग्रभागमें हाथी जैसे शत्रुसेनाको जीत कर उसके पारगामी होता है उसी प्रकार भगवान् भी परीषहोपसर्गोंको जीत कर उनके पारगामी हुए । विहार करते हुए भगवान्



कभी २ ग्रामको प्राप्त नहीं करते थे अर्थात् ग्रामसे दूर अरण्य आदिमें स्थित मार्गपर होते उसी समय ग्रामवासी अनार्य-लोक आकर भगवानको परीषहोपसर्ग किये ।

५८७

१७ नवमी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।

५८८

१८ भगवान् विहार करते हुए ग्रामके समीप पहुंचते थे कि ग्रामवासी लोग आकर उन्हें दण्डे आदिसे ताड़ित करते थे और कहते थे कि यहांसे चले जाओ ।

५८८

१९ दसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।

५८९

२० अनार्य लोग भगवान् को दण्डे आदिसे आहत कर हल्ला मचाते थे ।

५८९

२१ ग्यारहवां गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।

५८९

२२ भगवान् के शरीरमें जहां कहीं घाव था वहीं ये अनार्य लोग नोंचते थे और भगवान् के ऊपर धूलि डालते थे ।

५८९-५९०

२३ बारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।

५९०

२४ भगवान् को कितनेक अनार्य ऊपर उठाकर पटक देते थे, कितनेक उन्हें आसनसे गिरा देते थे; इन सभी उपसर्गोंको कायोत्सर्गस्थित धर्मध्यानलीन भगवान् ने समतापूर्वक सहा ।

५९०-५९१

२५ तेरहवीं गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।

५९१

२६ संग्राम के अग्रभागमें शूर वीर पुरुषके समान भगवान् वहाँ पर मुख मोड़े बिना आगे आगे विहार करते थे ।

५९१-५९२

२७ चौदहवीं गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।

५९२-५९३

२८ भगवान् महावीरने इस प्रकार के उपसर्ग परीषहों को इसलिये सहा कि दूसरे मुनि भी मेरे देखादेखी उपसर्ग-परीषहों के सहनेमें दृढ़ रहें । उद्देश समाप्ति ।

॥ इति तृतीय उद्देश संपूर्ण ॥

\*

## ॥ अथ चतुर्थ उद्देश ॥

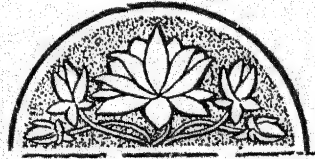
विषय	पृष्ठाङ्क
१ चतुर्थ उद्देश का तृतीय उद्देश के साथ संबन्धकथन, प्रथम गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	५९४
२ भगवान् अवमोदरिका तप करते थे और कभी भी चिकित्सा (इलाज) नहीं करवाते थे ।	५९४-५९५
३ दूसरी गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	५९६
४ भगवान् कभी भी रेचन और वमनका औषध नहीं लिया और गात्राभ्यञ्जन, संवादन और दन्तप्रक्षालन नहीं किये ।	५९६-५९७
५ तीसरी गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	५९९
६ भगवान् शब्दादि विषयों से निवृत्त, अहिंसक और अल्प भाषी होकर विचरते थे और शीतकालमें वृक्ष या लता-मण्डप की छायामें बैठ कर धर्मध्यान ध्याते थे ।	६००
७ चौथी गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	६००
८ भगवान् ग्रीष्म ऋतुमें सूर्याभिमुख उत्कुटकासन (उकडु आसन) से बैठ कर सूर्यकी तापना लेते थे, और नीरस ओदन, बेरका चूर्ण, कुल्माष आदि आदि से शरीरनिर्वाह करते थे ।	६००
९ पाँचवीं गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	६०१
१० भगवान् इन नीरस ओदनादिकों को सेवित करते हुए आठ मास बिताये, कभी अर्द्धमासिक चतुर्विधाहारत्यागरूप तप किया ।	६०१
११ छठी गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	६०१-६०२
१२ कभी-कभी भगवान् अढ़ाई महीने तक, तो कभी कभी छ महीने तक पानी भी नहीं लेते हुए चोविहार तपस्या की, और पारणा के दिनमें अन्त प्रान्त ओदनादि से पारणा किये ।	६०२
१३ सातवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	६०२
१४ भगवान् संयमसमाधिको देखते हुए छठ, अट्ठम, दशम और द्वादश तपका पारणा करते थे ।	६०२

विषय	पृष्ठाङ्क
१५ आठवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	६०३
१६ भगवानने पापकर्मोंका तीन करणतीन योगसे परित्याग किया ।	६०३
१७ नवमी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	६०३
१८ भगवान् ग्राम और नगरमें प्रवेश करके उद्गमदोष और उत्पादनादोष रहित शुद्ध आहारको ग्रासैषणादोषका परिवर्जन करते हुए ग्रहण करते थे ।	६०३-६०४
१९ दसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	६०४
२० भगवान् कौवे और कबूतर आदि पक्षियोंको पृथ्वी पर आहारके निमित्त स्थित देख कर उन्हें बाधा नहीं हो, इस प्रकारसे मार्गके एक ओरसे धीरे धीरे चलते हुए आहारकी गवेषणा करते थे ।	६०४-६०५
२१ ग्यारहवीं और बारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	६०५
२२ ब्राह्मणों या शाक्यादि श्रमणों या अन्य जीवोंकी वृत्तिच्छेद नहीं हो; इस प्रकारसे आहारका अन्वेषण करते थे ।	६०५-६०६
२३ तेरहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	६०६
२४ भगवानको निर्दोष आहार जैसा-कैसा अन्त प्रान्त भी मिलता था उसीको ले कर संयममें स्थित रहते थे, और यदि नहां मिलता था तो वे किसीकी निन्दा नहीं करते थे ।	६०६-६०८
२५ चौदहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	६०८
२६ उत्कुटुकादि आसनस्थित भगवान् निर्विकार हो कर ध्यान करते थे ।	६०८-६०९
२७ पन्द्रहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	६०९
२८ भगवान् कषाय और गृद्धि और ममत्वरहित हो कर ध्यान ध्याते थे । भगवान्ने छद्मस्थावस्थामें भी कभी प्रमाद नहीं किया ।	६०९-६१३
२९ सोलहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	६१४



- ३० मायारहित भगवान् स्वयमेव संसारका स्वरूप जानकर स्वयं संबुद्ध हो तीर्थप्रवर्त्तन के लिये उद्यत हुए । भगवान् कर्मों के क्षयोपशम, उपशम और क्षय से समुद्भूत आत्मशोधि द्वारा मनोवाक्काययोग को स्थिर रख कर, कषायाग्नि के प्रशमन से शीतीभूत होकर यावज्जीव पाँच समिति और तीन गुप्ति से युक्त रहे । ६१४-६१६
- ३१ सत्रहवीं गाथा का अवतरण, गाथा और छाया । ६१६
- ३२ भगवानने इस प्रकार के आचार का वारंवार पालन किया । भगवानने यह आचार इसलिये पाला कि दूसरे भी साधु मेरे देखादेखी इसी प्रकार से आचार का पालन करें । ६१६
- ३३ नवम अध्ययन का उपसंहार और शास्त्रप्रशस्ति । ६१७-६१९

॥ इति विषयानुक्रमणिका सम्पूर्ण ॥



## ॥ अथाचाराङ्गसूत्रस्य लोकसारनामकं पञ्चममध्ययनम् ॥

गतं चतुर्थमध्ययनं साम्प्रतं पञ्चममध्ययनं प्रारम्भ्यते । चतुर्थमध्ययने सम्यक्त्वं, तदन्तर्गतं ज्ञानं च निरूपितं, सम्यक्त्वज्ञानकारणजन्यं चारित्रं, तदेव प्रधानं मोक्ष-कारणमतस्तदेव लोके सारभूतमिति लोकसाराख्यमिदमध्ययनम्; तथा हि—लोकस्य सारो धर्मो, धर्मस्य सारो ज्ञानं, ज्ञानस्य सारश्चारित्रं, तस्य च सारो मोक्ष इत्यस्य प्रतिपादनात्, तेन लोकसारतया चारित्रमेवात्र प्रतिपादयितव्यमस्ति । इहामध्ययनार्थाधिकारस्तु ‘लोकस्य सारः परिचिन्तनीयः’ इति । उद्देशार्थाधिकारो यथा—

## ॥ आचाराङ्गसूत्र का लोकसारनामक पांचवां अध्ययन ॥

चतुर्थ अध्ययन प्रतिपादित किया जा चुका है । अब यहां पंचम अध्ययनका व्याख्यान प्रारम्भ होता है । चतुर्थ अध्ययनमें सम्यक्त्व एवं उस के अन्तर्गत ज्ञानका निरूपण किया है । इस पाँचवें अध्ययन का नाम ‘लोकसार’ है । लोकमें सारभूत चारित्र है । वह चारित्र सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानसे होता है, अर्थात् इनके सहित होनेवाला चारित्र ही सम्यक्चारित्र है । वही मोक्षका प्रधान कारण माना गया है । लोकका सार धर्म, धर्म का सार ज्ञान, ज्ञान का सार चारित्र और चारित्रका सार मोक्ष है । इस कारण लोकमें सारभूत होनेसे चारित्रका ही वर्णन इस अध्ययनमें किया जायगा । “लोकस्य सारः परिचिन्तनीयः” अर्थात् चारित्र ही लोकका सार है, ऐसा विचारना चाहिये । इस प्रकार यहां पर यह अध्ययनका अर्थाधिकार है । उद्देश का अर्थाधिकार इस प्रकार है—

## आचारांगसूत्रनुं ‘लोकसार’ नामनुं पांचमुं अध्ययन.

ચોથું અધ્યયન કહેવાઈ ગયું છે. હવે અહીંથી પાંચમા અધ્યયનનો પ્રારંભ થાય છે. ચોથા અધ્યયનમાં સમ્યક્ત્વ અને તેના અંતર્ગત જ્ઞાનની સમજણ આપવામાં આવી છે. આ પાંચમા અધ્યયનનું નામ “લોકસાર” છે. લોકમાં સારભૂત ચારિત્ર છે. તે ચારિત્ર સમ્યગ્દર્શન અને સમ્યગ્જ્ઞાનથી થાય છે. તાત્પર્ય કે તેનાથી થતું ચારિત્ર તેજ સમ્યક્ ચારિત્ર છે. તેને જ મોક્ષનું પ્રધાન કારણ માનવામાં આવે છે. લોકનો સાર ધર્મ, ધર્મનો સાર જ્ઞાન, જ્ઞાનનો સાર ચારિત્ર અને ચારિત્રનો સાર મોક્ષ છે. આ કારણોથી લોકમાં સારભૂત હોવાથી ચારિત્રનું જ વર્ણન આ અધ્યયનમાં કરવામાં આવશે. “લોકસ્ય સારઃ પરિચિન્તનીયઃ” અર્થાત્ ચારિત્ર જ લોકનો સાર છે એમ માનવું જોઈએ. આ અહીં અધ્યયનનો અર્થાધિકાર છે. ઉદ્દેશનો અર્થાધિકાર આ પ્રમાણે છે:—

પ્રથમ ઉદ્દેશે-હિંસાસમારમ્ભાધિકારઃ પ્રથમઃ, યદર્થં હિંસાદયઃ સાવચ્ચવ્યાપારા વિધીયન્તે, તેષાં વિષયાણામધિકારો દ્વિતીયઃ, વિષયાર્થમેવ વિહરન્ન મુનિર્ભવતીતિ ચ તૃતીય ઇત્યધિકારત્રયં પ્રતિપાદ્યતે ।

દ્વિતીયે ચ-‘હિંસાદિતો વિષયાદિતોઽપ્રશસ્તૈકચર્યાતો વા વિરતો મુનિર્ભવતી’-તિ વર્ણિતમ્ ।

તૃતીયે-‘એષ વિરત એવ મુનિરપરિગ્રહો નિર્વિણ્ણકામભોગશ્ચ ભવતીતિ દર્શિતમ્ ।

ચતુર્થે-‘ચાઽગીતાર્થમુનેરેકાકિવિહરણે પ્રત્યવાયા ભવન્તીતિ કથિતમ્ ।

इस अध्ययन के छह उद्देश हैं; इन में-(१) प्रथम उद्देशमें प्रथम-हिंसासमारम्भाधिकार, द्वितीय-जिनके लिये हिंसा आदि सावध व्यापार किये जाते हैं उन विषयों का अधिकार, तृतीय-विषयों के लिये ही विचरण करनेवाला मुनि नहीं होता है, इसका अधिकार; इस प्रकार तीन अधिकार बतलाये गये हैं ।

(२) द्वितीय उद्देशमें यह बतलाया गया है कि-हिंसादि से विषयादि से तथा अप्रशस्त एकचर्यासे निवृत्त ही मुनि होता है ।

(३) तृतीय उद्देशमें इस बात की व्याख्या की गई है कि-जो हिंसादि से, विषयादिसे और अप्रशस्त एकचर्यासे निवृत्त है वही मुनि है; वही अपरिग्रही है और वही कामभोगों से विरक्त है ।

(४) चतुर्थ उद्देशमें अगीतार्थ मुनिको एकाकी हो कर विचरना नहीं चाहिये, क्यों कि-इस प्रकार के विहार में उसे अनेक विघ्नबाधाएँ आती हैं, यह विषय बतलाया गया है ।

આ અધ્યયનના છ ઉદ્દેશ છે, તે ઉદ્દેશો પૈકી (૧) પ્રથમ ઉદ્દેશમાં પહેલો-હિંસાસમારંભાધિકાર, બીજો-જેને માટે હિંસા આદિ સાવધ વ્યાપારો કરવામાં આવે છે તે વિષયોનો અધિકાર, ત્રીજો-વિષયોને માટે જ વિચરણ કરવાવાળો મુનિ નથી થતો-એનો અધિકાર; આ પ્રકારે ત્રણ અધિકારો કહેવામાં આવેલા છે.

(૨) બીજા ઉદ્દેશમાં એ બતાવવામાં આવ્યું છે કે હિંસાદિથી, વિષયાદિથી અને અપ્રશસ્ત એકચર્યાથી રહિત જ મુનિ થાય છે.

(૩) ત્રીજા ઉદ્દેશમાં એ વાતની વ્યાખ્યા બતાવવામાં આવી છે કે જે હિંસાદિથી, વિષયાદિથી અને અપ્રશસ્ત એકચર્યાથી રહિત છે, તે જ મુનિ છે, તે જ અપરિગ્રહી છે અને તે જ કામભોગોથી વિરક્ત છે.

(૪) ચોથા ઉદ્દેશમાં આ ગીતાર્થ મુનિએ એકલવાયા (એકલવિહારી) જીવનમાં રહીને વિચરવું ન જોઈ એ, કારણ કે આવા પ્રકારના વિહારમાં તેને ઘણા પ્રકારનાં વિઘ્નો આવે છે, આ વિષય બતાવવામાં આવેલ છે.



પશ્ચમે ચ-હદોપમાઃ સર્વતોગુપ્તા નિઃસક્તા જ્ઞાનદર્શનચારિત્રધારિણો વિસ્રોતસિકા-  
રહિતાઃ સંયમિનો ભવેયુરિત્યભિહિતમ્ ।

ષષ્ઠે ચ-કુદ્દષ્ટે રાગદ્વેષયોશ્ચ પરિત્યાગો વર્ણિતઃ ।

અનન્તરસૂત્રસમ્બન્ધો યથા-પૂર્વસૂત્રે ‘સાહિસ્સામો નાણં વીરાણં સહિયાણં’  
ઇત્યાદિના ચારિત્રગ્રહણં કથિતં, ચારિત્રપરિપાલનાર્થમેવ ચેદાચારિત્રવતાં દોષા  
વર્ણનીયા ઇતિ । ચારિત્રદોષાનેવોદ્ઘાટયિતુમાદિસૂત્રમાહ-‘આવંતી’ ઇત્યાદિ ।

(૫) પંચમ ઉદ્દેશમેં યહ બતલાયા ગયા હૈ કિ-મુનિકો હૃદકે સમાન  
હોના ચાહિયે, મન વચન ઓર કાય-ગુસિયુક્ત હોના ચાહિયે, સ્ત્રી આદિ  
કે સંગસે રહિત હોના ચાહિયે ઓર સમ્યગ્દર્શન જ્ઞાન ઓર ચારિત્રકા  
ધારક હોના ચાહિયે, સંશયાદિક દોષોં સે રહિત હોના ચાહિયે ।

(૬) છઠે ઉદ્દેશકે અંદર સાધુકો ઉન્માર્ગ મેં ગમનકા ઓર રાગ એવં  
દ્વેષ કા ત્યાગ કર દેના ચાહિયે, યહ વિષય બતલાયા ગયા હૈ ।

ઇસ અધ્યયનકા અનન્તર સૂત્રકે સાથ ઇસ પ્રકાર સમ્બન્ધ હૈ-પૂર્વ  
સૂત્રમેં-“સાહિસ્સામો નાણં વીરાણં સહિયાણં” ઇત્યાદિ સૂત્રસે ચારિત્રકા  
ગ્રહણ કરના પ્રકટ કિયા ગયા હૈ । જબ તક અચારિત્રી (અસંયમી) કે  
દોષ યહાં નહીં બતલાયે જાયેંગે તબ તક ચારિત્ર કા પાલન નહીં હો  
સકતા; ઇસ લિયે અચારિત્રવાનકે દોષોં કો પ્રકટ કરને કે લિયે પ્રથમ  
સૂત્ર કહતે હૈ-‘આવંતી’ ઇત્યાદિ ।

(૫) પાંચમા ઉદ્દેશમાં એ બતાવવામાં આવ્યું છે કે મુનિને હૃદસમાન  
હોવું જોઈએ. મન, વચન અને કાયાના યોગ સ્થિર રાખવા જોઈએ, સ્ત્રી આદિના  
સંગથી દૂર રહેવું જોઈએ અને સમ્યગ્દર્શન જ્ઞાન અને ચારિત્રને ધારણ કરવા-  
વાળો હોવો જોઈએ. સંશયાદિક દોષોથી પરે હોવો જોઈએ.

(૬) છઠા ઉદ્દેશની અંદર સાધુને ઉન્માર્ગમાં વિચરવાનો ત્યાગ અને રાગ  
તથા દ્વેષનો ત્યાગ કરવો તે વિષય બતાવવામાં આવ્યો છે.

આ અધ્યયનનો અનન્તર સૂત્રની સાથે એવા પ્રકારનો સંબંધ છે-પૂર્વ  
સૂત્રમાં “સાહિસ્સામો નાણં વીરાણં સહિયાણં” ઇત્યાદિ સૂત્રથી ચારિત્રને ગ્રહણ કરવું  
તેમ બતાવવામાં આવેલ છે. ન્યાં સુધી અચારિત્રી એટલે કે અસંયમીના દોષ બતા-  
વવામાં ન આવે ત્યાં સુધી ચારિત્રનું પાલન બની શકતું નથી. આથી ચારિત્રના પાલન  
માટે અચારિત્રવાનોના દોષો પ્રગટ કરવા સૂત્રકાર પ્રથમ આ સૂત્ર કહે છે-  
“આવંતી” ઇત્યાદિ.

મૂલમ્—આવંતી કેયાવંતી લોયંસિ વિપ્પરામુસંતિ અટ્ટાપ્ અણ-  
ટ્ટાપ્, ઇણસુ ચેવ વિપ્પરામુસંતિ, ગુરુ સે કામા, તઓ સે મારંતે,  
જઓ સે મારંતે તઓ સે દૂરે, નેવ સો અંતે નેવ સો દૂરે ॥ સૂ. ૧ ॥

છાયા—યાવન્તઃ કિયન્તો લોકે વિપરામૃશન્તિ અર્થાય અનર્થાય, એતેષુ એવ  
વિપરામૃશન્તિ, ગુરવસ્તસ્ય કામાઃ, તતઃ સ મારાન્તઃ, યતઃ સ મારાન્તસ્તતઃ સ  
દૂરે, નૈવ સોઽન્તનૈવ દૂરે ॥ સૂ. ૧ ॥

ટીકા—‘યાવન્ત’—ઇત્યાદિ। લોકે=પશ્ચાસ્તિકાયરૂપે ચતુર્દશરજ્જ્વાત્મકે વા,  
યદ્વા-ગૃહસ્થાન્યતીર્થિકે લોકે, યાવન્તઃ=યત્પ્રમાણા અતીતાનાગતવર્તમાનાઃ, કિય-  
ન્તઃ=યે કેઽપ્યસંયતા આરમ્ભજીવિનો મનુજાઃ પ્રાણિનો વા, તે-અર્થાય=પ્રયોજનાય

“લોયંસિ” પંચાસ્તિકાયરૂપ અથવા ચૌદહ રાજુપ્રમાણવાલે લોકમેં,  
અથવા ગૃહસ્થ તથા અન્યતીર્થિકરૂપ લોકમેં “આવંતી કેયાવંતી” જિતને  
કિતને મી અસંયમી-આરમ્ભજીવી પ્રાણી હૈં વે “અટ્ટાપ્ અણટ્ટાપ્”  
કિસી પ્રયોજન યા વિના પ્રયોજનસે ત્રસ સ્થાવર જીવોંકા “વિપ્પરા-  
મુસંતિ” અનેક પ્રકારસે ઉપમર્દન (ઘાત) કિયા કરતે હૈં ।

વિશેષાર્થ—યહ લોક-ધર્માસ્તિકાય અધર્માસ્તિકાય આકાશાસ્તિ-  
કાય જીવાસ્તિકાય એવં પુદ્ગલાસ્તિકાય, ઇન પાંચ અસ્તિકાયરૂપ દ્રવ્યોંસે  
સમન્વિત હૈં ઓર ચૌદહ રાજુ પ્રમાણવાલા હૈં । ઇસમેં જિતને મી અસં-  
યમી જીવ ભૂતકાલમેં હુણ હૈં, ભવિષ્યત્કાલમેં હોંગે ઓર વર્તમાનકાલમેં  
હૈં, વે સબ ભૂતકાલમેં આરમ્ભજીવી થે, ભવિષ્યમેં આરમ્ભજીવી હોંગે  
ઓર વર્તમાનમેં મી આરમ્ભજીવી હૈં । આરમ્ભજીવી પ્રાણી પ્રયોજન યા

“લોયંસિ” પાંચ અસ્તિકાયરૂપ અથવા ચૌદ રાજુ પ્રમાણવાળા લોકમાં  
અથવા ગૃહસ્થ તથા અન્યતીર્થિકરૂપ લોકમાં “આવંતી કેયાવંતી” જેટલા  
કેટલાક પણ અસંયમી અને આરંભજીવી પ્રાણીયો છે તેઓ “અટ્ટાપ્ અણટ્ટાપ્”  
કોઈ પણ પ્રયોજન અગર તો પ્રયોજન વગર ત્રસ સ્થાવર જીવોના “વિપરામુસંતિ”  
અનેક પ્રકારથી ઉપમર્દન-ઘાત કર્યા કરે છે.

વિશેષાર્થ—આ લોક-ધર્માસ્તિકાય, અધર્માસ્તિકાય, આકાશાસ્તિકાય, જીવા-  
સ્તિકાય અને પુદ્ગલાસ્તિકાય, આ પાંચ અસ્તિકાયરૂપ દ્રવ્યોથી સમન્વિત છે અને  
ચૌદ રાજુ પ્રમાણવાળો છે. તેની અંદર જેટલા અસંયમી જીવો ભૂતકાળમાં થયા છે,  
ભવિષ્યકાળમાં થશે અને વર્તમાનમાં છે તે બધા ભૂતકાળમાં આરંભજીવી હતા,  
ભવિષ્યમાં આરંભજીવી થશે અને વર્તમાનમાં આરંભજીવી છે. આરંભજીવી પ્રાણી

ધર્માર્થકામાદ્યર્થાય, પૃથગપિ ધર્માર્થ=દેવપ્રતિમા-દેવમન્દિર-નિમિત્તમ્, અર્થાર્થ =કૃષ્યાદ્યર્થ, કામાર્થ=પ્રાસાદાદ્યર્થ ચ પૃથિવીકાયં, કૃષ્યાદિસેચનાદ્યર્થ જલકાયં, પાકાદ્યર્થ તૈજસકાયં, ગ્રીષ્મસન્તાપોપશમનાય તાલવૃન્તાદિના વાયુકાયમ્, એવં પાકાદ્યર્થ વનસ્પતિકાયં, તત્તદાશ્રિતં ત્રસકાયં ચ, એવમનર્થાય= નિષ્પ્રયોજનાય-વ્યર્થમિતિ યાવત્, કૌતુકવશાત્પૃથિવ્યાદિકં મૃગયાદ્યર્થ ત્રસાંશ્ચ 'વિપરામૃશન્તિ' વિવિધપ્રકારેણ પરામૃશન્તિ=ઉપતાપયન્તિ-સ્વનિત્રકુદાલાદિશસ્ત્રેણ ઘાતયન્તીત્યર્થઃ, એવં શેષવ્રતેષ્વપિ 'સત્યવ્રતે મૃપાવાદિનો વિપરામૃશન્તી' -ત્યાદિ વિના પ્રયોજનસે મી ત્રસ સ્થાવર જીવોંની હિંસાદિ કાર્યોંમેં પ્રવૃત્તિશીલ રહ્યા કરતે હેં. ધર્મ અર્થ ઓર કામ, ઇન ત્રીનોં પુરુષાર્થોંની સિદ્ધિલે લિયે, અથવા પૃથક્-ધર્માદિ એક એક લેલિયે એસે પ્રાણિયોંસે જીવોંની હિંસા અવશ્ય હોતી રહતી હૈ. દેવપ્રતિમા તથા દેવમન્દિર બનવાને, કૃષ્યાદિ કાર્ય કરને કરાને ઓર મહલ-મકાન આદિકે ચિનાને મેં પૃથિવીકાયિક જીવોંની, કૃષિ આદિકે સેચનમેં અપ્કાયિક જીવોંની, ભોજન આદિકે તૈયાર કરને કરાને મેં તૈજસ્કાયિક જીવોંની, ગ્રીષ્મજન્ય તાપલે ઉપશમન કરને કરાનેમેં પંચા આદિસે વાયુકાયિક, તથા શાક પાક આદિકે લિયે વનસ્પતિકાયિક એવં પૃથિવી આદિકે આશ્રિત ત્રસકાયિક જીવોંની વિરાધના હોતી હૈ. ઇસી પ્રકાર વિના પ્રયોજન મી-વ્યર્થ હી કૌતુકવશ પૃથિવ્યાદિક કો પાવડે એવં કુદાલી આદિ દ્વારા ચોદનેસે, શિકાર આદિકે કરનેસે પૃથિવીકાયિક આદિ સ્થાવર એવં ત્રસકાયિક જીવોંની હિંસા હોતી હૈ.

પ્રયોજન અગર કોઈ પણ પ્રકારના પ્રયોજન વગર ત્રસ અને સ્થાવર જીવોંની હિંસાના કાર્યમાં પ્રવૃત્તિશીલ રહ્યા કરે છે. ધર્મ અર્થ અને કામ આ ત્રણે પુરુષાર્થોંની સિદ્ધિને માટે અથવા પૃથક્-ધર્માદિના કોઈ એકેક કારણને માટે એવા પ્રાણીયોંથી જીવોંની હિંસા જરૂર થતી રહે છે. દેવની પ્રતિમા બનાવવી, મંદિર બનાવવું, જેતીનું કામ કરવું કે કરાવવું તેમાં અને મહેલ-મકાન બનાવવામાં પૃથ્વીકાયિક જીવોંની, જેતી વગેરેના કામકાજમાં, અપ્કાયિક જીવોંની, ભોજન આદિ તૈયાર કરવા કરાવવામાં તેજસ્કાયિક જીવોંની અને ગરમીમાં ઠંડી હવાના ઉપયોગ માટે પંખા આદિથી વાયુકાયિક જીવોંની તેમજ પાક આદિને માટે વનસ્પતિકાયિક જીવોંની અને પૃથ્વી આદિના આશ્રિત ત્રસકાયિક જીવોંની હિંસા થાય છે. તેવી રીતે કોઈ પણ જાતના કારણ વગર વ્યર્થ-કૌતુકવશ પૃથ્વી આદિને પાવડા કોદાળી ઇત્યાદિ દ્વારા ખોદવાથી, શિકાર જેવાં કાર્યોં કરવાથી પૃથ્વીકાયિક આદિ સ્થાવર તથા ત્રસકાયિક જીવોંની હિંસા થાય છે.



યોજ્યમ્ । એતેષુ એવ=પદ્મજીવનિકાયેષ્વેવ તત્તદુપધાતકારિણઃ સૂક્ષ્મવાદરપર્યાસ-  
કાપર્યાસકરૂપાન્ જન્તૂન્નિહત્ય 'વિપરામૃશન્તિ.' વિ=વિવિધપ્રકારેણ નાનાયોનિ-  
ભાક્ત્વેન પરામૃશન્તિ=ઉત્પદ્યન્તે । યદ્વા-એતેષુ એવ તત્તજીવનિકાયધાતપ્રાપ્તકર્મ-  
ભિસ્તેષ્વેવ જીવનિકાયેષુ જન્મ લબ્ધ્વા તેન તેન પ્રકારેણ વિપરામૃશન્તિ=વિ=  
વિવિધં દુઃસ્વં પરામૃશન્તિ=અનુભવન્તિ ।

માવાર્થ—અહિંસા વ્રતકે ન પાલનેસે અસંયમી જીવ, ત્રસ એવં  
સ્થાવરકાયકી કિસીં ભી પ્રયોજનવશ હિંસા કરતે રહતે હૈં । વિના પ્રયો-  
જન કે ભી ઉનસે હિંસાકા પરિહાર નહીં હોતા, જૈસે-અપને પાસકી ઘાસ-  
દૂર્વા આદિ ઉગ્ગાડના, મિટ્ટી ખોદના આદિ, ઇસી પ્રકાર રસ્તે ચલતે કિસી  
વૃક્ષ આદિકી ડાલી તોડ લેના, લકડીસે કુત્તે આદિકો મારના, ઇત્યાદિ ।

ઇસી પ્રકાર જો સત્યવ્રત અચૌર્યવ્રત આદિ નહીં પાલતે હૈં એસે  
મૃષાવાદી ઓર ચૌરી આદિ પાપ કરનેવાલે પ્રાણી ભી ત્રસ ઓર સ્થાવર  
કી હિંસાસે બચે નહીં રહ સકતે, ઉન્હેં ભી ત્રસ ઓર સ્થાવરકી હિંસાસે  
હોનેવાલા પાપ લગતા હી રહતા હૈ, ઇસ પ્રકારકી યોજના શેષવ્રતોં મેં ભી  
કર લેની ચાહિયે ।

“ એતેષ્વેવ વિપરામૃશન્તિ ”—ઇસ પ્રકાર અસંયમી જીવ ઉસ ૨  
કાયકી વિરાધના યા વિરાધનાજન્ય પાપકર્મકે બન્ધસે ઉસ ૨ નિકાયકે  
જીવોંમેં ઉત્પન્ન હોતે હૈં ।

ભાવાર્થ—અહિંસાવ્રત ન પાળવાથી અસંયમી જીવ ત્રસ અને સ્થાવરકાયના  
જીવોની કેઈ પ્રયોજનનાર્થે હિંસા કરતા રહે છે, કારણ વગર પણ તેમનાથી હિંસાનો  
ત્યાગ થઈ શકતો નથી. જેવાં કે આસપાસનું ઘાસ-ધરો વગેરે ઉખાડવું, માટી  
ખોદવી, આ ઉપરાંત રસ્તે ચાલતાં ચાલતાં વૃક્ષ વગેરેની ડાળીઓ તોડવી,  
લાકડીથી કુતરાં વગેરેને મારવાં. ઇત્યાદિ.

આ પ્રકારે જે સત્યવ્રત, અચૌર્યવ્રત વગેરે પાળતા નથી એવા જુઠા ખોલા  
અને ચોરી આદિ પાપ કરવાવાળા પ્રાણી પણ ત્રસ અને સ્થાવરની હિંસાથી  
બચી શકતા નથી, તેઓને પણ ત્રસ અને સ્થાવરની હિંસાથી થતું પાપ લાગ્યા  
વગર રહેતું નથી. આ પ્રકારની યોજના શેષવ્રતોમાં પણ કરી લેવી જોઈએ.

“ એતેષ્વેવ વિપરામૃશન્તિ ” આ પ્રકારે અસંયમી જીવો તે તે કાયની વિરાધના-  
જન્ય પાપકર્મના બંધથી તે તે કાયોના જીવોમાં ઉત્પન્ન થાય છે.

વિશેષાર્થ—એકેન્દ્રિય જીવ સૂક્ષ્મ ઓર વાદરકે ભેદસે દો પ્રકારકે હૈં । યે પર્યાસ ઓર અપર્યાસ હોતે હૈં । અપની ૨ યોગ્ય પર્યાસિયાં જિન જીવોંકી પૂર્ણ હો જાતી હૈં વે પર્યાસ, ઓર જિનકી પૂર્ણ નહીં હોતી વે અપર્યાસ કહલાતે હૈં । યે અસંજી હી હોતે હૈં । હસી પ્રકાર દ્વીન્દ્રિય ત્રીન્દ્રિય ચતુરિન્દ્રિય-વિકલત્રય જીવ તથા સંજી પંચેન્દ્રિય ઓર અસંજી પંચેન્દ્રિય જીવ મી પર્યાસ ઓર અપર્યાસ હોતે હૈં । વિકલેન્દ્રિય ત્રીન અસંજી હી હોતે હૈં, ઇનકે મન નહીં હોતા । હસ પ્રકાર યે સાતોં પ્રકારકે જીવ પર્યાસ ઓર અપર્યાસકે ભેદસે ચૌદહ પ્રકારકે હોતે હૈં । જો અસંયમી જીવ કિસી પ્રયોજનવશ યા વિના કિસી પ્રયોજનકે ઇનકી વિરાધના કરતા હૈ વહ ઇન્હીં જીવોં મેં અનેક પ્રકાર કી પર્યાયોં કો ધારણ કરતા હૈ । સૂક્ષ્મ એકેન્દ્રિય જીવોં કી ન કિસી દ્વારા ઘાત હોતી હૈ ન ઇનકે દ્વારા કિસીકી ઘાત હોતી હૈ, ફિર મી મનકી દુષ્પરિણતિ સે હિંસા હોતી હૈ । હસ કારણ ટીકાકારને જીવકે ચૌદહ ભેદોં મેં ઇનકા યહાં નિર્દેશ કિયા હૈ । અથવા-ઇન જીવોંકી જો જિસ જિસ રૂપસે વિરાધના કરતા હૈ વહ ઇન જીવોં કી વિરાધના સે હોનેવાલે કર્મબન્ધકે કારણ ઇનહી જીવનિકાયોં મેં જન્મ ધારણ કર ઁસી ઁસી પ્રકારસે અનેક દુઃખોં કા અનુભવ કરતા હૈ ।

વિશેષાર્થ:—એકેન્દ્રિય જીવ સૂક્ષ્મ અને વાદરના ભેદથી બે પ્રકારે છે. તેઓ પર્યાસ અને અપર્યાસ છે. પોતપોતાની યોગ્ય પર્યાસિ બે જીવોની સંપૂર્ણ થાય છે તે પર્યાસ અને જેમની પર્યાસિ પુરી નથી થતી તે અપર્યાસ કહેવાય છે. આ જીવો અસંજી હોય છે, આ પ્રકારે બે-ઇન્દ્રિય જીવ, ત્રણ-ઇન્દ્રિય જીવ ચાર-ઇન્દ્રિય જીવ, આ ત્રણ વિકલેન્દ્રિય જીવો, તથા સંજી-પંચેન્દ્રિય અને અસંજી-પંચેન્દ્રિય જીવ પણ પર્યાસ અને અપર્યાસ હોય છે. વિકલેન્દ્રિય ત્રણ અસંજી જ હોય છે. તેને મન નથી હોતું. આ રીતે આ સાતે પ્રકારના જીવ પર્યાસ અને અપર્યાસના ભેદથી ચૌદ પ્રકારે થાય છે, જે અસંયમી જીવો કોઈ પણ પ્રયોજનવશ અથવા તો પ્રયોજન વગર તેની વિરાધના કરે છે તેઓ તે જીવોમાં અનેક પ્રકારની પર્યાસિને ધારણ કરે છે. સૂક્ષ્મ એકેન્દ્રિય જીવોની ન કોઈનાથી ઘાત થાય છે અને તે જીવો દ્વારા પણ કોઈની ઘાત થઈ શકતી નથી, તો પણ માત્ર મનની દુષ્પરિણતિથી હિંસા થાય છે, આ કારણે ટીકાકારે જીવના ચૌદ ભેદોમાં તેઓનો અહીં નિર્દેશ કરેલ છે. અથવા તે જીવોની જે જે પ્રકારે વિરાધના કરે છે તેઓ તે જીવોની વિરાધનાથી થનારા કર્મબંધને કારણે તે જીવનિકાયોમાં જન્મ ધારણ કરી તેવા તેવા પ્રકારે અનેક દુઃખોનો અનુભવ કરે છે.

કિમર્થ સાવધવ્યાપારાન્ કરોતીત્યાહ ‘ગુરવઃ’ इत्यादि । तस्य=नरकनिगोदादि-  
कटुफलानभिज्ञस्य गुंसः कामाः शब्दादिविषया गुरवः=अनतिक्रमणीया दुस्त्यजतया  
लङ्घयितुमनर्हा इत्यर्थः, यो यस्यानतिक्रमणीयः स तस्य गुरुर्भवतीति तात्पर्यम्,  
यतः शब्दादयो दुस्त्यजा अनस्तत्प्राप्तये पट्टकायोपमर्दनप्रवृत्तः स गुरुकामः पाप-  
मुपचिनोतीति भावः । पापोपचयाच्च किमित्याह—‘ततः’ इत्यादि, ततः=पङ्जी-  
वनिकायघातानन्तरं गुरुकामानन्तरं च स=गुरुकामी ‘मारान्तः’ मरणं मारः=

जीव इन सावध व्यापारोंको क्यों करता है ? इसका उत्तररूप  
“गुरवस्तस्य कामाः” यह वाक्य सूत्रकार कहते हैं । इसमें वे बतलाते हैं  
कि उसकी इच्छाएं प्रबल हैं । हिंसादिक सावध व्यापारों के करने में  
उसे शब्दादिविषयक इच्छाएँ निमित्त होती हैं । इन इच्छाओंके अधीन  
बना हुआ संसारी जीव सावध व्यापारों को करता हुआ “नरकनिगो-  
दादिक के दुःखों को हमें सहन करना पड़ेगा” इस प्रकारके भयसे  
निर्मुक्त रहा करता है । बात भी सच है—जिन्हें सावध व्यापारोंके फल-  
स्वरूप नरकनिगोदादिक के भयंकर दुःखोंके सहन करनेका कुछ भी  
विचार नहीं है ऐसे अज्ञानी प्राणियोंकी शब्दादिविषयक इच्छाएँ  
बलिष्ठ हों तो इस में आश्चर्यकी बात ही कौनसी है ? । उन प्रकारकी  
इच्छाओंका अधीन जीव इस लिये होता है कि वह उन्हें अज्ञानसे  
दुस्त्यज मान बैठा है । जिसका छोड़ना जिसे अशक्य होता है वह विषय  
उसे भारी मालूम देता है । अज्ञानी जीव शब्दादिक विषयोंको दुस्त्यज

જીવ આવાં સાવધ વ્યાપાર શા માટે કરે છે ? તેના ઉત્તરમાં “ગુરવસ્તસ્ય  
કામાઃ” આ વાક્ય સૂત્રકાર કહે છે. એમાં તેમણે બતાવ્યું છે કે એમની ઇચ્છાઓ  
પ્રબળ છે. હિંસાદિક પાપ કામો કરવામાં તેઓને શબ્દાદિવિષયક ઇચ્છાઓ  
નિમિત્ત બને છે. આ ઇચ્છાઓને આધીન બનેલા સંસારી જીવ સાવધ વ્યાપારો  
કરતાં કરતાં ‘નરક નિગોદાદિકનાં દુઃખ અમારે ભોગવવાં પડશે’ આવા પ્રકારના ભયથી  
નિર્મુક્ત રહ્યા કરે છે. વાત પણ સાચી છે, જેઓને પાપાદિ વ્યાપારોના કળસ્વરૂપ  
નરકનિગોદાદિકનાં ભયંકર દુઃખો સહન કરવાં પડશે એવો ખ્યાલ નથી એવા  
અજ્ઞાની પ્રાણીઓની શબ્દાદિવિષયક ઇચ્છાઓ ભરદ્વાર હોય તો તેમાં કોઈ આશ્ચ-  
ર્યની વાત નથી. આવી ઇચ્છાઓને આધીન થયેલા જીવો ‘આ તો શકાય તેવું  
કાર્ય નથી’ એવું તે અજ્ઞાનથી માની બેઠા હોય છે. જેનું છોડવું જેઓને માટે  
અશક્ય હોય છે તે વિષય તેઓને મનભારે કઠીન લાગતો હોય છે. અજ્ઞાની  
શબ્દાદિક વિષયોને નહીં તજવાબેગ સમજે છે, એટલા માટે અસંયમિત જીવી



સમજાતે હૈં, ઇસ લિયે અસંયમિત જીવ બન વે ઊન ૨ વૈષયિક ઇચ્છાઓં  
કી પૂર્તિ કરનેકે લિયે ષટ્કાયકે જીવોં કા ઉપમર્દન કરતે હુણ પાપોં કા  
ઉપાર્જન ઓર વર્ધન કરતે રહતે હૈં । ઇસ પ્રવૃત્તિ સે વે “મારાન્તઃ” જન્મ  
મરણ કે ચક્કરસે નહીં છૂટતે હૈં । “મરણં-મારઃ-આયુષો વિનાશઃ” ।  
‘માર’ શબ્દકા અર્થ આયુકા અંત-મરણ હૈ । વે જીવ ઇસકે ખીતર હી  
રહતે હૈં, ઇસસે પરે નહીં હોતે હૈં । પરે હોનેકે સાધનોં સે વે રિક્ત-રહિત  
હૈં । જન્મ-મરણ કે સાધનોં મેં હી જુટે હુણ હૈં । હિંસાદિક પાપ કર્મોં સે  
અથવા અપની વૈષયિક ઇચ્છાઓં કે અનુસાર પ્રવૃત્તિ કરનેસે સંસાર મેં  
કિસી ખી પ્રાણીકા જન્મ-મરણરૂપ બંધન નહીં છૂટા હૈ; ન છૂટેગા ઓર ન  
છૂટતા હી હૈ । જન્મ-મરણકા અભાવ ઊસી જીવકો હોતા હૈ કિ જિસ  
કા ભવાન્તરોપગ્રાહિ કર્મ નષ્ટ હો ચુકા હૈ । ઇસ કર્મ કો નષ્ટ કરનેકે  
લિયે ઇન્દ્રિયોં પર વિજય પ્રાપ્ત કરનેકી ઇવં સંયમિત જીવનકે આરાધનકી  
આવશ્યકતા હૈ । ઇસસે વિપરીત પ્રવૃત્તિ મેં યહ કર્મ ગુરુતર બંધતા હૈ,  
જો જીવકો બારંબાર જન્મ-મરણકે ચક્કરમેં ઢાલતા રહતા હૈ “જાતસ્ય  
હિ ધ્રુવો મૃત્યુર્ધુવં જન્મ મૃતસ્ય ચ” યહ સિદ્ધાંત હૈ । જિસકા જન્મ હૈ  
ઊસકા મરણ હૈ જિસકા મરણ હૈ ઊસકા જન્મ હૈ । ઇસી સમસ્ત અભિ-

બની તેઓ તે તે વૈષયિક ઇચ્છાઓની પૂર્તિ કરવા માટે છ પ્રકારના જીવોની હિંસા  
કરે છે અને તેથી થતું પાપ ઉપાર્જન કરે છે અને તેમાં વધારો કરતા રહે છે.  
આવી પ્રવૃત્તિથી તેઓ “મારાન્તઃ” જન્મ મરણનાં ચક્કરમાંથી છૂટી શકતા  
નથી. “મરણં-મારઃ-આયુષો વિનાશઃ” । ‘માર’ શબ્દનો અર્થ આયુષ્યનો અંત-  
મરણ છે, તે જીવ એની અંદર જ રહે છે. એનાથી છૂટા પડી શકતા નથી, છૂટા  
થવાના સાધનોથી તે ખૂબ દૂર છે, જન્મ-મરણના સાધનો સાથે જ સંકળાયેલા  
રહે છે, હિંસાદિક પાપપ્રવૃત્તિનાં કર્મોથી અથવા પોતાની વૈષયિક ઇચ્છાઓ અનુ-  
સાર પ્રવૃત્તિ કરવાથી સંસારમાં કોઈપણ પ્રાણી જન્મ-મરણના બંધનથી છૂટ્યા  
નથી, ન તો છૂટી શકશે, અને ન છૂટે છે. જન્મ-મરણનો અભાવ તે જીવને જ  
થાય છે કે જેના ભવાન્તરોપગ્રાહિ કર્મો નાશ થયેલાં હોય છે. આ કર્મોના નાશ  
કરવા માટે ઇન્દ્રિયો ઉપર વિજય પ્રાપ્ત કરવાની અને સંયમિત જીવનનું આરા-  
ધન કરવાની આવશ્યકતા છે. આનાથી વિપરીત પ્રવૃત્તિમાં આ કર્મ ગુરુતર  
બંધાય છે જે જીવને વારંવાર જન્મ-મરણના ચક્કરમાં લઇ જાય છે. “જાતસ્ય  
હિ ધ્રુવો મૃત્યુર્ધુવં જન્મ મૃતસ્ય ચ” એ સિદ્ધાંત છે. જેનો જન્મ છે તેનું મરણ  
છે જેનું મરણ છે તેનો જન્મ પણ છે. આ બધા અભિપ્રાયને હૃદયમાં રાખીને

આયુષો વિનાશસ્તસ્ય અન્તઃ=મધ્ય એવ વરીવર્તિ, મૃતો હિ પુનર્ભવાન્તરોપગ્રાહિકર્મ-સદ્ભાવાદુત્પદ્યત એવ, જાતોઽપિ પુનર્ભવાન્તરકર્મસત્ત્વાન્નિયત એવેતિ, સંસારે મજ્જ-નોન્મજ્જનમાસાદયત્યેવેત્યર્થઃ । યદ્વા મારઃ=કર્મ સંસારો વા, તસ્યાન્તર્વર્તી સંભૂયો જન્મમરણાદિકં લભત એવેતિ, ઉક્તં ચ-

‘માં મારયતે યસ્માન્મમારિભૂતશ્ચ મારયતિ વાન્તઃ ।

અનુસમયં મરણાદપિ, કર્મ ભવો વા ભવેન્મારઃ ॥ ” ઇતિ ।

પ્રાય કો હૃદયમેં રગ્વકર ટીકાકાર કહતે હૈં કિ—“ મૃતો હિ પુનર્ભવાન્તરોપગ્રાહિકર્મસદ્ભાવાત્ ઉત્પદ્યત એવ, જાતોઽપિ પુનર્ભવાન્તરકર્મસત્ત્વાત્ નિયત એવ ” ।

ઠીક હી હૈ, મૃત આત્માકી ભવાન્તરોપગ્રાહી કર્મ કે સદ્ભાવસે પુનઃ ઉત્પત્તિ, ઓર ઉત્પન્ન હુએ કા ઉસી કર્મકે સદ્ભાવસે મરણ હોતા હૈ । અથવા —‘ માર ’ શબ્દકા અર્થ સામાન્ય કર્મ યા સંસાર હૈ । અસંયમી જીવ વૈષ-યિક સુખ કે વશવર્તી હો કર કર્મોં કા આસ્રવ કરતે હૈં ઓર બારંબાર જન્મમરણજન્ય દુઃખોં કો શીલતે રહતે હૈં, કહાંબી હૈ—

“માં મારયતે યસ્માન્મમારિભૂતશ્ચ મારયતિ વાન્તઃ ।

અનુસમયં મરણાદપિ, કર્મ ભવો વા ભવેન્મારઃ ” ॥૧॥

માર શબ્દકી વ્યુત્પત્તિપ્રદર્શક ઇસ પદ્યસે યહી બાત ટીકાકારને પ્રદર્શિત કી હૈ । ઇસમેં માર-શબ્દકા અર્થ કર્મ યા સંસાર બતલાયા હૈ । જો જિસકી હિંસા કરતા હૈ વહ ઉસકા વૈરી હોતા હૈ, વૈરભાવસે સંસારકા

ટીકાકાર કહે છે કે—“ મૃતો હિ પુનર્ભવાન્તરોપગ્રાહિ-કર્મસદ્ભાવાત્ ઉત્પદ્યતે એવ, જાતોઽપિ પુનર્ભવાન્તરકર્મસત્ત્વાત્ નિયતે ” ।

ઠીક જ છે, મૃત આત્માની ભવાન્તરોપગ્રાહિ કર્મના સદ્ભાવથી ફરીથી ઉત્પત્તિ, અને ઉત્પન્ન થયેલાનું તે જ કર્મના સદ્ભાવથી મરણ થાય છે. અથવા ‘માર’ શબ્દનો અર્થ સામાન્ય કર્મ અગર સંસાર છે, અસંયમી જીવો વૈષ-યિક સુખોને વશ બની કર્મોનો આસ્રવ કરે છે અને વારંવાર જન્મ-મરણનાં દુઃખોને ભોગવતા રહે છે. કહ્યું પણ છે—

“માં મારયતે યસ્માન્મમારિભૂતશ્ચ મારયતિ વાન્તઃ ।

અનુસમયં મરણાદપિ, કર્મ ભવો વા ભવેન્મારઃ ॥ ”

ટીકાકારે એ જ માર શબ્દની વ્યુત્પત્તિપ્રદર્શક વાત આ પદ્યથી પ્રદર્શિત કરી છે. આમાં ‘માર’ શબ્દનો અર્થ કર્મ અથવા સંસાર બતાવવામાં આવેલ છે.

મારાન્તર્વર્તનેનાપિ કિં તસ્યેત્યાહ-‘યત.’ इत्यादि, यतो=यस्मात् सः=कामगुरुको मारान्तः=मुहुर्मुहुर्भवोपग्राहिकर्मान्तर्वर्ती मरणान्तर्वर्ती वा ततः=तस्मात् हेतोः सः दूरे =रत्नत्रयात्तत्कार्यभूतमोक्षाच्चदूरवर्ती भवतीत्यर्थः । यद्वा-सुखमिच्छन् हि कामान् सेवते, तत्सेवनाच्च मारान्तर्वर्तते, मारान्तर्वर्तनाद् हि जन्मजरामरणरोगशोकव्याकुलो मोक्षसुखाद् एव तिष्ठतीति तात्पर्यम् । यतोऽयं मारान्तर्वर्ती तस्मात् सः=गुरुकामसेवी नैव अन्तः=शब्दादिविषयसुखस्य मध्ये नैव वर्तते, अद्यापि तत्स्पृहासमुल्लासेनानवाप्तेष्ट-विषयस्य विषयसुखज्ञानयुक्तस्य तस्य तत्तृप्त्यनुभवाभावमायत्वात्, नैव स दूरे=तस्माद्विषयसुखाद्विरम्य दूरवर्ती नैव भवति, तदभिलाषस्यापरित्यागादिति ।

वर्धन होता है और इस वृद्धिसे वे दोनों परस्पर हिंस्य-हिंसक बनते रहते हैं ।

જો મારાન્તર્વર્તી છે અથવા વૈષયિક ઇચ્છાઓં કે પરાધીન છે વહ અસંયમી જીવ રત્નત્રયરૂપ ધર્મસે, અથવા ઉસકે કાર્યભૂત મોક્ષસે મી દૂરવર્તી છે । યહી બાત સૂત્રકારને “યતઃ સ મારાન્તસ્તતઃ સ દૂરે” ઇસ વાક્યસે પ્રદર્શિત કી છે । તાત્પર્ય યહ છે કિ રત્નત્રયરૂપ ધર્મ અથવા ઉસકે કાર્યભૂત મોક્ષ પ્રાપ્ત કરનેકે લિયે વૈષયિક ઇચ્છાઓં પર વિજય પ્રાપ્ત કરના હોતા છે । જબ તક પ્રાણી ઇચ્છાઓં કે અધીન બના રહતા છે તબ તક મુક્તિ કા માર્ગ સદા ઉસસે દૂર રહતા છે । ઇચ્છાઓં કા નિરોધ મોક્ષાભિલાષીકે લિયે ઇસ લિયે બતલાયા છે કિ ઇસ પ્રકારકી પ્રવૃત્તિ સે ઉસકી આત્મામેં એક પ્રકારકી અપૂર્વ શક્તિકી જાગૃતિ હોતી છે, જો ઇસે કર્મક્ષય કરનેમેં વિશેષ સહાયક હોતી છે । મીરુ વ્યક્તિ કર્મોં કે સાથ

વેરભાવથી ‘સંસારનું’ વર્ધન થાય છે અને આથી તે બંને પરસ્પર હિંસ્ય અને હિંસક બનતા રહે છે.

જે મારાન્તર્વર્તી છે અથવા વૈષયિક ઇચ્છાઓંને આધીન છે તે અસંયમી જીવ રત્નત્રયરૂપ ધર્મથી અથવા તેના કાર્યભૂત મોક્ષથી પણ દૂર ને દૂર રહે છે. આ જ વાત સૂત્રકારે “યતઃ સ મારાન્તસ્તતઃ સ દૂરે” આ વાક્યથી પ્રદર્શિત કરી છે, તાત્પર્ય એ છે કે-રત્નત્રયરૂપ ધર્મ અથવા તેના કાર્યભૂત મોક્ષ પ્રાપ્ત કરવા માટે વૈષયિક ઇચ્છાઓં ઉપર વિજય પ્રાપ્ત કરવો જોઈએ. જ્યાં સુધી પ્રાણી ઇચ્છાઓંને આધીન બની રહે છે ત્યાં સુધી મુક્તિનો માર્ગ સદાને માટે તેનાથી દૂર રહે છે. ઇચ્છાઓંનો નિરોધ મોક્ષાભિલાષી માટે આ કારણથી બતાવવામાં આવેલ છે કે-આવા પ્રકારની પ્રવૃત્તિથી તેના આત્મામાં એક પ્રકારની અપૂર્વ શક્તિની જાગૃતિ થાય છે, અને તે કર્મક્ષય કરવામાં વિશેષ સહાયક બને છે.



સંગ્રામ નહીં કર સકતે । જો ઇન્દ્રિયોં કે દાસ હૈં વે હી મુક્તિમાર્ગ મેં  
 भीरु हैं । आत्मामें जो समय २ पर विषयोंकी अप्राप्ति से अशान्तिरूप  
 संताप हो जाता है उसका वैषयिक इच्छाओं के दमन से सर्वथा अभाव  
 हो जाता है । इस अभावकी प्रकर्षता की वृद्धि से आत्मा मुक्तिमार्गका  
 सच्चा आराधक बन जन्म मरणके दुःखों से सदाके लिये छुटकारा पा  
 जाता है । इसी लिये सूत्रकारने यहाँ पर मुक्तिमार्गसे दूर रहने में असं-  
 यमीके लिये इसे कारण बतलाया है । अथवा—जीव जब इन्द्रियों के  
 अधीन होता है तभी तो वह मारान्तर्वर्ती होता है । कभी भी उसकी  
 इस प्रकारकी प्रवृत्ति से भवोपग्राही कर्म का, अथवा उसके संसार का  
 अभाव नहीं होता; प्रत्युत उसे उनके अन्तर्वर्ती ही रहना पड़ता है, अतः  
 मुक्तिका मार्ग और मुक्ति सदा उससे दूर रहती है ।

भावार्થ—સંસારી જીવ સુખ પ્રાપ્ત કરનેકી અભિલાષાસે વિષયોંકો  
 भांगता है । उससे वह मारान्तर्वर्ती होता है । मारान्तर्वर्ती होनेसे वह  
 जन्म, जरा, मरण, रोग और शोकसे व्याकुल होता रहता है फिर  
 उसे मोक्षसुखकी प्राप्ति कैसे हो सकती है ? 'मोक्षसुखकी प्राप्तिके लिये  
 रत्नत्रय धर्म की आराधना आवश्यक है । इस आराधना से तो वह

ભીરુ પ્રાણી કર્મોની સાથે લડી શકતો નથી. જે ઇન્દ્રિયોનો દાસ છે તે જ મુક્તિ  
 मार्गમાં भीरु છે, આત્મામાં જે समय समय पर विषयોની अप्राप्तिથી अशान्ति-  
 रूप संताप થઈ જાય છે તેનો वैષયિક ઇચ્છાઓના દમનથી સર્વથા અભાવ  
 થઈ જાય છે. આ અભાવની પ્રકર્ષતાની વૃદ્ધિથી આત્મા મુક્તિમાર્ગનો સાચો  
 આરાધક બની જન્મ મરણનાં દુઃખોથી સદાને માટે છુટકારો મેળવે છે. તેટલા  
 માટે સૂત્રકારે આ જગ્યાએ મુક્તિમાર્ગથી દૂર રહેવામાં અસંયમી જીવો માટે  
 તેને કારણ બતાવેલ છે. અથવા જ્યારે જીવ ઇન્દ્રિયોને આધીન થાય છે ત્યારે  
 તે મારાન્તર્વર્તી થાય છે. ક્યારેય પણ તેની આવા પ્રકારની પ્રવૃત્તિથી ભવોપગ્રાહી  
 કર્મોનો અથવા તેને સંસારનો અભાવ થતો નથી, પરંતુ તેને તેના વશ રહેવું  
 પડે છે, તેથી મુક્તિનો માર્ગ અને મુક્તિ સદા તેનાથી દૂર રહે છે.

ભાવાર્થ:—સંસારી જીવ સુખ પ્રાપ્ત કરવાની અભિલાષાથી વિષયનો ભોક્તા  
 બને છે, એથી કરી તે મારાન્તર્વર્તી બની રહે છે. મારાન્તર્વર્તી બનવાથી તે જન્મ,  
 જરા, મરણ, રોગ અને શોકથી વ્યાકુળ થતો રહે છે તો કરી તેને મોક્ષસુખની  
 પ્રાપ્તિ કેવી રીતે બને ? મોક્ષસુખની પ્રાપ્તિને માટે રત્નત્રય ધર્મની આરાધના  
 થવી આવશ્યક છે. આ આરાધનાથી તો તે હજી પણ વંચિત બની રહેલ છે,

અभी તક भी वंचित बना हुआ है अत एव—‘ नैव सोऽन्तर्नैव दूरे ’  
अर्थात्—यह जीव जिस वजहसे मारान्तर्वर्ती है इसी लिये गुरु-  
कामसेवी है । जब ऐसी वस्तुस्थिति है तो वह गुरुकामसेवी असंयमी  
जीव शब्दादिकविषयजन्य सुखोंके मध्यवर्ती तक भी नहीं है, क्यों  
कि अभी तक भी विषयजन्य सुखका अनुभव करनेवाला उसका ज्ञान  
एक तरहसे अभावरूप ही है । मध्यवर्ती तो तब वह माना जाता जब  
कि वैषयिक सुखों का अनुभव करते २ वह उनकी तृप्तिरूप पूर्णताके  
अनुभवके कुछ निकट आ जाता । पूर्णता के निकट तक आया हुआ वह  
इस लिये नहीं कहा या माना जा सकता कि अभी तक उसे इष्टवैषयिक  
सुखोंके भोगने की स्पृहा का समुद्रास जो हो रहा है । जब तक उसे  
इष्ट विषयकी प्राप्ति नहीं होती है तब तक वह महा आकुलित रहा  
करता है । आकुलता में वैषयिकतृप्तिजन्य सुखकी प्राप्ति भी उसे नहीं  
होती है, अतः उसका ज्ञान इष्ट विषयकी प्राप्तिसे अभावसे वैषयिक  
सुखानुभव से शून्य जैसा ही बना हुआ रहता है । यह मानी हुई बात  
है कि विषयोंसे तृप्ति जीवों को कभी नहीं होती है, एक के बाद एक  
विषयको भोगने की लालसा प्रतिक्षण उत्पन्न होती रहती है । जब यह  
हालत है तो फिर उसको तृप्तिरूप विषयभोगजन्य सुखकी पूर्णता कैसे

માટે જ—“ નૈવ સોઽન્તર્નૈવ દૂરે ” અર્થાત્—આ જીવ જે માટે મારાન્તર્વર્તી  
છે તે માટે ગુરુકામસેવી છે. જ્યારે આ પ્રકારની વસ્તુસ્થિતિ છે તો તે ગુરુકામ-  
સેવી અસંયમી જીવ શબ્દાદિકવિષયજન્ય સુખોના મધ્યવર્તી સુધી પણ નથી,  
કારણ કે હજી સુધી વિષયજન્ય સુખનો અનુભવ કરવાવાળું તેનું જ્ઞાન એક પ્રકારે  
અભાવરૂપ જ છે. મધ્યવર્તી તો તેને ત્યારે માનવામાં આવે કે જ્યારે વૈષયિક  
સુખોનો અનુભવ કરતાં કરતાં તે તેની તૃપ્તિરૂપ પૂર્ણતાના અનુભવની જરા નજીક  
આવે. પૂર્ણતાની નજીક આવેલ છે એમ તેને ન કહી શકાય કે માની શકાય,  
કારણ કે તેને હજી સુધી ઇષ્ટ વૈષયિક સુખોને ભોગવવાની સ્પૃહાનો સમુદ્રાસ  
રહે છે. જ્યાં સુધી તેને ઇષ્ટ વિષયની પ્રાપ્તિ નથી થતી ત્યાં સુધી તે પોતે મહા  
આકુલ રહે છે. આકુલતામાં તેને વૈષયિકતૃપ્તિજન્ય સુખની પ્રાપ્તિ પણ થતી  
નથી. આથી તેનું જ્ઞાન ઇષ્ટ વિષયની પ્રાપ્તિના અભાવથી વૈષયિક સુખાનુભવથી  
શૂન્ય જેવું બની રહે છે. આ સિદ્ધ થયેલી વાત છે કે વિષયોથી જીવોને તૃપ્તિ  
કદી પણ થતી નથી, એક પછી એક વિષયને ભોગવવાની લાલસા ક્ષણે ક્ષણે  
ઉત્પન્ન થતી જ રહે છે. જ્યારે આ હાલત છે ત્યારે તેને તૃપ્તિરૂપી વિષયભોગ-

મિલ સકતી છે ? જ્યારે આ પ્રકારની પૂર્ણતાના અનુભવ જીવકો નહીં હોતા છે તો વહ જીવ વિષયસુખોનો ભોગવતાં ૨ અને મધ્યદેશ તક પ્રાપ્ત હો ચુકા છે, યહ કેસે માના જા સકતા છે ? ક્યોં કિ વહ તો અમી તક મી અપને કો વિષયસુખોં કે ભોગવેના પ્રારંભક હી માનતા છે, અતઃ ઉસકે જ્ઞાનમેં વૈષયિક તૃપ્તિકે અનુભવકા અભાવ સા હી કલકતા રહતા છે । ઉસકા જ્ઞાન જ્યારે તૃપ્તિ કી પૂર્ણતા સે હી સર્વથા વંચિત હો રહા છે તો વહ ઉસ તૃપ્તિ કે મધ્યતક પહુંચા હુઆ કેસે માના જા સકતા છે । ઉસમેં તો અમી વૈષયિક સુખોં કો ભોગવેના પ્રારંભક દશાકા હી માન હો રહા છે । યહી વાત ટીકાકારને “અદ્યાપિ તત્સ્પૃહાસમુદ્ધાસેન અનવાપ્તેષ્ટવિષયસ્ય વિષયસુખજ્ઞાનયુક્તસ્ય તસ્ય તત્તૃપ્ત્યનુભવાભાવપ્રાયત્વાત્” ઇન પંક્તિયોં મેં પ્રદર્શિત કી છે । અર્થાત્ અમી તક વિષયસુખોં કી ઇચ્છાકે સમુદ્ધાસ સે, ઇષ્ટ વિષયકી પ્રાપ્તિ સે રહિત વિષયસુખજન્ય જ્ઞાનસે યુક્ત ઉસ જીવકો વૈષયિક તૃપ્તિકે અનુભવ કી શૂન્યતા જૈસી છે, ઇસ લિયે વહ વૈષયિક સુખકે મધ્યવર્તી નહીં છે । વહ ગુરુકામસેવી વિષયસુખસે વિરક્ત હો કર ઉસસે દૂર મી નહીં હોતા છે, ક્યોં કિ અમી તક મી જો ઉસકે ઉનકે સેવનકી અભિલાષા બની હુઈ છે ।

જન્ય સુખની પૂર્ણતા કેવી રીતે મળી શકે ? જ્યારે આ પ્રકારની પૂર્ણતાનો અનુભવ જીવને થતો નથી તો પછી તે જીવ વિષયસુખોને ભોગવતાં ભોગવતાં તેના મધ્ય ભાગ સુધી પહોંચી ચુકેલ છે એ કેમ માની શકાય ? કારણ કે તે તો હજી સુધી પોતાને વિષયસુખો ભોગવવાનો પ્રારંભક જ માને છે, માટે તેના જ્ઞાનમાં વૈષયિક તૃપ્તિના અનુભવનો અભાવ જ જોવામાં આવે છે. એવું જ્ઞાન જ્યારે તૃપ્તિની પૂર્ણતાના અનુભવથી જ વંચિત રહેલ છે ત્યારે એને તૃપ્તિના મધ્ય સુધી પહોંચેલ છે એવું કંઈ રીતે માનવામાં આવે, તેમાં તો હજી વૈષયિક અંખો ભોગવવાની પ્રારંભક દશા ભાસી રહેલ છે. આ વાત ટીકાકારે “અદ્યાપિ તત્સ્પૃહાસમુદ્ધાસેન અનવાપ્તેષ્ટવિષયસ્ય વિષયસુખજ્ઞાનયુક્તસ્ય તસ્ય તત્તૃપ્ત્યનુભવાભાવપ્રાયત્વાત્” આ પંક્તિઓમાં પ્રદર્શિત કરેલ છે, અર્થાત્ હજી સુધી વૈષયિક સુખોની ઇચ્છાના ઉદ્ધાસથી ઇષ્ટ વિષયની પ્રાપ્તિથી રહિત વિષયસુખજન્ય જ્ઞાનથી યુક્ત તે જીવને વૈષયિક તૃપ્તિના અનુભવની ખામી દેખાઈ આવે છે, આ કારણે તે વૈષયિક સુખનો મધ્યવર્તી નથી, અને તે ગુરુકામસેવી વિષયસુખથી વિરક્ત બની તેનાથી દૂર પણ થઈ શકતો નથી, કારણ કે હજી તેના દિલમાં વિષયસેવનની અભિલાષા ભરી પડી છે.



અથવા યશ્વાર્પૂર્વકરણેન ભિન્નગ્રન્થિકો ગુરુકામી સર્કિ કર્મણો મધ્યે વર્તતે વહિ-  
ર્વેતિ શિષ્યજિજ્ઞાસાયમાહ—‘નૈવ’ત્યાદિ। સઃ નૈવ અન્તઃ=કર્મણો મધ્યે ન વર્તતે તસ્ય  
ગ્રન્થિભેદેન કર્મક્ષયોપપત્તેરવશ્યમ્ભાવિત્વાત્, નૈવ=નાપિ દૂરે-દેશોનકોટિકોટી-  
કર્મસ્થિતિકત્વાત્ ।

અથવા—“ નૈવ સોઽન્તનૈવ દૂરે ” ઇસકા યહ મી અર્થ હોતા હૈ—  
અર્પૂર્વકરણ સે જિસને રાગદ્વેષરૂપી ગ્રન્થિ ( ગાંઠ ) કા ભેદ કર દિયા હૈ  
વહ અવિરતસમ્યગ્દષ્ટિ જીવ મી ગુરુકામસેવી હૈ, ક્યોં કિ અમી તક  
મી ઉસકે કિસી મી પ્રકારકા સંયમ નહીં હૈ, અતઃ ઇસ અવસ્થામેં  
શિષ્ય ગુરુદેવસે પ્રશ્ન કરતા હૈ કિ ઉસ સમ્યગ્દષ્ટિ જીવકો કર્મ કે મધ્ય  
મેં સ્થિત માનના ચાહિયે યા કર્મસે બાહિર રહનેવાલા માનના ચાહિયે ? ।  
ઇસ પ્રકારકી શિષ્યકી આશંકા કા સમાધાન ઇન પંક્તિયોં મેં સૂત્રકારને  
કિયા હૈ, વે કહતે હૈં—ઉસે કર્મકે મધ્યવર્તી ઇસ લિયે નહીં માનના  
ચાહિયે કિ ઉસકે ગ્રન્થિકા ભેદ હો ચુકા હૈ ઓર ગ્રન્થિભેદ હોનેસે  
ઉસકે કર્મોંકા ક્ષય આગે અવશ્યમ્ભાવી હૈ । મધ્યવર્તી તો વહ જબ માના  
જા સકતા થા કિ વહ જીવ યદિ વહીં રહતા; પરન્તુ ઇસા તો હૈ નહીં,  
ક્યોં કિ ઉસકે કર્મોંકા ક્ષય નિયમસે હોગા । કર્મોં સે દૂર ઉસે ઇસ  
લિયે અમી નહીં માના જા સકતા હૈ કિ ઉસકે કુછ કમ અન્તઃકોટા-  
કોટીસાગરોપમ કર્મોં કી સ્થિતિકા સદ્ભાવ હૈ ।

અથવા—“ નૈવ સોઽન્તનૈવ દૂરે ” એનો એ પણ અર્થ થાય છે કે—અર્પૂર્વ-  
કરણથી જેણે રાગદ્વેષરૂપી ગાંઠને ભેદી નાખેલ છે તે અવિરતસમ્યગ્દષ્ટિ જીવ  
પણ ગુરુકામસેવી છે, કારણ કે હજી સુધી તેનામાં કોઈ પણ પ્રકારનો સંયમ  
નથી. આથી આ અવસ્થામાં શિષ્ય ગુરુદેવથી પ્રશ્ન કરે છે કે:—આ સમ્યગ્દષ્ટિ  
જીવને કર્મના મધ્યમાં સ્થિત માનવો કે, કર્મથી બહાર રહેવાવાળો માનવો  
જોઈએ ? આ પ્રકારની શિષ્યની આશંકાનું સમાધાન એ પંક્તિઓમાં સૂત્રકારે  
કરેલ છે, તે કહે છે કે—તેને કર્મનો મધ્યવર્તી એટલા માટે નહિ માનવો જોઈએ  
કે તેની પ્રાંથિનો ભેદ થઈ ચુકેલ છે, અને પ્રાંથિભેદ થવાથી એના કર્મોનો ક્ષય  
આગળ અવશ્ય થવાનો છે. મધ્યવર્તી તો એ ત્યારે મનાતો કે તે જીવ ત્યાં ને ત્યાં  
સ્થિર રહેતો, પરંતુ એવું તો છે જ નહિ; કારણ કે તેના કર્મનો ક્ષય નિયમથી  
થવાનો જ. કર્મથી દૂર તેને એ ખાતર નથી માનવામાં આવતો કે તેને થોડાં  
ઓછાં અંતઃકોટાકોટી સાગરોપમ કર્મોની સ્થિતિનો સદ્ભાવ રહેલ છે.

યદિ વા લબ્ધચારિત્રોઽપિ સઃ નૈવ અન્તઃ=કર્મણઃ સંસારસ્ય વા મધ્યે ન વર્તતે દ્વાદશકપાયદૂરવર્તિત્વાત્, નૈવ ચ દૂરે, ઉત્કર્ષતો મોક્ષગમનસ્ય સપ્તાષ્ટભવ-ગ્રહણાનતિક્રમણાત્ ।

યદ્વા-ય ઇમાં દ્વાદશાઙ્ગીમર્થરૂપેણ યદા પ્રરૂપિતવાન્ સ કિં તદા સંસારસ્યાન્તર્વહિર્વાઽઽસીદિતિજમ્બૂસ્વામિપ્રશ્નયુત્તરયતિ- ‘ નૈવે ’ —ત્યાદિ । સ તદા નૈવ અન્તઃ=સંસારમધ્યે વર્તતે સ્મ, તદાનીં ક્ષીણઘાતિકર્મચતુષ્ટય-ત્વાત્, નાપિ દૂરે=તદાનીમપિ અઘાતિકર્મણાં ચરમસમયાપેક્ષિતત્વાત્ ॥ સૂ. ૧ ॥

અથવા-લબ્ધચારિત્ર ખી વહ સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવ કર્મ ઓર સંસાર કે મધ્યવર્તી નહીં હૈ, ક્યોં કિ ઉસકે અનંતાનુબંધી આદિ બારહ પ્રકારકી કપાયોં કા અભાવ હો ચુકા હૈ । મોક્ષસે દૂરવર્તી હસલિયે નહીં હૈ કિ વહ ઉત્કૃષ્ટ સે સાત આઠ ભવમેં મુક્તિ કી પ્રાપ્તિ કર લેગા ।

અથવા—જિન્હોંને હસ દ્વાદશાંગરૂપ આગમકી અર્થરૂપસે પ્રરૂપણા કી હૈ વે ઉસ સમય સંસાર કે અન્તર્વર્તી થે યા બહિર્વર્તી ? હસ પ્રકાર કે શ્રી જમ્બૂસ્વામીકે પ્રશ્નકા ઉત્તર શ્રીસુધર્માસ્વામી દેતે હુણ કહતે હૈ—હસ દ્વાદશાંગરૂપ આગમકી અર્થરૂપસે પ્રરૂપણા કરનેવાલે તીર્થક્રાદિ પરમાત્મા ન તો સંસારકે મધ્યવર્તી થે ઓર ન સંસાર સે દૂર હી થે, ક્યોં કિ ઉનકે ઉસ સમય ચાર ઘાતિયા કર્મોં કા અભાવ હો ચુકા થા, હસ કિયે વે સંસારકે અન્તર્વર્તી નહીં થે, ઓર બાકીકે ચાર અઘાતિયા કર્મોં કા સદ્ભાવ થા હસલિયે ઉસ સમય વે સંસાર સે બહિર્વર્તી ખી નહીં થે ॥ સૂ. ૧ ॥

અથવા—લબ્ધચારિત્ર પણુ તે સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવ કર્મ તેમજ સંસારનો મધ્યવર્તી નથી, કેમકે તેને અનંતાનુબંધી આદિ બાર પ્રકારના કષાયોનો અભાવ થઈ ચુકેલ છે. મોક્ષથી દૂરવર્તી એ માટે નથી કે તે ઉત્કૃષ્ટથી સાત આઠ ભવમાં મુક્તિની પ્રાપ્તિ મેળવી લેશે.

અથવા—જેઓએ આ દ્વાદશાંગરૂપ આગમની અર્થરૂપથી પ્રરૂપણા કરેલ છે તેઓ તે સમયે સંસારને અન્તર્વર્તી હતા કે બહિર્વર્તી ? આ પ્રકારના શ્રી જમ્બૂસ્વામીજીના પ્રશ્નનો ઉત્તર શ્રી સુધર્માસ્વામી આપતાં કહે છે કે—આ દ્વાદશાંગરૂપ આગમની અર્થરૂપથી પ્રરૂપણા કરવાવાળા તીર્થક્રાદિ પરમાત્મા ન તો સંસારના મધ્યવર્તી હતા તેમ સંસારથી દૂર પણ ન હતા. કેમકે તેમને તે વખતે ચાર ઘાતી કર્મોનો અભાવ થઈ ચુકેલ હતો તેથી તેઓ સંસારના અન્તર્વર્તી ન હતા. અને બાકીના ચાર અઘાતિયા કર્મોનો સદ્ભાવ હતો, આ કારણે તે સમયે તેઓ સંસારથી બહિર્વર્તી પણ ન હતા. ( સૂ. ૧ )

યથ પ્રાપ્તસમ્યક્ત્વઃ સંસારસાગરતીરવર્તી સ કિં નિશ્ચિનોતિ ? इति दर्शयितुमाह  
-‘ से पासइ ’ इत्यादि ।

મૂલમ્—સે પાસઈ ફુસિયમિવ કુસગ્ગે પણુન્નં નિવડયં વા-  
एरियं, एवं बालस्स जीवियं मंदस्स अवियाणओ, कूराइं क-  
म्माइं बाले पकुव्वमाणे तेण दुक्खेण मूढे विप्परियासमुवेइ,  
मोहेण गब्भं मरणाइ एइ, एत्थ मोहे पुणो पुणो ॥सू० २॥

છાયા—સ પશ્યતિ પૃષદિવ કુશાગ્રે પ્રણુન્નં નિપતિતં વાતેરિતમ્, एवं बालस्य  
जीवितं मन्दस्याविजानतः, कूराणि कर्माणि बालः प्रकुर्वाणस्तेन दुःखेन मूढो  
त्रिपर्यासमुपैति, मोहेन गर्भं मरणाद्येति, अत्र मोहे पुनः पुनः ॥ सू० २ ॥

ટીકા—‘ સ પશ્યતિ ’ इत्यादि । सः=सम्यक्त्वमहिम्ना परिज्ञातसंसारसारोऽप-  
नीतमिथ्यात्वजवनिकः प्रणुन्नं=सन्ततपूर्वापरपुद्गलोपचयात् प्रेरितं वातेरितं=वातेन=  
वायुना ईरितं=कम्पितं सत् कुशाग्रे=दर्भाग्रे निपतितं नि=नियतमधिकं वा पतितं  
पृषदिव=बिन्दुं यथा पश्यति, तस्यातिस्तोकसमयमात्रस्थितिकत्वात्, एवं=तथैव

जिस जीवको सम्यक्त्व प्राप्त हो चुका है ऐसा जीव नियम से इस  
संसाररूपी सागरके तीरवर्ती ही माना गया है। इसकी विचारधारा कैसी  
होती है ? इस विषयको प्रकट करनेके लिये सूत्रकार सूत्र कहते हैं—  
‘ से पासइ ’ इत्यादि ।

મિથ્યાત્વરૂપી જવનિકા ( પહ્લદા ) કે અભાવ સે પ્રાપ્ત હુણ સમ્યક્ત્વ  
કે પ્રભાવ સે જિસને સંસારની અસારતા અચ્છી તરહ સે જાન લી હૈ એસા  
વહ સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ અજ્ઞાની પ્રાણીકે જીવન કો દર્ભ કી અનીપર પઢી  
હુઈ ઓસકી બિન્દુકે સમાન જાનતા હૈ । જિસ પ્રકાર દર્ભ કી અનીપર  
ઠહરી ઓસકી બિન્દુ અતિ ચશ્વલ હોતી હૈ, જરા સા મી પવન કા ઝાંકા

જે જીવોને સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત થઈ ચુકેલ છે તે જીવોને નિયમથી આ સંસાર-  
રૂપી સાગરનો તીરવર્તી માનવામાં આવેલ છે, તેની વિચારધારા કેવી હોય છે  
એ વિષયને પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે—“ સે પાસઈ ” ઇત્યાદિ.

મિથ્યાત્વરૂપી જવનિકા ( પહ્લદા ) ના અભાવથી પ્રાપ્ત થયેલ સમ્યક્ત્વના  
પ્રભાવથી જેણે સંસારની અસારતા સારી રીતે બહેલી છે, એવા તે સમ્યગ્દષ્ટિ  
જીવ અજ્ઞાની પ્રાણીના જીવનને દર્ભની અણી ઉપર પડેલા ઝાકળના બિંદુ સમાન  
માને છે. જે પ્રકારે દર્ભની અણી ઉપર પડેલા ઝાકળના બિંદુ અતિ ચંચળ હોય છે,



મન્દસ્ય=અલ્પજ્ઞસ્ય મૂઢસ્યેતિ યાવત્ અવિજાનતઃ=નરકનિગોદાદિકં કટુકફલં સોપક્રમાયુર્વાઽનવબુદ્ધ્યમાનસ્યાત એવં વાલસ્ય=હિતાહિતપ્રાપ્તિપરિહારાનભિજ્ઞસ્ય જીવિતં=જીવનં સોપક્રમાયુર્વાઽતિચન્નલં પશ્યતિ=જાનાતિ । પરમાર્થાનભિજ્ઞઃ કિં કુર્યાદિત્યાહ-‘ક્રૂરાણી’-તિ ક્રૂરાણિ=ઘાતુકાનિ કર્માણિ ગલકર્તનાદીનિ પ્રાણા તિપાતાદીન્યષ્ટાદશપ્રકારાણિ વા મનોવાક્કાયૈઃ પ્રકુર્વાણઃ=સમાચરન્ વાલઃ, તેન=પ્રાણાતિપાતાદિજનિતકટુકફલોત્પાદકેન દુઃસ્વેન=શારીરમાનસેન, દુઃસ્વજનકેન કર્મણા વા વિવિધયોનિષુ ભ્રામં ભ્રામં મૂઢઃ=તત્તદ્વૉપગ્રાહિકર્મજન્યકટુકફલાન-

ઉસે ક્ષણમાત્રમેં ભૂમિ પર ગિરા દેતા હૈ, વહ બહુત સમય તક વહાં સ્થિર નહીં રહ સક્તી, વહ તો બહુત હી થોડે સમય તક વહાં ઠહરતી હૈ । ઉસી પ્રકાર અજ્ઞાની કા જીવન ભી વાયુ કે તુલ્ય પૂર્વ ઓર અપર કાલ સમ્બન્ધી કર્મપુદ્ગલોસે સદા પ્રેરિત બના રહતા હૈ । જ્યોં હી હવાકે હલ્કે છોંકે સે દર્મ કે અગ્ર ભાગ પર સ્થિત ઓસબિન્દુકે સમાન આયુ-કર્મ કા અન્ત આ જાતા હૈ, યા કિસી શસ્ત્રઘાતાદિક કા નિમિત્ત મિલ જાતા હૈ તો હસે ભી વિનષ્ટ હોતે દેર નહીં લગતી । યહ ભી અસ્થિર ઓર ક્ષણિક હૈ । અજ્ઞાની કે જીવનકો દર્મ કી અની પર પડી હુઈ ઓસ કી બિન્દુકી ઉપમા હસ લિયે દી હૈ કિ જિસ પ્રકાર વહ અતિ ચન્નલ-અસ્થિર હૈ ઉસી પ્રકાર હસકા જીવન ભી, યાહે યહ કિસી ભી ગતિમેં રહે; સ્થિર નહીં હૈ । સર્વત્ર ક્ષણિકતા કા એકચ્છત્ર રાજ્ય છાયા હુઆ હૈ । યાહે યહ નરકગતિ મેં રહે, યાહે નિગોદ મેં રહે, યાહે કહીં ભી રહે; યહ સ્થિર નહીં ।

પવનનો જરા સરળો પણ અપાટો લાગતાં તે ક્ષણમાત્રમાં જમીન ઉપર ફેંકાઈ જાય છે, તે ત્યાં લાંબા સમય સુધી સ્થિર રહી શકતું નથી, માત્ર થોડા સમય સુધી જ તે ત્યાં ટકે છે. તે જ પ્રકારે અજ્ઞાનીનું જીવન પણ પવનસદૃશ પૂર્વ અને અપર-કાલ સંબંધી કર્મપુદ્ગલોથી સદા ચંચળ રહે છે, જ્યારે પવનના સાધારણ અપાટથી ઢલ્લીની અણી ઉપર પડેલા ઝાકળના બિંદુની જેમ આયુ-કર્મનો અંત આવી જાય છે, અથવા તો કોઈ શસ્ત્રઘાત આદિ નિમિત્ત મળી જાય છે ત્યારે તેનો પણ નાશ થતાં વાર લાગતી નથી, આ પણ અસ્થિર અને ક્ષણિક છે. અજ્ઞાનીના જીવનને ઢલ્લીની અણી ઉપર પડેલા ઝાકળબિંદુ સાથે ઉપમા એ માટે આપવામાં આવેલ છે કે જે પ્રકારે એ અતિચંચલ અને અસ્થિર છે એ જ પ્રકારે અજ્ઞાનીનું જીવન ગમે તે સ્થિતિમાં હોય છતાં સ્થિર રહેતું નથી. ક્ષણિકતાનું એકચ્છત્ર રાજ્ય ત્યારે તરફ વ્યાપક છે, ગમે એ નરકગતિમાં રહે અગર નિગોદમાં રહે, ગમે તે સ્થળે રહે છતાં સ્થિર નથી.

**શંકા—**સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ भी अपनी पूर्वपर्यायों में अनेक गतियोंमें परिभ्रमण करते हैं, तथा जब तक उन्हें मुक्ति का लाभ नहीं हुआ तब तक उनका जीवन भी तो इस तरहसे अस्थिर ही है; फिर यहां बाल-जीवन को ही क्यों अस्थिर बतलाया ?

**समाधान—**यद्यपि यह शङ्का ठीक है, फिर भी यहां पर जो अज्ञानी के जीवन को ही अस्थिर बतलाया है उसका खास मतलब है, और वह यह है कि अज्ञानी का जीवन समकित के अभाव के कारण स्थिर नहीं हो सकता, सम्यग्दृष्टि का जीवन तो समकित के सद्भावके कारण स्थिर हो जाता है। समकित के होने पर यदि वह अबद्धायुष्क है तो नियमसे वह वैमानिक देवों में उत्पन्न होता है और वहां से च्यव कर महाविदेहादिक क्षेत्रमें जन्म ले कर मुक्ति का लाभ प्राप्त करता है। इस तरहसे द्रव्य की अपेक्षा से उसका जीवन अस्थिर नहीं है, किंतु स्थिर ही है। परन्तु अज्ञानी का जीवन इस तरह का न होनेसे क्षणिक-अस्थिर है। अज्ञानी नरकनिगोदादिक के कटुक फल को जानता नहीं है। अपनी क्षण २ में व्यतीत होती हुई आयु का भी उसे कुछ भी खयाल नहीं होता है। जैसा असमकित जीव होता है समकित जीव वैसा नहीं होता, वह तो शास्त्रादिकों के परिशीलन से या गुर्वादिक के निमित्त से

**શંકા—**સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ પણ પોતાની પૂર્વ પર્યાયોમાં અનેક ગતિયોમાં પરિભ્રમણ કરે છે તથા જ્યાં સુધી તેને મુક્તિનો લાભ નથી થયો ત્યાં સુધી તેનું જીવન પણ તેવા પ્રકારે અસ્થિર છે ત્યારે અહિં બાલજીવનને જ શા માટે અસ્થિર બતાવ્યું ?

**સમાધાન—**જો કે આ શંકા ઠીક છે છતાં પણ આ સ્થળે જો અજ્ઞાનીના જીવનને અસ્થિર રૂપમાં બતાવેલ છે એનો ખાસ મતલબ છે, અને તે એ છે કે અજ્ઞાનીનું જીવન સમકિતના અભાવના કારણે સ્થિર બની શકતું નથી, સમ્યગ્દષ્ટિનું જીવન તો સમકિતના સદ્ભાવના કારણે સ્થિર બની જાય છે. સમકિત થવાથી જો તે અબદ્ધાયુષક છે તો નિયમથી તે વૈમાનિક દેવોમાં ઉત્પન્ન થાય છે, અને ત્યાંથી અવધીને તે મહાવિદેહાદિક ક્ષેત્રમાં જન્મ લઈને મુક્તિનો લાભ પ્રાપ્ત કરે છે. આ પ્રકારે દ્રવ્યની અપેક્ષાથી તેનું જીવન અસ્થિર નથી, બલકે સ્થિર જ છે. પરંતુ અજ્ઞાનીનું જીવન આ પ્રકારનું ન હોવાથી ક્ષણિક-અસ્થિર છે. અજ્ઞાની નરક-નિગોદાદિકના કટવાં ફળને જાણતો નથી, પોતાના ક્ષણે ક્ષણે વ્યતીત થતાં આયુષ્યનું પણ તેને ભાન હોતું નથી. જેમ અસમકિતી જીવ હોય છે તેમ સમકિતી જીવ હોતો નથી. તે તો શાસ્ત્રાદિકના પરિશીલનથી

નરકનિગોદાદિક કે દુઃખોં કા જ્ઞાતા હોતા હૈ, ક્ષણ ૨ મેં વ્યતીત હોને-વાલી અપની આયુ કી એક ૨ ઘડી મી વ્યર્થ નહીં ચોતા, સમકિત કે સદ્ભાવસે ડસકી સફલતા કરતા રહતા હૈ । ઇસી સમસ્ત અભિપ્રાય કો હૃદયમેં રચ કર સૂત્રકાર ને “એવં ચાલસ્સ જીવિયં મંદસ્સ અવિયા-ણઓ” યહ સૂત્રાંશ કહા હૈ । ચાલકા વિશેષણ “મન્દ” કો જો લિચ્છા હૈ, ડસકા તાત્પર્ય યહી હૈ કિ જલ્લ વહ મન્દ નરકનિગોદાદિક કે કટુક ફલ કો અથવા ક્ષણ ૨ મેં ચીતનેચાલી અપની આયુ કો નહીં જાનતા હૈ તો ફિર વહ અપને હિત ઓર અહિત કી પ્રાપ્તિ એવં પરિહારકા જ્ઞાતા મી કૈસે હો સકતા હૈ ? । યહાં પર યહ શઙ્કા કોઈ કર સકતા હૈ કિ મન્દ પ્રાણી નરકનિગોદાદિક એવં અપની વ્યતીત હોતી હુઈ આયુ કો નહીં જાનતા હૈ, ઇસલિચે વહ યહ મી નહીં સમજતા હૈ કિ મેરા હિત કિસમેં હૈ ઓર અહિત કિસમેં ? પરન્તુ સમ્યગ્દષ્ટિ મી તો એસા હી હૈ તો ફિર વહ હિતપ્રાપ્તિ ઓર અહિતકે પરિહાર કરનેમેં સમર્થ કૈસે હુઆ ? સો એસી શઙ્કા કરના ઠીક નહીં; ક્યોં કિ યહ અમી લતલા દિચા ગયા હૈ કિ સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ શાસ્ત્ર કે અનુશીલન સે અથવા ગુરુઆદિક કે ઉપદેશ કે નિમિત્તસે નરકનિગોદાદિક કે દુઃખોં કા તથા અપની વ્યતીત હોતી હુઈ આયુ કા જ્ઞાતા

અથવા ગુરુ આદિના નિમિત્તથી નરક-નિગોદાદિકના દુઃખોનો બાણકાર બને છે, અને ક્ષણે ક્ષણે ઘટતા જતા પોતાના આયુષ્યની એકેક ઘડી પણ તે વ્યર્થ જવા દેતો નથી, સમકિતના સદ્ભાવથી એની સફળતા કરતો રહે છે. આ સમસ્ત અભિપ્રાયને હૃદયમાં રાખી સૂત્રકારે “એવં ચાલસ્સ જીવિયં મંદસ્સ અવિયાણઓ” આ સૂત્રાંશ કહેલ છે. મન્દ આ વિશેષણ “ચાલ”ને ઉદ્દેશીને બોલેલ છે એનો મતલબ એ છે કે જ્યારે તે મંદપ્રાણી નરકનિગોદાદિકનાં કડવાં ફળને અથવા તો ક્ષણ ક્ષણમાં ઘટતી જતી પોતાની આયુષ્યને નથી સમજતો તો ફરી તે પોતાના હિત અને અહિતની પ્રાપ્તિ તેમજ પરિહારનો બાણકાર કઈ રીતે બની શકે ? આ સ્થળે કોઈ એવી શંકા કરી શકે કે મંદપ્રાણી નરક-નિગોદાદિકને અને પોતાના વ્યતીત થતા જતા આયુષ્યને બાણતો નથી, માટે તે આ પણ નથી સમજી શકતો કે માંડે હિત અને અહિત શામાં છે ? પરંતુ સમ્ય-ગ્દષ્ટિ જીવ પણ તો એવો જ છે, ત્યારે તે હિતની પ્રાપ્તિ અને અહિતનો પરિ-હાર કરવામાં સમર્થ કેવી રીતે થાય છે ? એવી શંકા કરવી ઠીક નથી; કારણ કે હમણાં જ સમજાવવામાં આવ્યું છે કે-સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ શાસ્ત્રના અનુશીલનથી અથવા ગુરુ આદિકના ઉપદેશના નિમિત્તથી નરક-નિગોદાદિકનાં દુઃખોનો જ્ઞાતા થાય છે અને પોતાના વ્યતીત થતા આયુષ્યનો પણ જ્ઞાતા થાય છે. આ માટે તે



હોતા હૈ। इसीलिये तो वह “ समयं गोयम मा पमायए ” इस प्रभुके वाक्यानुसार प्रमाद में अपना एक भी क्षण व्यर्थ नहीं जाने देता। सावधान हो कर ही प्रत्येक क्रियाओं को करता है जिससे उसकी आयुका एक २ क्षण सफल बने। वह जानता है—यह जीवन क्षणभंगुर है, इसकी सफलता जैसे भी हो सके वैसे कर लेने में ही बुद्धिमानी है।

परमार्थसे अनभिज्ञ बने हुए वे बालजीव गलकर्तनादि जैसी घातक क्रियाओं अथवा अठारह प्रकारके पापस्थानकरूप प्राणातिपातादिकों को मन, वचन एवं काय से आचरते हुए प्राणातिपातादिजनित और कटुक फलके उत्पादक शारीरिक और मानसिक दुःखों से, अथवा दुःखोंको देनेवाले कर्मों से अनेक योनियों में बारंबार जन्म-मरण रूप परिभ्रमण करते रहते हैं।

भावार्थ—जिन्हें हित और अहित का कुछ भी भान नहीं होता है ऐसे अज्ञानी जीव क्रूर कार्यों को करने में जरा भी नहीं हिचकते। इन्हें इस बात का कुछ भी ख्याल नहीं होता कि इन कार्यों के करनेका अन्तिम परिणाम क्या होगा?। मानसिक, वाचिक और कायिक प्रवृत्ति उनकी ऐसे ही अधम गलकर्तनादि (गर्दन काटना आदि) रूप कार्यों के करनेमें लालसावाली बनी रहती है, इससे वे ऐसे २ अशुभ कर्मों का उपाजन

“ समयं गोयम मा पमायए ” આ પ્રભુનાં વાક્યાનુસાર પ્રમાદમાં પોતાનું એક પણ ક્ષણ નિર્વર્થક જવા દેતો નથી. સાવધાન બનીને દરેક ક્રિયાઓ કરે છે. જેથી તેના આયુષ્યનો એકેક ક્ષણ પણ સફળ બને, તે જાણે છે કે—આ જીવન ક્ષણ-ભંગુર છે તેની સફળતા જેટલી અને તેટલી સત્વર કરી લેવી તે બુદ્ધિમાનનું કામ છે.

પરમાર્થથી અજ્ઞાત એવો બાલજીવ ગલકર્તનાદિ જેવી ઘાતક ક્રિયાઓ અને અઠાર પ્રકારના પાપસ્થાનકરૂપ પ્રાણુતિપાતાદિકોને મન, વચન અને કાયાથી આચરીને પ્રાણુતિપાતાદિજનિત અને કટુકર્ણોના ઉત્પાદક શારીરિક તેમજ માનસિક દુઃખોથી અથવા દુઃખને દેવાવાળા કર્મોથી અनेક યોનિયોમાં વારંવાર જન્મ-મરણરૂપ પરિભ્રમણ કરતો રહે છે.

ભાવાર્થ—જેને હિત અને અહિતનું કંઈ પણ ભાન નથી એવો અજ્ઞાની જીવ ઘાતકી કાર્ય કરવામાં જરા પણ ડરતો નથી. તેને એ વાતનો કોઈ એવો ખ્યાલ નથી આવતો કે આ કાર્યનું અંતિમ પરિણામ કેવું આવશે. તેની માનસિક, વાચિક અને કાયિક પ્રવૃત્તિ ગર્દન કાપવા આદિ અધમ કાર્યો કરવામાં લાલ-સાયુક્ત બની રહે છે, એથી તે આવા આવા અશુભ કર્મોનું ઉપાર્જન અને વર્ધન

और वर्धन करते हैं कि जिनका परिणाम भविष्यमें उन्हें महादुःख दायक होता है । नरकनिगोदादिरूप अनेक योनियों में बार २ भ्रमण कर वे वहांकी अनन्त वेदनाओं को सहते २ अपने अमूल्य जीवन को बिलकुल नष्ट करते रहते हैं । अनेक प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक दुःखोंकी प्राप्ति जीवोंको ऐसे ही कार्योंके फल स्वरूप होती है ।

वे मूढ़ बालजीव अनेक योनियों में दुःखप्रद कर्म के कटुकफल से अनभिज्ञ होते हुए जिससे आत्मा का कल्याण होता है जो अनेक दुःखों का नाशक है और साक्षात् या परम्परारूप से जो इस जीव को मुक्तिमें ले जाता है ऐसे सुखजनक उस धर्मको दुःखरूप जानते हैं ।

भावार्थ—जिस प्रकार कामला ( पीलिया ) रोग से दूषितदृष्टिवाला प्राणी अन्य शुभ्र ( सफेद ) पदार्थों को भी पीतरूप से ग्रहण करता है—जानता है, ठीक उसी प्रकार जो जीव अनादि मिथ्यात्वकर्म की वासना से ओतप्रोत होते हैं वे प्राणी भी सुखदायी धर्म को दुःखदायी रूपसे जानते हैं । यह उनकी मलिन आत्मा का ही दोष है ।

अज्ञान से अन्धे हुए वे प्राणी दुःखजनक सावद्य व्यापारों को अपने दुःखको दूर करने के लिये करते हैं ।

કરે છે કે જેનું પરિણામ ભવિષ્યમાં તેને મહાદુઃખદાયી થાય છે. નરક-નિગો-દાદિરૂપ અનેક યોનિયોમાં વારંવાર ભ્રમણ કરી તે ત્યાંની અનંત વેદનાઓ સહન કરી પોતાનું અમૂલ્ય જીવનનો નાશ કરે છે, અનેક પ્રકારના શારીરિક અને માન-સિક દુઃખોની પ્રાપ્તિ જીવોને એવાં કાર્યોના ફળસ્વરૂપ જ થાય છે.

તે મૂળબાલજીવ અનેક યોનિયોમાં દુઃખપ્રદ કર્મોના કડવા ફળોનો અનભિજ્ઞ હોઈ જેનાથી આત્માનું કલ્યાણ થાય છે, જે અનેક દુઃખોનો નાશક છે અને સાક્ષાત્ અથવા પરંપરારૂપથી જે આ જીવને મુક્તિમાં લઈ જાય છે એવા સુખ-જનક તે ધર્મને દુઃખરૂપ જાણે છે.

ભાવાર્થ—જે પ્રકારે કમળાના રોગથી દૂષિત દૃષ્ટિવાળા પ્રાણી ખીજી શુભ્ર પદાર્થોને પણ પીળારૂપે જુએ છે, એવા પ્રકારે જે જીવ અનાદિ મિથ્યાત્વ કર્મની વાસનાથી ઓતપ્રોત હોય છે તે પ્રાણી પણ સુખદાયી ધર્મને દુઃખ-દાયી જાણે છે, તે તેના મલિન આત્માનો દોષ છે.

અજ્ઞાનથી આંધળો બનેલો તે પ્રાણી દુઃખ આપવાવાળા સાવધ-પાપકારી વ્યાપારોનો પોતાનાં દુઃખને દૂર કરવા માટે ઉપયોગ કરે છે.

भिज्ञो विपर्यासं=वैपरीत्यं सुखजनकधर्मादेर्दुःखजनकादिरूपम् उपैति=प्राप्नोति, अज्ञानान्धो हि दुःखजनकसावद्यव्यापारं तदुपशमाय विदधातीत्यर्थः। अपि च मोहेन=तच्चविपर्यासरूपेणाविवेकेन, अत्रान्तभूतमोहस्य ग्रहणादादिमध्यवर्तिनो राग-द्वेषयोरपि ग्रहणं, तेन रागेण द्वेषेण वा, यद्वा-मिथ्यात्वकषायविषयाभिलाषमयेण मोहनीयेन कर्मणा, गर्भ=जननीजठरनिवासरूपं, तेन च मरणादि एति=गच्छति। मरणादीत्यत्रादिग्रहणात्—

भावार्थ—वे यह नहीं जानते हैं कि जिस प्रकार रक्त से दूषित वस्त्रकी शुद्धि रक्तसे नहीं होती है उसी प्रकार से सावद्य व्यापार जो स्वयं दुःखरूप या जीवों को दुःखदायी है, भला ! उनके करने से दुःखों का उपशम कैसे हो सकता है। ऐसा बोध उन्हें हो भी कहां से; क्यों कि ये तो अज्ञानसे अंधे जो हो रहे हैं। इनके चर्मचक्षु भले ही निर्दोष हों, परन्तु जिनसे भले-बुरे का बोध होता है इनके उन ज्ञानचक्षुओं पर अज्ञान का आवरण पड़ा हुआ है।

तत्त्वों में विपरीताभिनिवेश का कारण जो अविवेकरूप मोह है उससे, अथवा राग और द्वेषसे, या मिथ्यात्व-कषाय-विषयाभिलाष-स्वरूप मोहनीय कर्म से वे बालजीव जननी के जठरमें रहनेरूप गर्भावस्था एवं मरणदशा को प्राप्त करते हैं। यहां पर अन्तभूत मोह के ग्रहणसे उसके आदि और मध्यवर्ती राग और द्वेष का भी ग्रहण हुआ है। मरणमें गृहीत आदिपदसे—

भावार्थः—ते अज्ञेय नथी ज्ञातुं के जेवी रीते बोझीथी दूषित थयेला वस्त्रनी शुद्धि बोझीथी अनती नथी तेवी रीते पापकारी व्यापार जे स्वयं दुःखरूप अने ज्वने दुःखदायी छे तेना उपयोग करवाथी दुःखोतुं निवारणु शी रीते थछ शके, जेवो उपदेश जेने लागे पणु कथांथी, कारणु के जे तो अज्ञानथी आंध-जो ज थछ रहेल छे. जेनां चर्मचक्षु भले निर्दोष छे परंतु जेनाथी भला-भुरानो बोध थाय ते ज्ञानचक्षुजो उपर अज्ञाननो पडेलो पडेला छे.

तत्त्वोमां विपरीत आग्रहनुं कारणु जे अविवेकरूप मोह छे तेनाथी, अथवा राग अने द्वेषथी, अथवा मिथ्यात्व-कषाय-विषयाभिलाष-स्वरूप मोहनीय कर्मथी ते भादज्व माताना उदरमां स्थितिरूप गर्भावस्था जेवं मरणु दशाने प्राप्त थाय छे. आ स्थजे अन्तभूत मोहना अग्रहणुथी तेने आदि अने मध्यवर्ती राग अने द्वेषनुं पणु अग्रहणु थयेल छे. मरणमां गृहीत आदि पदथी—



“ પુનરપિ જનનં પુનરપિ મરણં, પુનરપિ કર્મોપાર્જનકરણમ્ ।

પુનરપિ નરકનિગોદનિપાતઃ, પુનરપિ જનનીજઠરે પાતઃ ॥૧૧॥ ” ઇતિ ।

પૂર્વ મરણં પુનર્ગર્ભગમનં, તતો જન્મ, તતઃ પાપવૃદ્ધિસ્તતો મૃત્યું હિંસાદિક્રૂર-કર્મપ્રવૃત્તિસ્તતઃ કર્મણો મરસ્તેન ચ નરકનિગોદાદિપાત ઇતિ મજ્જનોન્મજ્જનક્રમેણ ભૂયો ભૂયો ગર્ભસ્ય મરણાદેરેવ પ્રાપ્તિસ્તસ્ય ભવતીતિ તાત્પર્યમ્, અત એવ-અન્ન=અસ્મિન્ મોહે=અજ્ઞાને મોહનીયે-મોહજન્યે ગર્ભજન્મજરામરણાદિકે કર્મભરે વા પુનઃ પુનઃ પરિભ્રમતિ, સ તેભ્યો ન વહિર્નિઃસર્તું પ્રભવતીતિ ભાવઃ ।

“ પુનરપિ જનનં પુનરપિ મરણં, પુનરપિ કર્મોપાર્જનકરણમ્ ।

પુનરપિ નરકનિગોદનિપાતઃ, પુનરપિ જનનીજઠરે પાતઃ ॥ ”

હસ પદ્યોક્ત જન્મમરણાદિ કી પરમ્પરા કા ગ્રહણ કિયા ગયા હૈ । અર્થાત્—મરણ, પુનઃ ગર્ભમેં ગમન, ફિર જન્મ, ફિર પાપોં કા વર્ધન, ઉસસે હિંસાદિક ક્રૂર કર્મોંમેં પ્રવર્તન, ઉસસે ફિર કર્મોં કા ઉપાર્જન, પશ્ચાત્ પુનઃ નરકનિગોદાદિકમેં પતન; હસ પ્રકાર કી જન્મ મરણાદિ કી પરંપરાસે હસ બાલ અજ્ઞાની જીવ કા કમીં બી છુટકારા નહીં હોતા હૈ । જિસ પ્રકાર સમુદ્રાદિ જલાશયમેં પડા પ્રાણી ઉસીમેં ઉતરાતા (ઉપરઆતા) ઓર ઢૂબતા હૈ ઉસી પ્રકાર જીવ કો બી વાર ૨ ગર્ભ, જન્મ ઓર મરણકી પ્રાપ્તિ હોતી રહતી હૈ । હસી આશય કી પુષ્ટિ સૂત્રકારને “ અન્ન મોહે પુનઃ પુનઃ ” હસ સૂત્રાંશ સે કી હૈ ।

“ પુનરપિ જનનં પુનરપિ મરણં, પુનરપિ કર્મોપાર્જનકરણમ્ ।

પુનરપિ નરકનિગોદનિપાતઃ, પુનરપિ જનનીજઠરે પાતઃ ॥ ”

આ પદ્યોક્ત જન્મમરણાદિની પરંપરાતું ગ્રહણ કરેલ છે. અર્થાત્—મરણ, પુનઃ ગર્ભમાં આવવું, ફરી જન્મ, ફરી પાપોતું વર્ધન, એથી હિંસાદિક ક્રૂર કર્મોમાં પ્રવર્તન, એથી ફરી કર્મોતું ઉપાર્જન, પછી પુનઃ નરકનિગોદાદિકમાં પતન, આ પ્રકારની જન્મમરણાદિ પરંપરાથી આ બાલ અજ્ઞાની જીવ કયારેય છુટકારો મેળવી શકતો નથી. જે રીતે સમુદ્ર આદિ જળાશયોમાં પડેલા પ્રાણી એમાં જ ઉપર આવે છે અને ડુબે છે આ રીતે આ જીવને પણ વારંવાર ગર્ભ, જન્મ અને મરણની પ્રાપ્તિ થતી રહે છે. આ આશયની પુષ્ટિ સૂત્રકારે “ અન્ન મોહે પુનઃ પુનઃ ” એ સૂત્રાંશ દ્વારા કરી છે.

ભાવાર્થ—સંસારમેં રાગ, દ્વેષ, અજ્ઞાન ઓર મોહ આદિ મલિન ભાવ  
 હસ જીવકે સબસે પ્રબલ શત્રુ હૈં । બાહ્ય શત્રુ તો હસકે લિયે એક હી  
 ભવમેં દુઃખદાયી હોતે હૈં; પરંતુ યે તો હસે ભવ ૨ મેં અનન્ત કષ્ટોં કો  
 દેતે રહતે હૈં । હસકે જ્ઞાનાદિ ગુણોંકે નિધાન કો છૂટ કર હસે નરક  
 નિગોદાદિકા અધિકારી બનાતે રહતે હૈં । યહ હન કારણોંસે જન્મ  
 મરણાદિકી પરંપરા સે કમી છૂટકારા નહીં પા સકતા હૈ । જિસ પ્રકાર  
 અસહાય પ્રાણી સમુદ્રાદિ જલાશયમેં પડને પર વહીં ઢૂબતા ઓર ઉતરાતા  
 હૈ, વહ જિસ પ્રકાર વહાંસે બાહર નહીં નિકલ પાતા, અન્તમેં બેચારેકા  
 વહીં પર પ્રાણાન્ત હો જાતા હૈ । ઠીક યહી દશા હસ અજ્ઞાની જીવ કી  
 હો રહી હૈ । હસ સંસારરૂપી સમુદ્રમેં પડ કર યહ ભી ઉસીમેં ઢૂબતા રહતા હૈ  
 ઓર મરતા રહતા હૈ । તપ ઓર સંયમકા પ્રવહણ પ્રાપ્ત કિયે વિના હસકા  
 હસસે ઉદ્ધાર નહીં હો સકતા હૈ, અતઃ મોક્ષાભિલાષીકા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ  
 હસ રાગદ્વેષાદિરૂપ શત્રુઓં પર વિજય પ્રાપ્ત કરે । તમી યહ અજ્ઞાન-મોહ-  
 જન્ય ગર્ભ, જન્મ, મરણાદિસે અથવા કર્મકે ભારસે રહિત હો સકતા હૈ,  
 અન્યથા—“ અત્ર મોહે પુનઃ પુનઃ ” હન મોહાદિરૂપ મલિન ભાવોંમેં હી  
 હસકા જન્મજન્માન્તર કા સમય વ્યતીત હોતા રહેગા ।

ભાવાર્થ:—સંસારમાં રાગદ્વેષ અજ્ઞાન અને મોહ આદિ મલિન ભાવો આ  
 જીવના બધાથી પ્રબળ શત્રુ છે, બાહ્ય શત્રુ તો તેને માટે એક જ ભવમાં દુઃખ-  
 દાયી થાય છે, પરંતુ આ તો ભવોભવમાં અનંત કષ્ટોને દેતા રહે છે, તેના જ્ઞાનાદિ  
 ગુણોના ભંડારને હુંટીને તેને નરક-નિગોદાદિના અધિકારી બનાવે છે, આ કારણોને  
 લઈ જન્મ-મરણાદિની પરંપરામાંથી છૂટકારો મેળવી શકતો નથી. જેવી રીતે  
 અસહાય પ્રાણી સમુદ્ર આદિ જળાશયોમાં પડવાથી ત્યાં ડુબે છે અને ઉપર આવે  
 છે, તે ત્યાંથી જેમ બહાર નીકળવા અસમર્થ હોય છે અને અંતે તેનો ત્યાંજ દેહાંત  
 થાય છે, આવી જ દશા આવા અજ્ઞાની જીવોની થતી રહે છે. આ સંસારરૂપી  
 સમુદ્રમાં પડી તે આજ રીતે તેમાં ડુબે છે અને મરે છે, તપ અને સંયમનો  
 જહાજ બ્રહ્મ કૃપા સિવાય તેનો ઉદ્ધાર થઈ શકતો નથી, આથી મોક્ષાભિલાષીનું  
 કર્તવ્ય છે કે આવા રાગદ્વેષાદિરૂપ શત્રુઓ ઉપર વિજય પ્રાપ્ત કરે. ત્યારે જ  
 તે અજ્ઞાનમોહજન્ય ગર્ભ જન્મ મરણાદિથી અથવા કર્મના ભારથી રહિત બની  
 શકે છે; અન્યથા “ અત્ર મોહે પુનઃ પુનઃ ” એ મોહાદિરૂપ મલિન વિચારોમાંજ  
 તેનો જન્મજન્માન્તરનો સમય વ્યતીત થતો રહેશે.

યદ્વા-અત્ર=સંસારે તત્તદ્વતિષ્ઠુ વમ્ભ્રમ્યમાણસ્ય પુનઃ પુનઃ કર્મવન્ધસ્તેન સાંસારિકદુઃખં, તેન મોહે=પૂર્વોક્તસ્વરૂપે સમુત્પદ્યતે, ઇતિ ॥ સૂ. ૨ ॥

નનુ સંસારપરિભ્રમણાભાવશ્ચ મોહાભાવાત્, સ ચ વિશિષ્ટજ્ઞાનાવિર્ભાવાત્, સોઽપિ ચ મોહાભાવાત્, તતશ્ચાન્યોન્યાશ્રયો દુર્વારઃ, મોહાભાવાદ્વિશિષ્ટજ્ઞાનાવિર્ભાવઃ, તસ્માત્ચ મોહાભાવઃ, એવં ચ યાવન્ન વિશિષ્ટજ્ઞાનાવિર્ભાવો જાતો ન તાવત્કર્મોપશાન્તયે પુરુષસ્ય પ્રવૃત્તિઃ સ્યાદિત્યાકાક્ષાયામર્થસંશયોદપિ પ્રવૃત્તિર્ભવતીતિ દર્શયતિ—‘સંસયં’ ઇત્યાદિ ।

“અત્ર મોહે પુનઃ પુનઃ” ઇસ વાક્યાંશકા ટીકાકાર ઇસ પ્રકારસે મી અર્થ કરતે હૈ—ઇસ સંસારમેં ઉન ૨ ગતિયોં મેં ભટકનેવાલે ઇસ અજ્ઞાની જીવ કો પુનઃ પુનઃ કર્મવન્ધ, ઉસસે સાંસારિક દુઃખોં કી પ્રાપ્તિ, ઉસસે પુનઃ મોહ મેં પતન; ઇસ પ્રકારકે ભ્રમણમેં પડા હી રહના પડતા હૈ । સૂ. ૨ ।

મોહકે અભાવ સે ઇસ જીવકા સંસારમેં પરિભ્રમણ નહીં હોતા હૈ, પરન્તુ જબ તક સમ્યગ્જ્ઞાન કા આવિર્ભાવ ઇસ જીવકે નહીં હોતા હૈ તબ તક મોહકા અભાવ નહીં હો સકતા હૈ, ઓર સમ્યગ્જ્ઞાન કા આવિર્ભાવ મી જબ તક મોહકા અભાવ નહીં હોતા હૈ તબ તક નહીં હો સકતા । ઇસ પ્રકાર તો યહાં પર અન્યોઽન્યાશ્રય દોષ દુર્વાર હોગા; ક્યોં કિ મોહાભાવસે સમ્યગ્જ્ઞાનાવિર્ભાવ હોતા હૈ, ઓર સમ્યગ્જ્ઞાનાવિર્ભાવ સે મોહાભાવ, તબ તો જબ તક સમ્યગ્જ્ઞાનકા આવિર્ભાવ નહીં હુઆ હૈ તબ તક કર્મોપશામનકે લિયે પુરુષ કી પ્રવૃત્તિ નહીં હો સકતી । ઇસ પ્રકારકી

“અત્ર મોહે પુનઃ પુનઃ” આ વાક્યાંશનો ટીકાકાર આ પ્રકારે પણ અર્થ કરે છે—આ સંસારમાં તે તે ગતિઓમાં ભટકનાર તે અજ્ઞાની જીવને પુનઃ પુનઃ કર્મવન્ધ, તેનાથી સાંસારિક દુઃખોની પ્રાપ્તિ, પુનઃ મોહમાં પતન; આવા પ્રકારના ભ્રમણમાં જ પડ્યું જ રહેલું પડે છે. ॥ સૂ. ૨ ॥

મોહના અભાવથી આ જીવનનું સંસારમાં પરિભ્રમણ થતું નથી. પરંતુ જ્યાં સુધી સમ્યગ્જ્ઞાનનો આવિર્ભાવ આ જીવને થતો નથી ત્યાં સુધી મોહનો અભાવ થઈ શકતો નથી, અને સમ્યગ્જ્ઞાનનો આવિર્ભાવ પણ જ્યાં સુધી મોહનો અભાવ નથી થતો ત્યાં સુધી થતો નથી. આ પ્રકારે તો આ સ્થળે ‘અન્યોન્યાશ્રય’ દોષ અવશ્ય થશે; કેમ કે મોહના અભાવથી સમ્યગ્જ્ઞાનનો આવિર્ભાવ થાય છે, અને સમ્યગ્જ્ઞાનના આવિર્ભાવથી મોહનો અભાવ થાય છે ત્યારે તો જ્યાં સુધી સમ્યગ્જ્ઞાનનો આવિર્ભાવ થતો નથી ત્યાં સુધી કર્મોપશામનને માટે પુરુષની પ્રવૃત્તિ



મૂલમ—સંસયં પરિયાણઓ સંસારે પરિજ્ઞાણ ભવઈ; સંસયં અપરિયાણઓ સંસારે અપરિજ્ઞાણ ભવઈ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

છાયા—સંશયં પરિજ્ઞાનતઃ સંસારઃ પરિજ્ઞાતો ભવતિ, સંશયમપરિજ્ઞાનતઃ સંસારોઽપરિજ્ઞાતો ભવતિ ॥ ૩ ॥

ટીકા—‘સંશય’-મિત્યાદિઃ સંશયમુભયકોટિવિષયકં જ્ઞાનમિત્યર્થઃ, પરિજ્ઞાનતઃ=અવબુધ્યમાનસ્ય સંસારઃ=સંશયવિષયીભૂતઃ પરિજ્ઞાતઃ=જ્ઞપરિજ્ઞયા સ્વરૂપેણ ફલેન ચ જ્ઞાતઃ સન્ પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞયા પરિત્યક્તો ભવતિ, તથૈવ સંશયમ્ અપરિજ્ઞાનતઃ સંસારોઽપરિજ્ઞાતઃ=જ્ઞપ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞયોરવિષયો ભવતિ । સ ચાત્ર સંશ-આશંકા હોને પર સૂત્રકાર “ અર્થ મેં સંશય હોનેસે મી પ્રવૃત્તિ હોતી હૈ ” હસ પ્રકાર ઉત્તરરૂપ સૂત્ર કહતે હૈ—“ સંસયં ” ઇત્યાદિ ।

ઉભયકોટિ કો સ્પર્શ કરનેવાલે જ્ઞાનકા નામ સંશય હૈ । તાત્પર્ય યહ હૈ કિ—સામાન્ય ધર્મકા પ્રત્યક્ષ હોને પર ઔર વિશેષ ધર્મ કા અપ્રત્યક્ષ હોને પર હી સંશયજ્ઞાન હોતા હૈ, જૈસે—યહ સ્થાણુ હૈ યા પુરુષ ? યહાં પર પુરુષ ઔર સ્થાણુ કા સામાન્ય ધર્મ ઉંચાઈ આદિ હૈ । વિશેષ ધર્મ પુરુષ કે—શિર, હાથ, પૈર આદિ હૈ, તથા સ્થાણુ કે વક્રતા કોટર આદિ હૈ । દેખનેવાલે કો ઉભયપદાર્થગત સામાન્ય ધર્મ પ્રત્યક્ષ હૈ ઔર તદ્ગત વિશેષ ધર્મ અપ્રત્યક્ષ હૈ, તમી ઉસકા જ્ઞાન પરસ્પરવિરુદ્ધ ઉભય કોટિ કો સ્પર્શ કરતા હૈ, ઔર હસલિયે વહ જ્ઞાન સંશય—સ્વરૂપ હોતા હૈ । હસ પ્રકાર સંશયકે સ્વરૂપ કો જાનને વાલે વ્યક્તિ કે લિયે સંશયજ્ઞાન કા વિષયભૂત યહ સંસાર પરિજ્ઞાત હોતા હૈ—જ્ઞપરિજ્ઞાદ્વારા સ્વરૂપ એવં

થઈ શકતી નથી. આ પ્રકારની આશંકા થવાથી સૂત્રકાર “ અર્થમાં સંશય હોવાથી પણ પ્રવૃત્તિ થાય છે. ” આ પ્રકારે ઉત્તરરૂપ સૂત્ર કહે છે—“ સંસયં ” ઇત્યાદિ

ઉભય કોટિને સ્પર્શ કરવાવાળા જ્ઞાનનું નામ સંશય છે. તાત્પર્ય કે—સામાન્ય ધર્મ પ્રત્યક્ષ હોય વિશેષ ધર્મ અપ્રત્યક્ષ હોય ત્યારે સંશય જ્ઞાન થાય છે, જેમ—આ સ્થાણુ છે અગર પુરુષ ? આ જગ્યાએ પુરુષ અને સ્થાણુનો સામાન્ય ધર્મ ઉંચાઈ આદિ છે, વિશેષ ધર્મ પુરુષને માથું હાથ અને પગ આદિ છે. ત્યારે સ્થાણુ ને વાંકાપાણુ અને પોલાપાણુ આદિ છે. જોનારને બંને પદાર્થોના સામાન્ય ધર્મ પ્રત્યક્ષ છે અને તદ્ગત વિશેષ ધર્મ અપ્રત્યક્ષ છે ત્યારે જ તેનું જ્ઞાન પરસ્પરવિરુદ્ધ અનેક કોટિને સ્પર્શ કરે છે, અને એથી જ તે જ્ઞાન સંશયસ્વરૂપ થાય છે. આ પ્રકારે સંશયના સ્વરૂપને બાણુનાર વ્યક્તિ માટે સંશયજ્ઞાનનો વિષયભૂત આ સંસાર પરિજ્ઞાત થાય છે—જ-પરિજ્ઞા

યોડ્યર્થાનર્થોભયકોટિકવિચાર એવ ગૃહ્યતે, તત્ત્રાર્થો મોક્ષસ્તત્સાધનં ચ રત્નત્રયમ્ । મોક્ષે સંશયસમ્ભવઃ, તસ્ય પરમપદત્વેન સકલતૈર્થિકૈરભ્યુપગમાત્ । મોક્ષસાધને તુ સંશયે સત્યપિ પ્રવૃત્તિર્ભવતિ, તત્સંશયસ્ય પ્રવૃત્ત્યજ્ઞત્વાત્ । તથાહિ—‘ચારિત્રં મોક્ષ-સાધનં ભવતિ ન વા?’ ઇતિ સંશયે સતિ તન્નિવારણાર્થં સદ્ગુરુરુપદેશશ્રવણે પ્રવૃત્તિ-લોકે દ્રશ્યતે ।

એવમનર્થઃ સંસારસ્તત્કારણં ચ, તત્ર સંસારસ્ય તત્કારણસ્ય ચ સંશય-ફલસે જાના ગયા યહ સંસાર પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞા સે પરિત્યક્ત હોતા હૈ । હસી પ્રકાર સંશય કો નહીં જાનનેવાલે વ્યક્તિકે લિયે યહ સંસાર અપરિજ્ઞાત હોતા હૈ—જ્ઞ ઓર પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞા કા વિષયભૂત નહીં હોતા હૈ । યહાં અર્થ ઓર અનર્થ ઇન ઉભયકોટિકા વિચારસ્વરૂપ હી સંશય ગ્રહણ કિયા હૈ । યહાં અર્થ-શબ્દસે મોક્ષ ઓર ઉસકે સાધનભૂત રત્નત્રયકા ગ્રહણ હુઆ હૈ । મોક્ષમેં સંશય કા અભાવ હૈ; ક્યોં કિ ઉસે પરમપદરૂપ સે અન્યમતાનુયાયિયોંને ખી સ્વીકાર કિયા હૈ, પરંતુ મોક્ષકે કારણ-સાધન મેં સંશય હૈ, તો ખી યહાં પ્રવૃત્તિ હોતી હૈ, ક્યોંકિ તદ્વિષયક સંશય ઉસમેં પ્રવૃત્તિકા કારણ હોતા હૈ । જૈસે—“ચારિત્ર મોક્ષકા સાધન હૈ યા નહીં” હસ પ્રકાર ચારિત્રમેં મોક્ષ સાધનતાવિષય સંશય હોને પર ઉસે દૂર કરનેકે લિયે સદ્ગુરુકે ઉપદેશ કા આશ્રય કરને કી લોકમેં પ્રવૃત્તિ દેખી જાતી હૈ ।

હસી પ્રકાર અનર્થ અર્થાત્—સંસાર ઓર ઉસકે કારણ કે વિષય મેં

ક્ષારા સ્વરૂપ એવં ઇળથી જ્ઞાત આ સંસાર પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞાથી પરિત્યક્ત થાય છે. આ પ્રકારે સંશયને નહિ જાણવાવાળી વ્યક્તિ માટે આ સંસાર અપરિજ્ઞાત થાય છે—જ્ઞ-પરિજ્ઞા અને પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞાનો વિષયભૂત થતો નથી, આ સ્થળે અર્થ અને અનર્થ આ ઉભયકોટિના વિચારસ્વરૂપ જ સંશય માનવામાં આવ્યો છે. આ સ્થળે ‘અર્થ’ શબ્દથી મોક્ષ અને તેના સાધનભૂત રત્નત્રયનું ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે. મોક્ષમાં સંશયનો અભાવ છે, કારણ કે તેને પરમપદરૂપથી ખીજા મતાનુયાયિઓએ પણ સ્વીકાર કરેલ છે, પરંતુ મોક્ષના કારણો-સાધનોમાં સંશય છે, તો પણ પ્રવૃત્તિ થાય છે, કારણ કે તે વિષયનો સંશય તેમાં પ્રવૃત્તિનું કારણ બને છે. જેવી રીતે “ચારિત્ર મોક્ષનું સાધન છે કે નહિ?” આ પ્રકારે ચારિત્રમાં, મોક્ષ-સાધનવિષયક સંશય થતાં તેને દૂર કરવા માટે સદ્ગુરુના ઉપદેશનો આશ્રય કરવાની લોકમાં પ્રવૃત્તિ જોવામાં આવે છે.

આ જ પ્રકારે ‘અનર્થ’ અર્થાત્ સંસાર અને તેના કારણના વિષયમાં સંશય પણ

વિષયત્વે સતિ તતો નિવૃત્તિરવશ્યં ભવતિ, અનર્થસંશયસ્ય નિવૃત્ત્યજ્ઞત્વાત્ । ‘સંશયં પરિજાનતઃ’ ઇત્યનેન પરિજ્ઞાનવિષયીભૂતસ્ય સંશયસ્ય-અર્થોઽનર્થો વા વિષયઃ, તત્ર-અર્થવિષયકસંશયસ્યાનર્થવિષયકસંશયતો ભેદાત્ સંશયસ્ય પ્રવૃત્તિનિવૃત્તિરૂપં ફલં ભિન્નમેવ ભવતિ । વિષયસ્ય જ્ઞાનભેદનિયામકતયા સંશયપરિજ્ઞાને તદીયવિષય-સંશય ધી ઁનકી નિવૃત્તિ કા કારણ હોતા હૈ, ક્યોં કિ સંસાર ઔર ઁસકે કારણોં મેં સંશય હોને પર હી ઁસ ઔર પ્રવૃત્તિ હોગી । પ્રવૃત્તિ સે ઁનકે વાસ્તવિક સ્વરૂપ કા બોધ હોગા । બોધ હોને પર ઁનસે નિવૃત્તિ હોગી । ઁસ પ્રકાર પરમ્પરાસે વહ સંશય નિવૃત્તિકા કારણ બનતા હૈ । યહી વાત “ઁવમનર્થઃ સંસારસ્તત્કારણં ચ” ઇત્યાદિ પંક્તિયોં મેં ટીકા-કારને સ્પષ્ટ કી હૈ । અનર્થવિષયક સંશયકે ઁસકી (અનર્થ કી) નિવૃત્તિકા કારણ હોને સે, સંસાર ઔર ઁસકે કારણોંકે વિષયમેં સંશય હોને પર ઁનસે નિવૃત્તિ અવશ્ય હોતી હૈ ।

“સંસયં પરિયાણઔ” ઁસ પદસે સૂત્રકાર યહ પ્રકટ કરતે હૈં કિ જ્ઞાનકે વિષયભૂત સંશય કે અર્થ ઔર અનર્થ, ઁદો વિષય હૈં । વહાં અર્થ-વિષયક સંશય કા અનર્થવિષયક સંશય સે ભેદ હોનેસે ઁનકે પ્રવૃત્તિ રૂપ ઔર નિવૃત્તિરૂપ ફલ પરસ્પર ભિન્ન હી હૈં, ક્યોં કિ વિષયકે જ્ઞાન-ભેદકા નિયામક હોનેસે સંશય કે વિષયભૂત પદાર્થોંકા પરિજ્ઞાન અવશ્યંભાવી હૈ ।

તેની નિવૃત્તિનું કારણ બને છે, કારણ કે સંસાર અને તેના કારણોમાં સંશય થવાથી જ તે તરફ પ્રવૃત્તિ થવાની. પ્રવૃત્તિથી તેના વાસ્તવિક સ્વરૂપનો બોધ થશે. બોધ થવાથી તેનાથી નિવૃત્તિ થશે. આ પ્રકારે પરંપરારૂપથી સંશય, નિવૃત્તિનું કારણ બને છે, આ વાત “ઁવમનર્થઃ સંસારસ્તત્કારણં ચ” ઇત્યાદિ પંક્તિઓમાં ટીકાકારે સ્પષ્ટ કરી છે, અનર્થ-વિષયક સંશય (અનર્થની) નિવૃત્તિનું કારણ થાય છે, માટે સંસાર અને તેના કારણોના વિષયમાં સંશય થવાથી તેનાથી નિવૃત્તિ અવશ્ય થાય છે.

“સંસયં પરિયાણઔ” આ પદથી સૂત્રકાર એવું સમજાવે છે કે-જ્ઞાનના વિષયભૂત સંશયના અર્થ અને અનર્થ એ બે વિષયો છે. એનામાં અર્થ-વિષયક સંશયનો અનર્થવિષયક સંશયથી ભેદ હોવાથી એની પ્રવૃત્તિ-નિવૃત્તિ-રૂપ ફલ પરસ્પર બુદ્ધં જ છે, કેમકે વિષયજ્ઞાન ભેદનો નિયામક થાય છે, માટે સંશયનું પરિજ્ઞાન હોવાથી સંશયના વિષયભૂત પદાર્થોનું પરિજ્ઞાન અવશ્યંભાવી છે.



યકપરિજ્ઞાનમવશ્યમ્ભાવિ, તતશ્ચ ‘અયં સંસારોઽનન્તદુઃસ્વકારણં ભવતિ ન વા ?’  
 इति संशयादनर्थभूतसंसारान्निवृत्तिर्भवति । संशयाऽपरिज्ञानं च सांशयिकविषयस्याऽ-  
 परिज्ञाने नैव भवति । एवं संसारोऽपरिज्ञातश्चेत्तर्हि न तस्मादनर्थभूतात्संसारान्निवृत्ति-  
 रिति समस्तसूत्रवर्तुलकार्थः ॥ सू० ३ ॥

इससे “यह संसार अनंत दुःखों का कारण है अथवा नहीं ?” इस प्रकारके संशय से अनर्थभूत संसारकी निवृत्ति होती है। संशय का अपरिज्ञान भी संशय के विषयभूत पदार्थों के अपरिज्ञानसे ही होता है। इस प्रकार यदि संसार अपरिज्ञात है तो उस अनर्थभूत संसार से निवृत्ति नहीं होती है। यह इस सूत्रका संक्षिप्त अर्थ है।

भावार्थ—शंकाकारने ‘विशिष्ट ज्ञानके सद्भावसे मोहका अभाव और मोहके अभावसे विशिष्टज्ञान का सद्भाव होगा’ इस प्रकार जो अन्योन्याश्रय दोष प्रकट कर ‘कर्मोपशान्तिके लिये पुरुषकी प्रवृत्ति जब विशिष्ट ज्ञानका उदय न होगा तब तक नहीं हो सकती’ ऐसा कहा है, उसका प्रत्युत्तर ही इस सूत्रमें प्रकट किया है। वे कहते हैं कि अर्थ-संशय से भी प्रवृत्ति होती है। मोक्षमें किसी को भी संशय नहीं है, क्योंकि कि समस्त कर्मोंका अत्यन्त अभावस्वरूपवाला मोक्ष प्रत्येक आस्तिक सिद्धान्तकारने स्वीकार किया है। संशय मोक्षके कारणों में हो सकता है; क्योंकि कोई ज्ञानसे, कोई अज्ञानके नाशसे और कोई परस्पर

અર્થી “આ સંસાર અનંત દુઃખોનું કારણ છે કે નહિ ?” આ પ્રકારના સંશયથી અનર્થભૂત સંસારની નિવૃત્તિ થાય છે. સંશયનું અપરિજ્ઞાન સંશયના વિષયભૂત પદાર્થોના અપરિજ્ઞાનથી થાય છે. આ રીતે યદિ સંસાર અપરિજ્ઞાત છે તો તે અનર્થભૂત સંસારથી નિવૃત્તિ મળી શકતી નથી. એવો આ સૂત્રનો સંક્ષેપમાં અર્થ છે.

ભાવાર્થ:—શંકાકારે “વિશિષ્ટ જ્ઞાનના સદ્ભાવથી મોહનો અભાવ અને મોહના અભાવથી વિશિષ્ટ જ્ઞાનનો સદ્ભાવ થશે” આ પ્રકારે ‘અન્યોન્યાશ્રય’ દોષ પ્રગટ કરી કર્મોપશાન્તિને માટે પુરૂષની પ્રવૃત્તિ બંધાં સુધી વિશિષ્ટ જ્ઞાનનો ઉદય ન થાય ત્યાં સુધી નથી થઈ શકતી, એવું કહ્યું છે, એનો પ્રત્યુત્તર જ આ સૂત્રમાં આપવામાં આવેલ છે. તેઓ કહે છે કે—અર્થસંશયથી પણ પ્રવૃત્તિ થાય છે. મોક્ષમાં કોઈને કશો પણ સંશય નથી; કેમ કે સમસ્ત કર્મોના અત્યંત-અભાવ-સ્વરૂપવાળા મોક્ષનો પ્રત્યેક આસ્તિક-સિદ્ધાંતકારે સ્વીકાર કરેલ છે. સંશય, મોક્ષના કારણોમાં થઈ શકે છે, કેમ કે કોઈ જ્ઞાનથી, કોઈ અજ્ઞાનના નાશથી અને કોઈ પરસ્પરનિરપેક્ષ જ્ઞાન અને આશિત્રથી મુક્તિની

નિરપેક્ષ જ્ઞાન એવં ચારિત્ર સે મુક્તિ કી પ્રાપ્તિ હોના બતલાતે હૈં, અતઃ કારણોંમેં વિવાદ હોને પર યહ સ્વાભાવિક સંશય હોતા હૈ કિ યહ માન્યતા ઠીક હૈ અથવા યહ માન્યતા ઠીક હૈ ? । ઇસ પ્રકાર જબ સંશય હોતા હૈ તો ઉસકે નિર્ણયાર્થ પુરુષ કી આકાંક્ષા ઉસ ઓર ઝુકતી હૈ । જિસ પ્રકાર ચના આદિ બીજોં કે અંકુરોત્પાદન કરનેમેં મનુષ્ય-કિસાન-કો જબ સન્દેહ હોતા હૈ કિ યે ચને અંકુરોત્પાદન કર સકતે હૈં યા નહીં ? તબ યહ ઉસ ઉદ્ભૂત સંશય સે પ્રેરિત હો કર ઉનકી પરીક્ષા કરનેકા ઉપક્રમ કરતા હૈ ઓર ઉન્હેં કિસી વર્તન મેં પાની ભર કર રસ્ત દેતા હૈ । ઇસ પ્રકાર સંશય સે પ્રવૃત્તિશીલ હો કર વહ અપની ધારણા કા નિર્ણય કર લેતા હૈ । ઇસી પ્રકાર મોક્ષકારણક માન્યતાઁ જબ સન્દેહકે વિષય-ભૂત બનતી હૈં, તબ મોક્ષાભિલાષી જીવ ઉસસે પ્રેરિત હોકર સદ્ગુરુ આદિ વિશિષ્ટ જ્ઞાનિયોં કે ઉપદેશ આદિકે શ્રવણ કી ઓર પ્રવૃત્તિ કરતા હૈ ઓર ઉસસે સત્યાસત્યકા નિર્ણય કરતા હૈ ।

પદાર્થ મેં જબ તક સન્દેહ નહીં હોતા હૈ તબ તક ઉસકે નિર્ણય કરને કી ઓર પ્રવૃત્તિ નહીં હોતી હૈ, અતઃ વિશિષ્ટ જ્ઞાનકે અભાવમેં મી પ્રવૃત્તિ હોતી હૈ, યહ વાત નિશ્ચિત હૈ । “ સંસાર ઓર ઉસકે કારણ અનન્ત દુઃખદાયી હૈં અથવા નહીં ” ઇસ પ્રકાર જબ મોક્ષાર્થી જીવકો ઉનમેં

પ્રાપ્તિ બતાવે છે, માટે કારણોમાં વિવાદ થવાથી આ સ્વાભાવિક સંશય થાય છે કે પહેલી માન્યતા ઠીક છે કે આ માન્યતા ઠીક છે. આવા પ્રકારનો સંશય જ્યારે થાય છે ત્યારે તેના નિર્ણય માટે પુરુષની આકાંક્ષા તેની તરફ વળે છે. જેવી રીતે ચણા આદિ બીજોમાં અંકુરોત્પાદન કરવા વિષે મનુષ્ય-ખેડૂત-ને સંદેહ ઉત્પન્ન થાય છે કે આ ચણા આદિ અંકુરોત્પાદન કરી શકશે કે નહિ ? ત્યારે તે ઉદ્ભવેલા તે સંશયના કારણે તેની પરીક્ષા કરવાના કામે લાગી જાય છે અને તેને જળ-પૂર્ણ કેઈ વાસણમાં રાખે છે. આ પ્રકારે સંશયથી પ્રવૃત્તિશીલ બની તે પોતાની ધારણાનો નિર્ણય કરી લે છે. એવી જ રીતે મોક્ષના કારણોની માન્યતાઓમાં જ્યારે સંદેહ ઉત્પન્ન થાય છે ત્યારે મોક્ષાર્થી જીવ તેનાથી પ્રેરિત થઈ સદ્ગુરુ આદિ વિશિષ્ટ જ્ઞાનિઓના ઉપદેશ આદિના શ્રવણ કરવાની પ્રવૃત્તિ કરે છે અને એ દ્વારા સત્ય અને અસત્યનો નિર્ણય કરે છે.

પદાર્થમાં જ્યાં સુધી સંદેહ નથી થતો ત્યાં સુધી તેનો નિર્ણય કરવાની પ્રવૃત્તિ નથી થતી; માટે વિશિષ્ટ જ્ઞાનના અભાવમાં પણ પ્રવૃત્તિ થાય છે, એ વાત નિશ્ચિત છે. “ સંસાર અને તેનું કારણ અનન્ત દુઃખદાયી છે કે નહિ ” આવા

સંશયવતઃ સંસારઃ પરિજ્ઞાતો ભવતિ, તત્પરિજ્ઞાનાન્ન સર્વવિરતિરિતિ તાં નિર્દેષ્ટુ-  
માહ—‘જે છે’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—જે છે એ સાગારિયં ન સેવઈ; કદ્દુ એવમવિયાળઓ  
વિઙ્ગિયા મંદસ્સ બાલયા; લહ્ધા હુરત્થા પહિલેહાણ આગમિત્તા  
આણવિજ્ઞા આણાસેવણયાણ—તિવેમિ ॥ સૂ. ૪ ॥

છાયા—યશ્ચેકઃ સ સાગારિકં ન સેવતે, કૃત્વા એવમવિજ્ઞાનતો દ્વિતીયા  
મન્દસ્ય બાલતા, લબ્ધાનપ્યર્થાન્ પ્રત્યુપેક્ષ્યાઽઽગમ્યાઽઽજ્ઞાપયેદનાસેવનતયેતિ  
બ્રવીમિ ॥ સૂ. ૪ ॥

સન્દેહ હોતા હૈ તો વહ ઉસ સન્દેહસે ઉસકા નિર્ણય કર વહાં સે નિવૃત્ત  
હોતા હૈ, ઇસ લિયે વિશિષ્ટ જ્ઞાનકે અભાવમેં સંશય સે મી જીવકી જબ  
પદાર્થકે નિર્ણય કરને કી ઓર પ્રવૃત્તિ હોતી હૈ તો ઇસ પ્રકારસે અન્યોન્યા-  
શ્રય દોષ નહીં આતા હૈ; ક્યોં કિ મોહકે કારણભૂત સંસારાદિક પદાર્થોં  
મેં ‘યે સુખદાયી હૈં અથવા નહીં?’ ઇસ પ્રકાર કે સન્દેહ કે નિર્ણયાર્થ ઉનમેં  
પ્રવૃત્તિશીલ પુરુષ કે સન્દેહ દૂર હોતે હી વિરાગપરિણતિ હો જાયગી ।  
ઇસ પરિણતિકા નામ હી મોહકા અભાવ હૈ, અતઃ સૂત્રકાર કા યહ કથન  
કિ ‘સંશય કો નહીં જાનનેવાલે કે લિયે સંસાર અપરિજ્ઞાત હૈ ઓર ઉસે  
જાનનેવાલે કે લિયે વહ પરિજ્ઞાત હૈ’ ટીક હી હૈ ॥ સૂ. ૩ ॥

સંશયજ્ઞાનવાલે કો સંસાર પરિજ્ઞાત હોતા હૈ ઓર ઉસકે પરિજ્ઞાત  
હોને પર ઉસે સર્વવિરતિ કા લાભ હોતા હૈ, અતઃ ઉસ વિરતિ કો સૂત્ર-  
કાર કહતે હૈ—‘જે છે’ ઇત્યાદિ ।

પ્રકારે જ્યારે મોક્ષાર્થી જીવને તેમાં સંદેહ થાય છે તો તે એ સંદેહથી તેનો  
નિર્ણય કરી ત્યાંથી નિવૃત્ત થાય છે. આ કારણે વિશિષ્ટ જ્ઞાનના અભાવમાં સંશયથી  
પણ જ્યારે પદાર્થનો નિર્ણય કરવા તરફ જીવની પ્રવૃત્તિ થાય છે ત્યારે ‘અન્યો-  
ન્યાશ્રય’ દોષ આવતો નથી. કારણ કે મોહના કારણભૂત સંસારાદિક પદાર્થોમાં  
‘એ સુખદાયી છે કે નહિ’ એવા પ્રકારના નિર્ણય માટે તેનામાં પ્રવૃત્તિશીલ  
પુરુષને સંદેહ દૂર થતાં જ વિરાગ-પરિણતિ થઈ જશે, આ પરિણતિનું નામ જ  
મોહનો અભાવ છે, માટે સૂત્રકારનું આ કથન કે ‘સંશયને નહિ જાણનારા માટે  
સંસાર અપરિજ્ઞાત છે અને તેને જાણવાવાળા માટે તે પરિજ્ઞાત છે’ ટીક જ છે. ॥ સૂ. ૩ ॥

સંશયજ્ઞાનવાળાને સંસાર પરિજ્ઞાત થાય છે અને સંસાર પરિજ્ઞાત થવાથી  
તેને સર્વવિરતિનો લાભ થાય છે, માટે એ વિરતિને સૂત્રકાર કહે છે.—‘જે છે’ ઇત્યાદિ.



ટીકા—‘યશ્લેક’ इत्यादि । यः कश्चित् ल्लेकः=चतुरः परिज्ञातविषयकटु-  
विपाक इत्यर्थः, स सागारिकं=मैथुनं दैवमानुषतैश्चरूपं न सेवते=न करोति, मनोवा-  
कायैर्मैथुनपरायणो न भवतीत्यर्थः । यश्च मोहवशेन पुरुषवेदोदयान्मैथुनं सेवते स  
कृत्वा=विधाय गुर्वादिभिः पृष्ठे सति एवं=मैथुनसेवनं, अविजागतः=अन्तर्भावितण्य-  
र्थतया अविज्ञापयतः गुरवे चानिवेदयतस्तदपह्नवानस्येत्यर्थः मन्दस्य=अज्ञस्य-अ-  
विदितमैथुनकटुकफलस्य द्वितीया=मैथुनसेवनादपरा मृषावादरूपा, यद्वा-द्वितीया  
=कृतपापापनोदार्थं पुनरकरणतयोत्थाय प्रायश्चित्तानाचरणरूपा, बालता=अज्ञानता  
भवति, उक्तञ्च—

જો કોઈ ચતુર હૈ, અર્થાત્ વિષયોં કે કટુક વિપાક કા જ્ઞાતા હૈ,  
વહ દેવ, મનુષ્ય ઔર તિર્યંચોં કે મૈથુન કા મન, વચન ઔર કાય સે  
સેવન કરને મેં પરાયણ નહીં હોતા હૈ । જો મોહકે વશસે અથવા પુરુષ  
વેદ કે ઉદયસે એકાન્તમેં કામસેવન કરતા હૈ ઔર ગુરુ આદિક કે પૂછને  
પર અપને કૃત મૈથુનકો છિપાતા હૈ—નહીં પ્રકટ કરતા હૈ, મૈથુન કે કટુક  
ફલકો નહીં જાનનેવાલે ઉસ અજ્ઞકે મૈથુનસેવન સે એક તો ચતુર્થવ્રત,  
ભંગજન્ય દોષ લગતા હૈ, ઔર પૂછે જાને પર ‘મેંને મૈથુન સેવન નહીં કિયા  
હૈ’ હિસ પ્રકાર છિપાને સે મૃષાવાદરૂપ દ્વિતીય પાપ કા ભી વહ પાત્ર હોતા  
હૈ । અથવા કૃત પાપ કો દૂર કરને કે લિયે ‘મેં અબ હિસ પાપ કા સેવન  
નહીં કરુંગા ’ હિસ પ્રકાર કે વિચારસે યુક્ત હોકર પ્રાયશ્ચિત્ત નહીં લેને સે  
અજ્ઞાનતા કા પ્રસંગ આતા હૈ । કહા ભી હૈ—

જે કોઈ ચતુર છે, એટલે વિષયોના કડવા વિપાકનો જાણકાર છે, તે દેવ,  
મનુષ્ય અને તિર્યંચોના મૈથુનને મન, વચન અને કાયાથી સેવન કરવામાં પરાયણ  
થતો નથી, જે મોહના વશથી અથવા પુરુષ-વેદના ઉદયથી એકાંતમાં કામ-સેવન  
કરે છે અને ગુરુ આદિના પુછવાથી પોતે કરેલ મૈથુન-પાપને તેનાથી છુપાવે છે-  
પ્રગટ કરતો નથી, મૈથુનના કડવાં ફળને ન જાણનાર તે અજ્ઞાની હોવને મૈથુન  
સેવનથી એક તો ચતુર્થવ્રત-ભંગજન્ય દોષ લાગે છે, અને જ્યારે તેને પુછવામાં આવે  
છે ત્યારે તે ‘મેં મૈથુન સેવેલ નથી.’ આ પ્રકારે છુપાવે છે, તેથી મૃષાવાદરૂપ  
બીજા પાપનો પાત્ર પણ તે થાય છે, અથવા કરેલા પાપને દૂર કરવા માટે ‘હું હવે  
આવા પાપનું સેવન નહિ કરું’ આ પ્રકારના સંકલ્પ કરીને પણ જો તેને  
માટે પ્રાયશ્ચિત્ત અંગીકાર કરતો નથી તો તેને અજ્ઞાનતાનો પ્રસંગ આવે છે.  
કહ્યું પણ છે—

“ જે खलु विसए सेवइ, सेवित्ता वा णालोएइ, परेण वा पुट्ठो निण्हवइ, अहवा तं परं सएण दोसेण वा पाविट्ठयरेण वा दोसेण उवलंपिज्जइ ”—इति ।

છાયા—યઃ खलु विषयं सेवते, सेवित्वा वा नालोचयति, परेण वा पृष्ठो निह्वते, अथवा तं परं स स्वेन वा दोषेण पापिष्ठतरेण वा दोषेणोपलिम्पति, इति ।

કિમેતેનેત્યાહ—‘લબ્ધા’—નિત્યાદિ, લબ્ધાનપિ=પ્રાપ્તાનપિ સ્વાધીનાનિત્યર્થઃ, અર્થાન્=શબ્દાદિવિષયાન્, અત્ર દ્વિતીયાર્થે પ્રથમાઽઽર્પત્વાત્ ।

यद्वा ‘दुरस्था’ इति देशीभाषया ‘बहिर्द्धा’ तेन लब्धान्=विषयान् चित्ता-द्वहर्हिर्विदध्यात्, अलब्धांश्च मनसाऽपि न चिन्तयेदिति भावः । प्रत्युपेक्ष्य=नरक-निगोदादिदुःखजनकत्वेन पर्यालोच्य, तानेव परत्रेह च कटुकफलप्रदतया आगम्य=

“ જે खलु विसए सेवइ, सेवित्ता वा णालोएइ, परेण वा पुट्ठो निण्हवइ, अहवा तं परं सएण वा दोसेण पाविट्ठयरेण वा दोसेण उवलंपिज्जइ ” इति ।

જો વિષયસેવન કરતા હૈ; સેવન કરને પરત્સકી આલોચના નહીં કરતા હૈ; દૂસરે-ગુર્વાદિકોં કે પૂછને પર ઉસે છિપાતા હૈ, વહ અપને પાપિષ્ઠતર ( ગુરુતર ) દોષ સે સ્વયં ઉપલિપ્ત હોતા હૈ ।

इस लिये सूत्रकार कहते हैं कि मोक्षार्थभलाषी का कर्तव्य है कि वह प्राप्त भी उन शब्दादिक विषयों का यह विचार कर त्याग करे कि—इन का विपाक जीव को नरकनिगोदादिकके दुःखों का जनक है, तथा इनके सेवनकर्ता, इस लोक और परलोक, दोनों लोकों में भयंकर दुःखों को भोगते हैं । जिस प्रकार यह स्वयं उनका कटुक विपाक जान कर उनसे

“ જે खलु विसए सेवइ सेवित्ता वा णालोएइ, परेण वा पुट्ठो निण्हवइ, अहवा तं परं सएण दोसेण वा पाविट्ठयरेण वा दोसेण उवलंपिज्जइ ”—इति ।

જે વિષયનું સેવન કરે છે, સેવન કરવા છતાં એની આલોચના કરતો નથી, બીજું ગુરુ આદિના પુછવા છતાં છુપાવે છે તે પોતાના પાપિષ્ઠ તર (ગુરુતર) દોષથી પોતે ઉપલિપ્ત થાય છે.

આ કારણે સૂત્રકાર કહે છે કે—મોક્ષાર્થીજનનું એ કર્તવ્ય છે કે તે પ્રાપ્ત પણ શબ્દાદિ વિષયોનો આ પ્રકારે વિચાર કરી ત્યાગ કરે કે શબ્દાદિ વિષયોના વિપાક જીવને માટે નરક-નિગોદાદિક દુઃખોનું કારણ છે અને તેનું સેવન કરનાર આલોક અને પરલોકમાં ભયંકર દુઃખો ભોગવે છે. જે પ્રકારે તે પોતે તેના કડવા વિપાક જાણીને તેનાથી વિરક્ત થાય છે તે જ પ્રકારે તે બીજા

જ્ઞાત્વા અન્યાન્=સ્વાતિરિક્તાન્ જનાન્ અનાસેવનતયા ‘મૈથુનમનાસેવનીયમ્’  
 इत्यादिरूपेण आज्ञापयेत्=तीर्थंकराज्ञामवधार्योपदिशेत् । स्वयमपि तस्माद्विरमेदि-  
 त्यर्थोऽपि । इति ब्रवीमीत्यधिकारसमाप्त्यर्थः ॥ सू० ४ ॥

અન્યદપ્યાહ—‘પાસહ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—પાસહ એ રૂવેસુ ગિદ્દે પરિણિજ્જમાણે । ઇત્થ ફાસે  
 पुणो पुणो, आवन्ती केयावन्ती लोयंसि आरंभजीवी, एएसु  
 चेव आरंभजीवी । इत्थवि वाले परिपच्चमाणे रमइ पावेहिं कम्मेहिं,  
 असरणे सरणांति मन्नमाणे, इहमेगेसिं एगचरिया भवइ । से  
 बहुकोहे बहुमाणे बहुमाये बहुलोभे बहुरए बहुनडे बहुसढे बहु-  
 संकप्पे आसवसक्की पलिउच्छन्ने उट्टियवायं पवयमाणे, ‘मा मे  
 केइ अदक्खू’ अन्नाणपमायदोसेणं सययं मूढे धम्मं नाभि-  
 जाणइ, अट्टा पयामाणव ! कम्मकोविआ जे अणुवरया अविज्जाए  
 पलिमुक्खमाहु, आवट्ठमेव अणुपरियट्ठंति—त्तिवोमि ॥ सू० ५ ॥

छाया—પશ્યત એકાન્ રૂપેષુ શુદ્ધાન્ પરિણીયમાનાન્ । અત્ર સ્પર્શાન્ પુનઃ  
 पुनः, यावन्तः कियन्तो लोके आरम्भजीविनः, एतेष्वेव आरम्भजीविनः । अत्रापि  
 बालः परिपच्यमानो रमते पापेषु कर्मसु, अशरणं शरणमिति मन्यमानः, इहैकेषा-  
 मेकचर्या भवति । स बहुकोधो बहुमानो बहुमायो बहुलोभो बहुरजा ( बहुरतो )  
 बहुनटो बहुशठो बहुसंकल्प आसवसक्तिः पलितावच्छन्न उत्थितवादं प्रवदन्, ‘ मा  
 मां केऽप्यद्राक्षुः’ अज्ञानप्रमाददोषेण सततं भूढो धर्मं नाभिजानाति, आर्ताः प्रजा  
 मानव ! कर्मकोविदा येऽनुपरता अविद्यया परिमोक्षमाहुः, आवर्तमेवानुपरिवर्तन्ते,  
 इति ब्रवीमि ॥ सू० ५ ॥

વિરત હોતા હૈ ઉસી પ્રકાર દસરે જીવોં કો ખી “યે મૈથુનાદિ વિષય  
 सेवन करने योग्य नहीं हैं ” इस प्रकार उनसे विरक्त होनेका उपदेश  
 देता है । “ इति ब्रवीमि ” इस प्रकार यह विषय जैसा मैंने भगवान् के मुख  
 से सुना है वैसा ही है जम्बू ! तुम से कहा है ॥ सू० ४ ॥

और भी कहते हैं—‘पासह’ इत्यादि—

ભુવોને પણ “મૈથુનાદિ વિષયો સેવન કરવા યોગ્ય નથી ” આ પ્રકારે તેનાથી  
 विरक्त થવાનો ઉપદેશ આપે. “ इति ब्रवीमि ” આ પ્રકારે આ વિષય જે પ્રકારે  
 મેં ભગવાનના મુખેથી સાંભળ્યો છે તે પ્રકારે જ હે જમ્બૂ ! તમને કહેલ છે. ॥ સૂ૦ ૪ ॥

ફરીથી પણ કહે છે—‘પાસહ’ ઇત્યાદિ.



ટીકા—‘પદ્યત’ इत्यादि । हे भव्यजीवाः ! गूयं रूपेषु=शुक्लादिषु चक्षु-  
रिन्द्रियप्रत्यक्षविषयेषु, बहुवचननिर्देशेन शब्दादिषु=शब्द-गन्ध-रस-स्पर्शेषु कटुक-

हे भव्य ! देखो ये कितनेक संसारी जीव, चक्षु-इन्द्रियके विष-  
यभूत शुक्लादि रूपों में, तथा अन्य इन्द्रियोंके विषयभूत शब्द, गन्ध,  
रस और स्पर्शरूप विषयों में कि जिनका सेवन इन जीवों को परि-  
णाममें कटुक फल प्रदाता होता है उनमें कैसे मूर्च्छित हो रहे हैं ।  
इन्द्रियों के विषयों में लुब्ध ये प्राणी उन २ विषयों को प्राप्त करने की  
ओर झुकी हुई इन्द्रियों द्वारा विषयों के सन्मुख और संसारके सन्मुख  
होते रहते हैं ।

भावार्थ—इन्द्रियों में आसक्त प्राणी इन्द्रियों के विषयों में अधीन  
बन कर उनके सेवनजन्य परिणाम का कुछ भी विचार न करके  
निरन्तर उन्हीं में आसक्त होता रहता है । उसे इस बात का भान  
ही नहीं होता कि इन विषयों के सेवनसे इन्द्रियोंकी तृप्ति नहीं  
होगी । विषयाभिलाषा इन्द्रियों को अपने २ विषय की ओर ही  
अधिकाधिक रूपमें आकृष्ट करती रहती है । इस परिणति से वह अपने  
संसार की वृद्धि ही करता है । एक २ इन्द्रिय के विषय को सेवन करने  
वाले प्राणियों की वह दुर्दशा अपने नयनों से निहारता है फिर भी अपने  
को सुरक्षित मान रहा है, यही विषयों के सेवन की बलवत्ता है । वह

હે ભવ્ય ! જો તો ખરે; આ કેટલાક સંસારી જીવો ચક્ષુ ઇન્દ્રિયના વિષ-  
યભૂત શુક્લાદિ રૂપોમાં તથા બીજા ઇન્દ્રિયોના વિષયભૂત શબ્દ, ગંધ, રસ, અને  
સ્પર્શાદિક વિષયોમાં કે જેનું સેવન તે જીવોને પરિણામમાં કટકા ફળ આપવા-  
વાળું નિવડે છે એમાં કેવા મૂર્ચ્છિત થઈ રહેલ છે. ઇન્દ્રિયોના વિષયોમાં લુબ્ધ તે  
પ્રાણી તે તે વિષયોને પ્રાપ્ત કરવા તરફ ઢળતી ઇન્દ્રિયો દ્વારા વિષયોની સામે અને  
સંસારની તરફ ખેંચાઈ રહેલ છે.

ભાવાર્થ:—ઇન્દ્રિયોમાં આસક્ત પ્રાણી ઇન્દ્રિયોના વિષયોને આધીન બની  
તેના સેવનના પરિણામનો કાંઈ પણ વિચાર કર્યા વગર હર-હંમેશ તેમાં આસક્ત  
બની રહે છે, તેને એ વાતનું ભાન થતું નથી કે તેવા વિષયોના સેવનથી ઇન્દ્રિ-  
યોની તૃપ્તિ થવાની નથી. વિષયોની અભિલાષા ઇન્દ્રિયોને પોતાના વિષય તરફ  
અધિકાધિક રૂપમાં ખેંચતી રહે છે. આ પરિણતિથી તે પોતાના સંસારની વૃદ્ધિ  
જ કરે છે. એક એક ઇન્દ્રિયના વિષયનું સેવન કરનાર પ્રાણીની દુર્દશા તે  
પોતાની આંખે જુએ છે છતાં પણ પોતાને સુરક્ષિત માને છે, એ જ વિષયોના

તરવિપાકજનકેષુ એકાન્ કાંશ્વિત્ ગુદાન્=મૂર્છિતાન્ પરિણીયમાનાન્-પરિ=સર્વતો  
નીયમાનાન્=ઇન્દ્રિયૈર્વિષયસમ્મુખં સંસારસમ્મુખં પરત્ર નરકનિગોદાદિષુ ચા પ્રાપ્ય-  
દેશ્વતા હૈ કિ (૧) સ્પર્શન-ઇન્દ્રિય કા મોહી મત્ત ગજરાજ શ્વેદુ મેં ગિર કર  
અપને પ્યારે જીવન કા નાશ કર દેતા હૈ, (૨) રસના-ઇન્દ્રિય કા કામી મત્સ્ય  
કાંટેમેં લગે હુણ માંસ કી અભિલાષા મેં પડ કર અપને પ્રાણોં કો શ્વો દેતા  
હૈ, (૩) ગ્રાણ-ઇન્દ્રિય કા વશીભૂત વના વિચારા ભ્રમર કાલકે ગાલમેં પડ-  
જાતા હૈ। (૪) ચક્ષુરિન્દ્રિય કા લોલુપી પતંગ અપને પ્રાણોં કો દીપક કી લૌ મેં  
પડ કર નષ્ટ કર દેતા હૈ, (૫) કર્ણ-ઇન્દ્રિય કે વિષય કા લોભી મૃગ વધિકોં  
દ્વારા અપને મોલે-માલે જીવન કા ઉત્સર્ગ કર દેતા હૈ। પરન્તુ યહ સચ  
કુછ અપની આંશ્વોં સે દેશ્વતે હુણ મી પાંચોં ઇન્દ્રિયોં કે વિષયોંમેં મત્ત  
હુઆ યહ પ્રાણી ફિર મી નહીં ચેતતા, યહી વડી વિચિત્રતા હૈ। વિષ-  
યાસક્ત જીવોં કી વિષયોં કી ઓર પ્રવૃત્તિ હોનેસે સંસારમેં ડનકા પતન  
તો હોતા હી હૈ, પરન્તુ વે પરભવમેં મી નરકનિગોદાદિકમેં જા કર  
નિવાસ કરતે હૈં। યચ્ચપિ “સંસારસમ્મુખં” ઇસ પદસે હી નરક-નિગો-  
દાદિકમેં ડનકા પતન સિદ્ધ હોતા હૈ, ફિર મી “પરત્ર નરકનિગોદા-  
દિષુ” યહ જો વાક્ય પૃથક્ રૂપસે દિયા હૈ ડસકા અભિપ્રાય યહ હૈ  
કિ અજ્ઞાની જીવ અથવા ચાર્વાક (નાસ્તિક) જૈસે મૌતિકવાદી પ્રત્યક્ષ

સેવનની બળવત્તા છે. તે જુએ છે કે-(૧) સ્પર્શન-ઇન્દ્રિયમાં મત્ત બનેલો ગજરાજ  
ખાડામાં પડી પોતાના પ્યારા જીવનનો નાશ કરી દે છે. (૨) રસના-ઇન્દ્રિયનું  
લોલુપી માછલું ગલ (કાંટા)માં લાગેલ માંસની અભિલાષામાં પડી પોતાના  
પ્રાણ ખોઈ જોડે છે. (૩) ગ્રાણ-ઇન્દ્રિયને વશીભૂત બનેલ ભ્રમર કાળના ગાલમાં  
પડી બચ છે. (૪) ચક્ષુ-ઇન્દ્રિયનો લોલુપ પતંગીયો દીપકશિખામાં પડી  
પોતાના પ્રાણ ન્યોછાવર કરી દે છે. (૫) કર્ણ-ઇન્દ્રિયના વિષયનો લોભી મૃગ  
શિકારીદ્વારા પોતાના ભોળા જીવનનો નાશ વહોરી લે છે. પરંતુ આ બધું પોતાની  
સર્ગી આંખે જોતો થકો પણ પાંચો ઇન્દ્રિયોના વિષયોમાં મત્ત બનેલ આ માનવ પ્રાણી  
ચેતતો નથી, આ જ મહાન વિચિત્રતા છે. વિષયાસક્ત જીવોની વિષયો તરફ પ્રવૃત્તિ  
હોવાને લઈ સંસારમાં તેનું પતન થતું જ રહે છે, પરંતુ પરભવમાં પણ તેને નરક-  
નિગોદાદિકમાં નિવાસ કરવો પડે છે. જો કે “સંસારસમ્મુખં” આ પદથી જ નરક-  
નિગોદાદિકમાં તેનું પતન સિદ્ધ થાય છે, તો પણ “પરત્ર નરકનિગોદાદિષુ” આ જે  
વાક્ય પૃથક્ રૂપે આપેલ છે તેનો અભિપ્રાય જો છે કે અજ્ઞાની જીવ અથવા  
ચાર્વાક (નાસ્તિક) જેવા ભૌતિકવાદી પ્રત્યક્ષ દૃશ્યમાન આ મનુષ્ય અને તિર્થંચ

માણાન, અસ્મિન્નપિ લોકે મહામોહાન્ પારદારિકાદીન્ આક્રોશવધબન્ધનપ્રહરણાદિ-  
મિર્દુઃસ્વૈર્વાહ્યમાનાન્, અથવા-વાહ્યરતિષુ સંસક્તાન્, વધ્યસ્થાને વધાર્થં પરિણીયમાનાન્,  
યદ્વા બુધ્યમાનાન્ રાગદ્વેષવદ્વાન્ વિષયસ્તોતોભિસ્તત્ર તત્ર પરિણીયમાનાન્, અથવા  
દૃશ્યમાન ઇસ મનુષ્ય ઓર તિર્યચ્ચગતિકો હી સંસાર સમજ્ઞ રહે હૈં ઓર  
इनके दुःखों को ही दुःख भान रहे हैं, परन्तु हमें यह समझाना है कि  
तुम्हारी मान्यता से भी अधिक संसार और दुःखराशि है । अपने हाथ  
से सबको साढेतीन हाथ समझना जिस प्रकार गलत है उसी प्रकार  
अपनी मान्यतानुसार ही संसार एवं दुःख समझना भी गलत है । यहां  
पर दुःखों का वर्णन चल रहा है, अतः उन्हीं की प्रधानता प्रकट करने  
के लिये नरकनिगोदादिक गतियों का यहां पर निर्देश किया गया है ।  
नरकों के दुःखों से भी बढ़कर निगोद गति के दुःख होते हैं, जिन्हें  
विषयासक्त जीव प्राप्त करते हैं-सहन करते हैं ।

इस लोक में भी परदार-आसक्त महामोही जीव आक्रोश, वध,  
बन्धन, और प्रहरणादि-( शस्त्रादि )-जन्य दुःखों को तो प्राप्त करते हैं,  
साथमें उन्हें फांसी भी लटकना पड़ता है ।

अथवा-जानकारभी विषयों में आसक्त प्राणी राग और द्वेष से बद्ध  
हो कर विषयस्त्रोतोंद्वारा उनर विषयों की ओर झुकते रहते हैं । अथवा-वे

ગતિનેજ સંસાર સમજે છે અને એનાં દુઃખોનેજ દુઃખ માને છે, પરંતુ  
અમારૂં વક્તવ્ય એવું છે કે તેમની માન્યતાથી પણ અધિક સંસાર તથા  
દુઃખરાશિ છે. પોતાના હાથથી બધાને સાગત્રણ (૩૧) હાથ સમજવા, એ જે રીતે ભૂલ-  
ભયું છે તેવા પ્રકારે પોતાની માન્યતાનુસારજ સંસાર અને દુઃખ સમજવાં પણ  
ભૂલ ભરેલ છે, આ સ્થળે દુઃખોનું વર્ણન આવે છે માટે તેની પ્રધાનતા પ્રગટ  
કરવા નરકનિગોદાદિક ગતિઓનો આ જગ્યાએ નિર્દેશ કરેલ છે. નરકોનાં  
દુઃખોથી પણ વધારે નિગોદગતિનાં દુઃખો છે જેને વિષયાસક્ત જીવ પ્રાપ્ત કરે  
છે-સહન કરે છે.

આ લોકમાં પણ પરસ્ત્રી-આસક્ત જેવા મહામોહી જીવ દુઃખ, વધ, બંધન  
અને શસ્ત્રાદિજન્ય દુઃખોને તો પ્રાપ્ત કરે જ છે તેમજ તેને ફાંસી પર પણ  
લટકવું પડે છે.

અથવા જાણકાર પણ વિષયોમાં આસક્ત પ્રાણી રાગ અને દ્વેષથી બંધાઈને  
વિષયસ્ત્રોતોદ્વારા તે તે વિષયોની તરફ ખેંચાતો રહે છે. અથવા તે વિષયસેવનકર્મો



કર્મણા સંસારસમુદ્રે પરિણીયમાનાન પश्यत=પ્રેક્ષધ્વમ્ । તે ચ વિષયવિષમૂર્ચ્છિતાઃ  
કિમાસાદ્યન્તીત્યાહ—‘અત્રે’-ત્યાદિ, અત્ર=અહ સંસારે ઇન્દ્રિયલોભાઃ સ્પર્શાન્=વિષ-  
યાસેવનજન્યદુઃખાનિ પુનઃ પુનઃ લભન્તે इत्यर्थः, આરમ્ભે વા પ્રવર્તન્તે । કે લભન્તે ?  
इत्याह—‘યાવન્ત’ इत्यादि, લોકે=સાવધવ્યાપારપ્રવૃત્તે ગૃહસ્થલોકે યાવન્તઃ  
ક્રિયન્તઃ આરમ્ભજીવિનઃ=સાવધવ્યાપારપરાયણા ગૃહસ્થા નરકનિગોદાદીનિ પૂર્વો-  
ક્તાનિ દુઃખાન્યનુભવેયુઃ । યે ચ ગૃહસ્થાશ્રિતા દ્રવ્યલિङ्गिनस्तेऽपि दुःखभाजो भव-  
न्तीत्याह—‘એતેષ્વેવ’-ત્યાદિ, એતેષ્વેવ=સાવધવ્યાપારતત્પરેષુ ગૃહસ્થેષ્વેવ, આર-  
મ્ભજીવિનઃ=આરમ્ભેણ=અસંયમેન જીવિતું શીલં યેષાં તે આરમ્ભજીવિનઃ=સેવાર્થ  
વિષયસેવન-કર્મો દ્વારા ઇસ સંસારસમુદ્રમે ધકેલ દિયે જાતે હૈં । વિષયોં મેં  
મૂર્ચ્છિત પ્રાણી ત્રયા પ્રાપ્ત કરતે હૈં ? ઇસ વિષયકો પ્રકટ કરને કે લિયે  
સૂત્રકાર કહતે હૈં—‘અત્રે’-ત્યાદિ, વિષયલંપટ માનવ ઇસ સંસારમે વિષય  
સેવનજન્ય દુઃખોંકો બારંબાર પ્રાપ્ત કરતે રહતે હૈં, અથવા આરંભાદિકોં મેં  
પ્રવૃત્તિ કરતે રહતે હૈં । ગૃહસ્થ-જીવન, વિના સાવધ વ્યાપારોં મેં પ્રવૃત્તિ  
કિયે ચલ નહીં સકતા, ઇસ લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈં કિ સાવધ વ્યાપારોં મેં  
પ્રવૃત્તિશાલી ગૃહસ્થજન હોતે હૈં, અતઃ ઇનમેં જિતને મી આરંભજીવી-  
સાવધ વ્યાપારોંકો કરનેમેં લગે હુણ ગૃહસ્થજન હૈં વે પૂર્વોક્ત નરક  
નિગોદાદિકોંકે દુઃખોંકા અનુભવ કરનેવાલે હોતે હૈં । તથા ગૃહસ્થોંકે  
આશ્રિત જો મી દ્રવ્યલિङ्गी સાધુ હોતે હૈં વે મી દુઃખોંકો પ્રાપ્ત કરતે હૈં ।  
યહ બાત “એતેષ્વેવ આરમ્ભજીવિનઃ” ઇસ સૂત્રાંશ સે પ્રતિપાદિત કિયા  
હૈં । આરંભ-અસંયમ સે જીનેકા જિનકા સ્વભાવ હોતા હૈં વે આરંભ-

દ્વારા આ સંસારસમુદ્રમાં ધકેલવામાં આવે છે. વિષયોમાં મુગ્ધ બનેલ પ્રાણી  
શું પ્રાપ્ત કરે છે ? આ વિષયને પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે—‘અત્ર’  
इत्यादि. વિષય-લંપટ મનુષ્ય આ સંસારમાં વિષય-સેવન-જન્ય દુઃખને વારં-  
વાર પ્રાપ્ત કરતો રહે છે, અથવા આરંભ આદિમાં પ્રવૃત્તિ કરતો રહે છે. ગૃહસ્થ-  
જીવન, વગર સાવધ વ્યાપારોમાં પ્રવૃત્તિ કર્યે ચાલતું નથી, આ માટે સૂત્રકાર  
કહે છે કે—સાવધ વ્યાપારોમાં પ્રવૃત્તિશાળી ગૃહસ્થ માણસો હોય છે, માટે આમાં  
જેટલા પણ આરંભજીવી સાવધ વ્યાપાર કરવામાં લાગેલ ગૃહસ્થ માણસો છે  
તેઓ પૂર્વોક્ત નરક-નિગોદાદિના દુઃખોના અનુભવ કરવાવાળા હોય છે, તેમજ  
ગૃહસ્થોના આશ્રિત જે દ્રવ્યલિંગી સાધુ હોય છે તેઓ પણ દુઃખોને પ્રાપ્ત કરે  
છે, આ વાત “એતેષ્વેવ આરમ્ભજીવિનઃ” આ સૂત્રાંશથી પ્રતિપાદિત કરવામાં  
આવેલ છે. આરંભ-અસંયમથી જીવવાનો જેનો સ્વભાવ છે એ આરંભજીવી છે.

સ્વેન સાકં નીયમાનગૃહસ્થૈઃ સમ્પાદિતેનાધાકર્માદિદોષદૂષિતેનાશનેનોપજીવિનો દણ્ડિશાક્યાદયો ગૃહસ્થનિશ્રયા વિહારિણોઽવસન્નપાર્શ્વસ્થાદયો વા મુનિવેષધારિણો દ્રવ્યલિङ્ગિનો વા પઙ્ગીવનિકાયોપમર્દકાઃ સમુત્પદ્યન્તે ।

યદ્વા—એતેષ્વેવ=પઙ્ગીવનિકાયેષ્વેવ આરંભજીવિનો જાયન્તે । યથ સમ્ય-ગ્દર્શનાદિકમુપલભ્યાપિ વિપરીતપરિણતેઃ સાફલ્યમનવાપ્ય ચારિત્રાન્તરાયોદયા-ત્પુનરપિ સાવધાનુષ્ઠાયા ભવતીતિ દર્શયતિ—

‘અત્રાપી’—ત્યાદિ, અત્રાપિ=આર્હતસંયમાભ્યુપગમેઽપિ બાલઃ=અવિદિતતત્ક-દુકફલઃ પરિપચ્યમાનઃ=વિપચતુળ્યા પરિપીડ્યમાનઃ, યદ્વા ‘પરિતપ્યમાનઃ’ જીવી હૈં । સાવધ વ્યાપાર મેં તત્પર હન ગૃહસ્થોં મેં હી યે પઙ્ગીવનિ-કાય કે ઉપમર્દક આરંભજીવી, અર્થાત્—સેવાકે લિયે અપને સાથ જો ગૃહસ્થોં કો રખતે હૈં તથા અનેક દ્વારા નિર્માપિત ઔર આધાકર્માદિ દોષોં સે દૂષિત આહાર સે જો જીતે હૈં એસે દણ્ડિશાક્યાદિ સાધુ, અથવા ગૃહસ્થોં કી નિશ્રામેં વિહાર કરનેવાલે અવસન્ન-પાસત્યાદિક, અથવા-મુનિવેષધારી દ્રવ્યલિङ્ગી સાધુ ઉત્પન્ન હોતે હૈં । અથવા—યે આરંભ-જીવી દણ્ડિશાક્યાદિક પઙ્ગીવનિકાયોં મેં હી ઉત્પન્ન હોતે હૈં । જો સમ્યગ્દર્શનાદિકકો પ્રાપ્ત કર કે બી અપની વિપરીત પરિણતિ સે ઉસકી સફલતા કો ન પા કર પશ્ચાત્ ચારિત્ર-અન્તરાય (ચારિત્ર-મોહનીય) કે ઉદય સે પુનરપિ સાવધ વ્યાપારોં કો કરનેવાલા હોતા હૈ, ઉસકો “અત્રાપિ બાલઃ પરિપચ્યમાનો રમતે પાપેષુ કર્મસુ અશરણં શરણમિતિ મન્યમાનઃ” હિસ સૂત્રાંશ સે સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરતે હૈં કિ—

સાવધ વ્યાપારમાં તત્પર આ ગૃહસ્થોમાં જ પઙ્ગીવનિકાયના ઉપમર્દક આરંભજીવી, અર્થાત્ સેવા માટે પોતાની સાથે જે ગૃહસ્થોને રાખે છે તથા એના દ્વારા નિર્માપિત અને આધાકર્માદિક દોષથી દૂષિત આહારથી જે ભૂવે છે એવા ઢંડી શાક્યાદિ સાધુ અથવા ગૃહસ્થોની નિશ્રામાં વિહાર કરવાવાળા અવ-સન્ન-પાસત્યાદિક અથવા મુનિવેષધારી દ્રવ્યલિङ્ગી સાધુ ઉત્પન્ન થાય છે. અથવા—આ આરંભજીવી ઢંડી, શાક્યાદિ પઙ્ગીવનિકાયોમાં જ ઉત્પન્ન થાય છે.

જે સમ્યગ્દર્શનાદિકને પ્રાપ્ત કરીને પણ પોતાની વિપરીત પરિણતિથી તેની સંકળતાને પ્રાપ્ત ન કરતાં પાછળથી ચારિત્રાન્તરાય (ચારિત્રમોહનીય) ના ઉદયથી પુનઃ સાવધ વ્યાપારના કરવાવાળા અને છે. સૂત્રકાર—“અત્રાપિ બાલઃ પરિપચ્યમાનો રમતે પાપેષુ કર્મસુ અશરણં મે શરણમિતિ મન્યમાનઃ” આ સૂત્રાંશથી તેવા ભૂવોનું પ્રદર્શન કરે છે કે—દીક્ષાને અંગીકાર કરીને પણ જે સાવધ

इतिच्छाया; परितप्यमानः=इष्टाप्राप्तावनिष्ठाधिगमे चेष्टवियोगे वा तद्व्याकुलतया सर्वतोऽन्तर्बहिर्वा तप्यमानः, एवम् अशरणं=पचनपाचनादिसावद्यचरणमेव शरणं=श्रेयस्करमस्तीति मन्यमानः=बुध्यमानो, विषयस्पृहाजवनिकातिरोहितसम्यग्दर्शनः सन् तत्रैवासक्तो भवतीत्यर्थः, पापेषु=पापजनकेषु कर्मसु=सावद्यव्यापारेषु रमते=क्रीडति । 'पावेहिं कम्मेहिं' इत्यत्रार्पत्वात्सप्तम्यर्थे तृतीया । सावद्यव्यापारवतां गृहस्थादीनां का कथा? केचिन्मुनयोऽपि विषयविपवृण्णितान्तःकरणा अनाचारमाचरन्तीत्याह—'इहे'—त्यादि, इह=जिनशासने; एकेषां=शिथिलकर्मणां कुशीलपार्श्वस्थादीनाम् 'एकचर्या'—चरणं चर्यते वा चर्या, एकस्य चर्या एकचर्या—दीक्षा स्वीकार करके भी जो सावद्य व्यापार के कटुक परिणाम से अपरिचित है और विषयतृष्णा से सर्व प्रकार पीड़ित है, अथवा—इष्टकी अप्राप्ति और अनिष्टके सम्पर्क में, या इष्ट के वियोग होनेपर जो अत्यंत व्याकुल होने से सर्व प्रकार से अन्दर-बाहर सन्तप्त हो रहा है, तथा अशरण को ही अर्थात्-पचनपाचनादिकरूप सावद्य व्यापारों को ही 'ये शरण-श्रेयस्कर हैं' ऐसा मान रहा है, वह विषयरूपी जवनिका (पदी) से तिरोहित समकितवाला हो कर उन सावद्य व्यापारों में ही आसक्तचित्त होता है, और उन्हीं पापजनक कार्यों—सावद्य व्यापारों में क्रीडा करता रहता है—आनंद मानता रहता है । अरे सावद्य व्यापारमें लवलीन गृहस्थों की तो कथा ही क्या कहनी? परन्तु ऐसे भी कई मुनि होते हैं जो विषयरूपी विषसे घृणित-उद्भ्रान्त अन्तःकरण बन अनाचार सेवन करते हुए लजाते नहीं हैं । यही बात "इह एकेषाम् एकचर्या भवति"

વ્યાપારના કડવા પરિણામથી અપરિચિત છે અને વિષયતૃષ્ણાથી સર્વ પ્રકારે પીડિત છે, અથવા ઇષ્ટની અપ્રાપ્તિ અને અનિષ્ટના સંપર્કથી, અગર ઇષ્ટનો વિયોગ થવાથી જે અત્યંત વ્યાકુળ બનીને સર્વ પ્રકારથી અંદર અને બહાર સંતપ્ત બને છે, અને અશરણને જ અર્થાત્ પચન-પાચનાદિકરૂપ સાવધ વ્યાપારને જ આ 'શરણ-શ્રેયસ્કર-છે' એમ માને છે, તે વિષયરૂપી જવનિકા(પદી)થી તિરોહિત સમકિતવાળા બનીને તેવા સાવધ વ્યાપારોમાં જ લવલીન બને છે, અને તેવાં જ પાપજનક કાર્યો—સાવધ વ્યાપારોમાં રચ્યા-પચ્યા રહે છે—આનંદ માનતા રહે છે. અરે ! સાવધ વ્યાપારમાં તટ્થીન ગૃહસ્થોની તો વાત જ ક્યાં કરવી ? પરંતુ એવા પણ કેટલાક દ્રવ્યલિંગી મુનિઓ હોય છે કે જે વિષયરૂપી વિષથી ઉદ્ભ્રાન્તચિત્ત બનીને અનાચારનું સેવન કરવામાં લબ્ધતા નથી. આ વાત "ઇહ એકેષામ્ એકચર્યા ભવતિ" આ સૂત્રાંશથી સૂત્રકાર કહે છે—



एकाकिविहरणं भवति । एकचर्या प्रशस्ताप्रशस्ताभ्यां द्विधा, साऽपि पुनर्द्रव्यभाव-  
भेदात्प्रत्येकं द्विविधा । द्रव्यतः प्रशस्ता स्थविरकल्पिकस्य प्रतिमाप्रतिपन्नस्य श्रद्धा-  
घट्टगुणसम्पन्नस्य वा भवति, तदुक्तं स्थानाङ्गे—

“अट्टहिं ठाणेहिं संपन्ने अणगारे अरिहइ एगल्लविहारपडिमं उपसंपज्जित्ताणं  
विहरित्तए, तंजहा—‘सइही पुरिसजाए (१), सच्चे पुरिसजाए (२), मेहावी  
पुरिसजाए (३), बहुस्सुए पुरिसजाए (४), सत्तिमं (५), अप्पहिगरणे (६),  
धितिमं (७), वीरियसंपन्ने (८) । (ठा. ८ सू. १)

इस सूत्रांश से सूत्रकार कहते हैं—इस जिनशासनमें शिथिल कर्मवाले  
कुशील पासत्थादिकों की एकचर्या होती है—एकाकी विहार होता है ।  
आचरण करना या जो आचरित की जाती है वह चर्या है । एक की चर्या  
एकचर्या है । यह प्रशस्त और अप्रशस्त रूप से दो प्रकार की है । प्रशस्त  
और अप्रशस्त चर्या के भी द्रव्य और भावसे दो दो भेद हैं । बारह प्रकार  
की मुनिप्रतिमा को धारण करनेवाले, अथवा श्रद्धा आदि आठ गुण  
विशिष्ट स्थविरकल्पी साधुकी चर्या द्रव्यसे प्रशस्त चर्या है ।

स्थानाङ्ग में यही विषय ‘अट्टहिं ठाणेहिं’ इत्यादि सूत्र से कहा है ।  
उसका अर्थ यह है—“आठ स्थानों से सम्पन्न अनगार एकाकिविहारप्रतिमा  
को धारण कर विहार करनेलायक है । वे आठ स्थान ये हैं—(१) श्रद्धी  
पुरुषजात, (२) सत्य पुरुषजात, (३) मेधावी पुरुषजात, (४) बहुश्रुत  
पुरुषजात, (५) शक्तिमान्, (६) अल्पाधिकरणवाला, (७) धृतिमान्, और  
(८) वीर्यसम्पन्न” [ ठा. ८ सू० १ ]

આ જીનશાસનમાં શિથિલ કર્મવાળા કુશીલ પાસત્થાદિકોની એકચર્યા થાય  
છે—કુશીલ પાસત્થાદિકો એકલા વિહાર કરે છે. આચરણ કરવું અગર જેનું  
આચરણ કરવામાં આવે છે તે ચર્યા છે. એકની ચર્યા એકચર્યા છે. આ પ્રશસ્ત  
અને અપ્રશસ્ત રૂપથી બે પ્રકારની છે. પ્રશસ્ત અને અપ્રશસ્ત ચર્યાના પણ દ્રવ્ય  
અને ભાવથી બે ભેદ છે. ૧૨-આર પ્રકારની મુનિપ્રતિમાને ધારણ કરવાવાળા  
અથવા શ્રદ્ધા આદિ આઠ ગુણ સહિત સ્થવિરકલ્પી સાધુની ચર્યા દ્રવ્યથી  
પ્રશસ્ત ચર્યા છે. સ્થાનાંગમાં એ જ વિષય ‘અટ્ટહિં ઠાણેહિં’ ઇત્યાદિસૂત્રથી કહ્યો છે.

“આઠ સ્થાનોથી સંપન્ન અણગાર એકાકિવિહારપ્રતિમાને ધારણ કરી વિહાર  
કરવાને લાયક છે. એ આઠ સ્થાન આ છે—(૧) શ્રદ્ધી પુરુષજાત, (૨) સત્ય  
પુરુષજાત, (૩) મેધાવી પુરુષજાત, (૪) બહુશ્રુત પુરુષજાત, (૫) શક્તિમાન્,  
(૬) અલ્પાધિકરણવાળા, (૭) ધૃતિમાન્, (૮) વીર્યસંપન્ન.” (ઠા. ૮ સૂ. ૧)

છાયા—અષ્ટભિઃ સ્થાનૈઃ સંપન્નોઽનગારોઽર્હતિ એકાકિવિહારપ્રતિમાણુપસંપદ્ય વિહર્તુ, તદ્યથા—શ્રદ્ધિ પુરુષજાતં (૧), સત્યં પુરુષજાતં (૨), મેધાવિ પુરુષજાતં (૩), વહુશ્રુતં પુરુષજાતમ્ (૪), શક્તિમત્ (૫), અલ્પાધિકરણમ્ (૬), ઘૃતિમત્ (૭), ત્રીર્ય-સમ્પન્નમ્ (૮), इति ।

ભાવતઃ પ્રશસ્તા એકચર્યા રાગદ્વેષરહિતસ્ય ભવતિ, ભાવતોઽપ્રશસ્તૈકચર્યા ન ભવતિ, સા ચ રાગદ્વેષસત્ત્વેન સ્યાત્, ભાવસ્ત્વેકચર્યાયાં રાગદ્વેષાસત્ત્વમ્, તયોરસત્ત્વે ચાપ્રશસ્તાયા અભાવાત્ । દ્રવ્યતોઽપ્રશસ્તૈકચર્યા ચ ગૃહસ્થપાણ્ડિકાદીનામવસન્નાપાર્શ્વસ્થાદીનાં શિથિલકર્મણામનુપદવક્ષ્યમાણક્રોધાઘ્નદોષવતાં ભવતિ । પ્રકૃતે

રાગદ્વેષરહિત સાધુકી ચર્યા ભાવસે પ્રશસ્ત ચર્યા છે । જિસકા ભાવ અપ્રશસ્ત છે વહ એકચર્યા (એકાકિવિહારિતા) નહીં કર સકતા, ક્યોં કિ ઉસકી એકચર્યા રાગદ્વેષકે સદ્ભાવ સે હોતી છે । ભાવભેદવાલી એકચર્યામેં રાગ ઓર દ્વેષકા સદ્ભાવ નહીં હોતા છે, ઇસ લિયે ઇનકે અસત્ત્વમેં અપ્રશસ્તતા નહીં આતી છે । તાત્પર્ય યહ છે કિ અપ્રશસ્ત-એક ચર્યામેં “ભાવસે અપ્રશસ્ત એકચર્યા” યહ ભેદ નહીં ઘડિત હોતા છે, ક્યોં કિ ભાવોમેં અપ્રશસ્તતા રાગ દ્વેષકે સદ્ભાવ સે હી આતી છે । જહાં રાગ દ્વેષકે અભાવસે એકચર્યા હોતી છે વહ ભાવ સે પ્રશસ્ત એકચર્યા છે । રાગ દ્વેષ કે નિમિત્ત કો લે કર જહાં એકચર્યા છે વહ ભાવસે એકચર્યા નહીં છે; કિન્તુ અપ્રશસ્ત એકચર્યા હી છે । દ્રવ્યસે અપ્રશસ્ત એકચર્યા ગૃહસ્થો, પાણ્ડિયોં એવં સાધુસમાચારી સે શિથિલ પાસત્થાદિકોં તથા અનુપદ કહે જાનેવાલે ક્રોધાદિક આઠ દોષ વાલોં કે હોતી છે । પ્રકૃત (પ્રકરણ)મેં

રાગદ્વેષરહિત સાધુની ચર્યા ભાવથી પ્રશસ્ત ચર્યા છે. જેનો ભાવ અપ્રશસ્ત છે તે એકચર્યા. (એકાકિવિહારિતા) નથી કરી શકતો, કારણ કે તેની એકચર્યા રાગદ્વેષના સદ્ભાવથી થાય છે. ભાવભેદવાળી એકચર્યામાં રાગ અને દ્વેષનો સદ્ભાવ બનતો નથી, એ માટે તેના અસત્ત્વમાં અપ્રશસ્તતા આવતી નથી. તાત્પર્ય એ છે કે અપ્રશસ્ત એકચર્યામાં “ભાવથી અપ્રશસ્ત એકચર્યા” એ ભેદ બંધ બેસતો નથી; કારણ કે ભાવોમાં અપ્રશસ્તતા રાગદ્વેષના સદ્ભાવથી જ આવે છે. જ્યાં રાગદ્વેષના અભાવથી એકચર્યા થાય છે તે ભાવથી પ્રશસ્ત એકચર્યા છે. રાગદ્વેષના નિમિત્તને લઈને જ્યાં એકચર્યા છે તે ભાવથી એકચર્યા નથી, પરંતુ અપ્રશસ્ત એકચર્યા જ છે. દ્રવ્યથી અપ્રશસ્ત એકચર્યા ગૃહસ્થો, પાંખડીઓ અને સાધુસામાચારીથી શિથિલ પાસત્થાદિક તથા અનુપદ કહેવામાં આવવાવાળા ક્રોધાદિક આઠ દોષોથી યુક્ત ને થાય છે. પ્રકૃત (પ્રકરણ)માં

ચાપ્રશસ્તૈકચર્યાયા એવ પ્રસજ્ઞાં ઇતિ બોધ્યમ્ । અપ્રશસ્તૈકચર્યાચારી કીદશો ભવતી-  
ત્યાહ—‘સ બહુક્રોધઃ’ ઇત્યાદિ, સઃ=વિષયસુખલોલુપોઽપ્રશસ્તૈકચર્યાચારી  
મુનિઃ બહુક્રોધઃ=બહવઃ ક્રોધાઃ ક્રોપા યસ્ય સ બહુક્રોધઃ=અધિકક્રોપવાન, વહુ-  
માનઃ=અતીવાભિમાની, વહુમાયઃ=કુસ્કુચાદિભિરનલ્પમાયાવાન, સર્વમિદમાહા-  
રાઘર્થં વિદ્યતે, અત એવ વહુલોભઃ, અત એવ વહુરજાઃ=અધિકપાપી, યદ્વા—‘બહુરંત’

અપ્રશસ્ત એકચર્યાં કા હી પ્રસજ્ઞાં હૈ, અતઃ ઇસ પ્રકરણ મેં અપ્રશસ્ત  
એકચર્યાં કા હી કથન સમજનાં ચાહિયે । ઇસ અપ્રશસ્ત એકચર્યાંવાલા  
વ્યક્તિ કેસા હોતા હૈ ? ઇસકે લિયે સૂત્રકાર “સ બહુક્રોધઃ” ઇત્યાદિ  
પદોં સે ઉસકા વિવરણ કરતે હૈં—વિષયસુખલોલુપી વહ અપ્રશસ્ત  
એકચર્યાંચારી મુનિ બહુત ક્રોધી હોતા હૈ । બહુત હૈ ક્રોધ જિસકે વહ  
બહુક્રોધ હૈ । યહાં પર “બહવઃ ક્રોધાઃ” એસા જો બહુવચન કા પ્રયોગ  
કિયા હૈ, વહ ક્રોધ કી અનેક જાતિયોં કા પ્રદર્શક હૈ । જઘન્ય મધ્યમ  
ઉત્કૃષ્ટ ભેદસે ક્રોધ ત્રીન પ્રકાર કા હોતા હૈ । વિષયસુખલોલુપી  
અપ્રશસ્ત એકચર્યાંચારી મુનિકે ક્રોધ કા ઉત્કૃષ્ટ પ્રકાર હોતા હૈ । અથવા  
યહ અલ્પક્રોધી નહીં હોતા; કિન્તુ બહુત ક્રોધી હોતા હૈ । ઇસ વિવક્ષાં  
મેં ભી ક્રોધકે ત્રીન પ્રકાર હોતે હૈં—અલ્પ ક્રોધ, મધ્યમ ક્રોધ ઓર બહુ  
ક્રોધ । યહાં પર ત્રીસરે પ્રકાર કે ક્રોધકા હી ગ્રહણ કિયા ગયા હૈ । ઇસી  
પ્રકાર—માન, માયા ઓર લોભાદિકોં મેં ભી સમજ લેનાં ચાહિયે । વહ  
બહુતમાની હોતા હૈ, બહુત માયાવાલા હોતા હૈ, બહુત લોભી હોતા હૈ ।

અપ્રશસ્ત એકચર્યાનો પ્રસંગ જ છે. માટે આ પ્રકરણમાં અપ્રશસ્ત એકચર્યાનું  
જ કથન સમજવું જોઈએ. આ અપ્રશસ્ત એકચર્યાવાળી વ્યક્તિ કેવી હોય છે ? તેને  
માટે સૂત્રકાર “સ બહુક્રોધઃ” ઇત્યાદિ પદોથી તેનું વિવરણ કરે છે—વિષયસુખ  
લોલુપી તે અપ્રશસ્ત—એકચર્યાચારી મુનિ ઘણો ક્રોધી હોય છે. ઘણો ક્રોધ છે જેને  
તે બહુક્રોધ છે. આ જગ્યાએ “બહવઃ ક્રોધાઃ” એવો જે બહુવચનનો પ્રયોગ  
કરેલ છે તે ક્રોધની અનેક જાતીઓનું પ્રદર્શક છે. જઘન્ય, મધ્યમ અને ઉત્કૃષ્ટના  
ભેદથી ક્રોધ ત્રણ પ્રકારનો હોય છે. વિષય—સુખ—લોલુપી અપ્રશસ્ત એકચર્યાચારી  
મુનિને ક્રોધનો ઉત્કૃષ્ટ પ્રકાર થાય છે. અથવા તે અલ્પક્રોધી નથી હોતો; પરંતુ ઘણો ક્રોધી  
હોય છે. આ પ્રકારમાં પણ ક્રોધના ત્રણ પ્રકાર છે, અલ્પ ક્રોધ; મધ્યમ ક્રોધ, અને  
બહુ ક્રોધ. આ સ્થળે ત્રીજા પ્રકારના ક્રોધનો જ ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે.  
એ જ પ્રકારે માન, માયા અને લોભ આદિમાં પણ સમજ લેવું જોઈએ—તે ઘણો  
માની હોય છે, બહુ માયાવાળો હોય છે, ઘણો લોભી હોય છે. ઘણો લોભી થવાનું



इतिच्छाया; बहुरतः=आरम्भादिसंस्कृतः, बहुनटः=मोहाय नट इव बहून् वेषान् विदधाति, तद्यथा-क्वचित्कूर्ची क्वचिज्जटी क्वचित् शिखी क्वचिच्च मुण्डी भूत्वा तत्र तत्र सम्मानादिसमासादनाय विविधवेषधारी तिष्ठतीत्याशयः । तथा बहुशठः बहुभिः प्रकारैः शाठ्ययुक्तः, किंच बहुसंकल्पः=बहून्-पूजां सत्कारमाहारादिकं च सततं संकल्पयति=प्रार्थयतीति बहुसंकल्पः, पुनः स कीदृशो भवतीत्याह-आस्रवे-बहुलोभी होनेका कारण यह है कि वह यही समझता है कि यह सब कुछ खाने के लिये ही है । इस प्रकार से वह खाद्य वस्तुओं के संग्रह करने में अधिक लोलुपी होता है-अधिक पापी होता है । अथवा-बहुरत होता है-आरंभ-समारंभादिकों में आसक्त रहता है । जिस प्रकार अन्य प्राणियों को मोहित करने के लिये नट अनेक प्रकारके वेषों को धरता है उसी प्रकार यह भी अन्य जीवों को अपने ऊपर मुग्ध करने के लिये अनेक प्रकार के वेषों को धारण करता है-कभी अपनी डाढ़ी के बालों को बढ़ा लेता है, कभी अपने शिरकी जटाओं को बढ़ा लेता है, कभी शिखा रखता है, कभी बालों का बिलकुल मुण्डन करा लेता है । इस प्रकार के अनेक वेषों को धर २ कर मान-सम्मान आदि प्राप्त करने का यह सदा अभिलाषी होता है । इसी दुर्वृत्ति से यह इस प्रकार के वेषों को समय २ धरता रहता है । यह बहुशठ होता है, अर्थात्-अनेक प्रकारों से अपनी शाठ्यता का उपयोग करता है । यह बहुसङ्कल्पी भी होता है-रात दिन यह यही विचार किया करता है कि मेरी प्रतिष्ठा

કારણ એ છે કે તે એવું સમજે છે કે આ બધું ખાવા માટે જ છે. આ રીતે તે ખાદ્ય વસ્તુઓનો સંગ્રહ કરવામાં અધિક લોલુપી બને છે માટે તે બહુશઠ-અધિક પાપી હોય છે. અથવા બહુરત હોય છે-આરંભસમારંભાદિકોમાં આસક્ત રહે છે. બહુનટ હોય છે-જે પ્રકારે બીજા પ્રાણીઓને મોહિત કરવા માટે નટ અનેક પ્રકારના વેષો ધારણ કરે છે તેવી રીતે આ પણ બીજા જીવોને પોતાની તરફ મુગ્ધ કરવા માટે અનેક પ્રકારના વેષો ધારણ કરે છે-ક્યારેક એ પોતાની ઢાઢીના વાળ વધારે છે, ક્યારેક પોતાના શિરની જટાને વધારે છે, ક્યારેક માથામાં ચોટલી રાખે છે અને ક્યારેક માથાને ચોકળું સપાટ બનાવી દે છે, આ રીતે અનેક પ્રકારના વેષો ધારણ કરીને માન-સન્માનાદિ પ્રાપ્ત કરવા સદા અભિલાષી રહે છે. આ જ દુર્વૃત્તિથી એ સમય સમય પર આવા પ્રકારના વેષો ધારણ કરે છે. તે બહુશઠ હોય છે, એટલે-અનેક પ્રકારોથી પોતાની શઠતાનો ઉપયોગ કરે છે. તે બહુસંકલ્પી પણ હોય છે-રાત દિવસ તે એવો વિચાર કરે છે કે મારી

ત્યાદિ, આસ્રવસક્તિઃ=આસ્રવેષુ પ્રાણાતિપાતાદિષુ સક્તિઃ=સજ્ઞો યસ્યાસ્તિ સ આસ્રવસક્તિઃ=હિંસાદિષ્વભિસજ્ઞવાન્, एवं पलितावच्छन्नः=पलितेन=आरम्भसमारम्भादिकर्मणा अवच्छन्नः=अवष्टब्धः-युक्त इत्यर्थः, अपि च उत्थितवादम्=उत्थितः=रत्नत्रयसमाराधनाय समुद्यतस्तस्य वाद इव वादस्तं लोकवञ्चनार्थं प्रवदन्, 'अहमपि भगवदुपदिष्टसंयमाचरणार्थं शासनोद्भासनाय च तत्परोऽस्मी'-त्येवं ब्रुवन् प्रतिषिद्धामप्येकाकिविहरणादिकामनुतिष्ठतीति भावः । स सावद्यव्यापारमाचरंश्चेतस्येवं कैसे बढे, कैसे लोग मेरा सत्कार करें, किस विधि से मुझे उत्तम २ आहारादिक सामग्री का लाभ हो । यह आस्रवसक्ती-कर्मों के आस्रव के कारणभूत प्राणातिपातादिक कार्यों में आसक्तिवाला होता है । यह पलितावच्छन्न होता है । आरंभ-समारंभादिक कर्मों का नाम पलित है । उससे युक्त होना सो पलितावच्छन्न है । यह उत्थितवाद का कथन करनेवाला होता है । रत्नत्रय की आराधना करनेके लिये उद्यत होनेका नाम उत्थित है । लोकों की वंचना के लिये इसका कहना सो उत्थितवाद है । इस उत्थितवाद को यह अपने में इस प्रकार से प्रकट करता है कि 'मैं भी भगवत्प्रतिपादित संयम की आराधना करने के लिये, और उस उस स्थान पर जिनशासन की प्रभावना के लिये कटिबद्ध हूं' । तात्पर्य यह है कि-इस प्रकार यह आगमनिषिद्ध एकाकिविहार करनेरूप मार्गका पथिक होता हुआ भी भगवत्प्रतिपादित संयममार्गके आराधक, और जिनशासन के प्रभावकरूप से अपनी ख्याति करता है । सावद्य

પ્રતિષ્ઠા કેવી રીતે વધે, કેવી રીતે લોકો માં સન્માન કરે, કયા કાર્યથી મને ઉત્તમ ઉત્તમ આહારાદિ સામગ્રીનો લાભ મળે ? તે આ આસ્રવસક્તિ હોય છે-કર્મોના આસ્રવના કારણભૂત પ્રાણાતિપાતાદિક કાર્યોમાં આસક્તિ ધરાવનાર બને છે. તે પલિતાવચ્છન્ન હોય છે, આરંભસમારંભાદિક કર્મોનું નામ પલિત થાય છે. તેનાથી યુક્ત થવું તે પલિતાવચ્છન્ન છે. ઉત્થિતવાદનું કથન કરનાર બને છે, રત્નત્રયની આરાધના કરવા માટે ઉદ્યત થવું તેનું નામ ઉત્થિત છે, લોકોને છેતરવા માટે એનો ભાવ બતાવવો એ ઉત્થિતવાદ છે, આ ઉત્થિતવાદને તે પોતાનામાં એવા પ્રકારે પ્રગટ કરે છે કે 'હું પણ ભગવત્પ્રતિપાદિત સંયમની આરાધના કરવા માટે અને તે તે સ્થાન પર જનશાસનની પ્રભાવના માટે કટિબદ્ધ છું.' તાત્પર્ય એ છે કે-આ પ્રકારે તે આગમનિષિદ્ધ એકાકીવિહાર કરવારૂપ માર્ગનો અનુગામી હોવા છતાં પણ ભગવત્પ્રતિપાદિત સંયમમાર્ગના આરાધક અને જનશાસનના પ્રભાવકરૂપથી પોતાની ખ્યાતિ કરે છે. સાવધ વ્યાપારો કરવા છતાં

चिन्तयति 'मा मा'-मित्यादि, केऽपि=अन्ये मां प्राणातिपातादिकारिणं प्रच्छन्ना-  
धर्मविधायिनम् मदीयेन अज्ञानप्रमाददोषेण, अज्ञानं च प्रमादश्चाज्ञानप्रमादौ, तयो-  
र्दोषस्तेन, 'अयं गुप्तपापमकार्यं करोति' इति मा अद्राक्षुः=नो पश्यन्तु-नो  
जानन्त्वित्यर्थः ।

यद्वा—'अज्ञानप्रमाददोषेण' इति पदं 'मूढः' इत्यनेनापि मध्यमणिन्यायेन  
सम्बध्यते, अत्राज्ञानग्रहणेन दर्शनमोहनीयं च गृह्यते, ततो दर्शनमोहनीयेन चारित्रमोह-  
नीयेन च मूढः=परमार्थानभिज्ञः सन् धर्म=श्रुतचारित्रलक्षणं स्वीयधर्म=येन सकल-  
कर्मक्षयो भवति तं नाभिजानाति=नावबुध्यते । एतेषां का दशा भवति? इत्याह—  
'आर्ताः' इत्यादि, हे मानव ! हे भव्य ! सदुपदेशार्हत्वात्तस्य, आर्ताः=विषयक-  
षायैः पीडिताः प्रजाः=प्र=कर्षेण जायन्ते=चतुर्गतिषु कर्मणा समुत्पद्यन्त इति प्रजाः=  
व्यापारों को करता हुआ भी यह अपने मनमें इस प्रकार से उस समय  
विचार करता है कि इस प्राणातिपातादिक अकार्य तथा गुप्तरूप से पाप  
करनेवाले मुझे और कोई न देख ले । इस प्रकार प्रमाद और अज्ञानके  
दोष से वह नहीं करने योग्य गुप्त पापों को करता है ।

अथवा—"अज्ञानप्रमाददोषेण सततं मूढः" इस प्रकार से भी  
मध्यमणिन्याय से "अज्ञानप्रमाददोषेण" इस पदका सम्बन्ध "मूढ"  
पद के साथ करने से यह अर्थ होता है कि-यह दर्शनमोहनीय एवं  
चारित्रमोहनीय के उदय से निरन्तर परमार्थसे अनभिज्ञ हो कर समस्त  
कर्मोंका क्षय करनेवाले श्रुतचारित्ररूप अपने आत्मधर्म को नहीं जानता है।  
ऐसे व्यक्तियों की दशाका चित्रण करते हुए सूत्रकार कहते हैं—  
'आर्ताः' इत्यादि, हे भव्य ! विषयकषायों से पीडित ऐसी प्रजा-

पणુ એ પોતાના મનમાં તે વખતે એવા પ્રકારનો વિચાર કરે છે કે 'આવા  
પ્રાણાતિપાતાદિક અકાર્ય તથા ગુપ્તરૂપથી પાપ કરવાવાળા મને કોઈ જોઈ ન  
જાય ?' આવી રીતે પ્રમાદ અને અજ્ઞાનના દોષથી તે નહિ કરવા યોગ્ય ગુપ્ત  
પાપો કરે છે.

અથવા—"અજ્ઞાનપ્રમાદદોષેણ સતતં મૂઢઃ" આ પ્રકારે પણ મધ્યમણિ  
ન્યાયથી "અજ્ઞાનપ્રમાદદોષેણ" આ પદનો સંબંધ 'મૂઢ' પદની સાથે કરવાથી એવો  
અર્થ થાય છે કે તે દર્શનમોહનીય અને ચારિત્રમોહનીયના ઉદયથી નિરંતર પર-  
માર્થથી અનભિજ્ઞ બની સમસ્ત કર્મોના ક્ષય કરવાવાળા શ્રુત-ચારિત્રરૂપ પોતાના  
આત્મધર્મને જાણતો નથી. આવી વ્યક્તિઓની દશાનું વર્ણન કરતાં સૂત્રકાર કહે છે—  
'આર્તાઃ'—ઈત્યાદિ. હે ભવ્ય ! વિષયકષાયોથી પીડિત એવી પ્રજા-પ્રાણી, કર્મકોવિદ-



પ્રાણિનઃ, કર્મકોવિદાઃ-કર્મણિ=આરમ્ભસમારમ્ભાદૌ કોવિદાઃ=દક્ષાસ્તત્પરા इत्यर्थः, ન તુ ધર્માચરણે, યે ચ અનુપરતાઃ=સાવચવ્યાપારેભ્યોऽપરાઙ્મુખાઃ, અવિદ્યા=રત્નત્રયં વિદ્યા, તદ્વિપરીતા અવિદ્યા, તયા પરિમોક્ષ પરિ=સર્વતો મોક્ષમ્=આત્મનઃ કર્માપનયનમ્, આહુઃ=કથયન્તિ । તે ધર્માનભિજ્ઞાઃ કર્મબન્ધકોવિદાશ્ચ વિષયવ્યાલ-વિષકવલિતાઃ, આવર્ત=ભાવાવર્ત સંસારમેવ અનુપરિવર્તન્તે-અનન્તભવજનકં કર્મ સમુપાર્જ્ય તત્રૈવ મુહુર્મુહુર્ભ્રામ્યન્તીત્યર્થઃ, ચારિત્રદોષેષુ ક્રોધાદ્યાધિક્યેન ચૈકચર્યા-પ્રાણી કર્મકોવિદ=આરમ્ભ સમારમ્ભ આદિ કર્મોં મેં નિપુણ હોતી હૈ, ધર્મ મેં નહીં । “પ્રકર્ષેણ જાયન્તે ઇતિ પ્રજાઃ” ઇસ વ્યુત્પત્તિ કે અનુસાર સમુપાર્જિત કર્મોં કે ઉદય સે જો વાર વાર ચતુર્ગતિરૂપ સંસાર મેં જન્મ ધારણ કરતે હૈં ઉનકા નામ પ્રજા-પ્રાણી હૈં ।

“યે અનુપરતા અવિદ્યા પરિમોક્ષમાહુઃ” જો સાવચ વ્યાપારોં સે અપરાઙ્મુખ હૈં વે ‘અવિદ્યા સે હી સર્વ પ્રકાર સે મુક્તિ હોતી હૈ’ એસા કહતે હૈં । રત્નત્રયકા નામ વિદ્યા હૈ । ઇસ સે જો વિપરીત હૈ વહ અવિદ્યા હૈ । ધર્મ સે અનભિજ્ઞ ઓર કર્મબન્ધ મેં કોવિદ પ્રાણી વિષયરૂપી સર્પ કે વિષ સે કવલિત હો ભાવાવર્તરૂપ સંસાર મેં હી અનુપરિવર્તન કરતે રહતે હૈં-અનન્તભવજનક કર્મોં કા આસ્રવ ઓર બન્ધ કર કે ઉસી સંસારમેં વારંવાર જન્મ-મરણ કરતે રહતે હૈં । ચારિત્ર કે દોષોં મેં ક્રોધાદિક કી અધિકતા સે એકચર્યારૂપ દોષ કી પ્રધાનતા હૈ । ઇસસે સાવચ-વ્યાપારોં કા આચરણ હોતા હૈ । ઇસ આચરણ સે વિરતિ કા અભાવ ઓર ઉસસે ઉસમેં મુનિત્વ કા અભાવ હોતા હૈ । મુનિધર્મ કા પાલક ન હોને સે વહ

આરંભ સમારંભાદિકર્મોંમાં નિપુણ હોય છે, ધર્મમાં નહિ. “પ્રકર્ષેણ જાયન્તે ઇતિ પ્રજાઃ” આ વ્યુત્પત્તિ અનુસાર સમુપાર્જિત કર્મોંના ઉદયથી જે વારંવાર ચતુર્ગતિરૂપ સંસારમાં જન્મ ધારણ કરે છે તેનું નામ પ્રજા-પ્રાણી છે.

“યે અનુપરતા અવિદ્યા પરિમોક્ષમાહુઃ” જે સાવચ વ્યાપારોંથી અનિવૃત્ત છે તે ‘અવિદ્યાથી જ સર્વ પ્રકારની મુક્તિ થાય છે’ તેવું કહે છે. રત્નત્રયનું નામ વિદ્યા છે, આનાથી જે વિપરીત તે અવિદ્યા છે. ધર્મથી અનભિજ્ઞ અને કર્મ-બંધમાં કોવિદ પ્રાણી વિષયરૂપી સર્પના વિષથી કવલિત થઈ ભાવાવર્તરૂપ સંસારમાં અનુપરિવર્તન કરતો રહે છે. અનંતભવજનક કર્મોંનો આસ્રવ અને બંધ કરીને આ સંસારમાં વારંવાર જન્મ-મરણ કરતો રહે છે. ચારિત્રના દોષોંમાં ક્રોધાદિકની અધિકતાથી એકચર્યારૂપ દોષની પ્રધાનતા છે. એનાથી સાવચવ્યાપારોંનું આચરણ થાય છે. આ આચરણથી વિરતિનો અભાવ અને તેનાથી તેનામાં મુનિત્વનો

દોષસ્ય પ્રાધાન્યાત્સાવધવ્યાપારાચરણેન વિરતેરભાવાદમુનિઃ સન્ ચિરકાલં જન્મ-  
મરણં કુર્વન્તીતિ ભાવઃ । ઇતિ બ્રવીમીત્યસ્યાર્થઃ પૂર્વવત્ ।

॥ પંચમાધ્યયનસ્ય પ્રથમોદ્દેશઃ સમાપ્તઃ ॥ ૫-૧ ॥

પ્રાણી ચિરકાલતક જન્મ-મરણ કરતા રહતા હૈ । “ ઇતિ બ્રવીમિ ” ઇન  
પદોંકા અર્થ પહિલે કી તરહ હૈ ॥ સૂ. ૫ ॥

॥ પાંચવે અધ્યયન કા પ્રથમ ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૫-૧ ॥

ત્વનો અભાવ આવે છે. મુનિધર્મનું પાલન ન થવાથી તે પ્રાણી ચિરકાલ સુધી  
જન્મ મરણ કરતો રહે છે. “ ઇતિ બ્રવીમિ ” આ પદોનો અર્થ પહેલાની માફક છે.

પાંચમા અધ્યયનનો પહેલો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૫-૧ ॥

### પાંચમાધ્યયનસ્ય દ્વિતીય ઉદ્દેશઃ ।

અભિહિતઃ પ્રથમોદ્દેશઃ સામ્પ્રતં દ્વિતીયઃ પ્રારભ્યતે । અસ્ય ચાયમનન્તરોદ્દેશ-  
સમ્બન્ધઃ, પૂર્વત્રોદ્દેશે એકાકિ-વિહરણશીલઃ સાવચવ્યાપારાસક્તતયા ‘અસંયતઃ’ इत्य-  
ભિહિતમ્ । અત્ર ચ યથા સંયતઃ સ્યાત્તથા પ્રતિપાદ્યતે—

અથ હિંસાદિસાવચવ્યાપારાનિવૃત્ત એવ મુનિર્ભવતીતિ દર્શયતિ—‘આવંતી’ इत्यादि ।

મૂલમ—આવંતી કેયાવંતી લોએ અણારંભજીવિણો તેસુ । એત્થો-  
વરણ તં જ્ઞોસમાણે અયં સંધીતિ અદક્ખૂ, જે ઇમસ્સ વિગ્ગહસ્સ  
અયં ય્વણેત્તિ અન્નેસી । એસ મગ્ગે આરિએહિં પવેઙ્ગે । ઉટ્ટિએ નો  
પમાયએ, જાણિત્તુ દુક્ખં પત્તેયં સાયં । પુઠ્ઠોઠ્ઠંદા ઇહ માણવા,  
પુઠ્ઠો દુક્ખં પવેઙ્ગયં । સે અવિહિંસમાણે અણવયમાણે પુદ્ઠો ફાસે  
વિપણુન્નએ ॥ સૂ. ૧ ॥

### ॥ પાંચવે અધ્યયનકા દૂસરા ઉદ્દેશ ॥

પ્રથમ ઉદ્દેશ કહા જા ચુકા હૈ । અવ દ્વિતીય ઉદ્દેશ કા પ્રારમ્ભ કરતે  
હૈ । ઇસ ઉદ્દેશ કા અનન્તર ઉદ્દેશ કે સાથ સમ્બન્ધ ઇસ પ્રકાર સે હૈ—  
પ્રથમ ઉદ્દેશ મેં “જો એકાકી વિહાર કરતા હૈ વહ સાવચ વ્યાપારમેં આસક્ત  
હોને કે કારણ વિરતિવિહીન હૈ, જો વિરતિ સે વિહીન હૈ વહ મુનિ નહીં  
હૈ” યહ પ્રકટ કિયા હૈ, યહાં પર જીવ કે મુનિપના જિસ રીતિ સે  
આસક્તા હૈ વહી રીતિ પ્રતિપાદિત કી જાતી હૈ । અથવા ‘હિંસાદિક  
સાવચ વ્યાપારોસે નિવૃત્ત હી મુનિ હોતા હૈ’ યહ બાત દિખલાઈ જાતી હૈ—  
“આવંતી કેયાવંતી” इत्यादि

### પાંચમા અધ્યયનનો બીજો ઉદ્દેશ.

પ્રથમ ઉદ્દેશ કહેવાઈ ગયો છે, હવે બીજા ઉદ્દેશનો પ્રારંભ થાય છે. આ  
ઉદ્દેશનો અનન્તર ઉદ્દેશની સાથે સંબંધ આ પ્રકારે છે— પ્રથમ ઉદ્દેશમાં  
“જે એકાકી વિહાર કરે છે તે સાવચ વ્યાપારોમાં આસક્ત હોવાને કારણે વિરતિ  
વગરના છે, તે મુનિ નથી” એમ પ્રગટ કરેલ છે. આ સ્થળે જીવને મુનિપણું  
જે રીતિથી આવે છે તે જ રીતિ કહેવામાં આવે છે. અથવા ‘હિંસાદિક સાવચ  
વ્યાપારોથી નિવૃત્ત જ મુનિ હોય છે.’ એ વાત દેખાડવામાં આવે છે—  
‘આવંતી કેયાવંતી’ इत्यादि.



छाया—यावन्तः कियन्तो लोके अनारम्भजीविनस्तेषु । अत्रोपरतस्तज्ज्ञोपयन्  
अयं सन्धिरिति अद्राक्षीत्, योऽस्य विग्रहस्यायं क्षण इत्यन्वेषी । एष मार्ग आर्यैः  
प्रवेदितः । उत्थितो नो प्रमादयेत्, ज्ञात्वा दुःखं प्रत्येकं सातम् । पृथक्छन्दा इह  
मानवाः, पृथग् दुःखं प्रवेदितम् । सोऽविहिन्ननपवदन स्पृष्टः स्पर्शान्  
विप्रणोदयेत् ॥ सू० १ ॥

टीका—‘यावन्तः’ इत्यादि । लोके=मनुष्यलोके यावन्तः कियन्तश्च तेषु=पृथिवीवनिकायेषु अनारम्भजीविनः—आरम्भः=सावद्याचरणं, तद्विपरीतस्त्वनारम्भः तेन जीवितुं शीलं येषां ते अनारम्भजीविनः=संयमिनः, यद्वेन्द्रियविषयकपायेषु प्रवृत्ता आरम्भजीविनस्तद्विन्ना अनारम्भजीविनो मुनयः सन्ति । ते हि स्वनिमित्त-पचनपाचनादिसावद्यव्यापारतत्पराद्गृहस्थाञ्जशरीरयात्रामात्रनिर्वाहार्थमशनादि गृहीत्वा निरवद्यानुष्ठानप्रवृत्ताः सन्तो नलिनीदलमम्बुनेव निर्लेपा भवन्तीति

इस मनुष्यलोक में कितनेक मनुष्य अनारम्भजीवी हैं। सावध व्यापारों में प्रवृत्ति का नाम आरम्भ है। इससे विपरीत का नाम अनारम्भ है। इससे जीने का जिनका स्वभाव है वे अनारम्भजीवी हैं। अनारम्भजीवी संयमी होते हैं।

अथवा—इन्द्रिय विषय एवं कषायों में जिनकी प्रवृत्ति है वे आरम्भ-जीवी हैं, उनसे भिन्न मुनिजन ही अनारम्भजीवी हैं। अपने निमित्त पचन-पाचनादि सावद्य व्यापारों में तत्पर गृहस्थजन से शरीरयात्रामात्र के निर्वाहार्थ आहारादि लेकर निरवद्य-निर्दोष अनुष्ठान में प्रवृत्तिशील होने के कारण ये मुनि पानीसे कमलपत्र की तरह निर्लेप होते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जो सावद्य व्यापारों में प्रवृत्तिशील हैं वे पूर्ण संयमाचरण से बाहर हैं, और जो इस हिंसादिक आरंभ से निवृत्त हैं वे

આ મનુષ્ય લોકમાં કેટલાક મનુષ્ય અનારંભજીવી છે. સાવધ વ્યાપારોમાં પ્રવૃત્તિનું નામ આરંભ છે, તેનાથી વિપરીતનું નામ અનારંભ છે, તેનાથી જેનો જીવવાનો સ્વભાવ હોય તે અનારંભજીવી છે. અનારંભજીવી સંયમી હોય છે. અથવા ઈન્દ્રિય વિષય અને કષાયોમાં જેની પ્રવૃત્તિ છે તે આરંભજીવી છે, તેનાથી ભિન્ન મુનિજન જ અનારંભજીવી છે. પોતાના નિમિત્ત પચનપાચનાદિ સાવધ વ્યાપારોમાં તત્પર ગ્રહસ્થજનથી શરીરયાત્રામાત્રના નિર્વાહ માટે આહારાદિ લઈને નિરવધ-નિર્દોષ અનુષ્ઠાનમાં પ્રવૃત્તિશીલ હોવાને કારણે પાણીથી કમળપત્રની માફક નિર્દોષ હોય છે. આથી એ ભાવાર્થ નિકળે છે કે-જે સાવધ વ્યાપારોમાં પ્રવૃત્તિશીલ છે તે પૂર્ણ સંયમ આચરણથી બહાર છે અને જે આવા

તાત્પર્યમ્ । एवं तर्हि किमेतेनेत्याह—अत्रेत्यादि, अत्र=इह जगति उपरतः=हिंसाधारम्भाद् निवृत्तः, यद्वा-अत्र=वीतरागोपदिष्टे धर्मे तत्परः सन् उपरतः=सावद्यव्यापारनिवृत्तः सः तत्=षड्जीवनिकायोपमर्दनात् समापतितं कर्म श्लोषयन्=क्षपयन् मुनिर्भवति । केनाशयेनात्रोपरतः ? इत्याह—‘अयं’मित्यादि, अयं=प्रत्यक्ष-ही मुनि हैं—पूर्णसंयमाचरणमें लवलीन हैं । पूर्णसंयमाचरण में तत्परता ही वीतरागोपदिष्ट धर्मांशधन में पूर्णतत्परता है, क्यों कि इसके हुए बिना वीतरागोपदिष्ट धर्म की पूर्ण आराधकता जीवों में नहीं आ सकती । जब तक पूर्ण धर्मांशधन नहीं प्राप्त हो जाती तब तक कर्मों के विनाश करने का मार्ग भी जीवों को प्राप्त नहीं होता; अतः कर्मों को नाश करने के लिये सच्चे मुनि होनेकी आवश्यकता है । इन सब विचारों को हृदय में रख कर सूत्रकार “अत्रोपरतः तं श्लोषयन्” इस सूत्रांश का कथन करते हैं । इसमें वे बतलाते हैं कि इस संसार में जो हिंसादिक आरम्भ कार्यो से निवृत्त-पराङ्मुख हो चुका है, अर्थात् सावद्य व्यापारों से जिसने अपने आप को हटा लिया है, या वीतरागप्रभुद्वारा प्रतिपादित धर्म में तत्पर हो कर जो सावद्य व्यापार से निवृत्त है, वह जीव षड्जीवनिकाय के उपमर्दन से आस्रवित कर्मों का विनाश करता हुआ मुनि होता है । इस आशय से वह षड्जीवनिकाय के हिंसादिक पापकर्मों से विरत होता है कि मुझे यह सन्धि मिली है, अर्थात्—यह महादुर्लभ नरपर्याय मुझे

હિંસાદિક આરંભથી નિવૃત્ત છે તે જ મુનિ છે—પૂર્ણ સંયમ આચરણમાં તટ્લીન છે. પૂર્ણ સંયમ આચરણમાં તત્પરતા જ વીતરાગોપદિષ્ટ ધર્મ આરાધનમાં પૂર્ણ તત્પરતા છે, કારણકે એના વગર વીતરાગોપદિષ્ટ ધર્મની પૂર્ણ આરાધકતા જીવોમાં આવતી નથી. જ્યાં સુધી પૂર્ણ ધર્મઆરાધકતા નથી પ્રાપ્ત થતી ત્યાં સુધી કર્મોનો વિનાશ કરવાનો માર્ગ પણ જીવોને પ્રાપ્ત થતો નથી. માટે કર્મોનો નાશ કરવાને માટે સાચા મુનિ બનવાની આવશ્યકતા છે. આ બધા વિચારોને હૃદયમાં રાખીને સૂત્રકાર “અત્રોપરતઃ તં શ્લોષયન્” આ સૂત્રનો અર્થ કરે છે. તેમાં તે બતાવે છે કે જે હિંસાદિક આરંભ કાર્યોથી નિવૃત્ત થઈ ચુકેલ છે અર્થાત્ સાવધ વ્યાપારોથી જેણે પોતે પોતાની જાતને હઠાવી લીધેલ છે અને વીતરાગપ્રભુદ્વારા પ્રતિપાદિત ધર્મમાં જે પોતાને તત્પર કરે છે તે જીવ ષડ્જીવનિકાયના ઉપમર્દનથી આસ્રવિત કર્મોનો વિનાશ કરીને મુનિ બને છે. આ આશયથી તે ષડ્જીવનિકાયના હિંસાદિક પાપકર્મોથી વિરક્ત થાય છે, કે મને આ સંધિ મળેલ છે,

નિર્દિષ્ટઃ સન્ધિઃ=મનુષ્યજન્મા-ડડ્યક્ષેત્ર-શોભનકુલોત્પત્તિ-સકલપૂર્ણેન્દ્રિયનિર્વૃત્તિ-શ્રદ્ધા-સંવેગાદિપ્રાપ્તિલક્ષણઃ કર્મક્ષપણાવસરઃ, યદ્વા-શુભાધ્યવસાયસન્ધાનસ્વરૂપો-સ્તિ, ઇતિ યઃ અદ્રાક્ષીત્=દૃષ્ટવાન્, एतादृशो मुनिः ક્ષણમપિ ન પશ્ચવિધપ્રમાદપરાયણો ભવેદિત્યાશયઃ । કશ્ચ ન પ્રમત્તઃ સ્યાત્ ? ઇત્યાહ-‘જે હમસ્સ’ ઇત્યાદિ । ય ઉપલબ્ધતત્ત્વો મુનિઃ અસ્ય=ઔદારિકસ્ય વિગ્રહસ્ય=શરીરસ્ય, તૈજસં કાર્મણં ચ શરીરમૌદારિકાન્તર્ગતમેવેતિ જ્ઞેયમ્ ; અયં=વિદ્યમાનઃ ક્ષણઃ=ક્ષેત્રકાલસંયમકર્મક્ષપણશ્રેણિરૂપો-ડવસરો-સ્તિ, ઇત્યન્વેષી-ઇતિ=એવમન્વેષ્ટું શીલમસ્યેત્યન્વેષી-ક્ષણગવેષણપરાયણો ભવતિ ।

મિલી છે । હમ્સમાં મી આર્યક્ષેત્ર ઉત્તમ કુલ મેં મેરી ઉત્પત્તિ હુઈ છે । સકલ હિન્દ્રિયોંની પૂર્ણ રચના, શ્રદ્ધા સંવેગાદિક સદ્ગુણોંની ઉપલબ્ધિ મુજે હુઈ છે । યહી તો કર્મક્ષય કરને કા અવસર છે । અથવા મેરી આત્મા કા યહી નિજ સ્વરૂપ છે કિ મેં સદા શુભ અધ્યવસાયોં કા સન્ધાન કરતા રહું । હમ્સ પ્રકાર જો અપની ઓર નિહારતા છે-અપને નિજ સ્વરૂપ કા વિચાર કરતા રહતા છે વહ એક ક્ષણ મી પાંચ પ્રકાર કે પ્રમાદોં કા સેવન નહીં કરતા । હમ્સ પ્રકાર કા મુનિ કૌન હોતા છે ? હમ્સ પર કહતે છે-‘ જે હમસ્સ’ ઇત્યાદિ । જો તત્ત્વજ્ઞ મુનિ છે વે સદા હમ્સ પ્રકાર કા વિચાર કરે કિ યે જો ઔદારિક શરીર (તૈજસ ઓર કાર્મણ શરીરોં કા હસી ઔદારિક શરીર મેં અન્તર્ભાવ કર લિયા છે) મુજે પ્રાપ્ત હુઆ છે ઉસકા યહ ક્ષણ-ક્ષેત્ર કાલ સંયમ કર્મક્ષપણશ્રેણિરૂપ અવસર છે; હમ્સ પ્રકાર જો અન્વેષી-ક્ષણગવેષણ મેં પરાયણ હોતા છે વહ સદા

એટલે મને આ મહાહુર્લભ નરપર્યાય મળેલ છે. તેમાં પણ આર્યક્ષેત્ર ઉત્તમ કુળમાં મારી ઉત્પત્તિ થઈ છે, સકલ ઈન્દ્રિયોની પૂર્ણ રચના શ્રદ્ધા સંવેગાદિક સદ્ગુણોની ઉપલબ્ધિ મને થયેલ છે, હવે તો કર્મક્ષય કરવાનો અવસર છે, અને મારા આત્માનું એ જ નિજ સ્વરૂપ છે કે ‘હું સદા શુભ અધ્યવસાયોનો સંધાન કરતો રહું.’ આ પ્રકારે જે પોતાની તરફ નિહાળે છે, પોતાના નિજ સ્વરૂપનો વિચાર કરે છે તે એક ક્ષણ પણ પાંચ પ્રકારના પ્રમાદોનું સેવન કરતો નથી.

આવા પ્રકારનો મુનિ કોણ હોય છે ? આ પ્રકારની શિષ્યની શંકાનું સમાધાન કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે-‘ જે હમસ્સ ’ ઇત્યાદિ. તત્ત્વજ્ઞ મુનિ છે તે સદા એવા પ્રકારનો વિચાર કરે કે-જે આ ઔદારિક શરીર મને પ્રાપ્ત થયેલ છે તેનો આ ક્ષણ-ક્ષેત્ર કાલ સંયમ કર્મક્ષપણશ્રેણિરૂપ અવસર છે. આ પ્રકારે જે અન્વેષી-



एतत्कथनस्य स्वकल्पितत्वनिरासायाह—‘ एष ’ इत्यादि, एषः=पूर्वोक्तो वक्ष्य-  
माणो वा मार्गः=सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूपो मोक्षमार्गः, आर्यैः=तीर्थङ्करगणधरैः  
प्रवेदितः=सदेवमनुजपरिषदि कथितः। तेषां वचनमेवाह—उत्थितः=गृहादीनि  
परित्यज्य सन्धिमासाद्य रत्नत्रयाराधनाय समुद्युक्तः सन् नो प्रमादयेत्-क्षणमपि  
पञ्चविधं प्रमादं नैव कुर्यादित्यर्थः। आत्मौपम्येनान्येषामपि हिंसादीनि नैव विद-  
ध्यादित्याह-ज्ञात्वेत्यादि, प्रत्येकं=प्रत्येकप्राणिनां दुःखं=शारीरमानसिकं दुःख-  
जनकं कर्म वा, तथा सातं=मुखं च ज्ञात्वा=बुद्ध्वा उत्थितो नो प्रमादयेदिति पूर्वेण

प्रमादरहित होता है ।

भावार्थ—જો તત્ત્વજ્ઞ મુનિ હોતા હૈ, વહ યહી સદા વિચાર કરતા  
હૈ કિ મુજે એસા કોઈ સા મો સમય પ્રાપ્ત નહીં હૈ જિસે મૈ પ્રમાદ સેવન  
મેં વ્યતીત કર સકું । હાં ! યદિ કોઈ સમય અવશિષ્ટ હોતા તો મૈં ઉસે  
પ્રમાદસેવન મેં વ્યતીત કર દેતા, પરંતુ ઇસ પ્રાપ્ત ઔદારિક શરીર કા  
એક ૨ ક્ષણ મી ક્ષેત્ર કાલ સંયમ કર્મક્ષપણશ્રેણીરૂપ હૈ । ઇસ પ્રકાર જો  
એક ૨ ક્ષણકી મી સદા સાવધાની રખતે હૈં વે કમી પ્રમાદવશ પતિત  
નહીં બન સકતે । યહ પૂર્વોક્ત કથન અથવા આગે જહા જાનેવાલા વિષય  
મૈંને અપની કલ્પના સે નહીં કહા હૈ કિન્તુ યહ સમ્યગ્-દર્શન જ્ઞાન ચારિત્ર  
સ્વરૂપ માર્ગ તીર્થઙ્કર ઔર ગણધરાદિક મહાપુરુષોં ને દેવસહિત મનુષ્યોં  
કી પરિષદા મેં કહા હૈ । ઉન્હીં કે વચનોં કો સૂત્રકાર કહતે હૈ—“ઉદ્દિષ્ટ  
નો પમાયણ ” ઇતિ । જો ઘર આદિ કો છોડ કર, સંધિકો પ્રાપ્ત કર,

ક્ષણગવેષણમાં પરાયણ થાય છે તે સદા પ્રમાદરહિત બને છે.

ભાવાર્થ:—શિષ્યની પૂર્વોક્ત શંકાનું આ સ્થળે સૂત્રકારે સમાધાન કરેલ  
છે. તે કહે છે કે-જે તત્ત્વજ્ઞ મુનિ હોય છે તે સદા એવો વિચાર  
કરે છે કે-મને એવો કોઈ પણ સમય પ્રાપ્ત થયો નથી જેને હું પ્રમાદસેવનમાં  
વ્યતીત કરી શકું, કદાચ કોઈ સમય અવશિષ્ટ હોત તો હું તેને પ્રમાદ સેવનમાં  
વ્યતીત કરી દેત, પરંતુ આ પ્રાપ્ત થયેલ ઔદારિક શરીરની એક એક ક્ષણ પણ  
ક્ષેત્ર કાલ સંયમ કર્મક્ષપણ શ્રેણીરૂપ છે, આ પ્રકારે જે એક એક ક્ષણની પણ સદા  
સાવધાની રાખે છે તે કદાપિ પ્રમાદવશ બની શકતા નથી. આ પૂર્વોક્ત કથન  
અથવા આગળ કહેવામાં આવનાર વિષય મેં ભારી પોતાની કલ્પનાથી કહેલ  
નથી પરંતુ સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર-સ્વરૂપ માર્ગ તીર્થંકર અને ગણધર આદિ  
મહાપુરુષોએ દેવસહિત મનુષ્યોની પરિષદામાં કહેલ છે. એમના જ વચનોને  
સૂત્રકાર કહે છે કે—“ઉદ્દિષ્ટ નો પમાયણ ” જે ઘર વગેરે છોડીને અવસર

सम्बन्धः । सर्वेषां प्राणिनां सुखमभिलषणीयं, दुःखं च परिहरणीयं भवतीत्यालोच्य कस्यापि दुःखं नोत्पादयेदित्याशयः । सर्वेषां जन्तूनां दुःखजनकाव्यवसायोऽपि भिन्नो भवतीति दर्शयति—‘पृथग्’—त्यादि, इह=मनुष्यलोके संज्ञिलोके वा, मानवाः=मनुष्याः पृथक्छन्दाः=पृथग् भिन्नं छन्दः=अभिप्रायो येषां ते पृथक्छन्दाः=भिन्नरुचयो भवन्ति, यथा क्षीरपानं कञ्चित्सुखाकरोति कञ्चित्च दुःखाकरोतीत्यादि, तथैव

रत्नत्रयों की आराधना के लिये कटिबद्ध है वह अपना एक क्षण भी पञ्चविध प्रमाद के सेवन में व्यतीत न करे । समस्त जीवों को अपने समान मान कर कभी भी उनकी हिंसा आदि न करे । प्रत्येक प्राणी के शारीरिक मानसिक दुःखों को, तथा उनके कारणभूत कर्मों को, तथा सुख को जानकर उत्थित व्यक्ति कभी भी प्रमत्त न बने । तात्पर्य यह कि—समस्त प्राणियों को सुख अभिलषणीय है और दुःख परिहरणीय है, ऐसा विचार कर किसी भी प्राणी को दुःखित न करे ।

संसार के समस्त प्राणियों के दुःखजनक अभिप्राय भी एकसे न हो कर भिन्न २ ही होते हैं; अतः सूत्रकार “पुढो” इत्यादि पदसे इसी बात को प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि इस मनुष्य लोक अथवा संज्ञिलोक में जितने भी मनुष्य और संज्ञि प्राणी हैं वे सब भिन्न २ अभिप्रायसंपन्न हैं । जैसे क्षीरपान किसी को सुखदायी होता है और किसी को दुःखदायी होता है, उसी प्रकार जो उपाय आदि किसी जीव को सुखप्रद होता है वही उपायादि अन्य जीव के लिये दुःखप्रद भी होता है । यह लो-

भेजવીને રત્નત્રયની આરાધના માટે તત્પર છે તે પોતાની એક પણ ક્ષણ પાંચ પ્રકારના પ્રમાદના સેવનમાં વ્યતીત ન કરે. સમસ્ત જીવોને પોતાના સમાન ગણીને કોઈ વખત પણ તેની હિંસા આદિ ન કરે. પ્રત્યેક પ્રાણીના શારિરીક માનસિક દુઃખોને તથા તેના કારણભૂત કર્મોને તથા સુખને જાણીને ઉત્થિત વ્યક્તિ કોઈ વખત પણ પ્રમત્ત ન બને. તાત્પર્ય એ કે—સમસ્ત પ્રાણીઓને સુખ અભિલષણીય છે અને દુઃખ પરિહરણીય છે. એવું સમજીને કોઈ પણ પ્રાણીને દુઃખી ન કરે.

સંસારના સમસ્ત પ્રાણીઓના દુઃખજનક અભિપ્રાય પણ એક પ્રકારના ન હોય—ભિન્ન ભિન્ન પ્રકારના હોય છે માટે સૂત્રકાર “પુढો” ઇત્યાદિ પદથી આ વાતને સમજાવીને કહે છે કે—આ મનુષ્યલોક તથા સંજ્ઞિલોકમાં જેટલા પણ મનુષ્ય અને સંજ્ઞિ-પ્રાણી છે તે બધા ભિન્ન ભિન્ન અભિપ્રાય સંપન્ન છે. જેવી રીતે ખીરનું સેવન કોઈને સુખદાયી હોય છે અને કોઈને દુઃખદાયી હોય છે, એવા પ્રકારે જે ઉપાય વગેરે કોઈ જીવને સુખદાયક હોય છે તે જ ઉપાય આદિ અન્ય જીવને માટે દુઃખદાયી હોય છે.

યદેવ કસ્યચિત્સુખાય ભવતિ તદેવ પરસ્ય દુઃસ્વાય ચેતિ ' ભિન્નરુચિર્હિલોકઃ ' ઇતિ લોકોક્તેરિતિ । યદ્વા-પૃથક્છન્દાઃ=પૃથક્સંકલ્પાઃ-અગણિતાભિપ્રાયાઃ-ઇતિ યાવત્, માનવા इत्युपलક્ષणादन્યેષામપિ સંજ્ઞિનાં પૃથક્છન્દત્વેન ગ્રહણં જ્ઞેયમ્ । યત એવ પ્રાણિનઃ પૃથક્છન્દાસ્તસ્માદુપાદેયં કર્માપિ પૃથક્, કર્મજનિતં દુઃસ્વમપિ પૃથગેવ, કારણભેદસ્ય કાર્યભેદનિયામકત્વાત્, એતદેવ-કથયતિ ' પૃથગિ ' -ત્યાદિ, સર્વેષાં જન્તૂનાં દુઃસ્વં પૃથક્=ભિન્નરૂપં પ્રવેદિતમ્ । એતત્સર્વમાલોચ્યાનારસ્મજીવી કિં વિદધ્યાદિતિ દર્શયતિ-' સ ' ઇત્યાદિ । સઃ નિશ્ચિલજીવસુખદુઃસ્વપરિજ્ઞાતા કોક્તિ હૈ કિ "ભિન્નરુચિર્હિલોકઃ" લોગોં કી રુચિ ભિન્ન ભિન્ન હુઆ કરતી હૈ । અથવા-"પૃથક્છન્દા इह मानवाः" इसका अभिप्राय यह भी है कि मनुष्य और अन्य संज्ञी प्राणी जितने भी हैं उन सबके छन्द-संकल्प अभिप्राय पृथक्-अगणित हैं । संसार में जितने भी संज्ञी प्राणी हैं वे सब अपनी अपनी अपेक्षा अगणितअभिप्रायविशिष्ट हैं । मानव-शब्द उपलक्षण है, इससे अन्य संज्ञी प्राणियों का भी यहां ग्रहण हो जाता है । जब यह माना गया है कि प्राणियों के संकल्प भिन्न २ या अगणित हैं तो यह भी इससे सिद्ध होता है कि उनके कर्तव्य कर्म तथा कर्मजनक दुःस्व भी भिन्न २ या अगणित हैं, क्योंकि कारणों में जब भेद है तब उसके कार्यों में भी भेद मानना पड़ता है, अतः यह निश्चित होता है कि समस्त जीवों का दुःस्व पृथक्-भिन्न २ रूपमें है । इस सब का विचार कर अनारंभजीवी क्या करे ? इसकी प्ररूपणा सूत्रकार " सोअहिंसमाणे अणवयमाणे " इस

આ પ્રકારની લોક કહેવત છે કે-ભિન્નરુચિર્હિલોકઃ' લોકોની રૂચી ભિન્ન ભિન્ન પ્રકારની રહ્યા કરે છે, અથવા-"પૃથક્છન્દા इह मानवाः" તેનો અભિપ્રાય એ છે કે મનુષ્યમાત્ર અને અન્ય સંજ્ઞી-પ્રાણી જેટલા છે તે બધાના છન્દ — સંકલ્પ અભિપ્રાય અલગ અલગ છે. સંસારમાં જેટલા પણ સંજ્ઞી-પ્રાણી છે તે બધા પોતપોતાની અપેક્ષા અગણિત અભિપ્રાય ધરાવનાર છે. માનવશબ્દ ઉપલક્ષણ છે જેનાથી બીજા સંજ્ઞીપ્રાણીઓનું પણ આ સ્થળે સમાવેશ થઈ રહે છે. જ્યારે આ માની લેવાયું છે કે પ્રાણીઓના સમસ્ત સંકલ્પ ભિન્ન ભિન્ન અને અગણિત છે તો આથી પણ એ સિદ્ધ થાય છે કે તેનું કર્તવ્ય કર્મ તથા કર્મજનક દુઃખ પણ ભિન્ન ભિન્ન અને અગણિત છે, કેમ કે કારણોમાં જ્યારે ભેદ છે ત્યારે એમના કાર્યોમાં પણ ભેદ માનવો પડે છે. આથી એ નિશ્ચિત થાય છે કે સમસ્ત જીવોનાં દુઃખો પણ ભિન્ન ભિન્ન રૂપનાં છે. આ બધાનો વિચાર કરી આરંભજીવી જીવ શું કરે ? આ અંગે " સોઅવિહિંસમાણે



जन्तून् अविहिंसन्-वि=विविधैरुपायैरहिंसन्=अविशयन्, अपि च अनपवदन्-  
अपवदति=मृषावदति यः सोऽपवदन्, यश्च न तादृशः सः अनपवदन्=सत्यवादी, उप-  
लक्षणादन्येषामपि अदत्तादानादिव्रतानां ग्रहणं, तेन-परधनान्यनाददत्, मैथुनमना-  
सूत्रांश से करते हैं-जब वह अनारम्भजीवी अपने आप को इतना  
तयार कर लेता है कि जिससे वह अन्य समस्त प्राणियों के सुख और  
दुःख का भली भांति ज्ञाता हो जाता है, तब वह किसी भी प्राणी की  
हिंसा नहीं करता है, और न ऐसा कोई उपाय भी करता है कि जिससे  
अन्य प्राणियों को कष्ट पहुँचे। वह अपनी दैनिकचर्या को तथा अपनी  
प्रवृत्ति को इतनी सुरक्षित रखता है कि उसमें किसी भी प्राणी को लेश  
मात्र भी दुःख का अनुभव उसकी ओर से नहीं होने पाता है। झूठ  
नहीं बोलता, परके धनादिकका अपहरण नहीं करता, कुशील के सेवन  
से सर्वथा परे रहता है और परिग्रह का भी वह बिलकुल परित्याग कर  
देता है। इस प्रकार उसकी जब अच्छी तरह से तयारी हो जाती है तब  
वह वास्तविक मुनिपदकी शोभावाला होता है। सूत्रस्थ “अणवयमाणे”  
पद अन्य अदत्तादानादिक व्रतों का उपलक्षक है। तात्पर्य यह कि-  
हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह के सर्वथा परिवर्जन  
करने से ही मनुष्य मुनिपदको दीपानेवाला होता है। इन हिंसादि के त्याग  
से वास्तविक रूपमें पंच महाव्रतों का वह सच्चा आराधक होता है।

अणवयमाणे ” आ सूत्रनी प्रपञ्चु करतां सूत्रकार कहे छे के न्याये ओ अनार-  
लभवी पोतानी नतने ओटली छे तैयार करी दे छे के जेनाथी ते अन्य  
समस्त प्राणीओना सुख अने दुःखनो सारी रीते नष्टकार गनी नथ छे, अने  
कोठ पणु प्राणीनी ओ हिंसा करतो नथी, तेमज मनमां ओवो विचार सरभो  
आववा हेतो नथी के जेथी कोठ प्राणीओने कष्ट पड़ोये. ते पोतानी दैनिक यथाने  
तथा प्रवृत्तिने ओटली सुरक्षित राखे छे के जेथी कोठ पणु प्राणीने लेशमात्र पणु  
दुःखनो अनुभव जेना तरक्षी थवा न पाये. जुहुं नथी भोलतो, पारका धननी  
चोरी नथी करतो, कुशीलसेवनथी ओ सदा सर्वदा दूर रहे छे, परिग्रहनो ते  
सर्वथा परित्याग करी दे छे. आ प्रकारे जेनी संपूर्ण तैयारी थथ नथ छे त्यारे  
ते वास्तविक मुनिपदने शोभावनार भने छे. सूत्रस्थ “अणवयमाणे ” पद छे ओ  
जीनां अदत्तादानादिक व्रतनो उपलक्षक छे. तात्पर्य ओ के-हिंसा, जुठ, चोरी,  
कुशील अने परिग्रहनुं सर्वथा परिवर्जन करवाथी न मनुष्य मुनिपदने शोभा-  
वनार भने छे. आहिंसादिना त्यागथी वास्तविक रूपमां पांच महाव्रतनो ओ साथी  
आराधक भने छे.

સેવમાનઃ, પરિગ્રહં ચ વર્જયન્ મુનિર્ભવતિ । અપરં તસ્ય કાર્યમુપદિશતિ-‘સ્પૃષ્ટઃ’  
 इत्यादि, स पञ्चमहाव्रतनिर्वाहपरायणः स्पृष्टः=परीषहोपसर्गैरालिङ्गितः स्पर्शान्  
 शीतोष्णादिरूपान् , स्पर्शग्रहणस्योपलक्षणत्वादन्यानपि शब्द-रूप-रसादीन् विप्रणो-  
 दयेत्-वि=विशेषेण विविधोपायैर्वा प्र=प्रकर्षेण जीवितस्य क्षणदृष्टनष्टतादिसमा-  
 लोचनेन नोदयेत्=प्रेरयेत्-शब्दादिविषयालाभेन स्वात्मानं नावमन्येतेत्यर्थः । मनो-

मुनिजन के अन्य कार्यों को प्रकट करने के लिये सूत्रकार “पुट्टो फासे विपणुन्नए” इस सूत्रांश से उनका दिग्दर्शन कराते हुए कहते हैं कि पांच महाव्रतों के निर्वाह करने में तत्पर वह मुनि परीषह और उपसर्गों से समन्वित होता हुआ भी शीतोष्णादिरूप स्पर्श तथा अन्य-शब्द, रूप और रसादिक विषय कि जिनका यहां पर “स्पर्श” इस उपलक्षणरूप पदसे ग्रहण हुआ है उन का सम्बन्ध विशेष रीति से, अथवा विविध उपायों द्वारा अपनी आत्मा से हटा देवे। “विप्रणोदयेत्” इस क्रिया में “प्र” शब्द इस बात का समर्थन करता है कि इन विषयादिकरूप स्पर्शों से संबंध विच्छेद करनेके लिये मुनि को इस बातका विचार करना चाहिये कि यह मेरा जीवन अत्यल्प है, कल के भरोसे पर मुझे नहीं रहना चाहिये, जो कुछ करना है उसे आज ही अब ही कर डालना चाहिये, क्या पता कल आवे या न आवे, इस प्रकार जीवनमें क्षणदृष्टनष्टतादिकी समालोचनासे इन स्पर्शादिक विषयों के सम्बन्ध से आत्मा स्वयं सचेत हो कर रहित हो जाता है, फिर उनकी अप्राप्तिमें आकुलता नहीं होती

मुनिजनનાં અન્ય કાર્યોને પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રકાર “પુટ્ટો ફાસે વિપણુન્નએ” આ સૂત્રદ્વારા સમજાવતાં કહે છે કે-પાંચ મહા વ્રતોથી નિર્વાહ કરવામાં તત્પર એવા મુનિ પરીષદ અને ઉપસર્ગોમાં ભાગ લેનાર અને શીતોષ્ણાદિરૂપ, સ્પર્શ તથા અન્ય શબ્દ, રૂપ, ગંધ અને રસાદિક વિષયો કે જેનો અહિં “સ્પર્શ” આ ઉપલક્ષણરૂપ પદથી સ્વીકાર કરાયો છે તે સંબંધ વિશેષ રીતિથી, અથવા વિવિધ ઉપાયોથી પોતાના આત્માથી દૂર કરે. “વિપ્રણો-દયેત્” આ ક્રિયામાં “પ્ર” શબ્દ એ વાતનું સમર્થન કરે છે કે આ વિષયાદિક સ્પર્શોનો સંબંધ વિચ્છેદ કરવા માટે મુનિએ આ વાતનો વિચાર કરવો જોઈએ કે ‘મારું આ જીવન અત્યંત અલ્પ છે. કાલના ભરોસે મારે ન રહેવું જોઈએ. જે કંઈ કરવું છે તે આજે જ અને અત્યારે જ કરવું જોઈએ. કાલ થશે કે કેમ એનો ભરોસો શું ?’ આ પ્રકારે ક્ષણ જીવન અને તેના નાશની મનમાં સમાલોચના કરી આ સ્પર્શાદિક વિષયોના સંબંધથી, આત્મા સ્વયં સચેત બનીને અલિપ્ત બની જાય છે, પછી એને અપ્રાપ્તિમાં આકુલતા થતી નથી તેમ

જ્ઞશબ્દાદીનધિગમ્ય તેષુ રાગમમનોજ્ઞાન્ પ્રાપ્ય તેષુ ચ દ્વેષં ચાપનયન્ મધ્યસ્થભાવેન તેષુ વર્તમાનો મુનિર્ભવતીતિ સૂત્રતાત્પર્યમ્ ॥ સૂ. ૧ ॥

તાદૃશમુનેર્ગુણાનુપદર્શયતિ—‘એસ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—એસ સમિયાપરિયાએ વિયાહિએ, જે અસત્તા પાવેહિં કમ્મેહિં, ઉદાહુ તે આયંકા ફુસંતિ, ઇતિ ઉદાહુ ધીરે તે ફાસે પુટ્ટો અહિયાસડ્ । સે પુઠ્ઠિવપેયં પચ્છાપેયં ભેરધમ્મં વિદ્ધં-સણધમ્મં અધુવં અણિદ્ધયં અસાસયં ચયાવચ્ચદ્ધયં વિપ્પરિણામ-ધમ્મં પાસહ એયં રૂવસંધિં ॥ સૂ. ૨ ॥

છાયા—એપ શમિતાપર્યાયો વ્યાખ્યાતઃ, એસક્તાઃ પાપેષુ કર્મસુ, ઉદાહ તાન્ આતક્કા સ્પૃશન્તિ, ઇતિ ઉદાહુર્ધીરસ્તાન્ સ્પૃષ્ટોઽધ્યાસયેત્ । સ પૂર્વમપ્યેતત્ પશ્ચાદ-પ્યેતત્ ભિદુરધર્મં વિદ્ધંસનધર્મમધુવમનિત્યમશશ્વતં ચયાવચ્ચયિકં વિપરિણામધર્મં પશ્યતૈતં રૂપસન્ધિમ્ ॥ સૂ. ૨ ॥

ટીકા—‘એષ’ ઇત્યાદિ, એષઃ=પરીષદ્ પ્રણોદકઃ શમિતાપર્યાયઃ-શમોઽસ્તિ અસ્યેતિ શમી=શમવાન્, તસ્ય ભાવઃ શમિતા, તયા પર્યાયશ્ચારિત્રગ્રહણં યસ્ય સ શમિ-  
ઔર ન આત્મગ્લાની હી જગતી હૈ । ઇસ સૂત્રકા ભાવાર્થ યહ હૈ—“મનોજ્ઞ શબ્દાદિક વિષયોં કી પ્રાપ્તિ મેં રાગ, ઔર અમનોજ્ઞ-અરુચિકર કી પ્રાપ્તિ મેં દ્વેષકો દૂર કર મુનિકા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ્ ઉનમેં મધ્યસ્થભાવસે વર્તન કરે । તબ હી વહ્ સચ્ચા ત્યાગી-મુનિ હો સકતા હૈ ॥ સૂ. ૧ ॥

ઇસ પ્રકાર કે મુનિયોં કે ગુણોંકા પ્રદર્શન સૂત્રકાર કરતે હૈ—‘એસ’ ઇત્યાદિ ।

જો પરીષદ્ કા જીતનેવાલા હોતા હૈ વહી શમિતા-પર્યાયવાલા હોતા હૈ । શમ જિસકે હોતા હૈ વહ્ શમી-શમવાન્ હૈ । શમી કા ભાવ શમિતા

આત્મગ્લાની પણ જાગતી નથી. આ સૂત્રનો ભાવાર્થ આ છે—કે મનોજ્ઞ શબ્દાદિક વિષયોની પ્રાપ્તિમાં રાગ અને અમનોજ્ઞ-અરુચિકરની પ્રાપ્તિમાં દ્વેષને દૂર કરવો, એ મુનિનું કર્તવ્ય છે કે—તે મધ્યસ્થભાવથી વર્તન કરે. ત્યારે જ તે સાચો ત્યાગી એટલે મુનિ બને છે. ॥ સૂ. ૧ ॥

આ પ્રકારે મુનિઓના ગુણોનું વર્ણન કરતાં સૂત્રકાર કહે છે—‘એસ’ ઇત્યાદિ.

જે પરિષદોને જીતવાવાળા બને છે તે જ શમિતા-પર્યાયવાળા બને છે. શમ જેને થાય છે એ જ શમી-શમવાન્ છે, શમીનો ભાવ શમિતા છે. શમિતાથી



તાપર્યાયઃ, વ્યધિકરણવહુત્રીહિઃ । યદ્વા-સમ્યક્પર્યાય इतिच्छाया; ‘સમ્યક્પર્યાયઃ=સમ્યક્=પ્રશસ્તઃ પર્યાયો यस्य स सम्यक्पर्यायः=પ્રશસ્તચારિત્રવાન્ વ્યાખ્યાતઃ=વિ=વિવિધપ્રકારેણ આખ્યાતઃ=કથિતઃ । પરીપદ્ધોપસર્ગાપનોદકસ્ય અસાતવેદનીયકર્મોદયાદ્રોગસમુદયે તસ્યૈવ તત્સહનશીલતામાહ—‘યેઽસક્તાઃ’ इत्यादि, ये=અનિર્દિષ્ટનામાનઃ પાપેષુ=પાપજનકેષુ ચારિત્રમોહનીયેષુ વા કર્મસુ અસક્તાઃ=અનિર્ભરાઃ, યદ્વા-પાપેષુ કર્મસુ હિંસાદિષુ અસક્તાઃ=અસ્પૃષ્ટાઃ સન્તિ, મૂલે ચાર્પત્વાત્સમ્યર્થે તૃતીયા; ઉદાહ=કદાચિત્તાન્ પાપકર્મસ્વસક્તાન્ મુનોન્ આતઙ્કાઃ=શીઘ્રપ્રાણઘાતિનઃ શૂલાદયો રોગવિશેષાઃ સ્પૃશન્તિ=આક્રામ્યન્તિ-અભિભવન્તીત્યર્થઃ, एवं चेत्किमेते-  
 હૈ । શમિતા સે ચારિત્રકા ગ્રહણ જિસકે હોતા હૈ વહ શમિતાપર્યાયવાલા હૈ । વહ વિવિધ પ્રકારસે કહા ગયા હૈ । અથવા-“ સમિયાપરિયાણ ” इसकी संस्कृत छाया “ सम्यक्पर्यायः ” भी होती है । सम्यक् का अर्थ प्रशस्त, पर्याय का अर्थ चारित्र है । प्रशस्त है चारित्र जिसका वह सम्यक्पर्यायवाला-प्रशस्तचारित्रवाला विविध प्रकार से कहा है । अर्थात्-परीषहों का जीतनेवाला समताभाव से चारित्र का ग्रहण करने-वाला अथवा-प्रशस्तचारित्रवाला कहा गया है ।

પરીષહ ઓર ઉપસર્ગોં કો જીતનેવાલે સાધુ કે અસાતાવેદનીય કર્મ કે ઉદય સે રોગસમુદય આને પર ઉસે ઉનકો સહન હી કરના ચાહિયે, યહ વાત સૂત્રકાર “ જે અસક્તા ” इत्यादि सूत्रांश से प्रकट करते हैं । जो साधु पापजनक कर्मों में अथवा चारित्रमोहनीय कर्म में अनासक्त हैं उन्हें कदाचित् शीघ्र प्राणघातक शूलादिक रोगविशेषों का सामना भी

જે ચારિત્ર ગ્રહણ કરે છે તે શમિતા-પર્યાયવાળો બને છે.

“ સમિયાપરિયાણ ” આની સંસ્કૃત છાયા “ સમ્યક્પર્યાયઃ ” પણ થાય છે. સમ્યક્નો અર્થ પ્રશસ્ત, પર્યાયનો અર્થ ચારિત્ર છે. જેનું ચારિત્ર મહાન છે-વખાણવા જેવું છે તે સમ્યક્પર્યાયવાળા-પ્રશસ્તચરિત્રવાળા વિવિધ પ્રકારે કહેવાય છે, અર્થાત્-પરિષદોને હિતનાર અને સમતાભાવથી ચારિત્રનું ગ્રહણ કરનાર અથવા-પ્રશસ્ત ચારિત્રવાળા કહેવાય છે.

પરિષદ અને ઉપસર્ગોંને હિતનાર સાધુને અસાતા-વેદનીય કર્મના ઉદયથી રોગનો ઉપદ્રવ આવે તો એને તેણે સહન કરવો જોઈએ. આ વાત સૂત્રકાર “ જે અસક્તા ” इत्यादि सूत्रांश પ્રગટ કરે છે - જે સાધુ પાપજનક કર્મોમાં અથવા ચારિત્રમોહનીય કર્મોમાં અનાસક્ત છે તેને કદાચ શીઘ્ર પ્રાણઘાતક શૂલાદિક રોગ

नेत्याह—‘इती’—इत्यादि, इति=एतत् वक्ष्यमाणम्—उदाहुः=कथितवन्तस्तीर्थङ्करगण-  
धरादयः, किमाहुर्इत्याह—‘धीर’—इत्यादि—शूलादिरोगविशेषैः स्पृष्टः=अभिभूतः धीरः  
=तत्सहने धैर्यवान् सन् तान् स्पर्शान्=रोगविशेषोत्पन्नाः वेदनाः अव्यासयेत्=  
सहेत—नोद्विजेतेत्यर्थः । चारित्रमोहनीयकर्मणः क्षयोपशमेन चारित्रं लभते, वेदनी-  
योदयेन च केवलिनोऽपि रोगा अभिभवन्ति, ततश्च तै रोगैः स्पृष्टो मनोग्लानिं न  
कुर्यादित्याशयः । किं चैतदपि चेतसि परिचिन्त्य वेदनां सहेतेत्याह—‘स’ इत्यादि,  
सः=रोगैरभिभूतः चिन्तयेत्—यत्—एतत् असातावेदनीयविपाकजनितं दुःखं पूर्वमपि  
करना पड़ता है—उन पर प्राणघातक शूलादि रोगविशेष आक्रमण करते  
भी हैं । ऐसे मुनियों के लिये तीर्थङ्कर देवोंने या गणधरादिक महर्षियोंने  
यह (वक्ष्यमाण) बात कही है । क्या कही है ? इस जिज्ञासा का ‘धीरे’  
इत्यादि द्वारा समाधान करते हुए सूत्रकार कहते हैं “कि वह धीर—वीर  
साधु शूलादिक रोग विशेषों से आक्रान्त होता हुआ भी उन शूलादिक  
जनित वेदनाओंको सहे, उनसे उद्विग्नचित्त न बने । चारित्रमोहनीय  
कर्म के क्षयोपशमसे जीव चारित्रकी प्राप्ति करता है । वेदनीय कर्म के  
उदय से अनेक प्रकार की वेदनाएं उत्पन्न होती हैं; अतएव केवलियों तक  
को भी रोगों का सामना करना पड़ता है । वे भी जब वेदनीय के उदय  
से रोगों से आक्रान्त हो जाते हैं, तो साधारण मुनियों की तो बात ही  
क्या है ? इस लिये ऐसी परिस्थिति में मुनि को कभी भी आत्मग्लानि  
नहीं करनी चाहिये । दूसरे—अपने मनमें यह भी विचार कर वेदनाओं  
को सहन करना चाहिये कि मैं इस समय जो रोगादिकों से अभिभूत

वगेरेना सामनो करवो पडे छे—येना उपर प्राणघातक शूलादिक रोग ओकाकी  
आक्रमण करे छे. येवा मुनियोने भाटे तीर्थंकर-देवोये तेमज गणधरादिक मह-  
र्षिओये आ बात कही छे. शुं कहुं छे ? आ एसासानुं सारासारद्वारा समाधान करतां  
सूत्रकार कहे छे के—ये धीर वीर साधु शूलादिक रोगथी आक्रान्त होवा छतां  
शूलादिक वेदनाओ सहे, येनाथी ये उद्विग्नचित्त न बने. चारित्रमोहनीय कर्मना  
क्षयोपशमथी एव चारित्रनी प्राप्ति करे छे. वेदनीय कर्मना उदयथी अनेक प्रकारनी  
वेदनाओ उत्पन्न थाय छे. केवलियोने पण रोगोनो सामनो करवो पडे छे, तेओ  
पण न्यारे वेदनीयना उदयथी रोगथी बेराध नय छे तो पछी साधारण मुनि-  
योनी तो बात न शी करवी ? भाटे आवी परिस्थितिमां मुनिओे कही पण आत्म-  
ग्लानी करवी न्हथे नही. जीवुं पोताना मनमां येवा पण विचार करी वेद-  
नाओने सहेवी न्हथे के हुं आ समय ने रोग आदिथी पिडीत छुं ये पधा

મયૈવ સહનીયમ્, એતત્=એતદેવ દુઃખં પશ્ચાદપિ વર્તમાનકાલાનન્તરં વાર્દ્ધક્યાદાવપિ મયૈવ સહં સ્યાત્, તીર્થક્કરાદીનામપિ તત્સમ્ભવાદિત્યવધાર્યં સ્વાત્માનં નાવમાન-યેત્, ઉક્તંચ—

હો રહા હું, સો યહ સબ અસાતાવેદનીય-કર્મજનિત વિલાસ હૈ । ઇસ જીવં કે સાથ ઇસકા સમ્બન્ધ પહિલે સે લગા આ રહા હૈ । યહ અભી નવીન તો બંધા નહીં હૈ । તવ જો કર્મ બંધા હૈ ઉસકા ઉદય તો આવેગા હી । ઉસકે ઉદયમેં સ્વેદસ્વિન્ન હોના ઉસ કર્મ કે નવીન બંધકી દૃઢતા કા કારણ હૈ, સમતા સે ઉસકે ફલ કો ભોગના નિર્જરા કા હેતુ હૈ, અતઃ ઇસકા ઉદયજન્ય દુઃખ પૂર્વમેં મૈને હી ભોગા હૈ ઓર આગે મૈ વૃદ્ધા-વસ્થા આદિ મેં વહી દુઃખ મુઝે હી ભોગના પડેગા । અરે ! મેરી તો યહાં પર ક્યા ગિનતી હૈ ? દુઃખ યહ સમજ્ઞ કર મુઝે થોડે હી છોડ દેગા કિ 'યહ સાધુ હૈ' । અરે ! મેરે જૈસોં કી ક્યા વાત ? તીર્થકરાદિકોં કો મૈ તો કષ્ટોં કી સંભાવના રહતી હૈ ।

ભાવાર્થ—દુઃખોં કે આને પર દુઃખિત પ્રાણી જબ અપને સમક્ષ અન્ય દૂસરે વ્યક્તિયોં કે દુઃખોં કા વિચાર કરતા હૈ, તો ઉસે આગત દુઃખોં કો સહને મેં પ્રોત્સાહન મિલતા હૈ, યહી વાત યહાં પર ટીકાકાર ને પ્રકટ કી હૈ, તીર્થક્કરાદિક જૈસે મહાપુરુષોં કા ઉસકે સમક્ષ ઉસ અવસ્થા મેં આદર્શ ઉપસ્થિત ક્રિયા હૈ, જિસસે વહ દુઃખોં કે સહને મેં

અસાતા-વેદનીય કર્મોનો વિષાક છે. આ જીવનની સાથે તેનો સંબંધ પહેલાથી લાગેલો છે, આ આજે નવીન તો બંધાયેલ નથી, ત્યારે જે કર્મ બંધાયેલ છે તેનો ઉદય આવવાનો જ, આ ઉદયમાં અકળામણ અનુભવવી તે કર્મનો નવા બંધનું બંધન બાંધવા સમાન છે. સમતાથી તેના કળને ભોગવવું તે નિર્જરાનો હેતુ છે, એટલે તેના ઉદયજન્ય દુઃખ પૂર્વમાં પણ મેં ભોગવ્યાં છે અને આગળ પણ વૃદ્ધાવસ્થા આદિમાં પણ દુઃખ મારે ભોગવવું પડશે. અરે ! મારી તો શું ગણત્રી છે દુઃખ એવું સમજીને મને નહીં છોડી દે કે 'એ સાધુ છે.' તીર્થકરાદિકને પણ કષ્ટની સંભાવના રહે છે.

ભાવાર્થ—દુઃખના આવવાથી દુઃખિત પ્રાણી પોતાની સામે બીજી વ્યક્તિ-ઓના દુઃખનો વિચાર કરે છે તો તેને આગળ આવતાં દુઃખોને સહન કરવામાં પ્રોત્સાહન મળે છે. આ વાતને ટીકાકારે અહિં પ્રગટ કરેલ છે. તીર્થકરાદિક જેવા મહાપુરુષોના તેની સામે તેવી અવસ્થામાં આદર્શ ઉપસ્થિત કરેલ છે જેથી તે દુઃખો સહન કરવામાં લીધો-પોચો ન બની જાય. આરિત્રની પ્રાપ્તિ અન્ય કર્મોના



“સ્વકૃતપરિણતાનાં, દુર્ન્યાનાં વિપાકઃ, પુનરપિ સહનીયો નાન્યથા તે વિમોક્ષઃ ।  
 इति मनसि विचार्य प्राप्तदुःखं समस्तं, समपरिणतिभावात् सद्यते संयतैस्तत् ॥१॥” इति ।  
 मलिनपरिणामी न बन सके । चारित्रकी प्राप्ति अन्य कर्म के क्षयोप-  
 शमादिक का कार्य है और दुःखों का आना अन्य अन्य दूसरे कर्म के  
 उदय का कार्य है । एक के क्षयोपशम में अन्य का भी क्षयोपशम हो  
 जायगा यह तो कोई नियम नहीं है । अतः चारित्राराधन करनेवालों  
 को कष्टों का सामना न करना पड़े यह मान्यता कैसे युक्तियुक्त हो सकती  
 है । इसलिये कष्टों को भोगते समय आत्मा में समताभाव धारण  
 करना ही श्रेयस्कर मार्ग है । आत्मग्लानि करना कर्मबन्धकी दृढता का  
 कारण बनता है; इसलिये मोक्षार्थीजनका यह कर्तव्य है कि वह वीर्योल्लास-  
 शाली बन उनका सदा सामना करनेमें कटिबद्ध रहे । कहा भी है—

“स्वकृतपरिणतानां दुर्न्यानां विपाकः,

पुनरपि सहनीयो नान्यथा ते विमोक्षः ।

इति मनसि विचार्य प्राप्तदुःखं समस्तं,

समपरिणतिभावात्सद्यते संयतैस्तत्” ॥१॥ इति,

इस प्रकार दुःखों के आने पर साधुजनका उनके सहन करने का  
 यह विचार परम पवित्र है । वे यह सोच कर दुःखों को सहन करें कि  
 मेरे कर्मों की निर्जरा का यही सुन्दर अवसर है ।

क्षयोપશમાદિકનું કાર્ય છે અને દુઃખોનું આવવું બીજા કર્મોના ઉદયનું કાર્ય છે.  
 ‘એકના ક્ષયોપશમમાં બીજાનું પણ ક્ષયોપશમ બની રહે છે’ એવો તો કોઈ નિયમ  
 નથી, માટે આ ચારિત્રનું આરાધન કરવાવાળાને કષ્ટોનો સામનો ન કરવો પડે  
 એ માન્યતા કેવી રીતે બંધબેસતી થઈ શકે ? માટે કષ્ટોને ભોગવતી સમય  
 આત્મામાં સમતાભાવ ધારણ કરવો એ શ્રેયસ્કર માર્ગ છે, આત્મગ્લાનિ કરવી એ  
 કર્મબંધનની દૃઢતાનું કારણ બને છે, જેથી મોક્ષાર્થી જનનું એ કર્તવ્ય છે કે તે  
 મક્કમ બની તેનો સદા સામનો કરવામાં કટિબદ્ધ રહે । કહ્યું પણ છે—

स्वकृतपरिणतानां दुर्न्यानां विपाकः, पुनरपि सहनीयो नान्यथा ते विमोक्षः ।

इति मनसि विचार्य प्राप्तदुःखं समस्तं, समपरिणतिभावात्सद्यते संयतैस्तत् ॥१॥ इति.

આ પ્રકારનાં દુઃખો આવવાથી સાધુજનનો તેને સહન કરવાનો તેવો વિચાર  
 પરમ પવિત્ર છે. તે એવું વિચારી દુઃખોને સહન કરે કે મારા કર્મોની નિર્જરાનો  
 આ સુંદરમાં સુંદર અવસર છે.

પરમાવસરોડયં કર્મનિર્જરાયા ઇતિ ક્ષમેત વેદનામિતિ તાત્પર્યમ્। કિંચ-ઇદં શરીરં રસાયનાદિસેવનેન સમુપજાતોપચયમપિ પાર્થિવામકુમ્ભવદન્તઃસારશૂન્યં ક્ષણદૃષ્ટનષ્ટમસ્તીત્યાહ-‘મિદુરધર્મ’-મિત્યાદિ,-મિદુરધર્મ=મિદુરઃ ક્ષણમઙ્ગુરો ધર્મઃ સ્વભાવો યસ્ય તત્ મિદુરધર્મ=વિનશનશીલં શરીરમ્, ઔદારિકસ્ય સુપોષિતસ્યાપ

તથા—રસાયનાદિક કે સેવન સે ઇસ શરીરમેં પુષ્ટિ આતી હૈ તો ખી જિસ પ્રકાર મિટ્ટી કા કચ્છા ઘટ ખીતર મેં સારરહિત હોતા હૈ—પાની કે છીટે લગતે હી જૈસે વહ દેખતેર નષ્ટ હો જાતા હૈ, ઉસી પ્રકાર સે ઇસ શરીર કી ખી યહી પરિસ્થિતિ હૈ। વેદના આદિ બલવાન આયુઃ ક્ષયકે કારણોં કે આ જાને પર સબ રસાયનાદિ અકિશ્ચિત્કર (રોગ દેદાને મેં અસમર્થ) હો જાતે હૈં ઓર યહ શરીર ખી દેખતેર નષ્ટ હો જાતા હૈ, અપના ક્રિયા-કરાયા સબ નિષ્ફલ હો જાતા હૈ। મુનિકો ંસા વિચાર કર વેદનાઓં કે સદ્દેને મેં કાચરતા નહીં લાની ચાહિયે। ઇસ પ્રકાર ઉસકે ઉત્સાહ-વર્ધનાર્થ સૂત્રકાર “ મિડુરધર્મમ્ વિદ્વંસણધર્મમ્ ” ઇત્યાદિ પદોં સે શરીર કા સ્વભાવ પ્રદર્શિત કરતે હૈં। ક્ષણમઙ્ગુર જિસકા સ્વભાવ હૈ વહ મિદુરધર્મ હૈ। યહ ઔદારિક શરીર વિનશનશીલ હૈ। અછ્છી તરહ સે પોષિત કરને પર ખી યહ અપને સ્વભાવ કો નહીં છોડતા હૈ। કદાચિત્ વેદનીય કા ઉદય હો જાતા હૈ તબ શીઘ્ર ઇસકે અંગ-ઉપાંગોં મેં અનેક પ્રકાર કે પરિવર્તન હોતે દેખે જાતે હૈં। ઇસીકી પુષ્ટિ ટીકાકાર—

હરી—અર્થાત્ રસાયણાદિકના સેવનથી શરીરમાં પુષ્ટિ આવે છે તો પણ જે પ્રકારે માટીનો કાચો ઘડો અંદરથી સારરહિત હોય છે, તેને પાણીનો થોડો માત્ર સ્પર્શ થતાં ભેત-ભેતામાં તે ગળી જઈ નાશ પામે છે, એ જ રીતે આ શરીરની પણ તેવી જ સ્થિતિ છે. વેદના આદિ બલવાન આયુ ક્ષયનાં કારણો ઉપસ્થિત બનતાં બધા રસાયનાદિક અકિચિત્કર (રોગને નિર્મૂળ કરવામાં અસમર્થ) બની જાય છે, અને આ શરીરનો ભેત-ભેતામાં નાશ થઈ જાય છે, અને કર્યું કરાવ્યું બધું નિષ્ફળ બની જાય છે. મુનિએ આવો વિચાર કરી રોગની વેદના સહન કરવામાં કોઈ પ્રકારની કાચરતા બતાવવી ન ભેઈએ. આ કારણે એમનામાં ઉત્સાહ દંઢ બનાવવા સૂત્રકાર “ મિડુરધર્મમ્ વિદ્વંસણધર્મમ્ ” ઇત્યાદિ પદોથી શરીરનો સ્વભાવ કેવો છે તેવું વર્ણન કરે છે—ક્ષણભંગુર એનો સ્વભાવ છે, એ મિદુરધર્મ છે. સુંદર દેખાતો માનવદેહ વિનાશ માટે જ સજા થો છે. ગમે તેવું લાલન-પાલન કરો છતાં એ પોતાનો સ્વભાવ છોડતો નથી. કોઈ વખત વેદનીયનો ઉદય થાય છે ત્યારે તેના અંગઉપાંગોમાં શીઘ્ર અનેક પ્રકારનું





લમિત્યર્થઃ, એવમ્-અધ્રુવમ્=અનિશ્ચિતસ્થિતિકં ચન્નલસ્વભાવત્વાત્, અનિત્યમ્-તત્ત્વા-  
પ્રચ્યુતાનુત્પન્નસ્થિરાયોઘનસ્વભાવં નિત્યં, ન નિત્યમ્-અનિત્યમ્=અસ્થાયિસ્વભાવમ્,  
भी हस्त-पादादिक अंगविशेष में उपघात-चोट आदि के लगने पर इस  
का अधःपात हो जाता है । जिस प्रकार जीर्ण-शीर्ण पत्तों का अधःपतन  
होता रहता है, ठीक यही दशा इस शरीर की होती रहती है । मर्मस्थानों  
में या हस्त-पादादिकों ( हाथ-पग ) में विशेष चोट लगने से मृत्यु हो  
जाती है, यह अनुभवसिद्ध बात है, इसलिये इसे अध्रुव भी कहा है ।  
इसके रहने की कोई निश्चित स्थिति नहीं है । यद्यपि शास्त्रों में औदारिक  
शरीर की स्थिति उत्कृष्ट और जघन्य रीति से प्रदर्शित की गई है; परंतु  
उतनी ही स्थिति इसके उदय में आवेगी यह तो कोई निश्चित बात  
नहीं । अकाल में भी इसका पतन होता देखा जाता है । क्योंकि इसका  
स्वभाव ही चंचल है; स्थिर नहीं, अतः इस अपेक्षा से यह अनित्य है ।  
यद्यपि द्रव्यदृष्टि से किसी भी वस्तु का समूल नाश नहीं होता है, तो भी  
पर्यायदृष्टि से प्रत्येक पदार्थ परिणमनशील है । जो वस्तु अपने स्वरूप से  
अप्रच्युत अनुत्पन्न स्थिर और अयोघन स्वभाववाली होती है उसका  
नाम नित्य है । इस प्रकार की नित्यता से जो रहित है, वह अनित्य है ।  
इस शरीर में इस प्रकारकी नित्यता नहीं है; क्योंकि यह पूरण-गलन-

ઈત્યાદિ કોઈ ભાગ ઉપર ચોટ આદિ લાગી જતાં તેના અધઃપાત થઈ જાય છે.  
જેવી રીતે આડ ઉપરનાં છુર્ણ પાંદડાંને હવાનો સાધારણ સ્પર્શ લાગતાં જ તે ખરી  
પડે છે, ઠીક આવી દશા આ શરીરની થતી રહે છે. મર્મ સ્થાનોમાં અને હાથ પગોમાં  
વિશેષ ચોટ લાગવાથી મૃત્યુ થાય છે, એ અનુભવસિદ્ધ વાત છે. આ કારણે એને  
અસ્થિર કહેવામાં આવે છે. તેને રહેવાની કોઈ નિશ્ચિત સ્થિતિ નથી તો પણ શાસ્ત્રોમાં  
ઔદારિક શરીરની સ્થિતિ ઉત્કૃષ્ટ અને જઘન્ય રીતિથી પ્રદર્શિત કરેલ છે, પરંતુ  
એટલી જ સ્થિતિ તેના ઉદયમાં આવશે એવી તો કોઈ નિશ્ચિત વાત નથી.  
અકાલમાં પણ તેનું પતન થવું અસંભવ નથી, કારણ કે તેનો સ્વભાવ અચલ જ  
છે-સ્થિર નથી, એથી આ અપેક્ષાએ આ અનિત્ય છે, પરંતુ દ્રવ્ય-દૃષ્ટિથી કોઈ પણ  
વસ્તુનો સમુજો નાશ થતો નથી તો પણ પર્યાયદૃષ્ટિથી પ્રત્યેક પદાર્થ પરિણમનશીલ  
છે, જે વસ્તુ પોતાના સ્વરૂપથી અપ્રચ્યુત અનુત્પન્ન સ્થિર અને અયોઘન સ્વભાવ-  
વાળી હોય છે તેનું નામ નિત્ય છે, આવા પ્રકારની નિત્યતાથી જે રહિત છે તે અનિત્ય  
છે. આ શરીરમાં એવા પ્રકારની નિત્યતા છે નહિ, કારણ કે તે પૂરણ-ગળન-

અશાશ્વતમ્-શશ્વત્=સર્વદા મર્ત્ય શાશ્વતં, ન શાશ્વતમ્-અશાશ્વતં-નિત્યાવસ્થાન-રહિતમ્, એવં ચયાપચયિકમ્-ઇષ્ટાદ્વારાદ્યુપયોગાદૌદારિકકાયવર્ગણાપરમાણુનામુ-પચયાચયઃ, તદ્વિરુદ્ધોઽપચયઃ, ચયશ્ચાપચયશ્ચ ચયાપચયૌ, તાવસ્ત્યસ્યેતિ ચયાપચ-યિકં=વૃદ્ધિક્ષયસ્વભાવમ્; અત એવ વિપરિણામધર્મ વિ=વિવિધૈઃ ગર્ભકૌમારયૌવનવા-ર્ધકાદિરૂપૈઃ પરિણામઃ=દુગ્ધસ્ય દધિવદન્યથાભાવો વિપરિણામઃ, સ એવ ધર્મઃ સ્વભાવો સ્વભાવવાલા છે. । इसलिये यह प्रच्युत उत्पन्न और अस्थिर है । जिस प्रकार कूटस्थ नित्य में कोई भी जात का परिणमन दृष्टिपथ नहीं होता है उस प्रकार का कूटस्थ नित्य अयोधनस्वरूप यह शरीर नहीं है, इसलिये यह अनित्य है-अस्थायिस्वभाववाला है । जो निरन्तर रहे उसका नाम शाश्वत है, जो शाश्वत नहीं है उसका नाम अशाश्वत है । यह शरीर अशाश्वत इसलिये है कि इसका अवस्थान नित्य नहीं है । इसी प्रकार यह शरीर चय और अपचय विशिष्ट है-इष्ट आहारादिक के उपयोग-सेवन से औदारिक कायवर्गणा के परमाणुओं की वृद्धि से इसमें चयस्वभावता, और इससे विपरीत आहारादिक के उपयोग से अपचयस्वभावता सिद्ध है । चय और अपचय में द्वन्द्व समास है । चय और अपचय से जो युक्त हो-अर्थात् चय और अपचय जिस में हों वह चयापचयिक है । वृद्धिक्षयस्वभावरूप यह शरीर है । समयानुसार घटती-बढ़ती शरीर में होती हुई प्रत्यक्ष प्रतीत होती है, इसीलिये यह विपरिणामधर्मवाला है । जिस प्रकार दूध का परिणाम दही-आदि

સ્વભાવવાળું છે, આ કારણે તે પ્રચ્યુત ઉત્પન્ન અને અસ્થિર છે. જે પ્રકારે કૂટસ્થ નિત્યમાં કોઈ પણ જાતનું પરિણામ જોવામાં આવતું નથી તે પ્રકારનું અયોધનસ્વરૂપ આ શરીર નથી માટે આ અનિત્ય છે-અસ્થાયી સ્વભાવવાળું છે. જે નિરંતર રહે તેનું નામ શાશ્વત છે, જે શાશ્વત નથી તેનું નામ અશાશ્વત છે. આ શરીર અશાશ્વત એટલા માટે છે કે એની અવસ્થા નિત્ય નથી. આ પ્રકારે આ શરીર ચય અને અપચય-વિશિષ્ટ છે. ઇષ્ટ આહારાદિકના ઉપ-યોગ-સેવન-થી ઔદારિકકાયવર્ગણાના પરમાણુઓની વૃદ્ધિથી તેમાં ચય-સ્વભાવતા-અને એનાથી વિપરીત આહારાદિકના ઉપયોગથી અપચય-સ્વભાવતા સિદ્ધ છે, ચય અને અપચયમાં સામસામે સ્વભાવ છે. ચય અને અપચય જેમાં હોય તે ચયાપચયિક છે. વૃદ્ધિ-ક્ષય-સ્વભાવરૂપ આ શરીર છે, સમયાનુસાર ઘટ-વધ શરીરમાં થાય છે તેમ પ્રત્યક્ષ દેખાઈ આવે છે. આ કારણે તે વિપરિણામધર્મ-વાળો છે. જેમ દુધનું પરિણામ દહીં આદિ અવસ્થારૂપ થાય છે તેવી રીતે આ

યસ્ય તદ્વિપરિણામધર્મમ્ એકસ્મિન્નેવ જન્મનિ વિવિધાવસ્થાવિશેષૈરનેકવિધ-  
પરિણામસ્વભાવં શરીરં વર્તતેऽતોઃ હે મુનયઃ ! યૂયમ્ એતં રૂપસન્ધિમ્=ભિદુરાદિસ્વ-  
ભાવં શરીરં સુકુલજન્મવોધિલાભાદ્યવસરં ચ પश्यત=પ્રેક્ષધ્વં જાનીતેત્યર્થો વા, તેન  
શરીરે મમત્વં વિઠાય તપઃસંયમાદેઃ સાફલ્યં વિધેયમિતિ ભાવઃ ॥ સૂ. ૨ ॥

ભિદુરધર્મોદિસ્વરૂપં શરીરં વિલોકયતો યદ્ભવેત્તદર્શયતિ-‘સમુપ્પેહ’-ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—સમુપ્પેહમાણસ્સ ઇકાયયણરયસ્સ ઇહ વિપ્પમુક્કસ્સ  
નત્થિ મગ્ગે વિરયસ્સ—ત્તિવેમિ ॥ સૂ. ૩ ॥

છાયા—સમુપ્પેક્ષમાણસ્યૈકાયતનરતસ્યેદ વિપ્રમુક્તસ્ય નાસ્તિ માર્ગો વિરત-  
સ્યેતિ વ્રવીમિ ॥ સૂ. ૩ ॥

અવસ્થારૂપ હોતા હૈં ઉસી પ્રકાર ઇસ શરીર કે પરિણામસ્વરૂપ ગર્ભ-  
કૌમાર ( બાલ્ય અવસ્થા ) ઓર યૌવન એવં વૃદ્ધ અવસ્થાએ હૈં । ઇસ પ્રકાર  
એક હી જન્મ મેં ઇન અનેક અવસ્થાવિશેષોં સે ઇસ શરીર કા ભિન્ન રૂપ  
મેં પરિણમન હોતા હુઆ દેખા જાતા હૈં । ઇસલિયે હે મુનિયોં !  
રૂપસન્ધિ અર્થાત્ ભિદુરાદિસ્વભાવવાલા રૂપ=શરીર કો એવં ઉત્તમકુલ  
મેં ઉત્પત્તિ તથા વોધિલાભ આદિ પ્રાપ્ત કરને કી સંધિ=અવસર કો દેવો ।  
ઇસકા અભિપ્રાય યહ હૈં કિ-શારીરિકમમતા છોડ કર તપ સંયમ  
આદિ કા આરાધન કર જીવન કો સફલ બનાઓ ॥ સૂ. ૨ ॥

ઇન પૂર્વોક્ત વિશેષણોં સે વિશિષ્ટ શરીર કો સમજનેવાલે મુમુક્ષુજન  
કો જો લાભ હોતા હૈં, સૂત્રકાર ઉસે પ્રકટ કરતે હૈં-‘સમુપ્પેહ’-ઇત્યાદિ ।

શરીરતું પરિણામ-સ્વરૂપ ગર્ભ યાદ્યાવસ્થા અને યૌવન તેમજ વૃદ્ધ  
અવસ્થાઓ છે. આ રીતે એક જ જન્મમાં જુદી જુદી અનેક અવસ્થા ઉપલબ્ધ  
આ શરીરના ભિન્ન ભિન્ન રૂપમાં પરિણમે છે જે સમયાતુકલ દેખાઈ આવે છે.  
આ કારણે હે મુનિઓ ! રૂપસન્ધિ અર્થાત્ ભિદુરાદિસ્વભાવવાળું રૂપ, શરીરની  
ઉત્તમ કુળમાં ઉત્પત્તિ, લાભ આદિ પ્રાપ્ત કરવાની સંધિ-અવસરને જુઓ.  
આનો અભિપ્રાય એ છે કે શારીરિક મમતાને છોડીને તપ સંયમ આદિતું  
આરાધન કરી જીવનને સફલ બનાવો ॥ સૂ. ૨ ॥

આ પૂર્વોક્ત વિશેષણોથી વિશિષ્ટ શરીરને સમજવાવાળા મોક્ષાર્થી જનને  
જે લાભ થાય છે તેને સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે- “સમુપ્પેહ” ઇત્યાદિ.



ટીકા—‘સમુત્પેક્ષમાણસ્યે’-ત્યાદિ। સમુત્પેક્ષમાણસ્ય-સમુ=સમ્યક્ ઉત્પેક્ષમાણસ્ય=પશ્યતઃ-ભિદુરાદિધર્માત્મક શરીરમિત્યેવં નિશ્ચિન્વત્ इत्यर्थः, एकायतन-रतस्य=सकलसावद्यव्यापारेभ्य आत्मा आयत्यते यस्मिन्, निपुणाचरणे वा यत्नवान् विधीयते इत्यायतनं=रत्नत्रयम्, एकम्=सजातीयद्वितीयरहितम् आयतनम् एकायतनं, तस्मिन् रतः=तत्परः=एकायतनरतस्तस्य-रत्नत्रयसमाराधनपरायणस्य

जिसे यह दृढ प्रतीति हो चुकी है कि पौद्गलिक होने से यह शरीर भिदुरादिधर्मात्मक है, इससे आत्मकल्याण का मार्ग साधा जा सकता है, अतः इसकी उपयोगिता अवश्य कर लेनी चाहिये; नहीं तो न मालूम कब इसका पतन हो जावे और मैं यों ही संसार में परिभ्रमण करता रहूँ। इस प्रकार की पवित्र भावना के वशवर्ती हो कर जो सकल सावद्य व्यापारों से निवृत्त होते रहते हैं वे रत्नत्रयरूप निज आत्मस्वभाव में रत बनते हैं। तथा संसार, शरीर एवं भोगों से सर्वथा छोड़ी हुई कैंचली से सर्प की तरह जो अलिप्त रहते हैं, अपनी प्रवृत्ति को रातदिन वैराग्य की भावना रूपी पुटसे निर्मल बनाते रहते हैं, ऐसे विरत मुनि का नरकनिगोदादिक में गमन नहीं होता है। इन्हीं समस्त अभिप्रायों को चित्त में धारण कर सूत्रकार ने ‘समुत्पेक्षमाणस्स’ इस सूत्र का अवतरण किया है। वे कहते हैं—‘समुत्पेक्षमाणस्य’ यह शरीर भिदुरादिधर्मात्मक है, इस प्रकार से इस शरीरका अच्छी तरह से जिसे निश्चय हो चुका है, और इसीलिये जो “एकायतनरतस्य” एकायतनस्वरूप रत्नत्रय में रत बना हुआ है—सकल

એનાથી આવી દૃઢ ખાત્રી થઈ ચુકી છે કે પૌદ્ગલિક હોવાથી આ શરીર ભિદુરાદિધર્માત્મક છે, એનાથી આત્મકલ્યાણનો માર્ગ સાધી શકાય છે, એટલે એનો ઉપયોગ જરૂરી કરી લેવો જોઈએ, ન જાણે ક્યારે એનું પતન થઈ જાય, આ સંસારમાં હું આજ રીતે પરિભ્રમણ કરતો ન રહું, એવા પ્રકારની પવિત્ર ભાવનાને વશ થઈ જે સકલ સાવધ વ્યાપારોથી નિવૃત્ત બને છે તે રત્નત્રય રૂપ પોતાના આત્મસ્વભાવમાં રત બને છે, અને સંસાર શરીર તથા ભોગોથી સર્પ જેમ ઉતારેલી કાચળીથી સદા દૂર રહે છે તે રીતે અલિપ્ત રહી પોતાની પ્રવૃત્તિને અહોરાત્ર વૈરાગ્યની ભાવનારૂપી પુટથી નિર્મળ બનાવતો રહે છે. એવા વિરત મુનિનું નરક-નિગોદાદિકમાં ગમન થતું નથી. આ સધળા અભિપ્રાયોને દિલમાં ધારણ કરી સૂત્રકારે ‘સમુત્પેક્ષમાણસ્સ’ આ સૂત્રનું અવતરણ કરેલ છે. તે કહે છે કે—‘સમુત્પેક્ષમાણસ્ય’ આ શરીર ભિદુરાદિધર્માત્મક છે. આ પ્રકારથી આ શરીરનો સારી રીતે જેને અનુભવ થઈ ગયો છે, અને તેથી જ જે “एकायतनरतस्य”-

इह=शरीरे जन्मनि संसारे वा विप्रमुक्तस्य-परिग्रहममत्वादिरहितत्वेन वि=विविध-  
प्रकारैः प्रकर्षेण च मुक्तस्य-वैराग्यभावनया शरीराद्यनुरागरहितस्य, विरतस्य=  
सावधव्यापाररहितस्य मुनेः मार्गः=नरकनिगोदादिगत्यागतिरूपः पन्थाः नास्ति=  
न विद्यते । विरतस्य मुनेः कर्मणः शरीरस्य चासत्त्वान्न नरकादिगतिषु गमनं भव-  
त्यतस्तस्य स मार्गो नास्तीत्याशयः । इति ब्रवीमि=न मया स्वमत्या प्रोक्तम्,  
यद्भगवत्सकाशान्मया श्रुतं तत् सर्वं त्वां ब्रवीमि=कथयामि ॥ सू० ३ ॥

सावद्य व्यापारों से निवृत्त किया जाता है आत्मा जिसकी स्थिति में, अथवा  
निपुण आचरण में यत्नवाला किया जाता है आत्मा जिसके द्वारा उसका  
नाम आचरन है, वह रत्नत्रयस्वरूप है, यह आत्मा का निजधर्म है । इसके  
साथ दिया गया “ एक ” विशेषण यह बतलाता है कि इसकी जोड़का  
और कोई पदार्थ इस दुनिया में नहीं है । यह एक-असहाय-सर्वोत्कृष्ट धर्म  
है । एकायतन में जो रत्न-लवलीन है, अर्थात् रत्नत्रय की अच्छी तरह  
से आराधना करने में तत्पर है वह एकायतनरत्न है । तथा “ इह ”  
शरीर, जन्म अथवा संसार में “ विप्रमुक्तस्य ” परिग्रह एवं ममत्वादि  
से रहित होनेसे जो “ वि ” विविध प्रकारों से और “ प्र ” प्रकर्ष से  
“ मुक्तस्य ” वैराग्यभावना से शरीरादिक के अनुराग से रहित है  
ऐसे सावद्य व्यापारों से रहित मुनि का मार्ग-नरकनिगोदादिक का गति-  
आगतिरूप मार्ग नहीं होता है, कारण कि विरत मुनि के तज्जातीय कर्म  
एवं शरीर का असत्त्व होने से नरकादि गतियों में गमन नहीं होता है ।

એકાયતનસ્વરૂપ રત્નત્રયમાં રત્ન બનેલા છે બધા સાવધ વ્યાપારોથી નિવૃત્ત કરાય છે  
આત્મા જેની સ્થિતિમાં, અથવા નિપુણ આચરણમાં યત્નવાળો બનાવી દેવામાં આવે  
છે આત્મા જેનાથી તેનું નામ આચરન છે. તે રત્નત્રયસ્વરૂપ છે. આ આત્માના  
નિજધર્મ છે. તેની સાથે આપવામાં આવેલા “ એક ” વિશેષણ એ બતાવે  
છે કે તેની બેઠનો કોઈ પદાર્થ દુનિયામાં છે જ નહિ. તે એક અસહાય સર્વો-  
ત્કૃષ્ટ ધર્મ છે. એકાયતનમાં જે તત્પર છે. અર્થાત્ રત્નત્રયની સારી રીતે આરા-  
ધના કરવામાં તત્પર છે તે એકાયતનરત્ન છે. તથા “ ઇહ ” શરીર, જન્મ  
અથવા સંસારમાં “ વિપ્રમુક્તસ્ય ” પરિગ્રહ મમત્વાદિથી રહિત હોવાથી તે  
“ વિ ” વિવિધ પ્રકારથી “ પ્ર ” પ્રકર્ષથી “ મુક્તસ્ય ” વૈરાગ્ય ભાવનાથી શરીરાદિ  
પ્રત્યેની મમતાથી રહિત છે એવા સાવધ વ્યાપારોથી રહિત મુનિનો માર્ગ-નરક  
નિગોદાદિકની ગતિ-આગતિરૂપ માર્ગ-હોતો નથી, કારણ કે વિરત મુનિનાં તજ્જા-  
તીય કર્મ અથવા શરીરમાં આસક્તપણું ન હોવાથી નરકાદિ ગતિઓમાં તેનું ગમન

સાવધવ્યાપારવિરતો મુનિર્ભવતીત્યભિધાયાધુના તદ્વિપરીતાચારમાચરન્ પરિગ્રહવાનિતિ દર્શયિતુમાહ—‘આવંતી’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—આવંતી કેયાવંતી લોગંસિ પરિગ્રહાવંતી, સે અપ્પં વા બહું વા અણું વા થૂલં વા ચિત્તમંતં વા અચિત્તમંતં વા, એસુ ચેવ પરિગ્રહાવંતી, એમેવ એગેસિં મહાભયં ભવઈ, લોગવિત્તં ચ ણં ઉવેહાણ, એ સંગે અવિયાણઓ ॥ સૂ. ૪ ॥

છાયા—યાવન્તઃ કિયન્તો લોકે પરિગ્રહવન્તઃ, તદલ્પં વા વહુ વા અણુ વા સ્થૂલં વા ચિત્તવદ્વા અચિત્તવદ્વા, એતેષુ ચેવ પરિગ્રહવન્તઃ । એતદેવ એકેપાં મહાભયં ભવતિ, લોકવિત્તં ચ સ્વલ્પસ્પેક્ષ્યેતાન્ સજ્ઞાનવિજ્ઞાનતઃ ॥ સૂ. ૪ ॥

ટીકા—‘યાવન્તઃ’ ઇત્યાદિ, લોકે=મનુષ્યલોકે યાવન્તઃ=કિયન્તઃ પરિગ્રહવન્તઃ=પરિગ્રહો યેવામસ્તિ તે પરિગ્રહવન્તઃ=પરિગ્રહતત્પરાઃ ભવેયુઃ । યસ્ય દ્રવ્યસ્ય પરિગ્રહસ્તદ્ દ્રવ્યમ્ અલ્પં=સ્તોકં=મૂલ્યતઃ કપર્દિકાદિકં, પ્રમાણતોઽર્કતૂલાદિકં, ઇસલિયે ઉસકા વહ માર્ગ નહીં હૈ । યહ કથન મૈને અપની બુદ્ધિસે કલ્પિત કર નહીં કહા હૈ; પરંતુ જૈસા મૈને ભગવાન્ કે મુખ સે સુના હૈ વહ સબ વૈસા તુમસે કહા હૈ—ઇસ પ્રકાર સુધર્મસ્વામીને જમ્બૂસ્વામીસે કહા ॥ સૂ. ૩ ॥

‘સાવધ વ્યાપારોં સે વિરત મુનિ હોતા હૈ’ ઇસ વાતકો કહ કર અબ ‘જો ઇસસે વિપરીત અપની પ્રવૃત્તિ કરતા હૈ વહ પરિગ્રહી હૈ’ ઇસ વિષય કો પ્રકટ કરનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈ—‘આવંતી’ ઇત્યાદિ ।

ઇસ મનુષ્ય લોક મેં કિતનેક માનવ પરિગ્રહશાલી હૈ । યહ પરિગ્રહીત દ્રવ્ય, ચાહે અલ્પ હો; ચાહે વહુત હો, પરિગ્રહ, ચાહે અણુરૂપ મેં હો; ચાહે સ્થૂલરૂપ મેં હો; ચાહે સચિત્ત હો; ચાહે અચિત્ત હો; ઇનમેંસે

થતું નથી, આ કારણે તેમનો તે માર્ગ નથી. આ કથન મેં પોતાની બુદ્ધિથી કલ્પેલું નથી; પરંતુ આ મેં ભગવાનના મુખેથી સાંભળ્યું છે એ બધું તમોને કહ્યું છે. આ પ્રકારે સુધર્મ સ્વામીએ જમ્બૂ સ્વામીને કહ્યું. ॥ સૂ. ૩ ॥

‘સાવધ વ્યાપારોથી વિરત મુનિ હોય છે,’ આ વાત કહીને હવે ‘જે એનાથી વિપરીત પોતાની પ્રવૃત્તિ કરે છે તે પરિગ્રહી છે,’ આ વિષયને અગટ કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે—‘આવંતી’ ઇત્યાદિ.

આ મનુષ્યલોકમાં કેટલાક માણસો પરિગ્રહી છે—પરિગ્રહ જેને છે તે. પરિગ્રહીત દ્રવ્ય ભલે થોડું હોય, ભલે વધારે હોય, ભલે આણુરૂપ હોય, ભલે સ્થૂલરૂપમાં હોય, ભલે સચિત્તરૂપમાં હોય, ભલે અચિત્ત હોય, આમાંથી કંઈ



વહુ=અધિકં વા-મૂલ્યતો રત્નાદિકં, પ્રમાણતઃ કાષ્ઠાદિકમ્; અણુ વા-મૂલ્યતો-લઘુત્વનાદિકં, પ્રમાણતો વજ્રાદિકં, સ્થૂલં વા-મૂલ્યેન પ્રમાણેન ચ ગજાદિકમ્ । તાનિ ચ દ્રવ્યભાવભેદેન દ્વિવિધાનિ बोध्यानि; तथा हि-किञ्चिद् वस्तु द्रव्यतोऽल्पं न भावतः-वज्रादिमणिः, अपरं च भावतोऽल्पं न द्रव्यतः-एरण्डकाष्ठादिकम्, अन्यच्च द्रव्यतो भावतोऽप्यल्पं कपर्दीदिकम्; उभयतो वहु स्तूलं च गोशीर्षकहरिचन्दनादिकम् । यद्वा-परिग्रहश्चतुर्विधो द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदात् । एतच्च सर्वं चित्तवद् वा अचित्तवद् वा, उपलक्षणान्मिश्रस्यापि ग्रहणम् । सर्वेषामेतेषां योगेन कुछ भी जिसके पास है वह परिग्रही है । यह परिग्रह ही अविरतियों और विरतियों को महान् भयस्वरूप होता है । इस प्रकार इस लोकचित्त को समझ कर जो इससे विरत हैं उनके परिग्रहजन्य भय नहीं होता है । परिग्रह में अल्पता और अधिकता मूल्य की एवं प्रमाण की अपेक्षा से बनलाई गई है । मूल्यकी अपेक्षा जिसके पास एक कोड़ी-मात्र अल्प परिग्रह है अर्थात् इतना भी जिसके परिग्रह है कि जिसकी कीमत एक कोड़ी है वह भी परिग्रही है । प्रमाण की अपेक्षा-अर्कतूलादि (आककी रई) मात्र भी जिसके परिग्रह है वह भी उसमें ममत्वभावविशिष्ट होने से परिग्रहयुक्त है । इसीप्रकार मूल्यकी अपेक्षा रत्नादिक, प्रमाणकी अपेक्षा काष्ठादिक बहुत परिग्रह हैं । मूल्यकी अपेक्षा लघु-अणु तृणादिक, प्रमाण की अपेक्षा वज्रादिक, मूल्य और प्रमाण से स्थूल हाथी घोड़े आदि परिग्रह हैं । सचित्त और अचित्त परिग्रहके ग्रहण से मिश्र परिग्रहका भी यहाँ ग्रहण हुआ है । इन समस्त के ग्रहण से अथवा कुछ २ के

પણ જેની પાસે છે તેને પરિગ્રહી કહે છે. આ પરિગ્રહ જ અવિરતિયો અને વિરતિ યોને મહાભયસ્વરૂપ છે. આ પ્રકારે આ લોક પરિગ્રહને સમજીને જે તેનાથી વિરત છે તેને પરિગ્રહજન્ય ભય હોતો નથી. પરિગ્રહમાં અલ્પતા અને અધિકતા મૂલ્યની અને પ્રમાણની અપેક્ષાથી બતાવવામાં આવી છે. કિંમતની અપેક્ષા જેની પાસે એક કોડી માત્ર અથવા પરિગ્રહ છે અર્થાત્ એટલો પણ પરિગ્રહ છે કે જેની કિંમત એક કોડી છે તે પણ પરિગ્રહી છે. પ્રમાણની અપેક્ષા આકડાતું રૂ માત્ર પણ જેને પરિગ્રહ છે તે પણ તેનામાં મમત્વભાવવિશિષ્ટ હોવાથી પરિગ્રહયુક્ત છે. તેવી રીતે મૂલ્યની અપેક્ષા રત્નાદિક, પ્રમાણની અપેક્ષા કાષ્ઠ આદિક ઘણાજ પરિગ્રહ છે. મૂલ્યની અપેક્ષા લઘુ-અણુ-તૃણાદિક, પ્રમાણની અપેક્ષા વજ્રાદિક, મૂલ્ય અને પ્રમાણથી સ્થૂલ હાથી ઘોડા આદિ પરિગ્રહ છે. સચિત્ત અને અચિત્ત પરિગ્રહના ગ્રહણથી મિશ્ર પરિગ્રહનો પણ અહિં ગ્રહણ થયેલ છે.

પરિગ્રહિણો ભવન્તિ, તદેવાહ—એતેષ્વિત્યાદિ, એતેષુ ચૈવ=ષડ્જીવનિકાયેશ્વલ્પ-  
વહુસ્થૂલલઘ્વાદિષુ ચૈવ પ્રાણિનઃ પરિગ્રહવન્તઃ=મમત્વવન્તો જાયન્તે। યઃ કોઽપિ  
વિરતોઽવિરતો વાઽલ્પાદિવસ્તુજાતેન પરિગ્રહવાન્ ભવતિ, તતશ્ચ પશ્ચ-મહાવ્રતેષ્વેક-  
વ્રતવિરાધનાત્ સર્વવ્રતવિરાધકો ભવતિ, અનિવારિતાસ્રવત્વાદિતિ ભાવઃ। એતેષાં  
પરિગ્રહાત્તત્સેવિનામપરિગ્રહાભિમાનિનાં શરીરમનર્થાયૈવેત્યાહ—‘એતદેવે’ત્યાદિ।

ગ્રહણ સે જીવ પરિગ્રહી હોતે હૈં। ઇન ષડ્જીવનિકાયરૂપ અલ્પ, વહુ,  
સ્થૂલ ઓર લઘુરૂપ પરિગ્રહમેં મૂર્છાશાલી હોને સે જીવ મમત્વપરિણામી  
હોતે હૈં। જો કોઈ અવિરત પ્રાણી અપને કો વિરતરૂપ સે ઘોષિત કરતા  
હુઆ ખી ‘મમેદં’-ભાવસે અલ્પ પરિગ્રહરૂપ વસ્તુ કા ખી ગ્રહણ કરતા હૈ  
વહ પરિગ્રહી હી હૈ। ઇસી પ્રકાર સે પંચમહાવ્રતોંમેં સે જો એક ખી વ્રતકી  
વિરાધના કરતા હૈ વહ અપને સમસ્ત વ્રતોંકા વિરાધક હોતા હૈ। કહીં  
કિસી એક અંશ મેં ખી-જિસકે અપરાધ કા સદ્ભાવ હુઆ હૈ ઉસકે સમસ્ત  
અંશોંમેં ખી અપરાધીપના આતા હૈ; ક્યોં કિ એસી હાલતમેં ઉસકે આસ્રવ  
કા દ્વાર બંદ નહીં હોતા। ઉત્તર ગુણોંમેં અતિચાર ખી એસા હી હોતા હૈ  
યદિ મૂલગુણોં કા વિધ્વંસક ન હો।

શંકા—અલ્પાદિવસ્તુરૂપ પરિગ્રહ કે ગ્રહણ સે યદિ પરિગ્રહવત્તા  
માની જાવે તો ફિર જો અલ્પાદિરૂપ પરિગ્રહકા સેવન કરતે હુએ ખી  
અપને કો અપરિગ્રહી કહતે હૈં ઉનકે આહાર એવં શરીરાદિક ખી

આ બધાના ગ્રહણથી અથવા કોઈ કોઈના ગ્રહણથી જીવ પરિગ્રહી બને છે.  
આ ષડ્જીવનિકાયરૂપ અલ્પ, બહુ, સ્થૂળ તેમજ લઘુરૂપ પરિગ્રહમાં મૂર્છાશાળી  
હોવાથી જીવ મમત્વપરિણામી બને છે. જો કોઈ અવિરત પ્રાણી પોતાને  
વિરતરૂપથી જાહેર કરી ‘મમેદં’-ભાવથી અલ્પપરિગ્રહરૂપ વસ્તુ પણ ગ્રહણ  
કરે તો તે પરિગ્રહી જ છે. આ પ્રકારે પાંચ મહાવ્રતમાંના એક વ્રતની વિરા-  
ધના કરે છે તે પોતાનાં સમસ્ત વ્રતોનાં વિરાધક બને છે. કયાંક કોઈ એક  
અંશમાં પણ જેનામાં અપરાધનો સદ્ભાવ થયો પછી તેના સમસ્ત અંશોમાં  
અપરાધીપણું આવી જાય છે, કેમકે એવી હાલતમાં એના આસ્રવના દ્વાર  
બંધ નથી થતાં. જો મૂળગુણોનો વિધ્વંસક નહિ હોય તો ઉત્તરગુણોમાં પણ  
અતિચાર એમજ હોય છે.

શંકા:—અલ્પાદિવસ્તુરૂપ પરિગ્રહના ગ્રહણથી જો પરિગ્રહવત્તા માન-  
વામાં આવે તો પછી અલ્પાદિરૂપ પરિગ્રહનું સેવન કરવા છતાં પોતાને અપરિ-  
ગ્રહી કહે એના આધાર અને શરીરાદિક પણ અનર્થનાં કારણ બનશે? આ

एकेषां=केषांचिद् विरतानामविरतानां वा परिग्रहिणाम् एतदेव शरीरं महाभयं=कारणे कार्योपचारात्प्राणातिपातादिकरणेन नरकनिगोदादिकदुःकफलरूपमहाभयजनकत्वा-  
न्महाभयमेव भवति ।

यद्वा-यथा-पाणिपुटभोजिनां शरीराहारादेरन्यस्याप्यल्पस्य पात्रवस्त्रादेरस-  
त्त्वाद् गृहस्थसन्नानि चाधःकर्मादिदोषदुष्टमाहारादिकमश्रुतां हि महता कर्मबन्धेन  
पोषणाच्छरीरं महाभयहेतुत्वान्महाभयं, तथा तच्छरीरं गृहस्थानेऽनाच्छादनेन  
अनर्थके लिये होंगे ? इस शंकाका समाधान करने के लिये सूत्रकार  
“ एतदेव एकेषां महाभयं भवति ” इस सूत्रांश का कथन करते हैं।  
वे कहते हैं—चाहे विरतिसंपन्न हो, चाहे उससे रहित अव्रती हो उसके  
अल्पादिरूप परिग्रह की सत्ता में भी ‘ ममेदं ’-भावसे अवश्य परिग्रहपना  
है। यह परिग्रहवत्ता ही उनके लिये नरकनिगोदादिक के भयंकर फलरूप  
महाभय का कारण होने से महाभयस्वरूप होता है।

अथवा—परिग्रहयुक्त प्राणियों के “ एतदेव ” यह शरीर और आहा-  
रादिक महाभयस्वरूप हैं, जैसे—जो पाणिपुट ( करपात्र ) में भोजन  
करनेवाले हैं, जिनके पास पात्र और वस्त्रादिक कुछ भी नहीं  
हैं; परन्तु वे गृहस्थों के यहां आधाकर्मादिक दोषोंसे दूषित  
आहारादिक के लेने से महान् कर्मों का बंध करनेवाले होते हैं, इससे  
उनका शरीरादिक उन्हें महाभय का हेतु होने से महाभयस्वरूप हैं।  
तथा—उनका शरीर, वस्त्र से रहित होने से गृहस्थान निरावरण रहता है,

શંકાનું સમાધાન કરવા માટે સૂત્રકાર “ એતદેવ એકેષાં મહાભયં ભવતિ ” આ  
સૂત્રનું કથન કરે છે. તે કહે છે કે—ભલે વિરતિસંપન્ન હોય આહે એનાથી રહિત  
અવ્રતી હોય છતાં અલ્પાદિરૂપ પરિગ્રહની સત્તામાં પણ મમેદંભાવથી અવશ્ય  
પરિગ્રહપણું છે, આ પરિગ્રહવત્તા જ એને માટે નરકનિગોદાદિકના ભયંકર ફળરૂપ  
મહાભયનું કારણ હોવાથી મહાભયસ્વરૂપ બને છે. અથવા—પરિગ્રહયુક્તા  
પ્રાણીએને “ એતદેવ ” શરીર તેમજ આહારાદિક મહાભય સ્વરૂપ છે. જેમકે—જે પાણિ-  
પુટ ( કરપાત્ર ) થી જ ભોજન કરવાવાળા છે, જેની પાસે પાત્ર તેમજ  
વસ્ત્રાદિક કંઈ પણ નથી પરંતુ જે ગૃહસ્થોને ત્યાં આધાકર્માદિક  
દોષોથી દૂષિત આહારાદિક લેવાથી મહાન કર્મોના બંધ કરવાવાળા હોય છે.  
આથી તેના શરીરાદિક તેને મહાભયને હેતુ હોવાથી મહાભયસ્વરૂપ છે. તથા  
તેનું શરીર વસ્ત્રથી રહિત હોવાથી ગુપ્ત અંગ ખુલ્લું રહે છે, આ કારણે એવી



લજ્જાયા અસત્વાલોકનિન્દ્યત્વેન જિનશાસનલાઘવોત્પાદનાચ્ચ સ્વપર્યોર્મહાભયકારિ ભવતિ । ભગવતાઽપિ સંયમે લજ્જાયાઃ પ્રાથમ્યમભિહિતં, તથાહિ-“લજ્જા-દયા-સંજ-મ-બં-મચેરં” ઇત્યાદિ । યસ્માત્પરિગ્રહોઽનર્થાય ભવતીત્યત ઉપદિશતિ-‘લોકવિત્ત’-મિત્યાદિ । ચિરતો મુનિઃ લોકવિત્તં લોકસ્ય=અસંયતલોકસ્ય વિત્તં=ધનમ્ અલ્પાદિરૂપમ્, યદ્વા-‘લોકવૃત્ત’મિતિચ્છાયા, તેન-લોકસ્ય વૃત્તમાચરણમ્=આહાર-ભય-મૈથુન-પરિગ્રહસંજ્ઞારૂપં મહતે ભયાય ભવતીતિ, ચ=પુનઃ, ચ્વલુ=વાક્યાલંકારે ઉત્પ્રેક્ષ્ય=જ્ઞાત્વા જ્ઞપરિજ્ઞયા, પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞયા પરિહરેત્ । તાદૃશસ્ય યત્સ્યાત્તદાહ-‘एतान्’ ઇત્યાદિ । एतान्-पूर्वोक्तान् संगान्=द्रव्यपरिग्रहसम्बन्धान् अविजानतः=अबिदधतः-परिग्रहसम्बन्धरहितस्य मुनेः परिग्रहोत्पन्नं महाभयं न भवति॥મૂ.૦૪॥

इसलिये ऐसी हालत में उनका शरीर लज्जारहित होने से लोक-निंदा का पात्र होता है, इससे जिनशासनकी अवलेहना होती है; इस-लिये उनका वह शरीर स्व-पर के लिये महाभयकारी होता है । संयममें भगवान् ने “लज्जा-दया-संजम-बंमचेरं” इत्यादिवाक्यानुसार लज्जाके लिये प्रथम स्थान दिया है । जिस कारण से परिग्रह अनर्थकारी बतलाया गया है इसी लिये सूत्रकार कहते हैं-‘लोकवित्त’-मित्यादि । असंयतलोकका धन, अथवा-असंयत लोककी आहार, भय, मैथुन और परिग्रह-संज्ञारूप लोकवृत्त (‘लोकवित्त’ की ‘लोकवित्त’ या ‘लोकवृत्त’ संस्कृतच्छाया होती है ) उन्हें बड़े भारी भय के लिये होता है । सूत्र में “चलु” शब्द वाक्या-लंकार में प्रयुक्त हुआ है । इसलिये मोक्षार्थी जन लोकवित्त अथवा लोक-वृत्त को महाभयकारी ज्ञपरीज्ञा से जानकर प्रत्याख्यानपरीज्ञा से उसका परित्याग करे । परिग्रह के परिवर्जन से त्यागी के जो लाभ होता है उसे सूत्रकार “एतान् संगान् अविजानतः” इस सूत्रांश से कहते हैं ।

હાલતમાં તેનું શરીર લજ્જારહિત હોવાથી લોકનિંદાને પાત્ર બને છે. તેનાથી જિનશાસનની અવલેહના થાય છે, માટે તેનું તે શરીર સ્વ અને પરને માટે મહાભયકારી બને છે. સંયમમાં ભગવાને “લજ્જા-દયા-સંજમ-બંમચેરં” ઇત્યાદિ વાક્ય અનુસાર લજ્જાને માટે પ્રથમ સ્થાન આપેલ છે. જે કારણથી પરિગ્રહ અનર્થકારી બતાવેલ છે તેને માટે સૂત્રકાર કહે છે-‘લોકવિત્ત’-મિત્યાદિ. અસંયત લોકનું ધન અથવા અસંયત લોકના આહાર, ભય, મૈથુન અને પરિગ્રહ સંજ્ઞારૂપ લોકવૃત્ત તેના માટે ભારે ભયજનક હોય છે. આ માટે મોક્ષાર્થી જન લોકવિત્ત અથવા લોકવૃત્તને મહાભયકારી જ્ઞ-પરીજ્ઞાથી જાણીને પ્રત્યાખ્યાન-પરીજ્ઞાથી તેના ત્યાગ કરે. પરિ-ગ્રહના પરિવર્જનથી ત્યાગીને જે લાભ થાય છે તેને સૂત્રકાર “एतान् संगान् अविजानतः” આ સૂત્રથી કહે છે કે આ દ્રવ્ય-પરિગ્રહની સાથે પોતાનો સંબંધ

અપિ ચાન્યદપ્યાહ—‘સે સુપડિબુદ્ધં’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—સે સુપડિબુદ્ધં સૂવળીયંતિ નચ્ચા પુરિસા ! પરમ-  
ચક્ષૂ વિપરક્કમા । એસુ ચેવ વંમચેરં તિવેમિ । સે સુયં ચ મે,  
અજ્ઞત્થયં ચ મે, વંધપમુક્કલો અજ્ઞત્થેવ । એત્થ વિરેપ્પઅણગારે  
દીહરાયં તિતિક્કલેપ્પ । પમત્તે વહિયા પાસ, અપ્પમત્તો પરિવ્વલેપ્પ ।  
એણં મોણં સમ્મં અણુવાસિજ્જાસિ—તિવેમિ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

છાયા—તસ્ય સુપ્રતિબુદ્ધં સૂપનીતમિતિ જ્ઞાત્વા પુરુષ ! પરમચક્ષુર્વિપરાક્રમસ્ય ।  
એતેષુ ચૈવ બ્રહ્મચર્યમિતિ બ્રવીમિ । તત્ત્વશ્રતં ચ મયાઽધ્યાત્મકં ચ મે બન્ધપ્રમોક્ષોઽ-  
ધ્યાત્મે એવ । અત્ર વિરતોઽનગારો દીર્ઘરાત્રં તિતિક્ષેત । પ્રમત્તાન્ બહિઃ પश्य, અપ્ર-  
મત્તઃ પરિવ્રજેત્ । એતન્મોનં સમ્યક્ અનુવાસયેઃ, ઇતિ બ્રવીમિ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

ટીકા—‘તસ્યે—’ત્યાદિ, તસ્ય=પરિગ્રહરહિતસ્ય, સુપ્રતિબુદ્ધં—સુ=શોભનં પ્રતિ-  
બુદ્ધં=જાગરિતં, સૂપનીતં=શોભનં દર્શિતં જ્ઞાનાદિકત્રિકં સુદૃષ્ટિકૈઃ પ્રત્યક્ષજ્ઞાનિભિઃ  
ઇસ દ્રવ્ય પરિગ્રહ કે સાથ અપના સંબંધ નહીં રચનેવાલે અર્થાત્ પરિગ્રહ કે  
સંબંધ સે રહિત મુનિકો પરિગ્રહજન્ય મહાભય નહીં હોતા હૈ ॥ સૂ૦ ૪ ॥

ઔર મી વાત સૂત્રકાર પ્રકટ કરતે હૈ—‘સે સુપડિબુદ્ધં’ ઇત્યાદિ ।

જો મનુષ્ય પરિગ્રહ સે રહિત હૈં ડનકા હી અપને માર્ગ મેં સચ્ચા  
જાગરણ હૈ ઔર ડનકે હી જ્ઞાનાદિકત્રિક નિર્દોષ હૈં, અથવા—ડનકા  
અપને કર્તવ્યપથ મેં જો જાગરણ હૈં વહ સૂપનીત હૈ—તીર્થંકરાદિક પ્રત્યક્ષ-  
જ્ઞાનિયોં ને અચ્છી તરહ સે પ્રકટ કિયા હૈ, ઔર ઇસી માર્ગ કી ડન્હોં ને  
અપને શિષ્યોં કો જ્ઞાનાદિકત્રય કી પ્રાપ્તિકે નિમિત્ત યુક્તિ ઔર દૃષ્ટાન્ત

નહિ રાખવાવાળા અર્થાત્ પરિગ્રહના સંબંધથી રહિત મુનિને પરિગ્રહજન્ય મહા-  
ભય હોતો નથી. ॥ સૂ૦ ૪ ॥

ફરી એક બીજી બધુ વાત સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે—“સે સુપડિબુદ્ધં” ઇત્યાદિ.

જે મનુષ્ય પરિગ્રહથી રહિત છે તેનું જ પોતાના માર્ગમાં સાચું જાગરણ  
છે, અને તેના જ્ઞાન આદિ નિર્દોષ છે, અથવા તેનું પોતાના કર્તવ્યપથમાં જે  
જાગરણ છે તે સૂપનીત છે—તીર્થંકરાદિક પ્રત્યક્ષ જ્ઞાનીઓએ સારી રીતે  
પ્રગટ કરેલ છે, અને તે માર્ગ તેમણે પોતાના શિષ્યોને જ્ઞાનાદિકત્રયની પ્રાપ્તિ



हेतुदृष्टान्तैः शिष्याणां प्रापितमित्यर्थः । इति=एवं ज्ञात्वा=विचार्य हे पुरुष!=हे भव्य! परमचक्षुः=परमं-ज्ञानं तपः संयमो वा चक्षुः=नेत्रं यस्य स परमचक्षुः=से पुष्टि की है । यद्वा-इसी मार्गद्वारा उन्होंने अपने शिष्यों को ज्ञानादिकों की प्राप्ति कराई है ।

भावार्थ—यह राजमार्ग है कि परिग्रह के त्याग किये बिना साधु को अपने कर्तव्य पथ में सच्ची आराधकता की जागृति नहीं हो सकती है । कारण कि इसके सद्भाव में सदा आत्मा में आकुलता रहती है । आकुलता में स्वधर्मा राधन हो नहीं सकता । परिग्रह के सद्भाव में ही सावध्यप्रवृत्ति एवं अनेक अनर्थों की परंपरा बढ़ती है । परिग्रह के त्याग से आत्मा में अपूर्व शांति और स्वरमणता आती है । अतः यही मार्ग सर्वोत्तम है । इस मार्ग का जो पथिक है वही सच्चे रूप में अपने कर्तव्य पथ का निभानेवाला और सम्यग्दर्शनादिकरूप मोक्षमार्गका अनुयायी है । इसी मार्गद्वारा तीर्थङ्करादिक प्रत्यक्षज्ञानियों ने अपने ध्येय की प्राप्ति की है और अपने शिष्यों को भी इसी मार्गके अनुसरण करने का उपदेश दिया है । हेतु और दृष्टान्तों से इसी मार्ग की उन्होंने पुष्टि की है ।

“ इति ज्ञात्वा ” इसलिये हे भव्य पुरुष! ऐसा समझ कर इसी मार्ग पर चल कर तुम ज्ञान अथवा संयम या तपरूपी चक्षुओं की प्राप्ति

નિમિત્તે યુક્તિ અને દૃષ્ટાંતથી સમજાવેલ છે, તેમજ આ માર્ગદ્વારા તેઓએ પોતાના શિષ્યોને જ્ઞાનાદિકની પ્રાપ્તિ કરાવી છે.

ભાવાર્થ:—આ રાજમાર્ગ છે કે પરિગ્રહનો ત્યાગ કર્યા વગર સાધુને પોતાના કર્તવ્ય પંથમાં સાચી આરાધકતાની જાગૃતી મળી શકતી નથી, કારણ કે પરિગ્રહના સદ્ભાવમાં આત્માની સદા આકુલતા રહે છે. આકુલતામાં ધર્મનું આરાધન નથી થઈ શકતું. પરિગ્રહના સદ્ભાવમાં જ સાવધ પ્રવૃત્તિ તેમજ અનર્થોની પરંપરા વધે છે. પરિગ્રહના ત્યાગથી આત્મામાં અપૂર્વ શાંતિ તેમજ સ્વરમણતા આવે છે. આ માર્ગ જ સર્વોત્તમ છે. આ માર્ગનો જે પથિક છે તે જ સાચા રૂપમાં પોતાના કર્તવ્યપથને નિભાવનાર તેમજ સમ્યગ્દર્શનાદિકરૂપ મોક્ષમાર્ગનો અનુયાયી છે. આ જ માર્ગ દ્વારા તીર્થંકરાદિક પ્રત્યક્ષજ્ઞાનિઓએ પોતાના ધ્યેયની પ્રાપ્તિ કરી છે, અને પોતાના શિષ્યોને પણ આ જ માર્ગનું અનુસરણ કરવાનો ઉપદેશ આપેલ છે, હેતુ અને દૃષ્ટાન્તોથી આ માર્ગનો તેમણે સ્વીકાર કર્યો છે.

“ इति ज्ञात्वा ” એટલા માટે હે ભવ્ય પુરુષ! આ સમજીને આ જ માર્ગ ઉપર ચાલી તમો જ્ઞાન અથવા સંયમ અથવા તપરૂપી ચક્ષુઓની પ્રાપ્તિ કરી શકશો—



મોક્ષેકદર્શનઃ સન વિપરાક્રમસ્વ=સંયમે જ્ઞાનાવરણીયાચ્છટવિધકર્મક્ષપણનિરવધાનુ-  
ષ્ઠાનસ્ય તપસશ્ચાચરણેન વિ=વિશેષેણ પરાક્રમસ્વ=પરાક્રમં કુરુષ્વ, તપોવીરો  
ધર્મવીરશ્ચ ભવેત્યર્થઃ, કિમર્થં સંયમે પરાક્રમોપદેશઃ? इत्यत आह—‘ एतेषु ’  
इत्यादि, एतेषु चैव=परिग्रहाग्रहपराङ्मुखेष्वेव वस्तुतो ब्रह्मचर्यं मैथुननिवृत्त्या-  
दिनवविधरूपं विद्यते नेतरेषु सपरिग्रहेषु, तेषु नवविधब्रह्मचर्यगुप्त्यसम्भवात् ।  
यद्वा—एतेषु=षड्जीवनिकायेषु तदुपमर्दनविरतिरूपसंयमाचरणमेव ब्रह्मचर्यं, नान्यत् ।

કર સકતે હો—મુક્તિ માર્ગ કે દર્શક બન સકતે હો । જબ અપરિગ્રહતા  
તુમ્હે પ્રાપ્ત હો જાયગી, તબ હી તુમ જ્ઞાનાવરણીયાદિક અષ્ટ પ્રકાર કે  
કર્મોં કો સમુન્મૂલન કરનેવાલે નિરવધ અનુષ્ઠાનરૂપ તપ કી આરા-  
ધનામેં વિશેષ પરાક્રમ કરોગે ઓર હસ તરહ સે તુમ તપવીર ઓર ધર્મ-  
વીર બન સકોગે । સંયમ અથવા તપ મેં પરાક્રમશાલી હોને કા ઉપદેશ  
હસીલિયે દિયા જાતા હૈ કિ જો પરિગ્રહ કે ગ્રહણમેં પરાઙ્મુખ હૈં ઉન  
મેં હી વસ્તુતઃ નૌ પ્રકાર કે મૈથુન કી નિવૃત્તિરૂપ બ્રહ્મચર્યવ્રતકી સમ્યક્  
રીતિસે રક્ષકતા આતી હૈ, અન્યોં મેં નહીં; કારણ કિ બે પરિગ્રહકે ગ્રહણ  
કરને મેં આસક્ત હોનેસે નૌ પ્રકાર સે ઉસ બ્રહ્મચર્યકી રક્ષા નહીં કર  
સકતે હૈં । અથવા—“ एतेषु चैव ब्रह्मचर्यम् ”—હસ વાક્ય કા યહ બી  
અર્થ હોતા હૈ, કિ હન ષડ્જીવનિકાયોં કે ઘાત કરનેકી વિરતિરૂપ જો  
સંયમ હૈ હસકા આચરણ કરના હી બ્રહ્મચર્ય હૈ, અન્ય બ્રહ્મચર્ય નહીં હૈ ।

મુક્તિ માર્ગના દર્શક બની શકશે, ત્યાગે આ અપરિગ્રહતા તમે પ્રાપ્ત કરી  
શકશે ત્યાગે જ તમે જ્ઞાનાવરણીયાદિક આઠ પ્રકારના કર્મોના નાશ કરવાવાળા  
નિરવધ અનુષ્ઠાનરૂપ તપની આરાધનામાં વિશેષ પરાક્રમ કરશે, અને આવી રીતે  
તમે તપવીર અને ધર્મવીર બની શકશે. સંયમ અને તપમાં પરાક્રમશાળી  
હોવાનો ઉપદેશ એ માટે આપવામાં આવેલ છે કે જે પરિગ્રહના ગ્રહણમાં  
પરાઙ્મુખ છે તેમનામાં ખરી રીતે નવ પ્રકારના મૈથુનની નિવૃત્તિરૂપ બ્રહ્મચર્ય  
વ્રતની સમ્યક્ રીતિથી રક્ષકતા આવે છે, બીજામાં નહીં. કારણ કે તેઓ પરિ-  
ગ્રહના ગ્રહણ કરવામાં આસક્ત હોવાથી નવ પ્રકારના તેવા બ્રહ્મચર્યની રક્ષા  
કરી શકતા નથી, અને “ एतेषु चैव ब्रह्मचर्यम् ” આ વાક્યનો એ પણ અર્થ  
થાય છે કે ષડ્જીવનિકાયોની ઘાત કરવાની વિરતિરૂપ જે સંયમ છે તેનું આચ-  
રણ કરવું એ જ બ્રહ્મચર્ય છે, બીજું બ્રહ્મચર્ય નથી.

इति=अधिकारसमाप्तौ; ब्रवीमि=कथितं वक्ष्यमाणं वा अभिदधामि । एतत् सर्वं भगवदुपदेशादेव मया ज्ञातमित्येवाह—‘तदित्यादि’ । यन्मया प्रोक्तं वक्ष्यमाणं वा तत् सर्वं मया श्रुतं तीर्थङ्करसकाशात्, तथा तत्सर्वमध्यात्मकम्—आत्मनि इत्याध्यात्मं तदेवाध्यात्मकं मे=ममान्तःकरणस्थितं, किं तत्सर्वमिति जिज्ञासायामाह—‘बन्धे’त्यादि, अध्यात्मे एव=ब्रह्मचर्ये एव व्यवस्थितस्य बन्धप्रमोक्षः=बन्धात्=कर्मबन्धात् प्रमोक्षो भवति ।

यद्वा—‘बन्धप्रमोक्षौ’ इतिच्छाया, ततो बन्धः=ज्ञानावरणीयाद्यष्टविध-कर्मसम्बन्धः, प्रमोक्षः तस्मात्पृथग्भवनं च बन्धप्रमोक्षौ, उभावपि अध्यात्मे एव=

“इति ब्रवीमि”—इति पद अधिकार की समाप्तिका सूचक है, अर्थात् इस उद्देश में यहां तक अथवा इस सूत्र में जो कहा है और आगे भी जो कुछ कहता हूं वह मैंने भगवान् के उपदेश से ही जाना है । इसी लिये सूत्रकार ने “तच्च श्रुतं मया” यह कहा है । यह कथित अथवा आगे प्रतिपाद्य समस्त विषय जिसे मैंने तीर्थङ्कर प्रभु से सुना है वह मेरी आत्मा में—अन्तःकरण में स्थित है । उन्होंने यह कहा है कि—“अध्यात्मे एव” ब्रह्मचर्य में व्यवस्थित साधु की ही बन्धसे मुक्ति होती है—अर्थात् वह जीव प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध—इन चार प्रकार के कर्मबन्ध से रहित होता है । सो यही बात मैंने भी यहां पर कही है ।

अथवा—“बंधपमुक्त्वो” की “बंधप्रमोक्षौ” यह भी संस्कृत छाया होती है । ज्ञानावरणीयादिक आठ प्रकारके कर्मोंका सम्बन्ध तो बंध है और उससे आत्मा का पृथक् होना प्रमोक्ष है । ये दोनों

“इति ब्रवीमि” ઇતિ પદ અધિકારની સમાપ્તિનું સૂચક છે, અર્થાત્ આ ઉદ્દેશમાં અહીં સુધી અથવા આ સૂત્રમાં જે કહ્યું છે અને આગળ પણ જે કંઈ કહું છું તે બધા મેં ભગવાનના ઉપદેશથી જ જાણેલ છે. મારે સૂત્રકારે “તત્ શ્રુતં ચ મયા” આ કહેલ છે. આ કહેલ અથવા આગળ જે કહેવામાં આવશે તે સમસ્ત વિષય, જેને મેં તીર્થંકર પ્રભુથી સાંભળ્યું છે તે મારા આત્મામાં—અંતઃકરણમાં સ્થિત છે. તેમણે એ કહ્યું છે કે “અધ્યાત્મે એવ” બ્રહ્મચર્યમાં વ્યવસ્થિત સાધુની જ બંધથી મુક્તિ થાય છે, અર્થાત્ એ જીવ પ્રકૃતિબંધ, સ્થિતિબંધ, અનુભાગબંધ, અને પ્રદેશબંધ, આવા ચાર પ્રકારના કર્મબંધથી રહિત બને છે. તે જ વાત મેં પણ અહિં કહી છે.

અથવા “बंधपमुक्त्वो”ની “बंधप्रमोक्षौ” આ પણ સંસ્કૃત છાયા બને છે. તથા જ્ઞાનાવરણીયાદિક આઠ પ્રકારના કર્મોનો સંબંધ બંધ છે તેનાથી આત્માનું

આત્મન્યેવ સ્તઃ, રાગદ્વેષયોરાત્મન્યેવ સદ્ભાવાત્ । અપિ ચ-અત્ર=આરંભપરિગ્રહે અપ્રશસ્તાધ્યાત્મે વા વિરતઃ=ઉપરતઃ, અનગારઃ=મુનિઃ દીર્ઘરાત્ર=યાવજ્જીવં પરિગ્ર-  
હાસત્ત્વાદ્ યત્ ક્ષુત્પિપાસાદિકમ્ આતઙ્કાદિકં વા સમાપતેત્ તત્સર્વં તિતિક્ષેત=સદેત ।  
અન્યમપ્યુપદેશમાહ-‘પ્રમત્તાન’-इत्यादि, પ્રમત્તાન=અસંયતાન આરંભપરિગ્રહીતાન  
કુલિङ्गिनः परतीर्थिकान् बहिः=ભગવદાજ્ઞારૂપાદ્ ધર્માદ્વહિર્ભૂતાન પश्य । અતો  
ભગવદાજ્ઞાવર્તી મુનિઃ અપ્રમત્તઃ=સંયમાનુપાલનાર્થં પ્રયત્નવાન, યદ્વા-અપ્રમત્તઃ=  
પશ્ચવિધપ્રમાદરહિતઃ સન્ પરિવ્રજેત=પ્રવ્રજ્યાં પરિપાલયેત-વિહરેદિત્યર્થઃ । કિંચ-  
બંધ ઓર પ્રમોક્ષ “અધ્યાત્મે एव” આત્મા મેં હી હૈં । ક્યોં કિ રાગ  
ઓર દ્વેષ આત્મા મેં હી હોતે હૈં । જહાં બંધ હૈ વહીં મુક્તિ હૈ । તથા-  
આરંભ ઓર પરિગ્રહ મેં અથવા અપ્રશસ્ત અધ્યાત્મ-રાગદ્વેષ વિશિષ્ટ  
આત્મામેં જો લીન નહીં હૈ-उनसे विरक्त है, उस मुनिको दीर्घरात्र=  
જીવનપર્યન્ત પરિગ્રહ કે અસત્ત્વ સે જો ક્ષુધા તૃષ્ણા આદિ પરીષદ્ અથવા  
કિસી મી પ્રકાર કા રોગ ઉપદ્રવ આવે તો उन सब का उसे सहन  
કરના ચાહિયે । તથા જો અસંયત હૈં, આરંભ-પરિગ્રહમેં આસક્ત હૈં,  
द्रव्यलिङ्गी हूँ ऐसे पासस्थादिकों और परतीर्थिकों को वीतराग प्रभुकी  
આજ્ઞારૂપ ધર્મમાર્ગસે બાહર સમજના ચાહિયે । જો વીતરાગપ્રભુકી  
આજ્ઞાનુસાર પ્રવૃત્તિ કરનેવાલે હૈં ઓર સંયમમાર્ગકી પરિપાલના કરનેમેં  
प्रयत्नशील हूँ वे अनगार मुनि हूँ । इसलिये भगवान्की आज्ञावर्ती  
મુનિ અપ્રમત્ત હોકર અપને સંયમ કે પાલન કરનેકે લિયે પ્રયત્નશીલ  
बन “परिव्रजेत्” प्रव्रज्या-भागवती दीक्षा का भले प्रकार पालन करे ।

‘पृथक् धवुं तेनु’ नाम प्रमोक्ष છે. આ બન્ને બંધ અને પ્રમોક્ષ “અધ્યાત્મે एव”  
આત્મામાં જ છે, કારણ કે રાગ અને દ્વેષ આત્મામાં જ હોય છે, બંધાં બંધ છે  
ત્યાં મોક્ષ છે. તથા આરંભ અને પરિગ્રહમાં અથવા અપ્રશસ્ત અધ્યાત્મ-રાગ-  
દ્વેષવિશિષ્ટ આત્મા-માં જે લીન નથી એટલે તેનાથી વિરક્ત છે તે મુનિને દીર્ઘરાત્ર-  
જીવનપર્યન્ત પરિગ્રહના અસત્ત્વથી જે ક્ષુધા તૃષ્ણા આદિ પરિષદ્ અથવા કોઈ પણ  
પ્રકારના રોગનો ઉપદ્રવ આવે તો એ બધાને સહન કરવું જોઈએ. તથા જે અસંયત  
છે, આરંભ પરિગ્રહમાં આસક્ત છે, દ્રવ્યલિંગી છે, એવા પાસત્થાદિક અને  
પરતીર્થિકોને વીતરાગ પ્રભુની આજ્ઞારૂપ ધર્મમાર્ગથી બહાર સમજવા જોઈએ. જે  
વીતરાગ પ્રભુની આજ્ઞા-અનુસાર પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા છે, અપ્રમત્ત છે, અને સંયમ  
માર્ગની પરિપાલના કરવામાં પ્રયત્નશીલ છે તે અનગાર-મુનિ છે. આ કારણે  
ભગવાનના આજ્ઞાવર્તી મુનિ અપ્રમત્ત બનીને પોતાના સંયમનું પાલન કરવા માટે



एतत् मौनं-भगवदावेदितं चारित्रं हे शिष्य ! त्वं समनुवासये:-सम्=सम्यक्=पूर्वोक्त-  
यथार्थरूपेण अनुवासये:=परिपालय । इति ब्रवीमीत्यस्यार्थस्तूक्त एव ॥ सू० ५ ॥

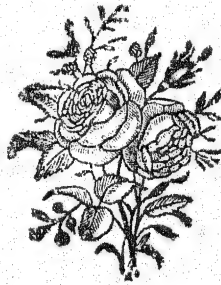
॥ इति पञ्चमाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥ ५-२ ॥

यह मुनिसंबंधी कर्तव्य-चारित्र भगवान् ने कहा है, सो हे शिष्य ! पूर्व में प्रतिपादित यथार्थरूप से तुम इसका पालन करो ! “इति ब्रवीमि” इस प्रकार श्री सुधर्मास्वामी ने श्री जम्बूस्वामी से कहा ॥

॥ पंचम अध्ययन का द्वितीय उद्देश समाप्त ५-२ ॥

प्रयत्नशील भनी “परिव्रजेत्” प्रव्रज्या-लागवती दीक्षाने लक्ष्मी प्रकारे पालन करे.  
आ मुनिसंबंधी कर्तव्य ओटले चारित्र लगवाने कहेल छे; भाटे हे शिष्य ! पहेलां  
कहेवाभां आवेल यथार्थ इथी तमे तेनुं पालन करे. “इति ब्रवीमि” आ प्रकारे  
श्री सुधर्मास्वामीने श्री जम्बूस्वामीने कह्यो.

पांचमा अध्ययनने भीने उद्देश समाप्त ॥ ५-२ ॥



### अथ पञ्चमाध्ययनस्य तृतीय उद्देशः ।

उक्तो द्वितीयोद्देशोऽधुना तृतीयः समारम्भ्यते । एष चानन्तरोद्देशेन सम्बन्धः, पूर्वत्र चाविरतिमान् अल्पादिद्रव्यैः परिग्रहवान् भवतीत्युपदर्शितम् । अत्र च मुनेः परिग्रहप्रतिपक्षभूतोऽपरिग्रहो व्याख्यातव्यो येन मुनित्वं न व्याहन्येतेति ।

मुनेः परिग्रहप्रतिषेधं प्रदर्शयति—‘आवंती’ इत्यादि ।

मूलम्—आवंती केयावंती लोयंसि अपरिग्रहावंती एषसु चेव अपरिग्रहावंती, सोच्चा वर्ड मेहावी पंडियाण निसामिया समियाए धम्मे आरिएहिं पवेइए जहित्थ मए संधी झोसिए एवमन्नत्थ संधी दुज्झोसए भवइ, तम्हा वेमि नो निहणिज्ज वीरियं ॥ सू० १ ॥

छाया—यावन्तः कियन्तो लोकेऽपरिग्रहवन्त एतेषु चैवापरिग्रहवन्तः, श्रुत्वा वाचं मेधावी पण्डितानां निश्चय्य समतया धर्म आर्यैः प्रवेदितो यथाऽत्र मया सन्धि-  
ज्ञोषित एवमन्यत्र सन्धिर्दुज्ञोषितो भवति, तस्माद्ब्रवीमि नो निहन्याद्वीर्यम् ॥१॥

### पांचवे अध्ययनका तीसरा उद्देश ।

द्वितीय उद्देश का कथन हो चुका । अब तृतीय उद्देश का प्रारम्भ होता है । इसका संबंध अनंतर उद्देश के साथ इस प्रकारसे है—द्वितीय उद्देश में यह प्रकट किया है कि अविरतिसम्पन्न प्राणी अल्प आदि वस्तुओं से सम्बन्धित होने पर परिग्रही होता है । इस उद्देश में उसके प्रतिपक्ष-भूत अपरिग्रहवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित करना है, क्यों कि निष्परिग्रहता से ही मुनिमें मुनिता आती है, अन्यथा नहीं ! इसलिये सर्वप्रथम मुनिके परिग्रह का प्रतिषेध करने के लिये कहते हैं “आवंती” इत्यादि ।

### पांचमा अध्ययननो त्रीजे उद्देश.

બીજા ઉદ્દેશનું વક્તવ્ય પૂરું થયું, હવે ત્રીજો ઉદ્દેશ શરૂ થાય છે. જેનો સંબંધ અનંતર ઉદ્દેશની સાથે આ પ્રકારે છે—બીજા ઉદ્દેશમાં એમ કહેવામાં આવેલ છે કે અવિરતિસંપન્ન પ્રાણી અલ્પ આદિ વસ્તુઓથી સંબંધિત હોવાથી પરિગ્રહી બને છે. આ ઉદ્દેશમાં તેના પ્રતિપક્ષભૂત અપરિગ્રહવાદનો સિદ્ધાંત સમ-  
જાવે છે, કારણ કે નિષ્પરિગ્રહતાથી જ મુનિમાં મુનિતા આવે છે, બીજાથી નહિ. એટલા માટે સર્વ પ્રથમ મુનિને પરિગ્રહનો પ્રતિષેધ કરવાને કહે છે—“આવંતી” ઇત્યાદિ.

ટીકા—‘યાવન્તઃ’ ઇત્યાદિ, લોકે=મનુષ્યલોકે યાવન્તઃ કિયન્તઃ=યાવત્પ્રમાણાઃ કેચન અપરિગ્રહવન્તઃ=અલ્પસ્થૂલાદિદ્રવ્યપરિગ્રહરહિતાઃ મુનયો ભવન્તિ, તે સર્વે સંયમિનો હિ એતેષુ ચૈવ=અલ્પસ્થૂલાદિષ્વેવ વસ્તુષુ મમત્વાભાવાદ્ અપરિગ્રહવન્તઃ=નિષ્પરિગ્રહાઃ અનગારા ઉચ્યન્તે ।

इस मनुष्यलोक में कितनेक अल्प और स्थूल द्रव्य परिग्रहसे रहित मुनि होते हैं । वे समस्त संयमी इन अल्प स्थूलादि द्रव्यों में ममत्वरहित होने से अपरिग्रही कहे जाते हैं ।

भाचार्य—“ अल्पस्थूलादिक द्रव्यों के परिग्रहसे रहित कितनेक मुनि हैं ” इस कथनसे कोई यह न समझ लेवे कि और भी कोई मुनि अल्प-स्थूलादि द्रव्यवाले भी होते होंगे । सूत्रकार का अभिप्राय यह है कि संसार में जितने भी प्राणी हैं वे सब प्रायः परिग्रहाधीन हैं । इस परिग्रहका विवेचन अल्पस्थूलादिक के भेदसे द्वितीय उद्देश के चौथे सूत्र में किया जा चुका है । समस्त प्राणियों में विरले ही मुनि होते हैं और वे परिग्रह के त्यागी ही होते हैं । अथवा-सूत्रकार को यहां पर मुनिधर्म का प्रतिपादन करना अभीष्ट है । द्रव्यलिङ्गी पासत्थादिक भी नाम से मुनिसंज्ञावाले हैं । दण्डिशाक्यादिक भी लोकमें त्यागी मुनि कहलाते हैं, परन्तु इनमें वास्तविक मुनिपना नहीं है । क्यों कि जो परिग्रह से रिक्त होते हैं वे ही वास्तविक मुनि माने गये हैं । यद्यपि इन पासत्था-

આ મનુષ્ય લોકમાં કેટલાક અલ્પ અને સ્થૂલ દ્રવ્યપરિગ્રહથી રહિત મુનિઓ હોય છે તે સર્વવિરત સંયમી આવા અલ્પ સ્થૂલાદિ દ્રવ્યોમાં મમત્વરહિત હોવાથી અપરિગ્રહી કહેવાય છે.

ભાવાર્થ:—“ અલ્પ સ્થૂલાદિ દ્રવ્યોના પરિગ્રહથી રહિત કેટલાક મુનિ હોય છે ” આ કથનથી કોઈ એમ ન સમજી લે કે બીજા કોઈ મુનિ અલ્પ સ્થૂલાદિ દ્રવ્યવાળા હશે. સૂત્રકારનો અભિપ્રાય એ છે કે-સંસારમાં જેટલા પ્રાણી છે તે સઘળા ઘણું કરી પરિગ્રહને આધીન છે. આ પરિગ્રહનું વિવેચન અલ્પ સ્થૂલાદિ-કના ભેદથી બીજા ઉદ્દેશના ચોથા સૂત્રમાં કહેવામાં આવેલ છે. સમસ્ત પ્રાણી-ઓમાં વિરલા જ મુનિ બને છે અને તે પરિગ્રહના ત્યાગી જ હોય છે. અથવા સૂત્રકારે આ સ્થળે મુનિધર્મનું પ્રતિપાદન કરવું ઉચિત સમજે છે. દ્રવ્યલિંગી પાસત્થાદિક પણ નામથી મુનિસંજ્ઞાવાળા છે. દંડી શાક્યાદિક પણ લોકમાં ત્યાગી-મુનિ કહેવાય છે, પરંતુ તેઓમાં વાસ્તવિક મુનિપણું નથી, કારણ કે જે પરિગ્રહથી દૂર રહે છે તે જ વાસ્તવિકપણે મુનિ માની શકાય. જો કે આવા પાસત્થાદિકમાં પણ બાહ્ય



પરિગ્રહઃ પરિવર્જનીય इति कथं जानातीत्याह—श्रुत्वेत्यादि, मेधावी=साधु-  
 र्यादाज्ञानकुशलः पण्डितानां=तीर्थङ्करगणधरादीनां “वई” वाचं=परिग्रहजनितनरक-  
 निगोदादिपरिभ्रमणककटुकफलस्वरूपां वाणीं श्रुत्वा=समाकर्ण्य, अत्र ‘वई’ इति  
 मूले द्वितीयार्थे प्रथमाऽऽर्पत्वात्; एवं निश्चय भगवद्वचनमेव धर्म इत्यवधार्य सचि-  
 त्ताचित्तमिश्रपरिग्रहपरित्यागान्निष्परिग्रहो भवतीति सम्बन्धः । स च धर्मः कीदृशो  
 भवतीत्याह—‘समतये’-त्यादि, धर्मः=तीर्थङ्कराद्युपदिष्टः ‘समतया’ समस्य  
 भावः समता तथा-शत्रुमित्रेषु तुल्यस्वभावेन वर्तनरूपो धर्म आर्यैः=तीर्थकृद्भिः प्रवे-

दિકોં में भी बाह्यरूप से मुनि की आकृति वगैरह होती है; परन्तु इस  
 आकृतिमात्र से मुनिता उनमें नहीं मानी गई है, ममेदं (ममत्व) भाव  
 का अल्पस्थूलादिक द्रव्यों में परित्याग ही वास्तविक मुनिपने का द्योतक  
 माना गया है । इसलिये मुनि होकर भी सब मुनि नहीं हैं । किन्तु  
 परिग्रह के परित्यागी ही मुनि हैं ।

“परिग्रह छोड़ने योग्य है” यह मुनिजन कैसे जानते हैं ? इसके  
 प्रत्युत्तर में सूत्रकार कहते हैं कि—“जो परिग्रही होता है वह नरक-  
 निगोदादिगतियों में परिभ्रमणरूप कटुक फलको प्राप्त करता है” इस  
 प्रकार तीर्थङ्कर गणधर आदि विशिष्ट ज्ञानियों की बात सुन कर साधु  
 की मर्यादा के ज्ञानमें कुशल अर्थात्-मेधावी साधु यह जान लेते हैं कि  
 परिग्रह छोड़ने योग्य है । तब वे मुनिजन सचित्त अचित्त और मिश्र  
 परिग्रहके त्यागसे निष्परिग्रही होते हैं । तीर्थङ्करादिद्वारा प्रतिपादित धर्म कैसा  
 होता है ? ऐसी शिष्यकी जिज्ञासा के समाधानार्थ सूत्रकार कहते हैं—

૩પથી મુનિની આકૃતિ વગેરે હોય છે પરંતુ એ આકૃતિ પરથી મુનિપણું તેમ-  
 નામાં માનવામાં આવતું નથી. મમત્વભાવનો અલ્પસ્થૂલાદિક દ્રવ્યોમાં પરિત્યાગ  
 જ વાસ્તવિક મુનિપણુનો દ્યોતક માનવામાં આવેલ છે. માટે મુનિ બનીને પણ  
 બધા મુનિ નથી, પરંતુ પરિગ્રહના પરિત્યાગી જ મુનિ છે.

‘પરિગ્રહ છોડવા યોગ્ય છે’-તે મુનિજન કેવી રીતે બાણે છે ? તેના પ્રત્યુ-  
 ત્તરમાં સૂત્રકાર કહે છે કે, જે પરિગ્રહી છે, તે નરક-નિગોદાદિ ગતિઓમાં પરિ-  
 ભ્રમણરૂપ કડવા ફળને પ્રાપ્ત કરે છે, આવા પ્રકારની તીર્થંકર ગણધર આદિ વિશિષ્ટ  
 જ્ઞાનીઓની વાણી સાંભળીને સાધુની મર્યાદાના જ્ઞાનમાં કુશલ મેધાવી મુનિ બાણી  
 લે છે કે પરિગ્રહ છોડવા યોગ્ય છે, ત્યારે તે મુનિજન સચિત્ત અચિત્ત અને  
 મિશ્ર પરિગ્રહના ત્યાગથી નિષ્પરિગ્રહી થાય છે. તીર્થંકરાદિદ્વારા સમજાવેલ ધર્મ  
 કેવો હોય છે ? એવી શિષ્યની જિજ્ઞાસાનું સમાધાન કરવા માટે સૂત્રકાર કહે  
 છે-તીર્થંકરાદિએ જે ધર્મનો ઉપદેશ આપ્યો છે, તે ધર્મ એ છે કે શત્રુ અને

દિતઃ=કથિતઃ, સ્તુતિનિન્દાદિષુ સર્વત્ર સમભાવવર્તી નિષ્પરિગ્રહો મુનિર્ભવતિ, ઉક્તઞ્ચ—

“ જે ચંદણેણ બાહું આલિપ્પિ, વાસિણા વા તચ્છેતિ ।

સંથુણ્ણ જો ય ણિંદતિ, મહેસિણો તત્થ સમભાવો ” ॥ ૧ ॥ ઇતિ ।

છાયા—યશ્વન્દનેન બાહુમુપલિમ્પતિ, વાસ્યા વા તક્ષ્ણોતિ ।

સંસ્તૌતિ યશ્વ નિન્દતિ મહર્ષેસ્તત્ર સમભાવઃ ॥ ૧ ॥ ઇતિ ।

તીર્થઙ્કરાદિને જિસ ધર્મકા ઉપદેશ દિયા હૈ વહ ધર્મ યહી હૈ કિ શત્રુ  
ઔર મિત્ર મેં મુનિજન સમભાવી રહેં । શત્રુ-મિત્ર મેં સમભાવસે વર્તને-  
વાલા મુનિ હી નિષ્પરિગ્રહી હોતા હૈ ।

ભાવાર્થ—શત્રુ મિત્ર મેં રાગ દ્વેષ રચ્વનેવાલેમેં નિષ્પરિગ્રહતા નહીં  
આ સકતી, કારણ કિ પરિગ્રહ કા લક્ષણ મૂચ્છર્ષા-મમત્વ-ભાવ બતલાયા  
ગયા હૈ । રાગ હોના હી મમત્વ-ભાવ હૈ, અથવા મમત્વ-ભાવકા કાર્ય રાગ  
હૈ । કાર્ય કે સદ્ભાવ મેં કારણ કા સદ્ભાવ માના હી જાતા હૈ । અતઃ રાગ  
કે સદ્ભાવ મેં સચિત્તાદિપરિગ્રહતા રાગીમેં આતી હૈ । ઇસ હેતુ નિષ્પરિ-  
ગ્રહ હોનેકે લિયે શત્રુ-મિત્રમેં સમભાવસે પ્રવર્તન કરનેરૂપ ધર્મકા ઉપ-  
દેશ તીર્થઙ્કરાદિક આર્ય પુરુષોં ને દિયા હૈ ।

કહા મી હૈ—

“ જે ચંદણેણ બાહું આલિપ્પિ વાસિણા વા તચ્છેતિ ।

સંથુણ્ણ જો ય ણિંદતિ, મહેસિણો તત્થ સમભાવો ” ॥ ૧ ॥ ઇતિ—

મિત્રમાં મુનિજન સમભાવી રહે. શત્રુ-મિત્રમાં સમભાવથી વર્તવાવાળા મુનિ જ  
નિષ્પરિગ્રહી હોય છે.

ભાવાર્થ—શત્રુ-મિત્રમાં રાગદ્વેષ રાખવાવાળામાં નિષ્પરિગ્રહિતા આવતી  
નથી, કારણ કે પરિગ્રહનું લક્ષણ મમત્વભાવ બતાવેલ છે, રાગ થવો એ  
મમત્વભાવ છે, મમત્વભાવનું કાર્ય રાગ છે, કાર્યના સદ્ભાવમાં કારણનો સદ્ભાવ  
માનવામાં આવે છે, માટે રાગના સદ્ભાવમાં સચિત્તાદિપરિગ્રહતા રાગીમાં  
આવે છે. આ કારણે નિષ્પરિગ્રહ હોવાને માટે શત્રુ-મિત્રમાં સમભાવથી પ્રવર્તન  
કરવારૂપ ધર્મનો ઉપદેશ તીર્થઙ્કરાદિક આર્ય પુરુષોએ કહેલ છે. કહું પણ છે—

‘ જે ચંદણેણ બાહું, આલિપ્પિ વાસિણા વા તચ્છેતિ ।

સંથુણ્ણ જો ય ણિંદતિ, મહેસિણો તત્થ સમભાવો ” ॥ ૧ ॥ ઇતિ.

યદ્વા-‘આરિણ્હિ’ ઇતિ મૂલે સપ્તમ્યર્થે તૃતીયા, તેનાઽઽર્થેષ્વિતિચ્છાયા; આર્યેષુ=દેશભાષાચારિત્રાર્યેષુ, ઉપલક્ષણાદનાર્યેષુ ચ ધર્મઃ વીતરાગેણ સમ- તયા=સમભાવેન પ્રવેદિતઃ-સકલજીવોપકારાય સદશતયા પ્રવર્તકત્વાત્તેષામ્, “જહા પુણ્ણસ્સ કત્થઈ તહા તુચ્છસ્સ કત્થઈ” ઇત્યાદિવચનાત્, અથવા- ‘સમિયાણ’ ઇતિ મૂલસ્ય શમિતયેતિચ્છાયા, તતથ ‘શમિતયા શમી=ઇન્દ્રિયનો-

उनका यह कथन है कि चाहे कोई भुजाओं में चंदनका लेप करे अथवा तलवार या कुल्हाड़ी से काटे, कोई उनकी स्तुति करे या निंदा करे; तो भी महर्षि वहां पर समभाववाले ही होते हैं।

अथवा--मूल सूत्र में “आरिण्हि” ऐसा पद है। जिसकी संस्कृत-छाया-पहिले “आर्यैः” ऐसी की है। परन्तु जब “आरिण्हि” इस पद में सप्तमी विभक्ति के अर्थ में तृतीया विभक्ति मानेंगे तब इसकी छाया “आर्येषु” होगी। उस अवस्था में ऐसा इसका अर्थ होगा कि देशार्थ, भाषार्थ और चारित्रार्थों में तथा उपलक्षण से अनार्यों में भी वीतरागप्रभुने समभावसे धर्मका उपदेश दिया है। क्योंकि वीतराग प्रभुकी प्रवृत्ति समस्त जीवोंपर उपकार करने के लिये एकसी होती है। “जहा पुण्णस्स कत्थई तहा तुच्छस्स कत्थई” ऐसा आगम का वचन है।

‘સમિયાણ’ इस मूल पदकी संस्कृत-छाया ‘शमितीया’ होती है। इन्द्रिय और मनका जो निग्रह करता है वह शमी है, शमीका भाव

આનો ભાવ છે કે ભલે કોઈ ભુજાઓમાં ચંદનનો લેપ કરે અથવા તલવાર અથવા કુહાડીથી તેને કાપે, કોઈ એની સ્તુતિ કરે અથવા નિંદા કરે, તો પણ મહર્ષિ આમાં સમભાવ દાખવનાર જ રહે છે.

અથવા—મૂળ સૂત્રમાં “આરિણ્હિ” એવો પદ છે. જેની સંસ્કૃત છાયા પહેલાં “આર્યૈઃ” એમ કરી છે.

પરંતુ જ્યારે ‘આરિણ્હિ’ આ પદમાં સપ્તમી વિભક્તિના અર્થમાં તૃતીયા વિભક્તિ માનવામાં આવશે, ત્યારે તેની છાયા “આર્યેષુ” એવી થશે. આવી અવસ્થામાં આવો એનો અર્થ થશે કે—દેશાર્થ, ભાષાર્થ અને ચારિત્રાર્યોમાં, તથા ઉપલક્ષણથી અનાર્યોમાં પણ વીતરાગ પ્રભુએ સમભાવથી ધર્મનો ઉપદેશ આપ્યો છે. કારણ કે વીતરાગ પ્રભુની પ્રવૃત્તિ સમસ્ત જીવો ઉપર ઉપકાર કરવા માટે એકધારી હોય છે. આગમનું વચન છે કે—“જહા પુણ્ણસ્સ કત્થઈ તહા તુચ્છસ્સ કત્થઈ”

“સમિયાણ” આ મૂળની સંસ્કૃત છાયા “શમિતયા” થાય છે. ઇન્દ્રિય અને મન ઉપર જે કાબુ મેળવે છે એ શમી છે, શમીનો ભાવ શમિતા છે.



ઇન્દ્રિયોપશમી, તસ્ય ભાવઃ શમિતા તયા આર્યૈઃ=તીર્થઙ્કરૈઃ ધર્મઃ પ્રવેદિતઃ, ભગવાન્ મિ-  
થ્યાદૃષ્ટિપ્રરૂપિતોપદેશસ્ય હેયતામુપદર્શયતિ-‘જહિત્થ’-ઇત્યાદિ; અન્ન=અસ્મિન્નર્હ-ચ્છાસનો-  
ક્તે રત્નત્રયાત્મકે મોક્ષમાર્ગે મયા ઘાતિકર્મ મોક્તુકામેન યથા=યેન પ્રકારેણ સન્ધિઃ=  
સન્ધાનં સન્ધિઃ કર્મપરમ્પરા, સન્ધીયતે વા સન્ધિઃ=જ્ઞાનાવરણીયાદિકર્મસન્તતિઃ, સ  
કૃત્સનો ળોષિતઃ=અપનોતો દૂરીકૃતઃ, એવં=તથા અન્યત્ર=કુતીર્થિકપ્રતિપાદિત-  
શાસને સન્ધિઃ=પૂર્વોક્તો દુઝ્જોષિતઃ=દુઃખેનાપનીતોઽપનેતુમશક્ય इत्यर्थः, ભવતિ,  
દોષરાહિત્યેન વીતરાગપ્રતિપાદિત એવ મોક્ષમાર્ગઃ સાધીયાન્નતુ સર્વસમારમ્ભશીલેન  
સચિત્તભોજિના રાગદ્વેષાગ્રહવતા પરેણ પ્રતિપાદિતો માર્ગો મોક્ષાય ભવતીત્યભિપ્રાયઃ,  
શમિતા હૈ । શમિતા સે આર્ય તીર્થઙ્કરાદિકોં ને ધર્મ કી પ્રરૂપણા કી હૈ  
-એસા સમજના ચાહિયે ।

વીતરાગ સે અન્ય અવીતરાગ મિથ્યાદૃષ્ટિકા ઉપદેશ હેય હૈ-છોડને  
યોગ્ય હૈ-ઇસ વાત કો પ્રદર્શિત કરને કે લિયે સ્વયં ભગવાન્ કહતે હૈ-  
‘જહિત્થ’-ઇત્યાદિ । ઇસ આર્હત-શાસનમેં પ્રતિપાદિત રત્નત્રયાત્મક મોક્ષ-  
માર્ગમેં ઘાતિકર્મોં કો નાશ કરનેકી કામનાવાલે મૈને જિસ પ્રકાર સે  
કર્મપરંપરા-જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મોં કી સન્તતિ સમ્પૂર્ણરૂપસે દૂર કી  
હૈ ઉસ તરહ સે વહ કર્મપરમ્પરારૂપ સંધિકા અન્યત્ર-મિથ્યાદૃષ્ટિયોં દ્વારા  
પ્રતિપાદિત સિદ્ધાન્તમેં દુઝ્જોષિત-અપનયન-દૂર કરના અશક્ય હૈ ।  
અર્થાત્ મિથ્યાદૃષ્ટિયોં કે સિદ્ધાન્ત કે સહારે યહ કર્મપરમ્પરા નષ્ટ નહીં  
હો સકતી હૈ । અભિપ્રાય ઇસકા યહી હોતા હૈ કિ દોષરહિત હોને સે  
વીતરાગ દ્વારા પ્રતિપાદિત હી મોક્ષમાર્ગ સર્વોત્કૃષ્ટ હૈ, સર્વસમારમ્ભ-

શમિતાથી આર્ય તીર્થઙ્કરાદિકોએ ધર્મની પ્રરૂપણા કરી છે એમ સમજવું બેઈએ.

વીતરાગથી અન્ય અવીતરાગ-મિથ્યાદૃષ્ટિનો ઉપદેશ બરોબર નથી-છોડવા  
યોગ્ય છે-આ વાત સ્પષ્ટ કરતાં સ્વયં ભગવાન કહે છે કે-“જહિત્થ ” ઇત્યાદિ.  
આ આર્હત શાસનમાં પ્રતિપાદિત રત્નત્રયાત્મક મોક્ષમાર્ગમાં ઘાતિકર્મોના નાશ  
કરવાની કામનાવાળા મેં જે પ્રકારથી કર્મપરંપરા-જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મોની સંતતિ  
સંપૂર્ણ રૂપથી દૂર કરેલ છે તે રીતે એ કર્મપરંપરાપ્ર સંધીનો અન્યત્ર-મિથ્યા-  
દૃષ્ટિઓદ્વારા પ્રતિપાદિત સિદ્ધાન્તોમાં દુઝોષિત-દૂર કરવું અશક્ય છે. અર્થાત્ મિથ્યા-  
દૃષ્ટિઓના સિદ્ધાન્તને સહારે આ કર્મપરંપરા દૂર થઈ શકનાર નથી. અભિપ્રાય આનો  
એ છે કે-દોષરહિત થવાથી વીતરાગદ્વારા પ્રતિપાદિત જ મોક્ષમાર્ગ સર્વોત્કૃષ્ટ છે.

તસ્માત્કારણાત્ બ્રવીમિ=કથયામિ, યત એતદાર્હતે માર્ગે સમ્યગ્વ્યવસ્થિતેન મયા કર્માપનીતમ્ તતો બ્રવીમિ અન્યોઽપિ સંયતો વીર્યસંયમાચરણે તપસિ વા સામર્થ્ય નો નિહન્યાત્=નો ગોપયેત્ અનિગૂહિતબલવીર્યેણ મુનિના ભાવ્યમિતિ ભાવઃ, ઇતિ સુધર્મા સ્વામી સ્વશિષ્યાય વીરપ્રોક્તં બ્રવીતીત્યાશયઃ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

અપિ ચ સ કથમ્ભૂતો ભવેત્? ઇત્યાહ—‘ જે પુવ્વુટ્ટાઈ ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ—જે પુવ્વુટ્ટાઈ નો પચ્છાનિવાઈ, જે પુવ્વુટ્ટાઈ પચ્છાનિવાઈ, જે નો પુવ્વુટ્ટાઈ નો પચ્છાનિવાઈ, સેઽવિ તારિસણ સિયા, જે પરિન્નાય લોગમણુસિસયા ॥ સૂ૦ ૨ ॥

હાયા—યઃ પૂર્વોત્થાયી નો પશ્ચાન્નિપાતી, યઃ પૂર્વોત્થાયી પશ્ચાન્નિપાતી, યો નો પૂર્વોત્થાયી નો પશ્ચાન્નિપાતી, સોઽપિ તાદૃશઃ સ્યાત્, યે પરિજ્ઞાય લોકમન્વાશ્રિતાઃ ॥ સૂ૦ ૨ ॥

સ્વભાવવાલે સચિત્તભોજન કરનેવાલે ઔર રાગ એવં દ્વેષમેં આગ્રહવાલે અન્ય મિથ્યાદૃષ્ટિ અવીતરાગ દ્વારા પ્રતિપાદિત માર્ગ મોક્ષપ્રાપ્તિ કે લિયે યોગ્ય નહીં હૈ । ઇસી કારણ સે મૈં કહતા હું કિ ઇસ આર્હત માર્ગમેં અચ્છી તરહ સે રહતે હુએ મૈંને કર્મોંકા નાશ કિયા હૈ, તો ઔર અન્ય સંયતોં સે બી મેરા યહી કહના હૈ કિ વે બી સંયમ કે આચરણ મેં અથવા તપકી આરાધનામેં અપની શક્તિ કો નહીં છુપાવેં । જો અપને બલ ઔર વીર્ય કો છુપાતા હૈ વહ સચ્ચા મુનિ નહીં હૈ । ઇસ હેતુ સચ્ચે મુનિ હોને કે લિયે અપને બલ વીર્ય કો નહીં છુપાના ચાહિયે, તમી જા કર વહ સચ્ચા મુનિ હો સકતા હૈ । ઇસ પ્રકાર સુધર્માસ્વામીજી વીર ભગવાનદ્વારા પ્રતિપાદિત સિદ્ધાન્તકો અપને શિષ્ય જમ્બૂસ્વામીકે પ્રતિ કહ રહે હૈ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

સર્વસમારંભસ્વભાવવાળા અને સચિત્ત ભોજન કરવાવાળા તેમજ રાગ અને દ્વેષમાં આગ્રહ રાખવાવાળા અન્ય મિથ્યાદૃષ્ટિ અવીતરાગદ્વારા પ્રતિપાદિત માર્ગ મોક્ષ પ્રાપ્તિ માટે યોગ્ય નથી, આ કારણે હું કહું છું કે આ આર્હત માર્ગમાં રહીને મેં કર્મોના નાશ કરેલ છે, અન્યને પણ મારું આ કહેવું છે કે તેઓ પણ સંયમના આચરણમાં અથવા તપની આરાધનામાં પોતાની શક્તિને ન છુપાવે. જે પોતાનું બળ અને વીર્ય છુપાવે છે એ સાચો મુનિ નથી. આથી સાચા મુનિ થવા માટે પોતાના બળ વીર્યને ન છુપાવવું જોઈએ. આથી જ એ સાચો મુનિ બની શકશે. આ પ્રમાણે સુધર્માસ્વામીએ વીર ભગવાન પાસેથી બાણેલ સિદ્ધાન્ત પોતાના શિષ્ય જમ્બૂસ્વામીને કહેલ છે. ॥ સૂ૦ ૧ ॥

ટીકા—‘ય’ इत्यादि, यः=विचारितसंसारसारो धर्मानुष्ठानपरायणः पूर्वोत्थायी पूर्व-चारित्रग्रहणावसरे चारित्राचरणेनोत्थातुं शीलं यस्य स पूर्वोत्थायी, नोपश्चान्निपाती-पश्चात्=चारित्रग्रहणानन्तरं निपतितुं शीलं यस्य नास्ति स नो-पश्चान्निपाती भवति । सिंहवन्निष्क्रान्तः सिंह इव एकान्तविहरणशीलः गणधरादि-तुल्यः, इति प्रथमो भङ्गः, स चात्युत्तमः ।

तथा—मुनिजन को कैसा होना चाहिये ? इस बात को प्रकट करने के लिये कहते हैं—“जे पुव्वुट्ठाई ” इत्यादि ।

‘पूर्व—चारित्रग्रहणावसरे चारित्राचरणेन उत्थातुं शीलं यस्य स पूर्वोत्थायी’—चारित्र ग्रहण करने के अवसर में चारित्र के आचरण से अपनी वृद्धि करने का जिसका स्वभाव है वह पूर्वोत्थायी है । अर्थात्—चारित्र को अंगीकार कर के जो अपने चारित्रमय आचरण से अपने जीवनकी उन्नति करता है उसका नाम पूर्वोत्थायी है । वह पूर्वोत्थायी “नोपश्चान्निपाती ” चारित्र ग्रहण के अनन्तर अपने गृहीत चारित्र से कभी पतित नहीं होता है, क्योंकि इसका स्वभाव गृहीत चारित्र से निपतनशील नहीं होता है, प्रत्युत इसके परिणाम चारित्र ग्रहण के अवसरसे लगा कर सदा वर्धमान रहते हैं । इसीलिये वह पश्चान्निपाती नहीं होता है । सिंह की तरह एकान्त विहरणशील होने से यह गणधरादि के समान माना गया है । यह प्रथम भंग है । इस भंगवाला मुनि अति उत्तम है ।

इरी—मुनिજને કેવું થવું જોઈએ ? આ વાતને પ્રગટ કરતાં કહે છે—  
“જે પુવ્વુટ્ઠાઈ ” ઇત્યાદિ.

पूर्व—चारित्र-ग्रहणावसे चारित्राचरणेन उत्थातुं शीलं यस्य स पूर्वोत्थायी—चारित्र ग्रहण કરવાના સમયે ચારિત્ર આચરણથી પોતાની વૃદ્ધિ કરવાનો જેનો સ્વભાવ છે તે “પૂર્વોત્થાયી ” છે. એટલે—ચારિત્રનો અંગીકાર કરી જે પોતાના ચારિત્રમય આચરણથી પોતાના જીવનની ઉન્નતિ કરે છે એનું નામ પૂર્વોત્થાયી છે. એ પૂર્વોત્થાયી “ નો પશ્ચાન્નિપાતી ” ચારિત્ર ગ્રહણ કર્યા પછી પોતે જેનો સ્વીકાર કરેલ છે એનાથી ચલિત થતો નથી. કેમ કે એનો સ્વભાવ ગ્રહણ કરેલા ચારિત્રના પાલનમાં ખૂબ જ મજબૂત બનેલો હોય છે એથી એ ચારિત્ર ગ્રહણ કર્યા પછીથી ઉત્તરોત્તર એમાં જ રત બની રહે છે, આથી તે “ પશ્ચાન્નિપાતી ” થતો નથી. સિંહની માફક એ એકાંત વિહરણશીલ હોવાથી તેને ગણધરાદિ સમાન માનવામાં આવેલ છે. આ પ્રથમ ભંગ છે. આ ભંગ-વાળા મુનિ અતિ ઉત્તમ છે.



यो नो पूर्वोत्थायी पश्चान्निपाती-इति तृतीयभङ्गस्याभावादप्रतिपादनं मूले,  
उत्तिष्ठतो हि निपातो जायते, उत्थानप्रतिषेधे च कुतस्तरां निपातचिन्तेति बोध्यम् ।

जो पूर्वोत्थायी तो नहीं है परन्तु पश्चान्निपाती है। यह तृतीय भंग है। परन्तु इस भंगकी संभावना ही नहीं हो सकती है; कारण कि जो पूर्वोत्थायी होगा उसीमें निपात का विचार लागू होता है। जब वहां उत्थान का ही प्रतिषेध है तो फिर निपात की विचारणा वहां कैसे हो सकती है? अर्थात्-चारित्र जिसने ग्रहण किया है उसीमें पीछे यह उत्थानशील है या अनुत्थानशील है-इस प्रकार का विचार किया जा

જે પૂર્વોત્થાયી તો નથી પરંતુ પશ્ચાન્નિપાતી છે. આ તૃતીય ભંગ છે. પરંતુ આ ભંગની સંભાવના જ નથી, કારણ કે જે પૂર્વોત્થાયી હોય છે એમાં જ નિપાતનો વિચાર લાગુ થાય છે. જ્યારે ત્યાં ઉત્થાનનો જ પ્રતિષેધ છે ત્યાં પછી નિપાત અને અનિપાતની વિચારણા જ કઈ રીતે થઈ શકે? અર્થાત્—ચારિત્ર જેણે ગ્રહણ કરેલ છે તેના વિષયમાં જ એ આગળ વધી રહેલ છે કે

ચતુર્થમાહ—યઃ ગૃહસ્થતુલ્યઃ નોપૂર્વોત્થાયી વિરતેરસદ્ભાવાત્, અત એવ નો-  
પશ્ચાન્નિપાતી, ઉત્તિષ્ઠત એવ નિપાતો નાનુત્તિષ્ઠતો ભવતીત્યાશયઃ । સોઽપિ=દળિ-  
શાક્યાદિરપિ તાદૃશઃ=ચતુર્થભદ્ગાન્તર્ગતઃ સાવધાચરણતયા નોપૂર્વોત્થાયી, યત એવ  
નોપૂર્વોત્થાયી તત એવ નોપશ્ચાન્નિપાતી, ગૃહસ્થસદૃશઃ સ્યાત્, ઉભયોરપ્યસંવૃતાસ્રવ-  
દ્વારત્વાત્ । યેઽપ્યસમારમ્ભિગ્નસ્તેઽપિ તાદૃશા એવેત્યાહ—‘યેઽપી’ત્યાદિ, યેઽપિ  
સકતા હૈ । પરન્તુ જબ મૂલમેં હી વહ ચીજ ઉસકે પાસ નહીં હૈ તબ ઉસ  
વિષય કો લેકર ઉત્થાન ઓર પતન કા વિચાર કૈસે હો સકતા હૈ ?  
હસીલિયે સૂત્રકારને સૂત્રમેં હસ તૃતીય ભંગકા પ્રતિપાદન નહીં કિયા હૈ ।

જો ગૃહસ્થ કે સમાન હૈં, વે ન પૂર્વોત્થાયી હૈં ઓર ન પશ્ચાન્નિપાતી  
હૈં । પૂર્વોત્થાયી હસલિયે નહીં હૈં કિ ઉનમેં ચારિત્રકા સદ્ભાવ નહીં હૈ, ઓર  
હસીલિયે વે પશ્ચાન્નિપાતી ભી નહીં હૈં । ચારિત્ર કે સદ્ભાવવાલે મેં હી  
પશ્ચાન્નિપાતિત્વ સંભવિત હોતા હૈ, હસકે અભાવવાલે મેં નહીં । એસે  
દળિશાક્યાદિક હૈં । યે ચતુર્થભદ્ગ કે અન્તર્ગત હી હૈં । કારણ કિ યે  
સાવધ વ્યાપારોં મેં પ્રવૃત્તિશીલ હોતે હૈં; અતઃ હનકા આચાર સાવધ-  
વિશિષ્ટ હોને સે હનમેં વિરતિ નહીં હૈ । વિરતિ કે અભાવ  
સે યે પૂર્વોત્થાયી નહીં હૈં । જબ યે પૂર્વોત્થાયી નહીં હૈં તો પશ્ચાન્નિપાતી  
ભી નહીં હૈં । અતઃ યે ગૃહસ્થ હી હૈં । ક્યોં કિ જિસ પ્રકાર ગૃહસ્થજન  
કર્મોં કે આસ્રવ કે દ્વાર સે અસંવૃત હોતે હૈં, અર્થાત્ અવિરતિ આદિ

અટકી પડેલ છે એવો વિચાર કરવાનો રહે છે, પરંતુ જ્યાં મૂળમાં જ જેની  
પાસે એ ચીજ નથી ત્યાં ઉત્થાન અને પતનનો વિચાર જ કઈરીતે થઈ શકે.  
આ જ કારણે સૂત્રકારે સૂત્રમાં આ તૃતીય ભંગનો સ્વીકાર કરેલ નથી.

જે ગૃહસ્થની રીતે રહેવાવાળા છે તે ન તો પૂર્વોત્થાયી છે કે ન તો પશ્ચા-  
ન્નિપાતી છે. પૂર્વોત્થાયી આ માટે નથી કે એમને ચારિત્રનો સદ્ભાવ નથી. આ  
જ કારણે પશ્ચાત્-નિપાતી પણ નથી. ચારિત્રસદ્ભાવવાળામાં જ પશ્ચાત્-નિપા-  
તિત્વ સંભવિત હોય છે. આના અભાવવાળામાં નહીં. એવા ઢંડી શાક્યાદિક  
છે. જે ચતુર્થભદ્ગના અન્તર્ગત હોય છે. કારણ કે એ સાવધ વ્યાપારોમાં પ્રવૃત્તિ-  
શીલ રહેતા હોય છે એટલે એમનો આચાર સાવધવિશિષ્ટ હોવાથી એનામાં  
વિરતિરૂપતા નથી. વિરતિરૂપતાના અભાવથી એ પૂર્વોત્થાયી નથી. જ્યારે એ  
પૂર્વોત્થાયી જ નથી તો પશ્ચાન્નિપાતી પણ નથી, આથી એ ગૃહસ્થ જ છે, કારણ કે  
ગૃહસ્થજન કર્મોના આસ્રવના દ્વારથી અસંવૃત હોય છે. અર્થાત્-

દ્રવ્યલિङ્ગિનો દણ્ડિશાક્યાદયઃ લોકમ્=અવિરતલોકં પરિજ્ઞાય=દ્વિવિધપરિજ્ઞયા જ્ઞાત્વા પરિહૃત્ય ચ પુનસ્તમેવ લોકં સાવઘવ્યાપારિણમ્ અન્વાશ્રિતાઃ=તાદૃશલોક-સ્યૈવાનુસરણં કૃતવન્તઃ । પચનપાચનાદિવ્યાપારેભ્યઃ પૂર્વમુપરમ્ય પશ્ચાચ્ચારિત્રાન્તરાયો દયાત્પુનરપિ તમેવ સમારમ્ભવન્તં લોકમનુસરન્તઃ પાચનાનુમોદનાભ્યાં ગૃહસ્થસદૃશા એવ ભવન્તીત્યાશયઃ ॥ સૂ. ૨ ॥

કર્મોં કે આનેકે દ્વાર હૈં, ગૃહસ્થજનકા કર્મોં કે આગમન કા યહ દ્વાર બંદ નહીં હોતા હૈં उसी प्रकार अविरति आदि से युक्त होने के कारण से दण्डि-शाक्यादिकों के भी कर्मों के आगमनके द्वार खुले ही रहते हैं । ये कर्मों के आस्रव से रहित उस अवस्था में नहीं हो सकते हैं । इसी तरह जो असमारंभी तो हैं, परन्तु पचन-पाचनादि कार्यों की अनुमोदनादि करते हैं वे भी गृहस्थतुल्य ही हैं, और चतुर्थ भंगमें उनका अंतर्भाव होता है, यह सूत्रकार प्रकट करते हैं-द्रव्यलिङ्गी मुनि दण्डिशाक्यादिक वगैरह ज्ञपरि-ज्ञासे अविरत लोक को जानकर और प्रत्याख्यान परिज्ञासे उसका परिहार कर फिर उसी सावद्य व्यापारी लोकका जो अनुसरण करते देखे जाते हैं, अर्थात्-ये प्रथम पचन-पाचनादि व्यापारोंसे अपने को निवृत्त करके भी पश्चात् चारित्र-अन्तरायके उदयसे उसी समारम्भशील लोकका अनुसरण करते हुए पाचन और अनुमोदन से गृहस्थतुल्य ही हो जाते हैं ॥सू. २॥

અવિરતિ આદિ કર્મોંને આવવાનું એ દ્વાર છે. ગૃહસ્થજનને કર્મોંના આગમનનું આ દ્વાર બંધ થતું નથી. એ પ્રકારે અવિરતિ આદિથી યુક્ત હોવાના કારણથી દંડી શાક્યાદિકોને પણ કર્મોંના આગમનનાં દ્વાર ખુલ્લાં જ રહે છે. એ કર્મોંના આસ્રવથી રહિત તે અવસ્થામાં બની શકતાં નથી. આ રીતે એ અસમારંભી તો છે, પરંતુ પચન-પાચનાદિ કાર્યોની અનુમોદના કરે છે, એ પણ ગૃહસ્થતુલ્ય જ છે. આથી ચતુર્થ ભંગમાં એમનો સમાવેશ થાય છે. આમ સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે. આથી દ્રવ્યલિંગી મુનિ દંડી-શાક્યાદિક વિગેરે જ્ઞ-પરિજ્ઞાથી અવિરત લોકોને જાણીને અને પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞાથી તેનો પરિહાર કરીને ફરી-તે સાવધ વ્યાપારી લોકોનું જ તે અનુસરણ કરતા દેખવામાં આવે છે, અર્થાત્-તે પચન પાચ-નાદિરૂપ વ્યાપારોથી પોતે નિવૃત્ત હોવા છતાં પણ પાછળથી ચારિત્ર-અંતરાયના ઉદયથી તે સમારંભશીલ લોકનું અનુસરણ કરતાં કરતાં પાચન અને અનુમો-દનથી ગૃહસ્થતુલ્ય બની રહે છે ॥ સૂ. ૨ ॥



સર્વમિદં ન મયા સ્વબુદ્ધ્યા પ્રોક્તમિત્યાહ—‘ એયં ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—એયં નિયાય મુણિણા પવેદ્યં, ઇહ આણાકંઘી પંડિણ અણિહે, પુઠ્ઠાવરરાયં જયમાણે, સયા સીલં સંપેહાણ સુણિયા ભવે અકામે અજ્ઞંણે, ઇમેણ ચેવ જુજ્ઞાહિ, કિં તે જુજ્ઞેણ વજ્ઞઓ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

છાયા—એતજ્ઞાત્વા મુનિના પ્રવેદિતમ્, ઇહાઽઽજ્ઞાકાઙ્ગી પણ્ડિતોઽસ્મિહઃ, પૂર્વાપરરાત્રં યતમાનઃ, સદા શીલં સંપ્રેક્ષ્ય શ્રુત્વા ભવેદકામોઽજ્ઞઙ્ગઃ, અનેન ચૈવ યુધ્યસ્વ, કિંતે યુદ્ધેન વાહ્યતઃ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

ટીકા—‘ એત ’—દિત્યાદિ, મુનિના = તીર્થઙ્કરેણ એતત્ = પૂર્વોક્તમ્ ઉત્થાનનિપતનાદિકં વક્ષ્યમાણં વા જ્ઞાત્વા=વિમલકેવલાલોકેન બુદ્ધ્વા પ્રવેદિતમ્=અભિહિતમ્ ।

યહ સબ મૈને અપની બુદ્ધિસે નહીં કહા હૈ—એસા કહતે હૈ—‘ એયં ’ ઇત્યાદિ તીર્થઙ્કર ભગવાને યહ પૂર્વોક્ત ઉત્થાન નિપતનાદિક અથવા વક્ષ્યમાણ વિષય અપને નિર્મલ કેવલજ્ઞાનરૂપી આલોક સે જાન કર હી કહા હૈ ।

ભાવાર્થ—સૂત્રકાર પૂર્વોક્ત કથન મેં અથવા આગે કહે જાનેવાલે વિષયમેં અપની કલ્પના સે કથનકા નિષેધ કરતે હુણ ઉસમેં વે તીર્થઙ્કર—પ્રણીતતા પ્રકટ કરતે હૈ । યહ ઇસલિયે પ્રકટ કી ગઈ હૈ કિ “ વક્તુઃ પ્રામાણ્યાત્ વચસિ પ્રામાણ્યં ” વક્તા કી પ્રમાણતા સે હી વચનમેં પ્રમાણતા આતી હૈ । અન્યથા રથ્યા—પુરુષાદિક ( ભટકતે ફિરતે બજારુ ) કી તરહ ઉસમેં અપ્રમાણતા હોનેસે વહ અગ્રાહ્ય હો જાતા હૈ ।

આ સઘળું મેં મારી બુદ્ધિથી કહેલ નથી, એમ કહે છે—‘ એયં ’ ઇત્યાદિ.

તીર્થઙ્કર ભગવાને આ પૂર્વોક્ત ઉત્થાન નિપતનાદિક અને વક્ષ્યમાણ વિષય પોતાના નિર્મળ કેવળજ્ઞાનરૂપી આલોકથી જાણીને કહ્યું છે.

ભાવાર્થ—સૂત્રકાર પૂર્વોક્ત કથનમાં અને આગળ કહેવાતા વિષયમાં પોતાની કલ્પનાથી કથનનો નિષેધ કરીને તેમાં તે તીર્થઙ્કર પ્રણીતતા પ્રગટ કરે છે. આ એ માટે પ્રગટ કરેલ છે કે “ વક્તુઃ પ્રામાણ્યાત્ વચસિ પ્રામાણ્યમ્ ” એટલે વક્તાની પ્રમાણતાથી જ વચનમાં પ્રમાણતા આવે છે. તે સિવાય રથ્યા પુરુષાદિક ( ભટકતા ફરતા બજારુ ) ની માફક તેમાં અપ્રમાણતા હોવાથી તે અગ્રાહ્ય બની બચે છે.

તદેવાહ-‘હ્રે’-ત્યાદિ. હ્રે=અસ્મિન્ મૌનીન્દ્રપ્રવચને વ્યવસ્થિતઃ સન્ “આજ્ઞાકાઙ્ક્ષી” આજ્ઞા=તીર્થકૃદુપદેશમાકાઙ્ક્ષિતું શીલં યસ્યાસ્તિ સ આજ્ઞાઽઙ્ક્ષી =અર્હચ્છાસનોક્તાનુષ્ઠાયી, અસ્નિહઃ=માતાપિત્રાદૌ શબ્દાદિવિષયે શરીરાદૌ વા સ્નેહવર્જિતઃ પण्डितः=તીર્થક્રૂરાજ્ઞાપરિજ્ઞાનકુશલઃ પાપમીરુર્ભવતિ, માતાપિતૃપુત્રકલ-ત્રાદિસ્નેહવર્જિતઃ શકટરક્ષાર્થમક્ષે તૈલદાનવદેહસ્થિત્યર્થમેવાહારમશ્નન્ રાગદ્વેષશૂન્ય-સ્તીર્થક્રૂરાજ્ઞારાધકો મુનિઃ પण्डितो भवतीति तात्पर्यम् । अपि च-‘पूर्वे’ત્યાદિ, પૂર્વા-

“હ્રેત્યાદિ” પદોં સે તીર્થક્રૂર-પ્રણીત વક્ષ્યમાણ વિષયનો પ્રકટ કરતે હુણ સૂત્રકાર કહતે હૈ—ઈસ મૌનીન્દ્ર (વીતરાગ) પ્રવચનમૈં વ્યવ-સ્થિત મુનિ કો તીર્થક્રૂર ભગવાનને જો કુછ મી મુનિધર્મકે વિષય મૈં અપને ઉપદેશ મૈં કહા હૈ ઉસકા અનુષ્ઠાન કરના ચાહિયે । “આજ્ઞા-તીર્થકૃદુપદેશમ્ આકાઙ્ક્ષિતું શીલં યસ્યાસ્તિ સ આજ્ઞાકાઙ્ક્ષી” ક્યોં કિ યહ આજ્ઞાકાઙ્ક્ષી હૈ-તીર્થક્રૂર ભગવાન કૈ ઉપદેશકી આકાઙ્ક્ષા (વાંછા) કરને કા જિસકા સ્વભાવ હોતા હૈ વહી આજ્ઞાકાંક્ષી હૈ । અર્થાત્ જો જિસકે શાસન મૈં રહતા હૈ વહ ઉસકે શાસનોક્ત નિયમોં કા અનુષ્ઠાયક હોતા હૈ । સ્વેચ્છાનુસાર પ્રવૃત્તિ કરનેવાલા જિસ પ્રકાર ઉસ શાસન સે બહિર્મૂત સમજા જાતા હૈ ઉસી પ્રકાર જિનપ્રણીત મુનિશાસનકો છોડકર અપની ઇચ્છાનુસાર ચલનેવાલા મુનિ મી શાસનસે બહિર્મૂત હોતા હુઆ આજ્ઞાકાઙ્ક્ષી (આજ્ઞા-આરાધક) નહીં માના જાતા હૈ ।

આજ્ઞાકાઙ્ક્ષી હોને કૈ લિયે ઉસે મુનિધર્મ કૈ ઇન નિયમોં કા પાલન આવશ્યક હૈ-અસ્નિહઃ—અપને માતા ઓર પિતા આદિ મૈં, શબ્દાદિક

“હ્રે” ઇત્યાદિ પદોથી તીર્થક્રૂરે કહેલ વક્ષ્યમાણ વિષયને પ્રગટ કરતાં સૂત્રકાર કહે છે—આ વીતરાગ પ્રવચનમાં વ્યવસ્થિત મુનિને તીર્થક્રૂર ભગવાને જે કાંઈ પણ મુનિધર્મના વિષયમાં પોતાના ઉપદેશમાં કહ્યું છે તેનું અનુષ્ઠાન કરવું જોઈએ. કારણ કે તે “આજ્ઞાકાંક્ષી-આજ્ઞાકાઙ્ક્ષી” આજ્ઞાને અનુસરનાર છે. તીર્થક્રૂર ભગવાનના ઉપદેશની આકાંક્ષા કરવાનો જેનો સ્વભાવ છે તે આજ્ઞાકાંક્ષી છે. અર્થાત્ જે જેના શાસનમાં રહે છે તે તેના શાસનધર્મનો પાલક બને છે. સ્વેચ્છાનુસાર પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા જે પ્રકારે તે શાસનથી વિમુખ ગણવામાં આવે છે તે પ્રકારે જનપ્રણીત મુનિશાસનથી વિમુખ પોતાની ઇચ્છાનુસાર ચાલવાવાળા મુનિ પણ શાસનથી બહિર્મૂત બનીને આજ્ઞાના આરાધક બનતા નથી.

આજ્ઞાકાંક્ષી થવા માટે તેણે મુનિધર્મનાં એવા નિયમોનું પાલન કરવું આવશ્યક છે-અસ્નિહઃ—પોતાના માતા પિતા આદિમાં, શબ્દાદિક વિષયોમાં, અને

વિષયોં મેં, અથવા શરીરાદિકોં મેં સ્નેહ-મમતા-રહિત હોના । પण्डित:-  
तीर्थङ्कर प्रभुकी आज्ञा समझने में कुशलमति होना ।

भावार्थ:—નિયમોં કા અચ્છી તરહ સે પરિશીલન કરનેવાલા ઔર  
उनका द्रव्य, क्षेत्र कालादि की व्यवस्था के अनुसार पालन करनेवाला  
व्यक्ति जिस प्रकार अन्धश्रद्धालु न हो कर अपने प्रत्येक कार्यको उप-  
योगपूर्वक करता है और तज्जन्य सुफल से लोक में प्रशंसनीय एवं  
कुशलमति माना जाता है उसी प्रकार से जो मुनि धर्म के प्रत्येक निय-  
मोंका अच्छी तरहसे परिशीलन कर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे व्यवस्था-  
नुसार उनका पालन करता है—उनका उचित रीतिसे हार्दिक लगन से  
सेवन करता है वह मेधावी मुनि कभी भी अपने कर्तव्यपथसे विच-  
लित नहीं होता है, और मुनिधर्मपालनजन्य कर्मोंकी अनन्तगुणी  
निर्जरारूप सुफल से शोभित होता हुआ क्रमशः मुक्तिका लाभ करता  
है । इसलिये आवश्यकता है कि मुनिजन मौनीन्द्र ( वीतराग ) प्रवचनमें  
स्थित हो कर उसके प्रत्येक नियमों और उपनियमों के सच्चे ज्ञाता  
बनें । मुनिधर्ममें दक्ष मुनि पापभीरु होता है । माता-पितादिकमें स्नेह-  
रिक्त मुनि शकट-गाडीकी रक्षा के लिये अक्ष ( धुरी ) में तैलदान की  
तरह देहकी स्थिति के निमित्त ही बिना किसी राग-द्वेषके आहार करता  
हुआ तीर्थङ्कर प्रभुकी आज्ञा का पालक बन मुनिधर्मका सच्चा  
आराधक होता है ।

शरीर आदिकમાં સ્નેહ મમતા રહિત થવું, પण्डित:-એટલે તીર્થંકર પ્રભુની આજ્ઞામાં  
કુશળતા પ્રાપ્ત કરવી.

ભાવાર્થ:—નિયમોને સારી રીતે પાળવાવાળી અને તેને દ્રવ્ય ક્ષેત્ર કાળ  
આદિની વ્યવસ્થા અનુસાર પાલન કરવાવાળી વ્યક્તિ જેવી રીતે અંધશ્રદ્ધાળુ ન  
બનીને પોતાના પ્રત્યેક કાર્યને ઉપયોગપૂર્વક કરે છે, અને તેથી લોકમાં  
પ્રશંસનીય તેમજ કુશળ મનાય છે આ જ રીતે જે મુનિધર્મના પ્રત્યેક નિયમને  
સારી રીતે કુશળતાપૂર્વક પાળે છે, દ્રવ્ય ક્ષેત્ર કાળ અને ભાવથી વ્યવસ્થાનુસાર  
પાલન કરે છે તેવો મેધાવી મુનિ કોઈ પણ વખતે પોતાના કર્તવ્ય-પથથી  
ચલિત થતો નથી, અને મુનિ ધર્મપાલનજન્ય કર્મોની અનંતગુણી નિર્જરારૂપ  
સુફળથી શોભિત બનીને ક્રમથી મુક્તિનો લાભ કરે છે, આ કારણે આવશ્યક છે કે મુનિ-  
જન વીતરાગ પ્રવચનમાં સ્થિત બનીને તેના પ્રત્યેક નિયમો અને ઉપનિયમોને  
સાચા બાણુકાર બને. મુનિધર્મમાં દક્ષ મુનિ પાપભીરુ હોય છે. માતાપિતાદિકમાં  
સ્નેહરહિત મુનિ ગાડીના ધરામાં પુરાતા તેલની માફક દેહની સ્થિતિ માટે જ



પરરાત્રં=રાત્રેઃ પૂર્વાપરૌ ભાગૌ પૂર્વાપરરાત્રં, પૂર્વરાત્રસ્ય યામદ્વયાત્મકસ્ય મધ્યે પ્રથમો યામઃ, એવમપરરાત્રસ્ય પશ્ચિમો યામઃ, તત્ર પ્રહરદ્વયે જાગરિતઃ સન્ યતમાનઃ=પ્રતિક્રમણસ્વાધ્યાયધ્યાનાદિકમનુતિષ્ઠન્, ઉપલક્ષણાન્મધ્યવર્તિન્યા રાત્રે-ર્યામદ્વયે યથાવિધિ શયાનઃ, રાત્રૌ યત્નકથનેન દિનેઽપિ તત્કથનં સ્પષ્ટમેવ । શક્તિસત્ત્વે સ્થવિરકલ્પિકા મધ્યવર્તિયામમધ્યેઽપિ જાગ્રતિ । જિનકલ્પિકાશ્ચૈકં પ્રહરં સ્વપન્તિ, સપ્તસુ પ્રહરેષુ જાગ્રતિ । એવં નિષ્ક્રમણપ્રવેશાદૌ મુનિર્દિવસે ચક્ષુર્વિ-

પૂર્વાપરરાત્રં યતમાનઃ—રાત્રિકે પૂર્વે ઓર અપર ભાગોંકા નામ પૂર્વાપરરાત્ર હૈ । રાત્રિકે ૪ પ્રહર હોતે હૈ । એક પ્રહર રાત્રિકે ચૌથે હિસ્સે કો કહતે હૈ । પૂર્વરાત્ર કે દો પ્રહરોંમેં સે પ્રથમ પ્રહર મેં, પશ્ચિમ-રાત્ર કે દો પ્રહરોંમેં સે અન્તિમ પ્રહર મેં (અર્થાત્ રાત્રિકે ૪ પ્રહરોંમેં સે પહેલે ચૌથે પ્રહરોંમેં) જાગ્રત રહ કર પ્રતિક્રમણ, સ્વાધ્યાય ઓર ધ્યાના-દિક કરના । બાકી કે દૂસરે તીસરે પ્રહરોંમેં યથાવિધિ નિદ્રા લેના । “યતમાનઃ” પદસે દિન મેં બી યથાવિધિ સ્વાધ્યાયાદિક કા કરના સ્પષ્ટ સૂચિત હોતા હૈ । જબ રાત્રિમેં બી પ્રતિક્રમણાદિકકી વિધિ પ્રકટ કી ગઈ હૈ તો દિન મેં બી યથાવસર સ્વાધ્યાય કરના યહ બાત સ્વતઃ સ્પષ્ટ હૈ । શક્તિ કે સદ્ભાવમેં સ્થવિરકલ્પી મુનિ રાત્રિકે મધ્યવર્તી દો પ્રહરોંમેં બી જાગ-રિત રહતે હૈ । જિનકલ્પી સાધુ એક પ્રહર હી નિદ્રા લેતે હૈ । બાકી દિન-રાત કે પ્રહરોંમેં જાગતે રહતે હૈ । ઇસીતરહ નિષ્ક્રમણ-પ્રવેશાદિક મેં

કોઈ પણ રાગ-દ્વેષ વગર આહાર ગ્રહણ કરીને તીર્થંકર ભગવાનની આજ્ઞાના પાલક બની મુનિધર્મના સાચા આરાધક બને છે.

પૂર્વાપરરાત્રં યતમાનઃ—રાત્રીના પૂર્વ અને અપર ભાગનું નામ પૂર્વાપર-રાત્ર છે, રાત્રીના ચાર પ્રહર છે, એક પ્રહરને રાત્રીનો ચોથો ભાગ કહે છે. પૂર્વ રાત્રના બે પ્રહરમાંથી પ્રથમ પ્રહરમાં, પશ્ચિમ રાત્રના બે પ્રહરમાંથી અંતિમ પ્રહરમાં (અર્થાત્-રાત્રીના ચાર પ્રહરમાંથી પહેલા ચોથા પ્રહરમાં) બાગૃત રહીને પ્રતિક્રમણ, સ્વાધ્યાય તેમજ ધ્યાનાદિક કરવું. બાકીના બીજા અને ત્રીજા પ્રહરમાં યથાવિધિ નિદ્રા લેવી. “યતમાનઃ” પદથી દિવસે પણ યથાવિધિ સ્વા-ધ્યાયાદિક કરવું તેવું સ્પષ્ટ સૂચિત થાય છે. જ્યારે રાત્રીમાં પણ પ્રતિક્રમણાદિકની વિધિ આપેલ છે, તો દિવસમાં પણ યથાવસર સ્વાધ્યાય કરવું, એ વાત સાવ સ્પષ્ટ છે. શક્તિના સદ્ભાવમાં સ્થવિરકલ્પી મુનિ રાત્રીના મધ્યવર્તી બે પ્રહરોમાં પણ બાગૃત રહે છે, જનકલ્પી સાધુ એક પ્રહર જ નિદ્રા લે છે, બાકી દિન-રાતના પ્રહરોમાં બાગૃત રહે છે. આ પ્રમાણે નિષ્ક્રમણ-પ્રવેશાદિકમાં મુનિ દિવસે

પણેડપિ યત્નં વિદધાતિ કિં પુનરચક્ષુર્વિપયરાત્રાવિત્યાશયઃ । એતદેવ પ્રકટયતિ—  
'સદા શીલ'—મિત્યાદિ, સદા=સર્વકાલં શીલમ્=અષ્ટાદશસહસ્રશીલાઙ્ગરથં ચારિત્રં  
વા, અથવા શીલં=પશ્ચમહાવ્રતસાધનભૂતં ગુપ્તિત્રયં સકલેન્દ્રિયદમનં કષાયનિગ્રહં વા  
સંપ્રેક્ષ્ય=જ્ઞાત્વા તમેવ યાવજ્જીવમનુપાલયેત્ । ઉક્તશ્ચ—

મુનિ દિન મેં મી દેશ્વ-મ્હાલ કર સમિતિપૂર્વક પ્રવૃત્તિ કરતા હૈ । દિનમેં  
મી જલ્લ વહ યતનાપૂર્વક અપની પ્રત્યેક ક્રિયાઓંકો કરતા હૈ તો રાત્રિ મેં  
મી કિ જિસમેં ચક્ષુરિન્દ્રિય કા વિષય કોઈ મી પદાર્થ સ્પષ્ટ રૂપસે નહીં  
હોતા હૈ, ઉસે અપને પ્રત્યેક પ્રવૃત્તિ મેં યતના રલ્લની હી ચાહિયે । અતઃ  
રાત્રિ મેં વિહારાદિ નહીં કરના યહ્વાત મી સ્વતઃ સિદ્ધ હો જાતી હૈ ।

“સદા શીલં સંપ્રેક્ષ્ય શ્રુત્વા ભવેદકામોઽજ્ઞઞઃ”-સર્વકાલ ૧૮ હજાર  
શીલોં કે મેદોં કા, યા ચારિત્ર કા અથવા પાંચ મહાવ્રતોં કે સાધનભૂત  
ગુપ્તિત્રય, સકલેન્દ્રિયોંકા દમન ઓર કષાયોં કા નિગ્રહરૂપ શીલકા અછ્છી  
તરહ જ્ઞાતા બન ઉસકા યાવજ્જીવન પાલન કરે । ગુરુકે નિકટ શીલકે  
પાલને કા ઓર ઉસકે નહીં પાલને કા પરિણામ જ્ઞાનકર વૈષયિક ઇછ્છાઓં  
સે રહિત હોકર માયા, તૃષ્ણા અથવા ક્રોધ સે રહિત હોવે ।

ભાવાર્થ—૧૮ હજાર શીલ કે મેદ જો આગમોં મેં પ્રકટ કિયે ગયે  
હૈ, મુનિકા કર્તવ્ય હૈ કિ ઉનકા મ્હલી પ્રકાર પાલન કરે । ૫  
મહાવ્રત, ૫ સમિતિ ઓર ૩ ગુપ્તિ, ઇસ ૧૩ પ્રકાર કે ચારિત્ર કી આરા-

પણ્ બાણી જોધને સમિતિપૂર્વક પ્રવૃત્તિ કરે છે. દિવસે પણ્ બ્યારે તે યતના-  
પૂર્વક પોતાની પ્રત્યેક ક્રિયાઓ કરે છે તો રાત્રીમાં પણ્ કે જેમાં ચક્ષુરિન્દ્રિયનો  
વિષય કોઈ પણ્ પદાર્થ સ્પષ્ટ રૂપથી થતો નથી તેને પોતાની પ્રત્યેક પ્રવૃત્તિમાં  
યતના રાખવી જોઈએ. એટલે રાત્રીમાં વિહાર આદિ ન કરવા એ વાત આથી  
સ્પષ્ટ રીતે સિદ્ધ થાય છે.

“સદા શીલં સંપ્રેક્ષ્ય શ્રુત્વા ભવેદકામોઽજ્ઞઞઃ”-સર્વકાલ અઢાર હજાર  
શીલોના ભેદને, અથવા ચારિત્રના અને પાંચ મહાવ્રતોના સાધનભૂત ગુપ્તિત્રય, સકલ  
ઇન્દ્રિયોનું દમન અને કષાયોના નિગ્રહરૂપ શીલના સારી રીતે જ્ઞાતા બની તેનું  
અંદગી પર્યન્ત પાલન કરવું. ગુરૂની પાસેથી શીલના પાલનના અને નહિ  
પાળવાના પરિણામને જાણીને વૈષયિક ઇચ્છાઓથી રહિત બની માયા, તૃષ્ણા અને  
ક્રોધથી રહિત થવું.

ભાવાર્થ:—અઢાર હજાર શીલના ભેદ જે આગમોમાં પ્રગટ કરાયા છે તે માટે  
મુનિનું કર્તવ્ય છે કે તેનું સારી રીતે પાલન કરે. પાંચ મહાવ્રત, પાંચ સમિતિ,  
અને ત્રણ ગુપ્તિ, એવા ત્રે પ્રકારના ચારિત્રની આરાધના કરે. પાંચ મહાવ્રતોના

“મહાવ્રતસમાધાનં, તથૈવેન્દ્રિયસંવરઃ ।

ત્રિદણ્ડવિરતિત્વં ચ, કષાયાણાં ચ નિગ્રહઃ” ॥ ૧ ॥

તત્ત્વ શીલમિતિ બ્રુવે” તત્ર ક્ષણમપિ નો પ્રમાદયેદિતિ ભાવઃ । શીલવતો ગુણમાહ—શ્રુત્વેત્યાદિ, યઃ શ્રુત્વા=શીલપરિજ્ઞાનં તદનુપાલનફલં તદ્વિપરીત-કર્તૃણાં નરકનિગોદાદિપરિભ્રમણં ચ ગુરુસકાશાદાગમાદ્વાઽઽકર્ણ્ય, અકામઃ=ઇચ્છાદિ-ધના કરે । ૫ મહાવ્રતોં કે સાધનભૂત ૩ ગુપ્તિકા પાલન ઓર પાંચ ઇન્દ્રિય ઓર એક મનકા દમન કરના, કષાયોં કા નિગ્રહ કરના યે સબ વાતેં શીલ કે હી અન્તર્ગત હેં । મુનિજન કો “શીલ કા પાલન કરના ચાહિયે” ઇસ કી વક્તવ્યતામેં ઇન સમસ્ત વાતોં કા અવશ્ય પાલન ઉચિત હૈ । ઇન સબકા પાલન મુનિધર્મ સે સંબંધ રખતા હૈ । કહા ઓ હૈ—

“મહાવ્રતસમાધાનં, તથૈવેન્દ્રિયસંવરઃ ।

ત્રિદણ્ડવિરતિત્વં ચ, કષાયાણાં ચ નિગ્રહઃ” ॥ ૧ ॥

અર્થાત્—મહાવ્રતાદિકોં કા આરાધન શીલરૂપ સે કહા ગયા હૈ, એસા સમગ્ર કર ઇનકે પાલનેમેં એક ક્ષણ ઓ પ્રમાદ નહીં કરના ચાહિયે ।

‘શ્રુત્વા’—ઇત્યાદિ પદોંદ્વારા શીલવાનકે ગુણકો સૂત્રકાર કહતે હેં—

જો મુનિ શીલકે પરિજ્ઞાન, એવં ડસકે પાલનજન્ય ફલકો તથા શીલકે સેવન સે રહિત માનવોં કે નરકનિગોદાદિમેં પરિભ્રમણ કો ગુરુ સે અથવા આગમ સે સુન કર ઇચ્છાદિકામસે રહિત હો જાતા હૈ વહ

આધારભૂત ત્રણુ ગુપ્તિનું પાલન અને પાંચ ઇન્દ્રિય અને એક મનનું દમન કરવું, કષાયોનો નિગ્રહ કરવો એ સધળી વાતો શીલની અન્તર્ગત છે. “મુનિજનને શીલનું પાલન કરવું જોઈએ” આ પ્રકારની રીતોમાં આ સધળી વાતોનું અવશ્ય પાલન કરવું જોઈએ. આ બધાનું પાલન મુનિધર્મ સાથે સંબંધ રાખે છે. કહ્યું પણ છે—

“મહાવ્રતસમાધાનં, તથૈવેન્દ્રિયસંવરઃ ।

ત્રિદણ્ડ-વિરતિત્વં ચ, કષાયાણાં ચ નિગ્રહઃ” ॥ ૧ ॥

અર્થાત્ મહાવ્રતાદિકોનું આરાધન શીલરૂપથી કહેલ છે; એવું સમજીને તેના પાલનમાં એક ક્ષણનો પણ પ્રમાદ કરવો જોઈએ નહીં.

શીલવાનના ગુણને સૂત્રકાર કહે છે—‘શ્રુત્વા’ ઇત્યાદિ.

જે મુનિ શીલના પરિજ્ઞાનને, અને તેના પાલનજન્ય ફળને, તથા શીલના સેવનથી રહીત માનવના નરકનિગોદાદિમાં પરિભ્રમણને ગુરુ અને આગમથી સાંભળીને ઇચ્છાદિ કામથી રહિત બની જાય છે તે માયા, ક્રોધ અને તૃષ્ણાથી



કામવર્જિતઃ, એવમ્ અજ્ઞઞઃ=અવિદ્યમાના જ્ઞઞા=માયા ક્રોધસ્તૃષ્ણા વાઃસ્ય સોઽજ્ઞઞો ભવેત્ કામજ્ઞઞયોર્નિષેધેન મોહનીયોદયોઽપિ નિષિધ્યતે; તન્નિષેધા-  
દેવ શીલસંપન્નો ભવેન્નાન્યથેત્યભિપ્રાયઃ, અયમત્ર સારઃ-ધર્મશ્રવણાનન્તરં કામજ્ઞ-  
ઞાદિરહિતો ભવેદિતિ પ્રતિપાદનેનોત્તરગુણાનાં ગ્રહણમુપલક્ષણત્વેન મૂલગુણગ્રહણં ચ  
સિદ્ધમ્ । તતશ્ચાર્હિસાદિમહાવ્રતધારી ભવેદિતિ ।

નનુ ચાનિહતબલવીર્યસ્ય શીલશાલિનો ભવદુપદેશાનુષ્ઠાયિનો મમ સામ્પતમપિ  
ન નિશ્ચલકર્માપનયો જાતોઽતસ્તદુપાયં મહ્યં બ્રૂહિ યેન શીઘ્રં સકલકર્મક્ષયો ભવેત્ ।

ક્રોધ, માયા અથવા તૃષ્ણા સે ખી રહિત હો જાતા હૈ । કામ ઓર જ્ઞઞા-  
-માયા, ક્રોધ, અથવા તૃષ્ણાકે નિષેધ સે મોહનીય કે ઉદયકા  
ખી વહાં નિષેધ હુઆ સમજના ચાહિયે, કયોં કિ ઉસકે નિષેધસે હી  
વહ શીલસંપન્ન હોતા હૈ; અન્યથા નહીં ।

ભાવાર્થ—ધર્મશ્રવણ કે બાદ “કામ ઓર જ્ઞઞા સે વહ રહિત હોવે”  
ઇસ પ્રકાર કે પ્રતિપાદન સે ઉત્તરગુણોંકા ગ્રહણ સિદ્ધ હો જાતા હૈ, સાથ  
મેં ઉપલક્ષણ સે મૂલ ગુણોંકા ખી । ઇસ સે યહ બાત સિદ્ધ હોતી હૈ કિ વહ  
અર્હિસાદિક-મહાવ્રતધારી હોવે । “અણેણ ચેવ જુજ્ઞાહિ કિં તે જુજ્ઞેણ  
વજ્ઞઓ” ઇસ શેષ સૂત્રાંશ કા ખુલાસા કરને કે લિયે ટીકાકાર ઇસકા  
અર્થ યોં કરતે હૈ—શિષ્ય ગુરુદેવસે અરજ કરતા હૈ—“મેં અપને બલ ઓર  
વીર્ય કો નહીં છિપા કર શીલ કે અનુષ્ઠાનમેં પ્રવૃત્તિ હોતા હુવા આપકે  
ઉપદેશાનુસાર પ્રવૃત્તિ કર રહા હૂં, ફિર ખી મેરે સમસ્ત કર્મોંકા વિનાશ  
અખી તક ખી નહીં હુઆ, અતઃ ઉસકા ઉપાય આપ કહેં કિ જિસસે મેરે  
સમસ્ત કર્મ શીઘ્ર નષ્ટ હો જાવેં, મુજે આપકે વચનોં મેં પૂર્ણ વિશ્વાસ હૈ,

પણ રહીત થઈ જાય છે. કામ, માયા, ક્રોધ અને તૃષ્ણાના નિષેધથી મોહનીયતા  
ઉદયનો પણ ત્યાં નિષેધ થયો સમજવો જોઈએ, કારણ કે તેના નિષેધથી  
જ શીલસંપન્ન અને છે બીજી નહીં, તાત્પર્ય કે-ધર્મના શ્રવણ પછી “કામ  
અને માયાથી પર અને” આપકારના પ્રતિપાદનથી ઉત્તરગુણોંકા ગ્રહણ સિદ્ધ  
થાય છે. સાથે સાથે ઉપલક્ષણથી મૂળગુણનો પણ ગ્રહણ થાય છે. આથી એ  
વાત સિદ્ધ થાય છે અર્હિસાદિક-મહાવ્રતધારી અને.

“અણેણ ચેવ જુજ્ઞાહિ કિં તે જુજ્ઞેણ વજ્ઞઓ આ શેષ સૂત્રાંશનો ખુલાસો  
કરવા માટે ટીકાકાર આનો અર્થ આ પ્રકારે કરે છે—

શિષ્ય ગુરુને અરજ કરે છે—“મારું પોતાનું બળ અને વીર્યને નહિ છુપાવીને  
શીલના અનુષ્ઠાનમાં પ્રવૃત્તિ કરતો હું આપના ઉપદેશ અનુસાર પ્રવૃત્તિ કરું છું  
છતાં મારા સમસ્ત કર્મોંનો વિનાશ હજી સુધી થયો નથી, માટે આપ એનો  
ઉપાય મને બતાવો કે જેથી મારાં સમસ્ત કર્મ શીઘ્ર નાશ પામે, મને આપના

भवद्वाक्येन चाहं सिंहेनापि योद्धुं समर्थोऽस्मि कर्मक्षयार्थनिष्क्रान्तस्य न किमप्यशक्यमस्तीति तदुपायो वक्तव्यः? इति पृष्ठवन्तं शिष्यं गुरुराह—‘अनेने ’त्यादि, अनेन चैव=औदारिकशरीरद्वारा ज्ञानावरणीयादिकर्मशत्रुणा सह रत्नत्रयाराधनपताकाग्रहणाय मुक्तये वा प्राणपरित्यागेनापि त्वं युध्यस्व=कर्मरिपुं पराजयस्व, बाह्यतः=आत्मनो बहिःस्थितेन सिंहादिना सह ते=तव युद्धेन=संग्रामेण किम्=वृथेत्यर्थः, कर्मशत्रुविजयादेव तव सकलकर्मापनयो भावीत्यवधार्य तत्रैव यतस्वेति हृदयम्॥सू० ३॥

मैं आपकी आज्ञा से सिंह के साथ भी युद्ध करनेमें समर्थ हूं, हे गुरुदेव ! मैं तो कर्मों के नाश करने के लिये ही घरसे निकला हूं, मेरे लिये अशक्य काम कुछ भी नहीं है, इसलिये कर्मक्षय जितना जल्दी से जल्दी हो सके आप ऐसा उपाय शीघ्र कहें ” इस प्रकार पूछनेवाले शिष्यजन के प्रति गुरुदेव कहते हैं—हे शिष्य ! तुम इस औदारिक शरीर से ही ज्ञानावरणीयादि कर्मशत्रुओं के साथ रत्नत्रय की आराधनारूप पताकाको ग्रहण करने के लिये, अथवा मुक्ति पाने के लिये प्राणपण से ( प्राणों की परवाह किये बिना ) युद्ध करो, कर्मशत्रुओं पर विजय प्राप्त करो, अपने से बाह्य सिंहादिक के साथ युद्ध करने से तुम्हें क्या लाभ हो सकता है? मोहनीय कर्मके जीतने से ही तुम्हारे समस्त कर्मों का विनाश हो जायगा, ऐसा निश्चय कर उसके ही साथ युद्ध करने का प्रयत्न करो ॥सू० ३॥

વચનોમાં સંપૂર્ણ વિશ્વાસ છે. આપની આજ્ઞાથી હું સિંહની સાથે પણ યુદ્ધ કરવા સમર્થ છું. હે ગુરુદેવ ! હું તો કર્મોના નાશ કરવા માટે જ ઘેરથી નીકળ્યો છું. મારે માટે અશક્ય એવું કોઈ કામ નથી. આ માટે મારા કર્મોના જલ્દીમાં જલ્દી ક્ષય થાય એવો ઉપાય તાત્કાલિક બતાવો.” આ પ્રકારે ગુરુ પાસે પૂછનારા શિષ્યજનને ગુરુદેવ કહે છે કે—હે શિષ્ય ! તું આ ઔદારિક શરીરથી જ જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મશત્રુઓની સાથે રત્નત્રયની આરાધનારૂપ પતાકાને ગ્રહણ કરવા માટે અથવા મુક્તિ મેળવવા પ્રાણ પણ (પ્રાણની પરવા કર્યા વગર) યુદ્ધ કર—કર્મ શત્રુઓ ઉપર વિજય પ્રાપ્ત કર, બાહરના—તારાથી દૂર એવા સિંહાદિકની સાથે યુદ્ધ કરવાથી તને કયો લાભ મળવાનો છે? મોહનીય કર્મને છૂતવાથી જ તારા સમસ્ત કર્મોના વિનાશ થશે, એવો નિશ્ચય કરી એની સાથે યુદ્ધ કરવાનો પ્રયત્ન કર મોહનીયના વિનાશથી તારા શેષ કર્મોના તાત્કાલિક નાશ થઈ જશે ॥ સૂ૦ ૩ ॥

દુષ્પારસંસારપારાવારે મજ્જતો જનસ્ય તર્તુમિદં સુસાધનમનેકભવેષુ પ્રાપ્તુમશ-  
ક્યમિતિ દર્શયતિ—‘ જુદ્ધારિહં ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—જુદ્ધારિહં સ્વલુ દુલ્લહં, જહિત્થ કુસલેહિં પરિજ્ઞાવિ-  
વેગે ભાસિણ, ચુણ્ણ હુ વાલે ગબ્ભાઇસુ રજ્જઇ, અસ્સિસ ચેયં પવુચ્ચઇ,  
રૂવંસિ વા છળંસિ વા, સે હુ ઇગે સંવિદ્ધપહે મુણી અન્નહા લોગમુવે-  
હમાણે, ઇય કમ્મ પરિણાય સવ્વસો સે ન હિંસઇ, સંજમઇ, નો પગ-  
વ્ભઇ, ઉવેહમાણો પત્તેયં સાયં, વણ્ણાણ્ણી નારભે કંચણં સવ્વલોણ્ણ  
ણ્ણપ્પમુહે વિદિસપ્પઇન્ને નિવિણ્ણચારી અરણ્ણ પયાસુ ॥ સૂ. ૪ ॥

છાયા—યુદ્ધાર્હ સ્વલુ દુર્લભં, યથાઽત્ર કુશલૈઃ પરિજ્ઞાવિવેકો ભાષિતઃ, ચ્યુતો  
હુ વાલો ગર્ભાદિષુ રજ્યતે; અસ્મિન્નૈતત્પ્રોચ્યતે, રૂપે વા ક્ષણે વા, સ હુ સંવિદ્ધ-  
પથો મુનિઃ, અન્યથા લોકમુત્પ્રેક્ષમાણઃ, ઇતિ કર્મ પરિજ્ઞાય સર્વતઃ સ ન હિનસ્તિ,  
સંયમયતિ, નો પ્રગલ્ભતે, ઉત્પ્રેક્ષમાણઃ પ્રત્યેકં સાતં, વર્ણાદિશી નારભતે કંચન સર્વ-  
લોક એકપ્રમુખો વિદિક્વપ્રતીર્ણો નિર્વિણ્ણચારી અરતઃ પ્રજાસુ ॥ સૂ. ૪ ॥

ટીકા—‘ યુદ્ધાર્હ ’—મિત્યાદિ, ઇદમૌદારિકશરીરં યુદ્ધાર્હ—પરીષદાદિભિઃ સહ  
ભાવસંગ્રામયોગ્યં સ્વલુ=અવધારણે તસ્ય દુર્લભમિત્યનેન સમ્બન્ધસ્તેન દુર્લભં સ્વલુ=

દુષ્પાર ઇસ સંસારરૂપી સમુદ્ર મેં પરિભ્રમણ કરનેવાલે પ્રાણી કે લિયે  
યહ સુસાધન અનેક ભવોં મેં ભી દુર્લભ હૈ—ઇસ વાત કો સૂત્રકાર પ્રદર્શિત  
કરતે હૈ—“ જુદ્ધારિહં ” ઇત્યાદિ ।

મનુષ્યોં કે શરીર કો ઔદારિક શરીર કહતે હૈં । ઇસ ઔદારિક  
શરીર સે હી સમસ્ત કર્મોં કા નાશ હોતા હૈ । યદ્યપિ ઔદા-  
રિક શરીર તિર્યચ્ચ ઔર મનુષ્યોં કા હોતા હૈ તો ભી તિર્યચ્ચ કે ઔદારિક  
શરીર કી યહાં વિવક્ષા નહીં હૈ । કર્મોં કે ક્ષય કા કારણ હોને સે મનુષ્ય  
કે હી ઔદારિક શરીર કી વિવક્ષા હૈ । ઇસલિયે સૂત્રકાર કહતે હૈં કિ

દુષ્પાર આ સંસારરૂપી સમુદ્રમાં પરિભ્રમણ કરવાવાળા પ્રાણી માટે આ  
સુસાધન અનેક ભવોમાં પણ દુર્લભ છે—આ વાતને સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરે છે—  
“ જુદ્ધારિહં ” ઇત્યાદિ.

મનુષ્યના શરીરને ઔદારિક શરીર કહે છે આ ઔદારિક (મનુષ્ય શરીર)  
થી જ સમસ્ત કર્મોના નાશ થાય છે. ઔદારિક શરીર તિર્યચ્ચ અને મનુષ્યોનું  
હોય છે; પરંતુ તિર્યચ્ચના ઔદારિક શરીરની વિવક્ષા અહીં નથી. મનુષ્યના જ  
ઔદારિક શરીર કર્મોના ક્ષયનું કારણ હોવાથી એની વિવક્ષા છે. સૂત્રકાર કહે



દુર્લભમેવ=દુઃખેનૈવ લભ્યમ્ કર્મયુદ્ધાર્હમનુષ્યશરીરલાભેન તવ સર્વકર્મક્ષયોઽવશ્યં  
શીઘ્રમેવ ભાવીતિ શિષ્યકૃતપૂર્વપ્રશ્નસ્યોત્તરમભિહિતમ્ । કશ્ચન મરુદેવીવત્ તેનૈવ  
ભવેન કર્મક્ષયમાસાદયતિ, કશ્ચિન્ન સુબાહુકુમારવત્સપ્તાષ્ટભવૈઃ, અપરઃ કશ્ચિદ્  
દેશોનાર્ધપુદ્ગલપરાવર્તેનેતિ, તેન કિમાયાતમિત્યાદ-‘યથે’-ત્યાદિ, યથા=યેન

યહ મનુષ્ય કા ઔદારિક શરીર પરિષદાદિકોં કે સાથ ભાવયુદ્ધ કે યોગ્ય  
હૈ, યહ શરીર હી ડનસે યુદ્ધ કર સકતા હૈ; અન્ય વૈક્રિયાદિક નહીં!  
ઇસ શરીર કી પ્રાપ્તિ દુર્લભ હૈ, બડે પુણ્યાનુબંધી પુણ્યસે હી યહ  
મનુષ્ય તન મિલતા હૈ । ઇસલિયે શિષ્ય કો આશ્વાસન દેતે હુણ ગુરુ  
મહારાજ કહતે હૈં કિ “કર્મયુદ્ધાર્હમનુષ્યશરીરલાભેન તવ સર્વકર્મ-  
ક્ષયોઽવશ્યં શીઘ્રમેવ ભાવીતિ ” તુમ ઘવરાઓ નહીં, યદિ હમારે વચના-  
નુસાર તુમ પ્રવૃત્તિશીલ રહોગે તો વિશ્વાસ રખો ઇસ પ્રાપ્ત હુણ શરીર સે  
તુમ કર્મોં કા શીઘ્ર વિનાશ કર સકોગે, કારણ કિ કર્મોં કે સાથ યુદ્ધ  
કરને યોગ્ય યહ ઔદારિક શરીર તુમ્હેં પ્રાપ્ત હુઆ હૈ । ઇસ પ્રકાર પહિલે  
શિષ્યદ્વારા કિયે ગયે પ્રશ્ન કા યહ ઉત્તરરૂપ સમાધાન હૈ । ઇસ શરીરદ્વારા  
કોઈ ૨ જીવ મરુદેવી જૈસે ડસી ભવસે કર્મક્ષય કર દેતે હૈં । કોઈ ૨  
સુબાહુકુમાર કી તરહ સાત આઠ ભવ મેં, ઔર કોઈ ૨ દેશોન અર્ધ-  
પુદ્ગલપરાવર્તન કાલમેં કર્મોં કે ક્ષપક હોતે હૈં । ઇસલિયે જિસ પ્રકારસે

છે—મનુષ્યનું આ ઔદારિક શરીર પરિષદાદિકોની સામે યુદ્ધ કરવા યોગ્ય છે.  
આ શરીર જ એની સામે યુદ્ધ કરી શકે છે, અન્ય વૈક્રિયાદિક શરીર નહિ ।  
આ શરીરની પ્રાપ્તિ દુર્લભ છે — મહા પુણ્યાનુબંધી જ આ મહાભૂલ્ય મનુષ્ય  
દેહ પ્રાપ્ત થાય છે.

આ માટે શિષ્યને આશ્વાસન આપતા ગુરુ મહારાજ કહે છે કે—“કર્મયુદ્ધાર્હ-  
મનુષ્યશરીરલાભેન તવ સર્વકર્મક્ષયોઽવશ્યં શીઘ્રમેવ ભાવીતિ ” તમે ગભરાઓ નહિ  
અમારા વચન અનુસાર તમે પ્રવૃત્તિશીલ રહેશો તો વિશ્વાસ રાખો આ પ્રાપ્ત થયેલ  
શરીરથી તમે કર્મોંનો શીઘ્ર વિનાશ કરી શકશો, કારણ કે કર્મોંની સાથે યુદ્ધ  
કરવાને માટે ઔદારિક શરીર તમોને પ્રાપ્ત થયેલ છે. આ પ્રકારે પહેલાં શિષ્યદ્વારા  
કરાયેલા પ્રશ્નો આ ઉત્તરરૂપ સમાધાન છે. આ શરીરદ્વારા કોઈ કોઈ જીવ મરુદેવી  
જેવા આ ભવમાં જ કર્મક્ષય કરી દે છે. કોઈ કોઈ સુબાહુકુમારની માફક સાત  
આઠ ભવમાં, કોઈ કોઈ દેશોન અર્ધપુદ્ગલપરાવર્તનકાળમાં કર્મોંનો ક્ષપક થાય

પ્રકારેણ અત્ર=અસ્મિન્ સંસારે કુશલૈઃ=ભાવકુશલૈઃ=તીર્થંકરગણધરાદિકૈઃ પરિજ્ઞા-  
વિવેકઃ=પરિજ્ઞાયાઃ=જ્ઞપ્રત્યાઘ્યાનભેદેન દ્વિવિધાયાઃ વિવેકઃ=દ્રવ્યતો ભાવતશ્ચ  
વિચારઃ ભાપિતઃ=કથિતઃ, તત્ર દ્રવ્યતો વિવેકઃ કલત્રપુત્રમિત્રાણાં સ્વશરીરસ્ય  
વાસારતયા ચિન્તનમ્, ભાવતો વિવેકો મમત્વવર્જનમ્, તપઃસંયમાભ્યાં કર્મનિર્જરા ભવ-  
તીતિ વિવેકો જાયતે । પરિજ્ઞાભેદમેવાહ—યશ્ચ પૂર્વોત્થાયી ચારિત્રાન્તરાયોદયાત્  
પશ્ચાન્નિપાતી સ ચ્યુતઃ=ધર્માત્ મનુષ્યજન્મતો વા પતિતઃ પરિભ્રષ્ટ ઇત્યર્થઃ, હુ=  
વિતર્કે; વાલઃ=ધર્મપતનજનિતનરકનિગોદાદિભ્રમણપ્રતીકારજ્ઞાનકલાવિકલઃ ગર્ભા-

હસ સંસારમેં કુશલ તીર્થંકરાદિ દ્વારા પરિજ્ઞાવિવેક કહા ગયા હૈ । હસ  
કે અનુસાર પ્રવૃત્તિ કરનેવાલા મુનિ હસી ભવ સે યા પરંપરા રૂપ સે કુલેક  
ભવોં મેં કર્મોં કા વિનાશ કર મુક્તિ કા લાભ પ્રાપ્ત કરતા હૈ । પરિજ્ઞા  
દો પ્રકાર કી કહી હૈ । ૧ જ્ઞપરિજ્ઞા ૨ પ્રત્યાઘ્યાનપરિજ્ઞા । પરિજ્ઞા કા  
વિવેક ભી દ્રવ્ય ઓર ભાવસે દો પ્રકારકા હૈ । સ્ત્રી, પુત્ર, મિત્ર ઓર  
અપને શરીર કા અસારતારૂપ સે ચિન્તવન કરના દ્રવ્યવિવેક હૈ । મમત્વ  
કા ત્યાગ કરના યહ ભાવવિવેક હૈ । અર્થાત્—‘તપ ઓર સંયમ સે કર્મોંકી  
નિર્જરા હોતી હૈ’ હસ પ્રકાર કા વિવેક ઉત્પન્ન હોના ભાવવિવેક હૈ ।  
“ચુષ્ઠ હુ વાલે ગન્ધાઇસુ રજ્જઈ” યહાં સૂત્રકાર—પરિજ્ઞા કે ભેદોં કો કહતે  
હે—જો પૂર્વોત્થાયી હૈ, પરંતુ ચારિત્રાન્તરાય કે ઉદય સે પશ્ચાન્નિપાતી  
હૈ વહ ચ્યુત હૈ—ધર્મ સે અથવા મનુષ્યજન્મસે પતિત હૈ—ભ્રષ્ટ હૈ । “હુ”  
વિતર્ક મેં હૈ । ધર્મસે પતિત હોનેપર મેરા ભ્રમણ નરકનિગોદાદિક ગતિયોં

છે. આ માટે જે પ્રકારથી આ સંસારમાં કુશલ તીર્થંકરાદિદ્વારા પરિજ્ઞાવિવેક  
કહેવાયેલ છે તે અનુસાર પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા મુનિ તે જ ભવમાં અથવા  
પરંપરા રૂપથી થોડાક ભવોમાં કર્મોના વિનાશ કરી મુક્તિનો લાભ મેળવે છે.  
પરિજ્ઞા બે પ્રકારની કહી છે. ૧ જ્ઞ-પરિજ્ઞા, ૨ પ્રત્યાઘ્યાન-પરિજ્ઞા. પરિજ્ઞાનો  
વિવેક પણ દ્રવ્ય અને ભાવથી બે પ્રકારનો છે. સ્ત્રી, પુત્ર, મિત્ર અને પોતાના શરીરની  
અસારતા રૂપથી ચિંતન કરવું દ્રવ્ય-વિવેક છે. મમત્વનો ત્યાગ કરવો ભાવવિવેક છે.  
તપ અને સંયમદ્વારા કર્મોની નિર્જરા થાય છે—આ પ્રકારનો વિવેક ઉત્પન્ન થવો ભાવ-  
વિવેક છે. “ચુષ્ઠ હુ વાલે ગન્ધાઇસુ રજ્જઈ” અહિં સૂત્રકાર પરિજ્ઞાના ભેદો કહે છે.  
જે પૂર્વોત્થાયી છે, પરંતુ ચારિત્રના અંતરાયથી પશ્ચાન્નિપાતી છે, તે ચ્યુત છે—ધર્મથી  
અથવા મનુષ્યજન્મથી પતિત છે—ભ્રષ્ટ છે. “હુ” શબ્દ વિતર્કમાં છે. ધર્મથી  
પતિત થવાથી માફે ભ્રમણ નરક નિગોદાદિક ગતિઓમાં થશે, આ પ્રકારનું

દિષુ=ગર્ભાદિજન્યદુઃસ્વવિશેષેષુ, આદિપદેન જન્મ-કૌમાર-યૌવન-જરા-મરણ-નરક-નિગોદાદિરૂપદુઃસ્વેષુ, યદ્વા-ગર્ભાદિષુ=દેહવિકલ્પેષુ સંસારવિકલ્પેષુ વા રજ્યતે=આસક્તો ભવતિ તત્રૈવ પચ્યતે દહ્યતે ચેત્યર્થઃ । યદ્વા ‘રજ્જઈ’ इत्यस्य ‘रीयते’

में होगा—इस प्रकार के तत्प्रतीकार स्वरूप ज्ञान से जो रहित है वह बाल है । बाल जीव गर्भादिकों ( गर्भादिजन्य दुःस्वविशेषों ) में आसक्त होता है । वहीं पर पचता रहता है वहीं पर तड़पता रहता है । “गर्भादि” के आदि पद से जन्म, कुमार, यौवन, जरा, मरण, नरक और निगोदादिक के दुःस्वों का ग्रहण हुआ है इन दुःस्वों में अथवा शरीरके विकल्पों या संसारविकल्पों में आसक्त बना है । यद्वा—“रज्जई” इसकी छाया “रीयते” भी होती है । जिसका यह भाव है कि बालजीव गर्भादिकों में बारंबार जन्म मरण धारण करता रहता है ।

भावार्थ—परिज्ञા के भेदों को प्रकट करने के लिये सूत्रकार कहते हैं कि जो चारित्र को ले कर भी पश्चात् चारित्रान्तराय के उदय से उससे पतित हो जाते हैं वे बालजीव हैं उनका छुटकारा इस संसार से नहीं होता—नरकनिगोदादिकके कष्टोंका और जन्म, बाल्यादिक अवस्था जन्य अनेक कष्टों का उन्हें समय २ पर सामना करना पड़ता है । चारित्र जैसी सुन्दर

તત્પ્રતીકાર સ્વરૂપ જ્ઞાનથી જે રહિત છે તે બાલ છે. બાલ જીવ ગર્ભાદિક ( ગર્ભાદિજન્ય દુઃસ્વ વિશેષ ) માં આસક્ત હોય છે. અર્થાત્ તડપતો રહે છે. “ગર્ભાદિ”ના આદિ પદથી જન્મ, કુમાર, યૌવન, વૃદ્ધાવસ્થા, મરણ, નરક અને નિગોદાદિકનાં દુઃખોનું ગ્રહણ થયેલ છે. આ દુઃખોમાં અથવા શરીરના વિકલ્પોમાં અથવા સંસારવિકલ્પોમાંજ વાળ-જીવ આસક્ત બની રહે છે. અથવા—“રજ્જઈ” એની છાયા “રીયતે” પણ બને છે. જેનો આ અર્થ છે કે-બાળ-જીવ ગર્ભાદિકમાં વારંવાર જન્મ મરણના ફેરા કરતો રહે છે.

ભાવાર્થઃ—પરિજ્ઞાના ભેદને પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે કે—ચારિત્ર ગ્રહણ કરવા છતાં પણ ચારિત્રાન્તરાયના ઉદયથી જે પતિત બની જાય છે એ બાલજીવ છે. એનો છુટકારો આ સંસારથી થતો નથી. નરક નિગોદાદિકના તેમજ જન્મ, બાલ્યાવસ્થા આદિના અનેક દુઃખોનો એણે સમય સમય પર સામનો કરવો પડે છે. ચારિત્ર જેવી સુંદર વસ્તુ હાથમાં આવવા છતાં જે તેને



इतिच्छाया; तेन गर्भादिषु रीयते=गच्छति । कुत्रेति कथितमिति प्रश्ने गुरुराह—  
‘अस्मि’ नित्यादि, अस्मिन्=आर्हतप्रवचने, एतत्=पूर्वकथितं वक्ष्यमाणं च प्रोच्यते  
=प्रकर्षेण कथ्यते तीर्थंकरगणधरैः, वक्ष्यमाणमाह—‘रूपे’-इत्यादि, रूपे=रूप-  
वद्विषये, वा-ग्रहणात् शब्दादौ गृह्यः, ‘क्षणे’ क्षणनं=क्षणः=हिंसा तत्र, वा-शब्दा-  
दनृतचौर्यादौ, प्रवृत्तिं विदधाति । अत्र रूपग्रहणेन विषयेषु रूपस्य प्रधानतया, एव-  
मास्रवेषु हिंसायाः प्राधान्येन च तयोर्ग्रहणादन्येषामपि शब्दादीनामास्रवाणां च ग्रहणं  
भवति । रूपवद्विषयलाभाय धर्मात्परिभ्रष्टो गर्भादौ रज्यते । इदमत्र प्रोच्यते इत्य-  
नेन सम्बन्धः, यश्चैतद्विपरीताचारधारी स कीदृशो भवतीत्याह—‘स’ इत्यादि,

वस्तु हाथमें आ जाने पर जो उसे खो देता है वह मनुष्य जन्म के लाभसे  
वंचित हो जाता है और उसे तिर्यश्चादि गतिमें परिभ्रमण करना पड़ता है।

इसलिये इस आर्हत प्रवचनमें जीवों को समझाने के लिये ही यह  
पूर्वोक्त कथन तथा आगे कहा जानेवाला विषय प्रतिपादित किया है।  
वक्ष्यमाण विषयमें सूत्रकार यही कह रहे हैं कि भगवान् तीर्थंकर गण-  
धरादिक का यह आदेश है कि जो मनुष्य या मुनि रूपयुक्त विषयों में  
और शब्दादिक पदार्थों में गृह्य बना हुआ है वह, हिंसा में और शेष  
झूठ, चोरी आदिकों में प्रवृत्तिशील है। यहां विषयों में रूप की प्रधानता  
होने से रूप के ग्रहणसे शब्दादिकों का, आस्रवों में हिंसा की प्रधानता  
होने से उसके ग्रहण से अन्य झूठ, चोरी आदि अन्य आस्रवों  
का ग्रहण हो जाता है इस प्रकार “अस्मिश्चैतत् प्रोच्यते” यहां तक  
इन पदों का संबंध है। जो पूर्वोक्त से विपरीत अपनी प्रवृत्ति रखता है

ખોઈ બેસે છે તે મનુષ્ય જન્મના લાભથી વંચિત જ બની જાય છે. અને તેણે  
તિર્થંકર આદિ ગતિમાં પરિભ્રમણ કરવું પડે છે.

આ માટે આ આર્હત પ્રવચનમાં જીવોને સમજાવવા માટે આ પૂર્વોક્ત  
કથન અને આગળ કહેવામાં આવનાર વિષય પ્રતિપાદિત કર્યો છે. વક્ષ્યમાણ  
વિષયમાં સૂત્રકાર એમ કહે છે કે-ભગવાન તીર્થંકર ગણધરાદિકનો આ આદેશ  
છે કે, જે મનુષ્ય અથવા મુનિ રૂપયુક્ત વિષયોમાં અને શબ્દાદિક પદાર્થોમાં  
લુપ્થ બનેલ છે તે, હિંસા તેમજ ચોરી, જુઠ્ઠા આદિમાં પ્રવૃત્તિશીલ છે. અહિં  
વિષયોમાં રૂપની પ્રધાનતા હોવાથી રૂપના ગ્રહણથી શબ્દાદિકોના, આસ્રવોમાં  
હિંસાની પ્રધાનતા હોવાથી હિંસાના ગ્રહણથી બીજાં ચોરી જુઠ્ઠા આદિ  
અન્ય આસ્રવોનું ગ્રહણ થઈ જાય છે. આ પ્રકારે “અસ્મિન્નૈતત્ પ્રોચ્યતે” અહિં  
સુધી આ પદોનો સંબંધ છે. જે પૂર્વોક્તથી વિપરીત પોતાની પ્રવૃત્તિ રાખે છે

સઃ=ગર્ભાદિપ્રાપ્તિનિદાનવિષયકષાયાભિષ્વજ્ઞાનવાન્ ધર્માદપતિત આસ્ત્રવનિવૃત્તઃ, હુરવધારણે, તેન સ એવ નાન્યઃ મુનિઃ=સંયતઃ, સંવિદ્વપથઃ=અભ્યસ્તરત્નત્રયો મુનિર્મવેત્, અપિ ચ અન્યથા ભિન્નપ્રકારેણ લોકં=વિષયકષાયમધ્યમધ્યાસીનં હિંસા-દિપરાયણમસંયતલોકમ્, ઉત્પ્રેક્ષમાણઃ=બુદ્ધ્યમાનઃ, તતઃ કિમિત્યાહ-‘હતી’-ત્યાદિ,

વહ કૈસા હોતા હૈ? હસકે સમાધાનાર્થ સૂત્રકાર “સ હુ સંવિદ્વપથો મુનિઃ” હસ શેષાંશકા કથન કરતે હૈ-ગર્ભાદિકકી પ્રાપ્તિ કે કારણભૂત જો વિષયકષાય હૈં ડનમૈં જો અનભિલાષી હૈ, જો યહ સમજ્ઞ ચુકા હૈ હસ જીવકા ગર્ભાદિક મૈં પતન વિષયકષાયોં કે સેવન સે હી હોતા હૈ વહ ધર્મ સે અપતિત હોતા હુઆ કર્માસ્રવોં સે જુદા રહતા હૈ । યહાં “હુ” અવધારણ અર્થ મૈં હૈ । હસસે યહ અભિપ્રાય નિકલતા હૈ, કિ જો વિષયા-દિકસે નિવૃત્ત હૈ વહી ધર્મ સે અપતિત ઓર આસ્ત્રવોં સે રહિત હૈ, અન્ય નહીં; વહી વાસ્તવિક મુનિ હૈ, અન્ય નહીં; વહી સંવિદ્વપથ હૈ--અભ્યસ્ત રત્નત્રયવાલા હૈ ઓર અભ્યસ્ત રત્નત્રયવાલા હી સચ્ચા મુનિ હો સકતા હૈ, અન્ય નહીં; યહી મુનિરત્ન અસંયત લોકકો વિષયકષાયોંકે મધ્યમૈં પડા હુઆ જાનકર તથા હિંસાદિક પાપોં સે અનિવૃત્ત સમજ્ઞ કર ડસસે નિવૃત્ત હો મન, વચન ઓર કાય સે પ્રાણિયોં કી હિંસા સે નિવૃત્ત હો જાતા હૈ, ડૂસરોંકો ભી હસ કાર્ય મૈં પ્રવૃત્ત નહીં કરતા હૈ ઓર ન હસ કાર્ય મૈં લગે હુણ વ્યક્તિયોં કી વહ અનુમોદના હી કરતા હૈ; વ્યોં

એ કેવો હોય છે ? આના સમાધાનમાં સૂત્રકાર “સે હુ સંવિદ્વપથો મુની” આ શેષાંશનું કથન કરતાં કહે છે કે-ગર્ભાદિકની પ્રાપ્તિના કારણરૂપ જે વિષય કષાય છે એમાં જે અભિલાષ વગરનો બની આ સમજી ચુકેલ છે કે આ જીવનું વિષયાદિકના સેવનથી જ ગર્ભાદિકમાં પતન થતું રહે છે અને એ ધર્મથી પતિત ન બનતાં કર્માસ્રવોથી બુદ્ધો રહે છે. અહિં “હુ” શબ્દ અવધારણુ અર્થમાં છે. આથી એ અભિપ્રાય નિકળે છે કે જે વિષયાદિકથી નિવૃત્ત છે એ ધર્મથી અપતિત અને આસ્ત્રવોથી રહિત છે, બીજા નહિ. એ જ વાસ્તવિક મુનિ છે, બીજા નહિ. એ જ સાચા પથ ઉપર છે. અભ્યસ્ત-રત્નત્રયવાળા છે. અભ્યસ્ત-રત્નત્રયવાળા જ સાચા મુનિ બની શકે છે, બીજા નહિ. આવા મુનિરત્ન અસંયત લોકોને વિષયકષાયોના મધ્યમાં પડેલા બેઈ અને હિંસાદિક પાપોથી અનિવૃત્ત બેઈને એનાથી નિવૃત્ત થઈ મન, વચન અને કાયથી પ્રાણીઓની હિંસાથી નિવૃત્ત બની જાય છે અને બીજાઓને આવા કાર્યોથી શકે છે, કેમ કે એ બાણે

इति=पूर्वोक्तकारणैः यद् बद्धं कर्म=ज्ञानावरणीयादिकं तत्कारणं च सावद्यव्यापाररूपं सर्वशः=सर्वप्रकारेण परिज्ञाय=द्विविधपरिज्ञया ज्ञात्वा परिहृत्य च सः=कर्मपरिज्ञायी न हिनस्ति=मनोवाकाययोगैः प्राणिनो न हन्ति, उपलक्षणान्न घातयति, नानुमोदयतीत्यर्थोऽपि। अपि च किं करोतीत्याह-संयमयति-पचनपाचनादिनवकोटिभ्यः स्वात्मानं निर्वर्तयति। यद्वा-संयमयति=सप्तदशविधं संयमं करोति, किन्तु नो प्रगल्भते=न धाष्ट्यं विदधाति-‘ किं संयमक्रियया प्रतिलेखनादिक्रियया च’ इत्यादिरूपमौद्धत्यं नाचरति। उपलक्षणतया स न कुप्यति, नापि जातिकुलादिमानमावहति,

कि वह जानता है कि हिंसादिक पापों से अथवा पूर्वोक्त कारणों से जीवों के ज्ञानावरणीयादिक कर्मों का बंध होता है, इसलिये ज्ञानावरणीयादिक कर्मों को तथा उनके कारणरूप सावद्य व्यापारों को वह भली प्रकार ज्ञ-परिज्ञासे जान कर प्रत्याख्यान परिज्ञासे उनका त्याग करता है। इस प्रकार वह कर्मपरिज्ञायी मुनि मन, वचन और काय से तथा कृत कारित और अनुमोदनसे उन सबका परित्यागी होता है। तथा-पचनपाचनादिकसे अपने आपको नवकोटिसे विशुद्ध रखता है, अथवा १७ प्रकार के संयम का आचरण करता है, इतने पर भी उसके अन्तःकरणमें मानकी मात्रा भी नहीं आती है, अथवा-संयम क्रिया या प्रतिलेखनादि क्रिया के आचरण से क्या हो सकता है? इस प्रकार की वह धृष्टता नहीं करता है। उपलक्षण से यह यह बात भी जानी जाती है कि वह मुनि इतना सब कुछ करता हुआ भी न कभी क्रोध करता है और न कुलादिक का गर्व ही करता है, न कहीं लुभाता है और न किसी की

છે કે-હિંસાદિક પાપોથી. અથવા પૂર્વોક્ત કારણોથી જીવોને જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મોના બંધ થાય છે. આ માટે જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મોને, તથા એના કારણરૂપ સાવધ વ્યાપારોને એ સારી રીતે જ-પરિજ્ઞાથી બાણી પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞાથી એના ત્યાગ કરે છે. આ પ્રકારે એ કર્મપરિજ્ઞાથી મુનિ મન, વચન અને કાયાથી તેમજ કૃત, કારિત અને અનુમોદનથી આ બધાનો ત્યાગ કરનાર હોય છે, તેમજ પચન પાચનાદિકથી પોતાની બાતને નવ કોટિથી વિશુદ્ધ રાખે છે. અથવા ૧૭ સત્તર પ્રકારના સંયમનું આચરણ કરે છે. આમ છતાં એના દિલમાં માનનો લેશમાત્ર મોહ બાગતો નથી, અથવા સંયમક્રિયા અથવા પ્રતિલેખનાદિ ક્રિયાના આચરણથી શું થઈ શકે છે? આવી ધૃષ્ટતા પણ તેના મનમાં બાગતી નથી. ઉપલક્ષણથી એ વાત પણ માનવામાં આવી છે કે એ મુનિ આટલું કરવા છતાં પણ ન તો ક્યારે ક્રોધ કરે છે કે ન તો બાતિ અને કુળ આદિનો ગર્વ કરે છે. ન તો ક્યાંય



ન હુમ્ચતિ, ન પ્રતારણાં કરોતિ, इत्याद्यपि ज्ञेयम्, असंयमपरायणोऽकर्तव्याचरणे मनागपि न त्रपत इत्याशयः । मुनिः किमवधार्य प्रगल्भादिकं न विदधीतेत्याह—  
'उत्प्रेक्षमाण' इत्यादि, प्रत्येकम्=एकैकस्य प्राणिनः सातं=मुखमसातं च उत्प्रे-  
प्रतारणा ( ठगना ) ही करता है। परन्तु जो असंयमसेवी हैं—असंयम में परायण हैं, वे इन अकर्तव्यों के करने में जरा भी संकोच नहीं करते हैं। मुनिजन धृष्टता आदि जो नहीं करते हैं उसका कारण यह है कि वे विचारते हैं कि इस संसारमें प्रत्येक प्राणी सुखाभिलाषी है।

भावार्थः—उद्धतता के करनेसे जीवों को संक्लेश होता है, संक्लेश दुःख का एक प्रकार है। मुनिजन ऐसा कोई सा भी व्यवहार नहीं कर सकते हैं जो अन्य जीवों को दुःखकारक हो। उनकी सदा यही धारणा होती है कि दुनियां के जितने भी जीव हैं वे सब मेरे तुल्य सुखाभि-  
लाषी हैं। जिस प्रकार अप्रतिकूल आचरण से मुझे कष्ट का अनुभव होता है उसी प्रकार से मेरे भी अनिष्ट आचरण से इन्हें कष्ट का अनु-  
भव होगा; अतः वह समस्त जीवों में आत्मोपमता (आत्मतुल्यता) मानता है। इसलिये वह किसी भी प्राणी का स्वप्न में भी घात करने का विचार तक नहीं करता है। जो अन्य जीवों के घात करने तक के वि-  
चार को निन्दित समझता है वह भला—दूसरों के लिये उस अनिष्ट

લોભાય છે, અથવા ન તો કોઈને ઠગે છે, પરંતુ જે અસંયમસેવી છે—અસં-  
યમમાં પરાયણ છે તેઓ આવાં અકર્તવ્યો કરવામાં જરા પણ સંકોચ કરતો  
નથી. મુનિજન ધૃષ્ટતા આદિ નથી કરતા તેનું કારણ એ છે કે તેઓ એ વિચાર-  
તા હોય છે કે આ સંસારના પ્રત્યેક પ્રાણી સુખાભિલાષી છે.

ભાવાર્થઃ—ઉદ્દતતા કરવાથી જીવોને સંકલેશ થાય છે, સંકલેશ એ  
દુઃખનો એક પ્રકાર છે, મુનિજન આવો કોઈ પણ વ્યવહાર કરી શકતા નથી  
કે જે અન્ય જીવોને દુઃખકારક હોય. એની સદા એક જ ધારણા રહે છે કે  
દુનિયાના જેટલા પણ જીવ છે એ બધા મારા સમાન સુખાભિલાષી છે. જે પ્રકારે  
અપ્રતિકૂલ આચરણથી મને દુઃખનો અનુભવ થાય છે, આ જ પ્રકારે મારા અનિષ્ટ  
આચરણથી એમને પણ કષ્ટ થવાનું. એટલે તે સમસ્ત જીવોમાં આત્મોપમતા  
( આત્મતુલ્યતા ) માનતા હોય છે. આ કારણે તેઓ કોઈ પણ પ્રાણીનો સ્વપ્નમાં  
પણ ઘાત કરવાનો વિચાર સરખાવે કરતા નથી. જે અન્ય જીવોનો ઘાત કર-  
વાના વિચારને નિન્દિત સમજે છે એવા બીજાઓને આવી અનિષ્ટ ક્રિયા કરવામાં

ક્રિયા કરનેમેં પ્રવૃત્ત હોને કી પ્રેરણા યા ઉપદેશ મી કૈસે દે સકતા હૈ । જવ યહ બાત હૈ તો ફિર જીવોંકા ઘાત કરનેવાલે પ્રાણિયોં કે કૃત્યોં કી વહ અનુમોદના મી નહીં કર સકતા હૈ । ઇસીલિયે વહ હિંસાદિક પાપોં સે નવકોટિ સે નિવૃત્ત હોતા હૈ । યહ બાત “ ઉત્પ્રેક્ષમાણઃ પ્રત્યેકં સાતમ્ ” ઇસ સૂત્રાંશસે ધ્વનિત હોતી હૈ । અથવા ઇસકા યહ મી આશય નિકલતા હૈ કિ મુનિ પ્રત્યેક સંસારી જીવોં કે સુખ ઓર દુઃખ જાનતે હૈ, અર્થાત્ જિન જીવોં કે જિતના સુખ ઓર દુઃખ ઉદયમેં હોગા-ઉતના ઉન્હેં ભોગના હી પડેગા, ઉનકે ઉસમેં ન તો કોઈ કમી કરનેવાલા હૈ ઓર ન કોઈ વૃદ્ધિ કરનેવાલા હૈ-ઇસ પ્રકાર સે વે સમસ્ત જીવોંકે સુખ ઓર દુઃખ કે જ્ઞાતા હૈ, તો મી વે એસા સમજ્ઞ કર અપની પ્રવૃત્તિ કો સ્વચ્છન્દ નહીં બનાતે । વે એસા વિચાર નહીં કરતે હૈ કિ મેરી અચ્છી પ્રવૃત્તિસે કિસી મી જીવ કે સુખ દુઃખમેં પરિવર્તન તો હો નહીં સકતા, ફિર ક્યા જરૂરત હૈ કિ મૈં અપની પ્રવૃત્તિ કો સંયમિત રખૂં, સુખ દુઃખ કા ભોગ પ્રત્યેક જીવોં કે કર્મધીન હૈ, મૈં અપની શુભ પ્રવૃત્તિ સે કિસી મી જીવ કે કર્મોદય કો થોડે હી ટાલ સકતા હું । ઇસ પ્રકાર કા વિચાર કરના મુનિજન કે લિયે યોગ્ય નહીં હૈ એસા વે જાનતે હૈ । યદ્યપિ કોઈ મી જીવ કિસી મી જીવ કે કર્મોદય કો ટાલ નહીં સકતા હૈ । જિસ

પ્રવૃત્ત થવાની પ્રેરણા કે ઉપદેશ પણ કઇ રીતે દઇ શકે ? બ્યારે આવી વાત છે તો પછી જીવોના ઘાત કરવાવાળા પ્રાણીઓના કૃત્યોની તે અનુમોદના પણ કરી શકતા નથી, એટલા માટે તેઓ હિંસાદિક પાપોથી નવકોટીથી નિવૃત્ત થાય છે. આ વાત “ ઉત્પ્રેક્ષમાણઃ પ્રત્યેકં સાતમ્ ” આ સૂત્રાંશથી ધ્વનિત થાય છે, અથવા એનો એ પણ અર્થ નિકળે છે કે મુનિ પ્રત્યેક સંસારી જીવોનાં સુખ અને દુઃખ જાણે છે. અર્થાત્ જે જીવોનાં જેટલાં સુખ અને દુઃખનો ઉદય આવશે એટલું એણે ભોગવવું જ પડશે. તેને ન કોઇ ઓછું કરી શકે છે ન કોઈ વધારી શકે છે. આ પ્રકારથી તેઓ સમસ્ત જીવોના સુખ અને દુઃખના જાણકાર હોય છે, તો પણ તેઓ એ સમજીને પોતાની પ્રવૃત્તિને સ્વચ્છન્દી બનાવતા નથી. તેઓ એવો પણ વિચાર કરતા નથી કે મારી સારી પ્રવૃત્તિથી કોઈ પણ જીવના સુખ દુઃખમાં પરિવર્તન થઈ શકતું નથી; તો પછી હું મારી પ્રવૃત્તિને આવા કામોમાં શું કરવા લગાડું ? સુખ દુઃખનું ભોગવવું એ પ્રત્યેક જીવોને કર્મધીન છે. હું મારી સારી પ્રવૃત્તિથી કોઈ પણ જીવનો કર્મોદય થોડો જ ટાળી શકું છું ? આ પ્રકારનો વિચાર કરવો મુનિજન માટે યોગ્ય નથી તેવું તે જાણે છે. જો કે કોઈ પણ જીવ કોઈ પણ જીવના કર્મોદયને ટાળી શકતો નથી જે જીવનું જે

ક્ષમાણઃ=જાનાનઃ, પ્રગલ્ભાદિકં ન વિદધીત । અત્ર આત્મૌપમ્યેન પરં ન હન્યાન્ન ઘાતયેન્નાનુમોદયેદિત્યર્થોઽપિ વ્યક્તિતઃ । ક્વચિચ્છાન્યસ્ય સુખદુઃખે અન્યસ્યાપિ ભવતઃ, યથા-પુત્રકલત્રાદિસુખદુઃખાભ્યાં પિતૃ-પત્યાદેઃ સુખદુઃખે જાયેતે, પરન્તુ તત્ર પુત્રકલત્રયોઃ શારીરે માનસે અપિ સુખદુઃખે, અપરસ્ય ચ માનસે એવ સુખદુઃખે ઇતિ વિવેકઃ ।

જીવ કે જો હોનહાર હૈ વહ હો કર હી રહેગા, હસમેં થોડા સા મી સંદેહ નહીં, હમારે અનેકે પ્રતિ શુભ કરને સે અનેકા શુભ નહીં હો સકતા હૈ, યહ નિશ્ચિત સિદ્ધાન્ત હૈ । તો મી મુનિજન સબ જીવોં પ્રતિ શુભ પ્રવૃત્તિ હી કરતે હૈં, કિસી મી જીવમાત્રકે પ્રતિ કષ્ટકારક પ્રવૃત્તિ નહીં કરતે હૈં । અસકા કારણ યહી હૈ કિ વે સમસ્ત જીવોં કો અપને સમાન દેખતે હૈં, જાનતે હૈં । વે યહ અચ્છી તરહસે અનુભવ કરતે હૈં કિ જિસ પ્રકાર હમેં દૂસરોં કી અશુભ પ્રવૃત્તિ સે કષ્ટ હોતા હૈ અસી પ્રકાર હમારી અશુભ પ્રવૃત્તિ સે મી દૂસરે જીવોં કો કષ્ટ હોગા । બસ યહી સોચ સમજ્ઞ કર વે અપને આચાર વિચાર કો પવિત્ર ઓર દૂસરોં કો હિતકારી હો એસા હી કરતે હૈં । યહ માના કિ વે દૂસરોં કે કર્મોં કો ટાલ નહીં સકતે, પરન્તુ ઇતના તો કર સકતે હૈં કિ અનેકે અશુભ મેં નિમિત્ત ન બન કર અશુભ કર્મોં પાર્જન સે બચ સકતે હૈં । ઇસીલિયે મુનિ સમસ્ત જીવોં કો અપને સમાન જાન કર અનેકી ન સ્વયં હિંસા કરતે હૈં, ન દૂસરોં સે કરાતે હૈં ઓર ન હિંસા કરનેવાલે કી અનુમોદના હી કરતે હૈં ।

થનાર હોય છે તે થઈને જ રહે છે, આમાં થોડો પણ સન્દેહ નથી. મારા એના પ્રત્યે શુભ કરવાના પ્રયાસથી પણ એનું શુભ થઈ શકવાનું નથી આ નિશ્ચિત સિદ્ધાન્ત છે, તો પણ મુનિજન આ બધા જીવો તરફ શુભ પ્રવૃત્તિ જ કરે છે. કોઈ પણ જીવમાત્ર તરફ કષ્ટકારક પ્રવૃત્તિ કરતા નથી. એનું કારણ એ છે કે તેઓ સમસ્ત જીવોને પોતાની માફક જ જુએ છે-બાંહે છે, તેઓ સારી રીતે અનુભવ કરે છે કે જે પ્રકારે બીજાઓની અશુભ પ્રવૃત્તિથી મને દુઃખ થાય છે એ જ રીતે મારી અશુભ પ્રવૃત્તિથી બીજાને દુઃખ થશે, આ સમજી વિચારી તેઓ પોતાના આચાર-વિચારો પવિત્ર તથા બીજાઓને હિતકારી અને તેમ જ કરે છે. એ માને છે કે તેઓ બીજાના કર્મોને ટાળી શકતા નથી, પરંતુ એટલું તો કરી શકે છે કે તેના અશુભ કર્મો પાર્જન નથી બચી શકે છે. આ માટે મુનિ સમસ્ત જીવોને પોતાના સમાન બાણી એની ન પોતે હિંસા કરે છે ન બીજાથી કરાવે છે કે ન તો હિંસા કરવાવાળાને અનુમોદન આપે છે.



क्वचिच्चान्यस्य सुखदुःखे परेण तद्विपरीतरूपेणानुभूयेते, यथा शत्रुप्रभृतेः सुखेनाऽपरो दुःखं, दुःखेन च सुखमनुभवति, तत्रापि चैकस्य शारीरे मानसे अपि, परस्य मानसे एवेति हृदयम् ।

मध्यस्थभावापन्नस्य परप्राणिमुखेन सुखं दुःखेन च दुःखं जायते “समः शत्रौ च मित्रे च” इत्यत्रोक्तत्वादिति तच्चम्, तेन किं प्रकृते ? इत्याह—  
‘वर्णादेशी’—त्यादि, सर्वलोके=ऊर्ध्वादिलोके वर्णादेशी=वर्ण्यते=प्रशस्यते येन स वर्णः=साधुकारस्तमादेष्टुं शीलं यस्य स वर्णादेशी=यशःकीर्त्यभिलाषी, यद्वा

संसारी जीवों में यह प्रवृत्ति देखी जाती है कि वे अपने स्वजनको इष्ट पदार्थों की प्राप्ति होने में अपने को सुखी तथा अप्राप्ति होने में दुःखी मानते हैं; जैसे पुत्र कलत्रादिकों के शारीरिक एवं मानसिक सुखदुःख में सुखी दुःखी हुआ करते हैं। कहीं इससे विपरीत भी प्रवृत्ति देखी जाती है; जैसे-शत्रुके सुखी होने पर किसी को मानसिक कष्ट होता है और उसके दुःखित होने से उसे मानसिक सुख होता है। परन्तु जो माध्यस्थप्रवृत्तिसंपन्न होते हैं उन्हें समस्त प्राणियोंको चाहे वह अपना हित हो चाहे वह शत्रु हो उसे-सुखी देख कर सुख होता है और उसके दुःख से उन्हें दुःख होता है, उनमें पक्षपात की वृत्ति नहीं होती है। क्योंकि “समः शत्रौ च मित्रे च” समभावी सदा शत्रु और मित्रमें समभाव रखते हैं। इससे प्रस्तुत प्रकरण में यह बात आई कि मुनि-जन जो सदा समभावी होते हैं वे समस्त लोक-उर्ध्व, मध्य और अधःलोक में वर्णादेशी होते हैं। यश कीर्त्ति, स्वपर-कल्याण तथा

સંસારી જીવોમાં આ પ્રવૃત્તિ દેખાઈ આવે છે કે તેઓ પોતાના સ્વજનને ઇષ્ટ પદાર્થોની પ્રાપ્તિ થવામાં પોતાને સુખી તથા અપ્રાપ્તિ થવામાં દુઃખી માને છે. જેમ કે પુત્ર કલત્રાદિનાં શારીરિક અને માનસિક સુખ દુઃખમાં સુખી દુઃખી બન્યા કરે છે. કોઈ સ્થળે આનાથી વિપરીત પ્રવૃત્તિ પણ દેખવામાં આવે છે, જેમકે શત્રુના સુખી થવાથી કોઈને માનસિક કષ્ટ થાય છે અને તેના દુઃખી થવાથી તેને માનસિક સુખ થાય છે. પરંતુ જે માધ્યસ્થ્યવૃત્તિસંપન્ન છે તેને સમસ્ત પ્રાણીઓને-ભલે તે પોતાનો શત્રુ હોય કે હિતેચ્છુ હોય એને-સુખી દેખી સુખ થાય છે અને તેના દુઃખથી દુઃખ થાય છે, તેનામાં પક્ષપાતની દૃષ્ટિ હોતી નથી; કારણ કે “સમઃ શત્રૌ ચ મિત્રે ચ”-સમભાવી સદા શત્રુ અને મિત્રમાં સમભાવ રાખે છે. આથી ચાલુ પ્રકરણમાં આ વાત આવી કે મુનિજન સદા સમભાવી હોય છે તે સમસ્ત લોક-ઉર્ધ્વ, મધ્ય અને અધઃ લોકમાં વર્ણાદેશી હોય છે. યશ,

વર્ણઃ=શુભં તદાદેશી=સ્વપરકલ્યાણાભિલાષી, અથવા-‘વર્ણાદેશી’ વર્ણઃ શરીરકાન્તિઃ, તદાદેશી=તદભિકાઙ્ક્ષી, અપિ ચ સઃ ‘એકપ્રમુખઃ’ એકસ્મિન્ મોક્ષે સંયમે વા પ્રગતં મુખં યસ્ય વા એકપ્રમુખઃ=મોક્ષે તત્કારણે ચ નિવેશિતાન્તઃકરણઃ, એવં વિદિક્ષપ્રતીર્ણઃ=મોક્ષ-તત્સાધનાભિમુખી પ્રવૃત્તિર્દિક્, તદ્વિપરીતા વિદિક્ સાવધાચરણરૂપા સંસારાભિમુખી પ્રવૃત્તિઃ તાં પ્રતીર્ણઃ પ્ર=પ્રકર્ષેણ તીર્ણઃ=રાગદ્વેષમૂલકાગાધ-

શરીરકાન્તિકી ઇચ્છા રાખનેવાલે કો વર્ણાદેશી કહતે હૈં । અર્થાત્-સમસ્ત જીવોં કો અપને સમાન સમજ્ઞને કી કામનાવાલા વર્ણાદેશી હૈ । મુનિજન સમસ્ત જીવોં કો આત્મસદૃશ જાનતે હૈં । તથા મુનિજન-‘એગપ્પમુહે’ એકપ્રમુખ હોતે હૈં, એક કેવલ મોક્ષમેં યા મોક્ષકે કારણ સંયમમેં ડનકા અન્તઃકરણ લગા હુવા રહતા હૈ । વે વિદિક્ષપ્રતીર્ણ હોતે હૈં, મોક્ષ અથવા ડનકે સાધનોં કી ઓર ઙુકી હુઈ પ્રવૃત્તિકા નામ દિક્ હૈ ડસસે વિપરીત પ્રવૃત્તિ વિદિક્ હૈ, સાવધ આચરણરૂપ સંસારાભિમુખી વિદિક્ષપ્રવૃત્તિ કો જિન્હોંને અચ્છી તરહસે પાર કર દિયા હૈ, છોડ દિયા હૈ, રાગદ્વેષ જિસકે મૂલ હૈં એસે અગાધ સંસારરૂપી પારાવારસે જો પાર હો ચુકે હૈં વે વિદિક્ષપ્રતીર્ણ હૈં । બાહિરી પદાર્થ પુત્ર-કલત્રાદિકોં મેં એવં આભ્યન્તર મેં ક્રોધાદિકોં મેં ડન્હેં સદા નિર્વેદ (વૈરાગ્ય) હોતા હૈ । મુનિજન એસા હી અપના આચાર વિચાર રાખતે હૈં કિ જિસસે સંસારાવસ્થા કે સ્ત્રીપુત્રાદિકોં મેં મમતા ન હો સકે તથા ક્રોધાદિક કે કારણ ડપસ્થિત હોને પર

કીર્તિ, સ્વપર કલ્યાણ તથા શરીર કાન્તિની ઇચ્છા રાખવાવાળાને વર્ણાદેશી કહે છે, અર્થાત્- સમસ્ત જીવોને પોતાના સમાન સમજવાની કામનાવાળા વર્ણાદેશી છે. મુનિજન સમસ્ત જીવોને એક આત્મારૂપ માને છે અને મુનિજન “એગપ્પમુહે” એકપ્રમુખ હોય છે. એક કેવળ મોક્ષમાં અથવા મોક્ષના કારણ સંયમમાં તેનું અંતઃકરણ લાગ્યું રહે છે, તેઓ વિદિક્ષપ્રતીર્ણ હોય છે. મોક્ષ અથવા તેનાં સાધનોની તરફ ઢળેલી પ્રવૃત્તિનું નામ દિક્ષ છે, એનાથી વિપરીત પ્રવૃત્તિ વિદિક્ષ છે. સાવધ આચરણરૂપ સંસારાભિમુખી વિદિક્ષપ્રવૃત્તિને જેને ભલીભાંતિ પોતે પાર કરેલ છે-છોડી દીધી છે. રાગદ્વેષ જેના મૂળ છે એવા અગાધ સંસારરૂપી સાગરને જેઓ તરી ચૂક્યા છે તેઓ વિદિક્ષપ્રતીર્ણ છે. બાહ્ય પદાર્થ પુત્ર કલત્રાદિકમાં તેમજ આભ્યન્તરમાં ક્રોધાદિકમાં જેમને સદા વૈરાગ્ય થાય છે. મુનિજન એવા જ પોતાના આચાર વિચાર રાખે છે કે જેનાથી સંસાર અવસ્થાના સ્ત્રી પુત્રાદિકમાં મમતા ન થઈ શકે તેમ જ ક્રોધાદિકના

સંસારપારાવારતીર્ણઃ, एवं 'निर्विण्णाचारी' निर्विण्णः निर्वेदो बाह्ये पुत्रक-  
लत्रादौ आभ्यन्तरे क्रोधादौ च तिरस्कारः, परित्याग इत्यर्थः, तद्वान्=निर्विण्णः=  
बाह्याभ्यन्तराभिष्वङ्गरहितः, तस्य चारः=आचरणमनुष्ठानमिति यावत्, सोऽस्यास्तीति  
निर्विण्णाचारी=तीर्थंकरगणधराद्युपदिष्टमार्गानुष्ठायी, किञ्च 'प्रजासु अरतः'  
प्रजायन्त इति प्रजाः=जीवास्तासु अरतः=अनासक्तः समारम्भनिवृत्त इत्यर्थः, तत्र  
ममत्वविवर्जितो वा, यद्वा-प्रकर्षेण जनयन्ति पुत्रादिकं यास्ताः प्रजा योषितस्तासु  
अरतः अनासक्तः, स्त्रियो हि पुरुषं स्वासक्तं नानाप्रकारेण नर्तयन्ति, उक्तञ्च—

भी उन्हें क्रोधी न होना पड़े । इस प्रकार बाह्य और अन्तरंग परिग्रहसे  
रहित आचरण इनका होता है, इसीका नाम निर्विण्णाचारी है । अर्थात्  
तीर्थङ्कर एवं गणधरादिकोंने जिस प्रकार से मुनिमार्गका उपदेश दिया  
है उसीके अनुसार वे उस मार्गके अनुष्ठायक होते हैं । “प्रजासु अरतः”  
प्रजा शब्दका अर्थ जो पैदा होते हैं ऐसे जीव हैं । उनमें अरत-अनासक्त  
मुनिजन होते हैं, ऐसा समारंभ वे नहीं करते कि जिससे जीवोंका  
अकल्याण, या घातादिक हों । जीवोंमें ममत्वरहित होना भी प्रजामें  
अरत होना है । अथवा पुत्रादिकोंको उत्पन्न करनेवाली स्त्रियोंका नाम  
भी प्रजा है । मुनिजन स्त्रीवर्गमें आसक्तिसे रिक्त होते हैं, कारण कि  
वे जानते हैं कि स्त्रियां अपनेमें आसक्त पुरुषको अनेक प्रकार के नाच  
नचाती हैं, कहा भी है—

કારણુ ઉપસ્થિત થતાં પણ તેને ક્રોધી ન થવું પડે. આ પ્રકારે બાહ્ય અને  
અન્તરંગ પરિગ્રહથી રહિત આચરણુ તેમનું હોય છે. આનું જ નામ નિર્વિણ્ણાચારી  
છે. અર્થાત્—તીર્થંકર અને ગણધરાદિકોએ જે પ્રકારથી મુનિમાર્ગનો ઉપદેશ  
આપ્યો છે એ અનુસાર તે માર્ગ પર ચાલનારા તેઓ હોય છે. “પ્રજાસુ અરતઃ”  
પ્રજા શબ્દનો અર્થ જે પેદા થાય છે એવો જે જીવ તે છે. એમાં અરત-અનાસક્ત  
મુનિજન હોય છે. એવો સમારંભ એ નથી કરતા કે જેનાથી જીવોનું અકલ્યાણ  
થાય અથવા ઘાત આદિ હોય. જીવોમાં મમત્વરહિત રહેવું એ પણ પ્રજામાં અરત  
થવું છે. અથવા પુત્રાદિકોને ઉત્પન્ન કરવાવાળી સ્ત્રીઓનું નામ પણ પ્રજા છે.  
મુનિજન સ્ત્રીવર્ગની આસક્તિથી વિરક્ત હોય છે. કારણુ કે તેઓ બાણુતા હોય  
છે કે સ્ત્રીઓ પોતાનામાં આસક્ત થનાર પુરુષને અનેક પ્રકારના નાચ નચાવે છે.  
કહ્યું પણ છે.



“ एता हसन्ति च रुदन्ति च चित्तहेतोः—विश्वासयन्ति च नरं न च विश्वसन्ति ।  
तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन, नार्यः श्मशानघटिका इव वर्जनीयाः ॥ १ ॥  
आनन्दयन्ति रमयन्ति विडम्बयन्ति, निर्भत्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति ।  
एताः प्रविश्य सदयं हृदयं नराणां, किं नाम वामनयना न समाचरन्ति ” ॥ २ ॥ इति ।

“ एता હસન્તિ ચ રુદન્તિ ચ ચિત્તહેતોઃ,  
વિશ્વાસયન્તિ ચ નરં ન ચ વિશ્વસન્તિ ।  
તસ્માન્નરેણ કુલ-શીલસમન્વિતેન,  
નાર્યઃ સ્મશાનઘટિકા ઇવ વર્જનીયાઃ ॥ ૧ ॥  
આનન્દયન્તિ મદયન્તિ વિડમ્બયન્તિ,  
નિર્ભત્સયન્તિ રમયન્તિ વિષાદયન્તિ ।  
એતાઃ પ્રવિશ્ય સદયં હૃદયં નરાણાં,  
કિં નામ વામનયના ન સમાચરન્તિ ” ॥ ૨ ॥

ये धनके लिये हंसती और रोती रहती हैं । दूसरों को विश्वास करा देती हैं पर स्वयं दूसरों का विश्वास नहीं करती । इसलिये कुलीन पुरुषों का कर्तव्य है कि वे इनका श्मशानके घटके समान परिहार कर दें ।

ये पुरुषों के चित्तमें प्रवेश कर उसे कभी आनन्दित करती हैं तो कभी उसे मद्दोन्मत्त बना देती हैं । कभी उसकी नाना प्रकारसे विडम्बना करती हैं, तो कभी विचारे का अपमान करती हैं । कभी उससे रमती हैं तो कभी कभी उसे विषादयुक्त कर देती हैं । ऐसी कौनसी क्रियाएं बचती हैं जो ये न करती हों ।

“ एता हसन्ति च रुदन्ति च चित्तहेतोः, विश्वासयन्ति च नरं न च विश्वसन्ति ।  
तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन, नार्यः श्मशानघटिका इव वर्जनीयाः ” ॥ १ ॥  
“ आनन्दयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति, निर्भत्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति ।  
एताः प्रविश्य सदयं हृदयं नराणां, किं नाम वामनयना न समाचरन्ति ” ॥ २ ॥

એ ધનને માટે હસતી અને રોતી રહે છે. બીજાને પોતાનો વિશ્વાસ કરાવી દે છે પરંતુ પોતે બીજાનો વિશ્વાસ કરતી નથી. આ માટે કુલીન પુરુષોનું એ કર્તવ્ય છે કે તેઓ એનો શ્મશાનની ઘટીની માફક પરિહાર કરી દે. એ પુરુષોના ચિત્તમાં પ્રવેશ કરી ક્યારેક આનંદિત બનાવે છે તો ક્યારેક મદ્દોન્મત બનાવી દે છે. ક્યારેક એની નાના પ્રકારે મશ્કરી કરે છે તો ક્યારેક બીચારાનું અપમાન કરે છે. ક્યારેક રમાડે છે તો ક્યારેક બિન્ન બનાવી દે છે. એવી કોઈ ક્રિયા નથી કે જે એ ન કરતી હોય.

एतादृशः कंचन=कमपि प्राणातिपातादिसावधव्यापारं नारभते=न कुरुते, वर्णादेशीत्यादिसकलविशेषणैर्मुनेः सकलाचारपरिशीलनशीलत्वमवगम्यत इति हृदयम् ॥ सू० ४ ॥

यः पुनरेतादृशः स कीदृशो भवतीति दर्शयति—‘से वसुमं’ इत्यादि ।

मूलम्—से वसुમં સવં સમન્નાગયપન્નાણેણં અપ્પાણેણં અકરણિજ્જં પાવકમ્મં તં નો અન્નેસી, જં સમ્મંતિ પાસહ તં મોણંતિ પાસહ, જં મોણંતિ પાસહ તં સમ્મંતિ પાસહ, ન ઇમં સક્કં સિઢિલેહિ અદિજ્જમા-  
ણેહિં ગુણાસાણેહિં વંકસમાયારેહિં પમત્તેહિં અગારમાવસંતેહિં, મુણી મોણં સમાયાણ ધુણે કમ્મસરરિગં, પંતં લૂહં સેવંતિ વીરા સમ્મત્ત-  
દંસિણો, એસ ઓહંતરે મુણી તિણ્ણે મુત્તે વિરણ વિયાહિણ-  
ત્તિવેમિ ॥ સૂ० ૫ ॥

छाया—स वसुमान् सर्वसमन्वागतप्रज्ञानेनात्मनाऽकरणीयं पापं कर्म तन्नो अन्वेषी, यत्सम्यक् पश्यत तन्मौनमिति पश्यत, यन्मौनं पश्यत तत्सम्यगिति पश्यत; नैत-  
च्छक्यं शिथिलैराद्र्चमाणैर्गुणास्वादैर्वक्रसमाचारैः प्रमत्तैरगारमावसद्भिः, मुनिमौनं  
समादाय धुनीयात् कर्मशरीरकं, प्रान्तं रुक्षं सेवन्ते वीराः सम्यक्त्वदर्शिनः, एष  
ओघन्तरो मुनिः, तीर्णो मुक्तो विरतो व्याख्यात इति ब्रवीमि ॥ सू० ५ ॥

इस प्रकारके इन समस्त विशेषणोंवाले वे मुनिजन “नारभते कंचन” कोई भी सावध व्यापार नहीं करते हैं । इन वर्णादेशी आदि समस्त विशेषणों से मुनि में अपने सकल आचारों की परिशीलन-शीलनता जानी जाती है ॥सू० ४॥

जो मुनि ऐसा होता है वह कैसा होता है ?—इस बात को कहते हैं ‘से वसुमं’ इत्यादि—

આ પૂર્વોક્ત પ્રકારનાં સમસ્ત વિશેષણવાળા એ મુનિજન “નારભતે કંચન” કોઈપણ સાવધ વ્યાપાર કરતા નથી. વર્ણાદેશી આદિ સમસ્ત વિશેષણોથી મુનિજનની સકલ આચારના પરિશીલનતા બાણી શકાય છે.

જે મુનિ આવા હોય છે તે કેવા હોય છે ? આ વાતમાં સૂત્રકાર કહે છે —‘સે વસુમં’ ઇત્યાદિ.

ટીકા—‘સ વસુમાન’—इत्यादि, वसु=द्रव्यं भावतः संयमरूपं, तदस्या-  
स्तीति वसुमान्=तपः संयमादिमान् निवृत्तपचनपाचनादिसावद्यव्यापार इत्यर्थः,  
स मुनिः सर्वसमन्वागतप्रज्ञानेन सम्=सम्यक् अनु=साम्यादागतं=प्राप्तं=समन्वागतं  
सर्वं च तत्समन्वागतं सर्वसमन्वागतं, तादृशं प्रज्ञानं पदार्थसार्थाविर्भावकमाचार्य-  
परम्पराऽऽगतं यस्य स सर्वसमन्वागतप्रज्ञानस्तेन सर्वसमन्वागतप्रज्ञानेन—तादृश-

वसु शब्दका अर्थ દ્રવ્ય છે. દ્રવ્ય દો પ્રકાર કા છે. ૧-દ્રવ્યદ્રવ્ય  
(બાહ્ય દ્રવ્ય), ૨-ભાવદ્રવ્ય. દ્રવ્યદ્રવ્ય હિરણ્ય સુવર્ણ ધનાદિક છે. તપ  
સંયમાદિરૂપ ભાવદ્રવ્ય છે. યહ ભાવદ્રવ્ય જિનકે હોતા છે વે વસુમાન કહે  
જાતે છે. મુનિજન ભાવદ્રવ્યવાળે હી હોતે છે. તપ ઓર સંયમરૂપ હી  
દ્રવ્ય ઇનકે પાસ રહતા છે. ઇસ દ્રવ્યકા અસ્તિત્વ હી પચનપાચનાદિરૂપ  
સાવચ વ્યાપારકી નિવૃત્તિ સ્વરૂપ છે—અર્થાત્ જહાં યે દ્રવ્ય છે વહાં પર  
સાવચ વ્યાપાર નહીં હોતા છે. એસા વહ વસુમાન મુનિ સર્વસમન્વાગત-  
વિજ્ઞાનયુક્ત આત્મા સે યહ સમજકર કિ પાપકર્મ અકરણીય છે ઉસે નહીં  
ગવેષતા છે—અભિલાષા નહીં કરતા છે. “સર્વસમન્વાગત” ઇસ પદમેં સર્વ,  
સમ્, અનુ, આગત એસે ચાર શબ્દ છે. સમ્ શબ્દકા અર્થ—સમ્યક્,  
અનુ શબ્દકા અર્થ—સામ્યભાવસે, આગતકા અર્થ છે—પ્રાપ્ત હુઆ, અર્થાત્  
નિર્દોષ સમતાભાવસે પ્રાપ્ત હુઆ, સર્વ પદકે સાથ સમન્વાગતકા કર્મ-  
ધારય સમાસ હુઆ છે. સર્વ સમસ્ત જો સમન્વાગત વહ સર્વસમન્વાગત  
છે. સર્વસમન્વાગત પ્રજ્ઞાન છે જિસે વહ સર્વસમન્વાગતપ્રજ્ઞાન છે.

વસુ શબ્દનો અર્થ દ્રવ્ય છે. દ્રવ્ય બે પ્રકારનું હોય છે. ૧ બાહ્યદ્રવ્ય,  
૨ ભાવદ્રવ્ય. બાહ્ય દ્રવ્ય હીરા, મોતી, સુવર્ણ અને ધન આદિ છે, અને  
ભાવદ્રવ્ય તપ, સંયમ આદિ હોય છે. આ ભાવદ્રવ્ય જેની પાસે હોય  
છે તે વસુમાન કહેવાય છે. મુનિજન ભાવ દ્રવ્યવાળા જ હોય છે, તપ અને  
સંયમરૂપી દ્રવ્ય જ તેમની પાસે હોય છે. આ દ્રવ્યનું અસ્તિત્વ જ પચન-પાચ-  
નાદેરૂપ સાવચ વ્યાપારની નિવૃત્તિ સ્વરૂપ છે. અર્થાત્—જ્યાં આ દ્રવ્ય છે ત્યાં  
સાવચ વ્યાપાર હોતો નથી. એવા એ વસુમાન મુનિ સર્વસમન્વાગતવિજ્ઞાન-  
યુક્ત આત્માથી એ સમજીને કે પાપકર્મ અકરણીય છે. એને નથી ગવેષતો, એની  
અભિલાષા નથી કરતો. “સર્વસમન્વાગત” આ પદમાં સર્વ, સમ, અનુ, આગત  
એવા ચાર શબ્દો છે. સમ્ શબ્દનો અર્થ—સમ્યક્. અનુ શબ્દનો અર્થ—  
સામ્યભાવ. આગતનો અર્થ પ્રાપ્ત થવું. અર્થાત્ નિર્દોષ સમતા ભાવથી પ્રાપ્ત  
થવું તે સમન્વાગત છે, સર્વ પદની સાથે સમન્વાગતનો કર્મધારય સમાસ  
થયો છે. સર્વ સમસ્ત જે સમન્વાગત તે સર્વસમન્વાગત છે.



રૂપપરિગતેન આત્મના અકરણીયં=વિધાતુમયોગ્યં યત્ પાપં=પાપજનકં કર્મ પ્રાણાતિ-  
પાતાદિરૂપં તત્ પાપં કર્મ નો અન્વેષી તત્ અન્વેષ્ટું=ગવેષયિતું શીલં યસ્ય સોઽન્વેષી  
નો ભવેત્, પરિજ્ઞાતપરમાર્થેનાત્મના પાપકર્મ નો વિધેયમિત્યાશયઃ । પાપકર્મપરિ-  
ત્યાગેન સમ્યગ્જ્ઞાનં, તેન ચ પાપકર્મપરિત્યાગ ઇતિ દર્શયતિ—

‘યત્સમ્યગિ’—ત્યાદિ—હે શિષ્યાઃ ! યૂયં યત્ સમ્યક્=સમ્યગ્જ્ઞાનં સમ્યક્ત્વં  
વા ઇતિ પશ્યત ” તન્મૌનં=મુનેઃ કર્મ મૌનં=સંયમાચરણમસ્તિ; ઇતિ પશ્યત, એવં

ભાવાર્થ—સમતાભાવ સે મુનિજન જિતના મી સમ્યગ્જ્ઞાન પ્રાપ્ત  
કરતે હૈં વહ સર્વસમન્વાગતપ્રજ્ઞાન હૈ । અથવા ગુરુપરંપરા સે જો જ્ઞાન  
પ્રાપ્ત હોતા આ રહા હૈ વહ મી સર્વસમન્વાગતપ્રજ્ઞાન હૈ । છઠવેં ગુણસ્થા-  
નવર્તી મુનિકો ઇસ ગુણસ્થાનમેં જિતના જ્ઞાન હોના ચાહિયે ઉસકી  
અપેક્ષા સે હી ઉસ જ્ઞાન મેં સર્વ વિશેષણકી સાર્થકતા સમજની ચાહિયે,  
પદાર્થોંકે સ્વરૂપકા આવિર્ભાવક તથા આચાર્યપરંપરાસે આગત યહ  
સર્વસમન્વાગતજ્ઞાન જિસ આત્મા મેં હોતા હૈ વહ સર્વસમન્વાગતપ્રજ્ઞાન  
આત્મા હૈ ।

હસ જ્ઞાનવિશિષ્ટ આત્માસે મુનિજન યહ જાનતે હૈં કિ પાપ-પાપ-  
જનક પ્રાણાતિપાતાદિરૂપ કર્મ કરનેકે અયોગ્ય હૈં । ઇસલિયે વે ઉનકે  
અન્વેષી-ગવેષણા કરનેકે સ્વભાવવાલે નહીં હોતે હૈં—અર્થાત્ પાપગવેષી  
નહીં હોતે હૈં । તાત્પર્ય યહ હૈ કિ મુનિજનોં કી આત્મા પરમાર્થકી જ્ઞાતા  
હૈ; અતઃ વે ઉસ આત્માસે પાપકર્મ વિધેય ( કરને યોગ્ય ) નહીં હૈ—  
એસા સમજતે હૈં ।

“ યત્ સમ્યક્ પશ્યત તન્મૌનમિતિ પશ્યત, યન્મૌનં પશ્યત તત્સ-

ભાવાર્થ—સમતા ભાવથી મુનિજન જેટલું પણ સમ્યક્ જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરે  
છે તે સર્વસમન્વાગતપ્રજ્ઞાન છે. અથવા ગુરુ પરંપરાથી જે જ્ઞાન પ્રાપ્ત થતું  
આવ્યું છે એ પણ સર્વસમન્વાગતપ્રજ્ઞાન છે. છઠા ગુણસ્થાનવર્તી મુનિને  
આ ગુણસ્થાનમાં જેટલું જ્ઞાન થતું જોઈએ એની અપેક્ષાથી જ એ જ્ઞાનમાં  
સર્વ વિશેષણની સાર્થકતા સમજવી જોઈએ. પદાર્થોના સ્વરૂપના આવિર્ભાવક  
તથા આચાર્ય પરંપરાથી આગત આ સર્વસમન્વાગત જ્ઞાન જે આત્મામાં પ્રગટે  
છે તે સર્વસમન્વાગતપ્રજ્ઞાન આત્મા છે, આ જ્ઞાનવિશિષ્ટ આત્માથી મુનિજન એ  
જાણે છે કે પાપ-પાપજનક પ્રાણાતિપાતાદિરૂપ કર્મ કરવાં યોગ્ય નથી, આ  
માટે તે એના અન્વેષી-ગવેષણા કરવાના સ્વભાવવાળા થતા નથી. અર્થાત્ પાપ-  
ગવેષી બનતા નથી. મુનિજનોનો આત્મા પરમાર્થનો જ્ઞાતા છે. આથી એ  
આત્માદ્વારા પાપકર્મ કરવાયોગ્ય નથી એમ એ સમજે છે.

યન્મૌનમિતિ પશ્યત તત્સમ્યગિતિ પશ્યત, ઉભયોરેકત્વમિત્યભિવ્યજ્ઞનાયોભયત્રા-  
પ્યુદ્દેશ્યવિધેયયોર્વિપર્યાસેન કથનમિતિ बोध्यम्, જ્ઞાનસ્ય ફલં વિરતિઃ સમ્યક્ત્વા-  
ભિવ્યજ્ઞનં ચ, કૈરેતત્સમાચરિતું ન શક્યત इत्याह—‘નૈતચ્છક્ય’—મિત્યાદિ ।  
શિથિલૈઃ=મન્દપરિણામત્વાદ્ ઈષદ્વીર્યૈઃ સંયમે તપસિ વા ધૃતિદઢતાવર્જિતૈરવસન્ન-  
મ્યગિતિ પશ્યત ”—પાપકર્મકે પરિત્યાગ સે સમ્યગ્જ્ઞાન, ઉસસે પાપકર્મ  
કા પરિત્યાગ હોતા હૈ, યહ બાત ઇસ સૂત્રાંશ સે સૂત્રકાર પ્રકટ કરતે  
હુણ કહતે હૈ—

હે શિષ્યવૃન્દ ! તુમ જિસે સમ્યગ્જ્ઞાન સમજતે હો વહ મુનિકા કર્મ  
—સંયમાચરણરૂપ હૈ ઓર જો મુનિકા કર્મ હૈ વહ સમ્યગ્જ્ઞાન હૈ—એસા  
સમજો । ઇન દોનોં મેં ઇકતા હૈ ઇસ બાતકો પ્રકટ કરનેકે લિયે દોનોં  
જગહ ઇન દોનોં ઉદ્દેશ્ય ઓર વિધેયોંકા વિપર્યાસ—હેરફેર સે કથન કિયા  
ગયા હૈ—એસા સમજના ચાહિયે । જ્ઞાનકા ફલ વિરતિ ઓર સમ્યક્ત્વ કા  
અભિવ્યંજન—પ્રકટ કરના—હૈ ।

ભાવાર્થ—પ્રથમ કથનમેં સમ્યગ્જ્ઞાન ઉદ્દેશ્ય ઓર મૌન—મુનિકર્મ—  
સંયમાચરણ વિધેય હૈ, દ્વિતીય કથનમેં મુનિકર્મ ઉદ્દેશ્ય ઓર સમ્યગ્જ્ઞાન  
વિધેય હૈ । ચારિત્રકા નિર્માણ કરના ઓર સમ્યક્ત્વકા પ્રાદુર્ભાવ કરના  
યે ઉસ જ્ઞાનકે ફલ હૈ ।

નૈતચ્છક્યમિત્યાદિ—યહ સમ્યગ્જ્ઞાનરૂપ મુનિ—કર્મ શિથિલ  
આદ્ર્યમાણ, ગુણાસ્વાદી, વક્સમાચારવાલે, પ્રમત્ત, ગૃહસ્થ પુરુષોં

“યત્ સમ્યક્ પશ્યત તન્મૌનમિતિ પશ્યત, યન્મૌનં પશ્યત તત્સમ્યગિતિ પશ્યત ।”

પાપકર્મના પરિત્યાગથી સમ્યગ્જ્ઞાન, એનાથી પાપકર્મના પરિત્યાગ થાય  
છે. આ વાત આ સૂત્રાંશથી સૂત્રકાર પ્રગટ કરતા કહે છે—

હે શિષ્યવૃન્દ ! તમે જેને સમ્યગ્જ્ઞાન સમજો છો તે મુનિના કર્મ—સંય-  
માચરણરૂપ છે અને જે મુનિનું કર્મ છે તે સમ્યગ્જ્ઞાન છે એમ સમજો. આ  
બંનેમાં એકતા છે આ વાત પ્રગટ કરવા માટે બંને સ્થળે બંને ઉદ્દેશ્ય અને  
વિધેયોના વિપર્યાસ—હેરફેરથી કથન કરેલ છે—એમ સમજવું જોઈએ. જ્ઞાનનું  
ફળ વિરતિ અને સમ્યક્ત્વનું અભિવ્યંજન—પ્રગટ કરવું તે છે.

ભાવાર્થ—પ્રથમ કથનમાં સમ્યગ્જ્ઞાન ઉદ્દેશ્ય અને મૌન—મુનિકર્મ—સંયમા-  
ચરણ વિધેય, બીજા કથનમાં મુનિકર્મ ઉદ્દેશ્ય અને સમ્યગ્જ્ઞાન વિધેય છે. ચારિ-  
ત્રનું નિર્માણ કરવું અને સમ્યક્ત્વનો પ્રાદુર્ભાવ કરવો તે એ જ્ઞાનનું ફળ છે.

નૈતચ્છક્યમિત્યાદિ—આ સમ્યગ્જ્ઞાનરૂપ મુનિકર્મ શિથિલ, આદ્ર્યમાણ,  
ગુણાસ્વાદિક, વક્સમાચારવાળા, પ્રમત્ત, ગૃહસ્થ પુરુષોથી સમાચરિત બની શકાતું

પાર્શ્વસ્થાદિભિઃ આદ્ર્યમાણૈઃ=પુત્રાદ્યમિષ્વજ્ઞપ્રેમ્ણા આદ્રીક્રિયામાણૈઃ; અપરં ચ ગુણાસ્વાદૈઃ  
 ગુણેષુ=શબ્દાદિષુ આસ્વાદઃ=અભિરુચિર્યેષાં તે ગુણાસ્વાદાસ્તૈઃ, एवं વક્ત્રસમાચારૈઃ-  
 વક્ત્રઃ=કુટિલઃ સમાચારઃ=અનુષ્ઠાનં વર્તનમિતિ વા યેષાં તે વક્ત્રસમાચારાસ્તૈઃ-  
 માયાનિકૃતિમદ્ભિઃ, કિંચ પ્રમત્તૈઃ=નિદ્રાદિપંચવિધપ્રમાદવદ્ભિઃ ‘અગારમાવસદ્ભિઃ,  
 અગારં=ગૃહમ્ ‘આવસદ્ભિઃ’-આ=સમન્તાદતિગૃહ્યચા વસદ્ભિઃ-ગૃહવાસિભિઃ,  
 एतादृशैः પુરુષૈરેતત્સમ્યગ્જ્ઞાનરૂપમૌનાનુષ્ઠાનં વિધાતું ન શક્યં ભવતિ । કેનેદં મૌના-  
 નુષ્ઠાનં કર્તું શક્યમિત્યાહ-‘મુનિઃ’ इत्यादि । मुनिः=શિથિલાદિપૂર્વોક્તવિશે-  
 षणवर्जितः संयमी मौनं=સર્વસાવચવ્યાપારપરિત્યાગરૂપં મુનિભાવં સમાદાય=સમ્ય-  
 से नहीं समाचारित हो सकता है। जो शिथिल हैं-मन्दपरिणामी  
 होनेसे कमजोर-संयम या तप आराधनमें धैर्य एवं दृढता से रहित हैं  
 ऐसे अवसन्न पार्श्वस्थ-आदिकों से, पुत्रादिकों में जिनके ममत्व परिणाम  
 जाग्रत है अतएव उससे जिनका अंतःकरण भीजा-अतिशय मुग्ध बना  
 हुआ है ऐसे आद्रीक्रियमाण-अत्यन्तमोही मानवोंसे, शब्दादिक विषयों  
 में जिनकी रुचि लवलीन है, वे गुणस्वादी हैं ऐसे गुणस्वादियों से, वक्त्र-  
 समाचारवालों-जिनका अनुष्ठान अथवा वर्तन कुटिल है ऐसे मायावी  
 मनुष्यों से, निद्रादिक पंचप्रमाद सेवन करनेवालों से, और जो गृहमें  
 अत्यंत गृह्यता से रहते हैं ऐसे गृहवासी गृहस्थों से कभी भी यह मुनि-  
 कर्म सेवित नहीं हो सकता है । इस मौनको कौन आचर सकता है ? इसके  
 लिये “मुनिमौनं समादाय धुनीयात् कर्मशरीरकम्” सूत्रकार यह कहते  
 हैं अर्थात्-उपर्युक्त इन शिथिलादिक विशेषणोंसे जो रहित हैं ऐसे संयमी  
 मनुष्य ही सर्वसावचव्यापार का परित्यागरूप मुनिभाव-मौन का अच्छी

નથી. જે શિથિલ છે-મંદપરિણામી હોવાથી કમજોર-સંયમ યા તપ આરાધ-  
 નામાં ધૈર્ય તેમજ દૃઢતાથી રહિત છે એવા અવસન્ન પાર્શ્વસ્થ-આદિકોથી, પુત્રા-  
 દિકોમાં જેનું મમત્વ પરિણામ જાગ્રત છે માટે તેનાથી જેનું અન્તઃકરણ ભીન્નએદું-  
 અતિશય મુગ્ધ બનેદું છે એવા આદ્રીક્રિયામાણ-અત્યંત મોહી માનવોથી, શબ્દાદિક  
 વિષયોમાં જેની રૂચી લવલીન છે તે ગુણસ્વાદી છે એવા ગુણસ્વાદીઓથી, વક્ત્ર  
 સમાચારવાળા-જેનું અનુષ્ઠાન અને વર્તન કુટીલ છે એવા માયાવી મનુષ્યોથી,  
 નિદ્રાદિક પાંચ પ્રમાદ સેવન કરવાવાળાથી, અને જે ઘરમાં ઘણી આસક્તિથી રહે  
 છે એવા ઘરવાસી ગૃહસ્થોથી ક્યારેય પણ આ મુનિ-કર્મ સેવિત થઈ શકતું  
 નથી. આ મૌનને કોણ આચરી શકે છે ? આ માટે “મુનિમૌનં” ઇત્યાદિ  
 સૂત્રકાર કહે છે, અર્થાત્-ઉપર મુજબના એ શિથિલાદિક વિશેષણોથી જે રહિત છે  
 એવા સંયમી મનુષ્ય જ સર્વ સાવચ વ્યાપારના પરિત્યાગરૂપ મુનિભાવ-મૌનને સારી



મૃદીત્વા કર્મશરીરકં=કાર્મણં શરીરમુપલક્ષણાદૌદારિકમપિ ધુનીયાત્=કમ્પયેત્ કર્માણિ દૂરીકુર્યાદિત્યર્થઃ, ધૂનનપ્રકારમેવાહ-‘પ્રાન્ત’ મિત્યાદિ, સમ્યક્ત્વદર્શિનઃ સમત્વદર્શિનો વા વીરાઃ=કર્મવિદારણકુશલાઃ પ્રાન્તં=નિસ્સારં પુરાણકુલત્થાદિકં પર્યુષિતં બલ્લચણકાદિનિષ્પન્નં તક્રમિશ્રિતમન્નાદિકં વા રૂક્ષં=ઘૃતાદિવિકૃતિવર્જિતમ્ અશનં તદપિ વિગતાદ્ધારધૂમં સેવન્તે=મુજ્જન્તે, સ કીદૃશો ભવતી ?ત્યાહ ‘એષઃ=પ્રાન્તરૂક્ષાહારી મુનિઃ=સંયમી ઓઘન્તરો ભવતિ, સ એપ તીર્ણો વિમુક્તો વિરતો

તરહ્ પ્રહ્ણ કરકે કર્મશરીર-કાર્મણશરીર, એવં ઉપલક્ષણ સે હસ ઔદારિક શરીર કા ખી કમ્પન-વિનાશ કર દેતે હૈં । વિનાશપ્રકારકો સૂત્રકાર-“ પ્રાન્તં રૂક્ષં સેવન્તે વીરાઃ સમ્યક્ત્વદર્શિનઃ ” હસ સૂત્રાંશ મેં પ્રકટ કરતે હૈં—સમ્યક્ત્વ અથવા સમત્વ કો દેઁલનેકા જિનકા સ્વભાવ હૈ વે સમ્યક્ત્વદર્શી હૈં, એસે મનુષ્ય હી કર્મોં કે વિનાશ કરને મેં કુશલ હોતે હૈં, હસલિયે વે વીર કહલાતે હૈં । યે વીર પ્રાન્ત—નિઃસાર પુરાની કુલથી આદિકા, પર્યુષિત-શીતલ બલ્લ-બાલચના આદિસે તૈયાર હુઆ, અથવા છાછ આદિસે મિશ્રિત બાલચના આદિકા, તથા રૂક્ષ-ઘૃતાદિક વિકૃતિસે રહિત એસે ભોજનકા અંગાર ધૂમાદિ દોષોં સે રહિત હોને પર હી સેવન કરતે હૈં આહારરૂપમેં પ્રહ્ણ કરતે હૈં । પ્રાન્ત એવં રૂક્ષ આહાર લેનેવાલે યે મુનિજન ઓઘન્તર હોતે હૈં । ભાવ ઓઘરૂપ સંસાર સે પાર હો જાતે હૈં । “તીર્ણો મુક્તો વિરતો વ્યાખ્યાતઃ” હસલિયે યે ઓઘન્તર મુનિ તીર્ણ મુક્ત ઔર વિરત તીર્થઙ્કર પ્રભુદ્વારા કહે ગયે હૈં ।

રીતે યહ્ણ કરી કર્મશરીર-કાર્મણશરીર એવં ઉપલક્ષણથી આ ઔદારિક શરીરને પણ વિનાશ કરી દે છે. વિનાશના પ્રકારને સૂત્રકાર “ પ્રાન્તં રૂક્ષં ” ઇત્યાદિ સૂત્રાંશથી પ્રગટ કરે છે. સમ્યક્ત્વ અથવા સમત્વ જોવાને જોનો સ્વભાવ છે તેઓ સમ્યક્ત્વદર્શી છે. એવા મનુષ્ય જ કર્મોનો વિનાશ કરવામાં કુશળ હોય છે. માટે તે વીર કહેવાય છે. એ વીર પ્રાન્ત નિઃસાર પુરાની કુળથી આદિના, પર્યુષિત-શીતલ બલ્લ-બાલચણા આદિથી તૈયાર થયેલ અથવા છાસ આદિથી મિશ્રિત બાલચણા આદિ, તથા રૂક્ષ-ઘૃતાદિક વિકૃતિથી રહિત એવા ભોજનના અંગાર ધૂમાદિક દોષોથી રહિત હોવાથી તે સેવન કરે છે-આહારરૂપમાં યહ્ણ કરે છે. રૂક્ષ આહાર લેવાવાળા આ મુનિજન ઓઘન્તર બને છે, ભાવ ઓઘરૂપ સંસારથી પાર થઈ જાય છે. “તીર્ણો મુક્તો વિરતો વ્યાખ્યાતઃ” આ માટે એ ઓઘન્તર મુનિ તીર્ણ, મુક્ત અને વિરત તીર્થંકર પ્રભુદ્વારા કહેવાયા છે.

भवतीति व्याख्यातः=तीर्थकृद्भिः कथितः, सकलसमारम्भवर्जितो रागद्वेषरहितो मुनिर्जीवन्नपि मुक्त एव घातिकर्मचतुष्टयाभावादित्याशयः । इति ब्रवीमि—इत्यस्यार्थस्तूक्त एव ॥ सू० ५ ॥

॥ पञ्चमाध्ययनस्य तृतीय उद्देशः समाप्तः ॥ ५-३ ॥

भावार्थ—सकल समारंभों से रहित, राग और द्वेषसे वर्जित मुनि चार घातिया कर्मों के अभाव से जीते हुए भी मुक्त ही है । “ इति ब्रवीमि ” इन पदों का अर्थ पहिले कहा जा चुका है ॥

॥ पंचम अध्ययनका तृतीय उद्देश समाप्त ॥ ५-३ ॥

भावार्थ—सकल समारंभोत्थी रहित राग अने द्वेषथी वर्जित मुनि चार घातिया कर्मोंना अभावथी जवता होवाछतां पणु तेमुक्त न छे. “ इति ब्रवीमि ” आ पदोनो अर्थ आगण कडेवाध गथो छे.

पांचमा अध्ययननो त्रीजे उद्देश समाप्त ॥ ५-३ ॥



### અથ પશ્ચમાધ્યયનસ્ય ચતુર્થ ઉદ્દેશઃ ।

ગતસ્તૃતીયોદ્દેશ ઇદાનીં તુરીયઃ પ્રારમ્ભ્યતે । પૂર્વત્ર પરિગ્રહવતો દોષમુદ્ઘાત્ય તન્નિરાસેનૈવ ચિરતઃ સંયમી ભવતીતિ વર્ણિતમ્ । અત્રાવ્યક્તસ્યૈકચરસ્ય મુનિત્વં પ્રણશ્યતીતિ પ્રદર્શનાય તસ્ય પ્રત્યવાયાઃ પ્રતિપાદનીયાઃ સન્તીતિ સમ્પ્રતિ તસ્ય દોષોદ્ઘાવનાયાહ—‘ ગામાણુ ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—ગામાણુગામં દૂઝ્જમાણસ્સ દુઝ્જાયં દુપ્પરવકંતં  
ભવઙ્ અવિયત્તસ્સ ભિક્ખુણો ॥ સૂ. ૧ ॥

છાયા—ગ્રામાણુગામં દ્રવતો ( વિહરતઃ ) દુર્યાતં દુપ્પરાક્રાન્તં ભવત્યવ્યક્તસ્ય મિશ્નોઃ ॥ સૂ. ૧ ॥

‘ ગ્રામાણુગામ ’ મિત્યાદિ, ‘ ગ્રામાણુગામ ’ ગ્રસતિ બુદ્ધ્યાદિગુણં યઃ સ

### ॥ પાંચવે અધ્યયનકા ચતુર્થ ઉદ્દેશ ॥

તૃતીય ઉદ્દેશકા વર્ણન ક્રિયા અવ ચતુર્થ ઉદ્દેશકા સૂત્રકાર વર્ણન કરતે હૈં ।

પૂર્વ ઉદ્દેશમેં પરિગ્રહીકે દોષોંકા કથન કર યહ બતલાયા ગયા હૈં કિ પરિગ્રહકે ત્યાગસે હી વ્રતી સંયમી હોતા હૈં । ઇસ ઉદ્દેશમેં અવ્યક્ત-અનભિજ્ઞ એકલવિહારી સે મુનિપના નહીં સધ સકતા હૈં—ઇસ વિષયકો દિશ્વાનેકે લિયે ઉસકે પ્રત્યવાય-વિઘ્નસમૂહ પ્રતિપાદનીય-કથન કરનેકે યોગ્ય હૈં । ઇસલિયે સૂત્રકાર સર્વપ્રથમ ઉસકે દોષોંકે પ્રકટ કરનેકે લિયે કહતે હૈં “ ગામાણુ. ” ઇત્યાદિ—

બુદ્ધિ આદિ ગુણોંકા જો ગ્રાસ કરતા હૈં—અર્થાત્ બુદ્ધ્યાદિક ગુણ

### પાંચમા અધ્યયનનો ચોથો ઉદ્દેશ.

ત્રીજા ઉદ્દેશનું વર્ણન કર્યું, હવે સૂત્રકાર ચોથા ઉદ્દેશનું વર્ણન કરે છે.

પૂર્વ ઉદ્દેશમાં પરિગ્રહીના દોષોનું વર્ણન કરી એ બતાવવામાં આવ્યું છે કે પરિગ્રહના ત્યાગથી જ વ્રતી સંયમી બને છે. આ ઉદ્દેશમાં અવ્યક્ત-અનભિજ્ઞ એકલવિહારીથી મુનિપણું સધાર્થ શકતું નથી—આ વિષય સમજાવવા માટે એના પ્રત્યવાય-વિઘ્નસમૂહ પ્રતિપાદનીય-કથન કરવા યોગ્ય છે. આ માટે સૂત્રકાર સર્વ પ્રથમ તેના દોષોને પ્રગટ કરવા માટે કહે છે “ ગામાણુ. ” ઇત્યાદિ—

બુદ્ધિ આદિ ગુણોનો જ નાશ કરે છે અર્થાત્ બુદ્ધિ આદિના ગુણ ન્યાં



ગ્રામસ્તસ્માદ્ગ્રામાદ્ અનુ=પથાદિતરો ગ્રામો ગ્રામાનુગ્રામઃ, યતશ્ચલતિ સ ગ્રામસ્તદ્ભિન્નો ગમ્યમાનોઽનુગ્રામસ્તં દ્રવતઃ=અવ્યક્તસ્ય=શ્રુતેનાવસ્થયા વોભયેન વા બાલસ્ય ભિક્ષોઃ=ભિક્ષાશીલસ્ય મુનેઃ દુર્યાતં-દુષ્ટં ગમનં, તસ્ય વિહરણં નિન્દ્યમિત્યર્થઃ, દુષ્પરાક્રાન્તં=દુષ્ટં પરાક્રાન્તં=પરાક્રમણં તસ્ય પરાક્રમણસ્ફોરણં નિન્દ્યં ભવતિ, અવ્યક્તસ્યૈકચર્યયા ચારિત્રાન્તરાયોદયેન બ્રહ્મચર્યસ્વલનાદેરવશ્યમ્ભાવાત્ ।

જહાં પર નિવાસ કરને સે પ્રાયઃ શિથિલ હોતે હૈં ઉસકા નામ ગ્રામ હૈ । ઉસસે દૂસરા ગમ્યમાન ગ્રામ-જહાં જાયા જાતા હૈ-વહ અનુગ્રામ હૈ । એક-ચર્યા સે-એકાકી ગ્રામાનુગ્રામ વિહાર કરનેવાલે, જો આગમ સે અવ્યક્ત-અનભિજ્ઞ હૈ, યા વયસે અવ્યક્ત હૈ, અથવા આગમ વય દોનોંસે અવ્યક્ત હૈ, ઉસ મુનિકા વિહાર નિંદ્ય હૈ । એકાકી વિહાર કરનેકા ઉસકા પરાક્રમ નિંદા-યોગ્ય હૈ-પ્રશંસનીય નહીં હૈ-આગમાનુકૂલ નહીં હૈ । કારણ કિ ઇસ પ્રકાર-કે મુનિકો ઉસ એકાકી વિહારમેં ચારિત્ર અન્તરાયકે ઉદયસે બ્રહ્મચર્ય-વ્રતકી સ્વલના અવશ્યમ્ભાવી હૈ ।

ભાવાર્થ—આગમાદિ સે જો અવ્યક્ત હૈ એસે મુનિકા એકાકી ગ્રામા-નુગ્રામ વિહાર કરનાં ઉચિત નહીં હૈ । જો મુનિજન એકાકી વિહાર કરને કે અપને પરાક્રમકી પ્રશંસા કરતે હૈં । ઉનકા ઇસ પ્રકારકા કથન નિંદ્ય હૈ । કારણ કિ શ્રુતાદિ સે અવ્યક્ત મુનિકા વહ એકાકી વિહાર ઉસકે બ્રહ્મચર્યવ્રતકી ક્ષતિકા કારણ અવશ્ય બન જાતા હૈ ।

નિવાસ કરવાથી ખરેખર શિથિલ બને છે. એનું નામ ગ્રામ છે. એનાથી બીજું ગમ્યમાન ગ્રામ-જ્યાં જવાય છે તે અનુગ્રામ છે. એકચર્યાથી એકાકી ગ્રામા-નુગ્રામ વિહાર કરવાવાળા જે આગમથી અવ્યક્ત-અનભિજ્ઞ છે. અથવા ઉંમરથી અવ્યક્ત છે અથવા આગમ અને વય બન્નેથી અવ્યક્ત છે એવા મુનિનો વિહાર નિંદ્ય છે. એકાકી વિહાર કરવાનું તેનું પરાક્રમ નિંદા યોગ્ય છે-પ્રશંસનીય નથી-આગમ અનુકૂળ નથી, કારણ કે આ પ્રકારના મુનિના તેવા એકાકી વિહારથી ચારિત્ર અંતરાયના ઉદયથી બ્રહ્મચર્ય વ્રતની સ્વલના નિશ્ચિત બની રહે છે.

ભાવાર્થ—આગમથી જે અવ્યક્ત છે એવા મુનિનો એકાકી ગ્રામાનુગ્રામ વિહાર કરવો ઉચિત નથી. જે મુનિજન એકાકી વિહાર કરીને પોતાના પરા-ક્રમની પ્રશંસા કરે છે તેનું આવા પ્રકારનું કથન નિંદ્ય છે. કારણ કે શ્રુતાદિથી અવ્યક્ત મુનિનો તે એકાકી વિહાર તેના બ્રહ્મચર્ય વ્રતની ક્ષતિ (નાશ)નું કારણ બની જાય છે.

વ્યક્તાવ્યક્તભેદેન મુનિર્દ્વિવિધઃ, તત્ર ચતુર્ભંગી યથા-શ્રુતેનાવ્યક્તો વયસાપ્ય-  
વ્યક્તઃ (૧) શ્રુતેનાવ્યક્તો વયસા વ્યક્તઃ (૨) શ્રુતેન વ્યક્તો વયસા ચાવ્યક્તઃ (૩)  
શ્રુતેન વ્યક્તો વયસાંડપિ વ્યક્તઃ (૪) ।

તત્ર શ્રુતેન વયસા ચાવ્યક્તઃ-શ્રુતેનાવ્યક્તઃ=આગમાનભિજ્ઞઃ, વયસા ચાવ્ય-  
ક્તોડ્વયવયસ્કઃ અષ્ટવર્ષાદારભ્ય પશ્ચર્વિંશતિવર્ષપર્યન્તઃ, એવં ચોભયથાડ્વયવ્યક્તસ્ય  
સંયમાત્મવિરાધનયોઃ સમ્ભવાન્નૈકચર્યા કલ્પતે, એષ પ્રથમો ભંગઃ (૧) ।

શ્રુતેનાવ્યક્તસ્ય વયસા ચ વ્યક્તસ્યાપિ સા ન કલ્પતે, શ્રુતસ્યાનવગમેનોભય-  
વિરાધનાસમ્ભવાત્ ઇતિ દ્વિતીયો ભંગઃ (૨) ।

વ્યક્ત ઔર અવ્યક્ત કે ભેદસે મુનિ દો પ્રકારકે હૈં । યહાં પર યહ  
ચતુર્ભંગી બનતી હૈ, જૈસે-(૧) જો શ્રુતસે ભી અવ્યક્ત હૈ ઔર વયસે ભી  
અવ્યક્ત હૈ, (૨) શ્રુતસે અવ્યક્ત હૈ, વયસે વ્યક્ત હૈ, (૩) શ્રુતસે જો  
વ્યક્ત હૈ, વયસે અવ્યક્ત હૈ, (૪) શ્રુતસે ભી વ્યક્ત હૈ ઔર વયસે ભી  
વ્યક્ત હૈ ।

इनमें “श्रुत और वयसे अव्यक्त है” इस प्रथम भंगका खुलासा  
अर्थ इस प्रकार है, श्रुतसे अव्यक्तका मतलब आगमानभिज्ञसे है-जो  
आगमका ज्ञाता नहीं है। वयसे अव्यक्तका अर्थ अल्पवयस्कसे है। आठ  
वर्षसे लेकर २५ वर्ष तकका साधु अल्पवयस्क माना गया है। इस तरह  
दोनों प्रकारसे जो अव्यक्त है उसके संयमकी और आत्माकी विराधना  
संभवित है। इससे एकाकी विहार इसका कल्पित नहीं है। यह  
प्रथम भंग है।

શ્રુતસે અવ્યક્ત ઔર વયસે વ્યક્ત મુનિકી ભી એકચર્યા કલ્પ્ય નહીં

વ્યક્ત અને અવ્યક્તના ભેદથી મુનિ બે પ્રકારના છે. અહિંયા એ ચતુ-  
ર્ભંગી અને છે. જેમ (૧) જે શ્રુતથી પણ અવ્યક્ત છે, અને વયથી પણ અવ્યક્ત  
છે. (૨) શ્રુતથી અવ્યક્ત છે, વયથી વ્યક્ત છે, (૩) શ્રુતથી જે વ્યક્ત છે વયથી  
અવ્યક્ત છે, (૪) શ્રુતથી પણ વ્યક્ત છે અને વયથી પણ વ્યક્ત છે.

આમાં “શ્રુત અને વયથી અવ્યક્ત છે” આ પ્રથમ ભંગનો ખુલાસો આ  
પ્રકારે છે. શ્રુતથી અવ્યક્તનો મતલબ જે આગમનો જ્ઞાતા નથી. વયથી નાની  
ઉંમરનો છે. આઠ વર્ષથી માંડી ૨૫ વર્ષ સુધીનો સાધુ અલ્પ વયસ્ક માનવામાં  
આવેલ છે, આ રીતે બન્ને પ્રકારથી જે અવ્યક્ત છે તેના સંયમની અને આત્માની  
વિરાધના સંભવિત છે. એથી એકાકી વિહાર તેનો કલ્પ નથી. આ પ્રથમ  
ભંગ છે. શ્રુતથી અવ્યક્ત અને વયથી વ્યક્ત મુનિની પણ એકચર્યા કલ્પિત

શ્રુતેન વ્યક્તસ્ય વયસા ચાવ્યક્તસ્યાપિ સા ન કલ્પતે; અલ્પવયસ્કસ્ય સ્વ-  
ભાવચાપલ્યાદિના સકલજનતોપહાસપાત્રત્વાત્ । પરિપહોપસર્ગાદિસહનાસમ્ભવાચ્ચ ।  
एष तृतीयो भङ्गः (३) ।

उभयथा व्यक्तानामष्टगुणसम्पन्नानां प्रतिमाप्रतिपन्नानां स्थविरकल्पिकानां  
वा कारणवशादेकचर्या कल्पते । कारणाभावे च तेषामपि प्रतिषिद्धैकचर्या, अष्टगुणाः—  
श्रद्धा-सत्य-मेधा-बहुश्रुतत्व-शक्त्य-क्लेशित्व-धृति-वीर्यात्मकाः स्थानाङ्गाष्टमस्थानो-  
है । कारण कि शास्त्र-आगमसे अनभिज्ञ होने के कारण उसके उभय-  
संयम और आत्माकी विराधना संभवित है । यह द्वितीय भंग है ।

श्रुतसे व्यक्त और वयसे अव्यक्त मुनिकी भी एकचर्या कल्पित  
नहीं है । कारण कि अल्पवयस्क होनेसे वह मुनि स्वाभाविक चपलता  
की वजहसे सकल जनता की हंसीका पात्र हो जाता है । तथा वह परी-  
षह और उपसर्गादिको भी सहन नहीं कर सकता है । यह तृतीय भंग है ।

जो मुनि दोनों प्रकारसे व्यक्त हैं और आठ गुणोंसे संपन्न हैं उनके  
लिये, और जो प्रतिमाओंके धारक हैं उनके लिये, तथा जो स्थविरकल्पी  
हैं कारणवश उनके लिये एकचर्या कल्पित है, परन्तु कारण के अभावमें  
स्थविरकल्पीकी एकचर्या प्रतिषिद्ध है । श्रद्धा, सत्य, मेधा, बहुश्रुतत्व,  
शक्ति, अक्लेशित्व, धृति और वीर्य ये ८ आठ गुण स्थानाङ्गके आठवें  
स्थान में कहे हुए हैं । एकचर्या में गुप्ति समिति आदि जो साधु के गुण  
हैं उनमें दोषबाहुल्य की संभावना रहती है; जैसे कि पूर्वोक्त परिस्थिति-

નથી, કારણ કે શાસ્ત્ર-આગમથી અનભિજ્ઞ હોવાથી તેના બન્ને સંયમ અને  
આત્માની વિરાધના સંભવિત છે. આ બીજો ભંગ છે.

શ્રુતથી વ્યક્ત અને વયથી અવ્યક્ત મુનિની પણ એકચર્યા કલ્પિત નથી.  
કારણ કે નાની ઉંમર હોવાથી તે મુનિ સ્વાભાવિક ચપલતાના કારણે સકળ  
જનતાની હાંસીને પાત્ર બની બાથ છે તથા એ પરિષદ અને ઉપસર્ગાદિકને પણ  
સહન કરી શકતો નથી. આ ત્રીજો ભંગ છે.

જે મુનિ બન્ને પ્રકારથી વ્યક્ત છે અને આઠ ગુણોથી સંપન્ન છે તેના માટે  
અને જે પ્રતિમાઓના ધારક છે તેના માટે, તથા જે સ્થવિરકલ્પી છે કારણવશ તેના  
માટે એકચર્યા કલ્પિત છે. પરંતુ કારણના અભાવમાં સ્થવિરકલ્પીને એકચર્યા  
પ્રતિષિદ્ધ છે. શ્રદ્ધા, સત્ય, મેધા, બહુશ્રુતત્વ, શક્તિ, અક્લેશિત્વ, ધૃતિ અને  
વીર્ય આઠ ગુણ સ્થાનાંગના આઠમા સ્થાનમાં કહેલ છે. એકચર્યામાં, ગુપ્તિ સમિતિ  
આદિ જે સાધુના ગુણ છે તેમાં દોષ અને ભૂલની સંભાવના રહે છે. તે પણ



क्ता विज्ञेयाः, एकचर्यायां समितिगुण्यादिसाधुगुणेषु दोषबाहुल्यसम्भवात्, तथाहि मुनेरेकाकिनो विहरतः स्त्री-कुक्कुर-परतीर्थिककृतपराभवाविशुद्धभिक्षाद्यशनदोषनिकरो जागर्ति । रोगाद्यवस्थायां वैयावृत्याद्यसम्भवेनात्मसंयमविराधनायाश्च सम्भवः, राग-द्वेषादिवशेनैकाकी विचरन् सुखकामी मुनिः सागरतरङ्गव्याकुलो बहिर्निर्गतो मीन इव नश्यति ।

गच्छगतस्य मुनेर्बहुगुणाधिगमो जायते, तथाहि-सामाचार्याः सम्यक्पालनं, श्रुताध्ययनादिना ज्ञानाद्युपार्जनं, तन्निश्रयाऽन्येषां गच्छगतबालवृद्धादीनां सम्यग्निर्वाहः, संयमे सीदतां स्थिरीकरणादिना जिनप्रवचनप्रभावकत्वात्स्वपरतारकत्वं च भवतीति भावः ॥ सू० १ ॥

पूर्वोक्तमेवार्थं प्रकटयति—‘ वयसा वि ’ इत्यादि ।

संपन्न कोई मुनि एकाकी विहार करते समय स्त्री, कुक्कुर, परतीर्थिक-जनद्वारा पराभवित हो सकता है । तथा अविशुद्ध-अकल्पित भिक्षादिक से प्राप्त भोजनके ग्रहण करनेसे आहार संबंधी दोषोंसे भी वह नहीं बच सकता है । यदि कभी किसी रोगादिकका आक्रमण इसके ऊपर हो जाता है तो ऐसी दशा में उसकी कोई दूसरा सजातीय मुनि न होनेसे वैयावृत्ति भी ठीक २ नहीं हो सकती है, ऐसी अवस्थामें वह अपनी आत्मा एवं संयमका विराधक भी हो सकता है । रागद्वेषादिके वशसे अकेला विहार करता हुआ सुखाभिलाषी मुनि समुद्रकी तरङ्गसे व्याकुल होकर उस बाहिर निकले हुए मत्स्यकी तरह नष्ट हो जाता है ।

अपने समुदाय-गच्छमें रहनेवाले मुनिके लिये अनेक गुणोंका लाभ होता है, जैसे—मुनिसामाचारीका अच्छी तरहसे पालन होता है ।

कोई पूर्वोक्त परिस्थिति संपन्न मुनि ओकाकी विहार करती वपते स्त्री, कूतरा, परतीर्थिक जन विगेरे द्वारा पराभवित थछ शके छे. तथा अकल्पित-अविशुद्ध भिक्षादिकथी प्राप्त भोजनतुं ग्रहण करवाथी आहार-संबंधी दोषोथी पणु ते भव्ती शकतो नथी, जे कोछ वपत कोछ रोगादिकतुं आक्रमण न्यारे तेना उपर थाय तो ओवी दशाभां तेनी कोछ भीज सज्जतीय मुनि न होवाथी सारवार पणु ठीक ठीक भनी शकती नथी. आवी अवस्थाभां ते पोतानो आत्मा तेमज संयमनो विराधक पणु भने छे. रागद्वेष आदिना वशथी ओकला विहार करनार सुखाभिलाषी मुनि समुद्रना तरंगथी व्याकुल भनीने तेमाथी अहार नीङ्गेला भाछला माइक पिताश पावे छे.

पोताना समुदाय-गच्छभां रहेवावाणा मुनि माटे अनेक गुणोनो लाभ थाय

મૂલમ્—વયસા વિ એગે બુદ્ધ્યા કુપ્પંતિ માણવા, ઉન્નયમાણે  
ય નરે મહયા મોહેણ મુજ્ઞઇ, સંબાહા બહવે ભુજ્ઞો ભુજ્ઞો દુરઇ-  
ક્રમા અજાણઓ અપાસઓ, એયં તે મા હોઝ, એયં કુસલસ્સ દંસણં,  
તદિદ્ધોએ તમ્મુત્તીએ તપ્પુરકારે, તસ્સન્ની તન્નિવેસણે, જયં વિહારી  
ચિત્તિનિવાઈ પંથનિજ્ઞાઈ પલિબાહિરે પાસિય પાણે ગચ્છિજ્ઞા।સૂ૦૨।

છાયા—વયસાડપ્યેક ઉક્તાઃ કુપ્યન્તિ માનવાઃ, ઉન્નતમાનશ્ચ નરો મહતા  
મોહેન મુહ્યતિ, સંબાધા બહવો ભૂયો ભૂયો દુરતિક્રમાં અજાનતોડપશ્યતઃ, એતત્તે મા  
ભવતુ, એતત્કુશલસ્ય દર્શનમ્, તદ્દૃષ્ટ્યા તન્મુક્ત્યા તત્પુરસ્કારઃ, તત્સંઙ્ગી તન્નિવેશનઃ,  
યતમાનવિહારી ચિત્તિનિપાતી પથિનિર્ધ્યાયી પર્યવાહ્યો દૃષ્ટ્વા પ્રાણિનો ગચ્છેત્ ॥સૂ૦૨॥

ટીકા—‘વયસે’ત્યાદિ, એકે=કેવન માનવાઃ તપઃસંયમાચરણવિરતાઃ  
एकाकिविहारिणःसाधवः, ગૃહસ્થાદિભિર્વચસાડપિ=શિક્ષાવચનેનાપિ ઉક્તાઃ=કથિતાઃ  
શાસ્ત્રાદિકકે અધ્યયનસે જ્ઞાનાદિકકા ઉપાર્જન હોતા હૈ । ઉસકી નિશ્રા  
સે ગચ્છમેં રહનેવાલે અન્ય વાલ વૃદ્ધ મુનિજનોંકા અચ્છી રીતિસે નિર્વાહ  
હોતા હૈ । સંયમમેં શિથિલ બને હુએ અન્ય મુનિજનોંકો ઉસમેં સ્થિર કરને  
આદિસે વહ જિનપ્રવચનકા પ્રભાવક હોતા હૈ, ઇસસે ઉસમેં સ્વ ઔર  
પરકી તારકતા ખી આતી હૈ ॥સૂ૦૧॥

સૂત્રકાર “વયસા વિ” ઇત્યાદિ સૂત્રદ્વારા પૂર્વોક્ત અર્થકા હી  
પ્રદર્શન કરતે હૈં ।

સચ્ચે તપ ઔર સંયમકે આચરણસે રહિત કિતનેક એકાકી વિહાર  
કરનેવાલે માનવ-સાધુ ગૃહસ્થજનોં કે ઉપર ઉનકે દ્વારા શિક્ષાવચનોંસે  
સમજાવે જાને પર ક્રોધ કરતે હૈં । યહાં સૂત્રકારને જો સાધુજન કે અર્થ

છે. જેમ કે મુનિસામાચારીનું સારી રીતે પાલન થાય છે શાસ્ત્રાદિકના અધ્યયનથી  
જ્ઞાનાદિકનું ઉપાર્જન થાય છે તેના આધારે ગચ્છમાં રહેવાવાળા અન્ય બાળ વૃદ્ધ  
મુનિજનોનો સારી રીતે નિર્વાહ થાય છે. સંયમમાં શિથિલ બનેલા અન્ય મુનિ-  
જનોને તેમાં સ્થિર બનાવવા આદિથી તે જનપ્રવચનનો પ્રભાવક બને છે.  
તેનાથી તેનામાં સ્વ અને પરની તારકતા પણ આવે છે. ॥ સૂ૦ ૧ ॥

સૂત્રકાર “વયસા વિ” ઇત્યાદિ સૂત્રદ્વારા પૂર્વોક્ત અર્થનું જ પ્રદર્શન કરે છે.

સાચા તપ અને સંયમના આચરણથી રહિત કેટલાક એકાકી વિહાર કરવાવાળા  
માનવ-સાધુ ગૃહસ્થજનોની ઉપર તેઓના દ્વારા શિક્ષાવચનોથી સમજણ અપાતાં  
ક્રોધ કરે છે. આદિ સૂત્રકારે જે સાધુજનના અર્થમાં મુનિ શબ્દનો પ્રયોગ ન કરી

સન્તઃ કુપ્યન્તિ=ક્રુધ્યન્તિ, અત્ર મુનિવાચકશબ્દં વિહાય માનવશબ્દેન કથનમેકાકિ-  
વિહારિણો નિન્દાસ્પદત્વસૂચનાર્થમ્; ભાપન્તે ચાહમનેન કથમપમાનિતઃ इत्यादि ।

યદ્વૈવં કથયન્તિ-કિં પરેઽપ્યનુચિતાચારચારિણો ન સન્તિ યદસ્માનેવાધિક્ષિપ-  
ન્તિ ભવન્ત ઇત્યાદિ બ્રુવન્તઃ સંતપ્યન્તે । અથવા-વચસાઽપ્યુક્તા એતે વ્યર્થજીવિનઃ  
કુક્ષિમ્ભરા ભવન્તિ-ઇત્યાદિવાક્યૈરભિહિતાઃ કુપ્યન્તિ, અપિ-શબ્દો ભિન્નક્રમસ્તેન  
કુપ્યન્તીત્યનેનાન્વયસ્તતઃ અભિશપન્તિ વા । કથં પુનરિમે નરકનિગોદાદિપાતજન-

મેં મુનિ શબ્દકા પ્રયોગ ન કર સામાન્ય માનવ શબ્દકા પ્રયોગ ક્રિયા  
હૈ ઉસસે યહ સૂચિત હોતા હૈ કિ એકાકી વિહાર કરનેવાલા સાધુ નિન્દા  
કા પાત્ર હૈ । એકાકી વિહાર કરનેવાલે સાધુકો જવ કોઈ ગૃહસ્થ-  
જન સમજાતા હૈ તો ઉસસે અપના અપમાન સમજાતે હૈં ઓર કહતે હૈં  
કિ મૈં ઇસસે ક્યોં અપમાનિત ક્રિયા જાતા હૂં, ઇસ વાતકો વિચાર કર  
વે ઉસ સમજાનેવાલે પર કુપિત હો ઉઠતે હૈં । અથવા અપને કો સમ-  
જાનેવાલે ગૃહસ્થજનસે વે યહ કહ દિયા કરતે હૈં કિ ઇસ પ્રકાર કે અનુ-  
ચિત આચારકા આચરણ કરનેવાલે ક્યા ઓર દૂસરે નહીં હૈં જો આપ  
હમારા હી તિરસ્કાર કર રહે હૈં, હમેં હી સમજા રહે હૈં, ઇસ પ્રકાર સે મી  
વે સંતપ્ત હો ઉઠતે હૈં । અથવા ઇનકા જીવન હી વ્યર્થ હૈં યે તો અપને  
ઉદર નિર્વાહ કે લિયે હી સાધુ હુએ હૈં ” ઇસ પ્રકાર કે વચનમાત્રસે કહે  
જાને પર મી યે ઉન પર ક્રોધિત હો ઉઠતે હૈં । “ અપિ ” શબ્દ ભિન્ન-  
ક્રમવાલા હૈ “ કુપ્યન્તિ ” ઇસ ક્રિયાકે સાથ ઉસકા સંબંધ હોનેસે  
કુપ્યન્તિ અપિ ” ક્રોધ મી કરતે હૈં ઓર “ અભિશપન્તિ ” શાપ મી દેતે

સામાન્ય માનવ શબ્દનો પ્રયોગ કરેલ છે એથી એ સૂચિત થાય છે કે એકાકી વિહાર  
કરવાવાળા સાધુ નિંદાને પાત્ર છે. એકાકી વિહાર કરવાવાળા સાધુને જો કોઈ  
ગૃહસ્થજન સમજાવે છે તો તેનાથી તે પોતાનું અપમાન સમજે છે અને કહે છે  
કે આ શા માટે મારો અપમાન કરે છે. આ વાતનો વિચાર કરીને તે સમજાવવા-  
વાળા ઉપર ક્રોધિત બને છે, અથવા તેને સમજાવનાર ગૃહસ્થજનને તે એવું સંભ-  
ળાવે છે કે આવા પ્રકારના અનુચિત આચારનું આચરણ કરવાવાળા શું કોઈ બીજા  
નથી ? જે આપ અમારો જ તિરસ્કાર કરતા રહો છો. અમને જ સમજાવો છો.  
આ પ્રકારથી પણ તે સંતપ્ત બને છે. અથવા ‘એમનું જીવન વ્યર્થ છે, એ  
તો પોતાના ઉદર નિર્વાહ માટે જ સાધુ થયેલ છે’-આ પ્રકારના વચન માત્ર  
કહેતાં જ તે ક્રોધિત બની જાય છે. ‘અપિ’ શબ્દ ભિન્નક્રમવાળો છે.  
“ કુપ્યન્તિ ” આ ક્રિયાની સાથ તેનો સંબંધ હોવાથી “ કુપ્યન્તિ અપિ ” ક્રોધ  
પણ કરે છે અને “ અભિશપન્તિ ” શ્રાપ પણ દે છે. નરકનિગોદાદિ ગતિઓમાં



ક્રોધકારિણો ભવન્તીત્યાહ—‘ઉન્નતમાન’ इत्यादि ‘उन्नतमानश्च’ उन्नतो मानो गर्वो यस्य स उन्नतमानः जात्यादिमानसम्पन्नः नरः=मनुष्यो महता मोहेन=प्रबल-  
कषायोदयेन मुह्यति=विवेकरहितो भवति ।

તતસ્તસ્ય કિં ભવતીત્યાહ—‘સંવાધા’ इत्यादि । अजानतः=एकचर्याजनित-  
कुगतिफलमबुध्यमानस्य, अपश्यतः=अज्ञानान्धत्वेन तपःसंयमाराधनशिवसुखफल-  
मप्रेक्षमाणस्य तस्य बह्वचः=अधिकाः संवाधाः संवाधयन्ति यास्ताः संवाधाः=  
वेदनाः परीषहोपसर्गजन्याः भूयो भूयः पुनः पुनः दुरतिक्रमाः=दुःखेन लङ्घनीयाः  
हैं । नरकनिगोदादि गतियोंमें जीवका पतन करानेवाले क्रोधके वशीभूत  
क्यों होते हैं ? इसके लिये सूत्रकार “उन्नतमानश्च नरो महता मोहेन  
मुह्यति” कहते हैं अर्थात्—जिसे उन्नत मान होता है, जात्यादि मदसे  
जो संपन्न होता है, ऐसा मनुष्य बड़े भारी मोहसे—प्रबल कषायसे  
विवेकरहित हो जाता है । विवेकसे विहीन होने पर वह ‘साधुमानव  
एकचर्यासे कुगतिरूप फलकी प्राप्ति करता है’—इस सिद्धान्तसे अनभिज्ञ  
हो जाता है और साथमें उसे यह भी नहीं मालूम रहता है कि तप  
और संयम की आराधनासे शिव—सुखरूप फलकी प्राप्ति होती है । इस  
अपनी मनमानी हालतमें उसे परीषह और उपसर्गजन्य अनेक वेदनाओंका  
पुनः पुनः भयंकर सामना करना पड़ता है । अर्थात् ऐसे एकलविहारी  
परीषह उपसर्गजन्य ऐसी २ वेदनाओंके जालमें फँस जाते हैं कि जिनसे  
रक्षण पाना उन्हें बहुत भारी हो जाता है । इसलिये शिष्यजनों की इन वेद-

જીવનું પતન કરવાવાળા ક્રોધને વશીભૂત કેમ બને છે ? આને માટે સૂત્રકાર  
“ઉન્નત” —ઈત્યાદિ કહે છે એટલે કે જેને ઉન્નત માન થાય છે, બતિ આદિના મદથી  
જે સંપન્ન હોય છે એવો મનુષ્ય ઘણા ભારી મોહથી—પ્રબલ કષાયના ઉદયથી  
વિવેકરહિત બની જાય છે. વિવેક વગરના બનવાથી તે ‘સાધુ-માનવ એકચર્યાથી  
કુગતિરૂપ ફળની પ્રાપ્તિ કરે છે’—આ સિદ્ધાંતથી અનભિજ્ઞ બની જાય છે. સાથો-  
સાથ તેને એ પણ માલુમ નથી રહેતું કે તપ અને સંયમની આરાધનાથી શિવ-  
સુખરૂપ ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે. આ પોતાની મનમાની હાલતમાં પરિષદ  
અને ઉપસર્ગજન્ય અનેક વેદનાઓનો તેણે વારંવાર ભયંકર સામનો કરવો પડે  
છે. અર્થાત્—આવા એકલવિહારી પરિષદ ઉપસર્ગજન્ય એવી એવી વેદનાઓની  
બળમાં ફસી જાય છે કે જેનાથી રક્ષણ મેળવવું ઘણું અઘરું બની જાય છે. આ  
કારણે શિષ્યજનોની આ વેદનાઓથી સદા રક્ષણ બની રહે આ અભિપ્રાયથી

भवन्ति, सर्वमुपपाद्य शिष्यं प्राह—‘एत’दित्यादि । हे शिष्य ! ते=तव एकाकि-  
विहारपीडाया दुर्लङ्घनीयत्वमजानतोऽपश्यतो गुर्वाज्ञापरिज्ञापालकस्य च एतत्=पूर्वो-  
क्तबाधाया दुरतिक्रमणीयत्वं मा भवतु । त्वया कदाऽप्येकचर्याप्रतिपन्नेन न भवि-  
तव्यमित्युपदेशः । सुधर्मास्वामी प्राह—‘कुशलस्ये’त्यादि, कुशलस्य=भगवतो  
महावीरस्य एतत्=पूर्वकथितं दर्शनं गुरुसन्निहितमधिवसतो गुणा एकाकिविहारिणो  
दोषाश्च भवन्तीत्यादिरूपोऽभिप्रायोऽस्ति ।

નાઓંસે સદા રક્ષણ બના રહે इस अभिप्रायसे सूत्रकार कहते हैं कि—“एतत्ते  
मा भवतु” हे शिष्य ! तुम कभी भी एकाकी विहार करनेवाले मत बनना,  
नहीं तो तुम्हें भी परीषद् और उपसर्गादिकोंसे उद्भूत अनेक प्राणान्तकारी  
कष्टोंका सामना करना पड़ेगा । तुम इन कष्टों से अनभिज्ञ हो, तुम क्या  
जानो कि एकाकी विहार करनेसे कैसे २ कष्टों और उपद्रवोंको झेलना  
पड़ता है, हे शिष्य ! तुम गुरुकी आज्ञाके पालक हो, इसलिये तुम  
से हमारा यही कहना है कि तुम कभी भी एकाकी विहारी न होना । ऐसे  
वर्तन से ही तुम पूर्वोक्त बाधाओंसे सदासुरक्षित रहोगे । श्रीसुधर्मा  
स्वामी कहते हैं, कुशल उपदेशक भगवान महावीरका यह पूर्वकथित दर्शन  
—अर्थात् सिद्धान्त है । इसका अभिप्राय यह है कि गुरुके निकट रहने-  
वाले शिष्योंको अनेक प्रकारसे लाभ होता है, तथा इससे विपरीत—  
एकाकी विहार करनेवालों में अनेक दोष उत्पन्न होते हैं ।

સૂત્રકાર કહે છે કે—“एतत्ते मा भवतु” હે શિષ્ય ! તમે કદાપિ પણ એકાકી  
વિહાર કરવાવાળા બનશો નહિ, નહિ તો તમારે પણ પરીષદ અને ઉપસર્ગા-  
દિકોથી ઉત્પન્ન અનેક પ્રાણાંતકારી કષ્ટોનો સામનો કરવો પડશે. તમે આ  
કષ્ટના બાણકાર ન હોવાથી તમોને શું બબર પડે કે એકાકી વિહાર કરવાથી  
કંઈ કંઈ બતનાં દુઃખો અને ઉપદ્રવો ભોગવવા પડે છે. હે શિષ્ય ! તમે  
ગુરૂની આજ્ઞાના પાલક છો. આ કારણે તમને માઈ એ કહેવાનું છે કે તમે કદિ  
પણ એકલવિહારી બનશો નહિ. આવા વર્તનથી જ તમે પૂર્વોક્ત ઉપદ્રવોથી  
સદા સુરક્ષિત રહેશો, શ્રી સુધર્માસ્વામી કહે છે કુશળ ઉપદેશક ભગવાન મહાવીરનું  
આ પૂર્વકથિત દર્શન એટલે સિદ્ધાંત છે. આનો અભિપ્રાય એ છે કે—ગુરૂની પાસે  
રહેવાવાળા શિષ્યોને અનેક પ્રકારનો લાભ થાય છે અને તેનાથી વિપરીત એકાકી  
વિહાર કરવાવાળામાં અનેક દોષ ઉત્પન્ન થાય છે.

एकचरस्य दोषानभिधाय सम्प्रति गुरुनिकटस्थितस्य मुनेः कर्तव्यं दर्शयति—  
'तद्दृष्ट्ये'त्यादि । 'तत्संज्ञी' संज्ञानं संज्ञा तस्य=गुरोः संज्ञा तत्संज्ञा, सा  
अस्यास्तीति तत्संज्ञी गुरोरिङ्गित-चेष्टितज्ञः, तन्निवेशनः=गुरुकुलनिवासी, 'तत्पुर-  
स्कारः' तस्य=गुरोः पुरस्कारः=विनयवैयावृत्त्यादिनिखिलकार्यकरणेऽग्रेसरो मुनिः,  
'तद्दृष्ट्या' तस्य=गुरोर्दृष्टिरभिप्रायस्तया ।

यद्वा—'तद्दृष्ट्या' तस्मिन्=निरवधानुष्ठाने दृष्टिस्तया । 'तन्मुक्त्या'  
तेन=गुरुणा कथिता मुक्तिः—सर्वविषयविरतिस्तन्मुक्तिस्तया विचरेत् । सर्वदा गुरु-

एकाकी विहार करनेवालों के दोषोंका कथन कर अब सूत्रकार गुरुके  
निकट बसनेवाले मुनिके कर्तव्योंको बतलाते हैं—

तद्दृष्ट्या इत्यादि—गुरुकी संज्ञा जिसके है वह तत्संज्ञी है अर्थात्  
गुरुके अभिप्रायों एवं चेष्टाओंको जो जाननेवाला है । जो तन्निवेशन—  
गुरुका निवेशनवाला—गुरुकुलमें रहनेवाला है । तत्पुरस्कार—गुरुकी विनय  
वैयावृत्ति आदि समस्त कार्यों के करनेमें जो अग्रेसर रहता है ऐसा मुनि  
गुरुके अभिप्रायसे अथवा निरवध अनुष्ठानमें दृष्टिसे और तन्मुक्ति—  
गुरुसे प्रतिपादित सर्वविषयविरतिरूप मुक्तिसे विचरण करे ।

भावार्थ—गुरुसमीप में वर्तमान शिष्य ही उनकी आज्ञानुसार  
संयमकी आराधनाशील बन कर सम्यग्ज्ञानादिकके लाभसे युक्त होता  
है; अन्य एकलविहारी नहीं । गुरुजनके निकट निवास करनेवाला शिष्य  
यत्मानविहारी—यतनाको करते हुए विहार करनेका स्वभाववाला होता  
है । चित्तनिपाती—गुरुकी रुचिसे चलनेके स्वभाववाला—आचार्य महा-

એકાકી વિહાર કરવાવાળાના દોષોનું કથન કરી હવે સૂત્રકાર ગુરૂની નિકટ  
વસવાવાળા મુનિનાં કર્તવ્યોને બતાવે છે.

તદ્દૃષ્ટ્યા ઇત્યાદિ. ગુરૂની સંજ્ઞા જેને છે તે તત્સંજ્ઞી છે, અર્થાત્ ગુરૂના  
અભિપ્રાયો અને ચેષ્ટાઓને જે જાણવાવાળા છે. જે તન્નિવેશન-ગુરૂકુળમાં રહેવાવાળા છે,  
ગુરૂનો વિનય વૈયાવૃત્તિ આદિ સમસ્ત કાર્યો કરવામાં જે અગ્રેસર રહે છે એવા  
મુનિ ગુરૂના અભિપ્રાયથી અથવા નિરવધ અનુષ્ઠાનમાં દૃષ્ટિથી અને તન્મુક્તિ-ગુરૂવળે  
પ્રતિપાદિત સર્વવિષયવિરતિરૂપ મુક્તિથી વિચરણ કરે.

ભાવાર્થ—ગુરૂસમીપ રહેનાર શિષ્ય જ તેની આજ્ઞાનુસાર સંયમનો  
આરાધનાશીલ બનીને સમ્યગ્જ્ઞાનાદિકના લાભથી યુક્ત બને છે. પણ એકલ-  
વિહારી નહીં, ગુરૂજનની નિકટ નિવાસ કરનાર શિષ્ય યતનાઓ કરતાં કરતાં  
વિહાર કરવાના સ્વભાવવાળો બને છે.



સમીપે વર્તમાનસ્તદાજ્ઞાનુસારી સંયમી સમ્યગ્જ્ઞાનાદિકં લભતે નૈકાકિવિહારીતિ  
 હૃદયમ્, સ ચ કીદૃશો ભવેદિત્યાહ—‘યતમાનવિહારી’—ત્યાદિ । યતમાનવિહારી  
 યતમાનઃ=યતનાં કુર્વાણઃ સન્ વિહતું શીલં યસ્ય સ યતમાનવિહારી, અપિ ચ  
 ‘ચિત્તનિપાતી’ ચિત્તં ગુરોરભિરુચિસ્તેન નિપતિતું શીલં યસ્ય સ ચિત્તનિપાતી=  
 આચાર્યાભિપ્રાયાનુગમનશીલઃ, एवं च ‘पथिनिर्ध्यायी’ कुत्रापि निर्गतस्य गुरोः  
 પન્થાનં=માર્ગં નિર્ધ્યાતું શીલં યસ્ય સ પથિનિર્ધ્યાયી=ગુરુમાર્ગાનુગામી, ઉપલક્ષણં  
 શય્યાદિપ્રલોકી ચાહારગવેષીત્યાદેરપિ बोध्यम् । अन्यच्च—‘पर्यबाह्यः’ परि=सर्वत  
 આચાર્યસ્યાગ્રતઃ પૃષ્ઠતઃ સ્થિત્વા અવાહ્યઃ=અદૂરવર્તી ગુરોરવગ્રહાવસ્થાયી, પ્રાણાન્=  
 एकेन्द्रियादिजीवान् दृष्ट्वा=वीक्ष्य तदुपमर्दनं परिहरन् गच्छेत्=गुर्वाज्ञायां विचरेत्॥२॥

રાજકે અભિપ્રાય અનુસાર પ્રવૃત્તિશીલ હોતા હૈ । પથિનિર્ધ્યાયી—કહીં  
 મી બાહર ગયે હુએ ગુરુ મહારાજ કે ધ્યાન—અવલોકન કરનેકે શીલવાલા—  
 उनके आगमनकी प्रतीक्षावाला—गुरुके मार्गपर चलनेवाला, उपलक्षणसे  
 उनकी शय्या—आसन आदि का निरीक्षण करनेवाला, उनके लिये आहा-  
 रादिककी गवेषणा करनेवाला इत्यादि बातोंका भी संग्रह कर लेना  
 चाहिये । तथा-पर्यबाह्यः—आचार्य महाराजके आगे और पीछे स्थित हो  
 कर भी जो दूरवर्ती न हो—गुरुप्रदत्त नियमादिकोंका पालक हो अर्थात्  
 गुरुदेव जो भी पचक्खाण देवें उसे प्रसन्नचित्तसे ग्रहण करनेवाला हो ।  
 ऐसा मुनि ही एकेन्द्रियादिक जीवों को आत्मौपम्येन देखकर—जान कर  
 उनके उपमर्दनसे विरक्त हो गुरुकी आज्ञामें रहनेयोग्य है । उनकी  
 आज्ञानुसार अपनी प्रत्येक चर्या करनेवाला मुनि ही उनके निकट  
 रह सकता है ॥ सू० २ ॥

ગુરુની રૂચિથી ચાલવાના સ્વભાવવાળા આચાર્ય મહારાજના અભિપ્રાય  
 અનુસાર પ્રવૃત્તિશીલ બને છે. કેાઈ પણ સ્થળે બહાર ગયેલા ગુરુના આગમનનું  
 ધ્યાન, અવલોકન કરવાની વૃત્તિવાળા તેના આગમનની પ્રતીક્ષાવાળા, ગુરુના માર્ગ  
 પર ચાલવાવાળા, ઉપલક્ષણથી તેની શૈયા—આસન આદિનું નિરીક્ષણ કરવાવાળા  
 ગુરુ માટે આહારાદિકની ગવેષણા કરવાવાળા ઇત્યાદિ વાતોનો પણ સંગ્રહ કરી  
 લેવો જોઈએ. તથા પર્યબાહ્યઃ—આચાર્ય મહારાજની આગળ અને પાછળ સ્થિત  
 બનીને પણ દૂરવર્તી ન હોય અને ગુરુ-પ્રદત્ત-નિયમાદિકોના પાલક હોય અર્થાત્  
 ગુરુદેવ જે પણ પચ્ચખાણુ દે તેને પ્રસન્નચિત્તથી ગ્રહણ કરવાવાળા હોય એવા મુનિ  
 જ એકેન્દ્રિયાદિક જીવોને આત્મૌપમ્યથી દેખીને—અર્થાત્ આત્મસમાન બાણીને તેના  
 ઉપમર્દનથી વિરક્ત હોય ગુરુની આજ્ઞામાં રહેવાયોગ્ય હોય છે. એમની આજ્ઞાનુસાર  
 પોતાની પ્રત્યેક ચર્યા કરવાવાળા મુનિ જ તેમની સમીપ રહી શકે છે. ॥ સૂ૦ ૨ ॥

अपि चान्यदपि दर्शयति—‘से अभिक्रममाणे’ इत्यादि ।

मूलम्—से अभिक्रममाणे पडिक्रममाणे संकुचमाणे पसारमाणे विणिवट्टमाणे संपलिमज्जमाणे, एगया गुणसमियस्स रीयओ कायसंफासं समणुचिन्ना एगतिया पाणा उदायंति, इहलोगवे-  
यणविजावडियं जं आउट्टीकयं कम्मं तं परिन्नाय विवेगमेइ,  
एवं से अप्पमाएण विवेगं किट्टइ वेयवी ॥ सू० ३ ॥

छाया—सोऽभिक्रामन् प्रतिक्रामन् संकुचन् प्रसारयन् विनिवर्तमानः संपरि-  
मृजन्, एकदा गुणसमितस्य रीयमाणस्य कार्यसंस्पर्शमनुचीर्णा एके प्राणिनोऽप-  
द्रान्ति, इहलोकवेदनवेद्यापतितं यद् आकुट्टीकृतं कर्म तत्परिज्ञाय विवेकमेति, एवं  
तस्याप्रसादेन विवेकं कीर्तयति वेदवित् ॥ सू० ३ ॥

टीका—‘सोऽभिक्राम’ नित्यादि, सः=पूर्वोक्त आचार्यादेशकारी मुनिः,  
‘अभिक्रामन्’=अभि=साम्मुख्येन क्रामन्=व्रजन्, प्रतिक्रामन्=प्रत्यागच्छन्, संकु-  
चन्=पाणिपादादीनां संकोचं कुर्वन् प्रसारयन्=तानेव संकुचितानवयवान् विस्ता-  
रयन्, विनिवर्तमानः=सकलसावद्यक्रियाभ्यो वि=विशेषेण निवर्तमानः=परावर्तमानः  
संपरिमृजन्=सं=सम्यक्तया परि=सर्वतःमृजन्=पाण्याद्यवयवान् देहन्यासस्थानं च  
रजोहरणादिना परिशोधयन् गुरुकुले संवसेत् । एतेषां विशेषणानामुपलक्षणतयो-

इसी विषयसे लगती हुई और भी बात कहते हैं “से अभि-  
क्कमाणे” इत्यादि ।

पूर्वोक्त रीतिसे आचार्य के आदेशका पालन करनेवाला मुनि जाते  
समय, आते समय, हस्त और पादादिकों के फैलाते एवं उनका संकोच  
करते समय सकल-सावद्य क्रियाओं से अच्छी तरह रहित होता हुआ  
तथा हस्त-पादादिक अवयवोंका एवं अपने उठने बैठने आदिके  
स्थानका रजोहरणादिकसे परिमार्जन करता हुआ गुरुकुलमें रहनेके  
लायक होता है । अर्थात्-गुरुकुलमें निवास वही मुनि कर सकता है जो

आ विषयने लगती थी७ पण बात डडे छे “से अभिक्कममाणे” इत्यादि.

पूर्वोक्त रीतिथी आचार्यना आदेशनुं पालन करवावाणा मुनिं ज्ञवाना समथे  
आववाना समथे, डाय अने पण इवावतां अने येनो संकोच करतां समथे सकल  
सावद्य क्रियाओथी सारी रीते रडित अनी तेमज्ज डाय पण आदि अवयवोतुं अने  
पोताना जेसवा उठवाना स्थाननुं रजोहरणादिकथी परिमार्जन करतां शुद्ध-  
कुणमां रडेवाने लायक अने छे. अर्थात्-शुद्धकुणमां निवास ते मुनि करी शके छे

પવેશનપાર્શ્વપરિવર્તનાદિકમપિ મુનીનાં યથાવિધિ કરણીયત્વેન બોધ્યમ્ । તત્રોપવેશનં ગુરોરગ્રે ઉત્કટાસનાદિનાઽવસ્થાનમ્ , ચિરાવસ્થાનાક્ષમત્વે પૃથિવીપ્રત્યુપેક્ષણ-પરિમાર્જનપૂર્વકં કુક્કુટાચરણોદાહરણેનાવયવસંકોચપ્રસારાદિકં કુર્વન્ મયૂરવજ્રી-વોપમર્દનશક્તિર્નિર્મલકર્મપાર્શ્વસ્થાયી સુપ્તોઽપિ જાગ્રદિવ પ્રમાર્જનપૂર્વકપાર્શ્વપરિવર્તન-વિધાયી વિહરેત્ । एवं च सदा सर्वथाऽप्रमत्तो मुनिः सकलं क्रियां विदधीतेति

અપને આચાર્ય કે આદેશકા પાલન કરનેવાલા હો, તથા યત્નપૂર્વક પ્રત્યેક ગમનાગમનાદિક એવં હસ્તપ્રસારણાદિક ક્રિયાઓંકા કર્તા હો । યત્નસે પ્રવૃત્તિશીલ સાધુ સકલ સાવચવ્યાપારોંસે રહિત હોતા હૈ ।

ये सूत्रस्थ विशेषण मुनियोंकी अन्य उपवेशन-बैठना, शयन-सोना तथा पार्श्वपरिवर्तन-करवट बदलना आदि क्रियाओंके उपलक्षक हैं । मुनिजनोंको ये क्रियाएं भी यथाविधि ही करना चाहिये-ऐसा समझना चाहिये । गुरुके आगे उत्कटादिक आसनसे बैठना उपवेशन है । इस आसनसे यदि वह बहुत समय तक न बैठ सके तो पृथिवीको-बैठनेके स्थानको देखभाल कर और रजोहरण से उसे परिमार्जित कर कुककुटा-चरणके उद्दाहरणसे शारीरिक अवयवोंकी संकोच अथवा विस्तार-पसारना आदि क्रियाको करता हुआ वह मयूरकी तरह जीवोंकी विरा-धनासे डरता हुआ एक करवटसे सोया हुआ होने पर भी जगे हुए की तरह दूसरी करवट लेनेके स्थान को रजोहरणादिकसे प्रमार्जन-पूज कर फिर करवट लेवे । अप्रमत्त मुनि इसी प्रकार निरन्तर अपनी समस्त क्रियाओंको करे ।

જે પોતાના આચાર્યના આદેશનું પાલન કરનાર હોય તથા યત્નપૂર્વક પ્રત્યેક ગમનાગમનાદિક અને હસ્તપ્રસારણાદિ ક્રિયાઓના કરવાવાળા હોય, યત્નથી પ્રવૃત્તિશીલ સાધુ સકલસાવધ વ્યાપારોથી રહિત હોય છે.

આ સૂત્રમાં મુનિઓની અન્ય ક્રિયાઓ કે જેમનું તેમણે યથાવિધિ પાલન કરવાનું હોય છે તે બતાવવામાં આવેલ છે. ઉપવેશન-બેસવું, શયન-સુવું તથા પાર્શ્વપરિવર્તન-પડખું બદલવું આ ક્રિયાઓ મુનિઓએ યથાવિધિ કરવી જોઈએ. શુરૂની સામે ઉકડૂ-આદિ આસનથી બેસવું જોઈએ. એ આસનથી જો તે વધારે સમય બેસી ન શકે તો પૃથ્વીપર-બેસવાના સ્થાનને ડૂડી રીતે જોઈ રજોહરણથી સાફ કરી શારીરિક અવયવોની કુકડાની માફક સંકોચ અથવા વિસ્તાર ધ્યાનથી અર્થાત્ પ્રસારવા આદિ ક્રિયાઓ નિયમસર કરતો થકો મોરની માફક જીવોની વિરાધનાથી ડરતો રહે. એક પડખે સુતેલ હોય અને બીજું પડખું ફેરવતાં સચેત બની



ભાવઃ। અપ્રમાદપૂર્વક-સકલકાર્યકારિણોઽન્તરાયોદયાત્ યદ્ભવેત્તદર્શયતિ-‘એકદે’-  
ત્યાદિ, એકદા=કદાચિત્, ‘ગુણસમિતસ્ય’ ગુણેન=મુનિગુણેન અપ્રમાદાદિના  
સમિતઃ=સંયુતો ગુણસમિતસ્ય, રીયમાણસ્ય=સમ્યગ્ગચ્છતઃ પૂર્વોક્તાભિક્રમણાદિ-  
વિશેષણવિશિષ્ટસ્ય મુનેઃ ‘કાયસંસ્પર્શ’ કાયસ્ય=શરીરસ્ય સંસ્પર્શઃ=કાયસંસ્પ-  
ર્શસ્તમ્ સમનુચીર્ણાઃ=સંપ્રાપ્તાઃ સમ્પાતિમાદય એકે=કેચન પ્રાણાઃ=દ્વીન્દ્રિયાદયઃ  
અપદ્રાવન્તિ=પ્રિયન્તે । અત્ર મરણરૂપપશ્ચિમાવસ્થાયા ગ્રહણાત પૂર્વાવસ્થાયા અપિ  
ગ્રહણં ભવતિ; તથાહિ-કેચન હસ્તાઘાતાતેન સંઘાત્યન્તે, અપરે મ્લાયન્તિ, અન્યે  
પરિતપ્યન્તે । અત્ર ચ કર્મબન્ધસ્ય વૈચિત્ર્યં વર્તતે, તદ્યથા શૈલેશીમુપગતસ્ય પાણ્યાઘ-

અપ્રમાદપૂર્વક અપની સકલ ક્રિયાઓંકો કરનેવાલે મુનિજનકે  
અન્તરાયકે ઉદયસે જો હો જાતા હૈં ઉસે સૂત્રકાર “એકદા ગુણસમિ-  
તસ્ય” ઇત્યાદિ સૂત્રાંશસે પ્રકટ કરતે હૈં । મુનિગુણ-અપ્રમાદસે યુક્ત ઉસ  
મુનિકે કદાચિત્ ચલતે સમયમેં, અર્થાત્-જાતે ઉઠતે બેઠતે સમયમેં શા-  
રીરિક સ્પર્શકો પ્રાસકર દ્વીન્દ્રિયાદિક જીવ વિરાધિત હો જાતે હૈં અથવા  
યહાં પર મરણરૂપ પશ્ચિમ-અન્તિમ અવસ્થાકે ગ્રહણસે ઉસસે પૂર્વ અવસ્થા  
કા ખી ગ્રહણ હોતા હૈ, ઇસસે યહ વાત ઇતની ઓર સમજ લેના  
ચાહિયે કિ કોઈ ૨ કુન્થવાદિક જીવ ઉસકે હસ્તાદિકકે આઘાતસે  
વિરાધિત હો જાતે હૈં, કોઈ કોઈ મ્લાન હો જાતે હૈં ઓર કોઈ કોઈ  
સંતાપ પાતે હૈં ।

યહાં પર કર્મબન્ધકી વિચિત્રતા હૈ, જૈસે-શૈલેશી અવસ્થાસંપન્નકે

સ્નેહરણાદિકથી એ સ્થાન પુછને પડખું બદલે. આ રીતે મુનિએ નિરન્તર પોતાની  
બધી ક્રિયાઓ કરવી બેઠ્યો.

પ્રમાદરહિત પોતાની બધી ક્રિયાઓ કરનાર મુનિજનને કોઈ કોઈ વખત  
અન્તરાયના ઉદયથી જે થાય છે તે સૂત્રકાર “એકદા ગુણસમિતસ્ય” ઇત્યાદિ  
સૂત્રાંશથી પ્રગટ કરે છે-મુનિગુણ અપ્રમાદથી યુક્ત એવા મુનિનો કદાચ ચાલતા  
સમયે અર્થાત્ આવતાં-જતાં, ઉઠતાં બેસતાંના સમયે શારીરિક સ્પર્શ પ્રાપ્ત  
કરી દ્વીન્દ્રિયાદિક જીવ વિરાધિત બની જાય છે. અથવા અહિં પર મરણરૂપ  
પશ્ચિમ-અન્તિમ અવસ્થાના ગ્રહણથી એને એની પૂર્વ અવસ્થાનું પણ ગ્રહણ થાય  
છે. આથી એ વાત સમજ લેવી બેઠ્યો કે કોઈ કોઈ કુન્થવાદિક જીવોની તેના  
હસ્તાદિકના અડવાથી વિરાધના થઈ જાય છે. કોઈ કોઈ જીવ મ્લાન થઈ જાય  
છે, કોઈ કોઈ સંતાપ કરે છે.

અહિંયાં કર્મબંધનની વિચિત્રતા છે. જેમ કે-શૈલેશી-અવસ્થા-સંપન્નના

વયવસ્પર્શજનિતે મશકાદિસત્ત્વઘાતેऽપિ બન્ધહેતુભૂતાત્મવિપરિણામાભાવાન્નૈવ કર્મબન્ધો ભવિતુમર્હતિ, ઉપશાન્તક્ષીણમોહસયોગિકેવલિનશ્ચ સામાયિકઃ કર્મબન્ધો જાયતે, સ્થિતિહેતુકકષાયાભાવાત્ । અત્રાયં વિવેકઃ—

પ્રથમસમયે બન્ધો દ્વિતીયસમયે વેદનં તૃતીયે ચ નિર્જરણં જાયતે, ઇતિ તૃતીયસમયસ્ય નિર્જરસામાયિકત્વાત્ સામાયિકત્વેન પ્રતિપાદનમ્ ।

અપ્રમત્તસંયતેઃ કર્મબન્ધો જઘન્યતોઽન્તર્મુહૂર્ત્તસ્થિતિકઃ, ઉત્કૃષ્ટતશ્ચાન્તઃકોટિકોટિસ્થિતિકઃ । પ્રમત્તસંયતેરપ્યનાકુટ્ટિકયા પ્રવર્તમાનસ્ય ક્વચિત્કદાચિત્ કરચર-

હસ્તાદિક અવયવકે સ્પર્શસે મશકાદિક પ્રાણિયોંકી વિરાધના ભી હો જાતી હૈ તો ભી બન્ધકે કારણભૂત આત્માકે પ્રમાદાદિરૂપ પરિણામકા અભાવ હોનેસે उनके કર્મબન્ધ નહીં હોતા હૈ । ઉપશાન્ત મોહ, ક્ષીણમોહ और सयोगी केवलीके योगका सद्भाव होनेसे एकसमयस्थितिक सातावेदनीय કર્મકા બન્ધ હોતા હૈ; क्योंकि कि उनमें स्थितिका कारणभूत कषायं का अभाव हॆ । यहां यह समझना चाहिये—

પ્રથમ સમયમેં બન્ધ, દ્વિતીય સમયમેં વેદન, और तृतीयमें उस बंधे हुए कर्मकी निर्जरा होती है । इस प्रकार तृतीय समयको निर्जरसामायिक होनेसे सामायिकरूपसे कहा है ।

અપ્રમત્તસંયતિમુનિકા કર્મબન્ધ જઘન્ય અન્તર્મુહૂર્ત્ત और उत्कृष्ट अन्तःकोटिकोटिस्थितिवाला होता है । अनाकुट्टिका (अज्ञानपने)से प्रवृत्त प्रमत्तसंयति साधुके हाथ पैर आदिके संघटनसे कदाचित् कहीं किसी प्राणीकी विराधना हो जाय तो उससे उनका કર્મબન્ધ જઘન્ય

હસ્તાદિક અવયવના સ્પર્શથી મશકાદિક પ્રાણીઓની વિરાધના પણ થઈ બીય છે તો પણ બન્ધના કારણભૂત આત્માના પ્રમાદાદિરૂપ પરિણામને અભાવ હોવાથી એને કર્મબન્ધ થતું નથી. ઉપશાન્તમોહ, ક્ષીણમોહ અને સયોગી કેવલીને યોગને સદ્ભાવ હોવાથી એકસમયસ્થિતિક સાતાવેદનીય કર્મનો બન્ધ થાય છે. કેમકે આમાં સ્થિતિના કારણભૂત કષાયનો અભાવ છે. અહિં એ સમજવું જોઈ એ—

પ્રથમ સમયે બન્ધ, બીજે સમયે વેદન, અને ત્રીજે સમયે એના બંધાયેલા કર્મની નિર્જરા બને છે. આ રીતે ત્રીજા સમયને નિર્જર સામાયિક હોવાથી સામાયિક રૂપથી કહ્યો છે.

અપ્રમત્ત સંયતિ મુનિના કર્મબન્ધ જઘન્ય અન્તર્મુહૂર્ત્ત અને ઉત્કૃષ્ટ અન્તઃ—કોટીકોટીસ્થિતિવાળો હોય છે. અજ્ઞાણપણથી પ્રવૃત્ત પ્રમત્તસંયતિ સાધુના હાથ પગ આદિના અડવાથી કદાચ કોઈ સ્થળે કોઈ પ્રાણીની વિરાધના થઈ

નાથવયવસંસ્પર્શાત્ પ્રાણ્યુપધાતાદૌ જઘન્યત ઉત્કૃષ્ટતથ્ચ કર્મબન્ધઃ પૂર્વોક્ત એવ વિશેષિતતરઃ । અયં કર્મબન્ધસ્તસ્મિન્નેવ ભવે ક્ષીયતે ઇતિ સૂત્રેણ દર્શયતિ-‘ઇહ૦’- ઇત્યાદિ-એતેષાં યત્ કર્મ તદિહલોકવેદનવેદ્યાપતિમ્-ઇહ=અસ્મિન્નેવ લોકે=ભવે વેદનં=ભોગઃ ઇહલોકવેદનમ્, તત્ર-વેદ્યમ્-પ્રકરણાનુરોધાત્ પ્રતિકૂલવેદનીયં દુઃસ્વમ્ =ઇહલોકવેદનવેદ્યમ્ તત્ર આપતિતં=તત્કારણત્વેન સમાયાતમ્=ઇહલોકવેદનવેદ્યા- પતિતં વર્તમાનભવીયભોગાનુબન્ધિ ભવતીત્યર્થઃ । આકુટ્ટીકૃતકર્મણિ યત્કર્ત્ત્વ્યં તદ્- દર્શયતિ-‘જં’ ઇત્યાદિ, મુનિઃ યત્કર્મ આકુટ્ટીકૃતમ્ આકુટ્ટ્યા=આભોગેન ઇચ્છયે- ત્યર્થઃ, કૃતં=વિહિતં કર્મ આકુટ્ટીકૃતમ્, પ્રાણિઘાતેન તદિચ્છયા કાયસંઘટ્ટનાદિના ચ જાતં યત્કર્મ જ્ઞાનાવરણીયાદિ તજ્જનકં વા પ્રાણાતિપાતાદિરૂપકર્મ તત્ સર્વં પરિજ્ઞાય=રૂપરિજ્ઞયા જ્ઞાતા પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞયા પરિહૃત્ય ચ વિવેકં=દશપ્રકારપ્રા- યશ્ચિત્તાન્યતમગ્રહણરૂપં યદ્વા વિવેકં પૃથગ્ભાવં પુનરકરણરૂપમ્ એતિ=પ્રાપ્નોતિ, આકુ- ટ્ટીકૃતકર્મણોઽપિ તપસા છેદેન પુનર્વતારોપણેન તથા ઘોરતરતપઃ સંયમવૈયાટૃચ્યાદિ- સમારાધનેન ચ તસ્મિન્નેવ ભવે કર્મબન્ધાપનયનં ભવતીતિ ભાવઃ । વિવેકવાન્ મુનિસ્તથા સમાચરતિ યેન કર્મબન્ધો ન ભવતીતિ તાત્પર્યમ્ ।

और उत्कृष्ट पूर्वोक्त स्थितिवाला होता है । परन्तु अप्रमत्त मुनिसे प्रमत्त मुनिके विशेषतर होता है । इस कर्मबन्धका इसी भवमें क्षय हो सकता है । इसीको सूत्रसे दिखलाते हैं-‘इह०’ इत्यादि—

इनका जो पूर्वोक्त कर्मबन्ध है, वह इहलोकवेदनवेद्यापतित है । अर्थात्-इसी भवमें भोगमें आकर नष्ट होनेवाला होता है । आकुट्टिका से किये गये कर्ममें क्या करना चाहिये, वह ‘जं’ इत्यादिसे दिखलाते हैं । प्राणिघातसे, प्राणिघातकी इच्छासे तथा कાયसंघट्टन आदिसे जो ज्ञाना- वरणीयादि कर्म उत्पन्न हुए तथा उनके जनक प्राणातिपातादि कर्म उत्पन्न हुए तथा उनके जनक प्राणातिपातादि कर्म आचरित हुए, उनको रूपरि-

બય તેા એથી એનાં કર્મબન્ધ જઘન્ય અને ઉત્કૃષ્ટ પૂર્વોક્ત સ્થિતિવાળા અને છે. પરંતુ અપ્રમત્ત મુનિ કરતાં પ્રમત્ત મુનિને વિશેષતર કર્મબન્ધ થાય છે. આ કર્મબન્ધનો આ જ ભવમાં ક્ષય થઈ શકે છે. એને સૂત્રથી બતાવેલ છે. “ઇહ” ઇત્યાદિ.

આનો જે પૂર્વોક્ત કર્મબન્ધ છે તે ઇહલોકવેદનવેદ્યા-પતિત છે. અર્થાત્ આ જ ભવમાં ભોગવવા અને નષ્ટ થવાવાળો હોય છે. આકુટ્ટિકાથી કરાયેલા કર્મમાં શું કરવું જોઈએ, આ “જં” ઇત્યાદિથી બતાવેલું છે-પ્રાણિઘાતથી, પ્રાણિઘાતની ઇચ્છાથી, તથા કાયસંઘટ્ટન વગેરેથી જે જ્ઞાનવરણીયાદિ કર્મ ઉત્પન્ન



કર્મવિવેકમાહ—‘ એવમિત્યાદિ, વેદવિત્ સ્વસમયપરસમયજ્ઞસ્તીર્થકરો ગણધર-  
શ્વતુર્દશધરો વા એવં=પૂર્વોક્તપ્રકારેણ વક્ષ્યમાણપ્રકારેણ વા અપ્રમાદેન=પ્રમાદવર્જનેન  
દશપ્રકારપ્રાયશ્ચિત્તેષુ કસ્યચન સમ્યગાચરણેનેત્યર્થઃ, તસ્ય કર્મણો વિવેકં પૃથગ્ભા-  
વમભાવં વા કીર્તયતિ=કથયતિ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

જ્ઞાસે જાનકર ઓર પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાસે પરિહાર કર મુનિ વિવેકકો  
અર્થાત્ દશવિધ પ્રાયશ્ચિત્તોમેં કિસી એકકો ગ્રહણ કરકે અથવા પૂર્વોક્ત  
આચરણ ફિર કમી ન કરના, ઇસ પ્રકાર વિવેકકો પ્રાપ્ત કરતા હૈ ।

જાન વૃદ્ધ કર જિન્હોને પ્રાણિઘાત આદિ કિયા, એસે મુનિકા મી  
કર્મબન્ધ તપસે, હેદસે, દુબારા દીક્ષા દેનેસે તથા ધોરતર તપ સંયમ વેયા-  
વચ્ચ આદિકે સમારાધનસે ડસી ભવમેં નષ્ટ હો જાના હૈ । સમીકા તાત્પર્ય  
યહ હૈ કિ વિવેકવાન મુનિકો વૈસા આચરણ કરના ચાહિયે, જિસસે  
કર્મબન્ધ ન હો, પ્રાણિયોં કી હિંસાસે, ઇચ્છાસે ઓર શારીરિક સંઘટ્ટન  
આદિસે ઉત્પન્ન હુઆ જો જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મ હૈ, અથવા ઇસ કર્મકા  
ઉત્પાદક જો પ્રાણાતિપાતાદિકરૂપ કર્મ હૈ, ડન સબકા રૂપરિજ્ઞાસે જાન  
કર ઓર પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાસે પરિત્યાગ કર દશ પ્રકારકે પ્રાયશ્ચિત્તોમેં  
સે એક પ્રાયશ્ચિત્તરૂપ જો વિવેક નામકા પ્રાયશ્ચિત્ત હૈ ડસકા જો પાલન  
કરતા હૈ વહ વિવેકવાન હૈ । અથવા-વિવેક શબ્દકા અર્થ-પૃથગ્ભાવ  
મી હૈ । પૃથગ્ભાવકા અર્થ હૈ-જિસ કાર્યકા ત્યાગ કર દિયા હૈ ડસકા

થાય તથા તેના જનક પ્રાણાતિપાતાદિક કર્મ આચરિત અને તેને જ્ઞ-પરિજ્ઞાથી  
વિચારી અને પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાથી પરિહાર કરી મુનિ વિવેકને અર્થાત્ દશવિધ  
પ્રાયશ્ચિત્તમાંના કોઈ એકને ગ્રહણ કરી અથવા પૂર્વોક્ત આચરણ કરી કદિ ન  
કરવાનું આ પ્રકારના વિવેકને પ્રાપ્ત કરે છે.

સમજવા છતાં જેણે પ્રાણઘાત ઇત્યાદિક કર્યું એવા મુનિનાં કર્મબન્ધ, તપથી,  
છેદથી, બીજી વખત દીક્ષા દેવાથી તથા ધોરતર તપ, સંયમ, વેયાવચ્ચ આદિના  
સમારાધનથી એ જ ભવમાં નાશ પામે છે. આનું તાત્પર્ય એ છે કે વિવેકવાન  
મુનિએ એવું આચરણ કરવું જોઈએ જેથી કર્મબન્ધ ન થાય. પ્રાણીઓની હિંસાથી,  
પ્રાણિઘાતની ઇચ્છાથી અને શારીરિક સંઘટ્ટન આદિથી ઉત્પન્ન થયેલ જે જ્ઞાનાવર-  
ણીયાદિક કર્મ છે અથવા આ કર્મના ઉત્પાદક જે પ્રાણાતિપાતાદિકરૂપ કર્મ છે,  
એ બધાને જ્ઞ-પરિજ્ઞાથી બાણી અને પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાથી પરિત્યાગ કરી દસ  
પ્રકારના પ્રાયશ્ચિત્તમાંથી એક પ્રાયશ્ચિત્તરૂપ જે વિવેક નામનું પ્રાયશ્ચિત્ત છે એનું  
જે પાલન કરે છે તે વિવેકવાન છે. અથવા વિવેક શબ્દનો અર્થ-પૃથગ્ભાવ પણ  
છે. “પૃથગ્ભાવ”નો અર્થ છે-જે કાર્યનો ત્યાગ કર્યો છે તે કરીથી ન કરવું.

કીદશઃ પુનરપ્રમાદી ભવતીતિ દર્શયતિ 'સે પમૂયદંસી' ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—સે પમૂયદંસી પમૂયપરિન્નાણે ઉવસંતે સમિણે સહિણે સયાજણે દદ્દુતું વિપ્પહિવેણ્ઙ અપ્પાણં—કિમેસ જણો કરિસ્સિદ્ધ, એસ સે પરમારામો જાઓ લોગંસિ ઇત્થીઓ, મુણિણો હુ એયં પવેણ્ઙયં, ઉબ્બાહિજ્જમાણે ગામધમ્મેહિં, અવિ નિબ્બલાસણે, અવિ ઓમોયરિયં કુજ્જા, અવિ ઉદ્દઢં ઠાણં ઠાણ્ઙજ્જા, અવિ ગામાણુગામં દૂણ્ઙજ્જા, અવિ આહારં વુચ્છિદિજ્જા, અવિ ચણે ઇત્થીસુ મણં, પુઠ્ઠવં દંડા પચ્છા ફાસા પુઠ્ઠવં ફાસા પચ્છા દંડા, ઇચ્છેણે કલ્હાસંગકરા ભવંતિ, પહિલેહાણે આગમિત્તા આણવિજ્જા અણાસેવણાણે ત્તિબેમિ, સે નો કાહિણે નો પાસણિણે નો મામણે નો કયકિરિણે વઙ્ગુત્તે અજ્ઞપ્પસંવુદે પરિવજ્જણે સયા પાવં, એયં મોણં સમણુવાસિજ્જાસિ—ત્તિબેમિ ॥ સૂ. ૪ ॥

છાયા—સ પ્રભૂતદર્શી પ્રભૂતપરિજ્ઞાન ઉપશાન્તઃ સમિતઃ સહિતઃ સદા યતઃ દૃષ્ટ્વા વિપ્રતિવેદયત્યાત્માને—કિમેવ જનઃ કરિણ્યતિ, એષ તસ્ય પરમારામો જાતો લોકે સ્ત્રિયઃ, મુનિના હુ એતત્પ્રવેદિતમ્, ઉદ્વાધ્યમાનો ગ્રામધર્મૈઃ, અપિ નિર્વલાશકઃ, અપ્યવમૌદર્યં કુર્યાત્, અપ્યૂધ્વં સ્થાનં તિષ્ઠેત્, અપિ ગ્રામાનુગ્રામં દ્રવેત્, અપ્યાહારં વ્યવચ્છિન્ધ્યાત્, અપિ ત્યજેત્ સ્ત્રીણુ મનઃ, પૂર્વં દણ્ડાઃ પશ્ચાત્સ્પર્શાઃ પૂર્વં સ્પર્શાઃ પશ્ચાદ્દણ્ડાઃ,

ફિર નહીં કરના । ઇસ વિવેક પ્રાપ્ત મુનિ અપની પ્રવૃત્તિ ઇસ પ્રકારકી રખતા હૈ કિ જિસસે ઉસે નવીન કર્મકા બન્ધ નહીં હોતા હૈ । ઇસ પ્રકાર સ્વ-પર સિદ્ધાન્તવેદી તીર્થઙ્કર, ગણધર, અથવા ચતુર્દશપૂર્વકે પાઠી શ્રુત-કેવલી ભગવાન પૂર્વોક્ત પ્રકારસે અથવા વક્ષ્યમાણ પ્રકારસે યહી કહતે હૈં કિ જો મુનિ દશ પ્રકારકે પ્રાયશ્ચિત્તકા ભી સમ્યક્ રીતિસે સેવન કરતા હૈ વહ અપને કર્મોંકે અભાવકા—ઈન્હેં અપની આત્માસે ભિન્ન કરને કા કર્તા હોતા હૈ ॥ સૂ. ૩ ॥

આ વિવેક પ્રાપ્ત મુનિ પોતાની પ્રવૃત્તિ એવા પ્રકારની રાખે છે કે જેથી એને નવીન કર્મોના બન્ધ થતો નથી. આ રીતે સ્વ-પર સિદ્ધાન્તવેદી તીર્થંકર, ગણધર અને ચતુર્દશ પૂર્વના પાઠી શ્રુતકેવલી ભગવાન પૂર્વોક્ત પ્રકારથી અને વક્ષ્યમાણ પ્રકારથી એ જ કહે છે કે જે મુનિ દસ પ્રકારના પ્રાયશ્ચિત્તોમાંથી કોઈ એક પ્રાયશ્ચિત્તનું પણ સમ્યક્ રીતિથી સેવન કરે છે તે પોતાના કર્મના અભાવનો એટલે તેને પોતાના આત્માથી બુદ્ધ કરવાનો કર્તા અને છે. ॥ સૂ. ૩ ॥

इत्येते कलहासङ्गकरा भवन्ति; प्रत्युपेक्ष्याऽऽगम्याऽऽज्ञापयेदनासेवनयेति ब्रवीमि, स नो कथकः नो प्राश्निकः नो कृतक्रियो वाग्गुप्तोऽध्यात्मसंवृतः परिवर्जयेत् सदा पापम्, एतन्मौनं समनुवासयेदिति ब्रवीमि ॥ सू० ४ ॥

टीका—‘स प्रभूतदर्शी’ त्यादि, सः=संयमी ‘प्रभूतदर्शी’ प्रभूतं=भूत-भविष्यद्वर्तमानकालीनं प्रमादविषयकं द्रष्टुं शीलं यस्य स प्रभूतदर्शी-उपार्जितकर्मणः कालत्रयेऽप्यवश्योपभोग्यत्वेन दर्शनशील इत्यर्थः, किंच ‘प्रभूतपरिज्ञानः’ प्रभूतं=प्रचुरं परिज्ञानं प्राणिपरिपालनोपायस्य संसारापवर्गहेतोश्च सम्यग्ज्ञानं यस्य स प्रभूतपरिज्ञानः-हेयोपादेयपरिज्ञानकुशलः, किंच उपशान्तः=इन्द्रियनोइन्द्रियोपशमेन कषायोपशमेन च शान्तिमुपयातः, समितः=ईर्यादिपञ्चसमितिभिः संयुक्तः, यद्वा-‘समितः’ सम्=सम्यग् रत्नत्रयम्-इतः=प्राप्तः । सहितः=ज्ञानादि-

मुनि किस प्रकार अप्रमादी होता है, इस बातको कहते हैं “से प्रभूयदंसी” इत्यादि—

भૂત, ભવિષ્યત્ ઔર વર્તમાનકાલ સમ્બન્ધી પ્રમાદકે વિષયકો દેખને કા જિસકા સ્વભાવ હોતા હૈ વહ પ્રભૂતદર્શી હૈ—અર્થાત્—ઉપાર્જિત કર્મ કાલત્રયમેં બી અન્યથા નહીં હોતા હૈ, ઉસકા ફલ અવશ્ય ભોગના પડતા હૈ—ઇસ પ્રકારકી નિસ્સંદેહ દૃષ્ટિસે યુક્ત હૈ, પ્રભૂતજ્ઞાની હૈ—અર્થાત્—પ્રાણિગણકી રક્ષાકે ઉપાય, સંસાર ંવં અપવર્ગકે કારણોં કા જિસે સમ્યક્જ્ઞાન હૈ, હેય ઔર ઉપાદેય તત્ત્વકા જિસે વાસ્તવિક ભાન હૈ, વહ પ્રભૂતજ્ઞાની હૈ । જો ઉપશાન્ત હૈ, ઇન્દ્રિય ઔર નોઇન્દ્રિય—મનકે ઉપશમ તથા કષાય કે ઉપશમસે જો શાન્તિકો પ્રાપ્ત હો ચુકા હૈ, ઈર્યા આદિક પાંચ સમિતિયોં સે જો યુક્ત હૈ, અથવા—સમ્—સમ્યક્ રત્નત્રયકી જિસે પ્રાપ્તિ હૈ, સહિત—

કેવા પ્રકારનો મુનિ અપ્રમાદી હોય છે આ વાતને કહે છે. “સે પ્રભૂયદંસી” ઇત્યાદિ.

ભૂત ભવિષ્ય અને વર્તમાનકાળ સંબંધી પ્રમાદના વિષયને દેખવાનો જેનો સ્વભાવ છે તે પ્રભૂતદર્શી છે. અર્થાત્ ઉપાર્જિત કર્મ કાલત્રયમાં પણ નિષ્કળ બનતું નથી તેથી તેનું જ્ઞાન અવશ્ય ભોગવવું પડે છે. આ પ્રકારની અસંદિગ્ધ દૃષ્ટિથી યુક્ત છે. પ્રભૂતજ્ઞાની છે—પ્રાણિગણની રક્ષાનો ઉપાય, સંસાર અને મોક્ષનાં કારણોનું જેને સમ્યક્ જ્ઞાન છે, હેય અને ઉપાદેય તત્ત્વનું જેને વાસ્તવિક ભાન છે તે પ્રભૂતજ્ઞાની છે. જે ઉપશાન્ત છે—ઇન્દ્રિય અને નોઇન્દ્રિય—મનના ઉપશમથી તથા કષાયના ઉપશમથી જે શાન્તિને પ્રાપ્ત કરી શકેલ છે, ઇર્યા આદિક પાંચ સમિતિઓથી જે યુક્ત છે, અથવા સમ્—સમ્યક્ રત્નત્રયની જેને પ્રાપ્તિ છે, જ્ઞાના-



પશ્ચાચારૈઃ સંપન્નઃ, એવં 'સદાયતઃ' સદા=સર્વદા યતઃ=યતનાવાન પ્રમાદરહિતઃ ।  
 એતાદૃશો મુનિર્ગુરુસમીપસ્થિતઃ કર્મણોઽપનયનં કરોતિ ।

તસ્ય યોષિદાદિપરીષહોપનિપાતે યદ્વિધેયં તદર્શયતિ—'દૃષ્ટ્વા'—ઇત્યાદિ,  
 પૂર્વોક્તવિશેષણવિશિષ્ટઃ પ્રમાદવર્જિતો મુનિઃ આત્માનં=સ્વં દૃષ્ટ્વા ઉપસર્ગવિધાન—તત્પરં  
 સ્ત્રીજનં વિપ્રતિવેદયતિ=સમાલોચયતિ, કિં સમાલોચયતીત્યાહ—'કિમેષ' ઇત્યાદિ,  
 એષ જનઃ=સ્ત્રીજનઃ સમાપકારં કિં કરિષ્યતિ? ન કિમપીત્યર્થઃ, યદ્વા—રોગાભિભ-  
 વાદૌ એષ સ્ત્રીજનો મમ તસ્યામવસ્થાયાં ન ત્રાણાય વા શરણાય વા  
 સ્યાદતઃ કિં કરિષ્યતિ=ન કિમપીત્યર્થઃ । સ્વીકૃતપશ્ચમહાવ્રતસ્ય વિમલકુલલલામ-

જ્ઞાનાદિક પાંચ આચારોં સે જો સંપન્ન હૈ, તથા સદા જો યતનાવાન હૈ,  
 પ્રમાદરહિત હૈ, એસા મુનિ ગુરુકે સમીપ રહ કર કર્મોંકા નાશ કરતા હૈ ।

ઇસ મુનિકે સ્ત્રી આદિ દ્વારા પરીષહ તથા ઉપસર્ગ ઉપસ્થિત કિયે  
 જાને પર ઇસે જો વિધેય હૈ, વહ 'સૂત્રકાર "દૃષ્ટ્વા-ઇત્યાદિ" પદોંદ્વારા  
 સ્પષ્ટ કરતે હૈ—વે કહતે હૈ કિ ઇન પૂર્વોક્ત વિશેષણોંસે યુક્ત એવં અપ્ર-  
 માદી વહ મુનિ જબ ઇસકે ઉપર સ્ત્રી આદિકોં કે દ્વારા ઉપસર્ગ આદિ  
 કિયે જાતે હૈ—અથવા ઉપસર્ગ કરને મેં તત્પર યહ જબ ઉન્હેં દેખતા હૈ, તો  
 વિચારતા હૈ કિ યહ સ્ત્રી મેરા કયા અપકાર કરેગી, કુછ બી નહીં ।  
 અથવા જિસ સમય મેરે કોઈ રોગ વગેરહકા ઉપદ્રવ હોગા ઉસ અવસ્થા  
 મેં બી યહ ઉસ રોગસે ન મુજે બચા સકતી હૈ ઓર ન મુજે કોઈ સહારા  
 હી દે સકતી હૈ । મૈ પંચમહાવ્રતોંકા ધારી હૂં । મૈ ઇસ મુનિકુલકા તિલ-

દિક પાંચ આચારોંથી જે સહિત છે. તથા જે યતનાવાન છે—પ્રમાદરહિત છે.  
 એવો મુનિ ગુરુના સમીપ રહીને કર્મોંનો નાશ કરે છે.

સ્ત્રી આદિ દ્વારા પરીષહ તથા ઉપસર્ગ થતાં, આ મુનિનું જે કર્તવ્ય  
 છે, તેને સૂત્રકાર "દૃષ્ટ્વા-ઇત્યાદિ" પદોંદ્વારા સ્પષ્ટ કરે છે. તે કહે  
 છે કે—આવા પૂર્વોક્ત વિશેષણોંથી યુક્ત અને અપ્રમાદી તે મુનિ જ્યારે તેના  
 ઉપર સ્ત્રી વિગેરે આદિ દ્વારા ઉપસર્ગ વગેરે કરવામાં આવે છે, અથવા ઉપસર્ગ  
 કરવામાં તત્પર તે જ્યારે તેને દેખે છે, તો તે વિચારે છે કે આ સ્ત્રીજન મારો  
 શું અપકાર કરશે? કાંઈ પણ નહીં. અને જે સમય મને રોગ વગેરેનો ઉપદ્રવ  
 થશે એ અવસ્થામાં પણ તે સ્ત્રી એ રોગથી બચાવી શકશે નહિ અને મને  
 સાથ પણ આપી શકશે નહિ. હું પાંચ—મહાવ્રતધારી છું, હું આ મુનિકુળનો તિલક-

ભૂતસ્ય તિરસ્કૃતવિષયસુખસ્પૃહસ્યાવધૂતજીવનમનોરથસ્ય મમ કિમેષ સ્ત્રીજનઃ  
કરિષ્યતીતિ સતતં સમાલોચયતીત્યર્થઃ । એષઃ=સ્ત્રીજનસ્તુ તસ્ય પ્રમાદિનઃ પરમારામઃ  
પરમાનન્દસ્થાનં જાતોઽસ્તિ, કિન્તુ ન મમાપ્રમાદિનઃ, યતો હિ સ્ત્રિયઃ=નાર્યઃ લોકે  
=વિષયિલોકે મોહોત્પાદિન્યો ભવન્તિ, ન સંયતલોકે ।

एतत्कथनं न स्वमतिकल्पितमिति दर्शयति—‘मुनिने’ इत्यादि. एतत्=सर्व  
पूर्वोक्तं वक्ष्यमाणमुपदेशवचनं च ‘हु’ अवधारणे, मुनिना=तीर्थङ्करादिना प्रवेदितं  
=द्वादशविधपर्षादि प्ररूपितम् ।

કભૂત હું । વૈષયિક સ્પૃહાકા મૈ અન્તકર ચુકા હું, અપને જીવનકે પહિલે  
અવ્રત અવસ્થાકે સમસ્ત મનોરથોં કો ત્યાગ ચુકા હું, મૈં જબ્ ઇસ પરિ-  
સ્થિતિમેં ઉપસ્થિત હું તો અબ્ ઇસ સ્ત્રીદ્વારા કૃત ઉપસર્ગોંકી મૈં અપેક્ષા  
હી કયા કરું । ઇસમેં કયા શક્તિ હૈ જો મુઝે લાખ ઉપસર્ગ કરને પર મી  
અપને પથસે વિચલિત કર સકે ? હાં ! યહ તો ઝનૈં હી હર તરહસે અપને  
લક્ષ્યસે ભ્રષ્ટ કર સકતી હૈ જો પ્રમાદમય આનંદકે ઇચ્છુક હૈ—પ્રમાદી  
હૈ, મુઝ અપ્રમાદી કો નહીં । ક્યોં કિ સ્ત્રિયોંકા વશ વિષયીલોકમેં કાર્ય  
કારી હોતા હૈ, સંયમીલોકમેં નહીં ।

इस कथनमें स्वमतिकी कल्पनाका निषेध करते हुए सूत्रकार कहते  
हैं “ मुनिना ” इत्यादि । यह समस्त पूर्वोक्त कथन तथा आगे और  
भी जो कुछ कहा जानेवाला है वह सब तीर्थङ्कर गणधरादि द्वारा ही  
उपदिष्ट है । यहां “ हु ” शब्द अवधारण अर्थ में है । उन्होंने यह सब

ભૂત છું, વૈષયિક સ્પૃહાકા મૈં ત્યાગ કરેલ છે — પોતાના જીવનના પહેલાના  
અવ્રત અવસ્થાના સમસ્ત મનોરથોના ત્યાગ કરી ચુક્યો છું, હું જ્યારે આ  
પરિસ્થિતિમાં ઉપસ્થિત છું તો હવે આ સ્ત્રીજનદ્વારા અપાતા ઉપસર્ગોની હું  
અપેક્ષા કેમ રાખી શકું ? તેનામાં શું શક્તિ છે જે મને લાખ ઉપસર્ગ કરવા  
છતાં પણ મારા પોતાના પદ્ધતી વિચલિત કરી શકે ? હાં ! એ તો એને જ  
લક્ષ્યથી ભ્રષ્ટ કરી શકે છે કે જે પ્રમાદમય આનંદનો ઇચ્છનાર — પ્રમાદી છે. મારા  
જેવા અપ્રમાદીને નહીં. કેમ કે સ્ત્રીઓને વશ વિષયી લોકો જ બનતા હોય છે.  
સંયમી એને વશ બનતા નથી.

આ વાતમાં સ્વમતિની કલ્પનાનો નિષેધ કરીને સૂત્રકાર કહે છે “મુનિના”  
ઈત્યાદિ. આ આખું પૂર્વોક્ત કથન અને હવે પછી કહેવામાં આવનાર કથન  
આ બધું તીર્થંકર ગણધર આદિ દ્વારા જ ઉપદિષ્ટ છે. અહિં “હુ” શબ્દ

तमेव वक्ष्यमाणोपदेशमाह—‘उद्बाध्यमान’ इत्यादि, हे शिष्य ! यदि मुनिः ‘ग्रामधर्मैः’ ग्रामाणाम्=इन्द्रियसमूहानां धर्माः=स्वभावाः=ग्रामधर्मास्तैर्ग्रामधर्मैः स्वस्वविषयसमासक्तस्वभावैः ‘उद्बाध्यमानः’ उत्=प्राबल्येन बाध्यमानः=परिपीड्यमानो भवेत्तदा निर्वलाशकः’ ‘निर्वलं=प्रणीतरसबलरहितपुराणकुलत्थादिकम् अम्लतक्रमिश्रितं बलचणकादिनिष्पादितपर्युषितकरपट्टिकादिकं वा अश्नाति=भुङ्क्ते यः स निर्वलाशकः, नीरसाशनेन ग्रामधर्मस्यावश्योपशमसम्भवात्, ‘अपि’ शब्दः सम्भावनायाम् । निर्वलाशनेऽपि यदि न मोहोपशमस्ततः किं कुर्यादित्याह—‘अप्यवमौदर्य’—मित्यादि, जीवनयात्रानिर्वाहार्थं केवलम् अवमौदर्यम्=ऊनोदरिक्तपो-

विषय १२ प्रकारकी परिषद में प्रतिपादित किया है। वक्ष्यमाण विषयको स्पष्ट करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं “उद्बाध्यमानः” इत्यादि। हे शिष्य ! यदि कदाचित् मुनि ग्रामधर्म-अपने २ विषयों में समासक्त-स्वभाववाली इन्द्रियोंसे-प्रबलरूपसे बाधित किया जाय तो उस समय उसे चाहिये कि वह निर्वल-इन्द्रियों को उत्तेजित नहीं करनेवाले रस-बलरहित ऐसे पुरानी कुलथी आदि अन्नका तथा खट्टीछाछसे मिश्रित बालचना आदिसे निष्पादित ऐसे पर्युषित (ठण्डावासी) करपट्टिका (रोटी) आदिका भोजन करे। नीरस भोजनके करनेसे ग्राम धर्मका अवश्य ही उपशमन होता है। “अपि” शब्द संभावनामें है। नीरस भोजन करने पर भी यदि ग्रामधर्मका उपशमन न हो-मोहकी शांति न हो तो क्या क्या करे ? इस प्रकारकी आशंका का समाधान करनेके निमित्त सूत्रकार “अप्यवमौदर्यं कुर्यात्” कहते हैं। जीवनयात्राके

अवधारणु अर्थमां छे. तेओओ आ सधणो विषय १२ प्रकारनी परिषदमां प्रतिपादित करेव छे. वक्ष्यमाण विषयने स्पष्ट करवा भाटे सूत्रकार कहे छे “उद्बाध्यमानः” इत्यादि. हे शिष्य ! कदाचि कोछ मुनि ग्रामधर्म-पोतपोताना विषयोमां समासक्त स्वभाववाणी इन्द्रियोथी प्रबल रीते बाधित करवामां आवे तो ओ समये ओणु ओछ ओ के ते निर्बल इन्द्रियोने उत्तेजित नहि करवावाणा रसभणरहित ओवा पुरातन कुलथी आदि अन्ननुं तथा भाटी छाशथी मिश्रित बालचणु वगेरेथी निष्पादित ओवा ठंडी-वासी रोटी आदिनुं भोजन करे. नीरस भोजन करवाथी ओ ग्रामधर्मनुं उपशम न अने—मोहनी शान्ति न थाय तो शुं शुं करे ? आ प्रकारनी शंकां समाधान करवा निमित्ते सूत्रकार “अप्यवमौदर्यं कुर्यात्” कहे छे अर्थात्-जीवनयात्राका निर्वाह भाटे साधुजन ओवी डालतमां



વિશેષં કુર્યાત્, તતોડપીન્દ્રિયગ્રામાગામનુપશમે ઝઘ્ઘં સ્થાનં તિષ્ઠેત્=વાહ ઝઘ્ઘીકૃત્ય કાયોત્સર્ગેણ શીતોષ્ણાદિરૂપામાતાપનાં કુર્યાદિત્યર્થઃ । રાત્રૌ દિવસેડપિ ચૈકદ્વિત્રિચ-તુર્યામક્રમેણ તત્ર તિષ્ઠેદિત્યાશયઃ, તેનાપ્યનુપશમે 'ગ્રામાનુગ્રામં' ગ્રામો યતો વિહરતિ, અનુગ્રામો યત્ર વિહરતિ તં=ગ્રામાનુગ્રામં ગ્રામાદ્ગ્રામાન્તરં દ્રવેત્=વિહરેત્-તદા ન તત્ર તિષ્ઠેત્, એવં કરણેડપ્યનુપશમે આહારમપિ વ્યુચ્છિન્ધ્યાત્ । કિંબહુના યેન કે-નોપાયેન મરણમપિ કુર્યાત્ કિન્તુ સ્ત્રીષુ મનો ન નિદધ્યાત્ । તદેવાહ-"અધિ ચણ્ ઇત્થીસુ મણં " અપિ ત્યજેત્ સ્ત્રીષુ મનઃ, સ્ત્રીવિષયે ગતં મનો નિવારયેત્ । ન તત્ર મનો નિદધ્યાદિત્યર્થઃ । સ્ત્રીસંજ્ઞિનાં યદ્ ભવતિ તદાહ-"પૂર્વં"મિત્યાદિ, પૂર્વં=નિર્વાહ કે લિયે સાધુજન એસી હાલતમેં ઝનોદરી-ભૂખસે કમ અલ્પ આહાર લેવે । યહ વાહ્યતપ હૈ । ઇતના કરને પર ભી યદિ ગ્રામધર્મકી શાંતિ ન હો તો એસી પરિસ્થિતિમેં "ઝઘ્ઘં સ્થાનં તિષ્ઠેત્" હાથોંકો ઝંચા કરકે કાયોત્સર્ગપૂર્વક શીત ઔર ઉષ્ણાદિરૂપ આતાપનયોગ ધારણ કરે । રાત્રિમેં ભી એક દો ત્રીન ઔર ચાર પ્રહર ક્રમસે કાયોત્સર્ગ કરે । ઇતને પર ભી ગ્રામધર્મ શાન્ત ન હો તો ગ્રામાનુગ્રામ વિચરણ કરે । જહાં ઠહરા હુઆ હૈ વહ ગ્રામ, જહાં જાના હોતા હૈ વહ અનુગ્રામ હૈ । ડસ સમય વહાં ન ઠહરે । ફિર ભી ગ્રામધર્મ શાંત ન હો તો એસી દશામેં આહાર કા ત્યાગ કર દેવે ।

અધિક કયા કહા જાય, જિસ ઉપાયસે વૈષયિક અભિલાષા ઉત્પન્ન ન હો સકે, મોહકા ઉપશમન હો એસા હી ઉપાય કરતે રહના चाहिये । પરન્તુ સ્ત્રિયોં કી ઓર મનકો નહીં લગાના चाहिये । સ્ત્રીસંગ કરનેવાલોં કે

ઉનોદરી-ભૂખથી ઓછો અલ્પ આહાર લે. આ બાહ્ય તપ છે. આટલું કરવા છતાં પણ જો ગ્રામધર્મની શાન્તિ ન થાય તો એવી પરિસ્થિતિમાં "ઝઘ્ઘં સ્થાનં તિષ્ઠેત્" હાથોને ડંચા કરી કાયોત્સર્ગપૂર્વક શીતળ અને ગરમીરૂપ આતાપન યોગ ધારણ કરે રાત્રિના તથા દિવસના પણ એક બે ત્રણ અને ચાર પ્રહર ક્રમથી કાયોત્સર્ગ કરે. આટલું કરવા છતાં પણ જો ગ્રામધર્મ શાન્ત ન અને તો ગામેગામ વિચરતા રહે. બ્યાં પોતે રોકાયેલ છે તે ગ્રામ છે બ્યાં જવું છે તે અનુગ્રામ છે. ત્યાં એ રોકાય નહિ. છતાં પણ જો ગ્રામધર્મ શાન્ત ન થાય તો એવી દશામાં આહારનો ત્યાગ કરી દે. વધુ શું કહેવાનું હોય ! જે ઉપાયથી વૈષયિક અભિલાષા ઉત્પન્ન ન થાય-મોહનું ઉપ-શમન અને એવોજ ઉપાય કરતા રહેવું જોઈએ. પરંતુ સ્ત્રીઓ તરફ મનને લાગવા દેવું ન જોઈએ. સ્ત્રીસંગ કરવાવાળા માટે જે હુઃખો ભોગવવાં પડે છે સૂત્રકાર

સજ્ઞાત્પૂર્વ દણ્ડાઃ=તદાસજ્ઞસ્ય ચિરસુપુષ્ટીકરણાયાર્થાર્જનતત્પરસ્ય કૃષ્યાદિસાવધ-  
વ્યાપારપરસ્ય તિરસ્કૃતશ્લુત્પિપાસાદેરપ્યત્ર લોકે દુઃસ્વવિશેષરૂપાઃ, પશ્ચાત્=ઉપ-  
ભોગાનન્તરં સ્પર્શાઃ=તદાસેવનજન્યકર્મવિપાકેન નરકાદિયાતનાકારકા દુઃસ્વવિશેષા  
ભવન્તિ, યદ્વા-પૂર્વ તત્પ્રાપ્તયે દણ્ડાઃ=યષ્ટ્યાદિપ્રહારરૂપાઃ પશ્ચાત્=તદનન્તરં રાજ-  
દણ્ડાદિજનિતાવયવાદિન્હેદનસમુત્પન્નદુઃસ્વવિશેષાઃ, एवं પૂર્વ સ્પર્શાઃ=આશ્લેષા-  
દિના સ્પર્શાઃ=આપાતસુસ્વવિશેષાઃ પશ્ચાચ્ચ દણ્ડાઃ=પરત્ર નરકપાતાદિરૂપા इह च  
લિયે જિન કષ્ટોં કો ભોગના પડતા હૈ સૂત્રકાર ઉનકા વર્ણન “પૂર્વદણ્ડાઃ”  
इत्यादि पदोंसे करते हैं—स्त्रीसंगको चिरकाल तक पुरिपुष्ट करनेके  
लिये कामीजन अर्थके उपार्जन करनेमें तत्पर होते हैं—अर्थ संग्रहशील  
होते हैं—कृषी आदि सावधव्यापारों में लगते हैं । भूख प्यास आदिकी  
बाधाएं सहन करते हैं । मतलब—सावध व्यापारजन्य और भूख प्यास  
आदि जन्य अनेक “दण्ड” दुःस्वविशेषोंको वे भोगते हैं । पश्चात्-स्त्री-  
सेवन से उद्भूत कर्मके विपाकसे नरकादिकों की यातनाप्रदायक दुःस्व-  
विशेषोंका उन्हें सामना करना पड़ता है ।

अथवा—प्रथम स्त्रीप्राप्तिके लिये लकड़ी आदिके अनेक प्रहाररूप  
दण्डोंको और पीछे राजाकी तरफसे दण्डरूपमें प्राप्त अवयव आदिका  
जो छेदन है उस जन्य अनेक कष्ट कामियोंको भोगना पड़ता है । इसी  
प्रकार प्रथम स्त्री आदिके आलिङ्गनसे “स्पर्शाः” आपातसुस्वविशेष-  
काल्पनिक आनंद, पश्चात् परभवमें नरकादि गतियोंमें गमनरूप एवं

એનું વર્ણન “પૂર્વદણ્ડાઃ” ઇત્યાદિ પદોથી કરે છે. સ્ત્રીસંગને લાંબા સમય  
સુધી પરિપુષ્ટ કરવા માટે કામીજન ધન મેળવવામાં તત્પર રહે છે—અર્થસંગ્રહશીલ  
બને છે. ખેતી આદિ સાવધ વ્યાપારોમાં લાગે છે, ભૂખ તરસ આદિની  
વિટબાણાઓ સહન કરે છે. મતલબ સાવધવ્યાપારજન્ય અને ભૂખ તરસ આદિ  
જન્ય અनेક “दण्ड” दुःस्व वगेरेने ये भोगते છે. પછી સ્ત્રીસેવનથી ઉદ્ભૂત  
કર્મના વિપાકથી નરકાદિકોની યાતનાવાળું દુઃસ્વવિશેષોને તેણે સામનો કરવો પડે  
છે. અને પ્રથમ સ્ત્રીપ્રાપ્તિ માટે લાકડીઓ તેમજ તેના જેવા બીજા પ્રહારો તેમજ  
પાછળથી રાજ્યના તરફથી દંડરૂપમાં મળનાર બન્ધન કારાગાર ઇત્યાદિ અनेक  
प्रकारનાं दुःस्व कामीઓએ ભોગવવાં પડે છે. આ પ્રકારે પ્રથમ સ્ત્રી આદિનાં આલિ-  
ગનથી “स्पर्शाः” કાલ્પનિક આનંદ અને પછી પરભવમાં નરકાદિગતિઓમાં  
ગમનરૂપ, એ લોકમાં હાથ, જીભ, વગેરેનું છેદન જેવા અनेक दंड कामीઓએ

હસ્તજિહ્વાચ્છેદાદિરૂપા દણ્ડવિશેષા જાયન્તે । અન્યદપ્યાહ—‘ઇત્યેત’ ઇત્યાદિ, ઇતિ=પૂર્વોક્તદણ્ડસ્પર્શાદિપ્રાપ્ત્યા एते=સ્ત્રીસંજ્ઞસમ્ભવાઃ કામાઃ કલહાઽઽસંજ્ઞકરા ભવન્તિ । સ્ત્રીહેતોર્વહૂનાં નૃપાદીનાં યુદ્ધાદિના વિનાશસ્ય સર્વજનવેદ્યત્વાત્ । યદ્વા-સ્ત્રીનિમિત્તં ક્રોધ-રાગયોઃ સદ્ભાવસ્ય સર્વજનપ્રસિદ્ધત્વાત્ । ઉપલક્ષણાન્માન-માયાદિકારકત્વમપિ बोध्यम् । તતઃ કિં વિધેયમિત્યાહ-પ્રત્યુપેક્ષ્યેત્યાદિ, પ્રત્યુપેક્ષ્ય=સ્ત્રીપ્રસંગસ્ય સર્વથાઽત્ર પરત્ર ચ દણ્ડસ્પર્શાદિકારકત્વં કલહાઽઽસંજ્ઞકાર-કત્વમપિ વિચાર્ય ધ્યાગમ્ય=તત્સર્વં બુદ્ધ્વા અનાસેવનયા=તદાસેવનપરિવર્જનેન સ્વાત્માનં પરં વા આજ્ઞાપયેત્=તત્ત્યાગે નિયોજયેત્ ઇતિ ભગવદ્વાક્યમનુસૃત્ય તદા-

इस लोकमें हाथ, जीभ आदिका छेदन आदि स्वरूप अनेक-दण्ड-विशेष कामियों को सहना पड़ता है । इस प्रकार पूर्वोक्त दण्ड और स्पर्श आदिकी प्राप्तिसे स्त्रीप्रसंगसे समुद्भूत ये काम कलहके आसंगके उत्पन्न करनेवाले होते हैं । यह बात सर्वजन को मालूम ही है कि स्त्रीके निमित्तसे परस्पर अनेक राजाओं में युद्ध छिड़े हैं और वे उनके विनाश के हेतु हुए हैं ।

अथवा-स्त्रीप्राप्तिके लिये क्रोध और रागका सद्भाव भी प्राणियोंमें सर्व-जन प्रसिद्ध ही है । उपलक्षणसे यह बात भी समझ लेनी चाहिये कि वे स्त्रीसंगसे उत्पन्न काम, मान और माया आदि कषायोंके भी उत्पादक होते हैं । इसलिये इस स्त्रीप्रसंगको इस लोक और परलोकमें सर्व प्रकारसे दण्ड एवं स्पर्श आदिका करनेवाला तथा कलहके आसंगका उत्पादक विचार कर और इस सबको जानकर मुनिको चाहिये कि वह अपनी आत्माको उसके सेवन करनेके सर्वथा त्यागसे युक्त करे, तथा परको

સહન કરવા પડે છે. આ પ્રકારે પૂર્વોક્ત દંડ સ્પર્શ આદિની પ્રાપ્તિથી સ્ત્રીપ્રસંગથી ઉત્પન્ન આ કામ, કલહના આસંગને ઉત્પન્ન કરનાર બને છે. આ વાત સર્વ જનને માલુમ છે. સ્ત્રીના નિમિત્તથી પરસ્પર અનેક રાજાઓમાં યુદ્ધ થયાં છે અને તેઓ એના વિનાશના હેતુ બન્યા છે. અથવા સ્ત્રી પ્રાપ્તિ માટે ક્રોધ અને રાગનો સદ્ભાવ પણ પ્રાણીઓમાં સર્વજનપ્રસિદ્ધ છે. ઉપલક્ષણથી આ વાત પણ સમજી લેવી જોઈએ કે સ્ત્રીસંગથી કામ માન અને માયા ઇત્યાદિ કષાયો પણ ઉદ્ભવે છે. આ માટે આ સ્ત્રીપ્રસંગને આ લોક અને પરલોકમાં સર્વ પ્રકારથી દંડ અને સ્પર્શ આદિના કરવાવાળા તેમજ કલહના આસંગનો ઉત્પાદક છે એવો વિચાર કરી આ બધાને જાણીને મુનિએ જોઈએ કે પોતાના આત્માને તેના



સજ્ઞા દુઃસ્વકરાઃ કલહાઽસજ્જકરાથેતિ તત્પરિહારં ચ સર્વં કથયામિ। અન્યદપિ પરિત્યાગસાધનમાહ ‘સ’ इत्यादि, सः=स्त्रीसज्जनितनरकनिगोदादिकदुःकफलाभि-  
 ज्ञत्वेन तत्परिहारी मुनिर्नो कथकः स्त्रीणां जातिकुलनेपथ्यशृङ्गारादिकथाकारको न  
 भवेद्रहसि तस्यै धर्मादिकमपि न कथयेदिति भावः। एवं नो प्राश्निकः प्रश्नं  
 करोतीति प्राश्निकः=स्त्रियं न किमपि पृच्छेत्, तथा हि-कीदृशस्ते पतिः? त्वां  
 सम्मानयति न वा? कथं त्वं स्विन्नेव प्रतिभासि? तव का सन्ततिः पुत्रो वा पुत्री?  
 परिणीता पुत्री न वा? कस्मै दत्ता? दास्यसि न वा? स कीदृशः? धार्मिको धनि-  
 भी उसके सेवनका सर्वथा त्याग करावे। इस प्रकार भगवानके वचन  
 अनुसार स्त्रीप्रसंगको दुःखप्रद एवं कलहासंगकारक जान कर मैंने ये सब  
 उसके परित्याग का प्रकार कहा है। मुनिको इतना और भी करना  
 चाहिये कि वह कभी भी उसकी जातिकी, उसके कुलकी, उसके  
 वेष-भूषाकी तथा शृङ्गार आदिकी चर्चा नहीं करे और न उसके लिए  
 एकान्तमें धर्मादिक का उपदेश ही दे। न स्त्रीसे उसके विषयकी कोई  
 बात करे अर्थात्—“ तुम्हारा पति कैसा है? तुम्हारा वह आदर करता है  
 या नहीं? आज तुम उदास सी क्यों मालूम देती हो? तुम्हारे क्या  
 संतान है पुत्र है या पुत्री? तुमने पुत्रीका विवाह कर दिया है कि नहीं?  
 यदि कर दिया है तो किसके साथ किया है? यदि नहीं किया है तो  
 क्यों नहीं किया? तुम्हारा जमाई कैसा है-धर्मात्मा है? धनिक  
 है? या नहीं?” इत्यादि रूपसे पूछनेसे मुनिको अपने चारित्र्यमें दूषण

સેવનથી સદા દૂર રાખે. અને બીજાઓને પણ એના ત્યાગ માર્ગે દોરે. અને  
 સર્વથા એનો ત્યાગ કરાવે. આ પ્રકારે ભગવાનના વચન અનુસાર સ્ત્રી-પ્રસંગને  
 દુઃખપ્રદ એવું કહ્યું. આસંગકારક બાણીને મેં આના પરિત્યાગનો પ્રકાર કહ્યો  
 છે. મુનિએ એટલું એ પણ કરવું જોઈએ કે તે ક્યારેય તેની બતિની, એના  
 કુળની તેમજ શૃંગારાદિકની ચર્ચા ન કરે. અને તેને એકાન્તમાં કદી ધર્માદિક  
 ઉપદેશ પણ ન આપે. તેમજ સ્ત્રી સાથે તેના વિષયની કોઈ વાત ન કરે. અર્થાત્—  
 તમારો પતિ કેવો છે? તમારો એ આદર કરે છે કે નહિ? આજે તમે ઉદાસ  
 કેમ દેખાવ છો? તમારે શું સંતાન છે, પુત્ર છે કે પુત્રી? તમે પુત્રીનો વિવાહ  
 કરી દીધો છે કે નહિ? કયો છે તો કોની સાથે કયો છે? નથી કયો તો કેમ  
 નથી કયો? તમારો જમાઈ અને તેનું કુટુંબ કેમ છે? ધર્માત્મા છે? ધનિક  
 છે? કે કેમ. ઇત્યાદિ રીતે પુછવાથી મુનિને પોતાના ચારિત્રમાં દૂષણ આવે છે.

કથાસ્તિ ન વા ? इत्यादिवाक्यैः प्रश्नकरणे चारित्रदोषः सम्भवतीति नैवं कदाचि-  
दपि प्रश्नं कुर्यादिति भावः। अन्यच्च नो मामकः=संसारवस्थापरिणीतायामपि तस्यां  
न ममत्वं कुर्यात् किं पुनरन्यस्याम् । एवं नो कृतक्रियः - कृता=विहिता क्रिया=  
स्त्रीसङ्गप्राप्त्यर्थमङ्गोपाङ्गादिवेष्टारूपा येन स कृतक्रियो न भवेत् । अनेन काय-  
योगो निरुध्यते । एवं वाग्गुप्तः वाचा गुप्तो वाग्गुप्तः=वाचंयमः, स्त्रिया सह रहसि  
वार्तालापादिकं न कुर्यादित्यर्थः, किञ्च-अध्यात्मसंवृतः-आत्मनि=अन्तःकरणे  
इत्यध्यात्मं तेन संवृतः=संवरयुक्तः निवृत्त इत्यर्थः, अनेन मनोनिरोधो दर्शितः,  
आता है । इसलिये ऐसे प्रश्न मुनिजनको स्त्रियोंसे करनेका निषेध है ।

इसी तरह मुनिको चाहिये कि यह अपनी संसारदशामें विवाही  
हुई स्त्रीमें भी ममत्व न रखे-करे । जब उसे निज स्त्रीमें भी ममत्व करने  
के त्यागका आदेश है तो फिर भला ! वह अन्य स्त्रीमें ममत्व भी कैसे  
कर सकता है, अर्थात्-नहीं कर सकता । मुनिको कृतक्रिय भी नहीं  
होना चाहिये-स्त्रीप्रसंगकी प्राप्तिके निमित्त उसे अंग और उपाङ्गादिककी  
चेष्टाका सर्वथा त्यागी होना चाहिये । इस कथनसे उसे काययोगके  
निरोध करनेका आदेश दिया गया है । अर्थात् इस प्रकारकी प्रवृत्तिसे  
काययोगकानिरोध होता है । मुनिको वाग्गुप्त-वाचंयम होना चाहिये,  
एकान्तमें स्त्रीके साथ वार्तालाप आदि नहीं करना चाहिये । इससे वच-  
नयोगका निरोध होता है । इसी प्रकार मुनिको अध्यात्मसंवृत होना  
चाहिये-मनोयोगका निरोध करना चाहिये । इस प्रकारसे अपनी प्रवृत्ति

આ માટે આવા પ્રશ્નો સ્ત્રીઓ સાથે કરવા મુનિજન માટે નિષેધ છે. એ જ પ્રકારે  
મુનિજને જોઈએ કે તે પોતાની સંસારી દશામાં વિવાહિત થયેલી  
સ્ત્રીમાં પણ મમત્વ ન રાખે. જ્યારે તેને પોતાની સ્ત્રીથી પણ મમત્વ ન રાખ-  
વાનો આદેશ છે ત્યારે બીજી સ્ત્રીઓમાં તે મમત્વ કઈ રીતે કરી શકે ?  
અર્થાત્ નહિ કરી શકે. મુનિએ કૃતક્રિય પણ ન બનવું જોઈએ. સ્ત્રીપ્રસંગની  
પ્રાપ્તિના નિમિત્ત તેને અંગ તેમજ ઉપાંગાદિકની ચેષ્ટાના ત્યાગી બનવું જોઈએ.  
આ કથનથી તેને કાયયોગના નિરોધ કરવાનો આદેશ અપાયેલ છે. અર્થાત્ આ  
પ્રકારની પ્રવૃત્તિથી કાયયોગનો નિરોધ થાય છે. મુનિએ વાગ્ગુપ્ત-વાચંયમ  
બનવું જોઈએ. એકાંતમાં સ્ત્રીની સાથે વાર્તાલાપાદિ નહિ કરવો જોઈએ. આનાથી  
વચનયોગનો નિરોધ થાય છે. આ રીતે મુનિએ અધ્યાત્મસંવૃત બનવું જોઈએ,  
એટલે મનોયોગનો નિરોધક બનવું જોઈએ. આ પ્રકારની પોતાની પ્રવૃત્તિ રાખનાર

एतादृशः सन् मुनिः सदा=सर्वकालं पापं=स्त्रीसङ्गजनितं दुष्कृतं पापजनकं कर्म वा मैथुनादिकं परिवर्जयेत्, उपलक्षणं प्राणातिपातादिपरित्यागस्यापि। उपसंहरन्नाह-  
'एत' दित्यादि-एतत्=उद्देशारम्भतो यदुक्तं तत् सर्वं "मौनं" =मुनेः=संयतस्याऽयं मौनस्तं संयमं समनुवासयेत्=परिपालयेत् इति। ब्रवीमीत्यस्यार्थस्तुक्त एव ॥सू०४॥

॥ पञ्चमाध्ययनस्य चतुर्थोद्देशः समाप्तः ॥ ५-४ ॥

રખનેવાલા મુનિ સદા સ્ત્રીપ્રસંગજનિત દુષ્કૃત અથવા પાપજનક મૈથુનાદિક કર્મસે નિવૃત્ત હોતા હૈ । પ્રાણાતિપાતાદિક પાપકર્મકા ભી યહ ઉપલક્ષક હૈ, ઇસસે નિવૃત્ત હોનેસે મુનિ હિંસાદિક પાપકર્મોંસે ભી નિવૃત્ત હો જાતા હૈ એસા સમજ લેના ચાહિયે ! ઇસ પ્રકારકા ઉપસંહાર કરતે હુએ સૂત્રકાર કહતે હૈં કિ મુનિ ઇસ મૌન-સંયમ કા સદા પાલન કરે । "બ્રવીમિ" ઇસ પદકા અર્થ પહિલે કહ હી દિયા ગયા હૈ ॥

૧. પાંચવેં અધ્યયનકા ચૌથા ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૫-૪ ॥

મુનિ સદા સ્ત્રીપ્રસંગથી બનતા દુષ્કૃત અને પાપજનક મૈથુનાદિક કર્મથી નિવૃત્ત થાય છે. પ્રાણાતિપાતાદિક પાપકર્મનો પણ એ ઉપલક્ષક છે. આનાથી નિવૃત્ત થવાથી મુનિ હિંસાદિક પાપકર્મોથી પણ નિવૃત્ત બની જાય છે. એવો અર્થ સમજ લેવો જોઈએ. આ પ્રકારે ઉપસંહાર કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે, મુનિ આ મૌન-સંયમનું સદા પાલન કરે. "બ્રવીમિ" આ પદનો અર્થ અગાઉ કહી દેવામાં આવેલ છે.

પાંચમા અધ્યયનનો ચોથો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૫-૪ ॥





## પંચમાધ્યયનસ્ય પંચમ ઉદ્દેશઃ ।

ગતશ્ચતુર્થ ઉદ્દેશોઽધુના પંચમઃ સમારંભ્યતે । એષ ચાનન્તરસમ્બન્ધઃ - પૂર્વોદ્દેશે ચ એકચરસ્યાવ્યક્તસ્ય વહ્વોઽપાયા જાયન્તે તત્પરિહારાય જ્ઞાનાદિપ્રાપ્તયે ચ દ્વદસદશસ્ય પંચાચારસેવિન આચાર્યસ્ય સમીપે વસતા કાયવાહ્મનોગુપ્તિમતા સ્ત્ર્યાદિ-સક્કરહિતેન શિષ્યેણ વિચરણીયમિત્યાચારઃ પ્રદર્શિતઃ । સ એવાત્રાચારો લોકે સાર-

## પાંચવે અધ્યયનકા પાંચવાં ઉદ્દેશ ।

ચતુર્થ ઉદ્દેશ સમાપ્ત હુઆ, અવ પંચમ ઉદ્દેશકા પ્રારંભ હોતા હૈ । હસ ઉદ્દેશકા ચતુર્થ ઉદ્દેશકે સાથ સંબંધ હૈ ઓર વહ હસ પ્રકારસે હૈ, ચતુર્થ ઉદ્દેશમેં સૂત્રકારને યહ પ્રદર્શિત કિયા હૈ કિ જો એકચર્યા કરને-વાલે અવ્યક્ત મુનિ હૈં ઉન્હેં ઉસ ચર્યામેં અનેક દોષ લગતે હૈં, હસલિયે ઉન દોષોંકે પરિહારકે લિયે તથા જ્ઞાનાદિક ગુણોંકી પ્રાપ્તિકે હેતુ મુનિકો-ચાહિયે કિ વહ દ્રહ તુલ્ય એવં પંચ આચારોંમેં નિરત અપને આચાર્ય ગુરુ-દેવકી નિશ્રામેં હી રહેં । મનોગુપ્તિ, વચનગુપ્તિ એવં કાયગુપ્તિકા પાલન કરેં । સ્ત્રી આદિકે પ્રસંગસે સદા દૂર રહેં । આચાર્ય ગુરુદેવકી છત્રછાયા કે સહારે હી વિહાર કરેં । એસા હી મુનિકા આચાર હૈ । ઓર યહી લોકમેં સારભૂત-ઉત્તમ માના ગયા હૈ । હસી આચારકા મોક્ષકે સારથી-ભૂત તીર્થઢૂર આદિકોંને સેવન કિયા હૈ । અતઃ હસી આચારકા સૂત્ર-

## પાંચમા અધ્યયનનો પાંચમો ઉદ્દેશ

ચોથો ઉદ્દેશ સમાપ્ત થયો હવે પાંચમા ઉદ્દેશનો પ્રારંભ થાય છે. આ ઉદ્દેશનો ચોથા ઉદ્દેશ સાથે સંબંધ છે અને તે એ પ્રકારે કે-ચોથા ઉદ્દેશમાં સૂત્રકારે આ રજુ કરેલ છે જે એકચર્યા કરવાવાળા અવ્યક્ત મુનિ છે, એને એ ચર્યામાં અનેક દોષ લાગે છે. આથી આ દોષોના નિવારણ માટે તેમજ જ્ઞાનાદિક ગુણોની પ્રાપ્તિના હેતુથી મુનિએ દ્રહતુલ્ય એટલે પાંચ આચારોમાં નિરત પોતાના આચાર્ય ગુરુદેવની છાયામાં જ રહેવું જોઈએ. મનોગુપ્તિ વચન-ગુપ્તિ અને કાયગુપ્તિનું પાલન કરે, સ્ત્રી આદિના પ્રસંગથી સદા દૂર રહે, આચાર્ય ગુરુદેવની છત્રછાયાના નેસરાય વિહાર કરે. એવો જ મુનિનો આચાર છે અને એ જ લોકમાં સારભૂત-ઉત્તમ માનવામાં આવેલ છે. આ આચારનું મોક્ષના સારથી એવા તીર્થ-કરદિકોએ સેવન કર્યું છે. એટલે આ જ આચારનું સૂત્ર-

ભૂતો નિર્વાણસારથિભિસ્તીર્થકૃદ્ધિઃ સેવિત્ત્વ ઇતિ સ એવાત્ર પ્રતિપાદયિત્વ્યોઽસ્તિ ।

સમ્પ્રતિ દૃષ્ટાન્તેનાઽઽચારસ્ય સારત્વપ્રકટનાયાહ—‘સે વેમિ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—સે વેમિ તં જહા—અવિ હરણપડિપુણ્ણે સમંસિ ભોમે ચિદ્દહ ઉવસંતરણ સારવ્વમાણે, સે ચિદ્દહ સોયમજ્જગણ સે પાસ સવ્વઓ ગુત્તે, પાસ લોણ મહેસિણો જે ય પન્નાણમંતા પબુદ્ધા અરંભોવરયા સમ્મમેયંતિ પાસહ, કાલસ્સ કંઘાણ પરિવ્વયંતિ ત્તિવેમિ ॥ સૂ. ૧ ॥

છાયા—તદ્ બ્રવીમિ તથા—અપિ હ્રદઃ પ્રતિપૂર્ણઃ સમે ભોમે તિષ્ઠતિ ઉપશાન્તરજાઃ સમારક્ષન્, સ તિષ્ઠતિ સ્ત્રોતોમધ્યગતસ્તત્ પશ્ય સર્વતો ગુપ્તઃ, પશ્ય લોકે મહર્ષયો યે ચ પ્રજ્ઞાનવન્તઃ પ્રબુદ્ધા આરમ્ભોપરતાઃ સમ્યગેતદિતિ પશ્યત્, કાલસ્ય કાક્ષ્યા પરિવ્રજન્તિ ઇતિ બ્રવીમિ ॥ સૂ. ૧ ॥

ટીકા—‘તદ્ બ્રવીમિ’ ઇત્યાદિ, અહં યાદશગુણગણસમુદિત આચાર્યો ભવેત્તાદૃશં તીર્થક્રૂરાજ્ઞયા તત્સર્વં બ્રવીમિ=ત્વાં કથયામિ, તદેવ પ્રતિપાદયિતુમાહ—‘તચ્ચથે’—ત્યાદિ, તથા=વાક્યપ્રતિપાદનાર્થમ્, અપિ શબ્દો ભક્તચતુષ્ટયસંગ્રાહકઃ । પ્રતિપૂર્ણઃ=સ્વચ્છજલૈઃ સાર્વકાલિકપુષ્પાદિભિરન્તશ્રવજલજન્તુભિશ્ચ સમન્તાત્પૂર્ણઃ શોભિતો વા, કાર ઉસે પ્રતિપાદન યોગ્ય સમજ્જકર હસ ઉદ્દેશમે પ્રતિપાદન કરતે હૈં । સર્વ પ્રથમ વે દૃષ્ટાન્તસે આચારમે સારભૂતતા પ્રદર્શિત કરનેકે લિયે કહતે હૈં “સે વેમિ” ઇત્યાદિ—

શિષ્ય કો લક્ષ્યકર સૂત્રકાર કહતે હૈં કિ હે શિષ્ય ! આચાર્ય મહારાજ કૈસે ૨ ગુણોસે યુક્ત હોતે હૈં, મૈં તુમ્હેં યહ કહતા હૂં । યહાં આચાર્ય મહારાજકો જો જલાશયકી ઉપમા દી ગઈ હૈં ઉસકા મતલબ યહ હૈં—જિસ પ્રકાર—સમ ભૂમિભાગમે સ્થિત જલાશય કમી શુષ્ક—પાનીસે રિક્ત નહીં હોતા હૈં, ન કમી વહ વિકૃતિકો હી પ્રાપ્ત કરતા હૈં, સદા પાનીસે

કારે પ્રતિપાદન યોગ્ય સમજ્જ આ ઉદ્દેશમાં પ્રતિપાદન કર્યું છે. સહુ પ્રથમ દષ્ટાંતથી આચારમાં સારભૂતતા પ્રદર્શિત કરવાનું કહે છે. “સે વેમિ” ઇત્યાદિ.

શિષ્યને લક્ષ્યબિન્દુ બનાવી સૂત્રકાર કહે છે કે હે શિષ્ય ! આચાર્ય મહારાજ કેવા કેવા ગુણોથી યુક્ત હોય છે તે હું તમને સમજાવું છું. આહિ આચાર્ય મહારાજને જળાશયની ઉપમા આપવામાં આવી છે. એનો મતલબ આ છે કે જે પ્રકારે—સમભૂમિ ભાગમાં સ્થિત જળાશય કોઈ વખત પાણી વિનાનું હોતું નથી તેમ ન તો કદી તે વિકૃતિને પ્રાપ્ત કરે છે. સદા સર્વદા પાણીથી

‘ઉપશાન્તરજાઃ’=ઉપશાન્તં=નષ્ટં રજો ધૂલિર્યત્ર સ ઉપશાન્તરજાઃ, યતો વર્ષતૈર્ જલાદિપ્રપાતે જલં રજસઃ સમ્પર્કાત્કલુષં વર્ષાપગમે ચ રજસોઽપગમાચ્ચરદાદા-વતિનિર્મલં જાયતે । સમારક્ષન્=અન્તઃસ્થિતજલજન્તૂન્ સમ્યક્ પરિપાલયન્ હ્રદઃ=અગાધજલાશયઃ, સમે=ઉચ્ચાવચરહિતે-ભૌમે=ભૂમેઃ=પૃથિવ્યા અયં ભૌમો-ભૂભાગસ્તસ્મિન્ સમે ભૂભાગે યથા તિષ્ઠતિ કદાચિદપિ ન શુષ્યતિ નાપિ વૈકૃત્યમુ-પગચ્છતિ, તથૈવાચાર્યોઽપિ હ્રદવત્ અનુપ્રદર્શ્યમાનમજ્જચતુષ્ટયાન્તર્ગતપ્રથમમજ્જાવસ્થિતો જ્ઞાનાદિસમન્વિતઃ ષટ્ત્રિંશદ્ગુણભૂષિતઃ પશ્ચાચાયુક્તોઽષ્ટવિધસમ્પત્તિશાલી ભવેત્, તાશ્ચાષ્ટસંપદો યથા—

લબાલબ ભરા રહતા હૈ, સમસ્ત ઋતુઓંકે પત્ર પુષ્પાદિકોં ઓર જલચર જન્તુઓંસે વહ ચારોં ઓરસે વ્યાસ-પૂર્ણ રહા કરતા હૈ, શોભિત રહતા હૈ, તથા ઉપશાન્તરજ હોતા હૈ-ધૂલિ આદિ જિસમેં ઉપશાન્ત રહતી હૈ, યદ્યપિ વર્ષાઋતુમેં વૃષ્ટિકે હોને પર જલ ધૂલિકે સમ્પર્કસે કલુષિત હો જાતા હૈ તો મી વર્ષાંકે નષ્ટ હોને પર ધૂલિકે અપગમ હોનેસે શરદકાલ મેં વહી જલ અત્યંત નિર્મલ હો જાતા હૈ । તથા અપને મીતર રહે હુઅ જલચર જીવોંકા વહ સદા પાલક હૈ । ઇસી પ્રકાર જ્ઞાનાદિ યુક્ત, છત્તીસ ગુણોંસે વિભૂષિત તથા પંચ આચાર વિશિષ્ટ આચાર્ય મી નીચે કહે ગયે-નિમ્નલિખિત ચાર ભંગોંમેંસે ૧ પ્રથમ ભંગમેં સમ્મિલિત હોનેસે જલાશય કે તુલ્ય માને ગયે હૈ । તથા આઠ પ્રકારકી સંપદાઓંસે મી સુશોભિત હોતે હૈ । વે આઠ પ્રકારકી સંપદાયેં વે હૈ—

ભરેલું રહે છે. બધી ઋતુઓમાં પુષ્પ પાંદડાં અને જળચર જંતુઓથી ચારે તરફ એ હર્થું ભર્થું રહે છે-શોભી રહે છે. અને સદા શાન્તિ આપનાર રહે છે. ધૂળ વગેરે તેનામાં પડી શાન્ત બને છે. વર્ષાઋતુમાં વૃષ્ટિના કારણે જળ ધૂળના સંપર્કથી ડહોળું બને છે પરંતુ વર્ષાકાળ બાદ ધૂળ નીચે બેસી જવાથી શરદકાળમાં એ જળ અત્યંત નિર્મળ બની બચ છે. અને પોતાનામાં રહેલા જળચર જીવોનું સદા પાલન કરે છે. એ પ્રકારે જ્ઞાનાદિયુક્ત, છત્રીસગુણભૂષિત અને પાંચ આચાર વિશિષ્ટ આચાર્ય પણ નીચે જણાવવામાં આવેલ ચાર ભંગોમાંથી પહેલા ભંગમાં સમ્મિલિત હોવાથી જળાશય તુલ્ય માન્યા ગયા છે. તેમજ આઠ પ્રકારની સંપદાઓથી પણ એ સુશોભિત હોય છે. તે આઠ પ્રકારની સંપદાઓ-આચાર, શ્રુત, શરીર, વચન, વાચના, મતિ, પ્રયોગમતિ અને સંગ્રહપરિજ્ઞા છે.



“ આચાર સુઅસરીરે, વયળે વાયળ મઈ પઓગમઈ ।

एस सुसंपया खलु, अष्टमिया संग्रहपरिज्ञा ॥ ”

છાયા—આચારઃ શ્રુતં શરીરં વચનં વાચના મતિઃ પ્રયોગમતિઃ । એતાઃ સુસમ્પદઃ : खलु अष्टमी संग्रहपरिज्ञा ॥ ” इति । निर्मलज्ञानादिभिः प्रति-पूर्णः, उपशान्तरजाः-उपशान्तमोहनीयः, समारक्षन्=षड्जीवनिकायं चतुर्विध-सङ्घं गच्छगतसाधून् स्वात्मानं च सम्यक् रक्षन् समे भौमे=स्त्रीपशुपण्डकादिपरि-वर्जिते शोभने स्थाने तिष्ठति । अत्र हृदोपमानेन हृदादेश्चतुर्विधतयाऽऽचार्योऽपि तादृश एव भवति, तत्र चतुर्भङ्गी यथा—

(૧) एकः सीतासीतोदाप्रवाहहृदादिवत्परिगलत्स्रोताः पर्यागलत्स्रोताश्च ।

“ આચાર સુઅસરીરે વયળે વાયળ મઈ પઓગમઈ । एस सुसंपया खलु अष्टमिया संग्रहपरिज्ञा ” ॥ આચાર, શ્રુત, શરીર, વચન, વાચના, મતિ, પ્રયોગમતિ, ઔર સંગ્રહપરિજ્ઞા । (દ. શ્રુ. સ્કં. અ. ૪)

નિર્મલ જ્ઞાનાદિકૉસે પ્રતિપૂર્ણ હોતે હૈં । મોહનીયકર્મકે ઉપશમન સે યે ઉપશાન્તરજ હોતે હૈં । ષડ્જીવનિકાય, ચતુર્વિધસંઘ તથા ગચ્છમેં રહનેવાલે સાધુઓંકે એવં અપની આત્માકે અચ્છી રીતિસે રક્ષક હોતે હૈં । સ્ત્રી, પશુ, પણ્ડક-નપુંસક આદિસે વર્જિત સ્થાનમેં યે રહતે હૈં; इसलिये जलाशयके समस्त विशेषण इनमें घटित होते हैं । हृद-जलाशयकी उपमा देनेसे यह बात ज्ञात होती है कि जिस प्रकार जलाशय चार प्रकारके होते हैं, उसी प्रकार आचार्य भी चार तरहके होते हैं । वह चतुः-प्रकारता इस चतुर्भङ्गीसे जानी जाती है । जैसे—

(૧) कोई एक आचार्य, सीता सीतोदा नदीके प्रवाहका हृद कि जिससे दूसरा प्रवाह निकलता है और बाहरसे दूसरा प्रवाह भी जिसमें आकर

નિર્મળ જ્ઞાનાદિકોથી તે પ્રતિપૂર્ણ છે, મોહનીય કર્મના ઉપશમનથી તે ઉપશાન્તરજ હોય છે. ષડ્જીવનિકાય, ચતુર્વિધસંઘ તથા ગચ્છમાં રહેવાવાળા સાધુઓના અને પોતાના આત્માના સારી રીતે રક્ષક હોય છે. સ્ત્રી, પશુ, નપુંસક આદિથી વર્જિત સ્થાનમાં એ રહે છે. આ માટે જળાશયના સમસ્ત વિશેષણ તેમનામાં બંધાયેલાં છે. હૃદ-જળાશયની ઉપમા દેવાથી આ વાત બાહ્યી શકાય છે કે જેવી રીતે જળાશય ચાર પ્રકારનાં હોય છે એ જ રીતે આચાર્ય પણ ચાર પ્રકારના હોય છે. તે ચાર પ્રકાર ચાર ભંગથી બાહ્યી શકાય છે. જેમ (૧) કેઇ એક આચાર્ય સીતા સીતોદા નદીના પ્રવાહની તરફ-જેમાંથી બીજો પ્રવાહ કુટતો હોય છે અને બહાર

(૨) દ્વિતીયો હિ પદ્મહ્રદાદિવત્પરિગલત્સ્રોતા નો પર્યાગલત્સ્રોતાઃ ।

(૩) તૃતીયો લવણસમુદ્રવદ્ નો પરિગલત્સ્રોતાઃ પર્યાગલત્સ્રોતાઃ ।

(૪) ચતુર્થો મનુષ્યલોકવાહસમુદ્રવત્પરિગલત્સ્રોતા નો પર્યાગલત્સ્રોતાશ્ચેતિ ।

પ્રથમમંગ્લાન્તર્ગત આચાર્યઃ શાસ્ત્રમધીતેઽધ્યાપયતિ ચ જલસ્ય પ્રવેશ-નિર્ગમ-  
વત્ જ્ઞાનપદાનાદાનયોઃ સમ્ભવાત્, સ ચાયં સ્થવિરકલ્પિકઃ । દ્વિતીયમંગ્લસ્થસ્તીર્થઙ્ક-  
રાદિસ્તસ્ય નિર્ગમસ્થાનીયાર્થાગમસદ્ભાવાત્, કષાયોદયાસમ્ભવેન પ્રવેશસ્થાનીય-  
મિલતા હૈ વૈસે હોતે હૈ ।

(૨) દૂસરે કોઈ એક આચાર્ય પદ્મહ્રદ આદિકે સમાન હોતે હૈં કિ જિસસે  
પ્રવાહ તો નિકલતા હૈ, પરંતુ દૂસરા પ્રવાહ જિસમેં આકર નહીં મિલતા હૈ ।

(૩) તૃતીય કોઈ એક આચાર્ય લવણસમુદ્રકે તુલ્ય હોતે હૈં કિ જિસસે  
ઔર કોઈ દૂસરા પ્રવાહ તો નહીં નિકલતા હૈ પરંતુ જિસમેં દૂસરા પ્રવાહ  
આકર મિલતા હૈ ।

(૪) ચતુર્થ-કોઈ ૨ એસે મી આચાર્ય હોતે હૈં જો મનુષ્યલોકસે  
બાહર રહે હુણ સમુદ્રકી તરહ ન ઉસસે દૂસરા કોઈ પ્રવાહ નિકલતા હૈ  
ઔર ન જિસમેં ઔર કોઈ પ્રવાહ હી આકર મિલતા હૈ ।

इनमेंसे प्रथम भंगके अन्तर्गत आचार्य शास्त्र पढ़ते हैं और अन्यको  
पढ़ाते हैं । जलके आनेजानेकी तरह इनमें ज्ञानका आदान-प्रदान होता  
रहता है । इस भंगके अन्तर्गत आचार्य स्थविरकल्पी होते हैं । दूसरे भंग  
के अन्तर्गत तीर्थङ्करादि होते हैं । क्यों कि इनसे जलप्रवाहके निर्गमके

રથી બીજી પ્રવાહ પણ એમાં આવીને મળતો હોય છે. (૨) બીજા કોઈ એક  
આચાર્ય પદ્મહ્રદ આદિ સમાન-જેમાંથી પ્રવાહ નિકળે છે પરંતુ બીજી પ્રવાહ  
આવી તેમાં મળી શકતો નથી તેવા-હોય છે. (૩) કોઈ એક આચાર્ય ખારા  
સાગર જેવા જેમાંથી કોઈ પ્રવાહ તો નીકળતો નથી પરંતુ જેનામાં બીજા  
પ્રવાહો આવી મળે છે આવા હોય છે. (૪) કોઈ કોઈ એવા પણ આચાર્ય હોય  
છે જે મનુષ્ય લોકથી બહાર એવા સમુદ્રની પેઠે ન એમાંથી બીજી કોઈ પ્રવાહ  
નિકળે છે અને ન તો એમાં કોઈ પ્રવાહ આવીને મળતો હોય છે. આમાં પ્રથમ  
ભંગના અંતર્ગત આચાર્ય શાસ્ત્ર શીખે છે અને શીખડાવે છે. જળના આવવા  
જવાની માફક તેમનામાં જ્ઞાનનું આવવું-જવું બનતું રહે છે. આ ભંગના  
અન્તર્ગત આચાર્ય સ્થવિરકલ્પી હોય છે. બીજા ભંગના અન્તર્ગત તીર્થંકરાદિ  
હોય છે. કારણ કે તેમનાથી જળપ્રવાહના નિર્ગમ સમાન અર્થરૂપથી આગમનું

શ્રુતાધ્યયનાદેરસત્ત્વાત્, તપઃસંયમાદિના કર્મક્ષણં સુતરાં જાયતે તેનાપિ ચ નિર્ગમસ્થાનીયત્વં સિદ્ધયતિ, ઘાતિકર્મક્ષયેણ નૂતનકર્મણામાગમનાસમ્ભવેન પ્રવેશ-  
સ્યાભાવાત્ । તૃતીયભંગપતિતો લવણોદધિતુલ્યો યાથાલન્દિકઃ । તથા હિ-ઉદકા-  
ર્દ્રકરેન્ના યાવતા કાલેન શુષ્યતિ તત આરમ્ભ્ય પશ્ચરાત્રિન્દિવલક્ષણઃ કાલો 'લન્દ'  
શબ્દેનાત્ર ગૃહ્યતે, લન્દમનતિક્રમ્ય યથાલન્દં, તેન ચરતીતિ યાથાલન્દિક ઉક્તપરિમિ-  
તકાલવિશેષાચારીત્યર્થઃ, સ ચોત્કૃષ્ટતઃ એકસ્થાને પશ્ચરાત્રિન્દિવં યાવત્તિષ્ઠતિ,  
સામાન અર્થરૂપસે આગમકા નિર્ગમ હોતા હૈ । કષાયકે ઉદયકી અસં-  
ભવતા હોનેસે ઇનમેં જલપ્રવાહકે પ્રવેશ કે તુલ્ય દૂસરોંસે શ્રુતકે અધ્ય-  
યન આદિકે પ્રવેશકા સંભવ નહીં હોતા હૈ । તપ ઓર સંયમાદિકદ્વારા  
કર્મકા અભાવ સ્વતઃ હો જાતા હૈ, ઇસસે ખી ઇનમેં નિર્ગમસ્થાનીયતા  
સિદ્ધ હોતી હૈ । ઘાતિયાકર્મોંકે ક્ષયસે નૂતન કર્મોંકે આગમનકી અસંભ-  
વતાસે વહાં પર ઉનકે પ્રવેશકા અભાવ હૈ । તૃતીય ભંગવર્તી લવણોદધિ  
કે તુલ્ય યાથાલન્દિક સાધુ હૈં । જિતને સમયમેં ગીલે હાથકી રેન્ના શુષ્ક  
હોતી હૈ ઇતને સમયસે લગાકર પાંચ રાત ઓર દિનકે સમયકા નામ યહાં  
લન્દ માના ગયા હૈ । ઇસ લન્દકાલકા ઉલ્લંઘન નહીં કરના યથાલન્દ હૈ ।  
ઇસ કાલકે અનુસાર જો ચલતા હૈ-અપની ચર્ચા કરનેવાલા હૈ વહ યાથા-  
લન્દિક સાધુ હૈ । યહ સાધુ ઉત્કૃષ્ટ રીતિસે એક જગહ પાંચ રાતદિન તક  
ઠહર સકતા હૈ । ઇસ યથાલન્દકલ્પકો પાંચ મુનિયોંકા સમુદાયરૂપ ગણ

નિર્ગમ થાય છે. કષાયના ઉદયની અસંભવતા હોવાથી તેમનામાં જળ પ્રવાહના  
પ્રવેશતુલ્ય બીજાઓથી શ્રુત અને અધ્યયન આદિનો પ્રવેશનો સંભવ નથી હોતો.  
તપ અને સંયમ આદિ દ્વારા કર્મનો અભાવ સ્વતઃ બની રહે છે. આથી તેમ-  
નામાં નિર્ગમસ્થાનીયતા સિદ્ધ બને છે, ઘાતિયા કર્મોના ક્ષયથી, નવા કર્મોના  
આગમનની અસંભવતાથી એમનામાં એના પ્રવેશનો અભાવ છે. ત્રીજા ભંગ  
મુજબ લવણસમુદ્રતુલ્ય યાથાલન્દિક સાધુ છે, જેટલા સમયમાં ભીના હાથની  
રેન્ના શુષ્ક હોય છે એટલા સમયથી લગાડી પાંચ રાત અને દિવસના સમયનું  
નામ અહિં લન્દ માન્યું છે. આ લન્દ કાળનું ઉલ્લંઘન નહિ કરવું તે યથાલન્દ છે,  
આ કાળને અનુસાર જે ચાલે છે-પોતાની ચર્ચા કરવાવાળા છે તે યાથાલન્દિક સાધુ  
છે. આ સાધુ ઉત્કૃષ્ટ રીતે પાંચ રાત દિવસ સુધી એક ગામમાં રહી શકે છે. આ



પશ્ચાન્નિસંખ્યકો ગણો ભવતિ, સ એવ ગણોઽમું કલ્પં પ્રતિપદ્યતે, એતે પ્રાયો જિન-કલ્પિકલ્પકલ્પં પરિપાલયન્તિ, અયં ચાચાર્યાદેઃ શ્રુતાદિકં ગૃહ્ણાતિ કિન્તુ ન કસ્મૈ-ચિત્ પ્રદદાતિ, અત એવ લવણોદધિસાદૃશ્યં પ્રવેશસત્ત્વેઽપિ નિર્ગમાસત્ત્વાત્ । ચતુર્થ-ભક્તસ્થઃ પ્રત્યેકબુદ્ધઃ, સ ચ ન કસ્મૈ ચિદ્ દદાતિ નાપિ પ્રતિગૃહ્ણાતિ મનુષ્યક્ષેત્ર-વ-હિર્વર્તિસમુદ્રવત્ પ્રવેશ-નિર્ગમોભયાભાવાત્ ।

તસ્ય પ્રથમભક્તસ્થસ્થવિરકલ્પિકસ્ય શ્રુતદાનગ્રહણસમ્ભવેન સ્વરૂપમાહ—‘સ’ ઇત્યાદિ, હે શિષ્ય ! સ્ત્રોતોમધ્યગતઃ પ્રવેશનિર્ગમપ્રવાહાન્તર્વર્તી સ હ્રદો યથા ચાક્ષો-હી પાલતા હૈ । યે મુનિ જિનકલ્પી કે તુલ્ય આચારકા પાલન કરતે હૈં । યહ ગણ આચાર્ય આદિસે શ્રુત આદિકા અધ્યયન તો કરતા હૈ, પરન્તુ અન્યકે લિયે વહ ઉસે પ્રદાન નહીં કરતા હૈ । ઇસીલિયે ઇસકો લવણોદધિ કે તુલ્ય કહા હૈ । ક્યોં કિ ઇસમેં જ્ઞાનાદિકકા પ્રવેશ હોનેપર મી ફિર ઉસસે ઉસકા બાહિર નિકલના-અન્યકે લિયે ઉસકા પ્રદાન કરના નહીં હોતા હૈ ।

ચતુર્થ ભંગકે અન્તર્ભૂત પ્રત્યેક બુદ્ધ હૈં । વે ન કિસીસે જ્ઞાનાદિકકો ગ્રહણ કરતે હૈં ઓર ન કિસીકે લિયે ઉસકા પ્રદાન હી કરતે હૈં । મનુ-ષ્યક્ષેત્રકે બાહર રહે હુએ સમુદ્રકી તરહ ઉનમેં પ્રવેશ ઓર નિર્ગમ દોનોંકા સર્વથા અભાવ રહતા હૈ ।

પ્રથમ ભંગકે અન્તર્ગત સ્થવિરકલ્પીકે શ્રુતકે આદાનપ્રદાનકા સંભવ હોનેસે સૂત્રકાર ઉસકે સ્વરૂપકો પ્રકટ કરતે હૈં—“સ” ઇત્યાદિ-વે શિષ્ય

યથાલન્દ કલ્પને પાંચ મુનિઓના સમુદાયરૂપ ગણ પાળે છે. આ મુનિ જિનકલ્પીની તુલ્ય આચારનું પાલન કરે છે. આ ગણ આચાર્ય આદિથી શ્રુત આદિનું અધ્યયન તો કરે છે, પરંતુ બીજાને માટે તે તેનું પ્રદાન કરતા નથી. આ માટે તેમને લવણ-સાગરની તુલ્ય ગણ્યા છે. કારણ કે તેમાં જ્ઞાનાદિકનો પ્રવેશ હોવા છતાં પણ તેમાંથી બહાર નીકળતું - અન્યને માટે તેનું પ્રદાન થતું નથી.

ચોથા ભંગના અન્તર્ભૂત પ્રત્યેક બુદ્ધ છે. એ ન તો કોઈનાથી જ્ઞાનાદિક ગ્રહણ કરે છે ન કોઈને એ તેનું પ્રદાન કરે છે. મનુષ્યક્ષેત્રથી બહાર રહેતા સમુદ્રની તરહ એનામાં પ્રવેશ અને નિર્ગમ બન્નેનો સર્વથા અભાવ રહે છે.

પ્રથમ ભંગના અન્તર્ગત સ્થવિરકલ્પીમાં શ્રુતના આવવા-જવાનો સંભવ હોવાથી સૂત્રકાર એના સ્વરૂપને પ્રકટ કરે છે. “સ” ઇત્યાદિ. એ શિષ્યને

મ્યસ્તથૈવ સઃ=આચાર્યઃ સર્વતઃ=સર્વપ્રકારેણ ઇન્દ્રિયનોન્દ્રિયોપશમરૂપયા ગુપ્તયા  
ગુપ્તસ્તિષ્ઠતીતિ પશ્યાઆચાર્ય ઇવાન્યેડપિ મુનયસ્તાદ્દશગુણસમ્પન્ના ભવન્તીતિ નિર્દિશતિ  
—‘પશ્યે’ ત્યાદિ, મહર્ષયઃ=મહાન્તશ્ચ તે ઋષયો મહર્ષયો મહાસંયમિનઃ । કિંચ તે કે  
દ્વદોપમા મહામુનયઃ? યે ચ પ્રજ્ઞાનવન્તઃ—પ્રકર્ષેણ જ્ઞાયતે બુદ્ધચતેડનેનેદં વેતિ પ્રજ્ઞાનં,  
પરસ્ય સ્વસ્ય ચાલોકાદિવદવભાસકત્વાત્ પ્રજ્ઞાનમ્=આગમસ્તદેષામસ્તીતિ પ્રજ્ઞાનવન્તઃ  
=આગમતત્ત્વપરિજ્ઞાનકુશલાઃ ।

કો સંબોધિત કરતે હુણ કહતે હૈં કિ હે શિષ્ય ! જિસ પ્રકાર પ્રવાહકે  
મધ્યવર્તી—જિસસે દૂસરા પ્રવાહ નિકલતા હૈં ઓર જિસમેં દૂસરા પ્રવાહ  
આકર મિલતા હૈં એસા દ્વદ અક્ષોમ્ય હોતા હૈં ઉસી પ્રકાર વહ આચાર્ય  
મી સર્વ પ્રકારસે ઇન્દ્રિય ઓર નોન્દ્રિયોંકે ઉપશમરૂપ ગુપ્તિસે સદા  
રક્ષિત રહા કરતે હૈં । આચાર્યકે સમાન અન્ય મુનિજન મી જો હસી  
પ્રકારકે ગુણોંસે સમ્પન્ન હોતે હૈં ઉન્હેં હસી મંગકે અન્તર્ગત હી સમજના  
ચાહિયે । હસી વાતકો “પશ્યે” ત્યાદિ સૂત્રાંશસે પ્રકટ કરતે હૈં—  
વિશિષ્ટ સંયમકા જો આરાધન કરતે હૈં વે મહર્ષિ કહલાતે હૈં । યે મહર્ષિ  
દ્વદકે તુલ્ય હોતે હૈં । યે પ્રજ્ઞાનસંપન્ન હોતે હૈં । પ્રજ્ઞાન શબ્દકા અર્થ  
યહાં આગમ હૈં । ક્યોં કિ પ્રકાશ આદિકી તરહ હસીકે દ્વારા સ્વ ઓર  
પરકા યથાર્થ—રીતિસે બોધ હોતા હૈં । યહ આગમ જિનકે હોતા હૈં—અર્થાત્  
જો હસ આગમ તત્ત્વકે જ્ઞાતા હોતે હૈં વે પ્રજ્ઞાનવાન્ હૈં ।

સંબોધન કરીને કહે છે કે—હો શિષ્ય ! જેમ પ્રવાહની વચમાં રહેલો હૃદ કે  
જેમાંથી બીજો પ્રવાહ નીકળે છે અને જેમાં બીજો પ્રવાહ આવીને મળે છે અક્ષોભ્ય  
હોય છે, એજ રીતે એ આચાર્ય પણ સર્વ પ્રકારથી ઇન્દ્રિય અને નોઈન્દ્રિયના ઉપ-  
શમરૂપ ગુપ્તિથી સદા રક્ષિત રહ્યા કરે છે. આચાર્યની સમાન બીજા મુનિજન  
પણ જે આ પ્રકારના ગુણોથી સંપન્ન હોય તે બધા આ ભંગના અન્તર્ગતજ સમજવા.  
આ વાતને “પશ્ય” ઇત્યાદિ સૂત્રાંશથી પ્રગટ કરે છે—વિશિષ્ટ સંયમનું જે  
આરાધન કરે છે તે મહર્ષિ કહેવાય છે. એ મહર્ષિ હૃદના સમાન હોય છે.  
એ પ્રજ્ઞાનસંપન્ન હોય છે. પ્રજ્ઞાન શબ્દનો અર્થ અહિં આગમ છે. કેમ કે પ્રકાશ  
આદિની માફક એમના દ્વારા સ્વ અને પરનો યથાર્થ રીતથી બોધ થાય છે.  
આ આગમ જેનામાં હોય છે અર્થાત્ જે આગમ તત્ત્વના બાણુકાર છે તે  
પ્રજ્ઞાનવાન્ છે.

કેચિત્તાદશા અપિ મુનયો બોધ્યાર્થસ્ય દુરવગાહિત્વેન ચ ક્વચિદ્ હેતુદા-  
હરણાદીનાં સમ્યગ્જ્ઞાનાસમ્ભવાત્સંશેરતે ન સમ્યક્ત્વમાપ્નુવન્તીતિ તન્નિરાસાયાહ-  
'પ્રબુદ્ધાઃ' ઇત્યાદિ, પ્રબુદ્ધાઃ=પ્રકર્ષેણ બુદ્ધાઃ=તીર્થંકરાજ્ઞાનુસારેણ સમ્યક્પરિશી-  
લિતતત્ત્વાઃ, તાદશા અપિ કર્મણો ગુરુત્વાદિ સાવધાચરણાન્નોપરમેરન્ તદ્વ્યુદાસાયાહ

શરૂઆત—પ્રજ્ઞાનસમ્પન્ન મુનિ બી બોધ્ય—સમજાને યોગ્ય પદાર્થ જબ દુર-  
વગાહ હોતા હૈ—બડી મુશ્કિલસે જાનનેમેં આતા હૈ, યા કહીં ૨ પર હેતુ  
ઉદાહરણાદિકકે સ્વરૂપકા વાસ્તવિક ભાન ઉન્હેં નહીં હોતા હૈ, ઉસ પદાર્થ  
કે સ્વરૂપમેં સંદેહશીલ હો જાતે હૈ એસી હાલતમેં તો વે સમકિત કે લાભ  
સે હી વંચિત રહતે હોંગે ?

સમાધાન—યહ વાત નહીં હૈ । ઇસીકા સ્પષ્ટીકરણ સૂત્રકારને “પ્રબુદ્ધા”  
ઇસ પદસે કિયા હૈ । બોધ્ય અર્થ દુરવગાહ હોને પર બી યા હેતુ ઓર  
ઉદાહરણાદિક કા સમ્યગ્ પરિજ્ઞાન ન હોને પર બી વે ઉસ પદાર્થમેં  
સંદેહશીલ નહીં હોતે હૈ । ક્યોં કિ યે તીર્થંકર ભગવાનકી આજ્ઞાકે અનુ-  
સાર હી અપની પ્રવૃત્તિ રખતે હૈ । જો વાત સમજમેં નહીં આતી હૈ,  
ઉસ પર યે અવિશ્વાસી નહીં હોતે હૈ । ઉનકી આજ્ઞાકે માફિક હી યે  
તત્ત્વોંકા પરિશીલન કરતે હૈ । ઉન પર સદા દૃઢ વિશ્વાસ રખતે હૈ ।  
ઇસીકા નામ સમકિત હૈ ।

શંકાઃ—પ્રજ્ઞાનસંપન્ન મુનિ પણ, બોધ્ય—સમજવો યોગ્ય પદાર્થ જ્યારે  
દૂર હોય છે અને ઘણી મુશ્કેલીથી જાણવામાં આવે છે અથવા ક્યાંક ક્યાંક  
હેતુ ઉદાહરણાદિકના સ્વરૂપનું વાસ્તવિક ભાન તેને હોતું નથી. એ સમય એ  
પદાર્થના સ્વરૂપમાં સંદેહશીલ બને છે, એવી હાલતમાં તેઓ સમકિતના લાભથી  
વંચિત રહેતા હશે ?

ઉત્તર—આ વાત નથી, આનું સ્પષ્ટીકરણ સૂત્રકારે “પ્રબુદ્ધા” આ પદથી  
કરેલ છે. બોધ્ય અર્થ છેટ હોવા છતાં પણ અથવા હેતુ અને ઉદાહરણનું  
સમ્યગ્ પરિજ્ઞાન ન હોવાથી પણ તેઓ એ પદાર્થમાં સંદેહશીલ બનતા નથી,  
કારણ કે તેઓ તીર્થંકર ભગવાનની આજ્ઞા અનુસાર જ પોતાની પ્રવૃત્તિ કરે છે.  
જે વાત સમજવામાં નથી આવતી એના પર એ અવિશ્વાસી નથી બનતા. તેમની  
આજ્ઞાની માફક જ તેઓ તત્ત્વોનું પરિશીલન કરે છે. એના પર સદા દૃઢ વિશ્વાસ  
રાખે છે. તેનું નામ જ સમકિત છે.



—‘આરમ્ભે’ત્યાદિ, આરમ્ભોપરતાઃ—આરમ્ભેભ્યઃ=પચન-પાચનાદિસાવધવ્યાપારેભ્યઃ  
ઉપરતાઃ=વિરતાઃ ત્યક્તારમ્ભા ભવન્તિ, એતત્=યત્પૂર્વમુક્તં મયા વક્ષ્યમાણં વા એત-  
ત્સર્વં સમ્યક્=સમીચીનમસ્તીતિ યૂયં પશ્યત । વક્ષ્યમાણમેવાહ—‘કાલસ્યે’ત્યાદિ,  
તે પૂર્વોક્તા મહર્ષયઃ કાલસ્ય=સમાધિમરણસ્ય કાઙ્ક્ષયા=સ્પૃહયા પરિવ્રજન્તિ=રત્ન-  
ત્રયરૂપે મોક્ષમાર્ગે સર્વત ઉદ્યમયન્તિ । આચાર્યા મુનયો વા નિર્ભયા અક્ષોભ્યા હ્રદોપમાઃ  
સન્તો વિચરન્તીત્યાશયઃ । ‘ઈતિ’—અધિકારસમાપ્તૌ, બ્રવીમીત્યસ્યાર્થસ્તુક્ત એવ ॥ સૂ. ૧ ॥

શઙ્કા—એસે હોને પર ખી કર્મકી દુર્નિવારતાસે યદિ યે સાવધ-  
વ્યાપારોં કે આચરણસે નિવૃત્ત ન હોંતો હસકા કયા ઉત્તર હૈ ?

સમાધાન—યહ શઙ્કા ઠીક નહીં હૈ, કારણ કિ યે પચનપાચનાદિરૂપ  
સાવધ વ્યાપારોંસે સદા વિરક્ત હી રહતે હૈં । માના કિ કર્મોંકા ઉદય  
દુર્નિવાર હૈ, તો ખી યે પચનપાચનાદિરૂપ સાવધ વ્યાપારોંમેં કણ્ઠગત  
પ્રાણ હોને પર ખી પ્રવૃત્તિશીલ નહીં હોતે હૈં—હસ કથનપર આપકો વિશ્વાસ  
રખના ચાહિયે । યે પૂર્વોક્ત મહર્ષિજન સમાધિમરણરૂપ કાલકી ચાહના  
સે તથા આગે ખી જો વિષય કહા જાનેવાલા હૈ ઉસ પર યહ સત્ય હૈ,  
એસા માન કર રત્નત્રયરૂપ મુક્તિકે માર્ગમેં સર્વ પ્રકારસે ઉદ્યમશીલ  
રહતે હૈં ।

ભાવાર્થ—આચાર્ય અથવા મુનિજન મોક્ષમાર્ગમેં નિર્ભય ઓર અ-  
ક્ષોભ્ય હો કર વિચરણ કરતે હૈં હસી લિયે પૂર્વોક્ત પ્રકારસે હન્નેં હ્રદકી  
ઉપમા દી ગઈ હૈ । સૂત્રસ્થ ઇતિ શબ્દ અધિકારકે સમાપ્તિ કે સૂચનાર્થ હૈ ।

શંકાઃ—આમ હોવા છતાં પણ કર્મના દોષોને લઈ કદાચ સાવધવ્યા-  
પારોના આચરણથી નિવૃત્ત ન થાય તો આનો કયો ઉત્તર છે ?

ઉત્તર—આ શંકા ઠીક નથી, કારણ કે એ પચનપાચન આદિ સાવધ  
વ્યાપારોથી સદા વિરક્ત રહે છે. કર્મોના ઉદયનું કારણ નિવારી શકાતું નથી.  
તો પણ એ પચન પાચનાદિરૂપ સાવધ વ્યાપારોમાં પ્રાણ જવાની છેલ્લી ઘડી  
સુધી પણ પ્રવૃત્તિશીલ થતા નથી. આ કથન ઉપર વિશ્વાસ રાખવો જોઈએ.  
આ પૂર્વોક્ત મહર્ષિજન સમાધિ મરણરૂપ કાળની ચાહનાથી તથા આગળ પણ જે  
વિષય કહેવામાં આવનાર છે એ રીતે આ સત્ય છે એમ માની રત્નત્રયરૂપ મુક્તિ  
માર્ગમાં સર્વ પ્રકારે ઉદ્યમશીલ રહે છે.

ભાવાર્થઃ—આચાર્ય અથવા મુનિજન મોક્ષમાર્ગમાં નિર્ભય અને ઇચ્છા  
વગરના બની વિચરણ કરે છે. આથી જ પૂર્વોક્ત પ્રકારથી એમને હ્રદની ઉપમા

આચાર્યાધિકારમભિધાય શિષ્યકર્તવ્યમધુના દર્શયતિ—‘વિતિગિચ્છ’ ઇત્યાદિ।  
 મૂલમ્—વિતિગિચ્છસમાવન્નેણં અપ્પાણેણં નો લહઈ સમાર્હિ,  
 સિયા વેગે અણુગચ્છંતિ અસિયા વેગે અનુગચ્છંતિ, અણુગચ્છમાણેર્હિ  
 અણુગચ્છમાણે કહં ન નિઠ્ઠિવજ્જે ॥ સૂ૦ ૨ ॥

છાયા—વિચિકિત્સાસમાપન્નેનાઽઽત્મના ન લભતે સમાર્ધિ, સિતા વૈકેઽનુ-  
 ગચ્છન્ત્યસિતા વૈકેઽનુગચ્છન્તિ, અનુગચ્છદ્વિરનનુગચ્છન્ કથં ન નિર્વિધેત ॥મૂ૦ ૨॥  
 ટીકા—‘વિચિકિત્સે’ત્યાદિ, ‘મુનિઃ’ વિચિકિત્સાસમાપન્નેન—વિચિકિત્સા  
 =શઙ્કા તાં સમાપન્નઃ=સમ્=સમ્યગ્દેશતઃ સર્વતશ્ચાપન્નઃ=પ્રાપ્તઃ=વિચિકિત્સાસમાપન્નસ્તેન  
 આત્મના સમાધિમ્=અન્તઃકરણશાન્તિં ન લભતે=ન પ્રાપ્નોતિ, સંશયાત્માનો હિ મોહની-

“બ્રવીમિ” પદકા અર્થ પહિલે કઈ ઉદ્દેશોર્મે પ્રકટ કિયા જા ચુકા હૈ ।સૂ૦ ૧।

આચાર્ય મહારાજ કા અધિકાર કહ કર અવ સૂત્રકાર શિષ્યજનકે  
 કર્તવ્યકા કથન કરતે હૈ—“વિતિગિચ્છ” ઇત્યાદિ ।

મુનિકો જિનેન્દ્ર ઉપદિષ્ટ તત્ત્વમેં શઙ્કાશીલ નહીં હોના ચાહિયે, કયોં  
 કિ શંકાવૃત્તિ રાખનેસે ચિત્તમેં શાંતિ નહીં આ સકતી હૈ । ઇસી વાતકો  
 સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરતે હૈ । વિચિકિત્સા શબ્દકા અર્થ સંશય હૈ । યહ  
 સંશય મુનિકે ચિત્તમેં કિસી ભી તત્ત્વમેં ચાહે દેશરૂપસે હો ચાહે સર્વરૂપસે  
 હો તો વહ ઉસકે ચિત્તમેં કમી ચૈન નહીં લેને દેતા હૈ ।

કયોં કિ સંશયકા સ્વભાવ ભી ઇસી પ્રકારકા હૈ, જો ઉદિત હોને  
 પર આત્માકો ઇતસ્તતઃ પરસ્પર વિરુદ્ધ અનેક વિષયોંકી ઓર દૌઢાતા

આપવામાં આવી છે. સૂત્રસ્થ ઇતિ શબ્દ અધિકારની સમાપ્તિની સૂચનારૂપ છે.

“બ્રવીમિ” પદનો અર્થ પહેલા ઘણા ઉદ્દેશોમાં પ્રગટ કરવામાં આવી  
 ગયેલ છે ॥ સૂ૦ ૧ ॥

આચાર્ય મહારાજના અધિકારને કહી સૂત્રકાર હવે શિષ્યજનના કર્તવ્યનું  
 વર્ણન કરે છે. “વિતિગિચ્છ” ઇત્યાદિ.

મુનિએ જિનેન્દ્ર ઉપદિષ્ટ તત્ત્વમાં શંકાશીલ બનવું ન જોઈએ. કેમ કે  
 શંકિતવૃત્તિ રાખવાથી ચિત્તમાં શાન્તિ આવી શકતી નથી. આજ વાત સૂત્રકાર  
 પ્રગટ કરે છે. વિચિકિત્સા શબ્દનો અર્થ સંશય છે. આ સંશય મુનિના ચિત્તમાં  
 કોઈપણ તત્ત્વમાં ચાહે દેશરૂપમાં હોય ચાહે સર્વરૂપથી હોય. સંશય તેના ચિત્તને  
 કચારેય ચૈન લેવા દે નહિ. કેમ કે સંશયનો સ્વભાવ એ પ્રકારનો હોય છે કે તેનો  
 ઉદય થતાં આત્માને—ઇતસ્તતઃ પરસ્પર વિરુદ્ધ અનેક વિષયોની તરફ દોર્યા કરે

યોદયાયુક્તિસિદ્ધેઽપ્યર્થે મોહમુપગચ્છન્તિ, તથાહિ—દર્શને ધર્માસ્તિકાયાઽધર્માસ્તિકાયાદૌ વીતરાગોક્તે તપસિ સંયમે ચ સંશયાના દૃશ્યન્તે, એવમનેકત્ર જીવાદિ-વિષયે સંશયો ભવિતુમર્હતિ । અર્થસ્ય સુખાધિગમ-દુરધિગમાનધિગમભેદેન ત્રૈવિ-ધ્યમ્ , સુખાધિગમઃ શબ્દાદેઃ પ્રત્યક્ષઃ શ્રવણનિપુણસ્ય ભવતિ, દુરધિગમસ્ત્વક્ષુશલસ્ય ભવતિ, અનધિગમસ્તુ વધિરાદેઃ । તત્રાનધિગમસ્તુ ન વસ્તુ । સુખાધિગમવિષયે વિચિ-રહતા હૈ । સંશયાત્મા પ્રાણી મોહનીયકે ઉદયસે યુક્તિસિદ્ધ ધી પદાર્થમેં મુગ્ધ બન જાયા કરતા હૈ । ધર્માસ્તિકાય અધર્માસ્તિકાયાદિ પદાર્થ યુક્તિ-સિદ્ધ એવં વીતરાગપ્રમુદ્ધારા પ્રતિપાદિત હૈ, તપ ઓર સંયમ ધી જિનેન્દ્ર-દેવદ્ધારા હી કહે હૈ તો ધી સંદેહશીલ મનુષ્ય ઇનમેં સંદેહ કરતે હુએ દેખે જાતે હૈ । અધિક કયા કહેં ? સંદેહશીલ મનુષ્ય જીવાદિક પદાર્થોંકે અસ્તિત્વ તકમેં ધી સદા સંદેહ કિયા કરતે હૈ । સુખાધિગમ, દુરધિગમ ઓર અનધિગમકે ભેદસે અર્થ ૩ પ્રકારકા હૈ । જિનકી શ્રોત્રાદિ ઇન્દ્રિયાં અપને વિષયભૂત પદાર્થકે વિષય કરનેમેં અનુપહત હૈ એસે મનુષ્યાદિકોં કો શબ્દાદિક અર્થકા પ્રત્યક્ષ સુખપૂર્વક-વિના કિસી રુકાવટકે અચ્છી તરહસે હોતા હૈ । જિનકી ઇન્દ્રિયોં-શ્રોત્રાદિકોંમેં કોઈ દોષ હૈ ઉન્હેં ઇસકા પ્રત્યક્ષ દુરધિગમ-બડે કષ્ટસે હોતા હૈ । જો વહિરે આદિ હૈ ઉન્હેં શબ્દાદિક પદાર્થોંકા અનધિગમ હોતા હૈ । અનધિગમકોઈ વસ્તુ નહીં હૈ, ઇસલિયે ઇસમેં તો સંદેહ હોતા નહીં હૈ, સન્દેહ વસ્તુ મેં હુઆ કરતા હૈ ।

છે, સંશયાત્મા પ્રાણી મોહનીયના ઉદયથી યુક્તિસિદ્ધ પદાર્થમાં પણ મુગ્ધ બની બાય છે. ધર્માસ્તિકાય અધર્માસ્તિકાયાદિ પદાર્થ યુક્તિસિદ્ધ એટલે વીતરાગ પ્રમુદ્ધારા પ્રતિપાદિત છે, તપ અને સંયમ પણ જીનેન્દ્રદેવે જ બતાવેલ છે તો પણ સંદેહશીલ મનુષ્ય આમાં પણ સંદેહ કરતા દેખાય છે. અધિક શું કહેવું ? સંદેહશીલ મનુષ્ય જીવાદિક પદાર્થોના અસ્તિત્વમાં પણ સદા સંદેહ કર્યો કરે છે. સુખાધિગમ, દુરધિગમ, અને અનધિગમનો ભેદથી ત્રણ પ્રકારે અર્થ થાય છે, જેની શ્રોત્રાદિ ઇન્દ્રિયો પોતાના વિષયભૂત પદાર્થના વિષય કરવામાં અનુપહત (અખંડ) છે. એવા મનુષ્ય-આદિને શબ્દાદિક અર્થનો પ્રત્યક્ષ સુખ-પૂર્વક-કોઈપણ બાતની રૂકાવટ વગર સારી રીતે થાય છે. જેની ઇન્દ્રિયો-શ્રોત્રા-દિકોમાં કોઈ દોષ છે એને એનો પ્રત્યક્ષ દુરધિગમ-ભારે કષ્ટથી થાય છે. જે બહાર આદિ છે તેને શબ્દાદિક પદાર્થોનો અનધિગમ થાય છે, અનધિગમ કોઈ વસ્તુ નથી આ માટે એમાં તો સંદેહ થતો જ નથી. સંદેહ વસ્તુમાં થાય છે જે



કિત્સાયા ન સમ્ભવઃ, સ એવ દેશકાલસ્વભાવવ્યવહિતસ્તુ સંશયવિષયો ભવતિ । દેશતો વિપ્રકૃષ્ટમેર્વાદિવિષયે, કાલતો વિપ્રકૃષ્ટે ઋષભદેવાદૌ, સ્વભાવતો વિપ્રકૃષ્ટે પરમાણ્વાદિવિષયે ચ સન્દેહો જાયતે । સંશયાત્મા ગુરુણોપદિષ્ટોઽપિ સમ્યક્ત્વરૂપાં બોધિં ન કદાપિ પ્રાપ્નોતીત્યાલોચ્ય પૂર્વોક્તવિષયે મુનિઃ કદાચિદપિ સંશયં ન કુર્યાદિત્યાશયઃ ।

જિસ પદાર્થકા બોધ અનાયાસસે હોતા હૈ, ઉસમેં भी संदेहके लिये जगह नहीं है; परन्तु यही सुखाधिगम पदार्थ जब स्वभाव, देश और कालसे विप्रकृष्ट (दूर) हो जाता है तब इसमें भी संदेहशील प्राणियोंको संदेह होने लगता है । देशसे विप्रकृष्ट मेरु आदि पदार्थ हैं, कालसे विप्रकृष्ट ऋषभदेवादि तीर्थङ्कर हैं । स्वभाव अपेक्षा दूरवर्ती परमाणु आदि पदार्थ हैं । इनमें अज्ञ-संदेहशील व्यक्तियोंको संदेह होनेमें कोई आश्चर्य जैसी बात नहीं है । संशयात्मा व्यक्ति गुरुके द्वारा उपदिष्ट होनेपर भी सम्यक्त्वरूप बोधिके लाभसे वंचित बनारहता है । गुरुदेव उसे हर तरहसे प्रत्येक पदार्थका स्वरूप अच्छी रीतिसे समझाते भी हैं तो भी उनके ऊपर उसकी सच्ची श्रद्धा सजग नहीं होती है, इस प्रकार विचार करके मुनिका कर्तव्य है कि वह वीतराग प्रभु द्वारा प्रतिपादित धर्म अधर्मादि द्रव्यों में तथा तप और संयमादिक आत्महित साधक विषयोंमें संदेह कभी भी न करे ।

પદાર્થનો બોધ અનાયાસે થાય છે તેમાં પણ સંદેહને માટે સ્થાન નથી, પરંતુ આ સુખાધિગમ પદાર્થ જ્યારે સ્વભાવ, દેશ અને કાળથી દૂર થાય છે ત્યારે આમાં પણ સંદેહશીલ પ્રાણીઓને સંદેહ થવા લાગે છે. દેશથી દૂર મેરુ આદિ પદાર્થ છે અને કાળથી દૂર ઋષભાદિ તીર્થંકર છે. સ્વભાવ અપેક્ષા દૂર વર્તી પરમાણુ આદિ પદાર્થ છે. આમાં સંદેહશીલ વ્યક્તિઓને સંદેહ થવામાં કોઈ આશ્ચર્ય જેવી વાત નથી. સંશય આત્મા વ્યક્તિ કે જેને ગુરુદ્વારા ઉપદેશ મળ્યો હોય છે છતાં પણ સમ્યક્ત્વરૂપ બોધિના લાભથી વંચિત રહે છે. ગુરુદેવ તેને હરેક પ્રકારે પ્રત્યેક પદાર્થનું સ્વરૂપ સારી રીતે સમજાવે છે તો પણ તેના ઉપર સાચી શ્રદ્ધા જાગતી નથી. આ પ્રકારે વિચાર કરીને મુનિનું કર્તવ્ય છે કે તે વીતરાગ પ્રભુદ્વારા પ્રતિપાદિત ધર્મ અધર્માદિ દ્રવ્યોમાં તથા તપ અને સંયમાદિક આત્મહિત સાધક વિષયોમાં સંદેહ કદી પણ ન કરે.

યદ્વા—‘વિતિગિચ્છે’ત્યસ્ય ‘વિદ્વજ્જુગુપ્સા’ઇતિચ્છાયા । તેન વિદ્વ-જ્જુગુપ્સાસમાપન્નેન વિદુષાં=મુનીનાં પરિજ્ઞાતસંસારાસારભાવાનાં જુગુપ્સા=અનાદરઃ વિદ્વજ્જુગુપ્સા=સ્નાનાદ્યકરણેન ગાત્રસ્ય મલોપહતત્વદુર્ગન્ધત્વાદિકથનેન સાધૂનાં નિન્દા તાં સમાપન્નેન=સંપ્રાપ્તેન=અનગારતિરસ્કારપરાયણેન આત્મના=અન્તઃકરણેન પરતૈર્થિકઃ સમાધિ=રત્નત્રયરૂપં ન લભતે ।

કથ્થ સમાધિ લભત? ઇતિ પ્રશ્ને તં દર્શયતિ--‘સિતા’ઇત્યાદિ, એકે=કેવન લઘુકર્માણઃ સિતાઃ શબ્દાદિવિષયાનુરાગેણ પુત્રાદિસ્નેહેન ચ વદ્વા અપિ સંસારિ-ગઃ, ‘વા’ શબ્દોઽત્રાપ્યર્થકઃ, અનુગચ્છન્તિ લઘુકર્મત્વાત્તીર્થઙ્કરગણધરાદિપ્રરૂપિ-

અથવા—“વિતિગિચ્છ”ઇસકી સંસ્કૃત છાયા “વિદ્વજ્જુગુપ્સા”એસી મી હતી હૈ । ઇસકા યહ અર્થ હોતા હૈ કિ વિદ્વાન્ મુનિ કિ જિન્હોને મહે પ્રકારસે સાંસારિક પ્રત્યેક પદાર્થકા વાસ્તવિક સ્વરૂપ જાન લિયા હૈ, જો સંસારકી અસારતાસે અચ્છી તરહસે પરિચિત હો ચુકે હૈ એસે મુનિકે નિન્દા, ઘૃણા આદિ કરનેવાલે અન્યમતી જન નીચ ગોત્રાદિ-કકે બંધક હોતે હૈ ઓર રત્નત્રયરૂપ સમાધિકી પ્રાપ્તિકે લાભસે સદા વંચિત બને રહતે હૈ ।

રત્નત્રયરૂપ સમાધિકે પ્રાપ્ત (પ્રાપ્ત કરનેવાલે) કૌન જીવ હોતે હૈ, ઇસે પ્રકટ કરનેકે લિયે ટીકાકાર “સિતા”ઇત્યાદિ સૂત્રાંશકી વ્યાખ્યા કરતે હૈ, કોઈ એક લઘુકર્મી સંસારી જીવ યદ્યપિ શબ્દાદિક વિષયોકે અનુરાગસે અથવા પુત્રાદિકોકે સ્નેહસે ઝનમેં મોહિત બને રહતે હૈ—ઝનકે મમત્વમેં ફંસે રહતે હૈ, તો મી લઘુકર્મી-કર્મ અલ્પ હોનેસે તાર્થઙ્કર ઓર ગણધરાદિ પ્રદત્ત ઉપદેશકા અનુસરણ કરતે હૈ ।

અથવા:—“વિતિગિચ્છ”—એની સંસ્કૃત છાયા ‘વિદ્વજ્જુગુપ્સા’પણ થાય છે. જેનો અર્થ એવો થાય છે કે વિદ્વાન મુનિઓ કે જેઓ સંસારની અસારતાથી સારી રીતે પરિચિત બની ચૂક્યા છે, જેઓએ સારી રીતે સાંસારિક પ્રત્યેક પદાર્થનું વાસ્તવિક સ્વરૂપ બાણી લીધું છે, તેઓની નિંદા ઘૃણા કરવાવાળા અન્યમતી નીચ ગોત્રાદિકના બંધક થાય છે અને રત્નત્રયરૂપ સમાધિની પ્રાપ્તિના લાભથી તે સદા વંચિત બની રહે છે.

રત્નત્રયરૂપ સમાધિને પ્રાપ્ત કરવાવાળા કેવા જીવ હોય છે—આ પ્રગટ કરવા માટે ટીકાકાર “સિતા” ઇત્યાદિ સૂત્રાંશની વ્યાખ્યા કરે છે. કોઈ એક લઘુકર્મી સંસારી જીવ જે કે શબ્દાદિક વિષયોના અનુરાગથી અને પુત્રાદિકોના સ્નેહથી તેમાં મોહિત બની રહે છે, તેના મમત્વમાં ફસી રહે છે તો પણ લઘુકર્મી-કર્મ અલ્પ-હોવાથી તે તીર્થંકર અને ગણધરાદિ એ કહેલા ઉપદેશનું



તમુપદેશમનુસરન્તિ । एवं वा=अथवा एके=संशयवर्जिता असिता:=विषय-पुत्र-  
दाराद्यनुरागैरवद्धा अनगारा अनुगच्छन्ति, अत्र वा शब्दः पक्षान्तरद्योतकः ।

આચાર્યમાર્ગાનુગામિનઃ પુરુષસ્ય ભવતિ સમ્યક્ત્વાધિગમ ઇત્યાહ-‘અનુગ-  
ચ્છદ્ધિ’ રિત્યાદિ, અનુગચ્છદ્ધિઃ=આચાર્યપ્રતિપાદિતોપદેશાનુગામિભિઃ સિતૈરસિતૈર્વા  
પ્રેરિતઃ સઃ અનનુગચ્છન્=સાવધાચારચારિણમનનુસરન્ સાવધવ્યાપારમકુર્વન્નિત્યર્થઃ,  
કથં ન નિર્વિદ્યેત=સર્વવિષયવિરતિરૂપવૈરાગ્યં કથં ન પ્રાપ્નુયાત્? અપિ તુ પ્રાપ્નુયાદેવ ।

इसी तरह जो कोई एक संशयविहीन होते हैं वे असित-पंचेन्द्रियों के  
विषयों एवं पुत्र पत्नीके अनुराग से विमुख हो कर अनगार अवस्था-  
संपन्न होते हैं और तीर्थङ्करादिप्रणीत उपदेशके अनुसार अपनी प्रवृत्ति  
चालू रखते हैं । यहां सूत्रस्थ “ वा ” शब्द दूसरे पक्षका द्योतक है ।

જો આચાર્ય કે બતાવે હુણે માર્ગકે અનુસાર પ્રવૃત્તિ કરતે હૈં ઉન્હેં  
સમ્યક્ત્વકા લાભ હોતા હૈ-ઇસ વાતકો “અનુગચ્છદ્ધિઃ” ઇત્યાદિ સૂત્રાંશ  
દ્વારા સૂત્રકાર પ્રકટ કરતે હૈં । ચાહે સિત હૈં, ચાહે અસિત હૈં, જો આચા-  
ર્યદ્વારા પ્રદત્ત ઉપદેશ કે અનુરૂપ ચલતે હૈં, ઉન્હેં રત્નત્રયરૂપ સમાધિકા  
લાભ હોતા હૈં ઓર ઇનકે દ્વારા ડસ ઓર પ્રવૃત્તિ કરનેકે લિયે પ્રેરિત  
કિયા ગયા અન્ય-દૂસરા વ્યક્તિ મી, જો સાવધ વ્યાપારમેં પ્રવૃત્તિશીલ  
વ્યક્તિયોં કા ન અનુસરણ કરતા હૈં ઓર ન ડસે સ્વયં મી કરતા હૈં,  
સર્વ વિષયોંકી વિરતિરૂપ વૈરાગ્યકો ધારણ ક્યોં નહીં કર સકતા હૈં?  
અર્થાત્ અવશ્ય ધારણ કર સકતા હૈં । આચાર્યપ્રદર્શિત માર્ગ પર ચલ-

અનુસરણ કરે છે; એ જ રીતે જે કોઈ એક સંશયવિહીન હોય છે તે પંચેન્દ્રિ-  
યોના વિષયો અને પુત્ર અને પત્નિના અનુરાગથી વિમુખ બની અણુગાર  
અવસ્થા-સંપન્ન બને છે અને તીર્થંકરાદિપ્રણીત ઉપદેશ-અનુસાર પોતાની પ્રવૃત્તિ  
ચાલુ રાખે છે.

આચાર્યે બતાવેલ માર્ગ અનુસાર જે પ્રવૃત્તિ કરે છે એને સમ્યક્ત્વનો  
લાભ થાય છે. આ વાતને “અનુગચ્છદ્ધિઃ” ઇત્યાદિ સૂત્રદ્વારા સૂત્રકાર પ્રગટ  
કરે છે. આચાર્યદ્વારા અપાયેલા ઉપદેશને અનુરૂપ ચાલે છે તેને રત્નત્રયરૂપ  
સમાધિનો લાભ થાય છે. અને તેના દ્વારા એ તરફ પ્રવૃત્તિ કરવા માટે પ્રેરિત  
કરાયેલ બીજી વ્યક્તિ પણ જે સાવધ વ્યાપારમાં પ્રવૃત્તિશીલ વ્યક્તિઓનું અનુ-  
સરણ કરતા નથી અને પોતે પણ કરતા નથી, તે સર્વ વિષયોની વિરતિરૂપ  
વૈરાગ્યને ધારણ કેમ કરી શકતા નથી? અર્થાત્-અવશ્ય ધારણ કરી શકે છે.



આચાર્યમાર્ગાનુયાયી શઙ્કાકાઙ્કાદિરૂપમિથ્યાત્વં વિહાય સમ્યક્ત્વં પ્રાપ્નુયાદેવેત્યર્થઃ।

યદ્વા—અનુગચ્છદ્વિઃ=આચાર્યોક્તં જ્ઞાનદ્વિઃ કૈશ્વિત્સંયમરીતિપાલનવિષયે ચોપદિષ્ટો મુનિઃ, જ્ઞાનાનુદયાદ્બુદ્ધિમાન્ધ્યેન ચ અનુગચ્છન્ મનસ્યનવધારયન્ કથં ન નિર્વિદ્યેતઃ; અપિ તુ નિર્વિદ્યેત=પશ્ચાત્તાપં પ્રાપ્નુયાદેવેત્યર્થઃ। પ્રાપ્તિર્નિર્વેદશ્ચ ચેતસિ પરિચિન્તયતિ યદહમભવ્યોઽસ્મિ, ન સંયમો મે વર્તતે। અત એવ સમ્યગુપદિષ્ટમપિ કર્તું ન શક્યમિત્યાદિ। એવંવિધપશ્ચાત્તાપપ્રતિપન્નં સિતમસિતં વાઽચાર્ય આશ્વા-

નેવાલા પ્રાણી શઙ્કા, કાંક્ષા આદિરૂપ મિથ્યાત્વ કા વમન કર-ઉસે છોડ કર સમ્યક્ત્વકો પ્રાપ્ત કર હી લેતા હૈ।

અથવા—આચાર્યપ્રતિપાદિત સિદ્ધાન્ત કો જાનનેવાલે કિતનેક મનુષ્યોં યા મુનિયોંદ્વારા સંયમકી રીતિકે પાલનેકે વિષયમેં ઉપદિષ્ટ મુનિ જ્ઞાનકે અનુદય સે અથવા બુદ્ધિકી મંદતાસે આચાર્ય પ્રતિપાદિત સિદ્ધાન્તકા યથાવત્ પાલક ન હોનેસે ક્યા ચિન્ન નહીં હોતા હૈ ? અર્થાત્ અવશ્ય ચિન્ન હોતા હૈ।

ભાવાર્થ—પ્રેરિત હોને પર મી જબ યહ યથાવત્ સંયમ અથવા તપકા આરાધક નહીં હો પાતા હૈ ઉસ સમય ઇસે એક પ્રકારકી આત્મગ્લાનિ હોતી હૈ। ઉસ અવસ્થામેં યહ વિચારતા હૈ કિ મેં અભવ્ય હું, સંયમકા પાલક મેં નહીં હો સકતા; યહી કારણ હૈ કિ યહ વિષય મુજે વાર ૨ સમ-જ્ઞાયા જાતા હૈ, આચાર્ય મુજે સમજાનેમેં જરા સી મી કરકસર નહીં રખતે હૈં ફિર મી મેં યથાવત્ રીતિસે ઉનકે કહે અનુસાર ચલનેમેં અસ-

આચાર્યે સૂચયેલા માર્ગ ઉપર ચાલવાવાળા પ્રાણી શંકા, આકાંક્ષા આદિરૂપ મિથ્યા-ત્વને દૂર કરી-એને છોડી સમ્યક્ત્વને પ્રાપ્ત કરી લે છે.

અથવા—આચાર્ય પ્રતિપાદિત સિદ્ધાંતને જાણવાવાળા કેટલાક મનુષ્યો અને મુનિઓદ્વારા સંયમની રીતના પાલનના વિષયમાં ઉપદિષ્ટ મુનિ જ્ઞાનના અનુદયથી અને બુદ્ધિની મંદતાથી આચાર્ય પ્રતિપાદિત સિદ્ધાંતનો યથાવત્ પાલક ન હોવાથી શું ખિન્ન નથી થતો ? અર્થાત્ અવશ્ય ખિન્ન થાય છે.

ભાવાર્થ:—પ્રેરિત હોવા છતાં પણ જ્યારે તે યથાવત્ સંયમ અને તપનો આરાધક બની શકતો નથી ત્યારે તેને એક પ્રકારની આત્મગ્લાનિ થાય છે, આ અવસ્થામાં એ વિચારે છે કે હું અભવ્ય છું, સંયમનો પાળક હું બની શકતો નથી, એ જ કારણ છે કે આ વિષય મને વારંવાર સમજાવવામાં આવે છે, આચાર્ય મને સમજાવવામાં જરા પણ કસર રાખતા નથી છતાં પણ હું યથાવત્ રીતથી

સયતિ-મો ભવ્ય ! નિર્વેદં મા ગમઃ, સમ્યક્ત્રપ્રાપ્ત્યા ભવ્યસ્ત્વં, તત્પ્રાપ્તિશ્ચ ગ્રન્થિભેદેન, ગ્રન્થિભેદશ્ચ ભવ્યસ્યૈવ જાયતે, અભવ્યસ્ય ‘નાહં ભવ્ય’ इत्यादिबुद्धेरप्यनुदयात्- इति विचार्य त्वं मा विषीदेति तात्पर्यम् ॥ सू० २ ॥

एष च विषयविरतिरूपो निर्वेदो द्वादशकषायक्षयोपशमाद्यन्यतमस्य सत्त्वे जાયते, स त्वयाऽधिगतस्तर्हि तव दर्शन-चारित्रमोहनीययोः क्षयोपशमप्राप्तौ साम्प्रतं

મર્થ હી બના રહતા હું । હસ પ્રકાર પશ્ચાત્તાપકો કરનેવાલે સિતજન અથવા અસિત જનકો આચાર્ય આશ્વાસન દેતે હુએ કહતે હૈં કિ “હે ભવ્ય ! તૂ ઉદાસ ન બન-આત્મગ્લાનિ મત કર । તૂ ભવ્ય હૈ, તુજે સમ-કિતકા લાભ હુઆ હૈ, સમકિતકા લાભ ગ્રન્થિભેદસે હી હોતા હૈ, ગ્રન્થિભેદ તો ભવ્યકો હી હોતા હૈ, અભવ્યકો નહીં અભવ્યકે તો “મૈં અભવ્ય હૂં ” એસા ઘ્યાલ તક મી નહીં હોતા હૈ ” । એસા વિચાર કર તુમ લેદલિત્ત મત હો ॥ સૂ૦ ૨ ॥

यह विषयोंसे विरतिरूप निर्वेद १२ कषायोंके क्षयोपशममें से किसी एकके सत्त्व होने पर होता है । वह विषयविरतिरूप निर्वेद यदि तुझे प्राप्त हो चुका है तो तुझे दर्शनमोहनीय एवं चारित्रमोहनीयके क्षयोपशमकी प्राप्ति हो चुकने पर भी इस समय ज्ञानावरणीय कर्मका सद्भाव होनेसे ही प्रतिपादित तत्त्वार्थमें सकल वस्तुके बोधक ज्ञानकी

તેમના કહેવા મુજબ ચાલવામાં અસમર્થ જ બની રહું છું. આ પ્રકારનો પશ્ચા-તાપ કરવાવાળા સિતજન અને અસિતજનને આચાર્ય આશ્વાસન આપીને કહે છે કે “હે ભવ્ય ! તું ઉદાસ બની આત્મગ્લાનિ ન કર. તું ભવ્ય છે, તને સમકિ-તનો લાભ થયો છે, સમકિતનો ગ્રન્થિભેદથી જ થાય છે, ગ્રન્થિભેદ તો ભવ્યને જ થાય છે, અભવ્યને નહિ અભવ્યને તો “હું અભવ્ય છું ” એવો ઘ્યાલ પણ નથી આવતો ” એવો વિચાર કરી તમે નિરાશ ન બનો ॥ સૂ૦૨ ॥

આ વિષયોથી વિરતિરૂપ નિર્વેદ ૧૨ કષાયોના ક્ષયોપશમમાંથી કોઈ એકનો સત્ત્વ હોવાથી બને છે. તે વિષયવિરતિરૂપ નિર્વેદ જે તને પ્રાપ્ત થઈ ચૂક્યું છે તો તને દર્શનમોહનીય અને ચારિત્રમોહનીયના ક્ષયોપશમની પ્રાપ્તિ થઈ જવા છતાં પણ આ સમય જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો સદ્ભાવ હોવાથી જ પ્રતિ-પ્રાદિત તત્ત્વાર્થમાં સકલ વસ્તુના બોધક જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થયેલ નથી. માટે તમે

જ્ઞાનાવરણીયસત્ત્વાત્પ્રતિપાદિતેऽપિ તત્ત્વાર્થે સકલવસ્તુનો ન જ્ઞાનં ભવતિ, તદધિગમાર્થં  
જિનોક્તવચનશ્રદ્ધાનરૂપં સમ્યક્ત્વમવલમ્બનોયમિતિ દર્શયતિ—‘તમેવ’ ઇત્યાદિ।

મૂલમ્—તમેવ સચ્ચં નીસંકંજં જિણેહિં પવેઙ્ગયં ॥ સૂ. ૩ ॥

છાયા—તદેવ સત્યં નિઃશંકં યજ્ઞિનૈઃ પ્રવેદિતમ્ ॥ સૂ. ૩ ॥

ટીકા—‘તદેવે’ ઇત્યાદિ, યત્ ધર્માધર્માકાશ-કાલ-પુદ્ગલાદિકં જિનૈઃ=  
વીતરાગૈઃ પ્રવેદિતં દ્વાદશર્પણં પ્રરૂપિતં, તદેવ વસ્તુજાતં સત્યં=વાસ્તવિકમ્,  
એવકારાન્નાન્યતૈર્થિકાદિપ્રરૂપિતમ્, કિંચ નિઃશંકં ભગવદભિહિતેષુ પરમસૂક્ષ્મેષુ

પ્રાપ્તિ નહીં હુઈ હૈ, સો તુમ ઉસ અધિગમ-જ્ઞાનકી પ્રાપ્તિકે લિયે જિન-  
પ્રતિપાદિત વચનોંમેં શ્રદ્ધાનરૂપ સમ્યક્ત્વકા અવલમ્બન કરો। ઇસી  
વાતકો સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરતે હૈ—‘તમેવ’ ઇત્યાદિ।

જિસ ધર્મદ્રવ્ય, અધર્મદ્રવ્ય, આકાશદ્રવ્ય, કાલદ્રવ્ય ઓર પુદ્ગલદ્રવ્ય  
કા વર્ણન વીતરાગપ્રભુને ૧૨ પ્રકારકી સભામેં કિયા હૈ, વહી ભગવત્-  
પ્રરૂપિત દ્રવ્ય વાસ્તવિક-સત્ય હૈ। સૂત્રમેં ‘એવ’ પદ અન્યતીર્થિકપ્રરૂ-  
પિત તત્ત્વ વાસ્તવિક નહીં હૈ ઇસ વાતકા બોધક હૈ। નિઃશંક શબ્દ યહ  
પ્રકટ કરતા હૈ કિ ભગવાને જિન સૂક્ષ્મ, અન્તરિત તથા દૂર રહે હુએ  
પદાર્થોં કી પ્રરૂપણા કી હૈ ઓર જો કેવલ શાસ્ત્રોં સે હી જાને જાતે હૈં એસે  
પરમાણુ આદિ પદાર્થોંમેં “યે હૈં યા નહીં હૈં” ઇસ પ્રકારકે સંદેહકા નામ  
શંકા હૈ—એસી શંકા જિનમેં નહીં હૈ વે નિઃશંક હૈં।

તે અધિગમ-જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ માટે જનપ્રતિપાદિત વચનોમાં શ્રદ્ધાનરૂપ સમ્યક્ત્વનું  
અવલંબન કરો આ વાતને સૂત્રકાર સમજાવે છે. “તમેવ” ઇત્યાદિ.

વીતરાગ પ્રભુએ ૧૨ પ્રકારની સભાઓમાં ધર્મદ્રવ્ય, અધર્મદ્રવ્ય, આકા-  
શદ્રવ્ય, કાલદ્રવ્ય અને પુદ્ગલદ્રવ્યનું જે વર્ણન કરેલ છે. તે ભગવત્-પ્રરૂપિત  
દ્રવ્ય વાસ્તવિક સત્ય છે. સૂત્રમાં “એવ” પદ અન્ય તીર્થિકપ્રરૂપિત તત્ત્વ  
વાસ્તવિક નથી. આ વાતનો બોધક છે. નિઃશંક શબ્દ એ પ્રગટ કરે છે કે  
ભગવાને જે સૂક્ષ્મ અન્તરિત તથા દૂર રહેલા પદાર્થોની પ્રરૂપણા કરી છે અને  
જે કેવળ શાસ્ત્રોથી જ બાણી શકાય છે એવા પરમાણુ આદિ પદાર્થોમાં “આ  
છે કે નથી” આ પ્રકારના સંદેહનું નામ શંકા છે. આવી શંકા જેનામાં નથી  
એ નિઃશંક છે.



શાસ્ત્રમાત્રજ્ઞેયેષુ પરમાણ્વાદિષુ ચાર્થેષુ અસ્તિ વા નાસ્તિ इत्येवमाकारः  
सन्देहः शङ्का सा निर्गता=अपगता यस्मात् तन्निःशङ्कं=संशयरहितमस्ति स्वसमय-  
परसमयपरिज्ञाकुशलाचार्याणामप्राप्त्या देश-काल-स्वभावविप्रकृष्टेषु सूक्ष्माती-  
न्द्रियपदार्थसार्येषु तत्साधकहेतुदृष्टान्ताद्यभावाच्च ज्ञानावरणीयोदयेन सम्यग्ज्ञाना-  
सत्त्वेऽपि जिनप्रवचने संशयादिरहितेन भाव्यमित्याशयः । अतस्तथ्यभूतार्थप्रति-  
पादके वीतरागवचने श्रद्धा कार्या । उक्तञ्च—

“ वीतरागा हि सर्वज्ञा, मिथ्या न ब्रुवते क्वचित् ।

यस्मात्तस्माद्वचस्तेषां, तथ્યं भूतार्थदर्शनम् ॥ १ ॥ इति ॥

भावार्થ—સ્વસમય ઓર પરસમયકે જ્ઞાતા આચાર્યોંકી અપ્રાપ્તિસે  
દેશ, કાલ ઓર સ્વભાવ વિપ્રકૃષ્ટ એસે સૂક્ષ્મ, અતીન્દ્રિય પદાર્થોં મેં અને  
સાધક હેતુ દૃષ્ટાન્તોંકે અભાવસે તથા જ્ઞાનાવરણીય કર્મકે ઉદયસે સમ્ય-  
જ્ઞાન છદ્મસ્થ જીવોંકે નહીં હો સકતા હૈ તો ભી મુનિયોંકો જિનપ્રવ-  
ચનમેં સંશયરહિત હી હોના ચાહિયે । કમી અનેકે વિષયમેં સંશય નહીં  
કરેં । કારણ કિ તથ્ય ( સત્ય ) ઓર ભૂતાર્થ ( વિદ્યમાન ) પ્રતિપાદક  
હી વીતરાગ પ્રભુકે વચન હોતે હૈં । ફસલિયે અનેમેં શ્રદ્ધા હી કરણીય  
હૈ । કહા ભી હૈ—

વીતરાગા હિ સર્વજ્ઞા મિથ્યા ન બ્રુવતે ક્વચિત્ ।

યસ્માત્તસ્માદ્વચસ્તેષાં તથ્યં ભૂતાર્થદર્શકમ્ ॥ ૧ ॥

વીતરાગ હી સર્વજ્ઞ હોતે હૈં । વે કહીં પર ભી કિસી ભી અવસ્થામેં

ભાવાર્થ—સ્વ સમય અને પર સમયના જ્ઞાતા આચાર્યોંની અપ્રાપ્તિથી  
દેશકાળ અને સ્વભાવ વિપ્રકૃષ્ટ એવા સૂક્ષ્મ, અતીન્દ્રિય પદાર્થોંમાં એના સાધક  
હેતુ દૃષ્ટાંતોના અભાવથી અને જ્ઞાનાવરણીય કર્મના ઉદયથી સમ્યજ્ઞાન છદ્મસ્થ  
હોવાને થતો નથી. તો પણ મુનિયોએ જન પ્રવચનમાં સંશય રહિત રહેવું  
જોઈએ. કદી એમના વિષયમાં સંશય ન કરે. કારણ કે સત્ય અને વિદ્યમાન  
પ્રતિપાદક જ વીતરાગ પ્રભુનાં વચન અને છે. આ માટે એમાં શ્રદ્ધા જ  
રાખવી જોઈએ. કહું પણ છે—

વીતરાગા હિ સર્વજ્ઞા મિથ્યા ન બ્રુવતે ક્વચિત્ ।

યસ્માત્તસ્માદ્ વચસ્તેષાં તથ્યં ભૂતાર્થદર્શકમ્ ॥ ૧ ॥

વીતરાગ જ સર્વજ્ઞ હોય છે, એ કોઈ પણ સ્થળે કોઈ પણ અવસ્થામાં

કિં ગૃહસ્થસ્યૈવ શઙ્કા ભવત્યુત ગૃહીતચારિત્રસ્ય મુનેરપીત્યાશઙ્કાયામિદમુત્તરમ્—  
ઉભયોરપિ શઙ્કા મોહનીયોદયપ્રાવલ્યેન ભવતિ, તત્પ્રાવલ્યસ્યોભયત્ર સંભવાત્ ॥ સૂ. ૦૩ ॥

સંશયો હિ પ્રવ્રજિતુમિચ્છોર્ભવતિ તત્ર યદ્વિચારણીયં તદાહ—‘સડ્ઢિસ્સ’ इत्यादि।

મૂલમ્—સડ્ઢિસ્સ ણં સમણુન્નસ્સ સંપઞ્ચયમાણસ્સ સમિયંતિ-  
મન્નમાણસ્સ ઇગયા સમિયા હોઙ્ (૧), સમિયંતિ મન્નમાણસ્સ  
ઇગયા અસમિયા હોઙ્ (૨), અસમિયંતિ મન્નમાણસ્સ ઇગયા સમિયા  
હોઙ્ (૩), અસમિયંતિ મન્નમાણસ્સ ઇગયા અસમિયા હોઙ્ (૪),  
સમિયંતિ મન્નમાણસ્સ સમિયા વા અસમિયા વા સમિયા હોઙ્  
ઉવેહાણ (૫), અસમિયંતિ મન્નમાણસ્સ સમિયા વા અસમિયા  
વા અસમિયા હોઙ્ ઉવેહાણ (૬), ઉવેહમાણો અણુવેહમાણં બૂયા  
ઉવેહાહિ સમિયાણ, ઇચ્છેવં તત્થ સંધી ઘોસિઓ ભવઙ્, સે  
ઉટ્ઠિયસ્સ ઠિયસ્સ ગઙ્ સમણુપાસહ, ઇત્થવિ બાલભાવે અપ્પાણં  
નો ઉવદંસિજ્જા ॥ સૂ. ૪ ॥

છાયા—શ્રદ્ધિનઃ સ્વલુ સમનુક્તસ્ય સંપ્રવ્રજતઃ સમ્યગિતિ મન્યમાનસ્યૈકદા  
સમ્યગ્ ભવતિ (૧), સમ્યગિતિ મન્યમાનસ્યૈકદા અસમ્યગ્ ભવતિ (૨), અસમ્ય-  
ગિતિ મન્યમાસ્યૈકદા સમ્યગ્ ભવતિ (૩), અસમ્યગિતિ મન્યમાનસ્યૈકદા અસમ્યગ્  
મિથ્યાભાષણ નહીં કરતે હૈં । ઇસલિયે ડનકે વચન હી તથ્ય ઓર ભૂતાર્થ  
-પ્રતિપાદક હોતે હૈં ।

શઙ્કા—કયા શઙ્કા ગૃહસ્થોંકે હી હોતી હૈ અથવા સંયમીજનોંકે ભી?

ઉત્તર—શઙ્કા ડોનોંકે હોતી હૈ, કારણ કિ શઙ્કાકા કારણ મોહનીય  
કર્મકે ઉદયકી પ્રવલતા હૈ । યહ કર્મ ડોનોંકે સંભવિત હૈ ॥ ૩ ॥

જો ડીક્ષા ગ્રહણ કરનેકા અભિલાષી હૈ ડસકે શઙ્કા હોતી હૈ । ઇસ  
વિષયમેં જો વિચારણીય વાત હૈ વહ સૂત્રકાર કહતે હૈ “સડ્ઢિસ્સ” इत्यादि।

મિથ્યા ભાષણ કરતા નથી, આથી તેમનું વચન જ સત્ય અને વિદ્યમાન-  
પ્રતિપાદક અને છે.

શંકા—શંકા શું ગૃહસ્થોને જ થાય છે કે સંયમી જનોને પણ થાય છે?

ઉત્તર—શંકા બન્નેને થાય છે. શંકાનું કારણ મોહનીય કર્મના ઉદયની  
પ્રબળતા છે. આ કર્મ બન્નેમાં સંભવિત છે.

જે શિક્ષા ગ્રહણ કરવાના અભિલાષી છે તેને શંકા થાય છે આ વિષયમાં  
જે વિચારવાની વાત છે તે સૂત્રકાર કહે છે—“સડ્ઢિસ્સ” इत्यादि.

भवति (४), सम्यगिति मन्यमानस्य सम्यग् वा असम्यग् वा सम्यग् भवत्युत्प्रेक्षया (५), असम्यगिति मन्यमानस्यैकदा सम्यग् वा असम्यग् भवत्युत्प्रेक्षया (६) । उत्प्रेक्षमाणोऽनुत्प्रेक्षमाणं ब्रूयादुत्प्रेक्षस्व सम्यक्तया, इत्येवं तत्र सन्धिर्ज्ञोषितो भवति, तस्योत्थितस्य गतिं समनुपश्यत, अत्रापि बालभावे आत्मानं नोपदर्शयेत् ॥सू०४॥

टीका—‘अद्विन’ इत्यादि—अद्विनः=अद्वાવતઃ, અદ્વા—હિ વીતરાગસ્ય ગુરોશ્ચ વચને વિશ્વાસઃ સા યસ્યાસ્તિ સ અદ્વી તસ્ય અદ્વિનઃ=આર્હતમાર્ગાઃસ્થાવતઃ સમનુજ્ઞસ્ય મોક્ષમાર્ગવિહારિભિર્મુનિભિર્ભાવિતસ્ય સંયમાર્હસ્ય સંપ્રવ્રજતઃ=વૈરાગ્યેણ પ્રવ્રજ્યાં સ્વીકુર્વાણસ્ય જીવાદિસ્વરૂપે સંશયો યદિ ભવેત્તદા તદેવ સત્યં નિઃશંકં યજ્જિનૈઃ પ્રવેદિતમ્ इत्यादि सम्यगुपदेशेन तत्र प्रवृत्तस्य प्रवृद्धकण्डकस्योत्तरसमये सम्यक्त्वस्याधिक्यं साम्यं न्यूनत्वमभावो वा जायेतेत्याशयः । तादृशीमेव विचित्रा-

વીતરાગ વચનોંમેં વિશ્વાસકા હોના અદ્વા હૈ । इस अद्वાविशिष्ट व्यक्तिका नाम अद्वी है । मोक्षमार्गमें विचरण करनेवाले मुनियोंके द्वारा संयमके योग्य बनाये गये—संयम धारण करनेकी ओर प्रवृत्त किये का नाम समनुज्ञ है । संयमको धारण जिसने कर लिया है—अर्थात् वैराग्य—पूर्वक भागवती दीक्षा जिसने स्वीकृत कर ली है वह संप्रव्रजत् है । ऐसे व्यक्तिको यदि कदाचित् जीवादिक तत्त्वोंके स्वरूपमें संदेह हो जाता है तो वह इस अटल अद्वા पर कि “जिनेन्द्रदेवने जो कुछ कहा है वही सत्य निःशङ्क तत्त्व है ” अपनी संदेहशील प्रवृत्तिका उन्मूलन कर देता है । इससे वह उत्तरकालमें समकितके लाभकी अधिकता की प्राप्ति कर लेता है । अथवा जीवादिक तत्त्वों में संदेहशील होने पर मिथ्यात्व

વીતરાગ વચનોમાં વિશ્વાસ હોવો એ જ અદ્વા છે. આ અદ્વાવિશિષ્ટ વ્યક્તિનું નામ અદ્વી છે. મોક્ષમાર્ગમાં વિચરણ કરવાવાળા મુનિયોદ્વારા સંયમને યોગ્ય બનાવેલા—સંયમ ધારણ કરવાની તરફ પ્રવૃત્ત બનેલાનું નામ સમનુજ્ઞ છે. સંયમ જેણે ધારણ કરી લીધેલ છે અર્થાત્ વૈરાગ્યપૂર્વક ભાગવતી દીક્ષા જેણે સ્વીકારી છે તે સંપ્રવ્રજત છે. આવી વ્યક્તિને કદાચિત્ જીવાદિક તત્ત્વોના સ્વરૂપમાં સંદેહ થઈ જાય છે તો તે આ અટલ અદ્વાપર કે “ જીનેન્દ્રદેવે જે કંઈ કહ્યું છે એ નિઃશંક સત્ય તત્ત્વ છે.” પોતાની સંદેહશીલ પ્રવૃત્તિને દૂર કરે છે, આથી તે ઉત્તરકાળમાં સમકિતના લાભને અધિકતાથી પ્રાપ્ત કરી લે છે. અને



ત્મપરિણતિ દર્શયતિ 'સમ્યગ્'ત્યાદિ-તસ્ય શંકારહિતસ્ય=પૂર્વોક્તવિશેષણવિશિષ્ટસ્ય  
સમ્યગ્ગિતિ=જિનપ્રવેદિતતત્ત્વમેવ સમ્યગ્ગ્ ઇતિ=એવં મન્યમાનસ્ય=અવબુધ્યમાનસ્ય એક-  
દા=પશ્ચાત્સમયે સમ્યગ્ગ્ ભવતિ સંશયાભાવેન જિનોક્તે શંકાદ્યુત્પાદાસમ્ભવાત્ ॥૧॥

તસ્ય સંપ્રવ્રજતઃ શ્રદ્ધાવતઃ પૂર્વ સમ્યગ્ગિતિ મન્યમાનસ્ય એકદા=તદુત્તરકાલે  
પરતીર્થિકશાસ્ત્રપરિશીલનેન છદ્મસ્થવિનિર્મિતૈકાન્તનિશ્ચયનયપ્રતિપાદકગ્રન્થાવલો-  
પ્રકૃતિકે ઉદયમેં વહ સમકિત લાભસે વંચિત હો જાતા હૈ । યદિ ઉત્તર-  
કાલમેં સમકિત પ્રાપ્તિકી અધિકતા ઉસે ન હો તો સમકિતકા લાભ જિતને  
રૂપમેં ઉસે પૂર્વ અવસ્થામેં હુઆ હૈ ઉસી રૂપમેં બના રહતા હૈ, અથવા  
ઉસકી અપેક્ષા ન્યૂન મી હો જાતા હૈ ।

ભાવાર્થ—આત્મા ઉપશમ સમકિતકો પા કર અન્તર્મુહૂર્તકાલકે બાદ  
નિયમસે યા તો સમકિતકે અભાવસે મિથ્યાત્વદશાસંપન્ન હો જાયગા  
યા ક્ષાયોપશમિક સમકિતવાલા હો જાવેગા । ક્ષાયોપશમિકસે વૃદ્ધિ કર  
વહી આગે ક્ષાયિકસમ્યગ્દષ્ટિ હો જાતા હૈ । ઇસ પ્રકારકી વિચિત્ર  
આત્મપરિણતિકા પ્રદર્શન કરાતે હુએ સૂત્રકાર કહતે હૈં કિ જિનવચનમેં  
શંકારહિત હો કર પ્રવૃત્તિશીલ ઉસ પ્રાણીકો ઉસ સમય “જિનોક્ત તત્ત્વ  
હી સત્ય હૈ” ઇસ પ્રકારકે વિદ્વાસસે સમકિતકા લાભ હોતા હૈ; કારણ  
કિ સમકિતકો નહીં હોને દેનેવાલે જો શંકાદિક દોષ હૈં વે ઉસ સમય  
ઉસ આત્માસે પૃથક્ હો જાતે હૈં ૧। “સમ્યગ્ગિતિ મન્યમાનસ્યેકદા અસ-  
મ્યગ્ ભવતિ” જિનપ્રવચનમેં શ્રદ્ધાસંપન્ન ઉસી માનવકા જ્ઞાન જો પહિલે

જીવાદિક તત્ત્વોમાં સન્દેહશીલ હોવાથી મિથ્યાત્વપ્રકૃતિના ઉદયમાં તે સમકિત-  
લાભથી વંચિત બને છે. કદાચ ઉત્તરકાળમાં સમકિત પ્રાપ્તિની અધિકતા એને  
ન મળે તો સમકિત લાભ જેટલા રૂપમાં એને પૂર્વ અવસ્થામાં મળ્યો છે એ  
રૂપમાં બન્યો રહે છે, અથવા એની અપેક્ષા ઓછી થઈ બચ છે.

ભાવાર્થ—આત્મા ઉપશમ-સમકિતના કારણે અન્તરમુહૂર્ત પછી નિયમથી  
અથવા સમકિતના અભાવથી મિથ્યાત્વદશાસંપન્ન બની જશે અથવા ક્ષાયોપશમિક  
સમકિતવાળા થઈ જશે. ક્ષાયોપશમિકથી આગળ વધી તે ક્ષાયિકસમ્યગ્દષ્ટિ થઈ બચ  
છે. આ પ્રકારની વિચિત્ર આત્મપરિણતિનું પ્રદર્શન કરાવતાં સૂત્રકાર કહે છે કે,  
જનવચનમાં શંકારહિત રહી પ્રવૃત્તિશીલ એ પ્રાણીને એ સમય “જિનોક્ત તત્ત્વ  
જ સત્ય છે” આ પ્રકારના વિશ્વાસથી સમકિતનો લાભ થાય છે. કારણ કે  
સમકિતને રોકવાવાળા જે શંકાદિક દોષ છે તે એ સમયે એના આત્માથી દૂર  
થઈ બચ છે. (૧) “સમ્યગ્ગિતિ મન્યમાનસ્યેકદા અસમ્યગ્ ભવતિ” જન  
પ્રવચનમાં શ્રદ્ધાસંપન્ન એ માનવનું જ્ઞાન જે પહેલાં સમકિત રૂપમાં હતું.

કનેન ચ વ્યામોહિતમતેમિથ્યાત્વપરિગૃહીતતયા હેત્વાભાસદૃષ્ટાન્તાભાસાદીન્ રાગ-  
દ્વેષાદિના હેતુદૃષ્ટાન્તાનભિજાનતઃ સમ્યક્ત્વવશ્ચિતાન્તઃકરણસ્ય વિપરીતશ્રદ્ધાસમુત્થા-  
નાનન્તરમ્ અસમ્યગ્ ભવતિ, જિનોક્તં યત્ સમ્યક્ તત્તસ્યાઽસમ્યગિતિ ચેતસિપ્રતિ-  
ભાતિ સ્યાદ્વાદસિદ્ધાન્તરહસ્યવિસ્મૃતત્વાત્ । આક્ષિપતિ ચાનેકાન્તવાદમ્, તથા હિ  
યત્સત્ ન તદસત્ યચ્ચાસત્તત્કથમપિ ન સદ્ ભવિતુમર્હતિ, એવં યન્નિત્યં ન તદનિત્યં

સમકિતરૂપમેં થા ઉત્તરકાલમેં પરતીર્થિક શાસ્ત્રોંકે પરિશીલનસે અથવા  
છદ્ધાસ્થજનોને જિન ગ્રન્થોમેં એકાન્તરૂપસે નિશ્ચયનયકા વર્ણન કિયા હૈ  
उन ग्रन्थोंके अवलोकन से मतिमें व्यामोह उत्पन्न हो जानेके कारण  
हेत्वाभास एवं दृष्टान्ताभासोंको भी सच्चे हेतु और सच्चे दृष्टान्तरूप  
मान लेता है। जिससे वह मिथ्यात्वसे युक्त हो जानेके कारण समकित  
से वंचित अन्तःकरणवाला हो जाता है। क्यों कि इसके हृदयमें विपरीत  
श्रद्धाका निवास होता है। इस कारण यह स्याद्वाद सिद्धान्तके रहस्यको  
भूल जानेसे फिर जिनोक्त सम्यक् तत्त्वोंको भी असम्यक् रूपसे मानने  
लग जाता है, अनेकान्तवादका फिर तो वह खंडन करने लग जाता है,  
अचनाक ही कह उठता है कि बाहरे! स्याद्वाद सिद्धान्त ! तूं तो एक  
विलक्षण ही सिद्धान्त है सत् असत्, नित्य अनित्य आदि अनेक पर-  
स्परविरोधी धर्मोंको जो तूं एक ही जगह स्वीकार करता है, भला !  
यह भी कोई बात है। अरे ! जो सत् होगा वह असत् नहीं होगा और

ઉત્તર કાળમાં બીજા ધર્મનાં શાસ્ત્રોના સાંભળવાથી અથવા તેો ધુતારા  
માણસો કે જેણે જીન ગ્રંથોમાં એકાન્ત રૂપથી નિશ્ચયનયનું વર્ણન કર્યું છે  
એવા ગ્રંથોના અવલોકનથી મતિમાં ભ્રમણા ઉત્પન્ન થઈ જવાના કારણે હેત્વા-  
ભાસ અને દૃષ્ટાન્તાભાસોને પણ સાચા હેતુરૂપ અને સાચા દૃષ્ટાન્તરૂપ માની  
લે છે, આથી તે મિથ્યાત્વથી યુક્ત બની જવાના કારણે સમકિતથી વંચિત  
અંતઃકરણવાળો બની જાય છે. કેમકે એના હૃદયમાં વિપરીત શ્રદ્ધાનો નિવાસ  
થવા પામ્યો હોય છે. આ કારણે એ સ્યાદ્વાદસિદ્ધાંતના રહસ્યને ભૂલી જવાથી  
જિનોક્ત સમ્યક્તત્ત્વોને પણ અસમ્યક્રૂપથી માનવા લાગી જાય છે. અનેકા-  
ન્તવાદને પછી તે એ ખંડન કરવા માંડે છે, અચાનક જ કહી ઉઠે છે કે વાહરે!  
સ્યાદ્વાદ સિદ્ધાંત ! તું તો એક વિલક્ષણ જ સિદ્ધાંત છે. સત્ અસત્, નિત્ય  
અનિત્ય આદિ અનેક પરસ્પર વિરોધી ધર્મોનો જે તું એક જ સાથે સ્વીકાર  
કરે છે, ભલા આ પણ કોઈ વાત છે, અરે ! જે સત્ છે તે અસત્ ન થઈ શકે

યચ્ચાનિત્યં ન તન્નિત્યં ભવિતુમર્હતિ, વિરુદ્ધયોર્ધર્મયોરેકત્રાવસ્થાને જગતિ વિરોધ  
 એવ વિલયં ગચ્છેત્, તેન ન યુક્તોડયમનેકાન્તવાદઃ, એકસ્મિન્ બહુધર્મસાધકહેતો-  
 સ્તાદ્દશદ્દાન્તસ્ય ચાસમ્ભવાત્ ॥ ૨ ॥

કસ્ય ચિચ્ચૈતદ્વૈપરીત્યમાહ-‘અસમ્યગિ’ત્યાદિ-મિથ્યાત્વાનુબન્ધિનઃ કસ્ય  
 ચિત્ અસમ્યક્=‘પૌદ્ગલિકઃ શબ્દઃ’ ઇત્યાદિ વીતરાગોક્તં તત્ત્વં ન સાધીય ઇતિ  
 જો અસત્ હોગા-વહ સત્ નહીં હોગા । ઇસી પ્રકાર જો વસ્તુ નિત્ય હૈ  
 વહ અનિત્ય કૈસે હો સક્તી હૈ ઓર જો અનિત્ય હોગી વહ નિત્ય કૈસે  
 હો સક્તી હૈ । યદિ પરસ્પર વિરુદ્ધ ધર્મોંકાં ભી એકત્ર અવસ્થાન માના  
 જાયગા તો ફિર જગતમેં વિરોધ નામક કોઈ વસ્તુ હી નહીં રહેગી, સમસ્ત  
 વસ્તુઓંમેં પરસ્પર સંકરતા હી હો જાયગી, પરન્તુ એસા તો હૈ નહીં; અતઃ  
 અનેકાન્તવાદ સિદ્ધાન્ત યુક્તિયુક્ત સિદ્ધાન્ત નહીં હૈ તથા એસા કોઈ હેતુ  
 યા દૃષ્ટાન્ત ભી નહીં હૈ કિ જિસકે બલપર એકહી વસ્તુમેં પરસ્પર વિરોધી  
 ધર્મોંકી સત્તા સાધી જા સકે ૨ । “અસમ્યગિતિ મન્યમાનસ્યૈકદા સમ્યગ્  
 ભવતિ” મિથ્યાત્વકા અનુબન્ધ જિસકી આત્મામેં લગા હુઆ હૈ એસા  
 મનુષ્ય વીતરાગપ્રતિપાદિત તત્ત્વકો પહિલે અસમ્યક્ સમજતા હૈ, મિથ્યાત્વ  
 કે આવેશમેં વહ વિચારતા હૈ કિ જૈનસિદ્ધાન્તમેં શબ્દ કો જો પુદ્ગલ  
 કી પર્યાય માના ગયા હૈ વહ ઠીક નહીં હૈ, ઇસી પ્રકાર આત્માકો વ્યા-  
 પક ન માનકર ઉસે જો સ્વદેહ પ્રમાણ માના હૈ સો યહ ભી માન્યતા

અને અસત્ સત્ થઈ શકે નહિ. આ પ્રકારે જે વસ્તુ નિત્ય છે તે અનિત્ય કઈ  
 રીતે થઈ શકે અને જે અનિત્ય હોય તે નિત્ય કેમ થઈ શકે. જે પરસ્પર  
 વિરુદ્ધ ધર્મોંને પણ એકત્ર અવસ્થાન માનવામાં આવે તો પછી જગતમાં વિરોધ  
 નામની કોઈ વસ્તુ જ નહીં રહે-સમસ્ત વસ્તુઓમાં પરસ્પર એકતા જ બની  
 જવાની; પરંતુ આવું તો નથી, આથી એ અનેકાન્તવાદ યુક્તિયુક્ત સિદ્ધાન્ત  
 નથી. તેમ એવો કોઈ હેતુ કે દૃષ્ટાન્ત પણ નથી કે જેના ભેર ઉપર એક જ  
 વસ્તુમાં પરસ્પર વિરોધી ધર્મોંની સત્તા એકરૂપ બની શકે. (૨) અસમ્યગિતિ મન્ય-  
 માનસ્યૈકદા સમ્યગ્ ભવતિ” મિથ્યાત્વનો અનુબન્ધ જેમના આત્મામાં લાગેલ  
 છે એવા મનુષ્ય વીતરાગ પ્રતિપાદિત તત્ત્વને અસમ્યક્ સમજે છે. મિથ્યાત્વના  
 આવેશમાં એ વિચારે છે કે “જૈન સિદ્ધાન્તમાં શબ્દને જે પુદ્ગલની પર્યાય  
 માનવામાં આવેલ છે તે સાચું નથી” આજ પ્રકારે આત્માને વ્યાપક ન માની  
 એને સ્વદેહ પ્રમાણ માનેલ છે એ માન્યતા પણ ઉચિત નથી, ઇત્યાદિ રૂપથી



=એવં મન્યમાનસ્ય મિથ્યાત્વોદયપ્રાવલ્યેનાઽનર્થકં વહુ વિપ્રલપતસ્તસ્ય એકદા= કદાચિત્ પરિણામવૈચિત્ર્યાન્મિથ્યાત્વોપશમેન આચાર્યોપદેશાત્સમ્યક્ત્વનિશ્ચયેન ચ સંશયાદિકે દૂરીભૂતે સતિ યજ્ઞિનોક્તં તત્ત્વં તત્સમ્યગિતિ ભવતિ। સંશયાપનયસ્તસ્ય કથમિતિ ચેચ્છૃણુ, એવં યદિ શબ્દો ન પૌદ્ગલિકો ભવેત્તર્હિ તદ્વિહિતાવનુશ્ર્મોપઘાતૌ

ઉચિત નહીં છે-ઇત્યાદિરૂપમેં વહ આત્મા વીતરાગ પ્રતિપાદિત તત્ત્વમેં અસમ્યક્પના દેખતા છે। इस प्रकार उसकी मान्यताका कारण प्रबल मिथ्यात्वका उदय है। इसकी प्रबलतामें वह और भी अनेक अनर्थक मान्यताओंकी कल्पनाको सम्यक् माना करता है, जगत्को ईश्वरकर्तृक माननेका भी यही कारण है। इस प्रकार उसके मिथ्यात्वकी वासनासे प्रभुकथित मार्ग-उल्टा-अथथार्थ प्रतिभासित होता है। परन्तु जब उसकी निष्पक्ष आचार्यादिक के सम्यग् उपदेशसे अथवा परिणामकी विचित्रता से या मिथ्यात्वके उपशमसे आखे खुलती हैं, तत्त्वका वास्तविक भान-निश्चय उसे होता है तो उसकी पूर्वमान्यता में सहसा परिवर्तन हो जाता है, संशय दूर होते ही फिर उसे यही निश्चय होता है कि जो वीतरागने तत्त्वोंके स्वरूपका प्रतिपादन किया है वही वास्तविक है। शब्द आकाश का गुण न होकर पुद्गलकी ही एक पर्याय है, यदि वह पौद्गलिक न होता तो उसके द्वारा जो कर्ण-इन्द्रियका उपघात देखनेमें आता है वह आकाशके अमूर्तिक होने पर उसके गुण को भी अमूर्तिक होनेसे कैसे हो

તે આત્મા વીતરાગ પ્રતિપાદિત તત્ત્વમાં અસમ્યક્પણું બુઝે છે. આ પ્રકારની એની માન્યતાનું કારણ પ્રબલ મિથ્યાત્વનો ઉદય છે. એની પ્રબળતામાં એ બીજા પણ અનેક અનર્થક માન્યતાઓની કલ્પનાને સમ્યક્ માન્યા કરે છે. જગતને ઈશ્વર કર્તૃક માનવાનું પણ આ કારણ છે. આ પ્રકારે એને મિથ્યાત્વની વાસનાથી પ્રભુ કથિત માર્ગ ઉલ્ટો-અથથાર્થ પ્રતિભાસિત બને છે. પરન્તુ બ્યારે એની નિષ્પક્ષ આચાર્યાદિકના સમ્યગ્ ઉપદેશથી અથવા પરિણામની વિચિત્રતાથી અથવા મિથ્યાત્વના ઉપશમથી આંખો ખુલે છે-તત્ત્વનું વાસ્તવિક ભાન એને થવા પામે છે ત્યારે એની પૂર્વ માન્યતામાં સહસા પરિવર્તન થઈ જાય છે. સંશય દૂર થતાં જ ફરી એને એ નિશ્ચય બંધાઈ જાય છે કે વીતરાગે તત્ત્વોના સ્વરૂપને જે રીતે કહેલ છે તે જ વાસ્તવિક છે. શબ્દ આકાશના ગુણ નથી પણ પુદ્ગલની જ એક પર્યાય છે. કદાચ એ પૌદ્ગલિક ન હોત તો એના દ્વારા કર્ણ ઇન્દ્રિયનો જે ઉપઘાત બેવામાં આવે છે તે આકાશ અમૂર્તિક હોવાથી એના

કર્મેન્દ્રિયસ્ય ન સ્યાતામ્, અમૂર્તત્વાદ્ ગગનવત્, ન ચાયં તથેત્યાદિ ન્યાયાવતારેણ તસ્ય વાધકતર્કાપનયો જાયતે ॥ ૩ ॥

મિથ્યાત્વવાસનાવાસિતાન્તઃકરણસ્યાર્હતશાસનાપરિશીલકસ્ય કસ્ય ચિદ્ અ-  
સમ્યક્=સ્યાદ્વાદતત્ત્વં ન શોભનં કથમેકેનૈવ સમયેન પરમાણુઃ સમ્પ્રપૃથિવીતલતઃ  
સમુત્થાય લોકાન્તં યાવદ્ગચ્છતિ ? इति=एवं मन्यमानस्य कुतर्कग्रहिलस्य एकदा=  
कुतर्कनिकरप्रसरावसरे असम्यग् भवति । इत्थं हि कुतर्कोद्भाविता र्थास्ते विवदन्ते—चतु-  
सकता है? इसी प्रकार अनुग्रह भी जो शब्दसे उसका होता है वह भी  
नहीं हो सकता । भला! अमूर्तिक आकाशसे भी कहीं अनुग्रह और  
उपघात होते हैं। अतः अनुग्रह और उपघातकारक होनेसे शब्द मूर्तिक  
ही है । इस प्रकारसे वह युक्तिवादके बलपर अपने पूर्वबाधक तर्कका  
अपनयन कर (छोड़) देता है, इसलिये उसका वही ज्ञान सम्यक् ज्ञान  
हो जाता है ३ ।

“असम्यगिति मन्यमानस्यैकदा असम्यक् भवति” मिथ्यात्वकी  
वासनासे जिसका अन्तःकरण वासित हो जाता है तथा जिनेन्द्र प्रति-  
पादित सिद्धान्तका जिसने परिशीलन भी नहीं किया है ऐसे मनुष्यके  
चित्तमें “स्याद्वादतत्त्व सुन्दर नहीं हैं” इस प्रकारका असम्यक्  
उद्भूत होता है । उस कारणसे वह स्याद्वाद-सिद्धान्त-प्रतिपादित कथन  
को असम्यक् मानता है और कहता है कि जो जिनशास्त्रमें यह लिखा  
है कि एक पुद्गलका परमाणु एक समयमें १४ राजू प्रमाण गमन करता

ગુણને પણ અમૂર્તિક હોવાથી કઇ રીતે થઇ શકે? એ પ્રકારે અનુગ્રહ પણ જે  
શબ્દથી એનો થાય છે એ પણ ન થઈ શકે. ભલા! અમૂર્તિક આકાશથી પણ  
કદી અનુગ્રહ અને ઉપઘાત થઈ શકે? અનુગ્રહ અને ઉપઘાતકારક હોવાથી  
શબ્દ મૂર્તિક જ છે, આ પ્રકારથી તે યુક્તિવાદના બળ ઉપર પોતાના પૂર્વબાધક  
તર્કને છોડી દે છે. આથી એનું એ જ્ઞાન સમ્યક્ બની જાય છે (૩)

“असम्यगिति मन्यमानस्यैकदा असम्यक् भवति” मिथ्यात्वની વાસનાથી  
જેનું અન્તઃકરણ વાસનાવાળું બને છે તથા જીનેન્દ્ર પ્રતિપાદિત  
સિદ્ધાંતનું જેણે પરિશીલન પણ કર્યું નથી, એવા મનુષ્યના ચિત્તમાં  
સ્યાદ્વાદ તત્ત્વ બરોબર નથી ” આ પ્રકારનો અસમ્યક્ ઉદ્ભૂત થાય છે, એ  
કારણથી એ સ્યાદ્વાદ સિદ્ધાન્ત પ્રતિપાદિત કથનને અસમ્યક્ માને છે. અને કહે  
છે કે જીન શાસ્ત્રમાં એવું લખ્યું છે કે એક પુદ્ગલના પરમાણુ એક સમયમાં

દર્શરજ્જુસ્વરૂપલોકસ્ય પ્રથમચરમાકાશપ્રદેશયોર્યોગપદ્યસમ્બન્ધાત્ પરમાણોસ્તાવ-  
ત્પ્રમાણત્વં દુર્વારમેવ જાયેત, લોકાન્તદ્વયગતપ્રદેશયોર્યેક્યમાપદ્યેત ઇત્યાદિયુક્તિભિ-  
સ્તસ્યાસમ્યક્ત્વમિતિ, પરન્તુ તે દેવાનાં પ્રિયા અનવગાહિતવીતરાગાગમા ન જાનન્તિ  
યથા વિસ્રસાપરિણામેન પરમાણોરાશુગતિકતયૈકસમયેનાસદ્ધ્યેયપ્રદેશાતિક્રમણં  
ભવતીતિ ॥ ૪ ॥

હૈ સો યહ્ બાત સમજ્ઞમેં નહીં આતી હૈ, કારણ કિ એક સમયમેં હી  
સસમ નરકસે ડઠ કર કૈસે લોકકે અન્તતક વહ જા સકતા હૈ । ઇસ  
પ્રકારકી માન્યતાવાલેકા જ્ઞાન કુતર્કસે યુક્ત હોતા હૈ, ઓર ઇસ હી  
કુતર્કકે બલપર ઇસ પૂર્વોક્ત માન્યતાકા નિષેધ કરતા હૈ । નિષેધમેં વહ  
યહ્ કુયુક્તિ દેતા હૈ કિ એક હી સમયમેં જબ પરમાણુ ચૌદહ રાજૂ ગમન  
કરતા હૈ તો ડસકા લોકકે આદિ ઓર અંતકે પ્રદેશકે સાથ યુગપત્  
સંબંધ હોને પર પરમાણુમેં ભી ચૌદહ-રાજૂ-પ્રમાણતા આ જાયગી । અન્યથા  
યુગપત્ આદિ અંતકે પ્રદેશકે સાથ ડસકા સંબંધ નહીં હો સકતા હૈ;  
તથા ડસકા યુગપત્ સંબંધ માનને પર લોકકે આદિ અંત પ્રદેશોંકી ભી  
એકતા આવેગી । એસા કહનેવાલે અજ્ઞાની વીતરાગોપદિષ્ટ આગમકે જ્ઞાતા  
ન હોનેસે ઇસ બાતકો નહીં સમજ્ઞતે હૈં કિ સ્વાભાવિક પરિણામસે એક  
પરમાણુ શીઘ્ર ગતિવાલા હોનેસે એક સમયમેં અસંખ્યાત પ્રદેશોંકા ડલ્લં-  
ઘન કર જાતા હૈ ૪।

૧૪ રાજૂપ્રમાણુ ગમન કરે છે. તેથી આ વાત સમજ્ઞમાં બેસતી નથી. કારણ કે  
એક સમયમાં જ સસમ નરકથી ઊઠી કઈ રીતે લોકના અન્ત સુધી એ પહોંચી  
શકે. આ પ્રકારની માન્યતાવાળા જ્ઞાન કુતર્કથી ભરેલા હોય છે, અને એ જ  
કુતર્કના બળ ઉપર તેઓ આ પૂર્વોક્ત માન્યતાનો નિષેધ કરે છે. નિષેધમાં તે  
એવી કુયુક્તિ રજુ કરે છે કે એક જ સમયમાં જ્યારે પરમાણુ ૧૪ રાજૂ ફરી  
શકે છે તો તેનો લોકના આદિ અને અન્તના પ્રદેશની સાથે યુગપત્ સંબંધ  
હોવાથી પરમાણુમાં પણ ૧૪ રાજૂ પ્રમાણુતા આવી જાય. આ સિવાય યુગપત્  
આદિ અન્તના પ્રદેશની સાથે એનો સંબંધ હોઈ શકે નહીં. અને જો એનો  
યુગપત્ સંબંધ માનવામાં આવે તો લોકના આદિ અંત પ્રદેશોની પણ એકતા  
આવવાની, આવું કહેવાવાળા અજ્ઞાની વીતરાગના ઉપદેશોલ આગમથી બાબુકાર  
ન હોવાથી આ વાતને સમજી શકતા નથી કે સ્વાભાવિક પરિણામથી એક પરમાણુ  
ત્વરિત ગતિવાળા હોવાથી એક સમયમાં અસંખ્ય પ્રદેશોનું ડલ્લંઘન કરી શકે છે. (૪)



પરમાર્થપ્રકટનપૂર્વકં ભજ્ઞાનુપસંહરન્નાહ-‘સમ્યગિ’ત્યાદિ, સમ્યગિત્યેવં મન્યમા-  
નસ્ય શઙ્કાદિવર્જિતસ્ય સમ્યગ્ ઉપાદેયં વસ્તુપાદેયત્વે નૈવ જાનતઃ, યત્ સર્વજ્ઞોપદિ-  
ષ્ટત્વેન સમ્યક્ યચ્ચાસર્વજ્ઞોપદિષ્ટત્વેનાસમ્યક્ તદ્વ્યયમપિ તસ્ય ઉત્પ્રેક્ષયા=નયામિપ્રા-  
યસમાલોચનયા સમ્યક્ત્વપરિગૃહીતયા સમ્યગ્ ભવતિ ॥ ૫ ॥

પૂર્વવૈપરીત્યેનાહ-‘અસમ્ય’ગિત્યાદિ, અસમ્યગિતિ મન્યમાનસ્ય સ્યાદ્વાદન-  
યોક્તજીવાજીવાદિતત્ત્વં યદ્યપિ સમ્યગેવ તથાડપ્યસમ્યગિતિ જાનતશ્છદ્વ્યસ્થસ્યાર્વા-

“સમ્યગિતિ મન્યમાનસ્ય સમ્યક્ વા અસમ્યક્ વા સમ્યક્ ભવતિ ઉત્પ્રેક્ષયા ” ઉપાદેય વસ્તુકો ઉપાદેયરૂપસે ઓર હેય વસ્તુકો હેયરૂપસે માનનેવાલે તથા જ્ઞાત વિષયકો નિઃશંકરૂપસે માનને ઓર જાનનેવાલે સમ્યગ્દષ્ટિકા જ્ઞાન સમ્યક્ હોતા હૈ । “સર્વજ્ઞકે દ્વારા કથિત વિષય સમ્યક્ ઓર અસર્વજ્ઞદ્વારા પ્રતિપાદિત વિષય અસમ્યક્ હૈ ” ઇસ પ્રકાર ઇન દોનોં વાતોંકા સમ્યક્નયકી અપેક્ષાસે વિચાર કરનેવાલે સમ્યગ્દષ્ટિ મનુષ્યકા જ્ઞાન સચ્ચા હી માના ગયા હૈ ૫ । “અસમ્યગિતિ મન્યમાનસ્ય સમ્યગ્ વા અસમ્યગ્ વા સમ્યગ્ભવતિ ઉત્પ્રેક્ષયા ” સ્યાદ્વાદનયકી અપેક્ષા સે હી જીવ ઓર અજીવાદિ તત્ત્વોંકા સ્વરૂપ કહા ગયા હૈ, ઇસલિયે ડસ સ્વરૂપ વિશિષ્ટ વે જીવાદિક તત્ત્વ સમ્યક્ હી હૈં, પરન્તુ છદ્વસ્થોંકી દષ્ટિમેં યહ નયવિચારણા ઠીક ૨ સમજમેં નહીં આ સકનેકે કારણ ઓર ડપરી રૂપસે હી વસ્તુકો જાનનેકે કારણસે ડનકા જ્ઞાન અધૂરા રહતા હૈ, અતઃ

“સમ્યગિતિ મન્યમાનસ્ય સમ્યક્ વા અસમ્યક્ વા સમ્યક્ ભવતિ ઉત્પ્રેક્ષયા ”  
ઉપાદેય વસ્તુને ઉપાદેય રૂપથી અને હેય વસ્તુને હેયપણથી માનવાવાળા તથા જ્ઞાત વિષયને નિઃશંકરૂપથી માનવા અને જાણવાવાળા સમ્યગ્દષ્ટિનું જ્ઞાન સમ્યક્ હોય છે. “સર્વજ્ઞ તરફથી કહેવામાં આવેલ વિષય સમ્યક્ અને અસર્વજ્ઞ દ્વારા પ્રતિપાદિત વિષય અસમ્યક્ છે ” આ પ્રકારે આ બંને વાતોનો સમ્યક્નયની અપેક્ષાથી વિચાર કરવાવાળા સમ્યગ્દષ્ટિ મનુષ્યનું જ્ઞાન સાચું જ માન્યું ગયેલ છે. (૫) “અસમ્યગિતિ મન્યમાનસ્ય સમ્યગ્ વા અસમ્યગ્ અસમ્યગ્ ભવતિ ઉત્પ્રેક્ષયા ” સ્યાદ્વાદનયની અપેક્ષાથી જ જીવ અને અજીવાદિ તત્ત્વોનું સ્વરૂપ કહેવામાં આવેલ છે. આ માટે એ સ્વરૂપવિશિષ્ટ તે જીવાદિક તત્ત્વ સમ્યક્ જ છે. પરંતુ છદ્વસ્થોની દષ્ટિમાં આ તથ્ય વિચારણા ઠીક ઠીક સમજવામાં નહિ આવવાના કારણે તેનું જ્ઞાન અધૂરું રહે છે. એટલે તે વસ્તુના વાસ્તવિક સ્વરૂપથી અનભિજ્ઞ બની

દર્શિત્વેન યત્ સમ્યગ્ વા અસમ્યગ્ વા સર્વં તસ્ય ઉત્પ્રેક્ષયા=અસમ્યક્પર્યાલોચનયાડ-  
પરિશુદ્ધાધ્યવસાયત્વેન ચ મિથ્યાત્વપરિગૃહીતતયા અસમ્યગ્ ભવતિ, યથૈવ સંશયાદિઃ  
પૂર્વમકુરિતસ્તથૈવ ફલિત ઇત્યર્થઃ ॥ ૬ ॥

ઇત્થં સમ્યગુત્પ્રેક્ષાપરઃ પરોપદેશદાને સમર્થો ભવતીત્યાહ—‘ઉત્પ્રેક્ષમાણ’  
ઇત્યાદિ—ઉત્પ્રેક્ષમાણઃ=જિનશાસનપરિકર્મિતબુદ્ધિતયા સકલહેયોપાદેયપદાર્થસાર્થા-  
વગતિપૂર્વકં સમ્યગસમ્યક્ ચ સતતં સમાલોચયન્ અનુત્પ્રેક્ષમાણં લોકાનુગમનશીલં  
વે વસ્તુકે વાસ્તવિક સ્વરૂપસે અનભિજ્ઞ વન એકાન્ત-મત-પ્રતિપાદિત  
વસ્તુકે અયથાર્થ સ્વરૂપકો યથાર્થ-સમ્યક્ ઓર યથાર્થ સ્વરૂપકો અસમ્યક્  
માન બેઠતે હૈં । ઇસલિયે યથાર્થ સ્વરૂપ જાનનેવાલોં કી દૃષ્ટિમેં યહ ડનકી  
માન્યતા અયથાર્થરૂપ હી હૈ; ક્યોં કિ જૈસી પ્રતીતિ હોતી હૈ વૈસા હી જ્ઞાન  
હન્હેં હોતા હૈ । અસમ્યક્ પ્રતીતિકા કારણ અસમ્યક્ પર્યાલોચના યા અપ-  
રિશુદ્ધ અધ્યવસાય હૈ । ઇસકા હી કારણ નિશંકરૂપસે ભાનકા અભાવ  
હૈ । ઇસલિયે જિસ રૂપસે સંશયાદિક હન્હેં વસ્તુકે વિષયમેં ઉત્પન્ન હોતે  
હૈં ડસી રૂપસે વે વહાં ફલિત હી હોતે હૈં ૬ ।

ઇસ પ્રકાર વાસ્તવિક વસ્તુતત્ત્વમેં યથાર્થ અયાર્થપનેકા કારણ સમજ  
કર જો ઇસ વિષયકા વિચાર કરનેમેં ચતુર હૈં વે પરકો ઇસ વિષયકી  
દૃઢતા સંપાદનાર્થ સમજાતે હૈં કિ હે ભવ્ય ! ‘ઉત્પ્રેક્ષમાણોડનુત્પ્રેક્ષમાણં  
બ્રૂયાદુત્પ્રેક્ષસ્વ સમ્યક્તયા” મૈને ઇસ પદાર્થકી અછી તરહસે પર્યાલોચના  
કર લી હૈ—જિનશાસનમેં જિસ તત્ત્વકા વર્ણન જિસરૂપસે કિયા ગયા હૈ

એકાન્તમત-પ્રતિપાદિત વસ્તુના અયથાર્થ સ્વરૂપને યથાર્થ-સમ્યક્ અને યથાર્થ  
સ્વરૂપને અસમ્યક્ માની ષેડા છે. આ માટે યથાર્થ સ્વરૂપ બાણુવાવાળાની દૃષ્ટિમાં  
આ તેની માન્યતા અયથાર્થ રૂપ જ છે. કેમ કે જેવી પ્રતીતિ થાય છે તેવું  
જ્ઞાન તેને થાય છે. અસમ્યક્ પ્રતીતિનું કારણ અસમ્યક્ પર્યાલોચના અને અપ-  
રિશુદ્ધ અધ્યવસાય છે. આનું પણ કારણ નિઃશંકરૂપથી ભાનનો અભાવ છે.  
આ માટે જે રૂપથી તેને સંશયાદિક વિષય વસ્તુમાં ઉત્પન્ન થાય છે, એવા રૂપમાં  
તેનું જ્ઞાન મળે છે. (૬)

આ પ્રકારે વાસ્તવિક વસ્તુતત્ત્વમાં યથાર્થ અયથાર્થનું કારણ સમજીને જે  
આ વિષયનો વિચાર કરવામાં ચતુર છે તે બીજાને આ વિષયની દૃઢતા સંપાદન  
માટે સમજાવે છે કે હે ભવ્ય ! “ઉત્પ્રેક્ષમાણો”—ઇત્યાદિ.

મેં આ પદાર્થની સારી રીતે પર્યાલોચના કરેલ છે. જિનશાસનમાં જે તત્ત્વનું

સમ્યગસમ્યગાદિસમાલોચનારહિતં સંશયિતમર્તિં જનં બ્રૂયાત્=કથયેત્ હે-ભવ્ય ! સમ્યક્તયા=આર્હતશાસનોક્તરીત્યા સમભાવનયા ઉત્પ્રેક્ષસ્વ=સમાલોચય પક્ષપાતરા-હિત્યેન જીવાજીવાદિતત્ત્વમાર્હતશાસનોક્તં સાધીયોઽથ વા પરતૈર્થિકોદ્ભાવિતમિતિ નેત્રે નિમીલ્ય સ્વાન્તઃકરણે તત્ત્વં વિભાવયેત્યર્થઃ ।

યદ્વા ' ઉત્પ્રેક્ષમાણઃ ' -ઉત્=પ્રાબલ્યેન પ્રેક્ષમાણઃ સંયમે સમુદ્યોગપરઃ, અનુ-વહ અસંદિગ્ધ હૈ, ઉસમેં સન્દેહકે લિયે થોડાસા ખી સ્થાન નહીં હૈ । ઇતને તત્ત્વ હેય હૈ, ઇતને ઉપાદેય હૈ, ઇતને જ્ઞેય હૈ । વીતરાગ પ્રતિપાદિત વસ્તુસ્વરૂપ હી યથાર્થ હૈ; અન્ય છદ્મસ્થ કથિત નહીં । ઇસ પ્રકાર જિન-શાસનસે પરિકર્મિત બુદ્ધિ'હોનેસે હેય ઓર ઉપાદેય પદાર્થોંકી અવગતિ-પૂર્વક ઉનમેં સમ્યક્ અસમ્યક્પનેકી સમાલોચના કરનેવાલા વિદ્વાન્ મુનિ-જન, લોકાનુગમનશીલ એવં સમ્યક્ અસમ્યક્કી આલોચનાસે રહિત એસે સંશયિત મતિવાલે જનકે પ્રતિ સંબોધનાર્થ કહતે હૈં કિ હે ભવ્ય ! કમ સે કમ તૂં આંખોંકો મીંચકર અપને ચિત્તમેં પક્ષપાતસે રહિત હોકર ઇતના તો વિચાર કર કિ જિસ પ્રકારસે વસ્તુસ્વરૂપકા પ્રતિપાદન જિન ભગવાને કિયા હૈ વહ ઠીક હૈ યા પરતૈર્થિકજનોંને જિસ વસ્તુતત્ત્વકા પ્રતિપાદન કિયા હૈ વહ ઠીક હૈ ।

અથવા—જો સંયમકે પરિપાલન કરનેમેં પૂર્ણ ઉદ્યોગશીલ હૈં વે ઉસમેં અનુત્સાહિત હુએ અથવા સંદેહશીલ હુએ મનુષ્યકો સમજાવેં કિ

વર્ણુન જેવા રૂપમાં આપેલ છે તે અસંદિગ્ધ છે, તેમાં સન્દેહ કરવાનું જરા પણ સ્થાન નથી. આટલું તત્ત્વ હેય છે, આટલાં ઉપાદેય છે, આટલાં જ્ઞેય છે. વીતરાગ પ્રતિપાદિત વસ્તુસ્વરૂપ જ યથાર્થ છે, બીજા છદ્મસ્થથી પ્રતિપાદિત વસ્તુસ્વરૂપ યથાર્થ નથી. આ પ્રકારે જનશાસમાં પરિકર્મિત બુદ્ધિ હોવાથી હેય અને ઉપાદેય પદાર્થોની અવગતિપૂર્વક તેમાં સમ્યક્-અસમ્યક્પણની સમાલોચના કરવાવાળા વિદ્વાન મુનિજન, લોકાનુગમનશીલ અને સમ્યક્ અસમ્યક્ની આલોચનાથી રહિત એવા સંશય મતિવાળા માણસને સંબોધન કરી કહે છે કે હે ભવ્ય ! તું તારી આંખોને બંધ કરીને પક્ષપાતરહિત થઈ મનમાં થોડો તો વિચાર કર કે જે પ્રકારે વસ્તુસ્વરૂપનું પ્રતિપાદન જન ભગવાને કરેલ છે તે ઠીક છે કે પરધર્મીઓએ જે વસ્તુતત્ત્વનું પ્રતિપાદન કરેલ છે તે ઠીક છે ?

અથવા—જે સંયમનું પરિપાલન કરવામાં પૂર્ણ ઉદ્યોગશીલ છે તેઓ આનાથી ઉત્સાહ વગરના બનેલા અથવા સંદેહ વૃત્તિવાળા બન્યા હોય એવા



ત્રેક્ષમાણં=તત્રોદ્યમરહિતં સંશયારૂઢં જનં બ્રૂયાત્, સમ્યક્ત્વે=સંયમે ઉત્પ્રેક્ષસ્વ=સમુ-  
દ્યોગં વિધેદિ-તત્ર પરાક્રમસ્વેત્યર્થઃ, કિમાશ્રિત્યેદમુક્તમિત્યાહ-‘ઇત્યેવ’મિત્યાદિ,  
ઇત્યેવં=પૂર્વવર્ણિતરૂપેણ તત્ર=સંયમે સન્ધિઃ=જ્ઞાનાવરણીયાદિકર્મણાં પરમ્પરા  
ક્ષોષિતઃ=ક્ષપિતઃ-દૂરીકૃતો ભવતિ ।

તાદૃશોત્પ્રેક્ષણશીલસ્ય યદ્ભવતિ તદાહ-‘તસ્યે’ત્યાદિ, હે શિષ્યાઃ ! તસ્ય=  
શ્રદ્ધાવતઃ ઉત્થિતસ્ય પ્રવ્રજિતુમુદ્યતસ્ય સમ્યક્ત્વે સંશયરહિતસ્ય સ્થિતસ્ય=આચાર્ય-  
સ્યાદેશે તદન્તિકે ચ વર્તમાનસ્ય ગતિં=તદાચરણરૂપાં પદ્ધતિં યૂયં સમનુપશ્યત  
=સમ્યક્ પ્રેક્ષધ્વમ્, પૂર્વોક્તસ્ય શ્રદ્ધાવતઃ સર્વજનપ્રશંસાપાત્રત્વં જ્ઞાને દર્શને ચ દૃઢત્વં  
હે ભવ્ય ! તું ઇસ સંયમકી પરિપાલનાનિમિત્ત પૂર્ણ પ્રયત્નશીલ રહ ।  
ક્યોં કિ ઇસ સંયમકી આરાધનામેં હી જ્ઞાનાવરણીયાદિક દ્રવ્ય-ભાવ-  
કર્મોંકી પરંપરા કે નાશ કરનેકી શક્તિ રહી હુઈ હૈ । ઇસ પ્રકાર પ્રયત્ન-  
શીલ વ્યક્તિકે લાભ કો પ્રકટ કરનેકે લિયે સૂત્રકાર “તસ્યોત્થિતસ્ય  
ગતિં સમનુપશ્યત” કહતે હૈં । ડસ શ્રદ્ધાસમ્પન્ન ઇવં ભાગવતી દીક્ષા ગ્રહણ  
કરનેકે લિયે ઉદ્યમશીલ મનુષ્યકો યહ ઇક બડા ભારી લાભ હોતા હૈ  
કિ જબ વહ શઙ્કારહિત હોકર આચાર્યકે નિકટ વસતા યા ડનકી આજ્ઞા  
મેં રહતા હુઆ સંયમકી આરાધના કરનેમેં તહીન હોતા હૈ તબ ડસે સમ્ય-  
ક્ત્વકે પરિજ્ઞાનપૂર્વક રત્નત્રયકી આરાધનાસે મુક્તિકા લાભ હોતા હૈ । ઇસ  
પ્રકાર શિષ્યોંકો સમ્બોધન કરતે હુઇ સૂત્રકાર કહતે હૈં કિ દેખો; શ્રદ્ધા-  
સમ્પન્ન વ્યક્તિ સર્વજનકી પ્રશંસાકા પાત્ર બન કર, જ્ઞાન ઓર દર્શનમેં  
દૃઢતાકી પ્રાપ્તિસે ચારિત્રમેં નિશ્ચલતા ધારણ કરતા હુઆ રત્નત્રયકી

મનુષ્યને સમજાવે કે હે ભવ્ય ! તું આ સંયમને પાળવામાં પૂર્ણપણે પ્રયત્ન-  
શીલ રહે, કેમ કે આ સંયમની આરાધનામાં જ જ્ઞાનાવરણીયાદિક દ્રવ્યલાભ  
કર્મોંની પરંપરાનો નાશ કરવાની શક્તિ છે. આવા પ્રયત્નશીલ વ્યક્તિના  
લાભને પ્રગટ કરતાં સૂત્રકાર “તસ્યોત્થિતસ્ય ગતિં સમનુપશ્યત” કહે છે-આવા  
શ્રદ્ધાસંપન્ન અને ભાગવતી દીક્ષા ગ્રહણ કરવામાં ઉદ્યમશીલ મનુષ્યને આ એક  
મોટો લાભ થાય છે કે જ્યારે તે શંકારહિત બની આચાર્યની પાસે રહી અથવા  
એમની આજ્ઞામાં રહી સંયમની આરાધના કરવામાં તહીન બને છે ત્યારે તેને  
સમ્યક્ત્વના પરિજ્ઞાનપૂર્વક રત્નત્રયની આરાધનાથી મુક્તિનો લાભ થાય છે. આ  
પ્રકારે શિષ્યોને સંબોધન કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે જુઓ શ્રદ્ધાસંપન્ન વ્યક્તિ  
સર્વજનની પ્રશંસાને પાત્ર બની જ્ઞાન અને દર્શનમાં દૃઢતાની પ્રાપ્તિથી ચારિત્રમાં

ચારિત્રે નિશ્ચલત્વં સમ્યક્ત્વપરિજ્ઞાનપૂર્વકરત્નત્રયારાધનેન મોક્ષાધિગમશ્ચ ભવતીતિ સમ્યક્ પश्यतेति तात्पर्यम् ।

યદ્વા-તસ્ય=સંયમોદ્યોગવતઃ ઉત્થિતસ્ય તદુદ્યોગે સતતં જાગ્રતઃ ગતિ=મોક્ષ-પ્રાપ્તિરૂપાં તત્સાધિકાં રત્નત્રયસમારાધનરૂપાં વા તથા સ્થિતસ્ય સંયમસમુદ્યોગ-વૈપરીત્યેન વર્તમાનસ્ય સાવધવ્યાપારનિરતસ્ય દણ્ડિશાક્યાદેઃ ગતિ=તદાચરણરૂપાં પદ્ધતિ સર્વજનનિન્દારૂપાં નરક-નિગોદાદિગમનં ચ સમનુપશ્યત=સમ્યગ્ વિચારય-ધ્વમ્, ઉભયોર્ગતિ સમવધાર્ય સંયમે તપસિ ચ પરાક્રમધ્વમિત્યર્થઃ । સંયમસમુદ્યોગ-વર્જિતસ્યાધમા ગતિર્ભવતીતિ કિં તેન પ્રકૃતે સમાયાતમિત્યાહ-‘અત્રાપીતિ । અત્ર સંયમાનુદ્યોગરૂપે બાલભાવે-બાલસ્ય-અવિદિત-સંયમાનાચરણજનિતનરક-

આરાધનાસે મોક્ષકા પાત્ર બન જાતા હૈ । જો સંયમમેં ઉદ્યોગશાલી હૈ, એવં ઉસ ઉદ્યોગમેં જો નિરન્તર જાગૃતિસમ્પન્ન હૈં એસે મનુષ્યકો મુક્તિકા લાભ યા મોક્ષપ્રાસિકે કારણભૂત રત્નત્રયકી આરાધનાકી પ્રાપ્તિ હોતી હૈ; પરન્તુ જો ઇસસે વિપરીત-દશાસંપન્ન હૈં એસે દણ્ડિશાક્યાદિકોંકી ઇસ લોકમેં નિંદા હોતી હૈ ઓર પરલોકમેં ઉન્હેં નરકનિગોદાદિકકી ગતિ પ્રાપ્ત હોતી હૈ । ઇસ પ્રકાર વિચારકર હે શિષ્યો ! તુમ સંયમ તપમેં સદા પ્રયત્ન-શીલ રહો ! ઇસ કથનસે યહ પ્રકૃતમેં બાત સિદ્ધ હોતી હૈ કિજો સંયમમેં સમીચીન ઉદ્યોગસે રિક્ત હૈં ઉનકી અધમ ગતિ હોતી હૈ, ઓર જો ઉસમેં ઉદ્યોગવાલે હૈં ઉનકી ઉર્ધ્વગતિ-ઉત્તમ ગતિ હોતી હૈ । ઇસલિયે “અત્રાપિ બાલભાવે આત્માનં નોપદર્શયેત્” ઇસ સંયમકે અનુદ્યોગરૂપ બાલભાવમેં કિ જિસમેં સંયમકે અનાચરણજન્ય નરકનિગોદાદિક ગતિયોંકે કદુક ફલકા

નિશ્ચળતા ધારણ કરી રત્નત્રયની આરાધનાથી મોક્ષને પાત્ર બની જાય છે. જે સંયમમાં ઉદ્યોગશાળી છે અને એ ઉદ્યોગમાં જે નિરંતર જાગૃતિસંપન્ન છે એવા મનુષ્યને મુક્તિનો લાભ અથવા મોક્ષપ્રાપ્તિના કારણભૂત રત્નત્રયની આરાધનાની પ્રાપ્તિ થાય છે, પરંતુ જે એનાથી વિપરીતદશાસંપન્ન છે-સાવધ વ્યાપારમાં ખુચેલ છે એવા દણ્ડિશાક્યાદિકોની આ લોકમાં નિંદા થાય છે અને પરલોકમાં તેને નરકનિગોદાદિકની ગતિ પ્રાપ્ત થાય છે. આ રીતે બન્નેની ગતિનો વિચાર કરી હે શિષ્યો ! તમે સંયમ અને તપમાં સદા પ્રયત્નશીલ રહો. આ કથનથી એ વાત સિદ્ધ થાય છે કે જે સંયમના પાલનમાં શિથિલતા બતાવે છે તેની અધમ ગતિ થાય છે. અને જે એના પાલનમાં ઉદ્યોગશીલ રહે છે તે ઉર્ધ્વ (ઉત્તમ) ગતિ પ્રાપ્ત કરે છે. આ માટે “અત્રાપિ બાલભાવે આત્માનં નોપદર્શયેત્” આ સંયમના અનુદ્યોગરૂપ બાલભાવમાં કે જેમાં સંયમ અનાચરણજન્ય

નિગોદાદિકદુકફલસ્ય ભાવઃ=અભિપ્રાયઃ આચરણમિત્યર્થઃ બાલભાવસ્તસ્મિન્ કુમાર્ગપ્રવૃત્તલોકાચરિત્ત્વમિત્યર્થઃ । આત્માનં=સર્વશ્રેયઃસ્થાનં નિજં નોપદર્શયેત્=નોપસ્થાપયેત્—ન તત્ર સ્વાત્માનં પાતયેદિત્યર્થઃ । યથા કેચિત્ ‘ નિત્યત્વાદમૂર્તત્વાચ્ચ નાસ્ત્યાત્મનઃ પ્રાણાતિપાતાદિર્ગગનસ્યેવેતિ પ્રતિપાદયન્તિ બાલભાવમાચરન્તિ ચ તથા મુનયો ન કુર્યુરિત્યાશયઃ । અપિશબ્દોઽગ્ર ભિન્નક્રમસ્તેન અબાલભાવે સ્વાત્માનમુપદર્શયેદિત્યર્થઃ ॥ સૂ. ૪ ॥

આત્મનો હનનં ન ભવતીતિ મત્વા પ્રાણિહનનાદૌ પ્રવૃત્તં પુરુષં તસ્માન્નિવર્તયિતું હન્યમાનસ્ય હન્તુશ્ચૈક્યમાપાદયન્નાહ—‘ તુમંસિ ’ इत्यादि ।

મૂલમ્—તુમંસિ નામ સચ્ચેવ જં હંતવ્વંતિ મન્નસિ, તુમંસિ નામ સચ્ચેવ જં અઙ્જાવેયવ્વંતિ મન્નસિ, તુમંસિ નામ સચ્ચેવ જં પરિયાવેયવ્વંતિ મન્નસિ, એવં જં પરિધિત્તવ્વંતિ મન્નસિ, જં ઉદ્-

ભાન નહીં હોતા હૈ, કુમાર્ગપ્રવૃત્ત લોકોંકે દ્વારા સેવિત એસે આચરણમેં સર્વ કલ્યાણકે પાત્રસ્વરૂપ અપની આત્માકો સંલગ્ન ન કરો, ઉસ આચારમેં અપની આત્માકા પતન ન કરો । સારાંશ ઇસકા યહ હૈ કિ જૈસે કોઈ અન્યમતિ—‘ આકાશકી તરહ નિત્ય ઓર અમૂર્ત્ત હોનેસે જીવકા ઘાત નહીં હોતા હૈ ’ ઇસ પ્રકાર માનતે હૈં ઓર બાલભાવકા આચરણ કરતે હૈં, ઉસ પ્રકાર સાધુકો નહીં કરના ચાહિયે ॥ સૂ. ૪ ॥

આત્માકા હનન નહીં હોતા હૈ એસા સમજ્જકર જો પ્રાણિયોંકે હિંસાદિક કાર્યમેં પ્રવૃત્ત હૈં ઉન પુરુષોંકી ઉસ કાર્યસે નિવૃત્તિ કરાનેકે લિયે તથા હન્યમાન ઓર હન્તામેં એકતા હૈ ઇસ વાતકો પ્રકટ કરાનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈં—‘ તુમંસિ ’ इत्यादि ।

નરકનિગોદાદિ ગતિઓના કડવા ફળનું ભાન હોતું નથી, કુમાર્ગ પ્રવૃત્ત લોકોથી સેવિત એવા આચરણમાં સર્વકલ્યાણના પાત્રસ્વરૂપ પોતાના આત્માને ન જવા દે—એ આચારથી પોતાના આત્માનું પતન ન કરે. સારાંશ આનો એ છે કે—

જેમ કોઈ અન્ય મતિ ‘ આકાશની માફક નિત્ય અને અમૂર્ત હોવાથી આત્મા (જીવ)ની ઘાત થતી નથી ’ આ પ્રકારે માને છે, અને બાળભાવનું આચરણ કરે છે, આ રીતે મુનિએ કરવું જોઈએ નહિ ॥ સૂ. ૪ ॥

આત્મા હણાઈ શકતો નથી, એવું સમજીને જે પ્રાણીઓના હિંસાદિક કાર્યમાં પ્રવૃત્ત છે એવા પુરુષોની એ કાર્યથી નિવૃત્તિ કરાવવા માટે ‘ હન્યમાન અને હન્તામાં એકતા છે, આ વાત પ્રગટ કરતાં સૂત્રકાર કહે છે—“ તુમંસિ ” इत्यादि.



વેયઁવંતિ મન્નસિ, અંજુ ચેયં પડિબુદ્ધજીવી, તમ્હા ન હન્તા નવિ  
ઘાયણ, અણુસંવેયણમપ્પાણેણં જં હંતઁવં નાભિપત્થણ ॥ સૂ. ૫ ॥

છાયા—ત્વમસિ નામ સ એવ યં હન્તવ્યમિતિ મન્યસે, ત્વમસિ નામ સ એવ  
યમાજ્ઞાપયિતવ્યમિતિ મન્યસે, ત્વમસિ નામ સ એવ યં પરિતાપયિતવ્યમિતિ મન્યસે,  
એવં યં પરિગ્રહીતવ્યમિતિ મન્યસે, યમ્ અપદ્રાવયિતવ્યમિતિ મન્યસે, ઋજુશ્ચૈતત્પ્રતિ-  
બુદ્ધજીવી, તસ્માન્ન હન્તા નાપિ ઘાતયેત્, અનુસંવેદનમાત્મના યદ્ હન્તવ્યં  
નાભિપ્રાર્થયેત્ ॥ સૂ. ૫ ॥

ટીકા—‘ત્વમસી’ ત્યાદિ-ત્વં યં પ્રાણિનં હન્તવ્યં=દણ્ડકશા-શસ્ત્રાદિભિર્હિં-  
સનીયમ્ इति=એવં મન્યસે=જાનાસિ સ એવ પ્રાણી ત્વમસિ સકલાત્મનશ્ચેતનાદિ-  
સમાનલક્ષણત્વાત્, નામેતિ સમ્ભાવનાયામ્; इदमत्र तत्त्वम्-હનનેન ગગનવદમૂર્ત્તસ્યા-  
ત્મનો હિંસા ન ભવતિ કિન્તુ શરીરસ્યૈવ, તચ્ચ શરીરં જીવસ્યાશ્રયભૂતમતીવપ્રિય-

સૂત્રકાર દૂસરોંકા ઘાત કરનેવાલોંકો ઉપદેશ દેતે હુણ કહતે હૈં  
કિ તુમ જિનકો મારનેયોગ્ય-દણ્ડ-ચાણુક શસ્ત્ર આદિકોંસે યહ મારને-  
લાયક હૈ, એસા સમજતે હો વહી તુમ હો; ક્યોં કિ ઉસમેં ઔર તુમમેં  
કોઈ અંતર નહીં હૈ । શાસ્ત્રકારોંને જીવકા લક્ષણ ચેતના બતલાયા હૈ ।  
યહ લક્ષણ એસા કોઈસા મી જીવ નહીં હૈ કિ જિસમેં ન પાયા જાતા  
હો । અતઃ ઇસ જીવકે સામાન્ય લક્ષણસે યુક્ત હોનેસે સમસ્ત જીવ લક્ષ-  
ણકી અપેક્ષાસે એક હૈં ।

ભાવાર્થ—યદ્યપિ આત્મા અમૂર્ત્ત હૈ, જો અમૂર્ત્ત હોતા હૈ ઉસકા  
આકાશકી તરહ હનન-વિનાશ-ઘાત નહીં હો સકતા હૈ, ઘાત મૂર્ત્ત  
શરીરકા હી હોતા હૈ । પરંતુ ફિર મી જો હિંસા માની જાતી હૈ ઉસકા  
કારણ યહ હૈ કિ હિંસકદ્વારા જીવ ઉસકા આશ્રયભૂત શરીરસે વિયુક્ત કર

સૂત્રકાર ખીજની ઘાત કરવાવાળાને ઉપદેશ આપતાં કહે છે કે તમે જેને  
મારવા યોગ્ય-દણ્ડ, ચાણુક શસ્ત્ર વગેરેથી એ મારવાલાયક છે એવું સમજો છો  
એ તમે છો, કેમ કે એનામાં અને તમારામાં કોઈ અન્તર નથી. શાસ્ત્રકારેએ  
જીવનું લક્ષણ ચેતના બતાવેલ છે. આ લક્ષણ એવો કોઈ પણ જીવ નથી કે  
જેનામાં ન હોય. એથી આ જીવના સામાન્ય લક્ષણથી નક્કી છે કે સમસ્ત જીવ  
લક્ષણની અપેક્ષાથી એક છે.

ભાવાર્થ—આત્મા અમૂર્ત્ત છે, જે અમૂર્ત્ત હોય છે તેનો આકાશની માફક  
હનન-વિનાશ-ઘાત નથી થઈ શકતો. ઘાત મૂર્ત્ત શરીરનો જ થાય છે;  
છતાં પણ તેમાં હિંસા માનવામાં આવે છે, તેનું કારણ એ છે કે હિંસા કરનાર

મતસ્તચ્છરીરાત્તસ્ય વિયોજનમેવ હિંસા, તથાહિ—

“પચ્ચેન્દ્રિયાણિ ત્રિવિધં બલં ચ,

ઉચ્છ્વાસ-નિઃશ્વાસમથાન્યદાયુઃ ।

પ્રાણા દશૈતે ભગવદ્વિરુક્તા,—

સ્તેષાં વિયોગીકરણં તુ હિંસા ॥ ૧ ॥

इति वचनात् । किञ्च जीवस्य सर्वथा नामूर्तत्वादिसमधिगमो यतो गगनस्येव हननादिरूपविकारो नापद्येत किन्तु स कथञ्चिन्मूर्तोऽपि शरीराधिष्ठितत्वादिति तस्य दिया जाता है । इस क्रियाका नाम हिंसा है । क्यों कि जीवका आश्रयभूत होनेसे वह शरीर उसे अत्यन्त प्रिय था, हिंसक उसे अपने हिंसारूप कर्मद्वारा विनष्ट कर दिया । हिंसाका लक्षण भी यही किया है । श्लोक—पच्येन्द्रियाणि त्रिविधं बलं च, उच्छ्वास-निःश्वासमथान्यदायुः ।

પ્રાણા દશૈતે ભગવદ્વિરુક્તા,—સ્તેષાં વિયોગીકરણં તુ હિંસા ॥ ૧ ॥

अर्थ—पांच इन्द्रिय, तीन बल, उच्छ्वास निश्वास और आयु इन १० प्राणोंका वियोग करना हिंसा है ।

दूसरी बात यह है—कि आत्मा सर्वथा अमूर्त भी नहीं है, क्यों कि कर्मबन्धकी अपेक्षा वह कथंचित् मूर्त माना गया है । सर्वथा अमूर्त मानने पर ही गगनादिककी तरह उसमें हननादिरूप विकार

દ્રારા આશ્રયભૂત શરીરથી જીવને વિયુક્ત કરી દેવામાં આવે છે. આ ક્રિયાનું નામ હિંસા છે; કેમ કે જીવના આશ્રયભૂત હોવાથી જે શરીર તેને અત્યંત પ્રિય હતું, હિંસક પોતાના હિંસારૂપ કર્મદ્વારા તેનો નાશ કરી નાખ્યો. હિંસાનું લક્ષણ પણ આમ કહેલ છે.

“પચ્ચેન્દ્રિયાણિ ત્રિવિધં બલં ચ,

ઉચ્છ્વાસનિઃશ્વાસમથાન્યદાયુઃ ।

પ્રાણા દશૈતે ભગવદ્વિરુક્તા,—

સ્તેષાં વિયોગીકરણં તુ હિંસા ॥ ૧ ॥ ”

અર્થ—પાંચ ઇન્દ્રિય, ત્રણ બળ, ઉચ્છ્વાસ, નિશ્વાસ અને આયુષ્ય આ દસ પ્રાણોનો વિયોગ કરવો તે હિંસા છે. ખીજી વાત એ છે કે આત્મા સર્વથા અમૂર્ત પણ નથી, કેમ કે કર્મબંધની અપેક્ષા તે કથંચિત્ મૂર્ત માનાયેલ છે. સદા અમૂર્ત માનવાથી ગગનાદિકની માફક તેમાં હનનાદિરૂપ વિકાર થઈ શકતો નથી, પરંતુ એવી માન્યતા એકાન્ત રૂપથી જૈન ધર્મની નથી, જ્યારે

હનનાદિકમુપપદ્યત એવ । એવં સર્વત્રૈવાત્મોપમ્યં વિભાવનીયમિતિ દર્શયતિ-‘ત્વમસી’ ત્યાદિ-ત્વં યં=જીવમ્ આજ્ઞાપયિતવ્યં=દુષ્કરાનભિમતકાર્યે નિયોજનીયમિતિ મન્યસે ત્વં સ એવાસિ । એવમપરેષ્વપિ યોજ્યમ્ । તત્ર પરિતાપયિતવ્યં=શારીર-માનસ-પીડયા ઉપતાપયિતવ્યં પરિગ્રહીતવ્યં=સ્વાયત્તીકરણીયમ્ । અપદ્રાવયિતવ્યં પ્રાણૈર્વ્ય- નહીં હો સકતા હૈ । પરંતુ એસી માન્યતા એકાન્તરૂપસે જૈનધર્મકી નહીં હૈ । જબ વહ શરીરમેં અધિષ્ઠિત પ્રત્યક્ષરૂપસે પ્રતીત હોતા હૈ તો ફિર ઉસકે વિઘાત હોને પર ઉસકા ખી વિઘાત માના જાતા હૈ । હસી પ્રકાર આત્મોપમતા સર્વત્ર-વક્ષ્યમાણ પદોંકે અર્થકે સાથ ખી સમન્વિત કર લેની ચાહિયે; યહી વાત “ ત્વમસિ નામ સ એવ યમાજ્ઞાપયિતવ્યમિતિ મન્યસે ” ઇત્યાદિ પદોંમેં પ્રકટ કી ગઈ હૈ-તુમ જિસ દુષ્કર એવં અન-ભિમત કાર્યમેં અન્ય જીવોંકો “ યે વહાં નિયુક્ત કરનેયોગ્ય હૈ ” એસા સમજ્ઞકર નિયુક્ત કરતે હો સો એસા વ્યવહાર તુમ્હારા ઉન જીવોંકે સાથ નહીં હૈ, કિન્તુ યહ વ્યવહાર તુમ સ્વયં અપને હી સાથ કરતે હો એસા સમજ્ઞના ચાહિયે; કયોં કિ ઉનમેં ઓર તુમમેં જીવકે સામાન્યલક્ષણ કી અપેક્ષા કોઈ અંતર નહીં હૈ । હસી પ્રકાર જિન જીવોંકો તુમ શારી-રિક એવં માનસિક પીડા પહુંચાને યોગ્ય માનકર ઉન્હેં ઉસ તરહકી પીડા પહુંચાતે હો, પ્રાણોંસે ઉન્હેં વિયુક્ત કરતે હો, પરિગ્રહણ યોગ્ય માનકર તુમ જિન જીવોંકા દાસ-દાસી આદિરૂપમેં પરિગ્રહ કરતે હો, યહ સવ

એ શરીરમાં અધિષ્ઠિત પ્રત્યક્ષ રૂપથી પ્રતીત થાય છે તો યહી એના વિઘાત થવાથી તેનો પણ વિઘાત માની લેવાય છે. આ પ્રકારે આત્મોપમતા સર્વત્ર-વક્ષ્યમાણ પદોના અર્થની સાથે પણ સમન્વિત કરી લેવી જોઈએ. આ વાત “ તુમસિ ” ઇત્યાદિ! પદોમાં પ્રગટ કરેલ છે. તમે જે દુષ્કર એવાં અનભિમત કાર્યોમાં અન્ય જીવોને “ આ ત્યાં નિયુક્ત કરવા યોગ્ય છે ” એવું સમજીને નિયુક્ત કરો છો, એવો વ્યવહાર તમારો એ જીવોની સાથે નથી; પરંતુ આ વ્યવહાર તમે ફક્ત પોતાની જ સાથે કરો છો, એમ સમજીવું જોઈએ. કેમકે એનામાં અને તમારામાં જીવસામાન્યલક્ષણની અપેક્ષા કોઈ અંતર નથી. આ રીતે જે જીવોને તમે શારીરિક અને માનસિક પીડા પહોંચાડવા યોગ્ય માનીને એને એવી જાતની પીડા પહોંચાડો છો, પ્રાણોથી તેને છુટા પાડવા યોગ્ય માનીને તમે તેને પ્રાણોથી વિયુક્ત કરો છો, પરિગ્રહણ યોગ્ય માનીને તમે જે જીવોનું દાસ-દાસી આદિ રૂપમાં પરિગ્રહ કરો છો, આ સઘળો વ્યવહાર તમારો તે જીવો સાથેનો ઉચિત



પરોપયિતવ્યમિતિ, એતાનિ ચ વાક્યાનિ હિંસાવિશેષપ્રતિપાદકાન્યેવ સન્તિ । સ્વસ્ય હનનાજ્ઞાપનપરિતાપનપરિગ્રહાપદ્રાવણાદિકાર્યકારિણં કંચિદ્વિલોક્ય યથા દુઃસ્વં જાયતે તથૈવાપરસ્યાપિ; હનનાદિકારી ચેત્ત્વં ભવેસ્તદાસ્ત્મૌપમ્યેન તત્તત્કાર્યાદૌ દુઃસ્વાનિ ભવન્તીત્યાલોચ્ય કસ્ય ચિન્ન હનનાદૌ પ્રવર્તિતવ્યમિત્યાશયઃ । એતદા-

વ્યવહાર તુમ્હારા ઉન જીવોંકે સાથ ઉચિત નહીં હૈ; ક્યોં કિ જિસ પ્રકાર અપની હિંસા કરનેવાલેકો દેશ્વકર તુમ્હેં દુઃસ્વ હોતા હૈ, અપનેકો અનુ-ચિત એવં દુષ્કર કાર્યમેં નિયુક્ત કરાનેવાલેકો જાનકર જૈસે તુમ્હેં કષ્ટ કા અનુભવ હોતા હૈ, અપનેકો પરિતાપ પહુંચાને યોગ્ય જાનનેવાલેવ્યક્તિ કો દેશ્વકર જૈસે સ્વયંકો સંતાપ હોતા હૈ, અપનેકો દાસ-દાસીરૂપમેં સમજ્ઞનેવાલેકે પ્રતિ જૈસે તુમ્હેં તિરસ્કાર જાગ્રત હોતા હૈ ઓર જૈસે અપને કો પ્રાણોંસે વિયુક્ત કરનેયોગ્ય માનનેવાલોંકે ઉપર તુમ્હેં ક્રોધ હોતા હૈ ડસી પ્રકાર યદિ તુમ બી ઇસ પ્રકારકા વ્યવહાર દૂસરોંકે પ્રતિ કરતે હો તો તુમ્હારા યહ વ્યવહાર આત્મોપમતાસે તુમ્હેં સ્વયંદુઃસ્વપ્રદ હોગા । કારણ કિ હિંસનીય, આજ્ઞાપનીય, પરિતાપનીય, પરિગ્રહણીય ઓર અપદ્રાવણીય તુમ સ્વયં હો જાતે હો । અતઃ અન્યકો ડસ ૨ વ્યવહાર કે યોગ્ય માનના હી સ્વયં અપનેકો ડસ ૨ વ્યવહારકે યોગ્ય માનના હૈ । યે પૂર્વોક્ત સમસ્ત વાક્ય હિંસાકે પ્રકારોંકે હી પ્રતિપાદક હૈં એસા સમજ્ઞના ચાહિયો અતઃ આત્મજ્ઞાની મુનિકા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ કબી બી કિસી બી જીવકે હિંસાદિક કાર્યોંમેં

નથી. જે રીતે તમારી હિંસા કરવાવાળાને બેઠને જેટલું દુઃખ તમને થાય છે, પોતાને અનુચિત એવા દુષ્કર કાર્યમાં નિયુક્ત કરનારને સામે બેઠ જેમ તમને દુઃખનો અનુભવ થાય છે, તમને પરિતાપ પહોંચાડનાર વ્યક્તિને બાણી જે રીતે તમને સંતાપ થાય છે, તમને દાસ-દાસી રૂપે સમજનાર તરફ જેવો તમને તિરસ્કાર બાગૃત થાય છે અને જેમ તમને પ્રાણુથી વિયુક્ત કરવા યોગ્ય માનવાવાળા ઉપર તમને ક્રોધ થાય છે, આજ રીતે તમે પણ આવા પ્રકારનો વ્યવહાર બીજાના તરફ કરો તો તમારો આ વ્યવહાર આત્મોપમતાથી તમને દુઃખદાયક થશે, કારણ કે હિંસનીય, આજ્ઞાપનીય, પરિતાપનીય, પરિગ્રહણીય, અને અપદ્રાવણીય તમે સ્વયં બની બાવ છો. માટે બીજાને તેને વ્યવહારને યોગ્ય માનવું તે સ્વયં પોતાને જ તે તે વ્યવહારને યોગ્ય માનવા બરોબર છે. આ પૂર્વોક્ત સમસ્ત વાક્ય હિંસાના પ્રકારોનું જ પ્રતિપાદક છે, એવું સમજવું બેઠ એ. એથી આત્મજ્ઞાની મુનિનું કર્તવ્ય

શયેનૈવ સ એવ ત્વમસીતિ સર્વત્રૈક્યપ્રતિપાદનમિતિ તવાનિષ્ટપ્રાપ્તૌ યથા દુઃખં જાયતે તથૈવાન્યસ્યેતિ સમ્યક્ સમાલોચયેતિ ભાવઃ । ઉપલક્ષણમેતન્મૃષાવાદાદીનામપિ । હન્ત્-હન્યમાનયોરૈક્યકથનેન કિમાયાતમિત્યાહ-‘ઋજુ’રિત્યાદિ-એતત્પ્રતિબુદ્ધજીવી-એતસ્ય=હન્ત્-હનનીયૈક્યસ્ય યત્પ્રતિબુદ્ધં=પ્રતિબોધઃ પરિજ્ઞાનં તદ્ એતત્પ્રતિબુદ્ધમ્ તેન જીવિતું શીલં યસ્ય સ એતત્પ્રતિબુદ્ધજીવી હનનાદિવ્યાપારનિવૃત્તશ્ચ ઋજુઃ=સરલઃ-પ્રગુણઃ આત્મસમસકલપ્રાણિગણદુઃસ્વદર્શી ભવતિ । તતઃ કિમિ-

પ્રવૃત્તિ ન કરે । इसी आशयसे सूत्रकारने “स एव त्वमसि” इस वाक्यसे सर्वत्र हन्यमान-हन्ता आदिमें एकता का कथन किया है । जिस प्रकार अनिष्टकी प्राप्तिमें तुम्हें दुःख होता है उसी प्रकार अन्यके साथ कृत यह अनिष्ट व्यवहार इन्हें भी दुःखप्रद होता है, इस प्रकार मोक्षाभिलाषी मुनिको सदा विचार करते रहना चाहिये, यही सूत्रकारका आशय है । “त्वमसि नाम स एव यं हन्तव्यमिति मन्यसे ” यह सूत्रांश मृषावाद आदिका उपलक्षक है । हन्ता और हन्यमानमें जो एकता का कथन किया है उसका यह अभिप्राय है-जो एतत्प्रतिबुद्धजीवी है-हन्ता और हन्यमानमें एकता का प्रतिबोधसे ही जिसका जीनेका स्वभाव है, अर्थात् दूसरोंके घातादिक व्यापारसे निवृत्त जिसका जीवन है ऐसा ऋजु जीव अपने तुल्य समस्त जीवोंको मानकर उनके दुःखका दर्शी होता है । इससे उसे इस बातका बोध होता रहता है कि जिस प्रकार मेरी हिंसा होने पर मुझे

છે કે તે કદિ પણ કોઈપણ જીવની હિંસાના કાર્યમાં પ્રવૃત્તિ ન કરે. આ આશયથી સૂત્રકારે “ સ એવ ત્વમસિ ” આ વાક્યથી સર્વત્ર હન્યમાન-હન્તા આદિમાં એકતાનું કથન કરેલ છે. જે પ્રકારે અનિષ્ટની પ્રાપ્તિથી તમોને દુઃખ થાય છે એ જ પ્રકારે અન્યની સાથે અનિષ્ટ વ્યવહાર એને પણ દુઃખપ્રદ થતો હોય છે. આ વાતનો મોક્ષાભિલાષી મુનિએ સદા વિચાર કરતા રહેવું જોઈએ, આવો સૂત્રકારનો આશય છે. ત્વમસિ નામ સ એવ યં હન્તવ્યમિતિ મન્યસે ” આ સૂત્રાંશ મૃષાવાદ આદિનું ઉપલક્ષક છે. હન્તા અને હન્યમાનમાં જે એકતાનું કથન કરેલ છે એનો આ અભિપ્રાય છે કે જે એતત્પ્રતિબુદ્ધજીવી છે-હન્તા અને હન્યમાનમાં એકતાના પ્રતિબોધથી જ જેનો જીવવાનો સ્વભાવ છે, અર્થાત્ બીજાના ઘાતાદિક વ્યાપારથી નિવૃત્ત જેમનું જીવન છે; એવા હયાવાન જીવ પોતાની તુલ્ય સમસ્ત જીવોને માની એના દુઃખમાં સહભાગી બને છે. આથી એને એ વાતનું જ્ઞાન થતું રહે છે કે જે પ્રકારે મારી હિંસા થવાથી મને દુઃખ થાય એ જ પ્રકારે અન્ય

ત્યાહ-‘ તસ્મા ’દિત્યાદિ-યસ્માદ્ હન્યમાનસ્ય દુઃખં સ્વાત્મન ઇવ જાયતે તસ્માત્  
 કારણાત્ સ્વૌપમ્યેન ન હન્તા પરપ્રાણિપ્રાણવિરાધકો ન ભવેત્, તથૈવ નાપિ ઘાતયેત્,  
 અપિ શબ્દાદ્ ધનન્તં નાનુમોદયેદિતિ । અપિ ચ આત્મના યદિતરસ્ય અનુ=પશ્ચાત્  
 સંવેદનમ્=અનુભાવનમ્-મોહનીયોદયેન યદ્ હનનાદિના દુઃખમુત્પાદિતં તત્પાશ્વાદા-  
 ત્મનાઽનુભવનીયં ભવતિ, ઇત્યવધાર્યં યં કંચિદ્ હન્તવ્યમિતિ મન્યમાનસ્તં નાભિપ્રાર્થ-  
 યેત્=કદાચિદપિ હન્તવ્યતયા નેચ્છેત્, કસ્યચિદપિ ઘાતં મનસાઽપિ નો કામયેત્,  
 કિંપુનઃ કાયેન વચસેતિ હૃદયમ્ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

દુઃખ હોતા હૈં ઉસી પ્રકાર અન્ય પ્રાણીકોં ભીં હિંસા હોતે સમય દુઃખ હોતા હૈં ।  
 હસલિયે સ્વાત્મોપમતાકે ધ્યાનસે પરપ્રાણીકે પ્રાણોંકા વિરાધક કમીં ભીં  
 મુનિજનકોં નહીંં હોના ચાહિયે । જિસ પ્રકાર યહ સ્વયં હિંસાસે વિરક્ત  
 હોતા હૈં, ઉસી પ્રકાર ઉસસે વહ અન્ય જનકોં ભીં નિવૃત્ત કરાતા હૈં ।  
 “અપિ ” શબ્દસે હિંસામેં પ્રવૃત્ત અન્યજન કી વહ અનુમોદના ભીં નહીંં  
 કરતા હૈં યહ બોધ હોતા હૈં । “અનુસંવેદનમાત્મના યદ્ હન્તવ્યં પ્રાર્થયેત્”  
 અનુ શબ્દકા અર્થ પશ્ચાત્ ઔર સંવેદન શબ્દકા અર્થ અનુભાવન હૈં ।  
 મોહનીય કર્મકે ઉદયસે જો હનનાદિક વ્યાપારોંદ્વારા અન્ય જીવોંકોં દુઃખ  
 પહુંચાયા જાતા હૈં વહ દુઃખ પશ્ચાત્-પીછે મારનેવાલોંકે દ્વારા ભોગનેયોગ્ય  
 હોતા હૈં, એસા વિચાર કર-નિશ્ચય કર “ યહ હન્તવ્ય હૈં ” હસ પ્રકારકી  
 પરિણતિસે કમીં ભીં કિસીં ભીં જીવકોં મારનેયોગ્ય નહીંં સમજના  
 ચાહિયે । જબ મનસે ભીં હસ પ્રકારકી ઘાત કરનેરૂપ પરિણતિકે ચિન્તન

પ્રાણીઓને પણ હિંસા થતે સમયે દુઃખ થાય છે. આ માટે સ્વ આત્માના  
 પ્રમાણના ધ્યાનથી બીજા પ્રાણીના પ્રાણના નાશકર્તા મુનિજને કદી પણ ન બનવું  
 જોઈએ. જે રીતે જે પોતાના મનથી જ હિંસાથી વિરક્ત થાય છે, તેવી જ રીતે  
 બીજાને પણ હિંસાથી નિવૃત્ત બનાવે છે.

“અપિ ” શબ્દથી હિંસામાં પ્રવૃત્ત બીજા પ્રાણસને પણ એ અનુમોદન  
 આપતા નથી, એવો અર્થ થાય છે. “અનુસંવેદન ” ઇત્યાદિ ! અનુ શબ્દનો અર્થ  
 પશ્ચાત્ અને સંવેદન શબ્દનો અર્થ અનુભાવન છે. મોહનીય કર્મના ઉદયથી  
 જે જીવ હિંસાદિક વ્યાપારોદ્વારા બીજા જીવોને જેવું દુઃખ પહોંચાડે છે તેવું  
 દુઃખ પાછળથી મારનારાઓ પોતે જ ભોગવે છે, એવો વિચાર કરી-નિશ્ચય  
 કરી “ આ હન્તવ્ય છે ” આ પ્રકારની પરિણતિથી કદિ પણ જીવને મારવા યોગ્ય  
 સમજવું ન જોઈએ. જ્યારે મનમાં પણ આ પ્રકારનો ઘાત કરવારૂપ વિચારનું



આત્મનાઽનુસંવેદનં કૃતમિત્યભિહિતં, તત્ર સંવેદનસ્ય સુખ-દુઃસ્વરૂપતયા કળાદ-ગૌતમાનુયાયિનેવાત્મનો ગુણભૂતેન વિશેષગુણેન જ્ઞાનેન ભેદોઽથવા ચાભેદ ઇવાત્ર શિષ્યપ્રશ્ને સુધર્માસ્વામી પ્રાહ-‘જે આયા’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્-જે આયા સે વિન્નાયા, જે વિણ્ણાયા સે આયા જેળ વિયાળહ સે આયા, તં પડુચ્ચ પડિસંઘાણ, ઇસ આયાવાઈ સમિયાણ પરિયાણ વિયાહિયે ત્તિવેમિ ॥ સૂ. ૬ ॥

તકકા વિચાર મુનિજન યા સામાન્ય જનકે લિયે નિષિદ્ધ હૈ તો કાય ઔર વચનસે તો ઇસ પ્રકારકી પરિણતિકા નિષેધ સ્વતઃ હી હો જાતા હૈ । મુનિજનકે લિયે સર્વથા મન, વચન ઔર કાયસે પરજીવોંકી હિંસા આદિકા સર્વથા ત્યાગ કરના ચાહિયે યહી ઇસકા ભાવાર્થ હૈ ॥ સૂ. ૭૫ ॥

“આત્માકો દૂસરે જીવોંકી હિંસા આદિ નહીં કરના ચાહિયે; ક્યોં કિ હિંસાજન્ય પાપકર્મકા ફલ ઉસે ભોગના પડતા હૈ એસા નિશ્ચય કર વહ સર્વથા હિંસા આદિકા ત્યાગ કરે ” એસા જો આપને કહા હૈ સો ઇસ પ્રકારકા નિશ્ચય આત્મા જ્ઞાનસે હી કરતા હૈ । તબ હમ પૂછતે હૈં કિ જિસ પ્રકાર કળાદ ઔર ગૌતમકે અનુયાયિયોંને આત્માસે જ્ઞાનગુણકો સર્વથા ભિન્ન માના હૈ, ઉસી પ્રકાર કયા આત્માસે જ્ઞાન ગુણકા સર્વથા ભેદ યા અભેદ આપ ભી માનતે હૈં? ઇસ પ્રકાર જમ્બૂસ્વામીકે પ્રશ્નકા ઉત્તર દેતે હુણ શ્રીસુધર્માસ્વામી મહારાજ કહતે હૈં—“જે આયા” ઇત્યાદિ—

ચિંતન કરવું મુનિજન અને સામાન્ય જનને માટે નિષિદ્ધ છે, તો કાયા અને વચનથી તો આ પ્રકારની પરિણતિનો નિષેધ સ્વતઃ જ બની જાય છે. મુનિજનને માટે સદા મન વચન અને કાયાથી પરબ્રહ્મોની હિંસા આદિનો સર્વથા ત્યાગ છે—એ આનો ભાવાર્થ છે ॥ સૂ. ૫ ॥

“આત્માએ બીજા બ્રહ્મોની હિંસા આદિ ન કરવું જોઈએ; કેમ કે હિંસા-જન્ય પાપકર્મનું ફળ એણે ભોગવવું પડે છે, એવો નિશ્ચય કરી તે હિંસા આદિનો ત્યાગ કરે.” એવું આપે કહ્યું છે. પણ આ પ્રકારનો નિશ્ચય તે આત્મા જ્ઞાનથી જ કરે છે, ત્યારે અમે આપને આ પૂછીએ છીએ કે જે પ્રકારે કણ્ણદ અને ગૌતમના અનુયાયીઓએ આત્માથી જ્ઞાન ગુણને સર્વથા ભિન્ન માનેલ છે, એ પ્રકારે આપ પણ શું આત્માથી જ્ઞાન ગુણને સર્વથા ભેદ યા અભેદ માનેલ છો? આ પ્રકારના જમ્બૂસ્વામીના પ્રશ્નનો ઉત્તર દેતાં શ્રી સુધર્માસ્વામી મહારાજ કહે છે—“જે આયા.” ઇત્યાદિ.

છાયા—ય આત્મા સ વિજ્ઞાતા, યો વિજ્ઞાતા સ આત્મા, યેન વિજ્ઞાનાતિ સ આત્મા, તં પ્રતીત્ય પ્રતિસંખ્યાયતે, એષ આત્મવાદી સમ્યક્પર્યાયો વ્યાહત્ત્વમિતિ બ્રવીમિ ॥ સૂ. ૬ ॥

ટીકા—‘ય આત્મે’ત્યાદિ—ય આત્મા=નિત્ય ઉપયોગલક્ષણો જીવઃ સ વિજ્ઞાતા=વિજ્ઞાનકર્તાઽપિ સ એવ પ્રખ્યાતઃ, ન પુનરાત્મનઃ પદાર્થસાર્થબોધકં જ્ઞાનં પૃથક્; યો વિજ્ઞાતા=પદાર્થપરિચ્છેદક ઉપયોગઃ સ એવ આત્મા=જીવ ઉપયોગલક્ષણઃ, ઉપયોગસ્ય ચ જ્ઞાનસ્વરૂપત્વેન જ્ઞાનાત્મનોરભેદસિદ્ધિરિત્યર્થઃ ।

નિત્ય ઔર ઉપયોગલક્ષણવાલા જીવ હી આત્મા હૈ ઔર વહી વિજ્ઞાન ક્રિયાકા કર્તા હૈ । હસ આત્માસે પદાર્થોકા બોધક જ્ઞાનગુણ સર્વથા ભિન્ન નહીં હૈ । હસી પ્રકાર જો પદાર્થપરિચ્છેદક ઉપયોગ હૈ વહી આત્મા હૈ, ક્યોં કિ આત્મા સ્વયં ઉપયોગલક્ષણવાલા હૈ । યહ ઉપયોગ હી-જ્ઞાનસ્વરૂપ હૈ । હસલિયે જ્ઞાન ઔર આત્મામેં અભેદ હૈ ।

ભાવાર્થ—શિષ્યને જો યહ પ્રશ્ન કિયા થા કિ આત્માસે જ્ઞાનગુણ સર્વથા ભિન્ન હૈ ક્યા ? હસકા ઉત્તર સૂત્રકારને યહાં દિયા હૈ, વે કહતે હૈં કિ આત્મા ઔર જ્ઞાનગુણમેં પરસ્પરમેં સર્વથા ભેદ નહીં હૈ, ક્યોં કિ આત્મા કા લક્ષણ ઉપયોગ હૈ, ઔર યહ ઉપયોગ ત્રિકાલમેં ભી આત્માસે સર્વથા ભિન્ન નહીં હોતા હૈ, હસી પ્રકાર ઉપયોગ સ્વરૂપસે પરિણત હી આત્મા હૈ । ઉપયોગ દો પ્રકારકા હૈ—૧ જ્ઞાનોપયોગ, ઔર દૂસરા દર્શનોપયોગ । દર્શનોપયોગમેં પદાર્થકા સામાન્ય પ્રતિભાસ હોતા હૈ, જ્ઞાનોપયોગમેં પદાર્થ

નિત્ય અને ઉપયોગલક્ષણવાળા જીવ જ આત્મા છે અને એ જ વિજ્ઞાન ક્રિયાના કર્તા છે. આ આત્માથી પદાર્થોનું બોધક જ્ઞાનગુણ સર્વથા ભિન્ન નથી, આમ જ પદાર્થ-પરિચ્છેદક ઉપયોગ છે એ જ આત્મા છે; કેમકે આત્મા સ્વયં ઉપયોગલક્ષણવાળો છે. આ ઉપયોગ જ જ્ઞાનસ્વરૂપ છે. આ માટે જ્ઞાન અને આત્મામાં અભેદ છે.

ભાવાર્થ—શિષ્યે જે એવો પ્રશ્ન કર્યો હતો કે આત્માથી જ્ઞાનગુણ સર્વથા ભિન્ન છે ? એનો ઉત્તર સૂત્રકારે અહિં આપેલ છે, એ કહે છે કે આત્મા અને જ્ઞાનગુણમાં પરસ્પરમાં સર્વથા ભેદ નથી; કેમ કે આત્માનું લક્ષણ ઉપયોગ છે, અને એ ઉપયોગ ત્રણ કાળમાં પણ આત્માથી સર્વથા ભિન્ન થઈ શકતો નથી. આ રીતે ઉપયોગસ્વરૂપથી પરિણત જ આત્મા છે. ઉપયોગ બે પ્રકારનો છે, (૧) જ્ઞાનોપયોગ, (૨) દર્શનોપયોગ. દર્શનોપયોગમાં પદાર્થનો સામાન્ય પ્રતિભાસ થાય

નન્વત્રાભેદપ્રતિપાદનેન સૌગતમતપ્રવેશસ્તે હિ-જ્ઞાનાત્મનો રૈક્યં પ્રતિપાદયન્તીતિ  
ચેન્ન, અભેદો હિ-યથા-‘નીલો ઘટ’ ઇત્યાદી નીલઘટયોરેકત્ર સ્થિતા-  
વપિ ન તયોરૈક્યમપિ તુ નીલઘટયોરભેદ એવ। અન્યથા-નીલગુણનાશે ઘટનાશ-  
પ્રસન્નસ્ય દુર્વાસ્ત્વં સમાપચેત। તથૈવ પ્રકૃતે જ્ઞાનાત્મનોરભેદેન તદ્દર્મયોરેકત્ર સ્થિતા-  
વપિ તયોર્જ્ઞાનાત્મનોર્નૈક્યમપિ ત્વભેદ એવેત્યદોષાત્।

કા ભિન્ન ૨ રૂપસે વિશેષ બોધ હોતા હૈ। એસા કોઈ સા ખી ક્ષણ નહીં હૈ  
જબ આત્મા અપને ઇસ સ્વભાવસે રહિત હો તથા યહ સ્વભાવ આત્માકો  
છોડ કર નિરાધાર કહીં પ્રતીત હોતા હો। આત્મા હી તત્તદુપ-  
યોગસ્વરૂપ પરિણમિત હોતા રહતા હૈ। ઇસસે યહ બાત પ્રતીતિકોટિમેં  
સ્થિર હોતી હૈ કિ આત્માસે જ્ઞાનગુણ ઓર જ્ઞાનગુણસે આત્મા સ્વતન્ત્ર-  
ભિન્ન નહીં હૈ।

શંકા—જ્ઞાન ઓર આત્માકા અભેદ માનનેપર અપસિદ્ધાન્ત નામક  
નિગ્રહસ્થાન આતા હૈ; ક્યોં કિ યહ માન્યતા જૈન સિદ્ધાન્તકી માન્યતા પુષ્ટ  
ન કર ડલ્ટી સૌગત (બૌદ્ધ) માન્યતાકા હી સમર્થન કરતી હૈ। યહ જ્ઞાન  
ઓર આત્માકા અભેદ બાદ બૌદ્ધોંકા હૈ ન કિ જૈનિયોંકા।

ઉત્તર—જિસ પ્રકાર “નીલો ઘટ:” “નીલા ઘટ” ઇસ વાક્યમેં  
નીલ ઓર ઘટ ઇન દોનોંકી એકત્ર સ્થિતિ હોનેપર ખી ઇનદોનોં મેં  
એકતા નહીં માની જાતો હૈ, કિન્તુ અભેદ હી માના જાતા હૈ। અન્યથા  
દોનોંમેં એકતા માનને પર નીલગુણકે નાશ હોને પર ઘટકે નાશકા ખી

છે. જ્ઞાનોપયોગમાં પદાર્થના ભિન્ન ભિન્ન રૂપથી વિશેષ બોધ થાય છે. એવી  
કોઈ પણ ક્ષણ નથી હોતી કે આત્મા પોતાના આ સ્વભાવથી રહિત બને. આ  
સ્વભાવ આત્માને છોડી શકતો નથી, આત્માથી જ્ઞાનગુણ અને જ્ઞાનગુણથી આત્મા  
સ્વતંત્ર-બુદ્ધા નથી.

શંકા—જ્ઞાન અને આત્માનો અભેદ માનવાથી અપસિદ્ધાન્ત નામક નિગ્રહ-  
સ્થાન આવે છે; કેમ કે આ માન્યતા જૈન સિદ્ધાન્તની માન્યતાથી વિરુદ્ધ બૌદ્ધ  
માન્યતાનું સમર્થન કરે છે. જ્ઞાન અને આત્માનો અભેદવાદ બૌદ્ધોનો છે,  
જૈનોનો નથી.

ઉત્તર—જે પ્રકારે “નીલો ઘટ:” નીલો ઘટો-આ વાક્યમાં નીલ અને  
ઘટ આ બંનેની એકત્ર સ્થિતિ હોવા છતાં પણ આ બંનેમાં એકતા મનાતી  
નથી; પણ અભેદ જ માનવામાં આવે છે. અન્યથા-બંનેમાં એકતા માનવાથી



પ્રસંગ હોગા उसी प्रकार प्रकृतमें ज्ञान और आत्मामें भी एकता नहीं है किन्तु अभेद ही है, इस प्रकार पूर्वोक्त दोष नहीं आता है।

भावार्थ—शङ्काकारने जो ज्ञान और आत्माके अभेदमें बौद्धवादका समर्थन करना प्रकट किया है उसका यहां पर प्रत्युत्तर दिया गया है—एकतामें और अभेदमें अन्तर है। बौद्ध सिद्धान्त आत्मामें अभेद नहीं मानता है किन्तु वह दोनोंमें एकता मानता है। इससे ज्ञानकी अथवा आत्माकी स्वतन्त्र सत्ता सिद्ध नहीं होती है, किन्तु दोनोंमें एकता ही सिद्ध होती है। इस एकतामें या तो आत्माहीका अस्तित्व सिद्ध होता है या ज्ञानका। दोनोंका नहीं। अभेद पक्षमें ऐसा नहीं है। वहां पर “नीलो घटः” की तरह अभेद होने पर भी दोनोंकी सत्ताका विलोप नहीं होता है। गुण और गुणी में एकता मानने पर गुण गुणीका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं बनता है। गुण गुणीरूप और गुणी गुणरूपमें परिवर्तित हो जाते हैं। परन्तु अभेद पक्षमें यह बात नहीं आती, दोनोंकी स्वतन्त्र स्वरूपसे सत्ता रहती है—इस पक्षमें इतना होता है कि गुण गुणीको छोड़कर और गुणी गुणको छोड़ कर परस्पर निरपेक्षरूपमें नहीं रहते हैं; किन्तु परस्पर सापेक्षरूपमें ही इनकी वृत्ति बनी रहती है। नील और घट

નીલગુણનો નાશ થવાથી ઘટના નાશનો પણ પ્રસંગ બને. આ જ રીતે પ્રકૃતમાં જ્ઞાન અને આત્મામાં પણ એકતા નથી છતાં અભેદ છે, આ પ્રકારે પૂર્વોક્ત દોષ આવતો નથી.

ભાવાર્થ—શંકાકારે જે જ્ઞાન અને આત્માના અભેદમાં બૌદ્ધવાદનું સમર્થન પ્રગટ કરેલ છે તેનો આ સ્થળે પ્રત્યુત્તર અપાયેલ છે. એકતામાં અને અભેદમાં અંતર છે. બૌદ્ધ સિદ્ધાંત જ્ઞાન અને આત્મામાં અભેદ નથી માનતો, પરંતુ તે બંનેમાં એકતા માને છે. એનાથી જ્ઞાનની અને આત્માની સ્વતંત્ર સત્તા સિદ્ધ થતી નથી. પરંતુ બંનેમાં એકતા જ સિદ્ધ થાય છે. આ એકતામાં યા તો આત્માનું અસ્તિત્વ સિદ્ધ થાય છે યા તો જ્ઞાનનું. બંનેનું નહિ. અભેદ પક્ષમાં એવું નથી, ત્યાં “નીલો ઘટઃ”ની માફક અભેદ હોવા છતાં પણ બંનેની સત્તાનો વિલોપ થતો નથી, ગુણ અને ગુણીમાં એકતા માનવાથી ગુણ ગુણીનું સ્વતંત્ર અસ્તિત્વ બનતું નથી. ગુણ ગુણીરૂપ અને ગુણી ગુણરૂપમાં પરિવર્તિત બને છે, પરંતુ અભેદ પક્ષમાં આ વાત આવતી નથી, બંનેની સ્વતંત્ર સ્વરૂપથી સત્તા રહે છે. આ પક્ષમાં એટલું હોય છે કે ગુણ ગુણીને છોડીને અને ગુણી ગુણને છોડીને પરસ્પર નિરપેક્ષ રૂપમાં રહેતા નથી, પરંતુ પરસ્પર-સાપેક્ષ-

ન ચ નીલનાશો ઘટોઽપિ નીલાત્મના નષ્ટ એવેતિ દૃષ્ટાન્તાસિદ્ધિરિતિ વાચ્યમ્ ;  
 इन दोनोंमें परस्परमें एकता नहीं है किन्तु अभेद सम्बन्ध ही है। ऐसा  
 नहीं है कि नीलस्वरूप घट और घट स्वरूप नील है। किन्तु घटको छोड़-  
 कर नीलकी और नीलको छोड़कर घटकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। यदि  
 इन दोनोंकी एकता मानी जावे तो नीलके नाश होने पर घटका नाश  
 होना चाहिये। परन्तु ऐसा नहीं होता है।

શકા—નીલકે નાશ હોને પર નીલાત્મના ઘટકા મી તો નાશ હો  
 जाता है—इसलिये दृष्टान्तकी असिद्धि है।

ભાવાર્થ—યહ જો અમી કહા ગયા હૈ કિ નીલ ઔર ઘટકી એકતા  
 માને પર નીલસ્વરૂપ કે નષ્ટ હોને પર ઘટકા મી નાશ હોના ચાહિયે,  
 પરન્તુ એસા નહીં હોતા—અતઃ દોનોંમેં એકતા ન માન કર અભેદ હી  
 માનના ચાહિયે, ઇસ પર પ્રતિવાદીકા યહ આક્ષેપ હૈ કિ નીલકે નાશ  
 હોને પર નીલસ્વરૂપસે ઘટકા મી નાશ હો જાતા હૈ ઇસલિયે યહ દૃષ્ટાન્ત  
 સિદ્ધ નહીં હૈ; કિન્તુ અસિદ્ધ હી હૈ। દૃષ્ટાન્ત વાદી ઔર પ્રતિવાદી દોનોં  
 કો સિદ્ધ હુઆ કરતા હૈ; ઇસીલિયે દૃષ્ટાન્તકે બલસે વાદી અપને  
 સાધ્યકી સિદ્ધિ કરતા હૈ। અસિદ્ધ દૃષ્ટાન્તસે નહીં।

રૂપમાં એમની પ્રવૃત્તિ બની રહે છે, નીલ અને ઘટ આ બંનેમાં પરસ્પરમાં  
 એકતા નથી, પરંતુ અભેદ સંબંધ જ છે. એવું નથી કે નીલ સ્વરૂપ ઘટ અને  
 ઘટ સ્વરૂપ નીલ છે, પરંતુ ઘટને છોડીને નીલની અને નીલને છોડીને ઘટની  
 સ્વતંત્ર સત્તા નથી. જો આ બંનેની એકતા માનવામાં આવે તો નીલના નાશથી  
 ઘટનો પણ નાશ થવો જોઈએ, પરંતુ એવું બનતું નથી.

શકા—નીલનો નાશ થવાથી નીલાત્મના ઘટનો પણ નાશ થઈ જાય છે.  
 આ માટે દૃષ્ટાન્તની અસિદ્ધિ છે.

ભાવાર્થ—અહિં જે કહેવાયું છે કે નીલ અને ઘટની એકતા માનવાથી  
 નીલ સ્વરૂપનો નાશ થવાથી ઘટનો પણ નાશ થવો જોઈએ. પરંતુ એવું બનતું  
 નથી. માટે બંનેમાં એકતા ન માનીને અભેદ જ માનવા જોઈએ. આ ઉપર  
 પ્રતિવાદીનો એ આક્ષેપ છે કે નીલનો નાશ થવાથી નીલ સ્વરૂપથી ઘટનો પણ  
 નાશ થાય છે, આ કારણે આ દૃષ્ટાન્ત સિદ્ધ નથી; પરંતુ અસિદ્ધ જ છે. સિદ્ધ દૃષ્ટા-  
 ન્તજ વાદી અને પ્રતિવાદી બંનેને માન્ય હોય છે; માટે જ દૃષ્ટાંતના બળથી વાદી  
 પોતાના સાધ્યની સિદ્ધિ કરે છે. અસિદ્ધ દૃષ્ટાંતથી નહીં.

અનેકાન્તવાદિનામસ્માકં મતેન પદાર્થસ્યાનન્તધર્માત્મકતયૈકધર્મવિનાશોઽપ્યન્યધર્મ-  
સત્ત્વાનૃષ્ટ ઇતિ વ્યવહારાસમ્ભવેન દૃષ્ટાન્તસ્ય સિદ્ધેઃ । તથૈવ દાષ્ટાન્તિકેઽપિ  
જ્ઞાનવિશેષસ્ય નાશોઽપિ નાત્મનો નાશસ્તસ્યાપરામૂર્તત્વાસંખ્યેયપ્રાદેશિકત્વાઽગુરુલ-  
ઘુત્વાદિધર્માણાં સત્ત્વેન નૃષ્ટ આત્મેતિ વ્યવહારાસમ્ભવાત્કુત્રાપ્યનુપપત્તિર્નાસ્તિ  
કિમધિકેનેત્યલમ્ ।

ઉત્તર—એસા નહીં કહના चाहिये । क्यों कि दृष्टान्त सिद्ध ही है  
असिद्ध नहीं है । हम अनेकान्तवादी जैन स्याद्वाद सिद्धान्तानुसार प्रत्येक  
पदार्थको अनन्त धर्मात्मक मानते हैं । इसलिये किसी एक विवक्षित धर्म  
का विनाश होने पर भी उसमें अन्य धर्मोंका सद्भाव होनेसे विवक्षित  
रूपके नष्ट होने पर भी वह सर्वथा नष्ट हो गया ऐसी मान्यता घटित  
नहीं हो सकती है । अतः दृष्टान्त सिद्ध ही है असिद्ध नहीं । इसी प्रकार  
दाष्टान्तिक (आत्मा और ज्ञान)में भी ज्ञान विशेष (विवक्षित घट आदि  
ज्ञान)के नाश-परिवर्तन होनेपर भी आत्मा का नाश नहीं होता है; क्यों  
कि आत्मामें अन्य अमूर्तत्व, असंख्यात प्रदेशित्व और अगुरुलघुत्व आदि  
अनेक धर्मोंका अस्तित्व रहता है । इसलिये विवक्षित धर्मके अभावमें  
आत्मा नष्ट हो गई ऐसा व्यवहार वहां संभवित नहीं हो सकता । अतः  
इस कथनमें कोई भी विरोध नहीं है । अधिक क्या कहा जाय ।

ઉત્તર—એવું ન કહેવું જોઈએ; કેમ કે દૃષ્ટાન્ત સિદ્ધ જ છે અસિદ્ધ નથી.  
અમે અનેકાન્તવાદી જૈનો સ્યાદ્વાદ-સિદ્ધાન્ત અનુસાર પ્રત્યેક પદાર્થને અનન્ત ધર્મા-  
ત્મક માનીએ છીએ. આ કારણે કોઈ એક વિવક્ષિત ધર્મનો વિનાશ થવા છતાં  
પણ એનામાં અન્ય ધર્મોનો સદ્ભાવ હોવાથી વિવક્ષિત રૂપથી નષ્ટ થવા છતાં  
પણ એનો સર્વથા નાશ થઈ ગયો એ માન્યતા ખરોખર નથી. આથી દૃષ્ટાન્ત  
સિદ્ધ જ છે અસિદ્ધ નથી. આ રીતે દાષ્ટાન્તિક-આત્મા અને જ્ઞાન-માં પણ જ્ઞાન વિશેષ  
ઘટ આદિ જ્ઞાન-માં નાશ-પરિવર્તન થવા છતાં પણ આત્માનો નાશ થતો નથી, કેમ  
કે આત્મામાં બીજા અમૂર્તત્વ, અસંખ્યાત પ્રદેશિત્વ અને અગુરુલઘુત્વ આદિ અनेक  
ધર્મોનું અસ્તિત્વ રહે છે. આથી વિવક્ષિત ધર્મના અભાવથી આત્માનો નાશ થઈ  
ગયો એ કહેવું સંભવિત નથી, એટલે આ કથનમાં કોઈ પણ વિરોધ નથી.  
વધુ શું કહ્યું બાથ.



જ્ઞાનાત્મનૌરભેદમુપપાદ્ય કરણભૂતેન જ્ઞાનેનાભેદપ્રતિપાદનાયાહ-‘યેને’ત્યાદિ, યેન=મત્યાદિના જ્ઞાનેન કરણભૂતેન ક્રિયારૂપેણ વા પદાર્થ વિજાનાતિ=વિ=વિશેષેણ સામાન્યવિશેષાદિરૂપેણેત્યર્થઃ, જાનાતિ=જ્ઞાનવિષયીકરોતિ સઃ=કારણભૂતઃ ક્રિયાભૂતો વા આત્મા, આત્મનઃ પરિણામિત્વાત્, અત એવ ‘સ્વ આત્માનમાત્મના જાનાતીત્યાદાવેકસ્યાપિ કથચ્છિદ્ભેદમાદાય તથા પ્રતીતિઃ કર્તૃ-કર્મ-કરણ-ક્રિયાદીનામૈક્યાદુપપદ્યતે ।

જ્ઞાન ઔર :આત્માકા અભેદ કહ કર કરણભૂત જ્ઞાનકે સાથ મી આત્માકા અભેદ હૈ-ઇસ વાતકો પ્રતિપાદન કરનેકે નિમિત્ત સૂત્રચ્ચાર કહતે હૈ-“યેન વિજાનાતિ સ આત્મા ” કિ જિસ મતિ આદિ કરણભૂત અથવા ક્રિયારૂપ જ્ઞાનસે આત્મા પદાર્થોંકો સામાન્ય ઔર વિશેષ આદિ રૂપસે જાનતા હૈ ઉસ કરણરૂપ યા ક્રિયારૂપમૈં વહ આત્મા હી પરિણત હુઆ હૈ । કયોં કિ આત્માકા સ્વભાવ પરિણમનશીલ હૈ, કૂટસ્થ નિત્ય નહીં । અતઃ આત્મા હી ઉસ કરણજ્ઞાન અથવા જાનનેરૂપ ક્રિયાસે પરિણત હુઆ હૈ । “સ્વ આત્માનમ્ આત્મના જાનાતિ ”-આત્મા આત્માકો આત્માસે જાનતા હૈ-ઇસ વાક્યપ્રયોગમૈં એક આત્મા હી કથંચિત્ ભેદદૃષ્ટિકી અપેક્ષાસે કર્તા, કર્મ, ક્રિયા ઔર કરણરૂપસે પરિણત હોતા હૈ, આત્મા કર્તા, આત્માનં કર્મ, આત્મના કરણ ઔર જાનાતિ યહ ક્રિયા હૈ । યહાં આત્મા હી એક પદાર્થ કથંચિત્ ભેદકી અપેક્ષાસે નાનાકારક રૂપમૈં પરિણત હોતા હુઆ પ્રકટ કિયા ગયા હૈ । એસા હોને પર મી આત્મારૂપ પદાર્થમૈં અનેકતા-પરસ્પરમૈં કર્તા કર્મ આદિમૈં ભિન્નતા સિદ્ધ નહીં હોતી હૈ ।

જ્ઞાન અને આત્માનો અભેદ કહી કરણભૂત જ્ઞાનની સાથે આત્માનો અભેદ છે આ વાતને પ્રતિપાદન કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે “યેન વિજાનાતિ સ આત્મા ” જે મતિ આદિ કરણભૂત અથવા ક્રિયારૂપ જ્ઞાનથી આત્મા પદાર્થોને સામાન્ય અને વિશેષ આદિ રૂપથી જાણે છે તે કરણરૂપ અથવા ક્રિયારૂપમાં તે આત્માજ પરિણત થયેલ છે. કેમકે આત્માનો સ્વભાવ પરિણમનશીલ છે, કૂટસ્થ નિત્ય નથી. માટે આત્મા એ જ કરણ જ્ઞાન અને જાણવારૂપ ક્રિયાથી પરિણત થયેલ છે. “સ્વ આત્માનમ્ આત્મના જાનાતિ ” આત્મા આત્માને આત્માથી જાણે છે, આ વાક્યપ્રયોગમાં એક આત્મા જ કહેલા ભેદદૃષ્ટિની અપેક્ષાથી કર્તા, કર્મ, ક્રિયા અને કરણરૂપથી પરિણત બને છે. આત્મા કર્તા, આત્માનમ્ કર્મ, આત્મના કરણ અને જાનાતિ આ ક્રિયા છે. અહિં આત્મા જ એક પદાર્થ કહેવાયેલા ભેદની અપેક્ષાથી નાના

નનુ મુનિસ્તપસા કર્મ ધુનોતીત્યાદૌ કર્તૃ-કર્મ-કરણ-ક્રિયાણાં ભેદસ્યાઽપા-  
મરસાધારણતયા કથમૈવ્યાભિધાનમિતિ चेन्न—आत्मनस्तु परिणामित्वेन कर्म-  
करण-क्रियारूपेणापि परिणामादेकत्वस्य सौलभ्यात्, कर्तृ-कर्म-करण-क्रियाणा-

“મુનિસ્તપસા કર્મ ધુનોતિ ” ઇસ વાક્યમેં કર્તા, કર્મ, કરણ  
और क्रियामें परस्पर भिन्नता साधारण से साधारण प्राणी तकको भी  
प्रतीत होती है? फिर आप कर्ता, कर्म आदि कारकों में परस्परमें अभि-  
न्नता कैसे कहते हैं, सो ऐसा नहीं कहना चाहिये, क्यों कि हमारा तो  
सिर्फ इतना ही कहना है कि परिणामी होनेसे एक ही आत्म पदार्थ  
कर्ता, कर्म, करण और क्रियारूपमें परिणत होता देखा जाता  
है, हम यह तो कहते नहीं हैं कि अभेदमें ही कर्ता-करणादि रूपकी  
प्रतीति होती है ! यह प्रतीति तो अभेदमें भी होती है और भेदमें भी  
होती है । “ आत्मा ज्ञानसे आत्माको जानता है “ यहां पर अभेद है  
इसमें भी कर्तादि रूपकी प्रतीति होती है । “ मुनि तपसे कर्मको नष्ट  
करता है ” यहां पर भेदमें कर्ता कर्म आदिकी प्रतीति होती है, और  
करणरूप ज्ञानसे आत्माका अभेद संबंध है ऐसा मानना चाहिये ।  
कर्ता, कर्म, करण और क्रियाओंकी प्रतीति अभेदमें भी कथंचित् भेद  
विवक्षाके वशसे बन जाती है । इस व्यवहारमें कोई विरोध नहीं है

પ્રકારના રૂપમાં પરિણુત થતો બતાવવામાં આવેલ છે. આવું હોવા છતાં પણ  
આત્મારૂપ પદાર્થમાં અનેકતા-પરસ્પરમાં કર્તા કર્મ આદિમાં ભિન્નતા-સિદ્ધ થતી નથી.

“ મુનિસ્તપસા કર્મ ધુનોતિ ” આ વાક્યમાં કર્તા, કર્મ, કરણ અને ક્રિયામાં  
પરસ્પર ભિન્નતા સાધારણમાં સાધારણ પ્રાણીને પણ પ્રતીત થાય છે. તો આ  
કર્તા કર્મ આદિમાં પરસ્પર અભિન્નતા કેમ કહો છો, તેમ કહેવું ન ભેદ એ.  
કેમ કે અમારું તો ફક્ત એટલું જ કહેવું છે કે પરિણામી હોવાથી એકજ આત્મા  
પદાર્થ કર્તા, કર્મ, કરણ અને ક્રિયારૂપથી પરિણુત થતો બેવામાં આવે છે.  
અમે તો એમ કહેતા નથી કે અલેક્ષમાં જ કર્તા કરણાદિરૂપની પ્રતીતિ થાય  
છે. આ પ્રતીતિ અલેક્ષમાં પણ થાય છે અને લેક્ષમાં પણ થાય છે. આત્મા જ્ઞાનથી  
આત્માને જાણે છે ” આ સ્થળે અલેક્ષ છે, એમાં પણ કર્તા આદિ રૂપની પ્રતીતિ થાય  
છે. “ મુનિ તપથી કર્મને નષ્ટ કરે છે ” અહિં લેક્ષમાં કર્તા કર્મ આદિની પ્રતીતિ  
થાય છે, અને કરણરૂપ જ્ઞાનથી આત્માનો અલેક્ષ સંબંધ છે એવું માનવું  
ભેદ એ. કર્તા, કર્મ, કરણ અને ક્રિયાઓની પ્રતીતિ અલેક્ષમાં પણ કોઈ રીતે  
લેક્ષ વિવક્ષાના વશથી બની રહે છે. આ વ્યવહારમાં કોઈ વિરોધ નથી, અને એથી

મૈક્યેઽપિ કથં ચિદ્ભેદમાદાય તથા વ્યવહારઃ । ઉક્તઞ્ચ—

“ભૂતિર્યેષાં ક્રિયા સૈવ, કારકં સૈવ ચોચ્યતે ।” ઇતિ ।

પ્રકૃતે જ્ઞાનાત્મનોરેકત્વે કિમાયાતમિત્યાહ—‘તમિત્યાદિ’—તં જ્ઞાનસ્વરૂપ-  
और इसलिये इस प्रकारका व्यवहार होता है । कहा भी है ।

“ભૂતિર્યેષાં ક્રિયા સૈવ કારકં સૈવ ચોચ્યતે ।” ઇતિ ।

શઙ્કા—પ્રકૃતમેં જ્ઞાન ઓર આત્માકા અભેદ સંબંધ માનને સે આપ  
क्या सिद्ध करना चाहते हैं ?

ઉત્તર—તમિત્યાદિ—જ્ઞાન સ્વરૂપ આત્માકી પ્રતીતિસે ઉસી સ્વરૂપસે  
आत्माका कथन किया जाता है ।

ભાવાર્થ—જ્ઞાન ઓર આત્માકા અભેદ માનને પર યહ લાભ હોતા  
है कि आत्मा ज्ञानस्वरूप सिद्ध होता है । अन्यथा आत्मामें जडत्वका प्रसंग होगा; क्यों कि भेद संबंधमें आत्मा अज्ञस्वभाव ठहरता है । समवायादि संबंध से आत्मामें ज्ञानका संबंध मान लेने पर भी उसमें ज्ञत्व धर्म नहीं आ सकता; कारण कि समवाय एक और नित्य होने से ज्ञानका संबंध आत्मासे ही करायेगा, अन्य आकाशादिकके साथ नहीं; इसमें कोई नियामक तर्क नहीं है । अतः अभेद पक्षमें आत्मामें तत्स्वरूपताकी सिद्धि होती है यह एक बड़ा भारी लाभ है । दूसरे—જ્ઞાન ઓર

આ પ્રકારનો વ્યવહાર હોય છે. કહ્યું પણ છે—“ભૂતિર્યેષાં ક્રિયા સૈવ કારકં  
સૈવ ચોચ્યતે ” ઇત્યાદિ.

શંકા—વાસ્તવમાં જ્ઞાન અને આત્માનો અભેદ સંબંધ માનવાથી આપ શું  
સિદ્ધ કરવા માગો છો ?

ઉત્તર—તમિત્યાદિ—જ્ઞાનસ્વરૂપ આત્માની પ્રતીતિથી એ જ સ્વરૂપમાં  
આત્માનું કથન કહેવામાં આવે છે.

ભાવાર્થ—જ્ઞાન અને આત્માનો અભેદ માનવાથી આ લાભ થાય છે કે  
આત્મા જ્ઞાનસ્વરૂપ સિદ્ધ થાય છે, એ સિવાય આત્મામાં જડત્વનો પ્રસંગ બને,  
કેમ કે ભેદ સંબંધમાં આત્મા અજ્ઞસ્વભાવ ઠરે છે, સમવાયાદિ સંબંધથી આત્મામાં  
જ્ઞાનનો સંબંધ માની લેવાથી પણ એમાં જ્ઞત્વ ધર્મ આવી શકતો નથી, કારણ  
કે સમવાય એક અને નિત્ય હોવાથી જ્ઞાનનો સંબંધ આત્માથી જ કરાશે. અન્ય  
આકાશાદિકની સાથે નહીં. આમાં કોઈ નિયામક તર્ક નથી. આથી અભેદ પક્ષમાં  
આત્મામાં તત્સ્વરૂપતાની સિદ્ધિ થાય છે, આ એક ઘણો મોટો લાભ છે. બીજું



માત્માને પ્રતીત્ય=અવલમ્બ્ય પ્રતિસંખ્યાયતે=તે નૈવાત્મના કથ્યતે। જ્ઞાનાત્મનોરેકત્વ-સ્વીકર્તા કે ગુણમાસાદયતીત્યાહ 'એષ' इत्यादि-एषः=आत्मवादी ज्ञानात्मैकत्व-वादी 'सम्यक्पर्यायः' समीचा=सम्यग्भावेन पर्यायः संयमाचरणं यस्येति स सम्यक्पर्यायः-सम्यगनगाराचारचारी,

यद्वा—'शमितापर्याय' इतिच्छाया। शमितापर्यायः=शमोऽस्यास्तीति शमी तस्य भावः शमिता तथा पर्यायो यस्य स शमितापर्यायः=उपशान्तकषायः व्याख्यातः=तीर्थकृद्भिः कथितः ॥ सू० ६ ॥ इति ब्रवीमि 'इत्यस्यार्थस्तूक्त एव।

॥ पञ्चमाध्ययनस्य पञ्चम उद्देशः समाप्तः ॥ ५-५ ॥

આત્માકા અભેદ સંબંધ માનનેવાલા આત્મવાદી સમ્યગ્ભાવસે સંયમ-મુનિયોંકે આચારકા આચરણ કરનેવાલા હોતા હૈ। इस कथनमें सांख्य-मतका खण्डन किया है। सांख्यसिद्धान्तमें ज्ञान प्रकृतिका धर्म माना गया है, आत्माको कमलपत्रकी तरह निर्लेप बतलाया है; अतः मुनियों के सम्यक् आचारके आचरण करनेका बोध प्रकृतिको ही होगा, आत्माको नहीं। फिर आत्माको इस प्रकार के कष्टोंमें पड़नेसे लाभ ही क्या है ? प्रकृतिके संबंध विच्छेद होते ही ज्ञानके अभावमें आत्मा अज्ञ बन जाने से जड़स्वरूप हो जायगा। परन्तु ऐसा तो है नहीं; क्यों कि स्वानुभवसे आत्मा स्वरूपसे चेतन है और इसीलिये वह अपनी मलिन परिणतिको छोड़नेके लिये मुनियोंके निर्मल आचारका पालनके लिये प्रयत्नशील होता है। अथवा "समियाए परियाए" की संस्कृत छाया "शमितापर्यायः" भी होती है, तब इस प्रकारसे अर्थकी संगति होती है कि ज्ञान और

જ્ઞાન અને આત્માનો અલેદ સંબંધ માનવાવાળા આત્મવાદી સમ્યગ્ભાવથી સંયમ-મુનિયોના આચારનું આચરણ કરવાવાળા અને છે, આ વાતમાં સાંખ્ય-મતનું ખંડન કરેલ છે. સાંખ્ય-સિદ્ધાંતમાં જ્ઞાન પ્રકૃતિનો ધર્મ માનેલ છે. આત્માને તો કમલપત્રની માફક નિર્લેપ બતાવેલ છે. આથી મુનિયોના સમ્યક્ આચારનું આચરણ કરવાનો બોધ પ્રકૃતિને જ છે આત્માને નહીં. પછી આત્માને આ પ્રકારના દુઃખોમાં પડવાથી લાલ શું છે. પ્રકૃતિનો સંબંધ વિચ્છેદ થવાથી જ્ઞાનના અભાવમાં આત્મા અજ્ઞ થઈ જવાથી જડસ્વરૂપ બની જશે. પરંતુ એવું તો છે નહિ; કેમ કે સ્વાનુભવથી આત્મા સ્વરૂપથી ચેતન છે અને એ માટે એ પોતાની મલિન પરિણતિને છોડવા માટે મુનિઓના નિર્મલ આચારનું પાલન કરવા માટે પ્રયત્નશીલ બને છે. અથવા "સમિયાએ પરિયાએ"ની સંસ્કૃત છાયા શમિતાપર્યાયઃ પણ હોય છે, તો આ પ્રકારે અર્થની સંગતિ થાય છે કે જ્ઞાન અને

આત્માકે અભેદ સમ્બન્ધમેં યહ શમિતાપર્યાયવાલા-ઉપશાન્તકષાય-વાલા હોતા હૈ । એસા તીર્થઢ્કર પ્રભુને કહા હૈ ।

ભાવાર્થ—જ્ઞાન ઓર આત્માકા અભેદ સમ્બન્ધ હૈ જબ હસ પ્રકારકી પ્રતીતિ હોગી તમી તો જાકર મનુષ્ય ઉસ અપની નિર્મલ જ્ઞાન અવસ્થા કો, જો કષાયોને મલિન કર રહી હૈ; પ્રાપ્ત કરનેકે લિયે, ઉન કષાયો કો દમન કરનેકે લિયે યા ઉન્હેં ઉપશમિત કરનેકે લિયે પ્રયત્નશીલ બનેગા । નહીં તો મૂલમેં અજ્ઞ હોનેસે ઉન કષાયોકો દમન કરને યા ઉપશમિત કરનેકા ઉપાયોકા બોધ ઉસે કૈસે હી સકેગા । હસલિયે આત્મા ઓર જ્ઞાનમેં અભેદ હી માનના શ્રેયસ્કર હૈ । ભેદ નહીં । “ઇતિ બ્રવીમિ ” હન પદોકા અર્થ પહિલે હી કહા જા ચુકા હૈ ॥

॥ પંચમ અધ્યયનકા પંચમ ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૫-૫ ॥

આત્માના અભેદ સંબંધમાં આ શમિતાપર્યાયવાળા-ઉપશાન્તકષાયવાળા બને છે. એવું તીર્થંકર પ્રભુએ કહ્યું છે.

ભાવાર્થ:—જ્ઞાન અને આત્માનો અભેદ સંબંધ છે. જ્યારે આ પ્રકારની પ્રતીતિ થશે ત્યારે મનુષ્ય પોતાના નિર્મળ જ્ઞાનની અવસ્થાઓને, કષાયોએ જે મલીન કરી રાખી છે, પ્રાપ્ત કરવા માટે, તે તે કષાયોનું દમન કરવા માટે અથવા તેઓને ઉપશમિત કરવા માટે પ્રયત્નશીલ બનશે. નહિ તો ભૂલમાં અજ્ઞ હોવાથી એ કષાયોનું દમન અને ઉપશમિત કરવાના ઉપાયનો બોધ એને કેવી રીતે થશે. આ માટે આત્મા અને જ્ઞાનમાં અભેદ માનવો શ્રેયસ્કર છે. ભેદ નહિ. “ઇતિ બ્રવીમિ” આ પદનો અર્થ અગાઉ કહેવાયેલ છે.

પાંચમા અધ્યયનનો પાંચમો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૫-૫ ॥



## । અથ પશ્ચમાધ્યયનસ્ય ષષ્ઠ ઉદ્દેશઃ ।

ગતઃ પશ્ચમોદ્દેશ ઇદાનીં ષષ્ઠઃ પ્રારમ્ભ્યતે । અસ્ય ચ પૂર્વોદ્દેશેન સહાયમભિસમ્બન્ધઃ । પૂર્વત્ર હ્રદસદશ આચાર્યો ભવેદિતિ કથિતમ્ । અત્રોદ્દેશે-‘તાદૃશાચાર્યસંસર્ગત આચાર્યશુશ્રૂષણરતેન મુનિના ત્રિષષ્ટ્યધિકત્રિશતપાષણ્ડિકમતાનાં ગૃહસ્થાનાં

## ॥ પાંચવે અધ્યયનકા છટ્ટા ઉદ્દેશ ॥

પંચમ ઉદ્દેશકા વ્યાખ્યાન હો ચુકા, અવેકે સમય છટ્ટે ઉદ્દેશકા વ્યાખ્યાન પ્રારંભ હોતા હૈ । સેસ ઉદ્દેશકા પૂર્વ ઉદ્દેશકે સાથ સમ્બન્ધ હૈ ઓર વહ સેસ પ્રકાર હૈ-પૂર્વ પંચમ ઉદ્દેશમેં આચાર્ય મહારાજકો હ્રદ (દ્રહ) કી ઉપમા દી હૈ । ઉસ હ્રદ ઉપમિત આચાર્યકે પાસ શિષ્યકો રહના ચાહિયે, યહ બી અછ્છી તરહ ખુલાસા કિયા જા ચુકા હૈ । ઉનકે નિકટ નિવાસ કરનેસે શિષ્ય કિસ ૨ સંસર્ગસે પરે રહતા હૈ સેસ બાતકા સેસ ઉદ્દેશમેં પ્રદર્શન કરના સૂત્રકારકો અભીષ્ટ હૈ; અતઃ સર્વ પ્રથમ યહાં સેસ વિષયકા વિવેચન કરનેકે લિયે સૂત્રકાર, સેસ અભિપ્રાયસે પ્રેરિત હો કિ હ્રદોપમિત આચાર્યકે સંસર્ગસે ઉનકી સેવા વૈયાવૃત્તિ કરનેમેં રત ચિત્તવાલા સાધુ ૩૬૩ પાશ્વણ્ડિયોંકે મતકે સંસર્ગસે, ગૃહસ્થોંકે અધિક સમ્પર્કસે ંવં પરતીર્થિકોંકે સંગસે પૃથક્કૂ હો જાતા હૈ, “અણાણાણ ંગે” ઈત્યાદિ સૂત્ર

## પાંચમા અધ્યયનનો છટ્ટો ઉદ્દેશ.

પાંચમે ઉદ્દેશ કહેવાઈ ચૂકયો છે, હવે છટ્ટા ઉદ્દેશનો પ્રારંભ થાય છે. આ ઉદ્દેશનો પૂર્વ ઉદ્દેશ સાથે સંબંધ છે, અને તે એ પ્રકારે છે કે-પૂર્વ પાંચમા ઉદ્દેશમાં શુર મહારાજને હ્રદની ઉપમા દેવામાં આવી છે. હ્રદ ઉપમિત આચાર્ય મહારાજની પાસે શિષ્યે રહેવું જોઈએ એનો પણ સારી રીતે ખુલાસો કરવામાં આવ્યો છે. એમની પાસે રહેવાથી શિષ્ય કયા કયા સંસર્ગથી દૂર રહે છે. એ વાતનું સ્પષ્ટીકરણ આ ઉદ્દેશમાં સૂત્રકારને કરવું ઇષ્ટ છે, માટે સહુ પ્રથમ અહીં આ વિષયનું વિવેચન કરવા માટે સૂત્રકાર હ્રદોપમિત આચાર્યના સંસર્ગથી તેની સેવા વૈયાવૃત્તિ કરવામાં રતચિત્તવાળા સાધુ ૩૬૩ પાષાંડીઓના મતના સંસર્ગથી અને પરતીર્થિઓના સંગથી નિરાળો બને છે. આ અભિપ્રાયથી પ્રેરિત બની “અણાણાણ ંગે ઇત્યાદિ સૂત્રનો પ્રારંભ કરે છે. આમાં એ સર્વ પ્રથમ



પરતીર્થિકાનાં ચ સંસર્ગપરિત્યાગો વિધેયઃ' ઇતિ પ્રતિપાદયિષ્યતે । તત્રાદૌ પાષ-  
ણ્ડિકમાર્ગપરિત્યાગમેવ દર્શયતિ—'અણાણા' ઇત્યાદિ—

મૂલમ્—અણાણા એ સોવટ્ટાણા આણા એ નિરુવટ્ટાણા,  
અંયં તે મા હોઝ, અંયં કુસલસ્સ દંસણં, તદ્દિટ્ઠી એ તમ્મુત્તી એ  
તપ્પુરકારે તસ્સન્ની તન્નિવેસણે ॥ સૂ. ૧ ॥

છાયા—અનાજ્ઞાયામેકે સોપસ્થાના આજ્ઞાયામેકે નિરુપસ્થાનાઃ, એતત્તે મા  
ભવતુ, એતત્કુશલસ્ય દર્શનમ્, તદ્દૃષ્ટ્યા તન્મુક્ત્યા તત્પુસ્કારસ્તત્સંજી તન્નિવેશનઃ ॥ સૂ. ૧ ॥

ટીકા—'અનાજ્ઞાયા' મિત્યાદિ—એકે=કેચન સદસદ્વિવેકવિકલા ઇન્દ્રિય-  
વિષયપાશબદ્ધાઃ, અનાજ્ઞાયાં=તીર્થઙ્કરાનુપદિષ્ટે સ્વચ્છન્દમાર્ગે 'સોપસ્થાનાઃ' સહ  
ઉપસ્થાનેન=સંયમાભાસોદ્યોગેન યે સ્થિતાસ્તે સોપસ્થાનાઃ=સાવધાચરણપ્રવૃત્તાઃ  
વીતરાગોપદિષ્ટધર્મરહિતાઃ સન્તિ, તે હિ—'વયમપિ સંયમિનઃ' ઇતિ સર્ગર્થ વદન્તો  
લોકાન્ વશ્ચયન્તીત્યર્થઃ । કિંચ એકે=કેચન નિન્દિતમાર્ગાનુગામિતયા દૂષિતાન્તઃ—

કા પ્રારમ્ભ કરતે હૈં । હસમેં વે સર્વ પ્રથમ ૩૬૩ પાશ્વણ્ડિયોંકે માર્ગકે  
પરિત્યાગ કરનેકા ઉપદેશ દેતે હૈં—

કોઈ એક સત્ અને અસત્કે વિવેકસે વિકલ હુએ પ્રાણી ઇન્દ્રિયોંકે  
વિષયરૂપી પાશસે બદ્ધ હો કર તીર્થઙ્કરદ્વારા અનુપદિષ્ટ સ્વચ્છન્દમાર્ગમેં  
પ્રવૃત્તિ કર સંયમાભાસકે આરાધનકે પ્રયત્નમેં ઉદયમશીલ રહતે હૈં । સ્વ-  
ચ્છન્દ-પ્રવૃત્તિ-વિશિષ્ટ હોનેસે એસે જીવ સાવધ આચારી હોતે હૈં અને  
હસીલિયે વે વીતરાગદ્વારા ઉપદિષ્ટ માર્ગસે બહિર્ભૂત માને જાતે હૈં । યે  
સંયમાભાસી જીવ “હમ બી સંયમી હૈં” હસ પ્રકાર ગર્વ કરકે સંયમી  
હોનેકા લોગોંકે સમક્ષ ભાવ પ્રગટ કરતે હૈં અને મોલે-મોલે પ્રાણિયોંકો  
અપને જાલમેં ફસાતે રહતે હૈં । કોઈ એક એસે બી હૈં જો તીર્થઙ્કર પ્રભુકી

૩૬૩ પાશ્વણ્ડિયોના માર્ગનો પરિત્યાગ કરવાનો ઉપદેશ આપે છે.

કોઈ એક સત્ અને અસત્ના વિવેકથી વિકલ અનેલ પ્રાણી ઇન્દ્રિયોના  
વિષયરૂપી પાશથી બંધાઈને તીર્થઙ્કરદ્વારા પ્રતિપાદિત થયેલા રસ્તે પ્રવૃત્તિ કરી  
સંયમાભાસના આરાધનનો પ્રયત્ન કરવામાં ઉદયમશીલ રહે છે. સ્વચ્છન્દ-પ્રવૃત્તિ-  
વિશિષ્ટ હોવાથી એવો જીવ સાવધ આચારી અને છે અને એથી એ જીવ વીત-  
રાગદ્વારા ઉપદિષ્ટ માર્ગથી દૂર રહે છે એવા, સંયમાભાસી (દ્રવ્યલિંગી)  
જીવ “અમે પણ સંયમી છીએ” આ પ્રકારનો ગર્વ કરીને સંયમી  
હોવાનો લોકો સમક્ષ ભાવ પ્રગટ કરે છે, અને ભોળાભાળા માણસોને પોતાની  
બળમાં ફસાવતા રહે છે. કોઈ એવા પણ હોય છે કે જે તીર્થઙ્કર પ્રભુની આજ્ઞાનું

કરણાઃ પ્રમાદિનઃ, આજ્ઞાયાં=ભગવદુક્તમોક્ષમાર્ગે નિરુપસ્થાનાઃ=નિર્ગતમુપસ્થાનમુ-  
દ્યોગો યેષાં તે નિરુપસ્થાના વીતરાગપ્રરૂપિતાચારચરણવર્જિતાઃ સન્તિ। એતત્=પૂર્વોક્તં  
આજ્ઞાકી આરાધના કરનેકે ઉદ્યોગસે હી રહિત હૈં। એસે જીવ નિન્દિત  
માર્ગકે અનુસરણ કરનેવાલે હોનેકી વજહસે દૂષિત અન્તઃકરણવાલે એવં  
પ્રમાદશીલ રહા કરતે હૈં। યે ભગવત્કથિત મોક્ષમાર્ગમેં નિરુદ્યમી હોતે  
હૈં। ભગવાનને જિસ આચારકે પાલન કરનેકા ઉપદેશ દિયા હૈ વે ઇસ  
આચારકે પાલન કરનેમેં વે વિમુક્ત રહા કરતે હૈં।

ભાવાર્થ—સંસારમેં કિતનેક એસે મનુષ્ય હૈં જો તીર્થઢૂર અપ્રતિપા-  
દિત માર્ગમેં ઉદ્યોગ કરતે રહતે હૈં। સ્વેચ્છાનુસાર અપની નિર્ગલ પ્રવૃત્તિ  
બનાયે હુણ હૈં। સમજાયે જાને પર ભી એસે જીવ આત્મકલ્યાણકે માર્ગ  
કી તરફ ઋજુ નહીં હોતે। કુછ એસે ભી જીવ હૈં જો પ્રભુપ્રતિપાદિત માર્ગમેં  
ઉદ્યમસે વર્જિત હૈં।

પ્રથમ કોટિકે જીવ લોકોંકો પ્રતારણા કરને (ઠગને)કે નિમિત્ત  
દ્રવ્યલિઙ્ગી સાધુકા વેષ પહિનકર અપનેકો વાસ્તવિક સંયમી ઘોષિત કરતે  
હૈં, તવ દૂસરી કોટિકે મનુષ્ય મૂલમેં હી તીર્થઢૂર ભગવાનકી આજ્ઞાકે  
આરાધક નહીં હોતે હૈં। યદિ ઉન્હેં સમજાયા જાય તો યે સમજ સકતે  
હૈં ઓર યથાર્થ આચારકી ઓર ઋજુ હો સકતે હૈં, શિષ્યકો સંબોધિત  
કરતે હુણ સૂત્રકાર આશીર્વાદ વચનરૂપમેં ઉસસે કહતે હૈં કિ હે શિષ્ય!

આરાધન કરવામાં ઉદ્યોગરહિત છે. આવા મનુષ્ય નિન્દિતમાર્ગનું અનુસરણ કર-  
વાવાળા હોવાને કારણે દૂષિત અન્તઃકરણવાળા અને પ્રમાદશીલ રહ્યા કરે છે. એવા  
જીવો ભગવત્કથિત મોક્ષમાર્ગમાં નિરુદ્યમી હોય છે. ભગવાને જે આચારનું પાલન  
કરવાનો ઉપદેશ આપ્યો છે એ આચારનું પાલન કરવાથી વિમુક્ત રહ્યા કરે છે.

ભાવાર્થ—સંસારમાં કેટલાક એવા મનુષ્ય છે જે તીર્થઢૂર અપ્રતિપાદિત  
માર્ગમાં ઉદ્યોગશીલ રહે છે અને સ્વેચ્છાનુસાર પોતાની ભિન્ન પ્રવૃત્તિ કર્યે  
જાય છે, અને સમજાવવા છતાં પણ આવા મનુષ્યો આત્મકલ્યાણના માર્ગ તરફ  
વળતા નથી. કોઈ એવા પણ જીવ છે જે પ્રભુપ્રતિપાદિત માર્ગમાં ઉદ્યમથી દૂર છે.  
પ્રથમ કોટિના જીવ લોકોને ઠગવા નિમિત્તે દ્રવ્યલિંગી સાધુનો વેશ પહેરી  
પોતાને સાચા સંયમી જાહેર કરે છે. એનાથી બીજી કોટિના જીવ મૂળમાં જ  
તીર્થઢૂર ભગવાનની આજ્ઞાના આરાધક નથી હોતા, એમને જે સમજાવવામાં  
આવે તો સમજી શકે છે અને યથાર્થ આચારની તરફ એ વળી શકે છે. શિષ્યને  
સંબોધન કરતાં સૂત્રકાર આશીર્વાદ વચનરૂપમાં એમને કહે છે કે હે શિષ્ય!

निन्दितमार्गाचरणं श्रेयोमार्गानाचरणं चैतद्वयं ते=तव गुरुवाक्यानुयायिनः, मा भवतु । ताभ्यां नरक-निगोदादिदुर्गतिरवश्यम्भाविनीत्यवधार्य ततो निवर्तित-व्यमित्याशयः । एतस्य स्वमतिकल्पितत्वं परिहर्तुमाह-‘ एत ’ दित्यादि-एतत्=पूर्वोक्तं कुमार्गाचरणं सन्मार्गस्खलनं च दुर्गतिनिदानमिति कुशलस्य=सर्वज्ञस्य दर्शनम्=अभिमतम् आशय इत्यर्थः ।

यद्वा—पूर्वोक्तवैपरीत्येन एतत् अनाज्ञायां निरुपस्थानत्वमाज्ञायां च सोपस्थानत्वमित्युभयं कुशलस्य दर्शनमस्ति ।

“ एतत्ते मा भवतु ” ये पूर्वोक्त प्रथम कोटिवालेका निन्दित आचरण और द्वितीय कोटिवालेका श्रेयोमार्गका अनाचरण यह दोनों प्रकारकी प्रवृत्ति गुरुवाक्यके अनुसार प्रवृत्तिशील तुझमें नहीं होवे । क्यों कि इस प्रकारकी प्रवृत्तिसे जीव नरक निगोदादिकके दुःखोंका अवश्य भोगनेवाला होता है, इस प्रकार अपनी आत्मामें दृढ़ विश्वाससम्पन्न बन इस दुष्प्रवृत्तिसे सदा अपनी रक्षा कर-उस ओरसे अपने को सदा बचाता रह ! हे जम्बू ! सर्वज्ञ भगवान् की यही आज्ञा है । यह मैं अपनी बुद्धिसे नहीं कहता हूं । “ एतत्कुशलस्य दर्शनम् ” इस सूत्रांशका यह भी भाव होता है कि पूर्व में जो यह कहा है कि अनाज्ञामें सोपस्थानता और आज्ञामें निरुपस्थानता तुझमें नहीं होवे-सो इन दोनोंसे विपरीत तू अपनी प्रवृत्ति बना, अर्थात्-अनाज्ञामें निरुद्यमी और आज्ञामें सोद्यमी बन-यही सर्वज्ञकी आज्ञा है, अथवा-अनाज्ञामें सोपस्थानता और आज्ञा

“ एतत्ते मा भवतु ” आ पूर्वोक्त प्रथम कोटीवाणानुं निन्दित आचरणु अने भी७ कोटिवाणानुं श्रेयमार्गमां अनाचरणु आ अन्ने प्रकारनी प्रवृत्ति शुद्धि-वाक्यना अनुसार प्रवृत्तिशील ताराभां न अने; केम के आ प्रकारनी प्रवृत्तिथी ७व नरकनिगोदादिकना दुःखोने भोगवना अवश्य अने छे. आ प्रकारे पोताना आत्माभां दृढविश्वाससंपन्न अनी अराज प्रवृत्तिथी सदा तारी रक्षा कर. ओ तरुथी सदा पोतानी जतने अयाव. हे जम्बू ! सर्वज्ञ भगवाननी आ आज्ञा छे. आ हुं भारी बुद्धिथी कहेतो नथी. “ एतत्कुशलस्य दर्शनम् ” आ सूत्रांशना ओ पणु भावार्थ थाय छे के पूर्वो के कहेवाभां आ०युं छे के अनाज्ञाभां सोपस्थानता अने आज्ञाभां निरुपस्थानता ताराभां न थाय, माटे आवा दोषोथी विपरीत तुं तारी प्रवृत्ति अनाव. अर्थात् अनाज्ञाभां निरुद्यमी अने आज्ञाभां सोद्यमी अन. ओवी सर्वज्ञनी आज्ञा छे. अथवा-अनाज्ञाभां



અથવા—પૂર્વોક્તમેતદ્વયં વિહાય નિરન્તરં ગુરુકુલનિવાસિના ત્વયા ભાવ્યમ્, એતત્=શિષ્યં પ્રત્યુપદેશવચનં કુશલસ્ય દર્શનમ્ । એતસ્યૈવાર્થસ્ય પ્રકટનાયાહ—‘તદ્દૃષ્ટ્યે’ત્યાદિ—‘તદ્દૃષ્ટ્યા તન્મુક્ત્યા તત્પુરસ્કારસ્તત્સંગી તન્નિવેશનઃ’ ઇત્યાદેવ્યા-લ્યાઽપ્રાધ્યયને ચતુર્થોદેશે પ્રોક્તા । આચાર્યદૃષ્ટ્યા વર્તમાનસ્તદુક્તાચારચરણશીલ-સ્તદિદ્ગિતાકારપરિણસ્તજ્ઞાનોપયુક્તો મુનિર્નિત્યં ગુરુકુલવાસી ભવેદિત્યર્થઃ । કુમા-ર્ગાઽસેવનં સન્માર્ગાઽસેવનં ચ કલ્યાણમાર્ગવિધાતકં ભવતીતિ તયોર્ગુરુસમીપાવ-મેં નિરુપસ્થાનતાકો છોડ કર હે શિષ્ય ! તૂ નિરન્તર ગુરુકુલકા નિવાસી બન—હસ પ્રકાર શિષ્યકો સમજાનેકે લિયે સૂત્રકારને સર્વજ્ઞકે આજ્ઞાવચન કા યહ પ્રદર્શન કિયા હૈ—“ તદ્દૃષ્ટ્યા તન્મુક્ત્યા તત્પુરસ્કારસ્તત્સંગી તન્નિ-વેશનઃ ” । ઇસી અર્થ કો પુષ્ટ યા પ્રકટન કરનેકે લિયે સૂત્રકારકે ઇન પદોં કા વ્યાખ્યાન ટીકાકારને પહિલે ઇસી અધ્યયનકે ચતુર્થ ઉદ્દેશકે દૂસરે સૂત્રમેં કર દિયા હૈ । ઇસકા ભાવાર્થ યહી હૈ કિ આચાર્યકી નિશ્રામેં રહ-નેવાલા, ડનકે કહે અનુસાર અપની દૈનિક ચર્યાકા આચરણ કરનેવાલા ઓર ડનકે ઇંગિત—આકારકા જ્ઞાતા એસા શિષ્ય જ્ઞાન, ધ્યાન ઓર અધ્ય-યનમેં નિરત રહતા હુઆ ગુરુકુલમેં નિવાસકે યોગ્ય હોતા હૈ । કુમાર્ગકા આસેવન ઓર સન્માર્ગકા અનાસેવન કરના યે ડોનોં બાતેં કલ્યાણમાર્ગકી નિરોધક યા વિધાતક માની ગઈ હૈ; ઇસલિયે જો શિષ્ય ગુરુકુલમેં નિવાસ કરેગા—ગુરુકી નિશ્રામેં યા ડનકે સમીપ રહેગા ડસકે પાસ ઇસ પ્રકારકી પ્રવૃત્તિ નહીં હો સકતી ! ઇસલિયે શિષ્યકો ગુરુકુલનિવાસી બનનેકી

સોપસ્થાનતા અને આજ્ઞામાં નિરુપસ્થાનતાને છોડીને હે શિષ્ય ! તું નિરંતર ગુરુ-કુળનો નિવાસી બન. આ પ્રકારે શિષ્યને સમજાવવા માટે સૂત્રકારે સર્વજ્ઞની આજ્ઞાના વચનને પ્રદર્શિત કરેલ છે—“ તદ્દૃષ્ટ્યા ” ઇત્યાદિ । એ જ અર્થની પુષ્ટિ અને પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રકારના આ પદોનું વ્યાખ્યાન ટીકાકારે પહેલા આ જ અધ્યયનના ચોથા ઉદ્દેશના બીજા સૂત્રમાં કરેલ છે. એનો ભાવાર્થ એ છે કે આચાર્યની નિશ્રામાં રહેવાવાળા એમના કહ્યા અનુસાર પોતાની દૈનિક ચર્યાનું આચરણ કરવાવાળા અને એમના ભાવને બાળવાવાળા એવા શિષ્ય જ્ઞાન, ધ્યાન અને અધ્યયનમાં નિરત રહીને ગુરુકુળમાં નિવાસને યોગ્ય બને છે. કુમાર્ગનું આસેવન અને સન્માર્ગનું અનાસેવન કરવું એ બંને વાતો કલ્યાણ માર્ગની નિરોધક અને વિધાતક માની ગઈ છે. આ કારણે જે શિષ્ય ગુરુકુળમાં નિવાસ કરશે, ગુરુની નિશ્રામાં અને તેની સમીપ રહેશે એની પાસે આવા પ્રકારની પ્રવૃત્તિ બનતી નથી. આ કારણે શિષ્યને ગુરુકુળ નિવાસી બનાવવા તરફ સૂત્ર-

સ્થાનેન ન કદાઽપ્યવસરસમ્ભવ ઇતિ ભાવઃ ॥ સૂ. ૧ ॥

તાદૃશઃ કં ગુણમાસાદયતીત્યાહ—‘ અભિભૂય ’ ઇત્યાદિ—

મૂલમ્—અભિભૂય અદક્ષૂ અણભિભૂષ પમૂ નિરાલંબણયાણ  
જે મહં અબહિમણે, પવાણ પવાયં જાણિજા, સહ સંમડ્યાણ  
પરવાગરણેણં અન્નેસિં વા અંતિણ સુચ્ચા ॥ સૂ. ૨ ॥

છાયા—અભિભૂયાઽદ્રાક્ષીદનભિભૂતઃ પ્રશુર્નિરાલમ્બનતાયા યો મહાન્ અબહિ-  
ર્મનાઃ, પ્રવાદેન પ્રવાદં જાનીયાત્, સહ સમ્મત્યા પરવ્યાકરણેનાન્યેષાં વાઽન્તિકે  
શ્રુત્વા ॥ સૂ. ૨ ॥

ટીકા—‘ અભિભૂયે ’ ત્યાદિ—યઃ ‘ તદ્દૃષ્ટ્યા ’—ઇત્યાદિ—વિશેષણવિશિષ્ટો  
મુનિઃ, અભિભૂય=પરીષદોપસર્ગ ઘાતિકર્મચતુષ્ટયં વા પરાજિત્ય, અનભિભૂતઃ=અનુ-  
કૂલ—પ્રતિકૂલોપસર્ગેણ પરતૈર્થિકૈર્વા ન પરાભૂતઃ સન્ અદ્રાક્ષીત્=જિનોક્તતત્ત્વમીપ્સિત-  
વાન્, સ નિરાલમ્બનતાયાઃ=પૂર્વ—પશ્ચાત્સંયોગત્યાગેન નિરાધારતાયાઃ પ્રશુઃ=સમર્થઃ,  
ઓર સૂત્રકારકા યાસ પ્રેરણાત્મક યહ આદેશ હૈ ॥ સૂ. ૨ ॥

હસ પ્રકારકા શિષ્ય કૌનસે ગુણકા ભાજન હોતા હૈ, હસ વાતકો  
પ્રકટ કરનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈ “ અભિભૂય ” ઇત્યાદિ ।

જો મુનિ “ તદ્દૃષ્ટ્યા તન્મુક્ત્યા ” ઇત્યાદિ પૂર્વોક્ત સૂત્રાંશ પ્રતિપાદિત  
વિશેષણોં સે યુક્ત હોતા હૈ તથા પરિષદ્ ઓર ઉપસર્ગોં કો યા કર્મચતુ-  
ષ્ટયકો જીતકર જો ઉનસે અવ્યાહત પરાક્રમવાલા હાતા હૈ, અનુકૂલ  
પ્રતિકૂલ ઉપસર્ગોં અથવા પરતીર્થિકોંસે અજેય હોતા હુઆ જિનેન્દ્રદ્વારા  
પ્રતિપાદિત વસ્તુસ્વરૂપકા જો વિચારક હોતા હૈ, વહ પૂર્વસંયોગ ઓર  
પશ્ચાત્સંયોગકા પરિત્યાગી હો કર કિસીકે ભી અવલમ્બન—સહારેકી  
અપેક્ષા નહીં રખતા હૈ । હસ સંસારમેં માતા, પિતા, પુત્ર, સ્ત્રી ઓર મિત્ર

કરને આ મુખ્ય પ્રેરણાત્મક આદેશ છે.

આ પ્રકારનો શિષ્ય કેવા ગુણનો ધારક હોય છે, આ વાતને પ્રગટ કરવા  
માટે સૂત્રકાર કહે છે “ અભિભૂય ” ઇત્યાદિ !

જે મુનિ “ તદ્દૃષ્ટ્યા તન્મુક્ત્યા ” ઇત્યાદિ પૂર્વોક્ત સૂત્રાંશ પ્રતિપાદિત વિશે-  
ષણોથી યુક્ત હોય છે તથા પરિષદ અને ઉપસર્ગોંને અથવા ચાર ઘાતિયા કર્મને  
જીતીને જે તેનાથી અવ્યાહત પરાક્રમવાળા થાય છે. અનુકૂળ પ્રતિકૂળ ઉપસર્ગોં  
અને પરતીર્થિકોથી વિજયી બનીને જિનેન્દ્રદ્વારા પ્રતિપાદિત વસ્તુસ્વરૂપના જે  
વિચારક હોય છે તે પૂર્વસંયોગના પરિત્યાગી બનીને કોઈના પણ ઓશીયાળા  
રહેવાની અપેક્ષા રાખતો નથી.

આલમ્બનનપેક્ષી ભવતીત્યર્થઃ । અત્ર સંસારે માતા-પિતૃ-પુત્ર-કલત્ર-મિત્રાદય આલમ્બનભૂતાઃ સન્તીતિ યદાપાતતઃ પ્રતિભાતિ ન તુ વાસ્તવિકં, તૈસ્ત્રાણ-શરણાસ-મ્ભવાત્તે નાઽઽલમ્બનભૂતાઃ, તત્સમ્બન્ધસ્ય મોહાદિજનકત્વેન કુગતિહેતુત્વાત્ । એવં યો વિભાવયતિ સ સંયમાદૃતે ન કિમપ્યાલમ્બનમભિલષતીતિ ભાવઃ । ક<sup>૧</sup>તાદૃશઃ ? इति प्रश्ने प्राह-‘यो महा’-नित्यादि-यः=रत्नत्रयसमाराधकः महान्=महापुरुषो लघुकर्मा अबहिर्मनाः=बहिः=तीर्थङ्करोपदेशादन्यत्र न विद्यते मनः=चित्तं यस्य सोऽबहिर्मनाः=वीतरागाज्ञानुयायी परिहृतपरतैर्थिकमतो भवति । स एव च प्रवादेन-प्रकृष्टेन वादेन=पूर्वाचार्यपारम्परिकोपदेशेन प्रवादं=वीतरागवचनं जानीयात्=ज्ञानविषयीकुर्यात्-समालोचयेदित्यर्थः ।

આદિ અવલમ્બનભૂત પદાર્થ ઝપરસે હી મોહી જીવકો માલૂમ પડતે હૈં, વિવેકદષ્ટિસે દેખને પર તો યે બિલકુલ નિઃસ્સાર હી હૈં, ઇનસે કિસી ખી પ્રકારસે કિસી ખી જીવકી ન તો રક્ષા હી હો સકતી હૈં ઓર ન યે કિસીકે લિયે ત્રાણશરણરૂપ હી હૈં । ઇનકે સાથ જનનીજનકત્વાદિરૂપ સંબંધ મોહકા જનક હોનેસે ઇસ જીવકો કુગતિમૈં હી પહુંચાનેકા એક માત્ર કારણ બનતા હૈં ” ઇસ પ્રકાર જો વિચારતા હૈં વહ સંયમકે સિવાય કિસી ખી વસ્તુ કો અપના અવલમ્બનભૂત નહીં સમજતા હૈં ।

ऐसा कौन मनुष्य हो सकता है ? इस प्रश्नका उत्तररूप समाधान करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि “यो महान् अबहिर्मनाः प्रवादेन प्रवादं जानीयात्” जो रत्नत्रयकी आराधनासे महान्-लघुकर्मी बना है तथा तीर्थङ्करके उपदेशके सिवाय जिसका चित्त अन्यतीर्थिकोंके उपदेशमें

આ સંસારમાં માતા, પિતા, પુત્ર, સ્ત્રી અને મિત્ર આદિ અવલંબનભૂત પદાર્થ ઝપરથીજ મોહ પમાડનારાં જીવને માલુમ પડે છે, વિવેક દષ્ટિથી જોવાથી તો આ બધાં તદ્દન નિઃસ્સાર જ છે. એઓથી કોઈ પણ પ્રકારે કોઈ પણ જીવની ન તો રક્ષા થઈ શકે છે કે ન તો તે કોઈ ને માટે ત્રાણ શરણરૂપ છે. એમની સાથે જનની-જનક ઇત્યાદિ રૂપ સંબંધ મોહનાં કારણ હોવાથી આ જીવને કુગતિમાં પહોંચાડવાના કારણભૂત અને છે. આ પ્રકારે જે વિચારે છે તે સંયમના સિવાય કોઈ પણ વસ્તુને પોતાને અવલંબનભૂત માનતા નથી.

એવો કયો મનુષ્ય હોઈ શકે છે ? આવા પ્રશ્નના ઉત્તરરૂપ સમાધાન કરતાં સૂત્રકાર કહે છે “યો મહાન્ અબહિર્મનાઃ” ઇત્યાદિ. જે રત્નત્રયની આરાધનાથી મહાન્-લઘુકર્મી બન્યા છે તથા તીર્થંકરના ઉપદેશ સિવાય જેનું ચિત્ત



યદ્વા—‘અબહિર્મનાઃ’ નાનાવિધલૌકિકસિદ્ધિર્દર્શનેનાપિ સર્વજ્ઞોપદેશાત્ વહિઃ= પૃથગ્ભૂતે પરમતે ન વિદ્યતે મનો યસ્ય સ તથા । તાશ્ચ સિદ્ધયઃ સિદ્ધિર્જાલકસદૃશ્ય એવેતિ સંલગ્ન નહીં હોતા હૈં એસા વીતરાગકે મતકા પથિક એવં અન્ય એકાન્ત-વાદિયોંકે સિદ્ધાન્તકી ઓર નહીં જુકનેવાલા મનુષ્ય પૂર્વ આચાર્ય પરમ્પરા સે આગત ઉપદેશદ્વારા વીતરાગકે વચનકા, સંશય-વિપર્યય આદિ દોષોં સે રહિત હી વિચાર કરનેવાલા હો સકતા હૈં ।

ભાવાર્થ—એસા કૌન મનુષ્ય હો સકતા હૈં ? હસ પ્રશ્નકા સમાધાન યહાં પર સૂત્રકારને કિયા હૈં । વે કહતે હૈં કિ એસા વહી મનુષ્ય હો સકતા હૈં કિ જિસને સમ્યગ્દર્શનાદિકકી આરાધનાસે અપને જીવનકો કર્મકે ભારસે લઘુ બના લિયા હૈં, અર્થાત્-જો આસન્નસંસારી હૈં, તથા જિસકે ચિત્તમેં વીતરાગ ધર્મકે સિવાય અન્ય ધર્મકે પ્રતિ ધાર્મિક ભાવનાસે થોડી સી ખી શ્રદ્ધા નહીં હૈં; ક્યોં કિ વીતરાગ ધર્મકો હી વહ અપના સબ કુછ સમજ્ઞતા હૈં તથા પૂર્વ આચાર્ય પરંપરાકે અનુસાર પ્રવાહરૂપસે ચલે આયે ઉપદેશસે હી જો વીતરાગકે વચનકા શ્રદ્ધાલુ બના હૈં, જો યહ અચ્છી તરહસે સમજ્ઞ ચુકા હૈં કિ વીતરાગવચન સંશય વિપર્યય એવં અનધ્ય-વસાય આદિ દોષોંસે રહિત હૈં, વહી ઉત્કૃષ્ટસંયમી હૈં ।

અથવા—“અબહિર્મનાઃ” હસ પદકા અર્થ હસ પ્રકારસે ખી હોતા

બીજા ધર્મવાળાના ઉપદેશમાં લાગતું નથી એવા વીતરાગનો અનુગામી અને એકાન્તવાદીઓના સિદ્ધાન્તની તરફ નહિ જુકવાવાળા મનુષ્ય પૂર્વ-આચાર્ય પરંપરાથી આવેલ ઉપદેશદ્વારા વીતરાગના વચનમાં, સંશય-વિપર્યય આદિ દોષોથી રહિત વિચાર કરવાળા થઈ શકે છે.

ભાવાર્થ—એવો કયો મનુષ્ય હોઈ શકે છે ? આ પ્રશ્નનું સમાધાન અહિં સૂત્રકારે કરેલ છે. એ કહે છે કે એવો એ જ મનુષ્ય હોઈ શકે છે કે જેણે સમ્યગ્દર્શનાદિકની આરાધનાથી પોતાના જીવનને કર્મના ભારથી લઘુ બનાવી દીધેલ છે. અર્થાત્ જે આસન્નસંસારી-હલુકર્મી છે, તથા જેના ચિત્તમાં વીતરાગ ધર્મ સિવાય અન્ય ધર્મ તરફ ધાર્મિક ભાવનાથી થોડી માત્ર પણ શ્રદ્ધા નથી. કેમ કે વીતરાગ ધર્મને જ એ પોતાનું સર્વસ્વ સમજે છે તથા પૂર્વ-આચાર્ય-પરંપરાઅનુસાર પ્રવાહરૂપથી આદ્યા આવતા ઉપદેશથી જે વીતરાગના વચનોનો શ્રદ્ધાળુ બનેલ છે, અને એ સારી રીતે સમજી ચૂકેલ છે કે વીતરાગ વચન સંશય વિપર્યય અને અનધ્યવસાય આદિ દોષોથી રહિત છે. એ જ ઉત્કૃષ્ટ સંયમી છે.

અથવા—“અબહિર્મનાઃ” આ પદનો અર્થ આ પ્રકારથી પણ થાય છે કે

વિચાર્ય પ્રવાદેન=ભગવદ્વચનેન પ્રવાદ=ત્રિષષ્ટ્યધિકત્રિશતપરતૈર્થિકમતં જાનીયાત્=અનાસેવ્યતયા બુદ્ધચેત, મિથ્યાત્વવિલસિતતયા જ્ઞાત્વા પરીક્ષ્ય ચ તેષાં મતં खण्डये-  
दित्यर्थः । તે ચ પરતૈર્થિકપ્રવાદાઃ પરસ્પરવિરુદ્ધાર્થા નૈકત્ર પર્યવસિતાર્થાસ્તદ્યથા-

હે કિ પૂર્વોક્ત વહ જીવ અન્ય મતમેં અનેક પ્રકાર કી સિદ્ધિયોં કો દેખતા હૈ, તો ખી ઉસકા ચિત્ત ઉસ ઓર નહીં શુકતા હૈ । કારણ કિ વહ સમજતા હૈ કિ અનેક પ્રકારકી ઉન ૨ સિદ્ધિયોં સે વિશિષ્ટ વે સિદ્ધ હિન્દ્રજાલિયોં જૈસે હી હૈં । ઇસ પ્રકાર વિચાર કર વહ વીતરાગ પ્રભુકે વચનોંકે સહારેસે ૩૬૩ પાશંડિયોંકે મતકો અનાસેવ્ય-સેવન કરનેકે અયોગ્ય હી માનતા હૈ-યે સબ મિથ્યાત્વકે હી વિલાસ હૈં, ઇનસે આત્મિક શાંતિલાભ નહીં હો સકતા હૈ એસા જાનકર ઓર ઉન્હેં અપની બુદ્ધિ-રૂપી તર્કણાકી કસૌટી પર કસ કર ગ્રાહ્યકોટિમેં પરિગણિત નહીં કરતા હૈ । ઇનસે અન્ય ખોલેખાલે જીવોંકા ભવિષ્યમેં અહિત ન હો જાય ઇસ વિચારસે ઉનમેં વહ પ્રમાણતા કા ખી खण्डन કરતા હૈ । વહ જાનતા હૈ કિ ઇન મતોંમેં પ્રતિપાદિત વિષય પરસ્પરમેં વિરુદ્ધ અર્થકી પ્રરૂપણા કરતા હૈ, જો કુછ વિષય ઇનમેં લિખા ગયા હૈ વહ ઠીક નહીં હૈ, કારણ કિ જિસ વિષયકો એક સ્થાન પર હેય બતાયા હૈ ઉસી વિષયકો દૂસરી જગહ ઉપાદેય બતલાયા ગયા હૈ । હમ દેખતે હૈં કિ વેદ જો એક સનાતન સિદ્ધાંત કા ઉનકી માન્યતાનુસાર સબસે પુરાનો ઓર પ્રમાણિક ગ્રન્થ હૈ ઉસમેં

પૂર્વોક્ત તે જીવ અન્ય મતમાં અનેક પ્રકારની સિદ્ધિઓને દેખે છે તો પણ તેનું ચિત્ત તે તરફ લાગતું નથી. કારણ કે તે સમજે છે કે અનેક પ્રકારની તેવી તેવી સિદ્ધિઓથી શુકત તે સિદ્ધ ઇન્દ્રજાલિક માફક છે. આ પ્રકારનો વિચાર કરી એ વીતરાગ પ્રભુના વચનોના આધારથી ૩૬૩ પાશંડીઓના મતને સેવન કરવાને અયોગ્ય માને છે. આ બધું મિથ્યાત્વનો જ વિલાસ છે. એનાથી આત્મિક શાંતિનો લાભ મળી શકતો નથી, એવું બાણી અને એને પોતાની બુદ્ધિરૂપી તર્કની કસોટી પર કરીને ગ્રહણ કરવા લાયક માનતો નથી. એનાથી બીજા ભોળાભાળા માણસોનું અહિત ભવિષ્યમાં ન બને એ વિચારથી આવા માણસો સમક્ષ તેના વિચારોનું એ ખંડન કરતો રહે છે. એ બાણ છે કે આવા મતોમાં પ્રતિપાદિત વિષય પરસ્પરમાં વિરુદ્ધ અર્થની પ્રરૂપણા કરે છે. જે કોઈ વિષય એમાં લખેલ છે તે બરાબર નથી. કારણ કે જે વિષયને એક સ્થળે હેય બતાવેલ છે ત્યારે એ જ વિષયને બીજે સ્થળે ઉપાદેય બતાવેલ છે. વેદ જે સનાતન સિદ્ધાંતમાં એમની માન્યતા અનુસાર સહુથી પુરાતન અને પ્રમાણિત ગ્રંથ છે

પ્રથમ તાવદ્વેદ એવ “મા હિંસ્યાત્ સર્વા ભૂતાનિ” હત્યેકત્રાભિધાયાઽપરત્ર ચ “અગ્નિષોમીયં પશુમાલભેત” ઇતિ વિરુદ્ધાર્થપ્રતિપાદકત્વાદપ્રમાણમ્ ।

એવં સંસારસ્યેશ્વરો નિમિત્તકારણં ભવતીતિ વૈશેષિકાસ્તેષામપિ સમાનમાતૃ-  
પિતૃજાતયોઃ પુંસોર્ભાગ્યવૈષમ્યેણ સુખદુઃસ્વાદેવૈચિત્ર્યદર્શનાત્તેઽપ્યન્તતઃ પ્રાક્તનશુભા-  
શુભકર્મફલરૂપમદૃષ્ટં સ્વીકુર્વાણાઃ પ્રઘટવ્યાઃ, યદિ ચ ભવદ્ધિરીશ્વરસ્ય નિમિત્તકારણતા

પહિલે “મા હિંસ્યાત્ સર્વા ભૂતાનિ” હિંસા કરનેકા નિષેધ કિયા હૈ, ફિર દૂસરી જગહ “અગ્નીષોમીયં પશુમાલભેત” હિંસા મન્ત્રપદસે અગ્નીષોમ યજ્ઞ કરનેકે લિયે પશુકે મારનેકા વિધાન કિયા હૈ, હિંસા પ્રકારસે પરસ્પરમેં વિરુદ્ધ અર્થકી પ્રતિપાદકતા હિંસામેં ભરી પડી હૈ । જિસમેં હિંસા પ્રકારકે પરસ્પર વિરોધી કથન દેખનેમેં આતા હૈ, ઓર જહાં યુક્તિસે ભી વિરોધી તત્ત્વોંકા પ્રરૂપણ હુઆ હૈ, ભલા ! વહ વેદ પ્રમાણતા કી કોટિમેં કેસે આ સકતા હૈ ? હિંસા પ્રકાર વૈશેષિક સિદ્ધાન્તકાર હિંસા જગતકા કર્તા “એક ઈશ્વર હૈ” એસા માનતે હૈ । પરંતુ જબ હિંસાસે વહ પ્રશ્ન કિયા જાતા હૈ કિ એક હી માતા પિતાસે ઉત્પન્ન હુએ પુરુષોંમેં સુખ દુઃખ આદિકી વિચિત્રતા ક્યોં દેખી જાતી હૈ ? પરમાત્માકે દ્વારા ઉત્પન્ન કિયે ગયે હિંસા જીવોંમેં વહ વિષમતા ક્યોં ? હિંસાકા વે સમાધાન કરતે હુએ કહતે હૈ કિ હિંસા વિષમતાકા કારણ હિંસાકા ભાગ્યકી

એમાં પ્રથમ “મા હિંસ્યાત્ સર્વા ભૂતાનિ” આ વાક્યથી હિંસા કરવાનો નિષેધ કરવામાં આવેલ છે. ફરી બીજે સ્થળે “અગ્નીષોમીયં પશુમાલભેત” આ મંત્ર પદથી અગ્નીષોમ યજ્ઞ કરવા માટે પશુને મારવાનું વિધાન કરેલ છે. આ રીતે અનેક સ્થળોમાં આ પ્રકારથી પરસ્પર વિરુદ્ધ અર્થની પ્રતિપાદકતા એમાં ભરી પડી છે. એમાં આ પ્રકારના પરસ્પરના વિરોધી કથન એવામાં આવે છે અને યુક્તિથી પણ વિરોધી તત્ત્વોનું પ્રરૂપણ કરાયેલ છે તે વેદ પ્રમાણતાની કોટીમાં કઈ રીતે આવી શકે ? એ જ રીતે વૈશેષિક સિદ્ધાન્તકાર આ જગતના કર્તા “એક ઈશ્વર છે” એમ માને છે. પરંતુ જ્યારે એમને આ પ્રશ્ન કરવામાં આવે કે એક માતાથી ઉત્પન્ન થએલ પુરુષોમાં સુખ દુઃખ ઇત્યાદિની વિચિત્રતા કેમ દેખાય છે ? પરમાત્માએ જ ઉત્પન્ન કરેલ આ જીવોમાં આવી વિષમતા કેમ ? આનું સમાધાન કરતાં એ કહે છે કે આ વિષમતાનું કારણ એના ભાગ્યની વિષમતા છે. તેણે જે રીતનાં શુભ અને અશુભ કર્મો કર્યાં છે એ અનુસાર તેને સુખ



બુવદ્ધિરન્તેઽપિ ચાઽદૃષ્ટવિશેષઃ સ્વીક્રિયત એવ, તર્હિં ઈશ્વરસ્ય કારણતાં વિનૈવાઽદૃષ્ટે-  
નૈવ સર્વ સેસ્યતિ, અદૃષ્ટં તુ શુભાશુભકર્મફલરૂપમેવ કિમીશ્વરસ્ય કર્તૃત્વદુરાગ્ર-  
હેણેત્યલમ્ ।

કાપિલાસ્તુ-‘પ્રકૃતિરેવ કર્ત્રી પુરુષસ્તુ પ્રતિક્ષેત્ર [ શરીર ] વર્તી નિર્ગુણો-  
વિષમતા હૈં, ઉન્હોને જૈસા કુછ શુભ ઓર અશુભરૂપ અદૃષ્ટ કમાયા હૈ  
ઉસીકે અનુસાર વે સુખદુઃખ આદિકો ભોગા કરતે હૈં । ઇસમેં ઈશ્વરકી  
કયા અપેક્ષા હૈ? જબ વે ઇસ પ્રકારકા ઉત્તર દેતે હૈં તબ હમ ઉનસે પૂછતે  
હૈં કિ જબ તુમ ઇસ જગતકા નિમિત્તકારણ ઈશ્વરકો કલ્પિત કરતે હો  
તો ફિર સુખદુઃખાદિકકી વિચિત્રતાકા કારણ અદૃષ્ટકી કલ્પના કયોં  
કરતે હો । કયોં અદૃષ્ટકો સુખદુઃખાદિકકા કારણ માનતે હો? ઇસ  
પ્રકારકી માન્યતામેં ઈશ્વરમેં સર્વશક્તિમત્તાકા અભાવ આતા હૈ; કયોં કિ  
ઈશ્વરકી અપેક્ષા અધિક શક્તિશાલી પદાર્થ એક અદૃષ્ટ આપકે કથના-  
નુસાર સિદ્ધ હોતા હૈ; ઇસલિયે જબ અદૃષ્ટ હી સબકે માગ્યકા વિધાતા  
હૈ તો ફિર ઈશ્વરકો બીચમેં ડાલકર કયોં ઉસકી ઈશ્વરતા પર કલંક લગાતે  
હો । જિસે અદૃષ્ટ માના ગયા હૈ, ઉસે હી જૈન સિદ્ધાન્તકી પરિભાષા  
મેં કર્મકા ફલ સુખ દુઃખ કહા ગયા હૈ, ઇસલિયે ઇસ દુરા-  
ગ્રહકો છોડકર વાસ્તવિક વસ્તુસ્થિતિકા વિચારક બનો । ઇસ પૂર્વોક્ત  
કથનસે વૈશેષિક સિદ્ધાન્તમેં પરસ્પર વિરુદ્ધાર્થપ્રરૂપકતા પ્રકટ કી ગઈ હૈ ।

દુઃખ આદિ ભોગવવાં પડે છે. આમાં ઇશ્વરની શી અપેક્ષા છે, જ્યારે તે આ  
પ્રકારનો ઉત્તર દે છે ત્યારે અમે તેને પૂછીએ છીએ કે જ્યારે તમે આ જગ-  
તનું નિમિત્ત કારણ ઇશ્વરને માનો છો તો પછી સુખ દુઃખ ઇત્યાદિની વિચિ-  
ત્રતાનું કારણ અદૃષ્ટની કલ્પના કેમ કરો છો? અદૃષ્ટને કેમ સુખ દુઃખનું કારણ  
માનો છો? આ પ્રકારની માન્યતામાં ઇશ્વરમાં સર્વશક્તિમત્તાનો અભાવ આવે છે;  
કેમકે ઇશ્વરની અપેક્ષા અધિક શક્તિવાળા પદાર્થ એક અદૃષ્ટ આપના કથનાનુ-  
સાર સિદ્ધ હોય છે; આ માટે જ્યારે અદૃષ્ટ જ સહુના ભાગ્યનો વિધાતા છે તો  
પછી ઇશ્વરને વચમાં નાખીને એની ઇશ્વરતા ઉપર કલંક કેમ લગાડો છો. જેને  
અદૃષ્ટ માનવામાં આવેલ છે એને જ જૈન સિદ્ધાંતની પરિભાષામાં કર્મનું ફળ  
સુખ દુઃખ કહેવાયેલ છે; આ માટે એ દુરાગ્રહને છોડી વાસ્તવિક વસ્તુસ્થિતિના  
વિચારક બનો. આ પૂર્વોક્ત કથનથી વૈશેષિક સિદ્ધાંતમાં પરસ્પર-વિરુદ્ધાર્થ-પ્રરૂપકતા  
પ્રકટ કરવામાં આવેલ છે.

સાંખ્ય સિદ્ધાંતની પણ આવી જ દશા છે, એમણે પ્રકૃતિ અને પુરુષ આ

નિષ્ક્રિયો નિઃસંજ્ઞઃ પુષ્કરપલાશવર્ચિર્લેપઃ ઉપભોક્તા ન તુ કર્તા તદુપભોગાર્થમચેત-  
ના પ્રકૃતિઃ સર્વમુપકલ્પયતિ' ઇતિ કથયન્તિ, અસમીચીનં તદર્શનમ્-અચેતનસ્ય લોકે  
પ્રવર્તકત્વાદર્શનેન દૃષ્ટાન્તાસમ્ભવાદપ્રમાણમ્ । એવમીશ્વરઃ પ્રપશ્ચરૂપસ્ય જગતો

સાંખ્યસિદ્ધાન્તકી ભી યહી દશા હૈ, ઉન્હોને પ્રકૃતિ ઓર પુરુષ ઇસ પ્રકારસે દો મૌલિક તત્ત્વ માને હૈં । ઉનકા કહના હૈ જો કુછ કરતી-ધરતી હૈ વહ સબ પ્રકૃતિ હી કરતી હૈ, પુરુષ-આત્મા નહીં । વહ તો અકર્તા હૈ, ભિન્ન ૨ શરીરવર્તી હૈ, નિર્ગુણ નિષ્ક્રિય એવં નિઃસંગ હૈ । જિસ પ્રકાર જલમેં રહતા હુઆ ખી કમલકા પત્ર ઉસસે અલિસ રહતા હૈ, ટીક ઇસી તરહસે આત્મા ખી હૈ । પ્રકૃતિ-પ્રદત્ત સમસ્ત સુખદુઃખાદિકોં કા ભોગ કરના હી ઉસકા કામ હૈ, સ્વયં યહ કિસી ખી વાતકા કર્તા નહીં હૈ । અચેતન પ્રકૃતિ જો ખી કુછ કરતી હૈ વહ સબ ઇસ આત્માકે ઉપભોગકે લિયે હી કરતી હૈ, સ્વયંકે લિયે નહીં । પ્રકૃતિ જડ ઓર પુરુષ ચેતન હૈ । ઇસ પ્રકારકા યહ સાંખ્યકા કથન ટીક નહીં હૈ, ક્યોં કિ લોકમેં એસા કોઈ સા ખી દૃષ્ટાન્ત નહીં મિલતા હૈ કિ જિસકે બલપર અચેતનમેં ખી પ્રવર્ત-કતા માની જા સકે । પ્રકૃતિ જબ સ્વયં અચેતન હૈ તો કાર્યોં કી કરનેવાલી કેસે હો સકતી હૈ ? વિના કિસીકી પ્રેરણા પાયે વહ પુરુષકે ઉપભોગકે લિયે પ્રવૃત્તિ કેસે કર સકેગી ! હાં યદિ ઇસ વિષયમેં કોઈ દૃષ્ટાન્ત મિ-લતા તો ઉસકે બલ પર સાંખ્યોંકા યહ કથન માન્ય ખી હો જાતા । યદિ

પ્રકારથી એ મૌલિક ( મુખ્ય ) તત્ત્વ માનેલ છે, એમનું કહેવું છે કે જે કાંઈ કરે છે તે પ્રકૃતિ જ કરે છે, પુરુષ-આત્મા નહિ. એ તો અકર્તા છે, ભિન્ન ભિન્ન શરીરવર્તી છે, નિર્ગુણ, નિષ્ક્રિય અને નિઃસંગ છે. જેમ જળમાં રહેલા છતાં કમળપત્ર તદ્દન અલિપ્ત રહે છે આ જ પ્રમાણે આત્મા પણ છે. પ્રકૃતિપ્રદત્ત સમસ્ત સુખ દુઃખાદિનો ભોગ કરવો એ જ એનું કામ છે, સ્વયં ( પોતે ) એ કોઈ પણ વાતનો કર્તા નથી. અચેતન પ્રકૃતિ જે પણ કાંઈ કરે છે એ અધુઆ આત્માના ઉપભોગ માટે જ કરે છે, પોતાને માટે નહિ. પ્રકૃત જડ અને પુરુષ ચેતન છે. આ પ્રકારનું સાંખ્યનું કથન ઠીક નથી; કેમ કે લોકમાં એવો કોઈ પણ દૃષ્ટાંત નથી મળતો કે જેના બળ ઉપર અચેતનમાં પણ પ્રવર્તકતા માનવામાં આવે. પ્રકૃતિ જ્યાં પોતે જ અચેતન છે ત્યાં એ કાર્યો કરવાવાળી ક્યાંથી થઈ શકે ? કોઈ પ્રેરણા મળ્યા વગર એ પુરુષના ઉપભોગ માટે પ્રવૃત્તિ કઈ રીતે કરી શકે ? આ વિષયમાં કોઈ દૃષ્ટાંત હોત તો એના બેર ઉપર સાંખ્યનું એ કથન માન્ય પણ થઈ શકત. કદાચ અહિં એવી શંકા કરવામાં આવે કે જૈન

યહાં પર યહ શંકા કી જાવે કિ જૈનસિદ્ધાન્તકારોને જિન્હેં કર્મ માના હૈ વે ભી તો અચેતન હૈ, ઉન અચેતનોં મેં સુખદુઃખાદિરૂપ ફલકે પ્રતિ પ્રવર્તકતા દેખી જાતી હૈ, ઉસી પ્રકાર પ્રકૃતિમેં ભી પ્રવર્તકતા માનનેમેં ક્યા હાનિ હૈ ? હસ પ્રકાર દૃષ્ટાન્તકી અસંભવતા બતલાકર જો હસ કથન કો અપ્રમાણ બતલાયા ગયા હૈ વહ ઠીક નહીં હૈ; સો સાંખ્યોંકાં એસા કહના જૈનસિદ્ધાન્તકે પ્રતિકૂલ હૈ । જૈનસિદ્ધાન્તકારોને કાર્મણવર્ગણારૂપ દ્રવ્યમેં જીવકી રાગાદિક પરિણતિકે નિમિત્તકો લેકર કર્મરૂપસે પરિણમન માના હૈ, કાર્મણવર્ગણાઓં કા પરિણમન ( કર્મરૂપ હોના ) વિના નિમિત્ત કે નહીં હોતા । અતઃ જબ હનમેં અશુદ્ધજીવકે વિભાવભાવોં કો લેકર કર્મરૂપસે પરિણમન હોતા હૈ તમી યે સુખદુઃખાદિકરૂપ ફલકે પ્રતિ પ્રવર્તક માને ગયે હૈ । સાંખ્યસિદ્ધાન્તકે અન્દર પ્રકૃતિમેં હસ તરહસે પ્રવર્તકતા નહીં માની ગઈ હૈ; ક્યોં કિ આત્મા સ્વયં નિર્ગુણ એવં અકર્તા માના ગયા હૈ । પ્રકૃતિકો હસ પ્રકાર વિભાવપરિણતિસે અધિષ્ઠિત હો કર યદિ કાર્યકી કરનેવાલી માના જાવે તો ફિર ઉસે જો “મૂલપ્રકૃતિ-રવિકૃતિઃ” કારણરૂપ હી માના ગયા હૈ સો યહ માન્યતા ઠીક નહીં માની જા સકતી; કારણ કિ હસ પ્રકારકી માન્યતામેં ઉસમેં વિકૃતિ આનેસે વહ કાર્યરૂપ કિસી અપેક્ષાસે માની જાવેગી । વિશેષ જિજ્ઞાસુઓંકો યહ વિષય ન્યાયગ્રન્થોંસે દેખ લેના ચાહિયે ।

સિદ્ધાંતકારોએ જેને કર્મ માનેલ છે એ પણ અચેતન જ છે, એ અચેતનમાં સુખ દુઃખાદિ ક્ષણ તરફ પ્રવર્તકતા જોવામાં આવે છે, એ જ રીતે પ્રકૃતિમાં પણ માનવામાં ક્યું નુકશાન છે ? આ રીતે દૃષ્ટાંતની અસંભવતા બતાવીને આ કથનને અપ્રમાણિત કહેલ છે તે બરાબર નથી; આમ સાંખ્યોનું કહેવું જૈન સિદ્ધાંતથી વિરૂદ્ધનું છે. જૈન સિદ્ધાંતકારોએ કાર્મણવર્ગણારૂપ દ્રવ્યમાં જીવની રાગાદિક પરિણતિના નિમિત્તને લઈને કર્મરૂપથી પરિણમન માનેલ છે. કાર્મણવર્ગણાઓનું પરિણમન ( કર્મરૂપ થવું ) કોઈ નિમિત્ત સિવાય થતું નથી. આથી જ્યારે આમાં અશુદ્ધ જીવના વિભાવભાવોને લઈ કર્મરૂપથી પરિણમન થાય છે ત્યારે એ સુખ દુઃખના ક્ષણ તરફ પ્રવર્તક માનવામાં આવેલ છે. સાંખ્ય સિદ્ધાંતમાં પ્રકૃતિમાં આ પ્રકારથી પ્રવર્તકતા માનવામાં આવી નથી; કેમ કે આત્મા સ્વયં નિર્ગુણ અકર્તા માનવામાં આવેલ છે. પ્રકૃતિને આ રીતે વિભાવપરિણતિથી અધિષ્ઠિત થઈ કામ કરવાવાળી માનવામાં આવે તો પછી એને જે “મૂલપ્રકૃતિરવિકૃતિઃ” કારણરૂપજ માનવામાં આવેલ છે આ માન્યતા બરાબર થઈ શકે નહિ. કારણ કે આ પ્રકારની માન્યતાથી એનામાં વિકૃતિ આવવાથી કોઈ અપેક્ષાથી એને પણ કાર્યરૂપ માનવામાં આવશે. વધુ જણાસા ધરાવનારે આ વિષય ન્યાયગ્રન્થોમાં જોઈ લેવો જોઈએ.



નિમિત્તકારણં સમવાયિ [ઉપાદાન] કારણં ચાસ્તીત્યક્તીકુર્વન્તોઽવિદ્યાવિભ્રમં સકલપ્રપञ्ચજાતં શુક્તૌં રજતવદ્ બ્રહ્મણિ જગદધ્યસ્તમ્ [આરોપિતમ્] નેદં રજતમિતિ વિશેષદર્શનાદધિષ્ઠાનમાત્રાવશેષો યથા, તથૈવ 'નેહ નાનાઽસ્તિ કિञ્ચને'ત્યાદિ વિશેષદર્શનાદધિષ્ઠાનમાત્રાવશેષમદ્વૈતં બ્રહ્મ સિદ્ધ્યતિ ઇત્યાદિ બ્રુવન્તો વેદાન્તિનઃ પ્રવૃત્ત્યા

इसी प्रकार वेदान्तियोंका कथन भी परस्परविरुद्धार्थ प्ररूपक है। वह इस प्रकारसे है—“वे इस जगतरूप प्रपञ्चका निमित्तकारण एवं समवायि (उपादान) कारण एक ईश्वर को मानते हैं। घट-पट-मठ-शकट और कट (चटाई) आदि जो अनेक वस्तुरूप प्रपञ्च प्रतिभासित होता है वह सब अविद्या-मायारूप विभ्रमसे मालूम पड़ता है, जैसे-शुक्ति (सीप)में रजतका ज्ञान होता है। शुक्तिमें जिस प्रकार रजतका आरोप होता है, उसी प्रकार एक ब्रह्ममें इस जगत्का आरोप होता है। उत्तरकालमें जिस प्रकार “यह रजत नहीं है” इस प्रकार बाधक प्रत्यय होता है और इससे सिर्फ अधिष्ठानमात्र-शक्ति अवशिष्ट बची रहती है, उसी प्रकार इस संसारमें प्रत्यक्ष दृश्यमान ये नाना पदार्थ कुछ नहीं हैं, किन्तु अविद्या-माया विभ्रमसे अनेकरूप प्रतिभासित होते हैं, वास्तविक नहीं हैं। वास्तविक तो एक ब्रह्म ही है। इस प्रकार उत्तरकालीन बाधक प्रत्ययसे एक अधिष्ठानमात्ररूप अद्वैत ब्रह्मकी ही सिद्धि होती है” इस प्रकारका यह वेदान्तियोंका कथन भी ठीक नहीं है। कारण कि

આ રીતે વેદાન્તવાદીઓનું કથન પણ પરસ્પર વિરોધ બતાવનાર છે. તે આ પ્રકારે છે “તેઓ આ જગતરૂપ પ્રપંચનું નિમિત્તકારણ અને ઉપાદાનકારણ એક ઇશ્વરને માને છે. ઘટ-પટ-મઠ શકટ અને કટ (સાદડી) ઇત્યાદિ જે અनेક વસ્તુરૂપ પ્રપંચ પ્રતિભાસિત હોય છે આ બધું અવિદ્યા-માયારૂપ વિભ્રમથી દેખાય છે, જેમ સીપમાં રજતનું જ્ઞાન હોય છે. સીપમાં જેમ રજતનો આરોપ થાય છે, આ જ પ્રકારે એક બ્રહ્મમાં આ જગતનો આરોપ થાય છે. ઉત્તર કાળમાં જે રીતે “આ રજત નથી” આ પ્રકારે બાધક પ્રત્યય (જ્ઞાન) હોય છે અને આથી ફક્ત અધિષ્ઠાન માત્ર સીપ અવશિષ્ટ બની રહે છે, આ રીતે આ સંસારમાં પ્રત્યક્ષ દેખાતા વિવિધ પદાર્થો કંઈ નથી, પણ અવિદ્યા-માયાના વિભ્રમથી અनेક રૂપ દેખાય છે, વાસ્તવિકમાં નથી; વાસ્તવિક તો એક બ્રહ્મ જ છે. આ રીતે ઉત્તરકાલીન બાધક પ્રત્યયથી (જ્ઞાનથી) એક અધિષ્ઠાનરૂપ અદ્વૈત બ્રહ્મની જ સિદ્ધિ હોય છે.” આ પ્રકારનું વેદાન્તિઓનું એ કથન પણ ઠીક નથી; કારણ કે એકજ

યદ્ એકસ્ય સમવાયિ [ ઉપાદાન ] કારણ-નિમિત્તકારણયોર્લોકે ક્વાપ્યર્શનેન દૃષ્ટાન્તાસમ્ભવાત્ પ્રત્યક્ષદૃષ્ટસ્ય જગતઃ સામાન્યેન શબ્દપ્રમાણેન વાધાસમ્ભવાચ્ચ ન યુક્તિયુક્તં ભવન્મતમિતિ ।

તથા સૌગતાઃ-‘ યત્ સત્ તત્ ક્ષણિકં સર્વસ્ય ચ નિરન્વય એવ નાશ ઇતિ કથયન્તિ । યસ્માદુપાદાનકારણાદ્ યદુપાદેયં જાયતે તસ્યોપાદેયસ્ય તથૈવોપાદાને નાશો ભવતિ, યથા-ઘટં પ્રત્યુપાદાનકારણં મૃત્પિપ્પ્લવઃ, અતો ઘટસ્ય તત્રૈવ નાશો ભવતિ, તેન ઘટ-

એક હી બ્રહ્મ નિમિત્ત ઓર ઉપાદાન કારણ નહીં બન સકતા હૈ । હાં-યદિ કોઈ એસા દૃષ્ટાન્ત મિલતા કિ જો નિમિત્ત ઓર ઉપાદાન કારણ હોતા તો યહ માન્યતા ઠીક માની જા સકતી, પરન્તુ એસા કોઈ દૃષ્ટાન્ત હી નહીં દિશ્વતા । અતઃ યહ એક કલ્પના માત્ર હૈ, વાસ્તવિક નહીં । દૂસરે પ્રત્યક્ષ સે સ્પષ્ટ પ્રતિભાસિત હોનેવાલે જગતમેં સામાન્ય શબ્દ પ્રમાણ ( આગમ-પ્રમાણ ) સે વાધા બી કલ્પિત નહીં હો સકતી હૈ । ઇસલિયે વેદાન્તમત યુક્તિયુક્ત નહીં માના જા સકતા ।

બૌદ્ધસિદ્ધાન્ત બી યુક્તિયુક્ત નહીં હૈ, ક્યોં કિ વે “ યત્સત્ તત્સર્વ ક્ષણિકં ” કહતે હૈ । અર્થાત્-જો સત્ ( પદાર્થ ) હૈં વે સબ ક્ષણિક નિરન્વય નાશશીલ હૈ । પરન્તુ ઇસ ક્ષણિકવાદમેં ઉપાદાન-ઉપાદેય-ભાવ સિદ્ધ નહીં હોનેસે કાર્યકારણ ભાવકી સિદ્ધિ નહીં હો સકતી હૈ । જિસ ઉપાદાન કરણ સે જો ઉપાદેયરૂપ કાર્ય હોતા હૈ ઉસ કાર્યકા ઉસી ઉપાદાનરૂપ કારણમેં નાશ હોતા હૈ । જૈસે ઘટકે પ્રતિ ઉપાદાનકારણ મૃત્પિપ્પ્લવઃ હૈ ઓર ઉસ ઘટકા ઉસીમેં હી વિનાશ હોતા હૈ । ઇસ અપેક્ષા ઘટ ઓર મૃત્પિપ્પ્લવઃ

બ્રહ્મ નિમિત્ત અને ઉપાદાન કારણ થઈ શકે નહિ. કહાય કોઈ એવું દૃષ્ટાંત અપાત કે જે નિમિત્ત અને ઉપાદાન કારણ હોત તો આ માન્યતા ઠીક માની જાત. પરંતુ એવું કોઈ દૃષ્ટાંત દેખાતું નથી. આથી એ કલ્પના માત્ર છે, વાસ્તવિક નથી. બીજું પ્રત્યક્ષથી સ્પષ્ટ દેખાતા આ જગતમાં સામાન્ય શબ્દ પ્રમાણથી કલ્પના પણ થઈ શકતી નથી. આ કારણે વેદાન્ત મત માનવાયોગ્ય મનાતો નથી. બૌદ્ધ સિદ્ધાંત પણ માનવા યોગ્ય નથી; કેમ કે તે “ યત્સત્ તત્સર્વ ક્ષણિકં ” જે જે પદાર્થ છે તે બધા ક્ષણિક નિરન્વય નાશશીલ છે એમ કહે છે; પરંતુ આ ક્ષણિકવાદમાં ઉપાદાનઉપાદેયભાવ સિદ્ધ નહિ હોવાથી કાર્યકારણ ભાવની સિદ્ધિ થઈ શકતી નથી. જે ઉપાદાનરૂપ કારણથી જે ઉપાદેયરૂપ કાર્ય થાય છે આ કાર્યનો એ ઉપાદાનરૂપ કારણમાં નાશ થાય છે, જેમ ઘડા પ્રતિ ઉપાદાનકારણ માટીનો પિંડ છે અને એ ઘડાનો એમાં જ વિનાશ થાય છે. આ રીતે ઘડાનો અને માટીપિંડનો

મૃત્પિન્ડયોર્નિયતઃ કાર્યકારણભાવઃ સિદ્ધયતિ । નિરન્વયનાશાઙ્ગીકારે ઘટસ્ય કુઞ્ઞ નાશઃ સ્યાદ્ યેન નાશાશ્રય ઉપાદાનં સ્યાદિતિ નિયતકાર્યકારણભાવાસિદ્ધ્યા ન સમીચીનં તન્મતમિતિ-ઈત્યાદિયુક્તિભિઃ પરવાદં નિરસ્ય મુનિના સર્વજ્ઞોપદેશે વર્તિતવ્યમિતિ હૃદયમ્ ।

કથં પ્રવાદં જાનીયાદિત્યાહ-‘સહે ’ત્યાદિ-સહસમ્મત્યા-સહાત્મના યા સંગતા મતિઃ સા સહસમ્મતિઃપરોપદેશ-નિરપેક્ષા જાતિસ્મરણપ્રતિભાદિકરૂપા મતિસ્તયા જાનીયાત્ । યદ્યેવં નાવગચ્છેત્ તદા પરવ્યાકરણેન-પરસ્ય=તીર્થકુદાદેવ્યાકરણં પદાર્થસાર્થસ્ય યથાર્થસ્વરૂપપ્રરૂપણં તત્પરવ્યાકરણં તેન પરવ્યાકરણેન આર્હતાગમેન જાનીયાત્, તેનાપ્યનધિગમે અન્યેષામાચાર્યાદીનામ્ અન્તિકે=સમીપે શ્રુત્વા=તદુપદેશમાકર્ણ્ય વસ્તુતત્ત્વં જાનીયાત્ ॥ મુ. ૨ ॥

કા પરસ્પરમેં-કાર્ય કારણભાવ નિયત સિદ્ધ હોતા હૈ । પરન્તુ જબ પદાર્થકા નિરન્વય વિનાશ માન લિયા જાયગા તબ ઘટકા કહાં પર નાશ હોગા । નાશ નિરાશ્રય હોગા, ઉપાદાનકે આશ્રય નહીં । ઇસ પ્રકાર ઉપાદાન ઔર ઉપાદેયભાવ ન બનનેસે પરસ્પરમેં નિયમિત કાર્યકારણ ભાવકી સિદ્ધિ નહીં હો સકતી હૈ । અતઃયહ મત મી ઠીક નહીં હૈ ।

કહનેકા અભિપ્રાય કેવલ ઇતના હી હૈ કિ ઇત્યાદિ યુક્તિયોંસે પર-મતકા નિરાકરણ કર વિદ્વાન્ મુનિકો સર્વજ્ઞ પ્રભુકે ઉપદેશમેં હી સદા નિરત-શ્રદ્ધાલુ રહના ચાહિયે ।

“સહસમ્મત્યા પરવ્યાકરણેન અન્યેષાં વાઽન્તિકે શ્રુત્વા” ઇસ પ્રકાર અપની જાતિસ્મરણ-પ્રતિભાદિકરૂપ બુદ્ધિ યા તીર્થકુદ-પ્રભુકથિત આગ-મસે મુનિ ઇન પરમતોંકા સમ્યક્ જ્ઞાતા બને । યદિ કદાચિત્ એસા

પરસ્પર કાર્યકારણથી મેળ સિદ્ધ થાય છે, પરંતુ જો પદાર્થનો નિરન્વય વિનાશ માની લેવામાં આવે તો ઘડાનો નાશ કયાં થાય ? આ રીતે ઉપાદાન અને ઉપાદેય ભાવ ન બનવાથી પરસ્પરમાં નિયમિત કાર્યકારણ ભાવની સિદ્ધિ નથી થઈ શકતી. આથી આ મત પણ ખરાબર નથી.

કહેવાતું તાત્પર્ય માત્ર એટલું જ છે કે અનેક યુક્તિઓથી બીજા મતનું નિરાકરણ કરી વિદ્વાન્ મુનિએ સર્વજ્ઞ પ્રભુના ઉપદેશમાં જ સદા શ્રદ્ધાળુ રહેવું જોઈએ.

“સહસમ્મત્યા પરવ્યાકરણેન અન્યેષાં વાઽન્તિકે શ્રુત્વા” આ પ્રકારે પોતાની જાતિસ્મરણ-પ્રતિભાદિકરૂપ બુદ્ધિથી અને તીર્થકુદ પ્રભુએ કહેલ આગમથી મુનિ



જ્ઞાત્વા કિં કર્તવ્યમિતિ દર્શયતિ-નિર્દેશ 'ઇત્યાદિ—

મૂલ્મ—નિર્દેશં નાદ્વદ્વેજ્જા મેઘાવી સુપડિલેહિયા સઘ્વઓ સઘ્વયાણ સમ્મમેવ સમભિજાણિયા, ઇહ આરામં પરિણાય અહ્લીણગુત્તે પરિઘ્વણ, નિદ્વિયદ્વી વીરે આગમેણ સયા પરક્કમે-જ્જાસિ ત્તિવેમિ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

છાયા—નિર્દેશં નાતિવર્તેત મેઘાવી સુપ્રત્યુપેક્ષ્ય સર્વતઃ સર્વાત્મના સમ્યગેવ સમભિજ્ઞાય, ઇહાસરામં પરિજ્ઞાયાસલીનગુપ્તઃ પરિવ્રજેત્, નિષ્ઠિતાર્થી વીર આગમેન સદા પરાક્રમેથા ઇતિ વ્રવીમિ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

ટીકા—' નિર્દેશ 'મિત્યાદિ—મેઘાવી=આચાર્યમર્યાદાનુગમનશીલો નિર્દેશ=વીતરાગોપદેશ સર્વાત્મના=ઉત્સર્ગપવાદરૂપેણ, યદ્વા—આમ્યન્તરવાહ્યરૂપેણ સર્વતઃ=સર્વપ્રકારેણ દ્રવ્યક્ષેત્રકાલભાવરૂપેણેત્યર્થઃ, સુપ્રત્યુપેક્ષ્ય=મિથ્યાદૃષ્ટિવાદં ભગવદ્વાદં ચ હેયોપાદેયત્વેન સમ્યક્ સમાલોચ્ય સમ્યગેવ=સમ્યક્તયા યથાવસ્થિતરૂપેણ સ્વમતં પરમતં ચ સમભિજ્ઞાય પ્રમાણનયૈર્જ્ઞાત્વા નાતિવર્તેત-ભગવદાજ્ઞાં નાતિક્રમેત-નોલ્લઙ્ગ્યેદિત્યર્થઃ, ઉપલક્ષણાત્ પરવાદં ચ નિરાકુર્યાદિતિ । અપિ ચ ઇહ=અત્ર જિન-યોગ ન મિલે તો આચાર્યાદિક ગુરુઓંકે નિકટ વસ કર અનેકે ઉપદેશ શ્રવણસે વાસ્તવિક વસ્તુ-તત્ત્વકા જ્ઞાયક બને ।

વસ્તુ તત્ત્વ યા પરપ્રવાદકો જાન કર ફિર કયા કરના ચાહિયે? હસ કે સમાધાનાર્થ સૂત્રકાર કહતે હૈં “નિર્દેશ” ઇત્યાદિ ।

જો મુનિજન બુદ્ધિશાલી હૈં, અર્થાત્ અપને ધર્મગુરુઓંકી મર્યાદાકે રક્ષક હૈં, અનેકે નિર્દિષ્ટ માર્ગાનુસાર અપની પ્રવૃત્તિ કરતે હૈં, સ્વમનઃ-કલ્પિત પ્રવૃત્તિ નહીં કરતે । વે વીતરાગ પ્રભુકે ઉપદેશકા અનેક માર્ગસે વિચાર કર કમી મી ડસસે વિરુદ્ધ પ્રવૃત્તિ, યા ડસકા ડલ્લંઘન નહીં કરતો । વીતરાગ પ્રભુકા ઉપદેશ અનેક નયોંકી અપેક્ષાસે પ્રવર્તિત હુઆ હૈં એસા

આ પરમતોનો સંપૂર્ણ જ્ઞાતા બને. પરંતુ કહાય એવો યોગ ન મળે તો આચાર્ય આદિ ગુરુઓની પાસે રહી એમના ઉપદેશ શ્રવણથી વાસ્તવિક વસ્તુતત્ત્વના બાણુકાર બને.

વસ્તુતત્ત્વ અને પરમતને બાણી પછી શું કરવું બેઠ્યો? એના સમાધાનમાં સૂત્રકાર કહે છે “નિર્દેશ” ઇત્યાદિ ।

જે મુનિજન બુદ્ધિશાળી છે એટલે પોતાના ધર્મગુરુઓની મર્યાદાના રક્ષક છે—એમણે ઉપદેશેલ માર્ગ અનુસાર પોતાની પ્રવૃત્તિ કરે છે, સ્વમનઃકલ્પિત પ્રવૃત્તિ કરતા નથી તે વીતરાગ પ્રભુના ઉપદેશને અનેક માર્ગથી વિચાર કરી કદી પણ એનાથી વિરુદ્ધ પ્રવૃત્તિ અથવા એનું ઉલ્લંઘન નથી કરતા. વીતરાગ પ્રભુનો ઉપદેશ સિદ્ધ છે એવો વિચાર કરી તે કદી પણ એના આગમમાં શંકા-

વિચાર કર વે બી અનેકે આગમમેં શંકાશીલ નહીં હોતે હૈ—અસમેં પરસ્પર-વિરુદ્ધાર્થપ્રરૂપકતાકી શંકા નહીં કરતે હૈ । વે યહ અચ્છી તરહસે સમજ લેતે હૈ કિ ભગવાન વીતરાગ પ્રભુકે વચન હી નિર્દોષ હોનેસે ઉપાદેય હૈ ઓર સદોષ હોનેસે મિથ્યાદૃષ્ટિયોંકે વચન હેય હૈ । ક્યોં કિ પદાર્થોંકા જૈસા સ્વરૂપ હૈ વહ વીતરાગપ્રભુ પ્રતિપાદિત આગમસે સાક્ષાત્ જ્ઞાત હોતા હૈ; કારણ કિ અસમેં હી પદાર્થોંકા યથાર્થસ્વરૂપ પ્રતિપાદિત હુઆ હૈ અન્ય મિથ્યાદૃષ્ટિયોંકે આગમમેં નહીં, કારણ કિ અસમેં અનકા યથાવસ્થિત સ્વરૂપ પ્રતિપાદિત નહીં હુઆ હૈ, અનમેં એકાન્તવાદકી હી પ્રરૂપણા હૈ, જો પ્રત્યક્ષ ઓર અનુમાનસે વાધિત હૈ । પદાર્થોંકા સ્વરૂપ અનેકાન્તકી પ્રરૂપણા સે હી વાસ્તવિક જ્ઞાત હોતા હૈ, ઓર વહી અનેકાન્તતા પદાર્થોંમેં પ્રત્યક્ષાદિ પ્રમાણોંસે જ્ઞાત હોતી હૈ । અસ અનેકાન્તતાકા પરિજ્ઞાન પદાર્થોં મેં પ્રમાણ ઓર નયોંસે હોતા હૈ । વસ્તુકે અંદર રહે હુઅ અનંત ધર્મોંમેં સે કિસી એક ધર્મકો મુખ્યકર શેષ ધર્મોંકી અવિવક્ષાસે અન્હેં ગૌગકર વસ્તુસ્વરૂપકા પ્રતિપાદન કરના નય હૈ । અનંતધર્માત્મક વસ્તુકા કથન પ્રમાણ હૈ । અસ પ્રકાર પદાર્થોંમેં અનેકાન્તતા હી સિદ્ધ હોતી હૈ ।

શંકા—નયવાક્યસે જો પદાર્થોંકે સ્વરૂપકા પ્રતિપાદન કિયા જાતા હૈ વહ બી તો એકાન્તવાક્ય હૈ; ફિર અસમેં પ્રમાણરૂપતા કૈસે માની જા સકતી હૈ ?

શીલ બનતા નથી—એમાં પરસ્પર વિરોધીપણાની શંકા નથી કરતા. એ સારી રીતે સમજે છે કે ભગવાન વીતરાગ પ્રભુનાં વચન નિર્દોષ તેમજ આચરવા-યોગ્ય હોવાથી મિથ્યાદૃષ્ટિઓનાં વચન નકામાં છે; કેમ કે પદાર્થોંનું જેવું સ્વરૂપ છે તે વીતરાગ પ્રભુએ સમજાવેલ આગમથી જાણી શકાય છે. કારણ કે એમાં જ પદાર્થોંનું યથાર્થ સ્વરૂપ સમજાવેલ છે. બીજા મિથ્યાદૃષ્ટિઓના આગમમાં નહીં. કારણ કે એમાં એનું સાચું સ્વરૂપ સિદ્ધ સ્વીકારાયું નથી. એનામાં એકાન્તવાદની જ પ્રરૂપણા છે. જે પ્રત્યક્ષ અને અનુમાનથી વાધિત છે. પદાર્થોંનું સ્વરૂપ અનેકાન્તની પ્રરૂપણાથી જ વાસ્તવિક જાણી શકાય છે અને એ જ અનેકાન્તતા પદાર્થોંમાં પ્રત્યક્ષાદિ પ્રમાણોંથી જ્ઞાત થાય છે. આ અનેકાન્તતાનું પરિજ્ઞાન પદાર્થોંમાં પ્રમાણ અને નયોંથી થાય છે. વસ્તુની અંદર રહેલા અનંત ધર્મોંમાંથી કોઈ એક ધર્મને મુખ્ય ગણી બીજા ધર્મોંની અવિવક્ષા કરી એને ગૌણ સમજી વસ્તુસ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કરવું નય છે. અનંત ધર્માત્મક વસ્તુનું કથન પ્રમાણ છે. આ પ્રકારે પદાર્થોંમાં અનેકાન્તતા જ સિદ્ધ થાય છે.

શંકા—નયવાક્યથી જે પદાર્થોંના સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવે છે આ પણ એકાન્તવાક્ય છે, પછી આને પ્રમાણરૂપતા કઈ રીતે માની શકાય ?

ઉત્તર—યહ આશંકા ઠીક નહીં છે, ક્યોં કિ જહાં પર વિવક્ષિત ધર્મકી હી પ્રધાનતા કી જાવે ઓર બાકી અન્ય ધર્મોંકા તિરસ્કાર કર દિયા જાવે વહાં પર હી એકાન્તતા આતી છે. નયવાક્યમેં સર્વથા એકાન્ત-પ્રતિપાદકતા નહીં છે. યદ્યપિ નય અપને દ્વારા ગૃહીત ધર્મકા હી પ્રતિપાદન કરતા હૈં, પરન્તુ વહ વસ્તુગત અનેક ધર્મોંકા તિરસ્કાર નહીં કરતા છે, કિન્તુ ડનકી ઓર વહ ગજનિમીલિકા ધારણ કર લેતા છે. ઇસ પ્રકાર નયવાક્યમેં દુર્નયતારૂપ સર્વથા એકાન્તપ્રતિપાદકતા નહીં આતી છે.

શંકા—ઇસ પ્રકારકે કથનસે નયવાક્યમેં જબ પ્રમાણતા આતી છે તો ડસે પ્રમાણવાક્યસે ભિન્ન ક્યોં માનના ચાહિયે? ડસકા સમાવેશ પ્રમાણવાક્યમેં ક્યોં નહીં કર લિયા જાવે?

ઉત્તર—શંકા ઠીક નહીં છે, ક્યોં કિ જિસ પ્રકાર સમુદ્રકા એક બિન્દુ અસમુદ્ર એવં સમુદ્ર નહીં હો સકતા છે; કિન્તુ સમુદ્રકા એક દેશ કહા જાતા છે, ડસી પ્રકાર નય વાક્ય ભી પ્રમાણકા એક દેશ માના ગયા છે, વહ ન પ્રમાણ છે ઓર ન અપ્રમાણ. ઇસ પ્રકાર વહ જીવાદિક પદાર્થોં મેં યા વીતરાગપ્રતિપાદિત આગમમેં ઉત્સર્ગ ઓર અપવાદ માર્ગસે પ્રમાણ નયોંકે દ્વારા યથાર્થપ્રતિપાદકતા જાનકર ડસે ઉપાદેયકોટિમેં

ઉત્તર—આ આશંકા બ્યાજબી નથી, કેમ કે જ્યાં વિવક્ષિત ધર્મની જ પ્રધાનતા માનવામાં આવે અને બાકીના બીજા ધર્મોનો તિરસ્કાર કરવામાં આવે ત્યાં જ એકાન્તતા આવે છે. નયવાક્યમાં સંપૂર્ણ એકાન્તપ્રતિપાદકતા નથી. યદ્યપિ નય પોતાદ્વારા ગૃહીત ધર્મને જ પ્રતિપાદિત કરે છે; પરંતુ એ વસ્તુગત અનેક ધર્મોનો તિરસ્કાર કરતો નથી. પરંતુ એની તરફ તે સમભાવ ધારણ કરે છે, આ રીતે નયવાક્યમાં દુર્નયતા-સર્વથા-એકાન્ત-પ્રતિપાદકતા આવતી નથી.

શંકા—આ પ્રકારના કથનથી નયવાક્યમાં જ્યારે પ્રમાણતા આવે છે તો એને પ્રમાણ વાક્યથી ભિન્ન કેમ માનવું જોઈએ? એનો સમાવેશ પ્રમાણવાક્યોમાં કેમ નથી કરાતો?

ઉત્તર—શંકા બરોબર નથી; કેમ કે જે રીતે સમુદ્રનું એક ટીપુ અસમુદ્ર અને સમુદ્ર બની શકતું નથી, પરંતુ સમુદ્રનો એક દેશ કહેવાય છે, એ જ રીતે નયવાક્ય પણ પ્રમાણનો એક દેશ માનવામાં આવેલ છે. એ પ્રમાણ પણ નથી તેમ અપ્રમાણ પણ નથી. આ રીતે છવાદિક પદાર્થોમાં અને વીતરાગ પ્રતિપાદિત આગમમાં ઉત્સર્ગ અને અપવાદ માર્ગથી પ્રમાણ નયો દ્વારા યથાર્થ-પ્રતિપાદકતા બાણી તેને ઉપાદેયકોટિમાં અને મિથ્યાદષ્ટિઓના સિદ્ધાંતોને હેય



શાસને લોકે આલીનગુપ્ત:-આલીન:-આ=સર્વતસ્તપસિ સંયમે ગુરુપદેશે પરસ-મયનિરાકરણે ચ લીન:=તત્પર: ગુપ્ત:=કૂર્મવત્ સંયતેન્દ્રિયનોન્દ્રિયશ્ચ સન્ ‘નિષ્ઠિ-તાર્થી’ નિષ્ઠિત:=સકલકર્મક્ષયરૂપત્વાન્મોક્ષ: સોઽર્થ:=પ્રયોજનમસ્યાસ્તીતિ સ નિષ્ઠિતાર્થી=મોક્ષાભિલાષી વીર:=કર્મવિદારણનિપુણ: ‘આરામમ્’ આ=

ઔર મિધ્યાદષ્ટિયોંકે સિદ્ધાન્તકો હેયકોટિમેં સ્થાપિત કર વીતરાગ કે માર્ગમેં નિ:શંક બન આચાર્યકે નિર્દિષ્ટ માર્ગમેં યથાર્થ પ્રવૃત્તિશીલ હોતા હૈ ।

“સર્વત: સર્વાત્મના” હન દો પદોંકા યહ મી અર્થ હોતા હૈ કિ આખ્યન્તર એવં બાહ્યરૂપસે તથા દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાલ ઔર ભાવકો લેકર વહ મેધાવી મુનિ વીતરાગકથિત ઉપદેશરૂપ આગમકા વિચાર કરનેવાલા હોતા હૈ । ઇસલિયે જો વસ્તુ જિસ દ્રવ્ય ક્ષેત્રાદિક કી અપેક્ષાસે હેય હોતી હૈ વહી વસ્તુ અન્ય દ્રવ્ય ક્ષેત્રાદિકકી અપેક્ષાસે ઉપાદેય મી હો જાતી હૈ ।

ઇસ પ્રકાર ઇસ જિનશાસનરૂપી લોક, તપ, સંયમ, ગુરુકે ઉપદેશકે પાલન કરને ઔર પરસમયકે નિરાકરણ કરનેમેં સર્વ પ્રકારસે કટિબદ્ધ વહ મુનિ કચ્છપકી તરહ અપની ઇન્દ્રિયોં એવં નોન્દ્રિય (મન)કા સંવરણ કરતા હુઆ સમસ્ત કર્મોંકા ક્ષયસ્વરૂપ-મોક્ષ-પ્રયોજનવાલા હોતા હૈ । ઇસ પ્રયોજનકા સાધન જો સંયમ હૈ ઉસમેં ફિર ઇસકી નિર-વચ પ્રવૃત્તિ હોતી હૈ; કારણ કિ મુક્તિકા લાભ વિના કર્મોંકે ક્ષય હુએ નહીં હોતા હૈ । કર્મોંકા ક્ષય મી વિના સંયમકી આરાધના કિયે હોતા

કોટિમાં ગણી વીતરાગના માર્ગમાં નિ:શંક બની આચાર્ય સમજાવે તે માર્ગમાં તે યથાર્થ પ્રવૃત્તિશીલ બને છે.

“સર્વત: સર્વાત્મના” આ બે પદોનો એ પણ અર્થ થાય છે કે આખ્યન્તર અને બાહ્ય રૂપથી તથા દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવને લઈ એ મેધાવી મુનિ વીતરાગે કહેલ ઉપદેશરૂપ આગમનો વિચાર કરવાવાળો હોય છે. આ માટે જે વસ્તુ જે દ્રવ્ય-ક્ષેત્ર-દિકની અપેક્ષાથી હેય હોય છે એ જ વસ્તુ બીજા દ્રવ્ય-ક્ષેત્રાદિકની અપેક્ષાથી ઉપાદેય પણ બની જાય છે.

આ પ્રકારે આ જીનશાસનરૂપી લોક, તપ, સંયમ, ગુરુના ઉપદેશનું પાલન અને પરસમયનું નિરાકરણ કરવામાં સર્વ પ્રકારથી કટિબદ્ધ એવા મુનિ કાચબાની માફક પોતાની ઇન્દ્રિયો અને મનનું સંવરણ કરીને સમસ્ત કર્મોના ક્ષયસ્વરૂપ-મોક્ષ-પ્રયોજનવાળો બને છે. આ પ્રયોજનનું સાધન જે સંયમ છે તેમાં તેની નિરવચ પ્રવૃત્તિ બને છે, કારણ કે મુક્તિનો લાભ કર્મક્ષય વિના થતો નથી. કર્મોનો ક્ષય પણ સંયમની આરાધના વગર થતો નથી. સંયમનો લાભ થવાથી જ આત્મા પોતાના નિજ

સમન્તાદ્ રમયત્યાત્માનં સ્વસ્વરૂપે યઃ સ આરામઃ સંયમસ્તં પરિજ્ઞાય=જ્ઞપરિજ્ઞયા જ્ઞાત્વા આસેવનપરિજ્ઞયાઽઽસેવ્ય ચ પરિવ્રજેત્=નિરવધાચરણે વિહરેત્ । હે શિષ્ય! ત્વં સદા=સર્વસ્મિન્ કાલે આગમેન=વીતરાગોપદેશેન આચાર્યોપદેશેન ચ પરાક્રમેથા:=સંયમે પરાક્રમં કુરુ । ‘ઇતિ’ ઇત્યધિકારસમાપ્તૌ ‘બ્રવીમિ’ ઇતિ પૂર્વવત્ ॥સૂ.૦૩॥

કથં મુહુર્મુહુરુપદિશ્યત ઇત્યાહ—‘ઉડ્ઢં’ ઇત્યાદિ—

મૂલમ્—ઉડ્ઢં સોયા અહો સોયા, તિરિયં સોયા વિયાહિયા ।  
 ણ્ણ સોયા વિઅક્ખાયા, જેહિં સંગંતિ પાસહ ॥ સૂ.૦ ૪ ॥

ઢાયા—ઊર્ધ્વં સ્ત્રોતાંસિ અધઃ સ્ત્રોતાંસિ, તિર્યક્ સ્ત્રોતાંસિ વ્યાહતાનિ । ણ્ણતાનિ સ્ત્રોતાંસ્યપ્યાખ્યાતાનિ, યૈઃ સજ્ઞમિતિ પશ્યત ॥ સૂ.૦ ૪ ॥

ટીકા—‘ઊર્ધ્વ’ મિત્યાદિ—ઊર્ધ્વમ્=ઊર્ધ્વલોકે સ્વર્ગાદૌ સ્ત્રોતાંસિ=આસ્રવ-  
 દ્વારાણિ મિથ્યાત્વાવિરત્યાદીનિ વર્તન્તે તત્રાપિ દેવસમ્બન્ધિ કામભોગસેવનાત્,  
 નહીં હૈ । સંયમકે લાભ હોને પર હી આત્મા અપને નિજ સ્વરૂપમેં રમણ  
 કરતા હૈ, સ્વસ્વરૂપમેં રમણતા હી તો સંયમ હૈ ।

ઇસ પ્રકારસે વહ જ્ઞપરિજ્ઞાસે જાન કર ઓર આસેવન પરિજ્ઞાસે  
 ઉસકા સેવન કરતા હૈ, નિરવધ આચરણ કરનેમેં પ્રવૃત્તિશીલ બન સદા  
 ઉસી ઓર મગ્ન રહતા હૈ । ઇસ પ્રકારકે ઉપદેશસે સૂત્રકાર શિષ્યજનકો  
 સમજાતે હુણ કહતે હૈં કિ હે શિષ્ય ! તુમ મી સદા—સર્વકાલ વીતરાગ  
 પ્રમુકે ઉપદેશ યા આચાર્ય મહારાજકે ઉપદેશસે સંયમ પાલનેકી ઓર  
 પરાક્રમશાલી બનો । સૂત્રસ્થ ‘ઇતિ’ શબ્દ અધિકારકી સમાપ્તિકા સૂચક  
 હૈ ‘બ્રવીમિ’ પદકા વ્યાખ્યાન પહિલે કર્કે સ્થાનોંપર લિખા જા ચુકા હૈ ॥સૂ.૦૩॥

વારંવાર સંયમમેં પ્રવૃત્તિ કરનેકા ઉપદેશ ક્યોં દિયા જાતા હૈ? ઇસ  
 કા સમાધાન કરને નિમિત્ત સૂત્રકાર કહતે હૈ—‘ઉડ્ઢં સોયા’ ઇત્યાદિ ।

સ્વરૂપમાં રમણ કરે છે. સ્વસ્વરૂપમાં રમણતા એ જ સંયમ છે. આ પ્રકારે તે જ્ઞ-  
 પરિજ્ઞાથી જાણીને અને આસેવન પરિજ્ઞાથી તેનું સેવન કરે છે, અને નિરવધ  
 આચરણ કરવામાં પ્રવૃત્તિશીલ બની સદા તે તરફ મગ્ન રહે છે. આ પ્રકારના  
 ઉપદેશથી સૂત્રકાર શિષ્યજનને સમજાવતાં કહે છે કે હે શિષ્ય ! તમે પણ સદા  
 સર્વકાળ વીતરાગ પ્રભુના ઉપદેશ અને આચાર્ય મહારાજના ઉપદેશથી સંયમ પાલનની  
 તરફ પરાક્રમશાળી બનો. સૂત્રસ્થ ઇતિ શબ્દ અધિકારની સમાપ્તિનો સૂચક છે. “બ્રવીમિ”  
 આ પદનું વ્યાખ્યાન આગળ કેટલાક સ્થાનોમાં કહેવાઈ ગયાં છે. (સૂ.૦ ૩)

વારંવાર સંયમમાં પ્રવૃત્તિ કરવાનો ઉપદેશ કેમ આપવામાં આવે છે. આનું  
 સમાધાન કરવા નિમિત્તે સૂત્રકાર કહે છે “ઉડ્ઢં સોયા” ઇત્યાદિ !



अधः=अधोलोके स्रोतांसि=आस्रवद्वाराणि भवनपतिसुखासेवनात्, तिर्यग्लोके=मनुष्यलोके स्रोतांसि तिर्यङ्मनुष्यव्यन्तरविषयसुखसेवनात् व्याहृतानि कथितानि।

उर्ध्व, अधः और तिर्यग् ( मध्य ) इन तीनों लोकोंमें कर्मोंके आने के अनेक द्वार-कारण शास्त्रोंमें प्रतिपादित किये गये हैं। सामान्यतया-मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, प्रमाद और योग ये कर्मबन्धके कारण होते हैं। प्रत्येक गतिमें अथवा इन तीन लोकमें ऐसा कोई सा भी स्थान नहीं है कि जहां पर जीव कर्मोंके बन्धसे रहित हो। बन्ध बिना आस्रवके नहीं होता है, अतः जो कारण बन्धके हैं वे ही आस्रवके समझना चाहिये। स्वर्ग आदि में इन कारणोंके अतिरिक्त भी कर्मास्रवके और भी कई कारण हैं। यद्यपि इन कारणकलापोंका समावेश पूर्वोक्त कारण-कलापोंमें ही हो जाता है, फिर भी यहां पर जो देवगति संबंधी विषय सुखोंका सेवन उनके आस्रवका कारण बतलाया गया है वह शिष्य-जनोंको विशेष रीतिसे समझानेके लिये ही कहा गया है। इसी प्रकार अधोलोक एवं तिर्यग्लोकमें भी यही बात समझना चाहिये। अधोलोक में नरकगतिमें नपुंसकलिङ्गका उदय होनेसे वहां पर जीवों-नार-कियोंको वैषयिक सुखोंका आसेवनजन्य कर्मोंका आस्रव कैसे हो सकता है? यह आशंका यद्यपि हो सकती है, तो भी इस आशंकाका समाधान यही है कि नपुंसक वेदके उदयमें बाह्यरूप में वैषयिक सुखों-रतिसम्बन्धी

उर्ध्व, अधः અને તિર્યગ્ આ ત્રણે લોકોમાં કર્મોને આવવાનાં અનેક દ્વાર-કારણ શાસ્ત્રોમાં જણાવેલ છે. સામાન્ય રીતે-મિથ્યાત્વ, અવિરતિ, કષાય, પ્રમાદ અને યોગ આ કર્મબંધનાં કારણ બને છે. પ્રત્યેક ગતિમાં અથવા આ ત્રણે લોકમાં એવું કોઈ પણ સ્થાન નથી કે જ્યાં જીવ કર્મોના બંધથી રહિત હોય. બંધ આશ્રવ વિના બનતો નથી; માટે જે કારણ બંધ માટે છે તે જ કારણ આશ્રવનું સમજવું. સ્વર્ગ આદિમાં આ કારણોથી અતિરિક્ત પણ કર્માસ્રવના બીજાં પણ કેટલાંક કારણો છે; આથી આ કારણ-કલાપોનો સમાવેશ પૂર્વોક્ત કારણ-કલાપોમાં જ થઈ જાય છે, છતાં પણ અહીં જે દેવગતિસંબંધી વિષયસુખોનાં સેવન, એના આશ્રવનું કારણ બતાવેલ છે તે શિષ્યજનોને વિશેષરીતિથી સમજાવવા માટે જ કહેલ છે. આ જ પ્રકારે અધોલોક અને તિર્યગ્લોકમાં પણ આ વાત સમજવી જોઈએ. અધોલોકમાં નરકગતિમાં નપુંસક લિંગનો ઉદય હોવાથી તે જગ્યાએ જીવો-નારકિયોના વૈષયિક સુખોનું આસેવનજન્ય કર્મોના આસ્રવ કઈ રીતે થઈ શકે? આ આશંકા જો કે થઈ શકે છે તો પણ આ આશંકાનું સમાધાન એ છે કે નપુંસક વેદના ઉદયમાં બાહ્યરૂપમાં વૈષયિક સુખો-રતિ સંબંધી



યદ્વા-પ્રજ્ઞાપકાપેક્ષયા ઊર્ધ્વ સ્ત્રોતાંસિ-ગિરિશિખરપ્રાગ્ભારનિતમ્બપ્રપાતોદકા-  
દીનિ, અધોઽપિ-ગર્તનદીતટકન્દરાદીનિ, તિર્યગપિ ઉદ્યાનપરિષત્પ્રાસાદાદીનિ  
સ્ત્રોતાંસિ જન્તૂનાં વિષયોપભોગાસ્પદાનિ વ્યાહતાનિ=વ્યાખ્યાતાનિ । एतानि=  
લોકત્રયવર્તીનિ કર્માસ્રવદ્વારાણિ નદીસ્ત્રોતાંસીવ સ્ત્રોતાંસિ આખ્યાતાનિ=કથિતાનિ,  
આનંદોંકા અનુભવ ભલે હી ન હો, પરન્તુ ઇસ વેદકે ઉદયમેં બહુત ભયંકર  
માનસિક કામપીડા હોતી હૈ, ઉસીસે જીવ કર્મોંકા આસ્રવ કિયા કરતા  
હૈ, તથા મિથ્યાત્વ આદિ કારણ તો વહાં સ્પષ્ટ હૈં હી ।

દૂસરે-ઇસ અધોલોકમેં ભવનપતિયોંકા નિવાસસ્થાન હૈ, વહાં વિષ-  
યોંકા સેવન ભવનપતિ આદિ કિયા કરતે હૈં । ઇસ અપેક્ષાસે અધોલોક  
ભી કર્માસ્રવકે કારણસે રહિત નહીં હૈ । તિર્યગ્લોક-મધ્યલોકમેં ભી યહી  
અવસ્થા હૈ, યહાં પર ભી મનુષ્યગતિ સંબંધી, તિર્યગ્ગતિ સમ્બન્ધી ઓર  
વ્યન્તરદેવ સમ્બન્ધી વિષય સુખોંકા સેવન કર્મોંકે આસ્રવકા કારણ  
સ્પષ્ટ રૂપ હૈ ।

અથવા પ્રજ્ઞાપકકી અપેક્ષાસે-ઉર્ધ્વસ્ત્રોત, ગિરિશિખર આદિ સ્થિત  
પ્રપાતજલ હૈં, અધઃસ્ત્રોત-ગહ્વઢા, નદીતટ, કન્દરા આદિ હૈં, તિર્યક્સ્ત્રોત-  
ઉદ્યાન પરિષત્ પ્રાસાદ આદિ હૈં । યે સવ વૈષયિક સુખોંકે સ્થાનભૂત હૈં,  
જીવ ઇન સ્થાનોંમેં વૈષયિક સુખ સેવન કરતે હૈં તો જિસ પ્રકાર નદી

આનંદોનો અનુભવ ભલે ન હોય પરંતુ આ વેદના ઉદયમાં ખૂબ જ ભયંકર માનસિક  
કામપીડા થાય છે. આથી જીવ કર્મોનો આસ્રવ કર્યા કરે છે. તથા મિથ્યાત્વ  
આદિ કારણ તો ત્યાં સ્પષ્ટ છે જ.

ખીજું આ અધોલોકમાં ભવનપતિયોનું નિવાસસ્થાન છે ત્યાં વિષયોનું  
સેવન ભવનપતિ આદિ કરે છે, આ અપેક્ષાથી અધોલોક પણ કર્માસ્રવના કારણથી  
રહિત નથી. તિર્યગ્લોક-મધ્યલોકમાં પણ એવી જ અવસ્થા છે. ત્યાં પણ મનુષ્ય-  
ગતિ સંબંધી, તિર્યગ્ગતિ સંબંધી અને વ્યન્તરદેવ સંબંધી વિષયસુખોનાં સેવન  
કર્મોના આશ્રવનું કારણ સ્પષ્ટ રૂપથી છે.

અને પ્રજ્ઞાપકની અપેક્ષાથી-ઉર્ધ્વસ્ત્રોત-ગિરિશિખર આદિ સ્થિત પ્રપાતજળ  
આદિ છે, અધઃ સ્ત્રોત-ખાડો, નદીતટ, કન્દરા આદિ છે, અને તિર્યક્સ્ત્રોત-  
ઉદ્યાન, પરિષત્, પ્રાસાદ આદિ છે. આ સઘળાં વૈષયિક સુખોનાં સ્થાન છે.  
જીવ આ સ્થાનોમાં વૈષયિક સુખ સેવન કરે છે. જે પ્રકારે નદી આદિ જળા-

પાપોપાદાનકારણૈસ્ત્રિવિધકર્માસ્રવૈસ્તૈર્યૈઃ પૂર્વોક્તૈઃ સર્જન=ભૂતાનાં સમાસક્તિ કર્મા-  
ભિષ્વર્જનં વા પશ્યત=પૂર્યં પ્રેક્ષ્યમ્, ઇતિ હેતોર્યસ્માદભિષ્વર્જાત્ સ્રોતાંસિ ભવન્તિ તસ્મા-  
દાગમોક્તસંયમમાર્ગે સર્વતઃ=સર્વાત્મના પરાક્રમેથા ઇતિ પૂર્વેણ સમ્બન્ધઃ ॥ સુ ૦ ૪ ॥

આદિ જલાશયોંમેં જલકે આનેકે કારણભૂત સ્રોત હુઆ કરતે હૈં उसी प्रकार ये सब भी कर्मोंके आनेके स्रोत-द्वार हैं।

इन तीन प्रकारके द्वारोंसे कि जिनसे उन २ लोकोंमें रहे हुए जीवों को नवीन कर्मोंका प्रतिसमय आस्रव होता रहता है—इस जीवकी आसक्ति होती रहती है, अथवा इन तीन प्रकारके कर्मोंके आस्रवके कारणोंद्वारा आगत कर्मोंसे इस जीवका सम्बन्ध होता रहता है; इसलिये शिष्योंको समझाते हुए सूत्रकार कहते हैं कि जब यह बात स्पष्ट है तो हे शिष्य! तुम ऐसा प्रयत्न करो कि जिससे तुम्हारा इन स्थानोंसे सम्पर्क न हो। इनसे संपर्क छुड़ानेका एक मात्र कारण आगममें प्रतिपादित संयममार्ग का आराधन ही है; इसलिये उस संयमकी आराधना करनेके लिये तुम सदा सर्वप्रकारसे कटिबद्ध रहो।

भावार्थ—“ वारंवार संयममें प्रवृत्ति करानेका उपदेश क्यों दिया जाता है ? ” इस प्रकारके प्रश्नका समाधान इस सूत्रद्वारा किया गया है और वह संक्षिप्तमें यही बतलाया गया है कि संयम ही कर्मोंके आस्रव का निरोधक है, अतः उसमें ही प्रवृत्ति करनी चाहिये; इसीलिये ही

શયોમાં પાણીને આવવાનાં કારણભૂત ઝરણુ થયા કરે છે આવી રીતે એ સઘળાં પણુ કર્મને આવવાનાં દ્વાર છે.

આવા ત્રણ પ્રકારના દ્વારોથી કે જેનાથી તે તે લોકોમાં રહેલા જીવોને નવીન કર્મોનો પ્રતિસમય આસ્રવ થતો રહે છે—તે જીવની આસક્તિ થતી રહે છે, અથવા આ ત્રણ પ્રકારના કર્મોના આસ્રવના કારણદ્વારા આગત કર્મોથી આ જીવનો સંબંધ થઈ રહ્યો છે. આ કારણે શિષ્યોને સમજાવતાં સૂત્રકાર કહે છે કે જ્યારે આ વાત સ્પષ્ટ છે તો હે શિષ્ય! તમે એવો પ્રયત્ન કરો કે જેથી તમારો આવા સ્થાનોમાં સંપર્ક ન થાય, આનાથી સંપર્ક છોડાવાનું એકે માત્ર કારણ આગમમાં પ્રતિપાદિત સંયમનું આરાધન જ છે. આ માટે સંયમની આરાધના કરવા સાડ તમે સદા સર્વ પ્રકારથી કટિબદ્ધ રહો.

ભાવાર્થ:—‘ વારંવાર સંયમમાં પ્રવૃત્તિ કરાવવાનો ઉપદેશ કેમ આપવામાં આવે છે ? ’ આ પ્રકારના પ્રશ્નનું સમાધાન આ સૂત્રદ્વારા કરેલ છે. અને તે સંક્ષિપ્તમાં એ જ બતાવવામાં આવ્યું છે કે સંયમ જ કર્મોના આસ્રવનો નિરો-

અન્યમપ્યુપદેશમાહ—‘ આવટું ’ ઇત્યાદિ—

મૂલમ્—આવટું તુ પેહાણ્ એત્થ વિરમિઝ્જ વેયવી, વિણઙ્ગત્તુ સોયં નિક્કલ્લમ્મ એસમહં અકમ્મા જાણઙ્ગ પાસઙ્ગ પઢિલેહાણ્ નાવ-કંસલ્લ ઇહ આગઙ્ગ ગઙ્ગ પરિજ્ઞાય અચ્ચેઙ્ગ જાઙ્ગમરણસ્સ વટ્ઠમગ્ગં વક્ખવાયરણ્ ॥ સૂ. ૫ ॥

છાયા—આવર્ત તુ પ્રેક્ષ્યાત્ર વિરમેદ્વેદવિત્, વિનેતું સ્તોતો નિષ્કમ્ય એપ મહાન અકર્મા જાનાતિ પશ્યતિ પ્રત્યુપેક્ષ્ય નાવકાઙ્ગતીહાઙ્ગગતિં ગતિં પરિજ્ઞાય અત્યેતિ જાતિમરણસ્ય વર્તમાર્ગે વ્યાખ્યાતરતઃ ॥ સૂ. ૫ ॥

ટીકા—‘ આવર્ત ’મિત્યાદિ—અત્ર=ઇહ જિનશાસને લોકે વા, વેદવિત્=વીતરાગપ્રણીતાઙ્ગમજ્ઞઃ, આવર્ત=મિથ્યાત્વાવિરત્યાદિરૂપં ભાવાવર્ત, તુ—શબ્દેન

ઉસમેં પ્રવૃત્તિ કરનેકા ચાર ચાર ઉપદેશ દિયા જાતા હૈ । લોકમેં એસા કોઈ સા મી સ્થાન નહીં હૈ કિ જહાં રહ્ કર જીવ કર્મોંકે આસ્રવસે રહિત હો સકે । ઉર્ધ્વલોક, મધ્યલોક ઓર અધોલોક યે સબ હી સ્થાન કર્મોંકે આસ્રવકે કારણોંસે ભરે પડે હૈ । અતઃ એક સંયમરૂપ હી માર્ગ એસા હૈ જો કર્મોંકે આસ્રવકો રોકતા હૈ । ઇસલિયે ઉસીમેં પ્રવૃત્તિ કરની ચાહિયે ।

ઇસી વિષય સે લગતી હુઈ ઓર મી વાત સૂત્રકાર કહતે હૈ—  
“ આવટું ” ઇત્યાદિ ।

જો મનુષ્ય ઇસ લોકમેં અથવા ઇસ પર્યાય મેં વીતરાગપ્રણીત આગમ કા જ્ઞાના હૈ ઉસકા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ મિથ્યાત્વ અવિરતિ આદિરૂપ જો ભાવ આવર્ત હૈં ઉનસે, તથા “ તુ ” ઇસ શબ્દસે ગૃહીત શબ્દાદિક વિષ-

ધક છે. માટે તેમાં જ પ્રવૃત્તિ કરવી જોઈએ. આ માટે જ એવી પ્રવૃત્તિ કરવાનો ઉપદેશ વારંવાર આપવામાં આવે છે. લોકમાં એવું કોઈ પણ સ્થાન નથી કે જ્યાં રહીને જીવ કર્મોના આસ્રવથી રહિત બની શકે. ઉર્ધ્વલોક, મધ્યલોક અને અધોલોકમાં સઘળાં સ્થાન કર્મોના આસ્રવના કારણથી ભરેલાં છે. આથી એક સંયમરૂપ માર્ગ એવો છે જે કર્મોના આસ્રવને રોકે છે. આ માટે એમાં પ્રવૃત્તિ કરવી જોઈએ.

આ વિષયને લગતી બીજી એક વાત પણ સૂત્રકાર કહે છે. “ આવટું ” ઇત્યાદિ.

જે મનુષ્ય આ લોકમાં અથવા આ પર્યાયમાં વીતરાગ પ્રણીત આગમનો જ્ઞાતા છે, તેનું કર્તવ્ય છે કે તે મિથ્યાત્વ અવિરતિ આદિરૂપ જે ભાવ આવર્ત છે તેનાથી, તથા “ તુ ” આ શબ્દથી ગૃહીત શબ્દાદિક વિષયથી આવર્તોથી; અથવા



શબ્દાદિવિષયાવર્ત કર્મબન્ધાવર્ત વા પ્રેક્ષ્ય=પર્યાલોચ્ય વિરમેત્=આસ્રવદ્વારેભ્યો નિવર્તેત, તેષાં પ્રતિરોધં કુર્યાદિત્યર્થઃ । કિં તેન પ્રતિરોધેનેત્યાહ-‘વિનેતુ’ મિત્યાદિ । યઃ સ્ત્રોતઃ=કર્મણામાસ્રવદ્વારં વિનેતુમ્=અપનેતું=દૂરીકર્તુ નિષ્ક્રમ્ય=પ્રવ્રજ્ય એષઃ=અયં પ્રત્યક્ષભૂતઃ, મહાન્=ઉદારચરિતો મહાપુરુષઃ ‘અકર્મા’ ન વિદ્યતે કર્મ ઘાતિરૂપં યસ્ય સોઽકર્મા ક્ષીણઘાતિકર્મા અત એવ જાનાતિ સામાન્યરૂપેણ તતઃ પશ્યતિ=

યરૂપી આવત્તોસે, અથવા કર્મબન્ધરૂપ આવત્તોસે વિચારપૂર્વક અવશ્ય ૨ વિરક્ત બને । સંસારમેં મિથ્યાત્વ અવિરતિ આદિ યે સર્વ કર્મોં કે આસ્રવ કે કારણ બતલાયે ગયે હૈં । इनके द्वारा ही जीव नवीन २ કર્મોંકા આસ્રવ ઔર બંધ કિયા કરતા હૈ । इन आस्रवों के कारणोंको रोकनेके लिये सबसे मुख्य कर्तव्य है कि वीतरागप्रणीत आगमका ज्ञाता बनें । इस प्रकारके ज्ञातृत्वभावसे जीव यह भलीभांति समझ सकता है कि इस संसारमें रुलानेका अथवा शब्दादिक विषयकषायोंमें फंसानेका प्रधान कारण मिथ्यात्व और अविरति परिणाम हैं । इस प्रकार जब वह इन आवत्तोंका प्रतिरोध करनेका दृढसंकल्पी हो जाता है तब वह नियमसे इन आवत्तोंकी निरोधिका जिनदीक्षाको अंगीकार कर अपने मार्गको प्रशस्त बनाता हुआ आगे २ के गुणस्थानों पर चढ़ कर उदारचरित महात्मा पुरुषोंकी श्रेणिमें परिगणित होने लगता है । एक समय ऐसा भी आता है कि वह परिणामोंकी अत्यन्त निर्मलताके प्रभावसे घातिया કર્મોંકા વિનાશક બન અનન્ત દર્શન ઔર અનન્ત જ્ઞાનકા ધારક કેવલિ-

કર્મબંધરૂપી આવર્તોથી વિચારપૂર્વક અવશ્ય અવશ્ય વિરક્ત બને. સંસારમાં મિથ્યાત્વ અવિરતિ આદિ જે સઘળાં કર્મોના આશ્રવનાં કારણ બતાવેલ છે એના દ્વારા જ જીવ નવીન નવીન કર્મોના આશ્રવ અને બંધ કર્યા કરે છે. આ આસ્રવોના કારણોને રોકવા માટે પહેલું એ કર્તવ્ય છે કે વીતરાગપ્રણીત આગમનો જાણ-કાર બને. આ પ્રકારના જ્ઞાનના ભાવથી જીવ સારી પેઠે એ સમજી શકે છે કે આ સંસારમાં ભરમાવવાનું અને શબ્દાદિક વિષય કષાયોમાં ફસાવવાનું પ્રધાન કારણ મિથ્યાત્વ અને અવિરતિ પરિણામ છે. આ પ્રકારે જ્યારે એ આવા આવરણોનો પ્રતિરોધ કરવાનો દૃઢસંકલ્પી બને છે ત્યારે તે નિયમથી એ આવરણોના નિરોધક જીનદીક્ષાનો અંગીકાર કરી પોતાનો માર્ગ મોકળો બનાવી આગળ ને આગળ વધવા ગુણસ્થાનો પર ચઢી ઉદારચરિત મહાત્મા પુરુષોની શ્રેણીમાં પરિગણિત બને છે. એક સમય એવો પણ આવે છે કે પરિણામોની અત્યંત નિર્મળતાના પ્રભાવથી તે ઘાતિયા કર્મોનો વિનાશક બની અનન્ત જ્ઞાન

વિશેષરૂપેનાવબુધ્યતે, સામાન્યજ્ઞાનપૂર્વકમેવ વિશેષજ્ઞાનં જાયતે, ન હિ સામાન્યરૂપેના-  
જ્ઞાતો ઘટો નીલાદિઘટસ્વરૂપં યુક્તિસહસ્રેણાપિ બોધયિતું શક્નોતિ । એતેન ચોપ-  
યોગક્રમો દર્શિતઃ । સ एषોऽकर्मा किं विदध्यादित्याह—‘प्रत्युपेक्ष्ये’त्यादि—स  
विदितपरमार्थः सम्यग् विचार्य नावकाङ्क्षति=वीतरागत्वान्न किमपीच्छति ।

પરમાત્માકે પદસે વિભૂષિત હો જાતા હૈ । સૂત્રસ્થ—“ જાનાતિ પश्यति ”  
યે દો ક્રિયાપદ હસ બાતકી સૂચનાપરક હૈં કિ પરમાત્મા પહિલે, પદાર્થોંકા  
સામાન્યરૂપસે અવલોકન કરતે હૈં પશ્ચાત્ ઉન્હીં પદાર્થોં કો વિશેષરૂપસે  
જાનતે હૈં । યહ માની હુઈ બાત હૈ કિ સામાન્યજ્ઞાનપૂર્વક હી વિશેષ જ્ઞાન  
હુઆ કરતા હૈ । એસા નહીં હૈ કિ સામાન્ય જ્ઞાનકે અભાવમેં વિશેષ જ્ઞાન  
હો જાય । જબ તક પદાર્થોંકા સામાન્ય જ્ઞાન નહીં હોગા તબ તક વિશેષ  
જ્ઞાન નહીં હો સકતા, ઘટ જબ તક સામાન્ય રૂપસે અજ્ઞાત બના રહેગા  
તબ તક ઉસકા નીલાદિ ઘટ હસ પ્રકારકે વિશેષરૂપસે જ્ઞાન હો નહીં  
સકતા । એસી કોઈ બી યુક્તિ નહીં હૈ જો સામાન્યરૂપસે અજ્ઞાત પદાર્થકા  
વિશેષરૂપસે બી જ્ઞાન હો જાનેકી સાધિકા હો । હસ કથનસે પરમાત્માકે  
બી દર્શનઉપયોગ ઓર જ્ઞાનઉપયોગ યે દોનોં ક્રમિક હૈં યહ બાત પ્રદ-  
ર્શિત હોતી હૈ । પરમાત્મા વિદિતપરમાર્થ હોને સે તથા કૃતકૃત્ય હોનેસે  
નિસ્પૃહ પ્રવૃત્તિશાલી રહતે હૈં । ઉન્કે કિસી બી વસ્તુકી યાહના નહીં હોતી ।  
ચાહના—ઈચ્છા યહ મોહકા ઇક ભેદ હૈ, મોહકે સર્વથા અભાવ હો જાનેસે

અને અનન્ત દર્શનના ધારક કેવલી પરમાત્માના પદથી વિભૂષિત બની બાય છે.  
સૂત્રસ્થ “ જાનાતિ પश्यति ” આ બે ક્રિયાપદ આ વાતની સૂચના કરે છે  
કે પરમાત્મા પ્રથમ પદાર્થોને સામાન્ય રૂપથી અવલોકન કરે છે પછી તે પદાર્થોને  
વિશેષ રૂપથી બાંહે છે. આ માનેલી વાત છે કે સામાન્યજ્ઞાનપૂર્વક જ  
વિશેષજ્ઞાન થતું રહે છે. એમ નથી કે સામાન્ય જ્ઞાનના અભાવમાં વિશેષ જ્ઞાન  
પ્રાપ્ત થાય. જ્યાં સુધી પદાર્થોનું સામાન્ય જ્ઞાન થશે નહીં ત્યાં સુધી વિશેષ  
જ્ઞાન થઈ શકવાનું નથી. ઘટ જ્યાં સુધી સામાન્યરૂપથી અજ્ઞાત બની રહેશે  
ત્યાં સુધી નીલ આદિ ઘટ આ પ્રકારનું વિશેષ રૂપનું જ્ઞાન થઈ શકતું નથી.  
એવી કોઈ પણ યુક્તિ નથી જે સામાન્યરૂપથી અજ્ઞાત પદાર્થના વિશેષરૂપથી  
પણ જ્ઞાન થઈ જવામાં સાધક બને. આ કથનથી પરમાત્માના દર્શનનો ઉપયોગ  
અને જ્ઞાનનો ઉપયોગ આ બન્ને ક્રમિક છે આ વાત પ્રદર્શિત થાય છે. પરમાત્મા  
વિદિતપરમાર્થ થવાથી તથા કૃતકૃત્ય થવાથી નિસ્પૃહ—પ્રવૃત્તિશાળી રહે છે. અને  
કોઈ પણ વસ્તુની યાહના થતી નથી. યાહના—ઈચ્છા એ મોહનો એક ભેદ છે.



અપિ ચ સ એવ 'વ્યાખ્યાતરતઃ' વિ=વિવિધપ્રકારેણ પ્રધાનપુરુષાર્થત્વેનારબ્ધ-  
મૂત્રાર્થતદુભયત્વેન તપઃ સંયમાચરણેન ચ આખ્યાતઃ=કથિતો વ્યાખ્યાતો મોક્ષસ્ત્ર-  
રતઃ=તદધિગમતત્પરઃ, આત્યન્તિકૈકાન્તિકાવ્યાબાધશિવસુખક્ષાયિકજ્ઞાનદર્શનાદિ-  
યુક્ત ઇત્યર્થઃ, ઇહ મનુષ્યલોકે સ્થિતઃ સન્ જન્તૂનામ્ આગતિં ચતુર્વિધાં ગતિં પશ્ચ-  
વિધાં તત્પ્રાયોગ્યકર્મ વા પરિજ્ઞાય-દ્વિવિધપરિજ્ઞયા જ્ઞાત્વા પરિહૃત્ય ચ 'જાતિમરણસ્ય'

ઈચ્છાકા મી વહાં પર અભાવ હો જાતા હૈ । અતઃ વીતરાગ હોને સે વે  
ઈચ્છાસે સર્વથા પરે હી રહા કરતે હૈ । યે વ્યાખ્યાતરત હોતે હૈ । 'વ્યાખ્યાત  
શબ્દકા અર્થ મોક્ષ હૈ । ક્યોં કિ વહી પ્રધાન પુરુષાર્થરૂપસે કહા ગયા હૈ ।  
ઉસી મોક્ષ પુરુષાર્થકો પ્રતિપાદન કરને એવં ઉસકી પ્રાપ્તિકે નિમિત્ત હી  
પ્રમુને સૂત્ર, અર્થ ઓર સૂત્રાર્થ ઇસ રૂપસે આગમકી પ્રરૂપણા કી હૈ, તથા  
ઈસીકે નિમિત્ત તપ ઓર સંયમકે આચરણ કરનેકા ઉપદેશ હૈ । ઉસમેં  
યે રત રહતે હૈ ।

ભાવાર્થ—કર્મોંકે સર્વથા અભાવસે હોનેવાલી, પરમશુદ્ધ દશાકા  
નામ હી મુક્તિ હૈ ઓર યહ અવસ્થા બાધારહિતસુખવિશિષ્ટ હૈ, ક્ષાયિક  
જ્ઞાન ઓર ક્ષાયિક દર્શનકા સદા ઇસમેં પ્રકાશ રહતા હૈ, એસી મુક્ત  
અવસ્થાસે પરમાત્મા યુક્ત હોતે હૈ । પરમાત્મદશા હી મુક્તિદશા હૈ, ઉનસે  
ભિન્ન વહ અવસ્થા નહીં હૈ યે પરમાત્મા જીવન્મુક્ત અવસ્થામેં સંસારમેં  
રહતે હુએ મી સમસ્ત સંસારી જીવોંકી ચતુર્વિધ આગતિ ઓર પાંચ પ્રકારકી  
ગતિ અથવા ઉસકે ઉપાર્જન યોગ્ય કર્મોંકો દ્વિવિધ પરિજ્ઞાસે જાનકર ઓર

મોહનો સર્વથા અભાવ થવાથી ઇચ્છાનો પણ ત્યાં અભાવ થઈ જાય છે, આથી  
વીતરાગ હોવાથી તે ઇચ્છાથી સર્વથા દૂરજ રહ્યા કરે છે. એ વ્યાખ્યાતરત (મોક્ષગામી)  
બને છે. વ્યાખ્યાત શબ્દનો અર્થ મોક્ષ છે, કેમ કે એ પ્રધાન-પુરુષાર્થ-રૂપથી  
કહેવાયેલ છે. એ મોક્ષ પુરુષાર્થને પ્રતિપાદન કરવા અને તેની પ્રાપ્તિ નિમિત્તજ  
પ્રભુએ સૂત્ર, અર્થ અને સૂત્રાર્થ એ રૂપથી આગમની પ્રરૂપણા કરેલ છે. અને આને  
નિમિત્ત તપ અને સંયમનું આચરણ કરવાનો ઉપદેશ છે. આમાં એ રત રહે છે.

ભાવાર્થ—કર્મોના સર્વથા અભાવથી થવાવાળી પરમશુદ્ધ દશાનું નામ જ  
મુક્તિ છે, અને આ અવસ્થા બાધારહિત-સુખ-વિશિષ્ટ છે, ક્ષાયિક જ્ઞાન અને  
ક્ષાયિક દર્શનનો સદા આમાં પ્રકાશ રહે છે, પરમાત્મા આવી મુક્ત અવસ્થાથી યુક્ત  
બને છે. પરમાત્મદશા જ મુક્તદશા છે, એનાથી ભિન્ન એ અવસ્થા નથી. આ  
પરમાત્મા જીવન્મુક્ત અવસ્થામાં સંસારમાં રહેવા છતાં પણ સમસ્ત સંસારી  
જીવોની ચતુર્વિધ આગતિ અને પાંચ પ્રકારની ગતિ અથવા એના ઉપાર્જનયોગ્ય



જાતિશ્ચ=જન્મ ચ મરણ ચ-જાતિમરણ તસ્ય, વર્તમાર્ગે ગત્યાગતિરૂપપરિભ્રમણમાર્ગે  
વિકલ્પિતસંસારેષ્ટવિયોગાનિષ્ટસંયોગ-દારિદ્ર્ય - દુર્ભાગ્ય-શારીર-માનસાદ્યનેક-  
દુઃસ્વાત્મકં સંસારસ્રોતસ્તન્નિદાનં કર્મ વા અત્યેતિ=અતિક્રામતિ ઉલ્લઙ્ઘયતીત્યર્થઃ,  
નાહ્મનસયોરવિષયો લોકાગ્રે શાશ્વતઃ સિદ્ધો ભવતીતિ ભાવઃ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

તસ્ય સ્વરૂપં દર્શયતિ-‘ સઽવે ’ ઇત્યાદિ—

અને છોડકર આ સંસારસ્રોતસે કિ જો જન્મ ઓર મરણકા સ્થાન હૈ, તથા  
જિસમેં ઇષ્ટવિયોગ ઓર અનિષ્ટ યોગ બના રહતા હૈ, દરિદ્રતાકા જહાં  
નિવાસ રહતા હૈ, દુર્ભાગ્ય પાપ જહાં પર અપના પ્રભાવ જમાવે હુવે પડા  
હૈ, શારીરિક એવં માનસિક આદિ દુઃસ્વોંકી પરમ્પરા આ જીવનકો જહાં  
પીસતી રહતી હૈ, આ સર્વ સે પરે હો જાતે હૈં. જબ તક અઘાતિયા  
કર્મોંકા ઉદય અનકે રહતા હૈ તબ તક યદ્યપિ વે સંસારમેં રહતે  
હૈં; પરંતુ ફિર ખી વે અસ સંસારકી પરંપરાવર્ધક કર્મોંકે ઉપાર્જન  
સે રહિત હી રહતે હૈં. ઘાતિયા કર્મોંકે સર્વથા પ્રક્ષય હો જાને સે વે ફિર  
સે સંસારકી પ્રાપ્તિ કરાને વાલે કર્મોંકે ચક્કરમેં નહીં પડતે હૈં. અઘા-  
તિયા કર્મોંકે વિનિષ્ટ હોતે હી મુક્તિસ્થાનમેં જા વિરાજતે હૈં. યહ સ્થાન  
લોકકે અગ્રભાગમેં સ્થિત હૈ અસસે આગે ધર્માસ્તિકાયકા અભાવ હોને સે  
વે વહીંપર ઠહર જાતે હૈં. આ અવસ્થાકા નામ સિદ્ધ દશા હૈ. યહ સંસારી  
જીવોંકે વચનકે અગોચર ઓર મનસે ખી વિચારમેં નહીં આ  
સકે આસી હૈ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

આ અવસ્થાકે સ્વરૂપકો સૂત્રકાર કહતે હૈં-“ સઽવે સરા ” ઇત્યાદિ ।

કર્મોંને વિવિધ પરિજ્ઞાથી જાણી અને એને પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાથી છોડી આ સંસાર-  
સ્રોતથી કે જે જન્મ અને મરણનું સ્થાન છે, અને જેમાં ઇષ્ટવિયોગ અને અનિષ્ટ  
સંયોગ થતા રહે છે, દરિદ્રતાનાં જ્યાં નિવાસ રહે છે, દુર્ભાગ્ય પાપ જ્યાં પોતાનો  
પ્રભાવ જમાવી બેઠા છે, શારીરિક અને માનસિક આદિ દુઃખોની પરંપરા જ્યાં આ  
જીવનને પીસતી રહે છે, આ સર્વથી દૂર થઈ જાય છે. જ્યાં સુધી અઘાતિયા કર્મનો  
ઉદય એને રહે છે ત્યાં સુધી કદાચ તે સંસારમાં રહે છતાં પણ તે સંસારના પર-  
ંપરાવર્ધક કર્મોના ઉપાર્જનથી રહિત જ રહે છે. ઘાતિયા કર્મોના સર્વથા ક્ષય થઈ  
જવાથી એ ફરી સંસારની પ્રાપ્તિ કરાવવાવાળા કર્મોના ચક્કરમાં પડતા નથી.  
અઘાતિયા કર્મોના વિનિષ્ટ થવાથી મુક્તિ સ્થાનમાં જઈ વિરાજમાન બને છે. આ  
સ્થાન લોકના અગ્ર ભાગમાં સ્થિત છે. એથી આગળ ધર્માસ્તિકાયના અભાવ હોવાથી  
તે ત્યાં રોકાઈ જાય છે. આ અવસ્થાનું નામ સિદ્ધદશા છે. આ સંસારી જીવોના  
વચનથી અગોચર અને મનથી પણ વિચારમાં ન આવી શકે એવી છે. (સૂ૦ ૫)

આ અવસ્થાના સ્વરૂપને સૂત્રકાર કહે છે-“ સઽવે સરા ” ઇત્યાદિ !

મૂલમ્—સઘ્વે સરા નિયદ્વંતિ, તક્કા તત્થ ન વિજ્જઈ, મઈ તત્થ ન ગાહિયા, ઓણ અપ્પઈટ્ટાણસ્સ સ્થેયન્ને । સેનદીહે, ન હસ્સે, ન વટ્ટે, ન તંસે, ન ચરંસે, ન પઢિમંડલે, ન કિણ્હે, ન નીલે, ન લોહિણ, ન હાલિદે, ન સુક્કિલ્હે, ન સુરભિગંધે, ન દુરભિગંધે, ન તિત્તે, ન કહુણ, ન કસાણ, ન અંબિલે, ન કક્કલ્લે, ન મહાણ, ન ગરુણ, ન લહુણ, ન સીણ, ન ઉણ્હે, ન નિલ્લે, ન લુલ્લે, ન કાઠ, ન રુહે, ન સંગે, ન ઇત્થી, ન પુરિસે, ન અન્નહા, પરિન્ને, સન્ને, ઉવમા ન વિજ્જણ, અરૂવી સત્તા । અપયસ્સ પયં નત્થિ ॥ સૂ. ૬ ॥

છાયા—સર્વે સ્વરા નિવર્તન્તે, તર્કો યત્ર ન વિદ્યતે, મતિસ્તત્ર ન ગ્રાહિકા, ઓજઃ અપ્રતિષ્ઠાનસ્ય સ્વેદજ્ઞઃ । સ ન દીર્ઘો, ન હ્રસ્વો, ન વૃત્તો, ન ટ્રિસ્રો, ન ચતુસ્રો, ન પરિમંડલો, ન કૃષ્ણો, ન નીલો, ન લોહિતો, ન હારિદ્રો, ન શુક્લો, ન સુરભિગન્ધો, ન દુરભિગન્ધો, ન તિત્તો, ન કહુકો, ન કપાયો, નામ્લો, ન મધુરો, ન કર્કશો, ન મૃદુઃ, ન ગુરુઃ, ન લઘુઃ, ન શીતો, નોષ્ણો, ન સ્નિગ્ધો, ન રુક્ષો, ન કાપોતઃ, ન રુહો, ન સજ્જો, ન સ્ત્રી, ન પુરુષો, નાન્યથા, પરિજ્ઞઃ, સંજ્ઞઃ, ઉપમા ન વિદ્યતે, અરૂપિણી સત્તા । અપદસ્ય પદં નાસ્તિ ॥ સૂ. ૬ ॥

ટીકા—‘સર્વ’ ઇત્યાદિ—યત્ર સિદ્ધાવસ્થાયાં સર્વે=નિરવશેષાઃ સ્વરાઃ=ધ્વનયો નિવર્તન્તે-પ્રતિપાદ્ય-પ્રતિપાદકસમ્બન્ધા ન ઘટન્તે, શબ્દાદિવિષયાભિધેયે સતિ વાચ્ય-વાચકભાવસમ્બન્ધવિષયસ્યાવશ્યમ્ભાવાત્ । ન ચ તસ્યામવસ્થાયાં શબ્દાદયઃ પ્રવૃત્તિ-નિમિત્તતામુપલબન્ત ઇત્યાશયઃ । ન તત્ર તર્કસ્યાવસરોડપીત્યાહ—‘તર્ક’ ઇત્યાદિ—

સિદ્ધદશાકા વર્ણન કરતે હુણ સૂત્રકાર કહતે હૈં કિ ઇસ સિદ્ધ દશામેં સમસ્ત સ્વર-ધ્વનિયાં પ્રતિપાદ્યપ્રતિપાદકરૂપ સંબંધસે પર રહતી હૈં । અર્થાત્—ઇસ સિદ્ધ અવસ્થાકા પૂર્ણ-સ્વરૂપ-વર્ણન કિસીં મીં શબ્દદ્વારા નહીં હો સકતા હૈં । જો પદાર્થ શબ્દાદિકા કા વિષયભૂત હુઆ કરતા હૈં વહીં પર વાચ્યવાચકભાવ સંબંધકી ઘટના ઘટિત હોતી હૈં, સિદ્ધદશા જો શબ્દકે અગોચર હૈં ડસમેં ફિર વાચ્યવાચકભાવ સંબંધ ઘટિત મીં

સિદ્ધદશાનું વર્ણન કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે આ સિદ્ધદશામાં સમસ્ત સ્વરો-ધ્વનીઓ પ્રતિપાદ્ય-પ્રતિપાદકરૂપ સંબંધથી દૂર રહે છે. અર્થાત્—આ સિદ્ધ અવસ્થાના પૂર્ણ સ્વરૂપનું વર્ણન કોઈપણ શબ્દોદ્વારા થઈ શકતું નથી. જે પદાર્થ શબ્દાદિકાના વિષયભૂત થયા કરે છે ત્યાં વાચ્યવાચક-ભાવ-સંબંધની ઘટના ઘટિત હોય છે. સિદ્ધદશા જે શબ્દથી અગોચર છે એમાં પછી વાચ્યવાચકભાવસંબંધ ઘટિત પણ કેમ થઈ શકે. ઘટ અર્થમાં ઘટ શબ્દની પ્રવૃત્તિનિમિત્ત ઘટનરૂપ ક્રિયા છે. એટલે ઘટ



અપિ ચ તર્કઃ=ઝઘાપોહઃ પદાર્થવિશેષાધ્યવસાય इत्यर्थः ‘ एवं चेद् एवं भवेद् ’ इत्याकारकः कल्पनाविशेषो न विद्यते, शब्दादिविषयस्यावसर एव तर्कस्यावसरो भवति तदभावे कुतस्तर्कसम्भवः, एवं चेद् एवं स्यादित्युभयत्रापि शब्दविषयस्यै-  
 कैसे हो सकता है। घट अर्थमें घट शब्दकी प्रवृत्तिका निमित्त घटनरूप क्रिया है, अतः घट शब्द घट अर्थका प्रतिपादक होनेसे उनमें परस्पर वाच्यवाचकसंबंध सुघटित हो जाता है। इस प्रकार इस दशामें प्रवृत्ति के निमित्तभूत शब्दादिक उपलब्ध नहीं होते; कारण कि जो भी शब्द वहां पर प्रवृत्त होंगे वे उससे संपूर्ण धर्मका-स्वरूपका युगपत् प्रतिपादन नहीं कर सकते हैं। ध्वनियां क्रमिक होती हैं, और क्रम २ से ही वस्तु के स्वरूपका प्रतिपादन करती हैं। जिस स्वरूपका प्रतिपादन उनके द्वारा होता है वही स्वरूप उसका नहीं है, वह तो उसका प्रतिपाद्य विषय एकदेश पड़ता है, उतने स्वरूपमात्र तो वह वस्तु है नहीं; अतः अनंत-धर्मात्मक होनेसे उसका एकधर्ममुखेन सम्पूर्ण रूपसे कथन शब्दादि द्वारा हो नहीं सकता। प्रमाणसे हो जावेगा? तो इस प्रकारकी आशङ्का उत्तर यही है कि प्रमाण स्वानुभवगम्य है, वह वचनसे नहीं कहा जा सकता है, जो वचनसे कहा जाता है वह नयका विषय पड़ता है। इस अपेक्षासे यहां पर सिद्धदशाको अवाच्य कहा है। वैसे तो सिद्ध अवस्थाके स्वरूपका वर्णन शास्त्रकारोंने जितना भी हो सका है किया ही है; परन्तु यहां पर जो उसे अवक्तव्य कहा है उसका भाव सिर्फ

શબ્દ ઘટ અર્થનો પ્રતિપાદક હોવાથી એનામાં પરસ્પર વાચ્યવાચક સંબંધ સુઘટિત બને છે. આ પ્રકારે આ દશામાં પ્રવૃત્તિના નિમિત્તભૂત શબ્દાદિકે ઉપ-લબ્ધ નથી બનતા. કારણ કે જે પણ શબ્દ ત્યાં પ્રવૃત્ત હોય તે એના સંપૂર્ણ ધર્મના સ્વરૂપનું યુગપત્ ( એકીસાથે ) પ્રતિપાદન કરી શકતા નથી. ધ્વનીયો ક્રમ-વાર થાય છે અને ક્રમ ક્રમથી વસ્તુના સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કરે છે. જે સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન એના દ્વારા થાય છે એ જ આ સ્વરૂપ એતું નથી હોતું, એ તો એના પ્રતિપાદ્ય વિષય એકદેશ પડે છે. તાવત્સ્વરૂપ માત્ર તો એ વસ્તુ નથી, આથી અનંત ધર્માત્મક હોવાથી એતું સંપૂર્ણ રૂપથી કથન એક ધર્મવડે શબ્દાદિદ્વારા થઈ શકતું નથી. પ્રમાણથી થઈ જશે?—આ પ્રકારની આશંકાનો ઉત્તર આ છે કે પ્રમાણનું કથન સ્વાનુભવગમ્ય છે, એ વચનથી કહેવાઈ શકતું નથી. જે વચનથી કહ્યું બાય છે તે નયરૂપ બને છે. આ અપેક્ષાથી અહિં સિદ્ધદશાને અવાચ્ય કહેલ છે. એમ તો સિદ્ધ અવસ્થાના સ્વરૂપનું વર્ણન શાસ્ત્રકારોથી જેટલું પણ બન્ધું છે, તે કરેલ છે પરંતુ અહીં તેને અવ્યક્ત



ઇતના હી હૈ કિ પદાર્થકા વાસ્તવિક સમસ્ત સ્વરૂપ શબ્દોંદ્રારા પ્રતિપા-  
 દિત હો હી નહીં સકતા ! જિતના સ્વરૂપ કેવલિયોંને અપને કેવલજ્ઞાનસે  
 પદાર્થકા જાના હૈ ઉસસે અનન્તવેં ભાગકી ઉન્હોંને અપની ધ્વનિ-  
 દ્વારા પરીષદાકે વીચમેં પ્રરૂપણા કી હૈ, જિતને અંશકી પ્રરૂપણા કી હૈ  
 ઉસસે અનન્તવેં ભાગકી ધારણા ગણધરોંકે જ્ઞાનમેં હુઈ હૈ । જિતની ધા-  
 રણા હુઈ હૈ ઉસસે ભી અનન્તવેં ભાગકી ઉન્હોંને રચના કી હૈ । ઇસ  
 અપેક્ષાસે ભી સિદ્ધ અવસ્થાકે સમસ્ત સ્વરૂપકા વર્ણન શબ્દોંદ્રારા નહીં  
 હો સકતા ! ઇસીલિયે ઉસ સિદ્ધ દશામેં તર્કકો ભી સ્થાન નહીં હૈ ।  
 તર્ક શબ્દકા અર્થ ઉઠાપોહ હૈ । ઉઠાપોહ ઉસીમેં હોતા હૈ જો શબ્દકા  
 વિષય હોતા હૈ । શબ્દકે અવિષયભૂતમેં તર્ક નહીં હોતા । ઇસી રૂઆલ સે  
 ટીકાકારકા યહ કથન કિ “ પદાર્થવિશેષાધ્યવસાયઃ ” પદાર્થવિશેષકા  
 અધ્યવસાય સ્વરૂપ તર્ક વહાં નહીં હોતા સર્વથા સત્ય હૈ । યદિ યહ વિષય  
 એસા હૈ તો એસા હોગા ” ઇસ પ્રકારકા કલ્પનાવિશેષ વહીં પર હોતા હૈ  
 જો શબ્દકા વિષયભૂત હોતા હૈ । યહ “ એવં ચેત્ એવં ભવેત્ ” કલ્પના-  
 વિશેષ સ્વયં શબ્દમય હૈ, ઓર યહી તર્કકા આકાર હૈ, અતઃ ઇસ પ્રકાર  
 કે તર્કકી પ્રવૃત્તિ ઉસ અવસ્થામેં નહીં હોતી, કારણ કિ “ એવં ચેત્ એવં  
 સ્યાત્ ” ઇન દોનોં જગહોંમેં શબ્દવિષય-પદાર્થકા હી અવલમ્બન હોતા

કહેલ છે એનો ભાવ ફક્ત એટલોજ છે કે પદાર્થના વાસ્તવિક સમસ્ત સ્વરૂપ  
 શબ્દોંદ્રારા પ્રતિપાદિત થઈ જ ન શકે. કેવલીઓએ પોતાના કેવલજ્ઞાનથી  
 પદાર્થનું જે સ્વરૂપ બાણેલ છે, એના અનન્તમા ભાગની એમણે પોતાના દિવ્યધ્વનિ  
 દ્વારા સભા વચ્ચે પ્રરૂપણા કરી છે. જેટલા અંશની પ્રરૂપણા કરી છે એનાથી અનન્તમા  
 ભાગની ધારણા ગણધરોના જ્ઞાનમાં થઈ છે. જેટલી ધારણા થઈ છે એથી અતન્તમા  
 ભાગની એમણે રચના કરી છે. આ અપેક્ષાથી પણ સિદ્ધ અવસ્થાનું સમસ્ત  
 રૂપનું વર્ણન શબ્દોંદ્રારા નથી થઈ શકતું. આ કારણે એ સિદ્ધદશામાં તર્કને  
 સ્થાન નથી. તર્ક શબ્દનો અર્થ ઉઠાપોહ થાય છે. ઉઠાપોહ એમાં હોય છે  
 જે શબ્દનો વિષય હોય છે. શબ્દના અવિષય ભૂતમાં તર્ક નથી હોતો. આ કારણેજ  
 ટીકાકારનું એ કથન છે કે “ પદાર્થવિશેષોઽધ્યવસાયઃ ” પદાર્થવિશેષના અધ્ય-  
 વસાય સ્વરૂપ તર્ક ત્યાં થતો નથી એ સર્વથા સત્ય છે. ‘ આ વિષય એવો છે તો  
 એમ હશે, આ પ્રકારનો કલ્પનાવિશેષ એ સ્થળે થાય છે જે શબ્દનો વિષ-  
 યભૂત હોય છે. આ “ એવં ચેત્ એવં ભવેત્ ” કલ્પનાવિશેષ સ્વયં શબ્દમય છે  
 અને એ જ તર્કનો આકાર છે. આથી આ પ્રકારના તર્કની પ્રવૃત્તિ એ અવસ્થામાં  
 નથી થતી. કારણ કે—“ એવં ચેત્ એવં સ્યાત્ ” આ બન્ને જગ્યાએ શબ્દવિષય-

વાવલમ્બનાત્, મૂલે 'તત્કા' इत्यत्र प्राकृतत्वात् स्त्रीत्वम् । तर्काभावे हेतुमाह - 'मति' रित्यादि-तत्र सिद्धावस्थायां 'मतिः' मननं मतिः=मनोव्यापारः पदार्थचिन्तनरूपा, सा चैतपत्तिक्यादिभेदाच्चतुर्विधा; न ग्राहिका=नानुभावयित्री,

है । इसी विषयको विशेष रीतिसे स्पष्ट करनेके लिये सूत्रकार-"मति-स्तत्र न ग्राहिका" कहते हैं । मतिः-मननं मतिः-विचार करनेका नाम मति है । यह मतिरूप मानसिक व्यापार कि जिसमें पदार्थोंके चिन्तनके प्रति मानसिक धारा दौड़ती रहती है तथा जिसके औत्पत्तिकी आदि ४ चार भेद हैं, उस सिद्ध दशाका अनुभव करनेवाला नहीं हो सकता । क्योंकि उस दशामें संकल्पविकल्परूप कल्पनामात्रके लिये अवसर ही नहीं है । जो कर्मोंसे युक्त-लिप्त हैं, ऐसी आत्माओंको मुक्तिकालाभ नहीं होता-इस बातको बतानेके निमित्त सूत्रकार "ओजः अप्रतिष्ठा-नस्य खेदज्ञः" कहते हैं । जो सकल कर्मोंके मलसे रहित हो चुके हैं वे ही आत्मा मोक्षसुखका अनुभव करनेवाले होते हैं, अर्थात् कर्म-मलीमस आत्मा, उस सुखसे सदा वंचित ही रहा करते हैं । अप्रति-ष्ठान शब्दका अर्थ मोक्ष है । क्योंकि औदारिक आदि शरीरोंका अथवा कर्मोंका सद्भाव इस अवस्थामें नहीं रहता है । इस मोक्षका कि जो अव्याबाधसुखस्वरूप है कर्मोंसे मलिन आत्मा अनुभव भी

પદાર્થનું જ અવલમ્બન થાય છે. આ વિષયને વિશેષ રીતથી સ્પષ્ટ કરવા માટે સૂત્રકાર-"મતિસ્તત્ર ન ગ્રાહિકા" કહે છે. મતિઃ-મનનં મતિઃ-વિચાર કરવાનું નામ મતિ છે-આ મતિરૂપ માનસિક વ્યાપાર કે જેમાં પદાર્થોના ચિન્તન તરફ માનસિક ધારા દોડતી રહે છે તથા જેના ઔત્પત્તિકી આદિ ચાર ભેદ છે એ સિદ્ધદશાનો અનુભવ કરવાવાળી બની શકતી નથી, કેમ કે તેવી દશામાં સંકલ્પવિકલ્પરૂપ કલ્પનામાત્રનો પણ અવસર નથી. જે કર્મોથી યુક્ત છે તેવા આત્માઓને મુક્તિનો લાભ થતો નથી-આ વાત બતાવવા નિમિત્ત સૂત્રકાર "ઓજઃ" ઇત્યાદિ! કહે છે. જે સકલ કર્મના ભળથી રહિત બનેલા છે એવા આત્માઓ મોક્ષ સુખનો અનુભવ કરનાર હોય છે. અર્થાત્-કર્મના ભળથી બંધાયેલ આત્માઓ એ સુખથી સદા વંચિત જ રહ્યા કરે છે. અપ્રતિ-ષ્ઠાન શબ્દનો અર્થ મોક્ષ છે. કેમ કે ઔદારિક આદિ શરીરોનો અને કર્મોનો સદ્ભાવ એ અવસ્થામાં રહેતો નથી. આ મોક્ષ કે જે અવ્યાબાધ-સુખ-સ્વરૂપ છે તેનો અનુભવ કર્મોથી મલિન આત્માઓ કઈ રીતે કરી શકે. અવ્યાબાધ-

તત્ર સંકલ્પ - વિકલ્પ - કલ્પનામાત્રસ્યાનવસરાત્ । કર્મસમન્વિતસ્ય મોક્ષગમનં ન ભવતીતિ દર્શયતિ—‘ઓજ’ ઇતિ । ઓજઃ=ઓજોરૂપઃ સકલકર્મમલરહિતત્વેન જ્યોતિઃસ્વરૂપઃ, અપિ ચ અપ્રતિષ્ઠાનસ્ય ન વિદ્યતે પ્રતિષ્ઠાનમૌદારિકાદિશરીરસ્ય કર્મણાં વા અવસ્થિતિર્યત્ર સોઽપ્રતિષ્ઠાનો મોક્ષસ્તસ્ય મોક્ષસુખસ્યેત્યર્થઃ, સ્વેદજ્ઞઃ=અનુભાવુકઃ, તત્ર વિમલજ્ઞાનસદ્ભાવાત્ । અત્ર સ્વેદશબ્દેનાઽનુભવરૂપોઽર્થો ગૃહ્યતે । કિંચ તદા સ દીર્ઘો=લમ્બો ન, હ્રસ્વો=વામનો ન, વૃત્તઃ=વર્તુલાકારો ન, ત્ર્યસ્રઃ=ત્રિકોણો ન, ચતુસ્રઃ=ચતુષ્કોણો ન, પરિમણ્ડલઃ=સંસ્થાનવિશેષવાન્ ન, ઉપલક્ષણાત્ સકલસંસ્થાનવર્જિતઃ; એતચ્ચ પરિમાણમવલમ્બ્ય પ્રોક્તમ્, અથ વર્ણમાશ્રિત્ય કથયતિ—‘ન કૃષ્ણ’ ઇત્યાદિ—કૃષ્ણો ન, નીલો ન, લોહિતઃ=રક્તો ન, હારિદ્રઃ=પીતો ન, શુક્લઃ=શ્વેતો ન; ગન્ધમાશ્રિત્યોચ્યતે ‘ન સુરભી’ ત્યાદિ—

કૈસે કર સકતે હૈં । અવ્યાવાધ સુખરૂપ મોક્ષકા અનુભવ વિના નિર્મલ જ્ઞાનકે નહીં હો સકતા । સંસારી આત્માઓ—મલિન જીવોંકે ઇસ નિર્મલ બોધકી પ્રકટતા હૈ હી નહીં । ઇસકી પ્રકટતા તો ઁન્હીંકે હોતી હૈ જો કર્મ-મલ-કલંકસે નિર્મુક્ત હો ચુકે હૈં । સ્વેદજ્ઞ-શબ્દ ઘટક સ્વેદકા અર્થ યહાંપર પ્રકરણસે અનુભવ રૂપ ગ્રહણ ક્રિયા ગયા હૈ । ઁસ મુક્તિ અવસ્થામૈં રહને વાલા આત્મા ન દીર્ઘ-વિસ્તૃત હોતા હૈ, ન લમ્બા હોતા હૈ, ન હ્રસ્વ-છોટા હોતા હૈ, ન ગોલ હોતા હૈ, ન ત્રિકોણ હોતા હૈ—ન ચતુષ્કોણ હોતા હૈ, ન પરિમણ્ડલ-ગોલ આકારવાલા હોતા હૈ, ઉપલક્ષણસે ઔર ખી જિતને આકાર હોતે હૈં ઁન આકારવાલા ખી નહીં હોતા હૈ । યહ આકાર વિષયકે અભાવકા કથન પરિમાણકો લે કર ક્રિયા હૈ । અવ વર્ણકો લેકર કથન કરતે હુએ સૂત્રકાર કહતે હૈં—કિ મુક્તિમૈં રહા હુઆ આત્મા ન કાલા હોતા હૈ, ન નીલા હોતા હૈ, ન લાલ હોતા હૈ, ન

સુખરૂપ મોક્ષનો અનુભવ નિર્મળ જ્ઞાન વિના થતો નથી. સંસારી આત્માઓ—મલિન હોવાને આ નિર્મળ બોધની પ્રગટતા છે જ નહિ. આની પ્રગટતા તો એને જ થાય છે જે કર્મમળકલંકથી નિર્મુક્ત થયા છે. સ્વેદજ્ઞ શબ્દમાં સ્થિત સ્વેદ શબ્દનો અર્થ અહિં પ્રકરણથી અનુભવરૂપ ગ્રહણ કરેલ છે. એવી મુક્તિ અવસ્થામાં રહેવાવાળા આત્મા ન દીર્ઘ-વિસ્તૃત હોય છે, ન લાંબા હોય છે, ન નાના હોય છે, ન ગોળ હોય છે, ન ત્રિકોણ હોય છે, ન ચતુષ્કોણ હોય છે, ન પરિમંડળ એટલે ગોળાકારવાળા હોય છે, ઉપલક્ષણથી એટલા પણ બીજા આકાર હોય છે તે આકારવાળા પણ નથી. આ આકાર-વિષયના અભાવનું કથન પરિણામને લઈ કહેલ છે, હવે વળી આશ્રયે સૂત્રકાર કહે છે કે મુક્તિમાં રહેલ આત્મા ન કાળા હોય છે, ન લીલા હોય છે, ન લાલ હોય છે, ન પીળા હોય છે, અને ન તો સફેદ હોય છે, ત્યાં વિશુદ્ધ આત્મા



સુરભિગન્ધઃ=સુગન્ધવાન્ ન, દુરભિગન્ધઃ=દુર્ગન્ધવાન્ ન; રસમાશ્રિત્ય કથ્યતે ' ન તિક્ત ' ઇત્યાદિ-તિક્તઃ=મરીચાદિવત્ ન, કટુકો નિમ્બાદિવદ્ ન, કષાયઃ-હરીત-ક્યાદિવદ્ ન, આમ્લઃ=અમ્લિકાવદ્ ન, મધુરો ન; સ્પર્શ નિષેધયતિ-ન કર્કશ ' ઇત્યાદિ-કર્કશઃ=કઠિનો ન, મૃદુઃ=કોમલો ન, લઘુર્ન, ગુરુર્ન, શીતો ન, ઉષ્ણો ન, સ્નિગ્ધઃ=ચિક્કળો ન, રુક્ષઃ=રસરહિતોઽપિ ન, કાપોતઃ=કાપોતલેશ્યાયુક્તો ન, મધ્યગ્રહણાદાઘન્તગ્રહણમ્, તેન સકલલેશ્યારહિત ઇત્યર્થઃ, યદ્વા-કાયઃ=કાયવાન્ ન,

ન પીલા હોતા હૈ, ઓર ન સફેદ હી હોતા હૈ । વહાં પર વિશુદ્ધ આત્મા ન અચ્છી ગંધવાલા હોતા હૈ, ન દુર્ગંધવાલા હોતા હૈ, ન મિર્ચ આદિકી તરહ તિક્ત રસવાલા હોતા હૈ, નિમ્બ-નીમ આદિકી તરહ ન કટુક રસ વાલા હોતા હૈ, હરડ આદિકી તરહ ન કષાય રસવાલા હોતા હૈ, ઇમલી આદિકી તરહ ન આમ્લ રસવાલા હોતા હૈ ઓર ન શકરકી તરહ મીઠે રસવાલા હી હોતા હૈ । ઇસી તરહ વહાં ન કઠોર સ્પર્શ હોતા હૈ, ન કોમલ સ્પર્શ હોતા હૈ, ન લઘુ સ્પર્શ હોતા હૈ, ન ભારી સ્પર્શ હોતા હૈ, ન શીત સ્પર્શ હોતા હૈ, ન ઉષ્ણ સ્પર્શ હોતા હૈ, ન સ્નિગ્ધ સ્પર્શ હોતા હૈ, ન ચિકના સ્પર્શ હોતા હૈ ઓર ન રુક્ષ સ્પર્શ હોતા હૈ । કાપોતલેશ્યા ભી વહાં નહીં હોતી હૈ । લેશ્યાઓમેં કાપોતલેશ્યા યહ મધ્યમેં આઈ હૈ, ઇસ કે ગ્રહણ સે આદિ ઓર અન્તકી લેશ્યાઓંકા ભી ગ્રહણ હો જાતા હૈ । ઇસલિયે યહ સમજના ચાહિયે કિ વહાંપર છઓં લેશ્યાઓંકા સદ્ભાવ નહીં હૈ । વહાં ઔદારિક આદિ પાંચ શરીરોમેં સે કિસી ભી શરીરકા સદ્ભાવ ન

ન સારી સુગંધવાળા હોય છે, ન દુર્ગંધવાળા હોય છે, મરચાં ઇત્યાદિની માફક ન તીખા રસવાળા હોય છે, લીમડા વિ. ની માફક ન કડવા રસવાળા હોય છે, હરડે ઇત્યાદિની માફક ન કષાયરસવાળા હોય છે, આમલી ઇત્યાદિની માફક ન ખાટા રસવાળા હોય છે. અને સાકરની માફક ન તો મીઠા રસવાળા હોય છે. આજ રીતે ત્યાં ન કઠોર સ્પર્શ હોય છે, ન કોમળ સ્પર્શ હોય છે, ન લઘુ સ્પર્શ હોય છે, ન ભારી સ્પર્શ હોય છે, ન શીતળ સ્પર્શ હોય છે, ન ઉષ્ણ સ્પર્શ હોય છે, ન સ્નિગ્ધ સ્પર્શ હોય છે, ન ચીકણો સ્પર્શ હોય છે, અને ન તો લુપ્તો સ્પર્શ હોય છે. કાપોતલેશ્યા પણ ત્યાં નથી થતી. લેશ્યાઓમાં કાપોતલેશ્યા મધ્યમાં આવેલ હોવાથી એના ગ્રહણથી આદિ અને અન્તની લેશ્યાઓનું પણ ગ્રહણ થાય છે. જોથી એ સમજવું જોઈએ કે એ સ્થળે છએ લેશ્યાઓનો સદ્ભાવ નથી. એ ઔદારિક આદિ પાંચ શરીરોમાંથી કોઈ પણ શરીરનો સદ્ભાવ ન હોવાથી તેઓ અકાય બને છે. કર્મરૂપી બીજનો સર્વથા પ્રક્ષય થઈ

ન રુહઃ, રોહતિ=પુનઃ-પુનઃ પ્રાદુર્ભવતીતિ રુહઃ=ઉત્પત્તિમાન્ ન, કર્મવીજાઙ્કુરસ્ય સર્વથા દગ્ધત્વાત્, અત એવ ન 'સઙ્ગઃ' =સઙ્ગોઽસ્યાસ્તીતિ સઙ્ગઃ=સંયોગવાન્ ન, સર્વસઙ્ગરહિત ઇત્યર્થઃ । ન સ્ત્રી, ન પુરુષઃ, નાન્યથા=સ્ત્રીપુરુષત્વાભાવાન્નપુંસકોઽપિ નેત્યર્થઃ । નિષેધવાચ્યૈરત્ર વાઙ્મનસયોરગોચરતયા કેનાપિ રૂપેણ વક્તુમશક્ય ઇતિ પ્રતિપાદિતમ્ ।

હોને સે વે અકાય હોતે હૈં । કર્મરૂપી વીજકે સર્વથા પ્રક્ષય હો જાનેસે વે ફિર મુક્તિસે ઇસ સંસારમેં પીછે લૌટ કર નહીં આતે હૈં । જવ ઉન્હેં પુનઃ સંસાર દશા હી નહીં હોતી હૈ તો ઇસસે યહ બી સ્પષ્ટ સિદ્ધ હૈ કિ વે કિસી બી પ્રકારકે સંયોગસે લિપ્ત બી નહીં હોતે હૈં । ડસ અવસ્થામેં સમસ્ત સંયોગકા ડનકે અભાવ રહતા હૈ । ડનકે ન સ્ત્રીલિઙ્ગકા, ન પુરુષલિઙ્ગકા, ઓર ન સ્ત્રી પુરુષકે અભાવસ્વરૂપ નપુંસક લિઙ્ગકા હી સદ્ભાવ હોતા હૈ, વે અલિઙ્ગ હોતે હૈં । યહાં પર રૂપાદિક પૌદ્ગલિક ધર્મેંકે નિષેધ સે યહ વાત જાની જાતી હૈ કિ વે કિસ રૂપમેં હૈં યહ હમ છદ્મસ્થ ન વચન સે કહ સકતે હૈં ઓર ન મનસે હી વિચાર સકતે હૈં । ડનકા સ્વરૂપ છદ્મસ્થ જીવોંકે મન ઓર વચનકે અગોચર હૈ । જવ યહ વાત હૈ તો હમ કિસી બી સ્વરૂપસે ડન્હેં નહીં કહ સકતે હૈં । વાણી ઓર મન યે ડોનોં હી વસ્તુઈ પૌદ્ગલિક હૈં, પૌદ્ગલિકોંસે અપૌદ્ગલિકકા ન પૂર્ણરૂપસે વર્ણન હી હો સકતા હૈ ઓર ન સ્પષ્ટરૂપસે વિચાર હી હો સકતા હૈ । શુદ્ધ સ્વરૂપકો

જવાથી તે મુક્તિથી આ સંસારમાં ફરી પાછા આવતા નથી. જ્યારે તેઓને ફરી સંસારદશા નથી થતી તો એથી એ સ્પષ્ટ છે કે એઓ કોઈ પણ પ્રકારના સંયોગથી વિમ્ન થતા નથી. તે અવસ્થામાં સમસ્ત સંયોગનો વિયોગ રહે છે. તેને ન સ્ત્રીલિંગનો, ન પુરુષલિંગનો અને ન સ્ત્રી પુરુષના અભાવ સ્વરૂપ નપુંસક લિંગનો સદ્ભાવ બને છે. તેઓ અલિંગ હોય છે. આ સ્થળે રૂપાદિક પૌદ્ગલિક ધર્મોના નિષેધથી એ વાત જણાય છે કે તેઓ કયા રૂપમાં છે તે, અમે છદ્મસ્થ છીએ માટે વચનથી ન કહી શકીએ અને ન તો મનથી વિચારી શકીએ. એનાં સ્વરૂપ છદ્મસ્થ હોવાના મન અને વચનથી અગોચર છે. જ્યારે આ વાત છે તો અમે કોઈ પણ સ્વરૂપથી એને ઓળખી શકતા નથી. વાણી અને મન બન્ને વસ્તુઓ પૌદ્ગલિક છે, પૌદ્ગલિકોથી અપૌદ્ગલિકોતું પૂર્ણ રૂપથી વર્ણન થઈ શકતું નથી. અને ન તો સ્પષ્ટરૂપથી વિચાર પણ થઈ શકે છે. શુદ્ધ સ્વરૂપને જાણવા માટે શુદ્ધ અનુભવ જ કામ આપે છે. એટલે જેનું વાણીથી વર્ણન અને

કિન્તુ પરિજ્ઞઃ=સકલાત્મપ્રદેશૈઃ સકલવસ્તુતત્ત્વસ્ય જ્ઞાતા, एवं 'સંજ્ઞઃ' સં=સમ્યગ્ જાનાતિ=પશ્યતીતિ સંજ્ઞઃ=અનન્તજ્ઞાન-દર્શનાદિસમન્વિત્વ इत्यर्थः, તત્સ્વરૂપ-મુપમયાઽપિ જ્ઞાતુમશ્ક્યમિત્યાહ-‘ઉપમે’ત્યાદિ-ઉપમાનમ્=ઉપમા=સાદૃશ્યં ન તત્ર જાનનેકે લિયે શુદ્ધ અનુભવ હી કામ દેતા હૈ। અતઃ જિસકા વાણીસે વર્ણન ઔર મનસે વિચાર તક મી નહીં હો સકતા હૈ ઉસકા કથન મી કૈસે કિયા જા સકતા હૈ યહ સ્વયં એક અનુભવગમ્ય વાત હૈ।

વે સિદ્ધ ભગવાન્ કેવલજ્ઞાનકે આવારક (ઢકન) જ્ઞાનાવરણીય કર્મકે સર્વથા વિનાશ હો જાનેસે વિશુદ્ધ સમસ્ત આત્મપ્રદેશોં કે દ્વારા સકલ વસ્તુતત્ત્વકે જ્ઞાતા હૈં, ઇસસે ઉનકા જ્ઞાન અનન્ત હૈ યહ વાત સ્પષ્ટ હો જાતી હૈ। ક્યોં કિ અનન્ત પદાર્થોંકો વિષય કરનેવાલા જ્ઞાન અનન્ત હુએ વિના નહીં રહ સકતા, તથા અનન્તજ્ઞાનકે હુએ વિના ઉન અનન્ત પદાર્થોંકા હસ્તામલકવત્ સાક્ષાત્કાર મી નહીં હો સકતા। જ્ઞાનકે પહિલે દર્શન હોતા હૈ, વિના દર્શનકે જ્ઞાનકા સદ્ભાવ નહીં માના ગયા હૈં, ઇસ લિયે જબ ઉનકે જ્ઞાનમેં અનન્તતા હૈ તો ઇસસે યહ મી યુક્તિયુક્ત હૈ કિ ઉનકા દર્શન મી અનન્ત હૈ। ઇસી વાતકા બોધન “સંજ્ઞ” ઇસ પદસે સૂત્રકારને કિયા હૈ।

શઙ્કા—જિસ પ્રકાર સાંસારિક પદાર્થોંકા વર્ણન કિસી પદાર્થકી ઉપમા દેકર કરનેમેં આતા હૈ, ઉસી પ્રકારસે સિદ્ધોંકા વર્ણન મી આપ હમેં ઉપમા દે કર સમજા દીજિયે ?

મનથી વિચાર પણુ થતો નથી એનું કથન પણુ કેમ કરી શકાય, આ સ્વયં એક અનુભવગમ્ય વાત છે.

આ સિદ્ધ ભગવાન કેવળજ્ઞાનના ઢાંકણરૂપ જ્ઞાનાવરણીય કર્મને સદા વિનાશ થવાથી વિશુદ્ધ સમસ્ત આત્મપ્રદેશો દ્વારા સકલ વસ્તુતત્ત્વના જ્ઞાતા છે; આથી તેનું જ્ઞાન અનન્ત છે, આ વાત સ્પષ્ટ છે. કેમકે અનન્ત પદાર્થોના વિષય કરવાવાળા જ્ઞાન અનન્ત થયા વગર રહેતું નથી, અને અનન્ત જ્ઞાન થયા વિના એ અનન્ત પદાર્થોના હસ્તાક્રમલવત્ સાક્ષાત્કાર પણુ થઈ શકતો નથી. જ્ઞાનનાં પહેલાં દર્શન થાય છે, દર્શન વગર જ્ઞાનનો સદ્ભાવ માનવામાં આવતો નથી. આ માટે જ્યારે એના જ્ઞાનમાં અનન્તતા છે તો આથી એ પણુ યુક્તિયુક્ત છે કે તેનું દર્શન પણુ અનન્ત છે. આ વાતનું બોધન “સંજ્ઞ” આ પદથી સૂત્રકારે કરેલ છે.

શંકા:—જે પ્રકારે સાંસારિક પદાર્થોનું વર્ણન કોઈ પદાર્થની ઉપમા આપીને કરવામાં આવે છે, એજ પ્રકારથી સિદ્ધોનું વર્ણન પણુ અમોને ઉપમા આપી સમજાવો?



વિચિતે। સિદ્ધસ્વરૂપં ન કેનાપ્યુપમાતું શક્યતે । તસ્ય કીદૃશી સત્તેત્યાહ—‘અરૂપિ-  
ણી’—ત્યાદિ—તસ્ય યુક્તાત્મનઃ સત્તા=સદ્ભાવઃ સા અરૂપિણી=કેનાપિ રૂપેણ વક્તુમ-

ઉત્તર—કહના તો ઠીક હૈ, પરન્તુ उनके आगे यदि हमें कोई उपमा  
दृष्टिपथ होती तो हम उसके द्वारा उनका वर्णन भी कर देते । परन्तु  
उनके आगे तो उपमा ही अस्त है, उनकी उपमा उनमें ही है ।  
अतः “उपमा तत्र न विद्यते ” किसी भी पदार्थकी उपमासे हम उनके  
स्वरूपका कथन नहीं कर सकते हैं । वे अनुपमेय हैं ।

શક્ટા—उनकी सत्ता कैसी है—उनके अस्तित्वका किसी भी रूपसे  
वर्णन हो सकता है?

ઉત્તર —“અરૂપિણી સત્તા” उनकी सत्ता अरूपिणी है, अतः उनके  
अस्तित्वका वर्णन किसी भी रूपसे नहीं हो सकता है । किसी भी रूप  
से जिसका कथन न हो सके उसका नाम “अरूपिणी ” है । पहिले यह  
प्रकट ही किया जा चुका है कि सिद्धदशा रूप, रस, गंध और स्पर्शादिसे  
रहित है । तथा ह्रस्व, दीर्घत्वादिक धर्म उसमें सम्भवित नहीं होते हैं ।  
ये सब पुद्गलके धर्म हैं । पुद्गल ही मूर्त्तिक है, बाकी द्रव्य अमूर्त्तिक हैं ।  
आत्मा भी कर्मबन्धकी दशामें यद्यपि मूर्त्तिक माना गया है, परन्तु  
अपने निजस्वरूप अथवा सिद्ध अवस्थाकी अपेक्षा से वह अमूर्त्तिक ही

ઉત્તર:—કહેવું તો ઠીક છે; પરંતુ એની આગળ કદાચ એમને કોઈ ઉપમા  
દૃષ્ટિપથ થાત તો એમે એનું વર્ણન પણ કરી દેત, પણ એની આગળ તો  
ઉપમાનો જ અભાવ છે, એમની ઉપમા એમનામાં જ છે. એટલે “ઉપમા  
તત્ર ન વિદ્યતે ” કોઈ પણ પદાર્થની ઉપમાથી એમે તેમના સ્વરૂપનું કથન કરી  
શકતા નથી. એ ઉપમાથી પર છે.

શંકા:—એમની સત્તા કેવી છે—એમના અસ્તિત્વનું કોઈ રૂપથી વર્ણન  
થઈ શકે છે?

ઉત્તર—“અરૂપિણી સત્તા ” એમની સત્તા અરૂપી છે. એમના અસ્તિ-  
ત્વનું વર્ણન કોઈ પણ રૂપથી થઈ શકે નહિ. કોઈ પણ પ્રકારે જેનું  
વર્ણન ન થઈ શકે તેનું નામ “અરૂપિણી ” છે. પહેલાં એ કહ્યું છે કે—  
સિદ્ધ દશા રૂપ, રસ, ગંધ અને સ્પર્શાદિથી રહિત છે તથા હ્રસ્વ,  
દીર્ઘત્વાદિકે ધર્મ એમાં સંભવિત થતો નથી. આ બધા પુદ્ગલના ધર્મ  
છે. પુદ્ગલ જ મૂર્તિક છે. બીજા દ્રવ્ય અમૂર્તિક છે. આત્મા પણ કર્મબંધની  
દશામાં મૂર્તિક માનવામાં આવે છે, પરંતુ પોતાના નિઃસ્વરૂપ અથવા સિદ્ધ  
અવસ્થાની અપેક્ષાથી અમૂર્તિક જ છે. એટલે અમૂર્તિક આત્માનું હ્રસ્વત્વ આદિ

શક્યા, તત્ર દીર્ઘત્વાદિ સકલવિષયાઽપ્રતિપાદનાત્; અપિ ચ-અપદસ્ય=ન વિદ્યતે પદં સ્થાનમવસ્થાનવિશેષો यस્ય સોઽપદસ્તસ્ય, પદં-પદ્યતે=બુદ્ધ્યતે યેનાર્થસ્તપદં =તદ્વાચકઃશબ્દઃ, તન્નાસ્તિ । યઃ કશ્ચિદભિધાતું યોગ્યો ભવતિ સ સર્વ એવ શબ્દાદિવિષયભિધાનેન વક્તું શક્યો, ન ચાયં તથેતિ તાત્પર્યમ્ ॥ મૂ.૬ ॥

હૈ। અતઃ અમૂર્ત્તિક આત્માકા દ્રસ્વત્વાદિક રૂપ ન હોનેસે અનેક દ્વારા ઉસ કે અસ્તિત્વકા વર્ણન હો બી કૈસે સકતા હૈ? અથવા “અરૂપિણી” ઇસ શબ્દકે દ્વારા મુક્ત આત્માકી સત્તા રૂપરહિત હી વર્ણિત હુઈ હૈ, તો બી તદવિનાભાવી રસ, ગંધ ઓર સ્પર્શકા બી રૂપકે નિષેધ સે નિષેધ હુઆ હી સમજના ચાહિયે ।

“અપદસ્ય પદં નાસ્તિ” જિસકા કોઈ પદ-સ્થાન અથવા અવસ્થાન વિશેષ નહીં હૈ વહ અપદ હૈ । જિસકે દ્વારા અર્થકા બોધ હોતા હૈ વહ પદ હૈ । અપદકા વાચક કોઈ પદ-શબ્દ નહીં હોતા હૈ । જો કહનેકે યોગ્ય હોતા હૈ વહી કહા જા સકતા હૈ । ઘટાદિક પદાર્થ ઘટાદિ શબ્દદ્વારા ઇસ લિયે પ્રતિપાદિત હોતે હૈં કિ વે ઉન શબ્દોદ્વારા કહે જાને યોગ્ય હોતે હૈં । વાચ્યવાચકભાવ યા પ્રતિપાદ્યપ્રતિપાદક ભાવસંબંધ અપને યોગ્ય પદાર્થોંમેં હી હુઆ કરતા હૈ, અન્યત્ર નહીં । સિદ્ધદશા અપદ હૈ; અતઃ ઇસકા વર્ણન કરનેવાલા કોઈ બી પદ નહીં હૈ । વિશેષ-યહ સબ કથન આત્માકે શુદ્ધ સ્વરૂપકી દૃષ્ટિસે નિશ્ચયનયકે અભિપ્રાયકો લેકર હી કિયા ગયા સમજના ચાહિયે । ઉનકા વાચક કોઈ શબ્દ નહીં હૈ ઇત્યાદિ કથન સર્વથા

રૂપ ન હોવાથી એની મારફત એના અસ્તિત્વનું વર્ણન પણ કઈ રીતે થઈ શકે? અથવા “અરૂપિણી” આ શબ્દ દ્વારા મુક્ત આત્માની સત્તા, રૂપરહિત જ કહેવામાં આવી છે, તો પણ તેની સાથે જ રહેનાર રસ, ગંધ અને સ્પર્શનો પણ રૂપના નિષેધથી નિષેધ થયો જ સમજવો જોઈએ.

“અપદસ્ય પદં નાસ્તિ” જેનું કોઈ પદ-સ્થાન અથવા અવસ્થાન વિશેષ નથી એ અપદ છે. જેના દ્વારા અર્થનો બોધ થાય છે એ પદ છે. અપદનો વાચક કોઈ પદ-શબ્દ નથી. જે કહેવા યોગ્ય હોય છે એ જ કહેવાય છે. ઘટાદિક પદાર્થ ઘટાદિ શબ્દથી આ માટે પ્રતિપાદિત હોય છે કે તે એ શબ્દો દ્વારા કહેવાને યોગ્ય હોય છે. વાચ્યવાચકભાવ અથવા પ્રતિપાદ્યપ્રતિપાદક ભાવ સંબંધ પોતાના યોગ્ય પદાર્થોમાં જ હોય છે, અન્યમાં નહિ. સિદ્ધ દશા અપદ છે, આથી એનું વર્ણન કરનાર કોઈ પદ નથી. વિશેષ-આ બધું આત્માના વિશુદ્ધ રૂપની દૃષ્ટિથી નિશ્ચય નયનો અભિપ્રાય લઈને કહેવાયું છે, એમ સમજવું જોઈએ. એનો વાચક કોઈ શબ્દ નથી

તદેવ પ્રકટયન્નુપસંહરતિ—‘સે ન’ ઇત્યાદિ—

ચદ્વા—‘ન દીર્ઘ’ ઇત્યાદિના શબ્દાદિવિશેષો નિરાકૃતઃ પુનસ્તત્સામાન્ય-  
નિરાકરણાયાહ—‘સે ન’ ઇત્યાદિ।

મૂલમ્—સે ન સદ્દે ન રૂવે ન ગંધે ન રસે ન ફાસે ઇચ્ચેવ  
ત્તિવેમિ ॥ સૂ. ૭ ॥

છાયા—સ ન શબ્દો ન રૂપં ન ગન્ધો ન રસો ન સ્પર્શ ઇત્યેવમિતિ બ્રવીમિ ॥ સૂ. ૭ ॥

ટીકા—‘સ ન’ ઇત્યાદિ—સ મુક્તાત્મા ન શબ્દસ્વરૂપઃ, ન રૂપાત્મકઃ, ન

એકાન્ત રૂપસે નહીં સમજનાં ચાહિયે । અન્યથા વે સર્વથા અવક્તવ્ય હોને  
સે અવક્તવ્ય હસ શબ્દકે દ્વારા મી નહીં કહે જા સકેંગે, તથા રૂપ રસ  
ગન્ધાદિકા નિષેધ મી વહાં નહીં હો સકેંગા । તથા હનકે અભાવાત્મક-  
“રૂપાદિ રહિત હૈં ” ઇત્યાકારક-બોધકે વે ગ્રાહ્ય મી નહીં હોંગે । હસ  
લિયે યહ સવ કથન સિદ્ધ સ્વરૂપકી પૂર્ણ દશાકા વાચક કોઈ શબ્દ  
નહીં હૈં હતને હી મેં ચરિતાર્થ સમજનાં ચાહિયે ॥ સૂ. ૬ ॥

હસી પૂર્વોક્ત વિષયકો પુનઃ પ્રકટ કરતે હુએ સૂત્રકાર ઉસકા “સે ન”  
ઇત્યાદિ સૂત્રદ્વારા ઉપસંહાર કરતે હૈં, અથવા—“ન દીર્ઘઃ” ઇત્યાદિ પદોં  
દ્વારા ઉસ અવસ્થામેં દીર્ઘત્વાદિ-વિશેષ-ધર્મવાચક વિશેષ શબ્દોંકી  
વિષયતાકા હી નિષેધ કિયા ગયા હૈં, સામાન્ય રૂપસે શબ્દાત્મકતાદિકા  
નિષેધ નહીં કિયા હૈં; સો “સે ન” ઇત્યાદિ સૂત્રદ્વારા સામાન્યરૂપસે  
શબ્દાત્મકતાદિકા વહાં નિષેધ કરતે હુએ સૂત્રકાર કહતે હૈં—

વહ મુક્ત આત્મા ન શબ્દસ્વરૂપ હૈં, ન રૂપસ્વરૂપ હૈં, ન ગંધસ્વરૂપ

આ કથન કોઈ એકાન્ત રૂપથી સમજવું ન ભેઈએ, અન્યથા એ સર્વથા અવક્તવ્ય  
હોવાથી અવક્તવ્ય આ શબ્દથી પણ કહી શકાય નહિ; તેમ રૂપ, રસ, ગંધ ઇત્યાદિનો  
નિષેધ પણ ત્યાં થઈ શકે નહિ. તથા એના અભાવાત્મક—“રૂપાદિ રહિત છે” એવા  
બોધથી પણ એ ગ્રાહ્ય નહિ થાય આ માટે સિદ્ધસ્વરૂપની પૂર્ણ દશાને વાચક કોઈ  
શબ્દ નથી—એટલામાં જ આ બધાં કથન ચરિતાર્થ સાર્થક સમજવું ભેઈએ (સૂ. ૬)

એ પૂર્વોક્ત વિષયને પુનઃ પ્રગટ કરતાં સૂત્રકાર એનો “સે ન” ઇત્યાદિ સૂત્ર  
દ્વારા ઉપસંહાર કરે છે. અથવા—“ન દીર્ઘઃ” ઇત્યાદિ પદોથી એ અવસ્થામાં દીર્ઘ-  
ત્વાદિ-વિશેષ-ધર્મવાચક વિશેષશબ્દોની વિષયતાનો જ નિષેધ કરવામાં આવ્યો છે.  
સામાન્યરૂપથી શબ્દાત્મકતા આદિનો નિષેધ નથી કર્યો, માટે “સે ન” ઇત્યાદિ સૂત્રથી  
સામાન્ય રૂપથી શબ્દાત્મકતા આદિનો ત્યાં નિષેધ કરતાં સૂત્રકાર કહે છે—

એ મુક્ત આત્મા ન શબ્દસ્વરૂપ છે, ન તો રૂપસ્વરૂપ છે, ન ગંધસ્વરૂપ



ગન્ધાત્મકઃ, ન રસસ્વરૂપઃ, ન સ્પર્શસ્વરૂપઃ, इत्येवं पूर्वोक्तस्वरूपेण स न शब्दादि-  
सामान्यरूपो नापि तद्विशेषरूपः, શબ્દાદિપ્રવૃત્તિનિમિત્તાભાવાદેવ કેનાપિ પ્રકારેણ  
વક્તું ન શક્ય इति भावः । ‘इति ब्रवीमि’ इत्यस्यार्थस्तु प्रथमाध्ययनोक्तरीत्याऽ-  
वगन्तव्यः ॥ सू० ७ ॥

अध्ययनविषयोपसंहारः—

अस्मिन्नध्ययने च भोगविषयासक्त्यै ब्रजन्नो मुनि,

हिंसादित्यजको निवृत्तविषयासङ्गो मुनिः सम्मतः ।

નિર્વિણ્ણોઽપ્યપરિગ્રહો મુનિરસાવેકાકિનો દુષ્કૃત-

માચાર્યા હ્રદસન્નિભાશ્ચ પરમત્યાગશ્ચ સંવર્ણિતઃ ॥ ૧ ॥

॥ इतिश्री-विश्वविख्यात-जगद्गुरु-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित-  
कलापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-शाहू-  
छत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-“ जैनशास्त्राचार्य ”-पदभूषित-  
कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर  
पूज्य-श्रीघासीलाल-व्रतिविरचितायाम् आचाराङ्गसूत्र-  
स्याऽऽचारचिन्तामणिटीकायां लोकसाराख्यं पञ्चम-  
मध्ययनं सम्पूर्णम् ॥ ५ ॥

हैं, न रसस्वरूप हैं और न स्पर्शस्वरूप हैं । इस प्रकार वह न शब्द  
सामान्यस्वरूप हैं और न रूप, रस और गंध आदि सामान्य स्वरूप हैं ।  
जहां सामान्य धर्मका ही अभाव है वहां तद्विशेष ह्रस्वआदि विशेष-  
शब्दविषयता तथा नील, शुक्ल आदि विशेषरूपता कैसे आ सकती  
है? अर्थात् नहीं आ सकती । इसलिये सामान्य और विशेष रूपसे  
शब्द आदि की प्रवृत्तिके निमित्तका अभाव होनेसे ही वह मुक्तदशा  
किसी भी प्रकारसे कथन करनेमें नहीं आती है । “इति ब्रवीमि” इन  
पदोंका अर्थ प्रथम अध्ययनमें उक्त रीतिके अनुसार जान लेना चाहिये। सू० ७।

છે, ન રસસ્વરૂપ છે, અને ન તો સ્પર્શસ્વરૂપ છે. આ પ્રકારે ન શબ્દ સામાન્ય  
સ્વરૂપ છે, અને ન રૂપ, રસ તથા ગંધ આદિ સામાન્ય સ્વરૂપ છે. જ્યાં સામાન્ય  
ધર્મનો જ અભાવ છે ત્યાં આગળ હ્રસ્વ આદિ વિશેષશબ્દવિષયતા તથા નીલ,  
શુકલ આદિ વિશેષરૂપતા કઈ રીતે આવી શકે? અર્થાત્ આવી શકતી નથી. આ  
માટે સામાન્ય અને વિશેષ રૂપથી શબ્દ આદિની પ્રવૃત્તિના નિમિત્તનો અભાવ  
હોવાથી જ એ મુક્તદશા કોઈ પણ પ્રકારે કહી શકાતી નથી. “इति ब्रवीमि”  
આનો અર્થ પ્રથમ અધ્યયનમાં એ કહ્યા પ્રમાણે બાણી લેવો જોઈએ (સૂ. ૭)

इस अध्ययनका उपसंहार पद्यसे करते हैं—‘अस्मिन्नध्ययने’ इत्यादि।

(१) पहले उद्देशमें—प्राणियोंकी हिंसा करनेवाला, विषयोंके लिये सावद्य क्रियाओंमें प्रवृत्ति करनेवाला मुनि नहीं है। तथा विषयोंके लिये ही विचरण करनेवाला और उनमें लवलीन चित्त बना हुआ भी मुनि धर्मसे रहित है। (२) द्वितीय उद्देशमें—हिंसादि पापस्थानोंसे निवृत्त ही मुनि होता है। (३) तृतीय उद्देशमें—जो परिग्रहसे विरत है और काम-भोगोंसे रहित है वही विरक्त मुनि है। (४) चतुर्थ उद्देशमें—अगीतार्थ मुनिको एकाकी होकर विहार नहीं करना चाहिये, क्योंकि इस प्रकारके विहारमें उसे अनेक विघ्नबाधाएँ आती हैं। (५) पंचम उद्देशमें—मुनिको द्रव्यके समान होना चाहिये। मन, वचन और कायगुप्तिसे युक्त होना चाहिये। स्त्री आदिके संगसे रहित होना चाहिये। सम्यग्दर्शन और चारित्रके धारक होना चाहिये—संशयादिक दोषवर्जित होना चाहिये। (६) छठे उद्देशमें—उन्मार्गमें जानेका और राग एवं द्वेषका साधुको त्याग कर देना चाहिये।

यह आचाराङ्गसूत्रके लोकसार नामके पांचवें अध्ययनकी आचार-चिन्तामणि-टीकाका हिन्दीभाषानुवाद सम्पूर्ण ॥ ५ ॥

આ અધ્યયનનો ઉપસંહાર પદ્યથી કરવામાં આવે છે. “અસ્મિન્નધ્યયને” ઇત્યાદિ.

(૧) પહેલા ઉદ્દેશમાં—પ્રાણીઓની હિંસા કરવાવાળા અને વિષયોને માટે સાવધ ક્રિયાઓમાં પ્રવૃત્તિ કરવાવાળાને મુનિ ન કહેવાય. તેમજ વિષયોને માટેજ વિચરણ કરવાવાળા અને એમાં લવલીન ચિત્ત થયેલા પણ મુનિ ધર્મથી રહિત છે. (૨) બીજા ઉદ્દેશમાં—હિંસાદિ પાપસ્થાનોથી નિવૃત્ત જ મુનિ હોય છે. (૩) ત્રીજા ઉદ્દેશમાં—જે પરિગ્રહથી વિરત છે અને કામભોગોથી રહિત છે એજ વિરક્ત મુનિ છે. (૪) ચોથા ઉદ્દેશમાં—અગીતાર્થ મુનિએ એકાકી થઈ વિહાર કરવો ન જોઈએ, કેમ કે આ પ્રકારના વિહારથી એને અનેક વિઘ્નો આવે છે. (૫) પાંચમા ઉદ્દેશમાં—મુનિએ દ્રવ્ય (સરોવર)ની સમાન થવું જોઈએ. મન, વચન અને કાયાથી વિરક્ત બનવું જોઈએ. સ્ત્રી આદિના સંગથી દૂર રહેવું જોઈએ, સમ્યગ્દર્શન જ્ઞાન અને ચારિત્રના ધારક બનવું જોઈએ. સંશય આદિ દોષોથી રહિત થવું જોઈએ. (૬) છઠ્ઠા ઉદ્દેશમાં—ઉન્માર્ગમન, રાગ અને દ્વેષનો ત્યાગ કરી દેવો જોઈએ.

આ આચારાંગસૂત્રના લોકસાર નામના પાંચમા અધ્યયનની આચાર-ચિન્તામણિ-ટીકાનો ગુજરાતી અનુવાદ સંપૂર્ણ ॥ ૫ ॥

## ॥ अथ षष्ठाध्ययनस्य प्रथम उद्देशः॥

उक्तं पञ्चमाध्ययनं, तत्र लोकसाररूपसंयमस्य मोक्षस्य च स्वरूपं निगदितं, तयोः प्राप्तिर्हि मातापित्रादिसंगपरित्यागेन कर्मधूननेन च विना न भवतीत्युभयं बोधयितुमिदं धूताख्यमध्ययनं प्रोच्यते—

धूयते—अपनीयत इति धूतं—मातापित्रादिसंगः अष्टविधं कर्म च । तद् धून-  
नार्हतया प्रतिपाद्यते यत्राध्ययने तदपि धूतं निगद्यते ।

### छट्टा अध्ययनका प्रथम उद्देश ।

पांचवां अध्ययन कहा जा चुका है । उसके अन्दर लोकमें सारभूत संयम और मोक्षका स्वरूप कहा गया है । संयम और मुक्तिकी प्राप्ति माता पिता आदि स्वजनोंके साथ ममत्वका त्याग और कर्मोंका विनाश किये विना नहीं होती है, इस कारण इन दोनों विषयोंको समझानेके लिये इस धूताख्यान का प्रारंभ किया जाता है ।

मुमुक्षुजनों द्वारा जो दूर-परिवर्जित किया जाय वह धूत है । वह धूत माता पिता आदिका संग और अष्टविधकर्मस्वरूप है । क्यों कि मुमुक्षुओं द्वारा इनका ही परित्याग किया जाता है । इस अध्ययनमें इन दोनों विषयोंको धूनन-परित्यागके योग्य प्रतिपादित किया गया है । इसलिये इस अध्ययनका नाम भी “ धूत ” हो गया है ।

### छठा अध्ययनको प्रथम उद्देश.

પાંચમો અધ્યયન કહેવાઈ ગયો છે, એ અધ્યયનમાં લોકમાં સારભૂત સંયમ અને મોક્ષનું સ્વરૂપ કહેવામાં આવેલ છે. સંયમ અને મુક્તિની પ્રાપ્તિ, માતા પિતા આદિ સ્વજનોના મમત્વનો ત્યાગ, કર્મોનો વિનાશ કર્યા વગર થઈ શકતો નથી. આ કારણે આ બંને વિષયો સમજાવવા માટે આ ધૂતાખ્યાન અધ્યયનનો પ્રારંભ કરવામાં આવે છે.

મુમુક્ષુઓ દ્વારા જે દૂર-પરિવર્જિત કરવામાં આવે તે ધૂત છે. એ ધૂત માતા પિતા ઇત્યાદિનો સંગ અને અષ્ટવિધકર્મસ્વરૂપ છે, કેમ કે મુમુક્ષુઓ દ્વારા એનો પરિત્યાગ કરવામાં આવે છે. આ અધ્યયનમાં આ બંને વિષયોને ધૂનન-પરિત્યાગને યોગ્ય પ્રતિપાદિત કરવામાં આવેલ છે. આ માટે આ અધ્યયનનું નામ પણ “ ધૂત ” થઈ ગયું છે.



ધૂતં દ્વિવિધં દ્રવ્યભાવભેદાત્ । તત્ર દ્રવ્યધૂતં વસ્ત્રપાત્રાદિ, ભાવધૂતમષ્ટવિધં કર્મ । ઉક્તञ્ચ—

“ જહ મલમલિણં વત્થં, સ્વારદ્રવ્યેણ નિમ્મલં ભવઙ્ ।

તહ સંજમેણ તવસા, કમ્મમલં ભવઙ્ ભાવધુયં ” ॥ ૧ ॥

છાયા—યથા મલમલિણં વસ્ત્રં, ક્ષારદ્રવ્યેણ નિર્મલં ભવતિ ।

તથા સંજમેન તપસા, કર્મમલં ભવતિ ભાવધૂતમ્ ॥ ૧ ॥

અત્ર ભાવધૂનનાધિકારઃ । અસ્મિન્નધ્યયને પञ્ચોદ્દેશાઃ સન્તિ, તત્ર પ્રથમોદ્દેશે સ્વજનસંજ્ઞસ્ય, દ્વિતીયે કર્મણાં, તૃતીયે—ઉપકરણશરીરમત્વસ્ય, ચતુર્થે ગૌરવત્રયસ્ય, પञ્ચમે ચોપસર્ગમાનાપમાનાનાં વિધૂનનં પ્રતિપાદયિષ્યતે । તત્ર સ્વજનસંજ્ઞપરિત્યાગ-

ધૂત, દ્રવ્યઔર ભાવકે ભેદસે દો પ્રકારકા હૈ । વસ્ત્ર ઔર પાત્રાદિક દ્રવ્ય ધૂત હૈ । અષ્ટવિધકર્મ ભાવ ધૂત હૈ । કહા મી હૈ—

‘ જહ મલમલિણં વત્થં ’ ઇત્યાદિ—

જૈસે મલસે મલિન હુઆ વસ્ત્ર, ક્ષાર દ્રવ્ય—સોડા સાબુન આદિસે સાફ ક્રિયા જાતા હૈ ઉસી પ્રકાર ભાવસ્વરૂપ કર્મરૂપી મૈલ મી આત્માસે સંયમ ઔર તપદ્વારા ધોયા—સાફ ક્રિયા જાતા હૈ ।

યહાં પર ભાવધૂતકા અધિકાર હૈ । ઇસકે ૫ ઉદ્દેશ હૈ—૧ પ્રથમ ઉદ્દેશ મૈ સ્વજનકે સંગકા, દ્વિતીય ઉદ્દેશમૈ કર્મોંકા, તૃતીય ઉદ્દેશમૈ ઉપકરણ ઔર શરીરકે મત્વકા, ચતુર્થ ઉદ્દેશમૈ ત્રીન ગૌરવોંકા, ઔર પંચમ ઉદ્દેશમૈ ઉપસર્ગોં ંવં માન ઔર અપમાનકા ધૂનન પ્રતિપાદિત ક્રિયા હૈ । ઇનમૈ સર્વ પ્રથમ સૂત્રકાર સ્વજનોંકે સાથ સંગકે પરિત્યાગકા બોધક પ્રથમ

ધૂત દ્રવ્ય અને લાવના લેદથી બે પ્રકારનું છે. વસ્ત્ર અને પાત્રાદિક દ્રવ્ય-ધૂત છે, અષ્ટવિધ કર્મ લાવધૂત છે. કહ્યું પણુ છે—“ જહ મલમલિણં વત્થં ” ઇત્યાદિ.

જેમ મળથી ગંદું અનેલ વસ્ત્ર ક્ષારદ્રવ્ય—સોડા સાબુ વગેરેથી સાફ કરવામાં આવે છે એ જ રીતે લાવસ્વરૂપ કર્મરૂપી મેલને પણુ આત્માથી સંયમ અને તપ દ્વારા ધોવા—સાફ કરવામાં આવે છે.

અહીં લાવધૂતનો અધિકાર છે. આના પાંચ ઉદ્દેશ છે. પ્રથમ ઉદ્દેશમાં સ્વજનના સંગનું, બીજા ઉદ્દેશમાં કર્મોંનું, ત્રીજા ઉદ્દેશમાં ઉપકરણ અને શરીરના મત્વનું, ચોથા ઉદ્દેશમાં ત્રણ ગૌરવનું, અને પાંચમા ઉદ્દેશમાં ઉપસર્ગોં અને માન તથા અપમાનનું ધૂનન પ્રતિપાદન કરેલ છે. આમાં સર્વ પ્રથમ સૂત્રકાર સ્વજનોના સંગનો પરિત્યાગ કરવો જોઈએ આ સમજાવવા માટે પ્રથમ ઉદ્દેશનો પ્રારંભ કરે છે. આમાં સહુ પ્રથમ સૂત્રકાર એ બતાવે છે કે જે પદાર્થ જે સ્વરૂપથી અવસ્થિત

બોધકઃ પ્રથમોદ્દેશઃ પ્રારમ્ભ્યતે । તત્રાદૌ યથાઽવસ્થિતસકલપદાર્થતત્ત્વજ્ઞા નરા એવાનુપમં ધર્મમુપદેશ્વમર્હન્તીતિ બોધયિતુમાહ—‘ઓબુજ્જમાણે’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—ઓબુજ્જમાણે ઇહ માણવેસુ અઘ્ખાતિ સે નરે । જસ્સિમાઓ જાતીઓ સઘ્વઓ સુપહિલેહિયાઓ ભવંતિ, અઘ્ખાઈ સે ણાણમણેલિસં ॥ સૂ૦ ૧ ॥

છાયા—અવબુધ્યમાનઃ ઇહ માણવેષુ આઘ્યાતિ સ નરઃ । યસ્યેમા જાતયઃ સર્વતઃ સુપ્રતિલેખિતા ભવન્તિ, આઘ્યાતિ સ જ્ઞાનમનીદશમ્ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

ટીકા—ઇહ=અસ્મિન્ લોકે માણવેષુ=મનુષ્યેષુ યઃ અવબુધ્યમાનઃ=નિરાવરણ-જ્ઞાનસદ્ભાવાદાત્મનઃ સંસારસ્ય ચ યથાર્થસ્વરૂપં સમ્યગ્જ્ઞાનન્ અસ્તિ, સ નરઃ=અઘાતિકર્મચતુષ્ટયસદ્ભાવાદ્ મનુષ્યદેહાવસ્થિતઃ સન્ અનીદશમ્=અનુપમમ્-પ્રશસ્યતમં-સમ્યગિતિ યાવત્, જ્ઞાનમ્=શ્રુતચારિત્રધર્મમ્, અત્ર જ્ઞાનમિત્યનેન જ્ઞાનં જ્ઞાન-કાર્યં ચ ઉપલક્ષ્યતે; આઘ્યાતિ=મનુષ્યેભ્યો વદતીત્યર્થઃ । તીર્થઙ્કરા એવ સર્વજ્ઞાઃ ભવન્તિ, અતસ્તદુક્તઃ શ્રુતચારિત્રધર્મ એવ સમ્યગિતિ ભાવઃ । યત્તુ કુઙ્ઘ્યાદયોઽપિ ઉદ્દેશકા પ્રારંભ કરતે હૈં । ઉનમૈં સઘ્વસે પહિલે સૂત્રકાર યહ્ બતલાતે હૈં કિ જો પદાર્થ જિસ સ્વરૂપસે અવસ્થિત હૈં ઉન સકલ પદાર્થોંકો ઉસી સ્વરૂપસે જાનનેવાલે મનુષ્ય હી અનુપમ ધર્મકે કથન કરનેકે યોગ્ય હો સકતે હૈં । ઇસી વાતકો સમજાનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈં—“ઓબુજ્જમાણે” ઇત્યાદિ ।

ઇસ ચરાચર સંસારમૈં જિન મનુષ્યોંકો નિરાવરણજ્ઞાનકી પ્રાપ્તિ હો ચુકી હૈં ઓર ઇસીસે જો આત્મા એવં સંસારકે વાસ્તવિક સ્વરૂપકે જ્ઞાતા હુએ હૈં, વે મનુષ્ય અઘાતિયા કર્મોંકે સદ્ભાવસે મનુષ્ય શરીરમૈં સ્થિત હો કર હી સમ્યક્ જ્ઞાન ઓર ઉપલક્ષણસે ઉસકે કાર્યસ્વરૂપ અનુપમ સઘ્વે શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મકે ઉપદેશા અન્ય સંસારી જીવોંકે લિયે હોતે હૈં ।

છે તે સકલ પદાર્થોને તે સ્વરૂપથી જાણવાવાળા મનુષ્ય જ અનુપમ ધર્મનું કથન કરવા યોગ્ય બની શકે છે. આ વાત સમજાવવા માટે સૂત્રકાર કહે છે—“ઓબુજ્જમાણે” ઇત્યાદિ.

આ ચરાચર સંસારમાં જે મનુષ્યોને નિરાવરણ જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થઈ ચૂકી છે અને એનાથી જે આત્મા તથા સંસારના વાસ્તવિક સ્વરૂપના જાણકાર બનેલા છે તે મનુષ્ય અઘાતિયા કર્મોના સદ્ભાવથી મનુષ્યશરીરમાં સ્થિત થવા છતાં સમ્યક્જ્ઞાન અને ઉપલક્ષણથી એના કાર્યસ્વરૂપ અનુપમ-સાચા શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મના ઉપદેશક અન્ય સંસારી જીવો માટે થાય છે. તીર્થંકરના સિવાય ધર્મનો

ધર્મ વદન્તીતિ શાક્યાઃ, યદ્વૈશેષિકા ઉલૂકભાવેન પદાર્થાનામાવિર્ભાવનં મન્યન્તે, તન્ન સમીચીનમ્, ધર્મનિરૂપણં મનુષ્યમન્તરેણ ન સંભવતિ, સોઽપિ યદિ ઘાતિકર્મ-ક્ષયે સતિ નિરાવરણજ્ઞાનાઽઽવિર્ભાવેન સર્વજ્ઞતામુપલભેત । એવંભૂતઃ સર્વજ્ઞઃ સ્વયં કૃતાર્થોઽપિ પ્રાણિનાં હિતાય દ્વાદશવિધપર્ષદિ ધર્મ નિરૂપયતીત્યુપપદ્યતે । કથં નુ નામ તીર્થદ્વરકે સિવાય ધર્મકા ઉપદેશ અન્ય છદ્મસ્થજન નહીં કર સકતે હૈં ક્યોં કિ વે આત્મા ઓર સંસારકે સ્વરૂપકે વાસ્તવિક જ્ઞાતા નહીં હોતે હૈં ।

ભાવાર્થ—તીર્થદ્વર હી ધર્મોપદેશક હોતે હૈં, ક્યોં કિ વે સર્વજ્ઞ હૈં । અતઃ તીર્થદ્વરપ્રણીત શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મ હી સચ્ચા હૈં; અન્ય છદ્મસ્થજન પ્રણીત નહીં ! શાક્ય લોગ જો યહ કહતે હૈં કિ કુડ્યાદિક ધર્મકા નિરૂપણ કરતે હૈં । તથા અજ્ઞાની વૈશેષિક જો યહ કહતે હૈં કિ પદાર્થોંકા આવિર્ભાવન ઉલૂકભાવસે હી હાતા હૈ, સો ડનકી યહ માન્યતા ઠીક નહીં હૈ; ક્યોં કિ ધર્મકા નિરૂપણ ડસ મનુષ્યકે વિના સંભવિત નહીં હોતા હૈ કિ જિસને ઘાતિયા કર્મોંકે અભાવસે કેવલજ્ઞાનકી પ્રાપ્તિ સે સર્વજ્ઞતા પ્રાપ્ત ન કર લી હો । ઘાતિયા કર્મોંકે વિનાશસે કેવલજ્ઞાન કી ઉદ્ભૂતિ હોતી હૈ ઓર ઇસીકી ઉપલબ્ધિકા નામ સર્વજ્ઞતા હૈ । જો સર્વજ્ઞ હોતે હૈં વે કૃતાર્થ હોતે હૈં, ડનકી પ્રત્યેક ઇચ્છાઈં નષ્ટ હો જાતી હૈં, સંસારમેં કોઈં ભી ઇસા પદાર્થ નહીં હોતા હૈ જિસકી ડન્હેં ચાહના હો । કૃતકૃત્ય હોને પર ભી વે ભવ્ય જીવોંકે પુણ્યકે ઉદય ઇવં યોગોંકે સદ્ભાવ

ઉપદેશ ખીજા છદ્મસ્થજન કરી શકતા નથી, કેમ કે એ આત્મા તથા સંસારના સ્વરૂપના વાસ્તવિક બાણકાર નથી હોતા.

ભાવાર્થ—તીર્થકર જ ધર્મોપદેશક હોય છે; કેમ કે એ સર્વજ્ઞ છે. એટલે તીર્થકર પ્રણીત શ્રુત-ચારિત્રરૂપ ધર્મ જ સાચો છે; ખીજા છદ્મસ્થજન પ્રણીત નહિ! શાક્યલોક જે એવું કહે છે કે કુડ્યાદિક ધર્મનું નિરૂપણ કરે છે તથા અજ્ઞાની વૈશેષિક જે એવું કહે છે કે પદાર્થોના આવિર્ભાવન ઉલૂકભાવથી જ થાય છે. એમની આ માન્યતા ખરોતર નથી; કેમ કે ધર્મનું નિરૂપણ એવા મનુષ્યના વગર સંભવિત બનતું નથી કે જેણે ઘાતિયા કર્મોના અભાવથી કેવલજ્ઞાનની પ્રાપ્તિથી સર્વજ્ઞતા પ્રાપ્ત કરી ન હોય. ઘાતિયા કર્મોના વિનાશથી કેવલજ્ઞાનની ઉદ્ભૂતિ થાય છે. અને એની ઉપલબ્ધિનું નામ સર્વજ્ઞતા છે. જે સર્વજ્ઞ બને છે તે કૃતાર્થ હોય છે. એમની પ્રત્યેક ઇચ્છાઓ નષ્ટ થઈ ગઈ હોય છે. સંસારમાં કોઈ પણ એવો પદાર્થ નથી દેખાતો જેની એમને ચાહના હોય. કૃતકૃત્ય હોવા છતાં પણ તેઓ ભવ્ય જીવોને પુણ્યના ઉદય અને યોગોના સદ્ભાવથી



જડસ્વરૂપઃ કુડ્યાદિઃ જ્ઞાનાવરણીયાઘટવિધકર્મપાશબદ્ધસ્તિર્યક્ પ્રાણી ચ સર્વજ્ઞવીત-  
રાગસમકક્ષતાં પ્રાપ્તુમર્હતિ, યોગ્યધર્મનિરૂપણં કર્તુ પ્રભવતિ ? ।

નનુ કિં તીર્થઙ્કર એવ ધર્મમાખ્યાતિ ? કિમુતાન્યોઽપિ ? इति शिष्यजिज्ञासा-  
यामाह—‘ यस्येमा ’ इत्यादि । यस्य=केवलिनः श्रुतकेवलिनश्च इमाः प्रत्यक्षभूताः  
जातय एकेन्द्रियादिजातयः सर्वतः=सर्वप्रकारैः सूक्ष्मवादपर्याप्तपर्याप्तरूपैः सुप्र-  
तिलेखिताः=अज्ञानसंशयविपर्यासनिराकरणेन यथार्थतो ज्ञाता भवन्ति, स नरः

સે સમવસરણ મેં પ્રાણિયોંકો હિતાવહ ઉપદેશ દેતે હૈં—ધર્મકી પ્રરૂપણા  
કરતે હૈં । જબ ધર્મકી પ્રરૂપણા કરના સર્વજ્ઞકે આધીન હૈ તબ યહ કૌન  
સચેતન પ્રાણી માન સકતા હૈ કિ જડ સ્વભાવ-અચેતન કુડ્યાદિક  
( ભિત્તિ આદિ ) તથા અઘટવિધ કર્મરૂપી પાશસે જકડા હુઆ તિર્યચ્ચ  
પ્રાણી સર્વજ્ઞકી સમકક્ષતાકો પાનેકે લાયક હો સકતા હૈ ? અર્થાત્—  
ઉસસે યોગ્ય ધર્મકી પ્રરૂપણા હો સકતી હૈ ? યા વહ યોગ્ય ધર્મકી પ્રરૂપણા  
કરનેકે લિયે શક્તિશાલી હો સકતા હૈ ? કદાપિ નહીં ।

તીર્થઙ્કર પ્રભુ હી ધર્મકી દેશના દેતે હૈં યા ઓર ભી કોઈ દેતા હૈ ?  
इस प्रकार शिष्यकी शङ्काके निवारणार्थ “ यस्येमा : ” इत्यादि सूत्रांशकी  
प्ररूपणा करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि केवली और श्रुतकेवली भी  
धर्मकी प्ररूपणा करते हैं । क्योंकि उनके निर्दोष-संशय, विपर्यय और  
अनन्धवसायरहित ज्ञानसे वे प्रत्यक्षभूत एकेन्द्रियादिक जातियां सूक्ष्म,  
बादर, पर्याप्त और अपर्याप्तरूपसे भलीभांति जाने हुए होते हैं ।

સમવસરણુમાં પ્રાણીયોને હિતાવહ ઉપદેશ આપે છે—ધર્મની પ્રરૂપણા કરે છે.  
જ્યારે ધર્મની પ્રરૂપણા કરવી સર્વજ્ઞને આધીન છે ત્યારે એવો કયો સચેતન  
પ્રાણી માની શકે છે કે જડસ્વભાવ અચેતન કુડ્યાદિક ( ભીત આદિ ) તથા  
અઘટવિધકર્મરૂપી પાશથી જકડાયેલા તિર્યચ્ચ પ્રાણી સર્વજ્ઞની સમકક્ષતાને મેળ-  
વવા લાયક બની શકે છે ? અર્થાત્—એનાથી યોગ્ય ધર્મની પ્રરૂપણા થઈ શકે છે ?  
અથવા તે યોગ્ય ધર્મની પ્રરૂપણા કરવા માટે શક્તિશાળી બની શકે છે ?  
કદાપિ નહિ. ( કોઈ કાળે નહિ )

તીર્થઙ્કર પ્રભુ જ ધર્મની દેશના આપે છે—અથવા બીજા પણ કોઈ આપે  
છે ? આ પ્રકારની શિષ્યની શંકાના નિવારણાર્થે “ यस્યેમા : ” ઇત્યાદિ સૂત્રાંશની  
પ્રરૂપણા કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે કેવલી અને શ્રુતકેવલી પણ ધર્મની પ્રરૂપણા  
કરે છે, કેમ કે નિર્દોષ-સંશય, વિપર્યય અને અનન્ધવસાય રહિત જ્ઞાનથી એ  
પ્રત્યક્ષભૂત એકેન્દ્રિયાદિક બનીઓને સૂક્ષ્મ, બાદર, પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્તરૂપથી  
સારી રીતે બાણુતા હોય છે.

કેવલી શ્રુતકેવલી ચ અનીદ્દશમ્=અનુપમં-સમ્યક્ પ્રશસ્તં, જ્ઞાનં=શ્રુતચારિત્રમ્ આખ્યાતિ । તીર્થઙ્કરાદન્યથતુર્દશપૂર્વધરોઽપિ સર્વોત્તમં ધર્મમુપદિશતીત્યર્થઃ । સૂ. ૧ ॥

સ તીર્થઙ્કરઃ કથંભૂતાન્ મનુષ્યાનુપદિશતીતિ જિજ્ઞાસાયામાહ-‘સે કિદૃઙ્’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્-સે કિદૃઙ્ તેસિં સમુદ્રિયાણં નિશ્ચિત્તદંડાણં સમા-  
હિયાણં પન્નાણમંતાણં ઇહ મુક્તિમગ્ગં, એવમવિ એગે મહાવીરા  
વિપ્પરિક્કમંતિ, પાસહ એગે વિસાયમાણે અણત્તપન્ને ॥ સૂ. ૨ ॥

છાયા-સ કીર્તયતિ તેષાં સમુત્થિતાનાં નિશ્ચિત્તદંડાનાં સમાહિતાનાં પ્રજ્ઞાન-  
વતામ્ ઇહ મુક્તિમાર્ગમ્, એવમપિ એકે મહાવીરા વિપરાક્રમન્તે, પચ્ચત્ત એકાન્  
વિષીદતઃ અન્યત્રપ્રજ્ઞાન્ ॥ સૂ. ૨ ॥

ટીકા-સ તીર્થઙ્કરગણધરાદિઃ, ઇહ=અસ્મિન્ મનુષ્યલોકે સમુત્થિતાનાં-  
ધર્માચરણાર્થમુદ્યતાનાં, નિશ્ચિત્તદંડાનાં=પ્રાણિહિંસાનિવૃત્તાનાં, સમાહિતાનામ્=અનન્ય-

ભાવાર્થ-યહ પહિલે જો કહા હૈ કિ તીર્થઙ્કર પ્રભુ ધર્મકા ઉપદેશ  
દેતે હૈં? યા કોઈ અન્ય ભી?; સો ઇસ શિષ્યકી આશઙ્કાકા યહ ઉત્તર હૈ।  
ઇસમેં યહ બતલાયા ગયા હૈ કિ તીર્થઙ્કરકે અતિરિક્ત કેવલી ઓર શ્રુત-  
કેવલી-ચતુર્દશ પૂર્વધર ભી સર્વોત્તમ ઇસ શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મકા ભવ્ય  
જીવોંકો ઉપદેશ દેતે હૈં ॥ સૂ. ૧ ॥

વે તીર્થઙ્કર કિસ પ્રકારકે મનુષ્યોંકો ધર્મકા ઉપદેશ દેતે હૈં-ઇસ  
પ્રકારકી જિજ્ઞાસાકે હોને પર સૂત્રકાર કહતે હૈં-“સે કિદૃઙ્” ઇત્યાદિ।

વે તીર્થઙ્કર ભગવાન્ અથવા ગણધરાદિ ઇસ મનુષ્ય લોકમેં એસે જીવોં  
કો સમ્યગ્દર્શન, સમ્યક્ જ્ઞાન ઓર સમ્યક્ ચારિત્રરૂપ મુક્તિકે માર્ગ  
(ધર્મ)કા ઉપદેશ દેતે હૈં જો ધર્મકે આચરણ કરનેકે લિયે ઉદ્યત હૈં,

ભાવાર્થ-આ પહેલાં જે કહ્યું છે કે તીર્થંકર પ્રભુ ધર્મનો ઉપદેશ આપે  
છે? અથવા બીજા પણ?; આ પૂર્વોક્ત શિષ્યની આશંકાનો આ ઉત્તર છે, આમાં એ  
ખતાવાયું છે કે તીર્થંકર સિવાય કેવલી અને શ્રુતકેવલી-ચતુર્દશપૂર્વધર પણ સંપૂર્ણ  
રીતે શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મનો ભવ્ય જીવોને ઉપદેશ આપે છે.

એ-તીર્થંકર મનુષ્યોને કયા પ્રકારના ધર્મનો ઉપદેશ આપે છે, આ પ્રકારની  
જિજ્ઞાસા હોવાથી સૂત્રકાર કહે છે-“સે કિદૃઙ્” ઇત્યાદિ.

એ તીર્થંકર ભગવાન અથવા ગણધરાદિક દેવ આ મનુષ્ય લોકમાં એવા  
જીવોને સમ્યક્ દર્શન, સમ્યક્ જ્ઞાન અને સમ્યક્ ચારિત્રરૂપ મુક્તિમાર્ગ (ધર્મ)  
નો ઉપદેશ આપે છે જે ધર્મનું આચરણ કરવા માટે ઉત્સુક હોય છે. પ્રાણી.

મનસાં પ્રજ્ઞાનવતાં=હેયોપાદેયબુદ્ધિમતાં મનુષ્યાણાં મુક્તિમાર્ગે=સમ્યગ્દર્શનજ્ઞાનચારિત્રરૂપં કીર્તયતિ=કથયતિ । એવં ભગવતા ગણધરાદિના વા મોક્ષમાર્ગે પ્રતિવોધિતે સતિ એકે કેચિદ્ મહાવીરાઃ કર્મરિપૂન્ વિનાશયિતું સંયમરણાઙ્ગણે વિપરાક્રમન્તે=વિશેષેનાત્મનઃ શક્તિ પ્રકટીકુર્વન્તિ । એકાન્=કાંશ્ચિત્ મોહવિવશાન્ કાતરાન્ અન્યત્રપ્રજ્ઞાન્=ભગવદેશનેતરવિષયસંલગ્નોપયોગાન્ અતએવ-વિષીદતઃ=પ્રિયવિયોગા-પ્રિયસંયોગેષ્વિતાનવાપ્તિપ્રભૃતિભિઃ પીડ્યમાનાન્ પશ્યત, યદ્વા-‘અણત્તપન્ને’ इत्यस्य -‘અનાત્મપ્રજ્ઞાન્’ इतिच्छाया । આત્મને હિતા પ્રજ્ઞા-આત્મપ્રજ્ઞા અવિદ્યમાનાઽઽત્મપ્રજ્ઞા યેષાં તે અનાત્મપ્રજ્ઞાઃ, તાન્ વિષીદતઃ=સંયમારાધને શ્લથીભવતઃ-સંયમં

પ્રાણિયોંકી હિંસાકા જિન્હોંને પરિત્યાગ કર દિયા હૈ, અપને ધર્મકર્મકે આચરણમેં હી જિનકા મન તહીન રહતા હૈ, ઓર જો હેય ઓર ઉપાદેયકી બુદ્ધિસે સમન્વિત હૈં । હસ પ્રકાર ભગવાન્ વા ગણધરાદિકોંકે દ્વારા મુક્તિકા માર્ગ સમજાયે જાને પર ખી કોઈ એક મનુષ્ય કર્મરૂપી શત્રુઓંકો પરાસ્ત કરનેકે લિયે સંયમરૂપી યુદ્ધાંગણમેં વિશેષરૂપસે અપની શક્તિ પ્રગટ કરતે હૈં, કોઈ એક મોહસે કાતર બને હુએ અન્યત્ર-સ્ત્રી પુત્ર આદિ સાંસારિક પર પદાર્થોંમેં-જો ભગવાન્કી દેશનાસે વાહ્ય-ભિન્ન વિષય હૈં ઊનમેં-ફંસે રહતે હૈં ઓર નિરન્તર ઇષ્ટ-પ્રિય-વિયોગ ઓર અનિષ્ટ-સંયોગ તથા અભિલષિતકી અપ્રાપ્તિ આદિસે પીડિત હોતે દેખે જાતે હૈં । “ અણત્તપન્ને ” હસકી સંસ્કૃત છાયા “ અનાત્મપ્રજ્ઞાન્ ” ખી હૈ । હસકા અર્થ હોતા હૈ, કિ જો આત્મપ્રજ્ઞાવાલે નહીં હૈ-અર્થાત્ આત્માકી હિતકારક બુદ્ધિસે જો શૂન્ય હૈં, અતએવ સંયમકે પાલનકે લિયે

ઓની હિંસાનો જેમણે પરિત્યાગ કરેલ છે, પોતાના ધર્મકર્મના આચરણમાં જેનું મન તહીન રહે છે, અને જે હેય અને ઉપાદેયની બુદ્ધિથી સમન્વિત (યુક્ત) છે. આ પ્રકારે ભગવાન અથવા ગણધરાદિકોંકે દ્વારા મુક્તિનો માર્ગ સમજાવવામાં આવ્યા છતાં પણ કોઈ એક મનુષ્ય કર્મરૂપી શત્રુઓને પરાસ્ત કરવામાં સંયમરૂપી યુદ્ધભૂમિમાં વિશેષરૂપથી પોતાની શક્તિ પ્રગટ કરે છે. કોઈ એક મોહપાસમાં બંધાઈને સ્ત્રી પુત્ર આદિ સાંસારિક પદાર્થો કે જે ભગવાનની દેશનાથી વાહ્ય-ભિન્ન વિષય છે એમાં ફસાઈ રહે છે અને નિરંતર ઇષ્ટ-પ્રિય-વિયોગ તથા અનિષ્ટ સંયોગ અને અભિલષિત અપ્રાપ્તિરૂપ પીડાઓથી પીડિત થતા દેખાય છે. “ અણત્તપન્ને ” આની સંસ્કૃત છાયા “ અનાત્મપ્રજ્ઞાન્ ” પણ છે. આનો અર્થ એ થાય છે કે જે આત્મપ્રજ્ઞાવાળા નથી. અર્થાત્ આત્માની હિતકારક બુદ્ધિથી જે શૂન્ય છે, અતએવ સંયમના પાળવામાં જે શિથિલ છે-એ તરફ જેની પ્રવૃત્તિ



पालयितुमप्रवृत्तान् पश्यत=अवलोकयतेत्यर्थः ॥ सू० २ ॥

किञ्च—‘ से वेमि ’ इत्यादि ।

मूलम्—से वेमि, से जहानामए कुम्मे हरए विणिविट्ठचित्ते पच्छन्नपलासे उम्मगं से नो लहइ ॥ सू० ३ ॥

छाया—स ब्रवीमि, तद्यथानामकः कूर्मो हृदे विनिविष्टचित्तः पलाशप्रच्छन्नः उन्मार्गं स न लभते ॥ सू० ३ ॥

टीका—सः=भगवन्मुखादवगततत्त्वः अहं ब्रवीमि=अनात्मप्रज्ञस्य दृष्टान्तं कथयामि । तद्यथा नामकः—कश्चित् कूर्मः=कच्छपः, हृदे=जलाशये विनिविष्टचित्तः=समासक्तमनाः, अपि च पलाशप्रच्छन्नः=जलशैवालनलिनीपत्रैराच्छादितः । सूत्रे तु प्राकृतत्वात् प्रच्छन्नशब्दस्य व्यत्ययेन पूर्वनिपातः । उन्मार्गम्—ऊर्ध्वमार्गं—जलाद्बहिर्दिशं न लभते, तथा सः=अनात्मप्रज्ञः उन्मार्गम्=ऊर्ध्वमार्गं—मोक्षमार्गं न लभत इत्यर्थः । यथा जलाशयसमासक्तत्वाज्जलशैवालकमलिनीपत्राच्छादितत्वाच्च कच्छपो हृद एव तिष्ठति न जलाद्बहिर्दिशं प्राप्नोति, तथाऽनात्मप्रज्ञः संसारमहाहृदे जो शिथिल है—उस तरफ जिनकी प्रवृत्ति नहीं है, ऐसे देखे जाते हैं ॥ सू० २ ॥

तथा—“ से वेमि ” इत्यादि ।

सूत्रकार कहते हैं कि मैं अनात्मप्रज्ञका दृष्टान्त कहता हूं । जिस प्रकार महाहृद (द्रव) आदि जलाशयमें रहता हुआ कच्छप उसमें रहे हुए जल शैवाल और कमलपत्रोंसे ढका रहने पर जलसे बाहर होकर—तट नहीं पाता है, उसी प्रकार जो अनात्मप्रज्ञ है वह भी जब तक संसार से बाहर नहीं होता तब तक मुक्तिके मार्गको प्राप्त नहीं करता है ।

भावार्थ—जैसे जलाशयमें रहा हुआ कच्छप कि जिसकी भावना उससे बाहर निकलनेकी नहीं है, प्रत्युत उसीमें रहनेके लिये जिसका

नથી, એવા દેખાય છે. ( સૂ. ૨ )

તથા—“ સે વેમિ ” ઇત્યાદિ !

સૂત્રકાર કહે છે કે હું અનાત્મપ્રજ્ઞનું દૃષ્ટાંત કહું છું. જે રીતે મહાહૃદ (દ્રવ) આદિ જળાશયમાં રહેનાર કાચબો તેમાં રહેલા જળ, સેવાળ અને કમળપત્રોથી ઢાંકેલ રહેવાથી બહાર નીકળી કિનારો મેળવી શકતો નથી એ જ પ્રકારે જે અનાત્મપ્રજ્ઞ છે એ પણ જ્યાં સુધી સંસારથી બહાર નથી થતો ત્યાં સુધી મુક્તિના માર્ગને મેળવી શકતો નથી.

ભાવાર્થ—જેવી રીતે જળાશયમાં રહેલો કાચબો કે જેની ભાવના બહાર નીકળવાની નથી પણ તેમાં રહેવાને માટે જેનું મન આસક્ત છે અને તેમાં

વિષયનિવિષ્ટચિત્તત્વાત્ કર્મપટલાચ્છાદિતત્વાच्च तत्रैव निमज्जन् अवतिष्ठते, न तु मोक्षमार्गं प्राप्नोतीति भावः ।

ચદ્વા-ઉન્માર્ગ-ઉર્ધ્વમાર્ગ વિવરરૂપં ન લભતે । અયં ભાવઃ-કશ્ચિન્મહાહદઃ શૈવાલાચ્છાદિતો વિવિધજલચરાશ્રય આસીત્ । તત્રૈકદા તત્તટસ્થજમ્બૂવૃક્ષસ્ય સુપક્વં ફલમેકં શૈવાલોપરિ નિપપાત, યેન શૈવાલમધ્યે કચ્છપગ્રીવામાત્રપ્રમાણં વિવરં સંજાતમ્ । અથ નિજયૂથપરિભ્રષ્ટઃ કશ્ચિત્ કચ્છપો બ્રામ્યન્ શૈવાલમધ્યગતે વિવરે સ્વચિત્ત આસક્ત હૈં ઔર જો ઉસમેં રહનેસે હી જલ, શૈવાલ, કમલિનીકે પત્રોંસે લિપટા રહતા હૈ, કમ્બી મ્બી વહ હદ (દ્રહ)સે બાહર નહીં હોતા, પ્રત્યુત ઉસીમેં મગ્ન રહતા હૈ, ઉસી પ્રકાર જો અનાત્મપ્રજ્ઞ હૈં વે સંસાર રૂપી મહાહદમેં વિષયોંમેં આસક્ત તથા કર્મપટલસે આવૃત્ત હોનેકે કારણ હૂબતે ઉતરાતે રહતે હૈં ઔર મુક્તિકે માર્ગસે સદા વંચિત બને રહતે હૈં ।

અથવા-ઉન્માર્ગ શબ્દકા અર્થ વિવર ( છિદ્ર ) રૂપ ઉર્ધ્વમાર્ગ હૈ । મહાહદકે કચ્છપકી, તરહ અનાત્મપ્રજ્ઞ જીવ ઇસ માર્ગકો નહીં પાતે હૈં । જૈસે કોઈ એક મહાહદ થા । ઉસમેં બહુત ડયાદા શૈવાલ-કાઈ છાઈ હુઈ થી । ઉસમેં અનેક જલજન્તુ રહતે થે । ઉસકે તટ પર એક જામુનકા વૃક્ષ મ્બી થા, જો પકે હુએ ફલોંસે લદાલદ ભરા હુવા થા । ઉસમેંસે એક જામુન ટૂટ કર ઉસ મહાહદકી શૈવાલ પર જા ગિરા । ઉસકે ગિરનેસે ઉસ શૈવાલપટલમેં કચ્છપકી ગરદન પ્રમાણ જિતના એક છિદ્ર હો ગયા । ઇસકે કુછ સમય બાદ અપને સમુદાય-સાથિયોંસે વિયુક્ત હુઆ કોઈ

રહેવાથી જે જળ, સેવાળ, કમળપત્રોથી લપટાઈ રહે છે, ક્યારેય તે જળાશયથી બહાર નથી નીકળતો, પણ તેમાંજ મગ્ન રહે છે. એ જ રીતે જે અનાત્મપ્રજ્ઞ છે, તે સંસારરૂપી મહાહદમાં વિષયોમાં આસક્ત તથા કર્મથી ઘેરાયેલ હોવાને કારણે ડુબતો-અથડાતો રહે છે અને મુક્તિના માર્ગથી સદા વંચિત બને છે.

અથવા-ઉન્માર્ગ શબ્દનો અર્થ વિવર ( છિદ્ર ) રૂપ ઉર્ધ્વમાર્ગ છે. મહાહદના કાચબાની માફક અનાત્મપ્રજ્ઞ જીવ એ માર્ગને મેળવી શકતા નથી. જેમ કોઈ એક મોટું જળાશય હતું. એમાં ઘણો જ સેવાળ-કીચડ જામેલ હતો. એમાં અનેક જળ-જંતુઓ રહેતાં હતાં. એના કિનારે એક જાંબુનું ઝાડ હતું જે પાકેલાં ફળોથી લચ્યું પચ્યું હતું. તેમાંથી એક જાંબુ જળાશયમાં સેવાળ ઉપર જઈ પડ્યું. એના પડવાથી જામેલા સેવાળમાં કાચબાની ડોક આવી શકે એવું છિદ્ર પડ્યું. આના થોડા સમય બાદ પોતાના સાથી સમુદાયથી છુટો પડેલ એક કાચબો ત્યાં આવી પહોંચ્યો. તેણે તે સેવાળના છિદ્રની અંદર પોતાની ડોક



કીયગ્રીવાં પ્રવેશ્યોર્ધ્વપ્રદેશે ચક્ષુઃપ્રચારં ચક્રે । તતોઽસૌ શરચન્દ્રિકયા શુક્લીકૃતે  
 बहुतरतारकासमलंकृते गगनतले विद्योतमानं पूर्णचन्द्रमलोकयत् । तदवलोक-  
 नेन चातीव प्रमुदितस्य तस्य मनसि विचारः समुदपद्यत, यदि मदीयवान्धवा एतत्  
 स्वर्गसदृशमदृष्टपूर्वं पश्यन्ति ततः शोभनं भवेदित्येतदवधार्य बन्धूनामन्वेषणार्थमितश्चे-  
 तश्च बभ्राम । संप्राप्य च निजान् परिवारान् पुनरपि तद् विवरं मार्गयितुं सर्वतः  
 पर्यटति स्म । जलाशयस्य तस्य विस्तीर्णतया तदुदकप्राचुर्याच्च पुनरसौ तद् विवरं  
 न लेभे । तद्वत् संसारहृदे जीवकच्छपः कर्मशैवालविवरादिह मनुष्यार्थक्षेत्रसुकु-

एक कछुवा घूमता २ वहां पर आ निकला। उसने उस शैवालके विवरमें  
 अपनी ग्रीवाको निकाल कर ऊपरको देखना प्रारंभ किया तो क्या  
 देखता है कि शरदकालीन चन्द्रिका-ज्योत्स्नासे शुभ्र एवं अनेक तारोंसे  
 प्रकाशित आकाशमें पूर्ण चन्द्रमण्डल चमक रहा है। उसे देखकर वह  
 चित्तमें अत्यन्त प्रसन्न हुआ और विचारने लगा-कि अहा! यह कितना  
 सुरम्य दृश्य है। यदि मेरे समस्त बन्धुजन इस अदृष्ट पूर्व स्वर्ग जैसे  
 सुन्दर प्रदेशको देखें तो बहुत अच्छा हो। ऐसा निश्चय कर वह अपने  
 बन्धुओंकी खोजमें वहांसे निकला और इधर उधर घूम २ कर उनकी  
 तपास करने लगा। जब वे सब उसे मिल गये तो वह उन्हें साथ ले  
 कर उस विवरकी ओर चला, परन्तु वह जलाशय अधिक विस्तृत  
 और अधिक पानीसे पूर्ण भरा हुआ था, इसलिये उसे वह विवर फिर  
 न मिल सका। इसी प्रकार यह अनात्मप्रज्ञ जीवरूपी कछुआ भी इस  
 संसाररूप हृदमें पड़ा हुआ है और कर्मरूपी शैवालके विवरसे

કાઠી ઉપર બેવા માંડયું. તો શું બુએ છે કે શરદઋતુનો ચંદ્રની જ્યોત્સ્નાથી  
 शुभ्र અને अनेक ताराઓથી प्रकाशित आकाश के जेमां पूर्ण चंद्रमंडल चमकी  
 રહ્યું છે. તે જોઈ મનમાં અત્યંત ખુશી ઉપજી અને વિચારવા લાગ્યો કે અહા!  
 કેટલું સુરમ્ય દૃશ્ય છે. જો મારા સમસ્ત બંધુજન આ અદૃષ્ટપૂર્વ સ્વર્ગ જેવા  
 સુંદર પ્રદેશને બુએ તો ઘણું સાડું થાય. એવો નિશ્ચય કરી તે પોતાના સમુ-  
 દાયની શોધમાં નીકળ્યો અને આઠો અવળો ફરી એની તપાસ કરવા માંડ્યો.  
 જ્યારે બધા તેને મળી ગયા ત્યારે તે એ બધાને સાથમાં લઈ છિદ્રની  
 તરફ ચાલ્યો; પરંતુ જળાશય ખૂબ મોટું હતું અને જળથી પૂરેપૂરું ભરેલ હતું  
 આથી એને એ છિદ્ર ફરી મળી શક્યું નહીં. આ જ રીતે અનાત્મપ્રજ્ઞ જીવરૂપી  
 કાચબો પણ સંસારરૂપી હૃદમાં પડેલ છે. અને કર્મરૂપી સેવાળના વિવરથી



લોત્પત્તિસમ્યક્ત્વપર્યન્તરૂપં વ્યોમતલં પ્રાપ્ય મોહવશાત્ સ્વજનચિન્તયા ભોગચિન્તયા  
વા તતઃ પરાવૃત્તઃ સન્ પુનઃ સંસારમહાહદ એવ પર્યટતિ ન તુ મોક્ષમાર્ગં લભતે ।  
તસ્માદ્ ભવશતસહસ્રદુર્લભં કર્મવિવરભૂતં સમ્યક્ત્વં લબ્ધ્વા નૈવ તત્ર પ્રમાદઃ  
કાર્યં ઇતિ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

અનાત્મપ્રજ્ઞાનામન્યમપિ દૃષ્ટાન્તમાહ—‘મંજગા’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ—મંજગા ઇવ સંનિવેસં ણો ચયંતિ, એવં એગે અણેગ-  
રૂવેહિં કુલેહિં જાયા, રૂવેહિં સત્તા કલુણં થણંતિ, ણિદાણતો  
તે ણ લભંતિ મોક્ષં ॥ સૂ૦ ૪ ॥

છાયા-મજ્જકા ઇવ સન્નિવેસં નો ત્યજન્તિ, એવમેકેડનેકરૂપેષુ જાતાઃ, રૂપેષુ  
સક્તાઃ કરુણં સ્તનન્તિ, નિદાનતસ્તે ન લભન્તે મોક્ષમ્ ॥ સૂ૦ ૪ ॥

મનુષ્યપર્યાય, આર્યક્ષેત્ર, સુકુલમેં જન્મ ઓર સમ્યક્ત્વકા લાભરૂપ વ્યો-  
મતલ ( આકાશ ) કી પ્રાપ્તિ કર મોહકે વશસે અપને સગે સમ્બન્ધિયોં  
કી એવં ભોગોંકી ચિંતામેં ફંસ કર ઉન સબ પ્રાપ્ત હુએ શુભ અવસરોંકો  
વ્યર્થ ગવાં દેતા હૈ, ઓર સંસારરૂપી મહાહદમેં હી પરિભ્રમણ કરતા રહતા  
હૈ । વહાંસે વહ અપને ઉદ્ધારકે માર્ગકી ઓર નહીં બઢતા હૈ—મોક્ષકે  
માર્ગકો નહીં પાતા હૈ । ઇસલિયે સૂત્રકાર શિક્ષા દેતે હૈં કિ—હે શિષ્યજન !  
સમ્યક્ત્વકો કિ જિસકી પ્રાપ્તિ ઇસ જીવકો હજારોં ભવોંમેં ભી દુર્લભ  
હૈ ઓર જો કર્મોંકા વિવરભૂત હૈ, ઉસે પ્રાપ્ત કર ફિર ઉસકી રક્ષા કરને  
મેં પ્રમાદ કરના ડચિત નહીં હૈ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

અનાત્મપ્રજ્ઞોંકે ડપર ઓર ભી દૃષ્ટાન્ત સૂત્રકાર પ્રકટ કરતે હૈં—  
‘મંજગા ઇવ’ ઇત્યાદિ—

મનુષ્યપર્યાય, આર્યક્ષેત્ર, સુકુળમાં જન્મ અને સમ્યક્ત્વના લાભરૂપ વ્યોમતળ  
( આકાશ )ની પ્રાપ્તિ કરી મોહના વશ થઈ પોતાના સગા-સંબંધીઓની અને  
ભોગોની ચિંતામાં ફસાઈ અને પ્રાપ્ત થયેલા બધા સુઅવસરને વ્યર્થ ગુમાવી દે  
છે અને સંસારરૂપી મહાહદમાં જ પરિભ્રમણ કરતો રહે છે. એમાંથી એ  
પોતાના ઉદ્ધારના માર્ગની તરફ વધી શકતો નથી, મોક્ષના માર્ગને મેળવી  
શકતો નથી. માટે સૂત્રકાર શિક્ષા દે છે કે હે શિષ્યજન ! સમ્યક્ત્વ કે જેની  
પ્રાપ્તિ હજારો ભવમાં પણ આ જીવને દુર્લભ છે અને જે કર્મના વિવરભૂત છે,  
એને પ્રાપ્ત કરી તેની રક્ષા કરવામાં પ્રમાદ કરવો ડચિત નથી. ( સૂ૦ ૩ )

અનાત્મપ્રજ્ઞો અંગે ઓળખું દૃષ્ટાન્ત સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે—“ મંજગા ઇવ ” ઇત્યાદિ.

ટીકા=ઇવ=યથા મજ્જકાઃ=વૃક્ષાઃ સન્નિવેશં=સ્વકીયં સ્થાનં ન ત્યજન્તિ=કર્મ-  
પરતન્ત્રતયા સ્થાવરત્વમાસાદ્ય નાપસરન્તિ। એવમ્=અનેન પ્રકારેણ એકે=અનાત્મપ્રજ્ઞાઃ,  
અનેકરૂપેષુ=ઉચ્ચાવચેષુ કુલેષુ=ઉગ્રભોગાદિષુ શ્વપાકાદિષુ ચ જાતાઃ, રૂપેષુ=રૂપાદિ-  
વિષયેષુ સક્તાઃ=ગૃહ્ણિમાપન્નાઃ કરુણં=સદુઃસ્વં સ્તનન્તિ=વિલપન્તિ, તથાહિ-  
“કિમિદમચિન્તિતમસદૃશમનિષ્ટમતિકષ્ટમનુપમં દુઃસ્વમ્ । સહસૈવોપનતં મે, નૈરયિ-  
કસ્યેવ સત્ત્વસ્ય ” ॥ ૧ ॥ ઇતિ ।

જેસે વૃક્ષ સ્થાવરનામકર્મકે ઉદયકી પરતન્ત્રતાસે સ્થાવરપર્યાયકી પ્રાપ્તિસે અપને સ્થાનકો નહીં છોડતે હૈં હસી પ્રકાર જો અનાત્મપ્રજ્ઞ જીવ હૈં વે મી ઉગ્રભોગાદિ ઉચ્ચ એવં ચળડાલ આદિ નીચ કુલોમૈં ઉત્પન્ન હોકર રૂપાદિક પંચ ઇન્દ્રિયોંકે વિષયોં મૈં અત્યન્ત ગૃહ્ણ હો બુરી તરહ ચિહ્ણાતે હૈં-કહતે હૈંકિ જિસ પ્રકાર નારકી અચિન્તિત અસદૃશ અનુપમ અનિષ્ટઔર અતિકષ્ટપ્રદ દુઃસ્વોંકો સહસા ભોગતે રહતે હૈં ઉસી પ્રકાર મેરી મી યહી હાલત હૈ । હિસ પ્રકારકે વે દુઃસ્વ મેરે ડપર કહાંસે આ કર ટૂટ પડે ।

દુઃસ્વોંકો ભોગતે હુએ મી વે અનાત્મપ્રજ્ઞ જીવ હિનકે મૂલકારણ કર્મોંસે વિયુક્ત નહીં હોતે હૈં। યદિ એસા હી હોતા કિ જિન કર્મોંકે ઉદય મૈં જિનકા ફલ ભોગ લિયા જાય એસે કર્મ યદિ નષ્ટ હો જાતે યા ઉનસે ઉનકા છૂટકારા હો જાતા તો યહ વાત માની જા સકતી થી કિ ઉન

જેમ વૃક્ષ સ્થાવરનામકર્મના ઉદયની પરતન્ત્રતાથી સ્થાવરપર્યાય કે જેમાં એક સ્થળથી બીજા સ્થળમાં અવર જવરની ક્રિયા થતી નથી અથવા તે પોતે જ્યાં છે તે સ્થળેથી ફરવામાં પોતાનું સ્થાન છોડી શકતું નથી. આ પ્રકારે જે અનાત્મપ્રજ્ઞ જીવ છે એ પણ ઉગ્રભોગાદિ ઉચ્ચ અને ચંડાલ આદિ નીચ કુળોમાં ઉત્પન્ન થઈને રૂપાદિક પાંચ ઇન્દ્રિયોના વિષયોમાં અત્યંત મુગ્ધ બની ખરાબ રીતે દુખતો રહે છે. કહે છે કે જે પ્રકારે નારકી અચિન્તિત અસદૃશ અનુપમ અનિષ્ટ અતિકષ્ટપ્રદ દુઃખોને ભોગવ્યા કરે છે. એ જ રીતે મારી પણ એ જ હાલત છે. આ પ્રકારનાં એ દુઃખ મારા ઉપર કયાંની આવીતુટી પડ્યાં.

દુઃખોને ભોગવતાં પણ એ અનાત્મપ્રજ્ઞ જીવ એનાં મૂળકારણ કર્મોથી છૂટતો નથી. કહાય એવું હોત કે જે કર્મોના ઉદયમાં જેનું ફળ ભોગવી લેવામાં આવે એવાં કર્મ કદાચ નાશ પામે અથવા એનાથી તેનો છૂટકારો થઈ જાય તો એ વાત માની શકાત કે એ કર્મોથી તેની મુક્તિ થઈ ચૂકી. પરંતુ એવું

किन्तु ते=अनात्मप्रज्ञाः निदानतः=दुःखस्य मूलकारणतः-कर्मत इत्यर्थः, मोक्षम्=वियोगं न लभन्ते, तपःसंयमानासेवनेन कर्मबन्धापगमं न प्राप्नुवन्तीत्यर्थः।

अयं भावः-यथा वृक्षाः शीतवातातपच्छेदनभेदनशाखाकर्षणमोटनभञ्जनादि-  
नानाविधोपद्रवान् सहमाना अपि स्थावरनामकर्मोदयात्स्वस्थानतो वियुक्ता न  
न भवन्ति, तथा-अनात्मप्रज्ञास्तनयवनिताभिस्तिरस्कृता अपि विविधाधिव्याधिप-  
रिग्रस्ता अपि, राजपुरुषतस्करादिभिः सर्वस्वापहरणपुरस्सरं लुण्ठिता अपि,  
मातापितृपुत्रकलत्रादिभिर्वियुक्ता अपि, 'मधुविन्दु' न्यायेनाल्पमुखदुरन्तदुःखपरि-  
पूरितगृहस्थभावमपरित्यजन्तः सकलं विलपन्ति, किन्तु सकलदुःखानुषङ्गनिब-  
न्धनकर्मबन्धतो वियुक्ता नैव भवन्तीति ॥ सू० ४ ॥

कर्मोंसे उसकी मुक्ति हो चुकी; परन्तु ऐसा तो होता नहीं है; क्यों कि  
फल भोगनेसे कर्मोंका सर्वथा विनाश नहीं होता है, प्रत्युत तप और संयम  
की आराधनासे ही जीव कर्मोंसे छुटकारा-मुक्ति पाता है। अनात्मप्रज्ञ  
मुक्तिके कारणोंसे परे रहते हैं। मोक्षके साधनोंका सेवन-आचरण नहीं  
करते, अतः कर्मबन्धसे रहित भी नहीं हो सकते हैं।

भावार्थ—जिस प्रकार वृक्ष, शीत, वायु, धूप, छेदन, भेदन, शाखा  
का खेचना, उसका मोड़ना और काटना आदि अनेक प्रकारके उपद्रवों  
को सहते रहते हैं, तो भी स्थावरनामकर्मके उदयसे वे अपने गृहीत स्थान  
से जुदा नहीं हो सकते हैं। इसी प्रकार अनात्मप्रज्ञ जीव भी पुत्र-स्त्री  
आदिकोंसे तिरस्कृत होते हुए भी अनेक प्रकारकी आधिव्याधियोंको  
झेलते हुए भी राजपुरुष एवं चौर आदिके द्वारा सर्वस्वहरणपूर्वक लूटे  
गये होने पर भी, और तो क्या; माता, पिता, पुत्र और स्त्री आदिकोंसे

तो अनतुं नहीं; केम के क्षण लोगववाथी कर्मोंना सर्वथा विनाश थतो नहीं;  
तप अने संयमनी आराधनाथी न एव कर्मोथी मुक्ति भेगवे छे. अनात्मप्रज्ञ  
मुक्तिना कारणथी इर रहे छे. मोक्षना साधनोतुं सेवन-आचरण करता नहीं  
भाटे कर्मअन्योथी रहित पणु थता नहीं.

भावार्थ—जे प्रकारे वृक्ष, शीत, वायु, धूप, छेदन, भेदन, उगने जेथुं  
के तेने तोडवी, भरडवी आदि प्रकारना उपद्रवोने सह्या करे छे; तो पणु स्थावर-  
नामकर्मना उदयथी पोताना स्थान उपरथी डटी शक्तुं नहीं. आ न रीते  
अनात्मप्रज्ञ एव पणु पुत्र-स्त्री धन्यादिथी तिरस्कृत थतो डोवा छतां, अनेक  
प्रकारनी आधि-व्याधियोभां रीभातो, राजपुरुष अने चोर वगेरेथी सर्वस्व  
लुण्ठाई नवा छतां पणु, माता, पिता, पुत्र अने स्त्री धन्यादिथी अलग



અનાત્મપ્રજ્ઞાનાં તેષુ તેષુ કુલેષુ જન્મ કસ્મૈ પ્રયોજનાય ભવતી ? તિ જિજ્ઞાસાયમાહ—‘અહે’ત્યાદિ ।

મૂલમ્—અહ પાસ તેહિં કુલેહિં આયત્તાણ જાયા ॥સૂ૦૫॥

છાયા—અથ પશ્ય તેષુ કુલેષુ આત્મત્વાય જાતાઃ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

ટીકા—અથ હે શિષ્ય ! ત્વં પશ્ય, અનાત્મપ્રજ્ઞાસ્તેષુ=ઉચ્ચાવચેષુ કુલેષુ આત્મત્વાય=આત્મકૃતકર્મવિપાકાનુભવાય જાતાઃ=જન્મ પ્રાપ્તાઃ નાનાવિધદુર્દશાપન્ના ભવન્તિ, અતઃ શ્રુતચારિત્રધર્મારાધનમેવ શ્રેયસ્કરમિતિ ॥ સૂ૦૫ ॥

વિયુક્ત હોતે હુએ મી, મધુચિન્દુકી પ્રાપ્તિ કરનેકે લિયે લોલુપી બને હુએ મનુષ્યકી તરહ, અલ્પ સુખ ઓર દુરન્ત દુઃખોસે પરિપૂર્ણ ગૃહસ્થભાવકો નહીં છોડતે હૈં ઓર દુઃખોસે દુઃખિત હોતે રહતે હૈં, તો મી સમસ્ત દુઃખોકી પરમ્પરાકા પ્રધાન કારણ જો કર્મબન્ધ હૈં ઉસસે વિયુક્ત નહીં હોતે હૈં ॥ સૂ૦ ૪ ॥

અનાત્મપ્રજ્ઞોંકા ઉન ૨ કુલોંમેં જન્મ કિસ પ્રયોજનકે લિયે હોતા હૈં ઇસ પ્રકારકી જિજ્ઞાસામેં સૂત્રકાર કહતે હૈં—“અહ પાસ” ઇત્યાદિ ।

સૂત્રકાર પૂર્વોક્ત જિજ્ઞાસાકા સમાધાન કરને નિમિત્ત શિષ્યજનસે કહતે હૈં કિ હે શિષ્ય ! અનાત્મપ્રજ્ઞોંકા જો ઉચ્ચ નીચ કુલોંમેં જન્મ હોતા હૈં વહ ઉનકે દ્વારા પૂર્વમેં કિયે ગયે કર્મોંકે વિપાકકે અનુભવ કરને કે લિયે હોતા હૈં । કર્મોંકે વે કઠિનતર વિપાકોંકો ભોગતે હુએ અનેક પ્રકારકી દુર્દશાઓંસે ગૃહીત હોતે રહતે હૈં । ઇસલિયે ઇન દુઃખોંસે છુટકારા પાનેકા ઇલાજ એક યહી હૈં કિ શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મકા આરાધન

પડી જવા છતાં પણ, મધુચિન્દુની પ્રાપ્તિ કરવા લોલુપ બનેલા મનુષ્યની માફક, અલ્પ સુખ અને અગણિત દુઃખોથી પરિપૂર્ણ ગૃહસ્થભાવને છોડતો નથી. અને દુઃખોથી દુઃખિત થતો રહે છે, તો પણ સમસ્ત દુઃખોની પરમ્પરાનું કારણ જે કર્મબન્ધ છે એનાથી છૂટો થઈ શકતો નથી. ( સૂ૦ ૪ )

અનાત્મપ્રજ્ઞોનો તે તે કુળોમાં જન્મ કયા પ્રયોજનથી થાય છે ? આ પ્રકારની જિજ્ઞાસામાં સૂત્રકાર કહે છે. “અહ પાસ” ઇત્યાદિ !

સૂત્રકાર પૂર્વોક્ત જિજ્ઞાસાનું સમાધાન કરવા નિમિત્તે શિષ્યજનથી કહે છે કે હે શિષ્ય ! અનાત્મપ્રજ્ઞોનો જે ઉચ્ચ નીચ કુળોમાં જન્મ થાય છે તે એના દ્વારા પૂર્વનાં કરેલાં કર્મોના વિપાકના અનુભવ કરવા માટે થાય છે. કર્મોના એ કઠિનતર વિપાકોને ભોગવતાં એ અનેક પ્રકારની દુર્દશાઓથી ઘેરાઈ જાય છે. આ માટે એ દુઃખોથી છુટકારા મેળવવાનો ઇલાજ એક આ જ છે કે

સ્વકૃતકર્મોદયાદ્ વિવિધરોગાદિકં પ્રાપ્નુવન્તીત્યાહ-‘ગંડી’ इत्यादि।

મૂલમ્-ગંડી અહવા કુટ્ટી, રાયંસી અવમારિયં।

કાણિયં ઝિમિયં ચેવ, કુણિયં સુજિયં તહા ॥ ૧ ॥

ઉદરિં ચ પાસ મૂયં ચ, સૂણિયં ચ ગિલાસિણિં।

વેવયં પીઠસર્પિં ચ, સિલિવયં મહુમેહિણિં ॥ ૨ ॥

સોલસ ઇં રોગા, અઘ્વાયા અણુપુઠ્વસો।

અહ ણં ફુસંતિ આયંકા, ફાસા ય અસમંજસા ॥ ૩ ॥

મરણં તેસિં સંપેહાં, ઉવવાયં ચવણં ચ નચ્ચા।

પરિપાગં ચ સંપેહાં, તં સુણેહજહા તહા ॥ ૪ ॥ સૂ. ૬ ॥

છાયા-ગંડી અથવા કુટ્ટી, રાજાંસી અપસ્મારિકઃ।

કાણત્વં ઝિમ્મિયં ચેવ, કુણિત્વં કુબ્જત્વં તથા ॥ ૧ ॥

ઉદારિણં ચ પશ્ય મૂકં ચ, શૂનિકં ચ ગ્રાસિનમ્।

વેપકં પીઠસર્પિણં ચ, શ્લીપદિનં મધુમેહિનમ્ ॥ ૨ ॥

ષોડશૈતે રોગા આઘ્યાતા અનુપૂર્વશઃ।

અથ તં સ્પૃશન્તિ આતઙ્કાઃ, સ્પર્શાશ્વાસમજ્જસાઃ ॥ ૩ ॥

મરણં તેષાં સંપ્રેક્ષ્ય, ઉપપાતં ચ્યવનં ચ જ્ઞાત્વા।

પરિપાકં ચ સંપ્રેક્ષ્ય, તચ્છૃણુત યથા તથા ॥ ૪ ॥ સૂ. ૬ ॥

ટીકા-સકલદુઃખનિદાનસ્ય કર્મણઃ સદ્ભાવે કર્મણો વૈચિત્ર્યાદનેકરૂપા અવ-

ક્રિયા જાય; કારણ કિ જગતમેં જીવોંકા કલ્યાણ કરનેવાલી યહી  
એક વસ્તુ હૈ ॥ સૂ. ૬ ॥

અપને કિયે હુએ કર્મોંકે ઉદયસે જીવ અનેક પ્રકારકે રોગાદિકોંકો  
ભોગતે હૈ; હસે પ્રકટ કરનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈ-“ગંડી” इत्यादि।

કર્મ સકલ દુઃખકે કારણ હૈ। હસીલિયે ઉનકે વિચિત્ર ઉદયમેં  
જીવ અનેક પ્રકારકી અવસ્થાઓંકા અનુભવ કરતે હૈ। હસી વિષયકો

શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મનું આરાધન કરે; કારણ કે જગતમાં જીવોનું કલ્યાણ  
કરનાર આ એક જ વસ્તુ છે. (સૂ. ૫)

પોતાના કરેલા કર્મોના ઉદયથી જીવ અનેક પ્રકારના રોગાદિકને ભોગવે  
છે. આને પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે “ગંડી” इत्यादि।

કર્મ સકળ દુઃખનું કારણ છે. આ માટે એના વિચિત્ર ઉદયમાં જીવ અનેક  
પ્રકારની અવસ્થાઓનો અનુભવ કરે છે. આ વિષયને પૂર્વોક્ત ગાથાઓમાં સૂત્ર-

સ્થા અનુભવન્તિ પ્રાણિનઃ । તદ્ યથા-કર્મવિપાકોદયાત્ કશ્ચિદ્ ગણ્ડી=ગણ્ડમા-  
લારોગયુક્તઃ, અથવા-કશ્ચિત્ કુષ્ઠી=કુષ્ઠરોગી, તથા-કશ્ચિત્-રાજાંસી=રાજયક્ષ્મ-  
વાન્=ક્ષયરોગાક્રાન્તઃ, તથા કશ્ચિત્ અપસ્મારિકઃ=અપસ્મારરોગયુક્તઃ-મૃગીરોગી,  
તથા કસ્યચિત્-કાણત્વમ્=અક્ષિરોગઃ, તથા-કસ્યચિત્ ક્ષિમ્મિયં=જડતા, તથા  
કસ્યચિત્ કુણિત્વં=ગર્ભાધાનદોષાત્ એકચરણે દ્રશ્યતા એકપાણૌ ન્યૂનતા વા-  
હીનાઙ્ગત્વમ્, તથા કસ્યચિત્ કુબ્જત્વં=માતાપિતૃશોણિતશુક્રદોષેણ ગર્ભસ્થાવસ્થાયા-  
મુત્પદ્યમાનઃ કુબ્જરોગઃ । તથા-હે શિષ્ય ! ત્વં કંચિત્-ઉદરિણં=ઉદરરોગિણં પશ્ય ।  
તથા-કંચિન્મૂકમ્=અવ્યક્તવાચં પશ્ય, તથા-કંચિત્-શૂનિકં=શોફરોગયુક્તં પશ્ય,  
તથા-ગ્રાસિનં=ભસ્મકરોગિણં પશ્ય । તથા-વેપકં=કમ્પરોગયુક્તં પશ્ય । તથા-  
પીઠસર્પિણં=પીઠસર્પરોગિણં-હસ્તગૃહીતકાષ્ઠેન સંસરણશીલં પદ્મગુચિશેષં પશ્ય ।  
તથા-શ્લીપદિનં=હસ્તિપદરોગયુક્તં પશ્ય, તથા-મધુમેહિનં=મધુમેહરોગયુક્તં પશ્ય ।

इन पूर्वोक्त गाथाओंमें सूत्रकारने प्रकट किया है । वे कहते हैं-कोई जाव कर्म  
के विपाकसे १ गण्डमाला रोगसे पीडित रहता है, कोई २ कुष्ठी होता  
है, कोई ३ राजयक्ष्मासे-क्षयरोगसे दुःखी होता है, कोई ४ अपस्मार-  
मृगीरोगसे अक्रान्त रहता है, कोई ५ काणा होता है, किसीमें ६ जडता होती  
है । किसीके ७ कुणित-हीनाङ्गता होती है-गर्भाधानके दोषसे एक पैरमें या  
एक हाथमें न्यूनताका नाम हीनाङ्गता है । कोई ८ कुबडा होता है । माता  
पिताके शोणित शुक्र दोषसे गर्भकी अवस्थामें यह रोग उत्पन्न होता है ।  
कोई पेटके ९ रोगी हैं, कोई १० गुंगे हैं, किसीके ११ सूजनरोग है, किसी  
को भस्मक १२ व्याधि है, किसीको १३ कंपरोग है, कोईके १४ पीठ-  
सर्पका रोग है, इस रोगके रोगी काष्ठकी चिरैया बनवा कर उनके सहारे  
से चला करते हैं, ये एक तरहके पंगु कहलाते हैं । किसीके १५ श्लीपद  
रोग होता है । इस रोगमें रोगीका पैर हाथीके पैर जैसा स्थूल हो

કારે પ્રગટ કરેલ છે. કોઈ ભૂવ કર્મના વિપાકથી ગણ્ડમાલા રોગથી પીડિત રહે  
છે. કોઈ કોઠના ભોગ બને છે, કોઈ રાજયક્ષ્મા-ક્ષયરોગથી દુઃખી થાય છે.  
કોઈ અપસ્માર-મૃગી રોગથી આક્રંદ કરે છે, કોઈ કાણુ બને છે, કોઈમાં જડતા  
હોય છે, કોઈના અંગ ઉપાંગોમાં ખામી હોય છે, કોઈ કુબડો હોય છે, કોઈ  
પેટના રોગી હોય છે, કોઈ મુંગો હોય છે, કોઈને શોફ ( સોબના ) રોગ હોય  
છે, કોઈને ભસ્મક વ્યાધિ હોય છે, કોઈને કમ્પરોગ હોય છે, કોઈને પીઠસર્પના  
રોગ હોય છે, જે રોગનો રોગી લાકડાની ઘોડીના આધારે ચાલે છે, જે એક  
પ્રકારના પાંગળા કહેવાય છે, કોઈને શ્લીપગાનો રોગ થાય છે, કોઈને મધુ-



एते षोडश रोगाः अनुपूर्वशः=अनुक्रमेण आख्याताः=कथिताः । अथ=अनन्तरम् आतङ्काः=शीघ्रं जीवितहारिणः शूलादयो व्याधिविशेषाः, स्पर्शाश्च गाढप्रहारादि-  
जनिताः दुःखविशेषाः असमञ्जसाः=क्रम-यौगपद्य-निमित्ता-निमित्तोत्पन्नाः स्पृश-

जाता है, किसीके १६ मधुमेह हो जाता है, इस रोगके रोगीकी पेशाब शहद जैसे रंगकी होती है और उसमें कीड़ियां लगने लगती हैं। ये १६ रोग जो यहां यथाक्रमसे बतलाये गये हैं, ये सब अशुभ कर्मोंके उदयके फल विशेष हैं। कर्मोंके उदयमें जीवोंकी और भी क्या २ अवस्थाएँ होती हैं इन्हें “अथ ते स्पृशन्ति” इत्यादि श्लोकसे प्रकट करते हैं। कोई २ ऐसे भी रोग होते हैं कि जिनमें जीवनका शीघ्र ही अन्त हो जाता है; जैसे उदरशूल वगैरह। गाढ प्रहार आदिसे उत्पन्न हुए दुःखोंका नाम स्पर्श है। जिन रोगोंमें निमित्त चाहे क्रमसे मिलें चाहे अक्रम-एकसाथ मिलें, अथवा क्रम और अक्रमसे वे न भी मिलें; ऐसे क्रमिक और अक्रमिक निमित्त और अनिमित्तोंसे जो रोग उत्पन्न होते हैं उनका नाम असमंजस है। ये भी अशुभोदयसे ही जीवोंके होते हैं।

શક્ષા—અશુભોદય, હી ઉન રોગોંકી ઉત્પત્તિકા નિમિત્ત છે, ફિર અનિમિત્તસે ખી અસમંજસ રોગોંકી ઉત્પત્તિકા કથન આપકા ગ્રાહ્ય કૈસે માના જા સકતા છે ?

ઉત્તર—યહાં બાહ્ય કારણોંકી ઉપસ્થિતિ ઓર અનુપસ્થિતિકી અપેક્ષા

પ્રમેહ થઇ બાય છે, આ સોળ રોગ જે યથાક્રમથી અહીં બતાવ્યા છે આ બધા અશુભ કર્મોના ઉદયના ફળ છે. કર્મોના ઉદયમાં જીવોની બીજી પણ શું શું અવસ્થાઓ બને છે એને “અથ તે સ્પૃશન્તિ” ઇત્યાદિ શ્લોકથી પ્રગટ કરે છે.

કોઈ કોઈ એવો રોગ હોય છે કે જેનાથી જીવનનો તરત જ અન્ત આવી બાય છે, જેમકે ઉદરશૂળ વગેરે. ગાઢ પ્રહાર આદિથી ઉત્પન્ન થયેલ દુઃખોનું નામ સ્પર્શ છે. જે રોગોમાં નિમિત્ત ચાહે ક્રમથી મળે અથવા અક્રમથી. એ ન પણ મળે એવા ક્રમિક અને અક્રમિક નિમિત્ત અને અનિમિત્તથી જે રોગ ઉત્પન્ન થાય છે તેનું નામ અસમંજસ છે. આ પણ અશુભ ઉદયથી જ જીવોને થાય છે.

શંકા:—અશુભોદય જ તે રોગોની ઉત્પત્તિનું નિમિત્ત છે. પછી અનિમિત્તથી પણ અસમંજસ રોગોની ઉત્પત્તિનું આપનું કથન ગ્રાહ્ય કેમ માનવામાં આવે ?

ઉત્તર—અહીં બાહ્ય કારણોની ઉપસ્થિતિ અને અનુપસ્થિતિની અપેક્ષાથી

ન્તિ, તેષાં=ગૃહાઽસક્તમનસામસમઙ્ગસરોગૈઃ ક્લેશિતાનાં મરણં સંપ્રેક્ષ્ય=પર્યાલોચ્ય  
ઉપપાતં ચ્યવનં ચ દેવાનાં જ્ઞાત્વા, તથા પરિપાકં=મિથ્યાત્વાવિરત્યાદિજનિતાનામ-  
બાધોત્તરકાલમુદયાવલિકાપ્રવિષ્ટાનાં કર્મણાં શારીરમાનસદુઃસ્વરૂપં ફલં સંપ્રેક્ષ્ય=  
વિચાર્યં સકલદુઃસ્વમૂલં કર્મ સમુચ્છેતું તપઃ સંયમે પ્રયતિતત્ત્વમિત્યર્થઃ । મોઃ શિષ્યાઃ!  
તત્=કર્મણાં ફલં યથા ભવતિ તથા મયા વક્ષ્યમાણં શ્રુણુત ॥ સૂ. ૬ ॥

સંસારિણો વિવિધં કર્મવિપાકમનુભવન્તીતિ દર્શયિતુમાહ—‘સંતિ પાણા’ इत्यादि।

સે હી નિમિત્તકા કથન સમજના ચાહિયે । કર્મોંકા ઉદય આખ્યન્તર  
નિમિત્ત હૈ ઓર યહ નિમિત્ત તો પ્રત્યેક રોગોંમેં સાધારણ કારણ પડતા  
હી હૈ । ડન અસમંજસ રોગોંસે ગૃહસ્થાશ્રમમેં મગ્ન હુએ જીવોં-ગૃહસ્થોંકા  
મરણ દેખ કર તથા દેવોંકા ખી ઉપપાત-જન્મ ઓર ચ્યવન-મરણ જાન  
કર, એવં મિથ્યાત્વ, અવિરતિ આદિ કારણકલાપસે ઉત્પન્ન-બન્ધદશાકો  
પ્રાપ્ત ઓર અબાધા કાલકો છોડકર ઉદયાવલિમેં પ્રવિષ્ટ એસે કર્મોંકા  
શારીરિક એવં માનસિક દુઃસ્વરૂપ ફલ અચ્છી તરહ વિચાર કર સકલ  
દુઃસ્વોંકે મૂલ કારણ ઇન કર્મોંકો નાશ કરનેકે લિયે તપ ઓર સંયમમેં  
પ્રયત્ન કરના ચાહિયે । શિષ્યોંકો સંબોધન કરતે હુએ સૂત્રકાર કહતે હૈ  
કિ હે શિષ્યજન ! ઇન કર્મોંકા ફલ જિસ પ્રકાર હોતા હૈ ડસ પ્રકાર મેં  
ઓર કહતા હૂં, સો તુમ સુનો ॥ સૂ. ૬ ॥

સંસારી જન કર્મોંકે વિપાકકો ભોગતે હૈ—इसी बातको समझानेके  
लिये सूत्रकार कहते हैं—“ संति पाणा ” इत्यादि ।

જ નિમિત્ત અને અનિમિત્તનું કથન સમજવું જોઈએ. કર્મોના ઉદય આખ્યન્તર  
નિમિત્ત છે, તે નિમિત્ત તો પ્રત્યેક રોગોમાં સાધારણ કારણ છે. આવા અસમંજસ  
રોગોથી ગૃહસ્થાશ્રમમાં મગ્ન રહેલા જીવો-ગૃહસ્થોનું મરણ દેખી તથા દેવોના પણ  
ઉપપાત-જન્મ અને ચ્યવન-મરણ જાણી, મિથ્યાત્વ અવિરતિ આદિ કારણ કલાપથી  
ઉત્પન્ન બંધદશાને પ્રાપ્ત અને અબાધાકાળને છોડીને ઉદયાવલીમાં પ્રવિષ્ટ એવા  
કર્મોના, શારીરિક અને માનસિક દુઃખરૂપ ફળ સારી રીતે વિચાર કરી, સકળ  
દુઃખોના મૂળ કારણ આ કર્મોને નાશ કરવા માટે, તપ અને સંયમમાં પ્રયત્ન  
કરવો જોઈએ. શિષ્યોને સંબોધન કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે હે શિષ્યજન ! આ  
કર્મોનાં ફળ જે પ્રકારથી થાય છે એ પ્રકાર ફરીથી વધુ તમોને કહું છું, તે  
તમે સાંભળો. (સૂ. ૬)

સંસારી જન કર્મોના વિપાકને ભોગવે છે આ વાત સમજાવવા સૂત્રકાર  
કહે છે “ સંતિ પાણા ” इत्यादि—

મૂલમ્—સંતિ પાણા અંધા તમસિ વિયાહિયા, તમેવ સઙ્  
અસઙ્ અઙ્ અચ્ચ ઉચ્ચાવયપાસે પહિસંવેણ્ણ, બુદ્ધેહિં એયં પવેણ્ણ ॥ ૭ ॥

છાયા—સન્તિ પ્રાણા અન્ધાસ્તમસિ વ્યાખ્યાતાઃ, તામેવ સકૃત્ અસકૃત્ અતિ-  
ગત્ય ઉચ્ચાવચાન્ સ્પર્શાન્ પ્રતિસંવેદયન્તિ, બુદ્ધૈરેતત્પ્રવેદિતમ્ ॥ સૂ. ૭ ॥

ટીકા—યે પ્રાણાઃ=પ્રાણિનઃ તમસિ=દ્રવ્યાન્ધકારે નરકાદૌ ભાવાન્ધકારે મિ-  
થ્યાત્વાદૌ વા સન્તિ=વિચિન્તે તે અન્ધાઃ=હેયોપાદેયવિવેકરહિતાઃ વ્યાખ્યાતાઃ=  
કથિતાસ્તીર્થઙ્કરૈઃ । કિંચ-તામેવાવસ્થાં ગણ્ડકુષ્ઠાદિરોગજનિતામેકેન્દ્રિયાદિજાતિ-  
પ્રાપ્તિરૂપાં વા, સકૃત્=એકવારમ્ અસકૃત્=અનેકવારં વા અતિગત્ય=અનુભૂય તત્ર-  
ઉચ્ચાવચાન્=તીવ્રમન્દાન્ સ્પર્શાન્=દુઃખવિશેષાન્ પ્રતિસંવેદયન્તિ=અનુભવન્તિ, ઉક્તે  
વક્ષ્યમાણે ચ વિષયે શ્રદ્ધોત્પાદનાય સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂસ્વામિનં પ્રત્યાહ-બુદ્ધૈરિત્યા-  
દિ । એતદ્ બુદ્ધૈઃ=સર્વજ્ઞેસ્તીર્થઙ્કરૈઃ પ્રવેદિતમ્=પ્રવોદિતં તસ્માદેતન્મમ વચનં શ્રદ્ધે-  
યમિતિ ભાવઃ ॥ સૂ. ૭ ॥

જો પ્રાણી દ્રવ્ય અન્ધકારરૂપ નરકાદિ ગતિયોંમેં એવં ભાવ-અન્ધકાર-  
રૂપ મિથ્યાત્વ આદિમેં વર્તમાન હૈં વે દ્રવ્યરૂપસે સૂક્ષ્મતે હોતે હુએ મીહેય  
ઔર ઉપાદેયકે વિવેકસે રહિત હોનેસે ભાવરૂપસે અંધે હી હૈં એસા  
તીર્થઙ્કરોંકા કહના હૈ । એસે હી જીવ ગણ્ડકુષ્ઠાદિ રોગોંસે વિશિષ્ટ  
અવસ્થા એવં એકેન્દ્રિયાદિક જાતિકી પ્રાપ્તિરૂપ પર્યાયકો બારબાર યા એક  
બાર ભોગકર તીવ્ર ઔર મન્દ દુઃખવિશેષોંકો ભોગા કરતે હૈં । કહે ગયે  
અથવા આગે કહે જાનેવાલે વિષયમેં વિશ્વાસ ઉત્પન્ન કરનેકે લિયે શ્રી  
સુધર્માસ્વામી શ્રી જમ્બૂસ્વામીકે પ્રતિ કહતે હૈં કિ યે જો કુછ મૈંને કહા  
હૈ, અથવા આગે મી જો કુછ કહા જાયગા વહ મેરી નિજી કલ્પના નહીં  
હૈ, કિન્તુ યહ સર્વજ્ઞકે વચન હૈં, એસા સમજકર મેરે વચનોં પર તુમ  
વિશ્વાસ રહો ॥ સૂ. ૭ ॥

જે પ્રાણી દ્રવ્યઅન્ધકારરૂપ નરકાદિ ગતિયોંમાં, ભાવ અન્ધકારરૂપ મિથ્યાત્વ  
આદિમાં વર્તમાન છે તે દ્રવ્યરૂપથી દેખતા હોવા છતાં પણ હેય અને ઉપાદેયના  
વિવેકથી રહિત હોવાથી ભાવરૂપથી અંધળા જે છે, એવું તીર્થંકરેનું કહેવું છે.  
એવા જીવ ગંડ, કુષ્ઠાદિ રોગોના ભોગ બની અને એકેન્દ્રિયાદિક જાતિની  
પ્રાપ્તિરૂપ પર્યાયને એકવાર અથવા વારંવાર ભોગવી તીવ્ર અને મંદ દુઃખ ઇત્યા-  
દિને ભોગવે છે. કહેવાઈ ગયેલ અથવા આગળ કહેવામાં આવનાર વિષયમાં  
વિશ્વાસ ઉત્પન્ન કરવા માટે શ્રી સુધર્માસ્વામી શ્રી જમ્બૂસ્વામીને કહે છે કે આ  
જે કાંઈ મેં કહ્યું છે અને આગળ પણ જે કાંઈ કહેવામાં આવશે એ મારી



કિંચ—‘ સંતિ પાણા ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—સંતિ પાણા વાસગા, રસગા, ઉદ્દ, ઉદયચરા, આ-  
ગાસગામિણો પાણા પાણે કિલેસંતિ ॥ સૂ૦ ૮ ॥

છાયા—સંતિ પાણા વાસકાઃ, રસગાઃ, ઉદકે, ઉદકચરાઃ, આકાશગામિનઃ  
પ્રાણાઃ પ્રાણિનઃ કલેશયન્તિ ॥ સૂ૦ ૮ ॥

ટીકા—વાસકાઃ=શબ્દકરણસમર્થા દ્વીન્દ્રિયાદયઃ તથા રસગાઃ=તિક્તકટુકાદિ-  
રસવેદકાઃ સંઙ્ગિજ્ઞાન ઇત્યર્થઃ, તથા—ઉદકે=અપ્કાયે સ્થિતા અપ્કાયિકા ઇત્યર્થઃ, તથા  
—ઉદકચરાઃ=જલચરા મત્સ્યકચ્છપાદયઃ, અત્ર સ્થલચરાઃ સર્પાદયઃ પક્ષિણશ્ચાપિ  
કેચન જલાશ્રિતત્વાજ્જલચરા ઉચ્યન્તે । તથા—આકાશગામિનઃ=પક્ષિણશ્ચ, ઇત્યેતે  
પ્રાણાઃ=પ્રાણિનઃ સન્તિ । તે સર્વેઽપિ પ્રાણાઃ=પ્રાણિનઃ, પ્રાણાન્=અપરાન્ જીવાન્  
કલેશયન્તિ—આહારાદ્યર્થ દ્વેષાવેશાદ્વા પીડયન્તિ ॥ સૂ૦ ૮ ॥

રસના—ઇન્દ્રિયકે સદ્ભાવસે શબ્દ કરનેમેં સમર્થ એસે દ્વીન્દ્રિયાદિક  
જીવ, તથા તિક્ત-કટુકાદિક રસોંકા અનુભવન કરનેવાલે સંજ્ઞી જીવ,  
પાણી આદિ કાયમેં સ્થિત અપ્કાયિક જીવ—મછલી કછુવા આદિ જલ-  
ચર જીવ, સર્પ પક્ષી વગેરહ સ્થલચર જીવ ઓર આકાશમેં ઉડનેવાલે  
પક્ષી આદિ નભચર જીવ યે સબ પ્રાણી આહારાદિકકે નિમિત્ત, દૂસરે  
જીવોંકો કલેશિત કરતે હૈં તથા દ્વેષકે આવેશસે ઉન્હેં પીડા મી  
પહુંચાતે હૈં ।

ભાવાર્થ—દ્વીન્દ્રિયસે લેકર સંજ્ઞી અસંજ્ઞી પંચેન્દ્રિય પર્યન્ત સમસ્ત  
જલચરાદિક જીવ પરસ્પરમેં એક દૂસરેકો આહારાદિકકે નિમિત્તસે

પોતાની કલેશના નથી; પરંતુ આ સર્વજ્ઞનાં વચન છે, એવું સમજી મારા વચનો  
પર તમે વિશ્વાસ રાખો. ( સૂ૦ ૭ )

રસના ઇન્દ્રિયના સદ્ભાવથી શબ્દ કરવામાં સમર્થ એવા દ્વીન્દ્રિયાદિક  
જીવ તથા તિક્ત કટુક આદિ રસોનો અનુભવ કરવાવાળા સંજ્ઞી જીવ, પાણીમાં  
રહેનારા અપ્કાયિક જીવ—મછલાં, કાયબા વગેરે જલચર જીવ, સર્પ પક્ષી  
વગેરે સ્થળચર જીવ અને આકાશમાં ઉડનારાં પક્ષી આદિ નભચર જીવ આ  
બધા પ્રાણી આહારાદિકના નિમિત્તથી બીજા જીવોને કલેશિત કરે છે તથા દ્વેષના  
આવેશથી એમને પીડા પણ પહોંચાડે છે.

ભાવાર્થ—દ્વીન્દ્રિયથી લગાવી સંજ્ઞી અસંજ્ઞી પંચેન્દ્રિય પર્યન્ત સમસ્ત  
જળચરાદિક જીવ પરસ્પરમાં એક બીજાને આહારાદિકના નિમિત્તથી અથવા દ્વેષાદિકના

પુનરપિ સંસારિણાં દશાં દર્શયિતુમાહ-‘ પાસ લોએ ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્-પાસ લોએ મહબ્ભયે, બહુદુઃખા હુ જંતવો ॥સૂ૦૧॥

છાયા-પશ્ય લોકે મહદ્ભયં, બહુદુઃખા હુ જન્તવઃ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

ટોકા-હે શિષ્ય ! લોકે=ચતુર્દશરજ્જ્વાત્મકે જગતિ મહદ્ભયં=જ્ઞાનાવરણીયાદિ-કર્મોદયવશાત્ પ્રાણિનામનાદિકાલતો વિવિધં દુરન્તં ભયં પશ્ય । હુ=યતઃ જન્તવઃ પ્રાણિનઃ, બહુદુઃખાઃ=કર્મોદયવશાદ્ વિવિધાનન્તદુઃખાઃ સન્તિ ॥ સૂ૦૧ ॥

અથવા દ્રેષાદિકકે આવેશસે પીડિત કિયા કરતે હૈં । કોઈ ૨ પક્ષી મી જો જલકે હી આશ્રિત રહતે હૈં જલચર માને ગયે હૈં ॥સૂ૦૮॥

પુનરપિ સંસારી જીવોંકી દશાકો પ્રકટ કરનેકેલિયે સૂત્રકાર કહતે હૈં—“ પાસ લોએ ” ઇત્યાદિ ।

શિષ્યકો સંબોધન કરતે હુએ સૂત્રકાર કહ રહે હૈં કિ હે શિષ્ય ! તુમ દેખો, ઇસ સંસારમેં જીવોંકો થોડી સી મી શાંતિ નહીં હૈં । ઉનકે પીછે અનેક પ્રકારકે ભય લગે હુએ હૈં । અનેક શારીરિક એવં માનસિક કષ્ટોંસે વે રાતદિન વ્યથિત હો રહે હૈં ।

યહ લોક ૧૪ રાજૂ પ્રમાણ હૈં । ઇસમેં જિતને મી જીવ હૈં વે અનાદિ કાલસે જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોંકે ઉદયકે વશમેં પડે હુએ હૈં । ઇસ કારણ વે ભયસહિત હૈં । ક્યોં કિ પરતન્ત્રતામેં સ્વતન્ત્રતાકા અભાવ હોને સે સદા ભય હી ભય બના રહતા હૈં । કમી યે નરકનિગોદાદિકકી કથાઓં કો સુન કર ઉસસે ભયમીત હોતે હૈં, કમી તિર્યશ્ચગતિકે દુઃખોંસે, તો

આવેશથી પીડિત કર્યા કરે છે. કોઈ કોઈ પક્ષી પણ જે જળનાં જે આશ્રિત છે એને જળચર માનવામાં આવેલ છે. ( સૂ૦ ૮ )

સંસારી જીવોની દશાને પ્રકટ કરવા માટે ફરીથી સૂત્રકાર કહે છે— “ પાસ લોએ ” ઇત્યાદિ—

શિષ્યને સંબોધન કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે હે શિષ્ય ! જુઓ, આ સંસારમાં જીવોને થોડી પણ શાંતિ નથી. એની પાછળ અનેક પ્રકારના ભય લાગ્યા રહે છે. શારીરિક અને માનસિક કષ્ટોથી એ રાતદિવસ અકળાતા રહે છે.

આ લોક ૧૪ રાજૂપ્રમાણ છે, આમાં જેટલા પણ જીવ છે એ અનાદિ કાળથી જ્ઞાનાવરણીય આદિકર્મોના ઉદયના વશમાં પડ્યા છે. આ કારણે એ ભયમાં છે. કારણ કે પરતન્ત્રતામાં સ્વતન્ત્રતાનો અભાવ હોવાથી સદા કાળ ભયજ ભય ખન્યો રહે છે, ક્યારેક એ નરકનિગોદાદિકની કથાઓ સાંભળી એનાથી ભયભીત બને છે, ક્યારેક તિર્યચ ગતિનાં દુઃખોથી, તો ક્યારેક મનુષ્યગતિનાં દુઃખોથી.

સંસારિણાં કથમીદૃશી દશા ભવતીતિ જિજ્ઞાસાયામાહ-‘સત્તા કામેહિં’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ-સત્તા કામેહિં માણવા અબલેણ વહં ગચ્છાંતિ સરીરેણ  
પમ્ભગુરેણ ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

છાયા-સત્તા: કામેષુ માનવા: અબલાય વધં ગચ્છન્તિ શરીરાય પ્રમદ્ગુરાય । ૧૦ ।

ટીકા-માનવા: = મનુષ્યા: કામેષુ = વિષયભોગેષુ સત્તા: = અનુરક્તા: સન્તિ, અતઃ  
પ્રમદ્ગુરાય = ક્ષણમદ્ગુરાય ક્ષણક્ષણપરિણામિતયા સ્વત એવ પ્રતિક્ષણવિનાશિને અ-  
બલાય = નિ:સારાય શરીરાય = ઔદારિકશરીરાય-શરીરપુષ્ટ્યર્થમિતિ ભાવ: । વંન્ધં =

કમી મનુષ્યગતિકે દુ:ખોંસે । इन कर्मोंके सदासे आधीन रहनेवाले मेरी क्या दशा होगी? ऐसा चिन्तारूप महाभय प्रत्येक सचेतन प्राणीके हृदयमें बना ही रहता है; अतः अनेक प्रकारके दुरन्त भयोंसे घिरे हुए ये अनन्त संसारी जीव हैं, और इसी कर्मोदयके वशसे ये विचारे रात-दिन अनन्त कष्टोंका भी सामना करते रहते हैं ॥ सू० ९ ॥

સંસારી જીવોંકી એસી દશા ક્યોં હતી હૈ ? इस प्रकारकी जिज्ञासाके समाधाननिमित्त सूत्रकार कहते हैं-“सत्ता कमेहिं” इत्यादि ।

અવતરણરૂપ શઙ્કાકા સમાધાન કરતે હુણ સૂત્રકાર કહતે હૈં કિ કામભોગોંમૈં મગ્ન હોનેસે મનુષ્યકો થોડા મી અવકાશ પ્રાપ્ત નહીં હૈ, અતઃ ડન કામભોગોંકા સાધનભૂત ઇસ ઔદારિક શરીરકી પુષ્ટિકે નિમિત્ત વે અનુચિત ઉપાયોંકા મી આચરણ કરતે રહતે હૈં । નરકનિગો-દાદિકકે અનન્ત દુ:ખોંકી કારણભૂત અન્ય પ્રાણિયોંકી હિંસા કરતે હુણ મી યે અચકાતે નહીં હૈં । इन्हें स्वप्नमें भी यह विचार नहीं आता कि जब

આવા કર્મોંને સદા આધીન રહેનાર મારી શું દશા થશે? એવો ચિન્તારૂપી મહા-ભય પ્રત્યેક સચેતન પ્રાણીના હૃદયમાં બન્યો રહે છે. આવા અનેક પ્રકારના વિકટ ભયોંથી ઘેરાયેલ અનન્ત સંસારી જીવ છે. કર્મોદયના વશથી આ બિચારા રાત દિન અનન્ત કષ્ટોંનો સામનો કરતા રહે છે. (સૂ૦ ૯)

સંસારી જીવોંની આવી દશા કેમ થાય છે, આ પ્રકારની જિજ્ઞાસાના સમા-ધાનનિમિત્ત સૂત્રકાર કહે છે. “સત્તા કામેહિં” ઇત્યાદિ—

અવતરણરૂપ શંકાનું સમાધાન કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે કામભોગોમાં મગ્ન હોવાથી મનુષ્યને થોડો પણ અવકાશ મળતો નથી. કામભોગોના સાધનભૂત આ ઔદારિક શરીરની પુષ્ટિના કારણે એ અનુચિત ઉપાયોંનું પણ આચરણ કરતા રહે છે. નરકનિગોદાદિકના અનન્ત દુ:ખોંના કાર-ણભૂત અન્ય પ્રાણીઓની હિંસા કરવામાં પણ એ અચકાતા નથી. એમને સ્વપ્નમાં



નરકનિગોદાધનન્તદુઃસ્વહેતુભૂતાં પ્રાણિર્હિંસાં તજ્જનિતકર્મબન્ધં ચ ગચ્છન્તિ=પ્રાપ્નુ-  
વન્તિ-કુર્વન્તીત્યર્થઃ । સૂત્રે ચતુર્થ્યર્થે તૃતીયાઽઽર્પત્વાત્ ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

કિંચ—‘ અદૃ ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—અદૃ સે બહુદુઃસ્વે, ઇતિ બાલે પકુઠ્વતિ ।

એતે રોગે બહૂ ગચ્ચા, આઊરા પરિતાવણ ॥ સૂ૦ ૧૧ ॥

છાયા—આર્તઃ સ બહુદુઃસ્વ, ઇતિ બાલઃ પ્રકુરુતે ।

एतान् रोगान् बहून् ज्ञात्वा आतुराः परितापयन्ति ॥ सू० ११ ॥

ટીકા—આર્તઃ=આર્તરૌદ્રધ્યાનવર્ત્તી, અત એવ બહુદુઃસ્વઃ=શારીરમાનસવિવિધ-  
દુઃસ્વાક્રાન્તઃ સ બાલઃ=અજ્ઞાની-કર્તવ્યાકર્તવ્યમૂઢઃ ઇતિ=એતાદૃશં કર્મ ઇતિ=એવમ્  
ઉક્તવિધં પ્રાણિવિધં વા પ્રકુરુતે । એતાન્=ઉક્તરૂપાન્ બહૂન્=બહુવિધાન્ ષોડશપ્રકારાન્  
રોગાન્=જ્ઞાત્વા પ્રાપ્ય આતુરાઃ=રોગપીડિતાઃ પરિતાપયન્તિ=વ્યાધિપ્રશમનાર્થં શરીર-  
પુષ્ટ્યર્થં ચ એકેન્દ્રિયાદિપ્રાણિગણમુપમર્દયન્તિ ॥ સૂ૦ ૧૧ ॥

સાંસારિક પ્રત્યેક પદાર્થ પરિણમનશીલ હૈં તો યહ મેરા શરીર મી ડસી  
પ્રકારકા હોનેસે ક્ષણ ૨ મેં સ્વતઃ ગલ રહા હૈ । યહ સ્વયં તો નિઃસાર હૈ,  
પર ઇસસે સાર પ્રાપ્ત કિયા જા સકતા હૈ ॥સૂ૦ ૧૦॥

શારીરિક એવં માનસિક અનેક રોગોંસે આક્રાન્ત વહ અજ્ઞાની પ્રાણી  
કર્તવ્યાકર્તવ્યકે જ્ઞાનસે વિમૂઢ હુઆ આર્ત ઔર રૌદ્રધ્યાનકે વશવર્તી  
બન પ્રાણિર્હિંસા જૈસે અનર્થોંકે કરનેમેં કુછ મી આગે પીછે કા વિચાર  
નહીં કરતા । કણ્ઠમાલ, કુષ્ઠ આદિ ૧૬ પ્રકારકે રોગોંસે જબ એસે પ્રાણી  
અત્યન્ત પીડિત હોતે હૈં તબ વે અપની ડસ ૨ વ્યાધિકે પ્રશમનાર્થ અથવા  
શરીરકી પુષ્ટ્યર્થ એકેન્દ્રિયાદિ પ્રાણિયોંકી હિંસા કરને લગ જાતે હૈં ।

પણુ એ વિચાર નથી આવતો કે જ્યારે સંસારી પ્રત્યેક પદાર્થ પરિણમનશીલ  
છે તો માઈ આ શરીર પણુ એવાજ પ્રકારનું હોવાથી ક્ષણ ક્ષણમાં પોતે ગળી રહ્યું  
છે. આ પોતે તો નિઃસાર છે છતાં એનાથી પણુ સાર પ્રાપ્ત કરી શકાય છે. (સૂ૦ ૧૦)

શારીરિક અને માનસિક અનેક રોગોથી અકળાતો એ અજ્ઞાની પ્રાણી  
કર્તવ્યાકર્તવ્યના જ્ઞાનથી વિમૂઢ બની આર્ત અને રૌદ્રધ્યાનને વશવર્તી બની  
પ્રાણિર્હિંસા જેવા અનર્થો કરવામાં કાંઈ પણુ આગળ-પાછળનો વિચાર કરતો  
નથી. કણ્ઠમાળ, કોઠ, ઇત્યાદિ ૧૬ પ્રકારના રોગોથી જ્યારે એ અત્યંત પીડિત  
બને છે ત્યારે એ પોતાની એ વ્યાધિના પ્રશમન માટે અથવા શરીરની  
પુષ્ટિ અર્થે એકેન્દ્રિયાદિ પ્રાણીઓની હિંસા કરવા લાગી જાય છે.

ભાવાર્થ—શરીરમાં જ્યારે કોઈ વિશેષ વ્યાધિ થઈ જાય છે, અને ઉપાય કરવા છતાં પણ જ્યારે એની શાંતિ થતી નથી ત્યારે રોગીના ચિત્તમાં અનેક પ્રકારના સંકલ્પ-વિકલ્પ ઊઠવા લાગે છે. આ સંકલ્પ-વિકલ્પોના કુડાળામાં પડેલા એ રોગી ક્યારેક પોતાના અપાયની ચિન્તાથી ઘેરાઈ જાય છે, ક્યારેક આ બધાને છોડીને મારે જવું પડશે—આ પ્રકારની દુર્ભાવનાથી વ્યાકુળ બને છે. હાય ! હવે શું કરું ? ક્યાં જઈ ? આ દુઃખ હવે સહેવાનું નથી મરી જઈ તો ઘણું સાઈ. આ રીતે બોલતાં આર્ત રૌદ્ર ધ્યાનમાં પડી જાય છે. આ સ્થિતિમાં પડેલા એ જીવને જો કોઈ પણ ઉપાય બતાવવામાં આવે તો તે એ ઉપાયોના કરવામાં કટિબદ્ધ બને છે. દેહથી જીવનું અત્યંત મમત્વ હોવાથી દેહની પીડાથી એ રોગીને મટાડવા અનેકાનેક હિંસાજન્ય કાર્ય કરે છે. કર્તવ્ય શું છે ? અને અકર્તવ્ય શું ? એનો નિર્ણય કરવાની વિવેકબુદ્ધિ શુભાવી બેસે છે. આ હાલતમાં કોઈ એને એવું કહે કે અમુક પશુનું બલિદાન દેવાથી આ રોગ મટી જાય તો તે એ જીવની પણ હિંસા કરવાનું ચુકતો નથી. શરીરની પુષ્ટિને કારણે અજ્ઞાની જીવ આ પ્રકારે અન્ય જીવોની હિંસા કરવામાં ઘૂણા કરતા નથી. (સૂ. ૦૧૧)

આચાર્યઃ શિષ્યમુપદિશતિ—‘ નાલં ’ इत्यादि ।

મૂલમ—નાલં પાસ અલં તવેણ્હિં, એયં પાસ મુળી ।

મહાભયં નાહવાઙ્ગ કંચનં ॥ સૂ૦ ૧૨ ॥

છાયા—નાલં પશ્ય, અલં તવ એતૈઃ । એતત્પશ્ય મુને ! મહદ્ભયં નાતિપત-  
યેત્કચ્ચન ॥ ૧૨ ॥

ટીકા—હે મુને ! ‘પશ્ય=વિમલધિયાઽવલોકય યથા નાલં=કર્મોદયજનિત-  
રોગાન્ નિવર્તયિતું ચિકિત્સાવિધયો ન સમર્થાઃ સન્તિ, તસ્માત્ તવ=હેયોપાદેય-  
વિવેકવતઃ એભિઃ=કર્મવન્ધકારણૈશ્ચિકિત્સાવિધિભિઃ અલં=પર્યાપ્તમ્ । કિચ્ચ—એતત્=

“ નાલં ” इत्यादि सूत्रद्वारा आचार्य महाराज शिष्यको उपदेश  
देते हुए कहते हैं—

મુનિકો લક્ષ્યકર સૂત્રકાર કહતે હૈં કિ હે મુને ! નિર્મલ બુદ્ધિસે તુમ  
હસવાતકા વિચાર અવશ્ય ૨ કરો કિ જો ભી રોગ હોતે હૈં વે સબ હસ  
જીવકે અશુભ કર્મોદયસે હોતે હૈં, ઉન્હેં દૂર કરનેકી સામર્થ્ય કિસીમેં  
નહીં હૈ, જબ તક અશુભકા ઉદય બના રહેગા તબ તક ચિકિત્સા હોને  
પર ભી ઉનકી શાંતિ નહીં હોગી, હસલિયે કર્મોદયસે ઉત્પન્ન હુએ હન  
દેહાશ્રિત રોગોંકો હટાનેકે લિયે કોઈ ભી ચિકિત્સાવિધિ સમર્થ નહીં  
હૈ । જબ યહ વાત સિદ્ધાન્તસિદ્ધ હૈ, તો ફિર ચિકિત્સાનિમિત્ત  
અન્ય પ્રાણિયોંકી હિંસા કરને જેસી ચિકિત્સાવિધિ, જો કેવલ કર્મ-  
વન્ધકા હી કારણ હૈ; કયોં કિયા જાય ! તથા અન્ય પ્રાણિયોંકી કી ગઈ  
હિંસા સ્વપ્નમેં ભી શાંતિ નહીં દે સકતી હૈ; કિન્તુ યહ મહાભયપ્રદ હી  
હોતી હૈ । કારણ કિ હસ કર્મકે કર્તા જીવકો યહ કર્મ જન્મ ઓર

“નાલં” इत्यादि सूत्रद्वारा आचार्य महाराज शिष्यने उपदेश आपतां કહે છે—

મુનિની સામે લક્ષ રાખી સૂત્રકાર કહે છે કે હે મુનિ ! નિર્મળ બુદ્ધિથી  
તમે આ વાતનો અવશ્ય વિચાર કરો કે જે પણ રોગ થાય છે એ બધા જીવના  
અશુભકર્મોદયથી જ થાય છે, એને દૂર કરવાનું સામર્થ્ય કોઈનામાં નથી, જ્યાં  
સુધી અશુભનો ઉદય રહે છે ત્યાં સુધી સારવાર છતાં પણ એને શાંતિ થતી  
નથી. એટલે કર્મોદયથી ઉત્પન્ન થયેલ આ દેહાશ્રિત રોગોને દૂર કરવામાં  
કોઈ પણ ચિકિત્સાવિધિ સમર્થ બનતી નથી, જ્યારે આ વાત સિદ્ધાંતથી દૃઢ  
સાબીત થયેલ છે તો પછી ચિકિત્સાનિમિત્ત બીજા પ્રાણીઓની હિંસા કરવામાં  
આવે તો તે કર્મબંધનું જ કારણ છે. આ રીતે કરવામાં આવતી પ્રાણિહિંસા  
સ્વપ્નમાં પણ શાંતિ લેવા દેતી નથી, અને તે મહાભયપ્રદ પણ બને છે. કારણ



પ્રાણ્યુપમર્દનં મહદ્વ્યં-જન્મમરણાદિમહાભયहेतुत्वात् । अतः कञ्चन=कमप्येकेन्द्रि-  
यादिकं प्राणिनं नातिपातयेत्=न प्राणेभ्यो व्यपरोपयेत् । एकस्मिन्नपि प्राणिनि  
हन्यमाने ज्ञानावरणीयादिकं कर्म बध्यते, तच्चानन्तसंसाराय सम्पद्यते । तस्मा-  
त्प्राण्युपमर्दनं महाभयम् ॥ १२ ॥

મરણાદિરૂપ મહાભયકે દેનેંમેં કારણરૂપ હોતા હૈ । અથવા કારણમેં કાર્યકે  
ઉપચારસે મહાભયકા કારણ હોનેસે યહ હિંસાકર્મ સ્વયં મહાભયરૂપ હૈ ।  
इसलिये आत्महितैषीका कर्तव्य है कि वह किसी भी एकेन्द्रिय जीव  
तककी भी हिंसा न करे-उन्हें अपने प्यारे प्राणोंसे वियुक्त न करे । क्यों  
कि एक भी प्राणीका किया गया उपमर्दन कर्त्ताको ज्ञानावरणीयादिक  
आठ कर्मोंका बन्ध करानेवाला होता है । कर्मबन्धसे जीव अनन्त संसारी  
बनता है । इसलिये यह कर्म महाभयस्वरूप है ।

ભાવાર્થ—અશુભોદયસે જીવોંકો વ્યાધિયાં હોતી હૈં । જીવહિંસાયુક્ત  
ચિકિત્સાવિધિસે भी उन व्याधियोंका विनाश नहीं होता है ।  
અશુભોદયકી શાંતિસે વ્યાધિયોંકા વિનાશ સ્વયમેવ હો જાતા હૈ ।  
ચિકિત્સા જડમૂલસે રોગકા નાશ નહીં કરતી હૈ, કિંતુ ડાકરોંકો દવા  
દેતી હૈ યહ બાત આજકલકે વિદ્વાન भी स्वीकार करने लगे हैं । फिर  
हिंसामय चिकित्सासे व्याधियोंका विनाश मानना बालुका-रेतसे तेल  
निकालनेकी बात मानने जैसी है । इस विधिसे जीव नवीन कर्मोंका  
બન્ધ કરતા હૈ ઓર રાતદિન નીરોગ અવસ્થા પ્રાપ્તિકે સ્થાનમેં ભયંકર

કે આ કર્મનો કરનાર જીવ જન્મ અને મરણરૂપ મહાભયનો ભોગવનાર બને  
છે. આત્મહિતેષુનું એ કર્તવ્ય છે કે તે કોઈ પણ એકેન્દ્રિય જીવની પણ હિંસા  
ન કરે-એને પોતાના પ્રાણથી વીયુક્ત ન કરે; કેમ કે એક પણ પ્રાણીનું કરવામાં  
આવેલ ઉપમર્દન, કરનારને જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોને બંધ કરનાર બને છે. કર્મ-  
બંધથી જીવ અનંત સંસારી બને છે. આ માટે આ હિંસાકર્મ મહાભયસ્વરૂપ છે.

ભાવાર્થ—અશુભના ઉદયથી જીવોને વ્યાધિઓ લાગુ પડે છે. ચિકિત્સા-  
વિધિ કે જેમાં અન્ય જીવોનું ઉપમર્દન કરવામાં આવે છતાં આવી ચિકિત્સા  
રોગનો નાશ કરી શકતી નથી. અશુભોદયની શાંતિથી વ્યાધિઓનો વિનાશ આપ-  
મેળે થઈ જાય છે. રોગના શમન માટે દવાની ઉપયોગિતા સ્વીકારાઈ છે, જીવ-  
હિંસા નહીં. હિંસાવાળી ચિકિત્સાથી વ્યાધિઓનો વિનાશ માનવો એ રેતીમાંથી  
તેલ કાઢવા જેવી વાત છે. આ વિધિથી જીવ નવીન કર્મોના બંધ બાંધે છે અને  
નિરોગી અવસ્થા પ્રાપ્ત કરવાને પ્રયત્ન લઈને અસાધ્ય રોગોનો ભોગવનાર બને

મૂલમ્—આયાણ મો! સસ્સૂસ મો! ધૂયવાયં પવેયડ્સામિ, ઇહ ચ્લુ અત્તતાણ તેહિં તેહિં કુલેહિં અભિસેણ અભિસંમૂયા અભિસંજાયા અભિનિવ્વુડા અભિસંબુડ્ઢા અભિસંબુદ્ધા અભિણિ-  
ક્કલંતા અણુપુવ્વેણ મહામુણી ॥ સૂ૦ ૧૩ ॥

છાયા—આજાનીહિ મો: ! શુશ્રૂષસ્વ મો ! ધૂતવાદં પ્રવેદયિષ્યામિ, ઇહ ચ્લુ આત્મતયા તેષુ તેષુ કુલેષુ અભિષેકેણ અભિસંમૂતાઃ, અભિસંજાતાઃ, અભિનિર્વૃતાઃ, અભિસંવૃદ્ધાઃ, અભિસંબુદ્ધાઃ અભિનિષ્ક્રાન્તાઃ, અનુપૂર્વેણ મહામુનયઃ ॥ ૧૩ ॥

ટીકા—મોઃ શિષ્ય ! યદહં ધૂતવાદં=ધૂતમ્=અષ્ટવિધકર્મધૂનનં તસ્ય વાદો ધૂત-  
વાદસ્તં પ્રવેદયિષ્યામિ તદ્ આજાનીહિ=અવધારય, તથા મોઃ ! શુશ્રૂષસ્વ=શ્રોતુમિ-  
ચ્છાં કુરુ। ‘મોઃ’ इत्यस्य पुनरुच्चारणं वक्ष्यमाणार्थस्य दुरधिगमत्वेन शिष्याऽव-  
धानार्थं, तथा च-‘सावधानेन भवता भाव्यम्’ इत्यभिप्रायोऽवगम्यते।

અસાધ્ય રોગોંકા આધાર બન જાતા હૈ । ઇસલિયે જો વ્યાધિયોંકે આધાર  
બનના નહીંં ચાહતે હૈંં વે તપ ઓર સંયમદ્વારા ઇનકે મૂલ કારણોંકા  
વિનાશ કરનેકે લિયે અગ્રેસર બનેં । કિસી જીવકી દેવી દેવતાકો બલિ  
દેનેસે યા કિસીકે માંસ આદિકે खानेसे વ્યાધિયોંકી ક્ષીણતા હોગી ઇસ  
અન્ધશ્રદ્ધારૂપ પાપકા પરિત્યાગ કરે ॥ સૂ૦ ૧૨ ॥

વક્ષ્યમાણ ધૂતવાદકો હૃદયમેં ધારણ-શ્રવણ આદિ કરનેકે નિમિત્ત  
શિષ્યકો પ્રેરિત કરતે હુણ સૂત્રકાર કહતે હૈ—“ આયાણ મો ” ! ઇત્યાદિ ।

હે શિષ્ય ! મેં જિસ અષ્ટવિધ કર્મોંકે નાશકે વાદ-કથનકો કહુંગા  
તુમ ઉસે હૃદયમેં ધારણ કરો । યદિ ધારણ ન હો સકે તો ઉસે સદા  
સુનનેકી ઇચ્છા કરતે રહો । સૂત્રમેં દો બાર જો “ મો મો ” શબ્દકા  
પ્રયોગ હુઆ હૈ, ઉસસે સૂત્રકારકા યહ અભિપ્રાય માલૂમ હોતા હૈ કિ

છે. આ માટે જે આવા ભયંકર રોગોથી બચવા તપ અને સંયમના પંથે વળે  
છે અને કોઈ દેવી દેવતાને કોઈ જીવતું બલિદાન દેવામાં પાપ સમજે છે  
આવો જીવ અસાધ્ય વ્યાધિથી બચે છે. (સૂ૦ ૧૨)

વક્ષ્યમાણુ ધૂતવાદને હૃદયમાં ધારણુ શ્રવણુ આદિ કરવા માટે શિષ્યને પ્રેરિત  
કરતાં સૂત્રકાર કહે છે “ આયાણ મો ” ઇત્યાદિ !

હે શિષ્ય ! હું જે આઠ પ્રકારના કર્મોના નાશ પછીની વાત તમોને કહું  
છું તમે અને હૃદયમાં ધારણુ કરો. જે ધારણુ ન થઈ શકે તો અને સાંભળ-  
વાની ઇચ્છા હમેશાં કરતા રહો. સૂત્રમાં બે વખત જે “ મો મો ” શબ્દને  
પ્રયોગ થયો છે, આથી સૂત્રકારનો એ અભિપ્રાય થાય છે કે જે વિષય આગળ



પ્રતિજ્ઞાતમર્થમાહ—‘इह खलु’ इत्यादि। इह=अस्मिन् मनुष्यलोके प्राणिनः आत्मतया =अनादिकालतो जीवकर्मणोः सम्बन्धादात्मकृतकर्मपरिणत्या तेषु तेषु=विविधेषु स्वस्वकर्मोदयप्रापितेषु उग्रभोगादिषूत्तमेषु श्वपाकादिषु नीचेषु च कुलेषु अभिषेकेण =शुक्रशोणितसंयोगादिक्रमेण अभिसंभूताः=जननीगर्भे कललावस्थां प्राप्ताः, अभिस-  
जो विषय आगे कहा जानेवाला है वह बड़ी मुश्किलसे समझनेमें आवे ऐसा है; इसलिये शिष्योंके चित्तको उस विषयकी ओर सावधान करते हुए वे शिष्यजनोंसे कहते हैं कि हे शिष्यों! तुम सावधानचित्त हो कर ही इस विषयको सुनना; अन्यथा-व्यग्रचित्त होओगे तो कुछ भी समझमें नहीं आवेगा। यहांसे वहीं प्रस्तुत विषय कहा जाता है—

इस मनुष्यलोकमें समस्त प्राणी कर्मोंके सम्बन्धसे परतन्त्र हो रहे हैं। यह जीव और कर्मोंका सम्बन्ध आजका नहीं है किन्तु अनादिकाल का है। इस सम्बन्धके कारण ही जीव कर्मोंके विपाकोदयसे उन २ गतियोंकी प्राप्तिके कारणभूत कर्मोंके उदय आने पर उग्रभोगादि विशिष्ट उत्तम कुलोंमें एवं चण्डाल आदि नीच कुलोंमें मातापिताके शोणित-शुक्र आदिके संयोगक्रमसे उत्पन्न होते हैं। संक्षेपसे उत्पत्तिका क्रम इस प्रकार है—सर्वप्रथम जीव माताके गर्भमें “कलल” अवस्थामें रहता है। इसके बाद क्रमसे अनेक अवस्थाओंको धारण कर फिर वह पेशी-अवस्थासम्पन्न होता है। अंग-उपांगोंकी तथा स्नायु एवं शिरके बालोंकी

કહેવામાં આવનાર છે તે ખૂબ મુશ્કેલીથી સમજવામાં આવે તેવો છે. આ માટે શિષ્યોના ચિત્તને એ વિષય તરફ સાવધાન કરતાં સૂત્રકાર શિષ્યજનોને કહે છે કે હે શિષ્યો! તમે સાવધાનચિત્તથી આ વિષયને સાંભળજો. જો વ્યગ્રચિત્ત બનશે તો આગળ કંઈ પણ સમજવામાં નહિ આવે. અહિંથી એ વિષય કહેવો શરૂ થાય છે.

આ મનુષ્યલોકમાં બધાં પ્રાણી કર્મના સંબંધથી પરતંત્ર થઈ રહ્યાં છે. આ જીવ અને કર્મનો સંબંધ આજનો નથી; પરંતુ અનાદિ કાળનો છે. આ સંબંધના કારણથી જીવ કર્મોના વિપાકના ઉદયથી એ એ ગતિયોની પ્રાપ્તિના કારણ-ભૂત કર્મોનો ઉદય આવવાથી ઉગ્ર ભોગ આદિ વિશિષ્ટ ઉત્તમ કુળોમાં અથવા ચંડાળ વિગેરે નીચ કુળોમાં માતા પિતાના શોણિતશુક્ર વગેરેના સંયોગક્રમથી ઉત્પન્ન થાય છે. કુળમાં ઉત્પત્તિનો ક્રમ આ પ્રકારનો છે. સર્વપ્રથમ જીવ માતાના ગર્ભમાં “કલલ” અવસ્થામાં રહે છે, એ પછી ક્રમથી અनेક અવસ્થાઓ ધારણ કરી ફરી તે પેશી અવસ્થા પ્રાપ્ત કરે છે. અંગ ઉપાંગો તથા સ્નાયુ



જ્ઞાતાઃ=કલલાનન્તરં યાવત્પેશ્યવસ્થાં પ્રાપ્તાઃ, અભિનિર્વૃતાઃ=તતઃ સાદ્ગોપાદ્ગ્નાયુ-  
શિરોરોમાદીનાં ક્રમેણાભિનિર્વર્તેનેન ગર્ભપૂર્ણાવસ્થાં પ્રાપ્તાઃ, તતો ગર્ભાન્નિઃસૃતાઃસન્તઃ  
અભિસંવૃદ્ધાઃ=શૈશવાદિક્રમેણ વૃદ્ધિ પ્રાપ્ય ધર્મશ્રવણયોગ્યાવસ્થાં સમાપન્નાઃ, તતઃ  
અભિસંવૃદ્ધાઃ=ધર્મકથાદિકં નિમિત્તમાસાદ્યોપલબ્ધપુણ્યપાપસ્વરૂપાદિતયા બોધિબીજં  
પ્રાપ્તાઃ, તતઃ અભિનિષ્ક્રાન્તાઃ=ગૃહસ્થભાવાન્નિર્ગતાઃ-પ્રવ્રજ્યાં પ્રાપ્તા इत्यर्थः, અનુ-  
પૂર્વેણ=અનુક્રમેણ આચારાદ્ગાદિદ્વાદશાંગગણિપિટકાભ્યાસતત્તર્થભાવનોપવૃત્તિચરણ-  
કરણપરિણામતયોપાધ્યાયગીતાર્થ-પરિહારવિશુદ્ધિકૈકાકિવિહારિ-પ્રતિમાધારિ-  
જિનકલ્પિકાવસ્થાપર્યવસાનક્રમેણ મહામુનયો ભવન્તિ ॥ સૂ. ૧૩ ॥

ક્રમ ૨ સે જવ પૂર્ણ રચના હો જાતી હૈ, તવ ગર્ભકી વહ પૂર્ણ અવસ્થા  
કહલાતી હૈ। ઇસ પૂર્ણ અવસ્થા કે વ્યતીત હોતે હી જીવ વહાંસે બાહર  
નિકલતા હૈ। શૈશવ-બાલપન આદિકે ક્રમસે જવ ડસકી વૃદ્ધિ હોને  
લગતી હૈ તો ઇક સમય ઇસા ખી આ જાતા હૈ કિ જવ યહ ધર્મશ્રવણ  
કે યોગ્ય અવસ્થાકો પ્રાપ્ત હોતા હૈ। ધર્મકથાકે સુનનેસે પુણ્ય ઓર પાપકે  
સ્વરૂપસે યહ ખલીખાંતિ પરિચિત હો જાતા હૈ ઓર બોધિબીજકો પાતા  
હૈ। બોધિબીજકી પ્રાપ્તિ હોનેસે યહ ગૃહસ્થભાવસે નિર્ગત હો જાતા  
હૈ-જૈનેશ્વરી દીક્ષાકો અંગીકાર કરતા હૈ, ક્રમ ૨ સે આચારાંગ આદિ  
દ્વાદશાંગ ગણિપિટકકા અભ્યાસ કરતા હૈ, અથવા ડનકે અભ્યાસ કરને  
કી ભાવના રખતા હૈ। ઇસ ભાવનાસે વહ અપને કરણસત્તરી ઓર ચર-  
ણસત્તરીકે પરિણામોંકી વૃદ્ધિ કરતા રહતા હૈ। ઇસસે ક્રમશઃ ઉપાધ્યાય,  
ગીતાર્થ, પરિહારવિશુદ્ધિક, ઇકાકીવિહારી, પ્રતિમાધારી ઓર જિનકલ્પી

અને માથાના વાળની કંમે કંમે જ્યારે પૂર્ણ રચના થઈ જાય છે ત્યારે ગર્ભની  
પૂર્ણ અવસ્થા પછી છવ ત્યાંથી બહાર નીકળે છે. શૈશવ-બાળપણ ઇત્યાદિ  
ક્રમથી જ્યારે એની વૃદ્ધિ થવા લાગે છે, આમાં એક સમય એવો પણ આવી  
જાય છે કે જ્યારે તે ધર્મશ્રવણને યોગ્ય અવસ્થાને પ્રાપ્ત થાય છે. ધર્મકથા  
સંભળવાથી થનાર પુણ્ય અને પાપના સ્વરૂપથી એ સારી રીતે પરિચિત થઈ જાય  
છે, અને બોધિબીજને પામે છે. બોધિબીજની પ્રાપ્તિ થવાથી એ ગૃહસ્થસ્વભા-  
વથી નિર્ગત બની જાય છે, જૈનેશ્વરી દીક્ષાનો અંગીકાર કરે છે. કંમે કંમે  
આચારાંગ ઇત્યાદિ દ્વાદશાંગ ગણિપિટકનો અભ્યાસ કરે છે, અથવા એનો અભ્યાસ  
કરવાની ભાવના રાખે છે. આ ભાવનાથી એ પોતાના કરણસત્તરી અને ચરણ-  
સત્તરીના પરિણામોની વૃદ્ધિ કરતો રહે છે અને આગળ વધતાં ઉપાધ્યાય,

મૂલમ—તં પરિક્કમંતં પરિદેવમાણા મા ણે ચયહિ ઇય તે વયંતિ । છંદોવર્ણીયા અજ્ઞોવવન્ના અક્રંદકારી જણગા રૂવંતિ । અ તારિસે મુળી નો ઓહં તરણ, જણગા જેણવિપ્પજઢા । સૂ૦૧૪ ।

છાયા—તં પરાક્રમન્તં પરિદેવમાનાઃ ‘ મા અસ્માન્ ત્યજ ’ ઇતિ તે વદન્તિ । છન્દોપનીતા અધ્યુપપન્ના આક્રન્દકારિણો જનકા રુદન્તિ । અ તાદૃશો મુનિર્નો ઓધં તરતિ જનકા યેન વિપ્રત્યક્તાઃ ॥ સૂ૦૧૪ ॥

સાધુ પર્યન્તકી અવસ્થાઓંકા ધારક બનતા હુઆ મહામુનિ હો જાતા હૈ ।

ભાવાર્થ—કષાય સહિત હોનેસે જીવ કર્મોંકે યોગ્ય પુદ્ગલ પરમાણુઓં કા જો ગ્રહણ કરતા હૈ इसीका नाम बन्ध है । इस बन्धदशासे समस्त संसारी जीव परतन्त्र हो रहे हैं और तत्तद्गतिप्रापक कर्मोदयसे वे उच्च-नीचादि कुलोंमें मातापिताके रज और वीर्यके सम्बन्धसे गर्भावस्था-सम्पन्न बन कर क्रम २ से अपने २ समयानुसार उत्पन्न होते रहते हैं । शैशवादि अवस्था बाद धर्मश्रवण योग्य अवस्थावाले जब वे होते हैं तब धर्मकथाके श्रवणसे पुण्यपापके स्वरूपके ज्ञाता होकर बोधिबीजकी प्राप्तिसे गृहीत धर्मकी सफलता निमित्त जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर आचारांग आदि सूत्रोंका अभ्यास करते हुए अपने चारित्रिकी उज्ज्वलता की वृद्धि करनेमें सावधान रहते हैं । जिनकल्पी साधुकी अवस्थापर्यन्त मध्यकी जितनी भी साधुओंकी अवस्थाएँ हैं उन सबका आराधन करते हुए वे महामुनियोंकी कोटिमें आ विराजते हैं ॥ सू० १३ ॥

ગીતાર્થ, પરિહારવિશુદ્ધિક, એકાકીવિહારી, પ્રતિમાધારી અને જનકલ્પી સાધુ સુધીની અવસ્થાનો ધારક બની મહામુનિ થઈ જાય છે.

ભાવાર્થ—કષાયસહિત હોવાથી જીવ કર્મોંને યોગ્ય પુદ્ગલ પરમાણુઓંનું ગ્રહણ કરે છે આનું નામ બંધ છે. આ બંધદશાથી સમસ્ત સંસારી જીવ પર-તન્ત્ર થઈ રહ્યા છે અને તે તે ગતિને આપનાર કર્મોદયથી તે ઉચ્ચ નીચ આદિ કુળોમાં માતા પિતાના રજ અને વીર્યના સંબંધથી ગર્ભાવસ્થાસંપન્ન બની, ક્રમે ક્રમે પોતપોતાના સમયાનુસાર જન્મ લે છે. બાલ્યઆદિ અવસ્થા બાદ ધર્મશ્રવણ યોગ્ય અવસ્થાવાળો જ્યારે તે થાય છે ત્યારે ધર્મકથાના શ્રવણથી પુણ્ય પાપના સ્વરૂ-પનો બાણકાર બની બોધિબીજની પ્રાપ્તિથી ગ્રહીત ધર્મની સફળતારૂપ જૈનેશ્વરી દીક્ષા ધારણ કરી આચારાંગ આદિ સૂત્રોનો અભ્યાસ કરતાં પોતાના ચારિત્રની ઉજ્જવલતાની વૃદ્ધિ કરવામાં સાવધાન રહે છે. જનકલ્પી સાધુની અવસ્થા પર્યન્ત વચ્ચેની જેટલી પણ સાધુઓની અવસ્થાઓ છે એ સહુનું આરાધન કરતાં કરતાં તે મહામુનિઓની કક્ષાએ પહોંચે છે. (સૂ૦ ૧૩)



ટીકા=તમ્=અભિસંબુદ્ધં ગૃહવાસવિમુક્તં, પરાક્રમમાણં=મહામુનિનિષેવિતં પ-  
ન્થાનમારોહન્તં, તે=માતાપિતૃતનયભાર્યાદયઃ વદન્તિ-‘અસ્માન્ મા ત્યજ’ ઇતિ।  
કિંચ-છન્દોપનીતાઃ ત્વદભિપ્રાયાનુવર્તિનઃ, અધ્યુપપન્નાઃ=ત્વદનુગામિનઃ વયં સ્મઃ,  
તસ્માદેવંભૂતાનસ્માન્ પરિત્યજ્ય કિં વ્રજસિ ?, इत्येवमाक्रन्दकारिणः=સશોકં  
વિલપન્તઃ જનકાઃ માતાપિત્રાદયો રુદન્તિ ।

કિં ચૈવં તે વદન્તિ-અ તાદૃશો મુનિરિત્યાદિ ।

येन पाषण्डिवाञ्छितेन मुग्धेन जनकाः=मातापित्रादयः विप्रत्यक्ताः=सर्वथा  
परित्यक्ताः तादृशः अ=न मुनिर्भवति । अत्र-‘अ’ इति स्वरप्रतिरूपकमव्ययं  
निषेधार्थं वर्तते । नो=न च ओषं=संसारसागरप्रवाहं तरति ॥ सू० १४ ॥

जिसने संसार, शरीर, और भोगोंका वास्तविक स्वरूप जानकर  
गृहवाससे विरक्ति धारण की है, और जो महामुनियोंद्वारा सेवित मार्गका  
अवलम्बन करनेके लिये उद्यत हो रहा है ऐसे सुसंभ्रजनको देखकर उसके  
माता पिता, पुत्र स्त्री वगैरह स्वजन उससे कहते हैं कि “मा अस्मान्-  
त्यज” तुम हमें मत छोड़ो; कारण कि हम सब तुम्हारी इच्छानुसार  
प्रवृत्ति करनेवाले एवं तुम्हारे पीछे २ चलनेवाले हैं, तो फिर इस प्रकार  
से वर्तन करनेवाले हम सबको छोड़कर तुम क्यों जा रहे हो? इस प्रकार  
सशोक विलाप करते हुए माता पिता आदि सम्बन्धिजन रोते हैं और  
कहते हैं कि यह वास्तविक मुनि नहीं है, पाषण्डियों से ठगाये गये इस  
भोलेभालेने अपने मातापितादिकको सर्वथा व्यर्थ ही छोड़ दिये हैं,  
तथा यह संसाररूपी समुद्रके प्रवाहको भी नहीं तैर सकता है ॥सू० १४॥

જેણે સંસાર, શરીર અને ભોગોનું વાસ્તવિક સ્વરૂપ જાણી લઈ ગૃહવાસથી  
વિરક્તિ ધારણ કરી છે, અને જે મહામુનિઓદ્વારા સેવિત માર્ગનું અવલંબન  
કરવામાં ઉદ્યમશીલ રહે છે એવા મોક્ષાભિલાષી જનને જેમ એનાં માતા પિતા,  
પુત્ર સ્ત્રી વગેરે સ્વજન એને કહે છે કે “મા અસ્માન્ ત્યજ” તમે અમોને છોડો  
નહીં, કારણ કે અમે બધા તમારી ઇચ્છા અનુસાર પ્રવૃત્તિ કરનારા અને તમારી  
પાછળ પાછળ ચાલવાવાળા છીએ. છતાં પણ તમે અમો બધાને છોડી કેમ જઈ  
રહ્યા છો? આ પ્રકારનો શોક વિલાપ કરતા માતા પિતા ઇત્યાદિ સંબંધીજનો  
રૂએ છે અને કહે છે કે એ વાસ્તવિક મુનિ નથી, પાષંડીઓથી છેતરાએલ  
આ ભોળાભાળાએ પોતાના માતા પિતા વગેરેને સમજ્યા વગર સર્વથા છોડી  
દીધાં છે, અને આ સંસારરૂપી સમુદ્રના પ્રવાહને પણ તરી શકતો નથી. (સૂ૦ ૧૪)



અભિસમ્બુદ્ધસ્ય કર્તવ્યમાહ—‘સરણં’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—સરણં તત્થ નો સમેઙ્ગ, કહં નુ નામ સે તત્થ રમઙ્ગ ?  
 ઇયં નાણં સયા સમણુવાસિજ્ઞાસિ—ત્તિવેમિ ॥ સૂ. ૧૫ ॥

છાયા-શરણં તત્થ નો સમેતિ, કથં નુ નામ સ તત્થ રમતે ? એતદ્ જ્ઞાનં સદા  
 સમનુવાસયેઃ, ઇતિ બ્રવીમિ । સૂ. ૧૫ ॥

ટીકા-તત્થ=તસ્મિન્નવસરે દીક્ષાગ્રહણકાલે સઃ=અભિસમ્બુદ્ધઃ પ્રવ્રજ્યાં ગ્રહીતુ-  
 કામો વૈરાગ્યવાન્ વિલપન્તમપિ માતાપિત્રાદિકં શરણં નો સમેતિ=નોપગચ્છતિ ।  
 સંસારસ્વરૂપસમધિગમસંજ્ઞાતતીવ્રતરવૈરાગ્યભાવનાભાવિતાત્મતયા માતાપિત્રાદિ-  
 કૃતાઃક્રન્દનમવગણ્ય સંયમમાર્ગમારોહું પ્રવૃત્તો ભવતીતિ ભાવઃ । એતદેવ સ્પષ્ટ-

ગૃહવાસસે વિમુક્ત જનકે કર્તવ્યોંકો સૂત્રકાર કહતે હૈં—“સરણં”  
 ઇત્યાદિ ।

હસ સૂત્રમેં સૂત્રકાર યહ કહ રહે હૈં કિ જબ મનુષ્ય મુનિદીક્ષા  
 ધારણ કરનેકે સન્મુક્ત હોતા હૈ, વૈરાગ્યસે ઉસકા હૃદય ભરા હુઆ હોતા  
 હૈ તબ ઉસ સમય વહ પૂર્વોક્તરૂપસે વિલાપ કરતે હુએ માતા પિતા આદિ  
 કી વાતોં મેં જરા બી નહીં લલચાતા; કારણ કિ ઉસે યહ વાત ભલી-  
 ભાંતિ જ્ઞાત હો ચુકી હૈ કિ મુઝે મૃત્યુસે છુડાનેમેં યે સમર્થ નહીં હો સકતે  
 હૈં; ક્યોં કિ યે સ્વયં હી ઉસકે આધીન બને હુએ હૈં । કર્મોંકે ફલકો  
 ભોગતે સમય કૌન એસા સંસારમેં હૈ જો મુઝે સહારા દે સકે ?  
 યહાં ધર્મકે સિવાય મેરા રક્ષક કોઈ નહીં હૈ । સંસારી સ્વયં  
 અપને ૨ કર્મોંકે ઉદયસે ત્રસ્ત હો રહે હૈં, હનમેં કૌન કિસકા રક્ષક  
 હો સકતા હૈ । સબકો અપને કર્મ ભોગને પડતે હૈં । યદિ કોઈ નિષ્કારણ

ગૃહવાસથી વિમુક્ત બનનારના કર્તવ્યોને સૂત્રકાર કહે છે “સરણં” ઇત્યાદિ.  
 આ સૂત્રમાં સૂત્રકાર એ કહે છે કે જ્યારે મનુષ્ય મુનિદીક્ષા ધારણ  
 કરવા યોગ્ય બને છે, વૈરાગ્યથી એનું હૃદય ભરાએલું હોય છે, ત્યારે એ સમય  
 તે પૂર્વોક્તરૂપથી વિલાપ કરતાં માતા પિતા વગેરેની વાતોમાં જરા પણ લલ-  
 ચાતો નથી; કારણ કે એ વાત સારી રીતે એ બાણી ચૂક્યો હોય છે કે મને  
 મૃત્યુના મુખમાંથી છોડાવવામાં આ બધાં અસમર્થ છે; કેમ કે તેઓ પોતે જ  
 એને આધીન બનેલ છે. કર્મના ફળને ભોગવતી વખતે સંસારમાં એવું કોણ  
 છે કે મને આધારરૂપ બને. ધર્મના સિવાય માંડે કોઈ રક્ષક નથી.  
 સંસારી પોતે જ પોતપોતાના કર્મોના ઉદયથી હુબી થઈ રહ્યા છે.  
 આમાં કોણ કોણ રક્ષક બની શકે? બધાને પોતાના કર્મનાં ફળ ભોગવવાં

યતિ-‘કથં નુ નામ’ ઇત્યાદિ । સ=તીવ્રવૈરાગ્યવાન તત્ર=તસ્મિન ગૃહવાસે નરકરૂપે મોક્ષદ્વારાર્ગલાભૂતે કથં નુ નામ રમતે=અનુરાગં કુર્યાત્ ? કિન્તુ નૈવ સ તત્રાસક્તો ભવિતુમર્હતિ । યતઃ કારાગારવાસરૂપોઽયં ગૃહવાસો ન કસ્યાપ્યભિસંબુદ્ધસ્ય પ્રિયઃ બંધુ હૈ-રક્ષક હૈ-તો વહ એક આરાધિત ધર્મ હી હૈ; અતઃ ઉસકા હી સહારા લેના સુદ્ધે ઉત્તમ હૈ । ઇસ પ્રકાર સંસારકે સ્વરૂપકે વિચારસે ઉસકે હૃદયમેં તીવ્રતર વૈરાગ્યભાવકી જાગૃતિ હોતી હૈ । ઇસકા હી યહ પરિણામ હોતા હૈ કિજો વહ સ્વાર્થવશ રોતે ચિલ્લાતે હુએ ખી અપને માતા પિતાકી તરફ થોડીસી ખી મમત્વદષ્ટિસે નહીં નિહારતા હૈ ઓર સહસા ઉનસે વિરક્ત બન સંયમ માર્ગપર આરૂઢ હોનેકે લિયે કટિબદ્ધ હો જાતા હૈ । ઇસી વાતકો “કથં નુ નામ તત્ર રમતે” ઇસ પંક્તિમેં ખુલાસા કિયા હૈ ઠીક હી હૈ; અરે ! જિસકી આત્મામેં તીવ્રતર વૈરાગ્યકા વાસ હો ચુકા હૈ, જો ઇસ સંસારકો અશરણ ઓર અસાર સમજ ચુકા હૈ, ભલા ! વહ સંસારકે પથિકોંકો શરણ ઓર સારરૂપ માન ખી કૈસે સકતા હૈ । ઉસે તો ગૃહવાસ નરકતુલ્ય ઓર મોક્ષદ્વારકા અર્ગલાસ્વરૂપ હી પ્રતિભાસિત હોતા હૈ । યહી કારણ હૈ જો વહ ઉસમેં આસક્ત નહીં હોતા ।

ભાવાર્થ—કોઈ ખી પ્રતિબુદ્ધ-સમજદાર મનુષ્ય જૈસે કારાગારમેં રહના પસંદ નહીં કરતા હૈ, ઠીક ઇસી પ્રકારસે જો સંસાર, શરીર ઓર

પડે છે. આમાં કોઈ નિષ્કારણ બંધુ હોય-રક્ષક હોય તો તે એક આરાધિત ધર્મ જ છે. આથી એનો જ આશ્રય લેવો મારા માટે ઉત્તમ છે. આ પ્રકારે સંસારના સ્વરૂપના વિચારથી એના હૃદયમાં વૈરાગ્યભાવની તીવ્રતર જાગૃતિ થાય છે. એના પરિણામરૂપ રોતાં ચિલ્લાતાં પોતાનાં માતા પિતા વગેરેની સ્વાર્થવશતા તરફ એ જરાસંસ્પર્શી પણ મમત્વદષ્ટિથી જોતો નથી, અને એનાથી તદ્દન વિરક્ત બની સંયમ માર્ગ ઉપર આરૂઢ થવા એ મુક્તિ બની જાય છે. આ વાતનો “કથં નુ નામ તત્ર રમતે” આ પંક્તિમાં ખુલાસો કરેલ છે. ઠીક છે, અરે ! એના આત્મામાં વૈરાગ્યનો તીવ્રતર વાસ થઈ ચુક્યો છે, આ સંસારને જે અશરણ અને અસાર સમજી ચુકેલ છે એવો વિરક્ત જન સ્વજનોના સ્વાર્થવશ આકંઠને કેમ વશ બની શકે ? એને તો ગૃહવાસ નરકતુલ્ય અને મોક્ષદ્વારમાં બાધક જાણીતું હોય છે, આથી તે એનામાં આસક્ત નથી બનતો.

ભાવાર્થ—કોઈ પણ પ્રતિબુદ્ધ-સમજૂ મનુષ્ય જેમ જેલખાનામાં રહેવાનું પસંદ કરતો નથી. આ જ રીતે જે સંસાર, શરીર અને ભોગોના સાચા સ્વરૂપને જાણી ગયેલ છે એને ગૃહસ્થવાસ પ્રિય લાગતો નથી.



સ્યાદિતિ ભાવઃ । ઉપસંહરન્નાહ-‘એતદ્જ્ઞાન’-મિત્યાદિ । એતત્=અષ્ટવિધકર્મધૂનન-વિષયકધૂતવાદોક્ત જ્ઞાન=જીવકર્મણોરનાદિસમ્બન્ધાત્સ્વકૃતકર્મપરિણત્યા પૃથિવ્યા-દિપૃથ્વીજીવનિકાયેષુ પુનઃ પુનરનન્તાનન્તજન્મમરણદુઃસ્વૌધમનુભૂય પ્રબલપુણ્યોદયેન મનુષ્યભવાર્યક્ષેત્રસુકુલજન્માદિકમુપલભ્ય ધર્મશ્રવણયોગ્યાવસ્થાયાં વર્તમાનઃ કથશ્ચિદ્ધર્મકથાદિકં નિમિત્તમાસાદ્યાભિગતજીવાજીવસ્વરૂપ ઉપલબ્ધપુણ્યપાપઃ આસ્રવસંવ-ભોગોંકે વાસ્તવિક સ્વરૂપકે જ્ઞાતા હૈં ઉન્હેં ગૃહસ્થવાસ ધી પ્રિય નહીં હોતા હૈ ।

“એતદ્જ્ઞાનં સદા સમનુવાસયેઃ-ઈતિ બ્રવીમિ ” ।—

હસ પ્રકરણકા ઉપસંહાર કરતે હુણ સૂત્રકાર શિષ્યસે કહતે હૈં કિ હસ ધૂતવાદમેં અષ્ટવિધ કર્મોંકે વિનાશ કરનેકા જો વિષય આયા હૈં ઓર સાથમેં જો યહ બતલાયા ગયા હૈં કિ જીવ ઓર કર્મોંકા સંબંધ અનાદિકાલકા હૈં, તથા તત્તદ્ગતિપ્રાપક કૃતકર્મકે ઉદયસે જીવ પૃથિવીકા-યિક આદિ પર્યાયોંમેં ઉત્પન્ન હોતા હૈં, એવં વહાં બારંબાર અનન્તાનંત જન્મ-મરણકે દુઃસ્વોંકે ભારકો વહન કરતા હુઆ વહ કોઈ પ્રબલ પુણ્યકે ઉદય સે મનુષ્યભવ, આર્યક્ષેત્ર, સુકુલમેં જન્મ આદિ સામગ્રીકી પ્રાપ્તિસે ધર્મકે શ્રવણકરનેયોગ્ય અવસ્થાસંપન્ન બન, કથંચિત્ ધર્મકથા આદિકે નિમિત્ત કો પાકર, જીવ ઓર અજીવાદિ પદાર્થોંકે સ્વરૂપકા જ્ઞાતા બન, પુણ્ય ઓર પાપકે યથાર્થસ્વરૂપસે પરિચિત હો, આસ્રવ, બંધ, સંવર ઓર નિર્જરાકે કારણોંમેં કુશલમતિ હોતા હુઆ મોક્ષમાર્ગ પર આરૂઢ હો કર ક્રમસે મહા મુનિ હોતા હૈં, હસ પ્રકાર યહ સવ વિષય પ્રતિપાદિત હુઆ હૈં; સો હે શિષ્ય !

“એતદ્જ્ઞાનં સદા સમનુવાસયેઃ-ઈતિ બ્રવીમિ । ”

આ પ્રકરણુનો ઉપસંહાર કરતાં સૂત્રકાર શિષ્યને કહે છે કે આ ધૂતવાદમાં આઠવિધ કર્મોનો વિનાશ કરવાનો જે વિષય આવેલ છે અને સાથે જે એમ બતાવવામાં આવ્યું છે કે જીવ અને કર્મોનો સંબંધ અનાદિકાળનો છે અને તે તે ગતિઆપવાવાળા કહેલ કર્મના ઉદયથી જીવ પૃથિવીકાયિક આદિ પર્યાયોમાં ઉત્પન્ન થાય છે, અને ત્યાં વારંવાર અનંતાનંત જન્મમરણના દુઃખોનો ભાર સહન કરતાં કેઈ પ્રબળ પુણ્યના ઉદયથી મનુષ્યભવ, આર્યક્ષેત્ર, સુકુળમાં જન્મ આદિ સામગ્રીની પ્રાપ્તિથી ધર્મને શ્રવણ કરવા યોગ્ય અવસ્થાસંપન્ન બની, કથંચિત્ ધર્મકથા આદિના નિમિત્તને પામીને, જીવ અને અજીવાદિ પદાર્થના સ્વરૂપનો જ્ઞાતા બની, પુણ્ય અને પાપનો યથાર્થ સ્વરૂપથી પરિચિત બની, આસ્રવ, બંધ, સંવર અ નિર્જરાના કારણોમાં કુશળ બનીને, મોક્ષમાર્ગમાં આરૂઢ થઈને,



રનિર્જરાબન્ધાધિકરણકુશલઃ સન્ મોક્ષમાર્ગારૂઢઃ ક્રમેણ મહામુનિર્ભવતીત્યેવંરૂપં  
સમ્યગવબોધં સદા=નિરન્તરં સમનુવાસયે=સ્વાત્મનિ ત્વં સમ્યગનુભાવયેઃ । ઇતિ  
બ્રવીમિ । વ્યાખ્યા પૂર્વવત્ ॥ સૂ૦ ૧૫ ॥

॥ ઇતિ ષષ્ઠાધ્યયનસ્ય પ્રથમ ઉદ્દેશઃ સમાપ્તઃ ॥ ૬-૧ ॥

તુમ્મ હસ વિષયકો ભલીભાંતિ અપને હૃદયમેં ચિન્તવન કરતે રહો ।  
“ઇતિ બ્રવીમિ” ઇન પદોંકા વ્યાખ્યાન પૂર્વમેં કહા હી જા ચુકા હૈ ।

ભાવાર્થ—તીવ્રવૈરાગ્યસમ્પન્ન આત્મા અપને સંબંધીજનદ્વારા પ્રદર્શિત  
કિયે ગયે મમતાભરે અનુનયવિનયકો લક્ષ્યમેં ન દે કર અપને દૃઢ અધ્ય-  
વસિત કાર્યકી પૂર્તિ કરનેમેં હી તહ્લીનમતિ હોતા હૈ । સંસારકે કોઈ ભી  
પદાર્થ ઉસે ફિર લુભા નહીં સકતે । ઘર ઉસે લુભા નહીં સકતા,  
વહ તો ઉસે કારાગાર જૈસા માલૂમ હોને લગતા હૈ । સમસ્ત સમ્બન્ધીજન  
સ્વાર્થી એવં અશરણ ઉસે પ્રતિભાસિત હોને લગતે હૈ । એક આરાધિત  
ધર્મકો હી વહ અપના રક્ષક ઔર સહાયી માનતા હૈ । હીસીકી આરાધના  
મેં વહ સબ કુછ અપના વિસર્જિત કર દેતા હૈ । સાધારણ મુનિ અવસ્થા  
સે લે કર જિનકલ્પી સાધુ અવસ્થાતક કી ક્રિયાઓંકી આરાધના કરતા  
હુઆ વહ ભાગ્યશાલી મહામુનિ કી કોટિમેં આ જાતા હૈ ॥સૂ૦ ૧૫॥

॥ છઠ્ઠા અધ્યયનકા પહલા ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૬-૧ ॥

કમે કમે મહામુનિ બને છે. આ પ્રકારે આ સઘળો વિષય પ્રતિપાદિત થયો છે;  
માટે હે શિષ્ય ! તમે આ વિષયનું સારી રીતે પોતાના હૃદયમાં ચિન્તવન કરતા  
રહો. “ઇતિ બ્રવીમિ” આ પદોનું વ્યાખ્યાન પૂર્વમાં ( અગાઉ ) કહેવાઈ ગયું છે.

ભાવાર્થ—તીવ્ર-વૈરાગ્ય-સંપન્ન આત્મા પોતાના સંબંધી જનદ્વારા કહેવામાં  
આવેલા મમતાભર્યા-અનુનય વિનયને લક્ષમાં ન લેતાં પોતાના દૃઢ અધ્યવસિત  
કાર્યની પૂર્તિ કરવામાં જ તદ્દલીન બને છે. સંસારના કોઈ પણ પદાર્થ એને પછી  
લોભાવી તેના લક્ષથી દૂર કરી શકતો નથી. ઘર એને લોભાવી નથી શકતું.  
ઘર તો એને જેલખાના જેવું લાગે છે. સઘળાં સંબંધી જન સ્વાર્થી અને  
અશરણ છે તેવા તેને ભાસ થાય છે. એક આરાધિત ધર્મને જ તે પોતાનો  
રક્ષક અને સહાયક માને છે. એની આરાધનામાં તે પોતાનું બધું ન્યોછાવર કરી  
દે છે, સાધારણ મુનિ અવસ્થાથી માંડી જનકલ્પી સાધુ અવસ્થા સુધીની ક્રિયા-  
ઓની આરાધના કરતાં તે ભાગ્યશાળી મહામુનિની કોટીમાં જઈ બેસે છે. (સૂ૦ ૧૫)

છઠ્ઠા અધ્યયનનો પહેલો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૬-૧ ॥

### । अथ षष्ठ्याध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः ।

इहानन्तरोद्देशके मातापित्रादिस्वजनसङ्गविधूननं निगदितं, तच्च कर्मविधूननं विना न सफलं स्यात्, अतस्तदर्थं द्वितीयोद्देशकं कथयति । तत्रादौ ये गृहीतचारित्र्याः पश्चात् प्रबलमोहोदयात् आचारं परित्यजन्ति तेषां संसारपरिभ्रमणाद् विश्रामो न भवतीति तान् बोधयितुमाह—आउरं' इत्यादि ।

मूलम्—आउरं लोगमायाए चइत्ता पुव्वसंजोगं हिच्चा उवसमं वसित्ता बंभचेरंसि, वसु अणुवसु वा जाणित्तु धम्मं जहा तथा, अहेगे तमचाइ कुसीला, वत्थं पडिग्गहं कंबलं पायपुंछणं विउसिज्ज, अणुपुव्वेण अणहियासमाणा परीसहे दुरहियासए ।

### ॥ छट्ठा अध्ययनका दूसरा उद्देश ॥

इस अध्ययनके प्रथम उद्देशमें माता, पिता आदि स्वजनोंके संबंध का परित्याग प्रकट किया गया है । परन्तु यह परित्याग कर्मोंके विनाश के विना सफल नहीं हो सकता है । इसलिये उन कर्मोंके विनाशके निमित्त इस द्वितीय उद्देशका कथन सूत्रकार प्रारम्भ करते हैं । उसमें सर्वप्रथम वे इस बातका निरूपण करते हैं कि जिसने चारित्र्यकी प्राप्ति तो कर ली है, परन्तु प्रबल चारित्र्यमोहनीयके उदयसे उस गृहीत चारित्र्यका परित्याग भी कर दिया है, तो इससे उसका संसारके परिभ्रमणसे विश्राम हो जाता होगा, सो यह बात नहीं है; इसी विषयको उसे समझानेके लिये सूत्रकार कहते हैं—“आउरं” इत्यादि ।

### છટ્ઠા અધ્યયનનો બીજો ઉદ્દેશ.

આ અધ્યયનના પ્રથમ ઉદ્દેશમાં માતા-પિતા વગેરે સ્વજનોના સાથેના સંબંધનો પરિત્યાગ પ્રગટ કરાયેલ છે. પરંતુ એ પરિત્યાગ કર્મોના વિનાશ વગર સફળ બની શકતો નથી. આ માટે કર્મોના વિનાશને માટે આ બીજા ઉદ્દેશના કથનનો સૂત્રકાર પ્રારંભ કરે છે. એમાં સહુ પ્રથમ તે એ વાતનું નિરૂપણ કરે છે કે જેણે ચારિત્રની પ્રાપ્તિ તો કરી લીધી છે; પરંતુ પ્રબલ ચારિત્રમોહનીયના ઉદયથી એ ગૃહીત ચારિત્રનો પરિત્યાગ પણ કરી દીધો છે, તો આથી એના સંસારના પરિભ્રમણને વિશ્રામ મળી જાય છે, આ વાત નથી! આ વિષયને સમજાવવા માટે સૂત્રકાર કહે છે “આઉરં” ઇત્યાદિ.

કામે મમાયમાણસ્સ ઇયાણિં વા મુહુત્તેણ વા અપરિમાણાએભેણ  
 એવંસે અંતરાયણિં કામેહિં આકેવલિણિં અવતિન્નાચેણાસૂ૦૧॥

છાયા—આતુરં લોકમાદાય ત્યક્ત્વા પૂર્વસંયોગં હિત્વા ઉપશમં ઉષિત્વા બ્રહ્મ-  
 ચર્યે, વસવઃ અનુવસવો વા જ્ઞાત્વા ધર્મં યથા તથા, અથૈકે તમ્ અશક્નુવન્તિ કુશીલાઃ,  
 વસ્ત્રં પતદ્ગ્રહં કમ્બલં પાદપ્રોચ્છનં વ્યુત્સૃજ્ય અનુપૂર્વેણ અનધિસહમાનાઃ પરીષહાન્  
 દુરધિસહાન્ કામાન્ મમાયમાણસ્ય ઇદાનીં મુહુર્તેન વા અપરિમાણાય ભેદઃ । એવં  
 સ આન્તરાયિકૈઃ કામૈઃ આકેવલિકૈઃ અવતીર્ણાઃ ચૈતે ॥ ૧ ॥

ટીકા—લોકં=ષડ્જીવનિકાયમ્, આતુરં=ક્લેશિતમ્, આદાય=બુદ્ધ્યા ગૃ-  
 હીત્વા અવબુદ્ધ્યેતિયાવત્, તથા—પૂર્વસંયોગં=માતાપિતૃપુત્રકલત્રાદિસમ્બન્ધં ત્યક્ત્વા,  
 તથા—ઉપશમં=વિરતિં, હિત્વા=પ્રાપ્ય, તથા બ્રહ્મચર્યે ઉષિત્વા=સ્થિત્વાઽપિ વસવઃ=  
 સાધવઃ, અનુવસવઃ=ષષ્ટ્યાઃ પ્રતિમાયા આરમ્ભ યાવદેકાદશપ્રતિમાધારિણઃ શ્રાવ-  
 કા વા યથા તથાઽવસ્થિતં ધર્મં=શ્રુતચારિત્રાખ્યં જ્ઞાત્વાઽપિ, અથ=અનન્તરમ્, એકે=  
 કેચિત્ મોહોદયાત્ કુશીલાઃ સાવધાનુષ્ઠાનપ્રવૃત્તાઃ સન્તઃ, તં=ધર્મં પાલયિતું અ-  
 ન શક્નુવન્તિ, અતસ્તે દુરધિસહાન્ અનધિસહમાનાઃ વસ્ત્રં પતદ્ગ્રહં=પાત્રં કમ્બલં પાદ-

ષડ્જીવનિકાયસ્વરૂપ હસ લોકકો કલેશિત અપની બુદ્ધિસે જાન-  
 કર, તથા માતા, પિતા, પુત્ર, કલત્ર આદિ રૂપ પૂર્વસંયોગકા પરિત્યાગ  
 કર, ઉપશમરૂપ વિરતિકો પ્રાપ્ત કર, ઔર બ્રહ્મચર્યવ્રતકા પાલન કર સાધુ  
 જન, અથવા શ્રાવકકી છટ્ટી પ્રતિમાસે લે કર ૧૧ વીં પ્રતિમા તકકા આચાર  
 પાલન કરનેવાલે ગૃહસ્થજન, જિસ સ્વરૂપસે શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મકી સ્થિતિ  
 હૈ ઉસ રૂપસે ઉસે જાન કર મી મોહકે ઉદયસે બાદમેં કઈ એક કુશીલ-  
 સાવચ અનુષ્ઠાનમેં પ્રવૃત્તિ કરનેવાલે હો જાતે હૈં, ઔર ઉસ શ્રુતચારિત્રરૂપ  
 ધર્મકે પાલન કરનેમેં સર્વથા અક્ષમ બન ઉસસે ભ્રષ્ટ હો જાતે હૈં । પરિ-

૫૭૭વનિકાયસ્વરૂપ આ લોકને પોતાની બુદ્ધિથી કલેશિત બાણી, માતા,  
 પિતા, પુત્ર અને કુટુંબીજનોના પૂર્વસંયોગનો પરિત્યાગ કરી, ઉપશમરૂપ વિર-  
 તિને પ્રાપ્ત કરી, બ્રહ્મચર્યવ્રતનું પાલન કરવા ઉપરાંત સાધુજન અથવા શ્રાવકની  
 છટ્ટી પ્રતિમાથી લઈ ૧૧મી પ્રતિમા સુધીનું આચાર પાલન કરવાવાળા ગૃહસ્થ  
 જન જે સ્વરૂપની શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મની સ્થિતિ છે એ રૂપથી એને બાણીને પણ,  
 મોહના ઉદયથી કોઈએક સાવધાનુષ્ઠાનમાં પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા બની જાય છે અને  
 શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મનું પાલન કરવામાં સર્વથા અક્ષમ થઈ ભ્રષ્ટ થઈ જાય  
 છે. પરિષદોના સહવામાં અસમર્થ બનીને વસ્ત્ર, પાત્ર, કમ્બલ અને પાદપ્રોચ્છન



પ્રોચ્છનં=રજોહરણં ચ વ્યુત્સૃજ્ય=ધર્મરુચ્યભાવાચ્યકૃત્વા અનુપૂર્વેણ=અનુક્રમેણ ચારિત્રં પરિત્યજન્તિ । ‘અનુક્રમેણ’ ઇત્યનેનેદમુક્તં ભવતિ-કુશીલેષુ કેચિત્ દેશવિરતિં, કેચિત્ સમ્યક્ત્વમાત્રમાશ્રિત્ય તિષ્ઠન્તિ, કેચિચ્ચ તતોડપિ પરિભ્રમ્ય મિથ્યાત્વમુપગ-ચ્છન્તીતિ । વિષયભોગાર્થં ધર્મં ત્યક્ત્વતાં પાપોદયફલમાહ—‘કામાન્’ ઇત્યાદિ। કામાન્=શબ્દાદિવિષયાન્ સમાયમાનસ્ય=મમત્વવિષયીકુર્વાણસ્ય ઇદાનીં=પ્રવજ્યા-પરિત્યાગાનન્તરમેવ-ભોગપ્રાપ્તિસમનન્તરમેવ વા મુહુર્તેન વા=અન્તમુહૂર્તેન વા, ઇદમુપ-લક્ષણં તેન-કણ્ડરીકવદહોરાત્રેણ તતોડપ્યધિકેન કાલેન વા ક્ષણમહુગુરાદસ્માચ્છરી-ષહોંકે સહનેમેં અસમર્થ બને હુએ વે વસ્ત્ર, પાત્ર, કમ્બલ ઓર પાદપ્રોચ્છન -રજોહરણકા, ધર્મકી ઓર રુચિકે અભાવસે, પરિત્યાગ કર ક્રમશઃ ચારિત્રકા પાલન કરના છોડ દેતે હૈં । “અનુક્રમ” પદસે યહ બાત માલૂમ હોતી હૈ—કિ કુશીલોં મેં કોઈ ૨ દેશવિરતિકા ઓર કોઈએક ચતુર્થ ગુણસ્થાનકા પાલન કરતે હૈં ઓર કોઈ એસે ખી હોતે હૈં જો ઉસ ચતુર્થ ગુણસ્થાન તકકા ખી પરિત્યાગ કર પ્રથમ મિથ્યાત્વ ગુણસ્થાનવર્તી હો જાતે હૈં ।

વિષયભોગોંકે નિમિત્ત ધર્મકા પરિત્યાગ કરનેવાલોંકે પાપોંકે ઉદય ફલકો પ્રકટ કરનેકે લિયે સૂત્રકાર “કામાન્” ઇત્યાદિ સૂત્રાંશ કહતે હૈં । વે ઉસમેં પ્રકટ કરતે હૈં કિ શબ્દાદિક વિષયોંકો મમત્વકા વિષય કરનેવાલે ઉસ પરિત્યક્તચારિત્રવાલે મનુષ્યકા, પ્રવજ્યાકે ત્યાગકે અનન્તર અથવા ભોગપ્રાપ્તિકે બાદ, યા એક અન્તર્મુહૂર્તકાલમેં, ઉપલક્ષણ સે કંડરીકકી તરહ અહોરાત્ર-એકદિનરાતમેં, અથવા ઉસસે ખી અધિક

—રજોહરણુનો, ધર્મના તરફ રૂચીના અભાવને કારણે ત્યાગ કરી ચારિત્રનું પાલન કરવાનું છોડી દે છે. “અનુક્રમ” પદથી એ વાત માલુમ પડે છે કે કુશીલોમાં કેઈ કેઈ દેશવિરતિનું અને કેઈ એવા ગુણસ્થાનનું પાલન કરે છે; અને કેઈ એવા પણ હોય છે કે જે એવા ગુણસ્થાનનો પણ પરિત્યાગ કરીને મિથ્યાત્વ ગુણસ્થાન-વર્તી બની જાય છે.

વિષયભોગોને નિમિત્ત ધર્મનો પરિત્યાગ કરવાવાળાનાં પાપના ઉદયના ક્ષણ પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રકાર “કામાન્” ઇત્યાદિ સૂત્રાંશ કહે છે. તેઓ એમાં પ્રગટ કરે છે કે શબ્દાદિક વિષયોમાં આસક્તિ કરવાવાળા ચારિત્ર છોડનાર તે મનુષ્યનો, પ્રવજ્યાના ત્યાગ બાદ, અથવા ભોગ પ્રાપ્તિ પછી, અથવા એક અન્તર્મુહૂર્ત કાળમાં, ઉપલક્ષણથી કંડરીકની માફક એક દિનરાતમાં, અથવા તેનાથી પણ અધિક

રાત્પૃથગ્ભૂતસ્ય તસ્ય પશ્ચાત્કૃતસ્ય—‘પછાકડા’ इति प्रसिद्धस्य अपरिमाणाय  
=अपरिमितकालं यावत् भेदः=मनुष्यशरीरस्यान्तरं-व्यवधानं भवति, धर्मात्परिभ्रश्य  
मृतस्य नरककिगोदाद्यनन्तदुःखमनुभवतोऽनन्तकालेनापि पुनर्मनुष्यशरीरं दुर्लभं  
भवति, कथं पुनस्तरयार्थक्षेत्रसुकुलजन्मबोधिबीजादिसामग्र्याः संभव ? इति भावः।

एतदेवोपसंहरन्नाह—‘एव’ मित्यादि । एवम्=अनया रीत्या सः=भोगार्थी  
पश्चात्कृतः एते=तदितरे ये भोगाभिलाषिणो वर्तन्ते एतेऽपि च, आन्तरायिकैः=

સમયમેં ઇસ ક્ષણભંગુર શરીરસે જબ વિયોગ હોતા હૈ, તો ફિર પીછે  
ઉસકે લિયે ઇસ દુર્લભ મનુષ્ય જન્મકી પ્રાપ્તિ હોનેમેં સમયકા કોઈ પ્રમાણ  
નિશ્ચિત નહીં હૈ । છોડી હુઈ ઉસ પર્યાયકી પુનરપિ પ્રાપ્તિ હોનેકે લિયે  
વિરહકાલ અપરિમિત હૈ—ફિરસે મનુષ્યપર્યાય પ્રાપ્ત હોનેકે લિયે ભવોંકી  
કોઈ ગણના નહીં હૈ—ઉસકી પુનઃ પ્રાપ્તિકે લિયે અપરિમિત અન્તર-વ્યવધાન-  
પડ જાતા હૈ । ગૃહીતચારિત્રધર્મસે ભ્રષ્ટ બનકર મરે હુએ ઉસ અધમ મનુષ્યકી  
ઉત્પત્તિ નરકનિગોદાદિકોંમેં હોતી હૈ ઓર વહ વહાંકી અપાર—અનંત  
દુઃખરાશિકા અનુભવ કરતા રહતા હૈ । અનન્તકાલ તક મી ઉસકે  
લિયે મનુષ્યભવકી પુનઃ પ્રાપ્તિ હોનાં દુર્લભ હો જાતી હૈ । જબ યહ વાત  
હૈ તો ફિર યહ તો સિદ્ધ હી હૈ કિ ઉસકે લિયે આર્યક્ષેત્ર, સુકુલમેં જન્મ,  
બોધિબીજકા લાભ ઇત્યાદિ સમસ્ત સામગ્રિયોંકી પ્રાપ્તિકી સંભવતા કૈસે  
હો સકતી હૈ !

इसीका उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि—इस रीतिसे वह  
भोगार्थी तथा इससे अतिरिक्त और भी जो भोगाभिलाषी हैं ये सब,

સમયમાં આ ક્ષણભંગુર શરીરથી જ્યારે વિયોગ થાય છે ત્યાર પછી એના માટે  
આ દુર્લભ મનુષ્ય જન્મની પ્રાપ્તિ હોવામાં સમયનું કોઈ પ્રમાણ નિશ્ચિત નથી.  
છોડેલ એ પર્યાયની ફરીથી પ્રાપ્તિ થવા માટે વિરહકાળ અપરિમિત છે—ફરીથી  
મનુષ્યપર્યાય પ્રાપ્ત કરવા માટે ભવોની કોઈ ગણના નથી—એની ફરી પ્રાપ્તિ  
માટે અપરિમિત અન્તર (વ્યવધાન) થઈ જાય છે. ગૃહીત ચારિત્રધર્મથી ભ્રષ્ટ બની  
મરનાર એ અધમ મનુષ્યની ઉત્પત્તિ નરકનિગોદાદિમાં થાય છે. અને એ ત્યાંની  
અપાર—અનન્ત દુઃખરાશિનો અનુભવ કરતો રહે છે. અનન્તકાળ સુધી પણ એને  
માટે મનુષ્યભવની પ્રાપ્તિ દુર્લભ બની જાય છે. જ્યારે આ વાત છે તો પછી  
એ તો સિદ્ધ જ છે કે તેને માટે આર્યક્ષેત્ર, સુકુળમાં જન્મ, બોધિબીજનો લાભ  
ઈત્યાદિ સમસ્ત સામગ્રીએની પ્રાપ્તિની સંભવતા પણ કેમ થઈ શકે ? કોઈ  
કાળે થઈ શકે નહિ. આનો ઉપસંહાર કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે આ રીતથી  
તે ભોગાર્થી તથા આનાથી અતિરિક્ત એવા પણ જે ભોગાભિલાષી છે



અન્તરાયબહુલત્વાદ્દુઃસ્વમયૈઃ આકેવલિકૈઃ, કેવલમ્=અલ્પદં સમ્પૂર્ણમિતિ યાવત્, ન કેવલમકેવલં તત્ર ભવા આકેવલિકાઃ=અસંપૂર્ણાસ્તૈઃ=ભોગેચ્છાં પૂરયિતુમક્ષમૈઃકામૈઃ=શબ્દાદિવિષયૈઃ અતૃપ્તાઃ સન્તઃ મનુષ્યશરીરવ્યવધાનં પ્રાપ્નુવન્તિ ॥ સૂ. ૧ ॥

અન્તરાયબહુલ હોનેસે દુઃસ્વમય એવં અસંપૂર્ણ ઇન શબ્દાદિવિષયરૂપ કામોંસે અતૃપ્ત હોતે હુએ મનુષ્ય શરીરકી પુનઃ પ્રાપ્તિકે કાલકો વ્યવધાન (અન્તર) સહિત કર દેતે હૈં, આકેવલિક શબ્દકા અર્થ અસંપૂર્ણ હૈં ઓર વહ ઇસ પ્રકારસે કિ અલ્પ-સંપૂર્ણકા નામ કેવલ હૈ, જો કેવલ નહીં વહ અકેવલ હૈ । ઉસમેં જો હો વહ આકેવલિક હૈ । કામોંકો અસંપૂર્ણ ઇસલિયે બતલાયા ગયા હૈ કિ વે ભોગોંકી ઇચ્છાકી પૂર્તિ કરનેમેં અસ-મર્થ હૈં । જ્યોં જ્યોં ઇનકા લાભ હોતા હૈ ત્યોં ત્યોં જીવકી ઇચ્છાઈ ઇન્હેં અધિકાધિકરૂપસે ભોગનેકે લિયે બઢતી જાતી હૈં ।

ભાવાર્થ—જો મનુષ્ય ઇસ ષડ્જીવનિકાયરૂપ લોકકો કલેશિત સમજકર ઉસકા પરિત્યાગ કર દેતે હૈં, તથા માતાપિતા આદિ સંબંધીજનોં સે મી વિમુક્ત બન કર ચારિત્રધર્મકી આરાધના કરનેમેં લવલીન હો જાતે હૈં—ચારિત્રકે પાલનસે સમ્બન્ધ રચનેવાલી જિતની મી બ્રહ્મચર્ય આદિક પાલને જૈસી અન્ય ક્રિયાઈ હૈં ઉન સબકા મી વે અચ્છી તરહસે પાલન કરતે હૈં, પરન્તુ ફિર મી મોહકી પ્રબલતાસે વે ઉસ ગૃહીત ચારિત્ર સે અષ્ટ બનકર મિથ્યાત્વી તક હો જાતે હૈં ઓર મુનિચિન્હોંકા સર્વથા

એ બધા અન્તરાયબહુલ હોવાથી દુઃખમય અને અસંપૂર્ણ આ શબ્દાદિ વિષ-યરૂપ કામોથી અતૃપ્ત થતાં થતાં મનુષ્ય શરીરની પુનઃ પ્રાપ્તિના કાળને વ્યવધાન (અન્તર) સહિત કરી દે છે. આકેવલિક શબ્દનો અર્થ અસંપૂર્ણ છે, અને તે આ પ્રકારે કે અલ્પ સંપૂર્ણ નામ કેવલ છે, જે કેવલ નથી એ અકેવલ છે. એમાં જે હોય તે આકેવલિક છે. કામોને અસંપૂર્ણ એ માટે બતાવેલ છે કે તે ભોગોની ઇચ્છાની તૃપ્તિ કરવામાં અસમર્થ છે. જેમ જેમ ભોગોનો લાભ થાય છે તેમ તેમ જીવની ઇચ્છાઓ એને અધિકાધિક રૂપથી ભોગવવા માટે વધતી જાય છે.

ભાવાર્થ—જે મનુષ્ય ષડ્જીવનિકાયરૂપ લોકને કલેશરૂપ સમજીને તેનો પરિત્યાગ કરી દે છે તથા માતા પિતા અને પોતાના સંબંધીજનોથી પણ વિમુક્ત બનીને ચારિત્રધર્મની આરાધના કરવામાં તલલીન થઈ જાય છે. ચારિત્રના પાલનથી સંબંધ રાખવાવાળી જેટલી પણ બ્રહ્મચર્ય આદિ પાળવા જેવી અન્ય ક્રિયાઓ છે એ બધાનું પણ તે સારી રીતે પાલન કરે છે. છતાં પણ મોહની પ્રબળતાથી એ અલ્પ કરેલા ચારિત્રથી અષ્ટ બની મિથ્યાત્વી બની જાય છે; અને મુનિચિન્હોનો સર્વથા પરિત્યાગ કરી વિષયભોગોની આહનામાં



યસ્તુ આસન્નમોક્ષતયા કથંચિત્ કુતશ્ચિત્ ચારિત્રં પ્રાપ્ય લઘુકર્મતયા પ્રવર્ધમાન-  
પરિણામો ભવતિ, સ સિદ્ધિપદં પ્રાપ્નોતીતિ બોધયિતુમાહ—‘અહેગે’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—અહેગે ધમ્મમાયાય આયાણપ્પભિદ્ધ સુપણિહિણ ચરે  
અપ્પલીયમાણે દદેસઽવં ગિદ્ધિં પરિણાય, એસ પણ્ણ મહામુણી ॥ સૂ. ૦૨ ॥

છાયા—અથૈકો ધર્મમાદાય આદાનપ્રભૃતિ સુપણિહિતશ્ચરેત્ અપ્પલીયમાનઃ દદઃ  
સર્વા ગૃદ્ધિ પરિણાય, એષ પ્રણતો મહામુનિઃ ॥ સૂ. ૨ ॥

ટીકા—અથ=અનન્તરમ્, એકઃ=કશ્ચિદાત્માર્થી ધર્મ=શ્રુતચારિત્રાણ્યમ્,  
પરિત્યાગ કર, વિષયભોગોંકી ચાહનામેં ફૅસ, ઉનકા સેવન કરતે હુણ  
અપને અતિદુર્લભ મનુષ્યજન્મકો વ્યર્થ નષ્ટ કર, નરકનિગોદાદિક  
ગતિયોંકે અનંત કષ્ટોંકો ભોગતે રહતે હૈં । એસે જીવોંકો ફિરસે માનવ  
જન્મ કબ કૈસે પ્રાપ્ત હોગા ॥ સૂ. ૧ ॥

આસન્નભવ્ય હોનેસે મોક્ષકી પ્રાપ્તિ જિન્હેં નિકટ સમયમેં હોનેવાલી  
હૈં વે કિસી ખી તરહસે કહીંસે ખી ચારિત્રધર્મકી પ્રાપ્તિ કર લઘુકર્મવાલે  
હોનેકી વજહસે ચારિત્રધર્મકી પાલનામેં વર્ધિતપરિણામવાલે હોતે હૈં  
ઔર સિદ્ધિપદકો પ્રાપ્ત કર લેતે હૈં—હસં વાતકો સમજાનેકે લિયે સૂત્રકાર  
કહતે હૈં “અહેગે” ઇત્યાદિ ।

‘અથ’ શબ્દકો અર્થ અનન્તર હૈ। જિસકા તાત્પર્ય હૈ કિ જો ચારિત્ર-  
ધર્મકો પ્રાપ્ત કર કિસી કારણવશ ઉસકા પરિત્યાગ કર દેતે હૈં ઉનકી  
વ્યા દુર્દશા હોતી હૈં સો તો પ્રકટ કર દી ગઈ હૈં । અબ જો ચારિત્રકો  
યાવજજીવન પાલતે હૈં ઉનકે વિષયમેં યહાં કહા જાતા હૈ—

ફસી તેનું સેવન કરે છે, અને પોતાના અતિદુર્લભ એવા મનુષ્ય જન્મને વ્યર્થ  
નષ્ટ કરી નરકનિગોદાદિ ગતિઓના અનંત કષ્ટોને ભોગવતો રહે છે. એવા જીવોને  
ફરીથી માનવ જન્મ ક્યારે કેમ પ્રાપ્ત થશે. (સૂ. ૦૧)

આસન્નભવ્ય હોવાથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ જેને નિકટ સમયમાં થવાવાળી છે,  
એ કેાઈ પણ રીતથી કયાંયથી પણ ચારિત્રધર્મની પ્રાપ્તિ કરી, લઘુકર્મવાળા હોવાને  
કારણે ચારિત્રધર્મને પાળવામાં વર્ધિતપરિણામવાળા હોય છે, અને સિદ્ધિપદને  
પ્રાપ્ત કરી લે છે. આ વાત સમજાવવા માટે સૂત્રકાર કહે છે. “અહેગે” ઇત્યાદિ.

અથ શબ્દનો અર્થ અનન્તર છે, જેનું તાત્પર્ય એ છે કે જે ચારિત્ર  
ધર્મને પ્રાપ્ત કરી કેાઈ કારણવશ તેનો પરિત્યાગ કરી દે છે, એની શું દુર્દશા  
થાય છે?, એ તો પ્રગટ કરી દેવામાં આવી છે. હવે જે ચારિત્રને યાવજજીવન  
પાળે છે તેના વિષયમાં અહિં કહેવામાં આવે છે.

આદાય=ગૃહીત્વા, આદાનપ્રમૃતિ=શ્રુતચારિત્રધર્મગ્રહણકાલાદારમ્બ્ય, સુપ્રણિહિતઃ=સાવધાનઃ પરીષહસહનશીલઃ અપ્રલીયમાનઃ=કામભોગેષુ ન પ્રલીયમાનઃ-અનાસક્તઃ, અતएव-દૃઢઃ=ગૃહીતતપઃસંયમાનુષ્ઠાનપ્રતિજ્ઞાયામવિચલિતચિત્તઃ સર્વા ગૃદ્ધિ=વિષયભોગેચ્છાં પરિજ્ઞાય=જ્ઞપરિજ્ઞયાઽનન્તદુઃસ્વકારણત્વેન વિજ્ઞાય પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞયા તાં દૂરત एव પરિહૃત્ય ચરેત્=ભગવદુપદિષ્ટં ધર્મં સમાચરેદિત્યર્થઃ । एषः=ચારિત્રમાદાય સર્વગૃદ્ધિભાવપરિત્યાગી મહામુનિઃ=મહાપુરુષ एव પ્રણતઃ=કર્મધૂનને સમ્યક્ પ્રવૃત્તો ભવતિ, ન તુ તદન્યઃ કાતરં ઇતિ ॥ સૂ. ૨ ॥

અપરં ચ—‘અહઅચ્ચ’ ઇત્યાદિ ।

જો કોઈ આત્માર્થી શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મનો પ્રાપ્ત કરે, તેની પ્રાપ્તિને સમયસે લેકર જીવનપર્યન્ત પરીષદ્દ અને ઉપસર્ગોને સહન કરને મેં સાવધાન રહેતે હૈં—પરીષદ્દ ઉપસર્ગ આને પર ચારિત્રસે વિચલિતચિત્ત નહીં હોતે હૈં, તથા કામભોગોમેં જો સદા વાંછારહિત હોતે હૈં, એવં જો દૃઢ-ગૃહીત તપ અને સંયમકે અનુષ્ઠાન કરનેની પ્રતિજ્ઞામેં અવિચલિતચિત્ત હોતે હૈં, એસે વંદનીય મુનિ સમસ્ત વિષયભોગોની ઇચ્છાઓનો અનન્ત દુઃસ્વોંકા કારણરૂપ જ્ઞપરિજ્ઞાસે જાનકર અને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાસે ડનકા દૂર હી સે પરિત્યાગ કર, વીતરાગકથિત નિર્મલ ચારિત્રની આરાધના કરતે હૈં । ચારિત્રનો પ્રાપ્ત કર સમસ્ત વિષયોમેં ગૃદ્ધિભાવકે પરિત્યાગી વે હી મહા-મુનિ હૈં, અને વે હી કર્મોંની રજ હટાને—ડડાનેમેં અચ્છી તરદ્દ પ્રવૃત્ત હોતે હૈં; ડનકે સિવાય અન્ય—દૂસરે કાચર નહીં ! ॥ સૂ. ૨ ॥

તથા ‘અહઅચ્ચ’ ઇત્યાદિ—

જે કોઈ આત્માર્થી શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મને પ્રાપ્ત કરી તેની પ્રાપ્તિના સમ-યથી માંડીને જીવનપર્યન્ત પરીષદ્દ અને ઉપસર્ગ સહન કરવામાં સાવધાન રહે છે. પરીષદ્દ ઉપસર્ગ આવવાથી ચારિત્રથી વિચલિતચિત્ત નથી થતા, તથા કામભોગોથી જે સદા વાંછા-રહિત અને છે એવા જે દૃઢતાપૂર્વક ગ્રહણ કરેલ તપ અને સંયમનું અનુષ્ઠાન કરવાની પ્રતિજ્ઞામાં અવિચલિતચિત્ત હોવાથી એવા વંદનીય મુનિ અને જે સમસ્ત વિષયભોગોને તથા ઇચ્છાઓને અનન્ત દુઃખોના કારણરૂપ જ્ઞપરિજ્ઞાથી જાણી અને અને પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાથી તેને છેડેથી જ પરિત્યાગ કરી વીતરાગકથિત નિર્મળ ચારિત્રની આરાધના કરે છે. ચારિત્ર પ્રાપ્ત કરી સમસ્ત વિષયોમાં ગૃદ્ધિભાવનો પરિત્યાગી જે છે, એ જ મુનિ છે. અને એ જ કર્મોંની રજ દૂર કરવામાં—ડડાડવામાં સારી રીતે પ્રવૃત્ત હોય છે. એના સિવાય અન્ય—બીજા કાચર નહિ. (સૂ. ૨)

તથા “અહઅચ્ચ” ઇત્યાદિ ।



મૂલમ્—અહિં અચ્ચ સવ્વઓ સંગં ણ મહં અત્થિત્તિ ઇય ઇગો અહં, અર્સિંસ જયમાણે ઇત્થ વિરણ અણગારે, સવ્વઓ મુંડે રીયંતે, જે અચેલે પરિવુસિણ સંચિક્કવહિ ઓમોયરિયાણ ॥ સૂ. ૩ ॥

છાયા—અતિગત્ય સર્વતઃ સઙ્ગં ન મમ અસ્તિ, ઇતિ એકોઽહમસ્મિન્ યતમાનઃ અત્ર વિરતઃ અનગારઃ, સર્વતો મુણ્ડઃ રીયમાણઃ, યઃ અચેલઃ પર્યુષિતઃ સંતિષ્ઠતે અવમોદરિકાયામ્ ॥ સૂ. ૩ ॥

ટીકા—મમ નાસ્તિ કિંચિત્, ઇતિ=અતઃ અહમેક એવાસ્મીતિ ભાવનાભાવિતઃ સર્વતઃ=સર્વથા સઙ્ગં=માતાપિત્રાદિસમ્બન્ધમ્ અતિગત્ય=અતિક્રમ્ય અસ્મિન્ આચારે યતમાનઃ—યતનાં કુર્વન્, અત્ર=વિષયભોગે વિરતઃ—સર્વથા નિવૃત્તઃ, અતએવ અનગારઃ= પ્રવ્રજિતઃ, સર્વતોમુણ્ડઃ=દ્રવ્યતઃ કેશલુચ્ચનેન ભાવતો રાગદ્વેષરાહિત્યેન મુણ્ડઃ, રીયમાણઃ—સંયમાનુષ્ઠાને વિહરન્ યઃ અચેલઃ=અલ્પચેલઃ—જિનકલ્પિકો વા, પર્યુષિતઃ=પર્યુષિતાહારી, અવમોદરિકાયાં=ન્યૂનોદરતાયાં સંતિષ્ઠતે=વર્તતે, તદપિ પર્યુષિતાશ-નં નોદરપૂરણેન કિંત્વમોદરિકયેતિ ભાવઃ। સ મહામુનિરિતિ પૂર્વેણ સમ્બન્ધઃ ॥ સૂ. ૩ ॥

“એગોહં” મੈં એક હૂં, મેરા સંસારમૈં કોઈ નહીં હૈ, મૈં અકિચ્ચન હૂં— હસ પ્રકારકી ભાવનાસે જિસકા મન વશમૈં કિયા હુઆ હૈ, ઔર હસી ભાવનાસે ઓતપ્રોત બન જો માતાપિતા—આદિકે સમ્બન્ધસે રહિત બના હુઆ હૈ, એસા વહ મહામુનિ અપને ગૃહીતચારિત્રકી આરાધનામૈં સમ્મહાલ રખતા હુઆ, વિષયભોગોસે સર્વથા વિરક્ત હોતા હૈ। મુનિદીક્ષાસે સુશો-ભિત વહ મુનિરત્ન સર્વ પ્રકારસે મુણ્ડ—દ્રવ્યસે કેશોંકે લુચ્ચન કરનેસે એવં ભાવસે રાગ—દ્વેષસે રહિત હોનેસે—હોતા હૈ। સંયમકે અનુષ્ઠાનમૈં વિચરણ કરતા હુઆ વહ અચેલ—અલ્પવસ્ત્રવાલા હોતા હૈ, અથવા જિન-કલ્પી બનતા હૈ। પર્યુષિત ( ઠંડા—વાસી ) આહાર ભી અલ્પ આહારમૈં

“એગોહં” હું એક છું, માંડે સંસારમાં કોઈ નથી. હું અકિચ્ચન છું. આ પ્રકારની ભાવનાથી જેણે પોતાનું મન વશ કરેલ છે, અને એવી ભાવ-નાથી ઓતપ્રોત બની જે માતા, પિતા આદિના સંબંધથી રહિત બનેલ છે, એવા એ મહામુનિ પોતે ગ્રહણ કરેલ ચારિત્રની આરાધનામાં સંભાળ રાખતાં વિષય-ભોગોથી સર્વથા વિરક્ત બને છે, મુનિદીક્ષાથી સુશોભિત એ મુનિરત્ન સર્વ પ્રકારથી મુંડ, દ્રવ્યથી કેશલોચન કરવાથી ( વાળનું ખેંચવાથી ) અને ભાવથી રાગ—દ્વેષથી રહિત થવાથી બને છે. સંયમના અનુષ્ઠાનમાં વિચરણ કરનાર એ અચેલ—અલ્પ વસ્ત્રવાળા બને છે, અથવા જનકલ્પી થાય છે. પર્યુષિત ( ઠંડા



અવમોદરિકાયાં વર્તમાનસ્ય પરીષહસહનમાહ—‘સે આકુટ્ટે’ ઇત્યાદિ।

મૂલમ્—સેઆકુટ્ટે વા હણ વા લુંચિણ વા પલિયં પકત્થ અદુવા પકત્થ અતહેહિં સદ્દાસેહિં, ઇય સંઘાણ ઇગયરે અન્નયરે અભિન્નાય તિતિક્ષમાણે પરિવ્વણ । જે ય હિરીજે ય અહિરીમાણા ॥ સૂ. ૦૪ ॥

છાયા—સ આકુટ્ટો વા હતો વા લુચ્ચિતો વા પલિતં પ્રકથ્ય અથવા પ્રકથ્ય અતથ્યૈઃ શબ્દસ્પર્શૈઃ, ઇતિ સંઘયાય એકતરાન્ અન્યતરાન્ અભિજ્ઞાય તિતિક્ષમાણઃ પરિવ્રજેત્ । યે ચ હીરૂપાઃ યે ચ અહીમનસઃ ॥ સૂ. ૦ ૪ ॥

ટીકા—સઃ=અવમોદરિકઃ યદા કેનચિદ્ધર્માનભિજ્ઞેન પલિતં=પૂર્વકૃતં જુગુ-પ્સિતં કર્મ પ્રકથ્ય=‘મો પ્રવ્રજિત ! પૂર્વ કાષ્ઠહારાદિકર્મ કૃત્વા પ્રવ્રજિતવેષઃ કિ-મિદાનીં મામુપદેષ્ટું પ્રવૃત્તઃ’ ઇત્યાદિવાક્યૈર્વિનિન્ધ્ય, અથવા અતથ્યૈઃ=અશોભનૈઃ અસંગતૈઃ=અનુચિતૈઃ શબ્દસ્પર્શૈઃ=‘ત્વં ચૌરઃ પારદારિકઃ’ ઇત્યાદિશબ્દૈઃ, તથા હી માનનાં ચાહિયે । અર્થાત્ પર્યુષિત આહાર મી ઝનોદરરૂપસે હી લેતા હૈ, ભરપેટ નહીં ॥ સૂ. ૦ ૩ ॥

અલ્પ-આહારી-અવસ્થામાં મી પરીષહ ઓર ઉપસર્ગોં કો ઉસે સહન કરના ચાહિયે, ઇસે સૂત્રકાર કહતે હૈ—“સે આકુટ્ટે ઇત્યાદિ ।

વહ અવમોદરિકાવ્રતી સાધુ યદિ કિસી ધર્માનભિજ્ઞ વ્યક્તિકે દ્વારા ઇસ પ્રકારસે કહા જાય કિ હે પ્રવ્રજિત ! તુમ તો પહિલે લકડિયાં બેચા કરતે થે, અબ કબસે સાધુ બન ગયે હો ? સાધુકા વેષ પહિન કર ક્યા ઇસ સમય હમેં ઉપદેશ દે રહે હો ? હમ તુમ્હારે જૈસે હીનકુલકા ઉપદેશ નહીં સુનના ચાહતે ! અથવા ઇસ પ્રકારકે અનુચિત વાક્યોસે યદિ કોઈં ઉસકી નિંદા કરે કિ તુમ તો પરદારલંપટ હો, ચોર હો; યા

વાસી ) આહાર લે છે, અથવા ઉનોદર-અલ્પ-આહારી થાય છે. પર્યુષિત આહારને પણ અલ્પ આહાર જ માનવો જોઈએ, અર્થાત્ આહાર પણ ઉનોદરરૂપથી જ લે છે; પેટ ભરીને નહીં. (સૂ. ૦ ૩)

અલ્પ-આહારી અવસ્થામાં પણ પરિષહ અને ઉપસર્ગોં એણે સહન કરવા જોઈએ. આને સૂત્રકાર કહે છે. “સે આકુટ્ટે” ઇત્યાદિ !

એ અવમોદરિકાવ્રતી સાધુને કદી કોઈ ધર્માનભિજ્ઞ વ્યક્તિની મારફત આ પ્રકારથી કહેવાય કે હે પ્રવ્રજિત ! તમે તો પહેલાં લાકડાં વેચતા હતા, કચારથી સાધુ બની ગયા છો ? સાધુનો વેશ પહેરી શું આ સમય અમને ઉપદેશ આપી રહ્યા છો ? અમે તમારા જેવા હલકા કુળના માણસનો ઉપદેશ સાંભળવા નથી ઇચ્છતા.” અથવા આ પ્રકારનાં અનુચિત વાક્યોથી કોઈ એમની નિંદા કરે કે તમે તો બ્યભિચારી છો, ચોર છો, અથવા કોઈ “એનો હાથ કાપે, પગ કાપે,

કરચરણચ્છેદન-ખેદન-મોટનાદિરૂપેઃ સ્પર્શૈશ્વ પ્રકથ્ય=કદર્થીકૃત્ય આક્રુષ્ટઃ=આક્ષિપ્તઃ  
વા=અથવા હતઃ=યષ્ટિમુષ્ટ્યાદિભિસ્તાહિતઃ લુશ્ચિતો વા=કેશકર્ષણેન નચ્ચાઘાતેન ચ  
વ્યાકુલીકૃતઃ સન્ ઇતિ=‘મમ પૂર્વકૃતકર્મફલમેતત્’ ઇત્યેવં સંખ્યાય=પર્યાલોચ્ય  
એકતરણ્=ઉક્તરૂપાન્ પ્રતિકૂલપરીષહાન્ અથવા અન્યતરણ્=તદ્વિજ્ઞાનનુકૂલ પરિષ-  
હાન્=સત્કારપુરસ્કારાદિરૂપાનપિ અભિજ્ઞાય=મોક્ષમાર્ગપ્રતિબન્ધકા એતે ઇતિ વિચાર્ય  
તિતિક્ષમાણઃ=ઉભયાનપિ પરીષહાન્ સમભાવેન સહમાનઃ પરિવ્રજેત્=વિહરેત્ ।  
પ્રકારાન્તરેણાપિ પરીષહદ્વૈવિધ્યં દર્શયતિ-‘યે ચે ’ત્યાદિ । યે ચ પરીષહાઃ હ્રી-  
રૂપાઃ=લજ્જારૂપાઃ-અચેલરૂપા યાચનાદિરૂપા વા, તથા યે ચ અહીમનસઃ=અલજ્જા-

કોઈ “ઉસકા હાથ કાટે, પૈર છેદે, ગર્દન પકડ કર મરોડ દેવે”-ઈસ પ્રકારસે ઉસે દુઃખિત કરે, લકડી, મૂંઠ આદિસે કોઈ યદિ ઉસે તાહિત કરે, વાલોંકો પકડ કર યદિ કોઈ ઉસે ઘસીડે, અથવા લોંચે, તો ખી ઉસ સાધુકો યહી વિચારના ચાહિયે કિ “મમ પૂર્વકૃત કર્મફલમેતત્” યે સબ ઉપસર્ગ મેરે પૂર્વકૃત કર્મોંકે હી ફલ હૈં । ઇનમૈં ઇનકા કુછ ખી અપરાધ નહીં । ઇસ પ્રકારસે જબ ઉસકે ઉપર યે પૂર્વોક્ત બાતૈં પ્રતિકૂલ-પરીષહકે રૂપમૈં આતી હૈં, અથવા સત્કાર, પુરસ્કાર આદિ અનુકૂલ પરી-ષહરૂપમૈં આતી હૈં તો ઉસ સમય ઉસે યહી વિચારકર કિ યે સબ “મોક્ષ-માર્ગકી પ્રતિબન્ધકા હૈં” ઉન્હેં ખુશીસે સહના ચાહિયે । ચાહે અનુકૂલ પરીષહ હોં, ચાહે પ્રતિકૂલ પરીષહ હોં, ચાહે કોઈ ઉપસર્ગ કરે, અથવા સત્કાર કરે, સબ અવસ્થાઓંમૈં મુનિયોં કો સમભાવ રખના ચાહિયે । ઇસી પ્રકાર જો અચેલરૂપ-(અલ્પ વસ્ત્ર-સામાન્ય વસ્ત્ર)-અથવા યાચનાદિ,

ગરદન પકડી મરડી નાખે” આ પ્રકારે એને દુઃખિત કરે, લાકડી કે હાથથી માર મારે, વાળ પકડીને કોઈ ઢસરડે, અથવા લોંચે, તો પણ સાધુએ વિચારવું જોઈ એ કે “મમ પૂર્વકૃતકર્મફલમે તત્”—આ ઉપસર્ગ મારા પૂર્વકૃત કર્મોના ફલ સ્વરૂપ છે. આમાં તેનો કોઈ અપરાધ નથી. આ રીતે જ્યારે એના ઉપર એ પૂર્વોક્ત વાતો પ્રતિકૂળ પરિષદના રૂપમાં આવે છે, અથવા સત્કાર, પુરસ્કાર આદિ અનુકૂળ પરિષદરૂપમાં આવે છે તો એ સમય એણે એ વિચાર કરીને કે આ બધી વાતો “મોક્ષમાર્ગની પ્રતિબંધિકા છે” તેને ખુશીથી સહી લેવું જોઈ એ. લલે અનુકૂળ પરિષદ હોય, ચાહે પ્રતિકૂળ પરિષદ હોય, ચાહે કોઈ ઉપસર્ગ કરે કે સત્કાર કરે. બધી અવસ્થાઓમાં મુનિઓએ સમભાવ રાખવો જોઈ એ. આ રીતે જે અચેલરૂપ (અલ્પ વસ્ત્ર-સામાન્ય વસ્ત્ર) અથવા યાચનાદિરૂપ પરિષદ જે લજ્જા રૂપ છે અને શીત, ઉષ્ણ આદિ અલજ્જા રૂપ છે આ બન્ને



રૂપાઃ=શીતોષ્ણાદયસ્તાન્ દ્વિવિધાનપિ પરીષદાન્ સમભાવેન તિતિભમાણઃ પરિવ્ર-  
જેદિતિ સમ્બન્ધઃ ॥ સૂ. ૪ ॥

મૂલમ્—ચિચ્ચા સઠ્ઠં વિસુત્તિયં ફાસે સમિયદંસણે ॥સૂ. ૫ ॥

છાયા—ત્યક્ત્વા સર્વા વિસ્રોતસિકાં સ્પૃશેત્ સમિતદર્શનઃ ॥સૂ. ૫ ॥

ટીકા—કિચ્ચ—‘ચિચ્ચા’ ઇત્યાદિ । સમિતદર્શનઃ=સમ્યગ્ ઇતં-ગતં પ્રાપ્તં  
દર્શનં यस્ય સ સમિતદર્શનઃ—સમ્યગ્દૃષ્ટિરિત્યર્થઃ । સર્વા વિસ્રોતસિકાં=પરીષદ-  
પ્રયુક્તં દુશ્ચિન્તનં ત્યક્ત્વા સ્પૃશેત્=સર્વાન્ પરીષદાન્ અધિસહેત ॥ સૂ. ૫ ॥

મૂલમ્—एए भो ! णगिणा वुत्ता जे लोगंसि अणागमण-  
धम्मिणो ॥ સૂ. ૬ ॥

છાયા—एते भो ! नगना उक्ता ये लोकेऽनागमनधर्मिणः ॥ સૂ. ૬ ॥

ટીકા—‘एए भो’ ઇત્યાદિ । भोः शिष्याः ! ये अनागमनधर्मिणः=अप्र-  
त्यागमनशीलाः—आदृतप्रतिज्ञाभारधारणशीलत्वात् पुनर्गृहं प्रत्यागन्तुं नेच्छन्तीत्यर्थः,

રૂપ પરીષદે લજ્જારૂપ હૈં’ ઓર જો શીત ઉષ્ણ આદિ અલજ્જારૂપ હૈં, ઇન  
દોનો પરીષદોં કો ભી ઉસે સમભાવસે યુક્ત હોકર હી સહન કરના ચાહિયે,  
તમી કમોંકા નાશ હોગા ॥ સૂ. ૪ ॥

—અચ્છી તરહ અથવા અચ્છા પ્રાપ્ત હૈ દર્શન જિસે ઉસકા  
નામ સમિતદર્શન—સમ્યગ્દૃષ્ટિ હૈ । વહ પરીષદપ્રયુક્ત દુશ્ચિન્તનકા ત્યાગ  
કર સમસ્ત પરીષદોંકો સહે । પરીષદોંકો સહતે સમય કમી ભી આર્ત  
રૌદ્રરૂપ પરિણામ નહીં કરના ચાહિયે, શાંતિ ઓર સમતાસે ઉન્હે  
સહના ચાહિયે ॥ સૂ. ૫ ॥

શિષ્યોંકો સમ્બોધિત કરતે હુણ સૂત્રકાર કહતે હૈં કિ હે શિષ્યો !  
જો અનાગમનધર્મી હૈં—ગૃહીતમુનિવ્રતધારણરૂપ પ્રતિજ્ઞાકે ભારકો  
વહન કરનેકે સ્વભાવવાલે હોનેકી વજહસે જો પીછે લૌટ કર ઘર નહીં

પરિષદોને પણ સમભાવથી યુક્ત થઈ એણે સહન કરવા બેઠાં. ત્યારે જ કમોંનો  
નાશ થશે. (સૂ. ૪)

સારી રીતે પ્રાપ્ત છે દર્શન જેને તેનું નામ સમિતદર્શન એટલે સમ્યગ્દૃષ્ટિ  
છે. તે પરિષદપ્રયુક્ત અશાંત ચિન્તનનો ત્યાગ કરી સઘળા પરિષદોને સહે. તે  
પરિષદોને સહન કરતી સમય કદી પણ તેને આર્ત રૌદ્રરૂપ પરિણામ નહિ  
કરવું બેઠાં, શાંતિ અને સમતાથી તેને સહવું બેઠાં. (સૂ. ૫)

શિષ્યોને સંબોધન કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે હે શિષ્યો ! જે અનાગમન-  
ધર્મી છે—ધારણ કરેલ મુનિવ્રતરૂપ પ્રતિજ્ઞાના ભારને વહન કરવાનો સ્વભાવવાળા



एते=परीषहसहिष्णवः नग्नाः=भावनग्नाः-अकिंचनाः निर्ग्रन्थाः उक्ताः=तीर्थङ्करैः  
कथिताः ॥ सू० ६ ॥

मूलम्-आणाए मामगं धम्मं, एस उत्तरवाए इह माणवाणं  
वियाहिण ॥ सू० ७ ॥

छाया-आज्ञया मामकं धर्मम्, एष उत्तरवादः इह मानवेभ्यो व्याख्यातः । ७।

टीका—‘आणाए’ इत्यादि । आज्ञया=ममोपदेशेन मामकं=मदीयं मयाऽङ्गी-  
कृतं धर्मं सम्यगनुपालयेत् इत्येवमुक्तं भगवता । एष उत्तरवादः=उत्कृष्टोपदेशः  
इह=मनुष्यलोके मानवेभ्यो व्याख्यातः, इह मनुष्यार्थमेतद्वचनमुक्तं तेषामेव  
सम्पूर्णधर्मारामनयोग्यतासद्भावात् ॥ सू० ७ ॥

आते हैं वे ये परीषहोंको सहन करनेके स्वभाववाले भावनग्न-अकिंचन  
निर्ग्रन्थ साधु तीर्थङ्करों द्वारा कहे गये हैं ।

भावार्थ—परीषहोंके जीतनेमें जो अपनी शक्तिका पराक्रम प्रकट  
करते हैं और उनसे अनुद्विग्न बन कर जो “कार्य वा साधयामि  
शरीरं वा पातयामि”—अपने गृहीत मुनिव्रतरूप कार्यकी सफलतायें सर्व  
प्रकारके सुखों को सर्वथा त्याग चुके हैं और अपनी प्रतिज्ञाके निर्वाहार्थ  
परीषहोंसे अडोल बन कर उनका सामना करते हैं—कभी भी घर नहीं  
आते हैं, वे ही सच्चे भावसाधु हैं; ऐसा तीर्थङ्करोंका आदेश है ॥सू० ६॥

मनुष्यों में ही संपूर्ण श्रुतचारित्ररूप धर्मके आराधन करनेकी योग्यता  
का सद्भाव है, इसलिये मैंने उनके लिये ही यह वचन कहा है कि वे मेरे  
कहनेसे मेरे द्वारा अङ्गीकृत धर्मका अच्छी तरह पालन करें; क्योंकि

હોવાના કારણે જે ઘેર પાછા નથી ફરતા, તે એ પરિષદોને સહન કરવાના સ્વભાવ  
વાળા ભાવનગ્ન-અકિંચન નિર્ગ્રન્થ સાધુ તીર્થકરોથી કહેવાયા છે.

ભાવાર્થ—પરિષદોને જીતવામાં જે પોતાની શક્તિનું પરાક્રમ પ્રગટ કરે  
છે અને એથી અનુદ્વિગ્ન બની જે “કાર્ય વા સાધયમિ શરીરં વા પાતયમિ”—  
પોતા ધારણ કરેલા મુનિવ્રતરૂપ કાર્યની સફળતા માટે સર્વ પ્રકારના સુખોનો જે  
સર્વથા ત્યાગ કરી ચૂક્યા છે, અને પોતાની પ્રતિજ્ઞા પૂર્ણ કરવા પરિષદોથી અડોલ  
બની તેનો જે સામનો કરે છે—કદી પણ ઘર તરફ નજર સરખીએ કરતા  
નથી, એજ સાચા-ભાવસાધુ છે—એવો તીર્થકરોનો આદેશ છે. (સૂ० ૬)

માણસોમાં જ સંપૂર્ણ શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મનું આરાધન કરવાની યોગ્યતાનો  
સદ્ભાવ છે; આ માટે મેં એમને માટે જ આ વચન કહેલ છે કે તેઓ મારા કહે-

મૂલમ્-ઇત્યોવરણ તંજ્ઞોસમાણે આયાણિજ્જં પરિજ્ઞાય પરિયા-  
ણ વિંગિચઇ ॥ સૂ૦ ૮ ॥

છાયા-અત્રોપરતઃ તદ્ જ્ઞોષયન્ આદાનીયં પરિજ્ઞાય પર્યાયેણ વિવેચયતિ ॥૮॥

ટીકા—‘ ઇત્યોવરણ ’ इत्यादि । अत्र=अस्मिन् कर्मधूननोपाये संयमे, उप-  
रतः=उप=सामीप्येन रतः संलग्नः सन्, तद्=अष्टविधं कर्म ज्ञोषयन्=क्षपयन्  
धर्मं चरेदित्यर्थः । अतः आदानीयं=कर्म परिज्ञाय मूलोत्तरप्रकृतिभेदेन ज्ञात्वा पर्या-  
येण=श्रमणधर्मांराधनेन विवचयति=पृथक् करोति-क्षपयतीत्यर्थः ॥ सू० ८ ॥

સકલકર્મધૂનનક્ષમં યદ્વાહ્યં તપસ્તદધિકૃત્યાહ-‘ ઇહ ઇગોસિ ’ इत्यादि ।

यह उत्कृष्ट धर्मका उपदेश मनुष्योंके लिये ही कहा गया है ।

भावार्थ—यह उत्कृष्ट धर्मका उपदेश मनुष्योंके लिये ही है ऐसा  
जो कहा जाता है, उसका कारण मनुष्योंमें ही सम्पूर्ण रूपसे धर्मांराधन  
करनेकी योग्यता रही हुई है, अन्योमें नहीं ! अतः उन्हींके निमित्त  
धर्मका उपदेश है, अन्य प्राणी भी इससे आत्महित कर सकते हैं ॥सू० ७॥

કર્મકે વિનાશ કરનેમેં ઉપાયસ્વરૂપે આ સંયમમેં લવલીન હુઆ  
મુનિ અષ્ટવિધ કર્મકા વિનાશ કરતા હુઆ ધર્મકી આરાધના કરે; ક્યોં  
કિ મૂલ ઓર ઉત્તર પ્રકૃતિકે ભેદસે કર્મકા પરિજ્ઞાન કર શ્રમણધર્મકી  
આરાધના કરનેસે મનુષ્યે ઉન કર્મોંકા ક્ષય કરતા હૈ ॥સૂ૦ ૮॥

સમસ્ત કર્મોંકે વિનાશ કરનેમેં સમર્થ જો બાહ્ય તપ હૈ ઉસકી  
અપેક્ષાસે સૂત્રકાર કહતે હૈ—“ઇહ ઇગોસિ” इत्यादि ।

વાર્થા મારા દ્વારા અંગીકૃત ધર્મનું સારી રીતે પાલન કરે; કેમકે આ ઉત્કૃષ્ટ-ધર્મનો  
ઉપદેશ મનુષ્યોને માટે જ છે.

ભાવાર્થ—‘ આ ઉત્કૃષ્ટ ધર્મનો ઉપદેશ મનુષ્યો માટે જ છે ’ એમ જે  
કહેવામાં આવે છે એનું કારણ મનુષ્યોમાં જ સંપૂર્ણ રૂપથી ધર્માંરાધન કરવાની  
યોગ્યતા રહેલી છે, અન્યમાં નહીં. આથી એમના નિમિત્ત ધર્મનો ઉપદેશ છે, અન્ય  
પ્રાણી પણ આનાથી આત્મહિત કરી શકે છે. (સૂ૦ ૭)

કર્મનો વિનાશ કરવાના ઉપાયસ્વરૂપે આ સંયમમાં લવલીન બનેલ મુનિ,  
અષ્ટવિધ કર્મોનો વિનાશ કરતાં, ધર્મની આરાધના કરે. કેમ કે મૂલ અને ઉત્તર  
પ્રકૃતિના ભેદથી કર્મનું પરિજ્ઞાન કરી શ્રમણધર્મની આરાધના કરવાથી મનુષ્ય  
એના કર્મોનો ક્ષય કરે છે. (સૂ૦ ૮)

સમસ્ત કર્મોનો વિનાશ કરવામાં સમર્થ જે બાહ્યતપ છે એની અપેક્ષાથી  
સૂત્રકાર કહે છે “ ઇહ ઇગોસિ ” इत्यादि.



મૂલમ્—ઇહ એગેસિં એગચરિયા હોઇ, તત્થિયરા ઇયરોહિં  
કુલેહિં સુદ્ધેસણાએ સવ્વેસણાએ સે મેહાવી પરિવ્વણે। સુબ્બિં  
અદુવા દુબ્બિં અદુવા તત્થ મેરવા પાણા પાણે કિલેસંતિ, તે ફાસે  
પુટ્ટો ધીરે અહિયાસિજ્ઞાસિ તિવેમિ ॥ સૂ. ૧ ॥

છાયા—ઇહ એકેષામેકચર્યાં ભવતિ, તત્રેતરાદિતરેષુ કુલેષુ શુદ્ધૈષણયા સર્વૈષ-  
ણયા સમેધાવી પરિવ્રજેત્ । સુરભિ અથવા દુરભિ અથવા તત્ર મૈરવાઃ પ્રાણાઃ પ્રા-  
ણાન્ કલેશયન્તિ, તાન્ સ્પર્શાન્ સ્પૃષ્ટો ધીરઃ અધિસહસ્વ ઇતિ બ્રવીમિ ॥ સૂ. ૧ ॥

ટીકા—ઇહ=અસ્મિન્ જિનશાસને, એકેષાં=કેષાંચિત્ શિથિલીકૃતકર્મબન્ધનાં  
એકચર્યાં=એકાકિવિહરણપ્રતિમા ભવતિ । તત્ર ચાનેકરૂપા અભિગ્રહવિશેષાઃ  
ભવન્તિ, અતઃ પ્રામૃતિકાદોષમધિકૃત્યાહ—તત્રેત્યાદિ । તત્ર તસ્મિન્ એકાકિવિહારે  
સ=કર્મધૂનનાર્થમુદ્યતઃ, મેધાવી=સાધુમર્યાદાવ્યવસ્થિતઃ, ઇતરાદિતરેષુ=અજ્ઞાતેષુ  
અન્તપ્રાન્તેષુ વા કુલેષુ શુદ્ધૈષણયા—શઙ્કાદિદશૈષણાદોષરહિતેનાશનાદિના સર્વૈષ-  
ણયા=આહારાદ્યુદ્ગમોત્પાદનગ્રાસૈષણારૂપા યા સર્વૈષણા તયા, પરિશુદ્ધેન વિધિના કર્મ-  
ધૂનનોપાયે સંયમે પરિવ્રજેત્=વિહરેત્, તથા સુરભિ=સિંહકેશરમોદકાદિકં દુરભિ=

જિનકે કર્મોંકા બન્ધ શિથિલ હો ગયા હૈ એસે મુનિરાજોંકી, એક-  
ચર્યાં હોતી હૈ, ઇસ ચર્યાંમેં ઉનકે અનેક પ્રકારકે અભિગ્રહવિશેષ હોતે  
હૈ । પ્રામૃતિકા દોષકો લેકર સૂત્રકાર કહતે હૈં કિ ઉસ એકાકિવિહારમેં  
કર્મોંકે વિનાશ કરનેમેં ઉદ્યત એવં સાધુમર્યાદામેં વ્યવસ્થિત વહ મેધાવી  
મુનિ અજ્ઞાત અથવા અન્તપ્રાન્ત કુલોંમેં શુદ્ધ—એષણા—શઙ્કાદિક દશ એષણા  
કે દોષોંસે રહિત આહારાદિકસે ઓર સર્વએષણા—આહારાદિકકે ઉદ્ગમ,  
ઉત્પાદન એવં ગ્રાસ એષણાસે પરિશુદ્ધ વિધિસે કર્મોંકે વિનાશક સંયમ  
મેં લવલીન રહતા હુઆ વિહાર કરે, ઓર સુરભિ—સિંહકેશરમોદક  
વગેરહ, ઓર દુરભિ—બલ્લચણા આદિસે નિષ્પન્ન પર્યુષિત અમ્લ-

જેમના કર્મનો બંધ શિથિલ થઈ ગયેલ છે એવા મુનિરાજેની એકચર્યા  
થાય છે. આ ચર્યામાં એમનો અનેક પ્રકારનો અભિગ્રહવિશેષ હોય છે. પ્રામૃતિકા  
દોષ લઈને કહે છે કે એકાકિવિહારમાં કર્મોનો વિનાશ કરવામાં તત્પર, અને  
સાધુમર્યાદામાં વ્યવસ્થિત એ મેધાવી મુનિ, અજ્ઞાત અથવા અન્તપ્રાન્ત કુળોમાં  
શુદ્ધ એષણા—શંકાદિક દશ એષણાના દોષોરહિત આહારાદિકથી અને સર્વ એષણા  
—આહારાદિકનો ઉદ્ગમ, ઉત્પાદન અને ગ્રાસ—એષણાથી પરિશુદ્ધ વિધિથી કર્મોનો  
વિનાશ કરનાર સંયમમાં લવલીન રહી વિહાર કરે, અને સુરભિ—સિંહકેશરમોદક  
વગેરે, અથવા દુરભિ—બલ્લચણા વગેરેથી નિષ્પન્ન પર્યુષિત ખાટી છાશ



વહ્નચળકાદિનિષ્પન્નં પર્યુપિતમન્નમમ્લતક્રાદિમિશ્રિતં વા પ્રાપ્ય પરિવ્રજેત્=રાગદ્વેષ-  
રહિતો વિહરેત્ । શાસ્ત્રવિધિમનતિક્રમ્ય યથાલબ્ધં પ્રશસ્તાપ્રશસ્તગન્ધયુક્તમાહારાદિ-  
કમજ્જારધૂમાદિમણ્ડલદોષપરિવર્જનપૂર્વકં શુઙ્ગીતેતિ ભાવઃ, તથા ચોક્તમ્—

“પઢિગ્ગહં સંલિહિત્તાણં લેવમાયાઙ્ સંજણ ।

સુગંધં વા દુગંધં વા, સવ્વં શુંજે ન છઢુણ ॥ ૧ ॥ (દશ વૈ ૦ અ ૦ ૫ ૩ ૦ ૨)

અથવા—મોઃ શિષ્ય ! એકાકિવિહારે શ્મશાનાદૌ ભૈરવાઃ=મયંકરાઃ પ્રાણાઃ  
પિશાચાદયઃ પ્રાણાન્=અન્યાન્ પ્રાણિનઃ, યદ્વા પ્રાણાન્=તવ પ્રાણાન્ ક્લેશયન્તિ—ઉપ-  
તક્ર (સ્વાદી છાછ) આદિસે મિશ્રિત અન્નકો રાગ-દ્વેષ રહિત ભોગે ।  
શાસ્ત્રોક્ત વિધિકે અનુસાર જો મી નિર્દોષ આહાર ઉસે પ્રાપ્ત હો- ચાહે  
વહ પ્રશસ્તગન્ધયુક્ત હો, ચાહે અપ્રશસ્ત ગન્ધવાળા હો, ઉસ આહારકો  
વહ અજ્જાર ધૂમાદિમણ્ડલ દોષસે પરિવર્જિત ભોગે । કહા મી હૈ—

“પઢિગ્ગહં સંલિહિત્તાણં, લેવમાયાઙ્ સંજણ ।

સુગંધં વા દુગંધં વા, સવ્વં શુંજે ન છઢુણ ॥” (દશ. અ. ૫ ૩. ૨ ગા. ૧)

અથવા—એકાકીવિહાર કરનેવાલે શિષ્યકો શિક્ષા દેતે હુણ સૂત્રકાર  
કહતે હૈં કિ હે શિષ્ય ! જબ તુમ એકાકિવિહારમૈં હો, ઓર કદાચિત્  
શ્મશાન આદિમૈં ધ્યાનનિમિત્ત રહના પડે, તો ઉસ દશામૈં યદિ વહાં  
રહનેવાલે મયજ્જાર પિશાચાદિક પ્રાણી કિ જિનકા સ્વભાવ હી દૂસરે પ્રાણિયો  
કો કષ્ટ પહુંચાનેકા હોતા હૈ તુમ્હેં મી ક્લેશિત કરે—કષ્ટ—ઉપસર્ગ  
પહુંચાવેં તો તુમ ઉન કષ્ટોંસે ઘબરાના નહીં, પ્રત્યુત ધીરવીરકી તરહ

આદિથી મિશ્રિત અન્નને, રાગ-દ્વેષ રહિત ભોગવે. શાસ્ત્રોક્તવિધિ અનુસાર જે  
પણ નિર્દોષ આહાર તેને પ્રાપ્ત થાય, આહે તે પ્રશસ્ત ગંધવાળા હોય, આહે અપ્ર-  
શસ્ત ગંધવાળા હોય, તે આહારને તે અંગાર ધૂમાદિમંડળ દોષોથી રહિત  
ભોગવે. કહ્યું પણ છે—

“પઢિગ્ગહં સંલિહિત્તાણં, લેવમાયાઙ્ સંજણ ।

સુગંધં વા દુગંધં વા, સવ્વં શુંજે ન છઢુણ ॥” (દશવૈ ૦ અ ૦ ૫ ૩ ૦ ૨ ગા ૦ ૧)

અથવા—એકાકીવિહાર કરવાવાળા શિષ્યને સમજાવતાં સૂત્રકાર કહે છે કે  
હે શિષ્ય ! જ્યારે તમે એકાકીવિહારમાં હો, અને કદાચિત શ્મશાન આદિમાં  
ધ્યાન નિમિત્ત રહેવું પડે તો તેવી દશામાં કદાચ તે જગ્યાએ રહેવાવાળા ભયં-  
કર પિશાચ આદિ પ્રાણી કે જેનો સ્વભાવ ખીજા પ્રાણીઓને કષ્ટ પહોંચાડ-  
વાનો છે, તમને પણ ક્લેશ આપે—ઉપસર્ગ પહોંચાડે તો તમે તેવા કષ્ટોથી

તાપયન્તિ । ત્વં તુ તૈઃ ક્લેશૈઃ સ્પૃષ્ટઃ, ધીરઃ=અક્ષોભ્યઃ સન્ તાન્ સ્પર્શાન્=દુઃખવિ-  
શેષાન્ અધિસહસ્વ-इति ब्रवीमि, अस्य व्याख्या पूर्ववत् ॥ सू० ९ ॥

॥ षष्ठाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥ ६-२ ॥

उन कष्टोंको अधुब्धचित्त बन शांतिभावसे सहन करना । “इति ब्रवीमि” इन पदोंकी पहिले जैसी ही व्याख्या समझ लेनी चाहिये।

भावार्थ—एकाकिविहार करनेवाले साधु वे ही हो सकते हैं जो जितेन्द्रिय होते हैं और उपसर्ग एवं परीषहोंसे जो कभी भी विचलित-चित्त नहीं होते हैं । इनके अनेक प्रकारके नियम होते हैं । ये ऐसी कोई भी प्रवृत्ति नहीं करते कि जिससे साधुमर्यादाका भङ्ग हो । आहार के लिये जब ये निकलते हैं तब चाहे अन्तप्रान्त हो, कैसा भी क्यों न हो, जहां भी इन्हें शङ्कादिक दश एषणाके दोषोंसे रहित आहार मिल जायगा अथवा सर्वैषणासे जो परिशुद्ध होगा, कल्प समझ कर ये उसे ले लेंगे । वह चाहे सिंहकेशरमोदकादिक हो चाहे, बल्लचणकादिक से बना और अम्लतक्रादिकसे मिश्रित हो, उसमें इन्हें कोई भी जातका पक्षपात नहीं होता है । आहारके विषयमें इनकी यही शुद्धदृष्टि रहती है कि कुछ भी मिलेपर उसे शास्त्रविधिके अनुसार ही ग्रहण करें।

ગભરાતા નહીં, પણ ધીર વીરની રીતે તેવા કષ્ટોને ક્ષોભવિના શાંતિભાવથી સહન કરે. “इति ब्रवीमि” આ પદોની પહેલાની માફકજ વ્યાખ્યા સમજવી જોઈએ.

ભાવાર્થ—એકાકીવિહાર કરવાવાળા સાધુ એ જ હોય છે જે જીતેન્દ્રિય હોય છે, ઉપસર્ગ અને પરિષદોથી જે કદિ પણ વિચલિતચિત્ત થતા નથી. એમના અનેક પ્રકારના નિયમો હોય છે, તેઓ એવી કોઈ પણ પ્રવૃત્તિ નથી કરતા કે જેનાથી સાધુમર્યાદાનો ભંગ થાય. આહારને માટે જ્યારે તે નીકળે છે ત્યારે ભલે અન્તપ્રાન્ત હોય, ગમે તેવું કેમ ન હોય, જ્યાં પણ તેને શંકા-દિક એષણાના દોષોથી રહિત આહાર મળી જાય અથવા સર્વૈષણાથી જે પરિશુદ્ધ હોય તેને કલ્પ સમજીને તે લઈ લે. એ ભલે સિંહકેશરમોદકાદિક હોય ત્યાં જ બલ્લચણકાદિકથી બનેલ અને ખાટી છાશ આદિથી મિશ્રિત હોય. તેમાં તેને કોઈ પણ જાતનો પક્ષપાત થતો નથી, આહારના વિષયમાં તેની આવી શુદ્ધ નજર રહે છે કે કોઈ પણ મળે, પણ તેને શાસ્ત્રવિધિ અનુસારે જ શ્રદ્ધા કરીશ.

શિષ્યોંકો સમ્બોધન કરતે હુણ સૂત્રકાર અન્તમેં કહતે હૈં કિ હસ  
एकाकिविहारमें साधुको अनेक प्रकारकी आपत्तिविपत्तियोंका सामना  
करना पड़ता है । कभी २ तो यहां तक भी मौका आ जाता है कि  
श्मशान आदिमें पहुंचने पर साधुके उपर भयंकर पिशाचादि प्राणियों  
का उपसर्ग होता है; परन्तु वह धीरवीर साधु उनसे कभी भी घबराता  
नहीं है और सहर्ष उन परीषद्-उपसर्गोंको जीतकर अपने संयमकी  
रक्षा करता है ॥सू०९॥

છઢા અધ્યયનકા દૂસરા ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૬-૨ ॥

શિષ્યોને સંબોધન કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે આ એકાકીવિહારમાં સાધુને  
અનેક પ્રકારની આપત્તિ-વિપત્તિનો સામનો કરવો પડે છે. ક્યારેક ક્યારેક તો  
એવો પણ પ્રસંગ આવે છે કે શ્મશાન આદિમાં પહોંચતાં સાધુના ઉપર ભયંકર  
પિશાચાદિ પ્રાણીઓના ઉપસર્ગ થાય છે; પરન્તુ તે ધીરવીર સાધુ એનાથી કોઈ  
વખત ઘભરાતા નથી, અને સહર્ષ એવા પરિષદ ઉપસર્ગને જીતીને પોતાના  
સંયમની રક્ષા કરે છે.

છઢા અધ્યયનનો બીજો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૬-૨ ॥





### । अथ षष्ठाध्ययनस्य तृतीय उद्देशः ।

इहानन्तरद्वितीयोद्देशके कर्मधूननं सोपायं प्रदर्शितम् । तच्चोपकरणशरीरम-  
मत्वविधूननं विना न संभवतीत्यतस्तद्बोधयितुं तृतीयमुद्देशकं कथयति, तत्रादौ  
मुनिमर्यादामाह—‘ एयं खु ’ इत्यादि ।

मूलम्—एयं खु मुणी आयाणं सया सुअक्खायधम्ममे विहूयकप्पे  
णिज्झोसइत्ता ॥ सू० १ ॥

छाया—एतत्खलु मुनिरादानं सदा स्वाख्यातधर्मः विधूतकल्पः  
निर्ज्ञोष्य ॥ सू० १ ॥

टीका—सदा=सर्वदा स्वाख्यातधर्मः—सु=सुष्ठु—सम्यक्प्रकारेण आख्यातः=  
भगवता प्ररूपितः ममत्वत्यागरूपो धर्म एव धर्मः यस्य स स्वाख्यातधर्मः, तथा—

### छठा अध्ययनका तीसरा उद्देश ।

इस अध्ययनके द्वितीय उद्देशमें कर्मोंका क्षय उपायसहित प्रदर्शित  
किया जा चुका है । कर्मोंका क्षय भी जब तक उपकरण और शरीरमें  
ममत्वका अभाव नहीं होगा तब तक नहीं हो सकता है, इसलिये उसे  
समझानेके लिये इस तृतीय उद्देशका सूत्रकार कथन करते हैं । उसमें  
सर्वप्रथम वे मुनिकी मर्यादा कहते हैं—‘ एयं खु ’ इत्यादि ।

सर्वदा जिसके हृदयमें भगवत्प्ररूपित ममत्वत्यागरूप धर्म विद्य-  
मान है, जो यह समझता है कि ममत्वत्याग ही सच्चा धर्म है, अर्थात्—  
जिनप्रवचनमें कथित प्रतिज्ञाके भारको वहन करनेमें जो शक्तिसम्पन्न

### छठा अध्ययनको त्रीने उद्देश

આ અધ્યયનના ત્રીજા ઉદ્દેશમાં કર્મોના ક્ષય ઉપાયસહિત પ્રદર્શિત કરવામાં  
આવેલ છે. કર્મોના ક્ષય પણ જ્યાં સુધી ઉપકરણ અને શરીરમાં મમત્વનો  
અભાવ નહિ થાય ત્યાં સુધી થઈ શકતો નથી. આ માટે એ સમજાવવા આ  
ત્રીજા ઉદ્દેશ સૂત્રકાર કહે છે. એમાં સર્વપ્રથમ એ મુનિની મર્યાદા કહે છે.  
“ એયં खु ” ઇત્યાદિ.

સદાય જેના હૃદયમાં ભગવત્પ્રરૂપિત મમત્વત્યાગરૂપ ધર્મ વિદ્યમાન છે.  
જે એ સમજે છે કે મમત્વત્યાગજ સાચો ધર્મ છે, અર્થાત્—જનપ્રવચનમાં કહેલ  
પ્રતિજ્ઞાના ભારને વહન કરવામાં જે શક્તિસંપન્ન છે, તથા વિધૂતકલ્પ—સારી

વિદ્યૂતકલ્પઃ-વિદ્યૂતઃ=સમ્યક્ સ્પૃષ્ટઃ કલ્પઃ=આચારો યેન સ વિદ્યૂતકલ્પઃ=જ્ઞાના-  
ચારાદિપરિપાલકો મુનિઃ એતત્=પૂર્વોક્તં વક્ષ્યમાણં વા આદાનં=કર્મોપાદાનં  
ધર્મોપકરણાતિરિક્તં વસ્ત્રાદિકં નિર્જ્ઞોષ્ય=વર્જયિત્વા-અસ્વીકૃત્યેત્યર્થઃ,  
વિહરતિ ॥ સૂ. ૧ ॥

કિંચ-‘જે અચેલે’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્-જે અચેલે પરિવુસિષ, તસ્સ પં ભિક્ષુસ્સ નો એવં  
ભવઈ-પરિજુણે મે વત્થે, વત્થં જાઈસ્સામિ, સુત્તં જાઈસ્સામિ,  
સૂઈ જાઈસ્સામિ, સંધિસ્સામિ, સીવિસ્સામિ, ઉક્કસિસ્સામિ,  
વુક્કસિસ્સામિ, પરિહિસ્સામિ, પાઠણિસ્સામિ ॥ સૂ. ૨ ॥

છાયા-યોડ્ચેલઃ પર્યુષિતસ્તસ્ય ચ્છલ મિશ્નોર્નો એવં ભવતિ-પરિજીર્ણ મે  
વક્ષં, વક્ષં યાચિષ્યે, સૂત્રં યાચિષ્યે, સૂચીં યાચિષ્યે, સંધાસ્યામિ, સેવિષ્યામિ,  
ઉત્કર્ષયિષ્યામિ, વ્યુત્કર્ષયિષ્યામિ, પરિધાષ્યામિ, પ્રાવરિષ્યામિ ॥ સૂ. ૨ ॥

હૈ, તથા વિદ્યૂતકલ્પ-અચ્છી તરહસે જિસને કલ્પકા સ્પર્શ કિયા હૈ-  
જ્ઞાનાચાર આદિ આચારકા જો પાલક હૈ, એસા મુનિ પૂર્વોક્ત તથા આગે  
કહે જાનેવાલે ધર્મોપકરણકે સિવાય અન્ય વસ્ત્રાદિકકા ત્યાગ કર મુનિ-  
ધર્મમેં વિચરણ કરતા હૈ ।

ભાવાર્થ-જો યહ સમજતા હૈ કિ મમત્વત્યાગરૂપ ધર્મ હી કિ જિસ  
કી પ્રરૂપણા ઓર પાલના તીર્થઙ્કરાદિ દેવોને કી હૈ યહી ધર્મ હૈ, તથા જો  
જ્ઞાનાચારાદિકકા ભલીભાંતિ પાલન કરનેમેં સાવધાન રહતા હૈ ઓર  
ધર્મોપકરણકે સિવાય અન્ય વસ્ત્રાદિક પરિગ્રહરૂપ હોનેસે કર્મોકે  
ઉપાર્જન કરાનેવાલે હૈ, એસા વિચાર કર જો ઉનકા ત્યાગ કરતા હૈ, વહી  
સચ્ચા મુનિ હૈ ॥ સૂ. ૧ ॥

રીતે જેણે કલ્પનો સ્પર્શ કરેલ છે, જ્ઞાન-આદિ આચારના જે પાલક છે, એવા  
મુનિ પૂર્વોક્ત તથા હવે પછી કહેવામાં આવનાર ધર્મોપકરણના સિવાય અન્ય  
વસ્ત્રાદિકનો ત્યાગ કરી મુનિધર્મમાં વિચરણ કરતા હોય છે.

ભાવાર્થ-જે એ સમજે છે કે મમત્વત્યાગરૂપ ધર્મ જ કે જેની પ્રરૂ-  
પણા અને પાલના તીર્થંકરાદિક દેવોએ કરી છે, એ જ ધર્મ છે. તથા જે  
જ્ઞાનાચારાદિકનું સારી રીતે પાલન કરવામાં સાવધાન રહે છે, તે એ સમજીને કે ધર્મો-  
પકરણના સિવાય અન્ય વસ્ત્રાદિક પરિગ્રહરૂપ હોવાથી કર્મોનું ઉપાર્જન કરવાવાળા  
છે. એવો વિચાર કરી જે તેનો ત્યાગ કરે છે, એ જ સાચા મુનિ છે. ( સૂ. ૧ )

ટીકા—ય: સાધુ:, અચેલ:=અલ્પવસ્ત્ર:, અત્રાલ્પાર્થે નજૂ, યથાડયમજ્ઞ ઇત્યત્ર સ્વલ્પજ્ઞાનવાનિત્યર્થો ભવતિ; તથા—પર્યુષિત:=સંયમે કર્મધૂનનોપાયે વ્યવસ્થિત:, તસ્ય મિશ્નો: એવં=વક્ષ્યમાણં ન ભવતિ=ન કલ્પતે, યથા પરિજીર્ણે મે વસ્ત્રમ્, ઇદં મમ શરીરત્રાણાય ન ભવિષ્યતીતિ વસ્ત્રં યાચિષ્ય ઇતિ, પૂર્વગૃહીતવસ્ત્રસ્ય જીર્ણતયા સ્ફાટિતતયા ચ શીતપીઢિતસ્ય મમાનેન શરીરત્રાણાસંભવાત્ નવીનં વસ્ત્રં યાચિષ્ય

તથા—‘જે અચેલે’ ઇત્યાદિ ।

‘અચેલે’—યહાંપર અલ્પ-અર્થવાચક નજૂકા પ્રયોગ હુઆ હૈ; જૈસે ‘અજ્ઞ’ હસમેં હોતા હૈ । યહ અજ્ઞ શબ્દકા જિસ પ્રકાર સર્વથા જ્ઞાનકા અભાવ પ્રતિ-પાદિત નહીં કરતા હૈ; કિન્તુ જ્ઞાનમેં અલ્પતા પ્રદર્શિત કરતા હૈ, ટીક ઇસી પ્રકારસે ‘અચેલ’ યહ શબ્દ મી વસ્ત્રકે સર્વથા અભાવકા પ્રદર્શન નહીં કરતા કિન્તુ ઉસમેં અલ્પતા હી બતલાતા હૈ । એસે-જો અચેલ-અલ્પ વસ્ત્રવાલા હૈ, તથા કર્મેંકે વિનાશક ઉપાયમેં જિસકી સ્થિતિ હૈ, ઉસ સાધુકે ચિત્ત મેં યહ કલ્પના નહીં ઉઠતી હૈ અર્થાત્ ઉસે ઇસ પ્રકારકી કલ્પના કરના ઉચિત નહીં હૈ કિ મેરા યહ વસ્ત્ર જીર્ણ પુરાના હો ગયા હૈ અબ ઇસસે મેરે શરીરકી રક્ષા નહીં હો સકેગી; અતઃ કોઈ દૂસરા વસ્ત્ર કહીં કિસી સે ચલકર યાચ લુંગા । મતલબ યહ કિ મેરા પહિલેકા જો યહ વસ્ત્ર હૈ વહ ઇસ સમય જીર્ણ ઓર ફટા હુવા હોનેસે શીતપીઢિત મેરે શરીરકી રક્ષા કરનેમેં સર્વથા અસમર્થ હૈ અતઃ નવીન વસ્ત્રકે વિના મિલે મેરે

તથા “જે અચેલે” ઇત્યાદિ ।

અચેલે—અહીં અલ્પ અર્થ વાચક નજૂનો પ્રયોગ થયો છે—જેમ “અજ્ઞ” આમાં થાય છે. આ અજ્ઞ શબ્દ જે પ્રકારે સર્વથા જ્ઞાનનો અભાવ પ્રતિપાદિત નથી કરતો, પરંતુ જ્ઞાનમાં અલ્પતા પ્રદર્શિત કરે છે, ઠીક એ પ્રકારથી ‘અચેલ’ આ શબ્દ પણ વસ્ત્રના સર્વથા અભાવનું પ્રદર્શન નથી કરતો, પરંતુ એમાં અલ્પતા જ બતાવે છે. એવા જે અચેલ-અલ્પવસ્ત્રવાળા છે, તથા કર્મેના વિનાશક ઉપાયમાં જેની સ્થિતિ છે, એવા સાધુના ચિત્તમાં એ કલ્પના નથી ઉઠતી, અર્થાત્ એણે એ પ્રકારની કલ્પના કરવી ઉચિત નથી કે મારું આ વસ્ત્ર જીર્ણ-જીવું થઈ ગયું છે, હવે આનાથી મારા શરીરની રક્ષા થઈ શકવાની નથી બીજું કોઈ વસ્ત્ર કોઈ જગ્યાએ કોઈની પાસેથી માગી લઈશ. મતલબ—મારી પાસે પહેલાનું જે આ વસ્ત્ર છે તે આ સમયે જીર્ણ થવાથી ફાટી ગયેલ છે, અને ઠંડીમાં મારા શરીરની રક્ષા કરવામાં તદ્દન અસમર્થ છે. આથી નવીન વસ્ત્ર વગર મારા શરીરનું ઠંડીથી રક્ષણ થવું અસંભવ છે. આ માટે નવું વસ્ત્ર



इत्यर्थः । सूत्रं=तन्तुं याचिष्ये, सूचीं याचिष्ये, संधास्यामि=मूत्रमूच्यौ लब्ध्वा जीर्ण-  
वस्त्रस्य रन्ध्रं संधास्यामीत्यर्थः । तथा स्फाटितं सेविष्यामि । तथा-उत्कर्षयिष्यामि  
=अपरवस्त्रखण्डं योजयित्वा वर्धयिष्यामि, लघुवस्त्रं विशालं करिष्यामीत्यर्थः । तथा  
व्युत्कर्षयिष्यामि=स्फाटितभागं त्रोटयित्वाऽपनेष्यामि । तथा परिधास्यामि-एवं कृते  
सति पश्चादिदं जीर्णवस्त्रं परिधानवस्त्रं करिष्यामि । तथा-प्रावरिष्यामि=प्रावरणं  
'चादर' इति भाषाप्रसिद्धं करिष्यामि ।

शरीरका शीतसे त्राण (रक्षा) होना असंभव है । इसलिये नवीन वस्त्र  
मिल जाय तो ठीक ! जब तक वह नहीं मिलता है-तब तक जैसे बने  
इस फटे पुराने वस्त्रसे ही काम निकाल लूंगा; परन्तु ऐसे तो ये काममें  
आवेगा नहीं; अतः यदि कहींसे सुई और डोरा मिल जाय तो उससे  
इसे सी लूंगा, जहां २ यह फट चुका है-जोड़ लूंगा, इसमें जितने छेद हो  
चुके हैं उन्हें भर लूंगा, नहीं तो कौन इतना परिश्रम करे, जो भाग  
बिलकुल फट चुका है उसे इससे निकाल दूंगा और दूसरा टुकड़ा जोड़  
लूंगा, इससे यह फटा पुराना टुकड़ा पहिलेकी अपेक्षा कुछ बड़ा भी  
हो जायगा । इससे मेरे दोनों काम निकल जायेंगे, पहिरने टाइममें पहिर  
लिया करूंगा और ओढ़नेके समयमें ओढ़ भी लिया करूंगा, अर्थात्  
इसकी चादर बना लूंगा । इस प्रकारके संकल्प विकल्परूप आर्त्तध्यानसे  
मुनिके शुभ अध्यवसाय नहीं होता है । शुभ अध्यवसाय उत्पन्न हुए  
विना परंपरारूपसे कर्मोंका क्षय भी नहीं हो सकता, अतः कर्मोंके क्षय  
के लिये उद्यत हुए मुनिको आर्त्तध्यानका सर्वथा परित्याग कर देना

મળી જાય તો ઠીક. પરન્તુ જ્યાં સુધી એ ન મળે ત્યાં સુધી ગમે તેમ આ  
ફટેલા જુના વસ્ત્રથી જ ચલાવી લઈશ, પરન્તુ ફટેલા હાલતમાં તો એ કામમાં  
આવી શકે તેમ નથી, આથી જો ક્યાંયથી સોય દોરા મળી જાય તો એનાથી  
એને સીવી લઉં, જ્યાં જ્યાં એ ફટયું છે ત્યાં જોડી લઉં, અને જ્યાં છિદ્ર  
પડ્યાં છે એને ભરી લઉં. નહિ તો કોણ આટલો પરિશ્રમ કરે. જે ભાગ બીલ-  
કુલ ફાટી ગયેલ છે એને કાઢી નાખી બીજો ટુકડો જોડી દઈશ. આથી એ  
ફટેલ જુનો ટુકડો પહેલાં કરતાં મોટો થશે અને એથી મારાં બન્ને કામ થઈ જશે.  
પહેરવાના ટાઈમે પહેરી લઈશ અને ઓઢવાના સમયે ઓઢી પણ લઈશ. આ  
પ્રકારના સંકલ્પ-વિકલ્પરૂપ આર્તધ્યાનથી મુનિને શુભ અધ્યવસાય થતો નથી, શુભ  
અધ્યવસાય ઉત્પન્ન થયા વિના પરંપરારૂપના કર્મોના ક્ષય પણ થઈ શકતો નથી.  
આથી કર્મોના ક્ષયને માટે ઉદ્યત બનેલ મુનિએ આર્તધ્યાનનો સર્વથા ત્યાગ

एवंरूपार्तध्यानेन शुभाध्यवसायो नोत्पद्यते, तस्मात् कर्मधूननार्थमुद्यतेन मुनिनाऽऽर्तध्यानं परिवर्जनीयम्, अवसरे यद् भवेत्तद् भविष्यतीति चिन्तयेदिति भावः ॥ सू० २ ॥

तस्याऽचेलस्य साधोर्जीर्णवस्त्रविषयकमार्तध्यानं यदि नापि भवेत्, किन्तु चाहिये और ऐसा विचार करना चाहिये कि जिस समय जो होनेवाला होगा सो होगा ।

भावार्थ—चाहे अल्पवस्त्रवाले हों, चाहे बहु वस्त्रवाले हों; जो पर-  
पदार्थों में मोही हैं, उनके ही ये पूर्वोक्त रूपसे कल्पनाएँ उठा करती हैं ।  
यदि मुनिके भी ये इसी तरहसे उठती हैं तो वह सच्चा मुनि नहीं है ।  
मुनिके इस प्रकारकी कल्पनाओंका जागरण आर्त्तध्यानका कारण माना  
गया है, जो शुभ परिणामोंकी प्राप्तिमें प्रतिबन्धक होता है । अतः मुनि-  
योंको तो इस प्रकारकी कल्पना उठनी ही नहीं चाहिये—उन्हें तो यही  
विचार चाहिये कि जो जिस समयमें होना है वही होगा, मुझे इसकी  
चिन्ता नहीं करनी चाहिये, चिन्तासे कर्मोंका ही बन्ध होगा, न कि उनका  
धूनन । तात्पर्य यह है कि वस्त्र पुराना हो जाय तो उसकी चिन्ता न करें,  
और कब सीजंगा इस प्रकार आर्त्तध्यान न करें ॥सू० २॥

મહે હી ઉસ અચેલ સાધુકે લિયે ફટે-પુરાને-વસ્ત્ર-વિષયક આર્ત-  
કરવો જોઈએ અને એવો વિચાર કરવો જોઈએ કે જે સમયે થવાનું છે તે  
થઈને જ રહેશે.

ભાવાર્થ—ચાહે અલ્પવસ્ત્રવાળા હોય, ચાહે બહુવસ્ત્રવાળા હોય, જે પર-  
પદાર્થોમાં મોહી છે એને જ એ પૂર્વોક્તરૂપથી કલ્પનાઓ ઉઠા કરે છે. મુનિના  
મનમાં પણ જો આવી કલ્પના ઉઠે તો એ સાચો મુનિ નથી. મુનિમાં આ પ્રકાર-  
ની કલ્પનાઓ જાગવી એ આર્તધ્યાનના કારણરૂપ માનવામાં આવેલ છે. જે  
શુભ પરિણામોની પ્રાપ્તિમાં બાધારૂપ બને છે. આથી મુનિઓમાં તો આ પ્રકારની  
કલ્પનાઓ ઉઠવી જ ન જોઈએ. એણે તો એવો જ વિચાર રાખવો જોઈએ કે જે  
સમયે જે બનવાનું છે તે બનવાનું જ છે. મારે એની ચિન્તા શા માટે કરવી  
જોઈએ. ચિન્તાથી તો કર્મનો બન્ધ થાય છે, એનો નાશ નહિ. તાત્પર્ય એ છે કે  
વસ્ત્ર ભલે જુનું થઈ જાય એની એ ચિન્તા ન કરે, અને ક્યારે સીવીશું આ  
પ્રકારથી આર્તધ્યાન ન કરે. (સૂ ૨)

એ અચેલ સાધુને માટે ફટેલ જુના વસ્ત્રો વિષે ભલે આર્તધ્યાન ન હોય

વક્ષ્યમાણપરીવહાણામવશ્યં સમ્ભવ્યં ઇતિ તત્ર તસ્ય યત્ કર્તવ્યં તદાહ-‘અદુવા તત્થ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્-અદુવા તત્થ પરક્રમંતં મુઝ્જો અચેલં તણ્ણાસા ફુસંતિ, સીયફાસા ફુસંતિ, તેઝ્જાસા ફુસંતિ, દંસમસગ્ગાસા ફુસંતિ । ઇગયરે અન્નયરે વિરૂપરૂપે ફાસે અહિયાસેતિ અચેલે લાઘવં આગમમાણે, તવે સે અભિસમણ્ણાગ્ગે ભવઙ્ગાસૂં ૩॥

છાયા-અથવા તત્ર પરાક્રમમાણં મૂયોઽચેલં તુણસ્પર્શાઃ સ્પૃશન્તિ, શીતસ્પર્શાઃ સ્પૃશન્તિ, તેજઃસ્પર્શાઃ સ્પૃશન્તિ, દંશમશકસ્પર્શાઃ સ્પૃશન્તિ । ઇકતરાન્ અન્યતરાન્ વિરૂપરૂપાન્ સ્પર્શાન્ અધ્યાસ્તે અચેલો લાઘવમ્ આગમયન્, તપસ્તસ્ય અભિસમન્વાગતં ભવતિ ॥ મૂં ૩ ॥

ટીકા-અથવા તત્ર-અલ્પવસ્ત્રાવસ્થાયાં પરાક્રમમાણં=કર્મધૂનનોપાયે સંયમે સમુદ્ય-જ્ઞાનં અચેલમ્=અલ્પવસ્ત્રં સાધુઃ ક્વચિદ્ ગ્રામાદૌ ત્વક્ત્રાણવસ્ત્રાભાવાત્ તુણશાયિનં, ધ્યાન ન હો તો મી યે વક્ષ્યમાણ પરીવહ તો અવશ્ય હો સકતે હૈં । ડનકે હોનેપર જો ડનકા કર્તવ્ય હૈ, ડસે સૂત્રકાર કહતે હૈ-“અદુવા તત્થ” ઇત્યાદિ ।

અથવા-અલ્પ વસ્ત્ર ધારણ કરનેકી અવસ્થામેં અચ્છી તરહસે ડદ્યુક્ત અર્થાત્ સંયમકી રક્ષા અધિક વસ્ત્રોંકે ધારણ કરનેસે નહીં હો સકતી હૈ ઓર જહાં સંયમકી રક્ષા હી નહીં હૈ વહાં કર્મોંકા ક્ષય મી નહીં હો સકતા હૈ-ઇસ ભાવનાસે પ્રેરિત વહ સાધુ કર્મવિનાશક સંયમમેં સદા ડયોગશાલી બના રહતા હૈ ઓર હસીલિયે વહ અલ્પ વસ્ત્ર-થોડે વસ્ત્રોંસે અપના કામ ચલાતા હૈ, તો મી ઇસે સાધુકો કિસી ગ્રામાદિકમેં શારીરિક રક્ષાકે યોગ્ય વસ્ત્રોંકા અભાવ હોનેસે કદાચિત્ ઘાસપર મી શયન કરના પડતા હૈ, હસ અવસ્થામેં કઠોર તુણસ્પર્શોંસે ડત્પન્ન દુઃખવિશેષોં

તો પણુ ઓ વક્ષ્યમાણુ પરિવહ તો અવશ્ય થાય છે, તે થતાં તેનું જે કર્તવ્ય છે તેને સૂત્રકાર કહે છે “અદુવા તત્થ” ઇત્યાદિ.

અથવા અલ્પ વસ્ત્ર ધારણ કરવાની અવસ્થામાં સારી રીતે ડદ્યુક્ત ઓટલે સંયમની રક્ષા વધુ વસ્ત્રો ધારણ કરવાથી થઈ શકતી નથી, અને જ્યાં સંયમની રક્ષા ન થતી ત્યાં કર્મનો ક્ષય પણ થઈ શકતો નથી, આ ભાવનાથી પ્રેરિત તે સાધુ કર્મવિનાશક સંયમમાં સદા ડયોગશાળી બની રહે છે, અને ઓ માટે તે અલ્પ વસ્ત્ર-થોડાં વસ્ત્રોથી પોતાનું કામ ચલાવે છે, તો પણ ઓવા સાધુને કોઈ ગામડામાં શારીરિક રક્ષા-યોગ્ય વસ્ત્રોનો અભાવ હોવાથી કોઈ વખતે ઘાસ ઉપર



તૃણસ્પર્શાઃ=પરુષતૃણસ્પર્શજનિતદુઃખવિશેષાઃ કદાચિત્ સ્પૃશન્તિ=પીડયન્તિ, તથા શીતસ્પર્શાઃ=શીતપરીષહાઃ સ્પૃશન્તિ । તથા-તેજઃસ્પર્શાઃ=ઉષ્ણપરીષહાઃ સ્પૃશન્તિ, તથા દંશમશકસ્પર્શાઃ સ્પૃશન્તિ । ઇષુ પરિષહેષુ યે એકતરે=એકરૂપાઃ,-પ્રતિકૂલા એવ દંશમશકાદયઃ, તથા-યે અન્યતરે=ઉભયવિધાઃ-અનુકૂલપ્રતિકૂલરૂપાઃ=શીતોષ્ણાદયઃ; યથા યે શીતસ્પર્શાઃ હેમન્તે પ્રતિકૂલાસ્ત એવ ગ્રીષ્મેऽનુકૂલાઃ, તથા ય ઉષ્ણસ્પર્શાઃ ગ્રીષ્મે પ્રતિકૂલાસ્ત એવ હેમન્તેऽનુકૂલા इत्येवमનુકૂલપ્રતિકૂલરૂપાઃ શીતસ્પર્શાઃ ઉષ્ણ-સ્પર્શાશ્ચ ભવન્તિ, અતએવ વિરૂપરૂપાઃ=અનેકરૂપાઃ સ્પર્શાઃ-પરિષહરૂપાસ્તૃણાદિ-સ્પર્શાઃ પ્રાદુર્ભવન્તિ, તાન્ અચેલઃ=અલપવસ્ત્રઃ સાધુઃ અધિસહતે । સ કિમુદિશ્ય પરિષહાન્ અધિસહત? इति जिज्ञासायामाह-लाघवमागमयन्निति । लाघवम्=द्रव्यतो

કા ઉસે સામના કરના પડતા હૈ-उन दुःखोंको सहता है । शीतस्पर्श-परीषह भी वह सहता है । डांस मच्छर आदि जन्य वेदनाओंको भी सहन करता है । इन परीषहोंमें कोई २ परीषह प्रतिकूल ही हैं, तथा कोई अनुकूलप्रतिकूल उभयरूप हैं । जैसे-दंशमशकादिक प्रतिकूल ही हैं । तथा शीत उष्ण बगैरह अनुकूल प्रतिकूल दोनों रूप हैं । जो शीतस्पर्श हेमन्त ऋतुमें प्रतिकूल मालूम देते हैं वे ही ग्रीष्मऋतुमें अनुकूल लगने लगते हैं । इसी प्रकार जो उष्ण स्पर्श ग्रीष्ममें प्रतिकूल लगते हैं वे ही हेमन्तमें अनुकूल जचते हैं । इसी अपेक्षा ये शीत-उष्ण स्पर्श विरूप-रूप-अनेक रूप बताये गये हैं । इन अनेकरूप स्पर्शोंको और परीषहरूप तृणादिस्पर्शोंको वह अचेल साधु सहन करता है । किस विचारसे वह इन परीषहोंको सहता है ? इस प्रकारकी जिज्ञासा होने पर सूत्रकार

પણ સુવું પડે છે. આ સ્થિતિમાં કઠોર ઘાસના સ્પર્શથી ઉત્પન્ન દુઃખોનો તેને સામનો કરવો પડે છે-એ આવાં દુઃખોને સહે છે. શીતસ્પર્શ પરીષહ પણ સહે છે. ડાંસ, મચ્છર આદિજન્ય વેદનાઓને પણ સહન કરે છે. આ પરીષહોમાં કોઈ કોઈ પરીષહ પ્રતિકૂળ જ હોય છે, અને કોઈ કોઈ અનુકૂળ પ્રતિકૂળ ઉભયરૂપ હોય છે. જેમ દંશ મશકાદિ પરીષહ પ્રતિકૂળ જ છે. અને શીત ઉષ્ણ આદિ પરીષહ અનુકૂળ પ્રતિકૂળ ઉભયરૂપ છે. જે શીતસ્પર્શ હેમન્તઋતુમાં પ્રતિકૂળ માલુમ પડે છે. તે જ ગ્રીષ્મઋતુમાં અનુકૂળ લાગે છે. એ જ રીતે ઉષ્ણ સ્પર્શ ગ્રીષ્મઋતુમાં પ્રતિકૂળ લાગે છે તે જ હેમન્તમાં અનુકૂળ લાગે છે. આ અપેક્ષાથી શીત-ઉષ્ણ સ્પર્શ વિરૂપરૂપ-અનેકરૂપ બતાવવામાં આવેલ છે. આ અનેકરૂપ સ્પર્શોને અને પરિષહરૂપ તૃણાદિસ્પર્શોને એ અચેલ સાધુ સહન કરે છે. કયા વિચારથી એ આવાં દુઃખો સહે છે? આ પ્રકારની જિજ્ઞાસા હોવાથી સૂત્રકાર કહે છે કે-“लाघवं आगमयन्”-એ સાધુ વસ્ત્રાદિકોના લાઘવ-સંક્ષેપ

ભાવતશ્ચા તત્ર દ્રવ્યતો-ધર્મોપકરણવસ્ત્રાદિલાઘવં, ભાવતસ્તુ-જ્ઞાનાવરણીયાદ્યષ્ટવિધકર્મ-  
લાઘવમ્, આગમયન્=નયન્, યદ્વા-અવગમયન્-મોક્ષાર્થિનો મમ વસ્ત્રાદિલાઘવં  
કર્મલાઘવં ચાવશ્યં કરણીયમિત્યેવં ચિન્તયન્-ઈતિ યાવત્; પરિષહાણાં સહનમેવ  
મમ કર્મધૂનનોપાય ઇતિ કૃત્વા તાન્ સર્વાન્ પરીષહાન્ અધિસહત ઇતિ ભાવઃ ।

તસ્ય=ઉપકરણલાઘવેન કર્મલાઘવં કર્મલાઘવેન ચોપકરણલાઘવં વિદિત્વા  
તૃણાદિસ્પર્શાન્ અધિસહમાનસ્ય તપઃ=કાયક્લેશરૂપતયા વાહ્યં તપઃ, અભિ-  
સમન્વાગતં=મોક્ષાભિમુખ્યેન સમ્યગાચરિતં ભવતિ ॥ સૂ. ૩ ॥

કહતે હૈં કિ “લાઘવં આગમયન્” વહ સાધુ વસ્ત્રાદિકોંકા લાઘવ-  
સંક્ષેપ કરાનેકા અભિલાષી હૈ-અર્થાત્ દ્રવ્ય ઓર ભાવકે ભેદસે લાઘવ  
દો પ્રકારકા હૈ-ધર્મકે ઉપકરણભૂત વસ્ત્રાદિકોંકી લઘુતા-અલ્પતા દ્રવ્ય  
લાઘવ હૈ ઓર જ્ઞાનાવરણીયાદિ અષ્ટ કર્મોંકી લઘુતા ભાવલાઘવ હૈ ।  
इन दोनोंको वह मुनि लाघव (हलकापन) की ओर ले जा रहा है ।  
“आगमयन्”की जगह “अवगमयन्” यह भी पाठान्तर है, इससे यह  
भाव निकलता है कि उसका सदा यही विचार रहता है कि मैं मोक्षका  
अभिलाषी हूं, मेरे पास सदा वस्त्रोंकी अल्पता ही होनी चाहिये और  
मुझे कर्मोंका लाघव अवश्य करना चाहिये। इसी विचारसे वह परीषहोंको  
सहता है, क्योंकि इनका सहना ही मेरे पास कर्मोंके क्षय करनेका उपाय है।

સાધુકે ઉપકરણ કે લાઘવસે કર્મોંકા લાઘવ ઓર કર્મોંકે લાઘવ  
સે ઉપકરણકા લાઘવ જાનકર, તૃણાદિ સ્પર્શજન્ય કષ્ટોંકો સહન કરને-  
વાલે ઉસ સાધુકા તૃણાદિ સ્પર્શજન્યકષ્ટ તપ-કાયક્લેશ નામક વાહ્યતપ  
હૈ ઓર વહ ઉસકો નિર્જરા સમજકર અચ્છી તરહસે સહન કરતા હૈ।સૂ.૩।

કરવાનો અભિલાષી છે-અર્થાત્ દ્રવ્ય અને ભાવ ના ભેદથી લાઘવ એ  
પ્રકારે છે-ધર્મના ઉપકરણભૂત વસ્ત્ર આદિની લઘુતા દ્રવ્ય લાઘવ છે અને જ્ઞાના-  
વરણીયાદિ આઠ કર્મોંની લઘુતા ભાવલાઘવ છે, આ બંનેને એ લાઘવની તરફ  
લઈ જાય છે. “આગમયન્”ને સ્થાને “અવગમયન્” આ પણ પાઠાન્તર છે; આથી  
એ ભાવ નિકળે છે કે એને સદા એ વિચાર રહે છે કે હું મોક્ષનો અભિલાષી છું,  
મારી પાસે વસ્ત્રોની સદા અલ્પતા જ રહેવી જોઈએ, અને મારે કર્મોંનું લાઘવ  
અવશ્ય કરવું જોઈએ. કેમ કે હુ:ખોને સહેવાથી આઠ કર્મોંનો ક્ષય થાય છે.

ઉપકરણના લાઘવથી કર્મોંનું લાઘવ અને કર્મોંના લાઘવથી ઉપકરણનું લાઘવ  
બાણી તૃણાદિસ્પર્શજન્ય કષ્ટોને સહનાર તે સાધુનું તૃણાદિસ્પર્શજન્ય કષ્ટ તપ-કાયક્લેશ  
નામનું વાહ્યતપ છે, અને એ તેને નિર્જરા સમજી સારી રીતે સહન કરે છે.(સૂ.૩)

एतच्च न मया स्वबुद्ध्या परिकल्प्य कथ्यते; किन्तु भगवदुक्तानुसारेणेत्याह—‘जहेयं’ इत्यादि ।

मूलम्—जहेयं भगवया पवेइयं तमेव अभिसमिच्चा सव्व-ओ सव्वत्ताए संमत्तमेव समभिजाणिज्जा, एवं तेसिं महावीराणं चिररायं पुव्वाइं वासाणि रीयमाणानं दवियाणं पास अहिया-सियं ॥ सू० ४ ॥

છાયા—યથૈતદ્ ભગવતા પ્રવેદિતં તદેવાભિસમેત્ય સર્વતઃ સર્વાત્મતયા સમ્યક્ત્વમેવ સમભિજાનીયાત્ । એવં તેપાં મહાવીરાણાં ચિરરાત્રં પૂર્વાણિ વર્ષાણિ રીયમાણાનાં દ્રવિકાન્ પચ્ય અધ્યાસિતમ્ ॥ સૂ० ૪ ॥

टीका—एतद्=उक्तं वक्ष्यमाणं च यथा=येन प्रकारेण भगवता प्रवेदितं=प्रकर्षेण बोधितम्, अतः तदेव उपकरणादिलाघवम्, सर्वतः=द्रव्यक्षेत्रकालभावतः, तत्र द्रव्यतः—आहारोपकरणादौ, क्षेत्रतः—सर्वत्र ग्रामादौ, कालतः—अहर्निशम् दुर्भिक्षकादौ वा,

यह मैं अपनी बुद्धिकी कल्पनासे नहीं कहता हूं, किन्तु भगवान्‌के कहे अनुसार ही कहता हूं; इस बातको प्रकट करनेके लिये श्रीसुधर्मास्वामी श्रीजम्बूस्वामीसे कहते हैं—“जहेयं” इत्यादि ।

भगवान्‌ ने यह पूर्वोक्त अथवा वक्ष्यमाण उपकरणादिलाघवरूप विषय जिस प्रकारसे कहा है—समझाया है, वही द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसे जानकर, मुनि उसमें दत्तावधान बन, शुभ अध्यवसायरूप सम्य-क्त्वका ही मोक्षकी सन्मुखतासे चिन्तवन करे । आहार एवं उपकरणादि-कोंमें जो लाघव किया जाता है वह द्रव्यकी अपेक्षा लाघव है । मैं इतने ही ग्रामोंमें विहार करूंगा, इतनेमें नहीं—इस प्रकार जो ग्रामादिकोंमें

આ હું મારી બુદ્ધિની કલ્પનાથી નથી કહેતો; પરંતુ ભગવાનના કહેવા અનુસાર જ કહું છું. આ વાતને પ્રગટ કરવા માટે શ્રી સુધર્માસ્વામી શ્રી જમ્બૂ-સ્વામીને કહે છે—“જહેયં” ઇત્યાદિ.

ભગવાને આ પૂર્વોક્ત અથવા વક્ષ્યમાણ ઉપકરણાદિલાઘવરૂપ વિષય જે પ્રકારે કહેલ છે—સમજાવેલ છે, તેને દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવથી જાણીને મુનિ તેમાં એકાગ્ર બની શુભ અધ્યવસાયરૂપ સમ્યક્ત્વનો જ મોક્ષની સન્મુખતા માટે ચિન્તવન કરે. આહાર અને વસ્ત્રો આદિમાં જે લાઘવ કરવામાં આવે છે તે દ્રવ્યની અપેક્ષા લાઘવ છે. હું એટલા જ ગ્રામાદિકોમાં વિહાર કરીશ, એટલામાં નહિ—આ પ્રકારે જે ગ્રામાદિકોમાં લાઘવ કરવામાં આવે છે તે ક્ષેત્રની



ભાવતો માયારાહિત્યેન અભિસમેત્ય=જ્ઞાત્વા સર્વાત્મતયા=અનન્યમનસા સમ્યક્ત્વમેવ =શુભાધ્યવસાયમેવ સમભિજાનીયાત્=સમ્યગ્મોક્ષાભિમુખ્યેન જાનીયાત્, ચિન્તયેદિ-  
ત્યર્થઃ। અયં ભાવઃ-જિનકલ્પક એકવસ્ત્રધારિણં સ્થવિરકલ્પકં ન હીલયેત્।  
એવમેકવસ્ત્રધારકો દ્વિવસ્ત્રધારકમ્, દ્વિવસ્ત્રસ્ત્રિવસ્ત્રધારકમ્। તથા ચાતુર્માસિકક્ષપ-  
કસ્ત્રિમાસક્ષપકમ્, ત્રિમાસિકો દ્વિમાસિકમ્, દ્વિમાસિક એકમાસિકમ્, એકમા-  
સિકોઽર્ધમાસિકમ્, અર્ધમાસિકક્ષપક એકાન્તરક્ષપકમ્, એકાન્તરક્ષપક  
એકમક્ત્તભોજિનં ન હીલયેત્, યથા અયં ન માદૃશઃ, કિન્તુ દુષ્કરતપઃસંયમારાધનકાતરઃ  
ઇત્યાદિરૂપં દુષ્પ્રણિધાનં ન કુર્યાત્। કિમધિકેન? જિનકલ્પકઃ પ્રતિમાપ્રતિપન્નો વા

લાઘવ ક્રિયા જાતા હૈ વહ ક્ષેત્રકી અપેક્ષા લાઘવ હૈ। ઇસ ગ્રામમેં મેં એક  
રાત દિન રહુંગા, અથવા દુર્ભિક્ષકાલાદિકમેં રહુંગા, સબ સમયમેં નહીં,  
યહ કાલકી અપેક્ષા લાઘવ હૈ। માયાચારરહિત હોના યહ ભાવકી  
અપેક્ષા લાઘવ હૈ। તાત્પર્ય ઇસકા યહ હૈ-જિનકલ્પી સાધુ, એક વસ્ત્ર  
ધારણ કરનેવાલેકા, એક વસ્ત્રધારી દ્વિવસ્ત્રધારણકરનેવાલેકા, દ્વિ-  
વસ્ત્રધારી ત્રિવસ્ત્રધારણકરનેવાલેકા, તથા ચાતુર્માસિકક્ષપક, ત્રિમા-  
સિક ક્ષપકકા, ત્રિમાસિક ક્ષપક દ્વિમાસિક ક્ષપકકા, દ્વિમાસિકક્ષપક  
એકમાસિક ક્ષપકકા, એકમાસિક ક્ષપક અર્ધમાસિક ક્ષપકકા, અર્ધમા-  
સિક ક્ષપક એકાન્તર ક્ષપકકા, ઓર એકાન્તરક્ષપક એકમક્ત્તભોજીકા,  
કમી ભી તિરસ્કાર ન કરે। યહ મેરા જૈસા નહીં હૈ; કિન્તુ દુષ્કર તપ  
ઓર સંયમકી આરાધના કરનેમેં કાયર હૈ-ઇત્યાદિ-રૂપસે ડનકી અવ-  
લેહના ન કરે, ઓર ન અનાદરકી દૃષ્ટિસે દેસે। ઇસ વિષયમેં જ્યાદા

અપેક્ષા લાઘવ છે. આ ગામમાં હું એક રાત દિવસ રહીશ. અથવા  
દુર્ભિક્ષ કાલાદિકમાં રહીશ, બધા સમય સુધી નહિ. આ કાળની અપેક્ષા લાઘવ  
છે. માયાથી રહિત રહેવું એ લાવની અપેક્ષા લાઘવ છે. તાત્પર્ય એનું એ છે  
કે જનકલ્પી સાધુ એક વસ્ત્ર ધારણ કરવાવાળાનું અને એક વસ્ત્રધારી એ વસ્ત્ર  
ધારણ કરવાવાળાનું, એ વસ્ત્રધારી ત્રણ વસ્ત્ર ધારણ કરવાવાળાનું તથા ચાતુર્માસિક  
ક્ષપક ત્રિમાસિક ક્ષપકનું, ત્રિમાસિક ક્ષપક એ માસિક ક્ષપકનું, એ માસિક ક્ષપક  
એક માસિક ક્ષપકનું, એક માસિક ક્ષપક અર્ધમાસિક ક્ષપકનું, અર્ધમાસિક  
ક્ષપક એકાન્તર ક્ષપકનું અને એકાન્તર ક્ષપક એકલકતલોજનો કદિ પણ  
તિરસ્કાર ન કરે-એ મારા બેવા નથી; પરંતુ દુષ્કર તપ અને સંયમની આરાધના  
કરવામાં કાયર છે-ઇત્યાદિ રૂપથી એની અવલેહના ન કરે, અને ન તો અનાદરની  
દૃષ્ટિથી જુએ. આ વિષયમાં વધુ શું કહેવું. જનકલ્પી સાધુઓ અને પડિમાધારી

કદાચિત્ સ્વકલ્પેન ષડપિ માસાન્ ભિક્ષાં ન લભતે ચેત્તથાઽપ્યસૌ સમભાવમાલમ્બ્ય વિભાવયતિ-સર્વે ચૈતે સ્વસ્વકર્મક્ષપણાર્થં યથાવિધિપ્રવૃત્તાઃ ધૃતિસંહનનબલસ્થામાદિકારણવશાદ્ વિસદ્દશકલ્પા જિનાજ્ઞાયામેવ વર્તન્તે इति। एतच्च बाहुभ्यां समुद्र-तरणवदसम्भवं नास्ति, चिरमन्यैर्बहुभिस्तीर्थङ्करगणधरैः समाराधितत्वादिति दर्शयितुमाह-‘एवम्’ इत्यादि। एवम्=उक्तविधिना तेषाम्=अचलेतया तृणस्पर्शादिकमधिसहमानानां महावीराणां=कर्मविदारणशूराणां चिररात्रं=प्रभूतकालं यावज्जीवमित्यर्थः, तदेव स्पष्टीकरोति-पूर्वाणि वर्षाणि च रीयमाणानां=संयममार्गे गच्छतां,

કયા કહા જાય? જિનકલ્પી હો, અથવા પઢિમાધારી હો, કદાચિત્ વહ યદિ અપને કલ્પસે છહ માસ તક મી ભિક્ષા નહીં પાતા હૈ તો મી સમતા-ભાવકા અવલમ્બન કર વિચારતા હૈ કિ યે સમસ્ત મુનિજન શાસ્ત્રવિધિ કે અનુસાર અપને ૨ કર્મોંકે ક્ષપણ કરનેકે લિયે પ્રવૃત્ત હૈ, ધૈર્ય, સંહનન, બલકી સ્થિરતા આદિ કારણકે વશસે વિસદ્દશ કલ્પવાલે હોતે હુએ મી જિન મગવાનકી આજ્ઞામેં હી પ્રવૃત્તિ કર રહે હૈ। યહ વાત હાથોસે સમુદ્ર કો પાર કરને જૈસી અસંભવ નહીં હૈ। ક્યોં કિ યહ સમ્યક્ત્વરૂપ માર્ગ ચિરકાલ તક અનેક તીર્થઙ્કરોં એવં ગણધરોંને પાલા હૈ। ઇસી વાતકો દિલ્લેલનેકે લિયે સૂત્રકારને “એવં તેષાં મહાવીરાણાં ચિરરાત્રં પૂર્વાણિ વર્ષાણિ રીયમાણાનાં દ્રવિકાણાં પદ્ય અધ્યાસિતમ્” ઇસ સૂત્રાંશકો કહા હૈ। ઇસમેં વે યહ બતલાતે હૈં કિ તીર્થઙ્કરાદિકોંને મી ઉક્ત વિધિકે અનુસાર હી અચેલ અવસ્થામેં રહતે હુએ તૃણસ્પર્શાદિ પરીષહોંકો સહન કિયા હૈ, ઓર ઇસીસે વે કર્મરૂપી શત્રુઓંકે ક્ષય કરનેમેં શૂરવીર બને હૈં, તથા ઉનકે જીવનકા પૂર્વ ઓર વર્ષરૂપ સમય સંયમમાર્ગકી આરાધના

સાધુઓ કદાચ પોતાના કલ્પથી છ મહિના સુધી ભિક્ષા ન મેળવે તો પણ સમતાભાવનું અવલંબન કરી વિચારે છે કે આ બધા મુનિજન શાસ્ત્રવિધિના અનુસાર પોતપોતાના કર્મોના ક્ષપણ કરવા માટે પ્રવૃત્ત છે. ધૈર્ય, સંહનન, બળની સ્થિરતા આદિ કારણના વશથી વિભિન્ન કલ્પવાળા હોવા છતાં જન ભગવાનની આજ્ઞામાં જ પ્રવૃત્તિ કરે છે આ વાત હાથથી સમુદ્રને પાર કરવા જેવી અસંભવ નથી; કેમ કે સમ્યક્ત્વરૂપ માર્ગ ચિરકાળ સુધી અનેક તીર્થકરો અને ગણધરોએ પાળેલ છે. આ વાતને પ્રદર્શિત કરવા માટે સૂત્રકાર “એવં તેષાં મહાવીરાણાં” ઇત્યાદિ સૂત્રાંશને કહેલ છે. આમાં તેઓ એ બતાવે છે કે તીર્થકર આદિએ પણ ઉક્તવિધિ અનુસાર જ અચેલ અવસ્થામાં રહેતાં તૃણસ્પર્શાદિ પરીષદને સહન કરેલ છે, અને એથી તેઓ કર્મરૂપી શત્રુઓનો ક્ષય કરવામાં શૂરવીર બન્યા છે. તથા એમનાં જીવનનાં પૂર્વ અને વર્ષરૂપ સમય સંયમમાર્ગની આરાધના કરવામાં જ વ્યતીત થયેલ છે. અહિં પૂર્વનું પ્રમાણ



તત્ર પૂર્વ વર્ષાણાં સમ્પતિઃ કોટિલક્ષાઃ ષટ્પન્નાશચ્ચ કોટિસહસ્રાણિ, તત્ર ઋષભદેવાદા-  
રમ્ય શીતલનાથં દશમતીર્થદ્ધરં યાવત્ પૂર્વસંખ્યાયાઃ સદ્ભાવાત્ પૂર્વાણીત્યુક્તં, તતઃ  
શ્રેયાંસાદારમ્ય વર્ષસંખ્યાપ્રવૃત્તેર્વર્ષાણીત્યુક્તમિતિ । તથા દ્રવિકાણામ્=આત્માર્થિનામ્  
અધ્યાસિતમ્=અધિસોદમેતદ્-ઇતિ હે શિષ્ય ! પશ્ય=અવધારય । બહુભિર્મહાપુરુષૈઃ  
પૂર્વે દ્વાવિંશતિપરીપહસહનં કૃતં, તસ્માન્મોક્ષાર્થિભિસ્તૃણસ્પર્શાદયઃ પરીપહાઃ સમ્યક્  
સોદઘ્યા ઇતિ ભાવઃ ॥ સૂ. ૪ ॥

કરનેમેં હી વ્યતીત હુઆ હૈ । યહાં પર પૂર્વકા પ્રમાણ ટીકાકાર હસ પ્રકા-  
રસે વતલાતે હૈ-૮૪૦૦૦૦૦ લાખ વર્ષકા એક પૂર્વાજ્ઞ હોતા હૈ ઓર  
૮૪૦૦૦૦૦ લાખ પૂર્વાજ્ઞકા એક પૂર્વ હોતા હૈ । એક પૂર્વમેં ૭૦ લાખ  
કરોડ ઓર ૫૬ હજાર કરોડ વર્ષ હોતે હૈ । ઋષભદેવસે લેકર શીતલનાથ  
જો દશવેં તીર્થદ્ધર હૈં ડન તક સંયમકા કાલ તો પૂર્વ તકકા રહા હૈ ।  
ડસકે વાદકે તીર્થદ્ધર શ્રેયાંસનાથસે લેકર મહાવીર પર્યન્ત તીર્થદ્ધરોંકા  
સંયમ સમય પૂર્વકે પ્રમાણમેં ન રહ કર વર્ષોંકે પ્રમાણમેં આ જાતા  
હૈ; હસલિયે “વર્ષાણિ” એસા સૂત્રકારને કહા હૈ । દ્રવિક-આત્માર્થિયોંકા  
જીવનકાલ ખી હસી પ્રકારસે સંયમમાર્ગમેં વ્યતીત હુઆ હૈ, હે શિષ્ય !  
તુમ અપને ચિત્તમેં એસી શ્રદ્ધા રખો । ભાવાર્થ—પૂર્વમેં અનેક મહાપુરુ-  
ષોંને ૨૨ પરીપહોંકો સહન કિયા હૈ; અતઃ મોક્ષાભિલાષી તૃણસ્પર્શા-  
દિક પરીપહોંકો અચ્છી તરહસે સહન કરે ॥ સૂ. ૪ ॥

ટીકાકાર આ પ્રકારે બતાવે છે-૮૪ લાખ વર્ષનું એક પૂર્વાજ્ઞ થાય છે, અને ૮૪  
લાખ પૂર્વાજ્ઞનું એક પૂર્વ થાય છે, એક પૂર્વમાં સીત્તેર લાખ કરોડ અને  
છપ્પન હજાર કરોડ ( ૭૦૫૬૦૦૦૦૦૦૦૦૦૦ ) વર્ષ હોય છે. ઋષભદેવથી લઈ  
શીતલનાથ જે દસમા તીર્થંકર છે એમના સુધી સંયમનો કાળ તો પૂર્વ તકનો  
રહ્યો છે. એમના પછી તીર્થંકર શ્રેયાંસનાથથી લઈને મહાવીર પર્યન્ત તીર્થંકરોનો  
સંયમસમય પૂર્વના પ્રમાણમાં ન રહેતાં વર્ષોના પ્રમાણમાં આવી ગયેલ છે. આ માટે  
“વર્ષાણિ” એવું સૂત્રકારે કહેલ છે. દ્રવિક-આત્માર્થીઓનો જીવનકાળ પણ આ  
પ્રકારના સંયમમાર્ગમાં વ્યતીત થયેલ છે, હે શિષ્ય ! તમે તમારા ચિત્તમાં  
એવી શ્રદ્ધા રાખો.

ભાવાર્થ—પૂર્વમાં અનેક મહાપુરુષોએ ૨૨ પરિપહોને સહન કર્યા છે. આ  
માટે જે મોક્ષના અભિલાષી છે એનું કર્તવ્ય છે કે તેઓ તૃણસ્પર્શાદિક પરિ-  
પહોને સારી રીતે સહન કરે. (સૂ. ૪)



પરીષદોપસર્ગસહનશીલાનાં યદ્ભવતિ, તદાહ—‘આગયપન્નાણાણં’ ઇત્યાદિ।

મૂલમ્—આગયપન્નાણાણં કિસા બાહા ભવંતિ, પયણુણ મંસ-  
સોણિણ । વિસ્સેણિં કટ્ટુ પરિણાણ, એસ તિન્ને મુત્તે વિરણ  
વિયાહિણ ત્તિવેમિ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

છાયા—આગતપ્રજ્ઞાનાનાં કૃશા વાહવો ભવન્તિ, પ્રતનુકં માંસશોણિતમ્ ।  
વિથ્રેણિં કૃત્વા પરિજ્ઞયા, એષ તીર્ણઃ મુક્તઃ વિરતઃ વ્યાખ્યાતઃ—ઈતિ બ્રવીમિ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

ટીકા—આગતપ્રજ્ઞાનાનાં=લબ્ધસમ્યગ્જ્ઞાનાનાં વાહવઃ=મુજાઃ કૃશા ભવન્તિ,  
તપસા પરીષદાધિસહનેન ચ ગાત્રાણિ કૃશત્વમાપદ્યન્ત ઇત્યર્થઃ । યદ્વા—‘વાધા’  
ઈતિજ્ઞાયા, તત્ર વાધાઃ=પરીષદજનિતા પીડાઃ કૃશા ભવન્તિ=પ્રતનુત્વમાપદ્યન્તે ।  
કર્મક્ષપણાર્થં પ્રયતમાનાઃ સાધવઃ “મમૈતે શરીરમાત્રપીડાકરાઃ પરીષદોપસર્ગાઃ  
સહાયકા એવે”તિ મન્યમાનાઃ શરીરપીડાં ન પશ્યન્તીતિ ભાવઃ । અતઃ માંસશોણિતં

પરીષદ્દ્ધ ઓર ઉપસર્ગોંકો સહન કરનેકા જિનકા સ્વભાવ હૈ એસે  
મહામુનિયોં કો જો લાભ હોતા હૈ ઉસે સૂત્રકાર કહતે હૈ “આગય-  
પન્નાણાણં ” ઇત્યાદિ ।

જિનહૈં સમ્યગ્જ્ઞાનકી પ્રાપ્તિ હો ચુકી હૈ એસે મહામુનિયોંકી મુજાઈ  
કૃશ હો જાતી હૈ, અર્થાત્—તપ ઓર પરીષદોંકે સહનેસે ઉનકે શરીર કૃશ  
જાતે હૈ । “વાહા ” શબ્દકી છાયા “વાધા ” મી હૈ—જિસકા અર્થ હૈ  
કિ સમ્યગ્જ્ઞાની મુનિયોંકી પરીષદજન્ય વાધાઈ કૃશ હો જાતી હૈ—અત્યંત  
અલ્પ રહ જાતી હૈ ।

ભાવાર્થ—કર્મોંકો નાશ કરનેકે લિયે પ્રયત્નશીલ સાધુ પરીષદા-  
દિકોંકે આને પર યહ વિચાર કરતે હૈ કિ યે પરીષદ્દ્ધ ઓર ઉપસર્ગ મેરે  
શરીરમાત્રકો હી પીડા દેનેવાલે હૈ, સંયમકા કુછ મી યે વિગાડ નહીં કર  
સકતે હૈ, પ્રત્યુત ઉસમૈં સહાયક હી હૈ । ઇસ પ્રકાર માનકર વે મહા-

આ પરિષદ્દ્ધ અને ઉપસર્ગોં સહન કરવાનો જેમનો સ્વભાવ છે એવા  
મહામુનિયોંને જે લાભ થાય છે એને સૂત્રકાર કહે છે. “આગયપન્નાણાણં” ઇત્યાદિ.

જેને સમ્યગ્જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થઈ ચુકી છે એવા મહામુનિયોંની બુદ્ધિઓ કૃશ  
થઈ જાય છે, અર્થાત્—તપ અને પરિષદ્દ્ધ સહન કરવાથી એમનું શરીર કૃશ થઈ જાય  
છે, “વાહા ” શબ્દની છાયા “વાધા ” પણ છે. જેનો અર્થ એ છે કે સમ્યગ્જ્ઞાની  
મુનિયોંની પરિષદ્દ્ધજન્ય વાધાઓ કૃશ થઈ જાય છે—અત્યંત અલ્પ થઈ જાય છે.

ભાવાર્થ—કર્મોંનો નાશ કરવા માટે પ્રયત્નશીલ સાધુ પરિષદ્દ્ધ વગેરેના  
આવવાથી એ વિચાર કરે છે કે એ પરિષદ્દ્ધ અને ઉપસર્ગ મારા શરીર માત્રને જ  
પીડા આપનાર છે. સંયમનો એ કાંઈ પણ બગાડ કરી શકનાર નથી; પરંતુ એમાં

=પરીષહાદિસહનશીલાનાં શરીરસ્થં માંસરુધિરં પ્રતનુકં=શુષ્કં સત્ સ્વલ્પતરં ભવતિ ।  
રુક્ષાહારત્વાદલ્પાહારત્વાત્ પરીષહાદિસહનાચ્ચ અલ્પવસ્ત્રતયા તૃણસ્પર્શશીતસ્પર્શ-  
દિભિઃ શરીરસ્ય રસશોષણાચ્ચ મોક્ષાર્થિનાં માંસશોણિતં શુષ્કં ભવતીતિ ભાવઃ ।

તથા-પરિજ્ઞયા=સમભાવનયા જિનકલ્પિકઃ સ્થવિરકલ્પિકો વા વિકૃષ્ટાવિકૃ-  
ષ્ટતપશ્ચરણશીલઃ પ્રત્યહંભોજી વા સર્વેઽપ્યેતે ભગવદાજ્ઞાવર્તિન એવ-ઇત્યેવંરૂપયા  
વિશ્રેણિં કૃત્વા=રાગદ્વેષકષાયસંતતિરૂપાં સંસારાવતારણિકાં સંસારશ્રેણિં સમત્વભાવ-  
નયા ક્ષાન્ત્યાદિમિશ્ર ત્રોટિતાં કૃત્વા વર્તત ઇત્યર્થઃ । એષઃ=ઉક્તલક્ષણઃ સાધુઃ,  
મુનિ હોતી હુઈ શારીરિક પીડાકી તરફ લક્ષ્ય નહીં દેતે હૈં । પરીષહ આદિ  
કો શાંતિભાવસે સહનેવાલે સાધુઓંકે શરીરકા માંસ ઓર રુધિર  
શુષ્ક હો જાતા હૈ-વે શરીરસે દુબલે પતલે હો જાતે હૈં-રુધિર ઓર માંસ  
उनके शरीरमें बहुत कम रह जाता है । कारण कि अन्तप्रान्त और अल्प  
आहारसे, परीषह आदिके सहनेसे और थोड़े वस्त्र रखनेके कारणसे  
तृणस्पर्शादिकोंके द्वारा होनेवाली अनेक परीषहोंसे उनके शरीरका  
मांस और शोणित सूख जाता है ।

સમભાવનાસે યુક્ત જિનકલ્પી હો યા સ્થવિરકલ્પી હો, વિકૃષ્ટ  
(કઠિન) તપ તપનેવાલા હો, યા અવિકૃષ્ટ (સાધારણ) તપ તપનેવાલા  
હો, યા પ્રતિદિન આહાર કરનેવાલા હો, યે સબ ભગવાનકી આજ્ઞાનુસાર  
હી ચલનેવાલે હૈં । ઇસ રૂપસે જો રાગ, દ્વેષ ઓર કષાયકી પરંપરારૂપ  
સંસારશ્રેણી કો સમભાવસે એવં ક્ષાન્ત્યાદિ ધર્મકે આરાધનસે તોડ દેતે

એ સહાયક જ છે. આ પ્રકારે માની એ મહામુનિ પોતાને થતી શારીરિક  
પીડાની તરફ લક્ષ આપતા નથી. પરિષદ આદિને શાન્તિપૂર્વક સહન કરવાવાળા  
સાધુઓના શરીરનું માંસ અને લોહી સૂકાઈ જાય છે અને શરીરથી તેઓ દુબળા  
પાતળા બની જાય છે. લોહી અને માંસ એમના શરીરમાં નામમાત્રનાં રહે છે;  
કારણ કે અન્તપ્રાન્ત અને અલ્પ આહારથી, પરિષદ આદિના સહેવાથી અને થોડાં  
વસ્ત્ર રાખવાના કારણથી, તૃણસ્પર્શાદિકદ્વારા બનતા અનેક પરિષદોથી તેના  
શરીરનું માંસ અને લોહી સૂકાઈ જાય છે.

સમભાવનાથી યુક્ત જનકલ્પી હોય અથવા તો સ્થવિરકલ્પી હોય; વિકૃષ્ટ-  
કઠિન તપ તપવાવાળા હોય, અથવા-અવિકૃષ્ટ-સાધારણ તપ તપવાવાળા હોય,  
અથવા પ્રતિદિન આહાર કરવાવાળા હોય, કેઈ પણ સાધુ હોય એ  
બધા ભગવાનની આજ્ઞા અનુસાર જ ચાલવાવાળા છે. અને આ રૂપથી જ  
રાગ, દ્વેષ અને કષાયની પરંપરારૂપ સંસારશ્રેણીને સમભાવથી એટલે ક્ષાન્ત્યાદિ



તીર્ણઃ=મવાઘ્નેઃ પારંગતઃ, મુક્તઃ=સર્વસંગરહિતઃ, વિરતઃ=સર્વસાવચવ્યાપારરહિતઃ  
વ્યાખ્યાતઃ=તીર્થઙ્કરૈઃ કથિતઃ । इति ब्रवीमि, भगवता यथोपदिष्टं तथेदं  
कथयामीत्यर्थः ॥ सू० ५ ॥

સંસારશ્રેણિ સંત્રોટચ વર્તમાનમરતિરભિભવતીત્યાહ-‘વિરયં’ इत्यादि ।

મૂલ્કમ્-વિરયં મિશ્રયું રીયંતં ચિરરાઓસિયં અરઈ તત્થ કિં  
વિધારણ? ॥ સૂ० ૬ ॥

છાયા-વિરતં મિશ્રું રીયમાણં ચિરરાત્રોષિતમ્ અરતિસ્તત્ર કિં વિધારયેત્ ॥ સૂ० ૬ ॥

ટીકા-વિરતમ્=અસંયમતો નિવૃત્તં રીયમાણમ્=ઉત્તરોત્તરપ્રવર્ધમાનશુભા-  
ધ્યવસાયેષુ પ્રવર્તમાનં ચિરરાત્રોષિતં=પ્રભૂતકાલં સંયમાવસ્થિતં મિશ્રું=નિરવધમિ-  
ક્ષાજીવિનં મુનિમ્ અરતિઃ=સંયમોદ્વેગઃ તત્ર=સંયમે કિં વિધારયેત્=કિં પ્રતિસ્વલયેત્?

हैं, वही पूर्वोक्तलक्षणसंपन्न साधु संसारसमुद्रसे पार हो जाते हैं और  
सर्वसंगसे रहित हो सर्वसावद्यव्यापाररहित हो जाते हैं-ऐसा तीर्थङ्कर  
प्रभुका कहना है। “इति ब्रवीमि” यह कथन मेरा नहीं है, किन्तु प्रभुका  
है। हे जम्बू ! उन्होंने जैसा कहा है वैसा ही मैं कहता हूँ ॥ सू० ५ ॥

સંસારપરમ્પરાકો ઉચ્છેદ કરકે રહે હુણ સાધુકો અરતિભાવ કદા-  
ચિત્ પરાસ્ત કર સકતા હૈ ! હસે પ્રકટ કરનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે  
હૈ “વિરયં” इत्यादि—

અસંયમ ભાવસે દૂર રહનેવાલે, ઔર ઉત્તરોત્તર વઢતે હુણ શુભ  
અધ્યવસાયોમૈં પ્રવૃત્તિ કરનેવાલે, તથા બહુત કાલ તક સંયમકી આરા-  
ધના કરતે ૨ ડસીમૈં અપને જીવનકે સમયકો વ્યતીત કરનેવાલે એસે  
નિરવધ મિક્ષાજીવી મુનિકો સંયમમૈં ઉદ્વેગરૂપ અરતિભાવ ડસસે સ્વ-

ધર્મના આરાધનથી તોડી દે છે; એવા પૂર્વોક્તલક્ષણસંપન્ન સાધુ સંસારસમુદ્રથી  
પાર થઈ જાય છે, અને સર્વસંગથી રહિત બની સર્વસાવચવ્યાપારરહિત બની  
જાય છે; એવું તીર્થંકર પ્રભુનું કહેવું છે. “इति ब्रवीमि”—આ કથન મારું નથી,  
પરંતુ પ્રભુનું છે. હે જમ્બૂ ! એમણે જેમ કહ્યું છે તેવી જ રીતે હું કહું છું. (સૂ० ૫)

સંસારપરંપરાનો ઉચ્છેદ કરીને રહેલા સાધુઓને અરતિભાવ કદાચ પરાસ્ત  
કરી શકે છે ! અને પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે “વિરયં” इत्यादि.

અસંયમભાવથી દૂર રહેવાવાળા અને ઉત્તરોત્તર વધતા જતા શુભ અધ્ય-  
વસાયોમાં પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા તથા ઘણા કાળ સુધી સંયમની આરાધના કરતાં  
કરતાં એમાં જ પોતાના જીવનનો સમય વ્યતીત કરવાવાળા એવા નિરવધ  
લિક્ષાજીવી મુનિને સંયમમાં ઉદ્વેગરૂપ અરતિભાવ અટકાવી શકે ખરો કે ?



અત્ર કિં શબ્દઃ પ્રશ્ને; તથાભૂતમપિ મોક્ષમાર્ગારૂઢં કિમરતિર્વિષયસ્થાનં નીત્વા સ્વલયેત્? સ્વલયેદિત્યુચ્યતે । ઇન્દ્રિયાણિ દુર્વારાણિ અવિનયવન્તિ ચ, મોહશક્તિશ્ચાચિન્ત્યા, તથા-કર્મપરિણતિરપિ વિચિત્રા, તર્હિ કિં ન કુર્યાત્? અપિ તુ સર્વં કુર્યાદિતિ ભાવઃ ।

યદ્વા-કિં શબ્દોઽત્ર ક્ષેપાર્થે । અરતિસ્તથાભૂતં મોક્ષમાર્ગાવસ્થિતં વિધારયેત્=પ્રતિસ્વલયેત્ કિમ્? નૈવ વિધારયેદિત્યર્થઃ ॥ સૂ૦ ૬ ॥

કિંચ—‘સંધેમાણે’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ—સંધેમાણે સમુદ્દિષ્ટ, જહા સે દીવે અસંદીણે । સૂ૦ ૭ ।

છાયા—સંદધાનઃ સમુત્થિતઃ; યથા સ દ્વીપઃ અસંદીનઃ ॥ સૂ૦ ૭ ॥

લિત કર સકતા હૈ કયા ? યહાં “કિં” યહ શબ્દ પ્રશ્નવાચક હૈ ।

ઉત્તર—હાં ! એસે મી ઉસ મોક્ષમાર્ગ મેં આરૂઢ હુએ મુનિકો અરતિ-ભાવ વિષયોંકી ઓર લે જાકર સ્વલિત કર સકતા હૈ । કયોં કિ ઇન્દ્રિયાં દુર્નિવાર હૈ, મોહકી શક્તિ અચિન્ત્ય હૈ તથા કર્મકી પરિણતિ મી વિચિત્ર હૈ । ઇનકી પ્રબલતા કયા નહીં કર સકતી ? સબ કુછ કર સકતી હૈ ।

અથવા—“કિં” શબ્દ યહાં ક્ષેપ અર્થમેં હૈ; ઇસકા મતલબ હૈ કિ યદિ કોઈ હમસે યહ પૂછે કિ કયા એસે મોક્ષમાર્ગમેં સ્થિત સાધુકો મી અરતિભાવ સંયમમાર્ગસે વ્યુત કર સકતા હૈ ? તો હમ યહ ઉત્તર દેગેં કિ નહીં કર સકતા હૈ ॥ સૂ૦ ૬ ॥

તથા—“સંધેમાણે” ઇત્યાદિ—

અહિં “કિં” આ શબ્દ પ્રશ્નવાચક છે.

ઉત્તર:—હા, એવા મોક્ષમાર્ગમાં આરૂઢ થયેલા મુનિને પણ અરતિભાવ વિષયોની તરફ લઇ જઇ સ્વલિત કરી શકે છે; કેમ કે ઇન્દ્રિયોની અનેકવિધ મોહવાળી શક્તિ અચિન્ત્ય છે તથા કર્મની પરિણતિ પણ વિચિત્ર છે. એની પ્રબળતા શું નથી કરી શકતી ? બધું કરી શકે છે.

અથવા—“કિં” શબ્દ અહિં ક્ષેપ અર્થમાં છે. આનો મતલબ એ છે કે કદાચ કોઇ એમ પૂછે કે શું આવા મોક્ષમાર્ગમાં સ્થિત સાધુને પણ અરતિભાવ સંયમ માર્ગથી વ્યુત કરી શકે છે ? તો એનો આ ઉત્તર છે કે કરી શકતો નથી. (સૂ૦ ૬)

“સંધેમાણે” ઇત્યાદિ—



मूलम्—एवं से धम्मं आरियपदेसिए ॥ सू० ८ ॥

छाया—एवं स धर्मः आर्यप्रदेशितः ॥ सू० ८ ॥

टीका—स प्रागुक्तः आर्यप्रदेशितः=तीर्थङ्करभाषितः धर्मः एवम्=ईदृशो द्वीप-  
तुल्योऽस्तीत्यर्थः । भगवद्भाषितो धर्मः खलु जलेनासंदीनद्वीपवत् अस्या कुत-  
केण च कदाचिदपि न बाध्यत इति भावः ॥ सू० ८ ॥

ननु तथाविधा भगवद्भाषितधर्मस्य समाराधकाः कथंभूता भवन्तीति शिष्य-  
जिज्ञासायामाह—‘ते अणवकंखमाणा’ इत्यादि ।

समुद्रसे पार होनेकी भावनावाले भव्य भी उन मुनिका विश्वास करते हैं ।

भावार्थ—यथाख्यात चारित्रकी ओर ले जानेवाली प्रशस्त परिणाम-  
धारा जिसके उत्तरोत्तर अधिकाधिक रूपमें बढ़ रही है ऐसे मुनिके लिये  
एक तो परीषद् उपसर्गादिक आते नहीं हैं, यदि कदाचित् आ भी जाते हैं  
तो वे मुनि उनसे जलके प्लाव (उपद्रव)से असंदीन द्वीपकी तरह सदा  
सुरक्षित रहते हैं और अन्य प्राणियोंके लिये आधारभूत होते हैं ॥सू०७॥

जिस प्रकार पूर्वाक्त स्वरूपवाला साधु अरति आदि बाधाओंसे  
बाधित नहीं होते उसी प्रकार जिनेन्द्रप्रतिपादित वह धर्म भी अरति  
या कुतर्कोंसे कभी भी बाधित या खण्डित नहीं होता है । यह धर्म भी  
असंदीन द्वीपकी तरह ही है । वह जिस प्रकार जलप्लावसे निर्बाध रहता  
है—उसी प्रकार धर्म भी कुतर्कोंसे या अरति आदि दुर्भावोंसे अबाध्य  
रहता है ॥सू०८॥

भगवत्कथित धर्मके समाराधक जीव कैसे होते हैं? इस प्रकार  
शिष्यकी जिज्ञासाका “ते अणवकंखमाणा” इत्यादि सूत्रसे सूत्रकार

भावार्थ—यथाख्यात चारित्रकी तरङ्ग दोरवावाणी प्रशस्त परिणामधारा नेने  
उत्तरोत्तर अधिक-अधिक-इपमां वधी रही छे, ओवा मुनिने माटे ओ के परिषद् उप-  
सर्गादिक आवतां नथी, अने कदाच आवी नय तो पण ओ मुनि ओनाथी नगणा  
उपद्रवथी सुरक्षित द्वीपनी भाइक, सदा सुरक्षित रहे छे, अने अन्य प्राणियो  
माटे आधारभूत रहे छे. ( सू०७ )

ने प्रकारे पूर्वोक्तस्वइपवाणा साधु अरति आदि बाधाओथी बाधित  
नथी थता, ओन प्रकारे जनेन्द्रप्रतिपादित धर्म पण अरति अने कुतर्कोथी कही  
पण बाधित अने षडित थतो नथी. आ धर्म पण सुरक्षित द्वीपनी भाइक छे.  
ओ नेम नगणा उपद्रवथी सुरक्षित रहे छे ते प्रकारे धर्म पण कुतर्कोथी अने  
अरति आदि दुर्भावोथी सुरक्षित रहे छे. (सू०८)

भगवत्कथित धर्मनो आराधक जेव केवो डोय छे? आ प्रकारनी शिष्यनी



મૂલમ્—તે અળવકંઠમાણા પાળે અળઙ્વાણમાણા દૃઢયા  
મેહાવિણો પંડિયા ॥ સૂ૦ ૯ ॥

છાયા—તે અનવકાઙ્ક્ષન્તઃ પ્રાણાન્ અનતિપાતયન્તઃ દયિતાઃ મેધાવિનઃ  
પંડિતાઃ ॥ સૂ૦ ૯ ॥

ટીકા—યતરતે મુનયઃ અનવકાઙ્ક્ષન્તઃ=વિષયભોગાનનભિવાઙ્ક્ષન્તઃ તથા—  
પ્રાણાન્=પ્રાણિનઃ, અનતિપાતયન્તઃ=અર્હિસન્તઃ, इदं શેષમહાવ્રતાનામુપલક્ષણમ્—તેન  
શેષાણ્યપિ મહાવ્રતાનિ ધારયન્ત ઇત્યર્થઃ, તથા—દયિતાઃ=સકલપ્રાણિનાં શુભચિન્ત-  
કત્વાત્ સર્વલોકપ્રિયા ઇત્યર્થઃ, તથા—મેધાવિનઃ—સાધુમર્યાદાવ્યવસ્થિતાઃ, પંડિતાઃ=  
સર્વસાવચ્ચવ્યાપારપરિહારેણ હેયોપાદેયજ્ઞાનવન્તો ભવન્તીત્યર્થઃ ॥ સૂ૦ ૯ ॥

યે તુ હેયોપાદેયજ્ઞાનાભાવાદ્ભગવદ્ધર્મે સમુત્થિતા ન સન્તિ, તાન્ પ્રતિ યદાચા-  
ર્યાદીનાં કર્તવ્યં તદાહ—‘એવં તેસિં’ ઇત્યાદિ ।

સમાધાન કરતે હૈં—

ભગવત્પ્રતિપાદિત ધર્મકે સમારાધક જીવ વિષયભોગોંકી વાંછાસે  
રહિત હોતે હૈં, પ્રાણિયોંકી હિંસા નહીં કરતે હૈં । ઉપલક્ષણસે અવશિષ્ટ  
મહાવ્રતોંકે ધારક હોતે હૈં । સમસ્ત જગતકે કલ્યાણકે અભિલાષી હોને  
સે વે જગત્પ્રિય હોતે હૈં । સાધુમર્યાદામૈં રહતે હૈં ઓર સમસ્ત સાવચ્ચ  
વ્યાપારોંકે ત્યાગી હોનેસે હેય ઓર ઉપાદેયકે વિવેકસે વાસિત અન્તઃક-  
રણવાલે હોતે હૈં ॥સૂ૦૯॥

જો હેય ઓર ઉપાદેયકે વિવેકકે અભાવસે ભગવત્પ્રતિપાદિત ધર્મ  
મૈં સમુત્થિત નહીં હૈં—ઉસમૈં અનુસાહી હૈં, ઉનકે પ્રતિ આચાર્યોંકા કયા  
કર્તવ્ય હોના ચાહિયે ? ઇસ બાતકો સૂત્રકાર “એવં તેસિં” ઇત્યાદિ સૂત્ર-  
દ્વારા પ્રકટ કરતે હૈં—

જ્ઞાસાનું “તે અળવકંઠમાણા” ઇત્યાદિ સૂત્રથી સૂત્રકાર સમાધાન કરે છે.

ભગવત્-પ્રતિપાદિત ધર્મના આરાધક જીવ વિષયભોગોની વાંછનાથી રહિત  
હોય છે. પ્રાણીઓની હિંસા કરતા નથી. ઉપલક્ષણથી અવશિષ્ટ મહાવ્રતોનો  
ધારક હોય છે. સમસ્ત જગતના કલ્યાણના અભિલાષી હોવાથી એ જગતપ્રિય  
હોય છે. સાધુમર્યાદામાં રહે છે. અને સમસ્ત સાવચ્ચ વ્યાપારોના ત્યાગી હોવાથી  
હેય અને ઉપાદેયના વિવેકથી ભરપૂર અન્તઃકરણવાળા હોય છે. (સૂ૦૯)

એ હેય અને ઉપાદેયના વિવેકના અભાવથી ભગવત્-પ્રતિપાદિત ધર્મમાં  
સ્થિર નથી—ઉત્સાહી નથી, એમના તરફ આચાર્યોનું શું કર્તવ્ય છે ? એ વાતને  
સૂત્રકાર “એવં તેસિં” ઇત્યાદિ સૂત્રદ્વારા પ્રકટ કરે છે.

મૂલમ્—એવં તેસિં ભગવઓ અણુદ્વાણે જહા સે દિયપોણે। એવં તે સિસ્સા દિયા ય રાઓ ય અણુપુઠ્ઠવેણ વાઙ્યત્તિવેમિ॥સૂ૦૧૦॥

છાયા—એવં તેષાં ભગવતોઽનુત્થાને યથા સ દ્વિજપોતઃ । એવં તે શિષ્યા દિવા ચ રાત્રૌ ચ અનુપૂર્વેણ વાચિતાઃ, ઇતિ બ્રવીમિ ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

ટીકા—ભગવતઃ શ્રીવર્ધમાનસ્વામિનો ધર્મે એવં=પૂર્વોક્તરીત્યા તેષાં=તથાભૂત-જ્ઞાનાભાવેન ભગવદ્ધર્મસમારાધનાનુત્સાહવતાં શિષ્યાણામ્ અનુત્થાને=ઉત્તરોત્તરમધિકાધિકપ્રશસ્તપરિણામધારાનારોહણે સતિ આચાર્યાદિભિઃ સદુપદેશદાનેન બુદ્ધિવૈશદ્યં વિધેયમિત્યર્થઃ । અત્ર દૃષ્ટાન્તમાહ—‘ યથા સઃ ’ ઇત્યાદિ,

યથા સઃ=પ્રસિદ્ધઃ દ્વિજપોતઃ=પશ્ચિશાવકઃ માતાપિતૃભ્યામનુપાલ્યતે, એવં તે શિષ્યા આચાર્યેણ દિવા ચ રાત્રૌ ચ અનુપૂર્વેણ=ક્રમેણ વાચિતાઃ=સામાયિકાદી-ન્યેકાદશાઙ્ગાનિ ચ પાઠિતાઃ સકલપરીષદોપસર્ગસહિષ્ણવઃ સંસારસાગરોત્તરણસમર્થાશ્ચ ભવન્તીત્યર્થઃ । ઇતિ બ્રવીમિ । અસ્ય વ્યાખ્યા પ્રાગ્વત્ ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

॥ ષષ્ઠાધ્યયનસ્ય તૃતીયોદ્દેશઃ સમાપ્તઃ ॥ ૬-૩ ॥

ભગવાન્ શ્રી વર્ધમાનસ્વામીકે ધર્મમેં હસ પ્રકાર પૂર્વોક્ત રીતિસે યદિ શિષ્યજન હેયોપાદેય જ્ઞાનસે વિકલ હોનેકે કારણ, ભગવાન્ દ્વારા ઉપદિષ્ટ ધર્મકી આરાધના કરનેમેં અનુત્સાહી હોં તો, આચાર્યોંકા કર્તવ્ય હૈ કિ વે ઉન્હેં સદુપદેશ પ્રદાન કરેં, જિસસે ઉન્કી બુદ્ધિમેં વિશદતા આવે । દૃષ્ટાન્ત—જૈસે પશ્ચિયુગલ અપને બચ્ચોંકો પાલતા હૈ, ઉન્હેં ચલના—ફિરના સિખલાતા હૈ ઉસી પ્રકાર વે શિષ્ય મી આચાર્યદ્વારા રાત દિન ક્રમ ૨ સે સામાયિક આદિકે તથા ગ્યારહ અંગોંકે પાઠી બનાવે જાતે હૈં, તાકિ વે સકલ પરીષદ્દાં ઓર ઉપસર્ગોંકો જીતનેમેં સહનશીલ બન સંસારસાગરસે પાર હોનેમેં શક્તિસમ્પન્ન બન સકેં । “ઇતિ બ્રવીમિ ” હન પદોંકી વ્યાખ્યા પહિલે જૈસી જાનની ચાહિયે ।

ભગવાન્ શ્રી વર્ધમાનસ્વામીના ધર્મમાં આ પ્રકારે પૂર્વોક્ત રીતથી કહાય શિષ્યજન—હેય ઉપાદેયના જ્ઞાનથી વિકળ હોવાના કારણે ભગવાન્દ્વારા ઉપદિષ્ટ—ઉપદેશોલ ધર્મની આરાધના કરવામાં અનુત્સાહી હોય તો આચાર્યનું કર્તવ્ય છે કે તેઓ તેને સદ્ ઉપદેશ પ્રદાન કરે. જેનાથી તેની બુદ્ધિમાં વિશદતા આવે. દૃષ્ટાન્ત—જેમ એક પક્ષીબેડું પોતાના બચ્ચાંને પોષે છે, તેને ચાલતાં ફરતાં શીખવાડે છે, એવી જ રીતે તે શિષ્ય પણ આચાર્યદ્વારા રાતદિવસ ક્રમ ક્રમથી સામાયિક આદિના અને અગ્યાર ૧૧ અંગોના પાઠી બનાવવામાં આવે છે. જેથી તે સકલ પરિષદ્દાં અને ઉપસર્ગોં છૂતવામાં સહનશીલ બની સંસારસાગરથી પાર થવામાં શક્તિસમ્પન્ન બની શકે. “ઇતિ બ્રવીમિ” આ પદોની વ્યાખ્યા પહેલાં જેવી બાણવી.

ભગવાનકે દ્વારા કથિત ધર્મમાં જો શિષ્યજન મન્દપરિણામી હોય-  
ઉત્સાહશીલ ન હોય તો, આચાર્યના કર્તવ્ય છે કે તેને તિરસ્કાર ન  
કર અને તેને આ ધર્મની આરાધના કરવામાં ચતુર બનાવે-અને શાસ્ત્રોના  
અભ્યાસ કરાવે। જેમ પક્ષી પોતાની બચ્ચોની સંભાળ રાખે છે તે પ્રકારે  
આચાર્ય પણ તેની દરેક પ્રકારથી સંભાળ રાખે છે અને ઉપદેશના વિવેકથી ભરપૂર મતિવાળા  
કરવાની ચેષ્ટા કરતા રહે, જેથી તે પરિષદ અને ઉપસર્ગો સહન કરવામાં અધીર ન બને,  
પરિષદ અને ઉપસર્ગોના સહનમાં અધીર ન બન કર સહનશીલ બને, અને  
હસ સંસાર સમુદ્રમાં પાર થઈ શકે ॥ સૂ. ૧૦ ॥

॥ છઠ્ઠા અધ્યયનના ત્રીજા ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૬-૩ ॥



ભગવાનદ્વારા કહેવાયેલા ધર્મમાં જે શિષ્યજન મન્દપરિણામી હોય-  
ઉત્સાહશીલ ન હોય તો, આચાર્યનું કર્તવ્ય છે કે તેને તિરસ્કાર ન કરતાં તેને  
આ ધર્મની આરાધના કરવામાં ચતુર બનાવે-તેને શાસ્ત્રોનો અભ્યાસ કરાવે. જેમ  
પક્ષી પોતાના બચ્ચાઓની સંભાળ રાખે છે તે પ્રકારે આચાર્ય પણ તેની દરેક  
પ્રકારથી સંભાળ રાખે છે અને ઉપદેશના વિવેકથી ભરપૂર મતિવાળા કરવાની  
ચેષ્ટા કરતા રહે, જેથી તે પરિષદ અને ઉપસર્ગો સહન કરવામાં અધીર ન બને.  
સહનશીલ બને, અને આ સંસાર સમુદ્રથી પાર થઈ શકે. ( સૂ. ૧૦ )

છઠ્ઠા અધ્યયનનો ત્રીજો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૬-૩ ॥





## ॥ अथ षष्ठाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देशः॥

इहानन्तरतृतीयोद्देशके उपकरणशरीरममत्वधूननं प्रतिबोधितम् । तच्च गौरव-  
त्रयवतः सम्पूर्णतया न भवत्यतस्तद्धूननार्थं चतुर्थोद्देशं कथयन्नाद्यं सूत्रमाह—‘ एवं  
ते सिस्सा ’ इत्यादि ।

मूलम्—एवं ते सिस्सा दिया य राओ य अणुपुव्वेण वा-  
इया तेहिं महावीरेहिं पण्णाणमंतेहिं, तेसिंतिण पण्णाणमुवल-  
ब्भ हिच्चा उवसमं फारुसियं समाइयंति ॥ सू० १ ॥

छाया—एवं ते शिष्या दिवा च रात्रौ च अनुपूर्वेण वाचिताः तैर्महावीरैः  
प्रज्ञानवद्भिः, तेषामन्तिके प्रज्ञानमुपलभ्य हित्वा उपशमं पारुषिकं समाददति ॥१॥

टीका—एवं=पक्षिणावकसंवर्धनक्रमेण ते शिष्याः दिवा रात्रौ च अनुपूर्वेण=  
क्रमेण यथा त्रिवर्षपर्याय आचाराङ्गादि अध्याप्यते, कक्षान्तरे केशसमुद्भवे सति ततः

## ॥ छट्ठा अध्ययनका चोथा उद्देशः ॥

इस अध्ययनके तृतीय उद्देशमें साधुको उपकरण और शरीरमें  
ममत्व नहीं रखना चाहिये, यह बात समझा दी गई है । इनमें ममत्व  
का त्याग, जो तीन गौरवोंसे युक्त है उसके संपूर्ण रीतिसे नहीं होता  
है । इसलिये उन गौरवोंके त्याग करानेके लिये इस चतुर्थ उद्देशको  
प्रारम्भ करते हुए सूत्रकार कहते हैं—“ एवं ते सिस्सा ” इत्यादि ।

जिस प्रकार पक्षी अपने बच्चोंका क्रमशः संवर्धन करते हैं, उसी  
प्रकार सम्यग्ज्ञानी तीर्थङ्कर और गणधरादिकोंके द्वारा भी आचाराङ्गादि

## छठा अध्ययनको चौथो उद्देश.

આ અધ્યયનના ત્રીજા ઉદ્દેશમાં સાધુએ ઉપકરણ તરફ મમત્વ રાખવું ન  
જોઈએ આ વાત સમજાવવામાં આવી છે. આ મમત્વનો ત્યાગ, જે ત્રણ ગૌરવથી  
ભરપૂર છે તેનાથી સારી રીતે થઈ શકતો નથી. માટે તે ત્રણ ગૌરવનો ત્યાગ  
કરાવવા માટે આ ચતુર્થ ઉદ્દેશનો પ્રારંભ કરતાં સૂત્રકાર કહે છે—“ एवं ते  
सिस्सा ” इत्यादि.

જે પ્રકારે પક્ષી પોતાના બચ્ચાને પાણી પોષીને મોટું કરે છે એ રીતે  
સમ્યગ્જ્ઞાની તીર્થંકર અને ગણધર આદિ દ્વારા પણ આચારાંગ સૂત્ર ઇત્યાદિ  
પાઠનકેમથી શિષ્યજન દિનરાત્ર બ્રહ્મશિક્ષા અને આસેવનશિક્ષા આ બંને

પૂર્વમપ્યધ્યાપ્યતે, -ઇત્યાદિક્રમેણ પ્રજ્ઞાનવદ્ધિઃ = સમ્યગ્જ્ઞાનવદ્ધિઃ તૈર્મહાવીરૈઃ તીર્થઙ્કરગણધરાદિભિઃ વાચિતાઃ = ગ્રહણાસેવનાશિક્ષાદ્વયેન શિક્ષિતાઃ, સૂત્રાર્થતદુભયાધ્યાપનરૂપાં ગ્રહણશિક્ષાં સાધુસામાચારીપાલનરૂપામાસેવનશિક્ષાં ચ ગ્રાહિતાઃ । તત્ર કેચન શિષ્યાઃ, તેષામ્ આચાર્યોદીનાં તીર્થઙ્કરાદીનામ્ અન્તિકે = સમીપે પ્રજ્ઞાનં = પ્રકૃષ્ટં જ્ઞાનં શ્રુતજ્ઞાનમ્ ઉપલભ્ય = સંપ્રાપ્ય જ્ઞાનગર્વાન્ધાઃ સન્તઃ ઉપશમં શાન્તિભાવં હિત્વા = પ્રબલ-મોહોદયાપનીતસદુપદેશસજ્ઞાતોત્કટમદત્ત્વેન ત્યક્ત્વા પારુષિકં = પારુષ્યં સમાદ-

સૂત્ર પાઠનક્રમસે શિષ્યજન દિન-રાત નિરન્તર ગ્રહણશિક્ષા ઓર આસેવનશિક્ષા ઇન દોનોં શિક્ષાઓસે શિક્ષિત કિયે જાતે હૈં । શિષ્યકી દીક્ષાપર્યાય જબ ત્રીન વર્ષકી હો જાય તો ઉસે આચારાંગ આદિ સૂત્રોંકા ક્રમસે અધ્યયન કરાના ચાહિયે, તથા યદિ કક્ષા ( કાંચ ) મેં વાલ ડગ આવેં તો ઇસકે પહિલે મી ઉસે આચારાંગ આદિકા અધ્યયન કરાયા જા સકતા હૈં । ક્રમ ૨ સે સૂત્ર અર્થ ઓર સાથ ૨ સૂત્ર અર્થકા અધ્યયન શિષ્યકો કરાના ઇસકા નામ ગ્રહણશિક્ષા હૈં । સાધુ સમાચારીકે પાલન કરનેકી ઉન્હેં શિક્ષા દેના ઇસકા નામ આસેવનશિક્ષા હૈં । ઉસમેં કોઈ ૨ શિષ્ય ઉન તીર્થઙ્કર યા આચાર્યોંકે નિકટ સર્વોત્તમ શ્રુતજ્ઞાન પ્રાપ્ત કર વિશિષ્ટ જ્ઞાની જબ હો જાતે હૈં તબ જ્ઞાનકા ગર્વ કરને લગ જાતે હૈં, ઓર ઇસ અભિમાનસે અંધ-ઉન્મત્ત હો કર શાંતિભાવ તકકા મી પરિત્યાગ કર દેતે હૈં । ઇસ અવસ્થામેં વે પ્રબલ મોહકે ઉદયસે ગુરુકે પ્રદત્ત ઉપદેશ અનુસાર પ્રવૃત્તિ નહીં કરતે હૈં, ઓર ઉત્કટ મદકે નશોમેં વેમાન જૈસે બન કર અપને ઉપકારી ગુરુજનોંકે સાથ મી વાચનિક કઠોર વ્યવહાર

શિક્ષાઓથી શિક્ષિત બનાવવામાં આવે છે. શિષ્યની દીક્ષાનો સમય જ્યારે ત્રણ વર્ષનો થઈ જાય ત્યારે તેને આચારાંગ સૂત્ર આદિ સૂત્રોનું ક્રમથી અધ્યયન કરાવવું જોઈએ. પણ જો આ સમયની અંદર તેની કાંબમાં વાળ ઉગવા લાગે તો આ કાળ પહેલાં આચારાંગ આદિનું અધ્યયન કરાવી શકાય છે. ક્રમ ક્રમથી સૂત્ર, અર્થ અને સાથેસાથ સૂત્ર અર્થનું અધ્યયન શિષ્યને કરાવવું જોઈએ, આનું નામ ગ્રહણશિક્ષા છે. સાધુસામાચારીનું પાલન કરવાની શિક્ષા દેવી જોઈએ ? આનું નામ આસેવનશિક્ષા છે. આમાં કોઈ કોઈ શિષ્ય તીર્થંકર અથવા આચાર્યોની પાસેથી શ્રુતજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી જ્યારે સારા જ્ઞાની બની જાય ત્યારે જ્ઞાનનો ગર્વ કરવા લાગી જાય છે, અને એ અભિમાનથી અંધ-ઉન્મત્ત બની શાંતિભાવનો પણ પરિત્યાગ કરી દે છે. આ અવસ્થામાં તે પ્રબળ મોહના ઉદયથી ગુરૂશ્રી પ્રાપ્ત થયેલ ઉપદેશ અનુસાર પ્રવૃત્તિ કરતા નથી અને મદના નશામાં બેમાન જેવા બની જઈ ઉપકારી ગુરૂજનોની સાથે પણ વાદવિવાદરૂપી

દતિ=ગૃહ્ણન્તિ, યથા-જ્ઞાનલવં પ્રાપ્ય, તન્મદાન્ધાઃ પરસ્પરં વાચનાપ્રચ્છનાદિષુ વદન્તિ, 'ભવતા યન્નિગદ્યતે નૈતત્ સમીચીનં, અસ્ય શબ્દસ્ય નાયમર્થઃ, યથા મયો-ચ્યતે સ એવ સિદ્ધાન્તઃ, શબ્દાર્થનિર્ણયાય કશ્ચિદેવાસ્તિ માદૃશઃ' इत्यादिरूपं वचनपारुष्यं स्वीकुर्वन्ति ॥ सू० १ ॥

કિન્ચ—'વસિત્તા' इत्यादि ।

મૂલમ્—વસિત્તા વંભચેરાંસિ આણં તં નોત્તિ મન્નમાણા ॥ સૂ. ૨ ॥

છાયા—ઉપિત્વા બ્રહ્મચર્યે આજ્ઞાં તાં નો ઇતિ મન્યમાનાઃ ॥ સૂ. ૨ ॥

ટીકા—એકે તુ શિષ્યાઃ બ્રહ્મચર્યે=સંયમે આચારાર્થમ્ ઉપિત્વા=સ્થિત્વા તા-માજ્ઞાં તીર્થઙ્કરોપદેશરૂપાં નો ઇતિ મન્યમાનાઃ=દેશતસ્તીર્થકૃદુપદેશં નાદ્રિયમાણાઃ સાતાગૌરવપ્રકર્ષેણાજ્ઞાતકુલાદિષ્વન્તપ્રાન્તાહારપ્રાપ્તિશઙ્કયા શરીરવિભૂષાદિના ચારિત્રમાલિન્યલક્ષણં વાકુશિકત્વં પ્રપદ્યન્ત ઇતિ ભાવઃ ॥ સૂ. ૨ ॥

કરને લગ જાતે હૈં । વે પહ્લવગ્રાહિપાણિડત્યવાલે શિષ્યજન ગર્વોન્મત્ત વન-અહંકારસે ફૂલ કર સૂત્રોંકી વાચના એવં પ્રચ્છના આદિકે સમય યહ કહ દિયા કરતે હૈં કિ “ આપ જો કુછ કહ રહે હૈં વહ ઠીક નહીં હૈ, હસ શબ્દકા યહ અર્થ નહીં હૈ ” “ જો કુછ મેં કહતા હું વહી યથાર્થ હૈ-વહી સુન્દર સિદ્ધાન્ત હૈ, શબ્દ ઓર અર્થકા નિર્ણય મેરા જૈસા કોઈ કર સકતા હૈ ! કોઈ નહીં ” इत्यादि रूपसे अभिमानयुक्त वचन बोलते हैं ॥ सू० १ ॥

તથા—“વસિત્તા” इत्यादि ।

કોઈ એક શિષ્યજન બ્રહ્મચર્યકા પાલન કરકે તીર્થઙ્કર ઉપદિષ્ટ આજ્ઞા કા આદર નહીં કરતે હૈં । એકદેશસે મી તીર્થઙ્કરકે ઉપદેશકો વે નહીં માનતે હૈં । સાતાગૌરવકે પ્રકર્ષસે “ કદાચિત્ અજ્ઞાતકુલાદિકોંમેં હમેં અન્તપ્રાન્ત આહાર મિલે ? ” इस प्रकारकी शङ्कासे वे शारीरिक वैष-

કહોર વ્યવહાર કરવા લાગે છે. તેવા પહ્લવગ્રાહિપાંડિત્યવાળા શિષ્યજન ગર્વો-ન્મત્ત બની અહંકારથી કુલાઇ જઈ સૂત્રોની વાચના અથવા પ્રચ્છના આદિના સમયે એવું કહી દે છે કે “ આપ જે કાંઈ કહો છો એ ઠીક નથી, આ શબ્દનો આ અર્થ નથી. ” “ હું જે કાંઈ કહું છું તે ખરોખર છે. એ જ સુંદર સિદ્ધાન્ત છે, શબ્દ અને અર્થનો નિર્ણય મારા જેવો કોઈ કરી શકે છે ! કોઈ નહિ ” इत्यादि इपथी अलिमानयुक्त वचन बोले છે. (સૂ. ૧)

તથા “વસિત્તા” इत्यादि !

કોઈ એક શિષ્યજન બ્રહ્મચર્યનું પાલન કરી તીર્થકરે ઉપદેશો આજ્ઞાનો આદર ન કરે, એકદેશથી પણ તીર્થકરના ઉપદેશને એ ન માને, સાતાગૌરવના



નનુ સાધ્વાચારપરિશ્રષ્ટાનાં કુશીલાનાં દીર્ઘઃ સંસારો ભવતીત્યુપદેશઃ કથં ન તેભ્યઃ ક્રિયતે ? इति जिज्ञासायामाह—‘आघायं तु’ इत्यादि ।

મૂલમ્—આઘાયં તુ સુચ્ચા નિસમ્મ, “સમણુન્ના જીવિસ્સામો” એગે નિક્કલ્લમ્મ તે અસંભવંતા વિડજ્ઞમાણા કામેહિં ગિદ્ધા અજ્ઞો-વવન્ના સમાહિમાઘાયમણ્ણોસયંતા સત્થારમેવ ફરુસં વયંતિ । સૂ. ૩ ।

છાયા—આખ્યાતં તુ શ્રુત્વા નિશમ્ય, ‘સમનોજ્ઞા જીવિષ્યામઃ’ એકે નિષ્ક્રમ્ય તે અસંભવન્તઃ વિદહ્યમાનાઃ કામૈર્ગૃહ્ણાઃ અધ્યુપપન્નાઃ સમાધિમ્ આખ્યાતમ્ અજોષ્યન્તઃ શાસ્તારમેવ પરુષં વદન્તિ ॥ સૂ. ૩ ॥

ટીકા—એકે=કેચન કુશીલાઃ શિષ્યાસ્તુ—આખ્યાતં=તીર્થઙ્કરગણધરાદિભિઃ કથિતં કુશીલાચારવિપાકં શ્રુત્વા નિશમ્ય=અવધાર્ય શાસ્તારમેવ પરુષં વદન્તીત્યન્વયઃ । કથમ્ભૂતાસ્તે શિષ્યાઃ ? इत्यत्राह—‘समनोज्ञा’ इत्यादि, समनोज्ञाः=लोकप्रियाः सन्तः जीविष्यामः; इति मत्वा निष्क्रम्य=प्रव्रजितो भूत्वा ते असम्भवन्तः=न

ભૂષા બનાતે હૈં, इससे उनका चारित्र मलिन बनता है, और इससे वे बकुश मुनियोंकी श्रेणिमें परिगणित होने लगते हैं ॥ સૂ. ૨ ॥

સાધુકે આચારસે પરિશ્રષ્ટા ઉન કુશીલોંકો આપ વહ ઉપદેશ ક્યોં નહીં દેતે હો કિ કુશીલોંકા સંસાર દીર્ઘ હો જાતા હૈ ? इस प्रकारकी शिष्यकी जिज्ञासामें सूत्रकार “आघायं तु” यह सूत्र कहते हैं—

કોઈ એક કુશીલ શિષ્ય તીર્થઙ્કર ઔર ગણધરાદિકોં દ્વારા કથિત કુશીલ સંબંધી આચારકે વિપાકકો સુનકર ઔર ઉસકા અવધારણ કર કે ભી અપને શાસકકે પ્રતિ કઠિન વચન બોલતે હૈં । “हम लोग लोक-प्रिय बन कर जीयेंगे” ऐसे अभिप्रायसे प्रेरित हो भागवती दीक्षाका वेष पहिन साधु तो बन जाते हैं, परन्तु फिर वे “न सम्यग्

પ્રકર્ષથી “કહાય અબ્બણ્યા કુળવાળાઓને ત્યાંથી અન્તપ્રાન્ત આહાર મળે ? આવી શંકાથી તે શરીરની વેશભૂષા બનાવે છે. આથી એનું ચારિત્ર મલિન બની બંધ છે, બકુશ મુનિઓની ગણતરીમાં ગણાવા લાગે છે. (સૂ. ૨)

સાધુના આચારથી બ્રહ્મ થયેલા તે કુશીલોને આપ કેમ ઉપદેશ આપતા નથી, જેથી કુશીલોને સંસાર દીર્ઘ બની રહ્યો છે ? આ પ્રકારની શિષ્યની અને એથી તે જિજ્ઞાસામાં સૂત્રકાર “આઘાયં તુ” આ સૂત્ર કહે છે.

કોઈ એક કુશીલ શિષ્ય તીર્થઙ્કર અને ગણધરાદિકોં દ્વારા કહેવામાં આવેલ કુશીલસંબંધી આચારના વિપાકને સાંભળી, અને સમજીને પણ પોતાના ગુરૂજન વગેરે તરફ કંઠણ વચન બોલે છે, “અમે તો લોકપ્રિય બનીને જીવવાના” આવા અભિપ્રાયથી પ્રેરિત બની ભાગવતી દીક્ષાનો વેશ પહેરી

ન સમ્યગ્ ભવન્તઃ—પુનર્મોહોદયાદ ગૌરવત્રયાન્યતમાવેશાન્મોક્ષમાર્ગે ન પ્રવર્તમાના  
 इत्यर्थः; तथा कामैः=भोगाभिलाषैः विदह्यमानाः=अभिलषितविषयानवाप्त्वा कषा-  
 यानलेनान्तस्तप्यमानाः गृद्धाः=सातादिगौरवलोलुपाः, अध्युपपन्नाः=विषयसुख-  
 निमग्नमानसाः आख्यातं=तीर्थङ्करप्ररूपितं समाधिम्=उपशमम् अजोषयन्तः=असेव-  
 मानाः सन्तः शास्तारमेव=शिक्षयितारमेव, यद्वा-तीर्थङ्करादिकमेव परुषं=रूक्षं निन्दावच-  
 नं वदन्ति । अत्र—एव शब्देनेदमुक्तं भवति—एवं तीर्थङ्करादिः सर्वप्राणिसुखावहं दुरन्त-  
 संसारदुःखविध्वंसकं शाश्वतिकशिवपदप्रापकं दयामयं धर्मं परमकरुणया कल्याणाय

भवन्तः ” पुनः मोहके उदयसे तीन ગૌરવોંમેં સે કિસી એક ગૌરવકે  
 आवेशसे मुक्ति मार्गमें प्रवृत्तिसे शून्य ही रहते हैं । भोगोंकी अभिला-  
 षासे वे रातदिन जलते रहते हैं । जब इन्हें अभिलषित विषय नहीं  
 मिलता है तो उस समय वे कषायरूपी अग्निसे संतप्त बन कर साता-  
 दिक गौरवोंमें लोलुपी बने रहते हैं । इनकी वैषयिक सुखोंमें मानसिक  
 वृत्ति चलायमान होती रहती है । तीर्थङ्कर प्रभुसे प्ररूपित समाधिभाव-  
 उपशमभावसे रहित ही बने रहते हैं । समझाने पर उल्टे ये समझाने-  
 वालेको ही कठोर वचन बोलकर उनकी भर्त्सना करते हैं—रूक्ष निंदा-  
 त्मक वचन बोलते हैं । सूत्रमें “शास्तारमेव” जो यहां ‘एव’ पदका  
 प्रयोग हुआ है उससे यह बात मालूम होती है कि—जो तीर्थङ्कर भग-  
 वान सर्वप्राणिओंको सुखकारक, इस दुरंत संसारके दुःखोंका विनाशक  
 शाश्वतिक शिवपदकी प्राप्ति हेतु और दयामय ऐसे धर्मकी परम  
 करुणासे जीवोंके कल्याणके निमित्त प्ररूपणा करते हैं, ऐसे तीर्थङ्करोंकी

સાધુ તો બની બીજા છે, છતાં પણ તે “ન સમ્યગ્ ભવન્તઃ” પુનઃ  
 મોહના ઉદયથી ત્રણ ગૌરવમાંના એક ગૌરવના આવેશથી મુક્તિમાર્ગની પ્રવૃત્તિથી  
 દૂર બની બીજા છે. ભોગોની અભિલાષાથી તે રાતદિવસ બળતો રહે છે. બીજા  
 તેને ઇચ્છિત વિષય નથી મળતો ત્યારે તે કષાયરૂપી અગ્નિથી સંતપ્ત બની સાતા-  
 દિક ગૌરવોમાં લોલુપી બની રહે છે. તેની વૈષયિક સુખોમાં માનસિક વૃત્તિ  
 ચલાયમાન થતી રહે છે. તીર્થંકર પ્રભુએ પ્રરૂપિત ઉપશમભાવથી રહિત બની  
 બીજા છે. સમજાવવાથી તે ઉલ્ટો સમજાવનાર તરફ જ કઠોર વચનો બોલી એની  
 માનહાનિ કરે છે—નિંદાત્મક વચનો બોલે છે. સૂત્રમાં “શાસ્તારમેવ” અર્થે જે  
 ‘એવ’ પદનો પ્રયોગ છે, એનાથી એ વાત માલુમ પડે છે કે તીર્થંકર ભગવાન સર્વ  
 પ્રાણીઓને સુખકારક, આ દુરન્ત સંસારના દુઃખોના વિનાશક, શાશ્વતિક શિવ-  
 પદની પ્રાપ્તિના હેતુ અને દયામય એવા ધર્મની પરમ કરૂણાથી જીવોના કલ્યાણ  
 નિમિત્ત પ્રરૂપણા કરે છે. એમની આજ્ઞાનું પાલન કરવું તો દૂર રહ્યું, પણ એમનો



સમુપદિશતિ, તદાજ્ઞાપરિપાલનં તુ દૂરતોડપાસ્તં; પ્રત્યુત પરુષવચનેન તમેવાક્ષિપન્તિ, તદ્યથા-ભગવાન્ પ્રમાદી ષડ્લેશ્યાધારી ગોશાલકરક્ષણેન સ્વલિતઃ ઇત્યાદિ। તદેત્સર્વં તેષાં પ્રબલમિથ્યાત્વોદયવિલાસમાત્રમિતિ નવમાધ્યયનચતુર્થોદ્દેશવૃત્તૌ સ્પષ્ટી-ભવિષ્યતિ ॥ સૂ. ૩ ॥

તે સ્વયં ભ્રષ્ટાઃ કુશીલા ન કેવલં શાસ્તારં પરુષં વદન્તિ, અપરાનપિ સાધૂન્ પરુષં વદન્તીત્યાહ-‘સીલમંતા’ ઇત્યાદિ ।

આજ્ઞાકા પાલન કરના તો દૂર રહ્યા, પરંતુ વે કુશીલા ઉનકા હી પરુષ (કઠિન) વચનોંસે તિરસ્કાર કરતે હૈં, કહતે હૈં કિ “ભગવાન તો પ્રમાદી થે, ષડ્લેશ્યાઓંકો ધારણ કરતે થે, ગોશાલાકે રક્ષણ કરનેસે વે ચૂક ગયે થે” । હસ પ્રકાર ઉનકા કહના પ્રબલ મિથ્યાત્વકે ઉદયકા એક વિલાસ-માત્ર હૈ; યહ વાત હમ નૌમે અધ્યયનકે ચતુર્થ ઉદ્દેશમેં સ્પષ્ટ કરેંગે ।

વે વેષધારી સાધુકા વાના હસલિયે પહિર લિયા કરતે હૈં કિ હસ વાનેસે હમેં ખાને પીનેકો નિશ્ચિન્તતાસે મિલ જાયા કરેગા; નહીં તો કૌન પૂછે ! વિષયકષાયોંકે યે પિંડ હોતે હૈં । થોડી ૨ સી વાતોંમેં લડને-હગડનેકો તૈયાર હો જાતે હૈં । ઇન્હેં સાધુમર્યાદા ક્યા હૈ ? હસ તકકા ખી ખાન નહીં હોતા ! મૌજસે ખાના ઓર ત્રીન ગૌરવોંકે વશ રહના એક યહી ઉનકા લક્ષ્ય રહતા હૈ ॥ સૂ. ૩ ॥

સ્વયંભ્રષ્ટ વે કુશીલ સિર્ફ અપને શાસ્તાકે પ્રતિ હી કઠોર વચનોં કા પ્રયોગ કરતે હૈં, સો વાત નહીં; કિન્તુ અન્ય સાધુઓંસે ખી યદ્વા-તદ્વા

જ કઠણ વચનોથી તિરસ્કાર કરે છે કે “ભગવાન તો પ્રમાદી હતા, ષડ્લેશ્યાધારી હતા, ગૌશાળાનું રક્ષણ કરવાથી તેઓ ચૂકી ગયા હતા.” આ પ્રકારે તેનું કહેવું પ્રબળ મિથ્યાત્વના ઉદયનો એક વિલાસ માત્ર છે. આ વાત નવમા અધ્યયનના ચોથા ઉદ્દેશમાં સ્પષ્ટ કરવામાં આવશે.

તે વેષધારી સાધુનો વેષ એ માટે પહેરી રાખે છે કે એ વેષથી ખાવા પીવાનું તો વગર ચિન્તાએ મળતું રહે છે. નહિ તો કેાણ ભાવ પૂછે. વિષય-કષાયોના પિંડરૂપ તે જરા જરા વાતમાં લડવા-ઝગડવા તૈયાર થઈ જાય છે. સાધુમર્યાદા શું છે ? એનું તેને ભાન નથી હોતું. મોજથી ખાવું અને ત્રણ ગૌરવના વશ રહેવું આ જ તેનું લક્ષ્ય હોય છે. (સૂ. ૩)

જાતે ભ્રષ્ટ બનેલ તે કુશીલ ક્રૂર પોતાના આચાર્ય શુરૂ આદિ પ્રત્યે જ કઠોર વચનોનો પ્રયોગ કરે છે એ વાત નથી; પરંતુ ખીજા સાધુઓથી પણ એ આવેજ વ્યવહાર કરે છે. આ વાતને પ્રગટ કરતાં સૂત્રકાર કહે છે “સીલમંતા” ઇત્યાદિ.



મૂલમ્—સીલમંતા ઉવસંતા સંઘાણ રયિમાણા ‘અસીલા’  
અણુવયમાણસ્સ ચિતિયા મંદસ્સ ચાલયા ॥ સૂ. ૪ ॥

છાયા—શીલવન્ત ઉપશાન્તાઃ સંઘયયા રયિમાણાઃ ‘અસીલાઃ’ અણુવદતઃ  
દ્વિતીયા મન્દસ્ય ચાલતા ॥ સૂ. ૪ ॥

ટીકા—યે સાધવઃ શીલવન્તઃ=અષ્ટાદશશીલાઙ્ગસહસ્રધરાઃ, યદ્વા મહાવ્રત-  
પન્થેન્દ્રિયકષાયનિગ્રહ-ગુપ્તિત્રય-ધારિણઃ, અતઃ ઉપશાન્તાઃ=ક્ષાન્ત્યાદિગુણયુક્તાઃ,  
‘શીલવન્તઃ’ ઇત્યને નૈવ કષાયોપશમાર્થસ્ય ગતાર્થત્વાત્પુનઃ ‘ઉપશાન્તાઃ’ ઇતિ  
વિશેષણં કષાયનિગ્રહસ્ય પ્રાધાન્યં बोधयितुमुक्तम्। तथा—સંઘયયા=હેયોપાદેયપ્રત્યયા  
વ્યવહાર કરતે હૈં। इसी बातको प्रकट करने के लिये सूत्रकार कहते हैं  
“सिलमंता” इत्यादि।

જો સાધુ અઠારહ હજાર (૧૮૦૦૦) શીલોંકે ભેદોંકો ધારણ કરનેવાલે  
હૈં, અથવા પંચ મહાવ્રતોંકે પાલક પંચેન્દ્રિયોં એવં કષાયોંકા નિગ્રહ કરનેવાલે  
ઔર ગુપ્તિત્રયકે ધારક હૈં, તથા इसीसे जो क्षमा आदि सद्गुणोंसे विभूषित  
हैं, हेय और उपादेयके विवेकपूर्वक संयममार्गमें जो लवलीन हैं।  
उन्हें भी ये कुशील “ये अशील हैं—ये चारित्रसे रहित हैं” ऐसा कहते हैं।  
यह इन अवसन्न-पासत्थादिरूप कुशीलोंकी दूसरी अज्ञानता है। प्रथम  
तो उनकी यही बड़ी भारी अज्ञानता है—जो ये स्वयं चारित्रसे भ्रष्ट हुए  
हैं और दूसरी अज्ञानता यह है कि जो ये चारित्रशालियोंको भी अचा-  
रित्री-भ्रष्ट कहते हैं। सूत्रमें “शिलवन्तः” इस पदसे ही कषायोंके उप-  
शमनरूप अर्थकी प्रतीति हो जाती है; फिर भी “उपशान्ताः” ऐसा जो  
पद देकर उनका स्वतन्त्ररूपसे अभाव प्रदर्शित किया है, उसका मतलब  
केवल कषायोंके निग्रहकी प्रधानता प्रकट करना ही समझना चाहिये।

જે સાધુ અઠારહ હજાર (૧૮૦૦૦) શીલોના ભેદોને ધારણ કરવાવાળા છે, અથવા  
પાંચ મહાવ્રતોના પાલક પંચેન્દ્રિયો અને કષાયોનો નિગ્રહ કરવાવાળા અને ગુપ્તિત્રયના  
ધારક છે. અને એથી જે ક્ષમા આદિ સદ્ગુણોથી વિભૂષિત છે, હેય અને ઉપા-  
દેયના વિવેકપૂર્વક સંયમ માર્ગમાં જે લવલીન છે, એમને પણ તે કુશીલ  
“આ અશીલ છે—આ ચારિત્રથી રહિત છે” એમ કહે છે, આ તે અવસન્નપાસત્થાદિ  
રૂપ કુશીલોની બીજી અજ્ઞાનતા છે. પહેલી તો તેની આ મોટી અજ્ઞાનતા છે કે  
તે સ્વયં ચારિત્રથી ભ્રષ્ટ થઈ ગયા છે, અને બીજી અજ્ઞાનતા આ છે કે જે  
ચારિત્રશાળીઓને પણ અચારિત્રી ભ્રષ્ટ કહે છે. સૂત્રમાં “શીલવન્તઃ” આ પદથી  
જે કષાયોના ઉપશમનરૂપ અર્થની પ્રતીતિ થઈ જાય છે. છતાં પણ “ઉપશાન્તાઃ”

રીયમાણા:=સંયમમાર્ગે પ્રવર્તમાના: સન્તિ તાન્ 'અશીલા:=ચારિત્રવર્જિતા એતે'   
 इति अनुवदतः प्रतिवदतः मन्दस्य=अवसन्नपार्श्वस्थादेरेषा द्वितीया बालतास्ति ।   
 अत्र ज्ञानगर्वान्धत्वात् स्वयं चारित्रभ्रष्टा अभूवन्निति प्रथमा, द्वितीया तु अन्यसाधून्   
 प्रति 'भ्रष्टाः' इति कथनरूपेति भावः ॥सू०४॥

કેચિદ્ ઋજુમતમઃ સ્વયમશક્તા અપિ સાધ્વાચારં પ્રશંસન્તીત્યાહ-   
 'નિયદ્વમાણા' ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—નિયદ્વમાણા વેગે આચારગોચરમાઙ્ગ્યંતિ ॥સૂ०૫॥

છાયા--નિવર્તમાના વૈકે આચારગોચરમાખ્યાન્તિ ॥ સૂ० ૫ ॥

ટીકા--વા=અથવા એકે=કેચિત્ નિવર્તમાના:=સ્વયં સંયમારાધનાં સમ્યક્તયા   
 કર્તુમસમર્થતયા તતો નિવૃત્તા અપિ આચારગોચરં=મૂલોત્તરગુણં અખ્યાન્તિ=શુદ્ધતયા   
 વર્ણયન્તિ, તેષાં દ્વિતીયા બાલતા નાસ્તીતિ ભાવઃ ॥ સૂ० ૫ ॥

જો શીલસંપન્ન હૈં-ઉપશાન્ત હૈં, હેય ઓર ઉપાદેયકે વિવેકપૂર્વક   
 સંયમમાર્ગમેં લગે હુએ હૈં ઉન્હેં યે કુશીલ અચારિત્રી કહ કર અપની   
 અજ્ઞાનતા પ્રદર્શિત કરતે હૈં ॥સૂ०૪॥

કોઈ ૨ કુશીલ ( શિથિલાચારી ) ઋજુમતિયુક્ત હોતે હૈં । યે ચારિત્રકે   
 ભારકો વહન કરનેકે લિયે અસમર્થ હોતે હુએ મી સાધુકે આચારકો   
 પ્રશંસા કરતે હૈં । ઇસી વાતકો પ્રકટ કરનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈં   
 “ નિયદ્વમાણા ” ઇત્યાદિ—

અથવા કોઈ ૨ કુશીલ ( શિથિલાચારી ) સ્વયં સંયમકી સમીચીન   
 આરાધના કરનેમેં અસમર્થ હોનેસે ઉસસે દૂર રહતે હૈં, તો મી મૂલગુણ   
 ઓર ઉત્તરગુણોંકી શુદ્ધતાસે પ્રશંસા કરતે હૈં । ઇન્કે દ્વિતીયા બાલતા   
 ( અજ્ઞાનતા ) નહીં હોતી ।

એવું જે પદ છે તે સ્વતંત્રરૂપથી કષાયોના અભાવ પ્રદર્શિત કરે છે. આનો અર્થ   
 કેવળ કષાયોના નિઃશુદ્ધિની પ્રધાનતા પ્રગટ કરવા માટેજ કહેવાયાનું સમજવું જોઈએ.   
 જે શીલસંપન્ન છે-ઉપશાન્ત છે, હેય અને ઉપાદેયના વિવેકપૂર્વક સંયમ   
 માર્ગમાં લાગેલા છે એમને તે કુશીલ ચારિત્ર વગરના કહી પોતાની અજ્ઞાનતાનું   
 પ્રદર્શન કરે છે. (સૂ०૪)

કોઈ કોઈ કુશીલ ( શિથિલાચારી ) હલકી મતિથી ભરેલા હોય છે.   
 ચારિત્રના ભારને એ વહન કરી શકતા નથી; છતાં પણ સાધુના આચારની   
 પ્રશંસા કરે છે. આ વાતને પ્રગટ કરતાં સૂત્રકાર કહે છે “ નિયદ્વમાણા ” ઇત્યાદિ.

અથવા કોઈ કોઈ કુશીલ ( શિથિલાચારી ) સ્વયં સંયમના આરાધના કરવામાં   
 અસમર્થ હોવાથી એનાથી દૂર રહે છે તો પણ મૂળગુણ અને ઉત્તરગુણોની



સદસદ્વિવેકભ્રષ્ટાઃ કિં કુર્વન્તી ? ત્યાકાઙ્ક્ષાયમાહ—‘નાળભટ્ટા’ ઇત્યાદિ.

મૂલમ્—નાળભટ્ટા દંસળલૂસિણો નમમાળા વેગે જીવિયં વિપ્પરિણામંતિ ॥ સૂ. ૬ ॥

છાયા—જ્ઞાનભ્રષ્ટા દર્શનલૂષિણો નમન્ત એકે જીવિતં વિપરિણામયન્તિ ॥ સૂ. ૬ ॥

ટીકા—એકે=કેચન દર્શનલૂષિણઃ=સમ્યક્ત્વપતિતાઃ, અતએ જ્ઞાનભ્રષ્ટાઃ=હેયોપાદેયબુદ્ધિવિચ્યુતાઃ, નમન્તો વા=આચાર્યાદીન્ દ્રવ્યતઃ પ્રણમન્તોઽપિ જીવિતં=સ્વાત્માનં વિપરિણામયન્તિ=પરિવર્તયન્તિ-સમ્યક્ચારિત્રાદ્ વિધ્વંસયન્તીત્યર્થઃ; સમ્યગ્દર્શનજ્ઞાનચારિત્રલક્ષણાન્મોક્ષમાર્ગાદ્ ભ્રમ્યન્તીતિ ભાવઃ ॥ સૂ. ૬ ॥

ભાવાર્થ—શુદ્ધ સંયમકી આરાધના નહીં હો સકનેકે કારણ કોઈ ૨ કુશીલ ઉસ સંયમકી પાલનાસે યદ્યપિ દૂર રહતે હૈં, ફિર મી ઉસ સંયમકો શુદ્ધ રીતિસે પાલનેવાલોંકી વે નિંદા નહીં કરતે-ઉન્હેં ‘યે ભ્રષ્ટ હૈં’, એસા નહીં સમજતે; અતઃ યે પ્રથમ બાલતાસે યુક્ત હોતે હુએ મી દૂસરી બાલતાસે રહિત માને જાતે હૈં ॥ સૂ. ૫ ॥

જો સત્ ઓર અસત્કે વિવેકસે ભ્રષ્ટ હૈં, વે કયા કરતે હૈં? હસ પ્રકાર કી આકાંક્ષા હોને પર સૂત્રકાર કહતે હૈં—“ નાળભટ્ટા ” ઇત્યાદિ—

કોઈ ૨ બકુશ સમ્યક્ત્વસે પતિત હોનેકી વજહસે, હેય ઓર ઉપાદેયવાલી બુદ્ધિસે રહિત હોતે હુએ, આચાર્યાદિકોંકે લિયે દ્રવ્યરૂપ નમસ્કાર સે નમન કરતે હૈં તો મી અપની આત્માકો સમ્યક્ત્વ ચારિત્રસે પતિત હી બનાયે રહતે હૈં । એસે જીવ સમ્યગ્દર્શન, સમ્યગ્જ્ઞાન ઓર સમ્યક્-ચારિત્રરૂપ મોક્ષમાર્ગસે સદા ભ્રષ્ટ હૈં, એસા સમજના ચાહિયે ॥ સૂ. ૬ ॥

શુદ્ધતાથી પ્રશંસા કરે છે. એને બીજી બાળતા (અજ્ઞાનતા) નથી હોતી.

ભાવાર્થ:—શુદ્ધ સંયમની આરાધના ન કરી શકવાને કારણે કોઈ કોઈ કુશીલ તે સંયમની પાલનાથી બે કે દૂર રહે છે તો પણ સંયમને શુદ્ધ રીતિથી પાળવાવાળાની નિંદા તે નથી કરતો—એમને એ ભ્રષ્ટ છે એમ નથી સમજતો. આથી એ પ્રથમ બાલતાથી યુક્ત હોવા છતાં પણ બીજી બાલતાથી રહિત માનવામાં આવે છે. (સૂ. ૫)

જે સત્ અને અને અસત્ના વિવેકથી ભ્રષ્ટ છે તે શું કરે છે, આ પ્રકારની આકાંક્ષા હોવાથી કહે છે નાળભટ્ટા ઇત્યાદિ.

કોઈ કોઈ બકુશ સમ્યક્ત્વથી પતિત થવાના કારણે હેય અને ઉપાદેયવાળી બુદ્ધિરહિત બની આચાર્યાદિકોને દ્રવ્યરૂપ નમસ્કારથી નમન કરે છે, તો પણ તે પોતાના આત્માને સમ્યક્ત્વચારિત્રથી પતિત જ બનાવી રાખે છે, એવા જીવ સમ્યગ્દર્શન, સમ્યગ્જ્ઞાન અને સમ્યક્ચારિત્રરૂપ મોક્ષ માર્ગથી સદા ભ્રષ્ટ છે એવું સમજવું બેધએ. (સૂ. ૬)



કિન્ન—‘ પુટ્ટા ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલ્મ—પુટ્ટા વેગે નિયદંતિ જીવિયસ્સેવ કારણા, ણિક્ખંતંપિ તેસિં દુન્નિક્ખંતં ભવઈ ॥ સૂ૦૭ ॥

છાયા—સ્પૃષ્ટા વૈકે નિવર્તન્તે જીવિતસ્યૈવ કારણાત્, નિષ્ક્રાન્તમપિ તેષાં દુર્નિષ્ક્રાન્તં ભવતિ ॥ સૂ૦૭ ॥

ટીકા—એકે=કેચન સ્પૃષ્ટા:=પરીષહોપસર્ગૈરુપદ્રુતાઃ સન્તઃ જીવિતસ્યૈવ કારણાત્=ક્ષણભંગુરજીવનસ્ય સુખાર્થં નિવર્તન્તે=સંયમાત્પૃથગ્ ભવન્તિ । તેષાં=ચારિત્રચ્યુતાનાં નિષ્ક્રાન્તમપિ=નિષ્ક્રમણમપિ દુર્નિષ્ક્રાન્તં ભવતિ=મૂલોત્તરગુણવિધાતેન નિરર્થકં ભવતિ । ચારિત્રપરિષ્રુષ્ટાનાં ગૃહાન્નિક્ક્રમણં ન શ્લાઘનીયં ભવતિ; પ્રત્યુત્તરર્હણીયમેવેતિ ભાવઃ ॥ સૂ૦ ૭ ॥

તથા—“ પુટ્ટા ” ઇત્યાદિ ।

કોઈ ૨ બકુશ પરીષહ્ અને ઉપસર્ગોં સે વાધિત વન કર અપને પ્યારે જીવનકે વિનાશકે ભયકે કારણસે ગૃહીત સંયમમાર્ગેં ભ્રષ્ટ હો જાતે હૈં । અર્થાત્ યે જહાં ભી જીવનકે કષ્ટકારી વિપત્તિરૂપ વિભીષિકા સે ઉપદ્રવિત હોતે હૈં શીઘ્ર હી વહાં ‘ હસ ક્ષણભંગુર જીવનકો સુખ મિલે ’ હસ વાહનાસે સંયમમાર્ગસે હટ જાતે હૈં । એસે ચારિત્રસે પતિત હુએ ભયશીલોંકી પૂર્વકાલગૃહીત પ્રવ્રજ્યા-દીક્ષા મૂલ અને ઉત્તરગુણોંકે વિધાતસે નિરર્થક હો જાતી હૈ । ઠીક વાત હૈ—જો ચારિત્રસે ભ્રષ્ટ હો ચુકે હૈં, ઉનકા ગૃહસે નિકલના-ગૃહકા પરિત્યાગ કરના પ્રશંસનીય નહીં હોતા હૈં; ઉલ્ટા નિંદનીય હી માના જાતા હૈ ।

ભાવાર્થ—કોઈ ૨ બકુશ ક્ષણભંગુર જીવનકો સુખી કરનેકે અભિ-

તથા—“ પુટ્ટા ” ઇત્યાદિ ।

કોઈ કોઈ બકુશ પરિષહ્ અને ઉપસર્ગોંથી ગભરાઈ પોતાના પ્યારા જીવનના વિનાશના ભયના કારણથી ગ્રહણ કરેલા સંયમ માર્ગથી ભ્રષ્ટ થઈ જાય છે. અર્થાત્ એ જ્યાં પણ જીવનને કષ્ટકારી કોઈ પણ આપત્તિ-વિપત્તિરૂપ કારણથી ઉપદ્રવિત બને છે. તરત જ ત્યાંથી આ ક્ષણભંગુર જીવનનું સુખ મળે એવી આહવાની તે સંયમ માર્ગથી દૂર થાય છે. એવા ચારિત્રથી પતિત બનેલા ભયશીલની પૂર્વ કાળમાં ગ્રહણ કરેલી દીક્ષા મૂળ અને ઉત્તર ગુણોના વિધાતથી નિરર્થક બની જાય છે. ઠીક વાત છે. જે ચારિત્રથી ભ્રષ્ટ બનેલા છે એમનું ઘરમાંથી નિકળવું પ્રશંસનીય બનતું નથી; ઉલ્ટું નિંદનીય માનવામાં આવે છે.

ભાવાર્થ:—કોઈ કોઈ બકુશ ક્ષણભંગુર જીવનને સુખી કરવાના અભિપ્રા-

કિંચ—‘બાલવચનિજ્ઞા’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—બાલવચનિજ્ઞા હુ તે નરા, પુણો પુણો જાઈ પકપ્પંતિ, અહે સંભવંતા વિદ્યાયમાણા “અહમંસીતિ” વિઠ્ઠલસે, ઉદાસીણે ફરુસં વયંતિ, પલિયં પકત્થે, અદુવા પકત્થે અતહેહિં, તં વા મેહાવી જાણિજ્ઞા ધમ્મં ॥ સૂ૦ ૮ ॥

છાયા—બાલવચનીયા હુ તે નરા; પુનઃ પુનર્જાતિ પ્રકલ્પયન્તિ, અથઃ સંભવન્તઃ વિદ્યાયમાનાઃ ‘અહમસ્મીતિ’ વ્યુત્કર્ષયેયુઃ, ઉદાસીનાન્ પરુષં વદન્તિ, પલિતં પ્રકથયેત્, અથવા પ્રકથયેત્ અતથ્યૈઃ, તન્મેધાવી જાનોયાધ્ ધર્મમ્ ॥ ૮ ॥

ટીકા—યતઃ જીવિતસુખાર્થં ચારિત્રવિચ્યુતા અતસ્તે નરા બાલવચનીયાઃ—બાલાનામ્=આપામરજનાનાં વચનીયાઃ=નિન્દનીયા ભવન્તિ, કિંચ તે પુનઃ પુનર્જાતિમ્ =એકેન્દ્રિયાદિષ્ટત્ત્વિ પ્રકલ્પયન્તિ=પ્રકુર્વન્તિ । ચારિત્રપરિવર્જનેનાનન્તાનન્તવારં ચતુર્ગતિકસંસારે જન્મમરણાન્યનુવર્તમાના અરહટ્ઘટીયન્ત્રન્યાયેન પરિવર્તન્ત ઇતિ ભાવઃ ।

કિંચ—અથઃ સંભવન્તઃ=સંયમસ્થાનાત્પતન્તઃ વિદ્યાયમાનાઃ=પણ્ડિતમ્મન્યાઃ

પ્રાયસે હી પરીષદાદિકોંકે આને પર સંયમમાર્ગકો છોડ દેતે હૈં । એસે જીવોંકી પૂર્વકાલિક પ્રવ્રજ્યા મી નિરર્થક હો જાતી હૈ ॥ સૂ૦ ૭ ॥

તથા—“બાલવચનિજ્ઞા” ઇત્યાદિ—

કયોં કિ યે બકુશ જીવનકો સુખી કરનેકે અભિપ્રાયસે ચારિત્રસે ભ્રષ્ટ બનતે હૈં, ઇસીલિયે પામર જૈસે પ્રાણિયોં તકસે મી નિંદનીય હોતે હૈં । એસે જીવ બાર ૨ એકેન્દ્રિયાદિક પર્યાયોં મેં અપની ઉત્પત્તિ કરતે રહતે હૈં—અર્થાત્ ગૃહીત ચારિત્રકે ત્યાગસે અનન્તાનન્ત વાર ચતુર્ગતિસ્વરૂપ સંસારમેં જન્મ ઓર મરણકે ચક્કરમેં પડ કર અરહટ્-ઘટીયંત્રકી તરહ ભ્રમણ કિયા કરતે હૈં ।

યે સંયમસ્થાનસે નીચે ગિરતે હૈં, ફિર મી અપનેકો પળિટ માનતે

યથી જ પરિષદ આદિ આવતાં સંયમમાર્ગને છોડી દે છે. એવા જીવોની પૂર્વકાલિક પ્રવ્રજ્યા પણ નિરર્થક બની જાય છે. ( સૂ૦ ૭ )

તથા—“બાલવચનિજ્ઞા” ઇત્યાદિ !

કેમ કે એ બકુશ જીવનને સુખી કરવાના અભિપ્રાયથી ચારિત્રથી ભ્રષ્ટ બને છે. આ માટે પામર એવા પ્રાણીઓથી પણ નિંદનીય બને છે. એવા જીવ વારંવાર એકેન્દ્રિયાદિક પર્યાયોમાં પોતાની ઉત્પત્તિ કરતા રહે છે, અર્થાત્ ગૃહીત ચારિત્રના ત્યાગથી અનન્તાનન્તવાર ચતુર્ગતિસ્વરૂપ સંસારમાં જન્મ અને મરણના ચક્કરમાં પડી અરહટ્ઘટીયંત્રની માફક ભ્રમણ કિયા કરે છે.

તે સંયમ સ્થાનથી નીચે પડે છે, છતાં પણ પોતાની જાતને પડિત માને



‘અહમસ્મીતિ’ અહમેવ બહુશ્રુતોઽસ્મીતિ પ્રત્યેકં પ્રલપન્તસ્તે વ્યુત્કર્ષયેયુઃ=સ્વં સ્વમાત્માનં પ્રશંસન્તિ, યથા-યદાચાર્યો જ્ઞાનાતિ તન્મયા પ્રાગેવ જ્ઞાતમિત્યાદિ । કિંચ-ઉદાસીનાન્=ઉપશાન્તકષાયાન્ સ્વલિતહિતકથનપ્રવૃત્તાનઽન્યાનપિ પરુષં વદન્તિ=આશ્નિપન્તિ । તદેવ દર્શયતિ-પલિતમિત્યાદિ, પલિતં=પ્રાક્તનં દીક્ષાગ્રહણા-ત્પ્રાકાલિકચરિતં કાષ્ઠભારવહનાદિકં પ્રકથયેયુઃ=પ્રવદન્તિ-‘પૂર્વં તૃણકાષ્ઠભારવાહ-નાદિર્મિઘૃષ્ટશિરસિ તવ નૈકોઽપિ કેશો દૃષ્ટિગોચરીભવતિ, એવંભૂતસ્ત્વં કિમિ-દાનીમુપદેષ્ટું પ્રવૃત્તોઽસિ’ इत्यादि । અથવા અતથ્યૈઃ=અસદ્વિદોં પૈઃ પ્રકથયેયુઃ=પરુષં

हैं । “मैं ही बहुश्रुत हूं”-इस प्रकार ये हरएकसे अपनी आइलावा किया करते हैं । इसमें ये कभी २ यह भी कह दिया करते हैं कि जो आचार्य जानते हैं वह तो मैं पहिलेसे ही जानता था-आदि । तथा-जिन की कषायें उपशान्त हो चुकी हैं, आत्महितसे भ्रष्ट बने हुए मनुष्योंको जो आत्महितके उपदेश करनेमें प्रवृत्त हैं ऐसे अन्य साधुजनोंका भी ये तिरस्कार करते हैं-उनके प्रति भी ये कठोर वचनोंका प्रयोग करते हैं । इसी बातको सूत्रकार “पलितं प्रकथयेत्” इत्यादि सूत्रांशसे प्रकट करते हैं । दीक्षा ग्रहण करनेके पहिलेके समयके आचरणका नाम पलित है । यदि कोई बकुश निर्मल संयम मार्गके आराधक साधुजनसे ऐसा कहे कि हम तुम्हें जानते हैं, तुम वे ही हो जो पहिले काष्ठका भार माथे पर ढोया करते थे । देखो; यही कारण है कि पहिले तृणकाष्ठके भारों को ढोते ढोते तुम्हारे माथे-शिरपर एक बाल भी नजर नहीं आ रहा है, तुम ऐसे हो; अब इस समय क्या हमें उपदेश देनेके लिये प्रवृत्त हो?-इस प्रकारके कथनका नाम पलित कथन है । अथवा जो दोष उसमें न हों

છે. “હું જ બહુશ્રુત છું” આ પ્રકારથી તે ઢરેકની સામે પોતાની બડાઇ હાંકયે રાખે છે. આમાં તે કોઈ વખતે એવું પણ કહે છે કે આચાર્ય જે બાણ છે આ તો હું પહેલેથી જ બાણ છું. વિ.

તથા—જેની કષાય ઉપશાન્ત થઈ ચૂકી છે, આત્મહિતથી ભ્રષ્ટ બનેલા માણસોને જે આત્મહિતનો ઉપદેશ આપવામાં પ્રવૃત્ત છે એવા અન્ય સાધુજનોનો પણ તે તિરસ્કાર કરે છે. એના તરફ કઠોર વચનોનો પ્રયોગ કરે છે. આ વાતને સૂત્રકાર “પલિતં પ્રકથયેત્” ઇત્યાદિ સૂત્રાંશથી પ્રગટ કરે છે. દીક્ષા લીધા પહેલાંના સમયના આચરણનું નામ પલિત છે, કદી કોઈ બકુશ નિર્મલ સંયમ માર્ગના આરાધક સાધુજનને એમ કહે કે હું તમને બાણ છું તમે તો એ છોને કે પહેલાં લાકડાના ભારા માથે ઉપાડતા હતા. બુઓ; આ કારણે તમારા માથામાં એક પણ વાળ નજરે પડતો નથી, તમે તો એવા છો,



પ્રવદન્તિ, યથા-‘ત્વં હિંસકો મૃષાવાદી સ્વયં પતિતોઽસિ, કિમન્યમુપદિશસી’-  
 ટ્યાદિ । સૂત્રે ‘વિઠ્ઠલે’ ‘પસત્યે’ इत्यत्र आर्षत्वादेकवचनम् । उपसंहरन्नाह-‘तं  
 मेहा वी’ इत्यादि, तत्=तस्मात् कारणात् मेधावी=साधुमर्यादाव्यवस्थितो मुनिः  
 धर्म=श्रुतचारित्रलक्षणं जानीयात्=सम्यग् भावयेत्, न तु धर्मात्प्रचलितो भवेत् । ०८।

ऐसे अविद्यमान दोषोंसे उसे तर्जित-तिरस्कृत करना; जैसे-तुम हिंसक  
 हो, मृषावादी हो, स्वयं पतित हो, दूसरोंके लिये क्या उपदेश देते हो?  
 इत्यादि । उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं-“तं मेहावी” इत्यादि।  
 इसलिये साधुमर्यादामें व्यवस्थित मेधावी मुनि श्रुतचारित्ररूप धर्मकी  
 अच्छी तरहसे भावना भाता रहे-उसे सम्हालता रहे, धर्मसे कभी  
 भी प्रच्युत न होवे ।

भावार्थ—जो बकुश क्षणिक इस जीवनको सुखित बनानेकी इच्छा  
 से चारित्ररूप धर्मसे च्युत हो जाते हैं, जगतके छोटे से भी छोटे प्राणी  
 उनकी निंदा और हंसी करते हैं । चारित्रभ्रष्ट जीवोंका अनन्तानन्त काल  
 एकेन्द्रियादिक जीवोंकी पर्यायमें ही व्यतीत होता है । चारित्र-  
 भ्रष्ट हो कर भी जो अपनेको अच्छा समझते हैं-अपने भीतर बहु-  
 श्रुत होनेका जो अभिमान करते हैं-अन्य निर्मल चारित्र आराधक  
 साधुओंके प्रति जो कठोर शब्दोंका प्रयोग करते हैं-उनका तिरस्कार  
 करते हैं-पहिलेके उनके आचरणोंको ले कर जो उन्हें नीचा दिखानेका

ત્યારે આજે અમને ઉપદેશ આપવા આવ્યા છે. આ પ્રકારના કથનનું નામ  
 પલિત છે. અથવા જે દોષ એનામાં ન હોય એવા પગ-માથા વિનાના દોષો  
 લગાડી તિરસ્કૃત કરવા; જેમ કે-તમે હિંસક છો, ખોટું બોલનારા છો, સ્વયં પતિત  
 છો. ફરી બીજાને શું ઉપદેશ આપો છો વગેરે. ઉપસંહાર કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે-  
 “તં મેહાવી” ઇત્યાદિ! આ માટે સાધુ-મર્યાદામાં વ્યવસ્થિત મેધાવી મુનિ શ્રુતચારિત્ર-  
 રૂપ ધર્મની ભાવના ભાવતા રહે, એને સાંભળતા રહે. ધર્મથી કદિ પણ પાછા ન હટે.

ભાવાર્થ—જે બકુશ ક્ષણિક આ જીવનને સુખી બનાવવાની ઇચ્છાથી  
 ચારિત્રરૂપ ધર્મથી પાછા હટે છે આવા સાધુની જગતમાં નાના મોટા એની  
 નિંદા અને હાંસી કરે છે. ચારિત્રભ્રષ્ટ જીવોનો અનન્તાનંત કાળ સુધી એકેન્દ્રિ-  
 યાદિક જીવોની પર્યાયમાં સમય વ્યતીત થાય છે. ચારિત્રભ્રષ્ટ બનીને પણ જે  
 પોતાને સારા સમજે છે, પોતાની અંદર બહુશ્રુત હોવાનું અભિમાન કરે છે.  
 બીજા નિર્મળ ચારિત્ર આરાધક સાધુ તરફ જે કઠોર શબ્દોનો પ્રયોગ કરે છે-  
 તેનો તિરસ્કાર કરે છે, પહેલાના તેના આચરણોનો દાખલો આપી તેને નીચા

ચારિત્રવિચ્યુતં બાલમાચાર્યાદિરેવં શિક્ષયેદિત્યાહ—‘અહમ્મટ્ટી’ इत्यादि ।

મૂલમ્—અહમ્મટ્ટી તુમંસિ ણામ બાલે, આરંભટ્ટી અણુવચમાણે ‘હણ પાણે’ ઘાયમાણે, હણઓ વાવિ સમણુજાણમાણે, ‘ઘોરે ધમ્મે ઉદીરિણ’ ઉવેહહ ણં અણાણાણ્ણસ વિસણ્ણે વિતહે વિયાહિણ—ત્તિવેમિ ॥ સૂ. ૧ ॥

છાયા—અધર્માર્થી ત્વમસિ નામ બાલઃ, આરમ્ભાર્થી અણુવદન્ ‘પ્રાણાન્-જહિ’ ઘાતયન્, ઘનતશ્ચાપિ સમણુજાણાનઃ, ઘોરઃ ધર્મઃ ઉદીરિતઃ, ઉપેક્ષસે તમ્ અનાજ્ઞાયામ્ ણ્ણ વિષણ્ણઃ વિતર્દઃ વ્યાખ્યાતઃ—इति ब्रवीमि ॥ સૂ. ૧ ॥

ટીકા—હે શિષ્ય ! યતસ્ત્વમ્ આરમ્ભાર્થી=ષડ્જીવનિકાયોપમર્દનપ્રવૃત્તઃ ‘પ્રાણાન્=પ્રાણિનઃ જહિ=મારય’ इति अनुवदन्=पुनः पुनर्ब्रुवन्, तथा अपरैः घातयन्, घनतश्चापि समणुजानानः=अनुमोदयन् असि, तस्मात्त्वं बालो नाम=अज्ञतया प्रयत्न करते हैं, अविद्यमान दोषोंसे जो उन्हें दूषित प्रकट करते हैं ऐसे जीव साधुभर्यादासे बाह्य हैं । इनमें प्रथम नंबरकी बालताके साथ २ द्वितीय नंबरकी बालता रही होती है । इसलिये सुसुक्ष्म साधुका कर्तव्य है कि वह कभी भी किसी अन्य साधुके प्रति परुष ( कठिन ) शब्दोंका प्रयोग न करे, तभी जाकर श्रुतचारित्ररूप धर्मका वह संरक्षण और पालन कर सकता है ॥ सू. ८ ॥

ચારિત્રસે ઘ્રષ્ટ હુણ બાલજીવોંકો આચાર્ય કિસ પ્રકારસે સંબોધે ? ઇસ વાતકો પ્રકટ કરનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈ—“અહમ્મટ્ટી ” इत्यादि ।

બાલ શિષ્યકો સંબોધન કરતે હુણ આચાર્ય કહ રહે હૈ કિ હે શિષ્યો ! તુમ ષડ્જીવનિકાયોં કે ઉપમર્દનરૂપ આરમ્ભમેં પ્રવૃત્ત હો; ક્યોં કિ તુમ “પ્રાણિયોંકો મારો ” ઇસ પ્રકાર બાર ૨ કહતે હો, ઓર દૂસરોં

દેખાડવાનો પ્રયત્ન કરે છે. પગ-માથા વિનાના દોષોથી જે તેને દોષિત પ્રગટ કરે છે, એવા જ સાધુ ભર્યાદાર્થી બાહ્ય છે. તેમાં પહેલા નંબરની બાલતાની સાથે સાથે બીજા નંબરની બાલતા (અજ્ઞાનતા) રહી હોય છે. માટે સુસુક્ષ્મ સાધુનું કર્તવ્ય છે કે કોઈ પણ વખતે બીજા સાધુ પ્રત્યે કઠણ શબ્દનો પ્રયોગ ન કરે, તો જ તે શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મનું સંરક્ષણ અને પાલન કરી શકે છે. (સૂ. ૮)

ચારિત્રથી ઘ્રષ્ટ બનેલા બાલજીવોને આચાર્ય કયા પ્રકારે સંબોધે ? આ વાતને પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે. “અહમ્મટ્ટી” इत्यादि.

બાળશિષ્યને સંબોધન કરીને આચાર્ય કહે છે કે, હે શિષ્યો ! તમે ષડ્જીવનિકાયોના ઉપમર્દનરૂપ આરંભમાં પ્રવૃત્ત છો, કેમ કે તમે—“પ્રાણીઓને મારો” આ પ્રકારે વારંવાર કહો છો અને બીજાઓથી તેનો ઘાત કરાવો છો.



પ્રસિદ્ધોઽસિ, તથા અધર્માર્થી=અધર્માભિલાષી અસિ। કિશ્વ-ધોર:=દુઃસ્વમયઃ કર્તુમ-શક્યઃ, ધર્મઃ=સાધૂનામાચારઃ ઉદીરિતઃ=તીર્થઙ્કરૈઃ કથિતઃ इत्यवधार्य अनाज्ञायां=તીર્થઙ્કરાજ્ઞાવહિર્વર્તી સન્ તં=તીર્થઙ્કરોક્તં ધર્મમ્ ઉપેક્ષસે=પરિત્યજસીત્યર્થઃ। આર્ષ-ત્વાત્મત્રે પ્રથમપુરુષનિર્દેશઃ। એષઃ=એવંવિધસ્ત્વાદૃશો જનઃ વિષણ્ણઃ=કામભોગમૂ-ર્ચ્છિતઃ, અતએવ વિતર્દઃ=ષડ્જીવનિકાયોપમર્દનપરાયણઃ વ્યાખ્યાતઃ=તીર્થઙ્કરૈઃ કથિતઃ। તસ્માત્ इति ब्रवीमि='ત્વં મેધાવી ભૂત્વા ધર્મ જાનીયાઃ' इति पूर्वोक्तं, તથા વક્ષ્યમાણં ચ કથयामि ॥ સૂ. ૧ ॥

સે અન્હેં મરવાતે હો, તથા અન્હેં મારનેવાલોંકી તુમ અનુમોદના કરતે હો। इसलिये तुम बाल हो-अज्ञरूपसे प्रसिद्ध हो। इस प्रकारकी प्रवृत्तिसे ही यह स्पष्ट मालूम होता है कि तुम अधर्माभिलाषी बने हुए हो। तीर्थङ्करों ने साधुओंका आचार बहुत कठिनतर बतलाया है-हर एक प्राणी उसे सहसा नहीं पाल सकता है - ऐसा निश्चय कर तुम उनकी आज्ञा के बहिर्वर्ती मत बनो। यदि ऐसा करते हो तो निश्चय है कि तुम उनके धर्मकी अवलेहना करते हो-उपेक्षा करते हो। तीर्थङ्करोंका यही आदेश है कि जो तुम्हारे जैसे मनुष्य कामभोगोंमें मूर्च्छित बने हुए हैं वे षड्-जीवनिकाय के उपमर्दन करनेमें परायण माने गये हैं। इसलिये मैं कहता हूं कि तुम मेधावी बन कर धर्मको समझो। तथा और भी जो कुछ कहता हूं उसे सुनो। साधुको कृत, कारित और अनुमोदना एवं मन वचन और कायसे हिंसादिक पापोंका सर्वथा त्यागी होना चाहिये ऐसा तीर्थङ्कर प्रभुओंका मुख्य आदेश है यद्यपि-तुम स्वयं हिंसा नहीं

તથા તેને મારવાવાળાઓની અનુમોદના કરે છે, આ માટે તમે જાણ છે-અજ્ઞ રૂપથી પ્રસિદ્ધ છે. આ પ્રકારની પ્રવૃત્તિથી એ સ્પષ્ટ માલૂમ થાય છે કે તમે અધર્મ-અભિલાષી બન્યા છો. તીર્થંકરોએ સાધુઓનો આચાર ઘણો જ કઠિન બતાવ્યો છે, દરેક પ્રાણી તેને સહસા પાળી શકતો નથી, તેવો નિશ્ચય કરી તમે એમની આજ્ઞાનું ઉલ્લંઘન કરનાર ન બનો. જો તમે એવું વર્તન રાખતા હો તો એ નિશ્ચય છે કે તમે તેના ધર્મની અવલેહના કરો છો-ઉપેક્ષા કરો છો. તીર્થંકરોનો એ આદેશ છે કે, જે તમારા જેવા મનુષ્ય કામભોગોમાં મૂર્ચ્છિત બનેલા છે તેઓ ષડ્જીવનિકાયનો ઉપમર્દન કરવામાં પરાયણ માનવામાં આવેલ છે. આ માટે હું કહું છું કે, તમે મેધાવી બની ધર્મને સમજો, અને બીજું પણ જે કહું છું તે સાંભળો. સાધુએ કરવું, કરાવવું અને અનુમોદન આપવું અને મન વચન અને કાયાથી હિંસાદિક પાપોનો સદા ત્યાગ કરવો જોઈએ; એવો તીર્થંકર પ્રભુનો મુખ્ય આદેશ છે. કદાચ તમે પોતે હિંસા ન કરતા હો; પરંતુ બીજા-



इति ब्रवीमिति पूर्वसूत्रोपात्तं वक्ष्यमाणवचनमाह ' किमणेण भो ' इत्यादि ।

મૂલમ્—કિમણેણ ભો ! જણેણ કરિસ્સામિત્તિ મન્નમાણા  
 एवं एगे विइत्ता मायरं पियरं हिच्चा णायओ य परिग्गहं  
 वीरायमाणा समुट्ठाए अविहिंसा सुव्वया दंता, पस्स दीणे  
 उप्पइए पडिवयमाणे, वसट्ठा कायरा जणा लूसणा भवंति । सू० १० ।

છાયા—કિમનેન ભો ! જનેન કરિણ્યામીતિ મન્યમાના એવમેકે વિદિત્વા  
 मातरं पितरं हित्वा ज्ञातीन् च परिग्रहं वीरायमाणाः समुत्थाय अविहिंसाः सुव्रताः  
 दान्ताः, पश्य दीनान् उत्पतितान् प्रतिपततः, वशार्त्ताः कातरा जनाः  
 लूषका भवन्ति ॥ सू० १० ॥

ટીકા—ભો ! =હે આત્મન્ ! અનેન=એતદ્ભવપ્રાપ્તેન જનેન=માતાપિત્રાદિ-  
 स्वजनेन स्वार्थपरेण वस्तुतोऽनर्थरूपेण किं करिष्यामि=स्वकर्मविपाकावसरे नायं  
 करते हो; परंतु फिर भी दूसरों को उस ओर लगाते हो, एवं उस काम  
 के करनेवालोंकी अनुमोदना भी करते हो । अतः तुम्हारी इस प्रवृत्तिसे  
 यही निश्चित होता है कि तुम अभी तक भी साधुमर्यादासे अनभिज्ञ बने  
 हुए हो; इसलिये इस अज्ञताका त्याग करो । तुम तो समझदार हो, प्रयत्न  
 करो; ता कि मुनिधर्मका वास्तविक स्वरूप समझ सको । आरंभार्थी  
 बन कर अधर्माभिलाषी मत बनो ॥ सू० ९ ॥

“इति ब्रवीमि ” इस प्रकार जो ९ में सूत्रमें कहा है उसीके विषय  
 को सूत्रकार कहते हैं—“ किमणेण भो ” इत्यादि ।

જો પહિલે સંસારકા પરિત્યાગ કર વિરક્ત સાધુ બન જાતે હૈં ઓર  
 पीछे उससे पतित बन गृहस्थ हो जाते हैं, उनके विषयमें सूत्रकार कथन  
 करते हैं कि ये प्राणी प्रथम ऐसा विचार करते हैं “ हे आत्मन् ! इस

ઓને તે તરફ લગાડો છે, અને તેવા કામ કરવાવાળાઓની અનુમોદના પણ  
 કરે છે, માટે તમારી આ પ્રવૃત્તિથી એ નિશ્ચિત થાય છે કે તમે હજી સુધી  
 સાધુમર્યાદાથી અનભિજ્ઞ છો. માટે આ અજ્ઞતાનો ત્યાગ કરો. તમે સમજદાર  
 છો, પ્રયત્ન કરો, જેથી મુનિધર્મનું વાસ્તવિક સ્વરૂપ સમજી શકો. આરંભાર્થી  
 બની અધર્માભિલાષી ન બનો. (સૂ. ૯)

“इति ब्रवीमि” आ प्रकारे जे नवमा सूत्रमा कहेल छे ओ विषयने  
 सूत्रकार कहे छे—“ किमणेण भो ” इत्यादि.

જે પહેલા સંસારનો પરિત્યાગ કરી વિરક્ત સાધુ બની જાય છે, અને  
 પાછળથી એનાથી પતિત થઈ ગૃહસ્થ થઈ જાય છે, એના વિષયમાં સૂત્રકાર કહે  
 છે—એ પ્રાણી પ્રથમ એવો વિચાર કરે છે “ હે આત્મન્ ! આ ભવમાં પ્રાપ્ત એવા

जनो मम शरणाय वा त्राणाय वा भविष्यतीति मन्यमानाः एके केचन धर्मकथादि-  
श्रवणेन विदितसंसारस्वभावाः एवम्=एतत्प्रकारकं संसारस्वरूपं विदित्वा=सर्वथा-  
नर्थमूलं विज्ञाय मातरं पितरम्, उपलक्षणतया पुत्रकलत्रमित्रादिकमपि, तथा ज्ञातीन्  
=बान्धवान् परिग्रहं=धनधान्यहिरण्यसुवर्णहर्म्यादिकं च हित्वा=वैराग्यभावनया तृण-  
वत्परित्यज्य वीरायमाणाः=चारित्रग्रहणे सिंहवत्प्रवर्तमानाः समुत्थाय=प्रव्रज्यां गृ-  
हीत्वा अविहिंसाः=षट्कायोपमर्दननिवृत्ताः, अतएव सुव्रताः=प्राणातिपातविरमणादि-  
महाव्रतधारिणः, दान्ताः=इन्द्रियनोइन्द्रियदमनप्रवृत्ता भवन्ति । तान् उत्पतितान्=  
प्रबलमोहोदयेन संयमस्थानात् उत्प्लुत्य निर्गतान् प्रतिपततः=कर्मगतिवैचित्र्यात्का-

भवमें प्राप्त स्वार्थमें तत्पर एवं वास्तविक दृष्टिसे अनर्थरूप माता-पिता  
आदि स्वजनसे मैं क्या करूंगा ? ये मेरे क्या काम आयेंगे ? जब मैं अपने  
शुभ और अशुभ कर्मके फलका भोक्ता बनूंगा तब ये मुझे उसमें सहा-  
यक नहीं हो सकेंगे, न ये मुझे शरणभूत होंगे, और न ये मेरे रक्षक  
ही होंगे ” ऐसे अध्यवसायसे प्रेरित हो कई एक जीव धार्मिक कथाओं  
के श्रवणसे संसारका स्वरूप जानकर और माता पिता तथा उपलक्षण  
से-पुत्र, कलत्र एवं मित्रादिकोंको, तथा बान्धवों, धन, धान्य, हिरण्य,  
सुवर्ण और मकान आदिको वैराग्यभावनासे वासित अन्तःकरण बन,  
तृणकी तरह छोड़ कर, चारित्रके ग्रहणमें सिंहकी तरह प्रवृत्तिशील  
बनते हुए दीक्षा धारण करते हैं, और षट्कायके जीवोंकी हिंसासे दूर  
रहते हुए प्राणातिपातविरमण आदि पंच महाव्रतोंका आराधन करते  
हुए इन्द्रिय और मनका निग्रह करनेमें लवलीन रहते हैं । इतनी अवस्था  
तक भी पहुँचे हुए जीवोंको मोहका प्रबल उदयका झकोरा कहां से कहां

स्वार्थमां तत्पर अने वास्तविक दृष्टिसे अनर्थरूप माता-पिता धत्यादि स्वजन  
साथे हुं शुं कइं ? आ लोगो मारा क्या काममां आववानां ? न्यारे हुं मारा शुभ अने  
अशुभ कर्मां इगोनो लोक्ता अनीश त्यारे अमां अ मने सहाय करी शकवानां  
नथी, न अ मने आश्रय आपशे, न तो मारां रक्षक अनशे. आवा विद्या-  
रथी प्रेरार्धने डेअ अेक लव धार्मिक कथाअोना श्रवणुथी संसारनुं स्वइय  
आणी, माता-पिता, स्त्री, पुत्र कुटुंब तेमअ मित्रादिको तथा धन, धान्य, हीरा,  
भोती, सुवर्ण अने मकान धत्यादिने वैराग्य लावनाथी छोडी, चारित्रने  
अडणु करवामां सिडनी माइक प्रवृत्तिशील अनी दीक्षा धारणु करे छे, अने षट्का-  
यना लवोनी हिंसाथी दूर रही प्राणातिपातविरमणु वगेरे पांच महाव्रतोनी  
आराधना करतां, इन्द्रिय अने मननो निअडु करवामां तत्पर रहे छे आदली  
अवस्था सुधी पडोयेला लवने पणु मोडना प्रमण उदयनो अेकअ अपाटो कथांथी



રાગારસદશગૃહસ્થાવાસે પુનર્નિપતતઃ, અતઃપ્ર દીનાન્-શ્રુગાલવન્નીચભાવપ્રગતાન્ સંસારદુઃખવ્યાકુલાન્ પश्य=હે શિષ્ય ! અવલોકય । યતઃ વશાર્તાઃ=કષાયવશવ-  
ર્તિત્વાદાર્તરૌદ્રધ્યાનયુક્તાઃ, કાતરાઃ=શ્રુગાલસાદૃશ્યં પ્રાપ્ય પરીષહોપસર્ગમીરવો યે  
લે જાકર પટક દેતા હૈ-इसके लिये सूत्रकार “पश्य दीनान् उत्पतितान्  
प्रतिपततः ” इस पंक्तिद्वारा प्रकट करते हैं —

વે इसमें बतलाते हैं कि प्रबल मोहके उदयसे संयमस्थानसे उछल-  
कर निकलनेवाले वे जीव कर्मकी गतिकी विचित्रतासे कारागारके तुल्य  
गृहस्थावासमें जाकर ठहरते हैं और वहां श्रुगालकी तरह नीच मनो-  
वृत्तिसे युक्त होते हुए सांसारिक दुःखोंसे व्याकुल होते रहते हैं ।  
शिष्यको सम्बोधन कर सूत्रकार कहते हैं कि हे शिष्यो ! तुम देखो !  
क्या से क्या वे बन जाते हैं । इस प्रकारके उनके परिवर्तनमें छिपी हुई  
कौन वस्तु काम करती है कि जिससे मोहके उदयकी प्रबलता जागृत  
बन उनका सर्वसंहारक बनती है ? इसका उत्तर सूत्रकार “वशार्ताः  
कातराः जनाः लूषका भवन्ति” इस पंक्तिसे देते हैं । वे कहते  
हैं-इसमें प्रबल अपराध कषायवशवर्तिताका है । इतना सब कुछ करने  
पर भी वे जो प्रबल मोहके उदयसे पतित बना दिये जाते हैं, उसका  
प्रधान कारण उनका कषायोंसे युक्त होना है । कषायोंसे युक्त होनेके  
कारण ही जीव आर्त्त एवं रौद्रध्यानवाले होते हैं । जिस प्रकार श्रुगाल  
जरासा भी ध्वनि पाकर अपने स्थानसे भाग खड़ा होता है, उसी प्रकार  
ये भी परीषह और उपसर्ग आने पर, उनसे भयभीत बनकर अपने

ઉપાડી કયાં પછાડી દે છે. એ અંગે સૂત્રકાર “પશ્ય દીનાન્ ઉત્પતિતાન્ પ્રતિપતતઃ”  
આ પંક્તિદ્વારા પ્રગટ કરે છે. તેઓ આમાં બતાવે છે કે પ્રબળ મોહના ઉદયથી  
સંયમસ્થાનથી ઉછળી કર્મની વિચિત્રતાથી જીવ કારાગારતુલ્ય ગૃહસ્થવાસમાં જઈ  
પડે છે. ત્યાં શ્રુગાલની માફક નીચ મનોવૃત્તિથી યુક્ત બની સાંસારિક દુઃખોથી  
વ્યાકુળ થતો રહે છે. શિષ્યને સંબોધન કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે હે શિષ્યો !  
તમે જુઓ; ઘડીમાં શું થી શું થઈ જાય છે. આ પ્રકારના એના પરિવર્તનમાં કંઈ  
એવી છુપી વસ્તુ કામ કરે છે કે જેથી મોહના ઉદયની પ્રબલતા બનત તથા  
એનો સર્વ સંહાર કરે છે ? આનો ઉત્તર સૂત્રકાર વશાર્તાઃ કાતરાઃ જનાઃ  
લૂષકા ભવન્તિ” આ પંક્તિથી આપે છે. તેઓ કહે છે-આમાં પ્રબળ અપરાધ  
કષાયવશવશવર્તિતાનો છે. આટલું કરવા છતાં પણ મોહના પ્રબળ ઉદય એને પતિત  
બનાવી દે છે. આનું પ્રધાન કારણ એનું કષાયોથી યુક્ત થવું છે. કષાયોથી યુક્ત  
થવાના કારણે જ જીવ આર્ત-રૌદ્ર ધ્યાનવાળો બની જાય છે. જે રીતે શ્રુગાલ



જનાઃ સન્તિ તે લૂપકાઃ=વ્રતવિધ્વંસકા ભવન્તિ । અષ્ટાદશશીલાઙ્ગસહસ્રાણિ ધારયિતું કઃ પારયિષ્યતીત્યવધાર્ય દ્રવ્યલિઙ્ગં ભાવલિઙ્ગં ચ વિહાય સર્વથા ષટ્કાયવિરાધકા ભવન્તીતિ ભાવઃ ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

પશ્ચાત્કૃતાનાં લોકેઽવહેલના ભવતીત્યાહ-‘અહમેગેસિં’ ઇત્યાદિ ।

મૂલ્કમ્-અહમેગેસિં સિલોઽ પાવણ ભવઈ, સે સમણવિઘ્ભંતે સમણવિઘ્ભંતે ॥ સૂ૦ ૧૧ ॥

છાયા-અથૈકેષાં શ્લોકઃ પાપકો ભવતિ, સ શ્રમણવિઘ્નિન્તઃ શ્રમણવિઘ્નિન્તઃ ।

ટીકા-અથ=દ્રવ્યભાવલિઙ્ગત્યાગાનન્તરમ્ એકેષાં=યે મગ્નપ્રતિજ્ઞાઃ પરિત્યક્ત-સંયમાસ્તેષાં મધ્યે કેચિત્પ્રવ્રજ્યાત્યાગસમનન્તરમેવ ધ્રિયન્તે, કેચિદલ્પકાલેન, યથા કૃષીવલ્લમુર્નિર્ભગવદભિમુખં રજોહરણ-સદોરકમુખવસ્ત્રિકા-વસ્ત્ર-પાત્રાણિ પ્રક્ષિપ્ય સમવસ-

મહાવ્રત-આરાધન-રૂપ સ્થાનસે ભાગ સ્વડે હોતે હૈં-અર્થાત્ વ્રતોંકે લોપ કરનેવાલે હોતે હૈં । દ્રવ્યલિઙ્ગ તથા ભાવલિઙ્ગકો તજ કર યે સર્વથા ષટ્કાયકે જીવોંકે વિરાધક હો જાતે હૈં ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

પછાકડોંકી લોકમેં અવલેહના હોતી હૈ-ઈસ વાતકો પ્રદર્શિત કરનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈં-“અહમેગેસિં” ઇત્યાદિ ।

દ્રવ્યલિઙ્ગ ઔર ભાવલિઙ્ગકે ત્યાગકે વાદ અપની પ્રતિજ્ઞાભઙ્ગ કરનેવાલે તથા સંયમકા પરિત્યાગ કરનેવાલે ડન જીવોંમેં સે કિન્હોં ૨ જીવોંકી પ્રવ્રજ્યા ત્યાગકે અનન્તર સમયમેં હી મૃત્યુ હો જાતી હૈ, તથા કિન્હોં ૨ કી કુછ સમય પશ્ચાત્, જૈસે કૃષીવલ્લ મુનિકી કિ જિસને ભગવાન્કે સમક્ષ હી રજોહરણ, સદોરક મુખવસ્ત્રિકા એવં વસ્ત્ર ઔર પાત્રોંકા પરિત્યાગ કર દિયા થા, સમવસરણકી ભૂમિસે વાહર નિકલતે સમય હી

(સિયાળ) જરા ખડખડાટ સાંભળતાં પોતાના સ્થાનથી ભાગે છે એ જ રીતે એ પણ પરિષદ અને ઉપસર્ગ આવતાં એનાથી ભયભીત બની પોતાના મહાવ્રતોની આરાધનાના સ્થાનેથી ભાગી છૂટે છે. અર્થાત્ મહાવ્રતોને ભાંગી નાંખે છે. દ્રવ્યલિંગ તથા ભાવલિંગને છોડીને ષટ્કાયના જીવોના એ સદા વિરાધક બની બાધ છે. (સૂ૦ ૧૦)

પછાકડાઓની લોકોમાં મશ્કરી થાય છે આ વાતને પ્રદર્શિત કરવા સૂત્રકાર કહે છે. “અહમેગેસિં” ઇત્યાદિ.

દ્રવ્યલિંગ અને ભાવલિંગના ત્યાગ બાદ, પોતાની પ્રતિજ્ઞા ભંગ કરવાવાળા અને સંયમ પરિત્યાગ કરવાવાળા તે જીવોમાંથી કોઈ કોઈ જીવની પ્રવ્રજ્યા ત્યાગના બાદના સમયમાં જ મૃત્યુ થઈ બાધ છે. તથા કોઈ કોઈની થોડા સમય બાદ; જેવી રીતે કૃષીવલ્લ મુનિનું કે જેણે ભગવાનની સમક્ષ જ રજોહરણ સદોરક-

રણાદ્ બહિર્નિર્ગતસ્તદાનીમેવ મૃતઃ, યથા વા તતોઽધિકેન કાલેન કણ્ડરીકઃ, કેચિચ્ચ તતોઽધિકમપિ જીવન્તિ, તેષાં શ્લોકઃ=ચારિત્રગ્રહણતત્પરિપાલનજનિતયશઃકીર્તિ-રૂપઃ પાપકઃ=સ્વપક્ષપરપક્ષે સર્વત્ર ભૂમણ્ડલે ચાશ્લોકો ભવતિ-ભગ્નોત્સાહાનાં ભગ્ન-પરાક્રમાણાં ભગ્નમહાવ્રતાનાં લોકે સર્વત્ર નિન્દા ભવતિ । યથા—

“ પરલોકવિરુદ્ધાનિ, કુર્વાણં દૂરતસ્ત્યજેત્ ।

આત્માનં યો ન સંધત્તે, સોઽન્યસ્મૈ સ્યાત્કથં હિતઃ ” ॥ ૧ ॥ ઇતિ ।

નિન્દામેવદર્શયતિ—‘સઃ’ ઇત્યાદિ, સઃ=અસૌ શ્રમણવિભ્રાન્તઃ=શ્રમણઃ પશ્ચાદ્વિભ્રાન્તઃ, શ્રમણો ભૂત્વા પશ્ચાદ્બ્રષ્ટ ઇતિ । અત્ર મૂલે ‘શ્રમણવિભ્રાન્તઃ’

મૃત્યુ હો ગઈ થી, કણ્ડરીકકી ચારિત્રત્યાગકે કુછ કાલ બાદ હી મૃત્યુ હુઈ થી, કોઈ મનુષ્ય ચારિત્રત્યાગકે બાદ બી જીવિત રહતે હૈં । એસે જીવોં કી સ્વપક્ષ ઔર પરપક્ષમેં તથા સર્વત્ર અપકીર્તિ ફૈલતી હૈ! લોગ કહતે હૈં કિ યહ ભગ્ન ઉત્સાહવાલા હૈ, ભગ્ન પરાક્રમવાલા હૈ, ભગ્ન મહાવ્રત-વાલા હૈ; ઇસ પ્રકાર લોકમેં સબ જગહ ઉસકી નિંદા હોતી હૈ । ઠીક હી હૈ—લોકમેં ભગ્ન ઉત્સાહવાલોંકી, ભગ્ન પરાક્રમવાલોંકી, ભગ્ન મહાવ્રતવાલોંકી નિંદા હોની હી ચાહિયે; ક્યોં કિ—“પરલોકવિરુદ્ધાનિ કુર્વાણં દૂરતસ્ત્યજેત્ । આત્માનં યો ન સંધત્તે સોઽન્યસ્મૈ સ્યાત્કથં હિતઃ॥” પરલોક વિરુદ્ધ કાર્યોંકો કરનેવાલે વ્યક્તિકા દૂરસે પરિત્યાગ કર દેના ચાહિયે । જો સ્વયંકા હિત નહીં કર સકતા હૈં વહ દૂસરોંકા કેસે હિતકારક હો સકતા હૈ । નિંદાકા પ્રકાર પ્રકટ કરનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈં—“સ શ્રમણવિભ્રાન્તઃ ” યહ ચારિત્રબ્રષ્ટ શ્રમણ હો કર પશ્ચાત્ વિભ્રાન્ત-બ્રષ્ટ હુઆ હૈ, ઇસ-

મુખવસ્ત્રિકા અને વસ્ત્ર તથા પાત્રોનો ત્યાગ કર્યો, અને સમવસરણુની ભૂમિથી બહાર ની-કળતા સમયે જ તેનું મૃત્યુ થયેલું. કણ્ડરીકનું ચારિત્રત્યાગ બાદ થોડા કાળે મૃત્યુ થવા પામેલું. કોઈ મનુષ્ય ચારિત્ર ત્યાગ બાદ પણ જીવિત રહે છે એવા જીવોની સ્વપક્ષ અને પરપક્ષમાં પણ અપકીર્તિ સર્વત્ર ફેલાય છે. લોકો કહે છે કે આ ઉત્સાહ વગરનો છે, પરાક્રમ વગરનો છે, મહાવ્રતનો ત્યાગ કરનાર છે; આ પ્રકારે લોકોમાં સર્વત્ર તેની નિંદા થાય છે. ઠીકજ છે—લોકોમાં ઉત્સાહ રહિતની, પરાક્રમ રહિતની તથા મહાવ્રતનો ત્યાગ કરનારની નિંદા થવી જ નેઈ એ. કેમ કે—“ પરલોકવિરુદ્ધાનિ, કુર્વાણં દૂરતસ્ત્યજેત્ । આત્માનં યો ન સંધત્તે સોઽન્યસ્મૈ સ્યાત્ કથં હિતઃ॥ ”—પરલોક વિરુદ્ધ કાર્યોનો કરનાર વ્યક્તિનો દૂરથી ત્યાગ કરવો નેઈ એ. જે પોતાનું હિત નથી કરી શકતા તે બીજાઓનું હિત કેવી રીતે કરી શકે. નિંદાનો પ્રકાર પ્રગટ કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે “ સ શ્રમણવિભ્રાન્તઃ ” ઇતિ. આ ચારિત્રબ્રષ્ટ સાધુ બનીને પાછળથી વિભ્રાન્ત-બ્રષ્ટ થયેલ છે, માટે શ્રમણ-



ઇતિ દ્વિસ્તુતેનેદમુક્તં ભવતિ-લોકે સર્વત્ર પ્રતિદેશં પ્રતિગ્રામં પ્રતિનગરં પ્રતિસ્થલં પ્રતિજનં સંયમભ્રષ્ટાનાં નિન્દા પ્રસરતીતિ ॥ સૂ. ૧૧ ॥

કિંચ-‘પાસહેગે’ इत्यादि ।

મૂલ-પાસહેગે સમન્નાગેહિં અસમન્નાગે, ણમમાણેહિં અણ-મમાણે, વિરણેહિં અવિરણે, દવિણેહિં અદવિણે અભિસમેચ્ચા પંડિણે મેહાવી ણિટ્ઠિયદ્દેવીરે આગમેણં સયા પરકમેજ્જાસિ-ત્તિવેમિ ॥ ૧૨ ॥

છાયા-પશ્યત એકે સમન્વાગતૈઃ અસમન્વાગતાઃ, નમદ્ધિરનમન્તઃ, વિરતૈરવિરતાઃ, દ્રવિકૈરદ્રવિકાઃ । અભિસમેત્ય પંડિતઃ મેહાવી નિષ્ઠિતાર્થઃ વીરઃ આગમેન સદા પરાક્રમેથાઃ, इति ब्रवीमि ॥ सू० १२ ॥

ટીકા-હે શિષ્યો ! પશ્યત યૂયં કર્મપ્રભાવમ્, એકે કેચન હતભાગ્યાઃ સમન્વા-ગતૈઃ=ઉગ્રવિહારિભિઃ સહ વસન્તોઽપિ અસમન્વાગતાઃ=શીતલવિહારિણો ભવન્તિ । તથા-નમદ્ધિઃ=સંયમારાધકતયા વિનયનઘ્નૈઃ સહ સ્થિતા અપિ અનમન્તઃ=અવિનીતા અહઙ્કારિણઃ, તથા વિરતૈઃ=વિરતિમદ્ધિઃ સહ નિવસન્તોઽપિ અવિરતાઃ=વિરતિર-

લિયે શ્રમણવિભ્રાન્ત હૈ । મૂલ સૂત્રમેં યહ પદ દો બાર કહા ગયા હૈ; સો ઉસકા યહ મતલબ હૈ-કિ લોકમેં સર્વ જગહ-હરેક ગાંવમેં, હરેક નગરમેં, હરેક સ્થાનમેં ઓર પ્રત્યેક મનુષ્યમેં સંયમસે બ્રષ્ટ હુઅ મનુષ્યોં કી નિન્દા હોતી હૈ ॥ સૂ. ૧૧ ॥

તથા-“પાસહેગે” इत्यादि ।

શિષ્યોંકો સંબોધિત કરતે હુઅ સૂત્રકાર કહતે હૈં કિ હે શિષ્યો ! તુમ લોગ કર્મોંકે પ્રભાવકો તો દેખો, બિચારે હતભાગ્ય કોઈ સાધુજન ઉગ્ર વિહાર કરનેવાલોંકે સાથ રહતે હુઅ બી શીતલવિહારી હોતે હૈં, સંયમકે આરાધન કરનેવાલે હોનેસે વિનીત સાધુઓંકે સાથ એક જગહ વસતે હુઅ બી ઉદ્ધતસ્વભાવકે અહંકારી હોતે હૈં, વિરતિવાલોંકે સાથ

વિભ્રાન્ત છે. મૂળ સૂત્રમાં આ પદ બે વાર કહેવામાં આવેલ છે. તેનો આ મતલબ છે કે લોકોમાં સર્વ જગ્યા, દરેક ગામમાં, દરેક નગરમાં, દરેક સ્થાનમાં અને પ્રત્યેક મનુષ્યમાં સંયમથી બ્રષ્ટ થયેલા મનુષ્યની નિંદા થાય છે. (સૂ. ૧૧)

તથા-“પાસહેગે” इत्यादि.

શિષ્યોને સંબોધીને સૂત્રકાર કહે છે કે, હે શિષ્યો ! તમે કર્મોનો પ્રભાવ તો જુઓ. બીચારા હતભાગી કોઈ સાધુજન ઉગ્રવિહાર કરવાવાળાઓની સાથે રહેવા છતાં પણ શીતલવિહારી બને છે. સંયમનું આરાધન કરવાવાળા હોવાથી વિનીત સાધુઓની સાથે રહેવા છતાં પણ ઉદ્ધતસ્વભાવના તથા અહં-કારી હોય છે. વિરતિવાળાઓની સાથે હંમેશા સ્થિતિ કરવા છતાં પણ અવિરતિ-



હિતાઃ, તથા દ્રવિકૈઃ=સંયમારાધકૈઃ સહાવસ્થિતા અપિ અદ્રવિકાઃ=સંયમાનારાધકા  
 એવ તિષ્ઠન્તિ । હે શિષ્ય ! ત્વં તુ અભિસમેત્ય=સમન્વાગતાદિમહાપુરુષાન્ સંપ્રાપ્ય-  
 તૈઃ સહ નિવાસં કૃત્વા, પઙ્કિતઃ=સમ્યગ્જ્ઞાનવાન્ મેધાવી=સાધુ સામાચારીવ્યવસ્થિતઃ  
 નિષ્ઠિતાર્થઃ=વિગતવિષયસુખસ્પૃહઃ, તથા વીરઃ=પરીષદોપસર્ગસહનપુરસ્સરં કર્મશત્રુ-  
 દલનદક્ષઃ સન્ આગમેન=તીર્થઙ્કરોપદેશાનુસારેણ સદા સર્વદા પરાક્રમેથાઃ=તપઃ-  
 સંયમે પરાક્રમં સ્ફોરય । ઇતિ બ્રવીમિ, વ્યાખ્યા પૂર્વવત્ ॥ સૂ૦ ૧૨ ॥

॥ ઇતિ ષષ્ઠાધ્યયનસ્ય ચતુર્થ ઉદ્દેશઃ સમાપ્તઃ ॥ ૬-૪ ॥

સદા સ્થિતિ કરતે હુએ ખી અવિરતિસંપન્ન હોતે હૈં, સંયમકી આરાધના  
 કરનેવાલોંકે સાથ નિવાસ કરતે હુએ ખી સંયમકી આરાધના કરનેસે  
 વંચિત રહતે હૈં । ઇસલિયે હે શિષ્ય ! તુમ ઉગ્રવિહારી, વિનયી, વિરતિ-  
 સંપન્ન ઓર સંયમારાધક સાધુઓંકે સાથ નિવાસ કરતે હુએ સમ્યગ્જ્ઞાન  
 સંપન્ન, સાધુ સામાચારીમેં વ્યવસ્થિત, વૈષયિક સુખતૃષ્ણાસે નિર્મુક્ત, ઓર  
 પરીષદ ઓર ઉપસર્ગોંકે સહનપૂર્વક કર્મશત્રુઓંકે વિનાશ કરનેમેં દક્ષ  
 હોતે હુએ, તીર્થઙ્કર પ્રભુકે ઉપદેશકે અનુસાર સદા તપ ઓર સંયમકી  
 આરાધના કરનેમેં વીર્યોલ્લાસી બનો । “ ઇતિ બ્રવીમિ ” ઇન પદોંકી  
 વ્યાખ્યા પહિલેકે સમાન સમજની ચાહિયે ॥ સૂ૦ ૧૨ ॥

॥ છઠ્ઠા અધ્યયન કા ચૌથા ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૬-૪ ॥

સંપન્ન બને છે. સંયમની આરાધના કરવાવાળાઓની સાથે નિવાસ કરવા છતાં  
 પણ સંયમની આરાધના કરવાથી વંચિત રહે છે. માટે હે શિષ્ય ! તમે ઉગ્રવિહારી,  
 વિનયી, વિરતિસંપન્ન અને સંયમ આરાધક સાધુઓની સાથે નિવાસ કરીને  
 સમ્યગ્જ્ઞાનસંપન્ન, સાધુસમાચારીમાં વ્યવસ્થિત, વૈષયિક તૃષ્ણાથી નિર્મુક્ત અને  
 પરિષદ અને ઉપસર્ગો સહન કરી કર્મશત્રુઓનો વિનાશ કરવામાં દક્ષ બનો.  
 તીર્થઙ્કર પ્રભુના ઉપદેશ અનુસાર સદા તપ અને સંયમની આરાધના કરવામાં  
 વીર્યોલ્લાસી બનો. “ ઇતિ બ્રવીમિ ” આ પદોની વ્યાખ્યા પહેલાની માફક સમજવી.

છઠ્ઠા અધ્યયનને યોથો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૬-૪ ॥

### । अथ षष्ठाध्ययनस्य पञ्चम उद्देशः ।

इहानन्तरचतुर्थोद्देशके गौरवत्रयविधूननं निगदितम् । तदर्थं चोद्देशकार्यमुप-  
संहरन्—‘ वीरे सया आगमेणं परक्कमेज्जासि ’ इति वाक्येन ‘ मुनिना  
तीर्थङ्करोपदेशानुसारेण वर्त्तितव्य ’मित्यबोधि । अथ तच्च गौरवत्रयविधूननं  
परीषहोपसर्गमानापमानविधूननेन विना सम्पूर्णतया न भवितुमर्हतीत्यतस्तत्प्रदर्श-  
यितुं पञ्चमोद्देशमुपक्रमते, तत्र परीषहोपसर्गादीनि कुत्र संभवन्तीति दर्शयितुमाह—  
‘ से गिहेसु वा ’ इत्यादि ।

मूलम्—से गिहेसु वा गिहंतरेसु वा गामेसु वा गामंतरेसु वा  
नगरेसु वा नगरंतरेसु वा जणवणसु वा जणवयंतरेसु वा संते-

### छट्ठा अध्ययनका पाँचवाँ उद्देश ।

इस छठे अध्ययनके चतुर्थ उद्देशमें सूत्रकारने तीन गौरवोंके त्याग  
करनेका उपदेश दिया है । उस उपदेशके अन्दर उद्देशमें कथित अर्थका  
उपसंहार करते हुए उन्होंने “ वीरे सया आगमेणं परक्कमेज्जासि ” इस  
वाक्यसे “ मुनियोंको तीर्थङ्कर प्रभुके उपदेशके अनुसार रहना चाहिये ”  
यह समझाया है । यह गौरवत्रयका त्याग परीषह, उपसर्ग, मान और  
अपमानके सहे विना पूर्ण रूपमें नहीं हो सकता है । इसलिये इसी  
विषयका प्रदर्शन करनेके लिये इस पञ्चम उद्देशका प्रारंभ किया गया है।  
उसमें सर्व प्रथम सूत्रकार परीषह और उपसर्ग कहां पर संभवित होता  
है—इस बातको दिखानेके लिये “ से गिहेसु ” इत्यादि सूत्र कहते हैं—

### छट्ठा अध्ययनको पांचवाँ उद्देश

छट्ठा अध्ययनका चौथा उद्देशमां सूत्रकारे त्रणु गौरवोना त्यागनो उपदेश  
आपेल छे. ते उपदेशमां चतुर्थोद्देशकथित अर्थनो उपसंहार करतां तेओओ  
“ वीरे सया आगमेणं परक्कमेज्जासि ” आ वाक्यथी “ मुनियोओ तीर्थंकर प्रभुना  
उपदेश—अनुसार रहवुं जेछेओ.” ते समज्जवुं छे. आ त्रणु गौरवोना त्याग  
परिषड, उपसर्ग, मान—अपमानने सह्या विना पूर्णइपथी जनतो नथी. तेथी  
आ विषयने समज्जववा भाटे आ पांचमा उद्देशनो प्रारंभ करेल छे. आमां  
सर्वप्रथम सूत्रकार परिषड अने उपसर्ग कयां कयां संभवितअने छे ओ बात  
देखाउवा भाटे “ से गिहेसु ” इत्यादि सूत्र कहे छे.

गइया जणा लूसणा भवंति, अदुवा फासा फुसंति, ते फासे पुट्टो धीरो अहियासए ओए समियदंसणे ॥ सू० १ ॥

छाया—तस्य गृहेषु वा गृहान्तरेषु वा ग्रामेषु वा ग्रामान्तरेषु वा नगरेषु वा नगरान्तरेषु वा जनपदेषु वा जनपदान्तरेषु वा सन्त्येकके जना लूषका भवन्ति, अथवा स्पर्शाः स्पृशन्ति; तान् स्पर्शान् स्पृष्टः धीरः अध्यासयेत् ओजः समित-दर्शनः ॥ सू० १ ॥

टीका—तस्य=आहारादि ग्रहीतुं गच्छतो मुनेः, गृहेषु वा उच्चनीचमध्यम-कुलेषु, गृहान्तरेषु वा गृहसमीपेषु, ग्रामेषु वा ग्रामसमीपेषु वा, नगरेषु वा नगरसमी-पेषु वा, तथा ग्रामानुग्रामं विहरतश्च जनपदेषु वा=देशेषु मगधादिषु, जनपदान्तरेषु=देशसीमासु, उपलक्षणत्वात् उद्यानेषु वा उद्यानान्तरेषु वा, तथा-विहारभूमिषु स्वाध्यायं कुर्वतो, विचारभूमिषु शरीरचिन्तार्थं गच्छतो गतस्य वा, एकके=एके ये केचन कषायोपहतचेतसो जनाः लूषकाः=परीषहोपसर्गादिकारकाः भवन्ति। अथवा

आहारादि ग्रहण करनेके निमित्त जाते हुए मुनिजनको घरोंमें—उच्च, नीच और मध्यम कुलोंमें, घरके आसपासमें, गावोंमें, गांवोंके आसपासमें, नगरमें, नगरके आसपासमें, तथा एक ग्रामसे दूसरे ग्राममें विहार करते हुए मुनिको मगधादिक जनपदमें, जनपदकी सीमा-हदमें, उपलक्षणसे बगीचामें, बगीचाके आसपासमें, तथा-स्वाध्याय करनेवाले मुनिको विहार भूमिमें, शौचादिकी निवृत्तिके लिये जाते हुए अथवा गये हुए साधुको विचारभूमि-नगरके बाहिरी जंगल (वन) आदि प्रदेशमें, कई एक कि जिनका चित्त कषायसे मलिन हो रहा है—व्याप्त या युक्त बना हुआ है ऐसे दुष्ट मनुष्य उपसर्ग और परीषह आदि करनेवाले होते ही हैं। अथवा—वात, पित्त और कफजनित दुःख विशेष या तृण-स्पर्श, दंशमंशक, शीत उष्ण आदि जनित दुःख भी कभी २ उन्हें दुःखित

आहारादि ग्रहण करवा निमित्त जतां मुनिजनने घरोंमां—उच्च, नीच અને मध्य कुणोंमां घरनी आसपासमां, गावमां, गावनी आसपासमां, नगरमां, नगरनी आसपासमां, तथा ओक गावथी थीज गावमां विहार करनार मुनिने मगधादिक जनपदमां, जनपदनी सीमा-हदमां, उपलक्षणथी भगीयामां, भगीयानी आसपासमां तथा स्वाध्याय करवावाणा मुनिने विहार भूमिमां, शौचादिनी निवृत्ति माटे जतां अथवा आवतां साधुने विचारभूमि-नगरनी अहार जंगल (वन) आदि प्रदेशमां, केटलाक दुष्ट मनुष्य के नेनुं चित्त कषायथी मलिन अनेल छे—आकुण-आकुण अनेल छे; उपसर्ग અને परिषह करनार डाय छे. अथवा वात, पित्त



સ્પર્શાઃ=દુઃસ્વવિશેષાઃ વાતપિત્તકફદોષજનિતાઃ, તૃણસ્પર્શદંશમશકશીતોષ્ણાદિજનિતા  
વા સ્પૃશન્તિ=કદાચિદભિભવન્તિ; તૈઃ=પરીષહોપસર્ગાદિભિઃ સ્પૃષ્ટઃ ઓજઃ=૬૬૬; રાગ-  
દ્રેષાદિરહિતઃ સમિતદર્શનઃ=ઉપશાન્તાધ્યવસાયઃ, યદ્વા સમિતદર્શનઃ=સમતામિતં  
સમિતં દર્શનં યસ્ય સઃ, સમદૃષ્ટિરિત્યર્થઃ; ધીરઃ=અક્ષોભ્યઃ સન્ તાન્=લૂષકકૃતાન્  
વાતાદિદોષજનિતાત્ તૃણસ્પર્શાદિજનિતાન્ વા સ્પર્શાન્=દુઃસ્વવિશેષાન્ અધ્યાસયેત્=  
અધિસહેત; નરકાદિદુઃસ્વં યથા કર્મોદયજનિતં તથા મદીયમેતત્સર્વં સ્વકર્મોદયફલ-  
મિત્યેતન્મયૈવ સોઢવ્યમિત્યવધાર્ય સમ્યક્ તિર્તિક્ષેત इत्यर्थः ॥ सू० १ ॥

કિંચ—‘દયં’ ઇત્યાદિ ।

કરતે હી રહતે હૈં । હસલિયે ડન પરીષહ ઓર ઉપસર્ગ આદિસે સતાયે ગયે  
યા ઉપદ્રવિત કિયે ગયે વે રાગદ્રેષરહિત સમ્યગ્દૃષ્ટિ મુનિજન અક્ષોભ્ય  
હોતે હુયે ડન વાતાદિદોષ જનિત અથવા તૃણસ્પર્શાદિસે હોનેવાલે દુઃસ્વ-  
વિશેષોંકો સહન કરે, ઘબરાવેં નહીં । ડસ સમય વે યહી વિચારે—કિ  
જિસ પ્રકાર કર્મકે ઉદયજનિત નરક આદિકે દુઃસ્વોંકો મૈંને હી અન-  
ન્તવાર સહન કિયે હૈં, ડસી તરહ યે સબ ખી હમારે કર્મોદયજનિત હૈં;  
હસલિયે હમૈં હી ઇન્હેં મધ્યસ્થભાવસે સહના ચાહિયે, ઈસા નિશ્ચય કર  
અચ્છી તરહ—વિના કિસી આકુલતાકે ડન્હેં સહેં । સમતાકો પ્રાપ્ત જિસકા  
દર્શન હૈ ડસકા નામ સમિતદર્શન—સમ્યગ્દૃષ્ટિ હૈ ॥ સૂ० ૧ ॥

તથા—“દયં લોગસ્સ” ઇત્યાદિ ।

અને કંઈજનિત દુઃખવિશેષ અને તૃણસ્પર્શ, દંશમંશક, શીત ઉષ્ણ આદિ  
જનિત દુઃખ પણ એમને કોઈ કોઈ વખત દુઃખિત કરતો રહે છે.  
આ માટે એવા પરિષદ અને ઉપસર્ગ વગેરેથી સતાવેલ અને ઉપદ્રવિત કરા-  
એલ એ રાગદ્રેષરહિત સમ્યગ્દૃષ્ટિ મુનિજન અક્ષોભ્ય બનીને તે વાતાદિ દોષ  
જનિત અથવા તૃણ સ્પર્શાદિથી થવાવાળા દુઃખવિશેષોને સહન કરે. ગભરાય  
નહિ. એ સમયે એ એવું જ વિચારે કે જે પ્રકારે કર્મના ઉદયથી નરક  
આદિના દુઃખોને મેં અનેક વખતે સહન કરેલ છે, એ જ રીતે એ બધાં મારા  
કર્મના ઉદયરૂપ છે. આ માટે મારે પણ ભેને મધ્યસ્થભાવથી સહન કરવાં  
જોઈએ. એવો નિશ્ચય કરી સારી રીતે આકુલતારહિત એને સુહે. સમતાને પ્રાપ્ત  
જેતું દર્શન છે એનું નામ સમ્યગ્દૃષ્ટિ છે. (સૂ० ૧)

તથા—“દયં લોગસ્સ” ઇત્યાદિ.

મૂલમ્—દયં લોગસ્સ જાણિત્તા પાઈણં પડીણં દાહિણં ઉદીણં  
આઙ્કલ્લે વિભણ્ણે કિટ્ઠે વેયવી ॥ સૂ. ૨ ॥

છાયા—દયાં લોકસ્ય જ્ઞાત્વા પ્રાચીનં પ્રતીચીનં દક્ષિણં ઉદીચીનમ્ આચ-  
ક્ષીત વિભજેત્ કીર્તયેત્ વેદવિત્ ॥ સૂ. ૨ ॥

ટીકા—વેદવિત્—સર્વજ્ઞપ્રણીતાગમજ્ઞાનવાન્ મુનિઃ, લોકસ્ય જ્ઞાત્વા=દ્રવ્યતઃ  
ષડ્જીવનિકાયસ્વરૂપં વિજ્ઞાયેત્યર્થઃ, લોકસ્યેત્યત્ર—કર્મણઃ સમ્બન્ધમાત્રવિવક્ષાયાં  
ષષ્ઠીઃ; તથા—ક્ષેત્રતઃ—પ્રાચીનં=પૂર્વ, પ્રતીચીનં=પશ્ચિમં; દક્ષિણમ્, ઉદીચીનમ્=  
ઉત્તરમ્, ઉપલક્ષણત્વાદન્યાનપિ દિગ્વિભાગાન્ જ્ઞાત્વા=અભિસમીક્ષ્ય કાલતોયાવજ્જીવં  
ભાવતો રાગદ્વેષરહિતઃ સર્વત્ર દયાં કુર્વન્ ધર્મમાચક્ષીતઃ; યથા—સર્વે પ્રાણિનો દુઃખ-  
દ્વિષઃ સુખલિપ્સવઃ આત્મૌપમ્યેન સર્વદા દ્રષ્ટવ્યા इति । તથા ધર્મમાચક્ષાણઃ વિભ-  
જેત્=દ્રવ્યક્ષેત્રકાલભાવભેદૈઃ પ્રાણાતિપાતવિરમણાદિમિશ્ર પ્રરૂપયેત્ । કીર્તયેત્=  
ધર્માનુષ્ઠાનફલં કથયેત્ ॥ સૂ. ૨ ॥

સર્વજ્ઞરચિત આગમકે જ્ઞાતા મુનિ દ્રવ્યસે ષડ્જીવનિકાયસ્વરૂપકો  
જાન કર તથા ક્ષેત્રસે પૂર્વદિશા, પશ્ચિમદિશા, દક્ષિણદિશા ઓર ઉત્તર-  
દિશાકો, એવં ઉપલક્ષણસે ઇન દિશાઓંકે વિભાગોંકો જાનકર, કાલકી  
અપેક્ષા જીવનપર્યન્ત, ભાવસે રાગદ્વેષરહિત હોકર, સર્વત્ર ધર્મકા ઉપદેશ  
કરેં । ઉસ ઉપદેશમેં યહ અવશ્ય ૨ પ્રકટ કરેં કિ સમસ્ત સંસારી પ્રાણી  
દુઃખકો નહીંં ચાહતે હૈં ઓર સુખકે અભિલાષી હૈં, અતઃ સમસ્ત પ્રાણિઓં  
કો અપને સમાન સમજ્ઞના ચાહિયે, તથા વહ ધર્મ દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાલ ઓર  
ભાવકે ભેદોં એવં અહિંસા આદિ વ્રતોંકે ભેદોંકી અપેક્ષાસે અનેક પ્રકાર  
કા હૈં । ઇસ પ્રકાર ઉસકા વિભાગ કર પ્રરૂપણા કરેં । ધર્મકી આરાધનાસે  
જીવોંકો કયા ફલ મિલતા હૈં ? ઇસકા ભી વ્યાખ્યાન કરેં ।

સર્વજ્ઞરચિત આગમના જ્ઞાતા મુનિ દ્રવ્યથી ષડ્જીવનિકાયસ્વરૂપ લોક-  
સ્વરૂપ બ્રહ્મીને, તથા ક્ષેત્રથી પૂર્વદિશા, પશ્ચિમદિશા, દક્ષિણદિશા અને ઉત્તર-  
દિશા, અને ઉપલક્ષણથી આ દિશાના વિભાગોને બ્રહ્મીને, કાળની અપેક્ષા જીવન-  
પર્યંત, ભાવથી રાગ દ્વેષ રહિત બનીને સર્વત્ર ધર્મને ઉપદેશ કરે. આ ઉપદેશમાં  
તે અવશ્ય અવશ્ય પ્રગટ કરે કે સમસ્ત સંસારી પ્રાણી દુઃખને ચાહતા નથી,  
અને સુખના અભિલાષી છે. માટે સમસ્ત પ્રાણીઓને પોતાના સમાન સમજવા  
બોધ એ. તથા એ ધર્મ, દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર અને કાળ, ભાવના ભેદો અને અહિંસા આદિ  
વ્રતોના ભેદોની અપેક્ષાથી અનેક પ્રકારનો છે. આ પ્રકારે તેના વિભાગ કરી  
પ્રરૂપણા કરે. ધર્મની આરાધનાથી જીવોને શું ફળ મળે છે તેનું વ્યાખ્યાન કરે.



કિન્ન—‘ સે ઉદ્વિણ્ણુ વા ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—સે ઉદ્વિણ્ણુ વા અણુદ્વિણ્ણુ વા સુસ્સૂસમાણેસુ  
પવેદણ્—સંતિં વિરતિં ઉવસમં ણિવ્વાણં સોયં અજ્જવિયં મદ્ધવિયં  
લાઘવિયં અણ્ણવત્તિય ॥ સૂ૦ ૩ ॥

છાયા—ઉત્થિતેષુ વા અનુત્થિતેષુ વા શુશ્રૂષમાણેષુ પ્રવેદયેત્ શાન્તિં વિરતિમ્ ;  
ઉપશમં નિર્વાણં શૌચમ્ આર્જવિકં માર્દવિકં લાઘવિકમ્ અનતિપત્ય ॥ સૂ૦ ૩ ॥

ટીકા—સઃ=આગમવિત્ શુશ્રૂષમાણેષુ=શ્રોતુમિચ્છત્સુ ગુર્વાદિસેવાં કુર્વત્સુ વા  
ઉત્થિતેષુ=ગૃહીતપ્રવ્રજ્યેષુ વા અનુત્થિતેષુ=શ્રાવકાદિષુ વા શાન્તિમ્=શમનમ્—અહિંસા-

ભાવાર્થ—સર્વજ્ઞ ભગવાનદ્વારા પ્રતિપાદિત આગમકે જ્ઞાતા મુનિરાજ  
લોક આદિકા યથાર્થ સ્વરૂપ જ્ઞાન કર, જીવોંકી રક્ષાકે નિમિત્ત ધર્મકા  
ઉપદેશ દે । ઉસમેં વહ દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાલભાવકી, અથવા અહિંસા વ્રત  
આદિકી અપેક્ષાસે ધર્મકા વિસ્તારપૂર્વક કથન કરે, ઓર સાથમેં યહ  
ભી સ્પષ્ટ સમજાવેં કિ ધર્મકે આરાધનસે કિન ૨ જીવોંકો કિસ ૨ ફલ  
કી પ્રાપ્તિ હુઈ હૈ ॥ સૂ૦ ૨ ॥

તથા—“ સે ઉદ્વિણ્ણુ વા ” ઇત્યાદિ ।

આગમજ્ઞાતા વે મુનિ ધર્મકા ઉપદેશ કરતે સમય ઇન વિષયોંકા  
ભી વિવેચન કરે । ધાર્મિક ઉપદેશ સુનનેકે જો ઇચ્છુક હૈં ઉનકા નામ  
શુશ્રૂષમાણ હૈં, અથવા જો ગુરુઓંકી સેવા કરતે હૈં વે ભી શુશ્રૂષમાણ હૈં ।  
જિન્હોંને દીક્ષા ગ્રહણ કર લી હૈ વે ઉત્થિત હૈં ઓર શ્રાવક આદિ અનુત્થિત  
હૈં । ઇન સબકે લિયે વે આગમજ્ઞાતા મુનિ અહિંસા, મૃષાવાદ આદિસે

ભાવાર્થ—સર્વજ્ઞ ભગવાન્ દ્વારા પ્રતિપાદિત આગમના જ્ઞાતા મુનિરાજ લોક  
આદિનું યથાર્થ સ્વરૂપ જાણી જીવોની રક્ષા નિમિત્ત ધર્મનો ઉપદેશ દે. તેમાં તે  
દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ, ભાવ અને અહિંસાવ્રત આદિની અપેક્ષાથી ધર્મનું વિસ્તાર-  
પૂર્વક કથન કરે. અને સાથે સાથે એ પણ સમજાવે કે ધર્મના આરાધનથી  
કયા કયા જીવોને કયા કયા ફળની પ્રાપ્તિ થયેલ છે.

તથા—“ સે ઉદ્વિણ્ણુ વા ” ઇત્યાદિ.

આગમજ્ઞાતા એ મુનિ ધર્મનો ઉપદેશ કરતી વખતે એ વિષયોનું પણ  
વિવેચન કરે. ધાર્મિક ઉપદેશ સાંભળવામાં જે ઇચ્છુક છે તેનું નામ શુશ્રૂષમાણ  
છે, અથવા જે ગુરુઓની સેવા કરે છે તેઓ પણ શુશ્રૂષમાણ છે. જેઓએ દીક્ષા  
ગ્રહણ કરેલી છે તેઓ ઉત્થિત અને શ્રાવક આદિ અનુત્થિત છે, આ બધા માટે





ટીકા—મિશ્રુઃ=નિર્દોષમિશ્રાજીવી મુનિઃ સર્વપ્રાણિભૂતજીવસત્ત્વાનાં હિતં અનુ-  
વિચિન્ત્ય=પર્યાલોચ્ય ધર્મ=શ્રુતચારિત્રલક્ષણમ્-અગારધર્મમનમારધર્મ વા આચક્ષીત=  
પ્રતિબોધયેત્ । એકેન્દ્રિયાદિષુ સર્વેષુ પ્રાણિષુ કસ્યચિદપિ વિરાધના યથા ન ભવે-  
તથા ધર્મમુપદિશેદિતિ ભાવઃ ॥ સૂ. ૪ ॥

અનુવિચિન્ત્ય ધર્મમાચક્ષાણો મિશ્રુરન્યત્કિં કુર્યાદિત્યાહ-‘અણુવીઙ મિક્ષૂ’  
ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્-અણુવીઙ મિક્ષૂ ધમ્મમાઙ્કલમાણે ણો અત્તાણં  
આસાઙ્ગજ્ઞા, ણો પરં આસાઙ્ગજ્ઞા, ણો અન્નાઙં પાણાઙં મૂયાઙં  
જીવાઙં સત્તાઙં આસાઙ્ગજ્ઞા ॥ સૂ. ૫ ॥

નિર્દોષ મિશ્રાસે અપને શરીરકા નિર્વાહ કરનેવાલે મિશ્રુ સમસ્ત  
પ્રાણિયોં, સમસ્ત ભૂતોં, સમસ્ત જીવોં ઔર સમસ્ત સત્ત્વોંકા હિત વિચાર  
કર શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મકા, અથવા ગૃહસ્થ ઔર મુનિકે ધર્મકા વ્યાખ્યાન  
કરેં । એકેન્દ્રિયાદિક સમસ્ત પ્રાણિયોંમેંસે કિસી મી જીવકી વિરાધના  
જિસ તરહ કિસી મી જીવસે ન બને-ઇસ પ્રકારસે ધર્મકા ઉપદેશ દેકર  
જીવોંકો સમજાવેં । અથવા મુનિકા ધર્મ કયા હૈ ? ગૃહસ્થકા ધર્મ કયા હૈ ?  
ઇસ વિષયકો સમજાવેં । સમજાનેકી પદ્ધતિ ઇતની હૃદયરોચક ંવં  
ચિત્તાકર્ષક હો કિ જિસસે પ્રાણી ઉસ ઉપદેશકો સુન કર એકેન્દ્રિયા-  
દિક જીવોં તકકી મી વિરાધના કરના છોડ દેવેં ॥ સૂ. ૪ ॥

ધર્મકા વાર ૨ વિચાર કર કથન કરનેવાલા મિશ્રુ ઔર કયા કરે ?  
ઇસકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈ-“અણુવીઙ મિક્ષૂ” ઇત્યાદિ ।

નિર્દોષ મિશ્રાથી પોતાના શરીરનો નિર્વાહ કરવાવાળા મિશ્રુ સમસ્ત પ્રાણીયોં,  
સમસ્ત ભૂતોં, સમસ્ત જીવોં અને સમસ્ત સત્ત્વોંના હિતનો વિચાર કરી શ્રુત-  
ચારિત્રરૂપ ધર્મનું અથવા ગૃહસ્થ અને મુનિ ધર્મનું વ્યાખ્યાન કરે. એકેન્દ્રિ-  
યાદિક સમસ્ત પ્રાણીયોંમાંથી કોઈ પણ જીવની વિરાધના જે રીતે કોઈ પણ  
જીવથી ન બને આ પ્રકારથી ધર્મનો ઉપદેશ આપી જીવોંને સમજાવે, અને મુનિનો  
ધર્મ શું છે ? ગૃહસ્થનો ધર્મ શું છે ? આ વિષય સમજાવે. સમજાવવાની પદ્ધતિ એટલી  
હૃદયંગમ હોવી જોઈએ કે તેની અસર તાત્કાલિક પડોંચે; જેથી ઉપદેશ  
સાંભળનાર એકેન્દ્રિયજીવોંની તરફ પણ સદ્ભાવવાળો બને. (સૂ. ૪)

ધર્મનો વારંવાર વિચાર કરી જોડવાવાળા મિશ્રુ બીજું શું કરે ? આને  
માટે સૂત્રકાર કહે છે-“અણુવીઙ મિક્ષૂ” ઇત્યાદિ.



છાયા—અનુવિચિન્ત્ય મિશ્નુર્ધર્મમાચક્ષાણઃ નો આત્માનમાશાતયેત્, નો પરમાશાયેત્, નો અન્યાન્ પ્રાણાન્ ભૂતાન્ જીવાન્ સત્ત્વાન્ આશાતયેત્ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

ટીકા—ધર્મમ્ આચક્ષાણઃ=કથયન્ મિશ્નુઃ=સંયમી, અનુવિચિન્ત્ય=સર્વપ્રાણિ-હિતાહિતં પર્યાલોચ્ય આત્માનં=સ્વકીયમાત્માનં ન આશાતયેત્—સ્વાત્મન આશાતનાં સર્વથા ન કુર્યાત્, જ્ઞાનદર્શનચારિત્રવિરુદ્ધવર્તનેનાત્મનઃ સંસારપરિભ્રમણં ભવતિ તદેવાત્મન આશાતના વિરાધનેત્યર્થઃ। સા દ્વિવિધા—લૌકિકી લોકોત્તરા ચેતિ, એકૈકાઽપિ દ્રવ્યભાવભેદાદ્ દ્વિધા । તત્ર દ્રવ્યતો લૌકિકી સચિત્તાચિત્તમિશ્રદ્રવ્યવિષયા, ભાવતો વિનયાદિસ્વલિતસ્ય વિદ્યાદિલાભો યયા ન ભવતિ સા । દ્રવ્યતો લોકોત્તરા શરીરોપધિવિષયા, ભાવતસ્તુ જ્ઞાનદર્શનચારિત્રતપોવિનયાદિગુણવિષયા । તથા—

ધર્મકા ઉપદેશ કરનેવાલે મિશ્નુ-સંયમી સમસ્ત પ્રાણિયોંકે હિત ઓર અહિતકી પર્યાલોચના કર, અપની નિજ આત્માકી સર્વથા વિરાધના ન કરેં । જ્ઞાન, દર્શન ઓર ચારિત્રસે વિરુદ્ધ પ્રવર્તન કરનેસે આત્માકા જો સંસારમેં પરિભ્રમણ હોતા હૈ, વહ પરિભ્રમણ હી આત્માકી આશાતના-વિરાધના હૈ । યહ લૌકિકી, ઓર લોકોત્તરા કે ભેદસે પ્રકારકી હૈ । લૌકિકી એવં લોકોત્તરા યે દોનોં મી દ્રવ્ય ઓર ભાવકે ભેદસે દો દો ભેદવાલી હૈં । સચિત્ત, અચિત્ત ઓર મિશ્ર દ્રવ્યકો વિષય કરનેવાલી આશાતના દ્રવ્યસે લૌકિકી હૈ । અવિનયીકે જિસસે વિદ્યાદિકકા લાભ નહીં હોતા હૈ વહ ભાવસે લૌકિકી આશાતના હૈ । શરીર ઓર ઉપધિકો વિષય કરનેવાલી દ્રવ્યસે લોકોત્તરા આશાતના હૈ, તથા જ્ઞાન, દર્શન ઓર ચારિત્ર, તપ ઓર વિનયાદિક ગુણોંકો વિષય કરનેવાલી ભાવસે લોકોત્તરા

ધર્મનો ઉપદેશ કરનાર મિશ્નુએ સંયમ પાળવા ઉપરાંત બધા પ્રાણીઓના હિત અને અહિતની પર્યાલોચના કરી પોતાના આત્માની સર્વથા વિરાધના ન કરે. જ્ઞાન, દર્શન અને ચારિત્રથી વિરુદ્ધ પ્રવર્તન કરવાથી આત્માનું જે સંસારમાં પરિભ્રમણ થાય છે—એ પરિભ્રમણ જ આત્માની આશાતના—વિરાધના છે. આ લૌકિકી અને લોકોત્તરના ભેદથી બે પ્રકાર છે. લૌકિકી અને લોકોત્તર આ બન્ને પણ દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદથી બન્ને ભેદવાળી છે. સચિત્ત, અચિત્ત અને મિશ્ર દ્રવ્યનો વિષય કરવાવાળી આશાતના દ્રવ્યથી લૌકિકી છે. અવિનયીને જેથી વિદ્યાદિકનો લાભ નથી મળતો તે ભાવથી લૌકિકી આશાતના છે. શરીર અને અને ઉપધિનો વિષય કરવાવાળી દ્રવ્યથી લોકોત્તર તથા જ્ઞાન, દર્શન અને ચારિત્રમાં અવિનય આદિ ગુણોનો વિષય કરવાવાળી ભાવથી લોકોત્તર આશાતના



પરમ્=અન્યં, શુશ્રૂષુમાર્યમનાર્યમુત્થિતમનુત્થિતં વા ન આશાતયેત્, તથા-અન્યાન વા સામાન્યેન પ્રાણાન્=પ્રાણિનઃ ભૂતાન્ જીવાન્ સત્ત્વાન્, સર્વાનિત્યર્થઃ; ન આશાત-યેત્, ષડ્જીવનિકાયસ્વરૂપાઽપલાપેન સાવધોપદેશેન ચ ન વિરાધયેત્। इदमुक्तं भवति-तथाभूतमुपदेशं न कुर्यात् येन कस्यापि प्राणिनो विराधना समुत्पद्येत॥५॥

આશાતના હૈ। ઉપદેશ સુનનેકે લિયે અમિલાષી બને હુણકા નામ શુશ્રૂષુ, સર્વવિરતિરૂપ ચારિત્રકે પાલક ઉત્થિત ઔર ગૃહસ્થજન અનુત્થિત હૈં। इनमें से कोई भी हो, मुनिका कर्तव्य है कि वह इनकी आशातना (विराधना) न करे। इसी प्रकार सामान्यसे प्राणियोंकी, भूतोंकी, जीवोंकी, और सत्त्वोंकी वे आशातना करनेके अधिकारी नहीं हैं। ऐसा उपदेश न दें कि जिससे षड्जीवनिकायके स्वरूपका आपलाप हो और सावद्य व्यापारोंमें जीवोंकी प्रवृत्ति हो। क्यों कि इस प्रकारके उपदेशसे जीवोंकी प्रवृत्ति अन्य जीवोंकी विराधनाकी ओर उत्साहित होती है। कहनेका मतलब यह है कि ऐसा उपदेश मुनिको कभी नहीं देना चाहिये कि जिससे किसी भी जीवकी विराधना होवे।

ધર્મકા ઉપદેશ કરનેવાલા સંયમી સદા હસ વાતકા પૂર્ણ ધ્યાન રલે કિ, મેરે ઉપદેશસે જહાં તક હો સકે, સબ જીવોંકા કલ્યાણ હો। कुमार्गमें जानेवाले भी प्राणी इससे लाभ उठावें और वे सन्मार्गमें लग जावें। श्रोताओंके ऊपर उसी उपदेष्टाका प्रभाव पड़ता है जो स्वयं ज्ञान,

છે. ઉપદેશ સાંભળવા માટે ઉત્સુક બનેલાતું નામ સુશ્રૂષુ, સર્વવિરતિરૂપ ચારિ-ત્રના પાલક ઉત્થિત અને ગૃહસ્થજન અનુત્થિત છે. આમાંથી કોઈ પણ હો, મુનિતું કર્તવ્ય છે કે તે કોઈની વિરાધના ન કરે. આ જ રીતે સામાન્ય પ્રાણી-ઓની, ભૂતોની, જીવોની અને સત્ત્વોની તે વિરાધના કરવાના અધિકારી નથી. એવો ઉપદેશ ન આપે કે જેથી ષડ્જીવનિકાયના સ્વરૂપનો અપલાપ (સંતાડવાપણું) થાય અને સાવધ વ્યાપારોમાં જીવોની પ્રવૃત્તિ વધે. કેમકે આ પ્રકારના ઉપ-દેશથી જીવોની પ્રવૃત્તિ અન્ય જીવોની વિરાધના તરફ ઉત્સાહિત અને છે. કહેવાની મતલબ એ છે કે મુનિએ એવો ઉપદેશ ન દેવો જોઈ એ કે જેથી કોઈ પણ જીવની વિરાધના થાય.

ધર્મનો ઉપદેશ કરનાર સંયમી આ વાતને સદા પૂર્ણરીતે ધ્યાનમાં રાખે કે મારા ઉપદેશથી અને ત્યાં સુધી જીવોતું કલ્યાણ થાય. कुमार्गમાં જવાવાળા પ્રાણી પણ આનો લાભ મેળવે અને સન્માર્ગે ચાલવા લાગે, શ્રોતાઓ ઉપર આવા ઉપદેશકનો પ્રભાવ પડે છે જે સ્વયં જ્ઞાન દર્શન અને ચારિત્રથી વિદ્વ

एवम्भूतो मुनिः सर्वप्राणिनां शरणं भवतीति दृष्टान्तद्वारेण दर्शयति—  
'से अणासायए' इति ।

मूलम्—से अणासायएअणासायमाणे वज्झमाणानं पाणाणं  
भूयाणं जीवाणं सत्ताणं जहा से दीवे असंदीणे एवं से भवइ  
सरणं महामुणी ॥ सू० ६ ॥

छाया—सः अनाशातकः अनाशातयन् वध्यमानानां प्राणानां भूतानां जीवानां  
सत्त्वानां, यथा स द्वीपः असन्दीनः, एवं स भवति शरणं महामुनिः ॥ सू० ६ ॥

टीका—यथा सः=प्रसिद्धः असन्दीनः=जलोपप्लवर्हितः द्वीपः प्राणिनां शरणम्  
=आश्रयो भवति, एवं सः=असौ अनाशातकः=अविराधकः अनाशातयन्=आशातना-  
मकुर्वन् महामुनिः=तीर्थङ्करो गणधरो वा तपःसंयमलब्धिसम्पन्नोऽनगारो वा वध्य-  
दर्शन, और चारित्रसे विरुद्ध प्रवर्त्तन नहीं करता है । इसी लिये उस  
उपदेष्टाके लिये प्रभुका यह आदेश है कि वह अपनी आशातना ( विरा-  
धना ) न करे । जो स्वयं धर्मसे विरुद्ध प्रवृत्तिशाली होता है, वह दूसरों  
को सुमार्गपर नहीं ला सकता है ॥ सू० ५ ॥

ऐसा मुनि सर्व प्राणियोंका शरणभूत होता है—इस बातको दृष्टान्त  
द्वारा सूत्रकार दिखलानेके लिये “ से अणासायए ” यह सूत्र कहते हैं—

असन्दीन द्वीप कि जिसके चारों ओर पानी होते हुए भी जो  
स्वयं जलके उपद्रવसे रहित होता है—ऐसा प्रदेशविशेष जैसे  
अनेक प्राणियों का आश्रयभूत होता है, इसी तरह अनाशातक  
—अविराधक महामुनि—तीर्थङ्कर अथवा गणधर देव या तप और  
संयमकी लब्धिवाले मुनिजन भी आशातना (विराधना) से रहित होकर

પ્રવૃત્તિ ન કરતા હોય. આ માટે ઉપદેશકને પ્રભુનો એ આદેશ છે કે તે  
પોતાની વિરાધના ન કરે. જે સ્વયં ધર્મથી વિરુદ્ધ ચાલનાર હોય છે તે બીજાને  
સુમાર્ગ ઉપર લાવી શકતા નથી. (સૂ૦ ૫)

એવા મુનિ સર્વપ્રાણીઓના શરણભૂત હોય છે એ. વાત દૃષ્ટાન્તદ્વારા  
સૂત્રકાર બતાવવા માટે “ સે અણાસાયએ ” આ સૂત્ર કહે છે.

અસન્દીન બેટ કે જેની ચારે તરફ પાણી હોય છે છતાં તે જળના ઉપદ્ર-  
વથી રહિત રહે છે. આવો પ્રદેશ અનેક પ્રાણીઓનો આશ્રયઠાતા બને છે. એ જ  
રીતે અનાશાતક—અવિરાધક મહામુનિ—તીર્થંકર અથવા ગણધરદેવ તેમજ તપ  
અને સંયમની લબ્ધિવાળા મુનિજન પણ, આશાતના (વિરાધના)થી રહિત થઈને



માનાનાં પ્રાણાનાં ભૂતાનાં જીવાનાં સત્ત્વાનાં સર્વેષાં તદ્રક્ષણોપાયપ્રદર્શનતઃ શરણં  
ભવતિ । વધકાનાં ચ તદધ્યવસાયાન્નિવર્તનેન વિશિષ્ટગુણસ્થાનાવસ્થાપનાચ્છરણં  
ભવતિ । તથાહિ-અગારાનગારધર્મમાચક્ષાણસ્તથાવિધો મહાપુરુષઃ કતિચન પ્રવ્રાજ-  
યતિ; કતિચન શ્રાવકવ્રતે પ્રવર્તયતિ, કતિચન સમ્યક્ત્વં પ્રાપયન્ મોક્ષમાર્ગસ્ય  
પ્રથમસોપાને સમારોહયતિ, કતિચન પ્રકૃતિભદ્રાન્ કરોતિ, પ્રગાઢમિથ્યાત્વવતશ્ચાપિ  
કતિચન નવનીતવન્મૃદુલમાનસાન્ વિદધાતીતિ ॥ સૂ. ૬ ॥

ઉક્તમર્થમુપસંહરન્નાહ-‘એવં સે ઉદ્ધિએ’ ઇત્યાદિ ।

સમસ્ત પ્રાણી, ભૂત, જીવ ઓર સત્ત્વકી રક્ષાકે ઉપાય દિશ્વાનેકે કારણ  
સમસ્ત પ્રાણિયોંકે, સમસ્ત ભૂતોંકે, સમસ્ત જીવોંકે ઓર સમસ્ત સત્ત્વોં  
કે આશ્રય-શરણ હોતે હૈં । તથા-વે ડન પ્રાણી આદિકે વધ કરનેવાલોંકે  
મી, ડન્હેં હિંસાકે વ્યાપારસે નિવૃત્ત કર વિશિષ્ટ ગુણસ્થાનમેં પહુંચાનેકે  
કારણ; શરણ હોતે હૈં । સબકે શરણ વે મહામુનિ વધ કરનેવાલે જીવોં  
મેં સે કિતનેક જીવોંકો ઉપદેશ દે કર દીક્ષિત કર દેતે હૈં,  
કહ્યોંકો શ્રાવકોંકે વ્રતોંમેં સ્થાપિત કર દેતે હૈં, કિતનેકોં કો  
સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત કરા કર મોક્ષમાર્ગકી પ્રથમ સીઢી પર ચઢા દેતે હૈં, ઓર  
કિતનેક પ્રાણિયોંકો પ્રકૃતિસે ભદ્ર બના દેતે હૈં । યહાં તક કિ જિનકે  
ગાઢ મિથ્યાત્વકા મી ઉદય હૈ એસે મી કહી જીવોંકે ચિત્ત કો વે નવ-  
નીત (મક્ષન) કે સમાન કોમલ બના દેતે હૈં ॥ સૂ. ૬ ॥

પૂર્વોક્ત અર્થકા ઉપસંહાર કરતે હુએ સૂત્રકાર કહતે હૈં-“એવં  
સે ઉદ્ધિએ” ઇત્યાદિ ।

સમસ્ત પ્રાણી, ભૂત, જીવ અને સત્ત્વની રક્ષાનો ઉપાય પ્રદર્શિત કરવાને લીધે  
સમસ્ત પ્રાણીઓના, સમસ્ત ભૂતોના, સમસ્ત જીવોના, અને સમસ્ત સત્ત્વોના  
આશ્રય-શરણ-દાતા હોય છે.

તથા-તે પ્રાણી આદિનો વધ કરનાર મનુષ્યોને હિંસાના વ્યાપારથી  
નિવૃત્ત કરી, વિશિષ્ટ ગુણસ્થાનમાં લઈ જવાના કારણે, તે મહામુનિ તે હિંસકોના  
પણ શરણ થાય છે. અધાના શરણ તે મહામુનિ વધ કરનાર જીવોમાંથી કેટલાક જીવોને  
ઉપદેશ આપી દીક્ષા ગ્રહણ કરાવે છે. કેટલાયને શ્રાવકના વ્રતોમાં દૃઢ બનાવે છે.  
કેટલાયને સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત કરાવી મોક્ષધર્મની પ્રથમ સીડી ઉપર ચઢાવી દે છે. અને  
કેટલાક પ્રાણીઓને પ્રકૃતિથી ફેરવનાર બને છે. ત્યાં સુધી કે જેનામાં ગાઢ મિથ્યા-  
ત્વનો પૂર્ણ ઉદય હોય એવા ઘણા જીવોના ચિત્તમાં પોતાની શુદ્ધ વાણીનો  
પ્રવાહ રેડી તેને માખણ જેવા કોમળ મનવાળા બનાવી દે છે. (સૂ. ૬)

પૂર્વોક્ત અર્થનો ઉપસંહાર કરતાં સૂત્રકાર કહે છે-“એવં સે ઉદ્ધિએ” ઇત્યાદિ.



મૂલમ્—एवं से उट्टिए ठियप्पाअणिहे अचले चले अबहि-  
लेस्से परिव्वए ॥ सू० ७ ॥

છાયા—एवं स उत्थितः स्थितात्मा अनीहः अचलः चलः अवहिल्लेश्यः  
परिव्रजेत् ॥ सू० ७ ॥

ટીકા—एवम्=उत्तरीत्या स उत्थितः=कर्मधूननार्थं गृहीतप्रव्रज्यः स्थितात्मा-  
श्रुतचारित्रधर्मे स्थितः=स्थिरीभूत आत्मा यस्य सः=धर्मांराधनपरायणः, अनीहः=  
कपटवर्जितः=अनिगूहितबलवीर्य इत्यर्थः, यद्वा—‘अस्निहः’ इति छाया; रागद्वेष-  
रहितः, अचलः=महाबाते प्रवहति सति मेरुरिवानुकूलप्रतिकूलपरीषहोपसर्गसमुप-  
स्थितौ सत्यामप्रकम्पः, विकृताध्यवसायरहित इत्यर्थः । चलः=स्थिरवासवर्जितः,  
उग्रविहारीत्यर्थः । अवहिल्लेश्यः=न वर्तते संयमाद्वहिल्लेश्या=मनोवृत्तिर्यस्य सः  
तथोक्तः, संयमैकलक्ष्यः सन् परिव्रजेत्=विहरेत् ॥ सू० ७ ॥

इस पूर्वोक्त रीतिसे कर्मों को हटानेके लिये जिसने आर्हती दीक्षा  
धारण की है, तथा जिसकी आत्मा श्रुतचारित्ररूप धर्ममें स्थिरीभूत है—  
धर्मके आराधन करनेमें जो परायण है, कपटरहित है—अपने बल और  
वीर्यको जिसने छिपाता नहीं है, अथवा अस्निह—राग और द्वेषसे  
रहित है, झंझावातके चलने पर भी सुमेरुकी ज्यों जो अनुकूल प्रतिकूल  
परीषह और उपसर्गों के आने पर भी अडोल बना रहता है—विकृत-  
परिणामोंसे शून्य रहता है, जो उग्रविहारी है—स्थिरवास नहीं करता है,  
संयमके सिवाय बाहिरी पदार्थोंमें जिसकी मानसिक वृत्ति चलायमान नहीं  
होती है, ऐसा मुनि संयमरूप अपने एक लक्ष्यमें स्थिर बन विहार करे ॥ सू० ७ ॥

એ પૂર્વોક્ત રીતથી કર્મોને હટાવવા માટે જેણે આર્હતી દીક્ષા ધારણ કરી  
છે તથા જેનો આત્મા શ્રુત ચારિત્રરૂપ ધર્મમાં સ્થિર છે—ધર્મનું આરાધન કર-  
વામાં જે પરાયણ છે, કપટરહિત છે—પોતાનું બળ અને વીર્યને જેણે છુપાવેલ  
નથી. અથવા જે રાગ અને દ્વેષથી રહિત છે, ગમે તેવા ઝંઝાવાતની સામે  
જેમ મેરૂ પર્વત અડગ અને અચળ રહે છે, એ રીતે ગમે તેવા ઉપસર્ગો અને  
પરિષદ આવવા છતાં અચળ રહે છે—વિકૃત પરિણામોથી શૂન્ય રહે છે, જે ઉગ્ર  
વિહારી છે—સ્થિર વાસ કરતા નથી, સંયમ સિવાય બહારના પદાર્થોમાં જેની  
માનસિક વૃત્તિ ચલાયમાન થતી નથી, એવા મુનિ સંયમરૂપ પોતાના એક લક્ષ્યમાં  
સ્થિર બની વિહાર કરે. (સૂ૦ ૭)

ઉક્તરીત્યા ચારિત્રમારાધયન્ જ્ઞાનં પ્રાપ્ય મુક્તો ભવતીતિ દર્શયતિ—  
'સંખાય' ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—સંખાય પેસલં ધર્મં દિદ્ધિમં પરિણિવ્વુદે ॥સુ૦૮॥

છાયા—સંખાય પેશલં ધર્મં દૃષ્ટિમાન્ પરિનિર્વૃતઃ ॥ સૂ૦ ૮ ॥

ટીકા—દૃષ્ટિમાન્=સમ્યગ્દર્શનવાન્ પેશલં=હિંસાદિદોષરહિતં શુદ્ધં ધર્મ=જિનોક્તં શ્રુતચારિત્રાણ્યં સંખાય=સમ્યગ્જ્ઞાનેન વિજ્ઞાય પરિનિર્વૃતઃ=સમૂલસકલ-કર્મક્ષયાત્ પ્રકટિતશુદ્ધાત્મસ્વરૂપતયા નિરાવાધાઽમન્દાનન્દસન્દોહસમ્પન્નો ભવતિ ॥

યસ્તુ મિથ્યાદૃષ્ટિઃ પેશલં ધર્મં ન જાનાતિ સ પરિનિર્વૃતો ન ભવતીતિ દર્શ-યિતુમાહ—'તમ્હા' ઇત્યાદિ ।

ઉક્ત રીતિસે ચારિત્રકી આરાધના કરનેવાલા મુનિ જ્ઞાનકી પ્રાપ્તિ કરકે મુક્ત હોતા હૈ—ઇસ વાતકો સૂત્રકાર કહતે હૈ—“સંખાય” ઇત્યાદિ ।

સમ્યક્ દર્શન—સમ્પન્ન મુનિ હિંસાદિક દોષોસે રહિત શુદ્ધ એસે જિનેન્દ્રદ્વારા પ્રતિપાદિત શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મકા સમ્યક્ જ્ઞાનસે પરિજ્ઞાન કર પરિનિવૃત્ત હો જાતા હૈ—અર્થાત્ આમૂલચૂલ સકલ કર્મોંકે વિનાશ હોનેસે પ્રકટિત શુદ્ધ આત્મસ્વરૂપ હોનેકે કારણ, નિરાવાધ અમન્દ આનંદ કી પરંપરાસે સંપન્ન હો જાતા હૈ—સમ્યગ્દર્શન સંપન્ન મહામુનિ જિનેન્દ્રદેવ કથિત ધર્મકી સમ્યગ્જ્ઞાનપૂર્વક આરાધના કરનેસે સમસ્ત કર્મોંસે રહિત હો જાતા હૈ ઓર અવ્યાવાધ સુખકા ભોક્તા બન જાતા હૈ ॥ સૂ૦૮॥

જો મિથ્યાદૃષ્ટિ હૈ, વે મિથ્યાત્વકે પ્રભાવસે શુદ્ધ એસે જિનોક્ત ધર્મ કો નહીં જાનતે હૈ; ઇસલિયે વે મુક્તિકે ભી પાત્ર નહીં હોતે હૈ—ઇસ વાત

આ રીતથી ચારિત્રની આરાધના કરવાવાળા મુનિ જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ કરી મુક્ત બને છે; આ વાતને સૂત્રકાર કહે છે—“સંખાય” ઇત્યાદિ—

સમ્યગ્દર્શનસંપન્ન મુનિ હિંસાદિક દોષોથી રહિત શુદ્ધ એવા જિનેન્દ્ર દ્વારા પ્રતિપાદિત શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મને સમ્યગ્જ્ઞાનથી બાણીને પરિનિર્વૃત્ત થઈ બચે છે, અર્થાત્ પોતાના સકળ કર્મોંનો સમૂળ વિનાશ થતાં પ્રગટેલા શુદ્ધ આત્મસ્વરૂપના કારણે કોઈ પ્રકારની બાધારહિત અમન્દ (પારાવાર) આનંદ-સંપન્ન થઈ બચે છે. સમ્યગ્દર્શનસંપન્ન મહામુનિ જિનેન્દ્રદેવે કહેલા ધર્મની સમ્યગ્જ્ઞાનપૂર્વક આરાધના કરવાથી સઘળા કર્મોંથી રહિત બની બચે છે અને અવ્યાબાધ સુખના ભોક્તા બને છે. (સૂ૦૮)

જો મિથ્યાદૃષ્ટિ છે તે મિથ્યાત્વના પ્રભાવથી શુદ્ધ એવા જિનોક્ત ધર્મને

મૂલમ—તમ્હા સંગતિ પાસહ, ગંથેહિં ગઢિયા ણરા વિસણ્ણા  
કામક્રંતા, તમ્હા લૂહઓ ણો પરિવિત્તસેજ્જા ॥ સુ૦ ૧ ॥

છાયા—તસ્માત્ સજ્જમિતિ પશ્યત, ગ્રન્થૈર્ગ્રથિતા નરા વિષણ્ણાઃ કામક્રાન્તાઃ,  
તસ્માદ્ રૂક્ષાત્ નો પરિવિત્તસેત્ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

ટીકા—ઇતિ શબ્દોઽત્ર હેત્વર્થે; ઇતિ=યતઃ-મિથ્યાદૃષ્ટિઃ સજ્જવાન ભૂત્વા ન  
પરિનિર્વૃતો ભવતિ તસ્માત્ સજ્જ=માતાપિત્રાદિસમ્બન્ધં તદ્વિપાકં વા પશ્યત=વિવેક-  
બુદ્ધ્યા પર્યાલોચયત । સજ્જમાહ-ગ્રન્થૈઃ=સવાહ્યાભ્યન્તરપરિગ્રહૈઃ ગ્રથિતાઃ=અવબ-  
દ્ધાઃ વિષણ્ણાઃ=ગ્રન્થસજ્જે નિમગ્નાઃ કામક્રાન્તાઃ-કામભોગાભિનિવિષ્ટચિત્તા ન પરિ-  
નિર્વૃતા ભવન્તિ; કિન્તુ શારીરમાનસૈર્નાનાવિધદુરન્તદુઃસ્વૈઃ પરિતપ્તા એવ ભવન્તિ,  
તસ્માત્ કારણાત્ મુનિઃ રૂક્ષતઃ-રાગાદિરહિતત્વાદસ્તિગ્ધતયા રૂક્ષ એવ રૂક્ષઃ=નિસ્સજ્જઃ

કો દિશ્વાનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈં “ તમ્હા ” ઇત્યાદિ ।

સૂત્રમૈં ઇતિ શબ્દ હેત્વર્થમૈં પ્રયુક્ત હુઆ હૈ। જિસ કારણસે વહ મિ-  
થ્યાદૃષ્ટિ બાહ્ય પદાર્થોં મૈં સંગ-આસક્તિવાલા બન કર મુક્ત નહીં હોતા  
હૈ, ઇસી કારણસે હે શિષ્ય ! તુમ બી માતા પિતા આદિકે સંબંધકા ઓર  
ઉસકે વિપાકકા વિવેકબુદ્ધિસે અછી તરહસે વિચાર કરો । જો બાહ્ય  
ઓર આભ્યન્તર પરિગ્રહોંસે બંધે હુએ હૈં, ઓર ઇસીલિયે જો પરિગ્રહકે  
સમ્બન્ધમૈં મગ્ન હૈં, કામભોગોંમૈં જિનકા ચિત્ત સર્વ પ્રકારસે લવલીન હૈ,  
વે ઉસ અવસ્થામૈં મુક્ત નહીં હો સકતે હૈં । સિર્ફ એસે જીવ શારીરિક  
ઓર માનસિક નાના પ્રકારકે દુરન્ત દુઃસ્વોંસે હી સંતપ્ત હોતે રહતે હૈં ।  
ઇસ કારણ મુનિકા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ રૂક્ષ-સંયમસે કમી બી ઉદ્ધિગ્ન

બાણતા નથી, આથી તે મુક્તિને પાત્ર પણ નથી બનતા. આ વાત બતાવવા  
સૂત્રકાર કહે છે. “ તમ્હા ” ઇત્યાદિ—

સૂત્રમાં ઇતિ શબ્દ હેતુ-અર્થમાં પ્રયુક્ત થયેલ છે. જે કારણથી તે મિથ્યા-  
દૃષ્ટિ બાહ્ય પદાર્થોમાં આસક્તિવાળા બની મુક્ત થઈ શકતા નથી, આ માટે હે  
શિષ્યો ! તમે પણ માતા પિતા આદિના સંબંધનો અને એના વિપાકનો વિવેક-  
બુદ્ધિથી વિચાર કરો. જે બાહ્ય અને આંતરિક પરિગ્રહોથી બંધાયેલા છે અને  
એથી કરી તેઓ એમાં જ ખુંચેલા છે, કામભોગોમાં જેમનું ચિત્ત સર્વ-પ્રકાર-  
થી મગ્ન છે તેઓ એ અવસ્થામાંથી મુક્ત થઈ શકતા નથી. આવા જીવો  
શારીરિક અને માનસિક નાના પ્રકારની વ્યાધિ-ઉપાધિઓમાં સંતપ્ત રહે છે.  
આ કારણે મુનિનું કર્તવ્ય કે તે રૂક્ષ-સંયમથી કદિ પણ ઉદ્ધિગ્ન ન બને.



સંયમઃ, તસ્માત્ નો પરિવિવ્રસેત્=ન વિભીયાત્-સંયમમુપાદાય પરીષહાદિભ્યસ્ત્વાસં  
ન પ્રાપ્નુયાત્-અવિચલમનસા સંયમં પરિપાલયેદિત્યર્થઃ ॥ સૂ૦ ૯ ॥

ન હો । રુક્ષકા અર્થે યહાં સંયમ હૈ; કયોં કિ યહ રાગાદિક દોષોંસે રહિત  
હોતા હૈ, ઇસ લિયે ઇસમેં સિનગ્ધતા નહીં આ સકતી હૈ, અતઃ ઉસકે ન  
હોનેસે યહ રુક્ષકી તરહ રુક્ષ હૈ, રુક્ષ હોનેસે હી યહ કષાયોંસે સંશ્લિષ્ટ  
નહીં હો સકતા હૈ એસે સંયમકો ગ્રહણ કર મુનિ પરીષહ આદિસે ભય-  
ભીત ન હો-અવિચલિત ચિત્તસે સંયમકી પાલના ઓર ઉસકી સદા  
રક્ષા કરે ।

મિથ્યાદૃષ્ટિ મુક્ત નહીં હોતા-ઇસકા કારણ સૂત્રકાર બતલાતે હૈ । વે  
કહતે હૈ કિ ઉસકી મિથ્યાત્વકે સમ્બન્ધસે બાહ્ય પદાર્થોંમેં આસક્તિ  
બની રહતી હૈ, જો સંયમકી વિઘાતક હૈ । ઇસકી બુદ્ધિ કામાક્રાન્ત હોતી  
હૈ, તથા બાહ્ય ઓર આભ્યન્તર પરિગ્રહોંમેં યહ સદા મગ્ન રહતા હૈ । ઇસ  
લિયે અનેક દુરન્ત શારીરિક એવં માનસિક કષ્ટોંકા સામના કરતા  
હુઆ મી સંયમકે દર્શન તકસે વંચિત રહતા હૈ, ફિર મુક્તિકી તો વાત  
હી કયા કરની ? ઇસલિયે મુનિકા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ સંયમ ગ્રહણ કરને  
કે વાદ પરીષહ ઓર ઉપસર્ગાદિકોંકે આને પર ભય ન કરે ઓર અવિ-  
ચલિત મન બન સંયમકી પાલના ઓર રક્ષા કરતા રહે ॥ સૂ૦ ૯ ॥

રુક્ષનો અર્થ અહિં સંયમ છે, કેમ કે તે રાગાદિક દોષોથી રહિત હોય  
છે. આ કારણે તેનામાં સિનગ્ધતા આવી શકતી નથી. આ કારણે તે રુક્ષની  
તરહ રુક્ષ છે. રુક્ષ હોવાથી જ તે કષાયોથી અકળાતા નથી. આવા  
સંયમને ગ્રહણ કરી મુનિ પરિષદ આદિથી લયલીત ન બને-અવિચલિતચિત્તથી  
સંયમની પાલના અને તેની સદા રક્ષા કરે.

મિથ્યાદૃષ્ટિ મુક્ત નથી થઈ શકતા; એનું કારણ સૂત્રકાર બતાવે છે.  
તે કહે છે કે એનામાં મિથ્યાત્વ હોવા સમય તેની બાહ્ય પદાર્થોમાં આસક્તિ  
રહે છે, જે સંયમની વિઘાતક છે. એની બુદ્ધિ વિષયથી વ્યાપ્ત હોય છે,  
અને બાહ્ય તથા આન્તરિક પરિગ્રહોમાં એ સદા મગ્ન રહે છે. આથી  
• લયંકર એવાં શારીરિક અને માનસિક કષ્ટોનો સામનો કરતાં છતાં પણ સંય-  
મના દર્શનથી પણ વંચિત રહે છે, પછી મુક્તિની તો વાત જ કયાં કરવી. આ  
માટે મુનિનું કર્તવ્ય છે કે સંયમ ધારણ કરવા બાદ પરિષદ અને ઉપસર્ગા-  
દિકોના આવવાથી લયલીત ન બને અને અવિચલિત મનના બની સંયમની  
પાલના અને રક્ષા કરતા રહે. ( સૂ૦ ૯ )

કસ્ય પુનઃ સંયમાદપરિત્રાસઃ સંભવતીતિ જિજ્ઞાસાયમાહ—‘જસ્સિમે’ ઇત્યાદિ।

મૂલમ્—જસ્સિમે આરંભા સઘ્વતો સઘ્વત્તાણ સુપરિણ્ણાયા ભવંતિ, જેસિમે લૂસિણો ણો પરિવિત્તસંતિ, સે વંતા કોહં ચ માણં ચ માયં ચલોહં ચ । એસતુદ્દે વિયાહિણ—તિબેમિ ।સૂ૦૧૦।

છાયા—યસ્યેમે આરમ્ભાઃ સર્વતઃ સર્વતયા સુપરિજ્ઞાતા ભવન્તિ, યેષ્વિમે લૂષિણો નો પરિવિત્રસ્યન્તિ, સ વાન્ત્વા ક્રોધં ચ માનં ચ માયાં ચ લોભં ચ । એષ તુદ્દઃ વ્યાખ્યાતઃ, ઇતિ બ્રવીમિ ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

ટીકા—યેષુ=આરમ્ભેષુ આરમ્ભપ્રવૃત્તિષુ ઇમે=ગ્રન્થગ્રથિતા વિષ્ણ્વાઃ કામક્રાન્તાઃ જનાઃ લૂષિણઃ=લૂષણશીલા હિંસકા નો પરિવિત્રસ્યન્તિ=અજ્ઞાનેન પ્રબલમોહોદયેન ચ નોદ્વિજન્તે । સ્વસ્વપ્રાણપરિત્રાણકારણાત્ સ્વસ્વસ્થાનસ્થિતાઃ પૃથિવ્યાદયસ્તાન્ ભયસંજ્ઞાવતઃ, તથા—વિલનીડગૃહાદિકં નિર્માય સ્વાત્મગોપનપરાઃ સ્થિતાઃ

કયા કારણ હૈ કિ જિસસે સંયમસે મુનિજનોંકો ત્રાસ નહીં હોતા હૈ? ઇસ પ્રકારકી જિજ્ઞાસા હોનેપર સૂત્રકાર કહતે હૈ—“જસ્સિમે” ઇત્યાદિ।

જો જીવ અનેક આરંભોં—અનેક આરમ્ભમય પ્રવૃત્તિયોંમેં બાહ્ય ઔર આમ્યન્તર પરિગ્રહોંસે ગ્રથિત, તથા ઉસ પરિગ્રહકે જુટાનેમેં મગ્ન ઔર કામભોગોંમેં મૂર્ચ્છિત બન કર અનેક જીવોંકી હિંસા કરનેરૂપ પ્રવૃત્તિમેં સંક્લિષ્ટચિત્ત રહતે હૈં, વે અજ્ઞાન ઔર પ્રબલ મોહકે ઉદયસે ઉસ પ્રકાર કી પ્રવૃત્તિકો કરતે હુણ ભય નહીં કરતે હૈં—હમેં નરકનિગોદાદિકોંકે દુરન્ત દુઃસ્વ ભોગને પડેંગે ઇસ પ્રકારકે ભયસે વે કિસીં મી તરહ નહીં ઢરતે હૈં । યે દુષ્ટ જન અપને ૨ સ્થાનમેં સ્થિત ભયસંજ્ઞાવાલે પૃથિવીકા-

કયું કારણ છે કે મુનિજનને સંયમથી ત્રાસ થતો નથી ? આ પ્રકારની જિજ્ઞાસા થવાથી સૂત્રકાર કહે છે—“જસ્સિમે” ઇત્યાદિ.

જે જીવ અનેક આરંભો—અનેક આરંભમય પ્રવૃત્તિઓમાં બાહ્ય અને અંદરના પરિગ્રહોથી ગ્રંથાઈ, તથા આવા પરિગ્રહને બેડવામાં મગ્ન અને કામભોગોમાં મૂર્ચ્છિત બની, અનેક જીવોની હિંસા કરવારૂપ પ્રવૃત્તિમાં વ્યાકુળ ચિત્ત રહે છે, તે અજ્ઞાન અને પ્રબળ મોહના ઉદયથી એ પ્રકારની પ્રવૃત્તિઓ કરતાં ભય નથી કરતા—અભોને નરક નિગોદાદિકેનાં ભયંકર દુઃખો ભોગવવા પડશે આ પ્રકારના ભયથી તે કોઈ પણ રીતે ડરતા નથી. આવા દુષ્ટ જનો પોતા-પોતાના સ્થાનમાં રહી ભયસંજ્ઞાવાળા પૃથ્વીકાયિક આદિ એકેન્દ્રિય જીવોને,

દ્વીન્દ્રિયાદયઃ પશુપક્ષિમનુષ્યાદિપઠ્ઠેન્દ્રિયાશ્ચ યે સ્વયમેવ પરિવ્રજતાસ્તિષ્ઠન્તિ તાનપિ  
હિંસિતું પ્રવૃત્તાઃ જના નરકનિગોદાદિદુરન્તદુઃખેભ્યઃ કથં ચિદપિ ન વિભ્યતિ, પ્રત્યુત  
તાન્ અન્વિષ્યાન્વિષ્યોપમર્ઘં હૃષ્યન્તીતિ ભાવઃ ।

કિન્તુ યસ્ય ગૃહીતપ્રવ્રજ્યસ્ય મુનેઃ ઇમે=પૂર્વોક્તા માતાપિત્રાદિસજ્જનિતા વા  
આરમ્ભાઃ ઉપભોગાર્થં દ્રવ્યભાવશસ્ત્રૈઃ પૃથિવ્યપ્તેજોવાયુવનસ્પતિત્રસોપમર્દનરૂપાઃ  
શસ્ત્રપરિજ્ઞાધ્યયનપ્રતિબોધિતાઃ સાવચવ્યાપારાઃ સર્વતઃ=દ્રવ્યક્ષેત્રકાલભાવતઃ સર્વા-  
ત્મના=ત્રિકરણાત્રિયોગૈઃ સુપરિજ્ઞાતાઃ=જ્ઞપરિજ્ઞયા બન્ધહેતુત્વેન વિજ્ઞાય પ્રત્યાખ્યા-  
નપરિજ્ઞયા પરિત્યક્તા ભવન્તિ ।

ધિક આદિ એકેન્દ્રિય જીવોંકો, બિલ, નીડ, ઘર બના કર उसीमें रह कर  
अपनी आत्माकी रक्षा करनेमें तत्पर द्वीन्द्रियादिक तथा पशु, पक्षी  
और मनुष्य आदि पंचेन्द्रिय जीवों को, कि जो स्वयं ही डरे हुए  
रहते; हैं डूँढ २ कर मारते हैं और आनन्द मनाते हैं ।

કિન્તુ-જિસને ભાગવતી દીક્ષાકા અઙ્ગીકાર કિયા હૈ; એસે મુનિ इन  
पूर्वोक्त कुकृत्योंको अथवा माता पिता आदिके संगसे उद्भूत आरंभ और  
उपभोग आदिके लिये द्रव्य एवं भावशस्त्रोंसे पृथिवीकायिक, अप्कायिक  
तेजकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रस जीवोंके विनाश  
करनेरूप शस्त्रपरिज्ञाके अध्ययनमें समझाये गये सावचव्यापारको, द्रव्य,  
क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षासे, त्रिकरण और त्रियोगोंद्वारा, ज्ञपरिज्ञा  
से बन्धके कारणरूप जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञासे परित्याग करते हैं ।

ભોણુ, શરૂડા, ઘર બનાવી એમાં રહીને પોતાના આત્માની રક્ષા કરવામાં તત્પર  
બેઇન્દ્રિય, પશુ, પક્ષી અને મનુષ્ય આદિ પંચેન્દ્રિય જીવોને, કે જે પોતા જ  
ડરતા રહે છે; ગોતી ગોતીને મારે છે અને આનંદ મનાવે છે.

પણ જેઓએ ભાગવતી દીક્ષા અંગીકાર કરી છે; એવા મુનિઓ આ પૂર્વોક્ત  
કુકૃત્યોનો, અથવા માતા પિતા આદિના સંગથી ઉદ્ભૂત આરંભ અને ઉપભોગ  
આદિને મારે દ્રવ્ય અને ભાવશસ્ત્રોથી પૃથ્વીકાયિક, અપ્કાયિક, તેજકાયિક,  
વાયુકાયિક, વનસ્પતિકાયિક, અને ત્રસજીવોના વિનાશ કરવારૂપ શસ્ત્રપરિજ્ઞાના  
અધ્યયનમાં સમબલવામાં આવેલ સાવચ વ્યાપારોનો, દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવની  
અપેક્ષાથી, ત્રિકરણ અને ત્રિયોગથી, જ્ઞપરિજ્ઞાથી બંધના કારણરૂપ બાણીને  
પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી પરિત્યાગ કરે છે.



સ ક્રોધં ચ માનં ચ માયાં ચ લોભં ચ ચતુરઃ કષાયાન્ વાન્ત્વા=ઉદ્ગીર્ય-  
ત્યક્ત્વેત્યર્થઃ, મોહનીયં ક્ષયયતિ-સંયમમાર્ગે વિહરતિ । एषः=असौ मुनिः तुष्टः=  
तुष्टितः-कर्मसन्ततेरपसृतः-छिन्नकर्मबन्धः-अकर्मा व्याख्यातः=तीर्थङ्करगणधरा-  
दिभिरभिहितः । एतादृशस्य संयमात् परित्रासो न भवतीति बोध्यम् । इति=एवं  
पूर्वोक्तं वक्ष्यमाणं च ब्रवीमि=कथयामि ॥ सू० १० ॥

વહ ચતુર મુનિ ક્રોધ, માન, માયા ઓર લોભ કષાયોંકા પરિત્યાગ  
કર, મોહનીય કર્મકે વિનાશ સ્વરૂપસંયમમાર્ગે વિહાર કરતા હૈ । એસા  
મુનિ હી તીર્થઙ્કર ઓર ગણધરાદિ દેવોંકે દ્વારા કર્મ સંતતિસે અલગ-છિન્ન  
-બંધવાલા-અકર્મા કહા ગયા હૈ । ઇસ પ્રકારકે મુનિકો સંયમસે ભય  
નહીં હોતા હૈ । ‘ઇતિ બ્રવીમિ’-એસા મેં કહતા હૂં, આગે ઓર બી  
ઇસકે વિષયમેં કહૂંગા ।

ભાવાર્થ-કયા કારણ હૈ કિ જિસસે સંયમી મુનિજનોંકો સંયમસે ત્રાસ  
નહીં હોતા હૈ ? ઇસી પ્રશ્નકા ઉત્તર ઇસ સૂત્રમેં સૂત્રકારને દિયા હૈ । વે કહતે  
હૈં કિ જો જીવ આરંભ ઓર આરંભમય પ્રવૃત્તિઓમેં લલલીન રહતે હૈં,  
પરિપ્રહમેં જો મગ્ન હો રહે હૈં, અથવા ઉસકે જુટાનેમેં હી જો રાતદિન  
એક કરતે રહતે હૈં, વિષયોમેં ભોગેચ્છાસે જિનકા અન્તઃકરણ આક્રાન્ત  
બના હુઆ હૈ, ઓર ઇસીલિયે જો દૂસરે જીવોંકી વિરાધના કરનેસે નહીં  
હરતે હૈં-ત્રસ ઓર સ્થાવર તકકો બી મારકર જો આનંદ માનતે હૈં;  
એસે નિર્દયી જીવોંકો ઇતના તક બી ય્યાલ નહીં હોતા હૈ કિ હમેં ઇન  
અપને કુકૃત્યોં કા ફલ નરકનિગોદાદિ ગતિઓમેં જાકર ભોગના પડેગા ।

એ ચતુર મુનિ ક્રોધ, માન, માયા અને લોભ કષાયોંનો પરિત્યાગ કરી  
મોહનીય કર્મના વિનાશરૂપ સંયમમાર્ગમાં વિહાર કરે છે. એવા મુનિ જ  
તીર્થંકર અને ગણધર આદિ દેવોંદ્વારા કર્મસંતતિથી અલગ-છિન્નબંધવાળા-અકર્મા  
કહેવાયા છે. આવા પ્રકારના મુનિઓ સંયમથી ભય કરતા નથી. “ઇતિ બ્રવીમિ”

—આ રીતે હું કહું છું, આગળ પણ એના વિષયમાં કહીશ.

ભાવાર્થ-કયું કારણ છે કે જેનાથી સંયમી મુનિજનોને સંયમથી ત્રાસ થતો  
નથી? આ પ્રશ્નનો ઉત્તર આ સૂત્રમાં સૂત્રકારે આપેલ છે. તેઓ કહે છે કે જે જીવ  
આરંભ અને આરંભમય પ્રવૃત્તિઓમાં મગ્ન રહે છે, પરિપ્રહમાં જે મગ્ન હોય  
છે, અને એનામાં જ જે રાત-દિન રચ્યોપચ્યો રહે છે, વિષયોમાં ભોગેચ્છાથી  
જેનું અન્તઃકરણ આક્રાન્ત બનેલું છે, અને આ માટે જે બીજા જીવોની વિરાધના  
કરવાથી હરતો નથી, ત્રસ અને સ્થાવરને મારીને જે આનંદ માને છે; એવા  
નિર્દયી જીવોને એટલો પણ ખ્યાલ નથી થતો કે અમારે આ મેં કરેલા કૃત્યોનું  
ફળ નરકનિગોદાદિક ગતિઓમાં જઈને ભોગવવું પડશે. કેમકે અજ્ઞાન અને

બ્રવીમોતિપદપ્રતિજ્ઞાતં વક્ષ્યમાણમર્થમુપદર્શયતિ-‘કાયસ્સ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્-કાયસ્સ વિચાઘાઐ સંગામસીસે વિચાહિણ્ । સે હુ પારંગમે મુણી । અવિ હમ્મમાણે ફલગાવયટ્ટી કાલોવણીણ્ કંસેજ્જ કાલં જાવ સરીરમેઓ ત્તિ વેમિ ॥ સૂ૦ ૧૧ ॥

છાયા-કાયસ્ય ઘ્યાઘાતઃ સંગ્રામશીર્ષં વ્યાખ્યાતઃ । સ હુ પારજ્ઞમો મુનિઃ । અપિ હન્યમાનઃ ફલકાપકૃષ્ટી કાલોપનીતઃ કાઙ્ક્ષેત્કાલં યાવત્ શરીરભેદ ઇતિ બ્રવીમિ ॥ સૂ૦ ૧૧ ॥

ટીકા-કાયસ્ય=ઔદારિક-તૈજસ-કાર્મણ-શરીરસ્ય ભવગ્રાહિકર્મચતુષ્ટયસ્ય વા કયોં કિ અજ્ઞાન ઓર પ્રબલ મોહકે ઉદયસે ઉન્હેં આરંભ-સમારંભાદિ કાર્યોંસે ભય નહીં હોતા હૈ, પરંતુ જો યહ સમજ્જ ચુકે હૈં કિ યે આરંભ-સમારંભ આદિ કાર્ય ભયઙ્કર નરકનિગોદાદિક અનર્થોંકે ઉત્પાદક હૈં, ઇસલિયે વે ઇનકા ત્રિકરણ ઓર ત્રિયોગસે દ્રવ્યક્ષેત્રાદિકી મી અપેક્ષાસે ત્યાગકર ચુકે હૈં એસે મુનિજનોંકો સદા યે ભયપ્રદ હી જ્ઞાત હોતે રહતે હૈં । ઇસીલિયે ઇન સબ અનર્થોંકે ત્યાગરૂપ સંયમસે ઉન્હેં અત્રાસ હોતા હૈ, ઓર ઇસીસે કષાય આદિકે ત્યાગક્રમસે વે ધીરે ૨ અકર્મા બનતે હૈં । યહી તીર્થઙ્કરાદિકોંકા અભિમત હૈ ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

“બ્રવીમિ” ઇસ પદસે સૂચિત વક્ષ્યમાણ વિષયકો સૂત્રકાર “કાયસ્સ” ઇત્યાદિ સૂત્રસે પ્રદર્શિત કરતે હૈ-—

ઔદારિક, તૈજસ ઓર કાર્મણ-ઇન ત્રીન શરીરોં અથવા ભવોપગ્રાહિ

પ્રબળ મોહના ઉદયથી તેને આરંભ-સમારંભાદિ કાર્યોથી ભય થતો નથી, પરંતુ જે સમજ્જ ચુકેલા છે કે આ આરંભ-સમારંભ આદિ કાર્ય ભયંકર નરક નિગોદાદિક અનર્થોનાં ઉત્પાદક છે, તેથી જે તેનો ત્રણ કરણ અને ત્રણ યોગથી દ્રવ્ય-ક્ષેત્રાદિની પણ અપેક્ષાથી ત્યાગ કરી ચુકેલ છે, એવા મુનિરાજોને એ સદા ભયપ્રદ જ જણાતાં રહે છે. આ માટે આ બધા અનર્થોના ત્યાગરૂપ સંયમથી તેને ત્રાસ થતો નથી. અને એથી કષાય આદિનો ત્યાગક્રમથી તે ધીરે ધીરે અકર્મા બને છે. એવો તીર્થંકર આદિનો અભિપ્રાય છે. (સૂ૦ ૧૦)

“બ્રવીમિ” આ પદથી સૂચિત વક્ષ્યમાણ વિષયને સૂત્રકાર “કાયસ્સ” ઇત્યાદિ સૂત્રથી પ્રદર્શિત કરે છે.

ઔદારિક, તૈજસ અને કાર્મણ આ ત્રણ શરીરો અથવા ભવોપગ્રાહી આર

વ્યાઘાતઃ=આત્યન્તિકવિનાશઃ સંગ્રામશીર્ષમ્=અષ્ટવિધકર્મવૈરિસંગ્રામશીર્ષમ્ વ્યા-  
 ર્યાતઃ=તીર્થઙ્કરૈઃ કથિતઃ । યથા=દ્રવ્યસંગ્રામશિરસિ શત્રુ પરાજિત્યેષ્ટાન્ ભોગાન્  
 વીરઃ પ્રાપ્નોતિ, एवं भावसंग्रामशिरसि कर्मवैरिविनाशनाद् वीरः संयमी अनन्त-  
 केवलज्ञानकेवलदर्शनं प्राप्नोतीति भावः । स हु=स एव मुनिः पारंगमः ज्ञानादि-  
 पञ्चविधाचारतरणिसमारूढः संसारसागरपारगामी भवति । किञ्च स परीषहो-  
 पसर्गैर्हन्यमानोऽपि=उपद्रुतोऽपि फलकावकृष्टी=अवकृष्टमस्यास्तीत्यवकृष्टी फलकवद-  
 वकृष्टी फलकावकृष्टी, यथा फलकं वास्यादिभिरुभयपार्श्वतस्तष्टं घटितं सत् तनु  
 भवति, अरक्तद्विष्टं वा भवति, तथा साधुरपि सबाह्याभ्यन्तरेण तपसा निष्ठ-

ચાર અઘાતિયા કર્મોંકે આત્યન્તિક ક્ષયકો, તીર્થઙ્કરોંને સંગ્રામશીર્ષ,  
 અર્થાત્-અષ્ટવિધ કર્મોંકે સાથ સંગ્રામકા અગ્રભાગ કહા છે । જૈસે  
 દ્રવ્યસંગ્રામકે અગ્ર ભાગમેં શત્રુકો જીત કર વીર પુરુષ અપને ઇચ્છિત  
 ભોગોંકો પ્રાપ્ત કરતા છે, હસી તરહ ભાવસંગ્રામકે અગ્ર ભાગમેં કર્મ-  
 રૂપી વૈરિયોંકે વિનાશસે વીર સંયમી અનન્ત કેવલજ્ઞાન અનન્ત કેવલદર્શન  
 કો પ્રાપ્ત કર લેતા છે । એસા હી મુનિ જ્ઞાનાચાર આદિ પાંચ પ્રકારકે  
 આચારરૂપી નૌકા પર સવાર હોકર સંસારરૂપી સમુદ્રકા પારગામી હોતા  
 છે । પરીષહ ઓર ઉપસર્ગોંસે ઉપદ્રુત હોતા હુઆ મી યહ ફલકકી તરહ  
 અવકૃષ્ટી હોતા છે । અવકૃષ્ટ જિસકે છે વહ અવકૃષ્ટી છે, ફલકકે તુલ્ય જો  
 અવકૃષ્ટી છે વહ ફલકાવકૃષ્ટી છે । જૈસે ફલક-કાષ્ઠકા પાદિયા કુલહાડી  
 વગેરહ હથિયારોંસે આજૂબાજૂમેં છીલે જાને પર પતલા હો જાતા છે,  
 હસી તરહ સાધુ મી બાહ્ય ઓર આભ્યન્તર તપ તપનેસે કૃશશરીર-દુર્બલ  
 ઓર રાગદ્વેષ રહિત હો જાતા છે । અથવા-જૈસે વહી ફલક, વાસી (વસોલા)

અઘાતિયા કર્મોના આત્યન્તિક ક્ષયને તીર્થઙ્કરોએ સંગ્રામશીર્ષ, અર્થાત્-અષ્ટવિધ  
 કર્મોની સાથે સંગ્રામનો અગ્રભાગ કહેલ છે. જે રીતે દ્રવ્યસંગ્રામના  
 અગ્ર ભાગમાં શત્રુને છતી વીર પુરુષ પોતાના ઇચ્છિત ભોગોને પ્રાપ્ત  
 કરે છે, આવી રીતે ભાવસંગ્રામના અગ્ર ભાગમાં કર્મરૂપી વૈરિયોના  
 વિનાશથી વીર સંયમી અનન્ત કેવળજ્ઞાન, અનન્ત કેવળ દર્શનને પ્રાપ્ત કરી લે  
 છે. એ જ રીતે મુનિ જ્ઞાનાચાર આદિ પાંચ પ્રકારના આચારરૂપી નૌકા ઉપર  
 સવાર થઈ સંસારરૂપી સમુદ્રને પાર ઉતરનાર બને છે. પરિષદ અને ઉપસર્ગોથી  
 ઉપદ્રુત (યુક્ત) થવા છતાં પણ તે મક્કમ રહે છે. જેવી રીતે ફલક-લાકડાનું  
 પાટીયું કુવાડાથી કે બીજા હથિયારોથી છાલતાં પાતળું થઈ નથ છે,  
 એ જ રીતે સાધુ પણ બાહ્ય અને અંદરથી તપ તપતાં તેનું શરીર હબળું મતેજ  
 રાગદ્વેષરહિત થઈ નથ છે. જેમ પાટીયું કુવાડા વિ. છાલવાથી પાતળું બને છે



देहस्तनुदुर्बलशरीरां रागद्वेषरहितश्चेति । यद्वा—यथा फलकमुभयतो वास्यादिनाऽव-  
कृष्यमाणमवकृष्टं च सत् शयनोपयोगिफलकं लेखनोपयोगिपट्टिकाख्यं वा संपद्यते  
तथा मुनिर्बाह्याभ्यन्तरेण तपसा बहिरन्तश्चात्मानमवकर्षति, तत्रानुकूलप्रतिकूलपरिष-  
होपसर्गैर्बहिः शरीरमन्तस्तु कर्म अवकृष्यमाणं सदात्माऽवकृष्टो भवति, वास्यादिशस्त्रेण  
तक्ष्यमाणः कशावेत्रादिना ताड्यमानो वा कर्मत्रोटनाच्चो निर्वेदं प्राप्नोति ।

यद्वा—‘फलकावस्थायी’ इति छाया । दुर्वचनवास्यादिभिस्तक्ष्यमाणोऽपि  
कुल्हाडी वगैरहसे छीले जानेपर और घिसे जानेपर पतला और चिकना  
हो जाता है और शयन करनेके काममें तख्तरूपसे और लिखने पढ़नेके  
काममें पट्टीरूपसे आता है, उसी प्रकार मुनि बाह्य और आभ्यन्तर तर्पोंद्वारा  
बाहर और भीतरसे अपने आपको कृश कर देता है, अनुकूल, प्रतिकूल  
परीषह और उपसर्गों के जीतनेसे बाहरमें उसका शरीर और भीतरमें  
कर्मोंके बंधन शिथिल हो जाते हैं, ऐसी अवस्थामें वह आत्मा उन  
कर्मोंके बंधनसे शिथिल-हल्का हो जाता है । पहिले कर्मोंके बंधनका  
जितना भार उस पर था उसके शिथिल होने पर आत्मा भी पहिलेकी  
अपेक्षा उस भारके शिथिल होते ही स्वयं अपने आपको बिना बोझके  
अनुभव करने लगता है । क्रम २ से जब वह कर्मोंका शिथिल हुआ बंधन  
बिलकुल नष्ट होने लगता है तब वह आत्मा कर्मोंके दूटते समय कुल्हाडी  
आदि शस्त्रसे काटे जाने पर या कशा-कोडा और वेत्र आदिसे ताड़ित  
होने पर भी खेदखिन्न नहीं बनता है ।

अथवा—“फलगावयट्टी” की संस्कृत छाया ‘फलकावस्थायी’ भी होती

अने घसवाथी दीसुं थाय छे अने सूवा भाटे पाटना रूपमां अने लणवा-पढवाना  
काभे पट्टीरूपमां हेरवाय छे, अे ज रीते मुनि बाह्य अने अंदरना तपथी पोते  
पोतानी जतने हुअणी अनावी दे छे, अनुकूल-प्रतिकूल परिषड अने उपसर्गने लतवाथी  
अडारमां अेतुं शरीर अने अंदरमां कर्मोनां अंधन छुटी जतां अेनो आत्मा  
डल्लो अनी जय छे, प्रथम कर्मोनां अंधननो जेटवो बार तेना उपर डतो ते  
दूर थतां अने अडारनां अंधन पणु डटी जतां स्वयं पोते पोताने जोअरडित  
माने छे, कम कमथी कर्मोनां जोअ डल्लो अने छे, अने अंधन तुटतां तुटतां  
साव निर्भूण अने छे, त्यारे आत्मा भीदी उठे छे, जेदतुं नामनिशान सरथुं  
रडेतुं नथी,

अथवा—“फलगावयट्टी” नी संस्कृत छाया फलकावस्थायी पणु थाय छे, अेनो

યઃ કષાયાભાવેન ફલકવદ્વલોડવત્તિષ્ઠતે તચ્છીલશ્ચ સ ફલકાવસ્થાયી-વાસીચન્દનકલ્પઃ, વાસ્યા તક્ષ્યતે ચન્દનેન ચાડનુલિપ્યતે, ઉભયત્ર સમભાવ इत्यर्थः ।

यद्वा—‘ फलकापदर्थी ’ फलं कर्मक्षयरूपं तदेव फलकं तेनाऽऽपदि संसार-भ्रमणरूपायामर्थः प्रयोजनं फलकापदर्थः, स विद्यते यस्यासौ फलकापदर्थी-संसार-भ्रमणरूपायामापदि कर्मक्षयरूपफलाभिलाषीत्यर्थः ।

तथा कालोपनीतः—कालः=मरणकालः उपनीतः=प्रज्ञाविषयीकृतो येन स है । इसका अर्थ इस प्रकार है कि दुर्वचनरूपी कुठारसे छेदा गया भी वह मुनि कषायरहित होनेसे फलककी तरह बिना किसी विकृतिके स्थिरचित्त रहता है । इसे क्या बसोला क्या चन्दन ? दोनोंमें समता रहती है । चाहे कुल्हाडीसे यह काट दिया जावे तो इसे उसमें रोष नहीं, और चन्दनसे लिप्त कर दिया जावे तो उसमें उसे हर्ष नहीं, अर्थात्-उसे दोनोंमें समभाव रहता है ।

अथवा—“ फलकापदर्थी ” यह भी संस्कृत छाया “ फलकावयट्टी ” जब इस पदकी मानी जावेगी, तब इसका अर्थ इस प्रकारसे होगा कि कर्मक्षयरूप जो फल वही हुआ फलक, उससे संसारपरिभ्रमणरूप आपत्तिमें जो मुनि प्रयोजनवाला है वह फलकापदर्थी है । मुनिजन संसारपरिभ्रमणरूप आपत्तिमें कर्मक्षयरूप फलके अभिलाषी होते हैं । मुनिको जब अपना मरणकाल ज्ञात हो जावे तब वह १२ वर्षकी संलेखनासे क्रमशः शरीरको कृश करता हुआ भक्त-

અર્થ એ પ્રકારનો છે કે દુર્વચનરૂપી કુહાડાથી છેદવામાં આવેલ પશુ એ મુનિ-કષાયરહિત હોવાથી પાટીયાની માફક કોઈપણ પ્રકારની વિકૃતિ વિના સ્થિરચિત્ત રહે છે. એને વાસી (વાસલો) શું ? અને ચંદન શું ? બન્નેમાં સમતા રહે છે. ભલે કુહાડાથી તેને કાપવામાં આવે તો પશુ તેને ગુસ્સો નથી, અને ચંદનથી લેપ કરવામાં આવે તો તેને હર્ષ નથી. બન્નેમાં સમભાવ રહે છે.

અથવા—“ ફલકાપદર્થી ” આ પશુ સંસ્કૃત છાયા “ ફલગાવયટ્ટી ” ન્યારે આ પદની માનવામાં આવશે ત્યારે એનો અર્થ એ પ્રકારે થશે કે કર્મક્ષયરૂપ જે ક્ષણ તેજ થયું ફલક. તેનાથી સંસાર-પરિભ્રમણ-રૂપ આપત્તિમાં જે મુનિ પ્રયોજનવાળા છે તે ફલકાપદર્થી છે. મુનિજન સંસાર પરિભ્રમણરૂપ આપત્તિમાં કર્મક્ષયરૂપ ક્ષણના અભિલાષી હોય છે. મુનિને ન્યારે પોતાના મરણકાળનો સમય જણાઈ આવે ત્યારે તે ૧૨ વર્ષની સંલેખનાથી ક્રમે ક્રમે શરીરને ઘસાવતા ઘસાવતા

तथोक्तः—ज्ञातस्वमरणकालः साधुः, द्वादशवार्षिक्या संलेखनया क्रमशः शरीरं संलिख्य भक्तप्रत्याख्यानान्नेङ्गितमरणपादपोषगमनान्यतममरणेन यावच्छरीरभेदः=शरीरस्य भेदः स्वात्मनः पार्थक्यं यावद्भवति तावत् कालं=मरणकालम् काङ्क्षेत्=इच्छेत् शरीरविधूननं कुर्यादित्यर्थः। एवं भक्तप्रत्याख्यानादिभिः कृत्स्नकर्मक्षयं प्रत्याख्यान, इङ्गितमरण और पादपोषगमन; इनमें से किसी एक मरणसे अपनी आत्मासे जब तक शरीरकी पृथक्ता नहीं हो जाती तब तक शरीरको कृश करता रहे, समाधिमरणसे ही शरीरको छोड़े।

भावार्थ—औदारिक आदि शरीरत्रयका, अथवा भवोपग्राहि कर्म-चतुष्टयका अभाव होते ही कर्मों के साथ लगे हुए युद्धका अन्त हो जाता है। इस अवस्थामें संग्राममें विजयश्री पानेवाले वीरकी तरह वह आत्मा भी अनन्त ज्ञान और अनन्तदर्शनकी विजयपताका फहराता हुआ पंच प्रकारके आचारोंकी पूर्णतासे मुक्तिका वरण कर लेता है। परीषद् और उपसर्ग मुक्ति प्राप्तिकी तैयारी करनेवालेके लिये बाधक नहीं बनते हैं। हां, इनसे इतना अवश्य होता है कि वह आत्मा यदि इनका सम्भावसे सामना करता है तो मुक्ति प्राप्ति के लायक बाह्य और आभ्यन्तर तपोंको तपता हुआ, बाह्यमें कृशगात्र एवं भीतर शिथिल कर्मबंध-वाला बन जाता है। इस अवस्थामें आत्मा कर्मोंके भारसे हल्का बन

भक्तप्रत्याख्यान, ङ्गितमरण અને પાદપોષગમન આમાંથી કોઈ એક મરણથી પોતાના આત્માથી જ્યાં સુધી શરીરની પૃથક્તા નથી થતી, ત્યાં સુધી શરીરને કૃશ કરતા રહે, અને સમાધિમરણથી શરીરને છોડે.

ભાવાર્થ—ઔદારિક આદિ શરીરત્રયનો અથવા ભવોપગ્રાહી ચાર કર્મોનો અભાવ થતાં જ કર્મોની સાથે લાગેલાં યુદ્ધનો અંત થઈ જાય છે. આ અવસ્થામાં સંગ્રામમાં વિજયશ્રી મેળવનાર વીરની માફક તે આત્મા પણ અનન્તજ્ઞાન અને અનન્તદર્શનની વિજયપતાકા હાથેરાવતા પાંચ પ્રકારના આચારોની પૂર્ણતાથી મુક્તિને માગે પહોંચે છે. પરિષદ અને ઉપસર્ગ મુક્તિ પ્રાપ્તિની તૈયારી કરવા-વાળા માટે બાધક બનતા નથી. હા, એથી એટલું અવશ્ય થાય છે કે તે આત્મા કદાચ તેનો સમભાવથી સામનો કરે તો મુક્તિ પ્રાપ્તિને લાયક બાહ્ય અને અંદરના તપોને તપતાં તપતાં બહારમાં કૃશશરીર અને અંદરથી શિથિલ-કર્મ-બંધવાળા બની જાય છે. આ અવસ્થામાં આત્મા કર્મોના ભારથી હલકો બની પોતે પોતાને હલકો અનુભવ કરવા લાગે છે. જેવી રીતે લાકડાનું પાટીયું



વિધાય મહાપુરુષઃ શિવમચલમરુજમનન્તમક્ષયમવ્યાવાધમપુનરાવૃત્તિસિદ્ધિગતિનામધેયં  
સ્થાનં સંપ્રાપ્નોતીતિ ભાવઃ ॥ સૂ૦ ૧૧ ॥

અધ્યયનવિષયોપસંહારઃ—

સ્વજન-કર્મ-શરીર-વિધૂનનં,  
ત્રિતયગૌરવ-ધૂનનમાત્મનઃ ।

इह परीषहधूननमन्ततो,—

निजगदे गणनाथसुधर्मणा ॥ १ ॥

॥ इतिश्री-विश्वविख्यात-जगद्गुरु-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित-  
कलापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-शाहू-  
छत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-“ जैनशास्त्राचार्य ”-पदभूषित-  
कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-  
पूज्य-श्रीघासीलाल-व्रतिविरचितायाम् आचाराङ्गसूत्र-  
स्याऽऽचारचिन्तामणिटीकायां धूतारुखं षष्ठ-  
मध्ययनं सम्पूर्णम् ॥ ६ ॥

અપને આપકો હલ્કા અનુભવ કરને લગતા હૈ । જિસ પ્રકાર કાઠકા પાટિયા આજૂબાજૂસે વ્યર્થકે અવયવ છિલ જાને પર શયનાદિક કાર્યોમ્ ઉપયોગી બન જાતા હૈ ઉસી પ્રકાર તપશ્ચર્યા આદિસે આત્માકે ડપરકા કર્મરૂપી વ્યર્થકા કચરા જબ નિકલ જાતા હૈ તો યહ બી મુક્તિકી પ્રાપ્તિ મ્ ઉપયોગી બન જાતા હૈ ।

મુનિકો જબ અપના મરણકાલ માલૂમ હો જાવે તો ઉસકા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ ૧૨ વર્ષકી સંલેખનાસે શરીરકો કૃશ કર ભક્તપ્રત્યાખ્યાન આદિ કિસી બી પ્રકારસે અપને શરીરકા પરિત્યાગ કરે ॥સૂ૦૧૧॥

આનુબાનુથી છોલાઈ જવાથી શયનાદિકાર્યોમાં ઉપયોગી બની બંધ છે એ પ્રકારે તપશ્ચર્યા આદિથી આત્માના ઉપરના કર્મરૂપી નકામો કચરો જત્યારે નિકળી બંધ છે ત્યારે એ પણ મુક્તિની પ્રાપ્તિમાં ઉપયોગી બની બંધ છે.

મુનિને જત્યારે પોતાનો મરણકાળ માલૂમ થઈ બંધ ત્યારે તેનું કર્તવ્ય છે કે તે ૧૨ વર્ષની સંલેખનાથી શરીરને કૃશ કરી ભક્ત પ્રત્યાખ્યાન આદિ કોઈ પણ પ્રકારથી પોતાના શરીરનો ત્યાગ કરે. (સૂ૦૧૧)

अध्ययनान्तर्गतविषयोंका उपसंहार

स्वजन-संग शरीर-ममत्व के

त्रितय गौरव के अरु कर्म के।

कथन है इसमें परिहार का

विधि परीषद् के जयकी कही ॥

यह आचाराङ्गसूत्रके धूतनामक छट्ठा अध्ययनकी आचार-  
चिन्तामणि-टीकाका हिन्दीभाषानुवाद सम्पूर्ण ॥ ६ ॥

अध्ययनान्तर्गत विषयोंका उपसंहार—

स्वजन-संग शरीर-ममत्वना,

त्रितय-गौरवना सहु कर्मना,

वणि परीषद्ना परिहारने,

अहिं कही लगवत गणुधिपे.

आ आचाराङ्गसूत्रना धूत नामना छट्ठा अध्ययननी आचार-  
चिन्तामणि-टीकाना गुजराती अनुवाद सम्पूर्ण ॥ ६ ॥

The first of these is the  
 fact that the system is  
 not self-sufficient. It  
 requires a constant  
 supply of raw materials  
 and energy. The second  
 is that the system is  
 not flexible. It is  
 unable to adapt to  
 changing conditions.  
 The third is that the  
 system is not  
 sustainable. It is  
 unable to maintain  
 itself over the long  
 term. The fourth is  
 that the system is  
 not equitable. It  
 does not distribute  
 resources fairly.



। અથ વિમોક્ષાશ્રયસ્ય અષ્ટમાધ્યયનસ્ય પ્રથમ ઉદ્દેશઃ ।

અથ ધૂતાશ્રયષ્ઠાધ્યયનાનન્તરં ક્રમપ્રાપ્તમહાપરિજ્ઞાશ્રયસપ્તમાધ્યયનસ્યાવસરઃ, કિન્તુ તસ્ય વિચ્છેદાત્સમ્પ્રતિ તન્નોપલભ્યતે, યતોઽત્ર યાવચ્છરીરભેદસ્તાવત્ સંયમં પરિપાલયન્ ભક્તપ્રત્યાશ્રયાનપૂર્વકં પण्डितमरणेन मुनिः कालमभिकाङ्क्षेदिति धूता-  
ધ્યયને ‘કંચિજ્જ કાલં જાવ શરીરમેઓ’ ઇત્યન્તિમસૂત્રેણ પ્રોક્તમ્ । તદ્વત્ મહાપ-  
રિજ્ઞાનામકં સપ્તમમધ્યયનમ્ । શાસ્ત્રસ્ય સકલહેયોપાદેયવિષયપ્રતિપાદકત્વેન તદ-  
ધ્યયનં હેયનાનાવિધિચમત્કારજનકવિષયપરિપૂરિતમાસીત્ । एतदध्ययनमधीत्य समा-

॥ વિમોક્ષનામક આઠવાં અધ્યયનકા પહલા ઉદ્દેશ ॥

ધૂત નામક છટ્ટે અધ્યયનકે બાદ ક્રમપ્રાપ્ત મહાપરિજ્ઞા-નામક સાતવેં અધ્યયનકા અવસર થા, કિન્તુ વિચ્છેદ હો જાનેસે વહ્ હસ સમય ઉપ-  
લબ્ધ નહીં હૈ । જબ તક શરીરકા ભેદ ( વિનાશ ) હૈ, તબ તક સંયમકી પાલના કરતા હુઆ મુનિ કાલ-સમાધિમરણરૂપ કાલકી ચાહના કરતા રહે, યહ્ વાત ધૂત અધ્યયન મેં “કંચિજ્જ કાલં જાવ શરીરમેઓ”  
હસ અન્તિમ સૂત્રસે કહી ગઈ હૈ, ઉસીકે પીછે મહાપરિજ્ઞાનામક સાતવાં અધ્યયન હૈ ।

યહ્ અધ્યયન અનેક પ્રકારકે ચામત્કારિક વિષયોસે, જો હેયકોટિમેં માને ગયે હૈ; પરિપૂરિત થા । શાસ્ત્રોમેં પ્રત્યેક વિષયકા, ચાહે વહ્ હેય હો યા ઉપાદેય હો; વર્ણન હોતા હૈ । હસ અધ્યયનકો પઢ્ કર ઔર સુન કર

વિમોક્ષ નામના આઠમા અધ્યયનનો પહેલો ઉદ્દેશ.

ધૂત નામના છઠ્ઠા અધ્યયન પછી મહાપરિજ્ઞા નામના સાતમા અધ્યયનનો અવસર હતો પણ તેનો વિચ્છેદ થઈ જવાથી તે આ સમયે પ્રાપ્ત થઈ શકે તેમ નથી. જ્યાં સુધી શરીરનો ભેદ (વિનાશ) છે, ત્યાં સુધી સંયમની પાલના કરતાં મુનિ કાલ-સમાધિમરણરૂપ કાળની ચાહના કરતા રહે. આ વાત ધૂત અધ્યયનમાં “કંચિજ્જ કાલં જાવ શરીરમેઓ” આ અંતિમ સૂત્રથી કહેવામાં આવેલ છે, એ પછી મહાપરિજ્ઞા નામનું સાતમું અધ્યયન છે.

આ અધ્યયન, અનેક પ્રકારના ચમત્કારિક વિષયોથી-જે હેયકોટીમાં માનવામાં આવેલ છે તેનાથી-પરિપૂર્ણ હતું. શાસ્ત્રોમાં પ્રત્યેક વિષયનું, ચાહે તે હેય હોય અથવા ઉપાદેય હોય; વર્ણન હોય છે. આ અધ્યયનને વાંચીને અને સાંભળીને મહા-

કાર્ય ચ મહાપુરુષાસ્તદુક્તવિદ્યાં જ્ઞપરિજ્ઞયા કર્મબન્ધકારિણીં જ્ઞાતા પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞયા તાં પરિહૃત્ય ચ કર્મધૂનનપૂર્વકં સ્વાત્મકલ્યાણમકાર્ણુઃ ।

તત્ર જલ-સ્થલાઽઽકાશ-પાતાલાદિવિહરણરૂપાઃ પરકાયપ્રવેશાદિકાઃ સિંહ-વ્યાગ્રાદિશરીરધારણપૂર્વકસ્વસ્વરૂપપરાવર્તનાદિસ્વભાવાશ્રાવર્તિન્યો વિદ્યા આસન્ । શ્રૂયતે ચ ગુરુપરમ્પરયા-સ્વશિષ્યમધ્યાપયન્ કશ્ચિદાચાર્ય એકદા વિચારભૂમિં ગતવાન્, તદન્તુ સ શિષ્યો બાલ્યચાપલ્યેન મહાપરિજ્ઞાઽઽધ્યયનેઽભિહિતાયાઃ સિંહતનુધારણ-વિદ્યાયા ઉપયોગં કુર્વન્ તત્પ્રભાવેન સ સિંહરૂપો જાતઃ, પરન્તુ તત્પરાવર્તનવિદ્યાન-મહાપુરુષો ને હસ અધ્યયનમેં વર્ણિત વિદ્યાઓં કો જ્ઞપરિજ્ઞાસે કર્મોંકે બંધ કરાનેવાલી જ્ઞાન કર પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞા સે ઉનકા પરિહાર કર કર્મ-ધૂનનપૂર્વક અપની આત્માકા કલ્યાણ કિયા હૈ ।

હસ અધ્યયનકે અંદર જલમેં, સ્થલમેં, આકાશમેં, પાતાલમેં વિહાર કરા-નેવાલી વિદ્યાઓંકા, પરશરીરમેં પ્રવેશ કરાનેવાલી વિદ્યાઓંકા, ઓર સિંહ વ્યાગ્ર આદિકા શરીર ધારણપૂર્વક અપને નિજરૂપકા પરિવર્તન કરાનેવાલી વિદ્યાઓંકા વર્ણન થા । ગુરુપરંપરાસે એસા સુના જાતા હૈ કિ કોઈ એક આચાર્ય મહારાજ યહ અધ્યયન એક સમય અપને શિષ્યકો પઢા રહે થે । શૌચક્રિયા કી બાધા હોને પર જબ યે બાહર શૌચનિવૃત્તિકે લિયે ગયે તો શિષ્યને બાલ-સુલભ ચંચલતા સે હસ મહાપરિજ્ઞાકે અધ્યયનમેં કથિત સિંહશરીરકો ધરાનેવાલી વિદ્યાકા ઉપયોગ કિયા ઓર વહ ઉસકે પ્રમા-

મુરુષોએ એ અધ્યયનમાં વર્ણુવેલી વિદ્યાઓને જ્ઞપરિજ્ઞાથી કર્મોના બંધ કરાવવાવાળી બાળુને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી એનો પરિહાર કરી કર્મધૂનનપૂર્વક પોતાના આત્માનું કલ્યાણ કર્યું છે.

આ અધ્યયનમાં જળમાં, સ્થલમાં, આકાશમાં, પાતાળમાં વિહાર કરાવવાવાળી વિદ્યાઓનું, પરશરીરમાં પ્રવેશ કરાવવાવાળી વિદ્યાઓનું અને સિંહ, વાઘ વ્યાદિના શરીર ધારણ કરીને પોતાના નિજરૂપના પરિવર્તન કરાવવાવાળી વિદ્યાઓનું વર્ણન હતું. ગુરુપરંપરાથી એવું સાંભળ્યું છે કે કોઈ એક આચાર્ય મહારાજ એ અધ્યયન પોતાના શિષ્યને એક સમય શીખવી રહ્યા હતા. આ વખતે શૌચક્રિયાની બાધા થતાં જ્યારે તેઓ શૌચનિવૃત્તિ માટે બાહર ગયા ત્યારે શિષ્યે બાળસુલભ ચંચળતાથી એ મહાપરિજ્ઞા અધ્યયનમાં કહેલ સિંહ શરીરને ધારણ કરાવવાવાળી વિદ્યાનો ઉપયોગ કર્યો, અને તે સિંહના સ્વરૂપમાં ફેરવાઈ ગયો. સિંહસ્વરૂપનું પરિવર્તન કરાવવાવાળી વિદ્યાના અધ્યયનથી અપ-

ધ્યયનેન તદ્રૂપ એવ સ્થિતઃ કિંકર્તવ્યવિમૂઢો વિચારભૂમેરાગતેનાઽઽચાર્યેણ વિલો-  
કિતઃ, પરમકરુણયા પુનઃ સ્વસ્વરૂપં પ્રાપિતઃ સ્વચેતસિ ચિન્તિતં ચ-પશ્ચમારકેઽસ્યા-  
ઽધ્યયનેન લાભસ્તુ દૂરાપેત એવઃ પ્રત્યુત મહાનનર્થો ભાવીતિ । તત આરમ્ભૈષ્ઠ  
તસ્યાધ્યાપનક્રિયા લુપ્તપ્રાયાઽભૂત્ । તે નૈવ હેતુના પુસ્તકારૂઢસમયેઽપ્યાચાર્યવચૈરે-  
તદધ્યયનં ન સઙ્ગૃહીતમ્ । તસ્માદિદં વિચ્છેદમાપેતિ યુક્તમુત્પશ્યામઃ ।

અથાઽષ્ટમં વિમોક્ષાધ્યયનં પ્રારમ્ભયતે । તત્ર વિમોક્ષઃ-વિ=વિશેષેણ સર્વથા મોક્ષઃ=  
દૂરીભવનં કર્મભ્યઃ કર્મબન્ધકારણેભ્યશ્ચ, પૃથગ્ ભૂત્વા પણિતમરણેન શરીરપરિત્યાગ  
વસે સિંહકે સ્વરૂપમેં આ ગયા । વહ સિંહસ્વરૂપકે પરાવર્તન કરાનેવાલી  
વિદ્યાકે અધ્યયનસે અપરિચિત થા, ઇસલિયે ઉસસે છૂટ કર અપને અસ-  
લી રૂપમેં નહીં આ સકા । શૌચસે નિવૃત્ત હોકર જબ આચાર્ય મહારાજ  
આયે તબ ઉન્હોને ઇસે સિંહરૂપમેં દેસ્વા, દેસ્વકર ઉસકે ઉપર ઉન્હેં દયા  
આઈ ઓર ઉસે સિંહકે રૂપસે મુનિરૂપમેં પરિવર્તિત કર દિયા । વાદમેં  
આચાર્યને વિચાર કિયા કિ પંચમકાલમેં ઇસ અધ્યયનકે પઠનસે લાભકી  
તો કોઈ આશા હી નહીં હૈ; ઉલ્ટા મહાન્ અનર્થ હી હોગા । અતઃ ઉસ  
સમયસે લગાકર હી ઇસ અધ્યયનકો લુપ્ત કર દિયા । ઇસી કારણસે  
શાસ્ત્રોંકી રચનાકે સમયમેં ભી આચાર્યોંને ઇસ અધ્યયનકા સંગ્રહ નહીં  
કિયા, ઇસીલિયે ઇસકા વિચ્છેદ હુઆ ।

અવ વિમોક્ષાધ્યયન નામકા આઠવાં અધ્યયન પ્રારમ્ભ હોતા હૈ ।  
ઇસમેં 'વિમોક્ષ' શબ્દકા અર્થ ઇસ પ્રકાર હૈ-વિ-સર્વથા મોક્ષ-દૂર હોના

રિચિત હોવાથી એ શિષ્ય પોતાના અસલ સ્વરૂપને પ્રાપ્ત કરી શકેલ નહિ. શૌચથી  
નિવૃત્ત થઈ જ્યારે આચાર્ય મહારાજ આવ્યા ત્યારે તેમણે શિષ્યને સિંહના રૂપમાં  
બોલ્યો, અને દયા આવતાં સિંહના રૂપથી મુનિરૂપમાં પરિવર્તન કરાવ્યું. આ પછી  
આચાર્યે વિચાર કર્યો કે પાંચમા કાળમાં આ અધ્યયનના પઠનથી લાભની તો  
કોઈ આશા નથી, પણ એથી વિપરીત મહાઅનર્થનીજ સંભાવના છે. આથી તે સમયે  
તેમણે એ અધ્યયનને લુપ્ત કરી દીધો. આ કારણથી શાસ્ત્રોની રચનાના સમયમાં પણ  
આચાર્યોએ એ અધ્યયનનો સંગ્રહ કરેલ નથી, આ કારણે એનો વિચ્છેદ થયેલ છે.

હવે વિમોક્ષાધ્યયન નામના આઠમા અધ્યયનનો પ્રારંભ થાય છે.  
આમાં 'વિમોક્ષ' શબ્દનો અર્થ આ પ્રકારે છે-વિ-સર્વથા, મોક્ષ-  
દૂર થવું અર્થાત્ કર્મ અને એના બંધના કારણથી પૃથક્ થઈ



इत्यर्थः। तत्प्रतिपादकमिदमध्ययनमपि विमोक्षशब्देन व्यवहियते। अस्य धूताध्ययनेन सहायं परम्परासम्बन्धः—तत्र स्वकर्मशरीरोपकरणऋद्धिरससाताख्यगौरवत्रिकोपसर्गसम्मानानां विधूननेन मुनेः सङ्गरहित्यं प्रतिपादितम्, तद्धूननं तदैव सफलं स्याद् यद्यन्तकाले सम्यग् निर्याणं जायेतेति तदर्थमस्याध्ययनस्यारम्भः।

अथवा—षष्ठे शब्दादिविषयसङ्गवर्जितेन मुनिनाऽनेकपरीषहोपसर्गाः सहनीया इत्यभिहितम्। एवमत्र मारणान्तिकोपसर्गसंसर्गेऽप्यनुद्विग्नेन संयमिना सम्यग् निर्याणं कार्यमिति कथनायेदमारभ्यते।

—अर्थात् कर्म और इनके बन्धके कारणोंसे पृथक् होकर पण्डितमरणसे शरीरका परित्याग करना वही विमोक्ष है। इस विमोक्षका प्रतिपादन करने-वाला यह अध्ययन भी 'विमोक्ष' शब्दसे व्यवहृत हुआ है। इस अध्ययनका धूत नामक छठे अध्ययनके साथ परंपरारूपसे संबंध है। छठे अध्ययनमें मुनिको अपनेद्वारा कृत कर्म, शरीर, उपकरण, ऋद्धि-रस-साता-नामक तीन गौरव, उपसर्ग एवं मान और अपमान इन सबके विधूननसे सङ्गरहित होना चाहिये—इस प्रकारसे प्रतिपादन किया है। इन सबका विधूनन मुनिका तभी सफल हो सकता है, कि जब उसका अन्तसमयमें निर्याण सम्यक्—शास्त्रोक्त विधिके अनुसार हो, इसी विषयको प्रकट करनेके लिये इस अध्ययनका आरंभ हुआ है।

अथवा—शब्दादिक विषयोंमें संगसे रहित मुनिको अनेक परीषह और उपसर्ग सहन करना चाहिये—यह बात भी छठे अध्ययनमें कही गई है; सो मरणके समयमें उपसर्गों के आने पर भी संयमी—मुनिको उद्विग्न-

પણ્ડિતમરણથી શરીરનો પરિત્યાગ કરવો એ જ વિમોક્ષ છે. આ વિમોક્ષનું પ્રતિપાદન કરવાવાળું આ અધ્યયન પણ વિમોક્ષ શબ્દથી વ્યવહૃત થયેલ છે. આ અધ્યયનનો ધૂત નામના છઠ્ઠા અધ્યયનની સાથે પરમ્પરારૂપથી સંબંધ છે. છઠ્ઠા અધ્યયનમાં મુનિએ પોતાના દ્વારા કૃત કર્મ, શરીર, ઉપકરણ, ઋદ્ધિ-રસ-સાતા નામના ત્રણ ગૌરવ, ઉપસર્ગ અને માન અને અપમાન આ સઘળાના વિધૂન-નથી સંગરહિત હોવા જોઈએ, આ પ્રકારે પ્રતિપાદન કરેલ છે. આ બધાનું વિધૂનન મુનિનું ત્યારે સફળ બને છે કે જ્યારે એના અંત સમયમાં નિર્યાણ સમ્યક્-શાસ્ત્રોક્તવિધિ અનુસાર હોય, આ વિષયને પ્રગટ કરવા માટે આ અધ્યયનનો આરંભ થાય છે.

અથવા—શબ્દાદિક વિષયોના સંગથી રહિત મુનિએ અनेક પરિષદ અને ઉપસર્ગો સહન કરવા જોઈએ. આ વાત પણ છઠ્ઠા અધ્યયનમાં કહેવાયેલ છે; માટે મરણના સમયમાં ઉપસર્ગો આવવાથી પણ સંયમી મુનિએ ઉદ્વિગ્નચિત્ત

અત્રોદ્દેશાર્થાધિકારઃ । અરિમદ્ગ્રોદ્દેશાઃ સન્તિ । તત્ર પ્રથમે-ત્રિષષ્ટચધિકત્રિશ-  
તપ ૧૫ષ્ટિકાનામાહારોપધિશય્યાદિસંસર્ગો વર્જનીયઃ, કિં પુનસ્તન્મતસ્વીકારઃ! તપઃ-  
સંયમ વિરાધકાનામવસન્નપાર્શ્વસ્થાદીનાં સંસર્ગત્યાગશ્ચ કર્તવ્યમિતિ । (૧)

દ્વિતીયે—ચાકલપ્યાહારાદિ પ્રયચ્છતસ્તન્નિષેધરુષ્ટગૃહસ્થસ્ય શાસ્ત્રોક્તદોષપ્રક-  
થનપુરસ્સરં તદાહારાદિપરિત્યાગમિતિ । (૨)

ચિત્ત નહીં હોના चाहिये और सम्यक्-रीतिसे निर्माण करना चाहिये  
इस बात को समझानेके लिये इस अध्ययनका प्रारंभ किया गया है। यहां  
उद्देशके अर्थका अधिकार है। इसमें आठ उद्देश हैं—१ प्रथम उद्देशमें यह  
बतलाया गया है कि मुनिजनको ३६३ पाण्डित्यमतवालोंका आहार,  
उपधि और शय्या आदिके संसर्गका परित्याग कर देना चाहिये। जब  
उनकी ये सब चीजें परिवर्जनीय हैं तो फिर उनके मतकी स्वीकृति तो  
वर्जनीय है ही, इसमें क्या कहना! इसी प्रकार यह भी बतलाया गया है  
कि जो तप और संयमके विराधक हैं ऐसे अवसन्न-पासत्थादिकोंका  
संसर्ग भी त्यागने योग्य है।

२ द्वितीय उद्देशमें—मुनिकल्पके विरुद्ध-अकल्पनीय आहारादिक  
प्रदान करनेवाला गृहस्थ, “यह आहार मुनिजनके अयोग्य-अकल्प्य है”  
इस प्रकार मुनिजन द्वारा निषेध करनेपर यदि रुष्ट होता है तो, मुनिका  
कर्तव्य है कि वह उस आहारके ग्रहण करनेमें शास्त्रोक्त दोषोंका प्रतिपादन  
करे और उस आहारका परित्याग करे। यह प्रकट किया गया है।

બનવું ન જોઈએ, અને સમ્યક્-રીતિથી નિર્માણ કરવું જોઈએ. આ વાતને સમ-  
જાવવા માટે આ અધ્યયનનો પ્રારંભ કરેલ છે. અહિં ઉદ્દેશનો અર્થનો અધિકાર  
છે. એમાં આઠ ઉદ્દેશ છે. ૧ પ્રથમ ઉદ્દેશમાં એમ બતાવેલ છે કે મુનિજને ૩૬૩  
પાખંડીમતવાળાઓના આહાર, ઉપધિ અને શૈયા આદિના સંસર્ગનો પરિત્યાગ  
કરવો જોઈએ, જ્યારે તેની એ સઘળી ચીજો પરિવર્જનીય છે તો પછી તેના  
મતની સ્વીકૃતિ તો વર્જનીય છે જ, એમાં કહેવાનું શું હોય. આ રીતે એ પણ  
બતાવાયું છે કે જે તપ અને સંયમનો વિરાધક છે એવા અવસન્ન-પાસત્થાદિકનો  
સંસર્ગ પણ ત્યાગ કરવા યોગ્ય છે.

૨ બીજા ઉદ્દેશમાં—મુનિકલ્પના વિરુદ્ધ અકલ્પનીય આહારાદિક પ્રદાન  
કરવાવાળા ગૃહસ્થ, “આ આહાર મુનિજનને માટે અયોગ્ય છે—અકલ્પ્ય છે”  
આ પ્રકારે મુનિજનદ્વારા નિષેધ કરવાથી જો રીસાય તો, મુનિનું કર્તવ્ય છે કે તે તેવા  
આહારને ગ્રહણ કરવામાં શાસ્ત્રોક્ત દોષોનું પ્રતિપાદન કરે અને એ આહારનો

તૃતીયે—શીતાદિના પ્રકમ્પિતં મુનિં કામવિકારિણં શક્કમાનાય ગૃહપતયે  
'શીતાદિકં મમ ગાત્રકમ્પનકારણં ન કામવિકારઃ' ઇતિ પ્રતિપાદ્ય તચ્છદ્ધાપનો-  
દનમિતિ । (૩)

ચતુર્થે—ચાપરિહાર્યસ્ત્યાદ્યુપસર્ગોપનિપાતે સંયમરક્ષાર્થં વૈહાનસ-ગાર્દ્ધપૃષ્ઠપ્રકા-  
રદ્વયરૂપમરણં શ્રેય ઇતિ । (૪)

પંચમે—ગ્લાનાદ્યવસ્થાયાં પૂર્વાદૃતપ્રતિજ્ઞાયાઃ પાલનાશક્તૌ મુનેર્ભક્તપરિજ્ઞા-  
મરણં સાધીય ઇતિ । (૫)

૩ તૃતીય ઉદ્દેશમેં—શીત આદિસે કંપતે હુએ મુનિકો દેલ કર  
ગૃહસ્થ યદિ યહ શક્કાશીલ બન જાય કિ “ઇસ મુનિકે કામવિકાર હો  
ગયા હૈ ઇસીલિયે યહ કંપ રહા હૈ” તો મુનિજનકા યહ ધર્મ હૈ કિ  
ઉસ શંકાકા નિવારણ કરે ઓર કહે કિ મેરા શરીર શીતાદિક નિમિ-  
ત્તસે કંપ રહા હૈ, કામવિકારસે નહીં! —યહ પ્રતિપાદિત કિયા ગયા હૈ ।

૪ ચતુર્થ ઉદ્દેશમેં—સ્ત્રી વગેરહ દ્વારા કૃત ઉપસર્ગકે અપરિહાર્ય હો  
જાને પર સાધુકા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ અપને સંયમકી રક્ષાકે લિયે વૈહા-  
નસ ઓર ગાર્દ્ધપૃષ્ઠ નામક મરણસે અપને પ્રાણોંકો છોડ દેવે—યહ સ્પષ્ટ  
કિયા ગયા હૈ ।

૫ પંચમ ઉદ્દેશમેં—ગ્લાન આદિ અવસ્થામેં પૂર્વગૃહીત પ્રતિજ્ઞા કી  
પાલનામેં સાધુકી અશક્તિ હોને પર ઉસ મુનિકે લિયે ભક્તપરિજ્ઞાસે મરણ  
પ્રાપ્ત કરના શ્રેયસ્કર હૈ—યહ વાત બતલાઈ ગઈ હૈ ।

પરિત્યાગ કરે. એ પ્રગટ કરવામાં આવેલ છે.

૩ ત્રીજા ઉદ્દેશમાં—ઠંડી આદિથી ધ્રુજતા મુનિને જોઈ ગૃહસ્થ કદાચ એવી  
શંકા કરે કે “આ મુનિને કામવિકાર થયેલ છે એથી એ કંપી રહેલ છે”  
તો મુનિજનનો એ ધર્મ છે કે તે ગૃહસ્થની એવી શંકાનું નિવારણ કરે અને  
કહે કે માંડું શરીર ઠંડી આદિથી કંપી રહેલ છે, કામવિકારથી નહિ. આવું  
પ્રતિપાદિત કરવામાં આવેલ છે.

૪ ચોથા ઉદ્દેશમાં—સ્ત્રી વગેરે દ્વારા કરાયેલા ઉપસર્ગ અનિવાર્ય હોય તો  
સાધુનું કર્તવ્ય છે કે તે પોતાના સંયમની રક્ષા માટે વૈહાનસ અને ગાર્દ્ધ-  
પૃષ્ઠ નામના મરણથી પોતાના પ્રાણોને છોડી દે. આ સ્પષ્ટ કરેલ છે.

૫ પાંચમા ઉદ્દેશમાં—જ્ઞાનાદિ અવસ્થામાં પૂર્વે લીધેલ પ્રતિજ્ઞાના પાલનમાં



પષ્ટે—ચૈત્વભાવનયા મુનેરિક્ષિતમરણં પ્રશસ્તમિતિ । (૬)

સપ્તમે—મુનિનૈકમાસાદિકા ભિક્ષુપ્રતિમા પાલનીયા, શરીરસ્ય સંયમપાલનાશ-  
ક્તાવસ્થાયાં ક્રમેણ પષ્ટાષ્ટમાદિતપસાઽઽહારાદિસંક્ષેપં કૃત્વા પાદપોપગમનં  
વિધેયમિતિ । (૭)

અષ્ટમે ચ—ચિરપરિપાલિતચારિત્રસ્ય યથાશાસ્ત્રવિહારિણઃ સૂત્રાર્થતદુભય-  
ગ્રહણાદાનાઽઽસેવનાનન્તરં બલહાન્યા સંસીદત્સંયમક્રિયસ્ય સંવર્દિતશિષ્યસમ્પદ

૬ છઠ્ઠે ઉદ્દેશમે—એકત્વ-ભાવનાસે યુક્ત હોકર મુનિકા ઇંગિતમરણ  
પ્રશસ્ત છે । યહ પ્રકટ ક્રિયા ગયા છે ।

૭ સાતવે ઉદ્દેશમે—એક માસ આદિ પ્રમાણવાલી ભિક્ષુપ્રતિમા  
મુનિકો પાલની ચાહિયે, તથા જબ શરીર સંયમ પાલન કરનેકી શક્તિ-  
રહિત અવસ્થામેં આ જાવે તો ક્રમ ૨ સે પષ્ટ ઓર અષ્ટમ આદિ તપસે  
આહારકા સંક્ષેપ કર ઉસે પાદપોપગમન સંથારા ધારણ કર લેના ચાહિયે—  
યહ વર્ણન ક્રિયા ગયા છે ।

૮ આઠવે ઉદ્દેશમે—ચિરકાલસે જિસને ચારિત્રકી આરાધના કી  
હૈ ઓર શાસ્ત્રોક્ત વિધિકે અનુસાર હી જિસને વિહાર ક્રિયા હૈ—એસે મુનિ  
કી સૂત્ર, અર્થ ઓર સૂત્રાર્થ ઇન ત્રીનોંકે ગ્રહણ, દાન ઓર આસેવનકે  
બાદ બલકી હાનિસે સંયમરૂપ ક્રિયાકી પાલનામેં શિથિલતા આ રહી હો

સાધુની અશક્તિ થવાથી એ મુનિને માટે ભક્તપરિણાથી મરણ પ્રાપ્ત કરવું  
શ્રેયસ્કર છે. આ વાત બતાવેલ છે.

૬ છઠ્ઠા ઉદ્દેશમાં—એકત્વભાવનાથી યુક્ત બની મુનિનું ઇંગિતમરણ  
પ્રશસ્ત છે. આ પ્રગટ કરાયેલ છે.

૭ સાતમા ઉદ્દેશમાં—એકમાસ - આદિ પ્રમાણવાળી ભિક્ષુપ્રતિમા  
મુનિએ પાળવી જોઈએ. તથા જ્યારે શરીર, સંયમ પાળવાની શક્તિથી  
રહિત અવસ્થામાં આવી જાય તો ધીરે ધીરે છઠ અને અઠમ આદિ તપથી  
આધારને બંધ કરી તેણે પાદપોપગમન સંથારો ધારણ કરી લેવો જોઈએ, આ  
વર્ણન કરેલ છે.

૮ આઠમા ઉદ્દેશમાં—લાંબા કાળથી જેણે ચારિત્રની આરાધના કરી છે  
અને શાસ્ત્રોક્તવિધિ અનુસાર જ જેણે વિહાર કરેલ છે એવા મુનિને સૂત્ર-  
અર્થ અને સૂત્રાર્થ એ ત્રણેનું ગ્રહણ, દાન અને આસેવનના પછી બળની  
હાનિથી સંયમરૂપ ક્રિયાને પાળવામાં શિથિલતા આવી રહેલ હોય તો

ઉત્સર્ગતો દ્વાદશવર્ષસંલેખનાક્રમેણ સંલિખિતશરીરસ્ય ભક્તપ્રત્યાખ્યાનેઙ્ગિતપાદપોપ-  
ગમનમરણેષુ કિંચિદેકમાશ્રિત્ય જન્મ સફલીકર્તવ્યમિતિ પ્રતિપાદિતમ્ । (૮)

સામ્પ્રતં પ્રથમસૂત્રેણ પરમતનિરાકરણાર્થમેવોપક્રમતે ‘ સે વેમિ ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—સે વેમિ સમણુન્નસ્સ વા અસમણુન્નસ્સ વા અસણં  
વા પાણં વા खाइमं वा साइमं वा वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं  
वा पायपुंछणं वा नो पाएज्जा नो निमंतिज्जा नो कुज्जा वेयाव-  
डियं परं आढायमाणे त्तिवेमि ॥ सू० १ ॥

છાયા—સોઽહં બ્રવીમિ સમનોજ્ઞાય વાઽસમનોજ્ઞાય વાઽશનં વા પાનં વા खाद्यं  
वा स्वाद्यं वा वस्त्रं वा पतद्ग्रहं वा कम्बलं वा पादप्रोच्छनं वा नो प्रदद्यात् नो  
निमन्त्रयेद् नो कुर्याद् वैयावृत्त्यं परमाद्रियमाण इति ब्रवीमि ॥ सू० १ ॥

ટીકા—‘ સોઽહમ્ ’ ઇત્યાદિ—યો ભગવન્મુખાદ્વિર્નિર્ગતયથાશ્રુતગ્રાહી  
પરિજ્ઞાતહેયોપાદેયઃ સોઽહં ત્વાં બ્રવીમિ=વક્ષ્યમાણવચનં વચ્મિ, તદેવાહ—‘સમનોજ્ઞાયે-

તો સંવર્દિત-શિષ્યરૂપ-સંપત્તિવાલે उस मुनिको उत्सर्गसे १२ वर्ष  
की संलेखना धारण कर लेनी चाहिये । इस क्रमसे शरीरके कृश होने  
पर उसे भक्तप्रत्याख्यान, इंगित और पादपोपगम इन मरणोंसे किसी  
एक मरणको धारण कर जन्म सफल करना चाहिये—यह विषय  
समझाया गया है ।

इस समय प्रथम सूत्रसे सूत्रकार परमतके निराकरण करनेका  
उपक्रम (प्रारंभ) करते हैं—‘ सें वेमि ’ इत्यादि—

श्री सुधर्मास्वामी श्री जम्बूस्वामीसे कहते हैं—हे शिष्य ! जिसने  
भगवानके मुखसे निर्गत श्रुतके अनुसार ही तत्त्व ग्रहण किया है और

શિષ્યરૂપ સંપત્તિથી વૃદ્ધિ પામેલ એ મુનિએ ઉત્સર્ગથી ૧૨ વર્ષની સંલેખના ધારણ  
કરી લેવી જોઈએ. આ ક્રમથી શરીરના કૃશ થવાથી તેણે ભક્તપ્રત્યાખ્યાન,  
ઈંગિત અને પાદપોપગમ આ મરણોમાંથી કોઈ એક મરણને ધારણ કરી જન્મ  
સફળ કરવો જોઈએ. આ વિષય સમજાવેલ છે.

આ સમય પ્રથમ સૂત્રથી સૂત્રકાર પરમતનું નિરાકરણ કરવાનો પ્રારંભ  
કરે છે—“ સે વેમિ ” ઇત્યાદિ.

શ્રી સુધર્માસ્વામી શ્રી જમ્બૂસ્વામીને કહે છે—હે શિષ્ય ! જેને ભગવાનના  
મુખથી નિર્ગત શ્રુતના અનુસાર જ તત્ત્વ ગ્રહણ કરેલ છે અને એનાથી જે હેય  
અને ઉપાદેયના જ્ઞાનથી યુક્ત છે એવો હું તમને આ પ્રકારથી કહું છું કે તમે

त्यादि । परम्=उत्कृष्टम् आद्रियमाणः=सत्कुर्वाणः सन् समनोज्ञाय=दृष्टिलिङ्गाभ्यां चारुवेषाय स्वमतावसन्नपार्श्वस्थप्रभृतये, वा-शब्दः पक्षान्तरद्योतकः; असमनोज्ञाय=परतीर्थिकाय शाक्यप्रभृतये वा यद् अशनम्-ओदनादिकम् पानं=द्राक्षादिधावन-जलं वा, स्वाद्यं=नारिकेलादिकं वा, स्वाद्यं=लवङ्गादिकं वा, वस्त्रं वा, पतद्ग्रहं=पात्रं वा, कम्बलं वा, पादप्रोच्छनं=रजोहरणादिकं वा नो प्रदद्यात्=प्राप्तुकमपि तस्मै न ददेत्, नापि च वितरणाय निमन्त्रयेत्, वैयावृत्यं=शुश्रूषादिकमपि न कुर्याद्=नो विद्व्यात् । इति=एवम् अहं त्वां ब्रवीमि=यथा भगवत्सकाशाच्छ्रुतं तथा कथयामि ॥

अपरमप्यहं ब्रवीमीत्याह-‘ ध्रुवं ’ इत्यादि ।

मूलम्-ध्रुवं चेयं जाणिञ्जा असणं वा जाव पायपुंछणं वा लभिया, नो लभिया, भुंजिया, नो भुंजिया, पंथं विउत्ता विउक्कम विभत्तं धम्मं जोसमाणे समेमाणे चलेमाणे पाइज्जा

इसीसे जो हेय और उपादेयके ज्ञानसे युक्त है वह मैं तुमसे इस प्रकार कहता हूं कि तुम अच्छी तरह-भक्तिके आवेशसे-आदर सत्कार करके, समनोज्ञ-दृष्टि और लिङ्गोंसे सुन्दर वेषवाले ऐसे स्व-जैनमतानुयायी अवसन्न पासत्थादिकोंको, अथवा असमनोज्ञ-परतीर्थिक शाक्य आदिको अशन-ओदनादिक, पान-द्राक्षादिका धोवन जल, स्वाद्य-नारियल आदि, अथवा स्वाद्य-लवंगादिक, वस्त्र, पतद्ग्रह-पात्र, कम्बल अथवा पादप्रोच्छन-रजोहरणादिक, प्राप्तुक होने पर भी न दो और न उन्हें देनेके लिये आमंत्रित करो, वैयावृत्य भी उनकी न करो-इस प्रकार जैसा भगवानसे सुना है वैसा मैं तुमसे कहता हूं ॥ सू०१ ॥

और भी “ ध्रुवं ” इत्यादि सूत्रसे कहता हूं, सो सुनो—

सारी रीते-लङ्कितना आवेशथी आदरसत्कार करीने समनोज्ञ-दृष्टि अने लिङ्गथी सुन्दर वेशवाणा अथवा पोताना जैनमत अनुयायी अवसन्न-पासत्थादिकोने भाटे— अथवा असमनोज्ञ-परतीर्थिक शाक्य आदिने भाटे अशन-ओदनादिक, पान-द्राक्षादिकतुं धोवणु जण, आद्य-नारियल आदि, अने स्वाद्य-लवंगादिक, वस्त्र, पतद्ग्रह-पात्र, कम्बल अने पादप्रोच्छन-रजोहरणादिक प्राप्तुक होवा छातां पणु न दो, अने न अने आपवा भाटे आमंत्रणु करो, वैयावृत्ति पणु तेनी न करो. आ प्रकारे जेवुं भगवानथी सांभल्युं छे तेवुं हुं तमने कहुं छुं. (सू०१)

धीणुं पणु “ ध्रुवं ” इत्यादि सूत्रथी कहुं छुं सांभणो.



वा निमंतिज्जा वा कुज्जा वा वेयावडियं परं अणादायमाणे  
त्तिवेमि ॥ सू० २ ॥

छाया--ध्रुवं चैतज्जानीयादशनं वा यावत् पादप्रोच्छन्नं वा लब्ध्वा नो  
लब्ध्वा, भुक्त्वा, नो भुक्त्वा, पन्थानं व्यावर्त्यापि उत्क्रम्य विभक्तं धर्मं जुषमाणः  
समायन् चलन् प्रदद्यात् वा निमन्त्रयेद्वा कुर्याद्वैयावृत्यं परमाद्रियमाण इति ब्रवीमि ॥

टीका--'ध्रुव'मित्यादि । शाक्यादयो हि कदाचिदशनादिकं प्रदर्शयैवं  
ब्रुवन्ति,--भवान्-एतत्=वक्तव्यं ध्रुवं=निश्चितं जानीयात्=बुध्येत, यद्  
अशनादिकमारभ्य यावत् पादप्रोच्छन्नं सर्वं परगृहे लब्ध्वा वा अलब्ध्वा वा भुक्त्वा  
वा अभुक्त्वा वा अवश्यमस्माकं मनस्तुष्टये तद्ग्रहणायास्मदीयवस्तौ समागन्तव्यम् ;  
तथा हि-अशनादीनामलाभे लाभाय, लाभेऽपि चोत्कृष्टमिष्टान्नादिलाभार्थं वा,  
भुक्तेऽपि पुनर्भोजनार्थम्, अभुक्तेऽपि प्रथमालिकार्थम् ['सिरावण' इति भाषायाम्],

शाक्य आदि, मुनिको देख कर कदाचित् भोजनादिक  
दिखा कर यह कहें कि हे मुनि ! आप यह हमारा कहना  
अवश्य मानें कि आपको अशनसे लगाकर पादप्रोच्छन्न तककी  
समस्त सामग्री अथवा असमस्त सामग्री परगृहमें मिले या न  
मिले, आपने आहार किया हो अथवा न भी किया हो तो भी आप  
अवश्य २ हमारे सन्तोषके लिये ही कम से कम अशनादिक लाभके  
निमित्त, हमारे स्थान पर पधारे। वहां आनेसे आपको फायदा होगा-  
अशनादिकके अलाभमें आपको वहां उनका लाभ होगा, अन्यत्र उनके  
मिल जाने पर भी वहां आनेसे आपके लिये उत्तम २ मिष्टान्न आदि  
सामग्री की प्राप्ति हो जायगी, खा करके भी आने पर फिरसे भोजन हो

शाक्य आदि, मुनिने जेष्ठ कहाचित् भोजनादिक बतावी ऐवुं  
कडे डे डे मुनि ! आप अभाई जे कडेवुं अवश्य मानो डे आपने  
अशनथी लगाडी पादप्रोच्छन्न सुधी समस्त सामग्री अथवा असमस्त सामग्री  
भीजने धरे भणे अथवा न भणे, आपे आहार कर्यो होय अथवा न  
कर्यो होय तो पणु आप अवश्य अवश्य अमारा संतोष माटे ज कमथी कम  
अशनादिक लाभना निमित्त अमारा स्थान उपर पधारे त्यां आववाथी आपने  
हाथहो थशे-अशनादिकना अलाभमां आपने त्यां ऐनो लाभ थशे, भीजे स्थणेथी  
जे भणवा छतां पणु त्यां आववाथी आपने माटे उत्तममां उत्तम मिष्टान्न  
आदि सामग्रीनी प्राप्ति थशे, पाछने आववा छतां इरीथी भोजन थशे, अने

अस्मत्सन्तोषायावश्यमस्मत्स्थाने समागन्तव्यम्, यद् यद् भवतां कल्पनीयं तत्तदा-  
स्यामीति भावः । ममावासो भवत्संचरणरथ्यायामेव वर्तते, यदि वक्रोऽपि भवेत्त-  
थाऽपि पन्थानं=मार्गं व्यावर्त्यापि=परिश्रम्यापि उत्क्रम्य=मार्गमध्यवर्तिगृहाण्युल्ल-  
ङ्घ्यागन्तव्यम्, नाऽत्र क्लेशो गणनीयः, कृपा विधेया-इत्यादि कथयित्वा सः  
विभक्तं=भिन्नं धर्मं जुषमाणः=सेवमानः शाक्यादिः, समायन्=तेन मार्गेण कदाचिद्  
आगच्छन्, चलन्=मार्गे गच्छन् यच्चाशनादिकं प्रदद्यात्, तद्दानादिना निमन्त्र-  
येद्वा, अन्यद्वा वैयावृत्यं कुर्यात्=विदध्यात्, तर्हि मुनिः परम्=अत्यर्थम् अनाद्रियमाणः  
तस्यानादरं कुर्वन्-समस्वीकुर्वाणः सन् विहरेत्, तेन सह परिचयमपि न कुर्यात्,  
अनेन दर्शनशुद्ध्यादेरवश्यं भावादित्याशयः । इति पूर्वोक्तं वक्ष्यमाणं च ब्रवीमि=  
कथयामि ॥ सू० २ ॥

जायगा, और नहीं खा कर आनेपर सुबहका लघुभोजन हो जायगा। इस  
लिये हमारे संतोषके लिये आप मेरे स्थान पर अवश्य २ आवें । आनेपर  
आपके लिये जो २ वस्तुएँ कल्पनीय होंगी उन्हें मैं अवश्य २ दूंगा। मेरा  
निवासस्थान आपके निकलनेकी गली ही में है । यदि वहांसे वह शायद  
आपके लिये टेढ़ा भी पड़े तो भी घूमकर कुछ मध्यवर्ती घरोंको छोड़  
कर आप वहां जरूर आवें । इसमें परिश्रमका ख्याल न करें । बड़ी  
दया होगी । ” इत्यादि कह कर वह भिन्न धर्मका अनुयायी शाक्य  
आदि उस मार्गसे कदाचित् आता जाता मिल जाय और  
उस मुनिके लिये जो कुछ भी अशनादिक दे, अथवा उसके लिये  
आग्रह करे, या आमंत्रित करे अथवा दूसरी तरहसे कोई वैयावृत्ति  
करना चाहे तो उस मुनिको चाहिये कि वह उसकी किसी  
भी बात पर ख्याल न करे, उसके द्वारा प्रदत्त किसी भी वस्तुका ग्रहण

भाधने न आववाथी शिरामणु थशे. आ माटे अमारा स्थान उपर अमारा संतोष  
माटे आप अवश्य अवश्य आवो. आववाथी आपने माटे ने ने वस्तुओ कल्पनीय  
हशे ओ हुं तमोने अवश्य अवश्य आपीश. माई निवासस्थान आपनी निकल-  
वानी शेरीमां न छे. अथवा त्यांथीओ थोडो छोटो पडे तो पणु इरीने डेटलाक  
वयला धरोने मुकीने पणु आप त्यां जरूर आवो. आमां परिश्रमनो ज्वाल न  
करेशो. भूअ दया थशे. धत्यादि कहीने ओ भील धर्मना अनुयायी शाक्य आदि  
ओ मार्गथी कदाचित् आवतां नतां भणी नय अने ओ मुनि  
माटे ने कांई भावा पीवानुं आपे, अथवा ओने माटे आग्रह करे, या  
आमंत्रण करे, अथवा भील रीते कांई वैयावृत्त करवा थाडे, त्यारे ते मुनि

अपि च वक्ष्यमाणं दर्शयति—‘ इहमेगेसिं ’ इत्यादि—

मूलम्—इहमेगेसिं आचारगोचरे नो सुनिसन्ते भवति, ते इह आरंभद्वी अणुवयमाणा हण पाणे घायमाणा हणओ यावि समणुजाणमाणा, अदुवा अदिन्नमाययन्ति, अदुवा वायाउ विउ-ज्जन्ति, तं जहा—अत्थि लोए, नत्थि लोए, धुवे लोए, अधुवे लोए, साइए लोए, अणाइए लोए, सपज्जवसिए लोए, अप-ज्जवसिए लोए, सुकडेत्ति वा, दुक्कडेत्ति वा, कल्लाणेत्ति वा, पावेत्ति वा, साहुत्ति वा, असाहुत्ति वा, सिद्धित्ति वा, असिद्धित्ति वा, निरएत्ति वा, अनिरएत्ति वा, जमिणं विप्पडिवन्ना मामगं धम्मं पन्नवेमाणा, एत्थ वि जाणह अकस्मात्, एवं तेसिं नो सुयक्खाए धम्मे नो सुपन्नत्ते धम्मे भवइ ॥ सू० ३ ॥

छाया—इहैकेषामाचारगोचरो नो सुनिशान्तो भवति, त इहारम्भार्थिनोऽनु-वदन्तो घनन्तः प्राणान् घातयन्तः घनतश्चापि समनुजानन्तः, अथवाऽदत्तमाददति, अथवा वाचो वियुञ्जन्ति, तद्यथा—अस्ति लोको, नास्ति लोको, ध्रुवो लोकः, अध्रुवो लोकः, सादिको लोकोऽनादिको लोकः, सपर्यवसितो लोकोऽपर्यवसितो लोकः, सुकृतमिति वा, दुष्कृतमिति वा, कल्याणमिति वा, पापमिति वा, साध्विति वा, असाध्विति वा, सिद्धिरिति वा, असिद्धिरिति वा, निरय इति वा, अनिरय इति वा, यदिदं विप्रतिपन्ना मामकं धर्मं प्रवदन्तः, अत्रापि जानीत अकस्मात्, एवं तेषां नो स्वाख्यातो धर्मो न सुप्रज्ञप्तो धर्मो भवति ॥ सू० ३ ॥

टीका—‘ इहैकेषा ’ मिति—इह=अत्र मनुष्यलोके एकेषां = कतिपयानाम्, न करे और वहांसे चल देवे, कोई भी प्रकारका संपर्क उससे न रखे। इस प्रकारके वर्त्तनसे उस मुनिके समकित की शुद्धि होती है। ऐसा मैं कहता हूं ॥ सू० २ ॥

तथा—‘ इहमेगेसिं ’ इत्यादि—

इस मनुष्य लोकमें जो सर्वज्ञसे उपदिष्ट संयमके मार्गसे अनभिज्ञ

ओनी कोष्ठपिण्ड वात उपर ग्याल न करे, ओना द्वारा भणती कोष्ठपिण्ड वस्तुने अडणु न करे अने त्याथी यादथा नय, कोष्ठ पण्ड प्रकारनो संपर्क ओनाथी न राणे. आ प्रकारना वर्तनथी ते मुनिना समकितनी शुद्धि थाय छे, ओवुं हुं कहुं छुं. (सू० २)

अपि च—“ इहमेगेसिं ” इत्यादि..

आ मनुष्य लोकमां ने सर्वज्ञथी उपदेशवाभां आवेल संयम मार्गथी



ન સર્વેષામ્; ' આચારગોચરઃ ' આચારસ્ય=સંયમસ્ય ગોચરઃ=વિષયઃ સર્વજ્ઞોપદિષ્ટ-  
માર્ગ इत्यर्थः, સુનિશાન્તઃ=સુપરિચિતઃ, નો ભવતિ, તે ઇહ=અસ્મિંલ્લોકે આરમ્ભા-  
ર્થિનઃ પચન-પાચનાનુમોદનાદિસાવધવ્યાપારવન્તઃ શાક્યાદયો દ્રવ્યલિङ्ગिनोऽवसन्न-  
પાર્શ્વસ્થાદયઃ, અનુવદન્તઃ=દેવાયતનનિર્માણે પ્રતિમાપ્રતિષ્ઠાપૂજાદૌ ઔદેશિકાહારાદૌ  
ચ ધર્મ પ્રરૂપયન્તઃ સન્તઃ પ્રાણાન્=એકેન્દ્રિયાદિજીવાન્ ઘનન્તઃ=નાશયન્તઃ અન્યૈ-  
ર્ઘાતયન્તઃ, ઘનતઃ ઘાતયતો વા સમનુજાનન્તઃ=અનુમોદયન્તો ભવન્તિ । एतेन  
षड्जीवनिकायविराधकत्वं तेषामभिहितम् ।

' અથવા '=પક્ષાન્તરે, તેન-તે આરમ્ભાર્થિનઃ અદત્તં=પરસ્ય ધનાદિકમ્ આદ-  
દતિ=ગૃહ્ણન્તિ, તૃતીયેઽવ્રતે સ્તોકકથનીયત્વાત્તસ્ય પૂર્વે પ્રતિપાદનમ્ । द्वितीये च  
बहुवक्तव्यत्वात्तत्तदुपन्यास इति विज्ञेयम् ।

હૈં, અર્થાત્ જો સર્વજ્ઞકથિત સંયમકે માર્ગસે અપરિચિત હૈં-એસે વે  
શાક્યાદિક તથા દ્રવ્યલિङ्गी अवसन्न-પાસત્થાદિક આરમ્ભાર્થી, પચન,  
પાચન ઔર અનુમોદન આદિ સાવધ વ્યાપારોસે યુક્ત બન દેવાય-  
તન-મન્દિર આદિકે નિર્માણમૈં, પ્રતિમા કી પ્રતિષ્ઠામૈં, ઔર ઉસકે પૂજન  
આદિમૈં તથા ઉદિષ્ટ આહાર વગૈરહમૈં ધર્મકી પ્રરૂપણા કરતે હુए एकेन्द्रि-  
યાદિક જીવોંકા સ્વયં આરમ્ભ કરનેવાલે, દૂસરોંસે ઉનકા આરમ્ભ કરા-  
નેવાલે एवं उनके आरम्भ करनेवालोंकी अनुमोदना करनेवाले होते हैं।  
इस कथनसे षड्जीवनिकायोंकी विराधकता उनके कही गई  
समझनी चाहिये ।

અથવા—વે આરમ્ભાર્થી—શાક્યાદિક એવં અવસન્ન-પાસત્થાદિક પર  
કા અદત્ત ધનાદિક દ્રવ્ય ગ્રહણ કરતે હૈં । तृतीय अव्रत-चौर्य है ।

અનભિજ્ઞ છે, અર્થાત્ જે સર્વજ્ઞકથિત સંયમના માર્ગથી અપરિચિત છે એવા  
એ શાક્યાદિક તથા દ્રવ્યલિંગી અવસન્ન-પાસત્થાદિક આરંભાર્થી, પચન, પાચન  
અને અનુમોદન આદિ સાવધ વ્યાપારથી યુક્ત બની દેવાયતન-મન્દિર આદિના  
નિર્માણમાં, પ્રતિમાની પ્રતિષ્ઠામાં અને તેના પૂજન આદિમાં તથા ઉદિષ્ટ આહાર  
વગેરેમાં ધર્મની પ્રરૂપણા કરતાં એકેન્દ્રિય આદિ જીવોના સ્વયં આરંભ કરવા-  
વાળા, બીજાથી તેનો આરંભ કરાવવાળા અને તેનો આરંભ કરવાવાળાને અનુ-  
મોદન આપનારા હોય છે. આ કથનથી ષડ્જીવનિકાયોની વિરાધકતા તેની કહે-  
વામાં આવી સમજવી જોઈએ.

અથવા—એ આરંભાર્થી—શાક્યાદિક અને અવસન્ન-પાસત્થાદિક બીજાનું  
અદત્ત ધનાદિક દ્રવ્ય ગ્રહણ કરે છે. ત્રીજું અવ્રત-ચોર્ય છે. સૂત્રકાર આ

‘અથવા’ પશ્ચાન્તરઘોતકઃ, તદ્વથા-અદત્તં ગૃહ્ણન્તો હિ વાચઃ=વહુવિધાઃ વક્ષ્ય-  
માણા વિયુઞ્જન્તિ=પ્રયુઞ્જન્તિ-વાચો વિનિયોગં કુર્વન્તિ-કથયન્તીત્યર્થઃ, તદેવાહ-  
તદ્વથેત્યાદિના-તદ્વથા--

કેચિદાહુઃ-‘લોકઃ=સ્થાવર-જઙ્ગમલક્ષણઃ, અસ્તિ=વિદ્યતે। તથાહિ-સપ્તસમુદ્રા  
સપ્તદ્વીપા નવચ્ચણ્ડા પૃથિવી, નાતઃ પરમન્યો લોકઃ’ ઇતિ ।

કેચિચ્ચ-एतादृशानि बहूनि ब्रह्माण्डानि सन्ति, तेषु कति चिज्जलमध्ये प्लव-  
मानानि सन्तीति, वर्तन्ते पञ्चमहाभूतानि पृथिव्यादीनीति, तथा अस्ति च पर-  
लोकः=यमलोकादिरूपः’ ઇતિ પ્રવદન્તિ ।

સૂત્રકારકો इसके विषयमें विशेष कथन नहीं करना है-इसलिये इसका  
क्रमप्राप्त असत्यके कथन करनेके पहिले कथन नामोल्लेखरूपसे किया  
है । द्वितीय अव्रतमें विशेष वक्तव्यता है; इसलिये उसके बाद उसका  
कथन किया है ।

અથવા-અદત્તકા ગ્રહણ કરનેવાલે મનુષ્ય વહુત પ્રકારકી ( જિસકે  
વિષયમેં આગે કહા જાયગા ) બાતેં બનાયા કરતે હૈં । ઇસીકા “તદ્વથા”  
પદસે સ્પષ્ટીકરણ કરતે હુએ સૂત્રકાર કહતે હૈં--

કોઈ કોઈ કહતે હૈં-સ્થાવર ઔર જંગમ સ્વરૂપવાલા यह लोक है !  
इसका मतलब सिर्फ इतना ही है कि यह पृथिवी सात समुद्रवाली है,  
सात इसमें द्वीप हैं, और नव इसके खण्ड हैं । इसीका नाम लोक है ।  
इससे जुदा और कोई लोक नहीं है । कोई २ ऐसा भी कहते हैं-ऐसे  
तो बहुत ब्रह्माण्ड हैं । इनमें कितनेक तो जलके बीचमें डूबे हुए हैं,

આ વિષયમાં વિશેષ કહેવા માગતા નથી. આ માટે ક્રમપ્રાપ્ત અસત્યનું કથન  
નહિ કરતાં પહેલાં અદત્તાદાનનું નામોલ્લેખરૂપથી કથન કરેલ છે. બીજા અવ્રતમાં  
વિશેષ વક્તવ્ય છે; આ માટે એના પછી એનું કથન કરેલ છે.

અથવા-અદત્તનું ગ્રહણ કરવાવાળા મનુષ્ય ઘણા પ્રકારની ( જેના વિષયમાં  
આગળ કહેવામાં આવશે ) વાતો બતાવ્યા કરે છે, એનું “તદ્વથા” પદથી  
સ્પષ્ટીકરણ કરતાં સૂત્રકાર કહે છે--

કોઈ કોઈ કહે છે સ્થાવર અને જંગમ-સ્વરૂપવાળો આ લોક છે. આનો  
અર્થ ફક્ત એટલો જ છે કે આ પૃથ્વી સાત સમુદ્રવાળી છે, આમાં સાત દ્વીપ  
છે અને નવ એના ખંડ છે. આનું નામ લોક છે. આનાથી જુદો બીજો કોઈ  
લોક નથી. કોઈ કોઈ એમ પણ કહે છે-એમ તો ઘણા બ્રહ્માંડ છે, આમાં  
કેટલાક તો પાણીમાં ડુબી ગયેલા છે. કેટલાક પંચમહાભૂતસ્વરૂપ પૃથ્વી આદિ

ચાર્વાકાસ્તુ-‘લોકઃ=પરલોકો નાસ્તિ’ इत्याहुः । इत्थं च तेषामभ्युपगमः-  
स्वर्गादिकं गन्धर्वनगरमरुमरीचिकादिसदृशमेव, प्रत्यक्षमेव प्रमाणं, नान्यदनुमाना-  
दिकं परोक्षम्, परलोकाभावेन जीवः परलोकगामी न भवत्येव; किन्तु प्रत्यक्षं परि-  
दृश्यमानः पञ्चभूतात्मक एव लोकः, अतो नास्ति बन्धो, नास्ति मोक्षः, नास्ति  
पुण्यं, नास्ति पापमित्यादि, तथाहि—

“यथा यथाऽर्थान्निन्द्यन्ते, विविच्यन्ते तथा तथा ।

यद्येतत्स्वयमर्थेभ्यो, रोचते तत्र के वयम् ॥ ૧ ॥

કિતનેક પંચમહાભૂતસ્વરૂપ પૃથિવી આદિક વિદ્યમાન હૈં । તથા યમ-  
લોક-આદિ-સ્વરૂપ પરલોક મૌજૂદ હૈં । ચાર્વાક-સિદ્ધાન્તવાલે  
નાસ્તિકલોગ ‘પરલોક નહીં હૈ’ એસા માનતે હૈ । ઉનકા સિદ્ધાન્ત  
ઇસ પ્રકારસે હૈ - સ્વર્ગાદિક પરલોકકી માન્યતા ગન્ધર્વનગર  
તથા મરુમરીચિકા જૈસી હૈ । જૈસે ઇનકા આભાસ ભ્રમસે હોતા હૈ, ઉસી  
તરહસે સ્વર્ગાદિક પરલોકકી મૈ માન્યતા એસી હી હૈ, વાસ્તવિક નહીં ।  
ઇનકે સિદ્ધાન્તાનુસાર ૧ પ્રત્યક્ષ હી પ્રમાણ હૈ । પરોક્ષ-અનુમાનાદિક  
નહીં । જબ પરલોક હી નહીં તો જીવ પરલોકમૈં જાતા હૈ,  
અથવા પરલોકમૈં ઉસકે જાનેકા સ્વભાવ હૈ-એસી કલ્પના  
મૈ ઠીક નહીં હૈ । જો કુછ પ્રત્યક્ષસે પંચભૂતાત્મક દિશ્વાઈ દેતા હૈ વહી  
લોક હૈ, ઇસસે પરે નહીં । ઇસલિયે ન બન્ધ હૈ, ન મોક્ષ હૈ, ન પુણ્ય હૈ,  
ઔર ન પાપ હૈ ।

વિદ્યમાન છે. તથા યમલોક વગેરે સ્વરૂપથી પરલોક પણ છે. ચાર્વાક સિદ્ધાન્ત-  
વાળા નાસ્તિક લોક ‘પરલોક નથી’ એવું માને છે. એમનો સિદ્ધાન્ત  
આ પ્રકારનો છે-સ્વર્ગાદિક પરલોકની માન્યતા ગન્ધર્વનગર તથા મરુમરીચિકા  
જેવી છે. જેમ એનો આભાસ ભ્રમથી થાય છે એવી જ રીતે સ્વર્ગાદિક પરલો-  
કની માન્યતા પણ છે, વાસ્તવિક નથી. એમના સિદ્ધાન્ત - અનુસાર  
૧ પ્રત્યક્ષ જ પ્રમાણ છે. પરોક્ષ-અનુમાનાદિક નહીં. જ્યારે પરલોક જ  
નથી તો જીવ પરલોકમાં જાય છે, અથવા પરલોકમાં એનો જવાનો સ્વભાવ છે  
એવી કલ્પના કરવી એ પણ ઠીક નથી. જે કાંઈ પ્રત્યક્ષથી પંચભૂતાત્મક દેખાય  
છે એ જ લોક છે, આથી બીજું નહીં. આથી ન બન્ધ છે, ન મોક્ષ છે, ન  
પુણ્ય છે કે ન પાપ છે.



ભૌતિકાનિ શરીરાણિ, વિષયાઃ કરણાનિ ચ ॥

તથાઽપિ મન્દૈરન્યસ્ય, તત્ત્વં સમુપદિશ્યતે ॥ ૨ ॥ ” ઇતિ ।

કિમધિકેન ।

કાપિલાસ્તુ—‘ ધ્રુવો લોકઃ ’=લોકઃ ધ્રુવઃ=શાશ્વતિકઃ=નિત્યઃ કૂર્માજ્ઞાની-  
વાઽઽવિર્ભાવ-તિરોભાવેનૈવોત્પત્તિધ્વંસાદિવ્યવહાર ઔપચારિકો ન તુ વાસ્તવિકોઽ-  
પૂર્વોપજનરૂપઃ ।

વૈશેષિકાદિતન્ત્રવદુત્પત્તેઃ પૂર્વં કાર્યસ્યાઽસત્ત્વસ્વીકારેઽસતઃ શશશૃંગાદેરપ્યુ-  
ત્પત્તિઃ કદાચિદગ્નીકાર્યા સ્યાત્ । સતો વિનાશાઽસમ્ભવાદ્ધ ન સન્નાઽસત્; કિન્તુ

યથા યથાર્થાશ્ચિન્ત્યન્તે વિવિચ્યન્તે તથા તથા ।

યદ્યેતત્સ્વયમર્થેભ્યો રોચતે તત્ર કે વયમ્ ॥ ૧ ॥

ભૌતિકાનિ શરીરાણિ વિષયાઃ કરણાનિ ચ ।

તથાપિ મન્દૈરન્યસ્ય તત્ત્વં સમુપદિશ્યતે ॥ ૨ ॥

ભાવાર્થ—જિસ જિસ પ્રકારસે પદાર્થોંકા વિચાર કિયા જાતા હૈ  
ઉસ ઉસ પ્રકારસે વે વિશીર્ણ (નષ્ટ) હોતે હૈં । હમ ક્યા કરેં—યદિ યહ  
શૂન્યતા હી પદાર્થોંકો રુચતી હૈ તો ! શરીર, વિષય ઔર ઇન્દ્રિયાં યે  
સબ ભૌતિક હૈં, તો મી સૂર્વ પ્રાણી અન્યકે લિયે તત્ત્વોંકા ઉપદેશ દેતે  
હૈં; જ્યાદા ક્યા કહા જાય ?

કાપિલમતાનુયાયી સાંખ્ય—યહ કહતે હૈં કિ યહ લોક  
ધ્રુવ-શાશ્વતિક-નિત્ય હૈ । હસમેં ઉત્પત્તિ ઔર ધ્વંસ-નાશકા વ્યવહાર  
ઔપચારિક-ગૌણ હૈ । હસમેં આવિર્ભાવ ઔર તિરોભાવ હી હોતે

યથા યથાર્થાશ્ચિન્ત્યન્તે વિવિચ્યન્તે તથા તથા ।

યદ્યેતત્સ્વયમર્થેભ્યો રોચતે તત્ર કે વયમ્ ॥ ૧ ॥

ભૌતિકાનિ શરીરાણિ વિષયાઃ કરણાનિ ચ ।

તથાપિ મન્દૈરન્યસ્ય તત્ત્વં સમુપદિશ્યતે ॥ ૨ ॥

ભાવાર્થ—જે જે પદાર્થોંનો જે પ્રકારથી વિચાર કરવામાં આવે છે તે તે  
પ્રકારથી તેનો નાશ થાય છે. અમે શું કરીએ—જે આ શૂન્યતા જ પદાર્થોંને રૂચે  
છે. શરીર, વિષય અને ઇન્દ્રિયો આ અધું ભૌતિક છે. તો પણ મૂર્ખ પ્રાણી  
બીજાને માટે તત્ત્વોંનો ઉપદેશ આપે છે. વધુ શું કહેવાય.

કાપિલ-મતાનુયાયી સાંખ્ય એવું કહે છે કે આ લોક ધ્રુવ-શાશ્વતિક-નિત્ય છે.  
આમાં ઉત્પત્તિ અને નાશનો વ્યવહાર ગૌણ છે. એમાં આવિર્ભાવ અને તિરોભાવ જ

‘સદસદિદં પ્રપશ્વજાતં, મૃત્તિકાદાવુપાદાનકારણે ઘટાદિરવ્યક્તરૂપેણ સન્ બહિરિન્દ્રિયપ્રત્યક્ષાયોગ્યત્વેનાઽસન્ ઘટ ઇતિ વ્યવહારઃ’ ઇત્યાદિકમાહુઃ, તેષાં મતે સિદ્ધમેવ લોકસ્ય ધ્રુવત્વમ્ ।

હૈં, અતઃ યહ વ્યવહાર-વાસ્તવિક નહીં હૈ । મિટીસે ઘટ કોઈ અપૂર્વ વસ્તુ ઉત્પન્ન નહીં હોતી હૈ કિંતુ ડસમેં ઘટકા તિરોભાવ થા ઓર કારણ-કલાપસે તિરોભાવ હટ જાને પર ડસકા આવિર્ભાવ હોતા હૈ । અર્થાત્-સત્કા હી આવિર્ભાવ હુઆ અસત્કા નહીં । ઇસ લિયે અપૂર્વ કુછ ડી ઉત્પન્ન નહીં હોતા । વૈશેષિકસિદ્ધાન્તકી તરહ ઉત્પત્તિસે પૂર્વ કાર્યકા અસત્ત્વ માના જાયગા તો અસત્ શશશ્રૃંગકી ડી ઉત્પત્તિ કદાચિત્ સ્વીકાર કરની પડેગી । સત્કા કડી ડી વિનાશ નહીં હોતા હૈ ઇસીલિયે ઘટકા સર્વથા સત્ત્વ માનને પર ડસકા કડી વિનાશ નહીં હો સકતા હૈ, પરન્તુ વિનાશ હોતા દિશ્વતા તો હૈ, ઇસલિયે યહ જગત્પ્રપંચ સત્-અસત્-સ્વરૂપ હૈ । ઉપાદાનકારણસ્વરૂપ મિટીમેં ઘટાદિક કાર્ય અવ્યક્તરૂપસે થે, ઇસલિયે વે બહિરિન્દ્રિય ચક્ષુરાદિકોંકે અવિષયભૂત થે; અતઃ મિટીમેં વર્તમાન હોતે હુઅ ડી ડનકા ચક્ષુરિન્દ્રિયસે ગ્રહણ નહીં હોતા હૈ । ઇસ લિયે બહિરિન્દ્રિયસે ગ્રહણકે અયોગ્ય હોનેસે ઘટાદિકોંમેં “અસન્ ઘટઃ” ઇત્યાદિક વ્યવહાર હોતા હૈ-એસા સાંખ્યોંકા કહના હૈ, ઇસ પ્રકારકે ડનકે કથનસે લોકમેં ધ્રુવતા સિદ્ધ હોતી હૈ ।

થાય છે, પણ આ વ્યવહાર વાસ્તવિક નથી. માટીથી ઘટ કોઈ અપૂર્વ વસ્તુ ઉત્પન્ન થતી નથી; પરન્તુ એમાં ઘટનો તિરોભાવ હોતો અને કારણકલાપથી તિરોભાવ દૂર થતાં એનો આવિર્ભાવ થઈ જાય છે, અર્થાત્-સત્નો જ આવિર્ભાવ થયો અસત્નો નહીં. આથી અપૂર્વ કાંઈ પણ ઉત્પન્ન થતું નથી. વૈશેષિક સિદ્ધાંત માફક ઉત્પત્તિથી પૂર્વ કાર્યનું અસત્ત્વ માનવામાં આવે તો અસત્ શશશ્રંગની પણ ઉત્પત્તિ કદાચ સ્વીકારવી પડે. સત્નો કદિ પણ વિનાશ થતો નથી. આ કારણે ઘટનું સર્વથા સત્ત્વ માનવાથી એનો કદિ વિનાશ થઈ શકતો નથી. પરન્તુ વિનાશ થતો દેખાય તો છે. આથી આ જગત્-પ્રપંચ સત્-અસત્-સ્વરૂપ છે. ઉપાદાન કારણ માટીમાં ઘટાદિક કાર્ય અવ્યક્તરૂપથી હોતાં, આથી તે બહિરિન્દ્રિય ચક્ષુનાં અવિષયભૂત હોતાં. માટે માટીમાં વર્તમાન હોવા છતાં પણ તેને આપથી જોઈ શકાતું નથી. માટે બાહ્ય ઇન્દ્રિયથી જોવાને અયોગ્ય હોવાથી ઘટ આદિમાં “અસન્ ઘટઃ” ઇત્યાદિ વ્યવહાર થાય છે. એવું સાંખ્યોંનું કહેવું છે. આ પ્રકારના તેના કથનથી લોકમાં ધ્રુવતા સિદ્ધ થાય છે.

બૌદ્ધાસ્તુ-‘અધ્રુવો લોકઃ’ ઇતિ બ્રુવતે; ઇત્યં હિ તેષામભ્યુપગમઃ-સર્વમિદં સ્થાવરજઙ્ગમાત્મકં જગત્ ક્ષણિકમ્, લોકસ્ય વિનાશકારણાભાવેન યદિ ‘લોકો નિત્યઃ’ ઇતિ મન્યસે તર્હિ નિત્યભૂતસ્ય શાશ્વતિકસ્ય સ્વરૂપેનાવિચ્યુતસ્ય તસ્ય સર્વથા વિકારરહિત્વેન ભાવ્યમ્, તથા ચ ક્રમેણ યૌગપદ્યેન વા તસ્યાર્થક્રિયાયાં સામર્થ્યાભાવાત્સર્વવ્યવહારોચ્છેદાપત્તિઃ સ્યાત્, તસ્માત્ ‘અધ્રુવો લોકઃ’ ઇતિ ।

બૌદ્ધોંકા કથન હૈ કિ યહ લોક અધ્રુવ-અનિત્ય હૈ । ડનકી માન્યતા ઇસ પ્રકાર હૈ-કિ સ્થાવર-જંગમ-સ્વરૂપ યહ લોક ક્ષણિક-ક્ષણ ૨ મેં નષ્ટ હોતા રહતા હૈ । વિનાશકે કારણોંકે અભાવસે યદિ લોકકો નિત્ય માના જાવે તો ફિર ઇસ પ્રકાર સે સર્વથા નિત્ય બને ઇસ લોકમેં વિકૃતિકા સદ્ભાવ નહીં પાયા જાના ચાહિયે; ક્યોંકિ “અપ્રત્યુત્પન્નસ્થિરૈકરૂપો નિત્યઃ” ઉત્પત્તિરહિત, શાશ્વતિક, સ્વરૂપસે અપ્રચ્યુત કા નામ હી નિત્ય હૈ, ઓર ઇસ પ્રકાર નિત્ય બને હુણ મેં વિકૃતિ નહીં હોતી હૈ । તથા-ક્રમ ઓર યૌગપદ્યસે સર્વથા નિત્ય પદાર્થકી અર્થક્રિયા કરનેમેં સામર્થ્ય ઘટિત નહીં હોનેસે અર્થક્રિયાકારિત્વ કે અભાવસે ડસમેં શૂન્યતા હી આવેગી, “યદેવાર્થક્રિયાકારિ તદેવ પરમાર્થસત્” ઇસ વાક્યકે અનુસાર અર્થક્રિયાકારી પદાર્થ હી પરમાર્થ સે સત્ માના ગયા હૈ । ઇસલિયે નિત્યમેં વિકૃતિકે અભાવસે સર્વ વ્યવહાર કે ઉચ્છેદકી આપત્તિ આનેસે “લોકઅધ્રુવ” હૈ યહી માન્યતા ઠીક હૈ ।

બૌદ્ધોંકા કથન છે કે આ લોક અધ્રુવ-અનિત્ય છે. તેની માન્યતા આ પ્રકારની છે સ્થાવર-જંગમ-સ્વરૂપ આ લોક ક્ષણિક-ક્ષણ ક્ષણમાં નષ્ટ થતો-રહે છે, વિનાશના કારણોના અભાવથી કદાચ લોકને નિત્ય માનવામાં આવે તો પછી આ પ્રકારથી સર્વથા નિત્ય બનેલા આ લોકમાં વિકૃતિના સદ્ભાવ રહેવું જોઈએ નહિ; કારણ કે ‘અપ્રત્યુત્પન્નસ્થિરૈકરૂપો નિત્યઃ’ ઉત્પત્તિરહિત, શાશ્વતિક અને સ્વરૂપથી અપ્રચ્યુતનું નામજ નિત્ય છે, અને આ પ્રકારે નિત્ય બનેલામાં વિકૃતિ હોતી નથી. ક્રમ અને યૌગપદ્યથી સર્વથા નિત્ય પદાર્થની અર્થક્રિયા કરવામાં સામર્થ્ય ઘટિત નહિ હોવાથી, અર્થક્રિયાકારિત્વના અભાવથી તેમાં શૂન્યતા જ આવવાની. “યદેવાર્થક્રિયાકારિ તદેવ પરમાર્થસત્” આ વાક્ય અનુસાર અર્થક્રિયાકારી પદાર્થ જ પરમાર્થથી સત્ માનવામાં આવેલ છે. નિત્યમાં વિકૃતિના અભાવથી સર્વ વ્યવહારના ઉચ્છેદની આપત્તિ આવશે; માટે “લોક અધ્રુવ” છે એજ માન્યતા ઠીક છે.



યદ્વા કેચિત્—‘લોકઃ=ભૂલોકઃ પૃથિવીમણ્ડલમિત્યર્થઃ, અધ્રુવઃ=ચલઃ’ इति वदन्ति, तथा हि—यथा-नौकादिगतैर्जनैश्चलद्भिरपि भ्रान्तिवशादचलास्तीरस्थ-वृक्षादयश्चला दृश्यन्ते, एवं वस्तुतः पृथिव्येव चलति सूर्यस्त्वचलोऽपि भ्रान्तिवशाच्चल इव प्रतिभाति ।

यत्तु-सूर्य ये पूर्वस्यां दिशि वीक्षन्ते तेषामुदितः सूर्यो जायते, ये तु दूर्वर्ति-त्वात् नैक्षन्ते तेषामस्तमितः सूर्य इति । मध्यस्थितानां मध्याह्नगतो भवति ।

પૌરાણિકાસ્તુ-સાદિકો લોકઃ=ઉત્પત્તિમાન લોકઃ, તત્પૂર્વં સૃષ્ટ્યાદૌ તમો-ભૂતમત્કર્યં સર્વતઃ પ્રમુપ્તમિવાઽઽસીત્ । વિષ્ણોર્નાભિકમલાજ્જગદિદમુત્પન્નમિતિ કથયન્તિ ।

अथवा—कोई यह कहते हैं—लोक-भूलोक-पृथिवीमंडल-चल है । जैसे-नौकादिसे चलनेवाले मनुष्योंको ( जो नौकादिमें रहनेसे स्वयं स्थिर होते हुए भी भ्रमण कर रहे हैं ) भ्रान्तिके वशसे तीरस्थ वृक्षादिक चलते हुए नजर आते हैं । इसी तरह वस्तुतः पृथिवी ही चलती है सूर्य अचल होते हुए भी भ्रान्तिके वशसे चलता हुआ जैसा ज्ञात होता है । सूर्यको जो पूर्वदिशामें उदित हुआ देखते हैं वे कहते हैं कि सूर्यका उदय हुआ, दूर होनेसे जो नहीं देख सकते हैं वे कहते हैं कि सूर्य अस्तमित हो गया, मध्यमें स्थित प्राणियोंको मध्याह्नगत मालूम देता है; वास्तवमें तो सूर्य अचल ही है ।

પૌરાણિકોંકા યહ કથન હૈ કિ યહ લોક સાદિક ઉત્પત્તિવાલા હૈ, જબ ઇસકી ઉત્પત્તિ નહીં હુઈ થી અર્થાત્ સૃષ્ટિકી આદિ મેં યહ તમોભૂત થા, અત્કર્ય થા (યહ કયા થા કુછ નહીં કહા જા સકતા

અથવા—કોઈ એમ કહે છે—લોક-ભૂલોક=પૃથ્વીમંડળ ચલ છે. જેમ જહાજમાં ચાલવાવાળા મનુષ્યને ભ્રાન્તિને કારણે તીરસ્થિત વૃક્ષ વગેરે દોડતાં-ચાલતાં નજરે પડે છે. એ જ રીતે વસ્તુતઃ પૃથ્વી ચાલે છે, સૂર્ય અચલ હોવા છતાં પણ ભ્રાન્તિના વશથી ચાલતો હોય એમ દેખાય છે. સૂર્ય કે જેને પૂર્વ દિશામાં ઉદિત થએલો જોઈએ છીએ, અને કહીએ છીએ કે સૂર્યનો ઉદય થયો. દૂર હોવાથી જે નથી દેખી શકતા તે કહે છે કે સૂર્ય આથમી ગયો. મધ્યમાં સ્થિત પ્રાણીઓને મધ્યાહ્ન માલુમ પડે છે. વાસ્તવમાં તો સૂર્ય અચલ જ છે.

પૌરાણિકોંકાનું એવું કથન છે કે આ લોક સાદિક-ઉત્પત્તિવાળો જ છે. જ્યારે એની ઉત્પત્તિ થયેલ ન હતી, અર્થાત્ સૃષ્ટિની ઉત્પત્તિ પહેલાં આ તમોભૂત

અનાદિકો લોકઃ=સૌગતમતે ચાનાદિપરમ્પરયૈકાન્તતો લોકસ્યાનાદિત્વં ભવતિ।  
સપર્યવસિતઃ=સાન્તઃ પ્રલયસમયે વિષ્ણોર્નાભિકમલે લોકો વિલીનો ભવતિ,  
એતદપિ પૌરાણિકમતમ્ ।

અપર્યવસિતઃ=અન્તરહિતો લોકોઽસ્તિ । સતો લોકસ્યાઽઽત્યન્તિકવિનાશ-  
સમ્ભવાત્ ।

યેષાં મતે સાદિકો લોકસ્તેષાં મતે લોકઃ સપર્યવસિતઃ । યેષાં ત્વનાદિકસ્તે-  
ષામપર્યવસિત ઇતિ બોધ્યમ્ ।

હૈ ) ઔર સર્વતઃ પ્રસુત જૈસા થા । વિષ્ણુકી નાભિમૈં રહે હુઅ કમલસે  
યહ જગત ઉત્પન્ન હુઆ હૈ । અતઃ યહ સાદિક હૈ ।

યહ લોક અનાદિ હૈ-યહ ભી સૌગતોંકા મત હૈ । ઇસ માન્યતામૈં  
એકાન્તરૂપસે અનાદિ પરમ્પરાસે ચલા આયા હુઆ હોનેસે લોકમૈં અના-  
દિતા આતી હૈ ।

“ સપર્યવસિતો લોકઃ ” યહ લોક સાન્ત હૈ, પ્રલયકે સમયમૈં  
યહ લોક વિષ્ણુકી નાભિકે કમલમૈં વિલીન હો જાતા હૈ-યહ ભી  
પૌરાણિકોંકા મત હૈ । “ અપર્યવસિતો લોકઃ ” યહ લોક અન્તરહિત હૈ,  
ક્યોં કિ જો સત્ પદાર્થ હોતા હૈ ઉસકા આત્યન્તિક વિનાશ નહીં હોતા  
હૈ । જિસકે સિદ્ધાન્તાનુસાર લોક સાદિક હૈ ઉસકે સિદ્ધાન્તાનુસાર લોક  
સપર્યવસિત ભી હૈ, જિસને ઉસે અનાદિ માના હૈ, ઉસકી માન્યતાનુસાર  
વહ અપર્યવસિત ભી હૈ ।

હતું, શું હતું તે કહેવાઈ શકતું નથી. ચારે આજુ સૂનકાર જેવું હતું. વિષ્ણુની  
નાભિમાં રહેલા કમળથી આ જગત ઉત્પન્ન થયેલ છે. આ બરોબર છે.

આ લોક અનાદિ છે-આ સૌગતોનું કહેવું છે. આ માન્યતા-અનુસાર  
એકાન્ત રૂપથી અનાદિ પરંપરાથી આદ્યું આવેલ હોવાથી, લોકમાં અનાદિતા  
આવે છે.

“ સપર્યવસિતો લોકઃ ” આ લોક સાન્ત છે. પ્રલયના સમયમાં આ  
લોક વિષ્ણુના નાભિ-કમળમાં વિલીન થઈ જાય છે. આવો પણ પૌરાણિકોનો  
મત છે. “ અપર્યવસિતો લોકઃ ” આ લોક અન્તરહિત છે, કેમ કે જે સત્  
પદાર્થ હોય છે એનો આત્યન્તિક વિનાશ થતો નથી. જેના સિદ્ધાન્ત અનુસાર  
લોક સાદિક છે તેના સિદ્ધાન્ત-અનુસાર લોક સપર્યવસિત પણ છે, જેને  
એણે અનાદિ માનેલ છે-એમની માન્યતાનુસાર તે અપર્યવસિત પણ છે.

સ્યાદ્વાદતત્त्वનાભિજ્ઞાસ્તે 'અસ્તિ લોકઃ' ઇત્યાદિનૈકાન્તવાદમાશ્રિત્ય નાના-વિધવાચાં વિનિયોજનમભિધાયાત્મવિષયેऽપિ વિવદન્તે । તદેવ દર્શયતિ—'સુકૃત'—મિત્યાદિ । સુકૃતમિતિ વા=પુણ્યમિતિ, સુષ્ટુકૃતમિત્યર્થો વા, એવમેવ દુષ્ટકૃતમિતિ વા=પાપમિતિ વાદિનો ભવન્તિ । તથા હિ—યદનેન પરિહૃતસર્વસંજ્ઞેન પञ્ચમહાવ્રતાદાનં વિહિતં તત્સુષ્ટુ કૃતમ્, તથા વિહિતસ્ત્રીપરિગ્રહેણ તનયમનુત્પાદ્ય સ્ત્રી ત્યક્તેતિ દુષ્ટ-કૃતમિતિ વા કૃતમિતિ ।

કિંચ 'કલ્યાણમિતિ વા' ગૃહીતસંયમં કશ્ચિત્કથયતિ—કલ્યાણમાચરિતં ત્વયેતિ,

ये पूर्वोक्त "अस्ति" आदि लोकविषयक समस्त मान्यताएँ स्या-  
द्वादसिद्धान्तके तत्त्वसे अनभिज्ञ हुए व्यक्तियोंकी हैं । इन अनेक प्रकारकी  
मान्यताओं में एकान्तरूपसे ही अपने २ अभिमतकी पुष्टि की गई है ।  
इन प्रवादियों की मान्यता आत्मतत्त्वमें भी भिन्न २ रूपसे है—यही बात  
'सुकृत' मित्यादि वाक्योंसे सूत्रकार स्पष्ट करते हैं ।

पुण्य अथवा सुषुप्तकृतका नाम सुकृत है । पाप अथवा खोटे कृत-  
किये गयेका नाम दुष्कृत है । जैसे—इसने सर्व परिग्रह आदिका त्यागकर  
पंच महाव्रतोंको धारण किया यह तो सुषुप्तकृतम्—बहुत अच्छा किया;  
परन्तु जब इसके स्त्री थी तो इसे चाहिये था कि उसके कमसे कम एक  
बच्चा ही हो जाता तब जा कर यह मुनि बनता, इसके पहिले इसने स्त्री  
त्याग कर दिया और मुनि बन गया यह इसने 'दुष्कृतम्'—अच्छा नहीं किया ।

तथा—'कल्याणम् इति वा'—जिसने संयम धारण कर लिया है, ऐसे

આ પૂર્વોક્ત "અસ્તિ" આદિ લોકવિષયક સમસ્ત માન્યતાઓ સ્યાદ્વાદ  
સિદ્ધાંતના તત્ત્વથી અબ્જાણ એવી વ્યક્તિઓની છે. આવી અનેક પ્રકારની માન્ય-  
તાઓમાં એકાન્તરૂપથી જ પોતપોતાના મતની પુષ્ટિ કરવામાં આવેલ છે. આ  
મતવાળાઓની માન્યતા આત્મ તત્ત્વમાં પણ બુદ્ધા બુદ્ધા રૂપથી છે. આ વાત—  
'સુકૃતમ્' ઇત્યાદિ વાક્યોથી સૂત્રકાર સ્પષ્ટ કરે છે. પુણ્ય—અથવા સાડું કાર્ય તેનું  
નામ સુકૃત છે, પાપ અને ખોટું કાર્ય તેનું નામ દુષ્ટકૃત છે. જેમ—તેણે  
સર્વ પરિગ્રહનો ત્યાગ કરી પાંચ મહાવ્રત ધારણ કર્યાં તેણે સુકૃત કર્યું. પરંતુ  
એની સ્ત્રીને એકાદ બાળક થયા પછી એણે મુનિવ્રત ગ્રહણ કર્યું હોત તો  
ઠીક હતું. આની પહેલાં તે મુનિ બની ગયો તે એણે દુષ્ટકૃત્ય કર્યું,  
એટલે સાડું નથી કર્યું.

તથા કલ્યાણમ્ इति वा—જેણે સંયમ ધારણ કરેલ છે એવા મુનિના પ્રત્યે



તથા 'પાપમિતિ વા' કશ્ચિત્કથયતિ-પાપં ત્વયા સમાચરિતં યદ્ ગૃહસ્થધર્મપરિપાલ-  
નાસમર્થઃ કાતરોઽનપત્ય એવ ત્વં સંયમં ગૃહીતવાનિત। એવમેવ કશ્ચિત્કથયતિ-સાધુ-  
રિતિ વા અસાધુરિતિ વા, તથૈવ તવ સિદ્ધિરિતિ વા, અસિદ્ધિરિતિ વા, તથા નિરય

મુનિકે પ્રતિ કોઈ એસા કહતા હૈ કિ “ કલ્યાણમ્ આચરિતં ત્વયા ” તુમને  
અપની આત્માકા કલ્યાણ-ભલા-કર લિયા। તથા 'પાપમિતિ વા' કોઈ કહતા  
હૈ કિ આપને યહ અચ્છા નહીં કિયા; ક્યોં કિ ઇસસે તો યહ માલૂમ  
હોતા હૈ કિ તુમ ગૃહસ્થ ધર્મકે પાલન કરનેમેં કાયર-અસમર્થ થે ઔર  
ઇસસે કાયર બન કર વિના પુત્રરૂપ ઉત્તરાધિકારીકે હુએ તુમને સંયમ  
ધારણ કર લિયા હૈ। ઇસી તરહ કોઈ કહતા હૈ-‘ સાધુ ઇતિ વા, અસાધુ  
ઇતિ વા-આપને અચ્છા કિયા, આપને અચ્છા નહીં કિયા, તથા-‘તવ  
સિદ્ધિરિતિ વા’-અસિદ્ધિરિતિ વા, તુમ્હારી સિદ્ધિ હોગી-તુમ્હારી સિદ્ધિ  
નહીં હોગી, એવં નિરય ઇતિ વા-તુમને ઘરવાલોંકા કુછ ભી ચ્યાલ ન  
કર ઔર ઉન્હેં રોતા વિલખતા છોડ કર જો યહ સાધુકા વેષ પહિર લિયા  
હૈ-ઇસસે તુમ્હારી ગતિ અચ્છી હો જાવેગી, સો યહ વાત નહીં હૈ, દૂસરોં  
કો દુઃખકે ઉત્પાદક હોનેસે તુમને નરક ગમનકે યોગ્ય પાપકા હી ઉપા-  
ર્જન કિયા હૈ, અતઃ તુમ મનુષ્ય નહીં-નારકી હો। યહ આવેશકે વચન  
હૈ। કોઈ ૨ મનુષ્ય સાંસારિક પદાર્થોં કો છોડકર આત્મકલ્યાણ કરને-

કોઈ એમ કહે છે કે “ કલ્યાણમ્ આચરિતં ત્વયા ” તમે તમારા આત્માનું  
કલ્યાણ ભલે કરી લીધું. તથા-‘પાપમિતિ વા’-કોઈ એમ કહે છે કે તમે આ ઠીક  
નથી કર્યું; કેમ કે આથી તો એમ માલુમ પડે છે કે તમે ગૃહસ્થ ધર્મનું પાલન  
કરવામાં અસમર્થ હતા, અને એથી કાયર બની પુત્રરૂપી ઉત્તરાધિકારી વિના  
તમે સંયમ ધારણ કરેલ છે. આમાં કોઈ એમ પણ કહે છે કે ‘ સાધુ ઇતિ વા ’  
‘અસાધુ ઇતિ વા’ આપે સારું કર્યું. આપે સારું નથી કર્યું. તથા-‘તવ સિદ્ધિ-  
રિતિ વા અસિદ્ધિરિતિ વા’ તમારી સિદ્ધિ થશે તમારી સિદ્ધિ થનાર નથી.  
તથા-‘ નિરય ઇતિ વા ’ તમે પોતાના ઘરવાળાઓને કાંઈ પણ ખ્યાલ  
કર્યા વગર અને તેને રોતા કકળતા છોડીને જે આ સાધુનો વેશ પહેર્યો છે  
એથી તમારી ગતિ સારી થશે એ વાત બરોબર નથી, ખીલ્લોને દુઃખ થાય  
તેવું કરવાથી તમોએ નરક યોગ્ય પાપનું જ ઉપાર્જન કરેલ છે. આથી તમે  
મનુષ્ય નથી, નારકી છો. આ આવેશનું વચન છે. કોઈ કોઈ મનુષ્ય, સાંસા-  
રીક પદાર્થોને છોડીને આત્મકલ્યાણ કરવાવાળાઓની પ્રશંસા-સ્તુતિ પણ કરે છે

इति वा-नरकगमनायोपार्जितपापत्वादेव त्वं नरकः=नरकगामी, अथवा निरय इति वा-नरकलोकोऽस्तीति वा, तथैव अनिरय इति वा-नरकलोको नास्तीति, यद्वा-नास्य संयमिनो नरकगमनमिति वा-इति । इत्यादीनि स्वच्छन्दमतिकल्पितानि नाना-विधानि वाक्यानि विवदन्ते । अन्यदप्युक्त्वा विवदन्त इति दर्शयति-‘यदिदं’-मित्यादि । यद्=यस्मात् कारणात्, यद्वा-यत्पूर्वोक्तं=लोकादिकमभिहितं तद् इदं=लोकादिकं विप्रतिपन्नाः=विरुद्धभाषिणस्ते मिथ्यादृष्टयः, मामकं=स्वकीयं धर्मं श्रेय-स्करं मुक्तिकरं च प्रज्ञापयन्तः=प्रकर्षेण प्ररूपयन्तः स्वयं श्रेयोमार्गाद् वञ्चिताः परा-

વાલોંકી પ્રશંસા-સ્તુતિ મી કરતે હું ઔર કહતે હું-“અનિરય ઇતિ” આપને અચ્છા કિયા જો ઇસ સંસારરૂપી નરકસે આપ પાર હો ગયે, અથવા યહ સિદ્ધાંતકા વચન હૈ કિ “અણુવચમહઽવચાહં ન લહઽ દેવા-ઉગં મુત્તં” અણુવ્રત મહાવ્રત દેવાયુકે બંધ કરનેવાલેકે સિવાય કિસી અન્ય આયુકે બંધક જીવકો નહીં હોતે હું-ઇસ અપેક્ષા ઇસ સંયમીકા નરકમેં ગમન નહીં હો સકતા । ઇસ પ્રકાર લોગ સ્વચ્છન્દમતિસે કલ્પિત અનેક પ્રકારકે વાક્યોંકા પ્રયોગ કરતે રહતે હું । ઔર મી સ્વકલ્પિત વાતેં વે બનાતે હું-ઇસે સૂત્રકાર “યદિદં વિપ્રતિપન્નાઃ” ઇન પદોંસે પ્રદર્શિત કરતે હું । ઇસ પ્રકારસે વિરુદ્ધ ભાષણ કરનેવાલે યે મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવ “મેરા હી ધર્મ શ્રેયસ્કર ઔર મોક્ષપ્રદાતા હૈ” ઇસ પ્રકારકી પ્રરૂપણા કર સ્વયં શ્રેયોમાર્ગસે વંચિત બન, અન્ય જીવોંકો મી ઠગા કરતે હું, અર્થાત્ ડસ માર્ગસે દૂસરોંકો વાંચિત બનાતે રહતે હું । જિસ પ્રકાર કોઈ

અને કહે છે ‘અનિરય ઇતિ વા’ આપે સાહે કર્યું જે આ સંસારરૂપી નરકથી આપ પાર થયા, અથવા આ સિદ્ધાંતનું વચન છે કે-“અણુવચમહઽવચાહં ન લહઽ દેવાઉગં મુત્તં” અણુવ્રત મહાવ્રત દેવાયુના બંધ કરવાવાળાની સિવાય કોઈ બીજા આયુષ્યના બંધક જીવને થતું નથી. આ અપેક્ષા એવા એવા સંયમીનું નરકમાં ગમન થઈ શકતું નથી. આ રીતે લોક સ્વચ્છન્દમતિથી કલ્પિત અનેક પ્રકારનાં વાક્યોનો પ્રયોગ કરતા રહે છે. બીજા પણ સ્વકલ્પિત વાતો તે કહેતા રહે છે. તેને સૂત્રકાર-“યદિદં વિપ્રતિપન્નાઃ” આ પદોથી પ્રદર્શિત કરે છે. આ લોકમાં આ પ્રકારથી વિરુદ્ધ ભાષણ કરવાવાળા એ મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવ “મારો જ ધર્મ શ્રેયસ્કર અને મોક્ષ આપનાર છે” આ પ્રકારની પ્રરૂપણા કરી શ્રેયોમાર્ગથી વંચિત બની, બીજા જીવોને પણ ઠગે છે. અર્થાત્ એ માર્ગથી બીજાઓને પણ વંચિત બનાવે છે. જે રીતે કોઈ આંધળો આંધળાનો હાથ

નપિ વશ્ચયન્તિ 'અન્ધેનૈવ નીયમાનો યથાઽન્ધઃ' ઇતિ લોકોક્ત્યા સ્વયં નષ્ટાઃ  
પરાનાશયન્તીતિ તાત્પર્યમ્ । લોકાદિવિષયે તૈં बहुधा विवदन्ते, तद्यथा—

“ इच्छन्ति कृत्रिमं सृष्टिवादिनः सर्वमेवमिति लिङ्गम् ॥

कृत्स्नं लोके महेश्वरादयः सादिपर्यन्तम् ॥ १ ॥

नारीश्वरजं केचित्केचित्सोमाग्निसम्भवं लोकम् ॥

द्रव्यादिषड्विकल्पं जगदेतत् केचिदिच्छन्ति ॥ २ ॥

ईश्वરપ્રેરિતં કેચિત્ કેચિદ્બ્રહ્મકૃતં જગત્ ॥

अव्यक्तप्रभवं सर्वं विश्वमिच्छन्ति कापिलाः ॥ ३ ॥

અંધા અંધેકા હાથ પકડી કર માર્ગ બતાવે છે તે જાણે છે તો વહુ દસરે અંધે  
કો બી માર્ગસે ભ્રષ્ટ બનાવે છે, અથવા યથેષ્ટ સ્થાન પર નહીં પહોંચી  
સકતા, ડાહ્યા પ્રકારે જન મિથ્યાદૃષ્ટિયોંકે પંદેમે પડા હુઆ પ્રાણી બી  
યથેષ્ટ સ્થાન પર નહીં જા સકતા । અતઃ એસે જીવ સ્વયં નષ્ટ બન કર  
દૂસરોંકો બી નષ્ટ કરતે છે । લોકાદિકકે વિષયમેં બી એ बहुधा विवाद  
કરતા કરતે છે—

इच्छन्ति कृत्रिमं सृष्टिवादिनः, सर्वमेवमिति लिङ्गम् ।

कृत्स्नं लोके महेश्वरादयः सादिपर्यन्तम् ॥ १ ॥

नारीश्वरजं केचित् केचित् सोमाग्निसंभवं लोकम् ।

द्रव्यादि-षड्विकल्पं जगदेतत् केचिदिच्छन्ति ॥ २ ॥

ईश्वरप्रेरितं કેચિત્ કેચિદ્ બ્રહ્મકૃતં જગત્ ।

अव्यक्तप्रभवं सर्वं विश्वमिच्छन्ति कापिलाः ॥ ३ ॥

પકડીને માર્ગ બતાવવા લઈ જાય છે તે બીજા આંધળાને પણ માર્ગથી વેગળો  
કરી દે છે, અને ઉચિત સ્થાને પહોંચી શકતો નથી. એ રીતે આવા મિથ્યા-  
દૃષ્ટિના કંઈમાં પડેલા પ્રાણી પણ ઉચિત સ્થાને પહોંચી શકતા નથી. આથી  
એવા જીવ સ્વયં નાશ પામીને બીજાનો પણ નાશ કરે છે. લોકાદિકના વિષયમાં  
પણ ઘણી વખત વિવાદ કર્યા કરે છે.

इच्छन्ति कृत्रिमं सृष्टिवादिनः, सर्वमेवमिति लिङ्गम् ।

कृत्स्नं लोके महेश्वरादयः सादिपर्यन्तम् ॥ १ ॥

नारीश्वरजं કેચિત્ કેચિત્ સોમાગ્નિસંભવં લોકમ્ ।

द्रव्यादि-षड्विकल्पं जगदेतत् केचिदिच्छन्ति ॥ २ ॥

ईश्वरप्रेरितं કેચિત્ કેચિદ્ બ્રહ્મકૃતં જગત્ ।

अव्यक्तप्रभवं सर्वं विश्वमिच्छन्ति कापिलाः ॥ ३ ॥



યાદૃચ્છિકમિદં સર્વં કેચિદ્ભૂતવિકારજમ્ ॥

કેચિચ્ચાનેકરૂપં તુ बहुधा संप्रधाविताः ॥ ૪ ॥

अनेकान्तवादानभिज्ञानामेकान्तवादिनामेतत्कथनम् । तथाहि—

યાદૃચ્છિકમિદં સર્વં કેચિદ્ભૂતવિકારજમ્ ।

કેચિચ્ચાનેકરૂપં તુ बहुधा संप्रधाविताः ॥ ૪ ॥

ભાવાર્થ—સૃષ્ટિવાદી વૈશેષિક, મીમાંસક ઓર નૈયાયિક આદિ સિદ્ધાન્તકાર इस लोकको कृत्रिम और आदि-अन्तसहित मानते हैं । कोई २ अर्धनारीश्वरसे उत्पन्न हुआ इसे स्वीकार करते हैं । सोम, चन्द्र और अग्निसे यह लोक हुआ है—कोई २ ऐसा कहते हैं । किसी २ का सिद्धान्त है कि यह लोक द्रव्यादि-षड्-विकल्प-स्वरूप है । कोई २ इसे ईश्वरसे उद्भूत, कोई २ इसे ब्रह्मासे रचित मानते हैं । सांख्य इसे प्रकृति से जनित, कोई २ इसे स्वतः उद्भूत, और कोई २ इसे पृथ्व्यादिक पांच भूतोंका विकारस्वरूप स्वीकार करते हैं । कोई इसे एकरूप और कोई इसे अनेकरूप भी मानते हैं । इस प्रकारसे इस लोकके विषयमें भिन्न २ सिद्धान्तकारोंकी भिन्न २ मान्यताएँ इन पद्यों द्वारा बतलाई गई हैं । लोक और आत्मतत्त्वके विषयमें ये उपर्युक्त मान्यताएँ उन्हीं व्यक्तियों की हैं जो अनेकान्तवादसे अनभिज्ञ बने हुए हैं । कहा भी है—

યાદૃચ્છિકમિદં સર્વં કેચિદ્ ભૂતવિકારજમ્ ।

કેચિચ્ચાનેકરૂપં તુ बहुधा संप्रधाविताः ॥ ૪ ॥

ભાવાર્થ—સૃષ્ટિવાદી વૈશેષિક, મીમાંસક અને નૈયાયિક આદિ સિદ્ધાન્તકાર આ લોકને કૃત્રિમ અને આદિ-અન્ત-સહિત માને છે. કોઈ કોઈ અર્ધનારીશ્વરથી ઉત્પન્ન થયેલ હોવાનો સ્વીકાર કરે છે. સોમ, ચંદ્ર અને અગ્નિથી આ લોક થયેલ છે તેમ કોઈ કહે છે. કોઈ કોઈનો સિદ્ધાન્ત છે કે આ લોક દ્રવ્યાદિ-ષડ્-વિકલ્પ-સ્વરૂપ છે. કોઈ કોઈ તેને ઈશ્વરથી ઉત્પન્ન થયેલ, કોઈ કોઈ તેને બ્રહ્માથી રચિત થયેલ માને છે. સાંખ્ય તેને પ્રકૃતિથી જનિત સ્વીકારે છે કોઈ કોઈ તેને સ્વતઃ ઉદ્ભૂત અને કોઈ કોઈ તેને પૃથ્વી આદિ પાંચ ભૂતોના વિકાર-સ્વરૂપ સ્વીકાર કરે છે. કોઈ તેને એકરૂપ, કોઈ તેને અનેક રૂપ પણ માને છે, આ પ્રકારથી આ લોકના વિષયમાં ભિન્ન ભિન્ન સિદ્ધાન્તકારોની ભિન્ન ભિન્ન માન્યતાઓ આ પદો દ્વારા બતાવેલ છે. લોક અને આત્મતત્ત્વના વિષયમાં ઉપર કહેલ એ માન્યતાઓ એ વ્યક્તિઓની છે કે જે અનેકાન્તવાદથી અજાણ છે. કહું પણ છે

“લોકક્રિયાઽઽત્મતત્ત્વે, વિવદન્તે વાદિનો વિભિન્નાર્થમ્ ।”

અવિદિતપૂર્વે યેષાં સ્યાદ્વાદવિનિશ્ચિતં તત્ત્વમ્ ॥ ૧ ॥ ઇતિ ।

યેષાં તુ સ્યાદ્વાદસિદ્ધાન્તો હૃદયે પ્રરૂઢસ્તેષામસ્તિત્વનાસ્તિત્વાદ્યર્થસ્ય તત્ત-  
ન્ન્યાભિપ્રાયેણ કથશ્ચિત્સંજ્ઞિતસદ્ભાવાત્પ્રવાદસ્થાનમેવ નાસ્તીતિ ।

પરતૈર્થિકધર્માણામપારમાર્થિકત્વં પ્રતિપાદયન્ સ્વધર્મસ્ય પારમાર્થિકત્વં દર્શ-  
યતિ-‘ઇત્યવિ’-ઇત્યાદિ, અત્રાપિ ‘અસ્તિ લોકો નાસ્તિ લોક’ ઇત્યાદિ-

લોકક્રિયાત્મતત્ત્વે વિવદન્તે વાદિનો વિભિન્નાર્થમ્ ।

અવિદિતપૂર્વે યેષાં સ્યાદ્વાદવિનિશ્ચિતં તત્ત્વમ્ ॥

જિનકે હૃદયમેં સ્યાદ્વાદ સિદ્ધાન્તકા વાસ હૈ, ઉન્હેં અસ્તિત્વ-નાસ્તિત્વ  
ઇત્યાદિ અર્થમેં ઉસ ૨ નયકે અભિપ્રાયસે સંગતિકા સદ્ભાવ હોનેસે, વાદ-  
વિવાદકે લિયે સ્થાન હી નહીં હૈ ।

ભાવાર્થ—યે પૂર્વોક્ત મન્તવ્ય એકાન્તરૂપમેં માને જાને પર હી એક  
દૂસરેકે લિયે વિવાદકા કારણ બન્તે હૈં, પરન્તુ જબ યે કિસી અપેક્ષાસે  
( નયકે અભિપ્રાયસે ) વિચાર કરનેમેં આતે હૈં તો ઇનમેં વિવાદકે લિયે  
સ્થાન હી નહીં રહતા હૈ । ઇસી વાતકો સૂત્રકાર “અત્રાપિ” ઇત્યાદિ  
પદોસે પ્રદર્શિત કરતે હૈં, વે કહતે હૈં—પરતૈર્થિક ધર્મોમેં અપરમાર્થિકતા  
ઔર સ્વધર્મમેં પરમાર્થિકતા ઇસ પ્રકારસે હૈ—

અસ્તિ લોકઃ, નાસ્તિ લોકઃ, યે દો પરસ્પર વિરુદ્ધ હૈં—અસ્તિકી

લોકક્રિયાત્મતત્ત્વે વિવદન્તે વાદિનો વિભિન્નાર્થમ્ ।

અવિદિતપૂર્વે યેષાં સ્યાદ્વાદવિનિશ્ચિતં તત્ત્વમ્ ॥

જેના હૃદયમાં સ્યાદ્વાદ સિદ્ધાન્તનો વાસ છે તેને અસ્તિત્વ નાસ્તિત્વ ઇત્યાદિ  
અર્થમાં તે તે નયના અભિપ્રાયથી સંગતિનો સદ્ભાવ હોવાથી વાદવિવાદ  
માટે સ્થાન નથી.

ભાવાર્થ:—આ પૂર્વોક્ત મન્તવ્ય એકાન્તરૂપમાં માનવામાં આવેલ હોવાથી  
એક બીજા માટે વિવાદનું કારણ બને છે, પરન્તુ બ્યારે એ કોઈ અપેક્ષાથી  
( નયના અભિપ્રાયથી ) વિચાર કરવામાં આવે છે તો તેમાં વિવાદને માટે  
સ્થાન જ નથી. આ વાતને સૂત્રકાર “અત્રાપિ” ઇત્યાદિ પદોથી પ્રદર્શિત કરે  
છે. તેઓ કહે છે—પરતૈર્થિક ધર્મમાં અપરમાર્થિકતા અને સ્વધર્મમાં પરમાર્થિકતા  
આ પ્રકારે છે—

‘અસ્તિ લોકઃ, નાસ્તિ લોકઃ’ આ બંને પરસ્પર વિરુદ્ધ છે. અસ્તિની

વિપ્રતિપત્તૌ એવં યૂયં જાનીત=બુદ્ધ્યધ્વમ્, યસ્તેષામ્ ‘અસ્તિ લોકઃ’ ‘નાસ્તિ લોકઃ’  
 ઇત્યાદિકાન્તવાદઃ સઃ અકસ્માત્=‘અકસ્માત્’ ઇતિ સંસ્કૃતસ્યૈવ મગધદેશે પ્રસિદ્ધત્વાન્મૂલે  
 ગણધરૈસ્તદેવગૃહીતમ્, ‘કસ્માત્’ ઇતિ હેતૌ; ન કસ્માત્ અકસ્માત્ નિર્હેતુકોઽસ્તીત્યર્થઃ।  
 તથા હિ-યદ્યેકાન્તઃ, ‘અસ્તિ લોકઃ’ ઇત્યત્રાસ્તિત્વસમાનાધિકરણત્વં લોકસ્ય સ્યાત્  
 તતશ્ચ ‘યદસ્તિ તલ્લોકઃ’ ઇતિ વ્યાપ્તેઃ ‘અલોકોઽસ્તિ’ ઇત્યત્રાઽસ્તિત્વરૂપહેતોઃ

અપેક્ષા નાસ્તિ ઔર નાસ્તિકી અપેક્ષા અસ્તિ। કોઈ વાદી લોકમાં અસ્તિત્વ  
 ધર્મ સ્વીકાર કરતા હૈ દૂસરા ઉસમાં નાસ્તિત્વ। યે દોનોં કથન પરસ્પર  
 વિરુદ્ધ ઇસલિયે હૈં કિ યે નયકી વિવક્ષાસે રહિત હૈં। ઇસીકા નામ  
 એકાન્તવાદ હૈ। ઇસીલિયે ઇનમાં અપની ૨ માન્યતાનુસાર વાદિયોંકો  
 વિવાદકા પ્રસંગ આતા હૈ। સૂત્રકાર કહતે હૈં કિ ઇસ વિપ્રતિપત્તિમાં આપ  
 લોગ યહી સમજો કિ ઉનકા “અસ્તિ લોકઃ, નાસ્તિ લોકઃ” યહ જો  
 એકાન્તવાદ હૈ વહ અકસ્માત્-નિર્હેતુક હૈ। “અકસ્માત્” યહ નિર્હેતુકતા-  
 બોધક પદ સંસ્કૃત ભાષાકી તરહ મગધદેશકી ભાષામાં ભી પ્રસિદ્ધ હૈ, ઇસ  
 લિયે ગણધરોંને ભી મૂલ સૂત્રમાં ઉસી પદકા ગ્રહણ કિયા હૈ। “કસ્માત્” યહ  
 હેત્વર્થમાં આતા હૈ, જો “કસ્માત્” નહીં વહ “અકસ્માત્” હૈ। ઇસકા  
 અર્થ નિર્હેતુક” હોતા હૈ, અર્થાત્ ઉનકા યહ વાદ નિર્હેતુક હૈ। જૈસે કિ-  
 “અસ્તિ લોકઃ” ઇસ કથનમાં અસ્તિત્વકે સાથ સમાનાધિકરણતા એકા-  
 ન્તરૂપસે લોકમાં માની જાવે તો “યદસ્તિ તલ્લોકઃ” જો હૈ વહ લોક હૈ-

અપેક્ષા નાસ્તિ અને નાસ્તિકી અપેક્ષા અસ્તિ. કોઈ વાદી લોકમાં અસ્તિત્વ ધર્મનો  
 સ્વીકાર કરે છે બીજા નાસ્તિત્વનો. આ બંને વાતો પરસ્પર વિરુદ્ધ આ માટે છે  
 કે એ નયની વિવક્ષાથી રહિત છે. આનું નામ એકાન્તવાદ છે. આ માટે એમાં  
 પોતપોતાની માન્યતા અનુસાર વાદવાળાઓને વિવાદનો પ્રસંગ આવે છે. સૂત્રકાર  
 કહે છે કે આ સામસામા વાદ અંગે આપ એ સમજો કે એમનું ‘અસ્તિ લોકઃ’  
 નાસ્તિ લોકઃ’ આ બે એકાન્તવાદ છે એ અકસ્માત્-હેતુ વગરનો છે. ‘અકસ્માત્’ એ  
 હેતુ વગરના બોધક પદ સંસ્કૃત ભાષાની જેમ મગધદેશમાં પણ પ્રસિદ્ધ છે. આ  
 માટે ગણધરોએ પણ મૂળ સૂત્રમાં એ પદને ગ્રહણ કરેલ છે. “કસ્માત્” આ  
 હેત્વર્થમાં આવે છે. જે “કસ્માત્” નહીં તે “અકસ્માત્” છે એનો અર્થ  
 હેતુ વગરનો થાય છે. અર્થાત્ એમનો એ વાદ નિર્હેતુક છે. “અસ્તિ લોકઃ”  
 આ વાક્યમાં અસ્તિત્વની સાથે સમાનાધિકરણતા એકાન્તરૂપથી લોકમાં માન-  
 વામાં આવે તો “યદસ્તિ તલ્લોકઃ” જે છે તે લોક છે આ પ્રકારની વ્યાપ્તિ



સત્ત્વાત્, સાધ્યસ્ય લોકસ્ય ચાસત્ત્વાદનૈકાન્તિકો હેતુઃ । લોકાભાવરૂપસાધ્યાભાવ-  
સાધકતયા વિરુદ્ધોઽપિ ચ ભવતિ । તથા ચ-અસ્તિત્વહેતુના લોકસ્ય સાધને લોક  
एवालोकः स्यात्, આકાશસ્તિકાયસ્ય લોકાલોકભેદમાશ્રિત્ય ‘અત્થિ અલોએ’

इस प्रकारकी व्याप्ति होनेसे हेतु अनैकान्तिक हो जाता है; क्यों कि  
साध्यलोकसे विरुद्ध अलोकके साथ भी इस अस्तित्वरूप हेतुकी व्याप्ति  
व्यावृत्तिवाली नहीं होती है। अनैकान्तिक हेतु वही होता है जो पक्ष  
सपक्षमें रहता हुआ भी विपक्षमें रहता है। प्रकृतमें “यदस्ति तल्लोकः”  
यहां पर अस्तित्वरूप हेतु पक्ष लोकके साथ रहता हुआ भी विपक्ष अ-  
लोकमें भी रहता है, क्यों कि वहां-अलोकमें साध्य-लोकका अभाव है,  
दूसरे इसीलिये यह हेतु विरुद्ध भी पड़ता है, लोकका अभावरूप जो  
साध्यका अभाव अलोक है उसका साधक यह हेतु होता है-अलोकाकाश  
में भी अस्तित्वरूप हेतु रहता है। इस बातको प्रकट करनेके लिये टीका-  
कार कहते हैं कि लोक और अलोक ये दो विभाग एक आकाश अस्ति-  
काय द्रव्यके ही हैं तो जिस प्रकार लोकमें “अस्ति लोकः” ऐसा व्यव-  
हार होता है, उसी प्रकार “अस्ति अलोकः” अलोकमें भी यह अस्ति-  
त्वविशिष्ट व्यवहार होता है। “अत्थि लोए-अत्थि अलोए” ये दोनों वचन  
आकाशविषयक हैं, अतः अस्तित्व यह हेतु लोक और अलोक इन

થવાધી હેતુ અનૈકાન્તિક થઈ જાય છે. કેમ કે સાધ્ય લોકથી વિરુદ્ધ અલોકની  
સાથે પણ એ અસ્તિત્વરૂપ હેતુની વ્યાપ્તિ વ્યાવૃત્તિવાળી થતી નથી. અનૈકાન્તિક  
હેતુ એ જ હોય છે જે પક્ષ સપક્ષમાં રહેવા છતાં વિપક્ષમાં પણ રહે છે. પ્રકૃ-  
તમાં “યદસ્તિ તલ્લોકઃ” અહીં પર અસ્તિત્વરૂપ હેતુ પક્ષ લોકની સાથે રહેવા  
છતાં પણ વિપક્ષ અલોકમાં પણ રહે છે. કેમ કે ત્યાં અલોકમાં સાધ્ય લોકનો  
અભાવ છે, બીજું આ જ કારણે એ હેતુ વિરુદ્ધ પણ પડે છે. લોકનો અભાવરૂપ  
સાધ્યનો અભાવ અલોક છે, એનો સાધક એ હેતુ થાય છે-અલોકાકાશમાં પણ  
અસ્તિત્વરૂપ હેતુ રહે છે. આ વાતને પ્રગટ કરવા માટે ટીકાકાર કહે છે કે  
લોક અને અલોક આ બે વિભાગ એક આકાશ અસ્તિકાય દ્રવ્યના જ છે તો  
જે પ્રકારે લોકમાં “અસ્તિ લોકઃ” એવો વ્યવહાર થાય છે એ જ રીતે “અસ્તિ  
અલોકઃ” અલોકમાં પણ આ અસ્તિત્વવિશિષ્ટ વ્યવહાર થાય છે. એ આકાશનું  
“અત્થિ લોએ-અત્થિ અલોએ” વચન છે. આથી અસ્તિત્વ આ હેતુ લોક અને અલોક  
બંનેમાં વ્યાપક છે. લોક અને અલોક બંને એ અસ્તિત્વના વ્યાપ્ય છે. આ

ઇત્યાગમવચનાદ્ અસ્તિત્વં લોકાલોકવ્યાપકમ્ । લોકત્વમલોકત્વં ચ અસ્તિત્વવ્યાપ્યમ્ । ઇતિ અસ્તિત્વહેતોરુભયત્ર સમાનત્વાદ્ અસ્તિત્વહેતુસદ્ભાવેન લોકોઽપ્યલોક ઇત્યાપદ્યેત, અલોકસ્ય અસ્તિત્વવ્યાપ્યતયા વ્યાપકીભૂતાસ્તિત્વસત્તયા વ્યાપ્યભૂતાલોકત્વસત્તા નિર્વાધા ।

અપરશ્ચ—એવમ્ અલોકાભાવરૂપસ્ય લોકસ્ય અસ્તિત્વવ્યાપ્યત્વે અલોકસ્યાપિ લોકત્વપ્રસક્તિઃ, લોકત્વરૂપવ્યાપ્યસદ્ભાવે વ્યાપકસ્યાપિ અલોકસ્યાસ્તિત્વસ્ય નિ-  
ઉભયોર્મે વ્યાપક હૈ, લોક ઓર અલોક યે દોનોં ઉસ અસ્તિત્વકે વ્યાપ્ય હૈં । ઇસલિયે અસ્તિત્વ હેતુ દોનોંમે સમાનરૂપસે રહતા હૈ । ઇસ હેતુસે અતિપ્રસંગ નામકા ખી દૂષણ આતા હૈ । ક્યોં કિ અસ્તિત્વ હેતુકે સદ્ભાવસે લોક ખી અલોકરૂપસે ઓર અલોક લોકરૂપસે આપાદિત કિયા જા સકતા હૈ । કારણ કિ લોક જિસ પ્રકાર અસ્તિત્વકા વ્યાપ્ય હૈ ઓર વહ અપની વ્યાપકીભૂત સત્તાસે સમન્વિત હૈ ઉસી પ્રકાર અલોક ખી અસ્તિત્વકા વ્યાપ્ય હૈ ઓર વહ ખી ઉસી સત્તાસે સમન્વિત હૈ, અતઃ સત્તાકે એકત્વ હોનેસે લોકમેં ખી અલોકપના આપાદિત કિયા જા સકતા હૈ । ઇસી પ્રકાર અલોકમેં ખી લોકપના આપાદિત હો સકતા હૈ, ઓર વહ ખી ઇસ પ્રકારસે કિ અલોકકે અભાવરૂપ લોક અસ્તિત્વકા વ્યાપ્યપનામેં રહતા હૈ; ઇસલિયે અલોકમેં લોકત્વકા પ્રસંગ હો સકતા હૈ; ક્યોં કિ લોકત્વરૂપ વ્યાપ્યકે સદ્ભાવમેં વ્યાપક-જો અલોકકા અસ્તિત્વ હૈ, ઉસકા ખી નિયમસે વહાં સદ્ભાવ પાયા જાતા હૈ । તવ તો લોક અલોક ઓર અલોક લોક હો જાયગા-ઇસ પ્રકાર અનિષ્ટાપત્તિ હોનેસે કુછ

કારણે અસ્તિત્વ હેતુ બન્નેમાં સમાન રૂપથી રહેલ છે. આ હેતુથી અતિપ્રસંગ નામનું દૂષણ આવે છે. કેમકે અસ્તિત્વ હેતુના સદ્ભાવથી લોક પણ અલોક-રૂપથી અને અલોક લોકરૂપથી આપાદિત કરી શકાય છે. કારણ કે લોક ને પ્રકારે અસ્તિત્વનો વ્યાપ્ય છે અને તે પોતાની વ્યાપકભૂત સત્તાથી સમન્વિત છે. એજ રીતે અલોક પણ અસ્તિત્વનો વ્યાપ્ય છે અને એ પણ એવી સત્તાથી સમન્વિત છે, આથી સત્તાનું એકત્વ થવાથી લોકમાં પણ અલોકપના આપાદિત કરી શકાય છે.

આ રીતે અલોકમાં પણ લોકપના આપાદિત થઈ શકે છે. અને એ પણ આ પ્રકારથી કે અલોકના અભાવરૂપ લોક અસ્તિત્વના વ્યાપ્યપનામાં રહે છે. આ કારણે અલોકમાં લોકત્વનો પ્રસંગ થઈ શકે છે, કેમકે લોકત્વરૂપ વ્યાપ્યના સદ્ભાવમાં વ્યાપક ને અલોકનું અસ્તિત્વ છે એનો પણ નિયમથી ત્યાં સદ્ભાવ દેખાય છે. ત્યારેતો લોક અલોક અને અલોક લોક થઈ જશે. આ પ્રકારની

યમતઃ સદ્ભાવાત્, તથા ચ-લોકઃ અલોકો ભવતિ, અલોકોઽપિ લોકઃ, इत्यादि सर्वमनिष्टम् ।

કિંચ-લોકાલોકાપેક્ષયાઽસ્તિત્વસ્ય વ્યાપકત્વે જિનદત્તજિનદાસાદેરપ્યલોક-ત્વાપત્તિઃ, વ્યાપ્યાયા જિનદત્તવ્યક્તેર્નિયમતો વ્યાપકીભૂતલોકાસ્તિત્વસદ્ભાવાત્, જિનદત્તાદૌ અલોકવ્યાપકાસ્તિત્વસ્ય સદ્ભાવે અલોકત્વસત્તાયા અવશ્યમ્ભાવાત્ ।

કિંચ-યદ્યસ્તિત્વરૂપેણ હેતુના લોકત્વં સાધ્યતે તર્हि 'અસ્તિત્વરૂપો હેતુરસ્તિ' इति कृत्वा हेतुरपि-अस्तित्ववानेव भवति, तथा च हेतोरपि लोकत्वे सिद्धे हेतु-भी व्यवस्था नहीं बन सकती है ।

તથા—લોક ઓર અલોકકી અપેક્ષાસે અસ્તિત્વમેં વ્યાપકતા માનને પર જિનદત્ત ઓર જિનદાસ આદિ વ્યક્તિયોમેં મી લોકત્વ ઓર અલોકત્વ કી આપત્તિ આયગી; ક્યોં કિ ઉભયકી સત્તાકા વહાં સદ્ભાવ હૈ । વ્યાપ્ય જિનદત્ત આદિ વ્યક્તિ લોકરૂપ ઇસલિયે માને જાને ચાહિયે કિ ઉનમેં લોકકા વ્યાપક જો અસ્તિત્વ હૈ ઉસકા સદ્ભાવ હૈ, તથા અલોકકા વ્યાપક જો અસ્તિત્વ હૈ ઉસકા મી વહાં સદ્ભાવ હૈ ।

તથા—યદિ અસ્તિત્વરૂપસે લોકકી સિદ્ધિ હોતી હૈ તો કોઈ યહાં યહ મી પ્રશ્ન કર સકતા હૈ કિ અસ્તિત્વરૂપ હેતુ જબ સ્વયં અસ્તિરૂપ હૈ તો ઉસે મી અસ્તિત્વવિશિષ્ટ હોનેસે લોકત્વાપત્તિ આવેગી, અર્થાત્ વહ સ્વયં લોકરૂપ હો જાયગા ।

તથા—હેતુ ઓર સાધ્યમેં લોકરૂપનેસે એકત્વાપત્તિ આ જાનેસે સાધ્યસાધકભાવ હી નહીં બન સકતા હૈ, એસી સ્થિતિમેં કિસકો હેતુ માન

અનિષ્ઠાપત્તિ થવાથી કાંઈ પણ વ્યવસ્થા નથી થઈ શકતી.

તથા—લોક અને અલોકની અપેક્ષાથી અસ્તિત્વમાં વ્યાપકતા માનવાથી જનદત્ત અને જનદાસ વગેરે વ્યક્તિઓમાં પણ લોકત્વ અને અલોકત્વની આપત્તિ આવી જશે. કેમ કે જનનેની સત્તાનો ત્યાં સદ્ભાવ છે. વ્યાપ્ય જનદત્ત આદિ વ્યક્તિને લોકરૂપ એ કારણે માનવી જોઈ એ કે એનામાં લોકનું જે વ્યાપક અસ્તિત્વ છે એનો સદ્ભાવ છે, તથા અલોકનું વ્યાપક જે અસ્તિત્વ છે એનો પણ સદ્ભાવ છે.

તથા—જે અસ્તિત્વરૂપથી લોકની સિદ્ધિ થાય છે તો કોઈ એવો પણ પ્રશ્ન કરી શકે છે કે અસ્તિત્વરૂપ હેતુ જ્યારે સ્વયં અસ્તિરૂપ છે તો એને પણ અસ્તિત્વવિશિષ્ટ હોવાથી લોકત્વાપત્તિ આવશે અર્થાત્ એ સ્વયં લોકરૂપ બની જશે. તેમજ હેતુ અને સાધ્યમાં લોકરૂપપણાથી એકત્વાપત્તિ આવી જવાથી



સાધ્યયોર્લોકત્વરૂપતયૈકત્વાપત્તિઃ, તતશ્ચ કં હેતુમાશ્રિત્ય લોકઃ સાધયિષ્યતે પ્રત્યુત્ લોકાદન્યોઽપ્યલોકઃ અસ્તિત્વહેત્વસમ્ભવાદ્ ‘અસ્તિ લોકઃ’ ઇતિ પ્રતિજ્ઞાઽપિ નૈવ સિધ્યતિ । તસ્માદેકાન્તત એવ લોકાસ્તિત્વે સ્વીક્રિયમાણે ઉક્તરીત્યા હેત્વભાવોઽસ્તીતિ ‘અકસ્માત્’ ઇતિ પદેન ભગવતા પ્રદર્શિતમ્ ।

અત્રાયં વિવેકઃ—સિદ્ધો હિ હૈતુર્ભવતિ, તત્ર યદ્યસ્તિત્વહેતોર્લોકરૂપસાધ્યાન્ત- કર લોકકી સિદ્ધિ કી જા સકેગી ! લોકકી સિદ્ધિકે અભાવમેં “અસ્તિ લોકઃ” યહ સાધ્ય ઓર પક્ષકી વચનસ્વરૂપ જો પ્રતિજ્ઞા હૈં ઉસકી ભા સિદ્ધિ નહીં હો સકતી ! સાધ્યકી સિદ્ધિ હેતુસે હોતી હૈ, ક્યોં કિ હેતુ ઓર સાધ્યકા પરસ્પરમેં અવિનાભાવ સમ્બન્ધ હોતા હૈ । યહાં પર લોકકે અસ્તિત્વવિધાયક હેતુકા હી જબ અભાવ હૈ તબ ફિર સાધ્યકી સિદ્ધિ હેતુકે અભાવમેં હો ભી કૈસે સકતી હૈ ? નહીં હો સકને સે પ્રતિજ્ઞા કી હાનિ આતી હૈ । ઇસલિયે મૂલ સૂત્રમેં જો “અકસ્માત્” ઇસ પદસે યહ સૂત્રકારને કહા હૈ કિ “અસ્તિ લોકઃ નાસ્તિ લોકઃ” ઇત્યાદિ વિપ્રતિપત્તિયાં નિર્હેતુક હૈં, વહ બાત યહાં તક સ્પષ્ટ રીતિસે સમજાઈ ગઈ હૈ; ક્યોં કિ એકાન્તરીતિસે હી લોકકા અસ્તિત્વ સ્વીકાર કરનેમેં ઉપર્યુક્ત રીતિસે હેતુકા અભાવ આયા હૈ ।

જો હેતુ સિદ્ધ હોતા હૈં વહીં અપને સાધ્યકા સાધક હોતા હૈં, અસિદ્ધ નહીં । અસિદ્ધ સાધ્ય હોતા હૈ । પ્રકૃતમેં અસ્તિત્વરૂપ હેતુ જબ અપને સાધ્યકે

સાધ્ય-સાધકભાવ જ નથી બની શકતો. એવી સ્થિતિમાં કેને હેતુ માની લોકની સિદ્ધિ કરી શકાય ! લોકની સિદ્ધિના અભાવમાં “અસ્તિ લોકઃ” આ સાધ્ય અને પક્ષના વચનરૂપ જે પ્રતિજ્ઞા છે એની પણ સિદ્ધિ થઈ શકતી. સાધ્યની સિદ્ધિ હેતુથી થાય છે, કેમ કે હેતુ અને સાધ્યનો પરસ્પર અવિનાભાવ સંબંધ થાય છે. અહિં લોકનું અસ્તિત્વ-વિધાયક હેતુનો જ બ્યારે અભાવ છે—ત્યારે પછી સાધ્યની સિદ્ધિ હેતુના અભાવમાં થઈ પણ કેમ શકે ? ન થઈ શકવાથી પ્રતિજ્ઞાને હાનિ પહોંચે છે. આ કારણે મૂળ સૂત્રમાં “અકસ્માત્” એ પદથી સૂત્રકારે આ કહ્યું છે કે “અસ્તિ લોકઃ નાસ્તિ લોકઃ” ઇત્યાદિ વિપ્રતિપત્તિઓ નિર્હેતુક છે એ વાત અહીં સુધી સ્પષ્ટ રીતે સમજાવવામાં આવી છે કે એકાન્ત રીતિથી જ લોકના અસ્તિત્વનો સ્વીકાર કરવામાં ઉપર્યુક્ત રીતિથી હેતુનો અભાવ આવે છે.

જે હેતુ સિદ્ધ થાય છે તે જ સાધ્યમાં સાધક અને છે, અસિદ્ધ નહીં અસિદ્ધ સાધ્ય થાય છે. પ્રકૃતમાં અસ્તિત્વરૂપ હેતુ બ્યારે પોતાના સાધ્યના અન્તર્ભૂત થઈ

ર્ગતત્વેન તસ્યાપિ સાધ્યત્વમાપતિતં, સાધ્યરૂપહેતોરસિદ્ધત્વેનાસાધકતયાऽનુમાનસ્યૈ-  
વોચ્છેદઃ સ્યાત્ત્વન્મતે-ઇત્યાદિવહુવક્તવ્યત્વાદ્ વિસ્તરભિયા વિરમ્યતે । एवं 'ध्रुवो  
લોકઃ' 'અધ્રુવો લોકઃ' ઇત્યાદિષ્વપિ એકાન્તવાદં નિરસ્ય સ્યાદ્વાદપક્ષઃ સર્વત્ર  
યોજનીયઃ । यथा-' नास्ति लोकः' इति वादिनं पृच्छामि-' त्वमसि न वा ?,  
યદિ ત્વમસિ તદા લોકાન્તર્ભૂતસ્તદ્બહિર્ભૂતો વા ? યદિ લોકાન્તર્ભૂતસ્ત્વં તર્હિ  
' નાસ્તિ લોક ' ઇતિ બ્રુવન્ કથં ન લજ્જસે?, અથ તદન્તર્ભૂતો નાસિ તર્હિ બન્ધ્યા-

અન્તર્ભૂત હો જાગ્યા તબ વહ સાધ્યસમ-અસિદ્ધ, હોનેસે સ્વયં સાધ્ય-  
કોટિમેં આ જાયગા । यहां साध्य लोक है, हेतु भी लोकस्वरूप हो जानेसे वह  
સાધ્ય જૈસા હો ગયા; अतः साध्य भावका अभाव होनेसे साधनसे साध्य  
કા જ્ઞાન ન હો સકનેસે યહાં અનુમાન હી નહીં બન સકતા હૈ । इस  
વિષયમેં ટીકાકાર કહતે હૈં કિ બહુત કુછ કહના થા, પરન્તુ વિસ્તાર  
કે ભયસે ઇતના હી કહના કાફી હૈ । इसी प्रकार “ध्रुवो लोकः” इत्यादि  
વાક્યોમેં ભી એકાન્તવાદકા નિરસન ઓર સ્યાદ્વાદ પક્ષકા સમર્થન કર  
લેના ચાહિયે । जो लोग एकान्तरूपसे “ नास्ति लोकः” इस बातको कहते  
हैं, हम उन वादियोंसे इतना पूछते हैं कि “ तुम स्वयं अस्तिरूप हो कि  
नास्तिरूप ”? यदि अस्तिरूप हो तो लोकके अन्तर्गत हो या उससे बाहिर ?  
यदि लोकके अन्तर्गत तुम अपनेको मानते हो तो “ नास्ति लोकः ” इस  
પ્રકાર કહતે હુए आपको संकोच क्यों नहीं होता । क्यों कि तुम स्वयं  
અસ્તિત્વરૂપસે લોકકે અંતર્ગત અપને આપકો માન રહે હો । यदि

જશે ત્યારે તે સાધ્યસમ-અસિદ્ધ-હોવાથી સ્વયં સાધ્યકોટિમાં આવી જશે, અહીં  
સાધ્ય લોક છે, હેતુ પણ લોકસ્વરૂપ થઈ જવાથી તે સાધ્ય માફક થઈ જાય છે.  
સાધ્યસાધકભાવનો અભાવ હોવાથી સાધનથી સાધ્યનું જ્ઞાન ન બની શકવાથી  
આ જગ્યાએ અનુમાન બની શકતું નથી. આ વિષયમાં ટીકાકાર કહે છે કે-ધ્રુવું  
કહેવાનું હતું; પરંતુ વિસ્તારના ભયથી આટલું જ કહેવું બરોબર છે. આ પ્રકારેજ  
“ ધ્રુવો લોકઃ ” ઇત્યાદિ વાક્યમાં પણ એકાન્તવાદનું નિરસન અને સ્યાદ્વાદ પક્ષનું  
સમર્થન કરી લેવું જોઈએ. જે લોકો એકાન્તરૂપથી “ નાસ્તિ લોકઃ ” આ વાતને  
કહે છે, અમે તેવા વાદીઓને એવું પૂછીએ છીએ કે “ તમે સ્વયં  
અસ્તિરૂપ છો કે નાસ્તિરૂપ ? ” જો અસ્તિરૂપ છો તો લોકના અન્તર્ગત છો કે  
તેનાથી બાહર ? જો લોકના અન્તર્ગત પોતાને માનતા હો તો “ નાસ્તિ લોકઃ ”  
આ પ્રકારે કહેતાં આપને સંકોચ કેમ નથી થતો ? કેમ કે તમે સ્વયં અસ્તિત્વ-

પુત્રાદિવત્ સર્વથાઽસત્ત્વં તવ પ્રાપ્તં, તર્હિ મુધૈવાઽસતા સ્વયા સહ વાદકથાઽઽરમ્મઃ ।

અનેકાન્તવાદિનામસ્માકં મતે ત્વેકાન્તતઃ સત્ત્વસ્યાસત્ત્વસ્ય વા ન સમ્ભવઃ,  
કિન્તુ દ્વયોરપિ સમ્ભવોઽસ્તિ, તથા હિ-ઘટાદિઃ સ્વસ્વરૂપેણ સન્ પરકીયરૂપેણ  
ચાઽસન્-સ્વદ્રવ્ય-ક્ષેત્ર-કાલભાવૈઃ ઘટાદેઃ સત્ત્વં પરકીયૈશ્ચ તૈરસત્ત્વમિતિ । ઉક્તશ્ચ-

“સદેવ સર્વં કો નેચ્છેત્, સ્વરૂપાદિચતુષ્ટયાત્ ।

અસદેવ વિપર્યાસાન્ન ચેન્ન વ્યવતિષ્ઠતે ॥ ૧ ॥” ઇતિ ।

લોકકે અંતર્ગત અપને આપકો નહીં માનતે હોતો તુમ્હારી વન્ધ્યાપુત્રકી  
તરહ સ્વતન્ત્ર સત્તા હી સિદ્ધ નહીં હો સકતી; અતઃ અસત્યાત્મક હોને  
સે તુમ્હારે સાથ વાદવિવાદ કરના મી વ્યર્થ હૈ । વાદવિવાદ સત્કે સાથ  
હોતા હૈ, અસત્ વન્ધ્યાપુત્રકે સાથ નહીં ।

અનેકાન્તવાદી હમ લોગોંકે સિદ્ધાન્તમ્હેં ન કિસીકા એકાન્તસે એકત્વ  
માના ગયા હૈ ઓર ન એકાન્તસે કિસીકા અસત્ત્વ હી । સત્ત્વ ઓર અસત્ત્વ  
યે દો ધર્મ હૈં ઓર इनका सम्भव स्वद्रव्यादि-चतुष्टयकी अपेक्षासे ही  
સ્વીકૃત હૈ, જૈસે-ઘટાદિ દ્રવ્ય અપને દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાલ ઓર ભાવ કી  
અપેક્ષાસે હી હૈ, પરદ્રવ્ય-પટાદિકકે દ્રવ્ય-ક્ષેત્રાદિકી અપેક્ષાસે નહીં ।  
उनकी अपेक्षासे तो उसका असत्त्व ही अंगीकृत है । कहा भी है—

સદેવ સર્વં કો નેચ્છેત્ સ્વરૂપાદિચતુષ્ટયાત્ ।

અસદેવ વિપર્યાસાત્ ન ચેન્ન વ્યવતિષ્ઠતે ॥ ૧ ॥

રૂપથી લોકની અંદર પોતાને માની રહ્યા છે. જે લોકની અંદર પોતાને ન માનતા  
હો તો તમારી વન્ધ્યાપુત્રની તરહ સ્વતન્ત્ર સત્તા જ સિદ્ધ થઈ શકતી નથી.  
એટલે અસત્યાત્મક હોવાથી એ અંગે તમારી સાથે વાદવિવાદ કરવો વ્યર્થ છે.  
વાદવિવાદ સત્યની સાથે હોય છે, અસત્ય વન્ધ્યાપુત્રની સાથે નહીં.

અમારા અનેકાન્તવાદિઓના સિદ્ધાંતમાં ન કોઈનું એકાન્તથી એકત્વ માનેલ  
છે અને ન તો એકાન્તથી કોઈનું અસત્ત્વ. સત્ત્વ અને અસત્ત્વ આ બે ધર્મ છે.  
અને એનો સંભવ સ્વદ્રવ્યાદિ-ચતુષ્ટયની અપેક્ષાથી જ સ્વીકૃત છે. જેમ-  
ઘટાદિ દ્રવ્ય પોતાના દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને લાવની અપેક્ષાથી જ છે, પરદ્રવ્ય  
પટાદિકના દ્રવ્ય-ક્ષેત્રાદિની અપેક્ષાથી નહીં. એની અપેક્ષાથી તો એના અસત્ત્વનો જ  
અંગીકાર છે. કહ્યું પણ છે—

“સદેવ સર્વં કો નેચ્છેત્, સ્વરૂપાદિચતુષ્ટયાત્ ।

અસદેવ વિપર્યાસાન્નચેન્ન વ્યવતિષ્ઠતે ॥ ૧ ॥” ઇતિ ।



इति सुदृढमनेकान्तवादसाम्राज्यम् ।

एवमुक्तप्रकारेण तेषां विरुद्धमपलपतां परतैर्थिकाणां धर्मो न स्वाख्यातः=न शोभनो व्याख्यातः, एकान्तवादगर्भितत्वात्, नैव च तेषां धर्मः सुप्रज्ञप्तः=सुप्ररूपितो भवति असर्वज्ञप्रणीतत्वात्; अतः स्याद्वादसाम्राज्यबहिर्भूतत्वात्तेषां परवादिनां धर्मः सर्वथा हेय एवेति भावः ॥ सू० ३ ॥

स्वबुद्धिपरिकल्पितत्वनिरासायाऽऽह—‘ से जहेयं ’ इत्यादि—

मूलम्—से जहेયં ભગવયા પવેઇયં આસુપન્નેજાણયા પાસયા, અદુવા ગુત્તી વઓગોયરસ્સ તિંબેમિ, સઠ્વત્થ સંમયં પાવં તમેવ ડવાઇકમ્મ एस महं विवेगे वियाहिण, गामे वा अदुवा रणणे नेव गामे नेव रणणे, धम्ममायाणह पवेइयं माहणेण मइमया,

वस्तु स्वद्रव्यादिक की ही अपेक्षासे सत्त्वात्मक और परद्रव्यादिक की अपेक्षासे ही असत्त्वात्मक मानी गई है । इस प्रकारकी मान्यता न माननेसे किसी भी वस्तुकी स्वतन्त्र सत्ता सिद्ध नहीं हो सकती है! यही सुदृढ़ अनेकान्तवादका साम्राज्य है ।

इस प्रकार उक्तरूपसे एकान्तरूपमें गर्भित होनेके कारण परस्परमें विरुद्धार्थकी प्ररूपणा करनेवाले अन्य तीर्थिकोंका मत निर्दोषरूपसे कथित नहीं है, और इसीलिये वह असर्वज्ञ प्रणीत होनेसे अच्छी तरहसे प्ररूपित भी नहीं है । इसलिये स्याद्वाद साम्राज्यके बहिर्भूत होनेसे उन परवादियोंका धर्म सर्वथा हेय ही है ॥ सू० ३ ॥

अनेकान्ततत्त्वमें सूत्रकार स्वबुद्धिसे परिकल्पितपनेका निषेध करने के लिये “ से जहेयं ” इत्यादि सूत्र कहते हैं ।

વસ્તુ સ્વદ્રવ્યાદિકની અપેક્ષાથી સત્ત્વાત્મક અને પરદ્રવ્યાદિકની અપેક્ષાથી અસત્ત્વાત્મક માનવામાં આવેલ છે. આ પ્રકારની માન્યતા ન માનવાથી કોઈપણ વસ્તુની સ્વતંત્ર સત્તા સિદ્ધ થઈ શકતી નથી. આ સુદૃઢ અનેકાન્તવાદનું સામ્રાજ્ય છે.

આ રીતે એ રૂપથી એકાન્તરૂપમાં ગર્ભિત થવાના કારણે, પરસ્પરમાં વિરુદ્ધાર્થની પ્રરૂપણા કરવાવાળા અન્ય તીર્થિકોના મત નિર્દોષરૂપથી કહેવાયેલ નથી અને એ કારણે અસર્વજ્ઞ પ્રણીત હોવાથી સારી રીતે પ્રરૂપિત પણ નથી. આ કારણે સ્યાદ્વાદસામ્રાજ્યના બહિર્ભૂત હોવાથી પરવાદીઓનો ધર્મ સર્વથા હેય છે. (સૂ૦૩)

અનેકાન્ત તત્ત્વમાં સૂત્રકાર સ્વબુદ્ધિથી પરિકલ્પિતપણનો નિષેધ કરવા માટે “ સે જહેયં ” ઇત્યાદિ સૂત્ર કહે છે—

જામા તિન્નિ ઉદાહિયા, જેસુ ઇમે આચરિયા સંબુઝ્ઝમાણા સમુ-  
દિયા, જે ણિવ્વુયા પાવેહિં કમ્મેહિં અણિયાણા તે વિયાહિયા ॥સૂ. ૦૪॥

છાયા—તદ્યથેદં ભગવતા પ્રવેદિતમ્ આશુપ્રજ્ઞેન જાનતા પશ્યતા, અથવા  
ગુર્ભિર્વચોગોચરસ્યેતિ બ્રવીમિ, સર્વત્ર સમ્મતં પાપં, તદેવોપાતિક્રમ્ય એષ મમ વિવેકો  
વ્યાખ્યાતઃ, ગ્રામે વા અથવાડરણ્યે, નૈવ ગ્રામે નૈવારણ્યે, ધર્મમાજાનીત પ્રવેદિતં  
માહનેન મતિમતા, યામાસ્ત્રય ઉદાહૃતાઃ, એષુ ઇમે આર્યાઃ સમ્બુઢ્યમાનાઃ સમુત્થિતાઃ,  
યે નિર્વૃતાઃ પાપેષુ કર્મસુ અનિદાનાસ્તે વ્યાખ્યાતાઃ ॥ સૂ. ૪ ॥

ટીકા—તદ્યથા—ઇદમ્ અનેકાન્તરૂપં પૂર્વોક્તં સકલવ્યવહારાનુસારિ કુત્રાપ્યસ્વ-  
લિતં મતં આશુપ્રજ્ઞેન=શીઘ્રબુદ્ધિના આવરણક્ષયાત્ સતતોપયુક્તેન, જાનતા=જ્ઞાનોપયુક્તેન  
પશ્યતા=દર્શનોપયોગવતા ભગવતા=તીર્થઙ્કરેણ પ્રવેદિતં=પ્રરૂપિતમ્ । એકાન્તવાદિનાં  
ધર્મો ન સ્વાખ્યાતો ભવતિ તત્ર હેતુદૃષ્ટાન્તાભાવાત્, સર્વજ્ઞોપદિષ્ટસ્તુ સ્વાખ્યાતઃ  
પ્રતિજ્ઞા-હેતુ-દૃષ્ટાન્તાદિસદ્ભાવાદિતિ બોધ્યમ્ । અથવા પક્ષાન્તરે વાગ્ગોચરસ્ય=

કોઈ મી વસ્તુ એકાન્તરૂપસે ન અસ્તિરૂપ હૈ ઓર ન નાસ્તિરૂપ હૈ,  
કિન્તુ અસ્તિ-નાસ્તિરૂપતા વસ્તુઓં મેં સ્વદ્રવ્યાદિ ચતુષ્ટયકી અપેક્ષાસે  
હી માની જાતી હૈ—યહ બાત તૃતીય સૂત્રકી વ્યાખ્યાકે અંતમેં સંક્ષેપ-  
રૂપસે બતલાઈ ગઈ હૈ । ઇસીકા નામ અનેકાન્ત હૈ । ઇસકી સ્વીકૃતિ  
બિના દુનિયાકા કોઈ મી વ્યવહાર નહીં ચલ સકતા હૈ । એસી કોઈ મી  
વસ્તુ નહીં હૈ જો ઇસ અનેકાન્તકે સામ્રાજ્યસે બહિર્ભૂત હો । એસી  
પ્રરૂપણા આશુપ્રજ્ઞ-અનન્ત જ્ઞાનશાલી ઓર અનન્તદર્શનોપયોગી શ્રી  
તીર્થઙ્કર ભગવાનને કી હૈ । હેતુ ઓર દૃષ્ટાન્તકે અભાવસે એકાન્તવાદિસંમત  
ધર્મ સ્વાખ્યાત-નિર્દોષરૂપસે પ્રતિપાદિત નહીં હુઆ હૈ । પ્રતિજ્ઞા, હેતુ,

કોઈ પણ વસ્તુ એકાન્તરૂપથી ન અસ્તિરૂપ છે અને ન તો નાસ્તિરૂપ છે.  
અસ્તિ-નાસ્તિરૂપતા વસ્તુઓમાં સ્વદ્રવ્યાદિચતુષ્ટયની અપેક્ષાથી જ માની શકાય  
છે. આ વાત ત્રીજા સૂત્રની વ્યાખ્યાના અંતમાં સંક્ષેપરૂપથી કહેલ છે. એનું જ નામ  
અનેકાન્ત છે. એની સ્વીકૃતિ વગર દુનિયાનો કોઈ પણ વહેવાર ચાલી શકે નહીં.  
એવી કોઈ પણ વસ્તુ નથી જે આ અનેકાન્તના સામ્રાજ્યથી બહિર્ભૂત હોય. એવી  
પ્રરૂપણા આશુપ્રજ્ઞ-અનન્તજ્ઞાન અને અનન્તદર્શનશાળી શ્રી તીર્થઙ્કર ભગવાને કરી  
છે. હેતુ અને દૃષ્ટાંતના અભાવથી એકાન્તવાદી-સંમત ધર્મ સ્વાખ્યાત-નિર્દોષ-  
રૂપથી પ્રતિપાદિત થયા નથી. પ્રતિજ્ઞા, હેતુ અને દૃષ્ટાંત આદિના સદ્ભાવથી

વાગ્વિષયસ્ય ગુપ્તિઃ=ભાષાસમિતિર્વિધેયેત્યેતદપિ પ્રવેદિતમ્ ।

યદ્વા-‘અસ્તિ લોકો નાસ્તિ લોક’ ઇત્યાદિવાદાય સમુત્થિતાનાં પાષણ્ડિકાનાં સ્વાભિમતહેતુદૃષ્ટાન્તસ્થાપનેન તદુક્તદૂષણગણનિરસનેન ચ જયાત્ સ્વમતસ્થાપનં ઔર દૃષ્ટાન્ત આદિકે સદ્ભાવમે સર્વજ્ઞપ્રતિપાદિત ધર્મ હી સ્વાખ્યાત હૈ ।

એકાન્તસ્થાપક ન કોઈ હેતુ હૈ ઔર ન કોઈ દૃષ્ટાન્ત હી મિલતા હૈ કિ જિસકે બલ પર એકાન્ત ધર્મકી પ્રરૂપણા વાસ્તવિક સિદ્ધ હો સકે । હાં-અનેક ધર્માત્મક હી વસ્તુ હૈ । ઇસકી પ્રરૂપણાકે ળ્યાપક હેતુ ઔર દૃષ્ટાન્તાદિ ઉપલબ્ધ હોતે હૈ ।

મગવાનને વચન બોલનેવાલે સાધુકે લિયે ભાષાસમિતિ પાલનેકા મી આદેશ દિયા હૈ । “ અસ્તિ લોકઃ નાસ્તિ લોકઃ ” ઇત્યાદિ વાદકે લિયે તૈયાર હુએ વાદિયોંકે અભિમત તત્ત્વકા જો ઁન્હોંને અપને ઇચ્છાનુસાર હેતુ-દૃષ્ટાન્તકી સ્થાપનાસે સ્થાપન કિયા હૈ, ઔર પ્રતિવાદી જૈનસંમત તત્ત્વકી નિરાકૃતિનિમિત્ત દૂષણોંકા પ્રદર્શન કિયા હૈ, સો ઁનકે પ્રદર્શિત હેતુ ઔર દૃષ્ટાન્તોંકા નિરાકરણ ઁવં પ્રદત્ત દૂષણોંકા પરિહાર કરતે સમય પ્રતિવાદી મુનિકે લિયે ભાષાસમિતિકા પાલન કરના ચાહિયે । પરપક્ષકા નિરાકરણ કરતે યા તદ્વિષયક ઉત્તર દેને સમય કમી ર જોશ

સર્વજ્ઞપ્રતિપાદિત ધર્મ જ સ્વાખ્યાત છે.

એકાન્તસ્થાપક ન કોઈ હેતુ છે ઁને ન કોઈ દૃષ્ટાન્ત પણ મળે છે, જેના ળળ ઉપર એકાન્ત ધર્મની પ્રરૂપણા વાસ્તવિક સિદ્ધ થઈ શકે. હાં-અનેક ધર્માત્મક જ વસ્તુ છે. ઁની પ્રરૂપણાના જ્યાપક હેતુ ઁને દૃષ્ટાન્તાદિ ઉપલબ્ધ થાય છે.

ભગવાને વચન બોલવાવાળા સાધુ માટે ભાષાસમિતિ પાળવાનો પણ આદેશ આપ્યો છે. “ અસ્તિ લોકઃ નાસ્તિ લોકઃ ” ઇત્યાદિ વાદને માટે તૈયાર થયેલા વાદિ-યોએ પોતાના અભિમત-તત્ત્વનું પોતાની ઇચ્છાનુસાર હેતુ-દૃષ્ટાન્તની સ્થાપનાથી સ્થાપન કરેલ છે ઁને પ્રતિવાદી જૈનસંમત તત્ત્વની નિરાકૃતિ નિમિત્ત દૂષણોનું પ્રદર્શન કરેલ છે, એવા એમના પ્રદર્શિત હેતુ ઁને દૃષ્ટાન્તોનું નિરાકરણ ઁને પ્રદત્ત (આપેલ) દૂષણોનો પરિહાર કરતી વખતે પ્રતિવાદી મુનિને માટે ભાષાસમિતિનું પાલન જરૂરી છે. પરપક્ષનું નિરાકરણ કરતાં અથવા કોઈ પ્રશ્નનો ઉત્તર દેવાને સમયે ક્યારેક જોશ આવી જવાથી વચનનો સંયમ રહેતો નથી, તો પણ વિદ્વાન



વાગ્ગોચરસ્ય ગુપ્તિરિતિ । વાગ્સંયમેન સમ્યગુત્તરં દેયં નતુ ભાષાસમિતિમનપેક્ષ્યેતિ  
ભાવઃ । इति=गुप्तिर्वागोचरस्य कार्येत्येतद्वक्ष्यमाणं चाहं ब्रवीमि । तदेव वक्तुं प्रक-  
मते—‘ सर्वत्रेत्यादि—प्रतिवादिनं संबोध्य पृच्छेद्—यत्तव षड्जीवनिकायोपमर्दनं कृ-  
तकारितानुमोदनैः सर्वत्र त्वच्छास्त्रे सम्मतम्=अप्रतिषिद्धत्वेनाभिलषितं तत्सर्वं पापं=  
पापजनकं नरकनिगोदादिदुःखकारकत्वादतो न ममाभिलषितमित्यर्थः । तदेवाह—

આ જાને સે વચનકા સંયમ નહીં રહતા હૈ, તો ખી વિદ્વાન્ મુનિકે લિયે  
इस बातका वहां भी ध्यान रखना चाहिये । भाषासमिति का परिहार  
कर अपने मूलगुणमें विराधना लाना यह विद्वान् मुनिका कर्तव्य नहीं  
है । इसी वस्तुस्थितिको ध्यानमें रख कर सूत्रकार “ गुप्तिर्वचोगोचर-  
स्येति ब्रवीमि ” यह कहते हैं—जैनसिद्धान्ताभिमत हेतु और दृष्टान्तकी  
स्थापनासे एवं पाखण्डियोंके द्वारा कथित दूषणोंके निरसन (उत्तर)से  
उन पाखण्डियोंके परास्त होनेपर स्वमतकी स्थापन स्वतः हो जाती है, और  
यही वचनविषयकी गुप्ति है । इसमें रहनेवाले साधुको वाक्-संयमसे  
ही उत्तर देना चाहिये; उसकी उपेक्षा करके नहीं । इसी प्रकारसे  
सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—विद्वान् वादी मुनि, प्रतिवादीको संबोधित  
कर यह पूछे कि आपके शास्त्रमें कृत, कारित और अनुमोदनासे षड्-  
जीवनिकायका उपमर्दन प्रतिपादित हुआ है और वह अप्रतिषिद्ध होनेसे  
आपके लिये सम्मत है । परंतु यह आप विश्वास रखें कि यह सब कु-  
कृत्य है और करनेवाले जीवोंको नरक और निगोदादिक दुःखोंके प्रदाता  
है । इसलिये हमारी दृष्टिमें यह उपादेय—अभिलषित नहीं है । इसी कारण

મુનિએ એ વાતનો ત્યાં પણ જ્યાં રાખવો જોઈએ. ભાષાસમિતિનો પરિહાર કરી  
પોતાના મૂળ ગુણમાં વિરાધના લાવવી એ વિદ્વાન્ મુનિનું કર્તવ્ય નથી. આ વસ્તુ-  
સ્થિતિને ધ્યાનમાં રાખી સૂત્રકાર “ ગુપ્તિર્વચોગોચરસ્યેતિ બ્રવીમિ ” આમ કહે છે.  
જૈનસિદ્ધાન્તાભિમત હેતુ અને દૃષ્ટાંતની સ્થાપનાથી અને પાખંડીઓ દ્વારા કહેવાયેલા  
દૂષણોના ઉત્તરથી તે પાખંડીઓની હાર થવાથી સ્વમતની સ્થાપના આપમેળે થઈ  
જાય છે—આ વચનવિષયની ગુપ્તિ છે. આમાં રહેવાવાળા સાધુએ વાક્-સંયમથી  
જ ઉત્તર આપવો જોઈએ, ભાષાસમિતિની ઉપેક્ષા કરીને નહીં. આ પ્રકારેજ  
સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરે છે—વિદ્વાન્ વાદી મુનિ, પ્રતિવાદીને સંબોધિત કરી પૂછે કે  
આપના શાસ્ત્રમાં કૃત, કારિત અને અનુમોદનાથી ષડ્જીવનિકાયનું ઉપમર્દન પ્રતિ-  
પાદિત થયેલ છે અને એ અપ્રતિષિદ્ધ હોવાથી આપને માટે સમ્મત છે; પરંતુ  
આપ વિશ્વાસ રાખો કે એ બધાં કૃત્ય છે, અને કરવાવાળા જીવોને નરક અને  
નિગોદાદિક દુઃખો આપનાર છે. આ કારણે અમારી દૃષ્ટિમાં એ ઉપાદેય—

‘તદેવે’ત્યાદિ—તદેવ=સાવધાચરણમેવ ઉપાતિક્રમ્ય=ઉલ્લુહ્યાહં વર્તમાનોઽસ્મીત્યેવં—  
 ભૂતસ્ય મમ ઇષ મહાન્ વિવેકઃ=હેયોપાદેયરૂપવિચારો વ્યાહતઃ=કથિતઃ, અનપિહિ-  
 તાસ્રવદ્વારેણ ભવતા સહ સંભાષણેનાલમ્ ।

નનુ પરતીર્થિકા અપિ વનવાસિનઃ ફલ-મૂલ-કન્દાદ્યાહારાસ્તરુતલવાસિનો ભ-  
 વન્તિ, કથં તે સંભાષણાનર્હા? इति चेन्न, वनवास-फलाहारादिकरणेन न धर्मः, अपि तु  
 जीवाजीवादितत्त्वपरिज्ञानपूर्वकनिरवद्याचरणात्, तच्च तेषां नास्ति । एतमेवार्थमावि-  
 र्भावयन्नाह—‘ग्रामे वे’त्यादि—ग्रामे=ग्रामविषये वसेच्चेद्धर्मो भवेद्, एवमरण्ये=वने  
 मैं सदा इन कृत्यों—पापोंसे दूर रहता हूं । मेरा विवेक—हेय और  
 उपादेयकी जागृतिरूप बोध भी मुझे यही कहता है । महापुरुषोंकी  
 भी यही शिक्षा है । अतः जिन्होंने इन पापमय सावद्य व्यापारोंके  
 अत्यागसे अपने कर्मोंके आस्रवके द्वारको बंद नहीं किया है, उनके साथ  
 संभाषण करना भी मुझे उचित नहीं है ।

શક્કા—પરતીર્થિક જન મી વનમેં રહેતે હૈં, કંદ, મૂલ ઓર  
 ફલ આદિકા આહાર કરતે હૈં, ગિરિ ગુફામેં એવં વૃક્ષોંકે નીચે નિવાસ  
 કરતે હૈં તો ફિર યે સંભાષણકે અયોગ્ય કૈસે માને જા સકતે હૈં ?

ઉત્તર—કન્દમૂલ આદિ યાનેસે ઓર વનમેં નિવાસ કરનેસે ધર્મકી  
 પ્રાપ્તિ હોતી હૈ, સો વાત નહીં હૈ । ધર્મકી પ્રાપ્તિકા કારણ જીવ ઓર  
 અજીવ આદિ તત્ત્વોંકા પરિજ્ઞાનપૂર્વક નિરવધ આચરણ કરના હૈ । યહ  
 ઉનકે નહીં હોતા હૈ । ઇસી અર્થકો સમજાતે હુએ સૂત્રકાર કહતે હૈ—

અભિલષિત નથી. આ માટે હું સદા એ કુકૃત્યો-પાપોથી દૂર રહું છું.  
 મારા વિવેક-હેય અને ઉપાદેયની જાગૃતિરૂપ બોધ પણ મને એ કહે  
 છે. મહાપુરુષોની પણ એ શિક્ષા છે. માટે જ્યોત્સના આવા પાપમય સાવધન્યાપા-  
 ર્શના અત્યાગથી પોતાના કર્મોના આસ્રવનું દ્વાર બંધ કરેલ નથી તેની સાથે  
 સંભાષણ કરવું પણ મને ઉચિત નથી.

શંકા—પરતીર્થીક જન પણ વનમાં રહે છે, કંદ, મૂળ, ફળ આદિનો આહાર  
 કરે છે. ગિરિ ગુફામાં અને વૃક્ષોની નીચે વાસ કરે છે, તો પછી એઓ સંભાષણ  
 કરવાને અયોગ્ય કેવી રીતે માની શકાય ?

ઉત્તર—કંદમૂળ આદિ ખાવાથી અને વનમાં નિવાસ કરવાથી ધર્મની  
 પ્રાપ્તિ થાય છે એવી વાત નથી. ધર્મની પ્રાપ્તિનું કારણ જીવ અને અજીવ આદિ  
 તત્ત્વોનું પરિજ્ઞાનપૂર્વક નિરવધ આચરણ કરવું તે છે. આ તેનાથી બનતું નથી.

વા ધર્મો ભવેદિતિ નૈષ નિયમઃ, યતો ધર્મો નૈવ ગ્રામે ભવતિ નૈવારણ્યે, કિન્તુ યત્ર કુત્રાપિ વસતો જીવાજીવાદિતત્ત્વપરિજ્ઞાનપૂર્વકનિરવધાનુષ્ઠાનમેવ ધર્મમ્ આજાનીત, ઇતિ માહનેન 'મા હન-મા હન' ઇતિ યો જીવરક્ષામુપદિશતિ સ માહનો વીતરાગસ્તેન, મતિમતા-મતિઃ=સકલવસ્તુતત્ત્વપરિજ્ઞાનં, સા યસ્યાસ્તીતિ મતિમાન્, તેન-કેવલિના, ધર્મઃ=પૂર્વોદાહૃતો વક્ષ્યમાણશ્ચ પ્રવેદિતઃ=પ્રરૂપિતઃ। વક્ષ્યમાણમેવાહ-'યામા' ઇત્યાદિ-ત્રયો યામાઃ=વ્રતરૂપાઃ ઉદાહૃતાઃ=કથિતાઃ, અત્ર ત્રિગ્રહણેન પ્રાણાતિપાતમૃષાવાદપરિગ્રહવિરમણરૂપા ગૃહીતાઃ, મૈથુનાદ્દત્તાદ્દાનવિરમણયોઃ પરિગ્રહવિરમણેડન્તર્ભાવમાશ્રિત્ય તથા પ્રોક્તમિતિ બોધ્યમ્ ।

કિ 'ગ્રામમેં રહનેસેં, જંગલમેં નિવાસ કરનેસે ધર્મ હોતા હૈ' એસા નિયમ નહીં હૈ; ક્યોં કિ ધર્મ ગ્રામ અથવા જંગલમેં નહીં રહ્યા હૈ જો વહાં રહને સે મિલ જાતા હો । ધર્મ જીવ ઔર અજીવાદિ તત્ત્વોંકે પરિજ્ઞાનપૂર્વક નિરવધ અનુષ્ઠાનકે આચરણકા નામ હૈ, એસા જીવરક્ષાકે ઉપદેશક ઔર વસ્તુતત્ત્વકે જ્ઞાતા કેવલી ભગવાને કહા હૈ । 'માહન' શબ્દકા અર્થ વીતરાગ ઔર 'મતિ' શબ્દકા અર્થ સમ્પૂર્ણ વસ્તુઓં કા પરિજ્ઞાન હૈ । યહ મતિરૂપ પરિજ્ઞાન જિસકે હૈ વહ મતિમાન્ કેવલી હૈ ।

વ્રતરૂપ ત્રીન યામ કહે ગયે હૈ—૧ પ્રાણાતિપાતવિરમણ, ૨ મૃષાવાદ-વિરમણ ઔર ૩ પરિગ્રહવિરમણ । બાકીકે મૈથુનકા વિરમણ ઔર અદત્તાદાનકા વિરમણ, યે દો મહાવ્રતરૂપ ધર્મ યહાં ઇસલિયે સ્વતન્ત્રરૂપસે નહીં કહે ગયે હૈ કિ ઉનકા અન્તર્ભાવ પરિગ્રહવિરમણરૂપ મહાવ્રતમેં કરલિયા હૈ ।

આ અર્થને સમજાવવા માટે સૂત્રકાર કહે છે કે—'ગ્રામમાં રહેવાથી, જંગલમાં નિવાસ કરવાથી ધર્મ થાય છે' એવો નિયમ નથી, કેમ કે ધર્મ ગ્રામ અને જંગલમાં રાખેલ નથી કે જે ત્યાં રહેવાથી મળી બાય, ધર્મ જીવ અને અજીવાદિ તત્ત્વોતું પરિજ્ઞાનપૂર્વક નિરવધ અનુષ્ઠાનતું આચરણ તે છે, આમ જીવરક્ષાના ઉપદેશક અને વસ્તુતત્ત્વના જ્ઞાતા કેવલી ભગવાને કહેલ છે. 'માહન' શબ્દનો અર્થ વીતરાગ, અને 'મતિ' શબ્દનો અર્થ સંપૂર્ણ વસ્તુઓતું પરિજ્ઞાન છે. આ મતિરૂપ પરિજ્ઞાન જેને છે તે મતિમાન્ કેવલી છે.

વ્રતરૂપ ત્રણ યામ કહેવાયાં છે, ૧ પ્રાણાતિપાતવિરમણ, ૨ મૃષાવાદ-વિરમણ, ૩ પરિગ્રહવિરમણ. બાકીનાં મૈથુનવિરમણ અને અદત્તાદાન-વિરમણ, આ બન્ને મહાવ્રતરૂપ ધર્મ અર્થે આ માટે સ્વતંત્રરૂપથી કહેવાયેલ નથી કે તેનો અન્તર્ભાવ પરિગ્રહવિરમણરૂપ મહાવ્રતમાં કરાયેલ છે.



યદ્વા-યામા=અવસ્થાવિશેષાસ્ત્રયસ્તે યથા-અષ્ટવર્ષાદાત્રિશ્ચ એકા (૧), તતઃ  
ષષ્ઠિવર્ષપર્યન્તં દ્વિતીયા (૨), તત ઋર્ધ્વં તૃતીયેતિ, ઉદાહૃતાઃ=કથિતાઃ, એતેનાતિ-  
બાલ-વૃદ્ધયોર્નિરાસઃ, તિસ્મૃત્વેવાવસ્થાસુ ધર્માચારણસ્ય સમ્ભવાત્ ।

અથવા-‘યામાઃ’ યમ્યતે=વિરમ્યતે સંસારપરિભ્રમણાદેભિરિતિ યામાઃ=જ્ઞાના-  
દયસ્ત્રયઃ કથિતાઃ, કિમેતેનેત્યાહ-‘યેષ્વિ’-ત્યાદિ, યેષુ=વયોવિશેષેષુ ત્રિષુ જ્ઞાના-  
દિષુ વા સંબુદ્ધ્યમાનાઃ=ધર્માચરણાવસરં મોક્ષં વા જાનાનાઃ, ઇમે=આર્યા દ્રવ્ય-ક્ષેત્ર  
-કાલ-ભાવભેદેન ચતુર્વિધાસ્તે સમુત્થિતાઃ=તપઃસંયમાચરણાદૌ પ્રવૃત્તાઃ, કે ?  
યે પાપેષુ=પાપજનકેષુ પ્રાણાતિપાતાઘટ્ટાદશસ્થાનેષુ કર્મસુ નિવૃત્તાઃ=કષાયાપન-

અથવા-અવસ્થાવિશેષોંકા નામ મી યામ હૈ, વે તીન હૈ-  
આઠ વર્ષસે લગા કર તીસ વર્ષ તક પ્રથમ, એકતીસ વર્ષસે લે કર ૬૦ વર્ષ  
તક દ્વિતીય, ઓર ઉસસે આગે તૃતીય । ઇસસે યહ ધ્વનિત  
હોતા હૈ કિ અતિબાલ ઓર અતિવૃદ્ધ અવસ્થા ધર્માચરણકે યોગ્ય  
નહીં હૈ । ઇન તીનોં હી અવસ્થાઓંમેં ધર્માચરણકી સંભાવના હૈ ।

અથવા-સંસારકા પરિભ્રમણ જિનસે ઇસ જીવકા રુક જાતા હૈ  
ઉનકા નામ મી યામ હૈ । એસે યે યામ જ્ઞાનાદિક તીન હૈ । જિન વયોવિ-  
શેષ યા જ્ઞાનાદિકત્રયમેં સંબુદ્ધ્યમાન, ધર્મકે આચરણકે અવસરકો અથવા  
મોક્ષકો જાનતે હુએ યે દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાલ ઓર ભાવકે ભેદસે ચાર પ્રકારકે  
આર્યજન મુનિરાજ કિ જો પાપજનક પ્રાણાતિપાતાદિક રૂપ ૧૮ પાપસ્થાનોમેં  
કષાયકે દૂર હોનેસે શાન્ત-આસ્રવસે નિવૃત્ત હૈ, વે તપ ઓર સંયમકે

અથવા-અવસ્થાવિશેષોનું નામ પણ યામ છે. તે ત્રણ છે. આઠ વર્ષથી  
માંડી ત્રીસ વર્ષ સુધી પ્રથમ, એકત્રીસ વર્ષથી માંડી ૬૦ વર્ષ સુધી દ્વિતીય અને  
તેનાથી આગળ તૃતીય. આથી એ ક્ષણિત થાય છે કે અતિબાળ અને અતિવૃદ્ધ અવસ્થા  
ધર્માચરણને યોગ્ય નથી. આ ત્રણ અવસ્થાઓમાં ધર્માચરણની સંભાવના છે.

અથવા-સંસારનું પરિભ્રમણ જેનાથી આ જીવનું અટકી જાય છે તેનું  
નામ યામ છે. આવા એ યામ જ્ઞાનાદિક ત્રણ છે. જે વયોવિશેષ અથવા જ્ઞાના-  
દિક ત્રયમાં સંબુદ્ધ્યમાન, ધર્મના આચરણનો અવસરને અથવા મોક્ષને બાંધીને, દ્રવ્ય,  
ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવના ભેદથી ચાર પ્રકારના એ આર્યજન મુનિરાજ કે જે  
પાપજનક પ્રાણાતિપાતાદિક ૧૮ પાપસ્થાનોમાં કષાયના દૂર થવાથી શાંત છે-  
આસ્રવથી નિવૃત્ત છે તે તપ અને સંયમના આચરણ આદિમાં પ્રવૃત્ત થાય છે.

યનેન શાન્તાઃ, આસ્રવનિવૃત્તા इत्यर्थः, तेषां रागादिवन्धहेतवो न सम्भवन्ति, अत एव ते अनिदानाः=द्रव्य-भाव-निदानरहिताः, तत्र द्रव्यनिदानं माता-पितृ-पुत्र-कलत्रादि-विषयकं धन-धान्यादिविषयकं च, भावनिदानं विषयकषायादिकं चेति द्विविधनिदानहानपरायणास्ते व्याख्याताः=कथिताः ॥ सू० ४ ॥

કસ્મિન્સ્તે નિદાનરહિતાઃ ? इति दर्शयति—‘उड्डं’ इत्यादि ।

મૂલમ્—उड्डं अहं तिरियं दिसासु सव्वओ सव्वावंति च णं पाडियक्कं जीवेहिं कम्मसमारंभे णं, तं परिज्जाय मेहावी नेव सयं एएहिं काएहिं दंडं समारंभिज्जा, नेवन्ने एएहिं काएहिं दंडं समारंभावेज्जा, नेवन्ने एएहिं काएहिं समारंभंतेऽवि समणु-जाणेज्जा । जे अन्ने एएहिं काएहिं दंडं समारंभंति तेसिं पि वयं लज्जामो, तं परिन्नाय मेहावी तं वा दंडं अन्नं वा दंडं नो दंडभी दंडं समारंभिज्जासि—त्तिवोमि ॥ सू० ५ ॥

છાયા—ऊर्ध्वमधस्तिर्यग् दिक्षु सर्वतः सर्वासु च खलु प्रत्येकं जीवेषु कर्मसमारम्भः खलु, तं परिज्जाय मेधावी नैव स्वयमेतेषु दण्डं समारभेत, नैवान्यैरेतेषु कायेषु दण्डं समारम्भयेत्, नैवान्यैरेतेषु कायेषु दण्डं समारभमाणानपि समनुजानीयात्, ये चान्ये एतेषु कायेषु दण्डं समारभन्ते तैरपि वयं लज्जामहे, तं परिज्जाय मेधावी तं वा दण्डमन्यं वा नो दण्डभीर्दण्डं समारभेथाः, इति ब्रवीमि ॥ सू० ५ ॥

આચરણ આદિમેં પ્રવૃત્ત હોતે હૈં । इनके रागादिक जो बन्धके कारण हैं वे नहीं होते हैं । इसीलिये ये द्रव्य और भावके भेदसे दोनों प्रकारके नि-दानोंके विनाश करनेमें तत्पर कहे गये हैं । माता, पिता, पुत्र और स्त्री आदि स्वजनविषयक, और धन-धान्य आदि परिग्रहविषयक द्रव्य-निदान, एवं विषयकषायादिविषयक भावनिदान होता है ॥ सू० ४ ॥

और भी किसमें वे निदानरहित होते हैं ? इस विषयको सूत्रकार कहते हैं—“उड्डं अहं” इत्यादि—

તેને રાગાદિક જે બન્ધનું કારણ છે તે બનતું નથી, જેથી તે દ્રવ્ય અને ભાવ ના ભેદથી જે પ્રકારના નિદાનોનો વિનાશ કરવામાં તત્પર કહેવાયેલ છે. માતા, પિતા, પુત્ર અને સ્ત્રી આદિ સ્વજનવિષયક, અને ધન ધાન્ય આદિ પરિગ્રહ-વિષયક દ્રવ્ય નિદાન છે, અને વિષયકષાયાદિવિષયક ભાવનિદાન હોય છે. (સૂ૦ ૪)

ખીજા કયા કયામાં નિદાનરહિત હોય છે ? આ વિષયને સૂત્રકાર કહે છે—“उड्डं अहं” इत्यादि.

ટીકા-‘ઊર્ધ્વ’મિત્યાદિ-ઊર્ધ્વમધસ્તિર્યગ્ દિક્ષુ સર્વતઃ=સર્વપ્રકારેણ ‘સઘ્વાવંતિ’ઈતિ સર્વાસુ ‘ચ’ શબ્દાદ્ વિદિશાં સઙ્ગ્રહસ્તેન વિદિક્ષુ-इत्यर्थः, खलु=निश्चयेन प्रत्येकं जीवेषु=सूक्ष्मबादरादिषु प्रत्येकं प्राणिषु यः कर्मसमारम्भः=प्राणिविराधनादिरूपः खलु=निश्चयेन अस्ति। मेधावी=विदितप्राण्युपमर्दनजनितकटुकफलः, तै=कर्मसमारम्भं परिज्ञाय=ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहृत्य च स्वयम् एतेषु कायेषु=षड्जीवनिकायेषु दण्डं=मनोवाक्यैर्जीवविराधनारूपं नैव समारभेत=नैव कुर्यादित्यर्थः। अपि च-स एव एतेषु कायेषु=चतुर्दशभूतग्रामवर्तिषु जीवेषु अन्यैर्दण्डं न समारम्भयेत्=न कारयेत्, एतेषु कायेषु दण्डं समारभमाणानप्यन्यानैव समनुजानीयात्=नानुमोदयेत्। ये वाऽन्ये दण्डं समारभन्ते तैः=दण्डसमारम्भविधायिभिः सह वक्तु-

ઊર્ધ્વ, અધઃ ઓર તિર્યગ્ દિશાઓમેં, સર્વ પ્રકારસે પૂર્વ, પશ્ચિમ, ઉત્તર ઓર દક્ષિણ દિશાઓમેં, ઓર “ચ” શબ્દસે ગૃહીત વિદિશાઓમેં વર્તમાન સૂક્ષ્મ ઓર બાદર આદિકકે ભેદસે ૧૪ પ્રકારકે પ્રત્યેક જીવોમેં જો પ્રાણિયોંકી વિરાધનારૂપ કર્મસમારંભ હૈ, મેધાવી-જિસને પ્રાણિયોંકી હિંસાસે ઉત્પન્ન કટુક પરિણામ જાન લિયા હૈ એસા મેધાવી (બુદ્ધિમાન) મુનિ-ઉસ કર્મસમારંભકો જ્ઞપરિજ્ઞાસે જાનકર ઓર પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાસે ઉસકા પરિત્યાગ કર ષડ્જીવનિકાયોંકે વિષયમેં મન, વચન ઓર કાયસે જીવવિરાધનારૂપ દણ્ડકા સમારંભ ન કરે, દૂસરોંસે इन ૧૪ પ્રકારકે જીવોમેં દંડકા આરંભ ન કરાવે, ઓર જો इनકે વિષયમેં સમારંભ કર રહે હૈં ઉનકી અનુમોદના ભી ન કરે. અંતમેં શિષ્યકો સંબોધિત કરતે હુए સૂત્રકાર કહતે હૈં કિ જો અન્ય પ્રાણી ષડ્જીવનિકાયોંમેં દણ્ડ

ઉર્ધ્વ, અધઃ અને તિર્યગ્ દિશાઓમાં સર્વ પ્રકારથી પૂર્વ, પશ્ચિમ, ઉત્તર અને દક્ષિણ દિશાઓમાં “ચ” શબ્દથી ગૃહીત વિદિશાઓમાં વર્તમાન સૂક્ષ્મ અને બાદર આદિના ભેદથી ૧૪ પ્રકારના પ્રત્યેક જીવોમાં જે પ્રાણીઓની વિરાધનારૂપ કર્મસમારંભ છે, મેધાવી-જેણે પ્રાણીઓની હિંસાથી ઉત્પન્ન કટુક પરિણામ બાણી લીધું છે એવા બુદ્ધિમાન-મુનિ કર્મસમારંભને જ્ઞપરિજ્ઞાથી બાણી અને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી તેનો ત્યાગ કરી સ્વયં ષડ્જીવનિકાયો વિષે મન, વચન અને કાયથી જીવવિરાધનારૂપ દંડનો સમારંભ ન કરે, બીજાઓથી આવા ૧૪ પ્રકારના જીવોમાં દંડનો આરંભ ન કરાવે અને જે તેનો સમારંભ કરે છે તેની અનુમોદના ન કરે. અંતમાં શિષ્યને સંબોધિત કરીને સૂત્રકાર કહે છે કે-જે અન્ય પ્રાણી આ ષડ્જીવનિકાયોમાં દંડનો સમારંભ કરે છે,



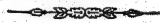
मपि वयं लज्जामहे; किमुत तदभिमतानुमोदनम्, इत्थं कृतनिश्चयः मेधावी=साधुमर्यादास्थितः--'दण्डभीः' दण्डात्=प्राणिविराधनारूपाद् बिभेतीति दण्डभीः=प्राणातिपातभीरुः सन् तम्=अनर्थकरं कर्मसमारम्भं परिज्ञाय=ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा मेधावी तं=पूर्वोक्तं प्राणातिपातादिरूपं दण्डमन्यं वा दण्डं न समारभेथाः=त्वं न कुरुष्व-त्रिकरण-त्रियोगैस्तं सर्वथा परित्यजेरित्याशयः । 'इति ब्रवीमी' त्यस्यार्थस्तूक्त एवेति ॥ सू० ५ ॥

॥ इति अष्टमाध्ययनस्य प्रथम उद्देशः समाप्तः ॥८-१॥



का समारम्भ करते हैं साधुजनोंका यह दृढ़ निश्चय होता है कि वे यह विचार कर उनके कृत्यकी प्रशंसा नहीं करते हैं कि जब हम इनके साथ बोलने तकमें लजाते हैं तो इनके कृत्यकी प्रशंसा कैसे कर सकते हैं ? इसलिये हे शिष्य ! तुम भी साधुमर्यादाके पालक हो और प्राणियोंकी विराधनारूप दण्डसे भीरु हो, अतः इस अनर्थकर प्राणातिपातादिरूप दण्डका तथा अन्य दण्डका तुम तीन करण और तीन योगसे सर्वथा परित्याग करो ॥ सू० ५ ॥

॥ आठवां अध्ययनका पहला उद्देश समाप्त ॥ ८-१ ॥



साधुजनोनो એવો દઢ નિશ્ચય હોય છે કે તેઓ વિચાર કરી તેના કૃત્યોની પ્રશંસા કરતા નથી, કેમ કે જ્યારે અમે તેની સાથે બોલવામાં પણ શરમ અનુભવીએ છીએ તો પછી તેનાં કૃત્યની પ્રશંસા કેવી રીતે થઈ શકે ? માટે હે શિષ્યો ! તમે પણ સાધુમર્યાદાના પાલક છો અને પ્રાણીઓની વિરાધનારૂપ દંડથી ભીરુ છો. માટે આવા અનર્થકારી પ્રાણાતિપાત-આદિરૂપ દંડને તથા અન્ય દંડને તમે ત્રણ કરણ અને ત્રણ યોગોથી સર્વથા પરિત્યાગ કરો. ( સૂ. ૫ )

આઠમા અધ્યયનનો પહેલો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૮-૧ ॥



### । અષ્ટમાધ્યયનસ્ય દ્વિતીય ઉદ્દેશઃ ।

ઉક્તઃ પ્રથમોદ્દેશઃ, સમ્પ્રતિ દ્વિતીય આરમ્ભ્યતે । અસ્ય ચ પૂર્વોદ્દેશેન સહાયમભિ-  
સમ્બન્ધઃ, પૂર્વોદ્દેશે વિશુદ્ધસંયમનિર્વાહાય કુદૃષ્ટિપરિહાર ઉક્તઃ, સ ચાઽકલ્પ-  
પરિહારં વિના ન સંભવતિ, તત્સમ્બન્ધેનાસ્મિન્નુદ્દેશે ચાકલ્પ્યપરિત્યાગ એવ પ્રતિપા-  
દનીયોઽસ્તિ । તત્ર પૂર્વમકલ્પ્યપરિહારવિધિં દર્શયતિ—‘ સે ભિક્ષૂ ’ ઇત્યાદિ—

મૂલમ્—સે ભિક્ષૂ પરિક્લમિજ્જ વા, ચિટ્ઠિજ્જ વા, નિસીદ્ઝ્જ વા, તુયટ્ઠિજ્જ વા, સુસાણંસિ વા, સુન્નાગારંસિ વા, ગિરિગુહંસિ વા, રુક્ખમૂલંસિ વા, કુંભારાયયણંસિ વા, હુરત્થા વા, કહિંચિ વિહરમાણં તં ભિક્ષું ઉપસંકમિત્તુ ગાહાવર્ઘં બૂયા—આઉસંતો ! સમણા ! અહં ખલુ તવ અદ્ધાએ અસણં વા, પાણં વા, ખાદ્દમં વા, સાદ્દમં વા, વત્થં વા, પડિમ્માહં વા, કંબલં વા, પાયપુચ્છણં

### આઠવે અધ્યયનકા દૂસરા ઉદ્દેશ ।

પ્રથમ ઉદ્દેશ કહા જા ચુકા । અબ દ્વિતીય ઉદ્દેશકા પ્રારમ્ભ હોતા હૈ ।  
इसका पूर्व उद्देशके साथ सम्बन्ध इस प्रकारसे है—प्रथम उद्देशमें  
विशुद्ध संयमके निर्वाहके लिये मुनिको जो मिथ्यादृष्टियोंका परिहार  
करना कहा है वह अकल्पनिक अशनादिक परिहारके विना संभवित  
नहीं होता है इसलिये विशुद्ध संयमके साथ सम्बन्ध रखनेसे इस  
उद्देशमें अकल्पनिक अशनादिकका परित्यागसम्बन्धी वर्णन है । उसमें  
सर्व प्रथम सूत्रकार अकल्पनिकके परिहारकी विधिका प्रदर्शन करते  
हैं—“ से भिक्षू ” इत्यादि ।

### આઠમા અધ્યયનનો બીજો ઉદ્દેશ

પ્રથમ ઉદ્દેશ કહેવાઈ ગયો છે. હવે બીજા ઉદ્દેશનો પ્રારંભ થાય છે.  
આનો પૂર્વ ઉદ્દેશની સાથે સંબંધ આ પ્રકારનો છે—પ્રથમ ઉદ્દેશમાં વિશુદ્ધ  
સંયમના નિર્વાહ માટે મુનિએ ‘મિથ્યાદૃષ્ટિઓનો પરિહાર કરવાનું કહ્યું છે તે  
અકલ્પનિક અશનાદિકના પરિહાર વિના સંભવિત બનતું નથી, આ માટે વિશુદ્ધ  
સંયમની સાથે સંબંધ રાખવાથી આ ઉદ્દેશમાં અકલ્પનિક અશનાદિકના પરિ-  
ત્યાગસંબંધી-વર્ણન છે. આમાં સર્વ પ્રથમ સૂત્રકાર અકલ્પનિકના પરિહારની  
વિધિનું પ્રદર્શન કરે છે—“ સે ભિક્ષૂ ” ઇત્યાદિ.

वा, पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं समारब्भ समुद्दिस्स कीयं  
पामिच्चं अच्छिज्जं अणिसिद्धं अभिहटं आहट्टु चेणमि, आवसहं  
वा समुस्सिणोमि से भुंजह वसह आउसंतो! समणा! भिक्खू तं  
गाहावइं समणसं सवयसं पडियाइक्खे—आउसंतो ! गाहावइ !  
नो खलु ते वयणं आढामि, नो खलु ते वयणं परिजाणामि जो  
तुमं मम अट्ठाए असणं वा ४, वत्थं वा ४, पाणाइं वा ४, समारब्भ  
समुद्दिस्स कीयं पामिच्चं अच्छिज्जं अणिसिद्धं अभिहटं आहट्टु  
चेणसि आवसहं वा, समणुस्सिणासि से विरओ आउसो !  
गाहावई ! एयस्स अकरणयाए ॥ सू० १ ॥

छाया—स भिक्षुः पराक्रमेत वा तिष्ठेद्वा निषीदेद्वा त्वर्ग्वर्तयेद्वा श्मशाने वा  
शून्यागारे वा गिरिगुहायां वा वृक्षमूले वा कुम्भकारायतने वा हुरत्था वा क्व-  
चिद्विहरन्तं तं भिक्षुमुपसंक्रम्य गाथापतिर्ब्रूयात्—आयुष्मन् ! श्रमण ! अहं खलु तवा-  
र्थयाशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा वस्त्रं वा पतद्ग्रहं वा कम्बलं वा पादप्रो-  
च्छनं वा प्राणिनो भूतान् जीवान् सत्त्वानि समारभ्य समुद्दिश्य क्रीतं प्रामित्यम्  
आच्छिद्यम् अनिसृष्टम् अभिहतम् आहत्य ददामि, आवसथं समुच्छृणोमि तद् भूङ्क्ष्व  
वस आयुष्मन् ! श्रमण ! । भिक्षुस्तं गाथापतिं समनसं सवयसं प्रत्यावक्षीत—आयुष्मन् !  
गाथापते ! न खलु ते वचनमाद्रिये न खलु ते वचनं परिजानामि, यस्त्वं ममार्थाय  
अशनं वा ४ वस्त्रं वा ४ प्राणिनो वा ४ समारभ्य समुद्दिश्य क्रीतं प्रामित्यम् आच्छि-  
द्यम् अनिसृष्टम् अभिहतम् आहत्य ददासि, आवसथं वा समुच्छृणोषि, सोऽहं  
विरत आयुष्मन् ! गाथापते ! एतस्याकरणतया ॥ सू० १ ॥

इसमें ये जितने कल्प प्रकट किये गये हैं वे सब प्रतिमाप्रतिपन्न  
साधुकी अपेक्षा से कहे गये हैं। अन्य साधुजनोंमें भी ये यथासंभव  
जान लेना चाहिये। सूत्रकार 'इसमें मुनिजनके लिये इस प्रकारका आहार  
अकल्पनिक है' वह बतलाते हैं—

आमां नेटला कल्प प्रगट करवा मां आवेदा छे ते अथा प्रतिमाप्रतिपन्न साधुनी  
अपेक्षाथी कहेवाया छे. अन्य साधुजनोमां पणु अये यथासंभव समज्जवा नेधअये.  
सूत्रकार आमां मुनिजनने भाटे 'अये प्रकारना आहार अकल्पनिक छे' ते अतावे छे—



टीका-‘स भिक्षु’-रित्यादि, सः=गृहीतपञ्चमहाव्रतः, परिज्ञाशिखरशिखर-समारूढः सकलसमारम्भोपरतः भिक्षुः=शरीरयात्रानिर्वहणार्थमशनवसनादियाचन-शीलो मुनिः ‘श्मशाने’ श्वाः शेरते यत्र तत् श्मशानम्, अत्र ‘वा’ शब्दः सर्वत्र पक्षान्तरद्योतकः । तथा शून्यागारे=निर्जनगृहे गिरिगुहायां=पर्वतकन्दरायां वृक्षमूले =तरुमूले, कुम्भकारयतने=कुम्भकाराशालायां ‘हुरत्था’ इति देशभाषया पूर्वोक्तस्थानेभ्योऽन्यत्र वा कुत्रचित् स्थाने पराक्रमेत=तपःसंयमाचरणादौ पराक्रमं कुर्यात्, विहरेदित्यर्थः, तिष्ठेद्वा ध्यानादिविधानाय, निषीदेद्वा वाचना-पृच्छना-परिवर्तनादिक्रणाय उपविशेत्, अपि चाध्वखेदसमापन्नः स त्वग्वर्तयेत्=त्वग्वर्तनं कुर्यात्, पार्श्वं परिवर्तयेदित्यर्थः। एते च कल्पाः प्रतिमाप्रतिपन्नमधिकृत्य प्रोक्ताः, अन्येषां तु यथासम्भवं बोध्यम्। गाथापतिः=गृहस्थः=स्वीकृतसम्यक्त्वसाध्वाचारा-नभिज्ञः प्रकृतिभद्रस्तत्र तत्र स्थानेषु विहरन्तं=विचरन्तं मुनिम् उपसंक्रम्य=मुनिस-

पांच महाव्रतोंका धारक, परिज्ञारूपी पर्वतकी शिखर पर समारूढ समस्त समारम्भोंसे निवृत्त भिक्षु शरीरयात्राके निर्वाहके लिये ही अशन, वसन (वस्त्र) आदिकी याचना करनेवाला मुनि ध्यान आदि करनेके निमित्त, या असगमकी वाचना, पृच्छना और परिवर्तना आदि करनेके निमित्त अथवा अपने गृहीत तप और संयमकी विशेष आराधनाके निमित्त कभी श्मशानमें जाता है, कभी शून्य गृहमें ठहरता है कभी पर्वतकी गुफामें बसता है और कभी किसी वृक्षके नीचे और कभी किसी कुंभारकी शालामें या और भी कहीं इन स्थानोंसे अतिरिक्त स्थानोंमें तथा मार्गजनित परिश्रमको दूर करनेके लिये विश्रामके निमित्त भी इन्हीं स्थानोंमेंसे कहीं ठहर जाता है। इस परिस्थितिसे सम्पन्न विहार करनेवाले मुनिके पास प्रकृतिके भद्र सम्यग्दृष्टि कोई गृहस्थ जो मुनिके आचारसे

पांच महाव्रतोंका धारक, परिज्ञारूपी पर्वतकी शिखर पर समारूढ अने समस्त समारम्भोंसे निवृत्त भिक्षु-शरीर यात्राका निर्वाह माटे अशन, वसन आदिनी याचना करवावा मुनि-ध्यान आदि करवा निमित्त, अगर आग मनी वाचना, पृच्छना अने परिवर्तना आदि करवा निमित्त, अथवा पीते धारण करे तप अने संयमकी विशेष आराधनाका निमित्त क्यारेक श्मशानमां जाय छे, क्यारेक उज्जड भक्षनमां रहे छे, क्यारेक पर्वतकी गुफामां वसे छे अने क्यारेक कोठ वृक्षकी नीचे अने कुंभारकी शालामां अथवा पीछे कोठ स्थानोमां तथा मार्गकी थाकने दूर करवा माटे विश्राम निमित्त पणु अने स्थानोमांथी कंधपणु रही जाय छे. आ परिस्थितिथी संपन्न विहार करवावा मुनिनी पासे प्रकृतिथी

મીપમાગત્ય 'અયં સાનુક્રોશઃ લાભાભસન્તોષી ભિક્ષોપજીવી પરોપકારપરાયણો-  
ઽસ્તિ તસ્માદેતસ્મૈ સર્વમશનાદિકં દાસ્યામી' -તિ ચેતસિ વિચિન્ત્ય ચ બ્રૂયાત્=વશ્યમાણં  
વાક્યં કથયેત્, તદેવાહ-આયુષ્મન્! શ્રમણ!=મો મુને! અહં સંસારપારાવારપારં  
જિગમિષુઃ 'સ્વલુ' વાક્યાલઙ્કારે તવાર્થાય=ભવદર્થં સર્વમ્ અશનં પાનં શ્વાદ્યં સ્વાદ્યં ચતુ-  
ર્વિધમપ્યાહારમ્, તથા વસ્ત્રં પતદ્ગ્રહં કમ્બલં પાદપ્રોચ્છનં સમુદિશ્ય=ભવન્તમુદિશ્ય  
एवं प्राणिनी भूतानि=जीवान् सत्त्वानि समारभ्य=विराध्य सम्पादितम् अशनादि-  
सम्पादने षड्जीविकायविराधनाया अवश्यम्भावात्, तदशनादिकं क्रीतं=मूल्येन,  
प्राप्तित्यम्=अपमित्यमुच्छिन्नतया गृहीतम्, आच्छिद्यं=बलात्कारेण यद् दुर्बलाद् गृ-

अनभिज्ञ है वह आकर इस ख्यालसे कि "यह साधु सानुक्रोश लाभ  
और अलाभमें संतोषी भिक्षोपजीवी तथा परोपकारमें निरत है इस कारण  
इसके लिए मैं अशन वसनादिक दूं" इस भावनासे प्रेरित होकर ऐसा  
कहता है कि-हे आयुष्मन् मुने! मैं संसाररूपी समुद्रसे पार होनेका हूं, अतः  
आपके लिये समस्त अशन, पान, श्वाद्य, स्वाद्य, ये चार प्रकारका आहार,  
तथा वस्त्र, पात्र, कम्बल और रजोहरण देना चाहता हूं। ये समस्त वस्तुएं  
मैंने आपके उद्देशसे ही रख छोड़ी हैं। इनकी तैयारी करनेमें अथवा संग्रह  
करनेमें अनेक प्राणियों भूतों जीवों और सत्त्वोंकी विराधना हुई है, क्यों  
कि षट्कायके जीवोंकी विराधना हुए बिना इनकी उत्पत्ति हो भी कैसे  
सकती है, आपको देनेके लिये ही मैंने इन्हें मूल्य दे कर खरीदा है,  
इन वस्तुओंको मैंने येन केन प्रकारेण उधार ले कर इन्हें रखा है।  
बलात्कारसे छीन कर इनका संग्रह किया है। मेरे घरमें इन वस्तु-

ભદ્ર સમ્યગ્દષ્ટિ કોઈ ગૃહસ્થ જે મુનિના આચારથી અજાણ છે તે આવીને આવા ખ્યાલથી  
કે "આ સાધુ સાનુક્રોશ લાભ અને અલાભમાં સંતોષી, ભિક્ષોપજીવી, તથા પરોપકારમાં  
નિરત છે આ કારણે આને હું અન્ન વસ્ત્ર આપું" આ આવી ભાવનાથી પ્રેરિત બની  
સાધુ સમક્ષ આવી વંદના કરી કહે છે-હે આયુષ્મન્ મુને! હું સંસારરૂપી  
સમુદ્રથી પાર થવાનો અભિલાષી છું આપના માટે અશન, પાન, પાદ્ય, શ્વાદ્ય,  
આ ચાર પ્રકારના આહાર તથા વસ્ત્ર, પાત્ર, કમ્બલ અને રજોહરણ દેવા સાહુ  
છું. આ બધી વસ્તુઓ મેં આપના ઉદ્દેશથી જ રાખી છે. આની તૈયારી કર-  
વામાં અથવા સંગ્રહ કરવામાં અनेક પ્રાણીઓ, ભૂતો, ભૂવો અને સત્ત્વોની  
વિરાધના થઈ છે, કેમ કે ષટ્કાયના ભૂવોની વિરાધના થયા વિના એની ઉત્પત્તિ  
થઈ પણ કેમ શકે?, આપને આપવા માટે જ મેં આ વસ્તુઓ  
મૂલ્ય દઈ ખરીદી છે, આ બધી વસ્તુઓ ઉછીની લઈને રાખેલ છે,  
બળાત્કારથી દુર્બળોથી છીનવી એનો સંગ્રહ કરેલ છે. મારા ઘરમાં

હીતમ્, અનિસ્ટમ્=અનેકસ્વામિકાહારાદિકમન્યાનનાપૃચ્છ્ય તદનિચ્છયૈકેન યદીય-  
માનમ્, અભિહૃતં=સાધુસમીપમાનીય દીયમાનમ્, એતાદૃશં સર્વમાહારાદિકમ્ આહૃત્ય=  
આનીય તુભ્યં દદામિ, એવમ્ આવસથં=વસતિં વા ભવદર્થં સમુચ્છળોમિ=નવીનં વિદ-  
ધામિ જીર્ણં વા પરિષ્કરોમિ મો આયુષ્મન્ ! શ્રમણ ! ત્વં તત્તથાભૂતમશનાદિકં મુ-  
દ્ભૂત્વ=અશાન, ત્વદર્થં મન્નિર્મિતમ્ભવને ચ વસ=તિષ્ઠ । મૂલે બહુવચનમાર્પત્વાત્ । એવ-  
મુક્તવન્તં ગાથાપતિં નિષેધયન્મુનિરેવમાહ-મિશ્નુઃ=મુનિઃ સમનસં મનસા સહેતિ સમ-  
નાસ્તં=સચેતસમ્ શોભનમનસા કૃતાદરં, સવયસં વયસા=વાલ્યાતિરિક્તેન સહ સવ-  
યાસ્તં સવયસં=વાલ્યેતરાવસ્થાપન્નં તાદૃશં ગાથાપતિં=ગૃહસ્થં પ્રત્યાચક્ષીત=વક્ષ્યમાણં  
પ્રત્યુત્તરં દદ્યાત—

મો આયુષ્મન્ ! ગૃહપતે ? અહં તે વચનં=પૂર્વોક્તં ન 'સ્વલુ' શબ્દો-  
પ્યર્થે તેન નાપિ આદિયે=ન તત્રાદરં કરોમિ, અપિ ચ અહં તે વચનં ન પરિજાનામિ  
ઓંકે અનેક માલિક હૈં સો મૈને ઇન્હેં દેનેકે નિમિત્ત ઓર કિસીસે નહીં  
પૂછા હૈ—શાયદ ડનકી ઇચ્છા દેનેકી ન હો—સો મૈં તો એક હી જનસે  
પૂછ કર ઇન્હેં દેનેકે લિયે આપકે સમક્ષ લે આયા હૂં । યે આહારાદિક  
વસ્તુએં આપકે લેનેકે યોગ્ય હૈં અતઃ આપ ઇન્હેં લીજિયે મૈં દેતા હૂં, ઇસી  
પ્રકાર મૈં આપકો ઠહરનેકે લિયે એક નવીન મકાન બનવાયે દેતા હૂં,  
અથવા પુરાનેકો હી ઠીક કરવાયે દેતા હૂં, સો આપ જૈસા મૈને કહા હૈ  
ડસ પ્રકારસે અશનાદિકકો ગ્રહણ કરેં ઓર ડસ મેરે દ્વારા બનવાયે હુએ  
મકાનમેં રહેં । ઇસ પ્રકાર કહનેવાલે ગૃહસ્થજનકે લિયે મુનિ ઇસ પ્રકારસે  
નિષેધ કરે—

હે આયુષ્મન્ ગૃહપતે ! આપને જો કુછ કહા હૈં વહ મક્તિસે મેરે  
હુએ અંતઃકરણસે કહા હૈં—ડસમેં ડપરકે દિશાવકી ડલક નહીં હૈં । તથા

આ વસ્તુઓના અનેક માલિક છે પરંતુ આપને દેવા નિમિત્ત મેં કોઈને પૂછ્યું  
નથી, કારણ કે કદાચ એમની ઇચ્છા દેવાની ન થાય—ફક્ત એક જ જાણને પૂછી દેવા  
માટે આપની સમક્ષ લઈ આવેલ છું. આહારાદિક વસ્તુઓ આપને લેવા યોગ્ય  
છે; આપ એનો સ્વીકાર કરો, હું આપું છું. આ રીતે આપને રહેવા માટે એક  
નવું મકાન બનાવી આપું છું અથવા જુનાને ઠીક કરાવી આપું છું તો આપ મેં  
કહ્યું તેમ અસનાદિકને ગ્રહણ કરો અને મારા બનાવેલા મકાનમાં રહો. આ  
પ્રકારે કહેવાવાળા ગૃહસ્થને મુનિ આ પ્રકારે નિષેધ કરે—

હે આયુષ્માન્ ગૃહસ્થ ! આપે જે કહ્યું તે ભક્તિથી ભરપૂર અંતઃકરણથી  
કહ્યું છે, તેમાં ઉપરના દેખાવની ડલક નથી, તથા તમે બાહ્ય અવસ્થાને ઉલ્લંઘન



આસેવનપરિજ્ઞયા ન સમનુજાનામિ, યસ્ત્વં મમાર્થાય=મન્નિમિત્તં યદ્ અશનં=ચતુર્વિધં  
 વસ્ત્રં વા=વસ્ત્રાદિકં પ્રાણાદીન્ સમારભ્ય ષડ્જીવનિકાયમુપમર્દ્ય સમ્પાદિતમ્, તથા  
 સમુદ્દિશ્ય=મામુદ્દિશ્ય ક્રીતં પ્રામિત્યમ્ આચ્છિદ્યમ્ અનિસૃષ્ટમ્ અભિહતમ્ આહૃત્ય  
 દદાસિ, આવસથં વા સમુચ્છૃણોષિ=મદર્થં નિર્માપયસિ કિન્તુ હે આયુષ્મન્ ! ગૃહપતે !

તુમ બાલ્ય અવસ્થાકો ઉલ્લઙ્ઘન મી કર ચુકે હો ઇસલિયે હમ યહ મી  
 નહીં માન સકતે કિ કિસીને તુમ્હેં સમજ્ઞા બુજ્ઞાકર હમારે પાસ મેજા  
 હૈ, અતઃ તુમ સહૃદય એવં ઉમરલાયક વ્યક્તિ હો ફિર મી તુમ મુનિ  
 કે આચાર વિચારોંસે અપરિચિત હો ઇસલિયે હમ તુમ્હેં સમજ્ઞાતે હૈ  
 કિ-આપને જો કુછ આહાર આદિ સામગ્રીકે લેનેકે વિષયમેં કહા હૈ,  
 મેં ઉન વચનોંકો ન સુનના ચાહતા હૂં, ન આદરકી દૃષ્ટિસે દેખતા હૂં ઓર  
 ન આસેવનપરિજ્ઞાસે ઉનકી અનુમોદના મી કરતા હૂં । તુમ જો કહ રહે  
 હો કિ મૈને અશનાદિક ચારોં પ્રકારકા આહાર તથા વસ્ત્રાદિક ષડ્જી-  
 વનિકાયકો ઉપમર્દન કરકે સંપાદિત કિયા હૈ, તથા મેરે ઉદ્દેશ્યસે ઇન્હેં  
 સ્વરીદા હૈ, યે સમસ્ત ચીજેં તુમને ઉધાર લેકર હમકો દેનેકે લિયે ઇન્હેં  
 રખ છોડી હૈ, બલાત્કારસે નિર્બલોંસે ઇસે છીન ક્ષપટ કર સંગ્રહ  
 કી હૈ, ઘરમેં ઇસ સામગ્રીકે અનેક માલિક થે સો કિસીસે ન પૂછ કર  
 કેવલ એક હી મનુષ્યકી આજ્ઞા લે કર તુમ અપની ઇચ્છાસે હો હમેં દેનેકે  
 લિયે ઇસે લાયે હો, તથા એક નવીન ભવન મી મુક્કે કરવા દેનેકે લિયે  
 કહ રહે હો, આદિ ૨ યે તુમ્હારી બાતેં મુનિયોંકે યોગ્ય નહીં હૈ, ઇસ લિયે

કરી ગયા છે માટે અમે એ પણ માનતા નથી કે કોઈએ તમને સમજાવી  
 બુજાવીને અમારી પાસે મોકલેલ છે, માટે તમે સહૃદય તેમજ ઉમરલાયક વ્યક્તિ  
 છો તો પણ તમે મુનિના આચાર વિચારથી અપરિચિત છો માટે અમે  
 તમને સમજાવીએ છીએ કે આપે જે કંઈ આહારાદિ સામગ્રી લેવાના વિષયમાં  
 કહ્યું છે હું તે વચનોને સાંભળવા ઇચ્છતો નથી, આદરની દૃષ્ટિથી  
 દેખતો નથી અને આસેવનપરિજ્ઞાથી તેની અનુમોદના પણ કરતો નથી. તમે  
 જે કહી રહ્યા છો કે મેં અશનાદિક ચારે પ્રકારનો આહાર તથા વસ્ત્રાદિક ષડ્જી-  
 વનિકાયનું ઉપમર્દન કરીને સંપાદિત કરેલ છે, તથા મારી ઇચ્છાથી ખરીદેલ છે.  
 આ સમસ્ત ચીજો તમે ઉછીની લઈને મને આપવા માટે રાખી મુકેલ છે. બલાત્કારથી  
 નિર્બળો પાસેથી અને આંચકી લઈ સંગ્રહ કરેલ છે. ઘરમાં આ સામગ્રીના  
 અનેક માલિક હતા એમાંથી કોઈને ન પૂછતાં કેવળ એક જ માણસની આજ્ઞા  
 લઈને તમે તમારી ઇચ્છાથી મને આપવા માટે લાવેલ છો તેમજ એક નવું

एतस्य=पूर्वोक्तस्य अकरणतया अनासेवनपरिज्ञया सोऽहं विरतः=अकल्पनीयाश-  
नादिग्रहणेभ्यो निवृत्तोऽस्मि, पूर्वोक्तं सर्वं मम न कल्पत इति भावः, अतो मदर्थ-  
मुपकल्पितं पूर्वोक्तं सर्वं वस्तुजातं भगवदाज्ञाबहिर्भूतत्वात् स्वीकर्तुं न शक्नोमि,  
नात्र त्वया स्वमनसि खेदो विधेयः, इत्यादि सान्त्वनावाक्यैस्तं प्रकृतिभद्रं गृहस्थ-  
मनुनयेदिति तात्पर्यम् ॥ सू० १ ॥

विदितसाध्वाचारो गृहपतिः साधुमविज्ञाप्याशनादिकमुपकल्प्य निमन्त्रयेत्  
तन्निषेधयितुमाह-‘से भिक्षू’ इत्यादि ।

हम इसे ग्रहण नहीं कर सकते हैं और न हम इसकी तुम्हें स्वीकृति ही  
दे सकते हैं, कारण कि इस प्रकारकी अकल्पनीय सामग्रीके ग्रहणसे  
हम सर्वथा विरत हैं । तीर्थङ्कर प्रभुकी यह आज्ञा है कि मुनिजन इस  
प्रकारकी अकल्पनीय अशनादि सामग्रीको ग्रहण न करें, अतः हमारे  
निमित्त रखी हुई पूर्वोक्त समस्त अशनवसनादिरूप सामग्री तीर्थङ्कर  
भगवान्की आज्ञासे बहिर्भूत होनेके कारण हमें ग्रहण करनेयोग्य नहीं  
है, इसलिये हम उसे ग्रहण नहीं कर सकते हैं । इस विषयमें तुम  
अपने चित्तमें खेद मत करना । इस प्रकारके सान्त्वना परिपूर्ण वचनोंसे  
बह मुनि उस प्रकृतिभद्र गृहस्थको समझावे ॥ सू० १ ॥

साधुके निमित्त तय्यार की गई आहारादिक सामग्री ज्ञात होने पर  
साधुके लिये अकल्पनीय है । साधुजन उसे नहीं ले सकते हैं ।  
जिसने साधुका आचार जाना है ऐसे गृहस्थके द्वारा साधुके उद्देश

મકાન પણ મારા માટે કરાવી આપવાનું કહી રહ્યા છો. આ સધળી તમારી  
વાતો મુનિને યોગ્ય નથી જેથી તેને હું ગ્રહણ કરી શકતો નથી તેમ એની સ્વીકૃતિ  
પણ હઈ શકતો નથી. કારણ કે આ પ્રકારની અકલ્પનીય સામગ્રીના ગ્રહણથી  
હું સર્વથા વિરકત છું. તીર્થંકર પ્રભુની એવી આજ્ઞા છે કે મુનિજન આવા  
પ્રકારની અકલ્પનીય અશનાદિ સામગ્રી ગ્રહણ ન કરે. માટે મારા નિમિત્ત રાખેલી  
પૂર્વોક્ત સમસ્ત અશનવસનાદિરૂપ સામગ્રી તીર્થંકર ભગવાનની આજ્ઞાથી બહિ-  
ર્ભૂત હોવાને કારણે મારે યોગ્ય નથી. આ માટે હું તેને ગ્રહણ કરી શકતો  
નથી. આ બાબત તમે તમારા મનમાં ખેદ કરશો નહીં. આ પ્રકારે સાન્ત્વના  
પરિપૂર્ણ વચનોથી તે મુનિ એ પ્રકૃતિભદ્ર ગૃહસ્થને સમજાવે ॥ સૂ. ૧ ॥

સાધુના નિમિત્ત તૈયાર કરાયેલી આહારાદિક સામગ્રી જાણ્યા પછી સાધુ  
માટે અકલ્પનીય છે. સાધુજન તેનો સ્વીકાર કરતા નથી. જેણે સાધુના આચાર  
જાણ્યા છે એવા ગૃહસ્થદ્વારા સાધુના ઉદ્દેશ વિના પણ તૈયાર કરાયેલી ભોજનાદિક

मूलम्—से भिक्षू परक्कमिज्ज वा, जाव दुरत्था वा, कहिं चि विहरमाणं तं भिक्षुं उवसंकमित्तु गाहावई आयगयाए पेहाए असणं वा ४, वत्थं वा ४, जाव आहट्ट चेणइ आवसहं वा समुस्सिणाइ तं भिक्षुं परिघासेउं। तं च भिक्षू जाणिज्जा सह सम्मइयाए परवागरणेणं अन्नेसिं वा अंतिए सुच्चा—अयं खलु गाहावई मम अट्टाए असणं वा ४, जाव आवसहं वा समुस्सिणाइ तं च भिक्षू पडिलेहाए आगमित्ता आणविज्जा अणासेवणयाए त्तिवेमि ॥ सू० २ ॥

छाया—स भिक्षुः पराक्रमेत वा यावद् दुरत्था (अन्यत्र) वा क्वचिद् विहरमाणं तं भिक्षुमुपसंक्रम्य गृहपतिरात्मगतया प्रेक्षया अशनं वा ४ वस्त्रं वा ४ यावदाहत्य ददाति आवसथं वा समुच्छृणोति तं भिक्षुं परिघासयितुं। तच्च भिक्षुर्जानीयात् सहसम्मत्या परव्याकरणेनाऽन्येषां वाऽन्तिके श्रुत्वा—अयं खलु माथापतिर्ममार्थायाशनं वा ४ यावदावसथं वा समुच्छृणोति तद्भििक्षुः प्रत्युपेक्ष्यावगम्याऽऽज्ञापयेदनासेवनतयेति ब्रवीमि ॥ सू० २ ॥

टीका—‘स भिक्षु’—रित्यादि, स भिक्षुः=मुनिः पूर्वोक्ते श्मशानादौ ‘दुरत्था’ देशभाषया अन्यत्रापि ग्रामादौ पराक्रमेत=तपःसंयमादौ, ‘यावत्’ इत्यनेन पूर्वोक्ते विना भी तैयार की गई भोजनादिक सामग्री निमंत्रित किया गया साधु नहीं ले सकता है, इसे प्रकट करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं—“से भिक्षू” इत्यादि।

उस मुनिको कि जो अपने तप और संयमकी वृद्धि करनेके निमित्त ध्यान आदिकी सिद्धिके निमित्त, अथवा आगमकी वाचना, पृच्छना और परिवर्तना आदिके निमित्त श्मशान आदि स्थानोंमें शून्य घरमें पर्वतकी

सामग्री निमंत्रित करवाना आवेब साधु लक्ष्य शकता नहीं, तेने प्रगट करवा मोटे सूत्रकार कहे छे—“से भिक्षू” इत्यादि.

ये मुनि के जे पोताना तप अने संयमकी वृद्धि करवा निमित्त ध्यान आदिनी सिद्धिना निमित्त अथवा आगमनी वाचना, पृच्छना, अने परिवर्तना आदिना निमित्त श्मशान आदि स्थानोंमां, उज्जड घरमां, पर्वतनी शुक्षमां,



ક્તવન્નિષીદેત્ત્વગ્વર્ત્તયેદિતિ સङ્ગ્રહઃ, ગાથાપતિઃ=પ્રકૃતિભદ્રકઃ કશ્ચિદ્ આત્મગતયા  
 =અન્તઃકરણસ્થિતયા પ્રેક્ષયાઽનાવિષ્કૃતાશયઃ પ્રચ્છન્નપચનપાચનાદિના ષટ્ત્વજીવનિ-  
 કાયં વિરાધયન્ તં મિશ્રું તત્ર ક્વચિદેકત્ર વિહરન્તમ્ ઉપસંક્રમ્ય તત્સમીપં ગત્વા  
 અશનં વા ચતુર્વિધં, વસ્ત્રં વા ૪ યાવત્ સર્વમ્ આહૃત્ય=આદાય તં મિશ્રું પરિઘાસયિતું=  
 મુનિભોજનાય દદાતિ=વિતરતિ આવસથં વા=નવીનં ગૃહં વાસયિતું સમુચ્છૃણોતિ=  
 નિર્માપયતિ જીર્ણં વા પરિષ્કરોતિ, મિશ્રુઃ=સંયમી તદ્ આહારાદિકં વસ્ત્રાદિકમાવ-  
 સથં વા સાધ્વર્થમેવ કૃતમિતિ.સહસમ્મત્યા=સ્વબુદ્ધ્યા, તયાઽનધિગમે પરવ્યાકરણેન  
 પરપરિપ્રશ્નેન, તતોઽનવગમે અન્યેષાં=તત્પરિજનદાસાદીનામન્તિકે=સમીપે શ્રુત્વા વા  
 ગુપ્તાઓમેં કુંભારકી શાલામેં યા ઇનસે અતિરિક્ત કિસી મી સ્થાનમેં  
 રહતા હૈ ઠહરતા હૈ ઉઠતા હૈ તથા બૈઠતા હૈ યા માર્ગજન્ય સ્વેદકો દૂર  
 કરનેકે લિયે ઉન ૨ સ્થાનોમેં વિશ્રામ કરતા હૈ ઉન્હેં દેખ કર કોઈ  
 પ્રકૃતિભદ્ર ગૃહસ્થ અપની ઇચ્છાસે ઉપાજિત આહાર દેનેકી ભાવનાસે આતા  
 હૈ । મુનિકે નિમિત્ત ઇસને આહારાદિક સામગ્રી તૈયાર કી હૈ ઇસ પ્રકાર  
 કા ઉસકા અભિપ્રાય પ્રકટ નહીં હો રહા હૈ, તથા મુનિસે પ્રચ્છન્ન પચન  
 પાચનાદિ વ્યાપારસે જિસને ષટ્ત્વજીવનિકાયકી વિરાધના મી કી હૈ વહ  
 ગૃહસ્થ અશન, પાન, સ્વાદ્ય ઓર સ્વાદ્ય તથા વસ્ત્ર, પાત્ર, કમ્બલ ઓર  
 રજોહરણ આદિ સમસ્ત સામગ્રીકો લે કર મુનિકો દેનેકે નિમિત્ત કહીં  
 રસ્ત દેતા હૈ । નયા મકાન મી ઠહરનેકે લિયે બનવા દેતા હૈ, અથવા જીર્ણ  
 કા ઉદ્ધાર કરવા દેતા હૈ । મુનિકો જબ યહ વાત અપની બુદ્ધિસે યા ઉસ  
 સે નહીં માલૂમ પડ્ને પર દૂસરેસે પૂછનેસે, ઉસસે મી નિશ્ચિત ન હોનેપર

કુંભારની શાળામાં, અથવા તેનાથી સિવાય કોઈ પણ સ્થાનમાં રહે છે—રોકાય છે  
 ઉઠે છે બેસે છે તથા માર્ગજન્ય થાકને દૂર કરવા માટે તેવા સ્થાનમાં  
 વિશ્રામ કરે છે તેને બેઠને કોઈ પ્રકૃતિભદ્ર ગૃહસ્થ પોતાની ઇચ્છાથી ઉપાજીત  
 આહાર દેવાની ભાવનાથી આવે છે. મુનિ નિમિત્ત તેણે આહારાદિક સામગ્રી  
 તૈયાર કરેલી છે. આ પ્રકારનો ભાવ દેખાઈ આવતો નથી તથા મુનિથી  
 પ્રચ્છન્ન પચનપાચનાદિ વ્યાપારથી જેણે ષટ્ત્વજીવનિકાયની વિરાધના કરેલી છે. તે  
 ગૃહસ્થ અશન, પાન, ખાદ્ય, અને સ્વાદ્ય તથા વસ્ત્ર, પાત્ર, કમ્બલ અને રજોહરણ  
 આદિ સમસ્ત સામગ્રી લઈને મુનિને દેવા માટે કોઈ જગ્યાએ રાખે છે. નવું  
 મકાન પણ રહેવા માટે બનાવી દે છે અથવા બુનાને સમરાવી આપે છે. મુનિને  
 આ વાત જ્યારે પોતાની બુદ્ધિથી, અથવા તેને નહીં માલૂમ પડવાથી બીજાને  
 પૂછવાથી, એનાથી પણ નિશ્ચિત ન થવાથી તેના દાસ દાસી આદિના પાસેથી

જાનીયાત્=બુદ્ધચેત, કિં જાનીયાદિત્યાહ—‘અય’—મિત્યાદિ—અયમ્=એષ ગાથાપતિઃ  
 સ્વલુ=નિશ્ચયેન, મમાર્થાય=મદર્થ સંપાદ્ય અશનં વા ૪ વસ્ત્રં વા ૪ યાવત્સર્વં  
 દદાતિ, આવસથં વા સમુચ્છૃણોતિ એતત્સર્વં જાનીયાદિતિ સમ્બન્ધઃ । તત્સર્વમક-  
 લ્પ્યત્વાત્પરિહરેદિત્યાહ—‘તદિ’—ત્યાદિ, ભિક્ષુઃ=મુનિઃ તત્=અશન-વસનાવસથાદિકં  
 મદર્થમેવ સમ્પાદિતમિતિ પ્રત્યુપેક્ષ્ય=દૃષ્ટવાદિના સમ્પ્રેક્ષ્ય અવગમ્ય=સ્વબુદ્ધ્યા  
 સમ્યગવબુદ્ધ્ય ચ તં ગૃહસ્થમ્ અનાસેવનતયા=અકલ્પનીયત્વેન સેવિતુમયોગ્યમિતિ  
 આજ્ઞાપયેત્=પ્રતિબોધયેત્, ગ્રહીતુમપિ ન કલ્પતે इति તાત્પર્યમ્, ‘એતન્મદર્થમુપક-  
 લ્પિતમશનાદિકમુદ્ગમાદિદોષદૂષિતતયા નાહં ગ્રહીષ્યે, નાપિ તસ્મિન્ આવસથે  
 વત્સ્યામિ, इत्याद्यभिधाय ‘પ્રાસુકદાને ધર્મો’ડન્યથા ન ધર્મઃ’ इत्यादિકં

उसीके दासदासी आदिके पासमें सुननेसे यह मालूम होता है कि यह  
 आहारादिक सामग्री, या वस्त्र पात्रादिक वस्तुएँ, और ठहरनेके लिये यह  
 निर्मित स्थान इस श्रावकने मुनियोंके निमित्त ही तैयार किये हैं । यह  
 आहारादिक सामग्री इसने हमारे निमित्त ही बनवाई है, वस्त्रादिक ये  
 हमारे निमित्त ही देने लाया है, यह मकान भी इसने हमारे निमित्त  
 ही तैयार करवाया है, इस प्रकार अच्छी तरह जानकर और विचारकर  
 उस दाता गृहस्थको समझावे, कि—ये तुम्हारे द्वारा दी जानेवाली समस्त  
 वस्तुएँ हमें अकल्प्य हैं—हमें सेवन करनेके अयोग्य हैं । हम इन्हें ग्रहण  
 तक नहीं कर सकते हैं, कारण कि ये सब अशनादिक वस्तुएँ उद्गमा-  
 दिक दोषोंसे दूषित हैं, इसलिये हम न इन्हें ग्रहण करेंगे और न मका-  
 नमें ही ठहरेंगे । ऐसा कह कर “निर्दोषके देनेमें ही धर्म होता है

સાંભળી એમ માલૂમ પડે છે કે એ આહારાદિક સામગ્રી અને વસ્ત્ર પાત્રાદિક  
 વસ્તુઓ અને ઉતરવા માટે આ નિર્મિત સ્થાન તે શ્રાવકે મુનિયોના નિમિત્તે જ  
 તૈયાર કરેલ છે. આ આહારાદિક સામગ્રી તેણે અમારા નિમિત્તે જ બનાવેલી છે.  
 વસ્ત્રાદિક અમારા નિમિત્તે જ આપવા માટે લાવેલ છે. આ મકાન પણ અમારા  
 નિમિત્તે જ તેણે બનાવેલ છે. આ પ્રકારે સારી રીતે જાણીને અને વિચાર કરીને  
 તે દાતા ગૃહસ્થને આ પ્રકારે સમજાવે કે આ તમારા દ્વારા અપાતી સમસ્ત  
 વસ્તુઓ અમારે અકલ્પનીય છે, અમારા સેવન માટે અયોગ્ય છે, અમે તેને  
 ગ્રહણ કરી શકતા નથી, કારણ કે એ સઘળી અશનાદિક વસ્તુઓ ઉદ્ગમાદિક  
 દોષોથી દૂષિત છે માટે અમે તેને ગ્રહણ કરતા નથી. એવું કહીને “પ્રાસુકને  
 દેવામાં જ ધર્મ થાય છે એ સિવાય નહીં” इत्यादि शास्त्रोक्त કલ્પોનો એને

શાસ્ત્રોક્તકલ્પમુપદિશ્ય તમભિસાન્ત્વયેદિતિ ભાવઃ । ‘ઇતિ’ અધિકારસમાપ્તૌ, યન્મયા ભગવત્સકાશાત્ શ્રુતં તત્સર્વં પૂર્વોક્તં વક્ષ્યમાણં ચ બ્રવીમિ=કથયામિ ॥ સૂ. ૨ ॥

વક્ષ્યમાણમેવાહ—‘ભિક્ષું ચ’ इत्यादि—

મૂલમ્—ભિક્ષું ચ खलु पुट्टा वा, अपुट्टा वा जे इमे आहच्च गंधा वा फुसंति से हंता हणह, खणह, छिंदह दहह, पयह, आलुपह, विलुपह सहसा कारेह, विप्परामुसह, ते फासे, पुट्टो धीरो अहियासए, अदुवा, आचारगोयरमाइक्खे तक्किया णमणे-लिसं, अदुवा वइगुत्तीए गोयरस्स अणुपुव्वेण सम्मं पडिलहोए आयगुत्ते, बुद्धेहिं एयं पवेइयं ॥ सू. ૩ ॥

છાયા—મિશ્નું ચ खलु पृष्ठा वा अपृष्ठा वा ये इमे आहत्य ग्रन्थाद्वा स्पृशन्ति स हन्ता इत क्षणत, छिन्त, दहत, पचत, आलुम्पत, विलुम्पत, सहसाकारयत, विप-रामृशत, तान् स्पर्शान् स्पृष्टोऽध्यासयेत्, अथ वा आचारगोचरमाचक्षीत, तर्कयित्वा खलु अनीदृशमथवा वाग्गुप्त्या गोचरस्यानुपूर्व्यां सम्यक् प्रत्युपेक्षेत् आत्मगुप्तः, बुद्धैरेतत्प्रवेदितम् ॥ सू. ૩ ॥

ટીકા—‘મિશ્નુ’—મિત્યાદિ, યે=પૂર્વોક્તા ઇમે=પ્રત્યક્ષનિર્દિષ્ટા ગાથાપતયો મિશ્નું =શ્મશાનાદૌ વિહરન્તં તં મુનિં ‘ચઃ’ સમુચ્ચયાર્થકઃ, ‘खलु’ વાક્યાલઙ્કારે, પૃષ્ઠા અન્યથા નહીં ” इत्यादिक शास्त्रोक्त कल्पका उसे उपदेश देकर सम-झावे । सूत्रमें इति शब्द अधिकारकी समाप्तिका सूचक है । जो मैंने भगवान्‌से सुना है वह सब पूर्वोक्त अथवा वक्ष्यमाण तुमसे कहा है, तथा आगे कहता हूं ॥ सू. ૨ ॥

વક્ષ્યમાણ વિષયકો સૂત્રકાર કહતે હૈં—“ ભિક્ષું ચ ” इत्यादि ।

સૂત્રકારને ૧ પ્રથમ ઓર ૨ દ્વિતીય સૂત્રમાં યહ પ્રકટ કિયા હૈ કિ-કુછ ગૃહસ્થ એસે હૈં જો મુનિયોં કે પ્રતિ પૂર્ણ ભક્તિ રખતે હૈં પરન્તુ અનેક

ઉપદેશ આપી સમજાવે. સૂત્રમાં इति શબ્દ અધિકારની સમાપ્તિનો સૂચક છે જે મેં ભગવાન પાસેથી સાંભળેલ છે એ સઘળું પૂર્વોક્ત અથવા વક્ષ્યમાણ તમને કહેલ છે તથા આગળ કહું છું. ॥ સૂ. ૨ ॥

વક્ષ્યમાણ વિષયને સૂત્રકાર કહે છે—“ ભિક્ષું ચ ” इत्यादि.

સૂત્રકારે ૧ પ્રથમ અને ૨ બીજા સૂત્રમાં એ પ્રકટ કરેલ છે કે કોઈ ગૃહસ્થ એવા હોય છે કે જે મુનિયોની તરફ પૂર્ણ ભક્તિ રાખે છે પણ તેના



‘भो भिक्षो ! तुभ्यमाहारवस्त्रादिकं दातुमिच्छामि स्थानं वा परिष्करिष्यामि अनु-  
जानीहि मा’-मित्यादिवाक्यैस्तं पृष्ट्वा, अप्राप्तानुज्ञोऽपि गाथापतिर्यदि सहसा चाऽऽ-  
ग्राहयिष्यते, कश्चिच्च स्तोकमनगाराचारविधिज्ञः अपृष्ट्वा वा भिक्षुणाऽननुज्ञातः

आचारसे अपरिचित हैं, तथा कुछ गृहस्थ ऐसे हैं जो उनके आचारसे परिचित हैं। इनमें जो उनके आचारसे अपरिचित हैं उनके विषयमें सूत्रकार फिर भी कह रहे हैं कि ऐसे व्यक्ति मुनिको ध्यान अध्ययनादि पूर्वोक्त कारणोंके कारण इमशान आदि स्थानोंमें विहार करते हुए देख कर भक्तिके आवेशसे स्वयं मुनिसे पूछते हैं कि-महाराज ! मैं आपके लिये आहार वस्त्रादिक देनेका अभिलाषी हूँ। आपके लिये एक नवीन भवन भी जिसमें आप निवास कर सकें वैसा बनवा देना चाहता हूँ। नहीं तो कोई एक आपके लायक पुराना ही स्थान सुधरवा दूँ, कहिये आपकी क्या संमति है। आपकी आज्ञाकी ही देरी है काम बहुत शीघ्र हो जायगा। इस प्रकार उस गृहस्थकी बातको सुन कर मुनि ध्यानादिके कारण जब कुछ भी उत्तर नहीं देते हैं तो वह गृहस्थ अपने मनमें अपनी ही कल्पनासे यह निश्चय कर लेता है कि ठीक है, मुनिराजने हमें कोई इस बाबतमें उत्तर नहीं दिया है तो कोई हर्ज नहीं, मैंने उन्हें सूचित तो कर दिया है, चलो भक्ति-अनुनय विनयादि करके सब उनसे मंजूर कारवा लूंगा और यह सब आहारादिककी सामग्री इन्हें

आचारथी अपरिचित छे. तथा डेटलाक गृहस्थ ओवा डोय छे डे तेना आचारथी परिचित छे. ओभां जे ओना आचारथी अपरिचित छे तेना विषयभां सूत्रकार डरीथी पणु डडे छे डे ओवी व्यक्ति मुनिने ध्यान अध्ययन आदि स्थानोभां निहार करता ओधने लडितना आवेशथी पोते मुनिने पूछे छे डे-महाराज हुँ आपने माटे आहार वस्त्रादिक देवानो अभिलाषी छुं. आपने माटे ओक नवीन भवन पणु जेभां आप निवास करी शके. तेवुं जनानी देवा आहुं छुं, नडि तो आपने लायक जुना भवनने सुधरावी हउं. डडे आपनी शुं संमति छे ? आपनी आज्ञानी वार छे काम जल्दी थठ जशे. आ प्रकारनी ते गृहस्थनी बात सांभणीने मुनि ध्यानादिकना कारणे ज्यारे कांछ पणु उत्तर आपता नथी त्यारे ते गृहस्थ पोतानी कल्पनाथी पोताना मनभां निश्चय करी ले छे-डीक छे मुनिराजे मने आ आपतभां कांछ उत्तर आपेल नथी तो कांछ वांधे नथी. में तेमने जडेर तो करी ज हीधुं छे. लडित-अनुनय-विनय विगेरे-थी मंजूर करानी लछि. अने आ आहारादिकनी सामग्री पणु ओमने कांछ पणु प्रकारे

‘येन केनापि प्रकारेणैतदशन-वसनादिकं ग्राहयिष्यामी’-त्येवं चेत्तसि परिचिन्त्य तं भिक्षुमपृष्ट्वैव तदर्थमशनादिकं निष्पादयेयुः । गृहस्थोपहतमशनादिकमगृह्यतो मुनेः किसी भी प्रकारसे दे ही दूंगा। अथवा यदि कोई इसी प्रकारका राजपुरुष है तो वह कहता है कि-वे नहीं लेंगे तो बलात्कारसे उन्हें लेना पड़ेगा कम से कम वे इतना तो विचार करेंगे कि यह एक राजाका उच्च कर्मचारी है या स्वयं राजपुरुष है इसके द्वारा लाई गई सामग्री अब कैसे नहीं लूँ-नहीं लेनेसे इसके चित्तमें खेद होगा-उससे मेरे प्रति इस की विरक्ति हो जायगी और इससे यह मुझे उपद्रवित करेगा।

जो गृहस्थ पूर्णरूपसे मुनिके आचारसे परिचित नहीं है, इस कारण से वह पूछना उचित नहीं समझ कर नहीं पूछता है पर वह इतना तो अवश्य विचार करता है कि चाहे कुछ भी हो, परन्तु यह अशन वसनादि सामग्री इस मुनिके लिये अवश्य दूंगा और वे इसे अवश्य २ ले लेंगे। ऐसे विचारसे वह भी अशन वसनादिक सामग्री तय्यार करा कर और उसे ले कर उनके निकट पहुंच जाते हैं परन्तु मुनिराज औद्देशिकादि दोषसे दूषित इस सामग्रीको जब नहीं लेते हैं, तब उनके चित्तमें यह खयाल जम जाता है कि इस साधुने हमारा तिरस्कार किया है अतः द्वेषाविष्ट बन वे राजपुरुषरूप गृहस्थ उस मुनिके ऊपर अनेक

दुःख दृष्टि. अथवा जे कोई आ प्रकारनो राजपुरुष होय तो जे कडे के जे तेजो नहीं ले तो जणजणरीथी जेहे स्वीकारुं पडशे. जेछाभां जेछा तेजो जेटलो तो विचार करशे के ‘आ जेक राजनो कर्मचारी छे. अथवा स्वयं राजपुरुष छे, जेमहे लावेदी आ सामग्री हुं कछ रीते न लउं-न लेवाथी हिलभां जेद थशे-आथी भास तरक जेनी विरक्ति अनशे अने जेथी जे मने दुःखकारक अनशे.’

जे पुरुष-गृहस्थ पूरु रीते मुनिना आचारथी परिचित नथी अने जे कारणथी जे पूछुं उचित न भानी पूछतो नथी अने मनभां निश्चय करे छे के आडे गमे तेम थाय तो पणु हुं अन्न, वस्त्र आदि सामग्री मुनिने अवश्य आपवानो छुं, अने तेजो अवश्य जेनो स्वीकार करशे न. आवो निर्धार करी जे अन्न, वस्त्र धत्यादि सामग्री तय्यार करावी जेने लछ जे मुनि पासे पडोये छे, परन्तु मुनिराज औद्देशिकादि दोषथी दूषित जे सामग्री न्यारे लेता नथी तय्यारे जेना हिलभां जेवो जयाल जमी जय छे के आ साधुजे भास तिरस्कार कर्यो छे. आथी द्वेष लावनावाणा थछ जे राजपुरुष गृहस्थ जे मुनिना ऊपर



द्वेषाविष्टास्ते तिरस्कृता गृहस्था राजपुरुषास्तस्य बहुविधमुपतापं कुर्वन्तीत्याह—  
‘आहच्च’ इत्यादि, ते गृहस्थास्तत्सर्वमशनादिकं ग्रन्थात्=अपरिमितद्रव्यव्ययात्  
आहत्य=ढौकित्वा तदर्थं निष्पाद्येत्यर्थः । आहतमप्यशनादिकमनङ्गीकुर्वन्तं स्पृश-  
न्ति=परितापयन्ति, तदेव दर्शयति—‘स’ इत्यादि—सः=प्रद्वेषमुपगतो राजपुरुषा-  
दिस्तस्य मुनेर्हन्ता=स्वयं हन्तुं प्रवृत्तो भवति अन्यमाज्ञापयति च—‘हते’—त्यादि—  
भो पुरुषाः ? यूयमेनं मुनिं हत दण्ड-कशादिना, क्षणुत=मुष्टिलत्तादिना मारयत,  
छिन्त=कुठारादिना कर-चरणाद्यवयवानां छेदं कुरुत, दहत=वह्नाद्यादिना भस्मी-  
कुरुत, पचत तदेहमांसादिकम्, आलुम्पत=वस्त्रादिकमपहरत, विलुम्पत=सर्वस्वं  
गृहीत, सहसाकारयत=त्वरितं प्राणानपहरत, विपरामृशत=वि=विविधैः पीडनोत्पा-  
प्रकारके उपद्रव करना प्रारंभ कर देते हैं, इसी बातको सूत्रकार—“आ  
हच्च गंधा वा फुसंति” इस वाक्यसे प्रकट करते हैं । वे गृहस्थ अपरिमित  
द्रव्यके व्ययसे साध्य उस अशनादिक सामग्रीको उसके निमित्त तय्यार  
कराकर जब उस मुनिके निकट ले जाते हैं और वह जब उस सामग्रीको  
स्वीकृत नहीं करता है तब वे उसे अस्वीकार करनेवाले उस मुनिको  
अनेक प्रकारसे दुःखित करने लग जाते हैं । कभी वे राजपुरुष गृहस्थ  
स्वयं उस मुनिको मारने लग जाते हैं और दूसरोंसे भी यह कहते हैं  
कि अरे ! तुम सब लोग इस मुनिको दण्ड और कशा आदिसे पीटो  
मुष्टि और लातके प्रहारोंसे इसे चोट पहुँचाओ, कुठार आदिसे इसके  
हाथ और पैर आदि अवयवोंको छेद दो, अग्निमें इसे जलादो, इसकी  
देहके मांसको निकालकर पका लो, इसके वस्त्र वगैरह सब छीन लो—  
इसका सर्वस्व लूट लो और जल्दी से जल्दी इसके प्राणोंको ले लो, तथा

अनेक प्रकारसे उपद्रव करवा लागे छे, आ वातने सूत्रकार—“आहच्च गंधा वा  
फुसंति” आ वाक्यथी प्रगट करे छे. ते गृहस्थ अपरिमित द्रव्यना व्ययथी अशनादिक  
सामग्री मुनिना निमित्त तैयार करावी न्यारे अे मुनिनी पासे लधने जाय छे अने  
मुनिअे सामग्री न्यारे स्वीकारता नथी त्यारे ते अस्वीकार करना मुनिने अनेक  
प्रकारथी दुःख आपवा लागे छे. क्यारेक क्यारेक अे राजपुरुष गृहस्थ जाते ज  
ते मुनिने मारवा प्रेराय छे अने भीलअेने पणु ठशेरे छे अने कडे छे के तअे  
अधा लोको आ मुनिने लाकडीथी, हाथथी, पगना प्रहारथी अुअ पीटो, कुडाडी  
आदिथी अेना हाथ पग वगेरे अवयवाने छेदी नाओ, अग्निमां अेने आणी  
नाओ, अेना शरीरना मांसना लोया काढी लो, अेनां वस्त्र अने अन्य सामग्री  
आंयडी लो अने जल्दी अेना लुवननो अंत लावी हो, जे जे प्रकारनी यात-



દનૈઃ પરમૃશત=યાતનાં દદત । एवं स्पृष्टः=पूर्वोक्तहननादिबहुविधपरीषहाभिभूतः  
सन् धीरः=परीषहोपसर्गसहनशीलः तान्=पूर्वोक्तान् हननादीन् स्पर्शान्=दुःखवि-  
शेषान् अधिसहेत । स भिक्षुः परिषहोपसर्गैः स्पृष्टोऽपि न तदौद्देशिकादिदोषदुष्ट-  
माहारं गृह्णीयात्, नापि ग्लानत्वमवलम्बेतेत्याशयः ।

अथवा स भिक्षुः अनीदृशम् ‘अयं पुरुषः कः किं सम्यग्दृष्टिरुत मिथ्यादृष्टिः?  
अभिगृहीतनियमोऽनभिगृहीतनियमो वा?’ इत्यादिरूपमीदृशं, तद्विन्नमनीदृशं  
पुरुषं तर्कयित्वा=सम्भाषणार्हं समालोच्य आचारगोचरं=मुनेराचारविषयम् आच-  
क्षीत=समुपदिशेत् । स्वसमयस्थापन-परसमयनिरसनेन च तमभिसान्त्वयेदित्यर्थः,

जिस २ प्रकारसे इसे अनेक यातनाएं दी जा सकें दो । इस प्रकार इन  
उपर्युक्त हननादिक अनेक प्रकारके परीषहोंसे व्याप्त होता हुआ भी  
वह धीर-परीषह और उपसर्गोंके सहन करनेमें शक्तिशाली-मुनि इन  
हननादिक दुःखविशेषोंको समभाव से सहन करे । इन परीषह और  
उपसर्गों से घबड़ा कर वह मुनि औद्देशिकादि दोषोंसे दूषित उस  
आहारको न लेवे और न चित्तमें कोई ग्लानि ही लावे ।

अथवा—वह मुनि “यह पुरुष कौन है ? सम्यग्दृष्टि है ? कि  
मिथ्यादृष्टि ? अभिगृहीत नियमवाला है ? या उससे रहित है ?” इत्या-  
दिरूप विचारका जो विषय हो उसका नाम ईदृश है, इससे भिन्नका  
नाम अनीदृश है । “यह अनीदृश है” ऐसा विचार कर—‘यह संभाषणके  
योग्य है ’ ऐसा जानकर—उसे मुनिके आचारका उपदेश दे । स्वसिद्धान्त  
की स्थापना और परसिद्धान्तके निराकरणसे उस व्यक्तिको संतुष्ट करे

નાઓ પહોંચાડી શકાય તેટલી પહોંચાડો, એને રીઘાવી રીઘાવીને મારી નાખો.  
આ પ્રકારે અનેક પરિષદ અને ઉપસર્ગોથી વ્યાપ્ત થતા પણ ધીર-  
પરીષદ અને ઉપસર્ગોને સહન કરવામાં શક્તિશાલી મુનિ હનનાદિ દુઃખોને  
સમભાવે સહન કરે પણ ઔદેશિકાદિક દોષોથી દૂષિત અન્ન વસ્ત્રાદિકને ગ્રહણ  
ન કરે, તેમ ચિત્તમાં કેઈ પ્રકારની ગ્લાનિ પણ ન લાવે.

અથવા—તે મુનિ “એ પુરૂષ કોણ છે ? સમ્યગ્દૃષ્ટિ છે ? કે મિથ્યાદૃષ્ટિ ?  
અભિગૃહીતનિયમવાળા છે ? અથવા એથી રહિત છે ? ” ઇત્યાદિ વિચારવાનો  
વિષય જેવું નામ ઈદૃશ છે એનાથી ભિન્નતું નામ અનીદૃશ છે. “આ અનીદૃશ છે”  
એવું વિચારી—એ સંભાષણને યોગ્ય છે—એવું બાણી લઈ એને મુનિના આચાર-  
નો ઉપદેશ આપે. સ્વસિદ્ધાંતની સ્થાપના અને પરસિદ્ધાંતના નિરાકરણથી એ  
વ્યક્તિને સંતોષ આપે. અમારે માટે આ ઔદેશિક અશન વસનાદિક અસ્વી-

‘મમેદમશનવસનાદિકં ન કલ્પ્ય’-મિતિ મૂલોત્તરગુણભેદભિન્નાં સર્વાં પિષ્ઠૈષણાવિશુદ્ધિં કથયિત્વા—“યત્સ્વયમદુઃખિતં સ્યાન્ન ચ પરદુઃખે નિમિત્તભૂતમપિ । કેવલમુપગ્રહ-કરં, ધર્મકૃતે તદ્ભવેદ્યમ્ ” ॥ ૧ ॥ ઇત્યાદિવાક્યૈસ્તમનુનયેદિતિ ભાવઃ ।

સ્વસ્મિન્ કથનસામર્થ્યે શ્રોતરિ ચાનુકૂલે કથનીયમ્, અન્યથા કથનવૈયથ્યા-દિત્યાહ—અથ વા વાગ્ગુપ્ત્યા વાચો ગુપ્તિઃ વાગ્ગુપ્તિઃ=વાક્યસંયમનં મૌનમિત્યર્થઃ, તથા વાગ્ગુપ્ત્યા ઉપલક્ષિતઃ મૌન એવ આત્મગુપ્તઃ=આત્મના તિસ્મિર્મનોગુપ્ત્યાદિ-ભિર્ગુપ્તઃ=રક્ષિતઃ સન્ ગોચરસ્ય=આચારગોચરસ્ય પિષ્ઠવિશુદ્ધિચાદેઃ, આનુપૂર્વ્યા=ઉદ્ગ-હમારે લિયે ઔદૈશિક અશન વસનાદિક કલ્પનિક નહીં હૈ, ઇસ પ્રકાર મૂલ ગુણ ઔર ઉત્તરગુણોંકે ભેદસે ભિન્ન ઁસી સમ્પૂર્ણ પિષ્ઠૈષણાકી શુદ્ધિ કા કથન કર “યત્સ્વયમદુઃખિતં સ્યાન્ન ચ પરદુઃખે નિમિત્તભૂતમપિ । કેવ લમુપગ્રહકરં, ધર્મકૃતે તદ્ભવેદ્યમ્ ॥” ઇત્યાદિ વાક્યોંસે યહ બતલાવે કિ જો આહારાદિક વસ્તુ અદોષ હોગી વહી દૂસરોંકી ઉપકારક હોગી, ઁસી ઉપ-કારક વસ્તુ હી મુનિયોં કે લિયે ઉનકે ધર્મકી વૃદ્ધિમેં સહાયક હોનેસે દેનેયોગ્ય માની ગઈ હૈ । યહ સબ મુનિ આચારવિષયક કથન તબ હી કરે કિ જબ અપનેમેં ઇસ આચારકો સમજાનેકી પૂર્ણ શક્તિ-યોગ્યતા હો ઔર સુનનેવાલા શ્રોતા અનુકૂલ હો । અન્યથા કહનેસે કોઈ લાભ નહીં હોગા । ઇસી બાતકો “અથવા વાગ્ગુપ્ત્યા ગોચરસ્યાનુપૂર્વ્યા સમ્યક્ પ્રત્યુપેક્ષેત આત્મગુપ્તઃ ” ઇન પદોંસે પ્રસ્ફુટ કરતે હૈ—અથવા વચનગુપ્તિ-વચનસંયમ-મૌન હી આત્માકા ગુણ હૈ । ઇસ પ્રકાર મનોગુપ્તિ આદિ ત્રીન ગુપ્તિયોંસે ગુપ્ત હોતા હુઆ વહ સાધુ પિષ્ઠવિશુદ્ધિ આદિકે ઉદ્ગમ

કાર્ય છે. આ પ્રકારે મૂલગુણ અને ઉત્તરગુણોના લેહથી ભિન્ન એવી પિંડૈષણાની શુદ્ધિનું કથન કરી તે ગૃહસ્થના મનમાં દૃઢતા જમાવે, તેવી વાણીથી તેને સમજાવે “યત્સ્વયમદુઃખિતં સ્યાન્ન ચ પરદુઃખે નિમિત્તભૂતમપિ । કેવલ મુપગ્રહકરં, ધર્મકૃતે તદ્ ભવેદ્યમ્ ” ઇત્યાદિ વાક્યોથી એ બતાવે કે આહારાદિક વસ્તુ અદોષ હોય તે જ બીજાને ઉપકારક બને. આવી ઉપકારક વસ્તુ જ મુનિયો માટે એમના ધર્મની વૃદ્ધિમાં સહાયક હોવાથી દેવા યોગ્ય માનવામાં આવે છે. આ રીતે મુનિ આચારવિષયક કથન ત્યારે જ કરે કે જ્યારે એનામાં આચારને સમજાવવાની પૂર્ણ શક્તિ-યોગ્યતા હોય અને સાંભળનાર પણ યોગ્ય-પાત્ર હોય. એમ ન હોય તો કહેવાથી કેઈ લાભ નહીં બને. આ વાતને “અથવા વાગ્ગુપ્ત્યા” ઇત્યાદિ. આ પદોથી પ્રસ્ફુટ (સ્પષ્ટ) કરે છે. અથવા વચન ગુપ્તિ-વચનસંયમ-મૌન જ આત્માનો ગુણ છે. આ રીતે મનોગુપ્તિ આદિ

મોત્પાદનાદિપ્રશ્નપ્રતિવચનાદિપૂર્વકં સમ્યક્ પ્રત્યુપેક્ષેત=તદ્ગતદોષાન્ સમ્યગ્વ-  
ધારયેત્ । મિશ્નુઃ કદાચિદ્વ્યૌદેશિકાહારાદિકં ન ગૃહ્ણીયાત્, તદાહારગ્રહણસ્યા-  
કલ્પ્યત્વં પ્રતિપાદયેત્, સમ્ભાષણેનાપ્યપ્રભાવિતાશઙ્કાયાં મૌનમેવાવલમ્બેતેતિ વર્તુ-  
લાર્થઃ । સર્વમેવૈતન્ન મયા સ્વબુદ્ધચોચ્યત ઇત્યાહ—‘બુદ્ધૈ’—રિત્યાદિ, એતત્=સર્વ પૂર્વોક્ત-  
મકલ્પ્યાહારાદિનિષેધનં વક્ષ્યમાણં વા બુદ્ધૈઃ કલ્પ્યાકલ્પ્યવિધાનાભિજ્ઞૈઃ સર્વજ્ઞૈઃ  
પ્રવેદિતં=દ્વાદશપરિષદિ પ્રરૂપિતમ્ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

વક્ષ્યમાણમેવ દર્શયતિ—‘સે સમણુન્ને’ ઇત્યાદિ ।

ઉત્પાદનાદિ ગત દોષોંકા પ્રશ્નપ્રતિવચનાદિપૂર્વક અચ્છી તરહસે નિશ્ચય કરે।  
તાત્પર્ય યહ કિ-મિશ્નુ કમી મી ઔદેશિક આદિ આહારકો ન લેવે । દૂસરે  
જન યદિ બલાત્કારસે ઉસે દેનેકી હઠ કરે-આપત્તિ વિપત્તિયાં સ્વહી કરે  
-તો ઉનસે બિલકુલ મી ન ઘબડાવે । મુનિકો કૈસા આહાર કલ્પનિક  
હૈ યહ ઉન્હેં સમજાવે । યદિ સમજાને પર મી વે ન માને તો સર્વોત્તમ  
એક યહી ઉપાય હૈ કિ વહ મૌન રહે ।

યહ સબ મૈને અપની બુદ્ધિસે કલ્પિત કર નહીં કહા હૈ કિન્તુ યહ  
પૂર્વોક્ત કલ્પ અકલ્પ આહારાદિવિષયક કથન તથા આગે ઔર મી જો  
કહના હૈ વહ સબ કલ્પ ઔર અકલ્પકે વિધાનકો જાનનેવાલે સર્વજ્ઞ  
ભગવાનને અપની ૧૨ પ્રકારકી સભામેં કહા હૈ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

વક્ષ્યમાણ વિષયકો હી સૂત્રકાર સૂત્રદ્વારા પ્રદર્શિત કરતે હૈ—  
“સે સમણુન્ને” ઇત્યાદિ ।

પણુ ગુપ્તિઓથી ગુપ્ત રહેતા એ સાધુ પિણ્ડવિશુદ્ધિ આદિના ઉદ્ગમ ઉત્પાદનાદિ  
ગત દોષોનેા પ્રશ્નપ્રતિવચનાદિપૂર્વક સારી રીતથી નિશ્ચય કરે. તાત્પર્ય એ છે  
કે—મિશ્નુ કદિ પણુ ઔદેશિક આદિ આહાર ન લે બીજો માણસ કદી બળાત્કારથી  
એને આપવાની હઠ પકડે-આપત્તિ વિપત્તિઓ ઉભી કરે-ત્યારે એનાથી જરા પણુ  
ન ગભરાય. મુનિ માટે કેવો આહાર કલ્પનિક છે તે એને સમજાવે અને સમ-  
જાવવા છતાં પણુ તે ન માને તો સારામાં સારો રસ્તો મૌન ધારણ કરવાનો છે.  
આ બધું મેં મારી બુદ્ધિથી કલ્પિત કરીને કહ્યું નથી પરંતુ આ પૂર્વોક્ત  
કલ્પ અકલ્પ આહારાદિવિષયક કથન, તથા આગળ કાંઈ કહેવાનું છે એ બધું  
કલ્પ અને અકલ્પના વિધાનને જાણવા વાળા સર્વજ્ઞ ભગવાને પોતાની ૧૨ પ્રકારની  
સભામાં કહેલ છે. (સૂ૦ ૩)

વક્ષ્યમાણ વિષયને જ સૂત્રકાર સૂત્રદ્વારા પ્રદર્શિત કરે છે—“સે  
સમણુન્ને” ઇત્યાદિ.



मूलम्—से समणुन्ने असमणुन्नस्स असणं वा ४, वत्थं वा ४  
नो पाइज्जा नो निमंतिज्जा नो कुज्जा वेयावडियं परं आढाय-  
माणे त्तिवेमि ॥ सू० ४ ॥

छाया—स समनोज्ञोऽसमनोज्ञायाशनं वा ४ वस्त्रं वा ४ नो प्रदद्यान्नो निमन्त्र-  
येन्नो कुर्या द्वैयावृत्यं परमाद्रियमाण इति ब्रवीमि ॥ सू० ४ ॥

टीका—‘स समनोज्ञ’ इत्यादि, स समनोज्ञः=पूर्वोक्तोऽनगारः परम्=अत्यर्थम्  
आद्रियमाणः तैः कृतादरोऽपि गृहपतिसकाशात्केवलमकल्पनीयमेव न शृलीयात्  
इत्येव न प्रवेदितं, किन्तु असमनोज्ञाय=शाक्यप्रभृतये तत्पूर्वोक्तमाहारादिकं न  
प्रदद्यात् न निमन्त्रयेत् न तेषां वैयावृत्यं कुर्यात् । ‘इति’ अधिकारसमाप्तौ त्वां  
ब्रवीमि=कथयामि ॥ सू० ४ ॥

कीदृशः कस्मै दद्यादित्याह—‘धम्म०’ इत्यादि ।

वह अनगार उन असमनोज्ञ—शाक्यादिकों—द्वारा अत्यंत आदृत होता  
हुआ भी गृहस्थोंके यहांसे प्राप्त—कल्पनिक आहारादिक अशन, पान, स्वाद्य  
और स्वाद्य एवं वस्त्र, पात्र, कम्बल और पादप्रोज्झनको उन शाक्यादिकों  
के लिये न देवे न उन्हें देनेके लिये आमंत्रित करें और न उनकी वैया-  
वृत्ति ही करे। यहां ‘इति’ शब्द अधिकारकी समाप्तिमें आया है, इस प्रकार  
अधिकारकी समाप्तिमें सुधर्मास्वामी श्री जम्बूस्वामीसे कहते हैं—

साधु गृहस्थोंसे सिर्फ अकल्पनीय आहारादिकका ग्रहण न करे  
इतना ही नहीं किन्तु जो कल्पनीय आहारादिक ग्रहण किये गये हैं, वे  
अन्यः शाक्यादिकों को प्रदान भी न करे ॥ सू० ४ ॥

‘कैसा होकर किसके लिये उन्हें दे’ इसे प्रकट करते हैं—‘धम्म०’ इत्यादि।

એ અનગાર તે અસમનોજ્ઞ-શાક્યાદિકો દ્વારા અત્યંત આદૃત થયેલ પણ  
ગૃહસ્થોને ત્યાંથી પ્રાપ્ત કલ્પનિક આહારાદિક અશન, પાન, પાચ અને સ્વાદ્ય તથા  
વસ્ત્ર, પાત્ર, કમ્બલ અને પાદપ્રોજ્જન, એ શાક્યાદિકોને ન આપે, અથવા તો  
એમને આપવા માટે ન આમંત્રણ આપે, અથવા તો ન તેની વૈયાવૃત્ત્ય કરે.  
અહિં ‘ઇતિ’ શબ્દ અધિકારની સમાપ્તિમાં આવે છે આ પ્રકારે અધિકારની સમા-  
પ્તિમાં શ્રી સુધર્માસ્વામી શ્રી જમ્બૂસ્વામીને કહે છે—

સાધુ ગૃહસ્થો પાસેથી ફક્ત અકલ્પનીય આહારાદિક સ્વીકાર ન કરે. આટલુંજ  
નહિ પરંતુ કલ્પનીય આહારાદિક સ્વીકારેલ હોય તે અન્ય શાક્યાદિકોને આપે  
પણ નહિ ( સૂ. ૪ )

“ કેવા થઈ કોને માટે આપે ” આને પ્રગટ કરે છે—‘ધમ્મમાયાણહ’ ઇત્યાદિ.

मूलम्—धम्ममायाणह पवेइयं माहणेण मइमया समणुत्ते  
समणुत्तस्स असणं वा ४ वत्थं वा ४ पाएज्जा निमंतेज्जा कुज्जा  
वेयावडियं परं आढायमाणे त्तिवेमि ॥सू० ५ ॥

छाया—धर्ममाजानीत प्रवेदितं माहनेन मतिमता समनोज्ञः समनोज्ञायाशनं वा  
४ वस्त्रं वा ४ प्रदद्यात् निमन्त्रयेत् कुर्याद् द्वैयावृत्त्यं परमाद्रियमाण इति ब्रवीमि ॥५॥

टीका—‘धर्म’—मित्यादि, परम्=उत्कृष्टम् आद्रियमाणः तस्यादरं कुर्वन्  
समनोज्ञैराहतो वा स समनोज्ञः=अनगारः उद्यतविहारी समनोज्ञाय=परस्मै सम्य-  
ग्दर्शनादिमते संविग्नाय साम्भोगिकायैकसामाचारीप्रविष्टाय मुनये अशनं वा चतुर्वि-  
धमाहारं वस्त्रादिकं प्रदद्यात्, निमन्त्रयेत्, वैयावृत्त्यं=शुश्रूषां वा कुर्यात्। गृहस्थेभ्यः  
केवलमकल्पनीयाऽऽहारादिग्रहणस्यैव प्रतिषेधः, असमनोज्ञेभ्यस्तु न ग्राह्यं नापि  
तस्मै देयमिति भावः। इत्येवं माहनेन मतिमता=भगवता महावीरेण प्रवेदितं=  
प्ररूपितं धर्मं=पूर्वोक्तमशनादिग्रहणविधिनिषेधप्रतिपादकं साध्वाचाररूपम् ‘आजा-

समनोज्ञोका आदर करता हुआ, अथवा समनोज्ञोसे आहत होता  
हुआ वह उद्यतविहारी साधु सम्यग्दर्शनादिमें संविग्ण-एक सामाचारीके  
पालन करनेमें प्रविष्ट-अन्य मुनिजनोंके लिये चार प्रकारके अशन और  
चार प्रकारके वस्त्रादिक देवे, उन्हें देनेके लिये आमंत्रित करे, और उनकी  
वैयावृत्त्य-शुश्रूषा भी करे। गृहस्थोंके पाससे केवल अकल्पनीय आहा-  
रादिक एवं वस्त्रादिक ले लेनेका ही निषेध है-कल्पनीयका नहीं, परंतु  
असमनोज्ञोसे तो उन्हें न वह लेवे और न उन्हें वह देवे। इस प्रकार  
मतिमान्-केवलज्ञानी श्री महावीर भगवान् द्वारा प्ररूपित पूर्वोक्त  
अशनादिके ग्रहणकी विधि और निषेधका प्रतिपादक साधुके आचाररूप

समनोज्ञोनो आदर करता अथवा समनोज्ञोथी आहत यता ये उद्यतविहारी  
साधु सम्यग्दर्शनादिमां संविग्ण-येक सामाचारीनुं पालन करवाभां प्रविष्ट-अन्य  
मुनिजनो भाटे चार प्रकारना अशन अने चार प्रकारनां वस्त्रादिक दे, अने  
आपवा भाटे आमंत्रण आपे अने अमनी वैयावृत्त्य-शुश्रूषा पण करे, गृह-  
स्थोनी पासोथी केवण अकल्पनीय आहारादिक अने वस्त्रादिकने लेवानो निषेध छे.  
कल्पनीयनो नहीं, परंतु असमनोज्ञो पासोथी न तो ले के न अने आपे. आ  
प्रकारे मतिमान्-केवलज्ञानी महावीर भगवान् द्वारा प्ररूपित पूर्वोक्त अशना-  
दिना ग्रहणनी विधि अने निषेधना प्रतिपादक साधुना आचाररूप धर्मने छे

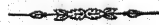
નીત ' આ=સર્વતો જાનીત=બુદ્ધચધ્વં યૂયમિતિ શેષઃ । 'ઈતિ બ્રવીમિ' -ત્યસ્યાર્થ-  
સ્તૂત્ત એવેતિ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

॥ અષ્ટમાધ્યયનસ્ય દ્વિતીય ઉદ્દેશઃ સમાપ્તઃ ॥ ૮-૨ ॥



ધર્મકો હે શિષ્યો ! તુમ સબ સર્વ પ્રકારસે સમજો । ઇતિ બ્રવીમિ ઇન  
પદોંકા અર્થ પહિલે ઉદ્દેશોંમેં કહા જા ચુકા હૈ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

॥ આઠવાં અધ્યયનકા દ્વિતીય ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૮-૨ ॥



શિષ્યો ! તમે સઘળા સારી રીતે સમજો. " ઇતિ બ્રવીમિ " આ પદોનો અર્થ પહેલાના  
ઉદ્દેશોમાં કહેવાઈ ગયેલ છે. (સૂ૦ ૫)

આઠમા અધ્યયનનો બીજો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૮-૨ ॥



### । अथाष्टमाध्ययनस्य तृतीय उद्देशः।

अभिहितो द्वितीयोद्देशः, साम्प्रतं तृतीय आरम्भ्यते, अस्य च पूर्वोद्देशेन सहायं सम्बन्धः—अनन्तरोद्देशे चाकल्पनीयाशनादिग्रहणनिषेध उक्तः, अत्र च गृहपतिः कदाचिच्छीतादिना प्राप्तप्रकम्पं भिक्षाद्यर्थमागतं भिक्षुं पृच्छति—‘कामचेष्टयैव भवच्छरीरं कम्पते ?’ इति तस्य गृहपतेरसदाशङ्कं मुनिर्दूरीकुर्यात्, ‘शीतादिना मम गात्रं कम्पते नान्यथे’—ति प्रतिपादयिष्यते, तत्र मध्यमावस्थायां शीतप्रवे-  
पितगात्रप्रसङ्गात्तस्य वयसः संयमाचरणयोग्यतां प्रथमसूत्रेणोपदर्शयति—  
‘मज्झिमेण’ इत्यादि।

### आठवें अध्ययनका तीसरा उद्देश ।

द्वितीय उद्देश कहा । अब तृतीय उद्देश कहा जाता है, इस उद्देशका पूर्व उद्देशके साथ यह सम्बन्ध है—वहां साधुके लिये अकल्पनीय अश-  
नादि ग्रहण करनेका निषेध किया है, इस उद्देशमें यह बतलाया जायगा कि अपने घर आहारादि ग्रहण करनेके निमित्त आये हुए मुनिको कोई भद्र गृहस्थ कदाचित् शीतादि कारणवश प्रकम्पित होते देख पृछे कि “कामकी चेष्टासे ही आपका शरीर कांप रहा है क्या ?” तब साधुका कर्तव्य है कि वह इस प्रकारकी गृहस्थकी असत्—खोटी आशंकाका निवारण करे और कहे कि “शीतादिक निमित्तसे ही मेरा शरीर कांप रहा है अन्य कारणसे नहीं।” उसमें सर्व प्रथम मध्यम अवस्थामें शीत से कंपित शरीरके प्रसंगसे उस अवस्था की संयमके आचरणकी योग्यता को सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—‘मज्झिमेण’ इत्यादि।

### આઠમા અધ્યયનનો ત્રીજો ઉદ્દેશ

બીજો ઉદ્દેશ કહેવાઈ ગયેલ છે, હવે ત્રીજો ઉદ્દેશ કહેવામાં આવે છે. આ ઉદ્દેશનો પૂર્વ ઉદ્દેશ સાથે એવો સંબંધ છે—સાધુને અકલ્પનીય અશનાદિ ગ્રહણ કરવાનો એમાં નિષેધ કરવામાં આવેલ છે. આ ઉદ્દેશમાં એ બતાવવામાં આવશે કે પોતાને ઘેર આહારાદિ ગ્રહણ કરવા નિમિત્તે આવેલા મુનિને કોઈ ભદ્ર ગૃહસ્થ ઠંડીના કારણે થરથરતા જોઈ પૂછે કે “કામની ચેષ્ટાથી આ શરીર કંપી રહ્યું છે કે શું ?” ત્યારે સાધુનું એ કર્તવ્ય છે કે તેણે પેલા ગૃહસ્થની ખોટી શંકાનું નિવા-  
રણ કરવું અને કહેવું કે—“ઠંડીના કારણે માફે શરીર કંપી રહ્યું છે બીજું કોઈ કારણ નથી” આમાં સર્વ પ્રથમ મધ્યમ અવસ્થામાં ઠંડીથી કંપતા શરીરના પ્રસંગથી એ અવસ્થામાં સંયમના આચરણની યોગ્યતાને સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરે છે—“મજ્ઞિમેણ” ઇત્યાદિ.

મૂલમ્—મજ્ઞિમેણ વયસાવિ એગે સંબુજ્ઞમાણા સમુટ્ટિયા સુચ્ચા મેહાવી વયણં પંડિયાણં નિસામિયા સમિયાણં ધમ્મે આરિણ્હિં પવેહ્ણ, તે અણવકંઠમાણા અણહ્વાણમાણા અપરિગ્ગ-  
હેમાણા નો પરિગ્ગહાવંતિ સવ્વાવંતિ ચ ણં લોગંસિ વિહાય દંડં પાણેહિં પાવં કમ્મં અકુવ્વમાણે એસમહં અગંથે વિયાહિણ, ઓણ જુહમસ્સ ચેયન્ને ઉવવાયં ચવણં ચ નચ્ચા ॥ સૂ. ૧ ॥

છાયા—મધ્યમેન વયસાપ્યેકે સંબુદ્ધચમાનાઃ સમુત્થિતાઃ, શ્રુત્વા મેધાવી વચનં પण्डितानां निश्चय समतया धर्म आर्यैः प्रवेदितः, तेऽनभिकाङ्क्षन्तः अनतिपा-  
तयन्तोऽपरिगृह्यन्तः नो परिग्रहवन्तः सर्वस्मिन्नाप च खलु लोके विहाय दण्डं प्रा-  
णिषु पापं कर्माङ्कुर्वाणः एष महान् अग्रन्थो व्याख्यातः, ओजो द्युतिमतः खेदज्ञः  
उपपातं च्यवनं च ज्ञात्वा ॥ सू. ૧ ॥

ટીકા—‘મધ્યમેને’—ત્યાદિ, મધ્યમેન વયસા=યૌવન—વાર્ધક્યાતિરિક્તેન તપઃ  
સંયમાચરણયોગ્યેનાવસ્થાવિશેષેણ સંબુદ્ધચમાનાઃ=સંયમાચરણાય બોધં પ્રાપ્તા એકે-  
કેચન સમુત્થિતાઃ=ગૃહીતપ્રવ્રજ્યાઃ મુનયો ભવન્તિ । અત્ર પ્રથમ—તૃતીયાવસ્થાદ્વયં  
વિહાય મધ્યમગ્રહણાત્પ્રાયશસ્તસ્મિન્ વયસિ નિવૃત્તકામાભિલાષા નિર્વિઘ્નં રત્નત્રયા-  
રાધને શક્તિસમ્પન્ના ભવન્તીતિ ઘોષિતમ્ ।

યૌવન એવં વૃદ્ધ અવસ્થાસે ભિન્ન અવસ્થાવિશેષકા નામ મધ્યમ  
અવસ્થાહૈ । यह अवस्था ही प्रधानतया तप और संयमके योग्य मानी गई  
है । इस अवस्थासे संयमके आचरणके लिये बोधको प्राप्त हुआ कोई २  
मनुष्य दीक्षा लेकर मुनि हो जाते हैं । सूत्रमें प्रथम और तृतीय, इन  
दोनों अवस्थाओंको छोड़कर जो मध्यम अवस्थाका ग्रहण किया है उससे  
यह बात मालूम होती है कि प्रायः कर इस अवस्थामें कामकी अभि-  
लाषासे निवृत्त हो कर प्राणी निर्विघ्न रूपसे रत्नत्रयकी आराधना करने  
में शक्तिशाली होते हैं ।

યૌવન અને વૃદ્ધ અવસ્થાથી વચ્ચેની અવસ્થાનું નામ મધ્યમ અવસ્થા  
છે, એ અવસ્થા જ ખાસ કરી તપ અને સંયમ માટે યોગ્ય માનવામાં આવેલ  
છે; એ અવસ્થામાં સંયમના આચરણ માટે બોધને પ્રાપ્ત થયેલ કોઈ કોઈ મનુષ્ય  
દીક્ષા લઈ મુનિ બને છે. સૂત્રમાં પ્રથમ અને ત્રીજી, આ બન્ને અવસ્થાઓને  
છોડી જે મધ્યમ અવસ્થા નક્કી કરવામાં આવી છે આથી એ વાત માલુમ પડે  
છે કે ખાસ કરી એ અવસ્થામાં કામની અભિલાષાથી નિવૃત્ત બની પ્રાણી  
નિર્વિઘ્ન રૂપથી રત્નત્રયની આરાધના કરવામાં શક્તિશાળી હોય છે.

અત્રાયં વિશેષઃ-ઇહ સંબુદ્ધચમાનાઃ-સ્વયંબુદ્ધાઃ પ્રત્યેકબુદ્ધાઃ બુદ્ધબોધિતાશ્ચેતિ ત્રિવિધાઃ સન્તિ, તેષુ બુદ્ધબોધિતાનામેવાત્રાધિકારોઽસ્તિ, તમેવાવલમ્બ્ય દર્શયતિ- 'શ્રુત્વે' -તિ-મેધાવી-રત્નત્રયારાધનફલાભિન્નઃ પण्डितानां=તીર્થઙ્કર-ગણધરાદીનાં વચનમ્ ઇષ્ટાનિષ્ટપ્રાપ્તિપરિહારપ્રતિપાદકમાગમં શ્રુત્વા=સમાકર્ણ્ય તતો નિશમ્ય=હૃદયેઽ-વધાર્ય ચ સમતામાશ્રયેત્ । યતો ધર્મઃ=શ્રુત-ચારિત્રલક્ષણઃ સમતયા=સર્વપ્રાણિષુ સમભાવેન આર્યૈઃ=તીર્થઙ્કર-ગણધરૈઃ પ્રવેદિતઃ=દ્વાદશવિધપરિષદિ પ્રરૂપિતઃ । તેષા-મેવ કર્તવ્યં નિર્દિશતિ-'તે' ઇત્યાદિના, તે=સંબુદ્ધ્યમાનાઃ સમુદ્યતાઃ સન્તઃ અનવકાઙ્ક્ષન્તઃ=શબ્દાદિવિષયમનિચ્છન્તઃ અનતિપાતયન્તઃ=પ્રાણિપ્રાણવ્યપરોપણમકુ-

यहां इतना विशेष है-संबुद्ध्यमान जीव ती प्रकारके हैं-१ स्वयंबुद्ध, २ प्रत्येकबुद्ध, और ३ बुद्धबोधित । इनमें जो बुद्धबोधित हैं उनका ही यहां अधिकार है, अतः उसी अधिकारको ले कर कहते हैं "श्रुत्वा" इत्यादि, रत्नत्रयकी आराधनाजन्य फलका ज्ञाता वह मेधावी-तीर्थङ्कर और गणधरादिकोंके इष्ट और अनिष्टकी प्राप्ति और परिहारके प्रतिपादक आगमस्वरूप वचन सुन कर, और उन्हें हृदयमें धारण कर समस्त जीवोंमें समताभाव धारण करे । क्यों कि श्रुतचारित्रलक्षणरूप ही धर्म है और यह समस्त जीवोंमें समभावरूपसे रहने से ही प्राप्त होता है, ऐसा तीर्थङ्कर और गणधरादि देवोंने बारह प्रकारकी सभामें कहा है । बुद्धबोधितों के कर्तव्योंको दिखलानेके निमित्त सूत्रकार 'ते अणवकंखमाणा' इस सूत्रांशका कथन करते हैं-ये बुद्धबोधित जीव प्रव्रज्या धारण करनेके लिये उद्यत होते हुए शब्दादिक विषयोंकी

આમાં એટલું વિશેષ છે-સંબુદ્ધ્યમાન જીવ ત્રણ પ્રકારના છે. ૧ સ્વયં બુદ્ધ, ૨ પ્રત્યેકબુદ્ધ, ૩ બુદ્ધબોધિત. આમાં જે બુદ્ધબોધિત છે એનોજ અહિં અધિકાર છે. આથી એ અધિકારને લઈ સૂત્રકાર કહે છે-"શ્રુત્વા" ઇત્યાદિ. રત્નત્રયની આરાધનાજન્ય ફળના બાણનાર એ મેધાવી-તીર્થંકર-અને ગણધરાદિકોનાં ઇષ્ટ અને અનિષ્ટની પ્રાપ્તિ અને પરિહારના પ્રતિપાદક આગમસ્વરૂપ વચન સાંભળી અને તેને હૃદયમાં ધારણ કરી સમસ્ત જીવોમાં સમતાભાવ ધારણ કરે. કેમ કે શ્રુતચારિત્રલક્ષણરૂપ જ ધર્મ છે, અને તે સમસ્ત જીવોમાં સમભાવરૂપથી રહેવાથી પ્રાપ્ત થાય છે. એવું તીર્થંકર અને ગણધર આદિ દેવોએ બાર પ્રકારની સભામાં કહ્યું છે. બુદ્ધબોધિતોનાં કર્તવ્ય બતાવવા માટે સૂત્રકાર "તે અણવકંખમાણા" આ સૂત્રાંશથી કથન કરે છે-આ બુદ્ધબોધિત જીવ પ્રવ્રજ્યા ધારણ કરવા માટે ઉદ્યમી બનીને શબ્દાદિક વિષયોની આહુનાથી રહિત બનીને



ર્વાણાઃ, અપરિગ્રહન્તઃ=પરિગ્રહમકુર્વાણાઃ, અત્ર પ્રથમચરમયોર્ગ્રહણે મધ્યવર્તિનાં ત્રયાણાં મૃષાવાદાદીનામપિ ગ્રહણં, તેન 'મૃષાવાદમકુર્વન્ત' ઇત્યાદિકં વાચ્યમ્, સર્વસ્મિન્નપિ લોકે, અત્ર 'ચકારઃ' સમુચ્ચાયકઃ સ ચ ' નો પરિગ્રહવન્ત' ઇત્યનેન સમ્બધ્યતે, 'સ્વલુ' વાક્યાલક્ષ્ણે ' નો પરિગ્રહવન્તઃ=નિષ્પરિગ્રહાશ્ચ ભવન્તિ, તે કુત્રાપિ પરિગ્રહદોષૈર્ન લિપ્યન્તે ઇત્યર્થઃ । અપિ ચ-સ એવ પ્રાણેષુ=પ્રાણિષુ દણ્ડં= પરિતાપકરં મનોવાક્યાવ્યાપારં વિહાય=ત્યક્ત્વા પાપં=પાપજનકં કર્મ પ્રાણાતિપા-તાદિકમષ્ટાદશવિધમ્ અકુર્વાણઃ=અનનુતિષ્ઠન્ એષ મહાન્=લઘુકર્મા ' અગ્રન્થઃ ' ન વિદ્યતે ગ્રન્થો બાહ્યો ધન-ધાન્યાદિરાભ્યન્તરઃ કષાયાદિશ્ચ યસ્ય સોઽગ્રન્થઃ=સર્વતઃ પરિગ્રહવર્જિતઃ વ્યાખ્યાતઃ=તીર્થકૃદ્ધિઃ પ્રરૂપિતઃ ।

કિં ચ સ ઓજઃ=एको रागद्वेषवर्जित इत्यर्थः, યુતિમતઃ=मोक्षस्य तत्साधनस्य चाहनासे रहित होकर प्राणियोंके प्राणोंके व्यपरोपण कार्यसे सर्वथा दूर रहते हैं और परिग्रहसे अलग होकर समस्त लोकमें कहीं भी परिग्रहके दोषसे लिप्त नहीं बनते हैं । यहां પ્રથમ ઓર અંતિમ પાપસે ડાઁની નિવૃત્તિ પ્રકટ કરનેસે મધ્યવર્તી મૃષાવાદ આદિ પાપોસે ડી વે રહિત હોતે હૈ । યહ વાત ડી સ્વયં સમજ્ઞ લેની ચાહિયે । વહ બુદ્ધબોધિત સાધુ હી પ્રાણિયોંકે વિષયમેં પરિતાપ ઉપજાનેવાલે મન, વચન, કાયાકે વ્યાપારકા પરિત્યાગ કર પાપજનક પ્રાણાતિપાતાદિકરૂપ પાપકર્મકો નહીં કરતા હુઆ લઘુકર્મા બનતા હૈ, એવં ધન ધાન્યાદિક બાહ્ય પરિગ્રહ સે ઓર કષાયાદિરૂપ આભ્યન્તર પરિગ્રહસે રહિત હોનેસે નિષ્પરિગ્રહી-પરિગ્રહસે રહિત-તીર્થકરોંદ્વારા કહા ગયા હૈ ।

તથા—યહ બુદ્ધબોધિત મુનિ ' ઓજો ' અકેલા અર્થાત્ રાગદ્વેષરહિત

પ્રાણીઓના પ્રાણોના નાશના કારણથી સદા દૂર રહે છે, અને પરિગ્રહથી અલગ બની સમસ્ત લોકમાં કોઈ પણ સ્થળે પરિગ્રહના દોષથી લિપ્ત બનતા નથી. અહિં પ્રથમ અને અંતિમ પાપથી તેની નિવૃત્તિ પ્રગટ કરવાથી મધ્યવર્તી મૃષા-વાદ આદિ પાપોથી પણ તે રહિત બને છે. આ વાત પણ પોતે સમજી લેવી જોઈએ. તે બુદ્ધબોધિત સાધુ જ પ્રાણીઓના વિષે પરિતાપ ઉપજાવવાવાળા મન, વચન અને કાયાના વ્યાપારનો પરિત્યાગ કરી પાપજનક પ્રાણાતિપાતાદિકરૂપ પાપ કર્મો નહિ કરતાં લઘુકર્મો બને છે, અને ધનધાન્યાદિક બાહ્ય પરિગ્રહથી અને કષાયાદિરૂપ આભ્યન્તર પરિગ્રહથી રહિત હોવાથી નિષ્પરિગ્રહી-પરિગ્રહથી રહિત તીર્થકરોંદ્વારા કહેવામાં આવેલ છે.

તથા—આ બુદ્ધબોધિત મુનિ 'ઓજ'—એકલો—રાગદ્વેષરહિત હોઈ 'યુતિમતઃ'

વાં શ્વેદજ્ઞઃ, શ્વેદજ્ઞશ્વેદોઽત્ર સ્વરૂપાર્થપ્રતિબોધકસ્તેન મોક્ષ-સંયમયોઃ સ્વરૂપપરિ-  
જ્ઞાતેત્યર્થઃ । દેવલોકેઽપિ ઉપપાતં ચ્યવનં ચકારાન્નર-નરક-તિર્યગ્જન્મ-મરણાદિદુઃસ્વં  
જ્ઞાત્વા=બુદ્ધ્વા પાપકર્મ નૈવ કુર્યાત્ ॥ સૂ. ૧ ॥

હો ‘શ્રુતિમતઃ’-મોક્ષ ઓર ડસકે સાધન-સંયમ-કે ‘શ્વેદજ્ઞ’ સ્વરૂપકા  
પરિજ્ઞાતા હોતા હૈ, સંસારકે સાધનોંકા નહીં, કારણ કિ યહ ઇસ  
બાતકો અચ્છી તરહ જાન ચુકા હૈ કિ સંસારમેં ઇસ જીવકો કબી સચ્ચી  
સુખશાંતિ નહીં મિલ સકતી હૈ, દેવગતિમેં બી જીવકો જન્મ ઓર મરણ  
કરના પડતા હૈ, મનુષ્યગતિ, નરકગતિ ઓર તિર્યગ્ગતિમેં બી યહી પરિ-  
સ્થિતિ હૈ । યહાં પર બી જીવ જન્મ ઓર મરણકે દુઃસ્વોંસે રહિત નહીં હૈ,  
ઇસલિયે ઇન સમસ્ત સાંસારિક દુઃસ્વોંસે છુડાનેવાલા યદિ કોઈ હૈ તો,  
વહ ઇનકા અભાવસ્વરૂપ ઇક મોક્ષ હૈ, ઓર મોક્ષકી પ્રાપ્તિકા કારણ  
ઇક સંયમ હૈ અતઃ યહ મોક્ષ ઓર સંયમકે સ્વરૂપકા જ્ઞાતા બનકર ડસી  
ઓર અપની પ્રવૃત્તિકો લગાતા રહતા હૈ ઓર પાપકર્મોંસે સર્વથા જુદા  
રહતા હૈ, ઇસી આશયકો સૂચિત કરનેકે લિયે “ઓજો શ્રુતિમતઃ શ્વેદજ્ઞઃ  
ઉપપાતં ચ્યવનં ચ જ્ઞાત્વા ” યહ કહા હૈ ।

શ્વેદજ્ઞ—શ્વેદ શબ્દકા અર્થ સ્વરૂપ હૈ, ડસકે જ્ઞાતાકા નામ શ્વેદજ્ઞ  
હૈ । મધ્યમ અવસ્થામેં સંયમકે આચરણકે લિયે બોધકો પ્રાપ્ત હુઅ કોઈ ૨  
જીવ દીક્ષા લે કર મુનિ હો જાતે હૈ । તીર્થંકરાદિપ્રતિપાદિત વચન-

—મોક્ષ અથવા તેના સાધન-સંયમ-ના ‘શ્વેદજ્ઞ’ સ્વરૂપના બાણકાર હોય છે-  
સંસારના સાધનોના નહિ, કારણ કે એ આ વાતને સારી રીતે બાણી ચૂકેલ છે કે  
સંસારમાં આ જીવને કદી પણ સાચી સુખ શાંતિ મળી શકતી નથી.  
દેવગતિમાં પણ જીવને જન્મ અને મરણ કરવાં પડે છે. મનુષ્યગતિ,  
નરકગતિ, અને તિર્યગ્ગતિમાં પણ આવી જ પરિસ્થિતિ છે—ત્યાં પણ  
જીવ જન્મ અને મરણના દુઃખોથી રહિત નથી, માટે આવા સમસ્ત સાંસારિક  
દુઃખોથી છોડાવવાવાળા બે કોઈ હોય તો તે તેના અભાવસ્વરૂપ એક મોક્ષ જ છે,  
અને મોક્ષની પ્રાપ્તિ સંયમથી જ મેળવી શકાય છે. મોક્ષની પ્રાપ્તિનું કારણ એક  
સંયમ છે માટે મોક્ષ અને સંયમના સ્વરૂપના જ્ઞાતા બની તેના તરફ પોતાની  
પ્રવૃત્તિને લગાડે છે અને પાપ કર્મોથી સર્વથા જુદા રહે છે. આ આશયને સમ-  
ભાવવા માટે “ ઓજો શ્રુતિમતઃ શ્વેદજ્ઞઃ ઉપપાતં ચ્યવનં ચ જ્ઞાત્વા ” આ કહ્યું છે.  
શ્વેદજ્ઞ—એક શબ્દનો અર્થ આ સ્થળે સ્વરૂપ છે, તેના જ્ઞાતાનું નામ શ્વેદજ્ઞ છે.

મધ્યમ અવસ્થામાં સંયમના આચરણ માટે પ્રાપ્ત થયેલ કોઈ કોઈ જીવ  
દીક્ષા લઈને મુનિ બની બાળ છે. તીર્થંકરાદિપ્રતિપાદિત વચનરૂપ આગમનું





મમઙ્ગુરાઃ=વિનશનશીલાઃ પ્રાણિનાં દેહાઃ=શરીરાણિ ભવન્તીતિ પશ્યત=યૂયં પ્રેક્ષ-  
ધ્વમ્, એકે=કેચિત્કાતરાઃ ક્ષુધયા પરિગ્ભાયમાનૈઃ સર્વેન્દ્રિયૈઃ કાતરભાવં ગચ્છન્તિ,  
इत्यपि पश्यतेति पूर्वेण सम्बन्धः । किन्तु तद्विपरीत ओजः=एकः राग-द्वेषवर्जितः  
परीषहोपसर्गसहनसमर्थः क्षुधादिपरीषहोपनिपातेऽपि महागिरिरिवाऽकम्प्यो दयां  
षड्जीवनिकायानुकम्पां दयते=परिपालयति ।

ક્ષુધાર્તશ્ચક્ષુષા રૂપાદિકં ન સમ્યક્ પશ્યતિ, કર્ણેન શબ્દં ન સમ્યક્ શૃણોતિ,  
રસનયા ન રસં સમ્યગાસ્વાદયતિ, નાઽપિ ગ્રાણેન ગન્ધં સમ્યગ્ જિઘ્રતિ, ત્વચા  
નાઽપિ શીતાદિકં સમ્યક્ સ્પૃશતિ, ક્ષુધા સર્વેન્દ્રિયાણાં શક્તિપ્રતિઘાતકારિણી  
ભવતીત્યાશયઃ ।

ક્ષુધારૂપ પરીષહ સે મ્લાન યા વિનષ્ટ હો જાતા હૈ, યહ બાત શિષ્યોં કો  
સમજાતે હૈ—“પશ્યત” આપ લોગ ઇસ બાત પર વિશ્વાસ રખો ।  
જબ યહ બાત હૈ તો કોઈ ૨ કાતર પ્રાણી ક્ષુધાવેદનીય સે દુઃખિત હુએ  
ઇન્દ્રિયોંદ્વારા કાતર ભાવકો ધારણ કરતે હૈ । યહ ભી બાત વિશ્વાસ કરને  
જૈસી હૈ, કિન્તુ જો રાગ-દ્વેષસે રહિત હોતે હૈ વે પરીષહ ઓર ઉપસર્ગોં  
કો સહનેમેં શક્તિશાલી હોતે હૈ—ક્ષુધાદિ પરીષહોં કે આ જાને પર ભી  
વે સુમેરુકી તરહ અકમ્પ્ય હોતે હૈ, ઓર ષડ્જીવનિકાય કી દયાકા  
પરિપાલન કરતે હૈ ।

જો કાતર હોતે હૈ વે જબ ક્ષુધાસે પીડિત હોતે હૈ તબ આંખોંસે  
રૂપાદિકકા અચ્છી તરહસે અવલોકન નહીં કર સકતે હૈ, કાનોંસે  
અચ્છી તરહ શબ્દ ભી નહીં સુન સકતે હૈ, જીભસે સુન્દર સુસ્વાદુ રસ  
તક કા ભી સ્વાદ નહીં લે સકતે હૈ, નાકસે સુન્દર ગંધ તક ભી નહીં

ક્ષુધાઽપ પરિષહથી. મ્લાન અને નિર્ગળ અને છે. આ વાત શિષ્યોને સમ-  
જાવે છે અને કહે છે—“પશ્યત” આપ લોક આ વાત ઉપર વિશ્વાસ રાખો.  
બ્યારે આ વાત છે તો કોઈ કોઈ કાયર પ્રાણી ભૂખના દુઃખથી દુઃખિત બની  
ઇન્દ્રિયોદ્વારા કાયરભાવ ધારણ કરે છે. આ વાત પણ વિશ્વાસ કરવા જેવી છે, પરંતુ  
જે રાગ દ્વેષથી રહિત છે તે પરિષહ અને ઉપસર્ગો સહેવામાં શક્તિશાળી હોય છે—  
ક્ષુધાદિ પરિષહોના આવવાથી પણ તે સુમેરુની માફક અડગ રહે છે, અને ષ-  
ડ્જીવનિકાયની દયાનું પરિપાલન કરે છે.

જે કાયર હોય છે તે બ્યારે ભૂખથી પીડિત થાય છે ત્યારે આંખોથી  
રૂપાદિકનું પણ સારી રીતે અવલોકન કરી શકતા નથી, કાનોથી સારી રીતે શબ્દ  
પણ સાંભળી શકતા નથી. જીભથી સુંદર સુસ્વાદુ રસનો પણ સ્વાદ લઈ  
શકતા નથી, નાકથી સુંદર ગંધ પણ સુંઘી શકતા નથી અને સ્પર્શ ઇન્દ્રિયથી

નનુ કેવલિભિનાનાં દેહા આહારોપચયા ભવન્તીતિ તદર્થં તેઽશ્નન્તિ, દયાદીનિ ચ પાલયન્તીતિ, કેવલિનો હિ નિયતં સેત્સ્યન્તિ તર્હિં કિમર્થં તે દેહં ધારયન્તિ? કિમર્થં ચ શુદ્ધતે? इति चेत् . न, केवलिनामपि वेदनीयादिकर्मचतुष्टयसद्भावेन तत्क्ष-  
पणार्थं शरीरधारणस्याऽऽहारस्य चाऽऽवश्यकत्वात्, अन्यथा तेषां तदानीमपि वेद-  
नीयादिकर्मसत्त्वात्क्षुधापरीषहाभिभवस्य दुर्वारत्वं स्यात्, ततश्च केवलिनोऽपि  
कवलाहारं कुर्वन्ति, तं विनौदारिकशरीरस्थितेरसम्भवात्, शरीरस्थितिं विना शेष-  
कर्मचतुष्टयक्षपणासम्भवाच्चावश्यक एव केवलिनामपि कवलाहार इत्यलम् ॥सू० २॥

પડ્જીવનિકાયરક્ષકઃ. કીદૃશો ભવતીતિ દર્શયતિ-‘જે સંનિહાણસત્થસ્સ’ ઇત્યાદિ ।

સૂંઘ સકતે હૈં ઔર સ્પર્શન ઇન્દ્રિયસે શીતાદિકકે જ્ઞાનસે મી અપરિચિત રહતે હૈં, તાત્પર્ય-શુધા સમસ્ત ઇન્દ્રિયોંકી શક્તિકા પ્રતિઘાત કરનેવાલી હોતી હૈ ।

કેવલિયોંકે મી વેદનીયાદિક ચાર અઘાતિયા કર્મોંકા સદ્ભાવ હૈ, અતઃ ઉન કર્મોંકો નાશ કરનેકે લિયે ઉન્હેં મી શરીરરક્ષાકી આવશ્ય-  
કતા હૈ, ઔર શરીરરક્ષાકે નિમિત્ત કવલાહાર કી જરૂરત હૈ, કવલાહાર  
મી ઇસલિયે વહાં હોતા હૈ કિ વહ વેદનીય કર્મકા કાર્ય હૈ, યદિ વે કવ-  
લાહાર ન કરેં તો વેદનીય કર્મકે સદ્ભાવસે તજ્જન્ય-શુધાપરીષદ્જન્ય  
કષ્ટકા ઉન્હેં સામના કરના પડે । ઇસ લિયે કેવલી મી કવલાહાર કરતે  
હૈં, ઇસકે વિના ઔદારિક શરીરકી સ્થિતિ નહીં રહ સકતી, શરીરસ્થિતિ  
રહે વિના શેષ કર્મચતુષ્ટયકા વિનાશ નહીં હો સકતા હૈ, અતઃ કેવ-  
લિયોંકે મી કવલાહાર હૈ ॥ સૂ. ૦૨ ॥

પડ્જીવનિકાયકા રક્ષક વહ કૈસા હોતા હૈ ? સો કહતે હૈં—  
“જે સંનિહાણસત્થસ્સ ” ઇત્યાદિ ।

ઠંડી આદિના જ્ઞાનથી પણ અપરિચિત રહે છે. તાત્પર્ય-ભૂખ સમસ્ત ઇન્દ્રિયોંની શક્તિનો પ્રતિઘાત કરનાર છે.

કેવલિયોને પણ વેદનીય આદિ ચાર અઘાતિયા કર્મોનો સદ્ભાવ છે માટે તેવા કર્મોનો નાશ કરવા તેને પણ શરીરરક્ષાની આવશ્યકતા છે, અને શરીરરક્ષાના નિમિત્ત કવલ આહારની જરૂરત છે. કવલ આહાર પણ એ માટે ત્યાં હોય છે કે તે વેદનીય કર્મનું કાર્ય છે. જો તે કવલ આહાર ન કરે તો વેદનીય કર્મના સદ્ભાવથી તજ્જન્ય-શુધાપરીષદ્જન્ય કષ્ટનો તેને સામનો કરવો પડે, માટે કેવલી પણ કવલ આહાર કરે છે. તેના વિના ઔદારિક શરીરની સ્થિતિ રહી શકતી નથી. શરીરસ્થિતિ રહ્યા વિના બાકી રહેલા ચાર કર્મોનો વિનાશ થઈ શકતો નથી, માટે કેવલિયોને પણ કવલ આહાર છે. (સૂ. ૦૩)

પરજીવનિકાયના રક્ષક કેવા હોય છે? તે કહે છે-“જે સંનિહાણસત્થસ્સ” ઇત્યાદિ.

મૂલમ્—જે સંનિહાણસત્થસ્સ ચેયન્ને સે મિક્કવૂ કાલન્ને  
બલન્ને માયન્ને ચ્વણન્ને વિણયન્ને સમયન્ને પરિગ્ગહં અમમા-  
યમાણે કાલેણુટ્ટાઈ અપહિન્ને દુહ્હઓ છિત્તા નિયાઈ ॥ સૂ. ૩॥

છાયા—યઃ સન્નિધાનશાસ્ત્રસ્ય ચેદજ્ઞઃ મિશ્નુઃ કાલજ્ઞો બલજ્ઞો માત્રાજ્ઞઃ ક્ષણજ્ઞો  
વિનયજ્ઞઃ સમયજ્ઞઃ પરિગ્રહમમાયમાનઃ કાલેડુનુષ્ઠાયાં અપ્રતિજ્ઞો દ્વિધા છિત્ત્વા નિયાતિ।

ટીકા—‘યઃ’ इत्यादि, यः=पूर्वोक्तो दयापरिपालकः सन्निधानशास्त्रस्य-  
सन्निधीयते=स्थाप्यते नरकनिगोदादिषु जीवो येन तत् सन्निधानं=ज्ञानावरणीयादिकं  
कर्म, तस्य शास्त्रं=तत्स्वरूपप्रतिपादक आगमः=सन्निधानशास्त्रं, तस्य। यद्वा—‘सन्नि-  
धानशास्त्रस्य’ इति छाया, तेन सन्निधानस्य कर्मणः शस्त्रवच्छेदकत्वेन शस्त्रं संयम-  
स्तस्य चेदज्ञः=कुशलो भवति स मिक्षुः कालज्ञो बलज्ञो मात्राज्ञः क्षणज्ञो विनयज्ञः  
समयज्ञः परिग्रहममायमानः कालेऽनुष्ठायी अप्रतिज्ञो द्विधा रागं द्वेषं च छित्त्वा  
नियाति=मोक्षं प्राप्नोति। एतेषां व्याख्या द्वितीयाध्ययनस्य पञ्चमोद्देशे प्रोक्तेति ॥

સંનિધાનશાસ્ત્રકા અર્થ આગમ હૈ, વહ્ હસ પ્રકારસે-નરક ઔર  
નિગોદાદિકોં મેં જીવ જિસકે દ્વારા સ્થાપિત કિયા જાતા હૈ વહ્ સન્નિધાન  
-જ્ઞાનાવરણીયાદિ કર્મ-હૈ, ઇન્કે સ્વરૂપકા પ્રતિપાદક જો શાસ્ત્ર  
હૈ વહ્ સન્નિધાનશાસ્ત્ર-આગમ હૈ। અથવા—“સન્નિધાનશાસ્ત્ર” યહ્ ભી  
“સંનિહાણસત્થસ્સ” કી છાયા હો સકતી હૈ। ઇસકા અર્થ સંયમ હૈ  
સંનિધાનકા અર્થ કર્મ, ઔર ડસ કર્મકા શાસ્ત્રકી તરહ છેદક હોનેસે  
શાસ્ત્ર સંયમ હૈ। આગમકા અથવા સંયમકા જો જ્ઞાતા-ડસ વિષયમેં જો  
કુશલ-હૈ વહ્ કાલજ્ઞ, બલજ્ઞ, માત્રજ્ઞ, ક્ષણજ્ઞ, વિનયજ્ઞ, સમયજ્ઞ પરિગ્ર-  
હત્યાગી, કાલોકાલ સંયમ ક્રિયાકા આરાધક, અપ્રતિજ્ઞ મુનિ રાગ ઔર  
દ્વેષકા વિનાશ કર મોક્ષકો પ્રાપ્ત કરતા હૈ। ઇન સમસ્ત પદોં કી

સંનિધાનશાસ્ત્રનો અર્થ આગમ છે. તે આ પ્રકારથી-નરક અને નિગોદા-  
દિકોમાં જીવ જેના દ્વારા સ્થાપિત કરાય છે તે સન્નિધાન-જ્ઞાનાવરણીયાદિ  
કર્મ છે. તેના સ્વરૂપનું પ્રતિપાદક જે શાસ્ત્ર છે તે સન્નિધાનશાસ્ત્ર-  
આગમ છે. અથવા—“સન્નિધાનશાસ્ત્રસ્ય” આ પણ “સંનિહાણસત્થસ્સ”ની  
છાયા અને છે, આનો અર્થ સંયમ છે. સન્નિધાનનો અર્થ કર્મ-અને એ  
કર્મનું શાસ્ત્રની રીતે છેદન કરનાર હોવાથી શાસ્ત્ર સંયમ છે. આગમના અથવા  
સંયમના જે જ્ઞાતા-આ વિષયમાં જે કુશળ-છે તે કાલજ્ઞ, બલજ્ઞ, માત્રજ્ઞ, ક્ષણજ્ઞ,  
વિનયજ્ઞ, સમયજ્ઞ, પરિગ્રહત્યાગી, કાલોકાલ સંયમ ક્રિયાનો આરાધક, અપ્રતિજ્ઞ  
મુનિ રાગ અને દ્વેષનો વિનાશ કરી મોક્ષને પ્રાપ્ત કરે છે. આ સમસ્ત પદોની



સંયમાચરણાય પ્રવ્રજતો યદ્ભવતિ તદ્દર્શયતિ—‘ તં ભિક્ષું ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—તં ભિક્ષું સીયફાસપરિવેવમાણગાયં ઉવસંકમિત્તા ગાહાવર્ઙ્ બૂયા—આડસંતો ! સમણા ! નો ખલુ તં ગામધમ્મા ઉવ્વાહંતિ ?! આડસંતો ! ગાહાવર્ઙ્ ! નો ખલુ મમ ગામધમ્મા ઉવ્વાહંતિ, સીયફાસં ચ નો ખલુ અહં સંચાણમિ અહિયાસિત્તણ, નો ખલુ મે કપ્પહ અગણિકાયં ઉજ્જાલિત્તણ વા પજ્જાલિત્તણ વા, કાયં આયાવિત્તણ વા પયાવિત્તણ વા, અન્નેસિં વા વયણાઓ સિયા સે એવં વયંતસ્સ પરો અગણિકાયં ઉજ્જાલિત્તા પજ્જાલિત્તા કાયં આયાવિજ્જ વા પયાવિજ્જ વા તં ચ ભિક્ષુ પઢિલેહાણ આગમિત્તા આણવિજ્જા અણાસેવણયાણ—ત્તિવેમિ ॥ સૂ. ૪ ॥

છાયા—તં ભિક્ષું શીતસ્પર્શપરિવેપમાણગાત્રમુપસંક્રમ્ય ગાથાપતિર્બ્રૂયાત્—આયુષ્મન્ ! શ્રમણ ! ન ખલુ તે ગ્રામધર્મા ઉદ્વાધન્તે ? । આયુષ્મન્ ! ગાથાપતે ! નો ખલુ મમ ગ્રામધર્મા ઉદ્વાધન્તે શીતસ્પર્શં ચ ન ખલ્વહં શક્નોમ્યધ્યાસિતું, ન ખલુ મે કલ્પતેઽગ્નિકાયમુજ્જ્વાલયિતું વા પ્રજ્વાલયિતું વા કાયમાતાપયિતું વા પ્રતાપયિતું વા; અન્યેષાં વા વચનાત્ સ્યાત્ તસ્ય એવં વદતઃ પરોઽગ્નિકાયમુજ્જ્વાલ્ય પ્રજ્વાલ્ય કાયમાતાપયેદ્વા, પ્રતાપયેદ્વા, તદ્ભિક્ષુઃ પ્રત્યુપેક્ષ્યાવગમ્યાઽઽજ્ઞાપયેદનાસેવનયેતિ બ્રૂવીમિ ॥ સૂ. ૪ ॥

ટીકા—‘ તં ભિક્ષુ ’—મિત્યાદિ, ગાથાપતિઃ=ધન-ધાન્ય-હિરણ્ય-સુવર્ણાદિસમૃદ્ધિમાન્ કસ્તૂરીચન્દનાદિપરિલિપ્તગાત્રો રમણીયવપુઃ કમનીયરમણીગણસમન્વિતો વ્યાખ્યા દ્વિતીય અધ્યયનકે પાંચવે ઉદ્દેશમેં કહ દી ગઈ હૈ ॥ સૂ. ૩ ॥

સંયમકે આચરણકે લિયે દીક્ષિત હુણ મુનિ કે જો હોતા હૈ ઉસે સૂત્રકાર કહતે હૈ—‘ તં ભિક્ષું ’ ઇત્યાદિ ।

જો ધન, ધાન્ય, હિરણ્ય, સુવર્ણ આદિ સમૃદ્ધિસે યુક્ત હૈ, કસ્તૂરી, ચન્દન આદિસે જિસકા શરીર લિપ્ત હો રહા હૈ, દેહ

વ્યાખ્યા બીજા અધ્યયનના પાંચમા ઉદ્દેશમાં કહેવાયેલ છે. (સૂ. ૩)

સંયમના આચરણ માટે દીક્ષિત બનેલ જે મુનિ હોય છે એને સૂત્રકાર કહે છે—‘ તં ભિક્ષું ’ ઇત્યાદિ.

જે ધન, ધાન્ય, હિરણ્ય, સુવર્ણ, આદિ સમૃદ્ધિથી યુક્ત છે, કસ્તૂરી, ચન્દન, આદિથી જેનું શરીર લિપ્ત થઈ રહેલ છે, દેહ પણ જેની

ગૃહસ્થઃ શીતસ્પર્શપરિવેપમાનગાત્રં=હેમન્તર્તૌ શીતસ્પર્શેન પરિવેપમાનં=કમ્પમાનં  
 ગાત્રં=શરીરં यस્ય સ શીતસ્પર્શપરિવેપમાનગાત્રસ્તમ્ અલ્પોપધિકત્વેન શીતવાત-  
 પરિકમ્પિતશરીરં તમ્=અન્તપ્રાન્તાશિનં તેજોરહિતમકિશ્ચનં મિશ્રું=મધ્યમાવસ્થાપન્નં  
 મુનિમ્=ઉપસંક્રમ્ય=તત્સમીપમાગત્ય 'કિમયં મદીયવનિતારૂપ-લાવણ્ય-વિલોકનેન  
 શૃંગારચેષ્ટાભિભૂતતાત્ પરિકમ્પિતગાત્રોઽથવા શીતસ્પર્શાદિના વા? इति सन्देहमुपगम्य  
 च तं मिश्रुं ब्रूयात्=वक्ष्यमाणं वाक्यं कथयेत् पृच्छेदित्यर्थः, तदेवाह—' भो आयु-  
 ष्मन् ! श्रमण ! किं ग्रामधर्माः=शृङ्गारादिमदनचेष्टाविशेषा विषयास्त्वां 'नो  
 उद्वाधन्ते =न पीडयन्ति ? तादृशं कृतप्रश्नमसत्याशङ्कं गृहपतिमालक्ष्य स मिश्रु-  
 स्तच्छङ्कामपनेतुं ब्रवीति-' आयुष्म '—न्नित्यादि, हे आयुष्मन् ! ग्रामधर्माः मां नो

भी जिसकी बहुत सुन्दर है, घरमें जिसके मनोहर अंगवाली  
 नारियोंका समूह है, ऐसे किसी गृहस्थके घर पर मध्यम अवस्थावाले,  
 अल्प उपधिके धारी मुनि आहार लेनेके निमित्त आवे तब उन्हें  
 अधिक ठण्डसे कंपित होते देखकर वह गृहस्थ उन अन्तप्रान्तभोजी  
 एवं तेजरहित अकिंचन मुनिके प्रति सन्देहयुक्त विचार करता है कि—  
 “यह मेरे घरकी इन वनिताओंके सुन्दर रूप और लावण्यको निहार कर  
 शृङ्गार की चेष्टासे युक्त बन कम्पितशरीरवाला हुआ है? या शीतके स्पर्श  
 से इसका शरीर कम्प रहा है?” ऐसा सोच कर वह मुनिसे पूछता है—  
 भो मुने! आपका शरीर हमारी स्त्रियोंको देखकर कम्प रहा है या  
 अन्य किसी कारणसे?, इस प्रकार असत्य आशङ्कासे युक्त उस पूछने-  
 वाले गृहस्थ के प्रश्नको सुनकर वह मिश्रु उसकी आशङ्काके परिहार  
 करने हेतु इस प्रकार कहे—भो आयुष्मन् ! ग्रामधर्म-काम-की चेष्टा

ખુબ સુંદર છે, ઘરમાં મનોહર અંગવાળી સ્ત્રીઓનો સમૂહ છે, એવા કોઈ ગૃહ-  
 સ્થના ઘેર મધ્યમ અવસ્થાવાળા, અલ્પ ઉપધિના ધારક મુનિ આહાર લેવા માટે  
 આવે ત્યારે તેને અધિક ઠંડીથી કાંપતાં જોઈ તે ગૃહસ્થ અન્તપ્રાન્તભોજી એવં  
 તેજરહિત અકિચન મુનિના તરફ સંદેહયુક્ત વિચાર કરે છે કે—“ આ મારા  
 ઘરની સ્ત્રીઓના સુંદર રૂપ અને લાવણ્યને જોઈ શૃંગારની ચેષ્ટાથી અકળાઈ  
 કાંપી રહેલ છે? અથવા ઠંડીના સ્પર્શથી આનું શરીર કાંપી રહ્યું છે?” એવું વિચારી  
 એ મુનિને પૂછે છે—હે મુનિ ! તમારું શરીર મારા ઘરની સ્ત્રીઓને જોઈ કાંપી  
 રહ્યું છે કે બીજા કોઈ કારણથી ?, આ પ્રકારની અસત્ય આશંકાથી પૂછવામાં  
 આવેલા ગૃહસ્થના એ પ્રશ્નને સાંભળી ભિક્ષુ એની આશંકાનું નિવારણ કર-  
 વાના હેતુથી કહે છે કે—હે આયુષ્યમન્ ! ગ્રામધર્મ-કામ-ની ચેષ્ટાસ્વરૂપ શૃંગા-

खलु=नैव उद्वाधन्ते=न मां पीडयन्ति किन्तु अहं शरीरदौर्बल्येनाल्पोपधिकत्वेन च शीतस्पर्श=तीव्रतरशीतवाधाम् अध्यासितुम्=अधिसोढुं न शक्नोमि तेन मे गात्रं कम्पते न तु कामचेष्टयेति भावः । इति लब्धोत्तरो गृहपतिर्विनयभक्तिपरिपूरितान्तःकरणः सन् लज्जितः पुनः पृच्छति-प्रदीप्तं वह्निं संसेव्य शीतपीडां कथं भवान् नापनयति ? इति प्रश्ने सति मुनिरुत्तरमाह-‘ न खल्वि ’-त्यादि, अग्निकायम् उज्ज्वालयितुम्=ईषत् ज्वालयितुं प्रज्वालयितुं=प्रकर्षेण ज्वालयितुं कायं=स्वशरीरम्=आतापयितुम्=मनाक् तापयिम्=अधिकमातापयितुं प्रतापयितुं वा, अन्येषां=परेषां वा वचनात्=कथनादपि तद् मे=मम न कल्पते, अग्निकायारम्भे षड्जीवनिकायारम्भस्यावश्यम्भावाद्भगवदाज्ञाविराधनादोषापातात् ।

स्वरूप श्रृङ्गारादि विषयवाले विषय मुझे पीडित नहीं कर रहे हैं, किन्तु इस समय शीत अधिक पड़ रहा है, उपधि भी इतनी अधिक नहीं है कि जिससे मैं शीतका निवारण कर सकूँ, खैर-उपधि अल्प होने पर भी यदि शरीर सशक्त हो तो भी शीत बगैरह सहन किया जा सकता है परन्तु इस समय शरीर भी दुर्बल हो रहा है अतः शीतके कारण मेरा शरीर कंप रहा है-कामचेष्टासे नहीं । इस प्रकार मुनिसे जब वह अपनी आशङ्काका उत्तर ठीक २ पालेता है तब वह लज्जित अवश्य होता है, साथमें उसके हृदयमें विवेकका सागरसा उमड़ आनेसे वह उस मुनिके प्रति भक्ति और विनयके भारसे भरित अंतःकरणवाला

शक्ति विषयवाणा विषय मने पीडता नहीं परन्तु अत्यारे ठंडी अधिक प्रमाणमां होवाथी, तेम भारी पासे ओ ठंडीथी अथाव करी शके ते रीते वस्त्रादिक न होवाथी कांपी रह्यो छुं. वस्त्रादिक ओछा होवा छतां पणु ओ शरीर सशक्त होय तो ठंडी सहन करवामां हरकत न पडे, आ समये माई शरीर पणु दुर्बल छे, आथी ठंडीना करणे माई शरीर कांपी रह्युं छे-कामचेष्टाथी नही. आ प्रकारे मुनिथी अत्यारे ते पोतानी आशंकाको उत्तर ठीक ठीक ओछात्री छे छे अत्यारे ते लज्जित अने छे, साथमां तेनां हृदयमां विवेकको उलरो आववाथी ते मुनि प्रत्ये सक्ति अने विनयना आवथी लरेला अंतःकरणवाणो अथ



एवं वदतो मुनेरग्निकायप्रज्वालनादेः परिहारे कृतेऽपि स्यात्=कदाचिद् यदि सः=पूर्वोक्तोऽन्यो वा गृहस्थः अग्निकायं=वह्निं तदर्थमुज्ज्वालय प्रज्वालय च तस्य मुनेः कायं=शरीरम् आतापयेद्वा प्रतापयेद्वा तदा भिक्षुः=स मुनिः तत् सर्वं प्रत्युपेक्ष्य =सावद्याचरणतया विचार्य अवगम्य=ज्ञात्वा वा तं गृहपतिम् अनासेवनतया=अकल्पनीयतया 'अग्निसेवनं मम न कल्पते' इत्यनासेवनपरिज्ञया आज्ञापयेत्=प्रतिबोधयेत् । इति ब्रवीमि '-त्यस्यार्थस्तूक्त एव ॥ सू० ४ ॥

॥ अष्टमाध्ययनस्य तृतीय उद्देशः समाप्तः ॥ ८-३ ॥

હો કર વહ કહતા હૈ—મહારાજ ! જબ આપકી યહ હાલત હૈ તો ફિર આપ શીતકો અગ્નિદ્વારા ક્યોં નહીં દૂર કરતે હૈં ? ।  
इसके उत्तरमें मुनि इस प्रकार कहता है कि—अग्निकायको थोड़ा या अधिक जलानेका और उससे इस शरीरको थोड़ा या अधिक तपानेका मुनिकल्प नहीं है ।

ભાવાર્થ—અગ્નિકાયકે આરંભમેં ષડ્જીવનિકાયકી વિરાધના હોતી હૈ, ઇસ લિયે શાસ્ત્રમેં ઇસ પ્રકારકા આચાર મુનિકે લિયે નિષિદ્ધ હૈ, ક્યોં ન ભયઢૂરસે ભયઢૂર શીત પડે તો બી મુનિ ઇસ પ્રકારકા અગ્નિકા આરંભ નહીં કર સકતે । કિસીકી વિરાધના કર ઇસ પૌદ્ગલિક શરીરકો સુખિત કરના યહ મુનિયોંકા કર્તવ્ય નહીં હૈ । અગ્નિકાયકે આરંભમેં અગ્નિકાયિક જીવોંકી વિરાધનાકે સાથ ૨ ઇતરકાયિક જીવોંકી બી વિરા-

તે કહે છે—મહારાજ બ્યારે આપની આ હાલત છે તો પછી આપ ઠંડીને અગ્નિથી કેમ દૂર કરતા નથી ? તેના ઉત્તરમાં મુનિ કહે છે કે—અગ્નિકાયને થોડા અથવા વધારે બાળવામાં અને તેનાથી આ શરીરને થોડો અથવા અધિક તાપ આપવામાં મુનિકલ્પ નથી.

ભાવાર્થ—અગ્નિકાયના આરંભમાં ષડ્જીવનિકાયની વિરાધના થાય છે માટે શાસ્ત્રમાં આ પ્રકારનો આચાર મુનિ માટે નિષિદ્ધ છે. ભલે ભયંકરમાં ભયંકર ઠંડી પડે તો પણ મુનિ આ પ્રકારે અગ્નિનો આરંભ કરી શકતા નથી. કોઈની વિરાધના કરી આ પૌદ્ગલિક શરીરને સુખી કરવો એવું મુનિનું કર્તવ્ય નથી. અગ્નિકાયના આરંભમાં અગ્નિકાયના જીવોની વિરાધનાની સાથે સાથે બીજા

धनाका आरंभ अवश्य होता है, इस लिये इस प्रकारके आरंभ करनेकी भगवान् की आज्ञा मुनिके लिये नहीं है ।

इस प्रकार समझाने पर भी यदि कोई या वही गृहस्थ भक्ति या दयाके आवेशसे उस मुनिकी शीतसे रक्षा करनेके अभिप्रायसे थोड़ी या बहुत अग्नि जला कर उसके शरीरको थोड़े रूपमें या बहुत रूपमें तपाने की चेष्टा भी करे तो उस समय वह भिक्षु इस प्रकारकी उनकी (अग्नि-उवालनादि क्रियासे शरीरको तपानेरूप) क्रियाको सावद्यके आचरण रूपसे विचार कर और जानकर उस गृहस्थसे “यह आचार हम मुनियों को अकल्पनीय होनेसे नहीं कल्पता है” इस प्रकार अनासेवनपरिज्ञा से कहे—उसे समझावे । “इति ब्रवीमि” इन पदोंका अर्थ पहिले कहा जा चुका है ॥सू०४॥

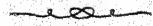
॥ आठवें अध्ययनका तीसरा उद्देश समाप्त ॥ ८-३ ॥



जुवोनी पणु विराधनानो आरंभ अवश्य थाय छे, भाटे आ प्रकारनो आरंभ करवानी भगवाननी आज्ञा मुनि भाटे नथी.

आ रीते समजववा छतां पणु जे कोछ अथवा जेन गृहस्थ भक्ति अगर दयाना आवेशथी ते मुनिनी ठंडीथी रक्षा करवाना अभिप्रायथी थोड़ी धणी अग्नि सजगावी तेना शरीरने थोडा रूपमां अथवा धणी रूपमां तपाववानी चेष्टा पणु करे तो ते समय ते भिक्षु आ प्रकारनी तेनी (अग्निउवालनादि क्रियाथी शरीरने तपाववरूप) क्रियाने सावद्यना आचरण रूपथी विचारि अने ज्ञाणी ते गृहस्थथी “आ आचार अमे मुनिओ भाटे अकल्पनीय होवाथी कल्पतुं नथी” आ प्रकारे अनासेवनपरिज्ञाथी कहे—तेने समजवे. “इति ब्रवीमि” आ पढोनो अर्थ पहेलाना उद्देशोमां कहेवाछ गयेल छे. (सू०४)

आठमा अध्ययननो त्रीजे उद्देश समाप्त ॥ ८-३ ॥



## ॥ अथाष्टमाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देशः ॥

अथ तृतीयोद्देशकथनान्तरं सम्प्रति तुरीय आरभ्यते। अस्यानन्तरोद्देशेन सहायं सम्बन्धः—अनन्तरोद्देशे भिक्षार्थं परिभ्राम्यन् मुनिः शीतस्पर्शवेपितगात्रो ग्रामधर्म-शङ्कितमनसा गृहस्थेन पृष्ठस्तस्यासत्यशङ्कामपनयेदित्यभिहितम्। अत्र च यदि पुनः स्त्रिय एव तं भिक्षुं हावभावादिभिर्वशीकर्तुं चेष्टेरन्, मुनिस्तत्स्थानान्निष्क्रमितुमशक्तो भवेत्तदा चारित्रपरिक्षणार्थं वैहायस-गार्द्वपृष्ठारूपमरणविधिना प्राणां-

### आठवें अध्ययनका चौथा उद्देश ।

तृतीय उद्देशके कहनेके बाद अब चतुर्थ उद्देश प्रारम्भ होता है। इस उद्देशका अनन्तर उद्देशके साथ यह सम्बन्ध है—उस अनन्तर उद्देशमें यह कहा है कि “ भिक्षाके लिये निकले हुए मुनिका शीतकाल में शीतके स्पर्शसे कम्पित शरीर देख कर यदि कोई गृहस्थ ग्रामधर्मकी आशङ्का उसमें कर लेता है तो वह मुनि उसकी उस असत्य आशङ्काका परिहार कर देता है। इस उद्देशमें यह प्रकट किया जायगा कि स्त्रियां ही यदि उस मुनिको हावभाव आदि चेष्टाओंसे वशमें करनेका प्रयत्न करें, और मुनि उस स्थानसे बाहर निकलनेके लिये असमर्थ बन जाय तो उस समय उस मुनिका यही कर्तव्य है कि वह अपने चारित्रकी सब प्रकारसे रक्षा करनेके लिये वैहायस और गार्द्वपृष्ठ नामक मरणविधि

### आठमा अध्ययननो चौथो उद्देश.

तृतीये उद्देशे कहेवाले गया बाद हुवे चौथा उद्देशनो प्रारंभ थाय छे. आ उद्देशनो पाछगता उद्देशनी साथे आ संबंध छे—पाछगता उद्देशमां ओ कहेवायुं छे के भिक्षाने माटे निकलेल मुनिने ठंडीमां ठंडीना स्पर्शथी कांपता जेठ जे केई गृहस्थ ग्रामधर्मनी आशंका करी ले छे त्यारे मुनि ओनी ओ असत्य आशंकातुं समाधान करी दे छे. आ उद्देशमां ओ प्रकट करवामां आवशे—स्त्रीओ न कहाय मुनिने हावभाव वगेरे चेष्टाओथी वशमां करवानो प्रयत्न करे, अने मुनि पणु ओ स्थानमांथी अहार निकलवामां असमर्थ भनी जाय त्यारे ओ समये मुनितुं आ कर्तव्य छे के ते पोताना चारित्रनी रक्षा करवा माटे वैहायस अने गार्द्वपृष्ठ नामनी मरण विधिची पोताना प्राणु तल दे पणु पोताना शील—प्रह्वयर्थभंडावत—नो लंग न करे. केम के प्रह्वयर्थना



સ્યજેત્, ન તુ શીલભક્તં સમાચરેત્, તદભાવે ચ તન્મરણં ગર્હિતમિતિ કથયન્નાદૌ શીતસ્પર્શપ્રસંગેન વસ્ત્રસ્ય કલ્પનીયતામાવેદયતિ-‘જે મિક્કલૂ’ इत्यादि ।

મૂલમ્-જે મિક્કલૂ તિહિં વત્થેહિં પરિવુસિણ પાયચઉત્થેહિં, તસ્સ પં નો એવં ભવઈ-ચઉત્થં વત્થં જાઈસ્સામિ સે । અહેસણિજ્ઞાઈ વત્થાઈ જાઈજ્ઞા અહાપરિગ્ગહિયાઈ વત્થાઈ ધારિજ્ઞા નો ધોઈજ્ઞા નો રણ્ણા નો ધોયરત્તાઈ વત્થાઈ ધારિજ્ઞા અપલિઉંચમાણે ગામંતરેસુ ઓમચેલિણ એયં સુ વત્થધારિસ્સ સામગ્ગિયં ॥સૂ. ૦૧॥

છાયા-યો મિશ્નુસ્ત્રિભિર્વસ્ત્રૈઃ પર્યુષિતઃ પાત્રચતુર્થૈઃ, તસ્ય સ્વલુ નો એવં ભવતિ-ચતુર્થ વસ્ત્રં યાચિષ્યે, સ યથૈવળીયાનિ વસ્ત્રાણિ યાચેત્, યથાપરિગૃહીતાનિ વસ્ત્રાણિ ધારયેત્, નો ધાવેત્, નો રજ્જયેત્, નો ધૌતરક્તાનિ વસ્ત્રાણિ ધારયેત્, અપરિકુશ્વ-માનઃ ગ્રામાન્તરેષુ અવમચેલિકઃ, એતત્સ્વલુ વસ્ત્રધારિણઃ સામગ્ગ્યમ્ ॥ મૂ. ૧ ॥

ટીકા-‘યો મિશ્નુ’-રિત્યાદિ, યો મુનિઃ પાત્રચતુર્થૈઃ=વસ્ત્રત્રયાતિરિક્તં ચતુર્થ પાત્રં યત્ર તાનિ, તૈઃ પાત્રચતુર્થૈઃ ત્રિભિર્વસ્ત્રૈઃ-કાર્પાસિકે દ્વે, તૃતીયમૌર્ણિકં કમ્બ-લાદિકમ્, એતત્રયમેવ વસ્ત્રં તેષાં કલ્પતે, તત્ર શીતપ્રારમ્ભે ચૈકં પ્રાવરણવસ્ત્રં સ મુનિર્ધારયેત્, તતોઽપ્યધિકશીતપીઢાયાં કમ્બલમુપરિ ધારયેત્, એતેન કમ્બલગત-બાહ્યાચ્છાદનતા બોધ્યા ।

સે અપને પ્રાણોંકો છોડ દે પરન્તુ વે શીલ-બ્રહ્મચર્ય મહાવ્રત-કા ભક્ત ન કરે, ક્યોં કિ બ્રહ્મચર્યકે અભાવમેં ઉસકા મરણ નિંદિત હૈ, ઇસ વાતકો કહતે હુણ સૂત્રકાર આદિમેં શીતસ્પર્શકે પ્રસંગ સે વસ્ત્રકી કલ્પનીયતા ઓર અકલ્પનીયતા સૂત્રદ્વારા પ્રકટ કરતે હૈ-‘જે મિક્કલૂ’ इत्यादि ।

સ્થવિરકલ્પી મુનિ ત્રીન વસ્ત્ર (દો સૂતી એક ઝની કમ્બલ) આદિ ઓર એક પાત્ર, ઇસ પ્રકાર વસ્ત્ર ઓર પાત્ર રખતે હૈ, ક્યોં કિ ઇતને હી વસ્ત્ર ઓર પાત્ર રખને કા ઉનકા કલ્પ હૈ । ઇનમેં શીતકાલકે પ્રારમ્ભમેં એક હી ઓઢનેકા વસ્ત્ર વે રખતે હૈ । જબ અધિક શીત પડને લગતી હૈ તો વે દ્વિતીય વસ્ત્ર ભી ઓઢનેકે લિયે રખ લેતે હૈ, ઓર ભી અધિક

અભાવથી એનું મરણ નિહિત છે. આ વાત ઠહેતાં સૂત્રકાર ઠંડીના પ્રસંગમાં વસ્ત્રની કલ્પનીયતા અને અકલ્પનીયતા સૂત્રદ્વારા પ્રગટ કરે છે-‘જે મિક્કલૂ’ इत्यादि.

આ સ્થવિરકલ્પી મુનિ ત્રણ વસ્ત્ર જેમાં બે સુતરાઉ અને એક કમ્બલ વગેરે અને એક પાત્ર આ પ્રકારનાં વસ્ત્ર અને પાત્ર રાખે છે. કેમ કે એટલાં જ વસ્ત્ર અને પાત્ર, રાખવાનો એનો કલ્પ છે. આમાં ઠંડીના પ્રારંભમાં એક જ ઓઢવાનું વસ્ત્ર રાખે છે જ્યારે ઠંડી વધુ પ્રમાણમાં પડવા લાગે ત્યારે બીજું વસ્ત્ર પણ ઓઢવા માટે રાખી દે છે. ખુબ જ પ્રમાણમાં ઠંડી પડવા લાગે ત્યારે એક કમ્બલ પણ રાખી

एतैर्वस्त्रैः पर्युषितः=व्यवस्थितो भिक्षुः-संयतो भवति, तस्य=पूर्वोक्तस्य भिक्षुश्चेतस्येवमध्यवसायः खलु=निश्चयेन न भवति-मम कल्पेन=वस्त्रत्रयरूपेण न शीतापगमो भवति तदर्थमहं चतुर्थं वस्त्रं याचिष्ये । अध्यवसायस्य प्रतिषेधेन चतुर्थवस्त्रयाचनं तु सर्वथा हेयमेवेति दर्शितम् । यदि वस्त्रत्रितयं न लब्धवान् शीतकालश्च सम्प्राप्तो भवेत् तदा तत् कल्पनीयं याचेत् भिक्षुरिति दर्शयति-‘स’ इत्यादि-स=भिक्षुः यथैषणीयानि वस्त्राणि मूल्यतः प्रमाणतथोत्कर्षापकर्षरहितान्यपरिकर्माणि याचेत्, एवं स एव यथापरिगृहीतानि =यथारूपप्राप्तानि श्वेतान्येव वस्त्राणि धारयेत्, किन्तु तानि वस्त्राणि नो धावेत्-प्रा-  
ठण्ड पड़ने पर वे एक कम्बल भी लेते हैं, जिससे शीतजन्य बाधा उन्हें बाधित न कर सके ।

इन वस्त्रोंसे व्यवस्थित-युक्त जो साधु होता है । उसके चित्तमें निश्चयसे इस प्रकारका अध्यवसाय नहीं होता है कि-मेरा इस वस्त्रत्रय रखनेरूप कल्पसे शीतका निवारण नहीं होता है इसलिये चौथे वस्त्रकी याचना करूं । जब सूत्रकारने चौथे वस्त्रकी याचना करनेरूप अध्यवसायका ही प्रतिषेध किया है तो उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे चतुर्थ वस्त्रकी याचना करेंगे ही कैसे ?-यह याचना तो सर्वथा त्याज्य ही है, हां इतना हो सकता है कि उसके पास यदि वे पूर्वोक्त तीन वस्त्र नहीं हैं और शीतकाल आ चुका है तो वे अपने लिये कल्पनीय ही वस्त्रोंकी याचना करेंगे, अकल्पनीय की नहीं, यही बात “से” इत्यादि सूत्रांश द्वारा प्रकट की है । वह भिक्षु यथैषणीय-प्रमाणसे एवं मूल्यसे जो उत्कर्ष और अपकर्ष रहित हैं ऐसे अपरिकर्म वस्त्रोंकी ही याचना कर सकते हैं । तथा याचना समयमें जो वस्त्र जिस रूपमें मिले हैं उसी

લે છે જેથી ઠંડીનો ઉપદ્રવ નહિ થાય.

આ વસ્ત્રોથી વ્યવસ્થિત-યુક્ત જે સાધુ હોય છે, તેના હિતમાં નિશ્ચયથી આ પ્રકારનો અધ્યવસાય થતો નથી કે મારા-આ વસ્ત્રત્રય રાખવારૂપ કલ્પથી ઠંડીનો નિવારણ થતો નથી આથી ચોથા વસ્ત્રની યાચના કરું. જ્યારે સૂત્રકારે ચોથા વસ્ત્રની યાચના કરવારૂપ અધ્યવસાયનો જ નિષેધ કરેલ છે તો આથી એ વાત સ્પષ્ટ થઈ જાય છે કે એ ચોથા વસ્ત્રની યાચના કરે પણ કઈ રીતે ?-એ યાચના તો સર્વથા ત્યાજ્ય જ છે, એટલું થઈ શકે છે કે એની પાસે જે પૂર્વોક્ત ત્રણ વસ્ત્રો ન હોય અને ઠંડી શરૂ થઈ ગઈ હોય તો તે પોતાને માટે કલ્પનીય વસ્ત્રોની જ યાચના કરે. અકલ્પનીયની નહીં, આ જ વાત “સે” ઇત્યાદિ સૂત્રાંશથી પ્રગટ કરવામાં આવેલ છે. તે ભિક્ષુ યથૈષણીય-

સુકોદકેનાપિ ન પ્રક્ષાલયેત્, નાપિ રક્ષયેત્=કેશરહારિદ્રાદિના પીતાદિરાગરક્ષિતાનિ ન કુર્યાત્, 'કિં ચ ધૌત-રક્તાનિ' પૂર્વ ધૌતાનિ=પ્રક્ષાલિતાનિ પશ્ચાન્ન રક્તાનિ ધૌત-રક્તાનિ વસ્ત્રાણિ નો ધારયેત્ તેન શૃંગારાદિભાવસમ્ભવાત્ । અપિ ચ સ ગ્રામાન્તરેષુ વિહરન્ તસ્કરાદિભયેન માર્ગે વસ્ત્રાણિ અપરિકુશ્ચમાનઃ=ન પરિગોપયન્-મૂલ્યપ્રમાણાદિના હીનત્વાદુજ્જિતધર્મકત્વેનાગોપનીયાન્યેવ મુનીનાં વસનાનિ ભવન્તીતિ કક્ષપાત્રાદિષુ તાનિ ન પ્રચ્છન્નાનિ કુર્વન્નિત્યર્થઃ, અવમચેલિકઃ=અવમં મૂલ્યતઃ પ્રમાણતશ્ચ ન્યૂનં ચ તત્ ચેલં જીર્ણમલિનવસ્ત્રમ્=અવમચેલં, તદસ્યાસ્તીતિ અવમચેલિકઃ=હીન-જીર્ણમલીમસવસનવાન્ સન્ મુનિર્વિહરેત્, एतत् खलु पूर्वोक्तमेव नान्यत्, વસ્ત્રધારિણઃ સાધોઃ સામગ્ર્યં=પાત્રચતુર્થવસ્ત્રત્રયાદિરૂપં સામગ્ર્યમસ્તિ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

રૂપમેં વે શ્વેત વસ્ત્રોંકા ઉપયોગ કર સકતે હૈં । અર્થાત્ યાચના સમયમેં શ્વેત વસ્ત્ર હી લેતે હૈં ઓર ઉન્હેં વે ડસી રૂપમેં રખ કર અપને કામમેં લા સકતે હૈં । ઉન્હેં યે પ્રાસુક પાનીસે ધો ભી નહીં સકતે હૈં ઓર ન હરિદ્રા કેશર આદિ પીલે રંગસે રંગ હી સકતે હૈં, ક્યોં કિ એસે વસ્ત્રોંકે રખનેસે શૃંગારકા આવિર્ભાવ હોતા હૈં । જો પહિલે ધોયે ગયે હોં ઓર પીછે રંગે ગયે હોં વે ધૌત-રક્ત વસ્ત્ર હૈં । ગ્રામાન્તરોંમેં વિહાર કરતે સમય યે વસ્ત્રોંકો ચૌરાદિકકે ભયસે કક્ષા ઓર પાત્રાદિકોંમેં છુપાનેકી ભાવના ન રખે, ક્યોં કિ મુનિયોંકે વસ્ત્ર મૂલ્યસે ઓર પ્રમાણ આદિ સે હીન હી હોતે હૈં, તથા સામાન્ય દશામેં રહતે હૈં અતઃ યે અગોપનીય હી હોતે હૈં, ઇસ લિયે ઇન્હેં છિપાને કી કોશિશ નહીં કરની ચાહિયે । મૂલ્ય એવં પ્રમાણસે હીન વસ્ત્ર અવમચેલ કહલાતા હૈં, યે જિસકે પાસ હોતે હૈં અર્થાત્ એસે વસ્ત્રકો

પ્રમાણથી અથવા મૂલ્યથી જે ઉત્કર્ષ અને અપકર્ષ રહિત છે એવા અપરિકર્મ વસ્ત્રોનીજ યાચના કરી શકે છે. તથા યાચના સમયે જે વસ્ત્ર જે રૂપમાં મળે એજ રૂપમાં તે શ્વેત વસ્ત્રોનો ઉપયોગ કરે. અર્થાત્ યાચના સમયે સફેદ વસ્ત્ર જ લે છે અને તેને એ જ રૂપમાં રાખી પોતાના કામમાં લઈ શકે છે. એને એ ધોઈ શકતા નથી તેમ હલહર કેશર કે તેવા પીળા રંગથી રંગી શકતા નથી. કેમ કે એવાં વસ્ત્રો રાખવાથી શૃંગારનો આવિર્ભાવ બની જાય છે. જે પહેલાં ધોવાયાં હોય અને પાછળથી રંગવામાં આવે તે ધૌત-રક્ત વસ્ત્ર છે. ગામડાઓમાં વિહાર કરતી વખતે ચોર વગેરેથી વસ્ત્રો ચોરાઈ જવાના ભયથી વસ્ત્રોને કક્ષા કે પાત્રોમાં છુપાવવાની કોશિશ ન કરવી જોઈએ, કેમ કે મુનિઓનાં વસ્ત્ર મૂલ્યથી અને પ્રમાણથી હીનજ હોય છે. તેમ સામાન્ય દશાનાં હોય છે, આથી એ અગોપનીય જ હોય છે. આ માટે એને છુપાવવાની કોશિશ ન કરવી જોઈએ. મૂલ્ય અને પ્રમાણથી હીન વસ્ત્ર અવમચેલ કહેવાય છે. આ



મુનિઃ શીતેઽતિક્રાન્તે ક્રમેણ તાન્યપિ વસનાનિ પરિત્યજેદિતિ દર્શયતિ—  
'અહ પુણ' इत्यादि ।

મૂલમ્—અહ પુણ એવં જાણિજ્ઞા ઉવાઙ્ક્રંતે खलु हेमन्ते  
गिम्हे पडिवन्ने अहापरिजुन्नाइं वत्थाइं परिट्टविज्जा, अदुवा  
संतरुत्तरे अदुवा एगसाडे अदुवा अचेले लाघवियं आगममाणे  
तवे से अभिसमन्नागए भवइ ॥ सू० २॥

છાયા—અથ પુનરેવં જાનીયાત્ ઉપાતિક્રાન્તઃ खलु हेमन्तो ग्रीष्मः प्रतिपन्नः  
यथापरिजीर्णानि वस्त्राणि परिष्ठापयेत्, अथवा सान्तरोत्तरः, अथवा अवमचेलः,  
अथवा एकशाटः, अथवा अचेलः, लाघविकमागमयन्, तपस्तस्याभिसमन्वागतं  
भवति ॥ सू० २ ॥

જો ધારણ કરતા હૈં વહ અવમચેલિક હૈં । એસે વસ્ત્ર મુનિયોંકે પાસ  
હોતે હૈં, ક્યોં કિ વે હીન જીર્ણ ઓર શીર્ણ વસ્ત્રવાલે હોતે હૈં । યે હી  
તીન વસ્ત્ર ઓર એક પાત્ર યે, ચાર હી ઇન સ્થવિરકલ્પધારી સાધુઓંકે પાસ  
સામગ્ય-સાધન હૈં, અન્ય નહીં ।

ઢોરેસહિત મુંહપત્તી, રજોહરણ ઓર પહિરનેકા એક વસ્ત્ર ઇનકે  
સિવાય અન્ય યે પૂર્વોક્ત તીન વસ્ત્ર ઓર એક પાત્ર મુનિ રખતે હૈં, ઇનસે  
અધિક નહીં । હાં ઇન તીનમેં ચાહે તો વહ કમ હી કર સકતે હૈં પર  
ઇન્હેં વઢા નહીં સકતે ।

અધિક યાચનાકી ભાવના કરના હી જબ મના હૈં તો ફિર  
ચતુર્થ વસ્ત્રકી વહ યાચના કર મી કૈસે સકતે હૈં? વિહારમેં વહ સિંહ  
કી તરહ વિચરે-વસ્ત્રોંકી તરફસે નિશ્ચિત રહે-કારણ કિ વે ઇતને

ઢેની પાસે હોય છે એટલે આવા વસ્ત્રને બે ધારણ કરે છે તે અવમચેલિક છે.  
એવા વસ્ત્રો મુનિઓની પાસે હોય છે, કારણ કે તે છૂર્ણ શીર્ણ વસ્ત્રોવાળા  
હોય છે. એ જ ત્રણ વસ્ત્ર અને એક પાત્ર, આ ચાર જ આ સ્થવિરકલ્પધારી  
સાધુઓની પાસે સામગ્ય-સાધન છે, બીજું નહીં.

દોરા સાથે મુંહપત્તી, રજોહરણ અને પહેરવાતું વસ્ત્ર ઉપરાંત ત્રણ વસ્ત્ર  
અને એક પાત્ર મુનિ રાખી શકે છે, એનાથી અધિક નહીં. આ ત્રણમાંથી બે  
તે ચાહે તો ઓછાં કરી શકે છે પણ વધારી શકતા નથી.

વધુ વસ્ત્રોની યાચનાની ભાવના કરવી એ પણ બ્યારે મના છે તો ઓથા  
વસ્ત્રની તે યાચના પણ કઈ રીતે કરી શકે છે. વિહારમાં તે સિંહની માફક  
વિચરે-વસ્ત્રોની આગતમાં નિશ્ચિત રહે, કારણ કે તે એટલાં મૂલ્યવાન

ટીકા—‘અથ’-ત્યાદિ, સ ભિક્ષુરથ પુનરેવં જાનીયાત્ યત્ ઉપાતિક્રાન્તઃ= વ્યતીતઃ સ્વલુ હેમન્તઃ=શીતસમયઃ પ્રતિપન્નઃ=પ્રાપ્તશ્ચ ગ્રીષ્મઃ=ઉષ્ણસમયઃ તદા સ ભિક્ષુઃ યથાપરિજીર્ણાનિ વસ્ત્રાણિ પરિષ્ઠાપયેત્=પરિહરેત્-યદ્ યદ્ જીર્ણં સંજાતં તત્તપરિત્યજ્ય સજ્જરહિતો વિચરેદિત્યર્થઃ । વ્યતીતે શીતસમયે ક્ષેત્ર-કાલ-પુરુષસ્વ-ભાવેન શીતવાધાયાં સત્યાં કિં કર્તવ્યમિત્યાહ-‘સાન્તરોત્તરઃ’ ઇત્યાદિ, અથવા= અધિક મૂલ્ય એવં પ્રમાણમેં અધિક હોતે હી નહીં હૈં જો ચૌરોંકે મનકો વિગાડ સકેં, હીન, જીર્ણ ઓર મલિન વે વસ્ત્ર હોતે હૈં-મલાં ચૌર એસે વસ્ત્રોંકો લેકર કરેંગે હી કયા ? અતઃ ઇન વસ્ત્રોંકો છુપાનેકી સાધુકો કિસીં ખી પ્રકારકી ચેષ્ટા નહીં કરનીં ચાહિયે ॥સૂ.૦૧॥

અબ સૂત્રકાર ‘શીતકાલ વ્યતીત હો જાને પર ક્રમ ૨ સે ઊન વસ્ત્રોં કા ખી સાધુકો પરિત્યાગ કર દેના ચાહિયે’ યહ પ્રદર્શિત કરતે હૈં- “અહ પુન ” ઇત્યાદિ ।

વહ ભિક્ષુ ઇસ બાતકો જાને કિ-હેમન્તકાલ વ્યતીત હો ચુકા હૈ ઓર ગ્રીષ્મસમય આ ગયા હૈ ઊસ સમય વહ ભિક્ષુ જીર્ણ વસ્ત્રોંકો પરિષ્ઠાપિત કર દેવે-જો જો જીર્ણ હો ચુકે હોં ઊન ૨ કા પરિત્યાગ કર નિઃસંગ બને । શીત સમયકે વ્યતીત હોને પર ખી યદિ ક્ષેત્ર કાલ ઓર પુરુષસ્વભાવ કો લે કર શીતવાધા ઉપસ્થિત હો જાય તો વહ કયા કરે ? ઇસ પ્રકારકી આગડ્ડાકા ઉત્તર “સંતરુત્તરે” ઇત્યાદિ સૂત્રાંશસે સૂત્રકાર સ્પષ્ટ કરતે હૈં-‘અથવા’ યહ પદ પદ્યાન્તરમેં હૈ, વે કહતે હૈં-જબ ઇસ પ્રકારકી પરિસ્થિતિ હો તો વહ ત્રીન વસ્ત્ર સહિત હો જાવે, આન્તર-સૂત્રકે દો વસ્ત્ર એવં ઉત્તર-એક પ્રાવરણરૂપ ઝનકા કમ્બલ,

અને પ્રમાણમાં અધિક નથી હોતાં કે ચોરોનું મન લલચાય. ઓછી કિંમતનાં ટુંકાં અને મેલાં વસ્ત્ર હોય છે, ચોર એને લઈને કરે પણ શું ? આથી આ વસ્ત્રોને છુપાવવાની સાધુએ કેઈપણ પ્રકારની ચેષ્ટા ન કરવી જોઈએ. (સૂ.૦૧)

હવે સૂત્રકાર ઠંડીની મોસમ પુરી થઈ જતાં કંમે કંમે એ વસ્ત્રોનો ત્યાગ કરી દેવો જોઈએ. એવું પ્રદર્શિત કરે છે-‘અહ પુન ’ ઇત્યાદિ.

તે ભિક્ષુ આ વાત સમજે કે હેમન્તકાળ પૂરો થઈ ચુકેલ છે અને ગ્રીષ્મ સમય આવી ગયો છે, આ વખતે તે ભિક્ષુ જીર્ણ વસ્ત્રોનો ત્યાગ કરે-જે જે જીર્ણ થઈ ગયાં હોય એનો ત્યાગ કરી નિઃસંગ બને. ઠંડીના સમય વ્યતીત થઈ જવા છતાં પણ ક્ષેત્ર કાળ અને પુરુષસ્વભાવના કારણે ઠંડીનો ઉપદ્રવ થઈ જાય તો તે શું કરે ? આ પ્રકારની આશંકાનો ઉત્તર “સંતરુત્તરે” ઇત્યાદિ સૂત્રાંશથી સૂત્રકાર સ્પષ્ટ કરે છે-“અથવા” આ પદ પદ્યાન્તરમાં છે, તેઓ કહે છે-અથવા આ પ્રકારની પરિસ્થિતિ ઊભી થાય તો તે ત્રણ વસ્ત્ર ધારણ કરી લે. આન્તર-

પક્ષાન્તરે સ સાન્તરોત્તરઃ આન્તરં=મૂત્રવસ્ત્રદ્વયમ્ ઉત્તરં=પ્રાવરણવસ્ત્રં, તાભ્યાં સહિતો વસ્ત્રત્રયવાન્ ભવેત્, શીતવાધયા ક્વચિત્ શરીરમાચ્છાદયેત્, ક્વચિચ્ચ શીતશઙ્કયા પાર્શ્વે સ્થાપયેત્ ન તુ તત્પરિત્યજેત્। અથવા સઃ અવમચેલઃ=મૂલ્યતઃ પ્રમાણતઃ હીન-જીર્ણવસ્ત્રવાન્ ભવેત્-કલ્પનીયેષુ ત્રિણ વસ્ત્રેષુ મધ્યે ચૈકપરિહારેણ વસ્ત્રદ્વયં ધારયે-દિતિ ભાવઃ। અથવા શનૈઃ શનૈઃ શીતાપગમે એકશાટકઃ દ્વિતીયવસ્ત્રપરિત્યાગેનૈક-વસ્ત્રધારી ભવેત્। અથવા સર્વથા શીતાપગમે ચૈકમપિ વસ્ત્રં પરિહૃત્ય અચેલઃ=પ્રાવ-રણવસ્ત્રરહિતો ભવેત્। કેવલં સદોરકમુખવસ્ત્રિકારજોહરણલજ્જાવસ્ત્રોપધિકઃ સન્ વિહરેત્।

इन सहित होनेका नाम सान्तरोत्तर है। क्षेत्र काल और पुरुषस्वभावकी अपेक्षासे यदि शीतकालकी बाधा आई हुई उसे ज्ञात हो तो वह साधु पूर्वोक्त दो वस्त्र सूतके और १ ऊनका कम्बल, इस प्रकार तीन वस्त्र रख लेवे। जब शीतकी बाधा उसे होवे तब तो यह उन्हें ओढ़ लेवे और यदि शीतबाधा न हो तो वह उन्हें पासमें ही रखे पर वस्त्रोंका त्याग न करे। अथवा वह अवमचेल रहे—हीन जीर्ण वस्त्र रखे। कल्पनीय तीन वस्त्रोंमें किसी एकके परित्यागसे दो वस्त्र रखे। शीत जैसे२ व्यतीत हो वैसे२ यह भी किसी एक द्वितीय वस्त्रका फिर त्याग करे और एक ही वस्त्र रखे। जब बिलकुल ही शीतकाल निकल जावे तब यह एक भी रखे हुए वस्त्रका परित्याग कर देवे और इस प्रकार यह प्रावरण वस्त्र से रहित हो जावे। पासमें केवल एक धागेसहित मुखवस्त्रिका रजोहरण और लज्जा निवारणार्थ एक पहननेका वस्त्र ही रखे।

સૂતરના બે વસ્ત્ર તેમજ ઉત્તર-એક પ્રાવરણરૂપ બિનની કંબલ, આ સહિત થવાનું નામ સાન્તરોત્તર છે. ક્ષેત્ર કાળ અને પુરૂષસ્વભાવની અપેક્ષાથી બે ઠંડીની બાધા આવેલી જણાય તો તે સાધુ પૂર્વોક્ત બે વસ્ત્ર સૂતરનાં અને એક બની કમ્બલ, આ પ્રકારે ત્રણ વસ્ત્ર રાખી લે. જ્યારે ઠંડીનો ઉપદ્રવ તેને લાગે ત્યારે તે એને ઓઢી લે. ઉપદ્રવ ઓછો થતાં પોતાની પાસે રાખે પણ વસ્ત્રોનો ત્યાગ ન કરે. અથવા—તે અવમચેલ રહે-હલકાં બુનાં વસ્ત્ર રાખે, કલ્પનીય ત્રણ વસ્ત્રો-માંથી એકનો પરિત્યાગ કરી બે વસ્ત્ર રાખે. ઠંડી ઓછી થતાં આ બે વસ્ત્રોમાંથી પણ કોઈ એક વસ્ત્ર તણ દે અને એક જ વસ્ત્ર રાખે, જ્યારે સંપૂર્ણપણે ઠંડી ઓછી થઈ જાય ત્યારે રાખેલા એક વસ્ત્રનો પણ તે ત્યાગ કરી દે. આ રીતે તે પ્રાવરણ વસ્ત્રથી રહિત બની જાય. પોતા પાસે ફક્ત દોરા સાથેની એક મુઢપત્તી એક રજોહરણ અને લજ્જા સાચવવાના હેતુથી એક પહેરવાનું વસ્ત્ર, આટલું જ રાખે, બાકી કંઈ નહીં.



કિમર્થં ક્રમેણૈકૈકં વસનં પરિહાર્યમિત્યાહ—‘લાઘવિક’—મિત્યાદિ, ‘લાઘ-  
વિકં’ લઘોર્ભાવો લાઘવં તદ્ યસ્યાસ્તીતિ લાઘવિકસ્તં લાઘવિકં=સ્વાત્માનમ્  
આગમયન્=સમ્પાદયન્ ભિક્ષુઃ ક્રમેણ વસનં પરિહરેત્ । યદ્વા—લાઘવિકં=દેહોપકરણે  
કર્મણિ ચ લઘુતામ્ આગમયન્=સમ્પાદયન્ સ વસનં પરિવર્જયેત્ । તસ્ય=પ્રતાપશ્ચ  
ભિક્ષોઃ એવં કરણે તપઃ=કાયકલેશરૂપમ્ અભિસમન્વાગતં=પ્રાપ્તં ભવતિ કાયકલેશસ્ય  
તપોભેદત્વાત્, તથા હિ—“પંચહિં ઠાણેહિં સમણાણં નિગ્ગંથાણં અચેલગત્તે પસથે  
ભવદ્, તં જહા—અપ્પા પઢિલેહા ૧ વેસાસિણ રૂવે, ૨ તવે અણુમણ, ૩ લાઘવે  
પસથે, ૪ વિઝલે ઇંદિયનિગ્ગહે ॥” છાયા—પશ્ચભિઃ સ્થાનૈઃ શ્રમણાનાં નિર્ગ્રન્થાનામ-  
ચેલકત્વં પ્રશસ્તં ભવતિ—અલ્પા પ્રતિલેખના ૧, વૈશ્વાસિકં રૂપં ૨, તપોડુનુમતં ૩,  
લાઘવં પ્રશસ્તં ૪, વિપુલ ઇન્દ્રિયનિગ્રહઃ ૫ । ઇતિ ।

મુનીનાં વસ્ત્રલાઘવેન પ્રતિલેખનાડલ્પત્વં ૧ વિશ્વાસપાત્રત્વં ૨ તપઃસદ્ભાવઃ  
૩ પ્રશસ્તલાઘવં ૪ પ્રભૂતતરેન્દ્રિયનિગ્રહત્વં ૫ ચ ભવતિ ભાવઃ ॥ સૂ. ૨ ॥

यह एक वस्त्रके परिहारका जो यहां क्रम बतलाया है उसका मतलब केवल इतना ही है कि इन पूर्वाक्त तीन वस्त्रोंके रखनेसे आत्मामें लाघव नहीं आता है, मुनिजन आत्मामें लाघव लानेके ही अभिलाषी होते हैं अतः ज्यों २ इनका परित्याग होगा त्यों २ आत्मामें इनके हटनेसे इन संबंधी भारका भी अभाव हो जायगा । इस आत्मामें एक प्रकारका लाघव नामका गुण प्रकट होगा । इस प्रकारसे रहनेवाले उस पंडिमाधारी स्थविरकल्पी भिक्षुके कायकलेश नामक तप आचरित होता है । कायकलेश यह बाह्य तपका एक भेद है, जैसे—“पंचहिं ठाणेहिं” इत्यादि, अर्थात्—अल्पवस्त्र रखनेसे पांच स्थानोंद्वारा निर्ग्रन्थ श्रमणोंका अचेलपना प्रशस्त

આ રીતે એક એક વસ્ત્રનો ત્યાગ જે રીતે બતાવવામાં આવેલ છે એનો મતલબ ફક્ત એટલો જ છે કે—એ પૂર્વોક્ત ત્રણ વસ્ત્રો રાખવાથી આત્મામાં લાઘવ નહિ આવે. મુનિજનોનો આત્મા સદા સંતોષી અને કોઈ પણ પ્રકારની આકાંક્ષા વગરનો હોવો જોઈએ, આથી જેમ જેમ ત્યાગ થતો રહે તેમ તેમ આત્મામાં એના દૂર થવાથી એ સંબંધી ભારનો પણ અભાવ થાય છે, અને એથી આત્મામાં એક પ્રકારનો લાઘવ નામનો ગુણ પ્રગટ થાય છે, આ પ્રકારથી રહેવાવાળા તે પંડિમાધારી સ્થવિરકલ્પી ભિક્ષુ કાયકલેશ નામના તપને આચરનારા હોય છે. કાયકલેશ એ બાહ્ય તપનો એક ભેદ છે. જેમ—“પંચહિં ઠાણેહિં” ઇત્યાદિ. અહ્ય વસ્ત્ર રાખવાથી પાંચ સ્થાનો દ્વારા નિર્ગ્રન્થ શ્રમણોનું અચેલપણું પ્રશસ્ત

સ્વમતિપરિકલ્પિતત્વનિરસનાયાહ—‘જમેયં’ ઇત્યાદિ,

મૂલ્મ—જમેયં ભગવયા પવેદ્યં તમેવ અભિસમિચ્છા સઠ્વઓ  
સઠ્વત્તા.૯ સમત્તમેવ સમભિજાણિજ્ઞા ॥ સૂ. ૩ ॥

છાયા—યદેતદ્ ભગવતા પ્રવેદિતં તદેવાભિસમેત્ય સર્વતઃ સર્વાત્મતયા સમ્ય-  
ક્ત્વમેવ સમભિજાનીયાત્ ॥ સૂ. ૩ ॥

ટીકા—‘ય’—દિત્યાદિ, યત્=પૂર્વોક્તં તદેતત્સર્વં ભગવતા=મહાવીરેણ પ્રવેદિતં=  
દ્વાદશપર્ષદિ પ્રરૂપિતમ્, મુનિઃ તદેવ=પૂર્વોક્તમેવ સર્વતઃ=સર્વપ્રકારૈઃ સર્વાત્મતયા  
સકલાત્મભાવેન અભિસમેત્ય વિચાર્ય=સમ્યક્ત્વમેવ સમભિજાનીયાત્=આસેવનપરિ-  
જ્ઞયા સેવેત । યદ્વા—‘સમત્વમેવે’—તિચ્છાયા, તેન સમત્વમેવ=સચેલાડચેલાવસ્થયોઃ  
સમાનભાવમ્ સમભિજાનીયાત્ ॥ સૂ. ૩ ॥

હોતા હૈ, વે પાંચ સ્થાન યે હૈ—૧ પ્રતિલેખના કી અલ્પતા, ૨ વિશ્વાસપાત્રતા,  
૩ તપકા સદ્ભાવ, ૪ પ્રશસ્તલઘુતા, ૫ પ્રભૂતતર ઇન્દ્રિયોંકી નિગ્રહતા ॥ સૂ. ૨ ॥

સૂત્રકાર અપનેકથનમેં અપની મતિદ્વારા કલ્પિતતાકા નિષેધ કરનેકે  
લિયે કહતે હૈ—‘જમેયં’ ઇત્યાદિ ।

જો કુછ ઊપર કહા ગયા હૈ વહ સબ ભગવાન્ મહાવીરદ્વારા અપની  
બારહ પ્રકારકી સમાઓમેં પ્રરૂપિત હુઆ હૈ અતઃ મુનિ ઇસ પૂર્વોક્ત કથન  
કા સર્વ પ્રકારસે વિચાર કર ઇસે સત્યરૂપ સે હી જાને । અથવા “સમ-  
ત્તમેવ” કી છાયા “સમત્વમેવ” બી હોતી હૈ, ઇસકા અર્થ યહ હૈ કિ  
પૂર્વોક્ત કથન ભગવાન્ દ્વારા હી કથિત હુઆ હૈ, અતઃ મુનિ સચેલ ઔર  
અચેલ ઇન દોનોં અવસ્થાઓમેં સમાન ભાવકા આસેવનપરિજ્ઞાસે  
સેવન કરે ॥ સૂ. ૩ ॥

હોય છે. તે પાંચ સ્થાન આ છે—૧ પ્રતિલેખનાની અલ્પતા, ૨ વિશ્વાસપાત્રતા,  
૩ તપનો સદ્ભાવ, ૪ પ્રશસ્તલઘુતા, ૫ પ્રભૂતતર ઇન્દ્રિયોની નિગ્રહતા. (સૂ. ૨)

સૂત્રકાર આ કથનમાં પોતાની મતિ-અનુસાર કલ્પિતતાનો નિષેધ કરતાં  
કહે છે—“જમેયં” ઇત્યાદિ.

જે કંઈ ઉપર કહેવાઈ ગયું છે એ બધું ભગવાન મહાવીરદ્વારા બાર  
પ્રકારની સલાઓમાં પ્રરૂપિત થયેલ છે, આથી મુનિ આ પૂર્વોક્ત કથનનો સર્વ  
પ્રકારથી વિચાર કરી આને સત્યરૂપથી જ જાણે. અથવા “સમત્તમેવ” ની છાયા  
“સમત્વમેવ” પણ થાય છે આનો અર્થ એ છે કે પૂર્વોક્ત કથન ભગવાનનું  
જ કહેલ છે આથી મુનિ સચેલ અને અચેલ આ બંને અવસ્થાઓમાં સમાન  
ભાવનું આસેવનપરિજ્ઞાથી સેવન કરે. (સૂ. ૩)

शरीराशक्ततया मन्दाध्यवसाये सति किं कर्तव्यमिति-दर्शयति-‘जस्स णं’ इत्यादि ।

मूलम्—जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—पुट्टो खलु अहमंसि नालमहमंसि सीयफासं अहियासित्तए, से वसुमं सव्वसमन्ना-गयपन्नाणेणं अप्पाणेणं केइ अकरणयाए आउट्टे तवस्सिणो हु तं सेयं जमेगे विहमाइए तत्थवि तस्स कालपरियाए, सेऽवि तत्थ विअंतिकारए, इच्चेयं विमोहायतणं हियं सुहं खमं निस्सेयसं आणुगामियं—तिवेमि ॥ सू० ४ ॥

छाया—यस्य खलु भिक्षोरेवं भवति—स्पृष्टः खल्वहमस्मि नालमहस्मि शीतस्पर्श-मध्यासितुम्, स वसुमान् सर्वसमन्वागतप्रज्ञानेनाऽऽत्मना कश्चिदकरणतयाऽऽवृतस्त-पस्विनस्तदेव श्रेयो यदेको विहायआदिकं, तत्राऽपि तस्य कालपर्यायः, सोऽपि तत्र व्यन्तिकारकः, इत्येतद् विमोहायतनं हितं सुखं क्षमं निःश्रेयसमानुगामिकमिति ब्रवीमि ॥ सू० ४ ॥

टीका—‘यस्ये’—त्यादि, यस्य=पूर्वोक्तस्य भिक्षोः=मुनेः खलु, एवं=वक्ष्यमा-णोऽध्यवसायो भवति, तमेवाह—अहं स्पृष्टः=रोगातङ्कैः शीतादिना कामिन्युपसर्गेण वा पीडितोऽस्मि, शीतस्पर्श=शीतजन्यदुःखविशेषं योषिदुपसर्गं भावशीतस्पर्शं वा अध्यासितुम्=अधिसोढुमहं नालं=न समर्थोऽस्मि । समुत्थिते च कामिन्युपसर्गे प्रतिकारान्तरविधानासमर्थः समयपरिपालको मुनिस्तदा किं कुर्यादित्याह—‘स वसु-

शरीर अशक्त होनेके कारण यदि अध्यवसायोमें मंदता आ जाय तो मोक्षार्थी मुनिको क्या करना चाहिये ? इसे सूत्रकार प्रदर्शित करते है—‘जस्स णं’ इत्यादि ।

जिस मुनिके इस प्रकारका वक्ष्यमाण अध्यवसाय होता है कि “मैं रोगोंके आतङ्कसे, शीत आदिके स्पर्शसे, अथवा भावशीत—कामिनीके उपसर्ग—से पीडित हूं, मैं इस शीतजन्य दुःखविशेषको अथवा, भाव-शीतस्पर्शरूप कामिनीके उपसर्गको सहनेके लिये समर्थ नहीं हूं” उस

शरीर अशक्त थवाथी ने अध्यवसायोमां मंदता आवी नय तो मोक्षार्थी मुनिओं शुं करुं नेधओ? आ वात सूत्रकार सूत्रद्वारा प्रदर्शित करे छे—‘जस्स णं’ इत्यादि.

ने मुनिमां आ प्रकारना—वक्ष्यमाण अध्यवसाय होय छे के—“हुं रोगोना उपद्रवथी, ठंडी वगेरेना स्पर्शथी, अथवा लावशीत—कामिनीना उपसर्ग—थी पीडित छुं. हुं आ ठंडीना दुःख विशेषने अथवा लावशीतस्पर्शरूप कामिनीना उपसर्गने सहन



માન' इत्यादि, सः=पूर्वोक्तविचारवान् कोऽपि=उपसर्गसहनाक्षमः सर्वसमन्वागतप्रज्ञा-  
नेन=समुपलब्धहेयोपादेयविशिष्टज्ञानवता, आत्मना=अन्तःकरणेन अकरणतया=  
उपसर्गप्रतीकारस्याकरणप्रतिज्ञया आवृतः=व्यवस्थितः वसुमान्=चारित्रधनो मुनिर्भ-  
वति । तादृशः किं कुर्यादित्याह-'तपस्विनः' इत्यादि, यत् यस्मिन् काले स्त्री  
भिक्षार्थमागतं मुनिं मोहयितुमुद्यता तं न मुञ्चति, सर्वथोपसर्गयितुमिच्छत्येव तत्  
=तदा तपस्विनः=चिरकालोपार्जितसंयमपर्यायस्य तपोधनस्यापसर्गाभिभवाऽसहि-

समय वह मुनि कि जो चारित्रका पालक है एवं कामिनी आदिके उपसर्ग  
उपस्थित होने पर उसके अन्य प्रतिकार करनेमें असमर्थ है तो क्या करे? इस  
का उत्तर देते हुए सूत्रकार कहते हैं कि-वह मुनि जिसके ये पूर्वोक्त  
विचार हैं अपने अन्तःकरणसे कि जो समुपलब्ध हेय और उपादेयके  
विशिष्ट ज्ञानसे युक्त है उस आये हुए उपसर्गको अच्छी तरह अकर-  
णपनेसे सहन करे, अर्थात् मेरे ऊपर जो यह उपसर्ग स्त्री आदि द्वारा उप-  
स्थित किया गया है मैं उसके अनुकूल कभी नहीं होऊँगा-विषयादिकों  
का सेवन इसके साथ कभी नहीं करूँगा चाहे प्राण भले ही निकल जावें,  
इस प्रकारकी अकरणपरिज्ञासे युक्त होता हुआ अपने चारित्ररूप धन  
का रक्षक बने। इस प्रकारसे जब उसकी दृढ़ता होगी तो भिक्षाके लिये  
आये हुए उस मुनिको मोहित करनेके लिये उद्यत कोई भी स्त्री-कामिनी  
उसे वश करनेके लिये जब भरपूर चेष्टा करती है, उसके संयमरूपी  
रत्नको लूटनेके लिये वह कोई भी बनता उपाय नहीं छोड़ती है, अथवा

કરવામાં અસમર્થ છું." એ સમયે તે મુનિ કે જે ચારિત્રના પાલક છે અને કામિની  
આદિના ઉપસર્ગો ઉપસ્થિત થતાં એની સામે પ્રતિકાર કરવામાં અસમર્થ છે તે શું  
કરે? આને ઉત્તર આપતાં સૂત્રકાર કહે છે કે-એ મુનિ જેના પૂર્વોક્ત વિચાર છે  
પોતાના અન્તઃકરણથી કે જે સમુપલબ્ધ હેય અને ઉપાદેયના વિશિષ્ટ જ્ઞાનથી  
યુક્ત છે એ આવેલા ઉપસર્ગને સારી રીતે અકરણપણથી સહન કરે, અર્થાત્  
મારા ઉપર જે આ ઉપસર્ગ સ્ત્રી આદિ દ્વારા ઉપસ્થિત કરવામાં આવેલ છે હું  
તેને અનુકૂળ કદી પણ નહીં બનું-વિષયાદિકનું સેવન એની સાથે કદિ નહિ કરું  
આહે મારા પ્રાણ ભલે નિકળી જાય. આ પ્રકારની અકરણપરિજ્ઞાથી મજ્જમ રહી  
પોતાના ચારિત્રરૂપ ધનના રક્ષક બને, આ પ્રકારે જો એનામાં દૃઢતા હોય તો ભિક્ષાને  
માટે આવેલ એ મુનિને મોહિત કરવા તત્પર થયેલ કોઈ પણ સ્ત્રી-કામિની  
એને વશ કરવા માટે જ્યારે ભરપૂર ચેષ્ટા કરે છે, એના સંયમરૂપી રત્નને  
લૂંટવા માટે તે કોઈ પણ બનતો ઉપાય છોડતી નથી, અથવા કોઈ નિર્લજ્જ

ળ્ળોઃ કેનાઽપિ જનેન કામિન્યા સહ ગૃહે પ્રવેશ્ય કૃતનિરોધસ્ય તતાં નિઃસરણોપાય-  
મલમમાનસ્ય શીલમજ્જમનિચ્છતો મુનેઃ, વિહાયઆદિકં=વૈહાયસાદિકં મરણં શ્રેયઃ=  
પ્રશસ્તમસ્તિ । ઇત્યમુપસર્ગાભિભવે સતિ સ મુનિર્ગલે પાશવન્ધનં વિષમક્ષણં જિહ્વાક-  
ર્ષણમુપરિષ્ઠાત્ પતનં વા વિધાય પ્રાણાન્ પરિત્યજેત્, ન તુ ચારિત્રં સ્વઙ્ડયેદિતિ પર-  
માર્થઃ । મમૌત્સર્ગિકૈર્મૈક્તપરિજ્ઞેજ્ઞિતમરણપાદપોપગમનરૂપૈર્મરણૈઃ શરીરપરિત્યાગ એવ

કોઈ નિર્લજ્જ મનુષ્ય ઉસ સ્ત્રીકે સાથ ઉસ મુનિકો કિ જિસને બહુત કાલ  
સંયમપર્યાયકી અચ્છી તરહ કમાઈ કી હૈ, ઓર યહી તપરૂપી ધન હી  
જિસકે પાસ એક સહારા હૈ, એવં જો ઉપસર્ગજન્ય પરાભવકો સહનેમેં  
અસહિષ્ણુ હૈ ઉસકો ઉસ ઘરમેં પ્રવેશ કરા દેતા હૈ ઓર બાહિર નહીં  
નિકલને દેતા હૈ, ઇસ અવસ્થામેં ઉસ મુનિકા કિ જિસે વહાંસે નિકલને  
કા કોઈ ઉપાય નહીં સૂઝ રહા હૈ, ઓર જો અપને શીલકે ભંગસે ડર  
રહા હૈ, ઉસકે લિયે યહી કર્તવ્ય માર્ગ હૈ કિ વહ ઉસ સમય વૈહાયસ  
આદિ મરણ અંગીકાર કરે । અર્થાત્—ઇસ પ્રકારકે ઉપદ્રવ આને પર વહ  
મુનિ ગલેમેં ફાંસી લગા કર, વિષકા મક્ષણ કર યા જિહ્વાકો  
આકર્ષિત ( સ્વીચ ) કર અપને પ્રાણોં કા વિસર્જન કર દેવે, યદિ કોઈ  
ઉપાય ઉસે હાથ ન આ સકે તો વહ ઉપરસે ગિર કર મી મર જાવે પર  
અપને અમૂલ્ય પ્રાણપ્યારે ચારિત્રકી ચોરી અપની આંખોંકે સમક્ષ ન હોને  
દેવે । યહ વિચાર ઉસ સમય અવશ્ય કરે કિ—મુજે તો ઉત્સર્ગ માર્ગ  
હી અપને પ્રાણોંસે અધિક પ્યારા થા, મૈ તો વહીં ચાહતા થા કિ મેરા મરણ

મનુષ્ય એ સ્ત્રીની સાથે એ મુનિને કે જેણે ઘણા કાળથી સંયમ પર્યાયની સારી  
કમાણી કરી છે અને એ જ તપરૂપી ધનને જેની પાસે એક સહારો છે અને  
જે ઉપસર્ગજન્ય પરાભવને સહેવામાં અસહિષ્ણુ છે એને એ ઘરમાં પ્રવેશ  
કરાવી દઈ બહાર નિકળવા દેતા નથી. એવી અવસ્થામાં એ મુનિ કે જેનો ત્યાગી  
નિકળવામાં કોઈ ઉપાય નથી સૂઝતો અને જે પોતાના શીલના ભંગથી ડરી  
રહેલ છે, એને માટે એ જ કર્તવ્ય માર્ગ છે કે તે એ સમયે વૈહાયસ આદિ મરણ  
અંગીકાર કરે. અર્થાત્—આ પ્રકારનો ઉપદ્રવ આવવાથી તે મુનિ ગળામાં ફાંસી  
લગાવી, વિષનું ભક્ષણ કરી અથવા તો જીભને જેથી કાઢી પોતાના પ્રાણનું  
વિસર્જન કરી દે. જો કોઈ બીજો ઉપાય તેને ન સૂઝે તો ઉપરથી પડીને  
પણ પ્રાણનું વિસર્જન કરી દે. ગમે તેવી આપત્તિ વચ્ચે પણ પોતાના અમૂલ્ય  
ચારિત્રની ચોરી પોતાની આંખો સામે ન થવા દે. એ સમયે આ વિચાર તે  
અવશ્ય કરે કે મને તો ઉત્સર્ગ માર્ગ મારા પ્રાણ કરતાં પણ વધુ પ્યારો છે.

શ્રેયાન્, પરન્તુ તેષાં ચિરકાલસાધ્યતયા કાલક્ષેપાસહનયોગ્યેઽસ્મિન્નવસરે ન સમ્ભવોઽસ્તિ । ઉપસર્ગશ્ચ સોદુમનર્હશ્ચારિત્રવિરાધકઃ સમુપસ્થિતસ્તસ્માત્સામ્પ્રતમાપવાદિકમપિ તત્ક્ષણનિષ્પાદ્યં વૈહાયસ-ગાર્દ્વપૃષ્ઠાશ્ચ બાલમરણં પંડિતમરણમેવેતિ ભાવઃ ।

નનુ વૈહાયસગાર્દ્વપૃષ્ઠાદિરૂપબાલમરણે સત્યનર્થાધિગમસ્યાગમે દર્શનં યથા—

મક્તપરિજ્ઞા, ઇક્ષિતમરણ, ઓર પાદપોષગમન, इन तीन मरणोंमें से किसी एक मरणकी आराधनासे होता, पर हाय ! मुझ दुर्भागीके लिये यह जीवन का सुवर्ण अवसर देखनेके लिये नहीं मिला । इस प्रकार आत्माकी निंदा करता हुआ वह साधु यह देख कर कि—“इन मरणोंका समय चिरकाल साध्य है, और यह समय अब कालक्षेप करने योग्य नहीं है, इनकी सम्भावना भी यहां कैसे हो सकती है, यह चारित्रविध्वंसक उपद्रव जो दुर्निवार आकर उपस्थित हो गया है इस लिये इस समय यही अपवाद-मार्गरूप मरण मेरे लिये पंडितमरण है, वैहायस, गार्द्वपृष्ठ आदि मरण बालमरण हैं, परन्तु मेरा काम तो इस समय इनसे ही साध्य होता है अतः इन्हें ही पंडितमरण मान कर मैं अपना काम कर लूं, इसीमें मेरा कल्याण है, वैहायस आदि मरण स्वीकार करे ।

શકા—વૈહાયસ ઓર ગાર્દ્વપૃષ્ઠરૂપ બાલમરણસે પ્રાણોંકો છોડનેવાલોં કો અનર્થકી પ્રાપ્તિ આગમમાં બતલાઈ છે, જૈસે—

હું તો એ ચાહું છું કે મારું મરણ ભક્તપરિજ્ઞા, ઇક્ષિત મરણ, અને પાદપોષગમન, આ ત્રણ મરણમાંથી એક મરણની આરાધનાથી થાય, પરંતુ મારા જેવા હુલાંતીને માટે જીવનનો આ સુવર્ણ અવસર જોવાનો ન મળ્યો, આ રીતે આત્માની નિંદા કરતાં કરતાં તે સાધુ આ જોઈને—“એ મરણનો સમય ચિરકાલસાધ્ય છે, અને આ સમય હવે કાળક્ષેપ કરવા યોગ્ય નથી તો એની સંભાવના પણ કેમ થઈ શકે ? આ ચારિત્રનો નાશ કરનાર ઉપદ્રવ આવીને પડ્યો છે, એ કારણે મારે માટે આ સમયે અપવાદમાર્ગરૂપ મરણ પંડિત મરણ છે. વૈહાયસ, ગાર્દ્વપૃષ્ઠ વગેરે મરણ બાળ-મરણ છે, મારું કામ તો આ સમયે આથી જ સાધ્ય બને છે. આથી આને જ પંડિતમરણ માનીને હું મારું કામ કરી લઉં. આમાં જ મારું કલ્યાણ છે.” વૈહાયસ આદિ મરણ સ્વીકાર કરે.

શંકા—વૈહાયસ અને ગાર્દ્વપૃષ્ઠરૂપ બાળમરણથી પ્રાણ છોડવાવાળાને અનર્થની પ્રાપ્તિ થવાનું આગમમાં બતાવેલ છે. જેમ—



“ઇચ્છેણં બાલમરણેણં મરમાણે જીવે અણંતેહિં નેરઙ્ગમવગ્ગહણેહિં અપ્પાણં સંજોણ્હ જાવ અણાણ્હયં ચ ણં અણવયગ્ગં ચાઉરંતં સંસારકંતારં મુજ્જો મુજ્જો પરિયટ્ઠ”  
 इति । छाया—इत्येतेन बालमरणेन म्रियमाणो जीवो अनन्तैर्नैरयिकभवग्रहणैरात्मानं संयोजयति यावदनादिकं चानवदग्रं चातुरन्तं संसारकान्तारं भूयो भूयः परिवर्तते” ।  
 इति प्रतिषिद्धत्वेन कथं निन्दितमाचरतीति चेदाह—मैथुनं हि सकलस्याऽप्यधर्मस्य मूलं महादोषपुञ्जभूतम्, तेन च निखिलव्रतमङ्गो भवति, तथा चोक्तं भगवता—

“मूलमेयमहम्मस महादोससमुस्सयं ।”

तम्हा मेहुणસંસર્ગં નિર્ગંથા વજ્જયંતિ ણં ” ॥ ૧ ॥ (इति दशवै० अ० ६)

छाया—मूलमेतदधर्मस्य, महादोषसमुच्छ्रयम् ॥

तस्मान्मैथुनसंसर्ग, निर्ग्रन्था वर्जयन्ति तम् ॥ ૧ ॥ इति ।

“ઇચ્છેણં બાલમરણેણં મરમાણે જીવે અણંતેહિં નેરઙ્ગમવગ્ગહણેહિં અપ્પાણં સંજોણ્હ જાવ અણાણ્હયં ચ ણં અણવયગ્ગં ચાઉરંતં સંસારકંતારં મુજ્જો મુજ્જો પરિયટ્ઠ” इति ।

अर्थात्—इस बालमरणसे मरनेवाला जीव अनन्त बार अपनी आत्माको नरकमें डालता है और वह अनादि अनन्त संसारमें परिभ्रमण करता है, इत्यादि, अतः जब आगममें इसका निषेध है तो वह उस निन्दित बालमरणका आचरण क्यों करता है ?

उत्तर—ऐसा नहीं कहना चाहिये, क्यों कि मैथुन सकल अधर्म का मूल है और अनेक दोषोंका पुञ्ज है । इसके सेवनसे समस्त व्रतोंका भंग होता है । इस प्रकार दशवैकालिकके अध्ययन छट्टेमें कहा है, जैसे—  
 “मूलमेयमहम्मस महादोससमुस्सयं” इत्यादि । यह मैथुन कर्म अधर्म

इच्चेणं बालमरणेणं मरमाणे जीवे अणंतेहिं नेरङ्गमवग्हणेहिं अप्पाणं संजोण्ह जाव अणाण्हयं च णं अणवयगं चाउरंतं संसारकंतारं मुज्जो मुज्जो परियट्ठ” इति ।

अर्थात्—આ બાલમરણથી મરવાવાળા જીવ અનન્તવાર પોતાના આત્માને નરકમાં નાખે છે, અને તે અનાદિ અનન્ત સંસારમાં પરિભ્રમણ કર્યા કરે છે. ઇત્યાદિ. આથી આગમમાં એનો નિષેધ છે તો પછી આવું બાળમરણનું નિન્દિત આચરણ કેમ કરે છે ?

ઉત્તર—એવું ન કહેવું જોઈએ. કેમ કે મૈથુન સકલ અધર્મનું મૂળ છે અને અનેક દોષોનો પુજ છે. એના સેવનથી સમસ્ત વ્રતોનો ભંગ થાય છે આ પ્રકારે દશવૈકાલિકના છઠ્ઠા અધ્યયનમાં કહેલ છે. જેમ—“મૂલમેયમહમ્મસ મહાદોસસમુસ્સયં” ઇત્યાદિ. એ મૈથુન કર્મ અધર્મનું મૂળ અને મહાદોષોની ખાણ છે,

અતસ્તત્સેવનાપેક્ષ્યાડપવાદિકબાલમરણમપિ પળિડતમરણમેવેત્યસ્યાત્રૈવ પ્રતિપા-  
દિતત્વાત્ । તદેવ દર્શયતિ—‘તત્રાડપો’—ત્યાદિ, તત્રાડપિ=ઉપસર્ગાભિભવાવસરે વૈહા-  
યસગાર્દ્ધપૃષ્ઠાદિમરણેડપિ તસ્ય=સમુપસ્થિતોપસર્ગાભિભવસ્ય મુનેઃ કાલપર્યાય એવ  
ચિરકાલં સંયમપરિરક્ષણં વિદધતો મુનેર્યથા દ્વાદશવાર્ષિકસંલેખનાવિધિના શરીરકુશીક-  
રણપૂર્વકાડનશનરૂપેણ કાલપર્યાયેણ ભક્તપરિજ્ઞાદિમરણં ગુણાય ભવતિ, તદ્વત્ તદા  
તસ્ય વૈહાયસ—ગાર્દ્ધપૃષ્ઠમરણમપિ ગુણાયૈવેત્યાશયઃ । યઃ કોડપિ બહુભિરપિ કાલ-  
પર્યાયૈર્યાવન્તિ કર્માણ્યપનયતિ તાવન્તિ ચ કર્માણિ સ સ્તોકે નૈવ કાલેન દૂરી-  
કા મૂલ ઓર મહાદોષોં કી ર્વાન હૈ । ંસા સમદ્ધ કર હી નિર્ગ્રન્થ ંસકા  
સેવન નહીં કરતે હૈ ।

હસલિયે ંસકે સેવનકી અપેક્ષા અપવાદસ્વરૂપ બાલ મરણ  
ભી પળિડતમરણ હી હૈ, યહ બાત યહાં પર પ્રતિપાદિત કી ગઈ  
હૈ । ંસી વિષયકો સૂત્રકાર દિરલાતે હૈ—‘તત્થવિ’—હત્યાદિ, ઉપસર્ગ-  
જન્ય અભિભવકે સમયમેં વૈહાયસ ઓર ગાર્દ્ધપૃષ્ઠ આદિ બાલમરણ હોને  
પર ભી જૈસે ચિરકાલ તક સંયમકી રક્ષા કરનેવાલે મુનિકે લિયે બારહ  
વર્ષ કી સંલેખનાવિધિસે શરીરકો કુશ કરનેપૂર્વક અનશનરૂપ કાલપ-  
ર્યાયસે ભક્તપરિજ્ઞાદિ મરણ લાભદાયક હોતા હૈ ંસી પ્રકાર ઉપસર્ગ-  
જન્ય અભિભવ જિસ મુનિકે ઉપસ્થિત હો ચુકા હૈ ંસ મુનિકે લિયે  
વૈહાયસ ઓર ગાર્દ્ધપૃષ્ઠ મરણ ભી લાભદાયક હોતા હૈ । જો કોઈ ભી અવ્રતી  
પ્રાણી બહુત કાલપર્યાયોં દ્વારા જિતને કર્મોંકા નાશ કરતા હૈ ંતને કર્મોંકા  
નાશ વહ મુનિ થોડેસે હી કાલમેં કર દેતા હૈ । ંસી અર્થકો પ્રકટ કરતે હુપ

એવું સમજીને જ નિર્ગ્રન્થ એનું સેવન કરતા નથી.

આ કારણે એના સેવનની અપેક્ષા અપવાદસ્વરૂપ બાલમરણ પણ પંડિતમરણ  
જ છે, એ વાત પણ અહિં પ્રતિપાદિત કરવામાં આવી છે. આ વિષયને સૂત્રકાર  
બતાવે છે—‘તત્થ વિ’ ઇત્યાદિ.

ઉપસર્ગજન્ય અભિભવના સમયે વૈહાયસ અને ગાર્દ્ધપૃષ્ઠ આદિ બાલમરણ  
થવાથી પણ જેમ ચિરકાળ સુધી સંયમની રક્ષા કરવાવાળા મુનિને  
માટે બાર વર્ષની સંલેખનાવિધિથી શરીરને કુશ—નબળું કરવાની સાથે અનશનરૂપ  
કાલપર્યાયથી ભક્તપરિજ્ઞાદિમરણ લાભદાયક થાય છે એ જ રીતે ઉપસર્ગજન્ય  
અભિભવ જે મુનિના ઉપર આવી પડે છે એ મુનિ માટે પણ વૈહાયસ અને  
ગાર્દ્ધપૃષ્ઠ મરણ પણ લાભદાયક બને છે. જેમ કોઈ અવ્રતી પ્રાણી લાંબા કાળને  
અતે કાલપર્યાયોંદ્વારા જેટલા કર્મોંનો નાશ કરી શકે છે એટલા જ કર્મોંનો નાશ તે

કરોતીતિ હૃદયમ્ । તમેવાર્થ પ્રકટ્યન્નાહ-‘સોડપી-’ત્યાદિ, સોડપિ=વૈહાયસાદિ-  
કારી ‘અપિ’ શબ્દેન કેવલભક્તપરિજ્ઞાદેરાનુપૂર્વ્યા ન કારકઃ, इत्यर्थो द्योत्यते,  
તત્ર વૈહાયસાદિમરણે ‘વ્યન્તિકારકઃ’ વિ=વિશેષેણ અન્તિઃ-વ્યન્તિઃ=અન્તક્રિયા,  
તસ્યાઃ કારકઃ વ્યન્તિકારકઃ=સંસારાન્તકારકો મુનિર્ભવતિ, અત એવ તસ્ય  
તદા વૈહાયસાદિમરણમપ્યૌત્સર્ગિકમેવેત્યભિપ્રાયઃ । ઉપસંહરન્નાહ-‘इत्येत’-दित्यादि,  
इति=पूर्वोक्तम् एतत्=वैहायसगार्द्धपृष्ठमरणं, વિમોહાયતનમ્ વિ=વિગતો મોહઃ=  
અવિવેકો યેષાં તે વિમોહાઃ=મોહરહિતાઃ મહાપુરુષાસ્તેષામ્ આયતનં કર્તવ્યતયા  
સ્થાનમ્ વિમોહાયતનમ્, एवं हितम्=इष्टम् कल्याणकारित्वात्, તથા સુખં શિવસુ-  
ખજનકં કર્મનિર્જરાપૂર્વકમવ્યાવાધામન્દાનન્દસન્દોહજનકત્વાત્, एवं क्षमं=समर्थ

સૂત્રકાર ‘સોચિ’ इत्यादि सूत्रांश कहते हैं-यहां ‘अपि’ शब्द यह प्रकट  
करता है कि केवल भक्तपरिज्ञा आदिको अनुक्रमसे नहीं करनेवाला भी  
वह वैहायस आदि मरण प्राप्तकरनेवाला मुनि उस मरणमें भी अन्तक्रिया  
रूप संसारका अन्त करनेवाला होता है, इसलिये उसका वैहायस आदि  
मरण भी औत्सर्गिक ही है ।

इस विषयका उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि यह वैहा-  
यस और गार्द्धपृष्ठ मरण विमोहायतन-जिनका मोह-अविवेक नष्ट  
हो चुका है ऐसे मोहरहित महापुरुषोंका कर्तव्यरूपसे स्थान-है, यह  
कल्याणकारी होनेसे हित-इष्ट है, कर्मोंकी निर्जरापूर्वक अव्यावाध अमन्द  
आनंदपरम्पराका जनक होनेसे वह सुख-सुखस्वरूप है, अर्थात् शिवसुखका

મુનિ થોડા જ કાળમાં કરી દે છે. આ અર્થને પ્રગટ કરતાં સૂત્રકાર “સોડવિ”  
इत्यादि सूत्रांश કહે છે-અહિં “अपि” शब्द એવું પ્રગટ કરે છે કે કેવળ ભક્ત-  
પરિજ્ઞા આદિને અનુક્રમથી ન કરવાવાળા પણ એ વૈહાયસ આદિ મરણ પ્રાપ્ત  
કરનાર મુનિ એ મરણમાં પણ અન્તક્રિયારૂપ સંસારનો અન્ત કરવાવાળા હોય  
છે. આ કારણ એનું વૈહાયસ આદિ મરણ પણ ઔત્સર્ગિક જ છે.

આ વિષયનો ઉપસંહાર કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે આ વૈહાયસ અને  
ગાર્દ્ધપૃષ્ઠ મરણ વિમોહાયતન-જેમનો મોહ-અવિવેક નષ્ટ થઈ ચુકેલ છે, એવા  
મોહરહિત મહાપુરુષોનું કર્તવ્યરૂપથી સ્થાન-છે. એ કલ્યાણકારી હોવાથી હિત-ઈષ્ટ  
છે. એ કર્મોની નિર્જરાપૂર્વક અવ્યાવાધ અમન્દ આનંદપરંપરાને આપનાર હોવાથી  
તે સુખ-સુખસ્વરૂપ છે, અર્થાત્ શિવસુખના આપનાર છે, વળ જ પ્રકારે પર્વતોનું



વજ્રવત્ કર્મવિદારણશક્તિમત્વાત્, તથા નિઃશ્રેયસં-નિઃશ્રેયસકારકં કર્માપનયનવિધાયક-  
ત્વાત્, એવમ્ આનુગામિકમ્ આત્મનો જન્મમરણાદ્યનન્તદુઃખજાલમુચ્છેદ્ય મોક્ષાનુકૂલ-  
ગમનકારકત્વાત્ । એતાદૃશં મરણં તસ્ય મુનેર્મજ્જલરૂપમેવ ભવતીતિ ભાવઃ । 'ઇતિ  
બ્રવીમી' -ત્યસ્યાર્થસ્તૂક્તરીત્યા બોધ્યઃ ॥ સૂ૦ ૪ ॥

॥ અષ્ટમાધ્યયનસ્ય ચતુર્થ ઉદ્દેશઃ સમાપ્તઃ ॥ ૮-૪ ॥

દેનેવાલા હૈ । વજ્ર જિસ પ્રકાર પર્વતોંકો ભેદ દેતા હૈ:ઉસી પ્રકાર યહ  
મરણ બી કર્મોંકે વિદારણ કરનેમેં સમર્થ હોનેસે ક્ષમ-શક્તિશાલી હૈ । તથા  
કર્મોંકો આત્માસે ભિન્ન કરાનેવાલા હોનેસે યહ નિઃશ્રેયસ-મોક્ષકા કારક  
હૈ, ઓર આત્માકો જન્મ મરણ આદિ અનન્તદુઃખરૂપી પાશકા ઉચ્છેદન  
કર મોક્ષકી ઓર લે જાનેવાલા હોનેસે આનુગામિક હૈ । એસા યહ મરણ  
ઉસ મુનિકે લિયે મજ્જલરૂપ હી હોતા હૈ ॥ સૂ૦ ૪ ॥

॥આઠવેં અધ્યયનકા ચતુર્થ ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥૮-૪॥

ભેદન કરે છે એ જ રીતે આવું મરણ પણ કર્મોનો નાશ કરવામાં સમર્થ હોવાથી  
ક્ષમ-શક્તિશાળી છે. તથા કર્મોને આત્માથી ભિન્ન કરનાર હોવાથી તે નિઃશ્રેયસ-મોક્ષ  
આપનાર છે. અને આત્માને જન્મ મરણાદિ અનન્ત દુઃખરૂપી ફાંસલાનું છેદન કરી  
મોક્ષની તરફ લઈ જનારા હોવાથી તે આનુગામિક છે. એવું મરણ તે મુનિને  
માટે મંગળરૂપ થાય છે. (સૂ૦ ૪)

આઠમા અધ્યયનનો ચોથો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૮-૪ ॥

## । अथाष्टमाध्ययनस्य पञ्चम उद्देशः ।

अथ चतुर्थोद्देशकथनानन्तरं सम्प्रति पञ्चमोद्देशः समारम्भ्यते । अस्यानन्तरोद्देशेन सहाज्यमभिसम्बन्धः—अनन्तरोद्देशे स्त्रीप्रभृत्युपसर्गाभिमभवप्राप्तौ वैहायस—गार्द्ध-पृष्ठादिकं बालमरणं मुनेराचरणीयमित्युक्तम् । इह तु रोगादिना ग्लानिमुपगतो मुनिस्तद्विपरीतं भक्तपरिज्ञाख्यं मरणमङ्गीकुर्यादिति प्रतिपादयन् मुनेर्ग्लानतामुप-वर्णयितुं तावत्प्रक्रमते—‘जे भिक्खू’ इत्यादि ।

मूलम्—जे भिक्खू दोहिं वत्थेहिं परिवुसिए पायतइएहिं, तस्स णं नो एवं भवइ--तइयं वत्थं जाइस्सामि । से अहेस णिज्जाइं वत्थाइं जाइज्जा जाव एवं खु तस्स भिक्खुस्स साम-गियं । अह पुण एवं जाणिज्जा उवाइक्कंते खलु हेमंते गिम्हे पडिवण्णे अहापरिजुन्नाइं वत्थाइं परिट्ठविज्जा अदुवा संतरुत्ते, अदुवा ओम-

## आठवें अध्ययनका पाँचवाँ उद्देश ।

चतुर्थ उद्देशके कथन करने बाद अब पंचम उद्देशका कथन प्रारंभ होता है, इसका चतुर्थ उद्देशके साथ यह संबंध है—वहां ‘निष्प्रतीकार स्त्री आदि द्वारा कृत उपसर्गसे अभिभव प्राप्त होने पर मुनिको अन्य उपायके अभावसे वैहायस एवं गार्द्धपृष्ठ मरण आदि मरण अङ्गीकार कर लेना चाहिये’ यह बात समझाई गई है । इस उद्देशमें “ ग्लानि को प्राप्त हुआ मुनि उससे विपरीत भक्तपरिज्ञा नामक मरण अङ्गीकार करे ” इस विषयका वर्णन किया जायगा, अतः मुनिकी ग्लानताका वर्णन करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं—“ जे भिक्खू ” इत्यादि ।

## आठमा अध्ययननो पांचमो उद्देश.

चौथा उद्देशना कथन बाद हुवे पांचमा उद्देशनो प्रारंभ थाय छे. तेनो चौथा उद्देशनी साथे ओवो संबंध छे—त्यां निष्प्रतीकार स्त्री आदि द्वारा कइओला उपसर्गथी अलिखव. प्राप्त थतां मुनिओ अन्य उपाय न होवाथी वैहा-यस ओने गार्द्धपृष्ठ मरण आदि मरण अङ्गीकार करी देवुं जेधओ, ओ बात समझववाभां आवेल छे. आ उद्देशमां “ ग्लानिथी भरपूर मुनि तेनाथी विप-रीत भक्तपरिज्ञा नामना मरणने अङ्गीकार करे ” आ विषयनुं वर्णन करवाभां आवेशे. आथी मुनिनी ग्लानिनुं वर्णन करवा माटे सूत्रकार कहे छे—“ जे भिक्खू ” इत्यादि.

ચેલે, અદુવા ઇગસાડે, અદુવા અચેલે, લાઘવિયં આગમમાણે તવે સે  
અભિસમન્નાગણ ભવઈ। જમેયં ભગવયા પવેઈયં તમેવ અભિસમિચ્ચા  
સવ્વઓ સવ્વત્તાણ સમત્તમેવ સમભિજાણિયા। જસ્સ ણં ભિક્ખુસ્સ  
એવં ભવઈ-પુટ્ટો અવલો અહમંસિ નાલમહમંસિ ગિહંતરસંકમણં  
ભિક્ખારિયગમણાણ, સે એવં વયંતસ્સ પરો અભિહંડં અસણં વા ૪  
આહટ્ટુ દલહજ્જા, સે પુવ્વામેવ આલોહજ્જા-આડસંતો ! ગાહા-  
વઈ ! નો ચલુ મે કલ્પઈ અભિહંડં અસણં વા ૪ મુત્તણ વા પાચણ  
વા, અન્ને વા ઇયપ્પગારે ॥ સૂ. ૧ ॥

છાયા—યો ભિક્ષુર્દ્વાભ્યાં વસ્ત્રાભ્યાં પર્યુષિતઃ પાત્રતૃતીયાભ્યાં, તસ્ય ચલુ નો  
એવં ભવતિ—તૃતીયં વસ્ત્રં યાચિષ્યે। સ યથૈષણીયાનિ વસ્ત્રાણિ યાચેત યાવત્—એવં ચલુ  
તસ્ય ભિક્ષોઃ સામ્યમ્। અથ પુનરેવં જાનીયાત્ ઉપાતિક્રાન્તઃ ચલુ હેમન્તઃ,  
ગ્રીષ્મઃ પ્રતિપક્ષઃ, યથાપરિજીર્ણાનિ વસ્ત્રાણિ પરિષ્ઠાપયેત્, અથ વા સાન્તરોત્તરઃ,  
અથવા અવમચેલઃ, અથવા એકશાટઃ, અથવા અચેલઃ, લાઘવિકમાગમયન્  
તપસ્તસ્યાભિસમન્વાગતં ભવતિ, યદેતદ્ ભગવતા પ્રવેદિતમ્ તદેવાભિસમેત્ય સર્વતઃ  
સર્વાત્મતયા સમ્યક્ત્વમેવ સમભિજાનીયાત્। યસ્ય ચલુ ભિક્ષોરેવં ભવતિ—સ્પૃષ્ટોઽવ-  
લોઽહમસ્મિ, નાલમહમસ્મિ ગૃહાન્તરસંક્રમણં ભિક્ષાચર્યાગમનાય, તદેવં વદતઃ પરો-  
ઽભિહતમશનં વા ૪ આહસ્ય દદ્યાત્, સ પૂર્વમેવાઽલોચયેત્—આયુષ્મન્ ! ગાથાપતે !  
નો ચલુ મે કલ્પતેઽભિહતમશનં ૪; ભોક્તું વા પાતું વા, અન્યાનપ્યેવંપ્રકારાન્ ॥ સૂ. ૧ ॥

ટીકા—‘યો ભિક્ષુ’—રિત્યાદિ, પૂર્વોદ્દેશે ત્રિકલ્પપર્યુષિતઃ સ્થવિરકલ્પિકો  
ભવેત્, કલ્પદ્વયપર્યુષિતો હિ નિયમતો જિનકલ્પિક—પરિહારવિશુદ્ધિક—યથાલન્દિક

પૂર્વ—ચતુર્થ ઉદ્દેશમેં યહ બતલાયા જા ચુકા હૈ કિ સ્થવિરકલ્પી  
મુનિ ત્રીન વસ્ત્ર ઓર એક પાત્રસે વ્યવસ્થિત હોતા હૈ, અર્થાત્  
ત્રીન વસ્ત્રોંકો રાખનેકે કલ્પવાલા સ્થવિરકલ્પી હોગા। યહાં  
દો વસ્ત્ર રાખનેકા કલ્પ જો પ્રકટ ક્રિયા ગયા હૈ ઉસસે  
યહ ઘાત માલૂમ હોતી હૈ કિ દો વસ્ત્રોંકે રાખનેકા કલ્પવાલા

આગળના ચોથા ઉદ્દેશમાં એવું બતાવવામાં આવેલ છે કે સ્થવિરકલ્પી  
મુનિ ત્રણ વસ્ત્ર અને એક પાત્રથી વ્યવસ્થિત હોય છે, અર્થાત્ ત્રણ વસ્ત્રો રાખવાના  
કલ્પવાળા સ્થવિરકલ્પી સાધુ હોય છે. એ વસ્ત્ર રાખવાનો કલ્પ જો પ્રગટ કરેલ છે  
તેનાથી એ વાત માલુમ થાય છે કે એ વસ્ત્રના રાખવાવાળા સાધુ નિયમથી જીનકલ્પી,



-પ્રતિમાપ્રતિપન્નેષ્વન્યતમોઽજ કથિતઃ । દ્વાભ્યાં વસ્ત્રાભ્યાં પર્યુષિતઃ, इत्यनेनैकः कार्पासिकोऽपर और्णिकः, इति गृह्यते, वस्त्रसामान्यवाचित्वप्रतिपादनात् । ‘जे भिक्षू’ इत्याधारभ्य ‘समत्तमेव समभिजाणिया’ इत्यन्तस्य व्याख्या त्वेतदध्ययनस्य चतुर्थोद्देशान्तर्गत-प्रथम-द्वितीय-तृतीय-सूत्रव्याख्यावद्भिज्ञेया, नवरमत्र पात्रतृतीयं वस्त्रद्वयं भवतीति, ततोऽधिकं न याचेत । यस्य खलु भिक्षोरेवं भवति-अहं स्पृष्टः=

સાધુ નિયમસે જિનકલ્પી, પરિહારવિશુદ્ધિક, યથાલન્દિક એવં પ્રતિમા-પ્રતિપન્ન, इन साधुओंमें से कोई एक होगा । “द्वाभ्यां वस्त्राभ्यां पर्युषितः” इस कथनसे यद्यपि सामान्यतया दो वस्त्रोंके ही रखनेका कल्प कथित हुआ है परन्तु उन दो वस्त्रोंमें एक वस्त्र सूत्रका और एक वस्त्र ऊनका बना हुआ कम्बल, ऐसे दो वस्त्र ही परिगणित हुए हैं, अतः वस्त्रसामान्य अर्थका प्रतिपादन करनेवाले इस वस्त्र शब्दसे इन दो वस्त्रोंका ही यहां ग्रहण हुआ है, ऐसा समझना चाहिये । “जे भिक्षू” यहांसे ले कर “समत्तमेव समभिजाणिया” यहां तकके पदोंकी व्याख्या इस अध्ययनके चतुर्थ उद्देशके अन्तर्गत पहिले दूसरे तीसरे सूत्रोंकी व्याख्या जैसी ही समझनी चाहिये । उनमें तीन वस्त्र और एक पात्रको लेकर व्याख्या की गई है यहां पर दो वस्त्र एक पात्रको ले कर व्याख्या होगी, बस उनसे इस सूत्रके पदोंकी व्याख्यामें यही विशेषता है, इस लिये इस व्याख्या के अनुसार मुनि अधिक की याचना न करे ।

પરિહારવિશુદ્ધિક, યથાલન્દિક, અને પ્રતિમાપ્રતિપન્ન, એવા સાધુઓમાંથી અહીં કોઈ એકનું ગ્રહણ કરેલ છે. “દ્વાભ્યાં વસ્ત્રાભ્યાં પર્યુષિતઃ” આ કથનથી યદ્યપિ સામાન્યતયા બે વસ્ત્રને જ રાખવાનો કલ્પ કથિત થયેલ છે, પરન્તુ તે બે વસ્ત્રોમાં એક સુતરનું અને એક વસ્ત્ર ઉનનું બનેલ કમ્બલ, એવાં બે વસ્ત્ર જ પરિગણિત થયેલ છે માટે વસ્ત્રસામાન્ય અર્થનું પ્રતિપાદન કરવાવાળા આ વસ્ત્ર શબ્દથી આ બે વસ્ત્રોનો જ સ્વીકાર કરેલ છે, એવું સમજવું જોઈએ. “જે ભિક્ષૂ” અહીંથી લઈ “સમત્તમેવ સમભિજાણિયા” અહિં સુધીના પદોની વ્યાખ્યા આ અધ્યયનના ચોથા ઉદ્દેશના અંતર્ગત પહેલા બીજા અને ત્રીજા સૂત્રની વ્યાખ્યા જેવી જ સમજવી જોઈએ. તેમાં ત્રણ વસ્ત્ર અને એક પાત્રને લઈને વ્યાખ્યા કરવામાં આવેલ છે, અહિં બે વસ્ત્ર અને એક પાત્રને લઈને વ્યાખ્યા થશે. બસ આથી આ સૂત્રના પદોની વ્યાખ્યામાં એ જ વિશેષતા છે, તેને માટે આ વ્યાખ્યાનુસાર મુનિ અધિકની યાચના ન કરે.

વાતાદિરોગવિશેષૈઃ પીડિતઃ, અવલઃ=શક્તિરહિતોઽસ્મિ, અત એવ મિશ્નાચર્યાગમ-  
નાય=મિશ્નાચર્ય ગૃહાન્તરસંક્રમણં=ગેહાદ્ ગેહાન્તરગમનં કર્તુમ્ અહં નાલમસ્મિ=સમર્થો  
નૈવાસ્મીતિ । તદેવમ્=इत्येवम् एतादृशवाक्यं वदतः साधोः उपलक्षणाद् अवदतोऽपि च  
परः=गाथापतिः प्रकृतिभद्रकः सम्प्रदायानुरक्तो वा अभिहतं=षड्जीवनिकायविराध-  
નાસમ્પાદિતમ્ અશનં=चतुर्विधमाहारम् अभिहत्य=स्वगृहादितः समानीय दद्यात् ।  
તદ્-ગૃહસ્થોપકલ્પિતમશનાદિકં પરિહરતા જીવનસ્પૃહારહિતેન ગ્લાનેનાઽપિ મુનિના  
વીતરાગોપદેશમનુગચ્છતા મરણમપિ સ્વીકાર્યં ન તુ તદશનાદિકં ગ્રાહ્યમિત્યાશયઃ ।

उनके बादके पदोंकी व्याख्या इस प्रकार है—जिस भिक्षुके चित्तमें  
इस प्रकारका विचार आता है कि—“ मैं वात आदि रोगविशेषोंसे आ-  
क्रान्त हो कर शक्तिरहित हो गया हूँ अतः भिक्षाचर्या निमित्त  
एक घरसे दूसरे घर जानेकी अब मुझमें शक्ति नहीं रही है ” इस प्रकार  
से कहनेवाले अथवा उपलक्षणसे नहीं कहनेवाले उस साधुके निमित्त  
कोई गृहस्थ, कि जो प्रकृतिसे भद्र एवं अपने सम्प्रदायमें अनुरक्त है,  
वह षड्जीवनिकायकी विराधनासे संपन्न हुए चार प्रकारके आहारको  
अपने घरसे मुनिके स्थानपर ला कर यदि उन्हें देवे तो गृहस्थद्वारा लाये  
गये उस आहारादिकको, अपने जीवनमें भी स्पृहारहित बना हुआ वह  
ग्लान साधु न लेवे, और वीतरागके उपदेशका अनुसरण करनेवाला होनेसे  
वह अपनी मृत्यु तककी भी परवाह न करे । इस अवस्थामें उसकी यदि  
मृत्यु भी हो जाय तो वह अच्छी, पर उसे अकल्पनीय उस अभ्याहत  
आहारादिकका ग्रहण करना कथमपि ठीक नहीं है । इस लिये जिनक-

તેના પછીના પદોની વ્યાખ્યા આ પ્રકારની છે—જે ભિક્ષુના ચિત્તમાં આ  
પ્રકારનો વિચાર આવે છે કે—“હું વાત આદિ રોગોથી વ્યાકુળ બની શક્તિરહિત  
બની ગયેલ છું માટે ભિક્ષાચર્યા નિમિત્ત એક ઘરેથી બીજા ઘરે જવાની  
હવે મારામાં શક્તિ રહી નથી ” આ પ્રકારથી કહેવાવાળા અથવા ઉપલક્ષણથી  
નહીં કહેવાવાળા એ સાધુના નિમિત્ત કોઈ ગૃહસ્થ કે જે પ્રકૃતિથી ભદ્ર અને  
પોતાના સંપ્રદાયનો અનુરાગી છે તે ષડ્જીવનિકાયની વિરાધનાથી સંપન્ન બનેલ  
આ પ્રકારના આહારને પોતાને ઘરથી મુનિના સ્થાનપર લાવીને તે તેને આપે તો  
ગૃહસ્થદ્વારા લાવવામાં આવેલ એ આહારાદિકનો પોતાના જીવનમાં પણ સ્પૃહારહિત  
બનેલ ગ્લાન સાધુ ન લે, અને વીતરાગના ઉપદેશનું અનુસરણ કરવાવાળા  
હોવાથી તે પોતાના મૃત્યુ સુધીની પરવા પણ ન કરે, આ અવસ્થામાં કદાચ  
તેનું મૃત્યુ પણ થઈ જાય તો પણ અકલ્પનીય એ અભ્યાહત આહારાદિકનું અહણ



તદા મુનિઃ કિં કુર્યાદિત્યાહ-‘સ’ ઇત્યાદિ-સઃ=જિનકલ્પિકાદ્યન્યતમો મુનિઃ પૂર્વમેવ= આહારાદિગ્રહણાત્પ્રથમમેવ આલોચયેત્=‘અધઃકર્માદિદોષદૂષિતતયાઽભ્યાહતતયા ચ પ્રાસુકમપ્યશનાદિકમેતન્ન મમ કલ્પતે, તત્સેવનાપેક્ષયા મરણમેવ શ્રેયઃ’ ઇતિ વિચારયેત્, તં ગૃહપતિં સંબોધયેચ્ચ, તદ્યથા-હે આયુષ્મન્ ! ગાથાપતે ! એતદભ્યા-હતમશનં ચતુર્વિધમ્ સદોષં નિર્દોષં વા યથાયોગ્યં ભોક્તુમુપભોક્તું વા પાતું વા અ-ન્યાનપિ=અશનાદ્યતિરિક્તાનપિ વસ્ત્ર-પાત્રાદિકાન્ એતત્પ્રકારાન્ અભ્યાહતાન્ અધઃકર્માદિદોષદુષ્ટાન્ વા ન મમ કલ્પત ઇતિ, ઇત્યેવં દાતુમુદ્યતં ગૃહપતિમનાસેવ-નયાઽઽજ્ઞાપયેત્ ॥ સૂ. ૧ ॥

લ્પિક આદિ મુનિજનોં મેં સે કોઈં મી મુનિજન કયોં ન હો વહ આહાર આદિકે ગ્રહણકે પહિલેહીં હસ બાત કી આલોચના કરેકિં યહ “આહાર આદિ સામગ્રી આધાકર્મી આદિ દોષોંસે દૂષિત હોનેસે, એવં અભ્યાહત-લાઈ ગઈં હોનેસે પ્રાસુક હોને પર મી મુજે કલ્પ્ય નહીંં હૈ, હસકે સેવનકી અપેક્ષા મરણ હી અચ્છા હૈ” એસા વિચાર કરે. તથા લાકર દેને-વાલેં હસ ગૃહસ્થકો મીં હસ પ્રકાર સમજાવેકિ-“હે આયુષ્મન્ ! ગૃહસ્થ! યહ લાયા ગયા ચારોં પ્રકારકા આહાર, અથવા યથાયોગ્ય વસ્ત્ર પાત્ર આદિ અન્ય વસ્તુએં જો હસીં પ્રકાર કી હૈંં ચાહે સદોષ હોંં ચાહે નિર્દોષ હોંં, મેરે ભોગ ઉપભોગ એવં પાનકે યોગ્ય નહીંંં હૈં, કયોંં કિં યે સબ આધા કર્માદિદોષોંસે યુક્ત હૈંં . આધાકર્માદિદોષવિશિષ્ટ આહારાદિક સામગ્રી સાધુ કો કલ્પ્ય નહીંંં માની ગઈં, હૈંં હસ લિયે મેંં હન સબકા પરિહાર કરતા હુંં .” સૂ. ૧ ॥

કરવુંં હીક નથી. આમાં જીનકલ્પી આદિ મુનિજનોમાંથી કોઈ પણ મુનિજન કેમ ન હોય તે આહાર આદિનું ગ્રહણ કરતાં પહેલાં જ આ વાતનો વિચાર કરે કે “આ આહાર આદિ સામગ્રી આધાકર્મી આદિ દોષોથી દૂષિત હોવાથી, અને અભ્યાહત-લાવવામાં આવેલ હોવાથી પ્રાસુક હોવા છતાં પણ મારા માટે કલ્પ્ય નથી, એના સેવનની અપેક્ષા મરણ જ સાઈ છે” એવો વિચાર કરે. અને લાવીને આપનાર એ ગૃહસ્થને પણ આ પ્રકારથી સમજાવે કે—“હે આયુષ્મન્ ! ગૃહસ્થ ! આ લાવવામાં આવેલ ચારે પ્રકારનો આહાર, અથવા યથાયોગ્ય વસ્ત્ર પાત્ર આદિ અન્ય વસ્તુઓ જે એ પ્રકારની છે. ચાહે સદોષ હોય, ચાહે નિર્દોષ હોય, મારા ભોગ ઉપભોગ અને પાનના યોગ્ય નથી કેમ કે એ બધું આધા-કર્માદિ દોષોથી ભરેલ છે. આધાકર્માદિદોષવિશિષ્ટ આહારાદિક સામગ્રી સાધુને માટે કલ્પ્ય માનવામાં આવેલ નથી, આ માટે હું આ બધાનો ત્યાગ કરું છું.” (સૂ. ૧)



किं चान्यदप्याह—‘जस्स णं’ इत्यादि ।

मूलम्—जस्स णं भिक्खुस्स अयं पगप्पे—अहं च खलु पडि-  
न्नत्तो अपडिन्नत्तेहिं, गिलाणो अगिलाणेहिं अभिकंख साहम्मि-  
एहिं कीरमाणं वेयावडियं साइज्जिस्सामि, अहं वावि खलु  
अप्पडिन्नत्तो पडिन्नत्तस्स अगिलाणो गिलाणस्स अभिकंख  
साहम्मियस्स कुज्जा वेयावडियं करणाए, आहट्टु परिन्नं अणु-  
क्खिस्सामि, आहडं च साइज्जिस्सामि ( १ ), आहट्टु परिन्नं  
आणक्खिस्सामि आहडं च नो साइज्जिस्सामि ( २ ), आहट्टु  
परिन्नं नो आणक्खिस्सामि आहडं च साइज्जिस्सामि ( ३ ),  
आहट्टु परिन्नं नो आणक्खिस्सामि आहडं च नो साइज्जि-  
स्सामि ( ४ )। एवं से अहाकिट्ठियमेव समभिजाणमाणे संते  
विरए सुसमाहियलेसे तत्थवि तस्स कालपरियाए से तत्थ  
विअंतिकारए, इच्चेयं विमोहाययणं हियं सुहं खमं निस्सेयसं  
आणुगामियं—तिवेमि ॥ सू० २ ॥

छाया—यस्य खलु भिक्षोरयं प्रकल्पः—अहं च खलु प्रतिज्ञप्तोऽप्रतिज्ञप्तैः,  
ग्लानोऽग्लानैरभिकाङ्क्ष्य साधर्मिकैः क्रियमाणं वेयावृत्त्यं स्वादयिष्यामि, अहं चापि  
खलु अप्रतिज्ञप्तः प्रतिज्ञप्तस्य अग्लानो ग्लानस्य अभिकाङ्क्ष्य साधर्मिकस्य कुर्यां  
वेयावृत्त्यं करणाय । आहत्य परिज्ञामन्वेषयिष्यामि, आहतं च स्वादयिष्यामि १,  
आहत्य परिज्ञामन्वेषयिष्यामि आहतं च नो स्वादयिष्यामि २, आहत्य परिज्ञां नो  
अन्वेषयिष्यामि आहतं च स्वादयिष्यामि ३, आहत्य परिज्ञां नो अन्वेषयिष्यामि आहतं  
च नो स्वादयिष्यामि ४, एवं स यथाकीर्तितमेव धर्मं समभिजानन् शान्तः  
विरतः सुसमाहृतलेह्यस्तत्रापि तस्य कालपर्यायः । स तत्र व्यन्तिकारकः, इत्येतद्  
विमोहायतनं हितं सुखं क्षमं निःश्रेयसमानुगमिकमिति ब्रवीमि ॥ सू० २ ॥

और भी इसी विषयसे संबंधित बात सूत्रकार प्रकट करते हैं—  
‘जस्स णं’ इत्यादि ।

धी७ प७ आ ७ विषयथी संबंधित बात सूत्रकार प्रकट करे छे—  
“जस्स णं” इत्यादि.

ટીકા—‘યસ્યે’-ત્યાદિ, યસ્ય ભિક્ષોઃ=પરિહારવિશુદ્ધિકસ્ય યથાલન્દિકસ્ય વા ‘સ્વલુ’ વાક્યાલક્ષારે, અયં વક્ષ્યમાણઃ પ્રકલ્પઃ=આચારો ભવતિ । તમેવ દર્શયતિ—‘અહ’-મિત્યાદિ, ‘ચઃ’ સમુચ્ચયે, ‘સ્વલુ’ વાક્યાલક્ષારે, અપ્રતિજ્ઞપ્તૈઃ=કેનાપ્યનુક્તૈઃ=વૈયાવૃત્યકરણાય કેનાપ્યપ્રેરિતૈરિત્યર્થઃ, અગ્લાનૈઃ=સમુચિતકાર્યસહનશીલૈઃ પ્રતિજ્ઞપ્તઃ=વૈયાવૃત્યવિધાનાય પ્રોક્તઃ—‘વયં તવ સમુચિતં વૈયાવૃત્યં કરિષ્યામઃ’—ઇત્યભિહિતઃ વાતાદિક્ષોભેણ તપશ્ચર્યાદિના વા ગ્લાનઃ અહમ્ અભિકાઙ્ક્ષ્ય=નિર્જરામુદ્દિશ્ય સાધર્મિકૈઃ=એકકલ્પસ્થૈઃ સંયતૈઃ ક્રિયમાણં=વિધીયમાનં વૈયાવૃત્યં શુશ્રૂષાદિકં સ્વાદયિષ્યામિ=સ્વીકરિષ્યામિ, એતાદૃશો યસ્ય ભિક્ષોઃ પ્રકલ્પોઽસ્તીતિ પૂર્વેણ સમ્બન્ધઃ, સ ભિક્ષુસ્તાદૃશં કલ્પં પરિરક્ષન્ ભક્તપરિજ્ઞયા પ્રાણાંસ્ત્યજેત્, ન પુનરભિગ્રહં પરિખ્વળયેદિત્યાશયઃ । પૂર્વભિતરસાધર્મિકેણ વિધીયમાનવૈયાવૃત્યાનુજ્ઞાઽ-

સૂત્રકાર હસ સૂત્રમેં પરિહારવિશુદ્ધિ સંયમવાલે સાધુકા, અથવા યથાલન્દિક સાધુકા આચાર કેસા હોતા હૈ ? હસ વિષયકો પ્રદર્શિત કરતે હૈ—“વૈયાવૃત્ય કરનેકે લિયે કિસી અન્ય સાધુ દ્વારા પ્રેરિત નહીં કિયે ગયે એસે અગ્લાન-સમુચિત કાર્યસંપાદન કરનેમેં સહનશીલ સંયતોં દ્વારા “ હમ તુમ્હારી સમુચિત વૈયાવૃત્ય આદિ કરેંગે ” હસ પ્રકારસે કહા ગયા મૈ, જો હસ સમય વાતપિત્તાદિક દોષોંસે યા તપશ્ચર્યાંસે ગ્લાન હો રહા હું, અપને કમોંકી નિર્જરા કરનેકે ઉદ્દેશસે એકકલ્પસ્થ એન સાધુઓં દ્વારા કી ગઈ વૈયાવૃત્ય આદિકો સ્વીકાર કર લૂંગા ” હસ પ્રકારકા જિસ પરિહારવિશુદ્ધિકા યા યથાલન્દિક સાધુકા કલ્પ હોતા હૈ વહ ભિક્ષુ એસ પ્રકારકે કલ્પ-આચારકી રક્ષા કરતા હુઆ ભક્તપરિજ્ઞા નામક મરણ દ્વારા અપને પ્રાણોંકો છોડ દેવે પર અભિગ્રહકા યજ્ઞન ન કરે ।

સૂત્રકાર આ સૂત્રમાં પરિહારવિશુદ્ધિ સંયમવાળા સાધુનો અથવા યથાલન્દિક સાધુનો આચાર કેવો હોય છે ? આ વિષયને પ્રદર્શિત કરે છે—“વૈયાવૃત્ય કરવા માટે કોઈ અન્ય સાધુથી પ્રેરિત ન કરાયેલ એવા અગ્લાન એટલે સમુચિત કાર્ય સંપાદન કરવામાં સહનશીલ સંયતો દ્વારા “હું તમારી સમુચિત વૈયાવૃત્ય આદિ કરીશ” એ પ્રકારે કહેવાએલ હું જે આ સમયે વાતપિત્તાદિક દોષોથી અથવા તપશ્ચર્યાથી અકળાઈ રહ્યો છું. પોતાના કર્મોની નિર્જરા કરવાના ઉદ્દેશથી એક કલ્પસ્થ સાધુઓથી કરવામાં આવેલ વૈયાવૃત્ય આદિને સ્વીકાર કરી લઉંશ.” આ પ્રકારનું જેને પરિહારવિશુદ્ધિકં અને યથાલન્દિક સાધુનો કલ્પ હોય છે તે ભિક્ષુ આ પ્રકારનો કલ્પ-આચારની રક્ષા કરીને ભક્તપરિજ્ઞા નામનું મરણ સ્વીકારી પોતાનો પ્રાણ છોડી દે છે પણ અભિગ્રહનું ખંડન કરતા નથી.

મિહિતા, ઇદાનીં સ એવાન્યસ્ય વૈયાવૃત્યં વિદધાતીત્યાહ—‘અહ’—મિત્યાદિ, ‘ચઃ’ સમુચ્ચયે ‘અપિ’ શબ્દઃ પુનરર્થે પૂર્વસ્માદ્વિશેષપ્રદર્શનાય। અહં પુનઃ સ્વલ્ભગ્લાનઃ=રોગાદિરહિતઃ, અપ્રતિજ્ઞસ્ય=વૈયાવૃત્યકરણાય કેનાપ્યનુક્તઃ, પ્રતિજ્ઞસ્ય=કથિતસ્ય ગ્લાનસ્ય તપસા વાત-શૂલરોગાદિના વા પીડિતસ્ય સાધર્મિકસ્ય=સદશકલ્પિકસ્ય સાધોઃ કરણાય=ઉપકારાર્થં નિર્જરામભિકાઙ્ગ્ય વૈયાવૃત્યં કુર્યામિતિ । એતાદૃશો મુનિરભિગ્રહ-શિખરિશિખરપરિસરપરિચારી પ્રતિજ્ઞાં સ્વીકૃત્ય પ્રાણાન્ પરિહરેન્ ત્વમિગ્રહમિત્યાશયઃ । અભિગ્રહસ્વરૂપપ્રકટનાય ચતુર્મઙ્ગિકાં દર્શયતિ—‘આહદુ’—ઇત્યાદિ,

પહિલે કિસી સાધર્મી સાધુને વૈયાવૃત્ય કરને કે લિયે અપની સંમતિ પ્રદાન કી પર વહ્ ઇસ સમય સ્વયં કિસી દૂસરે સાધુકી વૈયાવૃત્ય કરને મેં લગ ગયા ઇસકે લિયે સૂત્રકાર “અહ”-મિત્યાદિ, સૂત્રાંશ કહતે હૈં—

“મૈં રોગાદિરહિત હૂં, વૈયાવૃત્ય કરનેકે લિયે મુશ્કસે કિસીને બી નહીં કહા હૈ, ઇસ લિયે પૂર્વમેં કથિત ગ્લાન સાધુકી કિ જો ઇસ સમય તપસ્યાસે અથવા વાત શૂલ રોગ આદિસે પીડિત હો રહા હૈ, અપને ઉપકારકે લિયે કમૌંકી નિર્જરાકી ચાહનાકે ઉદ્દેશકો લે કર વૈયાવૃત્ય કર દૂ” ઇસ પ્રકારકી ભાવનાવાલા મુનિ કિ જો અભિગ્રહરૂપી પર્વતકે શિખર કે પ્રદેશ તક પહુંચ ચુકા હૈ, અભિગ્રહ સ્વીકાર કર પ્રાણોંકો છોડ દેવે પર અપને અભિગ્રહકો ન છોડે ।

સૂત્રકાર અભિગ્રહકે સ્વરૂપકો પ્રકટ કરનેકે લિયે ચાર મંગોંકા પ્રદર્શન કરતે હૈં—“આહદુ” ઇત્યાદિ,

પહેલાં કોઈ સાધર્મી સાધુએ વૈયાવૃત્ય કરવા માટે પોતાની સંમતિ આપી પણ તે આ સમય કોઈ બીજા સાધુની વૈયાવૃત્ય કરવામાં લાગી ગયા, આને માટે સૂત્રકાર “અહ” ઇત્યાદિ સૂત્રાંશ કહે છે—

“હું રોગાદિકથી રહિત છું. વૈયાવૃત્ય કરવા માટે મને કોઈએ કહેલ નથી આ માટે પૂર્વમાં કહેવાએલ ગ્લાન સાધુની કે જે આ સમય તપસ્યાથી અથવા વાત શૂળ આદિ રોગથી પીડિત છે, પોતાના ઉપકારને માટે કર્મોની નિર્જરાની ચાહનાનો ઉદ્દેશ લઈને વૈયાવૃત્ય કરી આપુ” આ પ્રકારની ભાવનાવાળા મુનિ કે જે અભિગ્રહરૂપી પર્વતના શિખરના પ્રદેશ સુધી પહોંચેલ છે અભિગ્રહ સ્વીકારીને પ્રાણને છોડી દે, પણ અભિગ્રહ ન છોડે.

સૂત્રકાર અભિગ્રહના સ્વરૂપને પ્રગટ કરવા માટે ચાર ભંગોંતું પ્રદર્શન કરે છે—“આહદુ” ઇત્યાદિ.



કશ્ચિદેકઃ પરિજ્ઞાં=વક્ષ્યમાણામભિગ્રહરૂપામ્ આહૃત્ય=આદાય નિશ્ચિનોતિ અહં-ગ્લાન-  
સ્યાપરસ્ય ભિક્ષોઃ સાધર્મિકસ્યાશનાદિકમ્ અન્વેષયિષ્યામિ, વૈયાવૃત્ત્યં ચ કરિષ્યામિ,  
एवं परेण साधर्मिकेण मुनिना आहृतम् आनीतमशनादिकं स्वादयिष्यामि=ग्रही-  
ष्यामि । इति प्रथमो भङ्गः (१) ।

अपरः कश्चिदेवं प्रतिजानीते-‘अहं साधर्मिकार्थमशनादिकम् अन्वेषयिष्यामि=  
आनेष्यामि, तथा परेण आहृतम्=आनीतं च नो स्वादयिष्यामि=नो ग्रहीष्यामि’ ।  
इति द्वितीयो भङ्गः (२) ।

तथाऽन्य एवं अभिग्रहं करोति-‘अहं परार्थमाहारादिकं नो अन्वेषयिष्यामि=  
नाऽऽनेष्ये किन्तु इतरेणाऽऽहृतं स्वादयिष्यामि’ । इति तृतीयो भङ्गः (३) ।

कोई मुनि इस प्रकारका अभिग्रह लेते हैं कि-मैं किसी ग्लान मुनिके  
लिये अथवा साधर्मिक भिक्षुके लिये आहार पानी आदि ला दिया करूंगा  
और उनकी वैयावृत्त्य भी कर दिया करूंगा, तथा दूसरे साधर्मी मुनिद्वारा  
लाये गये आहारादिकका मैं स्वयं भी ग्रहण करूंगा । यह प्रथम भंग है । १ ।

दूसरा कोई ऐसा अभिग्रह करता है कि-मैं साधर्मिक साधुके लिये  
आहारादिक ला तो दिया करूंगा पर दूसरे कोईके द्वारा लाये गये  
आहारादिकका मैं सेवन नहीं करूंगा । यह द्वितीय भंग है । २ ।

कोई दूसरा ऐसा अभिग्रह करता है कि-मैं दूसरोंके लिये आहारादिक  
नहीं लाऊंगा पर दूसरा कोई मुझे ला देगा तो मैं उसका सेवन करूंगा ।  
यह तीसरा भंग है । ३ ।

कोई २ ऐसा अभिग्रह करते हैं कि-मैं न तो दूसरों के लिये आहा-

કોઈ મુનિ આ પ્રકારનો અભિગ્રહ લે છે કે હું કોઈ ગ્લાન મુનિ માટે અથવા  
સાધર્મિક ભિક્ષુ માટે આહાર પાણી આદિ લાવી આપીશ અને તેની સેવા આકરી  
પણ કરીશ, તથા બીજા સાધર્મી મુનિ મારફત લાવેલા આહારાદિકનું હું ગ્રહણ  
કરીશ. આ પ્રથમ ભંગ છે. (૧)

બીજા કોઈ એવો અભિગ્રહ કરે છે કે હું સાધર્મી સાધુ માટે આહારાદિક લાવી  
આપીશ પણ બીજા કોઈની મારફત લાવેલા આહારાદિકનું હું સેવન નહીં કરું.  
આ બીજો ભંગ છે. (૨)

કોઈ એવો અભિગ્રહ કરે છે કે હું બીજાઓ માટે આહારાદિક નહીં લાવું  
પણ બીજા કોઈ લાવશે તો હું તેનું સેવન કરીશ. આ ત્રીજો ભંગ છે. (૩)

કોઈ કોઈ એવો અભિગ્રહ કરે છે કે હું બીજાઓને માટે આહારાદિક

અપરશ્વેતાદૃશમભિગ્રહં કરોતિ--‘ અહં પરાર્થમશનાદિકં નાન્વેષયિષ્યામિ, પરેણાઽઽહતમપિ નો સ્વાદયિષ્યામિ ’ । ઇતિ ચતુર્થો ભક્તઃ (૪) ।

ઇતિ બહુવિધમભિગ્રહં સ્વીકૃત્ય ગ્લાયમાનોઽપિ જીવિતં પરિજહ્યાન્ન પુનરભિગ્રહં ત્યજેદિતિ પરમાર્થઃ । તમેવાર્થમુપસંહરન્નાહ-‘ એવ ’-મિત્યાદિ, સઃ=અનગારઃ પરિજ્ઞાતતત્ત્વઃ એવં=પૂર્વોક્તં યથાકીર્તિતમેવ=યથોક્તમેવ ધર્મમ્=અભિગ્રહસ્વીકરણરૂપં સમભિજ્ઞાનન્=આસેવનપરિજ્ઞયાઽઽસેવમાનઃ, શાન્તઃ=કષાયોપશમેન । યદ્વા-‘ શ્રાન્તઃ ’ ઇતિચ્છાયા, શ્રાન્તઃ=નિરન્તરસંસારપરિભ્રમણાત્ શ્રમયુક્તઃ, વિરતઃ=સર્વસમારમ્ભાદુપરતઃ, સુસમાહૃતલેશ્યઃ=સુસમાહૃતાઃ=સમ્યગ્રૂપેણ ગૃહીતાઃ લેશ્યાઃ=અન્તઃકરણવૃત્તયો યેન સઃ । યદ્વા-સુસમાહૃતા=સમ્યક્ સદ્ગોચિતા લેશ્યા=તેજોલેશ્યા યેન સ રાદિક લા કર દંગા ઓર ન દૂસરોંસે લાયે હુણ આહારાદિકકા મેં ઉપભોગ હી કરુંગા । યહ ચતુર્થ ભંગ હૈ । ૪ ।

ઇસ તરહ અનેક પ્રકારકી પ્રતિજ્ઞાકો સ્વીકાર કરકે, ગ્લાયમાન ખી મુનિ અપને જીવનકો છોડ દેવે પર અભિગ્રહકા ભંગ ન કરે । ઇસી અર્થકા ઉપસંહાર કરતે હુણ સૂત્રકાર કહતે હૈ-‘ એવ ’-મિત્યાદિ, વહ તસ્વોંકા જ્ઞાતા અનગાર અભિગ્રહકા સ્વીકાર કરના ઓર ઉસકા આસેવનપરિજ્ઞાસે પૂર્ણરૂપસે સેવન-નિર્વાહ કરના, ઇસ રૂપ ધર્મકો જાનતા હુઆ ભક્તપ્રત્યાખ્યાન નામક મરણ સ્વીકાર કરે । “ શાન્તઃ, વિરતઃ, સુસમાહૃતલેશ્યઃ ” યે સબ અનગારકે વિશેષણ હૈ । ઇનકા અર્થ ઇસ પ્રકાર હૈ-યહ અનગાર કષાયોંકે ઉપશમ હોનેસે શાન્ત, સર્વ પ્રકારકે સમારંભોંસે ઉપરત હોનેસે વિરત ઓર અન્તઃકરણકી વૃત્તિયોંકો અચ્છી તરહ નિગૃહીત કરનેસે સુ-

નહિ લાવી આપું અને ખીજાઓથી લાવેલા આહારાદિકનો પણ હું ઉપયોગ નહિ કરું. આ ચોથો ભંગ છે. (૪)

આવી રીતે અનેક પ્રકારના અભિગ્રહો સ્વીકાર કરીને ગ્લાન મુનિ પણ પોતાના જીવનને છોડી દે પણ અભિગ્રહનો ભંગ ન કરે. આ અર્થનો ઉપસંહાર કરીને સૂત્રકાર કહે છે-‘ એવં ’ ઇત્યાદિ. તે તત્ત્વોના જાણનાર અનગારે અભિગ્રહનો સ્વીકાર કરવો અને તેનું આસેવનપરિજ્ઞાથી પૂર્ણરૂપથી સેવન-નિર્વાહ કરવો, આ રૂપથી ધર્મ જાણીને ભક્તપ્રત્યાખ્યાન નામનું મરણ સ્વીકારે. “ શાન્તઃ, વિરતઃ, સુસમાહૃતલેશ્યઃ ” આ સદ્ગુણો અનગારનાં વિશેષણ છે એનો અર્થ આ પ્રકારે છે-તે અનગાર કષાયોનો ઉપશમ થવાથી શાન્ત, સર્વ પ્રકારના સમારંભોથી ઉપરત હોવાથી વિરત અને અન્તઃકરણની વૃત્તિઓને સારી રીતે નિગૃહીત કરવાથી સુસમાહૃતલેશ્યાવાળા કહેવાય છે, “ સંતે ” પ્રાકૃતની સંસ્કૃત

સુસમાહૃતલેદયઃ । પ્રથમસ્વીકૃતાભિગ્રહપરિપાલનાક્ષમો રોગેણ તપસા વા ગ્લાનઃ  
સન્ અભિગ્રહમપરિત્યજન્ ભક્તપ્રત્યાખ્યાનેન શરીરં ત્યજેદિતિ તાત્પર્યમ્ ।

તત્રાપિ મરણકાલપર્યાય એવ=સમ્પાદિતશિષ્યગણસ્ય સંલેખના-જોષણાજુષ્ટ-  
દેહસ્ય યો મૃત્યોરવસરઃ સ એવ ગ્લાનાવસરેડપિ કાલપર્યાય એવ, કર્મનિર્જરણસ્યાડ-  
સમાહૃતલેદયાવાલા કહલાતા હૈ ‘સંતે’ પ્રાકૃતકી સંસ્કૃત છાયા ‘શાન્ત’  
માનકર અર્થ ઉપર બતલાયા જા ચુકા હૈ । જવ ઇંસકી છાયા “શ્રાન્ત”  
એસી માની જાયગી તવ ઇસકા અર્થ ઇસ પ્રકારસે હોગા કિ વહ “સંસાર  
મેં પરિભ્રમણ કરતે ૨ શ્રમયુક્ત હુઆ હૈ, ઇસી લિયે સર્વસમારમ્ભોસે  
યહ વિરત-ઉપરત હુઆ હૈ । “સુસમાહૃતલેદયઃ” કા યહ મી દૂસરે પ્રકારસે  
અર્થ નિકલતા હૈ કિ-જિસને અચ્છી તરહસે તેજોલેદયા સંકુચિત કી  
હૈ, એસા વહ અનગાર હોતા હૈ ।

તાત્પર્ય કહનેકા યહ હૈ કિ-જિસને પહિલે પૂર્વોક્ત અભિગ્રહ સ્વીકૃત  
કિયે હૈં પર રોગ યા તપસે જો ગ્લાન અવસ્થાયુક્ત બન રહા હૈ ઇસ લિયે  
સ્વીકૃત અભિગ્રહોંકે પાલન કરનેમેં અસમર્થ હો રહા હૈ, તો મી સ્વીકૃત  
અભિગ્રહવાલે સાધુકા યહ કર્તવ્ય હૈ કિ વહ અપને ગૃહીત અભિગ્રહકા  
પરિહાર ન કર ભક્તપ્રત્યાખ્યાનદ્વારા શરીરકા પરિત્યાગ કર દે, યહ મરણ  
કાલપર્યાય હી હૈ । જિસકા શિષ્યમણ્ડલ તય્યાર હો ચુકા હૈ, એસે સં-  
લેખનાકે સેવનસે યુક્ત દેહવાલે સાધુકી મૃત્યુકા જો અવસર હૈ વહ

છાયા શાન્ત માની અર્થ ઉપર બતાવવામાં આવેલ છે બ્યારે તેની છાયા “શ્રાન્ત”  
એવી માનવામાં આવશે ત્યારે તેનો અર્થ આ પ્રકારે થશે કે તે સંસારમાં  
પરિભ્રમણ કરતાં શ્રમયુક્ત થયેલ છે આ માટે સર્વ સમારંભોથી તે વિરત-નિવૃત્ત છે  
“સુસમાહૃતલેદયઃ” નો એવો પણ બીજા પ્રકારે અર્થ નીકળે છે કે જેણે સારી  
રીતે તેજોલેદયા સંકુચિત કરેલી છે એવા તે અનગાર હોય છે.

તાત્પર્ય કહેવાનું એ છે કે-જેણે પહેલાં પૂર્વોક્ત અભિગ્રહો સ્વીકારેલા  
છે પરંતુ રોગ અને તપથી જે ગ્લાન અવસ્થામાં આવી ગયોલ છે. એ કારણે  
સ્વીકારેલ અભિગ્રહોનું પાલન કરવામાં અસમર્થ બની રહેલ છે, તો પણ જેણે  
અભિગ્રહો સ્વીકાર્યા છે તેવા સાધુનું એ કર્તવ્ય છે કે તેણે સ્વીકારેલ અભિ-  
ગ્રહોનો ત્યાગ ન કરી ભક્તપ્રત્યાખ્યાનદ્વારા શરીરનો ત્યાગ કરે. આ મરણ પણ  
કાલપર્યાય જ છે. જેનું શિષ્યમંડળ તૈયાર થઈ ગયેલ છે એવા સંલેખનાના  
સેવનથી યુક્ત દેહવાળા સાધુના મૃત્યુનો જે અવસર છે તે જ ગ્લાનના અવસરમાં,



ત્રાપિ સમાનત્વાદિત્યાશયઃ । અત એવ સ તાદૃશો મુનિરનશનકરણે વ્યન્તિકારકઃ= કર્મનાશકારકો ભવતિ । તદેવમુપસંહરતિ-‘ઇત્યેત’-દિત્યાદિ, ઇત્યેતદ્=ગ્લાનસ્ય ભક્તપ્રત્યાખ્યાનેન શરીરત્યાગસ્તદ્ વિમોહાયતનં હિતં સુખં ક્ષમં નિઃશ્રેયસમાનુગામિકં ભવતિ । એતેષાં પદાનાં વ્યાખ્યાનન્તરોદ્દેશસમાપ્તૌ પ્રોક્તા । ‘ઇતિ બ્રવીમી’-ત્યસ્યાર્થસ્તૂક્ત એવેતિ ॥ સૂ૦ ૨ ॥

॥ અષ્ટમાધ્યયનસ્ય પશ્ચમ ઉદ્દેશઃ સમાપ્તઃ ॥ ૮-૫ ॥

હી ગ્લાન કે અવસરમેં બી કાલપર્યાય હી હૈ, ક્યોં કિ યહાં બી કર્મેંકી નિર્જરાકી સમાનતા હૈ । હસીલિયે એસા મુનિ અનશન કરકે ભક્તપ્રત્યાખ્યાનસે મરણ કરને પર કર્મકા નાશ કરનેવાલા હોતા હૈ અતઃ ભક્તપ્રત્યાખ્યાનપૂર્વક શરીરકા ત્યાગ કરના, ગ્લાન મુનિકે લિયે વિમોહાયતન, હિતસ્વરૂપ, સુખસ્વરૂપ, ક્ષમસ્વરૂપ, નિશ્રેયસરૂપ, એવં આનુગામિક રૂપ હોતા હૈ । ઇન પદોંકી વ્યાખ્યા હસી અધ્યયનકે ચતુર્થ ઉદ્દેશકી સમાપ્તિમેં કહ દી ગઈ હૈ ॥સૂ૦૨॥

॥ આઠવેં અધ્યયનકા પાંચવાં ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૮-૫ ॥

પણ કાલપર્યાય જ છે, કેમ કે અહીં પણ કર્મેની નિર્જરાની સમાનતા છે, આ માટે એવા મુનિ અનશન કરીને ભક્તપ્રત્યાખ્યાનથી મરણ લાવવાથી કર્મેનો નાશ કરવાવાળા થાય છે, માટે ભક્તપ્રત્યાખ્યાનપૂર્વક શરીરનો ત્યાગ કરવો ગ્લાન મુનિ માટે વિમોહાયતન, હિતસ્વરૂપ, સુખસ્વરૂપ, ક્ષમસ્વરૂપ, નિશ્રેયસરૂપ, અને આનુગામિકરૂપ બને છે. આ પદોની વ્યાખ્યા આ અધ્યયનના ઉદ્દેશની સમાપ્તિમાં કહેવાયેલ છે. (સૂ૦૨)

આઠમા અધ્યયનનો પાંચમો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥૮-૫॥

## । અથાષ્ટમાધ્યયનસ્ય ષષ્ઠ ઉદ્દેશઃ ।

પશ્ચમોદ્દેશકથનનાનતરમધુના ષષ્ઠઃ પ્રારમ્ભ્યતે । અસ્ય ચ પૂર્વોદ્દેશેન સહાયમભિ-  
સમ્બન્ધઃ—પૂર્વોદ્દેશે ગ્લાનસ્ય ભક્તપ્રત્યાખ્યાનમરણમભિહિતમ્ ; અત્ર ચ ધૃતિ-સંહનના-  
દિબલયુક્ત એકત્વભાવનાં ભાવયન્ ઇક્ષિતમરણં વિદધીતેતિ વક્તવ્યમસ્તિ, તત્પ્રસન્નેન  
પૂર્વં તસ્ય વસ્ત્રપરિત્યાગં દર્શયતિ—‘ જે મિક્ત્વુ ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—જે મિક્ત્વુ એગેણ વત્થેણ પરિવુસિણ પાયબિઙ્ગણ,  
તસ્સ ણં નો એવં ભવઙ્ગ—વિઙ્ગયં વત્થં જાઙ્ગસ્સામિ । સે અહેસણિ-  
જ્ઞં વત્થં જાણ્જા, અહાપરિગ્ગહિયં વત્થં ધારિજ્ઞા જાવ ગિમ્હે  
પઢિવન્ને અહાપરિજુન્નં વત્થં પરિટ્ઠવિજ્ઞા, અદુવા એગસાઢે અદુવા  
અચેલે લાઘવિયં આગમમાણે, તંવે સે અભિસમન્નાગણ ભવઙ્ગ,  
જહેયં ભગવયા પવેઙ્ગયં તમેવ અભિસમેચ્ચા સવ્વઓ સવ્વત્તાણ  
સમત્તમેવ સમભિજાણિયા ॥ સૂ. ૧ ॥

છાયા—યો મિશ્તુરેકેન વસ્ત્રેણ પર્યુષિતઃ પાત્રદ્વિતીયેન, તસ્ય સ્વલુ નો એવં ભવતિ દ્વિતીયં  
વસ્ત્રં યાચિષ્યે, સયથૈષ્ણીયં વસ્ત્રં યાચેત, યથાપરિગૃહીતં વસ્ત્રં ધારયેદ્ યાવદ્ ગ્રીષ્મઃ

## ॥ આઠવે અધ્યયનકા છટ્ટા ઉદ્દેશ ॥

પશ્ચમ ઉદ્દેશકે કહનેકે બાદ અવ ષષ્ઠ ઉદ્દેશકા કથન પ્રારમ્ભ  
હોતા હૈ । ઇસ ઉદ્દેશકા પૂર્વ ઉદ્દેશકે સાથ ઇસ પ્રકારસે સંબંધ હૈ—વહાં  
ગ્લાન મુનિકે લિયે ભક્તપ્રત્યાખ્યાનમરણ ધારણ કરના કહા હૈ । ઇસ  
ઉદ્દેશમે ધૃતિ, સંહનન આદિ બલવિશિષ્ટ મુનિ એકત્વભાવનાકો ભાતા  
હુઆ ઇક્ષિતમરણ કરે, યહ કહા જાયગા, ઇસલિયે ઉસીકે પ્રસંગસે પહિલે  
ઉસકે વસ્ત્રોંકા પરિત્યાગ સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરતે હૈ—“ જે મિક્ત્વુ ”  
ઇત્યાદિ ।

## આઠમા અધ્યયનનો છઠો ઉદ્દેશ.

પાંચમો ઉદ્દેશ કહેવાયા બાદ હવે છઠો ઉદ્દેશ શરૂ થાય છે આ ઉદ્દેશમાં  
આગળના ઉદ્દેશની સાથે આ પ્રકારથી સંબંધ છે—ત્યાં ગ્લાન મુનિ માટે ભક્ત-  
પ્રત્યાખ્યાન મરણ ધારણ કરવા કહ્યું છે, આ ઉદ્દેશમાં ધૃતિ, સંહનન, આદિ બળ-  
વિશિષ્ટ મુનિ એકત્વભાવનાને ભાવીને ઇક્ષિત મરણ કરે, એમ કહેવામાં આવશે.  
આ માટે તેના પ્રસંગથી પહેલાં તેના વસ્ત્રોનો પરિત્યાગ સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરે છે—  
“ જે મિક્ત્વુ ” ઇત્યાદિ.

પ્રતિપન્નઃ, યથાપરિજીર્ણં વસ્ત્રં પરિષ્ઠાપયેત્, અથવા એકશાટઃ, અથવા અચેલો લા-  
ઘવિકમાગમયન્, તપસ્તસ્ય અભિસમન્વાગતં ભવતિ, યદેતદ્ ભગવતા પ્રવેદિતં  
તદેવાભિસમેત્ય સર્વતઃ સર્વાત્મતયા સમ્યક્ત્વમેવ સમભિજાનીયાત્ ॥ સૂ.૦૧ ॥

ટીકા—‘યો ભિક્ષુ’—રિત્યાદિ, સ્પષ્ટાર્થમેતત્સૂત્રમ્, વિશેષસ્ત્વયમ્—અત્ર  
‘પાત્રદ્વિતીયેનૈકેન વસ્ત્રેણ’ इति व्याख्येयम् ॥ સૂ.૦૧ ॥

અભિગ્રહવિશેષેણ પાત્રદ્વિતીયં વસ્ત્રમેકં દધતો ભિક્ષોઃ સપદિ મોક્ષપથમારુક્ષોઃ  
પરિકર્મિતમતેર્લઘુકર્મત્વાદેકત્વભાવનાઽધ્યવસાયમાહ—‘જસ્સ ણં’ इत्यादि—

इस सूत्रमें साधुके लिये एक वस्त्र और एक पात्र रखनेका कल्प प्रद-  
र्शित किया गया है; अतः एक वस्त्र और एक पात्र रखते हुए किसी भी समय  
ऐसी इच्छा न करे कि मैं दूसरे वस्त्र या पात्रकी याचना करूं। वह मुनि  
यथायोग्य एषणीय वस्त्रकी ही याचना करे और जिस प्रकारका मिल  
जाय वही धारण करे। ग्रीष्म ऋतु आने पर वह एक वस्त्र रखना चाहे  
तो रखे, अथवा जीर्ण हो जाने पर उस जीर्ण वस्त्रका त्याग करके अचेल  
बन जावे, और जिस प्रकार भगवानने आगममें कहा उसी प्रकार संय-  
माचरण करता हुआ मुनि समभावसे विचरें ॥ सू०॥१॥

અભિગ્રહવિશેષસે એક પાત્ર ઓર એક વસ્ત્રકો રાખનેવાલા ભિક્ષુ જો  
કિ શીઘ્ર મોક્ષકે પથ પર આરુઢ્ધ હોનેકા અભિલાષી બના હુઆ હૈ, તથા  
પરિકર્મિતમતિવાલા હૈ, લઘુકર્મી હોનેસે ઉસકે એકત્વભાવનાકા અધ્યવ-  
સાય હોતા હૈ; ઇસ લિયે એકત્વભાવનાકે અધ્યવસાયકા કથન કરતે  
હૈ—“જસ્સ ણં મિક્કલુસ્સ” इत्यादि ।

આ સૂત્રમાં સાધુ માટે એક વસ્ત્ર અને એક પાત્ર રાખવાનો કલ્પ  
પ્રદર્શિત કરેલ છે, જેથી એક વસ્ત્ર અને એક પાત્ર રાખીને કોઈ પણ વખત  
એવી ઇચ્છા ન કરે કે હું બીજા વસ્ત્ર અને પાત્રની યાચના કરું.  
તે મુનિ યથાયોગ્ય એષણીક વસ્ત્રની જ યાચના કરે, અને જેવા પ્રકારનાં મળી  
જાય તે ધારણ કરે, ગ્રીષ્મ ઋતુ આવવાથી તે એક વસ્ત્ર રાખવા ચાહે તો રાખે  
અથવા જીર્ણ થઈ જવાથી તે જીર્ણ વસ્ત્રનો ત્યાગ કરીને અચેલ બની જાય, અને  
જે પ્રકારે ભગવાને આગમમાં કહ્યું તેવા પ્રકારે સંયમાચરણ કરીને મુનિ  
સમભાવથી વિચરે. (સૂ.૦૧).

અભિગ્રહવિશેષથી એક પાત્ર અને એક વસ્ત્રને રાખવાવાળા ભિક્ષુ કે જે  
શીઘ્ર મોક્ષના માર્ગપર આરુઢ્ધ હોવાના અભિલાષી બનેલ છે, તથા પરિકર્મિત મતિ-  
વાળા છે. લઘુકર્મી હોવાથી તેને એકત્વભાવનાનો અધ્યવસાય થાય છે તેથી  
એકત્વભાવનાના અધ્યવસાયનું કથન કરે છે—“જસ્સ ણં મિક્કલુસ્સ” इत्यादि.



मूलम्—जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—एगे अहमंसि, न मे अत्थि कोइ, न चाहमवि कस्सवि, एवं से एगाणिमेव अप्पाणं समभिजाणिज्जा, लाघवियं आगममाणे तवे से अभिसमन्नागए भवइ जाव समभिजाणिया ॥ सू० २ ॥

छाया—यस्य खलु भिक्षोरेवं भवति—एकोऽहमस्मि, न मेऽस्ति कोऽपि, न चाहमपि कस्यापि, एवमसौ एकाकिनमेवात्मानं समभिजानीयात्, लाघविक्रमागमयन्, तपस्तस्याभिसमन्वागतं भवति यावत् समभिजानीयात् ॥ सू० २ ॥

टीका—‘यस्ये’—त्यादि, यस्य भिक्षोश्चेतसि एवं=वक्ष्यमाणं भवति, तदेव दर्शयति—‘अह’—मित्यादि—अहम् एकोऽस्मि, न मेऽस्ति कोऽपीतरः सहायकः, न चाहमपि कस्य चिदपि परस्य दुःखविमोचने सहायकोऽस्मि, सर्वेऽपि स्वकृतकर्मफलभोक्तारः सन्त्यतो न कोऽपि मम सहायकः, नाप्यहं कस्यापि साहाय्यं कर्तुमर्होऽस्मीति परमार्थः, अतो योऽर्थः सम्पन्नस्तमाह—‘एव’ मित्यादि, एवं—पूर्वोक्तप्रकारेण स्वस्य सहायकासम्भवात् साहाय्यकरणासम्भवाच्चेत्यादिरूपेण असौ मुनिः आत्मानं=निजात्मानम्, एकाकिनमेव सहायरहितमेव समभिजानीयात्,

जिस भिक्षुके चित्तमें इस प्रकारका विचार होता है कि—“मैं एक हूँ, यहां मेरा दूसरा कोई सहायक नहीं है, मैं भी किसी दूसरेके दुःखोंको दूर करनेमें सहायक नहीं हो सकता हूँ, जितने भी प्राणी हैं वे सब अपने२ किये हुए कर्मोंके फलको भोगते हैं, इस लिये मैं उन्हें इस कर्मके फलके भोगमें थोड़ी भी सहायता करनेवाला नहीं हो सकता हूँ और न दूसरे भी मुझे इस विषयमें सहायता प्रदान करनेवाले हो सकते हैं, इस प्रकार न कोई अपना सहायक है और न मैं दूसरोंका ही सहायक हूँ” ऐसा विचार कर यह मुनि अपनी आत्माको सहायरहित ही मानता है, इसका यह प्रभाव होता है

જે ભિક્ષુના ચિત્તમાં એવા પ્રકારના વિચાર હોય છે કે—“હું એક છું, અહિં મારે બીજો કોઈ સહાયક નથી, હું પણ કોઈ બીજાના દુઃખોને દૂર કરવામાં સહાયક બની શકતો નથી, જેટલા પ્રાણી છે તે બધા પોતપોતાનાં કરેલા કર્મોના ફળને ભોગવે છે, આ માટે હું તેમને એ કર્મના ફળને ભોગવવામાં થોડી પણ સહાયતા કરવાવાળો થઈ શકતો નથી, અને મને પણ બીજા આ વિષયમાં સહાયતા કરવાવાળા બની શકતા નથી. આ પ્રકારે કોઈ મારો સહાયક નથી અને હું પણ બીજાને સહાયક બની શકતો નથી.” એવો વિચાર કરી એ મુનિ પોતાના આત્માને સહાયરહિત જ માને છે. એનો એ પ્રભાવ હોય છે કે તે

‘નરકનિગોદાદિદુઃસ્વપારાવારમજ્જદાત્મસન્તારણે સ્વાત્માનં વિના કોઽપિ ન કર્ણધારઃ’ इत्यवधार्य सम्प्राप्तं रोगशोकादिकं सन्तापकारकमितरकृतत्राणशरण-  
स्पृहारहितो-‘मत्कृतत्वेन मयैवोपभोक्तव्य’-मिति निश्चिन्वानः सर्वं सहेतैवेति  
भावः । कुतो दुःखादिकं सोढव्यमित्याह-‘लाघविक’-मित्यादि, अयं सूत्रभाग  
एतस्यैवाध्ययनस्य चतुर्थोद्देशे व्याख्यातः । इत्यलम् । सूत्रमिदं बहुषु पुस्तकेष्व-  
नुपलब्धमपि क्वचिदुपलब्धतया व्याख्यातमिति विभावनीयम् ॥सू० २॥

अस्याध्ययनस्य द्वितीयोद्देशे उद्गमोत्पादनैषणाऽभिहिता, पञ्चमोद्देशे च ग्रहण-  
पणा कथिता, साम्प्रतं त्रासैषणामुपदर्शयितुमाह-‘से भिक्षू’ इत्यादि ।

कि इस मुनिके चित्तमें यह दृढ़ धारणा हो जाती है कि “नरक और  
निगोदादिकोंके दुःस्वरूपी समुद्रमें डूबते हुए मेरे आत्माको वहांसे पार  
लगानेवाला यदि कोई है तो वह अपनी आत्मा ही है-इसके अतिरिक्त और  
कोई नहीं।” इस प्रकारकी धारणासे प्राप्त हुए सन्तापकारी रोग और शोक  
आदिमें अपने लिये दूसरोंसे की जानेवाली रक्षा एवं शरणकी स्पृहासे  
रहित हो जाते हैं, और इस निश्चयसे कि यह सब मेरे द्वारा ही किया  
गया है अतः मुझे ही भोगना चाहिये इस प्रकार सोच कर सब कुछ  
सहन करता है। दुःखादिकोंके सहनेसे लाभ क्या होता है ? तथा यह  
दुःखादिक सहन क्यों करता है ? इसका उत्तर सूत्रकारने “लाघवियं  
आगममाणे” से लेकर “समभिजागिया” यहां तकके पदों द्वारा दिया  
है। इन समस्त पदों का स्पष्ट रूपसे अर्थ इसी अध्ययनके चतुर्थ उद्देशमें  
लिखा जा चुका है ॥ सू० २ ॥

मुनिના ચિત્તમાં એવી દૃઢ ધારણા બની રહે છે કે “નરક અને નિગોદાદિકોના  
દુઃખરૂપી સમુદ્રમાં ડુબતા મારા આત્માને ત્યાંથી પાર લગાવનાર જો કોઈ હોય  
તો તે મારો પોતાનો જ આત્મા છે, તેના સિવાય બીજો કોઈ નથી.” આ પ્રકારની  
ધારણાથી પ્રાપ્ત થયેલા સંતાપકારી રોગ અને શોક આદિમાં પોતાને માટે,  
બીજાઓથી થનાર રક્ષા અને શરણની સ્પૃહાથી રહિત થઈ જાય છે અને આવા નિશ્ચ-  
યથી કે આ બધું મારા દ્વારા જ કરાયેલ છે, અને મારે જ લોગવવું જોઈએ. આ  
પ્રકારે સમજીને બધું સહન કરે છે, દુઃખાદિકને સહેવાથી લાભ શું મળે છે ? તથા  
એ દુઃખાદિકને સહન કેમ કરે છે ? એનો ઉત્તર સૂત્રકારે “લાઘવિયં આગમમાણે”થી  
લઈ “સમભિજાગિયા” અહીં સુધીના પદો દ્વારા આપેલ છે. આ સમસ્ત પદોનો  
સ્પષ્ટ રૂપથી અર્થ આ અધ્યયનના ચોથા ઉદ્દેશમાં બતાવવામાં આવેલ છે.(સૂ૦૨)

મૂલ્મ—સે ભિક્ષૂ વા ભિક્ષુણી વા અસનં વા ૪ આહારેમાણે નો વામાઓ હણુયાઓ દાહિણં હણુયં સંચારિજ્જા આસાણમાણે, દાહિણાઓ હણુયાઓ વામં હણુયં નો સંચારિજ્જા આસાણમાણે, સે અણાસાયમાણે લાઘવિયં આગમમાણે, તવે સે અભિસમન્ના-ગણ ભવઙ્, જમેયં ભગવયા પવેઙ્ગયં તમેવ અભિસમિચ્ચા સવ્વઓ સવ્વત્તાણ સમત્તમેવ સમભિજાણિયા ॥ સૂ૦ ૩ ॥

છાયા—સ ભિક્ષુર્વા ભિક્ષુકી વા અશનં વા ૪ આહારયન્ નો વામતો હનુતો દક્ષિણં હનું સંચારયેદાસ્વાદયન્, દક્ષિણતો હનુતો વામં હનું નો સંચારયેદાસ્વાદયન્, સઃ અનાસ્વાદયન્ લાઘવિકમાગમયન્, તપસ્તસ્યાભિસમન્વાગતં ભવતિ, યદેતદ્ ભગવ-તા પ્રવેદિતં તદેવાભિસમેત્ય સર્વતઃ સર્વાત્મતયા સમ્યક્ત્વમેવ સમભિજાનીયાત્ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

ટીકા—‘સ ભિક્ષુ’—રિત્યાદિ, સઃ=પૂર્વોક્તરૂપઃ ભિક્ષુર્વા=સાધુર્વા ભિક્ષુકી વા=સાધ્વી વા અશનં વા ૪ ચતુર્વિધમ્ ઉદ્ગમોત્પાદનૈષણાપરિશુદ્ધં યથાપ્રાપ્તં ગૃહીતં ગ્રહણૈષણાદિદોષરહિતં વિગતાક્ષારધૂમાદિકમેવ ભુક્તીત, રાગદ્વેષાભ્યાં હેતુભૂતાભ્યા-

હસ અધ્યયનકે દ્વિતીય ઉદ્દેશમેં ઉદ્ગમ ઉત્પાદન ઓર ઇષણા કહી ગઈ હૈ । પંચમ ઉદ્દેશમેં ગ્રહણ ઇષણા વર્ણિત હુઈ હૈ, અથ હસ સમય ગ્રાસ ઇષણાકા વર્ણન કરનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈ—“સે ભિક્ષૂ” ઇત્યાદિ ।

પૂર્વોક્ત સ્વરૂપવાલા સાધુ અથવા સાધ્વી એસે ચારોં પ્રકારકે આહાર કો જો ઉદ્ગમ ઉત્પાદન ઓર ઇષણાસે પરિશુદ્ધ હૈ, જિસ સમય જો મી જિતને રૂપમેં પ્રાપ્ત હુઆ હૈ, ગ્રહણ-ઇષણા આદિ દોષોંસે જો રહિત હૈ, ઓર અંગાર ઇષં ધૂમાદિક દોષ જિસમેં નહીં હૈં વૈસે આહારકો ભોગવે-ઉપયોગમેં લાવે । અંગાર ઇષં ધૂમાદિક દોષોંકે કારણ રાગ ઓર દ્વેષ હૈં, હનસે હી વહ આહાર અક્ષાર ઇષં ધૂમાદિકદોષવિશિષ્ટ હોતા હૈ । રાગ

આ અધ્યયનના બીજા ઉદ્દેશમાં ઉદ્ગમ ઉત્પાદન અને ઇષણા કહેવામાં આવેલ છે. પાંચમા ઉદ્દેશમાં ગ્રહણ ઇષણા કહેવાયેલ છે. હવે આ સમયે ગ્રાસ ઇષણાનું વર્ણન કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે—“સે ભિક્ષૂ” ઇત્યાદિ.

પૂર્વોક્ત સ્વરૂપવાળા સાધુ અથવા સાધ્વી એવા પ્રકારના આહારને કે જે ઉદ્ગમ ઉત્પાદન અને ઇષણાથી પરિશુદ્ધ છે, જે વખતે જે પણ જેટલા સ્વરૂપમાં પ્રાપ્ત થએલ છે, ગ્રહણ ઇષણા આદિ દોષોથી જે રહિત છે અને અંગાર અને ધૂમાદિક દોષ જેમાં નથી, એવા આહારને ભોગવે-ઉપયોગમાં લાવે. અંગાર અને ધૂમાદિક દોષોના કારણે રાગ અને દ્વેષ છે. આનાથીજ તે આહાર



મજ્જારધૂમાદિદોષદુષ્ટમશનાદિકં જાયતે, રાગદ્વેષો સરસનીરસાહારોપલમ્ભહેતુના જાયતે । કારણમન્તરા કાર્યોત્પત્તેરદર્શનાદિતિ રસોપલબ્ધિકારણપરિહારમેવ પ્રદર્શયતિ-‘આહારયન્નિ’-ત્યાદિ, સ મિશ્નુરશનં વા ૪ અશનાદિકમ્ આહારયન્=શુજ્ઞાનઃ, આસ્વાદયન્=તદશનાદિકં ચર્વયન્ વામતો હનુતઃ=વામહનુતઃ આદાય રસાસ્વાદાય દક્ષિણં હનું નો સશ્ચારયેત્, અપિ ચાશનાદિકમાસ્વાદયન્ સ મિશ્નુઃ દક્ષિણતો હનુતઃ=દક્ષિણહનુતો ગૃહીત્વા વામં હનું ન સશ્ચારયેત્, તાદૃશાસ્વાદન-સશ્ચારણયોઃ કૃતયોઃ સતોઃ રસોપલબ્ધ્યા રાગ-દ્વેષજન્યા અજ્ઞાર-ધૂમાદિદોષા જાયન્તે, અતસ્તથા કૃત્વા નો આસ્વાદયેદિત્યાશયઃ । યો નાસ્વાદયતિ તમાશ્રિત્ય કથયતિ-‘સ’

और द्वेष होनेका कारण भी सरस और नीरस आहारकी प्राप्ति है । इससे ही राग और द्वेष ये दोनों उसमें उत्पन्न होते हैं । कारण के बिना कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती है इस लिये सूत्रकार यहां पर रसोपलब्धिरूप कारण के परिहारका प्रदर्शन करते हुए कहते हैं-‘वह भिक्षु जिस समय आहार करे उस समय चबाते हुए उस आहारका रसास्वादके निमित्त मुंह में एक तरफसे दूसरी तरफ परिवर्तन न करे । यदि घ्रास दक्षिणकी दाढाओंके नीचे रखा है तो उसे उन्हीं दाढाओं द्वारा चबावे-वामतरफ न फेरे, यदि वामबाजूकी दाढाओं तले उसे रखा है तो उन्हींसे उसे चबावे-दक्षिणकी तरफ उसे न ले जावे, इस प्रकार के परिवर्तनसे आहार के रसकी उपलब्धि होती है अतः इस प्रकार का चबाना और परिवर्तन करना, ये दोनों साधु के लिये रसास्वाद के निमित्त हेय हैं । ऐसा करनेसे रसकी उपलब्धि होगी और फिर उससे रागद्वेषके कारण-

અંગાર અને ધૂમાદિક દોષવિશિષ્ટ થાય છે. રાગ અને દ્વેષ હોવાનું કારણ પણ સરસ અને નિરસ આહારની પ્રાપ્તિ છે. તેનાથી જ તે બન્ને તેમાં ઉત્પન્ન થાય છે, કારણના બિના કાર્યની ઉત્પત્તિ થતી નથી. આ માટે સૂત્રકાર અહિં રસની ઉપલબ્ધિરૂપ કારણના પરિહારનું પ્રદર્શન કરીને કહે છે કે તે ભિક્ષુ જે સમય આહાર કરે તે સમય ચાવતી વખતે તે આહારના રસાસ્વાદ માટે મોઢામાં એક તરફથી બીજી તરફ ફેરફાર ન કરે. કદાચ ગ્રાસને દક્ષિણ દાઢાની નીચે રાખેલ હોય તો તેને એ જ દાઢો દ્વારા ચાવે બીજી તરફ ન ફેરવે. કદાચ બીજી બાજુની દાઢો નીચે રખાયેલ હોય તો તેનાથી જ ચાવે સારી તરફ તેને ન લઈ જાય. આ પ્રકારના પરિવર્તનથી આહારના રસની ઉપલબ્ધિ થાય છે માટે આ પ્રકારથી ચાવવું અને પરિવર્તન કરવું એ બન્ને સાધુ માટે હેય છે. એમ કરવાથી રસની ઉપલબ્ધિ થશે અને પછી તેનાથી તેને રાગ અને દ્વેષના

इत्यादि-सः पूर्वोक्तो भिक्षुः अनास्वादयन्=हन्वन्तराद्वन्वन्तरेऽशनादिसञ्चारमकुर्वन्  
लाघविकम्=आहारलाघवम् आगमयन्=विदधद् भवति, एतादृश्य तस्य मुनेः तपः  
समन्वागतं भवतीति पूर्ववत् । स्वबुद्धिपरिकल्पितत्वनिरासायाह-‘यदेत’-दित्यादि,  
यत्=भोजनविधानं दोषरहितम् एतत् सर्वं भगवता=सर्वज्ञेन प्रवेदितं=प्ररूपितम्, तत्-  
स्तदेव=पूर्वोक्तमेव अभिसमेत्य सर्वतः सर्वात्मतया सम्यक्त्वमेव समभिजानीयादि-  
त्यादेर्व्याख्या पूर्वोक्तदिशाऽवसेया ॥ सू० ३ ॥

भूत अंगार-धूमादिक दोष उत्पन्न होंगे, इसलिये इन दोषों से बचने के लिये साधु इस तरह से भोजन-आहार न चबावे। जो साधुजन इस प्रकार से भोजनको नहीं चबाते हैं-अर्थात् एकजबड़े से दूसरे जबड़े तरफ उसे रसास्वाद के निमित्त परिवर्तित नहीं करते हैं, इससे आहारविषयक रसास्वाद न आनेसे वे रागद्वेषकी लघुता करदेते हैं। इस परिस्थितिमें जो भी उन्हें अल्पमात्रामें शुद्ध निर्दोष विधि-अनुसार आहार उपलब्ध होता है वही उन्हें ग्राह्य होनेसे मुनिके तपकी प्राप्ति और वृद्धि होती रहती है। साधुके लिये जो यह निर्दोष भोजनका विधान कहा है वह सब भगवान् सर्वज्ञ द्वारा प्ररूपित ही कहा गया है, इसलिये इस पूर्वोक्त विधान को सर्व प्रकार एवं सर्वात्मरूपसे सत्य ही जानना चाहिये।

भावार्थ—चाहे साधु हो या साध्वी हो आहारको विना रसास्वाद-लिये ही करें। यह बात साधुको तब ही बन सकती है कि जब वह

કારણ અંગારધૂમાદિક દોષો ઉત્પન્ન થશે. આ માટે એવા દોષોથી બચવા માટે સાધુ આ રીતે આહારને ચાવે નહિ. જે સાધુજન આ પ્રકારથી ભોજન ચાવતા નથી અર્થાત્ એક જડબાથી બીજા જડબા તરફ તેને રસાસ્વાદ નિમિત્ત ફેરવતા નથી એથી આહારવિષયક રસાસ્વાદ ન આવવાથી તેઓ રાગદ્વેષની લઘુતા કરી દે છે. આ પરિસ્થિતિમાં જે પણ તેને અલ્પ માત્રામાં શુદ્ધ નિર્દોષ વિધિ અનુસાર આહાર મળે છે તેજ એને ગ્રાહ્ય હોવાથી એનાથી તપની પ્રાપ્તિ અને વૃદ્ધિ તેને થતી રહે છે. સાધુ માટે જે આ નિર્દોષ આહારનું વિધાન કહેલ છે તે બધું ભગવાન સર્વજ્ઞદ્વારા પ્રરૂપિત જ અહીં કહેવાયું છે, આ માટે આ પૂર્વોક્ત વિધાનને સર્વ પ્રકારે અને સર્વાત્મરૂપથી સત્યજ્ઞ માનવું જોઈએ.

ભાવાર્થ—ભલે સાધુ હોય અગર સાધ્વી આહારને રસાસ્વાદ લીધા વિનાજ આરાગે. આ વાત સાધુ માટે ત્યારેજ બને છે કે જ્યારે તે આહારને મુખમાં

एतादृशस्य भिक्षोरन्तर्प्रान्तसेविनः परिशुष्कमांसशोणितसकलायक्रियायामव-  
सीदतो देहपरित्यागबुद्धिः समुदेतीति दर्शयति-‘ जस्स णं भिक्खुस्स ’-इत्यादि।

मूलम्—जस्स णं भिक्खुस्स एवंभवइ—से गिलामि च खलु  
अहं इमंसि समए इमं सरीरगं अणुपुव्वेण परिवहत्तए, से  
अणुपुव्वेणं आहारं संवट्ठिज्जा, अणुपुव्वेण आहारं संवट्ठित्ता  
कसाए पयणुए किच्चा समाहियच्चे फलगावयट्ठी उट्ठाय  
भिक्खू अभिनिव्वुडच्चे ॥ सू० ४ ॥

छाया—यस्य खलु भिक्षोरेवं भवति—तद् ग्लायामि च खलु अहमस्मिन् समये  
इदं शरीरकमानुपूर्व्यां परिवोदुम्, स आनुपूर्व्यां आहारं संवर्तयेत्, आनुपूर्व्यां  
आहारं संवर्त्य कषायान् प्रतनुकान् कृत्वा समाहिताच्चः फलकापदर्थी उत्थाय  
भिक्षुरभिनिर्वृताच्चः ॥ सू० ४ ॥

आहार का मुखमें इधर उधर परिवर्तन न करे। आहार का स्वाद न  
आनेसे भोजनमें लघुता होती है उससे तपकी प्राप्ति और उसकी वृद्धि  
साधुके होती है। यह सब आहारविषयक कथन भगवान् सर्वज्ञद्वारा प्ररू-  
पित है, वही यहां कहा गया है इसलिये इस पर पूर्ण विश्वास करें ॥सू० ३॥

जो मुनि अंत प्रान्त आहारका सेवन करता है और इसी कारणसे  
जिसके शरीरके मांस और शाणित शुष्क हो चुके हैं, और इसीलिये जो  
समस्त शारीरिक क्रियाओंके करनेमें असमर्थ बना हुआ है उसके  
चित्तमें इस देहको परित्याग करनेकी बुद्धि जागृत होती है, इस विषयको  
सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—“ जस्स णं भिक्खुस्स ” इत्यादि।

આડે અવળે ન ફેરવે. આહારનો સ્વાદ ન આવવાથી ભોજનમાં લઘુતા થવાથી  
તપની પ્રાપ્તિ અને તેની વૃદ્ધિ સાધુને થાય છે. આ સઘળું આહાર વિષેનું કથન  
ભગવાન સર્વજ્ઞ દ્વારા પ્રરૂપિતજ અહિં કહેવામાં આવેલ છે. એ માટે તેના ઉપર  
વિશ્વાસ કરવો. (સૂ૦૩)

જે મુનિ અન્ત-પ્રાન્ત આહારનું સેવન કરે છે અને તેના કારણથી  
જેનું લોહી અને માંસ સુકાઈ જાય છે જેનાથી સમસ્ત શરીરની ક્રિયાઓ કર-  
વામાં અસમર્થ બનેલ છે તેના ચિત્તમાં આ દેહનો ત્યાગ કરવાની બુદ્ધિ જાગૃત  
થાય છે, આ વિષયને સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરે છે—‘ જસ્સ ણં ભિક્ખુસ્સ ’ ઇત્યાદિ.



ટીકા—‘યસ્યે’—ત્યાદિ, યસ્ય=એકત્વભાવનાભાવિતાન્તઃકરણસ્ય મિશ્નોઃ=અશ્નાદિષુ લઘુતામુપગતસ્ય મુનેઃ खलु चेतसि एवं=વક્ષ્યમાણં ભવતિ, તદેવાહ—‘તદ્’ તથા, ‘ચ’ શબ્દઃ સમુચ્ચાયકઃ, અતઃ એવાન્તપ્રાન્તાશનસંજ્ઞાતરોગાભિભૂતઃ, અહં खलु अस्मिन् समये प्रतिक्षणं शरीरस्य शीर्यमाणत्वाद् ग्लायामि=ગ્લાનતામુપગતો-ऽस्मि, इदम्=ઔદારિકં શરીરકં=શીર્યતે=વિદીર્યતે યત્તચ્છરીરં, શરીરમેવ શરીરકમ્, આનુપૂર્વ્યા=સમુચિતાવસરાવશ્યકર્તવ્યક્રિયા પરિવોદું=તત્ર વ્યાપારયિતું ન શક્નોમિ, इति विचार्य च सः=મુનિઃ, આનુપૂર્વ્યા=ચતુર્થ-ષષ્ઠા-ઽષ્ટમાઽઽ-ચામામ્લાદિકયા, आहारम्=અશ્નાદિકં સંવર્તયેત=સંક્ષેપયેત્ ।

નવાનુપૂર્વી પુનર્દ્વાદશવર્ષસંલેનારૂપા કુતો ન ગૃહ્યતે ? इति चेन्न-ગ્લાનિમુપગત-સ્ય તચ્છરીરસ્ય દ્વાદશવર્ષકાલિકાવસ્થાનાસમ્ભવાત્, અતઃતત્કાલસમુચિતયાઽઽનુ-

જો મુનિકા અન્તઃકરણ એકત્વ-ભાવનાસે ભાવિત હૈ, ઔર આહાર આદિ મી જિસકા કમ હો ગયા હૈ ઉસકે ચિત્તમેં હિસ પ્રકારકા વિચાર આતા હૈ કિ-મેં હિસ સમય અન્ત પ્રાન્ત આહાર કે સેવન કરનેસે રોગા-ક્રાન્ત હો ચુકા હું, શરીર મી પ્રતિક્ષણ અપને કર્તવ્યપથસે ક્ષીણ હો રહા હૈ-શિથિલ બનતા જા રહા હૈ, હિસલિયે યોગ્ય અવસરમેં જિનર આવશ્યક ક્રિયાઓંકો કરના ચાહિયે વે અબ હિસ શરીરદ્વારા પૂર્ણરૂપસે નહીં હો સક્તી હૈં । એસા વિચાર કર વહ ગ્લાન મુનિ ચતુર્થ-ષષ્ઠ-અષ્ટમ ભક્તસે, એવં આયમ્બિલ આદિ તપસે આહાર આદિકો કમ કર દેવે ।

શઙ્કા—બારહ વર્ષકી સંલેખનારૂપ આનુપૂર્વીકા આપને યહાં ગ્રહણ ક્યોં નહીં કિયા ? ।

ઉત્તર—યહ શઙ્કા ઠીક નહીં હૈ, ક્યોં કિ જો મુનિ ગ્લાન-અવસ્થા-બીમારી હાલત-મેં પડા હુઆ હૈ, ઉસકા શરીર બારહ વર્ષતક સ્થિર નહીં રહ

જે મુનિનું અન્તઃકરણ એકત્વ-ભાવનાથી ભાવિત છે અને આહાર આદિ પણ જેનો થોડો થઈ જાયેલ છે તેના ચિત્તમાં એવા પ્રકારનો વિચાર આવે છે કે-હું અન્તપ્રાન્ત આહાર લેવાથી આ સમયે રોગગ્રસ્ત બનેલ છું, શરીર પણ પ્રતિક્ષણ પોતાના કર્તવ્યથી ક્ષીણ થઈ રહેલ છે-નિર્બળ બની રહેલ છે, આ માટે યોગ્ય અવસરમાં જે જે આવશ્યક ક્રિયાઓ કરવી જોઈએ તે હવે આ શરીરથી પૂર્ણ સ્વરૂપથી બની શકતી નથી. એવો વિચાર કરી તે ગ્લાન મુનિ ચઉત્થ-છઠ્ઠ-અઠ્ઠમ લક્ષ્યથી, આયમ્બિલ આદિ તપથી આહાર આદિ ઓછાં કરતા રહે.

શંકા—બાર વર્ષની સંલેખનારૂપ આનુપૂર્વીનો આપે ગ્રહણ કેમ નથી કર્યો ?

ઉત્તર—આ શંકા ઠીક નથી, કેમકે જે મુનિ ગ્લાન અવસ્થા-બિમારી હાલત-માં પડેલ છે, એનું શરીર બાર વર્ષ સુધી સ્થિર રહી શકતું નથી, આ

પૂર્વ્યાં દ્રવ્યસંલેખનયાઽશનાદિકં સંક્ષેપયેદિત્યાશયઃ । સ ચ દ્રવ્યસંલેખનયા સંલિ-  
 ર્યાન્યદપિ વિદધીતેત્યાહ—‘સે’ इत्यादि, आनुपूर्व्यां=तपःक्रमेण संवर्त्य=अशनादिकं  
 संक्षिप्य तदनु कषायान्=क्रोधादीन् प्रतनुकान्=कृशान् कृत्वा ‘समाहितार्चः’ समा-  
 हिता=सम्यग् व्यवस्थापिता अर्चा=शरीरं येन स समाहितार्चः=नियमितशरीरव्यापारः।  
 यद्वा-समाहिता=सम्यक् सम्पादिता अर्चा=प्रशस्तलेख्या येन स समाहितार्चः=परिशुद्धा-  
 ध्यवसायः, अथ वा समाहिता=प्रशमिता अर्चा=क्रोधाद्यध्यवसायरूपा लेख्या=ज्वाला येन  
 स समाहितार्चः, ‘फलकापदर्थी’=फलमेव फलकं कर्मक्षपणात्मकं, तेन फलकेन आपदि=

सकता इसलिये उस कालमें समुचित द्रव्यसंलेखनारूप आनुपूर्वीसे यह  
 अशनादिकको कम करे, ऐसा कहा है, और इसी विचार से चतुर्थ-षष्ठ  
 आदिरूप आनुपूर्वीका यहां ग्रहण किया गया है।

इस द्रव्यसंलेखनारूप आनुपूर्वीसे आहारकी कृशता कर फिर वह  
 साधु उसके बाद क्रोधादिक कषायोंको कृश करे। उनके कृश हो जाने  
 पर फिर वह अपने शरीरको नियमित व्यापारमें लगावे। अथवा अपने  
 परिणामोंको शुद्ध रखे। अथवा क्रोधादिक अध्यवसायरूप ज्वालाको  
 शान्त करे। इस तरहकी प्रवृत्तिसे यह मुनि पण्डितमरण में उद्योग  
 करके कर्मक्षपक तपकी विधिसे संसिद्ध शरीरवाला बनकर महर्षियों  
 द्वारा तथा तीर्थंकर गणधरों द्वारा समाचरित मार्गका अनुगामी होता  
 हुआ इंगितमरण करे।

फलकापदर्थी—इस पदमें फलक १, आपद् २, अर्थी ३, ऐसे तीन शब्द  
 हैं। कर्मोंका जो क्षपण होता है, वह फलक है, संसारमें परिभ्रमण करनेका

માટે એ કાળમાં સમુચિત દ્રવ્યસંલેખનારૂપ આનુપૂર્વીથી તે અશનાદિકને ઓછાં  
 કરે, એવું કહ્યું છે, અને આ જ વિચારથી અહિં—છઠ્ઠ આદિરૂપ આનુપૂર્વીના અહિં  
 ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે.

આ દ્રવ્યસંલેખનારૂપ આનુપૂર્વીથી આહારની કૃશતા—અલ્પતા કરી. ફરી તે સાધુ  
 એના પછી ક્રોધાદિક કષાયોને દૂર કરે. આ બધું છોડ્યા બાદ પછી તે પોતાના શરીરને  
 નિયમિત વ્યાપારમાં લગાડે. અથવા પોતાના પરિણામોને શુદ્ધ રાખે. અથવા  
 ક્રોધાદિક અધ્યવસાયરૂપ જ્વાળાને શાન્ત કરે. આ રીતની પ્રવૃત્તિથી  
 તે મુનિ પંડિત મરણ માટે ઉદ્યોગશીલ બની કર્મક્ષપક તપની વિધિથી સંસિદ્ધ  
 શરીરવાળા બની મહર્ષિયોદ્વારા તથા તીર્થંકર ગણધરો દ્વારા સુચવાયેલા માર્ગના  
 અનુગામી બની ઇંગિત મરણ કરે.

फलकापदर्थी—એ પદમાં ફલક ૧, આપદ્ ૨, અર્થી ૩, એવા ત્રણ શબ્દ છે,  
 કર્મોના જે ક્ષય થાય છે, તે ફલક છે—સંસારમાં પરિભ્રમણ કરવાનું નામ આપદ છે. અર્થ

સંસારપરિભ્રમણરૂપાયાં યોઽર્થઃ=પ્રયોજનં સ ફલકાપદર્થઃ સોઽસ્યાસ્તીતિ ફલકાપદ-  
ર્થો સંસારજનકકર્મક્ષયપ્રયોજનવાન્ મિશ્રુઃ=મુનિઃ ઉત્થાય પઞ્ડિતમરણોદ્યોગં વિધાય  
અભિનિર્વૃતાર્ચઃ-અભિનિર્વૃતા=કર્મક્ષયકતપોવિધિના સંસિદ્ધા અર્ચા=શરીરં यस્ય  
સ તથોક્તઃ-મહર્ષિસમાચરિતમાર્ગાનુગામી સન્ ઇક્ષિતમરણં કુર્યાત્ ॥ સૂ. ૦૪ ॥

નામ આપદ્ છે, અર્થ શબ્દકા અર્થ પ્રયોજન છે, કર્મક્ષયરૂપ ફલકાપદ-  
સંસારપરિભ્રમણરૂપ આપત્તિમાં જો અપને પ્રયોજનકા અભિલાષી છે,  
અર્થાત્ સંસાર મેં ભ્રમણ કરાનેવાલે કર્મોંકો વિનાશ કરનેકા હી જિસકા  
અભિપ્રાયરૂપ પ્રયોજન છે, વહ ફલકાપદર્થો છે. સૂત્ર મેં અર્ચા શબ્દકા  
અર્થ શરીરલેશ્યા યા ક્રોધાદિરૂપ જ્વાલા, એસા અર્થ ક્રિયા ગયા છે.

ભાવાર્થ—મુનિકા શરીર જબ અપને કર્તવ્યમાર્ગકે આચરણ કરનેમેં  
શિથિલ હો રહા હો તબ ઉસકા કર્તવ્ય છે કિ વહ સંસારજનક કર્મોં કે  
ક્ષય કરનેકા પ્રયોજનશીલ હોકર ચતુર્થ ષષ્ઠ આદિ આનુપૂર્વીદ્વારા  
આહારકો, પશ્ચાત્ ક્રોધાદિક કષાયોંકો કુશ કરતા હુઆ ઇંગિતમરણરૂપ  
સંધારાકો ધારણ કરે. યહ માર્ગ મહર્ષિયોં દ્વારા મી હસી અવસર પર  
પહિલે આચરિત ક્રિયા ગયા છે, હસ વિચારસે વહ મુનિ મી અપની શારી-  
રિક ક્રિયાઓંકો નિયમિત કર હસ મરણકે કરનેમેં ઉત્તરોત્તર પરિણા-  
મોંકી વૃદ્ધિ કરતા રહે. થોડી સી મી શિથિલતા હસ સમય ન આને  
પાવે, હસકી પૂર્ણ સાવધાની રહે. ‘ફલકાપદર્થો’ હસ પદસે સૂત્રકારને હસ

શબ્દનો અર્થ પ્રયોજન છે. કર્મક્ષયરૂપ ફલકાપદર્થો સંસારપરિભ્રમણરૂપ આપત્તિમાં  
જો પોતાના પ્રયોજનના અભિલાષી છે, અર્થાત્ સંસારમાં ભ્રમણ કરાવવા-  
વાળાં કર્મોંનો વિનાશ કરવાનો જ જેનો અભિપ્રાયરૂપ નિશ્ચય છે તે ફલકાપદર્થો  
છે સૂત્રમાં અર્ચા શબ્દનો અર્થ શરીરલેશ્યા-એટલે ક્રોધાદિરૂપ જ્વાલા, એવો  
અર્થ કરવામાં આવેલ છે.

ભાવાર્થ—મુનિનું શરીર જ્યારે પોતાના કર્તવ્ય માર્ગનું આચરણ કર-  
વામાં શિથિલ થાય છે ત્યારે એનું કર્તવ્ય છે કે તેણે સંસારજનક કર્મોંનો  
ક્ષય કરવામાં પ્રયોજનશીલ થઈ ચતુર્થ ષષ્ઠ આદિ આનુપૂર્વીકી આધાર અને  
ક્રોધાદિક કષાયોંને દૂર કરતાં કરતાં ઇંગિતમરણરૂપ સંધારો ધારણ કરવો આ  
માર્ગ મહર્ષિયોંદ્વારા પણ આજ અવસરમાં પહેલાં આચરવામાં આવેલ છે. આ વિચાર  
રથી એ મુનિ પણ પોતાની શારીરિક ક્રિયાઓંને નિયમિત કરી આવું મરણ  
કરવા માટે ઉત્તરોત્તર પરિણામોની વૃદ્ધિ કરતા રહે. આ સમયે થોડી પણ  
શિથિલતા ન આવે, એની પૂર્ણપણે સાવધાની રાખે. ફલકાપદર્થો આ પદથી સૂત્રકારે



તાદૃશમરણવિધિમેવાહ—‘અણુપવિસિત્તા’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—અણુપવિસિત્તા ગામં વા નગરં વા સ્વેડં વા કઢ્ઢવં વા મડંબં વા પટ્ટણં વા દોળમુહં વા આગરં વા આસમં વા સન્નિવેસં વા નેગમં વા રાયહાણિં વા તળાઈં જાઈજ્જા, તળાઈં જાઈત્તા સે તમાયાણે ઇગંતમવક્કમિજ્જા, ઇગંતમવક્કમિત્તા અપ્પંડે અપ્પપાણે અપ્પવીણે અપ્પહરિણે અપ્પોસે અપ્પોદણે અપ્પુત્તિંગપ-  
ણગદગમદ્વિયમક્કડાસંતાણે પડિલેહિયર પમડ્ડિયર તળાઈં સંથરિજ્જા, તળાઈં સંથરિત્તા ઇત્થવિ સમણે ઇત્તરિયં કુજ્જા, તં સચ્ચં સચ્ચવાઈં ઓણે તિન્ને છિન્નકહંકહે આઈયટ્ઠે અણાઈંણે ચિન્નાણં ભેડરં કાયં, સંવિહૂય વિરૂવરૂવે પરીસહોવસગ્ગે, અસ્સિં વિસ્સંભણાણે ભેરવમણુચિન્ને તત્થવિ તસ્સ કાલપરિયાણે, જાવ આણુગામિયં-તિ વેમિ ॥ સૂ. ૫ ॥

છાયા—અનુપવિશ્ય ગ્રામં વા નગરં વા સ્વેડં વા કઢ્ઢવં વા મડંબં વા પત્તનં વા, દોળમુહં વા, આગરં વા, આશ્રમં વા, સન્નિવેશં વા, નૈગમં વા, રાજધાનાં વા, તળાણિ વા, યાચેત, તળાણિ યાચિત્વા સ તાન્યાદાયેકાન્તે અપક્રમેત, એકાન્તમપક્રમ્ય અલ્પાણ્ડે અલ્પપ્રાણે અલ્પવીજે અલ્પહરિતે અલ્પાવશ્યાયે અલ્પોદકે અલ્પોત્તિજ્ઞપનક-  
દકમૃત્તિકામર્કટસંતાનકે પ્રત્યુપેક્ષ્યર પ્રમૃજ્યર તળાણિ સંસ્તરેત, તળાણિ સંસ્તીર્ય અત્રાપિ સમયે ઇત્વરિકં કુર્યાત્, તત્સત્યં સત્યવાદી ઓજસ્તીર્ણશ્ચિન્નકથંકથઃ આતીતાર્થઃ અનાતીતઃ, ત્યક્ત્વા મિદુરં કાયં સંવિહૂય વિરૂપરૂપાન્ પરીપહોપર્ગાન્ અસ્મિન્ વિશ્રમ્ભણતયા ભૈરવમનુચીર્ણવાન્, તત્રાપિ તસ્ય કાલપાર્યાયો યાવદાનુગા-  
મિકમ્—ઇતિ બ્રવીમિ ॥ સૂ. ૫ ॥

પ્રકારકે મરણ કરનેમેં આત્મઘાતકા અભાવ પ્રકટ કિયા હૈ ॥ સૂ. ૪ ॥

અબ્ હસ મરણકી હી વિધિકા પ્રદર્શન કરતે હૈ—‘અણુપવિસિત્તા’ ઇત્યાદિ ।

આવું મરણ કરવામાં આત્મઘાત જેવું બનતું નથી તેમ પ્રપટ કરેલ છે. (સૂ. ૪)  
એ મરણનીજ વિધિને પ્રદર્શિત કરતાં સૂત્રકાર કહે છે—‘અણુપવિસિત્તા’ ઇત્યાદિ.

ટીકા—‘અનુપવિચ્ચે’—ત્યાદિ, સ મિશ્રુઃ ‘ગ્રામં’—ગ્રસતિ બુદ્ધ્યાદિગુણાનિતિ ગ્રામસ્તં, ‘વા’ સર્વત્ર પશ્યાન્તરઘોતકો જ્ઞેયઃ નગરં=પ્રસિદ્ધં, ખેટં=પાંથુપાકારવદ્, કર્બટં=શુભ્રપાકારવેષ્ટિત્, મહમ્બં-યસ્ય ચતુર્દિશુ સાર્થકોદ્ગયાન્તરે ગ્રામાદિકં નાસ્તિ તત્,

ઈંગિતમરણકા અભિલાષી વહ મુનિ ગ્રામ, નગર, ખેટ, કર્બટ, મહમ્બ, પ્રત્તન, દ્રોણમુખ, આકર, આશ્રમ, સન્નિવેશ, નિગમ, અથવા રાજધાનીમાં જાકર ઘાસકી યાચના કરે. ઘાસકો લેકર વહ પર્વતકી ગુફા-આદિ એકાન્ત સ્થાનમાં જાવે. વહાં કીડીઆદિકોંકે અણ્ડોંસે રહિત, ઘ્રીન્દ્રિયાદિક પ્રાણિયોંસે રહિત, નીવાર-ધાન્યાદિકબીજરહિત, દૂર્વાદિરહિત, અંકુરરહિત, હિમરહિત, ભૌમ એવં આન્તરિક્ષ જલરહિત, ઉત્તિંગ, પનક, દક-મૃત્તિકા ઓર મર્કટસન્તાનસે રહિત, એસે સ્થાનમાં ડસ ઘાસકા સંસ્તારા કરે (ડસે વિછાવે). સંસ્તારા કરનેકે પહિલે વહ ડસ સ્થાનકી અચ્છી તરહ-વાર વાર-પ્રતિલેખના કર લેવે, પ્રતિલેખના કર લેને વાદ ડસકા ફિર રજોહરણ આદિસે પ્રમાર્જન કરે. વડીનીત એવં લઘુનીતકે સ્થાનકા ભી અચ્છી તરહસે નિરીક્ષણ કરલેવે.

‘ગ્રસતિ બુદ્ધ્યાદિગુણાન્ ઇતિ ગ્રામઃ’—બુદ્ધિઆદિ ગુણોંકા જો ગ્રાસ કરતા હૈ—અર્થાત્ જહાં પર રહનેસે બુદ્ધ્યાદિક ગુણોંમાં વિશેષ ઉત્કર્ષતા નહીં આતી હૈ ડસકા નામ ગ્રામ હૈ. નગર, પ્રસિદ્ધ હૈ. જિસકે ચારોં ઓર વિશાલ જૈંચા ધૂલિ કા કોટ રહતા હૈ વહ ખેટ હૈ. જો છોટે પરકોટેસે ઘિરા હોતા હૈ વહ કર્બટ હૈ. જિસકી ચારોં દિશાઓંમાં ઢાઈ-ઢાઈ કોશ તક ગ્રામાદિક નહીં હોતે હૈં વહ મહમ્બ કહલાતા હૈ. જહાં પર પ્રત્યેક વસ્તુ

ઈંગિત મરણના અભિલાષી એ મુનિ ગ્રામ, નગર, ખેટ, કર્બટ, મહમ્બ, પ્રત્તન, દ્રોણમુખ, આકર, આશ્રમ, સન્નિવેશ, નિગમ, અથવા રાજધાનીમાં જઈ ઘાસની યાચના કરે. ઘાસને લઈ તે પર્વતની ગુફા વગેરે એકાન્ત સ્થાનમાં જાય, ત્યાં કીડી વગેરેનાં ઇંડાંથી રહિત, બે ઇન્દ્રિયવાળા પ્રાણીઓથી રહિત, ઉત્તિંગ, પનક, દક-મૃત્તિકા અને મર્કટસંતાન-(કરોળીયાની જાળ)થી રહિત એવા સ્થાનમાં બિછાવે. સંધારો કરતાં પહેલાં તે એ સ્થાનને સારી રીતે જોઈ લે અને ત્યારપછી રજોહરણ વગેરેથી પ્રમાર્જિત કરે. દરેક રીતે એ સ્થાનનું સંપૂર્ણ પણું નિરીક્ષણ કરી લે.

ગ્રસતિ બુદ્ધ્યાદિગુણાન્, ઇતિ ગ્રામઃ—બુદ્ધિ વગેરે ગુણોના બે ગ્રાસ કરે છે, અર્થાત્ બે સ્થળે રહેવાથી બુદ્ધિ આદિ ગુણોમાં ઉત્કર્ષતા આવતી નથી એનું નામ ગ્રામ છે, નગર પ્રસિદ્ધ છે, જેની ચારે બાજુ ધુળના ઉંચા ઉંચા ટેકરા હોય છે તે ખેટ છે, જે નાના પરકોટાથી ઘેરાયેલ છે તે કર્બટ છે, જેની ચારે દિશાઓમાં અઢી-અઢી

પત્તનં=સર્વવસ્તુજાતં યત્ર સુખેન લભ્યતે તત્, તત્ત્વ દ્વિવિધં જલપત્તનં સ્થલપત્તનં ચ, તત્ર જલપત્તનં રત્નદ્વીપાદિકં, સ્થલપત્તનં=લવપુરાદિકં, દ્રોણમુખં=જલ-સ્થલાગ-મનિર્ગમમાર્ગમ્, યથા-મુમ્બાપુર્યાદિકમ્, આકરં=હિરણ્યાદિચિન્તિ, આશ્રમં=તાપ-સાદીનાં વસતિ, સન્નિવેશં=સમાગન્તુકનરાણામાવાસં-સામાન્યજનાવાસં, નિગમં=પ્રચુરતરવણિગાદીનામાવાસં, રાજધાનીં=રાજસ્થાનમ્, અનુપ્રવિશ્ય તૃણાનિ યાચેત, તૃણાનિ યાચિત્વા તાનિ તૃણાનિ આદાય=ગૃહીત્વા એકાન્તમ્=નિર્જનસ્થાનં ગિરિકન્દરાદિકમ્ ઉપક્રમેત=ગચ્છેત્, એકાન્તમુપક્રમ્ય ચ-‘અલ્પાણ્ડે’ અલ્પાનિ=અવિદ્યમાનાનિ અણ્ડાનિ કીટકાદીનાં યત્ર તદ્ અલ્પાણ્ડં, તત્ર-અણ્ડપરિવર્જિતે સ્થાને, અલ્પશબ્દોઽત્ર પ્રકરણે સર્વત્રાઽભાવાર્થક એવ બોધ્યઃ । એવમ્ અલ્પપ્રાણે=દ્વીન્દ્રિયા-

અનાયાસ મિલતી હૈ વહ પત્તન હૈ । યહ દો પ્રકારકા હોતા હૈ-એક જલ-પત્તન હૈ ઓર દૂસરા સ્થલપત્તન । રત્નદ્વીપ આદિ જલપત્તન હૈ । લવપુર (લાહોર) આદિ નગર સ્થલપત્તન હૈ । જિસમેં આને જાનેકા માર્ગ જલ એવં સ્થલ, ઇન દોનોંસે હોતા હૈ વહ દ્રોણમુખ હૈ, જૈસે વર્તમાનમેં બંબઈ આદિ શહર હૈ । સુવર્ણઆદિકી ઉત્પત્તિ કા જો સ્થાન હૈ વહ આકર હૈ । તાપસ આદિકે નિવાસસ્થાન આશ્રમ હૈ । પથિકોંકે ઠહરનેકે સ્થાનકા નામ સન્નિ-વેશ હૈ । જહાં અધિક સંખ્યામેં વ્યાપારિવર્ગકા નિવાસ હો વહ નિગમ હૈ । જિસમેં સ્વયં રાજાકા નિવાસ રહતા હૈ વહ રાજધાની હૈ ।

इस प्रकरणमें अल्प शब्द अभाव अर्थका द्योतक है । उत्तिंग, कीडी नगरेका नाम है । पनक-भाषामें लीलण-फूलणको कहते हैं, यह जहां

કોશ(ગાઉ), સુધી ગામ નથી હોતાં તે મડમ્બ કહેવાય છે. જ્યાં દરેક વસ્તુ અના-યાસે મળી જાય છે તે પત્તન છે. એ એ પ્રકારનાં હોય છે-એક જળ-પત્તન અને બીજું સ્થળ-પત્તન. રત્નદ્વીપ આદિ જળ-પત્તન છે. લવપુર-લાહોર વિગેરે નગર સ્થળ-પત્તન છે. જ્યાં આવવા જવાનો માર્ગ જળ અને સ્થળ બન્નેથી હોય છે તે દ્રોણમુખ છે તે હાલના મુંબઈ આદિ શહેર છે. સુવર્ણ વગે-રેની ઉત્પત્તિનાં જે સ્થાન છે તે આકર-ખનિ છે. તાપસ વગેરેનાં નિવાસસ્થાન આશ્રમ છે. પથિકોને આશ્રય આપનારાં સ્થાનતું નામ સન્નિવેશ છે. જ્યાં અધિક પ્રમાણમાં વેપારી વર્ગનો વસવાટ હોય છે તે નિગમ છે. જ્યાં રાજાનો નિવાસ હોય છે તે રાજધાની છે.

આ પ્રકરણમાં અલ્પ શબ્દ અભાવ અર્થનો દ્યોતક છે. ઉત્તિંગ કીડી નગરાનું નામ છે. પનક-ભાષામાં લીલણ-ફૂલણને કહે છે, જે જમીનમાં ભીનાશ



દિપ્રાણિવર્જિતે, અલ્પવીજે=નીવાર-ધાન્યાદિ બીજરહિતે, અલ્પહરિતે=દૂર્વાદિહરિત-  
વર્જિતે 'અલ્પાવશ્યાયે' -અલ્પઃ=અવિદ્યમાનઃ અવશ્યાયો=નીહારો યત્ર તત્તત્ર  
=હિમરહિતે, અલ્પોદકે=ભૌમાન્તરિક્ષજલરહિતે, 'અલ્પોત્તિઙ્ગ-પનક-દકમૃત્તિકા,  
મર્કટસન્તાનકે-ઉત્તિઙ્ગઃ=પિપીલિકાનગરાદિકઃ, પનકઃ=આર્દ્રત્વેન પૃથિવ્યાદિસ્થિતઃ  
ઉલ્લિવિશેષઃ 'લીલણ-ફૂલણ' इति भाषायाम्, દકમૃત્તિકા=અપ્કાયાદ્રીભૂતા મૃત્તિકા,  
મર્કટસન્તાનકઃ=લૂતાતન્તુજાલં ચૈતેષામિતરેતરદ્વન્દ્વે ઉત્તિઙ્ગ-પનક-દકમૃત્તિકા-  
મર્કટસન્તાનકાસ્તે અલ્પાઃ=અવિદ્યમાના યત્ર તત્ તત્ર સ્થાને ગત્વા, તત્ત્વશ્લુષા  
પ્રત્યુપેક્ષ્ય૨=મુહુર્મુહુર્દૃષ્ટ્વા, અત્ર વીક્ષ્યાયાં દ્વિર્વચનમ્; પ્રમૃજ્ય૨=રજોહરણાદિના  
સમ્માર્જ્ય૨, તાદૃશે પૂર્વોક્તે સ્થાને તૃણાનિ સંસ્તરેત્, તૃણાનિ સંસ્તીર્ય ઉચ્ચારપ્રસ-  
વણભૂમિં પ્રત્યુપેક્ષ્ય ચ સંસ્તારકસ્થિતઃ પૂર્વાભિમુખઃ સદોરકમુખવસ્ત્રિકોપશોભિતમુખઃ  
કૃતસિદ્ધનમસ્કારઃ આવર્તિતપશ્ચપરમેષ્ઠિમન્ત્રો ગૃહીતચતુર્વિધશરણઃ પ્રત્યાઘ્યાતાષ્ટા-  
દશપાપઃ ક્ષમાપિતસકલજીવઃ, અત્રાપિ સમયે=એતસ્મિન્નવસરે 'અપિ' શબ્દાદન્યસ્મિ-  
ન્નપિ આકસ્મિકોપસર્ગસમયે ક્રિયમાણત્વગર્વતનાદિક્રિયો ધૃતિસંહનનાદિવલસમન્વિતો

જમીનમેં ગીલાપનરહતા હૈ વહાં રહતી હૈ। અપ્કાયસે ગીલી હુઈ  
મિટ્ટીકા નામ દકમૃત્તિકા હૈ। મકડીકે જાલેકા નામ મર્કટસન્તાન  
હૈ। યે સત્ર જાવજાત જહાં નહીં હૈ, એસે સ્થાન પર વહ અપના  
ઘાસકા સંથારા કરે, ઓર ઉસ પર પૂર્વાભિમુખ હોકર બેઠ જાવે। ડોરા  
સહિત મુંહપત્તિસે શોભિત હૈ મુખ જિસકા એસા વહ સાધુ સિદ્ધોંકો  
નમસ્કાર કર પંચપરમેષ્ઠિવાચક નમસ્કાર મંત્રકા જાપકરે ઓર અરહંત  
સિદ્ધ, સાધુ ઓર કેવલિપ્રજ્ઞાન ધર્મકા શરણ ગ્રહણ કરે। સત્રહ પ્રકારકે  
પાપસ્થાનોંકા પરિત્યાગ કરે ઓર સમસ્તજીવોંસે ક્ષમાયાચના કરે,  
અપની ઓરસે મી ઉન્હેં ક્ષમા પ્રદાન કરે। હસ અવસરમેં મી ત્વગર્વતના-  
દિક્રિયા કરતા હુઆ વહ ધૃતિ-સંહનન-વલ-સમન્વિત ગ્લાન સાધુ નિયત

હોય છે ત્યાં એ રહે છે. અપ્કાયથી ભીંબએલી માટીનું નામ દકમૃત્તિકા છે.  
કશેળીયા વગેરેનાં જાણાં મર્કટસન્તાન છે. આવી જીવ-જાત જ્યાં ન  
હોય એવા સ્થાન ઉપર તે ઘાસનો સંથારો કરે, અને તેના ઉપર  
પૂર્વાભિમુખથી બેસી જાય. ડોરા સાથેની મુંહપત્તીથી શોભિત મુખવાળા તે  
સાધુ સિદ્ધોને નમસ્કાર કરી પંચપરમેષ્ઠિવાચક નમસ્કાર મંત્રનો જાપ કરી  
અરહંત, સિદ્ધ, સાધુ અને કેવલિપ્રજ્ઞાન ધર્મનું શરણ લે. અહાર પ્રકારના  
પાપસ્થાનોનો પરિત્યાગ કરી સમસ્ત જીવોની ક્ષમાયાચના કરી પોતાના તરફથી  
પણ એમને ક્ષમા આપે. આ અવસરમાં પણ ત્વગર્વતનાદિ ક્રિયા કરતાં કરતાં  
તે ધૃતિ-સંહનન-જળ-ચુકત ગ્લાન સાધુ નિયમિત હેશમાં હાલવા આદવાદ્ય

ગ્લાનઃ સ મિશ્નુઃ સ્વરિકમ્=ઇક્ષિતમરણં નિયતદેશપ્રચારાક્ષીકારરૂપં યાવજ્જીવં ચતુર્વિધાહારત્યાગનિયમં કુર્યાત્, ઉક્તશ્ચ—

“પચ્ચક્ષ્વહ આહારં, ચતુર્વિધં નિયમઓ ગુરુસમીવે ।

ઇંગિયદેસંમિ તદ્વા, ચિદ્વં પિ હુ નિયમઓ કુણહ ॥ ૧ ॥

ઉવ્વત્તહ પરિયત્તહ, કાઙ્ગમાઈવિ અપ્પણા કુણહ ।

સન્વમિહ અપ્પણ ચ્ચિય, ણ અન્નજોગેણ ધિતિબલિઓ ” ॥ ૨ ॥

છાયા—પ્રત્યાખ્યાતિ આહારં, ચતુર્વિધં નિયમાદ્ ગુરુસમીપે ॥

ઇક્ષિતદેશે તથા, ચેષ્ટામપિ નિયમતઃ કરોતિ ॥ ૧ ॥

ઉદ્વર્તતે પરિવર્તતે કાર્યિક્યાદ્યપિ આત્મના કરોતિ ॥

સર્વમિહાત્મનૈવ નાન્યયોગેન ધૃતિબલિકઃ ॥ ૨ ॥

પ્રદેશમેં હલને—ચલનેરૂપ મર્યાદાસે યુક્ત ઇંગિતમરણકો કિ જિસમેં યાવજ્જીવ ચતુર્વિધ આહારકા પરિત્યાગ હોતા હૈ ધારણ કરે । કહા મી હૈ—

“પચ્ચક્ષ્વહ આહારં, ચતુર્વિધં નિયમઓ ગુરુસમીવે ।

ઇંગિયદેસંમિ તદ્વા, ચિદ્વં પિ હુ નિયમઓ કુણહ ॥ ૧ ॥

ઉવ્વત્તહ પરિયત્તહ, કાઙ્ગમાઈ વિ અપ્પણા કુણહ ।

સન્વમિહ અપ્પણ ચ્ચિય, ણ અન્નજોગેણ ધિતિબલિઓ ” ॥ ૨ ॥

ભાવાર્થ—ઇસ ઇંગિત મરણમેં ગુરુકે સમીપ ચતુર્વિધ આહારકા પરિત્યાગ નિયમસે હોતા હૈ, ઇસ મરણમેં નિયમિત પ્રદેશમેં હી ગમનાગમનરૂપ ચેષ્ટા સાધુ કરતા હૈ, અનિયમિત પ્રદેશમેં નહીં । ઇસમેં સમસ્ત શારીરિક સેવા સંભાલ સાધુ સ્વતઃ કરતા હૈ, દૂસરોં સે નહીં કરવાતા ।

મર્યાદાયુક્ત ઇંગિતમરણ કે બેળે યાવજ્જીવ ચતુર્વિધ આહારનો પરિત્યાગ હોય છે—ધારણ કરે. કહ્યું પણ છે—

“પચ્ચક્ષ્વહ આહારં, ચતુર્વિધં નિયમઓ ગુરુસમીવે ।

ઇંગિયદેસંમિ તદ્વા, ચિદ્વં પિ હુ નિયમઓ કુણહ ॥ ૧ ॥

ઉવ્વત્તહ પરિયત્તહ, કાઙ્ગમાઈ વિ અપ્પણા કુણહ ।

સન્વમિહ અપ્પણ ચ્ચિય, ણ અન્નજોગેણ ધિતિબલિઓ ” ॥ ૨ ॥

ભાવાર્થ—આ ઇંગિત મરણમાં શુદ્ધની સામે ચતુર્વિધ આહારનો પરિત્યાગ નિયમથી થઈ જાય છે, એવા મરણમાં નિયમિત પ્રદેશમાં ગમનાગમનરૂપ ચેષ્ટા સાધુ કરે છે, અનિયમિત પ્રદેશમાં નહિ. એમાં દરેક રીતે શારીરિક સેવા સંભાળ સાધુ પોતે જ કરે છે—બીજાથી કરાવતા નથી.

एवमिङ्गितमरणविधायी कीदृशो भवतीत्याह—‘तत्सत्य’—मित्यादि, सत्य-वादी यथोक्तानुष्ठानाद् यथागृहीतप्रतिज्ञापरिपालनात्, एवम् ओजः=रागद्वेष-वर्जितः, किं च-तीर्णः=दुष्पारसंसारपारावारपारं गतः, अत्र तरणस्य भविष्यत्कालि-कत्वेऽपि भूतकालिकत्वमौपचारिकं बोध्यम्। एवं ‘छिन्नकथंकथः’ छिन्ना=दूरीकृता कथं=कथमपिरूपा कथा=रागकथादिरूपा विकथा येन स च्छिन्नकथंकथः। यद्वा—‘छिन्नकथंकथः’—छिन्ना=अपनीता ‘इङ्गितमरणप्रतिज्ञामहं कथं=केन प्रकारेण पारयिष्ये’ इत्येवंविधा कथा येन स च्छिन्नकथंकथः, यस्त्वधृतिमान् दुरनुष्ठेयाचारमाचरितुं प्रवृत्तो भवति स जायते कथंकथी, परन्तु यः पूर्वोक्तविधिः

इङ्गितमरण करनेवाला साधु कैसा होता है इस बातको सूत्रकार निम्न-लिखित पदों द्वारा प्रदर्शित करते हैं—वह सत्यवादी होता है, कारण कि जिसरूपसे उसने नियम ग्रहण किया है उसी रूपसे वह उसका निर्वाहक होता है। वह ओज-रागद्वेष रहित होता है। तीर्ण-जिसका पार होना मुश्किल है, ऐसे संसाररूपी समुद्रको तैरनेवाला होता है। यद्यपि संसारसमुद्रसे यह अभी पार नहीं हुआ है, आगे पार होगा, फिर जो यहां ‘तीर्णः’ ऐसा भूतकालका प्रयोग किया है वह केवल उपचारसे ही समझना चाहिये। यह छिन्नकथंकथ होता है—रागकथादिरूप विकथाओंका दूर करनेवाला होता है। अथवा—“इस इङ्गितमरण नियमका मैं कैसे निर्वाह कर सकूंगा?” इस प्रकारकी कथाका परिहारक होता है। जो अधृतिवाला हो कर दुरनुष्ठेय आचारको आचरित करनेके लिये प्रवृत्त होता है वही

દાગિત મરણ કરવાવાળા સાધુ કેવા હોય છે એ વાતને સૂત્રકાર નિચેના પદોથી કહે છે—તે સત્યવાદી હોય છે, કારણ કે જેવા રૂપથી એણે નિયમ લીધેલ હોય છે, એ રૂપથી તે એને નીભાવે છે. તે ઓજ—રાગદ્વેષરહિત હોય છે, તીર્ણ—જેનાથી પાર થવું મહામુશ્કેલ છે તેવા સંસારરૂપી સમુદ્રને તરી જનારા હોય છે, હજુ સુધી એ સંસારસમુદ્રથી પાર થઈ શક્યા નથી—આગળ ઉપર પાર થશે, છતાં પણ અહિં “તીર્ણઃ” એવો ભૂતકાળનો પ્રયોગ કરેલ છે તે ફક્ત ઉપચારરૂપ જ સમજવો જોઈએ. તે છિન્નકથંકથ હોય છે—રાગદ્વેષાદિક કથારૂપ વિકથાઓથી દૂર રહેનારા હોય છે. અથવા —“આ દાગિતમરણ નિયમને હું કઈ રીતે પાળી શકીશ” આ પ્રકારની આશંકાવાળા હોય છે જે અધૃતિવાળા (ધીરજ વગરના) થઈ દુરનુષ્ઠેય આચારનાં આચરણ કરવામાં પ્રવૃત્ત થાય છે તે કથંકથી બને છે, “હું હવે આ આચારનું પાલન કેમ કરી શકીશ” એવી કથા કથી કરે છે પરંતુ તે એવા નથી, કેમ કે



સ મહાપુરુષતયા ધૃતિબલસમ્પન્નસ્તાદૃશો ન ભવતીત્યર્થઃ, તથા-આતીતાર્થઃ આ=સમન્તાદ્ અતીવ્વૈતો=જ્ઞાતઃ અર્થો=જીવાજીવાદિપદાર્થો યેન સ આતીતાર્થઃ=સમ્યક્તયા પરિજ્ઞાતપદાર્થસાર્થઃ । યદ્વા-આતીતાઃ=સમ્યગ્રૂપેનાતિક્રાન્તા અર્થાઃ=પ્રયોજનાનિ યસ્ય સ આતીતાર્થઃ=નિવૃત્તવ્યાપારઃ, એવમ્-‘અનાતીતઃ-આ=સમન્તાત્ અતીવ્વૈતઃ=ગતોઽનાદિસંસારં સ આતીતઃ, અવિદ્યમાન આતીતો યસ્ય સઃ-અનાતીતઃ=અપારસંસારપારગામી, સ મિશ્રુઃ, તદ્=ઇક્ષિતમરણં-‘સત્યં’ સદ્બ્રહ્મો હિતં સત્યં સર્વજ્ઞોપદેશેન સુગતિગમનેઽવિસંવાદાત્તથ્યં વિજ્ઞાય મિદુરં=પ્રતિક્ષણવિશરણશીલં કાયમ્=ઔદારિકં દેહં ત્યક્ત્વા=વિહાય વિરુપરૂપાન્=બહુવિધાન્ પરીપહોપસર્ગાન્ સંવિધૂય=અપનીય અસ્મિન્=વીતરાગોપદિષ્ટે શાસને વિશ્રમ્ભણતયા=વિશ્વાસ-ભાજનતયા તદુક્તાગમસ્ય નિઃસંશયં પરિશીલિતત્ત્વેન ભૈરવં=કાતરાણાં મયાવહં

કથંકથી હોતા હૈ, “મૈ અબ્ હિસ આચારકા પાલન કૈસે કર સકૂંગા” એસી કથા કિયા કરતા હૈ પરંતુ યહ્ એસા નહીં હૈ, ક્યોં કિ યહ્ મહાપુરુષ હોનેસે ધૃતિબલસમ્પન્ન હોતા હૈ । યહ્ આતીતાર્થ હોતા હૈ-અચ્છી તરહસે જીવ ઓર અજીવ આદિ પદાર્થોં કા જ્ઞાતા હોતા હૈ । અથવા સમ્યક્રૂપસે અતિક્રાન્ત હો ચુકે હૈં સમસ્ત પ્રયોજન જિસકે એસા હોતા હૈ । યહ્ અનાતીત-અપાર સંસારસે પારગામી હોતા હૈ ।

યહ્ મુનિ સર્વજ્ઞકે ઉપદેશસે સુગતિકે ગમનમેં વિસંવાદરહિત હોનેસે હી સજ્જનોંકે લિયે હિતવિધાયક હિસ ઇંગિતમરણરૂપ સત્યકો જો કાયરોંકે લિયે મયાવહ્ હૈ જાનકર વીતરાગ ઉપદિષ્ટ શાસનમેં વિશ્વાસયુક્ત હોનેકે કારણસે હી સેવન કરતા હૈ; ઓર યહ્ સમજ્ઞતા હૈ કિ “યહ્ ઔદારિક શરીર પ્રતિક્ષણ વિનાશરૂપ હૈ, હિસ લિયે હિસ મરણદ્વારા હિસકા ત્યાગ

તે મહાપુરુષ હોવાથી ધૃતિબલસમ્પન્ન હોય છે, તે આતીતાર્થ હોય છે-સારી રીતે જીવ અને અજીવ વગેરે પદાર્થોના જાણકાર હોય છે. અથવા સમ્યક્રૂપથી અતિક્રાન્ત થઈ ચુક્યા છે સમસ્ત પ્રયોજન જેમનાં એવાં હોય છે, તે અનાતીત-અપાર સંસારથી પારગામી હોય છે.

તે મુનિ સર્વજ્ઞના ઉપદેશથી સુગતિના ગમનમાં વિસંવાદરહિત હોવાથી જ સજ્જનોને માટે હિતવિધાયક એવા ઇંગિતમરણરૂપ સત્યને જે કાયરોને માટે લાયકારક છે જાણીને વીતરાગદ્વારા ઉપદેશેલ શાસનમાં વિશ્વાસ હોવાના કારણે સેવે છે અને સમજે છે કે-“આ ઔદારિક શરીર પ્રતિક્ષણ વિનાશરૂપ છે. આ માટે એ મરણદ્વારા ત્યાગ કરવો તે સર્વોત્તમ કાર્ય છે” આ જ્યાલથી જે ઔદારિક શરીરનો એના સેવનથી પરિત્યાગ કરે છે એટલે આ મરણનું આચરણ કરતી વખતે

સાધ્વાચારમ્ અનુચીર્ણઃ = આચરિતવાન્, તત્રાપિ = વ્યાધિપીડાજનિતેક્લિતમ-  
રણસ્વીકરણેऽપિ તસ્ય=કાલજ્ઞસ્ય સાધોઃ કાલપર્યાયઃ, કર્મનિર્જરણસ્યોભયત્ર  
સમાનત્વાત્, અતઃ સ તત્ર વ્યન્તિકારકો ભવતિ, इत्यारभ्य यावत् આનુગામિકં  
તસ્ય ભવતિ। ‘इति ब्रवीमी’-ત્યસ્યાર્થસ્તૂત્ત એવ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

॥ આઠવેં અધ્યયનકા છઠ્ઠા ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૮-૬ ॥

करना सर्वोत्तम कार्य है ” इसी ख्याल से जो इस औदारिक शरीरका  
इसके सेवनसे परित्याग करता है, एवं इस मरणके आचरण करते  
समय इसे जो भी अनेक प्रकारके परीषह और उपसर्ग आते हैं उन्हें  
यह आनंदसे सहन करता है, उस ओर ध्यान नहीं देता है,  
उस कालज्ञ साधुकी, व्याधिपीडासे जनित इस इंगितमरणमें भी  
कालपर्याय है, क्यों कि कर्मकी निर्जरा दोनों जगह समान है, इस  
लिये वह साधु संसारका अन्तकारक होता है और जन्ममरणके जालको  
विनष्ट कर मोक्षके अनुकूल मार्गपर चलनेवाला होता है ॥सू०५॥

॥ આઠવેં અધ્યયનકા છઠ્ઠા ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૮-૬ ॥

તેને અનેક પ્રકારના પરિષદ અને ઉપસર્ગ આવે છે તેને આનંદથી સહન કરે  
છે-એ તરફ ધ્યાન આપતા નથી. એવા કાલજ્ઞ સાધુનું વ્યાધિ પીડાથી થયેલ  
ઇંગિત મરણ પણ કાળપર્યાય છે, કેમ કે કર્મની નિર્જરા બન્ને સ્થળે સમાન  
છે, આ કારણે તે સાધુ સંસારનો અન્ત કરનાર હોય છે અને જન્મ મરણની  
બાળને ભેદીને મોક્ષના અનુકૂળ માર્ગ ઉપર ચાલવાવાળા હોય છે. (સૂ૦ ૫)

આઠમા અધ્યયનનો છઠો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૮-૬ ॥

### । अथाष्टमाध्ययनस्य सप्तम उद्देशः ।

अभिहितः षष्ठ उद्देशः, साम्प्रतं सप्तम आरभ्यते । अस्य पूर्वोद्देशेन सहायं सम्बन्धः—पूर्वत्रैकत्वभावनाभावितान्तःकरणस्य धृति—संहननयुक्तस्येङ्गितमरणं वर्णितम् । अत्र चैकत्वभावना प्रतिमाभिः सम्पादनीयेत्येकत्वभावनामेव कथयित्वा विशिष्टतरसंहननोपेतस्य पादपौपगमनमपि विधेयमिति प्रतिपादनीयम् । तत्र प्रथमं प्रतिमाप्रतिपन्नस्याभिग्रहविशेषेणावस्थां वर्णयति—‘जे भिक्खू’ इत्यादि ।

मूलम्—जे भिक्खू अचेले परिवुसिए, तस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—चाएमि अहं तण्णफासं अहियासित्तए, सीयफासं अहियासित्तए, तेउफासं अहियासित्तए, दंस—मसगफासं अहियासित्तए, एगयरे अन्नतरे विरूवरूवे फासे अहियासित्तए, हिरिपडिच्छायणं चऽहं नो संचाएमि अहियासित्तए, एवं से कप्पइ कडिबन्धणं धारित्तए ॥ सू० १ ॥

### ॥ आठवें अध्ययनका सातवां उद्देश ॥

छट्ठा उद्देश कहा जा चुका है । अब सप्तम उद्देश प्रारंभ होता है । इसका पूर्व उद्देश के साथ यह संबंध है—पूर्व उद्देशमें एकत्वकी भावनासे भावित अन्तःकरणवाले, एवं धृति—संहननसे युक्त साधुके इंगित मरणका वर्णन किया है । इस उद्देशमें प्रतिमाओं द्वारा वह एकत्व भावना संपादनीय है, अतः एकत्वभावनाका ही कथन करके विशिष्टतर संहननसे युक्त उस साधुको पादपौपगमन संथारा भी विधेय है, यह प्रतिपादित होगा । इसमें सर्व प्रथम सूत्रकार प्रतिमाप्रतिपन्न साधुकी अभिग्रहविशेषसे अवस्थाका वर्णन करते हैं—“जे भिक्खू ” इत्यादि ।

### आठमा अध्ययननो सातमो उद्देश

छठो उद्देश कडेवार्ध गयेल छे. डवे सातमा उद्देशनो प्रारंभ थाय छे. आनो पूर्व उद्देशनी साथे आ संबंध छे—पूर्व उद्देशमां ऐकत्वनी भावनाथी भावित अन्तःकरणवाणा, अने धृति संहननथी युक्त साधुना इंगित मरणनुं वर्णन करेल छे. आ उद्देशमां प्रतिमाओद्वारा ते ऐकत्वभावना संपादनीय छे आ रीते ऐकत्वभावनानुं न कथन करीने विशिष्टतर ( ६४ ) संहननथी युक्त ऐ साधुने पादपौपगमन संथारा पणु विधेय छे, आ प्रतिपादित थशे.

आमां सर्व प्रथम सूत्रकार प्रतिमाप्रतिपन्न साधुनी अभिग्रहविशेष अवस्थानुं वर्णन करे छे—“ जे भिक्खू ” इत्यादि.



छाया—यो भिक्षुरचेलः पर्युषितस्तस्य खलु भिक्षोरेवं भवति—शक्नोम्यहं  
तृणस्पर्शमध्यासितुं, शीतस्पर्शमध्यासितुं, दंश-मशकस्पर्शमध्यासितुमेकतरानन्यतरान्  
विरूपरूपान् स्पर्शान् अध्यासितुं हीप्रतिच्छादनं चाहं नो शक्नोम्यध्यासितुम्, एवं  
तस्य कल्पते कटिवन्धनं धर्तुम् ॥सू० १॥

टीका—‘यो भिक्षु’—रित्यादि, यः प्रतिमाप्रतिपन्नो भिक्षुः=अनगारः, अचेलः  
=अभिग्रहविशेषेण वसनवर्जितः सन् पर्युषितः=संयमे तपसि च व्यवस्थितोऽस्ति  
तस्य भिक्षोः=मुनेश्चेतसि एवम्=इत्थं भवति—अहं तृणस्पर्शम्=तृणस्पर्शजन्यपीडाम्  
अध्यासितुम्=अधिसहितुम्, एवं शीतस्पर्शमध्यासितुम्, किञ्च तेजःस्पर्शं=प्रचण्डमा-  
र्तण्डकिरणजनितोष्णजन्यकष्टमध्यासितुम्, तथा दंश-मशकस्पर्शं=दंश-मशकदंशनजनि-  
तदुःखविशेषमध्यासितुं, तथा एकतरान्=मुख्यान् केवलशीतोष्णादिजनितान्, अन्य-  
तरान्=द्विबह्वोरेकतरान्, तथाविधान् विरूपरूपान्=बहुविधान् कर्कशकठोरभूमिकण्ट-

‘यः भिक्षुः’=जो प्रतिमाप्रतिपन्न साधु, ‘अचेलः’=अभिग्रहविशेष से  
वस्त्ररहित होता हुआ, ‘पर्युषितः’=संयम और तपमें व्यवस्थित है, तस्य  
भिक्षोः’=उस मुनिके ‘चेतसि’ चित्तमें, ‘एवं भवति’=इस प्रकार विचार  
आता है कि—‘अहं’=मैं, ‘तृणस्पर्श’=तृणस्पर्शजन्य पीड़ाको, ‘अध्यासितुं’=  
सहन करनेके लिये, ‘एवं’ इसी प्रकार ‘शीतस्पर्श’=शीतस्पर्शजन्य बाधाको  
‘अध्यासितुं’=सहन करने के लिये, ‘तेजः स्पर्श’ सूर्यकी प्रखर किरणोंसे  
जनित उष्णताजन्य कष्टको ‘अध्यासितुं’=सहन करनेके लिये, तथा  
‘दंशमशकस्पर्श’=दंशमशकके काटनेसे उत्पन्न हुए परिषहविशेषको  
‘अध्यासितुं’=सहन करनेके लिये, तथा—‘एकतरान्’=केवल शीत अथवा  
उष्ण आदि जनित किसी एक दुःखको, तथा ‘अन्यतरान्’=शीत उष्ण  
आदि दो में से अथवा बहुतोंमें से किसी अन्यतर कष्टको, अथवा ‘विरूपरू-  
पान्’=अनेक प्रकारके कर्कश और कठोर भूमि और कण्टक आदिसे

यः भिक्षुः=जो प्रतिमाप्रतिपन्न साधु, अचेलः=अभिग्रह विशेषથી वस्त्ररहित  
होवा છતાં, પર્યુષિતઃ=સંયમ અને તપથી વ્યવસ્થિત છે, તસ્ય ભિક્ષોઃ=તે મુનિને  
ચેતસિ ચિત્તમાં, એવં ભવતિ=આ પ્રકારનો વિચાર આવે છે, કે—અહં=હું,  
તૃણસ્પર્શ=તૃણસ્પર્શવાળી પીડાને, અધ્યાસિતું=સહન કરવા માટે, “એવં” એ જ  
પ્રકારે શીતસ્પર્શ=ઠંડીના ઉપદ્રવવાળી બાધાને અધ્યાસિતું=સહન કરવા માટે, તથા  
તેજઃસ્પર્શ=અતિ તપતા સૂર્યના ઉષ્ણ કિરણોને અધ્યાસિતું=સહન કરવા માટે, તથા  
દંશમશકસ્પર્શ=ડાંસ મચ્છરનો પરિસહ અધ્યાસિતું=સહન કરવા માટે, એકતરાન્=  
કેવલ—ઠંડી અથવા ગરમી આ બેમાંથી ગમે તે એક, અન્યતરાન્=તથા બીજા  
પ્રકારના ઘણા દુઃખોમાંથી અન્યતર વિરૂપરૂપાન્=અનેક પ્રકારના કાંકરાવાળી અને

કાદિજનિતાન્ સ્પર્શાન્=દુઃસ્વાનિ અધ્યાસિતું શક્નોમિ=સમર્થોઽસ્મિ । ધૃતિ-સંહનન-યુક્તસ્ય શ્રુતજ્ઞાનદૃષ્ટ્યા પરિજ્ઞાત-નાસ્ક-તિર્યગ્વેદનાભિભવસ્ય વૈરાગ્યભાવના-ભાવિતસ્ય પ્રતિમાપ્રતિપન્નસ્ય મે તાદૃશાનિ દુઃસ્વાનિ બહુશોઽનુભૂતપૂર્વાણિ સન્ત્યત એતાનિ દુઃસ્વાનિ માં પરિભવિતું ન શક્નુવન્તીત્યાશયઃ, પરન્તુ-અહં કેવલં 'હીપ્રતિ-ચ્છાદનં' હિયા=લજ્જયા ગુહ્યસ્ય પ્રતિચ્છાદનમ્=આચ્છાદનમ્, મધ્યમપદસ્ય ગુહ્યસ્ય લોપઃ, ત્યક્તું=વિહાતું ન શક્નોમિ=લજ્જાસ્વભાવત્વેન વિકૃતસાધુવેપશઙ્કયા ચ તત્પરિહર્તું ન સમર્થોઽસ્મીત્યર્થઃ । એવં પૂર્વોક્તહેતુભિઃ તસ્ય=પ્રતિમાપ્રતિપન્નસ્ય મિશ્નોઃ કટિબન્ધનં=વિસ્તરેણ ચતુરઙ્ગુલાધિકદ્વસ્તપ્રમાણં, દૈર્ઘ્યેણ કટિપ્રમાણં, ગણનયા ચૈકં જનિત 'સ્પર્શાન્'=દુઃસ્વોકો, 'અધ્યાસિતું'=સહન કરનેકે લિયે, 'શક્નોમિ'=સમર્થ હું ।

ભાવાર્થ—ધૃતિ ઓર સંહનનસે યુક્ત, શ્રુતજ્ઞાનકી દૃષ્ટિસે નરક ઓર તિર્યગ્ગતિકે કષ્ટોંકો જાનનેવાલે, વૈરાગ્યભાવનાસે ભાવિત, ઓર પ્રતિમાપ્રતિપન્ન, એસે મૈને જબ ઉસ ૨ પ્રકારકે દુઃસ્વોકા પૂર્વમેં બહુતવાર અનુભવ કિયા હૈ તો ફિર યે દુઃસ્વ મુજે, દુઃસ્વિત યા તિરસ્કૃત કરનેકે લિયે સમર્થ નહીં હો સકતે હૈ ।

“હી-પ્રતિચ્છાદનં” હસ પદમેં મધ્યમ પદ “ગુહ્ય”કા લોપ હુઆ હૈ, અતઃ ‘હિયા’=લજ્જાકે કારણ ‘ગુહ્યસ્ય’=ગુહ્યભાગકે ‘પ્રતિચ્છાદનં’=આચ્છાદનરૂપ વસ્ત્રકો ‘ત્યક્તું’=છોડને કે લિયે મૈ, ‘ન શક્નોમિ’=લજ્જા-યુક્ત સ્વભાવવાલા હોનેસે, ઓર સાધુકાવેષકી વિકૃતિ હો જાનેકી શંકા સે સમર્થ નહીં હું । ‘એવં’=હન પૂર્વોક્ત કારણોંસે ‘તસ્ય’=ઉસ પ્રતિમાપ્રતિપન્ન સાધુકે, ‘કટિબન્ધનં’=ચાર અંગુલ અધિક એક હાથ પ્રમાણ વિસ્તૃત એવં

કઠોર ભૂમિના, અને કાંટા વગેરેથી ભરેલા, સ્પર્શાન્=ડુંખોને, અધ્યાસિતું=સહન કરવા માટે શક્નોમિ=સમર્થ છું.

ભાવાર્થ—ધૃતિ અને સંહનનથી યુક્ત શ્રુતજ્ઞાનની દૃષ્ટિથી નરક અને તિર્યગ્ ગતિના કષ્ટોને જાણવાવાળા વૈરાગ્ય ભાવનાથી ભાવિત અને પ્રતિમાપ્રતિપન્ન એવો મેં જ્યારે જે જે દુઃખોનો અગાઉ ઘણી વખત અનુભવ કરેલ છે તો પછી આ દુઃખ મને દુઃખિત અથવા તિરસ્કૃત કરવામાં સમર્થ બની શકનાર નથી.

“હીપ્રતિચ્છાદનં” આ પદમાં મધ્યમ પદ “ગુહ્ય”નો લોપ થયેલ છે. એ રીતે હિયા=લજ્જાથી, ગુહ્યસ્ય=ગુહ્ય ભાગના, પ્રતિચ્છાદનં=આચ્છાદનરૂપ વસ્ત્રને, ત્યક્તું=છોડવા માટે હું, ન શક્નોમિ=લજ્જાયુક્ત સ્વભાવ હોવાથી, અને સાધુના વેષની વિકૃતિ થઈ જવાની શંકાથી સમર્થ નથી. એવં=આ પૂર્વોક્ત કારણોથી તસ્ય=એ પ્રતિમાપ્રતિપન્ન સાધુએ, કટિબન્ધનં=ચાર આંગળા અધિક એક હાથ

કટિવસ્ત્રં ધર્તુ કલ્પતે । યદિ પુનર્લજ્જાપરીષહસહનસમર્થોઽપિ ભવેત્તર્હિ કેવલં સદોરકમુખવસ્ત્રિકારજોહરણોપધિકોઽચેલ એવ પરાક્રમેત ॥ સૂ. ૧ ॥

વસ્ત્રરહિતત્વેન શીતાદિસ્પર્શજન્યદુઃસ્વવિશેષં સમ્યગધિસહેતેતિ દર્શયતિ—  
'અદુવા' ઇત્યાદિ ।

મૂલ્મ—અદુવા તત્થ પરાક્રમંતં ભુજ્જો અચેલં તળપાસા ફુસંતિ, સીયપાસા ફુસંતિ, તેડપાસા ફુસંતિ, દંસમસગપાસા ફુસંતિ, ઇગયરે અન્નયરે વિરૂવરૂવે પાસે અહિયાસેઙ્ગ, અચેલે લાઘવિયં આગમમાણે, જાવ સમભિજાણિયા ॥ સૂ. ૨ ॥

હાયા—અથવા તત્ર પરાક્રમમાણં ભૂયોઽચેલં તળસ્પર્શાઃ સ્પૃશન્તિ, શીતસ્પર્શાઃ સ્પૃશન્તિ, તેજઃસ્પર્શાઃ સ્પૃશન્તિ, દંશમશકસ્પર્શાઃ સ્પૃશન્તિ, એકતરાનન્યતરાન્ વિરૂપ-રૂપાન્ સ્પર્શાન્ અધિસહતે અચેલો લાઘવિકમાગમયન્ યાવત્સમભિજાનીયાત્ ॥ સૂ. ૨ ॥

ટીકા—“અથવે”-ત્યાદિ, અથવા=પક્ષાન્તરે તતથ પૂર્વસૂત્રે હેતુસત્ત્વે વસનં ધરત્ યદિ ન લજ્જતે તદા ચેલરહિતઃ પરાક્રમેત, ઇત્યુક્તમ્, તતોઽન્યપક્ષમાશ્રિત્ય કટિપ્રમાણ લમ્બે એક કટિવસ્ત્રકા ધારણ કરના કલ્પિત હૈ—શાસ્ત્રવિહિત માર્ગ હૈ । યદિ વહ સાધુ લજ્જાપરીષહકો જીતનેમેં શક્તિસંપન્ન હૈ તો મી ઉસે ડોરેસહિત મુહપત્તિ ઓર રજોહરણ, યે દો ઉપધિયાં તો રચના હી ચાહિયે । ઇન્કે રચને પર મી વહ અચેલક હી હૈ ॥ સૂ. ૧ ॥

વસ્ત્રરહિત હોનેસે સાધુ શીતસ્પર્શ આદિ જન્યદુઃસ્વ વિશેષકો અચ્છી તરહ સહનકરે, ઇસ વિષયકો સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરતે હૈ—“અદુવા” ઇત્યાદિ ।

“અથવા” શબ્દ પક્ષાન્તરકા દ્યોતક હૈ ઇસલિયે “પૂર્વસૂત્રમેં લજ્જા-દિહેતુકે સદ્ભાવમેં સાધુ વસ્ત્ર ધારણ કરે, યદિ લજ્જાપરીષહ ઉસને જીત

પ્રમાણ પહેળું કડના પ્રમાણે લાંબું એક વસ્ત્ર કેડ ઉપર ધારણ કરવું કલ્પિત છે—શાસ્ત્રમાં કહેલ માર્ગ છે, પરંતુ તે સાધુ લજ્જાપરીષહને જીતવામાં શક્તિ-સંપન્ન છે તો પણ એણે ઢોરાસહિત મુહપત્તિ અને રજોહરણ, આ એ ઉપધિયો તો રાખવી જ જોઈ એ. આને રાખવાથી પણ તે અચેલક જ છે. (સૂ. ૧)

વસ્ત્રરહિત હોવાથી સાધુ ઠંડી આદિ સ્પર્શજન્ય દુઃખ સારી રીતે સહન કરે, આ વિષયને સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરે છે—“અદુવા” ઇત્યાદિ.

“અથવા” શબ્દ પક્ષાન્તરનો દ્યોતક છે, માટે પૂર્વ સૂત્રમાં “લજ્જાદિ હેતુના સદ્ભાવમાં સાધુ વસ્ત્ર ધારણ કરે, કદાચ લજ્જા પરીષહ તેણે જીતી



કથયતિ-તત્ર સંયમે પરાક્રમમાણમ્ અચેલમ્=વસ્ત્રરહિતં તૃણસ્પર્શાઃ=તૃણસ્પર્શજન્ય-  
દુઃખાનિ સ્પૃશન્તિ=અભિભવન્તિ, એવં શીતસ્પર્શાઃ સ્પૃશન્તિ, તેજઃસ્પર્શાઃ  
સ્પૃશન્તિ, દંશમશકસ્પર્શાઃ સ્પૃશન્તિ, એતાદૃશાન્ એકતરાન્ અન્યતરાન્ વિરૂપરૂપાન્  
સ્પર્શાન્ સોઽચેલઃ=અધિસહતે લાઘવિકમાગમયન્ યાવત્ સમ્યક્ત્વમેવ સમભિજા-  
નીયાત્। વ્યાખ્યા પૂર્વદિશાઽવસેયા ॥ સૂ૦૨ ॥

પ્રતિમાપ્રતિપન્નોઽભિગ્રહવિશેષં સ્વીકુર્યાત્-“અહમન્યેભ્યઃ પ્રતિમાપ્રતિપન્નેભ્યઃ  
કિમપિ દાસ્યામિ, તેભ્યો વા ગ્રહીષ્યામિ” ઇત્યાદિ ચતુર્ભક્તિકયા દર્શયતિ-  
‘જસ્ય ણં’ ઇત્યાદિ।

લિયા હૈ તો વસ્ત્રકા ખી પરિત્યાગ કર દેવે ” જો યહ વિષય વતલાયા હૈ  
ઉસસે ભિન્ન પક્ષકા આશ્રય કર સૂત્રકાર કહતે હૈં કિ-સંયમમેં લવલીન  
વસ્ત્રરહિત સાધુકો તૃણસ્પર્શજન્ય દુઃખવિશેષ પીડિત કરતે હૈં, શીતસ્પર્શ  
દુઃખિત કરતે હૈં, ઉષ્ણ સ્પર્શ કષ્ટ પહુંચાતે હૈં, દંશમશક બાધા પહુંચાતે  
હૈં, એકતર યા અન્યતર વિરૂપરૂપ પરિષદ્ ઉસે આકુલિત કરતે હૈં, પરન્તુ  
ઉસ અચેલ-વસ્ત્રરહિત સાધુકા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ ઇન સમસ્ત પરિષદ્-  
જન્ય બાધાઓંકો સહન કરે। ઇસસે ઉસે યહ લાભ હૈ કિ ઉસકે સંચિત-  
કર્મોંકા ભાર હલ્કા હોગા ઓર આગામી કર્મોંકા બંધન ખી શિથિલ  
હોતા રહેગા। ‘લાઘવિયં આગમમાણે’ યહાંસે લે કર ‘સમ્મત્તમેવ  
સમભિજાણિયા’ યહાં તકકે ઇન પદોંકી વ્યાખ્યા ચતુર્થ ઉદ્દેશમેં પહિલે  
કો ગઈ વ્યાખ્યા કે અનુસાર હી જાન લેની યાહિયે ॥સૂ૦૨॥

લીધો હોય તો વસ્ત્રનો પણ પરિત્યાગ કરે ” જે આ વિષય બતાવ્યો છે તેનાથી  
ભિન્ન પક્ષનું આચરણ કરી સૂત્રકાર કહે છે કે-સંયમમાં લવલીન વસ્ત્રરહિત  
સાધુને તૃણસ્પર્શજન્ય દુઃખવિશેષ પીડા કરે છે, ઠંડીનો સ્પર્શ દુઃખ કરે છે,  
ગરમીનો સ્પર્શ પીડા પહોંચાડે છે. ડાંસ, મચ્છર બાધા પહોંચાડે છે. એકતર  
અને અન્યતર વિરૂપરૂપ પરિષદ્ તેને આકુળ વ્યાકુળ કરતાં રહે છે, પરંતુ એ  
અચેલ-વસ્ત્રરહિત સાધુનું એ કર્તવ્ય છે કે તે આવી સમસ્ત પરિષદ્જન્ય  
પીડાઓ સહન કરે. આથી તેને એ લાભ છે કે તેના સંચિત કર્મોંનો ભાર  
હળવો થશે, અને આગામી કર્મોંનું બંધન પણ શિથિલ થતા રહેશે.  
“લાઘવિયં આગમમાણે” અહીંથી લઈ “સમત્તમેવ સમભિજાણિયા” અહીં સુધીના  
પદોની વ્યાખ્યા પહેલાં ચતુર્થ ઉદ્દેશમાં કહેવાઈ ગયેલ વ્યાખ્યાની અનુસાર બાણી  
લેવી જોઈએ. (સૂ૦૨)

मूलम्—जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—अहं च खलु अन्नेसिं भिक्खूणं असणं वा ४ आहट्ठु दलइस्सामि, आहडं च साइज्जिस्सामि (१), जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—अहं च खलु अन्नेसिं भिक्खूणं असणं वा ४ आहट्ठु दलइस्सामि आहडं च नो साइज्जिस्सामि (२), जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—अहं च खलु असणं वा ४ आहट्ठु नो दलइस्सामि आहडं च साइज्जिस्सामि (३), जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—अहं च खलु अन्नेसिं भिक्खूणं असणं वा ४ आहट्ठु नो दलइस्सामि आहडं च नो साइज्जिस्सामि (४)। अहं च खलु तेण अहाइरित्तेण अहेसणिज्जेण अहापरिग्गहिण्ण असणेण वा ४ अभिकंख साहम्मियस्स कुज्जा वेयावडियं करणाए, अहं वा वि तेण अहाइरित्तेण अहेसणिज्जेण अहापरिग्गहिण्ण असणेण वा ४ अभिकंख साहम्मिण्हिं कीरमाणं वेयावडियं साइज्जिस्सामि, लाघवियं आगममाणे जाव समत्तमेव समभिजाणिया ॥ सू०३ ॥

छाया—यस्य खलु भिक्षोरेवं भवति—अहं च खलु अन्येभ्यो भिक्षुभ्योऽशनं वा ४ आहृत्य दास्यामि, आहतं च नो स्वादयिष्यामि (१), यस्य खलु भिक्षोरेवं भवति—अहं च खलु अन्येभ्यो भिक्षुभ्योऽशनं वा ४ आहृत्य दास्यामि, आहतं च नो स्वादयिष्यामि (२), यस्य खलु भिक्षोरेवं भवति—अहं च खलु अन्येभ्यो भिक्षुभ्योऽशनं वा ४, आहृत्य नो दास्यामि, आहतं च स्वादयिष्यामि (३), यस्य खलु भिक्षोरेवं भवति—अहं च खलु अन्येभ्यो भिक्षुभ्योऽशनं वा ४ आहृत्य नो दास्यामि, आहतं च नो स्वादयिष्यामि (४)। अहं च खलु तेन यथाऽतिरिक्तेन यथैषणीयेन यथापरिगृहीतेन अशनेन वा ४ अभिकाङ्क्ष्य साधर्मिकस्य कुर्यां वैयावृत्त्यं करणाय, अहं चाऽपि तेन यथातिरिक्तेन यथैषणीयेन यथापरिगृहीतेन अशनेन वा ४ अभिकाङ्क्ष्य साधर्मिकैः क्रियमाणं वैयावृत्त्यं स्वादयिष्यामि लाघविकमागमयन् यावत् साम्यक्त्वमेव समभिजानीयात् ॥ सू०३ ॥

ટીકા—‘યસ્યે’—ત્યાદિ, અસ્યાશ્વતુર્ભગ્ન્યા વ્યાખ્યા પૂર્વોક્તદિશૈવ જ્ઞેયા, એતેષાં ચાભિગ્રહાણાં ચતુર્ણામન્યતમમભિગ્રહં ગૃહીયાદિત્યાદિ । યદ્વા—ત્રિવિધાનામાઘાનામેક-પદેનૈવ પ્રતિમાપ્રતિપન્નઃ કશ્ચિન્મુનિરભિગ્રહં ગૃહીત, ચતુર્થસ્ય ચ ભજનેત્યાહ—‘અહ’—મિત્યાદિ, યસ્ય ભિક્ષોશ્ચેતસિ એવં ભવતિ—અહં ચ તેન પૂર્વોક્તેન યથાતિરિક્તેન=સ્વો-પભોગોર્વરિતેન, યથૈષણીયેન=પ્રતિમાપ્રતિપન્નાનાં યદેષણીયં તમનતિક્રમ્ય યથૈષણીયેન એવં યથાપરિગૃહીતેન=નિજાર્થાભ્યુપગતેન, અશ્નેન વાઽ = ચતુર્વિધેનાહારેન

પ્રતિમાપ્રતિપન્ન સાધુ હસ અભિગ્રહવિશેષકો સ્વીકાર કરે કિ—“ મૈ અન્ય પ્રતિમાપ્રતિપન્ન સાધુઓંકે લિધે કુછ દૂંગા ઓર ડનસે ખી કુછ લૂંગા ” હસી વિષયકો સૂત્રકાર ચારભંગોં દ્વારા પ્રદર્શિત કરતે હૈ—  
“ જસ્સણં ભિક્ષુસ્સ ” ઇત્યાદિ ।

હસ ચતુર્ભગીકી વ્યાખ્યા હસી અધ્યયનકે પાંચવેં ઉદ્દેશમેં કી ગઈ દ્વિતીય સૂત્રકી વ્યાખ્યાકે અનુસાર સમજ લેની ચાહિયે । પ્રતિમા-પ્રતિપન્ન મુનિ હન ચાર અભિગ્રહોંમેંસે કિસી એક અભિગ્રહકો, અથવા આદિકે તીન અભિગ્રહોં મેં સે કિસી એક અભિગ્રહકો ગ્રહણ કરે । ચતુર્થ અભિગ્રહકી ભજના હૈ, હસકે લિધે સૂત્રકાર ‘અહ’—મિત્યાદિ સૂત્રાંશ કહતે હૈ—જિસ ભિક્ષુકે ચિત્તમેં એસા વિચાર આતા હૈ કિ મૈ ડસ ચતુર્વિધ આહાર સે કિ જો મેરે ઉપભોગસે બાકી વચ રહા હૈ, તથા જો યથૈષણીય પ્રતિમાપ્રતિપન્નોંકે લિધે કલ્પનીય હૈ, ઓર જિસે મૈ અપને લિધે લાયા હૂં, કર્મોંકી નિર્જરા કરનેકી ચાહનાસે સાધર્મી સાધુ

પ્રતિમાપ્રતિપન્ન સાધુ આ અભિગ્રહ વિશેષને સ્વીકાર કરે કે “ હું અન્ય પ્રતિમાપ્રતિપન્ન સાધુઓને માટે અશનાદિ દ્વદશ અને એમની પાસેથી પણ અશનાદિ લદશ. ” આ વિષયને સૂત્રકાર ચાર ભંગોંદ્વારા પ્રદર્શિત કરે છે—  
“ જસ્સ ણં ” ઇત્યાદિ.

આ ચાર ભંગોંની વ્યાખ્યા, આ અધ્યયનના પૂર્વ ઉદ્દેશમાં કહેવામાં આવેલ બીજા સૂત્રની વ્યાખ્યા અનુસાર સમજ લેવી જોઈએ. પ્રતિમાપ્રતિપન્ન મુનિ આ ચાર અભિગ્રહોંમાંથી કોઈ એક અભિગ્રહને અથવા આગળના ત્રણ અભિગ્રહોંમાંથી કોઈ એક અભિગ્રહને ગ્રહણ કરે. ચોથા અભિગ્રહની ભજના છે. આ માટે સૂત્રકાર અહં ઇત્યાદિ સૂત્રાંશ કહે છે—જે ભિક્ષુના ચિત્તમાં એવો વિચાર આવે છે કે હું એ ચતુર્વિધ આહારથી કે જે મારા ઉપભોગથી બાકી બચી રહેલ છે, તથા જે યથૈષણીય-પ્રતિમાપ્રતિપન્નો માટે કલ્પનીય, અને જેને હું મારા માટે લાવેલ છું કર્મોંની નિર્જરા કરવાની ચાહું.



અભિકાઙ્ક્ષ્ય=કર્મનિર્જરણમભિવાઙ્ક્ષ્ય કરણાય=ઉપભોગાય સાધર્મિકસ્ય=સમાનધર્મણઃ સાધોઃ વૈયાવૃત્ત્યં કુર્યામ્ । એતાદૃશમભિગ્રહં કશ્ચિદ્ ગૃહ્ણાતિ । પુનઃ પક્ષાન્તરં પ્રદર્શયતિ—‘અહં’વાડપી’-ત્યાદિ-‘વા’ શબ્દઃ પક્ષાન્તરસૂચકઃ, યસ્ય ચ્વલુ મિશ્નોશ્ચેતસ્યેવં ભવતિ—અહમપિ=પુનઃ તેન=યથાતિરિક્તેન યથૈષણીયેન યથાપરિગૃહીતેનાડશનેન વાઃ કર્મનિર્જરણમભિકાઙ્ક્ષ્ય સાધર્મિકૈઃ ક્રિયમાણં વૈયાવૃત્ત્યં સ્વાદયિષ્યામિ =સ્વીકરિષ્યામિ । एवं પરિચિન્તયન્ સાધુઃ કિં કુર્યાદિતિ દર્શયતિ—‘લાઘવિક’—મિત્યાદિ, સર્વં વ્યવ્યાતપૂર્વમ્ ॥ સૂ. ૩ ॥

કા વૈયાવૃત્ત્ય કરૂં । હસ પ્રકારકા અભિગ્રહ કોઈ સાધુ ગ્રહણ કરતા હૈ, ઔર કોઈ સાધુ ઁસા અભિગ્રહ કરતા હૈ કિ—મૈ યથાતિરિક્ત, યથૈષણીય ઔર યથાપરિગૃહીત ચતુર્વિધ અશનસે કર્મોંકી નિર્જરા હોનેકી કામનાસે સાધર્મિક સાધુ દ્વારા ક્રિયમાણ વૈયાવૃત્ત્યકો મૈ સ્વીકાર કરૂંગા ।

હસ પ્રકાર વિચારુ કરનેવાલા સાધુ કયા કરે ? હસે સૂત્રકાર “લાઘવિયં આગમમાણે જાવ સમત્તમેવ સમભિજાણિયા ” હન પદોંસે પ્રકટ કરતે હૈં । હન સમસ્ત પદોંકા અર્થ પહિલે હસી અધ્યયનકે ચતુર્થ ઉદેશ મૈં કહા જા ચુકા હૈ ।

ભાવાર્થ—સાધુ દ્વારા સાધુકી વૈયાવૃત્ત્ય કરનેકે પ્રકાર યહાં પર સૂત્રકારને પ્રદર્શિત કિયે હૈં, યે હી પ્રકાર જબ નિયમરૂપસે અંગીકૃત હોતે હૈં તબ અભિગ્રહવિશેષ કહલાને લગ જાતે હૈં, ઉન્હોંકા યહાં કથન હૈ ।

નાથી સાધર્મી સાધુનું વૈયાવૃત્ત્ય કરું. આ પ્રકારનો અભિગ્રહ કોઈ સાધુ ગ્રહણ કરે છે. કોઈ સાધુ એવો અભિગ્રહ કરે છે કે—હું યથાતિરિક્ત, યથૈષણીય અને યથાપરિગૃહીત આર પ્રકારના અશનથી, કર્મોંની નિર્જરા હોવાની કામનાથી સાધર્મિક સાધુ દ્વારા ક્રિયમાણ વૈયાવૃત્ત્યને સ્વીકાર કરીશ.

આ પ્રકારનો વિચાર કરવાવાળા સાધુ શું કરે એને સૂત્રકાર “લાઘવિયં આગમમાણે જાવ સમત્તમેવ સમભિજાણિયા ” આ પદોથી પ્રગટ કરે છે. એ સમસ્ત પદોનો અર્થ પહેલાં આ અધ્યયનના ચોથા ઉદેશમાં કહેવાઈ ગયેલ છે.

ભાવાર્થ—સાધુઓદ્વારા સાધુઓની વૈયાવૃત્ત્ય કરવાનો પ્રકાર અહિં સૂત્રકારે પ્રગટ કરેલ છે. એ જ ન્યારે નિયમરૂપથી અંગીકૃત થાય છે ત્યારે અભિગ્રહવિશેષ કહેવામાં આવી જાય છે. એનું અહિં કથન છે.

કોઈ ૨ સાધુ इस प्रकारसे अभिग्रह करते हैं कि-मैं अन्य साधुके लिये आहारादिक लाकर दिया करूंगा, यही मेरेद्वारा उनकी वैयावृत्त्य है, तथा कोई साधु मेरे लिये आहार पानी लाकर देगा तो मैं भी उसे स्वीकार कर लूंगा। यह अभिग्रहका एक प्रकार है। १।

कोई एक साधु इस प्रकारका अभिग्रह करता है कि-मैं दूसरे साधुमी साधुके लिये आहारादिक ला दिया करूंगा पर दूसरेके द्वारा लाया हुआ आहार पानी अपने उपयोग में नहीं लूंगा। यह अभिग्रहका दूसरा प्रकार है। २।

कोई २ साधु इस प्रकारका अभिग्रह कर लिया करता है कि-मैं दूसरोंके लिये आहारादिक लाऊंगा तो नहीं पर कोई मुझे लाकर देगा तो मैं उसे अपने उपभोग में ले लूंगा। यह अभिग्रहका तीसरा प्रकार है। ३।

कोई २ साधु ऐसा अभिग्रह करता है कि न मैं दूसरोंके लिये आहारादिक लाऊंगा और न अपने निमित्त किसी अन्यसे मंगवाऊंगा। यह अभिग्रहका चौथा प्रकार है। ४।

इन चार प्रकारके अभिग्रहोंमेंसे साधु चाहे जिस किसी भी अभिग्रह को धारण कर सकता है, अथवा आदिके तीन अभिग्रहों में से भी

કોઈ કોઈ સાધુ એવા પ્રકારથી અભિગ્રહ કરે છે કે-હું બીજા સાધુઓ માટે આહારાદિક લાવી આપીશ, આ રીતે હું તેમની વૈયાવૃત્ત્ય કરીશ તથા કોઈ સાધુ મારા માટે આહાર પાણી લાવી આપશે તો હું સ્વીકાર કરીશ. આ અભિગ્રહનો એક પ્રકાર છે. (૧)

કોઈ કોઈ સાધુ આ પ્રકારનો અભિગ્રહ કરે છે કે-હું બીજા સાધુમી સાધુ માટે આહારાદિક લાવી આપીશ પણ બીજાના દ્વારા લાવેલ આહાર પાણી ઉપયોગમાં નહીં લઉં. આ અભિગ્રહનો બીજો પ્રકાર છે. (૨)

કોઈ કોઈ સાધુ આ પ્રકારનો અભિગ્રહ કરે છે કે-હું બીજાઓ માટે આહારાદિક લાવીશ તો નહીં પણ કોઈ મને લાવીને આપશે તો હું તેને મારા ઉપયોગમાં અવશ્ય લઈશ. આ અભિગ્રહનો ત્રીજો પ્રકાર છે. (૩)

કોઈ કોઈ સાધુ એવો અભિગ્રહ કરે છે કે-બીજાઓના માટે હું આહારાદિક લાવીશ નહીં તેમજ મારા માટે પણ બીજાથી મંગાવીશ નહીં. આ અભિગ્રહનો ચોથો પ્રકાર છે. (૪)

આવા ચાર પ્રકારના અભિગ્રહમાંથી સાધુ પોતાની ઇચ્છામાં આવે તેવો કોઈ પણ અભિગ્રહ ધારણ કરી શકે છે. અથવા આદિના ત્રણ અભિ-

ઇત્યમન્યતરાભિગ્રહગ્રાહિણોઽનગારસ્યાચેલસ્ય સચેલસ્ય વા શરીરપીડાયાઃ  
સદ્ભાવેઽસદ્ભાવે વા સ્વાયુઃશેષતામવગચ્છતો મુનેરુદ્યતમરણવિધિમુપદર્શયતિ-  
—‘જસ્સ ણં’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—જસ્સ ણં ભિક્ખુસ્સ એવં ભવઈ—સે ગિલામિ ખલુ  
અહં ઇમમ્મિ સમએ ઇમં સરીરગં અણુપુઠ્ઠવેણ પરિવહિત્તએ, સે  
અણુપુઠ્ઠવેણં આહારં સંવટ્ટિજ્ઞા, સંવટ્ટિત્તા કસાએ પયણુએ કિચ્ચા  
સમાહિયચ્ચે ફલગાવયટ્ટી ઉટ્ટાય ભિક્ખૂ અભિનિવ્વુહચ્ચે અણુ-  
પવિસિત્તા ગામં વા નગરં વા જાવ રાયહાણિં વા તણાઈં જાઈજ્ઞા  
જાવ સંથરિજ્ઞા, એત્થવિ સમએ કાયં ચ જોગં ચ ઈરિયં ચ પચ્ચક્ખાઈજ્ઞા,  
તં સચ્ચં સચ્ચવાઈં ઓએ તિન્ને છિન્નકહંકહે આઈયટ્ટે અણાઈં  
ચિચ્ચા ણં મેઝરં કાયં સંવિહુણિય વિરૂવરૂવે પરીસહોપસગ્ગે,  
અર્હિંસ વિસ્સંભળયાએ ભેરવમનુચિન્ને, તત્થ વિ તસ્સ કાલપ-  
રિયાએ, સેઽવિ તત્થ વિઅંતિકારએ, ઇચ્ચેયં વિમોહાયયણં હિયં  
સુહં સ્વમં નિસ્સેયસં આણુગામિયં—તિવેમિ ॥ સૂ. ૦૪ ॥

છાયા—યસ્ય ખલુ ભિક્ષોરેવં ભવતિ—તદ્ ગ્લાયામિ ખલુ અહમ્ અસ્મિન્ સમયે  
ઇદં શરીરકમ્ આનુપૂર્વ્યાં પરિવોદુર્મ્, સ આનુપૂર્વ્યાં આહારં સંવર્તયેત્, સંવર્ત્ય કષાયાન્  
પ્રતનૂન્ કૃત્વા સમાહિતાર્ચઃ ફલકાપદર્થી ઉત્થાય ભિક્ષુરભિનિર્વૃતાર્ચઃ અનુપ્રવિશ્ય  
ગ્રામં વા નગરં વા યાવદ્ રાજધાનીં વા તૃણાનિ યાચેત્ યાવત્ સંસ્તરેત્,  
અત્રાપિ સમયે કાયં ચ યોગં ચ ઈર્યાં ચ પ્રત્યાચક્ષીત, તત્સત્યં સત્યવાદી,  
ઓજસ્તીર્ણશ્ચિન્નકથંકથઃ આતીતાર્થઃ, અનાતીતઃ, ત્યક્ત્વા મિદુરં કાયં સંવિધૂય  
વિરૂપરૂપાન્ પરીષહોપસર્ગાન્ અસ્મિન્ મિશ્રમ્ભળતયા ભેરવમનુચીર્ણઃ, તત્રાપિ તસ્ય  
કાલપર્યાયઃ, સોઽપિ તત્ર વ્યન્તિકારકઃ, ઇત્યેતદ્વિમોહાયતનં હિતં સુખં ક્ષમં નિઃશ્રે-  
યસમાનુગામિકમ્, ઇતિ બ્રવીમિ ॥ સૂ. ૦૪ ॥

ચાહે જિસે કર સકતા હૈ। इस पक्षमें चौथे अभिग्रहकी भजना है—धारण  
करे न भी करे। नीचे के सूत्रांशसे सूत्रकारने यही बात प्रकट की है—इसमें  
उन्होंने प्रथम द्वितीय तथा तृतीय अभिग्रहका प्रदर्शन किया है ॥सू. ०३॥

અહોમાંથી પણ ચાહે તે અહણ કરી શકે છે. આ પક્ષમાં ચોથા અભિગ્રહની ભજના છે  
—ધારણ કરે, ન પણ કરે, ત્રીચેના સૂત્રાંશથી સૂત્રકારે એજ વાત પ્રગટ કરી છે. એમાં  
તેઓએ પહેલા બીજા અને ત્રીજા અભિગ્રહનું પ્રદર્શન કરેલ છે. (સૂ. ૦૩)



ટીકા—‘યસ્યે’—ત્યાદિ, ‘યસ્ય ચલુ’ ઇત્યારમ્બ્ય’ યાવત્ સંસ્તરેત્’ ઇત્યન્તસ્ય વ્યાખ્યાઽન્ત્રવાધ્યયને ષષ્ઠોદ્દેશે ચતુર્થસૂત્રે પ્રોક્તા । તૃણાનિ સંસ્તીર્યં યદ્વિધેયં તદાહ— ‘અત્રાઽપી’—તિ, અત્રાપિ સસ્તારકોપવેશનાવસરે કૃતપાદપોપગમનપ્રતિજ્ઞો મિશ્રુઃ ‘નમોત્યુળં’ પઠિત્વા સિદ્ધાનર્હતો ધર્માચાર્યાંશ્ચ નમસ્કૃત્ય તદનુ સ્વયમેવ પુનર્ગૃહીતપ-

इस प्रकार कीसी एक अभिग्रह को धारण करनेवाले सचेत तथा अचेत साधुकी शारीरिक पीडाके सम्भवमें या असम्भवमें अपनी आयुके अवशिष्ट भागका ज्ञान होने पर मरणविधि सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—“जस्स णं” इत्यादि ।

“जस्स णं” यहां से लेकर “जाव संथरिज्जा” यहां तक के पदोंकी व्याख्या इसी अध्ययनके छठे उद्देशमें कही जा चुकी है । घास का संथारा कर साधुके कर्तव्यका प्रदर्शन करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि—साधु संथारे पर बैठ जावे तब उस समय वह साधु कि जिसने पदपोपगमन संथारा धारण करनेका नियम लिया है वह पहले “नमोत्युणं” का पाठ पढ़े । पढ़कर सिद्धोंको, अर्हन्तोंको और धर्माचार्योंको नमस्कार करे । उसके बाद स्वयं पांच महाव्रतोंका पुनः ग्रहण कर, चारों प्रकारके आहारका परित्याग कर देवे, पश्चात् आकुञ्चन, प्रसारण, और दृष्टिसंचरण आदिरूप कायव्यापारका, अप्रशस्त मनोयोग का और सर्वथा वचन-

આ પ્રકારે કોઈ એક અભિગ્રહને ધારણ કરવાવાળા સચેત તથા અચેત સાધુની, શારીરિક પીડાના સદ્ભાવમાં અગર અસદ્ભાવમાં પોતાના આયુષ્યના અવશિષ્ટ ભાગના બળુકાર હોવાથી મરણવિધિ સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે— “જસ્સ ણં” ઇત્યાદિ.

“યસ્ય ચલુ” અહીંથી લઈને “યાવત્સંસ્તરેત્” અહીં સુધીના પદોથી વ્યાખ્યા આ અધ્યયનના છઠ્ઠા ઉદ્દેશમાં કહેવાયેલ છે. ઘાસના સંથારો કરી સાધુના કર્તવ્યનું પ્રદર્શન કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે—સાધુ જ્યારે સંથારો ઉપર બેસે ત્યારે તે સમયે તે સાધુ કે જેણે પાદપોપગમન સંથારો ધારણ કરવાનો નિયમ લીધો છે તે, પહેલાં “નમોત્યુળં”નો પાઠ ભણે. પાઠ ભણીને સિદ્ધોને, અર્હન્તોને અને ધર્માચાર્યોને નમસ્કાર કરે. ત્યાર બાદ પોતે પાંચ મહાવ્રતોને ફરીથી ગ્રહણ કરે. ચાર પ્રકારના આહારનો પરિત્યાગ કરે. પછી આકુંચન, પ્રસારણ અને દૃષ્ટિચારણ આદિરૂપ કાયના વ્યાપારનો, અપ્રશસ્ત મનોયોગનો અને સર્વથા વચનયોગનો,

अमहाव्रतश्चतुर्विधमप्याहारं प्रत्याख्याय कायं=काययोगमाकुञ्चनप्रसारणदृष्टिसञ्चार-  
णादिरूपं कायव्यापारं योगम्=अप्रशस्तमनोयोगं सर्वथा वाग्योगं च, यद्वा-कायं  
=कायममत्वं योगं=तस्यैवाकुञ्चन-प्रसारणादिव्यापारम् । ईर्यां=गमनागमनरूपां  
क्रियां प्रत्याचक्षीत=परिहरेत् ।

एवं 'तं सच्चं' इत्यारभ्य सूत्रसमाप्तिपर्यन्तस्य व्याख्या षष्ठोद्देशेऽवसेया ।  
'इति ब्रवीमि'—त्यस्यार्थस्तुक्त एव ॥सू० ४॥

॥ अष्टमाध्ययनस्य सप्तम उद्देशः समाप्तः ॥८-७॥



योगका, अथवा कायमें ममत्वरूप कायका और उसीके आकुञ्चन,  
प्रसारण आदि व्यापाररूप योगका, एवं गमनागमनरूप क्रियाका  
परित्याग कर दें ।

इस प्रकार "तं सच्चं" यहां से लेकर उस सूत्रकी समाप्ति तकके  
पदोंकी व्याख्या इसी अध्ययनके छठे उद्देशमें तथा चतुर्थ उद्देशके अन्तमें  
लिखी जा चुकी है उसीके अनुसार समझलेनी चाहिये । "इति ब्रवीमि"  
इन पदोंका अर्थ भी कहा जा चुका है ॥सू० ४॥

॥ आठवें अध्ययनका सातवां उद्देश समाप्त ॥ ८-७ ॥



अथवा कायामां ममत्वरूप कायनो अने तेना आकुञ्चन, प्रसारण आदि व्यापार  
रूप योगनो, एवं गमनागमनरूप क्रियानो परित्याग करे.

आ प्रकारे "तं सच्चं" अहींथी शङ्क करी आ सूत्रनी समाप्ति सुधीना  
पढोनी व्याख्या आ अध्ययनना छठ्ठा उद्देशमां तथा चौथा उद्देशना अन्तमां  
लगाई गयेल छे ते अनुसार समझ लेवी लेईये. "इति ब्रवीमि" आ पढोना  
अर्थ पणु अगाडिना अध्ययनोमां कडेवाई गयेल छे. (सू० ४)

आठमा अध्ययननो सातमो उद्देश समाप्त ॥ ८-७ ॥



## । अथाष्टमाध्ययनस्याष्टम उद्देशः ।

सप्तमोद्देशकथनानन्तरमष्टमः प्रारभ्यते । अस्य च पूर्वोद्देशैः सहायं सम्बन्धः—  
पूर्वं चतुर्थोद्देशे व्याघातिमरणं वैहायस—गार्दपृष्ठमरणं च, पञ्चमे—भक्तप्रत्याख्यानं,  
षष्ठे इङ्गितमरणं, सप्तमे च पादपोपगमनमुपदर्शितम् । अत्राष्टमे—तेषां त्रयाणां  
भक्तपरिज्ञेङ्गितमरणपादपोपगमनानां विधिमुपदर्शयन् प्रथमं भिक्षोः समाधिपरि-  
पालनप्रकारमेव दर्शयति—‘अणुपुव्वेण’ इत्यादि ।

मूलम्—अणुपुव्वेण विमोहाइं, जाइं धीरा समासज्ज ॥

वसुमंतो मइमंतो, सव्वं नच्चा अणेलिसं ॥ १ ॥

छाया—आनुपूर्व्या विमोहानि, यानि धीराः समासाद्य ॥

वसुमन्तो मतिमन्तः, सर्वं ज्ञात्वा अनीदृशम् ॥१॥

## आठवें अध्ययनका आठवां उद्देश ।

सप्तम उद्देशके कथनके बाद अब अष्टम उद्देश प्रारंभ होता है । इस  
उद्देशका पूर्व उद्देशोंके साथ यह संबंध है—चतुर्थ उद्देशमें व्याधि—मरण,  
वैहायस—मरण और गार्दपृष्ठमरण, पंचम उद्देशमें भक्तप्रत्याख्यान,  
छठेमें इङ्गितमरण और सप्तम उद्देशमें पादपोपगमन संथारे का वर्णन  
सूत्रकारने किया है । इस अष्टम उद्देशमें भक्तपरिज्ञा, इङ्गितमरण और  
पादपोपगमन, इन तीनोंकी विधि दिखलाते हुए सूत्रकार प्रथम भिक्षुके  
समाधिपालनके प्रकारको प्रदर्शित करते हैं—‘अणुपुव्वेण’ इत्यादि ।

## आठमा अध्ययनो आठमो उद्देश.

सातमा उद्देशना कथन पछी હવે આઠમા ઉદ્દેશનો પ્રારંભ થાય છે. આ  
ઉદ્દેશનો પૂર્વ ઉદ્દેશોની સાથે આ સંબંધ છે—ચોથા ઉદ્દેશમાં વ્યાધિમરણ, વૈહાયસ  
મરણ અને ગાર્ધપૃષ્ઠ મરણ, પાંચમા ઉદ્દેશમાં ભક્તપ્રત્યાખ્યાન, છઠ્ઠામાં ઇંગિત  
મરણ અને સાતમા ઉદ્દેશમાં પાદપોપગમન સંથારાનું વર્ણન સૂત્રકારે કરેલ છે.  
આ આઠમા ઉદ્દેશમાં ભક્તપરિજ્ઞા, ઇંગિતમરણ અને પાદપોપગમન, આ ત્રણેની  
વિધિ બતાવીને સૂત્રકાર પ્રથમ ભિક્ષુના સમાધિ પાલનના પ્રકારને કહે છે—  
—‘અણુપુવ્વેણ’ ઇત્યાદિ.



ટીકા—‘આનુપૂર્વ્યે’—ત્યાદિ, વસુમન્તઃ=સંયમિનઃ, ‘મતિમન્તઃ’=મનનં મતિર્હે-  
યોપાદેયપરિહારગ્રહણાધ્યવસાયઃ, સા યેવામસ્તીતિ મતિમન્તઃ, ધીરાઃ=પરીષદોપગર-  
ક્ષોભ્યા મુનયઃ, આનુપૂર્વ્યા=ક્રમેણ, સ ચ ક્રમો યથા—પ્રવ્રજ્યા, શિક્ષા, સૂત્રાર્થગ્રહણ-  
તત્પરસ્યૈકાકિવિહારિત્વમ્, યદ્વા-આનુપૂર્વ્યા=સંલેખનાક્રમેશ્ચતુર્થ-ષષ્ઠાઽષ્ટમ-દશમ-  
દ્વાદશભક્તાદિકતપોવિશેષરૂપૈર્વિપ્રકૃષ્ટૈઃ યાનિ=કથિતાનિ ‘વિમોહાનિ’ વિગતો મોહ

સંયમ પાલન કરનેવાલે, હેય ઔર ઉપાદેયરૂપ પદાર્થોં કે પરિહાર  
એવં પ્રાપ્ત કરાનેવાલે જ્ઞાનસે સંપન્ન, તથા પરીષદ ઔર ઉપસર્ગોં સે અક્ષોભ્ય  
એસે મુનિરાજ ક્રમસે પૂર્વ ઉદ્દેશોંમેં વર્ણિત ભક્તપરિજ્ઞા, ઇંગિતમરણ ઔર  
પાદપોપગમનરૂપ વિમોહકો પ્રાપ્તકર ઔર ઉન્હેં “અનીદશં સર્વં જ્ઞાત્વા”  
અસાધારણ જાનકર સમાધિકા પાલન કરેં.

સૂત્રગત આનુપૂર્વી શબ્દકા અર્થ ક્રમ હૈં ઇન ભક્તપ્રત્યાખ્યાન આદિ  
સમાધિમરણોંકો ધારણ કરનેકા ક્રમ ઇસ પ્રકાર હૈં—સર્વ પ્રથમ મુનિદીક્ષા  
ધારણ કરના । તદનન્તર સૂત્રકા અધ્યયન એવં ઉસકે અર્થકા અવધારણ,  
અથવા યુગપદ્—એક સાથ દોનોંકા પઠન ઔર અવધારણ કરના । ઇસમેં  
નિષ્ણાત હોકર ફિર એકાકી વિહાર કરના ।

અથવા—ઉત્કૃષ્ટ, ચતુર્થભક્ત, અષ્ટમભક્ત, દશમભક્ત ઔર દ્વાદશ-  
ભક્ત આદિ સંલેખનાકે ક્રમસ્વરૂપ તપવિશેષોંકા ધારણ કરના । ‘વિમોહ’  
શબ્દકા અર્થ—ભક્તપરિજ્ઞા, ઇંગિતમરણ ઔર પાદપોગમન સંથારા હૈં ।

સંયમ પાલન કરવાવાળા હેય અને ઉપાદેય રૂપ પદાર્થોનો પરિહાર અને  
પ્રાપ્ત કરાવનાર જ્ઞાનથી સંપન્ન, તથા પરિષદ અને ઉપસર્ગોથી અક્ષોભ્ય, એવા  
મુનિજન ક્રમથી પૂર્વ ઉદ્દેશોમાં બતાવેલ ભક્તપરિજ્ઞા, ઇંગિતમરણ અને પાદ-  
પોપગમન રૂપ વિમોહ (વિવેક)ને પ્રાપ્ત કરી અને તેને “અનીદશં સર્વં જ્ઞાત્વા”  
અસાધારણ (વિશેષ) જાણીને સમાધિનું પાલન કરે.

સૂત્રગત આનુપૂર્વી શબ્દનો અર્થ ક્રમ છે, એ ભક્તપ્રત્યાખ્યાન આદિ  
સમાધિમરણોને ધારણ કરવાનો ક્રમ આ પ્રકારનો છે—પહેલાં મુનિદીક્ષા ધારણ  
કરવી, ત્યાર પછી સૂત્રનું અધ્યયન અને તેના અર્થનું અવધારણ, અથવા યુગપદ્—  
એકી સાથે બન્નેનું પઠન અને અવધારણ કરવું. આમાં નિષ્ણાત બની પછી એકલા  
વિહાર કરવો.

અથવા—ઉત્કૃષ્ટ ચતુર્થભક્ત, અષ્ટમભક્ત, દશમભક્ત અને દ્વાદશભક્ત આદિ  
સંલેખનાના ક્રમસ્વરૂપ તપવિશેષોને ધારણ કરવાં. વિમોહ શબ્દનો અર્થ—  
ભક્તપરિજ્ઞા ઇંગિતમરણ અને પાદપોગમન સંથારો છે.

અમ્ય ઇષામેષુ વા તાનિ વિમોહાનિ=મક્તપરિજ્ઞેક્ષિતમરણપાદપોષગમનાનિ યથાક્રમ-  
પ્રાપ્તાનિ, તાનિ સમાસાદ્ય=ઉપલમ્ય અનીદ્રશમ્=અદ્વિતીયમ્ સર્વમ્ ઉચિતમનુચિતં  
વા પૂર્વોક્તં મક્તપરિજ્ઞાદિકં જ્ઞાત્વા સમાધિં પરિપાલયેયુઃ ॥ ૧ ॥

અપિ ચાન્યદાહ-‘દુવિહં’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્-દુવિહં પિ વિદિત્તા ણં, બુદ્ધા ધમ્મસ્સ પારગા ॥

અણુપુઠ્ઠીઠ સંઘાણ, આરંભાઓ તિઉદ્દઈ ॥ ૨ ॥

છાયા--દ્વિવિધમપિ વિદિત્વા સ્વલુ, બુદ્ધા ધર્મસ્ય પારગાઃ ॥

આનુપૂર્વ્યાં સઙ્ઘાય, આરમ્ભાત્ તુટ્યતે ॥ ૨ ॥

ટીકા-‘દ્વિવિધમપી’-ત્યાદિ, બુદ્ધાઃ=પરિજ્ઞાતહેયોપાદેયાઃ, દ્વિવિધમપિ બાહ્ય-  
માભ્યન્તરં ચ તપો વિદિત્વા=આસેવ્ય, યદ્વા-દ્વિવિધમપિ=બાહ્યં શરીરોપકરણાદિકમ્,  
આભ્યન્તરં રાગ-દ્વેષાદિકમપિ હેયતયા જ્ઞાત્વા પ્રત્યાઘ્યાનપરિજ્ઞયા ત્યક્ત્વેત્યર્થઃ,  
સ્વલુ=નિશ્ચયેન ધર્મસ્ય=શ્રુતચારિત્રાઘ્યસ્ય પારગાઃ=પારગામિનઃ સકલરહસ્યવેત્તારો  
મવન્તિ, તૈઃ આનુપૂર્વ્યાં=પ્રવ્રજ્યાગ્રહણ-દ્વાદશાંગાઘ્યયનાદિક્રમેણ સંઘાય=“સંયમં

વિ + મોહમેં ‘વિ’ શબ્દકા અર્થ વિગત-રહિત હૈ । વિગત હુઆ હૈ મોહ  
જિન્હોંસે, અથવા જિન્હોંકા, અથવા જિન્હોંમેં વે વિમોહ હૈ । ‘સર્વ’  
શબ્દ યહ ભાવ પ્રકટ કરતા હૈ કિ સમાધિધારણકર્તા યહ વિચાર  
અવશ્ય કરે કિ હનસંધારોકા ધારણ કરના કિસ સમય ઉચિત હૈ અથવા  
કિસ સમય અનુચિત હૈ ॥ ૧ ॥

ઔર ખી સૂત્રકાર હસ વિષયમેં કહતે હૈ-‘દુવિહંપિ’ ઇત્યાદિ ।

હેય ઔર ઉપાદેય પદાર્થોં કે પરિજ્ઞાતા મુનિજન બાહ્ય ઔર આભ્યન્તર  
તપકા સેવનકર નિશ્ચય સે શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મકે સકલ રહસ્ય કે જ્ઞાતા  
હોતે હૈ । વે પ્રવ્રજ્યાગ્રહણ ઔર દ્વાદશાંગકા અઘ્યયન આદિકે ક્રમસે મક્ત-

વિ + મોહમાં ‘વિ’ શબ્દનો અર્થ વિગત-રહિત છે. મોહ વિગત થયેલ  
છે, જેનાથી અથવા જેનો. અથવા જેઓમાં તે વિમોહ છે. “સર્વ” શબ્દ એ  
ભાવ પ્રકટ કરે છે કે સમાધિ ધારણ કરનાર એ વિચાર જરૂર કરે કે તે સંધારાનું  
ધારણ કરવું કયા સમયે ઉચિત છે ? અથવા કયા સમયે અનુચિત છે ? (૧)

વધુમાં પણ સૂત્રકાર એ વિષયમાં કહે છે-“દુવિહંપિ” ઇત્યાદિ.

હેય અને ઉપાદેય પદાર્થોના પરિજ્ઞાતા મુનિજન બાહ્ય અને આભ્યન્તર  
તપનું સેવન કરી નિશ્ચયથી શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મના સકળ રહસ્યના જ્ઞાતા હોય  
છે. તે પ્રવ્રજ્યાગ્રહણ અને દ્વાદશાંગના અઘ્યયન વગેરેના ક્રમથી ભક્તપ્રત્યાઘ્યાન

परिपालयतो ममातिशिथिलगात्रतया संयमाराधने सामर्थ्याभावाच्छरीरपरित्यागा-  
वसरः समायातस्तस्मादहं भक्तप्रत्याख्यानानादिषु कस्मिन् मरणे समर्थोऽस्मी”-ति  
विचिन्त्य, आरम्भात्=शरीरधारणार्थमशनादिगवेषणातः वृत्त्यते=विरम्यते ॥२॥

अभ्युद्यतमरणाय संलेखनां विदधता मुख्यत्वेन क्रोधादिप्रतनुकरणरूपा भावसं-  
लेखना विधेयेति दर्शयति-‘कसाए’ इत्यादि ।

मूलम्-कसाए पयणू किच्चा, अप्पाहारे तितिक्खण ॥

अहं भिक्षू गिलाइज्जा, आहारस्सेव अंतियं ॥ ३ ॥

छाया--कषायान् प्रतनूनं कृत्वा, अल्पाहारस्तितिक्षेत ॥

अथ भिक्षुर्गर्हयेत्, आहारस्यैवान्तिकम् ॥ ३ ॥

प्रत्याख्यान आदिका विचार कर शरीर धारणके निमित्त आहार आदि  
की गवेषणासे विरक्त हो जाते हैं । सूत्रमें “संखाय” शब्द यह बत-  
लाता है कि मुनिजन यह विचार करे कि संयमकी परिपालना करते-  
मेरा शरीर अब शिथिल हो गया है इससे संयमकी आराधना करने  
की अब शक्ति नहीं रही है, अतः अब इस शरीर के परित्यागका समय  
आचुका है, इसलिये भक्तप्रत्याख्यान आदि मरणोंमें से मैं कौनसा  
मरण धारण करने में समर्थ हूँ । इस प्रकार विचार करके अशनादिकी  
गवेषणा करनेका त्याग कर देवे ॥२॥

प्राप्तमरणके लिये संलेखना करनेवाले मुनिजनकी मुख्यरूपसे क्रोधा-  
दिक कषायों के कृश करनेरूप भावसंलेखना करनी चाहिये, यह बात  
सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—‘कसाए’ इत्यादि ।

वगेरेनो विचार करी शरीर धारणना निमित्त आहार वगेरेनी गवेषणाथी विरक्त  
अनी ज्ञथ छे. सूत्रमां “संखाय” शब्द ओवुं अतावे छे के मुनिजन ओवे  
विचार करे के संयमनी परिपालना करतां करतां भाइं शरीर डवे शिथिल थछ  
गथुं छे, आथी संयमनी आराधना करवानी माराभां शक्ति रही नथी, ओटवे  
डवे आ शरीरनो परित्याग करवानो समय आवी गयो छे, आ भाटे लकत-  
प्रत्याख्यान वगेरे मरणोभांथी डुं कथुं मरण धारण करवामां समर्थ छुं ? आ  
प्रकारनो विचार करी अशनादिनी गवेषणा करवानो त्याग करी दे.

प्राप्तमरण भाटे संलेखना करवावाणा मुनिओ मुख्यरूपथी क्रोधादिक कषायोने  
कृशरूप भावसंलेखना करवी जेछे. आ बात सूत्रकार प्रदर्शित करे छे—  
‘कसाए’ इत्यादि.



ટીકા—‘કષાય’—નિત્યાદિ, સ મિશ્રુઃ, અલ્પાહારઃ=સ્તોકમોજી સંલેખનાક્રમેણ ષષ્ઠાષ્ટમાદિવિધિના તપઃ કુર્વન્ પારણાદિને યદિ કેન ચિદન્યેન મુનિના સમાનીય દીયતે તદપ્યલ્પં મુહુર્કતે, ઇતિ ભાવઃ। કષાયાન્ કષસ્ય=સંસારસ્ય આયાઃ=સ્થાનાનિ કષાયાસ્તાન્=ક્રોધાદીન્ ચતુર્વિધાન્ પ્રતનૂન્=કૃશાન્ કૃત્વા તિતિ-ક્ષેત=નીચાદપિ દુર્ભાષિતાદિકં સહેત, વ્યાધ્યાતઙ્કં ચ ક્ષમેત, અલ્પાહારકરણં કષાયોપશમસમ્ભાવનયા ભવતિ તથાઽપિ કદાચિત્તસ્ય કષાયોદયો ભવેત્તદાપિ સ ક્ષમેત એવેત્યાશયઃ ।

અલ્પાહારી વહ મુનિ ક્રોધાદિક કષાયોંકો કૃશ કરકે નીચ પુરુષોંકે કુવચનોંકો ઓર વ્યાધિકે આતંક કો ભી સહન કરે । યદિ-કદાચિત્ અવ્યાબાધ શિવ-સુખકા અભિલાષી વહ મુનિ ગ્લાન હો જાય તો વહ ચાર પ્રકારકે આહારકા હી પરિત્યાગ કર દેવે-સંલેખના કે ક્રમકા નહીં । સૂત્રસ્થિત અલ્પાહાર પદ યહ પ્રકટ કરતા હૈ કિ વહ સાધુ સંલેખનાક્રમસે-ષષ્ઠ, અષ્ટમ આદિ વિધિસે-તપસ્યા કરતા હુઆ પારણાકે દિન કિસી અન્ય મુનિકે દ્વારા લાકર દિયે ગયે આહારકો ભી અલ્પ માત્રામૈં હી લેતા હૈ । કષાય-ઈસમૈં કષ ઓર આય, યે દો શબ્દ હૈં, કષકા અર્થ સંસાર ઓર આયકા અર્થ સ્થાન હૈ । સંસારકે જો સ્થાન હૈં ડનકા નામ કષાય હૈ । અલ્પ આહારકા કરના કષાયોંકે ઉપશમકી સંભાવનાસે હોતા હૈ તો ભી કદાચિત્ ડસકે કષાયકા ઉદય હો જાવે ડસ સમય ભી વહ દુર્ભાષિત આદિકો સહન હી કરતા હૈ, યહ વાત ભી ‘તિતિક્ષેત’ ઇસ પદસે પ્રકટ હોતી હૈ ।

અલ્પાહારી તે મુનિ ક્રોધાદિ કષાયોને કૃશ કરતાં નીચ પુરુષોના કુવચનોને અને વ્યાધિના દુઃખને પણ સહન કરે, અને કદાચિત્ અવ્યાબાધ શિવસુખનો અભિલાષી તે મુનિ ગ્લાન બની જાય તો તે ચાર પ્રકારના આહારનો પરિત્યાગ કરી દે—સંલેખનાના ક્રમનો નહીં. સૂત્રગત અલ્પાહાર પદ એ પ્રગટ કરે છે કે તે સાધુ સંલેખનાક્રમથી—છટ્ઠ, અષ્ટમ, આદિ વિધિથી તપસ્યા કરતાં પારણાના દિવસે બીજા કોઈ મુનિદ્વારા લાવી આપવામાં આવેલ આહારને પણ અલ્પ માત્રામાં જ લે છે. કષાય—એમાં કષ અને આય એ બે શબ્દ છે. કષનો અર્થ સંસાર, અને આયનો અર્થ સ્થાન છે. સંસારનું એ સ્થાન છે તેનું નામ કષાય છે. અલ્પ આહાર કરવો તે કષાયોના ઉપશમની સમભાવનાથી થાય છે તો પણ કદાચ તેને કષાયનો ઉદય આવે તો તે સમયે પણ દુર્ભાષિત આદિને સહનજ કરે છે. આ વાત પણ ‘તિતિક્ષેત’ આ પદથી પ્રગટ થાય છે.

અથ=પશાન્તરે, યાદે ભિક્ષુઃ=અવ્યાવાધશિવસુખામિલાપી મુનિઃ ગ્લાયેત્  
=કેનાંપ સાધુના સમાનીતા ભિક્ષા નોપલભ્યેત તેન કારણેન ગ્લાનો ભવેત્તદા  
આહારસ્યૈવ=ચતુર્વિધાહારસ્યૈવ અન્તિકમ્=અન્તમવસાનં કુર્યાત્, ન તુ સંલેખનાક્રમસ્ય ।  
અત્ર ‘એવ’-કારેણ અપિ ભક્તપ્રત્યાખ્યાનાદિકં કુર્યાત્ કિન્તુ “કતિચિદિનાનિ  
શુક્ત્વા પથ્યાત્સંલેખનાશેષં કરિષ્યામિ” इत्येवं કાતરતામુપગત્ય સંલેખનાક્રમં ન  
ત્રોટયેદિતિ ભાવઃ ॥ ૩ ॥

અન્યચ્ચ-‘જીવિયં’ इत्यादि ।

મૂલમ્-જીવિયં નાભિકંચિજ્ઞા, મરણં નો વિ પત્થણ ॥

દુહઓઽવિ ન સજ્જિજ્ઞા, જીવિણ મરણે તહા ॥ ૪ ॥

છાયા-—જીવિતં નાભિકાઙ્ક્ષેત્, મરણં નાપિ પ્રાર્થયેત્ ॥

ઉભયતોઽપિ ન સજ્જેત, જીવિતે મરણે તથા ॥ ૪ ॥

‘ગ્લાયેત્’ यह क्रियापद यह सूचित करता है कि किसी भी साधु  
के द्वारा समानीत-लाई गई भिक्षा यदि उस साधुको नहीं मिले तो वह  
ग्लान उस समय चारों प्रकारके आहारका ही त्याग कर देवे,  
संलेखनाक्रमका नहीं ।

“आहारस्यैव” यहां पर “एव” यह पद यह बतलाता है कि वह भक्त-  
प्रत्याख्यान आदि करे तो परन्तु ऐसा कायर बनकर वह अपने संलेखना  
के क्रमका भंग न करे कि ‘चलो कुछ दिनों आहार लेकर पीछे अवशिष्ट  
संलेखना पूर्ण कर लूंगा’ ॥३॥

અન્યચ્ચ-‘જીવિયં’ इत्यादि ।

ગ્લાયેત્ આ ક્રિયાપદ એ સૂચિત કરે છે કે કેઈ પણ સાધુદ્વારા  
સમાનીત-લાવેલ ભિક્ષા કદાચ તે સાધુને ન મળે તો તે ગ્લાન તે સમય  
આરે પ્રકારના આહારનો ત્યાગ કરી દે પણ સંલેખનાના ક્રમનો નહીં.

“आहारस्यैव” અહિં પર “एव” આ પદ એમ બતાવે છે કે તે ભક્ત  
પ્રત્યાખ્યાન આદિ કરે તો, પરંતુ એવા કાયર બનીને તે પોતાના સંલેખનાના  
ક્રમનો ભંગ ન કરે કે-‘ચાલો થોડા દિવસ આહાર કરી લઉં પછી બાકી રહેલ  
સંલેખના પૂર્ણ કરી લઈશ.’ (૩)

ફરી પણ કહે છે-‘જીવિયં’ इत्यादि.

टीका—‘जीवित’-मित्यादि, स संलेखनाकारी मुनिः जीवितं नाभिकाङ्क्षेत्  
=नेच्छेत्, क्षुधापरीषदाभिभूतो मरणम्=औदारिकशरीरत्यागमपि न प्रार्थयेत्, तथा  
जीविते मरणे उभयतोऽपि=उभयस्मिन्नपि न सज्जेत=आसक्तिं न कुर्यादित्यर्थः॥४॥

तदा कीदृशो भवेदित्याह—‘मज्झत्थो’ इत्यादि ।

मूलम्—मज्झत्थो निर्जरापेही, समाहिमणुपालए ॥

अंतो वहिं विउस्सिज्ज, अज्झत्थं सुद्धमेसए ॥ ५ ॥

छाया—मध्यस्थो निर्जरापेक्षी, समाधिमनुपालयेत् ॥

अन्तर्बहिर्व्युत्सृज्य, अध्यात्मं शुद्धमन्वेषयेत् ॥ ५ ॥

टीका—‘मध्यस्थ’-इत्यादि, मध्यस्थः राग-द्वेषयोरुदासीनः, यद्वा-मध्यस्थः  
=जीविते मरणेऽपि च निःस्पृहः, अत एव ‘निर्जरापेक्षी’ निर्जरां=कर्मनिर्जरणमपेक्षितुं  
शीलं यस्य स निर्जरापेक्षी, स समाधिं=मरणसमाधिम् अनुपालयेत्-जीवितमरणेच्छा-

वह संलेखनाकारी साधु संलेखनामें अधिक जीनेकी आकांक्षा न  
करे, क्षुधा-परीषद आदिसे त्रस्त होकर औदारिक शरीरके परित्यागरूप  
मरणकी, अर्थात् अधिक जीनेकी एवं दुःखित होकर मरनेकी चाहना न  
रखे, तथा मरने जीने दोनों में आसक्ति न करे ॥ ४ ॥

उस समय वह कैसा होना चाहिये ? इसका उत्तर देने के लिये  
सूत्रकार कहते हैं—‘मज्झत्थो’ इत्यादि ।

राग और द्वेषमें उदासीन वृत्तिवाला, अथवा जीने और मरनेमें भी  
निःस्पृह, अत एव कर्मोंकी निर्जरा करनेकी अपेक्षाका स्वभाववाला, ऐसा  
वह मुनि मरणसमाधिकी अनुपालना करे, अर्थात्-जीवित और मरणमें  
इच्छारहित मुनिका कालपर्यायसे जिस समय में मरण होता है उस

ये संक्षेपनाकारी साधु संक्षेपनामां वधारे ज्ववानी आकांक्षा नहीं करे,  
क्षुधापरिषद आदिथी त्रस्त अनी औदारिक शरीरना परित्यागरूप मरणानी पणु  
आकांक्षा न करे. अर्थात्-अधिक ज्ववानी जेमज्ज दुःखित अनीने मरवानी  
आहना न राभे. तथा मरवा ज्ववा अन्नेमां आसकित न करे. (६)

ते समय जे केवो डोवो जेध जे ? तेनो उत्तर आपतां सूत्रकार कडे छे—  
‘मज्झत्थो’ इत्यादि.

राग अने द्वेषमां उदासीन वृत्तिवाणा, अथवा ज्ववामां अने मरणमां पणु  
निःस्पृह, भाटे जे कर्मोनी निर्जरानी अपेक्षाना स्वभाववाणा जेवा ते मुनि मरण-  
समाधिनी अनुपालना करे. ज्ववन अने मरणमां इच्छारहित मुनितुं काण पर्या  
यथी जे समये मरण थाय छे जे समयनी ते मुनि सावधान चित्तथी प्रतीक्षा



वर्जितस्य कालपर्यायेण मरणं यद् यदा भवति तं कालं स समाहितमनाः परिपाल-  
येदित्याशयः। एवम् अन्तः=कषायान् बहिः=शरीरोपकरणादिकं च व्युत्सृज्य=विहाय  
शुद्धं=राग-द्वेषाद्युपशमाद्विस्त्रोतसिकावर्जितम्, अध्यात्मम्=अन्तःकरणम् अन्वेषयेत्=  
गवेषयेत् ॥ ५ ॥

किञ्च—‘जं किञ्चु०’ इत्यादि।

मूलम्—जं किञ्चुवक्त्रं जाणे, आउक्खेमस्स मप्पणो ॥

तस्सेव अंतरद्वाए, खिप्प सिक्खिज्ज पंडिए ॥ ६ ॥

छाया—यं कं चनोपक्रमं जानीयात्, आयुःक्षेमस्याऽऽत्मनः ॥

तस्यैव अन्तरद्वायां, क्षिप्रं शिक्षेत पण्डितः ॥ ६ ॥

टीका—‘यं कं चने’—त्यादि, आत्मनः=स्वस्य आयुःक्षेमस्य=स्वसम्बन्धिन  
आयुषः क्षेमस्य=कल्याणस्य च यं कं चन उपक्रमम्=उपक्रमणम् जानीयात् तस्यैव=  
संलेखनाकालस्य अन्तरद्वायाम्=मध्यवर्तिकाले पण्डितः=अवगतहेयोपादेयतया  
स्वायुषो निजक्षेमस्य चोपायपरिज्ञाता क्षिप्रं=शीघ्रं शिक्षेत=अभ्यसेत। यद्वा—य  
आत्मनः=निजस्य आयुःक्षेमस्य=सुखजीवितस्य यं कं चनोपक्रमम् आयुःपुद्गलानां  
समयकी वह मुनि सावधानचित्तं बन प्रतीक्षा करे। इस प्रकार अन्तरंगकी  
उपाधिस्वरूप कषायोंका, एवं बहिरंगकी उपाधिरूप शरीर और उपकरण  
आदिका परित्यागकर वह मुनि राग द्वेष आदिके उपशमसे विस्त्रोतसिका-  
संशयादिकदोष-रहित, ऐसे अपने अन्तःकरणकी गवेषणा करे ॥५॥

किञ्च—‘जं किं चुवक्त्रं’ इत्यादि।

तथा—अपनी आयुको और अपने कल्याणके जिस किसी भी उपक्रम  
को वह जाने, उसका वह शीघ्र ही संलेखना कालके मध्यवर्त्ति कालमें  
अभ्यास करे। अथवा—वह मुनि जब ही अपने सुखमय जीवनकी  
स्थिति पूरी होती हुई जाने, अर्थात् ‘आयुके पुद्गलोंका संकुचित होनेका

३२. आ प्रकारे अन्तरंगनी उपाधिश्च कषाये। अने બહારની ઉપાધિश्च શરીર  
અને ઉપકરણ વગેરેનો ત્યાગ કરી એ મુનિ રાગ દ્વેષથી રહિત વિસ્ત્રોતસિકા-  
—સંશયાદિક દોષ-રહિત થઈ પોતાના અન્તઃકરણની ગવેષણા કરે. (૫)

ફરી—‘જં કિં ચુવક્ત્રં’ ઇત્યાદિ.

પોતાની આયુષ્ય અને કલ્યાણના દરેક પ્રકારના ઉપક્રમને તે જાણે, અને  
તે તરત જ સંલેખનાકાળના મધ્યવર્તી કાળનો અભ્યાસ કરે, અથવા—જ્યારે તે  
પોતાના સુખમય જીવનની સ્થિતિ પૂરી થતી જાણે, અથવા—આયુષ્યના પુદ્ગલોનો

સંક્રોચનં સમુપસ્થિતં જાનીયાત્ સ પણ્ડિતઃ=અવસરજ્ઞઃ તસ્યૈવ=ઉપક્રમસ્ય સંલેખના-  
વસરસ્ય અન્તરદ્વાયાં=મધ્યકાલે ક્ષિપ્રં=શીઘ્રં શિક્ષેત=ભક્તપરિજ્ઞાદિકમાસેવનેન  
પરિજાનીયાત્ ॥ ૬ ॥

સ સંલેખનાપરિશુદ્ધકૃશશરીરો મરણકાલે ચોપસ્થિતે કિં વિદધીત? ઇત્યાહ-  
'ગામે વા' ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—ગામે વા અદુવા રણે, થંડિલં પડિલેહિયા ॥

અપ્પપાણં તુ વિન્નાય, તળાઈં સંથરે મુળી ॥ ૭ ॥

છાયા—ગામે વા અથવા અરણ્યે, સ્થળિલં પ્રત્યુપેક્ષ્ય ॥

અલ્પપ્રાણં વિજ્ઞાય, તૃણાનિ સંસ્તરેન્મુનિઃ ॥ ૭ ॥

ટીકા—'ગામે વા'—ઇત્યાદિ, મુનિઃ=ભિક્ષુઃ સંલેખનાશુદ્ધકૃશશરીરઃ ગ્રામે વા  
અથવા અરણ્યે=વને અલ્પપ્રાણં=પ્રાણિર્વર્જિતં સ્થળિલં=સંસ્તારકદેશં પ્રત્યુપેક્ષ્ય=સમ્ય-  
ગવધાર્ય વિજ્ઞાય=વિશેષરૂપેણ જ્ઞાત્વા, તૃણાનિ=ગ્રામાદૌ યાચનયા પ્રાપ્તાનિ પ્રાસુ-  
કાનિ દર્શાદીનિ સંસ્તરેત્=તૈઃ સંસ્તરણં કુર્યાત્ ॥ ૭ ॥

સમય ઉપસ્થિત હોયુકા હૈ' એસા સમજે તવ હી વહ અવસરજ્ઞ મુનિ સંલે-  
ખના કે અવસરકે મધ્યકાલમેં શીઘ્ર હી ભક્તપરિજ્ઞા આદિકા સેવન  
કરને લગે ॥૬॥

સંલેખના સે પરિશુદ્ધ કૃશ શરીર મુનિ મરણકાલકે ઉપસ્થિત હોને  
પર ક્યા કરે? ઇસકે ઉત્તરમેં સૂત્રકાર કહતે હૈ—'ગામે વા' ઇત્યાદિ ।

વહ મુનિ કિ જિસકા કૃશ શરીર સંલેખનાસે શુદ્ધ હૈ વસતિમેં  
અથવા જંગલ મેં પ્રાણિર્વર્જિત સંસ્તારક પ્રદેશકા નિરીક્ષણ કરે, ઓર  
ઉસકે પશ્ચાત્ જબ યહ નિશ્ચિત હોજાવે કિ યહ પ્રદેશ જીવજંતુરહિત હૈ  
તવ ગ્રામાદિક મેં યાચનાસે પ્રાપ્ત પ્રાસુક દર્મ આદિ ઘાસ કો વહાં પર  
વિછાકર અપના સંથારા તૈયાર કરે ॥૭॥

સંકુચિત થવાનો સમય આવી ચુક્યો છે' એવું સમજે ત્યારે તે અવસરજ્ઞ મુનિ  
સંલેખનાના અવસરના મધ્યકાળમાં સત્વર ભક્તપરિજ્ઞા વગેરેનું સેવન કરવા લાગે. (૬)

સંલેખનાથી જેનું કૃશ શરીર શુદ્ધ છે એવા મુનિ મરણકાળ ઉપસ્થિત  
થતાં શું કરે? આના ઉત્તરમાં સૂત્રકાર કહે છે—'ગામે વા' ઇત્યાદિ.

જે મુનિનું કૃશ શરીર સંલેખનાથી શુદ્ધ છે, વસતિમાં અથવા જંગલમાં  
પ્રાણિર્વર્જિત સ્થાનનું નિરીક્ષણ કરે, અને એ પછી જ્યારે એવો નિશ્ચય થઈ  
જાય કે આ પ્રદેશ જીવ-જંતુથી રહિત છે, ત્યારે ગ્રામાદિકમાં યાચનાથી પ્રાપ્ત  
કરેલ દર્મ વગેરે ઘાસને ત્યાં ખીછાવી પોતાનો સંથારો તૈયાર કરે. (૭)

ततः किं कुर्यादित्याह—‘अणाहारो’ इत्यादि ।

मूलम्—अणाहारो तुयद्वेजा, पुट्टो तत्थऽहियासए ।

णातिवेलं उवचरे, माणुस्सेहि वि पुट्टए ॥८॥

छाया—अनाहारस्त्वग्वर्तयेत्, स्पृष्टस्तत्राध्यासयेत् ॥

नातिवेलमुपचरेत्, मानुष्यैरपि स्पृष्टकः ॥ ८ ॥

टीका—‘अनाहार’—इत्यादि—स संलेखनाशुद्धशरीरः, अनाहारः=त्रिविध-चतुर्विधाशनपरित्यागी, गृहीतमहाव्रतः स्वयं क्षान्तः क्षमापितसकलप्राणिगणः समदुःख-सुखो विदितात्मतत्त्वतया मरणादप्यविभ्यन् स संस्तरे त्वग्वर्तयेत्=प्रतिलेख्य प्रमार्ज्य च पार्श्वपरिवर्तनं विदध्यात्, स एव तत्र संस्तरे स्पृष्टः=परीषहोपसर्गैरभिभूतः सन् तान् अध्यासयेत्=अधिसहेत, अपि च—तत्र मानुष्यैः=अनुकूलैः—पुत्र-कलत्र-मित्रादिसं-

वह इसके पश्चात् क्या करे? इसके लिये सूत्रकार-कहते हैं—  
‘अणाहारो’ इत्यादि ।

संलेखना से शुद्ध शरीर वाला, तीन प्रकार या चार प्रकारके आहारका परित्यागी, महाव्रतों को जिसने ग्रहण किया है, समस्त जीवोंको जिसने क्षमा प्रदान किया है और उनसे भी जिसने अपने समस्त प्रत्यक्ष और परोक्ष कृत दोषों की क्षमायाचना कर ली है, सुख और दुःख में जो समभावी बन चुका है और आत्मतत्त्वका ज्ञाता होने से जो मरण से भी त्रस्त नहीं है ऐसा वह मुनि उस बिछाये हुए संधारेकी पहिले प्रतिलेखना करे पश्चात् उसकी प्रमार्जना करे । प्रति-लेखना और प्रमार्जना करने बाद फिर उस पर सोजावे । उस संधारे पर सोये ही वह परिषह और उपसर्गोंसे उपद्रवित बन उन्हें सहे । अपने अनुकूल-पुत्रमित्रकलत्रादिकों के संसर्गसे जनित परीषह और

ये मुनि आ पछी शुं करे? आने भाटे सूत्रकार कहे छे—‘अणाहारो’ इत्यादि.

संलेखनाथी :शुद्ध शरीरवाणा, त्रण प्रकारना के आरे प्रकारना आहारना परित्यागी, महाव्रतो नेणु ग्रहण करेल छे, समस्त जिवोने नेणु क्षमाप्रदान करेल छे आने पोते पणु पोताना अथा प्रत्यक्ष आने परोक्ष दोषोनी क्षमायाचना करेल छे, सुख आने दुःखमां ने समभावी अनी चुकेल छे, आने आत्मतत्त्वना ज्ञाता होवाने कारणे ने मरणनो लय राखतो नथी, ओवो ते मुनि भीछाववामां आवेल संधारानी पडिलेखणा करी करी परिमार्जना करे, ओ पछी ते तेना उपर सुवे. संधारे ग्रहण करेल ते मुनि उपसर्गोथी न अकणातां तेने सडन करे. पोताना अनुकूल-पुत्र-मित्र आने कुटुम्भीजनोना संसर्गोथी आवेल परिषड आने



સર્ગજનિતૈઃ, પ્રતિકૂલૈઃ—વધવન્ધનાક્રોશાદિસમુદ્ભૂતૈઃ પરીપહોપસર્ગૈરપિ સ્પૃષ્ટકઃ= સ્પૃષ્ટ એવ સ્પૃષ્ટકઃ અનુકૂલોપસર્ગૈસ્તદનુધ્યાનપરઃ, પ્રતિકૂલૈશ્ચ તૈઃ કોપપરાયણઃ સન્ અતિવેલં નોપચરેત્=સાધુમર્યાદાં નાતિક્રામેત્ ॥ ૮ ॥

ઉક્તાર્થમેવ વિશદયતિ—‘સંસપ્પગા’ इत्यादि—

મૂલમ્—સંસપ્પગા ય જે પાણા, જે ય ઉડ્ડમહેચરા ॥

મુંજંતિ માંસશોણિયં, ન છુણે ન પમજ્જણ ॥ ૯ ॥

છાયા—સંસર્પકાશ્ચ યે પ્રાણાઃ, યે ચ ઊર્ધ્વમધશ્ચરાઃ ॥

મુંજતે માંસશોણિતં, ન ક્ષણુયાન્ન પ્રમાર્જયેત્ ॥ ૯ ॥

ટીકા—‘સંસર્પકા’—इत्यादि, સંસર્પકાઃ=સંસર્પણશીલાઃ પિપીલિકા—સર્પ—મૂષ-કાદયશ્ચ યે પ્રાણાઃ=પ્રાણિનઃ ચ=પુનઃ યે ઊર્ધ્વમધશ્ચરાઃ=ઊર્ધ્વચારિણો ગૃધ્રાદયઃ, અધશ્ચરાઃ=સિંહ-વ્યાઘ્ર-શૃગાલાદયઃ માંસશોણિતં મુંજતે, તત્ર માંસભોજિનઃ ગૃધ્ર-સિંહ-વ્યાઘ્રાદયઃ, શોણિતાશિનઃ પિપીલિકાદયઃ, આદિશબ્દાત્ દંશ-મશક-મત્કુળ-યૂકાલિકાદયઃ સન્તિ, સ મિશ્રુસ્તાન્ પૂર્વોક્તાન્ પ્રાણિનઃ સ્વમાંસાઘશનાય

ઉપસર્ગોસે હર્ષિત હો કર, તથા પ્રતિકૂલ—વધ વંધન આક્રોશ આદિસે ઉત્પન્ન ઉનસે કોપપરાયણ હોકર વહ સાધુ મર્યાદાકા ઉલ્લંઘન ન કરે ॥૮॥

इस अर्थको सूत्रकार स्पष्ट करते हैं—‘संसपपगा य’ इत्यादि ।

પિપીલિકા—કીડી, સર્પ ઓર મૂષક આદિ સંસર્પણશીલ પ્રાણી, ગૃધ્ર-વગેરહ ઊર્ધ્વચારી જીવ, ઓર સિંહ, વ્યાઘ્ર એવં શૃગાલ આદ અધશ્ચારી જીવ કિ જો માંસ ઓર શોણિત કા આહાર કરને વાલે હૈ, વે યદિ ઉસ સાધુ કે માંસ શોણિત કો ખાનેકે લિયે આવેં તો વહ ઉનકી હિંસા ન કરે, તથા ઉનકે દ્વારા ખાયા ગયા અપને શરીરકા કોઈ મી અવયવ વહ રજોહરણાદિક સે પ્રમાર્જિત ન કરે। ગૃધ્ર, સિંહ ઓર વ્યાઘ્ર આદિ માંસ

ઉપસર્ગોથી હર્ષિત બની તથા પ્રતિકૂળ—વધ—અંધન—આક્રોશ વગેરેથી ઉત્પન્ન તેઓથી કોપપરાયણ બની સાધુમર્યાદાનું તે ઉલ્લંઘન ન કરે. (૮)

આ અર્થને સૂત્રકાર સ્પષ્ટ કરે છે.—‘સંસપ્પગા ય’ इत्यादि.

કીડી—સર્પ—ઉંદર—ધુસ—ખીસકોલી—છછુંદર વગેરે સંસર્પણશીલ પ્રાણી, ગીધ્ર વગેરે ઊર્ધ્વચારી જીવ, સિંહ, વાઘ, શીયાળ વગેરે અધશ્ચારી જીવ કે જે માંસ અને લોહીને જ લક્ષણ કરનારા છે, એ કદાચ તે સાધુના માંસ અને લોહીનું લક્ષણ કરવા આવે તો તે તેની હિંસા ન કરે, તેમ એના દ્વારા ખાવામાં આવેલા શરીરના કોઈ પણ ભાગને રજોહણાદિકથી પ્રમાર્જિત ન કરે. ગીધ્ર સિંહ,

समागतान् न क्षणुयात्=न हिंस्यात्, नापि तैर्भुज्यमानमवयवं रजोहरणादिना प्रमा-  
र्जयेत् ॥ ९ ॥

अपि चाह—‘पाणा’ इत्यादि ।

मूलम्—पाणा देहं विहिंसन्ति, ठाणाओ नवि उब्भमे ॥

आसवेहिं विवित्तेहिं, तिप्पमाणोऽहियासए ॥ १० ॥

छाया—प्राणा देहं विहिंसन्ति, स्थानान्नाप्युद्भ्रमेत् ॥

आस्रवैर्विविक्तैः—स्तृप्यमाणोऽध्यासयेत् ॥ १० ॥

टीका—‘प्राणा’—इत्यादि, प्राणाः=प्राणिनो द्वीन्द्रियादयो देहं=मम शरीरं  
विहिंसन्ति=घ्नन्ति न पुना रत्नत्रयम्, अतः परिहृतदेहाशः समाचरिताभिग्रहभङ्गभ-  
यात्तान् न निवारयेत् । नापि=नैव तस्मात् स्थानात्=स्थण्डिलात् उद्भ्रमेत्=क्वचिद-  
न्यत्र गच्छेत् । अपि च—विविक्तैः=भिन्नैः आस्रवैः=प्राणातिपातादिभिः, शब्दा-  
दिविषयकषायादिभिर्वा तृप्यमाणः=पीड्यमानो अध्यासयेत्=तत्कृतां परीषहो-  
पसर्गबाधामधिसहेत् ॥ १० ॥

भोजी हैं, पिपीलिकादिक, आदि शब्दसे दंश, मशक, खटमल, जू एवं  
लीख आदि शोणितभोजी हैं ॥ ९ ॥

और भी—‘पाणा देहं’ इत्यादि ।

‘ये द्वीन्द्रियादिक प्राणी मेरे शरीरकी ही हिंसा करते हैं, रत्नत्रयकी  
नहीं’ ऐसा विचार कर अपने शरीरके ममत्व का त्यागी वह साधु  
समाचरित-गृहीत अभिग्रहके भंग के भय से उन मांसशोणितभक्षी  
जीवोंका निवारण न करे, और न उनके भयसे वह उस स्थानसे किसी  
और दूसरे स्थान में जावे । तथा वह साधु प्राणातिपातादिक अथवा  
शब्दादिक विषय कषायरूप अनेक आस्रवोंसे आहत-पीडित होता हुआ  
भी उन द्वारा की गई परीषह और उपसर्गकी पीड़ाको सहता रहे ॥ १० ॥

वाघ वगेरे मांस खानारा छे, झीडी आदि, आदि शब्दथी भच्छर, भाकड, गु,  
लीम वगेरे ढोही चुसनारा छे. (८)

इरी पणु—‘पाणा देहं’ इत्यादि.

‘आ जे द्वीन्द्रियाणा प्राणी मारा शरीरनुं लक्षणु करनारां छे पणु रत्नत्रयनुं नहीं’  
ऐवो विचार करी पोताना शरीरना ममत्वने त्यागी ते साधु, समाचरित-  
ग्रहणु करेन अभिग्रहना भंगना लयथी ऐ मांस-ढोहीनुं लक्षणु करनार एवोने  
हर न करे, तेम ऐना लयथी पोते ऐ स्थान छोडी भीन स्थाने न जाय, तथा  
ते साधु प्राणातिपातादिक, अथवा शब्दादिक विषय-कषायेरूप अनेक आस्रवोथी  
पीडातो होवा छतां पणु ते द्वारा थता परिषह अने उपसर्गनी पीडाने सहन करे. (१०)

અન્યચ્ચાહ—‘ગંથેહિં’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—ગંથેહિં વિવિત્તેહિં, આઝકાલસ્સ પારણ ॥

પગ્ગહિયતરગં ચેયં, દવિયસ્સ વિયાણઓ ॥૧૧॥

છાયા—ગ્રન્થૈર્વિવિક્તૈઃ, આયુઃકાલસ્ય પારગઃ ॥

પગ્મહીતતરકં ચેદં, દ્રવિકસ્ય વિજાનતઃ ॥૧૧॥

ટીકા—‘ગ્રન્થૈ’-રિત્યાદિ, યઃ વિવિક્તૈઃ=પૃથગ્ભૂતૈઃ, ગ્રન્થૈઃ=વાઘૈઃ શરીરાદિભિઃ, આભ્યન્તરૈશ્ચ રાગાદિભિઃ સ્વાત્માનં ભાવયન્ ધર્મશુક્લધ્યાનૈકતરસમન્વિતઃ સ આયુઃકાલસ્ય=મરણાવસરસ્ય=પારગઃ=પારગામી સ્યાત્—ચરમોચ્છ્વાસ-નિઃશ્વાસપર્યન્તં સમાધિમાન્ ભવેત્, એવંવિધમરણાદિવિધાયી નીરજાઃ સન્ સિદ્ધિ, કર્માવશેષે દેવલોકં વા ગચ્છેત્ । કથિતં ભક્તપરિજ્ઞાશ્રયમરણમ્, સામ્પ્રતં પદ્યાર્દ્ધેનેજ્ઞિ-

ઔર ભી—‘ગંથેહિં’ ઇત્યાદિ ।

જો મુનિ આત્મા સે સર્વથા પૃથગ્ભૂત બાહ્ય-શરીરાદિકરૂપ એવં આભ્યન્તર-રાગાદિરૂપ પરિગ્રહોં સે અપનેકો ભિન્ન માનતા હૈ, ઔર હસી પ્રકારકી જિસકી સદા ભાવના બની રહતી હૈ, તથા ધર્મધ્યાન ઔર શુક્લધ્યાન, હન દો ધ્યાનોં મેં સે જો કિસી એક ધ્યાનસે સમન્વિત રહતા હૈ, વહ મરણકે અવસર કા પારગામી હોતા હૈ, અર્થાત્-અન્તિમ શ્વાસ ઔર નિઃશ્વાસ પર્યન્ત સમાધિસંપન્ન રહતા હૈ । હસ રીતિસે મરણ કરનેવાલા સાધુ કર્મરૂપ રજસે રહિત હોકર સિદ્ધિલોકમેં અથવા કર્મોંકે અવશેષ રહને પર દેવલોક મેં જાતા હૈ । યહાં તક ભક્તપરિજ્ઞા-નામક મરણકા કથન કિયા ગયા હૈ । યહાં સે આગે અબ આધે પદ્યસે સૂત્રકાર હંગિતમરણકા કથન આરંભ કરતે હૈ—પ્રથમ હંગિતમરણ કૌન કરતા હૈ? હસકે લિયે

કરી પશુ—‘ગંથેહિં’ ઇત્યાદિ.

જે મુનિ આત્માથી સર્વથા પૃથગ્ભૂત બાહ્ય-શરીરાદિકરૂપ, અને આભ્યન્તર-રાગાદિકરૂપ પરિગ્રહોથી પોતાને ભિન્ન માને છે, અને આવા પ્રકારની જેની સદા-ભાવના બની રહે છે, તથા ધર્મધ્યાન અને શુક્લધ્યાન, આ બંને ધ્યાનોમાંથી જે કોઈ એક ધ્યાનથી સમન્વિત રહે છે તે મરણના અવસરને પાર કરનાર બને છે—અન્તિમ શ્વાસ અને નિઃશ્વાસ સુધી સમાધિસંપન્ન રહે છે. આ રીતથી મરણ કરવાવાળા સાધુ કર્મરૂપ રહી રહિત બનીને સિદ્ધિલોકમાં, અથવા કર્મોના અવશેષ રહેવાથી દેવલોકમાં જાય છે. અહિં સુધી ભક્તપરિજ્ઞા નામના મરણનું વર્ણન કરવામાં આવેલ છે. આગળ હવે અર્ધા પદ્યથી સૂત્રકાર હંગિતમરણના કથનનો આરંભ કરે છે—પ્રથમ હંગિતમરણ કોણ કરે છે? એને માટે સૂત્રકાર



તમરણમુપદર્શયતિ—‘પગ્ગહિય’<sup>૦</sup>’ઇત્યાદિ, દ્રવિકસ્ય=સંયમવતઃ વિજાનતઃ=ગીતાર્થસ્ય જઘન્યેનાપિ નવપૂર્વાભિજ્ઞસ્ય નાન્યસ્ય इदं=વક્ષ્યમાણમિદ્ધિતમરણં પ્રગૃહીતતરકમ્ અતિશયેન સમ્યક્ સ્વીકૃતં ભવતિ । इद्धितमरणेऽपि संलेखनातृणसंस्तारादિકं पूर्ववद् बोध्यम् ॥૧૧॥

તન્મરણસ્યાન્યમપિ વિધિં દર્શયતિ—‘અયં’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—અયં સે અપરે ધર્મ્મે, નાયપુત્તેણ સાહિણ ॥

આયવજ્ઞં પડીયારં, વિજહિજ્ઞા તિહા તિહા ॥૧૨॥

હાયા—અયં સઃ અપરઃ ધર્મો, જ્ઞાતપુત્રેણ સ્વાહિતઃ ॥

આત્મવર્જં પ્રતીચારં, વિજહ્યાત્ ત્રિધા ત્રિધા ॥૧૨॥

ટીકા—‘અય’—મિત્યાદિ, જ્ઞાતપુત્રેણ=ભગવતા મહાવીરેણ સ્વાહિતઃ=સુષ્ટુ આહિતઃ=જ્ઞાતઃ કેવલાલોકેન સમુપલબ્ધ ઇત્યર્થઃ, અયં વક્ષ્યમાણઃ इद्धितमरणस्य धर्मः, अपरः=भक्तपरिज्ञामरणात्पृथगस्ति, एतस्यापि मरणस्य प्रव्रज्यासंलेखनादिको विधिः पूर्ववद् बोध्यः । इद्धितमरणाभिकाङ्क्षी सर्वमुपकरणं परिहृत्य स्थण्डिलप्रत्यु-

સૂત્રકાર કહતે હૈં કિ-જો સંયમી હૈ, તથા કમસે કમ તો નૌ પૂર્વકે જ્ઞાતા હૈ વહી ઇસે સ્વીકાર કરતા હૈ-અન્ય મુનિ નહીં । ઇસ મેં મી સંલેખના એવં તૃણસંસ્તાર આદિકી વિધિ પૂર્વવત્ જાનની ચાહિયે ॥૧૧॥

ઇસ મરણકી અન્ય વિધિ કહતે હૈ—‘અયં સે’ ઇત્યાદિ ।

જ્ઞાતપુત્ર શ્રી મહાવીર કે દ્વારા કેવલજ્ઞાનરૂપી આલોકસે અચ્છી તરહ જાના ગયા યહ ઇંગિતમરણરૂપ ધર્મ ભક્તપ્રત્યાખ્યાન આદિ મરણ સે ભિન્ન હૈ । ઇસ મરણ કી મી પ્રવ્રજ્યા ગ્રહણ કરના, સંલેખનાદિક ધારણ કરના આદિ વિધિ પહિલેકી તરહ હી સમજના ચાહિયે । ઇંગિત મરણકા અભિલાષી મુનિ સમસ્ત ઉપકરણકા પરિત્યાગ કર સ્થણ્ડિલકા

કહે છે કે જે સંયમી છે, તથા જે યોછામાં યોછા નવપૂર્વના બાણકાર હોય છે તેજ તેને અંગીકાર કરે છે-બીજા મુનિ નહીં. આમાં પણ સંલેખના અને ધાસના સંતારા વગેરેની વિધિ પહેલાંની માફક બાણવી બેઠીએ. (૧૧)

આ મરણની બીજી પણ વિધિ કહે છે—‘અયં સે’ ઇત્યાદિ.

જ્ઞાતપુત્ર શ્રી મહાવીર દ્વારા કેવલજ્ઞાનરૂપી આલોકવશથી (પ્રકાશવડે) સારી રીતે બાણવામાં આવેલ તે ઇંગિતમરણરૂપ ધર્મ ભક્તપ્રત્યાખ્યાન વગેરે મરણથી બુદ્ધા પ્રકારનું છે. આ મરણની પણ દીક્ષા ગ્રહણ કરવી, સંલેખના વગેરેનું ધારણ કરવું વગેરે વિધિ પહેલાંની માફકજ સમજવી બેઠીએ. ઇંગિત મરણના અભિલાષી મુનિએ સમસ્ત ઉપકરણનો પરિત્યાગ કરી સ્થંડિલનું

पेक्षणपूर्वकमालोचितप्रतिक्रान्तः, गृहीतपुनःपञ्चमहाव्रतो यावदशनं विहाय संस्तार-  
स्थितो भवेत् । एतस्मिन् विशेषं दर्शयति—‘आत्मवर्ज’—मित्यादिना, स तृणसंस्तार-  
गत इङ्गितमरणेच्छुः, त्रिधा—त्रिधा=त्रिविधैर्मनोवाकायरूपैः कृतकारितानुमति-  
मिश्र आत्मवर्ज=निजशरीरावश्यककार्यवर्जं प्रतीचारम्=अवयवसञ्चारं विजह्यात्=  
परिहरेत्, स्वयमेव च—उद्धर्तनपरिवर्तनं कायव्यापारादिकं करोतीति भावः॥सू० १२॥

मुहुर्मुहुः प्राणिप्राणपरिपालनस्यावश्यकतामुपदर्शयति—‘हरिणसु’ इत्यादि ।

मूलम्—हरिणसु न निर्वज्जिज्जा, थंडिलं मुणिया सए ॥

विओसिज्ज अणाहारो, पुट्ठो तत्थऽहियासए ॥१३॥

छाया—हरितेषु न निषीदेत्, स्थण्डिलं ज्ञात्वा शयीत ॥

व्युत्सृज्यानाहारः, स्पृष्टस्तत्राध्यासयेत् ॥ १३ ॥

निरीक्षण, उसका संमार्जन, पापोंकी आलोचना एवं प्रतिक्रमण करे।  
पांच महाव्रतोंको पुनः ग्रहण करे। अशनादिकको क्रमशः कृश करते हुए  
उसका सर्वथा परिहार करे, और ग्रामादिकसे घासकी याचना कर एकांत  
स्थान में निर्जीव स्थानपर उनका संथारा कर उस पर खमत-खामणा  
कर स्थित हो जावे। इंगित मरणका इच्छुक मुनि मन वचन एवं कायसे,  
तथा कृत, कारित एवं अनुमोदना से अपने शारीरिक आवश्यक कार्यों  
के सिवाय अन्य-अवयवों के संचार करनेरूप प्रतीचारका परिहार कर  
देवे। उद्धर्तन-परिवर्तनरूप कायव्यापारादिक यह कर सकता है ॥१२॥

सूत्रकार बारबार प्राणियों के प्राणोंकी रक्षाकी आवश्यकता प्रकट  
करते हुए सूत्र कहते हैं—‘हरिणसु’ इत्यादि ।

निरीक्षण, तेनुं संभोज्जन, पापोनी आलोचना तेमज्ज प्रतिक्रमण करी पांच महा-  
व्रतोने पुनः ग्रहण करे. अन्न वगैरे ओछु करता नय अने छेवटे तेनो संपूण  
त्याग करे, अने ग्रामादिकथी घासनी याचना करी ओकान्त स्थानमां, निर्जीव  
स्थान उपर संधार करी ओ उपर ओसी जमत-आमणु करी स्थिर गनी नय.  
इंगितमरणने छिन्नार मुनि मन वचन अने कायाथी करेला, करायेला, अने  
अनुमोदन आपेला पोताना शारीरिक आवश्यक कार्यो सिवाय भीन अवयवोने  
संचार करवाइय प्रतियारने त्याग करी हे. उद्धर्तन-परिवर्तनइय कायव्यापा-  
रादिक ते करी शके छे. (१२)

सूत्रकार बारबार प्राणियोंकी प्राणोंकी रक्षानी आवश्यकता प्रकट करीने  
सूत्र कहे छे—‘हरिणसु’ इत्यादि.

१ ‘नि’ पूर्वस्य ‘सद्’ धातो रूपम् ।

टीका—‘हरितेष्वि’-त्यादि, स भिक्षुः, हरितेषु=दूर्वाङ्कुरयुतेषु प्रदेशेषु न निषीदेत्=नोपविशेत्, तं स्थण्डिलं=हरितादिवर्जितं स्थानं ज्ञात्वा शयीत, व्युत्सृज्य=आहारं त्यक्त्वा अनाहारः=कृतानशनः स्पृष्टः=परिषहोपसर्गैरभिभूतः सन् तत्र=संस्तरे वर्तमान एव अध्यासयेत्=उपस्थितं परीषहोपसर्गाभिभवमधिसहेत ॥सू० १३॥

अन्यदप्याह—‘इंदिण्हि’ इत्यादि ।

मूलम्—इंदिण्हिं गिलायंतो, समियं आहरे मुणी ॥

तहावि से अगरिहे, अचले जे समाहिण ॥१४॥

छाया—इन्द्रियैर्ग्लायमानः, शमितामाहारयेन्मुनिः ॥

तथाऽपि सः अगर्हः, अचलो यः समाहितः ॥ १४ ॥

टीका—‘इन्द्रियै’-रित्यादि, अशनप्रत्याख्यानादिन्द्रियाणां क्षीणशक्तितया इन्द्रियैः=श्रोत्रादिभिः, ग्लायमानः=ग्लानिमनुभवन् मुनिः शमिनो=मनोनिग्रहवतो भावः शमिता, तां, यद्वा—‘साम्यम्’ इतिच्छाया, साम्यम्=समभावम् आहारयेत्=स्वात्मनि स्थापयेत्, आर्तध्यानसमन्वितो न भवेदित्याशयः । यथासमाधि तत्र

वह भिक्षु, जिस प्रदेशमें हरित-दूर्वादिके अंकुर हों उस प्रदेशमें नहीं बैठे । जहां हरितांकुर आदि न हों, वहीं पर ऊठे बैठे एवं सोवे । चतुर्विध आहार का परित्यागी वह भिक्षु परीषह और उपसर्गों से उपद्रवित होने पर उस संथारे पर रहता हुआ ही उपस्थित उस परिषह और उपसर्ग-जन्य बाधा को सहे ॥१३॥

और भी—‘इंदिण्हि’ इत्यादि ।

आहार के परित्याग कर देने से इन्द्रियां स्वयं शिथिल हो जाती हैं, अतः आहार के परित्याग से क्षीणशक्तिवाली इन्द्रियों द्वारा मुनि जब ग्लानिका अनुभव करने कगे उस समय वह अपने मनका निग्रह करके समताभावको धारण करे-आर्तध्यानसे युक्त न बने । हस्त-पादा-

ते भिक्षु जे प्रदेशमां लीला दर्ल आदिना अंकुर होय तेवा प्रदेशमां न भेसे, न्यां लीला दर्लना अंकुर न होय त्यां भेसे उठे अने सुवे. यार प्रकारना आहारना परित्यागी ओ साधु परिषह अने उपसर्गोथी उपद्रवित होवा छतां संथारा उपर रहीने उत्पन्न थता परिषह अने उपसर्गजन्य बाधाओने सहन करे. (१३)

वधु पणु—‘इंदिण्हि’—इत्यादि.

आहारने त्याग करी देवाथी इन्द्रियो स्वयं शिथिल अनी नय छे, ओटले आहारना त्यागथी क्षीणशक्तिवाणी इन्द्रियोथी मुनि न्यारे ग्लानि अनुभववा लागे ओ समये ते पोताना मननो निग्रह करीने समता लावने धारण करे-



તિષ્ઠેત્, તથા હિ-સઙ્કોચનોદ્વિગ્નો હસ્તપાદાદ્યવ્યવં પ્રસારયેત્, તેન શ્રાન્ત આસીદેત્  
 ઇજ્ઞિતપ્રદેશે પરિભ્રમેદ્વા, તથાઽપિ=એવં કુર્વન્નપિ યો મુનિઃ, અભ્યુદયતમરણાદ્ ગિરિ-  
 રિવાઽપ્રકમ્પ્યઃ શરીરમાત્રેણ તુ ચલિત એવ સમાહિતઃ=સમાધિસ્થાપિતચિત્તો ભવેત્  
 સોઽગર્હ્યઃ=અનિન્દ્યઃ, આરાધક એવેત્યર્થઃ । સ ભાવતોઽચલ ઇજ્ઞિતપ્રદેશે ગમનાદિકં  
 કર્તુમર્હતીત્યાશયઃ ॥ સૂ ૦ ૧૪ ॥

ઉક્તમેવાર્થ પ્રકટયતિ-‘અભિક્રમે’ इत्यादि ।

મૂલમ્-અભિક્રમે પઢિક્રમે, સંકુચણ પસારણ ॥

કાયસાહારણદ્વાણ, इत्थ वावि अचेयणो ॥ १५ ॥

છાયા-અભિક્રમેત્ પ્રતિક્રમેત્, સઙ્કોચયેત્પ્રસારયેત્ ॥

કાયસાધારણાર્થાય, अत्र वाऽपि अचेतनः ॥ १५ ॥

દિક અવયવોં કે સંકોચસે યદિ વહ ઉદ્વિગ્ન ચિત્તવાલા હો જાતા હૈ, તો  
 વહ હસ્તપાદાદિકો ફેલા સકતા હૈ । લેટેર યદિ વહ થક જાતા હૈ તો વહ ઉઠ  
 કર બેઠ ભી સકતા હૈ, ઓર ઇંગિતપ્રદેશમેં વૂમ ભી સકતા હૈ । ઇસ પ્રકારસે  
 અપની પરિસ્થિતિકો સંભાલતા હુઆ ભી વહ પ્રાપ્ત હુણ મરણસે ચંચલ-  
 ચિત્ત નહીં બનતા, પ્રત્યુત પર્વતકે સમાન અડોલ હી રહતા હૈ । કેવલ શરીર  
 સે હી ચલતા હૈ પરન્તુ ગૃહીત સમાધિ સે કિ જિસમેં ડસને અપના ચિત્ત  
 સ્થાપિત કિયા હૈ ડસસે ચલિત નહીં હોતા । એસા સાધુ હી અનિન્દ્ય આરાધક  
 હોતા હૈ । ભાવસે અચલ હોકર હી યહ ઇંગિત પ્રદેશ મેં ગમનાદિક કર  
 સકતા હૈ ॥ ૧૪ ॥

કથિત અર્થકો હી સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરતે હૈ-‘અભિક્રમે’  
 इत्यादि ।

-આર્ત્તધ્યાનથી યુક્ત ન બને. હાથ પગના અવયવોના સંકોચથી જો તે ઉદ્વિગ્ન  
 ચિત્તવાળા થઈ જાય તો તે એને ફેલાવી શકે છે. સુતાં સુતાં જો તે થાકી જાય  
 તો તે ઉઠીને બેસી શકે છે અને ઇંગિત પ્રદેશમાં ફરી શકે છે. આ પ્રકારથી  
 પરિસ્થિતિને સંભાળતાં છતાં પણ તે પ્રાપ્ત થતા મરણથી ચંચળ ચિત્તવાળા  
 બનતા નથી, પરંતુ પર્વતની જેમ અડોલ રહે છે. કેવળ શરીરથી જ ચાલે છે.  
 પરંતુ લીધેલ સમાધિથી કે જેમાં તેણે ચિત્ત સ્થાપિત કરેલ છે તેનાથી ચલિત  
 થતા નથી. એવા સાધુ જ પ્રશંસા મેળવનાર બને છે. ભાવથી અચળ બનીને જ  
 તે ઇંગિત પ્રદેશમાં ફરી-ફરી શકે છે. (૧૪)

કહેવામાં આવેલા અર્થને જ સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરે છે-‘અભિક્રમે’ इत्यादि.

ટીકા—‘અભિક્રમે’—દિત્યાદિ, સ મુનિઃ કાયસાધારણાર્થાય દેહસ્યાપિ સુ-  
કુમારતયા તન્નિર્વહણાર્થમ્, અભિક્રમેત્=સંસ્તારકાભિમુખં ગચ્છેત્, તથા પ્રતિક્રા-  
મેત્=સંસ્તારકાત્ પશ્ચાદ્ ગચ્છેત્, સદ્બોચયેત્-પ્રસારયેત્=હસ્તપાદાદીનાં સદ્બોચનં  
પ્રસારણં ચ કુર્યાત્, અત્ર વાઽપિ પૂર્વોક્તાભિક્રમણાદિકરણેઽપિ ‘વા’ શબ્દાત્ સતિ  
સામર્થ્યે પાદપોપગમનવદત્રેજ્ઞિતમરણેઽપિ અચેતનઃ=શુષ્કકાષ્ઠવત્ સર્વક્રિયાવર્જિત  
એવ વિજ્ઞેયઃ ॥ સૂ. ૧૫ ॥

તથાવિધસામર્થ્યાઽસત્ત્વે યદ્વિધેયં તદાહ—‘પરિક્રમે’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—પરિક્રમે પરિકિલંતે, અદુવા ચિદ્ અહાયણ ॥

ઠાણેણ પરિકિલંતે, નિસીદ્ઝજા ય અંતસો ॥ ૧૬ ॥

છાયા—પરિક્રમેત્ પરિક્લાન્તઃ, અથવા તિષ્ઠેદ્ યથાયતઃ ॥

સ્થાનેન પરિક્લાન્તઃ, નિષીદેચ અન્તશઃ ॥ ૧૬ ॥

વહ મુનિ દેહકે અતિસુકુમાર હોનેકે કારણ નિર્વાહ કરને કે લિયે  
સંસ્તારક કે સન્મુખ જા સકતા હૈ, વહાંસે પીછે લૌટ કર વાપિસ મી  
આ સકતા હૈ । અપને હાથ પૈર આદિ અવયવોં કો ફેલા સકતા હૈ ઓર  
उनका संकोच भी कर सकता है । इंगित मरण करने में उद्यत वह साधु  
इन पूर्वोक्त क्रियाओंको कर सकता है । यदि उसमें शक्ति हो तो पादपो-  
पगमन में जैसे शुष्ककाष्ठ की तरह निष्क्रिय पड़ा रहता है उसी तरह  
यह भी इस इंगितमरण में निष्क्रिय हो कर रह सकता है ॥ ૧૫ ॥

इस प्रकारकी शक्ति के अभाव में जो करने योग्य है वह सूत्रकार  
प्रदर्शित करते हैं—‘परिक्रमे’ इत्यादि ।

તે મુનિ દેહના અતિ સુકુમાર હોવાને કારણે એના હલન-ચલન માટે  
સંસ્થારાની આબુખાબુ જઈ શકે છે. ત્યાંથી ફરી તે પાછા સંસ્થારાના સ્થળે  
આવી શકે છે. પોતાના હાથ પગ વગેરે અવયવોને ફેલાવી શકે છે અને તેના  
સંકોચ પણ કરી શકે છે. ઇંગિત-મરણ કરવામાં ઉદ્યમી તે સાધુ આવી પૂર્વોક્ત  
ક્રિયાઓ કરી શકે છે. જો તેનામાં શક્તિ હોય તો તે પાદપોપગમનમાં જેમ  
સુકેલાં લાકડાંની જેમ નિષ્ક્રિય પડ્યા રહે છે તેમ તે પણ આ ઇંગિતમરણમાં  
નિષ્ક્રિય થઈ રહી શકે છે. (૧૫)

આ પ્રકારની શક્તિના અભાવમાં જે કરવા યોગ્ય છે સૂત્રકાર તેને  
સૂત્રદ્વારા બતાવે છે—‘પરિક્રમે’ ઇત્યાદિ

ટીકા—‘પરિક્રામે’—દિત્યાદિ, યદા મુનેરુપવિશતઃ શરીરપીડા ભવેત્તદાસ પરિક્રાન્તઃ=શ્રમમુપગતઃ સન્ પરિક્રામેત્=પરિભ્રામ્યેત્ નિયતદેશે સરલગત્યા યાતા-યાતાદીનિ સમાચરેત્ । તન્નાપિ શ્રાન્તશ્ચેત્તદા કિં કુર્યાદિત્યાહ—‘અથવે’—ત્યાદિ, અથવા યથાયતઃ=યથાસ્થાપિતશરીરઃ તિષ્ઠેત્, યદિ સ્થાનેન=એકસ્થાનાવસ્થિત્યા પરિક્રાન્તો ભવેત્—યદ્યુપવિષ્ટશ્ચેત્ પર્યઙ્કોત્કુડુકાઘાસનાન્તરાણિ કુર્યાત્, ઉત્થિત-શ્ચેદ્ ગમનાગમનાદિકં કુર્યાત્, તત્તોઽપિ ક્લાન્તશ્ચેત્તદા અન્તઃ=અન્તતો નિષીદેચ્ચ=ઉપવિશેત્, તસ્યામવસ્થાયાં પાર્શ્વશાયી દણ્ડાયતિકો લગુડશાયી વા ભૂત્વા યથા-યોગમવતિષ્ઠેતેતિ તાત્પર્યમ્ ॥ સૂ૦ ૧૬ ॥

અપિ ચાન્યદપ્યાહ—‘આસીણે’ ઇત્યાદિ ।

બેઠે ૨ મુનિ કો જબ શારીરિક કષ્ટકા અનુભવ હોને લગે ઓર ઉસ દશામેં ઉસે અપના શરીર થકાસા માલૂમ પડને લગે તો વહ નિયમિત પ્રદેશ મેં સરલગતિ સે ગમનાગમન કર સકતા હૈ । એસા કરતે ૨ મી યદિ થક જાતા હૈ, તો ઉસે એક સ્થાન પર ઠહર જાના ચાહિયે । ઠહરતે સમય યદિ વહ બેઠ ગયા હૈ, તો વહ પર્યઙ્કાસન યા ઉત્કુટ આસન આદિસે બેઠ સકતા હૈ, યદિ યદા હી હૈ તો શ્રમ સમાપ્ત હોતે હી વહ ફિરસે ગમના-ગમન કર સકતા હૈ । ઇસ મેં મી જબ વહ થક જાવે તો વહ અન્તમેં બેઠ જાવે, ઇસ સમય વહ લેટ મી સકતા હૈ, દણ્ડ જૈસા હો સકતા હૈ, તથા વહ અપને હાથ પૈર આદિ સમસ્ત અવયવોંકો ઇચ્છાનુસાર પસાર સકતા હૈ, તાત્પર્ય યહ હૈ કિ—જિસ રૂપસે લેટનેમેં યા બેઠનેમેં ઉસે સુખ માલૂમ હો વહ ઉસ પ્રકાર સે લેટ સકતા હૈ અથવા બેઠ સકતા હૈ ॥ ૧૬ ॥

ઓર મી—‘આસીણે’ ઇત્યાદિ ।

બેઠાં બેઠાં મુનિને જ્યારે શારીરિક કષ્ટનો અનુભવ થવા લાગે અને એ દશામાં તેને પોતાનું શરીર થાકેલું માલુમ પડે તો તે નિયમિત પ્રદેશમાં સરળ ગતિથી હરી-ફરી શકે છે. એમ કરતાં કરતાં પણ બે તે થાકી જાય તો તેણે એક સ્થાન ઉપર બેસી જવું બેઠું બે. જે સ્થાન ઉપર પોતે બેસી ગયેલ છે ત્યાં તે પર્યંકાસન અથવા ઉત્કુટ (ઉકડુ) આસન વગેરેથી બેસી શકે છે. બે ઉભા જ રહે તો શ્રમ લાગતાં વળી ફરીથી હરી-ફરી શકે છે. એ વખતે પણ બે તે થાકી જાય તો અંતે બેસી જાય અને સુઈ પણ શકે છે, લાકડીની માફક થઈ શકે છે, અને તે પોતાના હાથ પગ વગેરે અવયવો ઇચ્છાનુસાર ફેરવી શકે છે. તાત્પર્ય એ છે કે—જે રીતે સુવા બેસવામાં એને સુખ પડે તે પ્રકારે તે સુઈ બેસી શકે છે. (૧૬)

વધુમાં—‘આસીણે’ ઇત્યાદિ.



मूलम्—आसीनेऽनेलिसं मरणं, इन्द्रियाणि समीरये ॥

कोलावासं समासज्ज, वितहं पाउरेसए ॥ १७ ॥

छाया—आसीनेऽनीदृशं मरणम्, इन्द्रियाणि समीरयेत् ॥

कोलावासं समासाद्य, वितथं प्रादुरेषयेत् ॥ १७ ॥

टीका—‘आसीन’—इत्यादि, अनीदृशम्=अनन्यतुल्यं कातरजनदुष्करं मरणम्= इङ्गिताख्यम् आसीनः=उपविशन्=स्वीकुर्वन् तादृशमरणकृताध्यवसाय इत्यर्थः, स मुनिः इन्द्रियाणि=श्रोत्रादीनि समीरयेत्=मनोज्ञामनोज्ञशब्दादिविषयेषु राग-द्वेषा-करणेन प्रेरयेत्—विषयेभ्य इन्द्रियाणि निवर्तयेदित्यर्थः । राग-द्वेषयोरसत्त्वेन स्वत एव तानि स्वविषयेभ्यो निवृत्तानि भवन्तीति परमार्थः॥ स एव ‘कोलावासं’ कोलानां घुणाख्यकीटविशेषाणाम् आवासः=स्थानं, तम्, अन्तर्घुणक्षतं पीठफलका-दिकं समासाद्य=प्राप्य वितथम्=अतथाभूतं कोलावासादन्यं सर्वथा घुणादिजीवरहितं

जिसे कायर जन अंगीकार नहीं कर सकते ऐसे इस इंगित मरण को स्वीकार करनेवाला यह मुनि अपनी श्रोत्र आदि इंद्रियोंको मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्द आदि विषयों में राग और द्वेष नहीं करके उस तर्फ से हटा लेवे। विषयों में जब इंद्रियोंका राग और द्वेष नहीं होगा तो वे स्वतः उस ओर से हट जायेंगी। वह मुनि कोलावास-भीतर से जिसे घुनने खा लिया है ऐसे पीठ फलकादिको छोड़कर अच्छे मज-बूत निश्छिद्र पीठ-फलकादिककी अपने सहारे के निमित्त गवेषणा करे। घुण नामक कीट-विशेषका नाम कोल है, इनका जिसमें स्थान है वह कोलावास है। इससे भिन्न कि जिसके भीतर घुन न लगा हो जिसमें छिद्र न हो और जिसकी प्रतिलेखना आदि क्रिया अच्छी तरह से हो

जेने असंयमी जन अंगीकार नहीं करी शकता जेवा जे इंगित-मरणुने स्वीकार करवावाणा जे मुनि पोतानी श्रोत्र वगेरे इन्द्रियोने मनोज्ञ अने अम-नोज्ञ शब्द वगेरे विषयोमां राग अने द्वेष नहि करता जे तरङ्गथी छटावी ले, विषयोमां न्यारे इन्द्रियोना राग अने द्वेष न होय त्यारे ते जाते ज ते तरङ्गथी छठी जशे. ते मुनि, जेने असंयमी घुण लागेल छे जेवा पीठ-फलकादिकने छोडी हर्ष सारा मज्जुत छिद्र वगरना पीठ-फलकादिकनी पोताना सहारा भाटे गवेषणा करे, जे लाकडांमां केछि छीडानुं स्थान न होय तेवा छिद्र वगरना, जेनी प्रतिलेखना वगेरे क्रिया सारी रीते थर्ष शकै जेवा

પ્રાદુરેષયેત્=પ્રકટં પ્રતિલેખનયોગ્યં છિદ્રવર્જિતં પીઠફલકાદિકમવઘ્મ્મનાર્થમન્વે-  
ષયેત્ ॥ ૧૭ ॥

કોલાવાસયુક્તપીઠફલકાદિવર્જને हेतुमाह-‘जओ’ इत्यादि ।

મૂલમ્—જઓ વજ્જં સમુપ્પજ્જે, ન તત્થ અવલંબણ ॥

તઓ ઉક્કસે અપ્પાણં, ફાસે તત્થહિયાસણ ॥૧૮॥

છાયા--યતો વજ્જં સમુત્પદેત, ન તત્રાવલમ્બેત્ ॥

તત ઉત્કર્ષયેદાત્માને, સ્પર્શસ્તત્રાધ્યાસયેત્ ॥ ૧૮ ॥

ટીકા--‘યત’-‘इत्यादि, यतः=यस्मात् કોલાવાસાદિયુક્તપીઠફલકાદિવઘ્મ-  
નાત્ વજ્જમ્=વજ્જમિવ ગુરુત્વાદ્ જ્ઞાનાવરણીયાદિકર્મ, યદ્વા-‘અવઘ્મ’-મિતિચ્છાયા,  
અવઘ્મ=પાપં સમુત્પદેત=જાયેત, તત્ર=તાદૃશે ઘુણક્ષતપીઠફલકાદૌ ન અવલમ્બેત=  
અવઘ્મ્મનાદિક્રિયાં નૈવ કુર્યાત્, તતઃ=તસ્માદ્ ઉત્થાનોપવેશનપાર્શ્વપરિવર્તનાદિકા-  
સક્તી હો એસે પીઠ-ફલકાદિક કો હી વહ સાધુ અપને ઉપયોગ મેં લા  
સકતા હૈ, ઇસસે ભિન્ન કોલાવાસયુક્ત સછિદ્રકો નહીં ॥૧૭॥

પૂર્વોક્ત પ્રકારકે પીઠફલકાદિક ઉપયોગમેં ક્યોં નહીં લાના ચાહિયે?  
ક્યોં ઇનકા પરિહાર કરના ચાહિયે? ઇસ વિષયમેં કારણ બતાતે હુણ સૂત્ર-  
કાર કહતે હૈ--‘जओ’ इत्यादि ।

કોલાવાસયુક્ત પીઠ-ફલકાદિકકો અપને ઉપયોગ મેં લાનેસે કઠોર  
વજ્જકી તરહ જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મોંકા અથવા પાપકા ઉસ સાધુકે બંધ  
હોતા હૈ, અર્થાત્-ઘુને પીઠ ફલકાદિકકા સહારા લેને સે સાધુ જ્ઞાનાવર-  
ણીયાદિક કર્મોંકા અથવા પાપોંકા સંચય કરનેવાલા હોતા હૈ, ઇસલિયે  
ઉસકા ઉસે અવઘ્મ-સહારા આદિ નહીં લેના ચાહિયે, એવં ઉત્થાન,

પીઠ-ફલકાદિકને જ તે સાધુ પોતાના ઉપયોગમાં લઈ શકે છે. તેનાથી ભિન્ન એટલે  
કીડાએ પાડેલા છિદ્રવાળા નહીં. (૧૭)

કીડાએ પાડેલા છિદ્રવાળા લાકડાના પાટીયાનો ઉપયોગ પીઠ માટે કેમ ન  
લેવાય? એનો શા માટે પરિહાર કરવો જોઈ એ? આ વિષયમાં કારણ બતાવતાં  
સૂત્રકાર કહે છે--‘जओ’ इत्यादि.

કીડાએ કોતરેલા કે તેમાં વાસ કરેલા પીઠ-ફલકાદિકને પોતાના ઉપયો-  
ગમાં લેવાથી વજ્જના જેવા કઠોર જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મોંનો, અથવા  
‘અવઘ્મ’-પાપનો બંધ થાય છે. અંદરથી કોહાઈ ગયેલા એવા  
લાકડાના પીઠ-ફલકાદિકનો આશરો લેવાથી સાધુ જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મોંના  
અથવા પાપોના સંચય કરવાવાળા બને છે, આ માટે તેનો સહારો સાધુએ ન

યયોગાદ્ દુષ્પ્રણિહિતવાયોગાદાર્થધ્યાનાદિમનોયોગાન્નાવધપ્રાદુર્ભાવિકારણાદ્  
આત્માનમ્ ઉત્કર્ષયેત્=પૃથક્ કુર્યાત્ નિવર્તયેદિત્યર્થઃ । તત્ર=ઇક્ષિતમરણે ધૃતિસંહ-  
નનયુક્તોઽપ્રતિકર્મદેહઃ વર્ધિઃશુભાધ્યવસાયો વીતરાગપ્રોક્તપદાર્થસાર્થસ્વરૂપ-  
શ્રદ્ધાપ્રરૂપણાસ્પર્શનાપ્રતિનિવિષ્ટચિત્તઃ ‘સર્પસ્ય કઠ્ચુક ઇવ શરીરમિદં મમ ત્યાજ્ય’-  
મિત્યેવં કૃતનિશ્ચયઃ સ મિશ્નુઃ સ્પર્શાન્=સકલદુઃસ્વવિશેષાન્ અધ્યાસયેત્ ‘એતે ચ  
ઉપવેશન ઔર પાશ્વરપરિવર્તન આદિકાયયોગસે, અશુભ વચનયોગસે  
એવં આર્તધ્યાન આદિ યુક્ત મનોયોગ સે જો પાપોંકી ઉત્પત્તિ કે કારણ  
હેં ડનસે અપને કો વહ મુનિ સર્વથા દૂર રલે ।

હસ-ઈંગિતમરણ-મેં ધૃતિ એવં સંહનનસે યુક્ત સાધુ, કિ જિસકે  
શુભ અધ્યવસાય વર્ધનશીલ હેં ઔર વીતરાગ પ્રભુ દ્વારા  
પ્રરૂપિત પદાર્થોં કે સ્વરૂપકી શ્રદ્ધા કરને મેં, ડનકી પ્રરૂપણા કરનેમેં ઔર  
અન્તરંગ ભાવસે ડનકી સ્પર્શના કરનેમેં જિસકા ચિત્ત લવલીન હો રહા  
હે, જૈસે સર્પ અપની કંચુકી (કાંચલી)કો છોડ દિયા કરતા હે-ડસકે પરિ-  
ત્યાગ મેં ડસે કિસી ખી તરહ કા સંકોચ યા કષ્ટ નહીં હોતા હે ડસી  
તરહ મુજે ખી યહ શરીર અવશ્ય છોડને યોગ્ય હે, હસ પ્રકાર સે જિસને  
દૃઢ નિશ્ચય કર લિયા હે સમસ્ત દુઃસ્વવિશેષોંકો સહન કરતા રહે ।  
“એ સમ્પૂર્ણ દુઃસ્વાદિક પૌદ્ગલિક શરીરકે હી બાધા કરતે હે”, ધર્મકા  
અનુષ્ઠાન કરનેવાલે એસે મેરા તો યે કુછ ખી બિગાડ નહીં કર સકતે”

લેવો બેઠ ઔ. ઉત્થાન, ઉપવેશન અને પાશ્વરપરિવર્તન (પડખું ફેરવવું) વગેરે  
કાય યોગથી અશુભ વચન યોગથી તેમજ આર્તધ્યાન વગેરે યુક્ત મનોયોગથી  
જે પાપોની ઉત્પત્તિનું કારણ છે તેનાથી મુનિ પોતાની જાતને સર્વથા દૂર રાખે.

એ ઈંગિત મરણમાં ધૃતિ અને સંહનનથી યુક્ત કે જેના શુભ અધ્ય-  
વસા વર્ધનશીલ છે. અને વીતરાગ પ્રભુદ્વારા પ્રરૂપિત પદાર્થોના સ્વરૂપની  
શ્રદ્ધા કરવામાં, તેની પ્રરૂપણા કરવામાં અને અન્તરંગ ભાવથી એની સ્પર્શના  
કરવામાં જેનું ચિત્ત લવલીન બની ગયેલ છે. જેમ સર્પ પોતાની કાંચળી છોડી  
દે છે-એના પરિત્યાગથી સાપને કોઈ તરેહનું સંકટ કે સંકેત થતાં નથી.  
આજ રીતે મારે પણ આ શરીર અવશ્ય છોડવા યોગ્ય છે આ પ્રકારનો જેણે  
દૃઢ નિશ્ચય કરી લીધેલ છે તેવા મુનિ સમસ્ત દુઃખોને કોઈ પ્રકારના આકેદ વગર  
સહન કરતા રહે. “એ સંપૂર્ણ દુઃખાદિક પૌદ્ગલિક શરીરને જ બાધા કરે છે-  
ધર્મનું અનુષ્ઠાન કરવાવાળા મારા જેવાનું તો એ કોઈ પણ બગાડી શકવાના



સ્પર્શાઃ શરીરમેવાભિભવન્તિ ન તુ માં ધર્માનુષ્ઠાયિન '—મિતિ વિચિન્ત્ય સર્વદુઃસ્વેદનાસહનશીલો ભવેદિત્યાશયઃ ॥ સૂ૦ ॥ ૧૮ ॥

ઇક્ષિતમરણાધિકારઃ પ્રોક્તઃ, इदांनी पादपोपगमनमुपलक्ष्य दर्शयति—‘अयं’ इत्यादि।

મૂલમ્—અયં ચાયતરે સિયા, જો એવમણુપાલણ ॥

सव्वगायनिरोहेऽवि, ठाणाओ न विउब्भमे ॥ १९ ॥

છાયા—અયં ચાયતરઃ સ્યાદ્, ય એવમણુપાલયેત્ ॥

सर्वगात्रनिरोधेऽपि, स्थानान्न व्युद्भमेत् ॥ १९ ॥

ટીકા—‘અય’—મિત્યાદિ, અયં ચ—ચકારસ્ત્વર્થે, અણુપદલક્ષ્યમાણઃ પાદપોગમન-વિધિઃ, આયતરઃ=પૂર્વોક્તભક્તપરિજ્ઞેક્ષિતમરણાપેક્ષયા શ્રેષ્ઠતરઃ, સ્યાત્=ભવેત્, અસ્તીત્યર્થઃ એતસ્મિન્નપિ મરણે પ્રવ્રજ્યા—સંલેખનાદિકમિક્ષિતમરણવિધિવદેવ સર્વે બોધ્યમ્ । કિમેતેન પ્રકૃતે સમાયાતમિત્યાહ—‘ય એવ’—મિત્યાદિ, યઃ મુનિઃ, એવં=

इस प्रकार विचार कर वह आये हुए समस्त दुःखजन्यवेदनाओंको सहन करने का स्वभाववाला बने ॥ १८ ॥

यहां तक इंगितमरणका अधिकार कहा। अब यहांसे आगे पादपोपगमन संधारेका प्रकरण प्रारंभ होता है—‘अयं’ इत्यादि।

इस सूत्रमें “च” यह शब्द “तु” के अर्थमें आया है। यह पादपोप-गमन संधाराकी विधि, कि जो अभी कही जानेवाली है वह पूर्वमें कथित भक्तपरिज्ञा और इंगितमरणकी अपेक्षासे श्रेष्ठतर है। इस मरणमें भी प्रव्रज्याग्रहण, संलेखना आदिका धारण, यह सब विधि इंगितमरणकी विधिकी तरह ही समझना चाहिये। इस कथन से प्रकृत कथनमें क्या बात आई? इसका उत्तर देते हुए सूत्रकार कहते हैं कि—

नथी.” આ પ્રકારનો વિચાર કરી તે આવેલી સમસ્ત દુઃખજન્ય વેદનાઓને સહન કરવાના સ્વભાવવાળા બને. (૧૮)

અહિં સુધી ઇંગિત મરણનો અધિકાર કહ્યો, હવે આગળ પાદપોપગમન સંધારાના પ્રકરણનો પ્રારંભ થાય છે—‘અયં’ ઇત્યાદિ.

આ સૂત્રમાં “ચ” એ શબ્દ “તુ” ના અર્થમાં આવેલ છે. એ પાદપોપ-ગમન સંધારાની વિધિ કે જે હવે કહેવામાં આવશે તે અગાઉ કહેવામાં આવેલ ભક્તપરિજ્ઞા અને ઇંગિતમરણની અપેક્ષાથી શ્રેષ્ઠતર છે. એ મરણમાં પણ પ્રવ્રજ્યાગ્રહણ, સંલેખના વગેરેનું ધારણ, આ બધી વિધિ ઇંગિતમરણની વિધિની માફકજ સમજવી. આ કથનથી પ્રકૃત કથનમાં કઈ વાત આવી? આનો ઉત્તર આપતાં સૂત્રકાર કહે છે કે—જે મુનિ અગાઉની વિધિ પ્રમાણે પાદપોપ-

पूर्वोक्तविधिना पादपोषगमनविधिम् अनुपालयेत् स मुनिः सर्वगात्रनिरोधेऽपि=सकलशरीरव्यापारनिरोधेऽपि उत्तप्यमानशरीरो मूर्च्छन् शृगाल-गृध्र-पिपीलिकादिभिर्भक्ष्यमाणमांसशोणितः मारणान्तिकसमुद्धातप्राप्तो वा महासत्त्वतया तेनापि ततोऽप्यस्खलन् स्थानात्=द्रव्यतः-संस्तारकस्थानात्, भावतः-शुभाध्यवसायात् नापि=नैव व्युद्भ्रमेत्=चलेत्, शृगालादिभक्षितमांसशोणितोऽपि तस्मात्स्थानादन्यत्र नैव गच्छेदिति तात्पर्यम् ॥१९॥

पादपोषगमनस्योत्तमत्वं प्रदर्शयन् तद्विधिमाह-‘अयं’ इत्यादि ।

मूलम्-अयं से उत्तमे धम्मे, पुव्वट्ठाणस्स पग्गहे ॥

अचिरं पडिलेहिच्चा, विहरे चिट्ठ माहणे ॥ २० ॥

छाया—स उत्तमो धर्मः, पूर्वस्थानस्य प्रग्रहः ॥

अचिरं प्रत्युपेक्ष्य, विहरेत्तिष्ठेन्माहनः ॥२०॥

जो मुनि पूर्वोक्त विधिके अनुसार पादपोषगमनकी विधिका पालन करता है वह मुनि शारीरिक समस्त व्यापारोंके निरोधमें भी शृगाल पिपीलिका और गृध्र आदि मांसशोणितभक्षी जीवों द्वारा अपने शरीरका मांस और शोणित खाये जाने पर भी चलितशरीर नहीं होता है। शरीरमें जरा भी कष्टका अनुभव नहीं करता है। अथवा मरणान्तिकसमुद्धात प्राप्त यह भिक्षु महासत्त्व-बलविशिष्ट होनेसे ऐसी हालतमें भी उससे अचलित होता हुआ द्रव्यसे संस्तारक-स्थान से और भावसे-शुभ अध्यवसाय से विचलित नहीं होता है, अर्थात् शृगाल आदि द्वारा अपने शरीर का मांस शोणित खाये जानेपर भी यह भिक्षु समाधिस्थान से दूसरी जगह नहीं जाता ॥१९॥

पादपोषगमन में उत्तमता दिखलाते हुए सूत्रकार उसकी विधिका प्रदर्शन करते हैं-‘अयं से’ इत्यादि ।

गमननी विधितुं पालन करे छे ते मुनि पोताना शरीरना मोडथी तदन विरकत अनी सिंढ, वाघ, शीयाण वगेरे मांसरकतलक्षक जेवा द्वारा पोताना शरीरतुं मांस अने दोही भवाता छतां पणु चलित अनता नथी-जरा पणु कष्टना अनुभव करता नथी, अने मृत्यु आवतां सुधी पणु ते भिक्षु महासत्त्व-बलविशिष्ट होवाथी जेवी डालतमां पणु जेथी अचलित अनी द्रव्यथी संस्तारना स्थानथी अने लावथी शुभ अध्यवसायथी चलित थता नथी. अर्थात्-शीयाण वगेरे द्वारा पोताना शरीरना मांस-दोही भवाया छतां पणु ते भिक्षु समाधि स्थानथी भील स्थणे जता नथी. (१६)

पादपोषगमनमां उत्तमता अतावतां सूत्रकार जेनी विधि कहे छे-‘अयं से’ इत्यादि.

ટીકા—‘અય’—મિત્યાદિ, અયં પ્રત્યક્ષનિર્દિષ્ટઃ પાદપોષગમનમરણવિધિઃ સઃ ધર્મઃ, યતઃ ‘પૂર્વસ્થાનસ્ય’ ઇતિ પશ્ચમ્યર્થે ષષ્ઠી, તેન—પૂર્વસ્થાનાત્=ભક્તપરિજ્ઞેજ્ઞિત-મરણરૂપાત્ પ્રગ્રહઃ=શ્રેષ્ઠઃ, અત એવ સ ઉત્તમો ધર્મોઽસ્તિ । ઇજ્ઞિતમરણે કાયપરિપાલનાનુમતિરભિહિતા, અત્ર ચ તત્પરિસ્પન્દનમપિ ન કર્તવ્યમ્ । છિન્નમૂળપાદપોયથા ચેષ્ટાવર્જિતઃ ક્રિયાવર્જિતો દહ્યમાનશ્ચિદ્યમાનો વિષમપતિતઃ સમપતિતોઽપિ વાયૈવાવતિષ્ઠતે ન તુ તસ્માત્ સ્થાનાત્ સ્થાનાન્તરં ગચ્છતિ, તથૈવ મુનિરપિ સંતિ-

યહ પ્રત્યક્ષનિર્દિષ્ટ પાદપોગમન મરણકી વિધિ પૂર્વમેં પ્રતિપાદિત ભક્ત પરિજ્ઞા ઓર ઇંગિતમરણરૂપ પૂર્વસ્થાન સે શ્રેષ્ઠ હૈ, ઇસલિયે યહ ઉત્તમ ધર્મ હૈ । ઇંગિતમરણ મેં શરીરકા પરિપાલન ઓર ઉસમેં અનુમતિ કહી ગઈ હૈ । અથવા ઇંગિતમરણ પાલનેવાલા સાધુ અપને શરીરકી પાલનાનિમિત્ત દૂસરે સાધુઓંકો અનુમતિ દે સકતા હૈ, પરંતુ ઇસ મરણમેં તો વહ મરણકર્તા સાધુ અપને શરીરકા પરિસ્પન્દન-હલન-ચલનરૂપ ક્રિયાકા ભી સર્વથા પરિત્યાગી હો જાતા હૈ । જિસકા મૂલ છિન્ન હૈ, એસા ઉઘડા હુઆ વૃક્ષ જિસ પ્રકાર સ્વયં ચેષ્ટાસે રહિત હોતા હૈ—ક્રિયાસે શૂન્ય બન જાતા હૈ, ચાહે વહ કાટ દિયા જાય, ચાહે વહ જલા દિયા જાય, ચાહે સમસ્થાન પર પડે અથવા વિષમસ્થાન પર પડે કહોં ભી પડે જૈસાકા તૈસા પડા રહતા હૈ, નિશ્ચેષ્ટ રહતા હૈ—ઉસ સ્થાનસે એક રતીભર ભી આગે નહીં ચલતા હૈ, ઇસી પ્રકાર ઇસ મરણકા ધારક મુનિ ભી માના ગયા હૈ—યહ ભી દેહાશ્રિત સમસ્ત ક્રિયાઓંસે શૂન્ય રહતા હૈ । ઇસી વિષયકો સૂત્રકાર સ્પષ્ટ કરતે

આ પાદપોષગમન મરણની વિધિ પ્રથમ કહેવાયેલ લકટપરિજ્ઞા અને ઇંગિત મરણથી શ્રેષ્ઠ છે, આ કારણે તે ઉત્તમ ધર્મ છે. ઇંગિતમરણમાં શરીરનું પરિપાલન કરવાની અનુમતિ અપાયેલ છે. અથવા—ઇંગિતમરણ પાળવાવાળા સાધુ પોતાના શરીરની પાલનાનિમિત્ત બીજા સાધુઓને અનુમતિ આપી શકે છે, પરંતુ આ મરણમાં તો મરણ સ્વીકારનાર સાધુ પોતાના શરીરના પરિસ્પન્દ-હલન-ચલનરૂપ ક્રિયાનો પણ સંપૂર્ણ પણે પરિત્યાગી બની જાય છે. જેનાં મુળ તુટી ગયાં એવું ઉખડી ગયેલું વૃક્ષ જે રાંતે સ્વયં ચેષ્ટાથી રહિત બને છે—ક્રિયાથી શૂન્ય થઈ જાય છે.—ચાહે તેને કાપી નાખવામાં આવે ચાહે બાળી નાખવામાં આવે, ચાહે સમસ્થાન પર પડે—ચાહે વિષમસ્થાન પર પડે, ગમે ત્યાં પડે જેમને તેમ પડી રહે છે, નિશ્ચેષ્ટ રહે છે—જે સ્થાને પડ્યું હોય ત્યાંથી એક દોરો પણ આગળ વધી શકતું નથી. આજ પ્રમાણે આ મરણને ધારણ કરનાર મુનિ માનવામાં આવેલ છે. એ દેહાશ્રિત સમસ્ત ક્રિયાઓથી શૂન્ય રહે છે, આ વિષયને



ष्ठेत । एतदेव स्पष्टयति—‘अचिर’—मित्यादि, माहनः=मुनिः अचिरं=शीघ्रं प्रत्यु-  
पेक्ष्य=तत्स्थानं प्रतिलिख्य तत्र विहरेत्=पादपोपगमनमाचरेत् । पादपोपगमनप्रस-  
ङ्गेन तत्र विहारस्तद्विधिपरिपालनरूपः कथितः । अथ स्थानान्तरगमनं निषेधयितु-  
माह—‘तिष्ठे’—दिति, सर्वगात्रनिरोधेऽपि स्थानान्तरगमनान्निवृत्तः सन् छिन्नपादप-  
वत् तिष्ठेत् ॥२०॥

किञ्च—‘अचित्तं’ इत्यादि ।

मूलम्—अचित्तं तु समासज्ज, ठावए तत्थ अप्पगं ॥

वोसिरे सव्वसो कायं, न मे देहे परीसहा ॥ २१ ॥

छाया—अचित्तं तु समासाद्य, स्थापयेत्तत्राल्पकम् ॥

व्युत्सृजेत्सर्वशः कायं, न मे देहे परीषहाः ॥२१॥

हैं—इस मरणको धारण करनेकी भावनावाला मुनि शीघ्र उस स्थानकी  
प्रतिलेखना कर पादपोपगमन संथारा धारण करे । “विहरेत्” यह  
क्रियापद पादपोपगमनके प्रकरणके संबंधसे उसकी विधिका परिपालन  
करनेरूप विहारका कथन करता है, अर्थात् मुनि पादपोपगमन संथारे-  
का धारण उसकी विधिके अनुसार ही करे । इस संथारेमें मुनि एकस्थान  
से दूसरे स्थानमें नहीं जा सकता है, इस बातको सूत्रकार “चिट्ठ माहणे”  
इस सूत्रांशसे प्रदर्शित करते हैं, वह मुनि समस्त शारीरिक  
क्रियाओंके निरोध होनेसे छिन्नवृक्षकी तरह एक जगहसे दूसरी जगह  
जानेरूप क्रियाका सर्वथा परिहारी होता है ॥२०॥

और भी—‘अचित्तं तु’ इत्यादि ।

सूत्रकार स्पष्ट करे छे—आवा मरणुने धारणु करवानी भावनावाणा मुनि तात्कालिक ओ  
स्थाननी प्रतिलेखना करी पादपोपगमन संथारे धारणु करे. ‘विहरेत्’ आ क्रियापद  
पादपोपगमन प्रकरणुना संबंधथी ओनी विधितुं परिपालन :करवाइप विहारतुं  
कथन करे छे. अर्थात्—मुनि पादपोपगमन संथारे ओनी विधि अनुसार न धारणु  
करे. आ संथाराभां मुनि ओक स्थानथी ओका स्थान उपर न्छ शकता नथी  
आ वातने सूत्रकार “चिट्ठ माहणे” आ सूत्रांशथी प्रदर्शित करे छे. ते मुनि  
समस्त शारीरिक क्रियाओनो निरोध होवार्थी पडेता वृक्षनी भाइक ओक न्छाथी  
भीछ न्छाथी न्छावा इप क्रियाना सर्वथा परिहारी होय छे. (२०)

इरी पणु—‘अचित्तं तु’ इत्यादि.

टीका—‘अचित्त’—मित्यादि, स मुनिः, अचित्तम्=प्राणिशून्यं प्रासुकं स्थण्डिलं समासाद्य=प्राप्य तत्र=स्थण्डिले आत्मकं=स्वात्मानं स्थापयेत् । तत्र स्थितः परिहृतचतुर्विधाहारो गिरिरिवाऽप्रचलितो विहितप्रत्युपेक्षणादिपरिकर्मा सन् सर्वशः=सर्वभावेन कायं शरीरममत्वं व्युत्सृजेत्=परित्यजेत् । यदि तं शरीरपरीषहोपसर्गा अभिभवेयुस्तदा स चेतस्येवं चिन्तयेदित्याह—‘न मे’ इत्यादिना, मे=मम देहे=शरीरे परीषहाः तत्र समुत्पन्नाः—अनुकूल—प्रतिकूल न सन्ति, यतो देहोऽपि मदीयो नास्ति कथं तत्सम्बन्धिनः परीषहा मामभिभवेयुः, तद्विहितवेदनाया अननुभवादित्याशयः ॥२१॥

वह मुनि प्राणिशून्य-प्रासुक स्थण्डिल-स्थान प्राप्त कर वहां अपनेको स्थापित करे, अर्थात् वहां ठहर जावे। चतुर्विध आहारका परित्यागी एवं पर्वतके समान अचल वह साधु उस भूमिका संमार्जन आदि परिकर्म कर उस पर अपना घासका संधारा करे, इत्यादि समस्त पूर्वोक्त विधि कर वह साधु सर्वभावसे शरीरका ममत्व छोड़ देवे। उस समय यदि उसे परीषह और उपसर्ग उपद्रवित करते हैं, तो वह उन सबको, चित्तमें इस प्रकारके विचारसे सहन करे कि “देहे परीषहाः” ये अनुकूल और प्रतिकूल परीषह आदि देहमें हैं “न मे” मेरी आत्मामें नहीं हैं, जब देह ही मेरा नहीं है तो फिर उस संबंधी ये परीषह आदि मुझे दुःखित या उपद्रवित भी कैसे कर सकते हैं? क्योंकि इनसे उत्पन्न वेदनाका मुझे तो कोई अनुभव ही नहीं होता है ॥२१॥

ते मुनि प्राणिशून्य-प्रासुक स्थण्डिल-स्थान प्राप्त करी त्यां पोताने स्थापित करे, अर्थात् त्यां रेकाष्ठ जाय. चार प्रकारना आहारना परित्यागी अने पर्वत समान अचल ते साधुअे भूमि साक्षसूक्ष्म करी अेना उपर घासनो संधारो करे, आ रीते अधी विधि पूरुं कर्या पछी ते साधु सर्वभावथी शरीरनुं ममत्व छोडी हे. अे समये कदाच तेने परिषड् अने उपसर्ग उपद्रव करे तो तेने चित्तमां आ प्रकारना विचारथी सहन करे के ‘देहे परिषहा’ अ अनुकूल अने प्रतिकूल परिषड् वगेरे देहमां छे. “न मे” मारी आत्मामां नथी, न्यारे आ देह न मारे नथी तो पछी ते संबंधी आ परिषड् वगेरे अने उपद्रवित अथवा दुःखी पणु केम करी शके? केमके आनाथी उत्पन्न वेदनाओ अने तो कोर्ध अनुभव न नथी थतो. (२१)

તે પરીષદાઃ કિયત્કાલમધ્યાસનીયાઃ? इति शिष्यजिज्ञासायामाह—‘जावज्जीवं’ इत्यादि ।

મૂલમ્—જાવજ્જીવં પરીસદા, ઉવસગ્ગા इति संख्या ॥

સંવુડે દેહભેયાણ, ઇયપન્નેહિયાસણ ॥ ૨૨ ॥

છાયા—યાવજ્જીવં પરીષદા,—ઉપસર્ગા इति संख्याय ॥

સંવૃતો દેહભેદાય, इतिप्रज्ञोऽध्यासयेत् ॥૨૨॥

ટીકા—‘યાવજ્જીવ’—મિત્યાદિ, પરીષદા ઉપસર્ગાશ્ચ યાવજ્જીવં=જીવનપર્યન્તં યથા સ્યાત્તથા સહનીયાઃ સન્તિ, इति=एवं संख्याय=निश्चित्य स मुनिः देहभेदाय =कायपरित्यागार्थं संवृतः=कायादिसकलव्यापारनिवृत्तः इतिप्रज्ञः=पादपोपगमनसमुचितविधिपरिज्ञानकुशलः, अध्यासयेत्=सर्वे परीषदोपसर्गादिकमुपनतमधिसहेत॥ २२॥

एतादृशं भिक्षुमुपलक्ष्य राजादिस्तं यदि निमन्त्रयेत्तन्निषेधायाह—‘ भेउरेसु ’ इत्यादि ।

સાધુકો યે પરીષદ કિતને સમય તક સહન કરના ચાહિયે ? इस प्रकारकी जिज्ञासामें सूत्रकार कहते हैं—“ जावज्जीवं ” इत्यादि ।

“ जिस तरहसे बने उस तरहसे परीषद और उपसर्ग साधुको जीवनपर्यन्त सहन करनेयोग्य हैं ” ऐसा विचार कर मुनि शरीरको छोड़नेके लिये कायादिके सकल व्यापारोंसे निवृत्त होता हुआ, तथा पादपोपगमन संधारेकी उचित विधिके परिज्ञानमें कुशल बना हुआ आये हुए परीषद और उपसर्गादिकोंको सहन करे ॥ २२ ॥

ऐसे विशिष्ट तपस्वी मुनिको देख कर यदि राजा वगैरह उसे आमंत्रित करे तो इसके निषेधके लिये कहते हैं—‘ भेउरेसु ’ इत्यादि ।

સાધુએ આવા પરિષદ કેટલા સમય સુધી સહન કરવો જોઈએ? આ પ્રકારની જિજ્ઞાસામાં સૂત્રકાર કહે છે—‘ જાવજ્જીવં ’ ઇત્યાદિ.

“ જ્યાંસુધી એ ત્યાંસુધી પરિષદ અને ઉપસર્ગ સાધુએ જેમ અને તેમ સહન કરવા જરૂરી છે ” આવા વિચાર કરી તે મુનિ શરીરને છોડવા માટે કાયાદિકના દરેક વ્યવસાયોથી નિવૃત્ત થતા, અને પાદપોપગમન સંધારાની ઉચિત વિધિના પરિજ્ઞાનમાં જ લવલીન બનતા જે કાંઈ પરિષદ અને ઉપસર્ગાદિક આવે તેને સહન કરે. (૨૨)

એવા વિશિષ્ટ તપસ્વી મુનિને જોઈ કદાચ રાજા વગેરે એને આમંત્રણ આપે તો એના નિષેધ માટે સૂત્રકાર કહે છે—‘ ભેઊરેસુ ’ ઇત્યાદિ.



मूलम्—भेउरेसु न रज्जिज्जा, कामेसु बहुतरेसु वि ॥

इच्छालोभं न सेविज्जा, ध्रुववर्णं सपेहिया ॥ २३ ॥

छाया—भिदुरेषु न रज्जेत, कामेषु बहुतरेष्वपि ॥

इच्छालोभं न सेवेत, ध्रुववर्णं संप्रेक्ष्य ॥ २३ ॥

टीका—‘भिदुरेष्वि’—त्यादि, स भिक्षुः=कर्मनिर्जरणपरः बहुतरेष्वपि=बहुविधेष्वपि भिदुरेषु=क्षणभङ्गुरेषु कामेषु=शब्दादिकामगुणेषु न रज्जेत=न रागमुपगच्छेत्, राजा राजद्विप्रदानेनापि यद्युपनिमन्त्र्य प्रलोभयेत्तथाऽपि तत्र न संमूर्च्छितो भवेदित्यभिप्रायः । किं च—स ध्रुववर्णं,=ध्रुवश्च=शाश्वतश्चाऽसौ वर्णः=संयमो मोक्षो वा ध्रुववर्णस्तं मोक्षं तत्साधनं च संप्रेक्ष्य=समालोच्य इच्छालोभम्=इच्छापूर्वश्चासौ लोभः=इच्छालोभस्तम् इन्द्रादिसमृद्धिप्राप्त्यभिलाषं न सेवेत=“इहलोगासंसप्पओगे १ परलोगासंसप्पओगे २ जीवियासंसप्पओगे मरणासंसप्पओगे ४ कामभोगासंसप्पओगे ५ ” इत्यादिभगवद्वचनादिहलोकपरलोकादिवाच्छां निषेधयेदित्याशयः ॥ २३ ॥

कर्मोंकी निर्जरा करनेमें तत्पर वह भिक्षु अनेक प्रकारके भी क्षण-भंगुर ऐसे शब्दादिक कामगुणों में रागी न बने, अतः कोई राजा उस मुनिको राजऋद्धिके प्रदान करनेका प्रलोभन देकर भी यदि अपने यहां आमंत्रित करता है तो भी वह मुनि उसमें मूर्च्छित न बने। संयम अथवा मोक्षरूप ध्रुववर्णका एवं उसके साधनोंका विचार कर वह इच्छारूप लोभ-इन्द्रादिककी ऋद्धिकी प्राप्तिरूप अभिलाषा—का सेवन न करे—उसके वशवर्ती न बने। अपि तु—“इह लोकासंसप्पओगे १, परलोकासंसप्पओगे २, जीवियासंसप्पओगे ३, मरणासंसप्पओगे ४, कामभोगासंसप्पओगे ५” इत्यादि भगवान्‌के वचनसे इस लोक और परलोक आदिकी वाञ्छाका सूत्र-कारने उसके लिये निषेध किया है, अर्थात् वह परलोक आदिकी कभी भी वाञ्छा न करे ॥ २३ ॥

कर्मोंनी निर्जरा करवासां तत्पर ओवा ते भिक्षु अनेक प्रकारना क्षणुल-भुर ओवा शब्दोंनी लक्षणमां न इसाय. कहाय राजा ते साधुने राजऋद्धितुं पद आपवानुं प्रलोभन आपी आमंत्रणु आपे तो पणु ते साधु आवा प्रलोभनमां न इसाय. संयमद्वारा मोक्षरूप ध्रुववर्णुने अने तेना साधनोना विचार करी धृष्टिअपी लोभ-इन्द्रादिकनी ऋद्धिनी प्राप्तिरूप अभिलाषा-नुं सेवन न करे—ओनाथी न ललयाय, अपितु—“इहलोगासंसप्पओगे १, परलोगासंसप्पओगे २, जीवियासंसप्पओगे ३, मरणासंसप्पओगे ४, कामभोगासंसप्पओगे ५” इत्यादि भगवान्‌ना वचनथी आ लोक अने परलोक आदिनी वाञ्छनानो सूत्रकारे अने निषेध करैल छे, अर्थात् ते परलोक आदिनी पणु कही धृष्टि न करे. (२३)

કિં ચાન્યદપ્યાહ—‘સાસર્ણિ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—સાસર્ણિ નિમંતિજ્ઞા, દિવ્યમાયં ન સદ્દહે ॥

તં પડિબુજ્ઞ માહણે, સર્વં નૂમં વિદૂણિયા ॥૨૪॥

છાયા—શાશ્વતૈર્નિમન્ત્રયેદ્, દિવ્યમાયાં ન શ્રદ્ધીત ॥

તત્પતિબુદ્ધયસ્વ માહનઃ, સર્વં નૂમં વિદૂય ॥ ૨૪ ॥

ટીકા—‘શાશ્વતૈ’—રિત્યાદિ, યદિ રાજાદિસ્તં ભિક્ષું શાશ્વતૈઃ=યાવજ્જીવનયાત્રાયા-પનયોગ્યૈઃ, બહુદાનાદિનાઽપ્યપરિહીયમાણૈરર્થૈર્નિમન્ત્રયેત્ એવં દેવાદિસ્તપઃ સ્વખંડિયિતું કૌતૂહલાદિના, વિરોધેચ્છયા દિવ્યદ્વિપ્રલોભનેન વા નિમન્ત્રયેત્તદા તાં દિવ્યમાયાં દેવાદિવિહિતપ્રપન્ચરૂપાં સન શ્રદ્ધીત=ન તત્ર શ્રદ્ધાં કુર્યાત્, તત્ર ગૃહ્ણી ભૂત્વા ન તપઃ સ્વખંડયેદિત્યભિપ્રાયઃ । ‘યદર્થ ધનાદિકમન્વિષ્યતે તત્ શરીરમેવાઽશાશ્વતમ્’ ઇતિ

और भी सूत्रकार प्रकट करते हैं—‘सासर्णि’ इत्यादि ।

यदि राजा आदि उस भिक्षुके लिये उसके जीवनपर्यन्त, कि जिससे उसकी जीवनयात्राका निर्वाह अच्छी तरहसे हो सके, तथा जो दान करने पर भी कभी कम न हो सके इतने द्रव्य देनेका प्रलोभन दे कर उसे आमंत्रित करे, अथवा कोई देव आदि उसके तपको खंडित करनेके लिये कौतूहल से, विरोध की इच्छासे, अथवा [दिव्य-ऋद्धिके प्रलोभनसे उसे आमंत्रित करे तो वह मुनि उस राजप्रदत्त प्रलोभनको एवं देवादिकृत प्रपंचरूप उस दिव्य चमत्कारको श्रद्धाकी दृष्टिसे न देखे । उसमें लुब्ध बन कर वह अपने तपको खण्डित न करे । इस प्रकार विचार कर हे माहन ! हे श्रमण ! तुम समस्त अष्ट कर्मों के दूर करनेमें, उस शाश्वत-यावज्जीव टिकनेवाले अर्थको एवं दिव्य मायाको

વધુમાં આ સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે—‘સાસર્ણિ’ ઇત્યાદિ.

કોઈ રાજા વગેરે એ ભિક્ષુ માટે એના જીવનપર્યંતની જેનાથી એની જીવન યાત્રાનો નિર્વાહ સારી રીતે થઈ શકે, તથા દાન કરવા છતાં પણ જે કદી ઓછું ન થઈ શકે એટલું દ્રવ્ય દેવાનું પ્રલોભન દઈ એને આમંત્રિત કરે, અથવા કોઈ દેવ વગેરે એના તપને ખંડિત કરવા માટે કુતુહલથી, વિરોધની ઇચ્છાથી અથવા દિવ્ય રિદ્ધિના પ્રલોભનથી એને આમંત્રણ આપે ત્યારે એ મુનિ આવા રાજ તરફના પ્રલોભનને, તથા દેવ આદિના પ્રપંચરૂપ એવા દિવ્ય ચમત્કારને શ્રદ્ધાની દ્રષ્ટીથી ન જુએ, એમાં લોભુપ બની તે પાતાના તપને ખંડિત ન કરે. આ પ્રકારનો વિચાર કરી હે માહન ! —હે શ્રમણ ! તમે સમસ્ત આઠ કર્મોને દૂર કરવામાં તે શાશ્વત જીવજીવ ટકનાર અર્થને અને દિવ્યમાયાને અનર્થકારક સમજો.

વિચાર્ય 'માહણે' માહનઃ 'મા હણ મા હણ' इत्युपदेशदायको मुनिः तत्=राजादिनिमन्त्रितमर्थं देवर्द्धिं च प्रतिबुध्य=आत्मकल्याणप्रतिकूलतया विज्ञाय 'सर्वं नूम्' सर्वं नूम्=ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्म 'विहूणिया' विधूनयेत्=सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्र्येण दूरी-  
कुर्यात् । 'कर्मनिर्जरार्थमहं निष्क्रान्तः' इति विचार्य मुनिः कर्मबन्धनहेतुं राजादि-  
निमन्त्रितमर्थीदिकं ज्ञ-परिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यान-परिज्ञया परिहरेत्, न तु तत्र  
रज्येदिति भावः । यद्वा- 'पडिबुज्झ' 'विहूणिया' इत्यनयोः- 'प्रतिबुध्यस्व' 'विधूय'  
इतिच्छाया, तत्पक्षे-हे माहन=हे मुने ! इदं 'सर्वं नूम्' सर्वं प्रपञ्चं विधूय-निःशेषतः  
परित्यज्य 'तं' तत्=आत्मकल्याणहेतुं रत्नत्रयं प्रतिबुध्यस्व=विजानीहि, तत्समारा-  
धने तत्परो भवेदिति भावः ॥ २४ ॥

अन्यदप्याह- 'सर्व्वट्टેહિ' इत्यादि ।

अनर्थकर समझो । तात्पर्य यह कि-शाश्वत अर्थ देनेका प्रलोभन देकर  
निमंत्रण-बुलानेकी प्रेरणा-करे उसमें, अथवा देवादिकोंकी मायामें प्रीति  
एवं श्रद्धारहित हुआ मुनि 'यह समस्त, मोक्ष और उसके साधनोंसे प्रति-  
कूल है' ऐसा विचार कर उस शाश्वत अर्थमें एवं दिव्य मायामें मूर्च्छित  
न बने । दिव्य मायाका निरीक्षणकर वह मुनि अपने चित्तमें इस प्रकारसे  
विचार करे- "यह सब मेरी तपस्याके प्रतिकूल है, और मेरे तपका खण्डन  
करनेके लिये यह सब आयोजन किया गया है । यदि ऐसी बात न हो तो  
पुरुषोंको दुर्लभ यह बहुत प्रकारका वित्त-द्रव्य ऐसे क्षेत्र, काल, और  
भाव आदिमें कैसे सुलभ हो सकता है । इस लिये मालूम होता है कि  
यह समस्त मृगतृष्णारूप ही है-आभास मात्र है अर्थात् मूलमें कुछ  
मिलता जुलता नहीं है " ॥ २४ ॥

और भी सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं- 'सर्व्वટ્ટેહિ' इत्यादि ।

તાત્પર્ય એ છે કે-રાજામાં ઉંચી પદવી આપી અર્થ લોભનું પ્રલોભન દઈ નિમંત્રણ કરે,  
તેમાં અથવા દેવાદિકની માયામાં પ્રીતિ અને શ્રદ્ધા ન રાખનાર મુનિ "આ બધું મોક્ષ  
તથા એનાં સાધનોથી વિરૂદ્ધનું છે" એવો વિચાર કરીને એવા અર્થલોભ  
અને દિવ્ય માયાના પ્રલોભનમાં ન ફસાય. દિવ્ય માયાનું નિરીક્ષણ કરી તે  
મુનિ પોતાના મનમાં એ પ્રકારનો વિચાર કરે કે આ બધું મારી તપસ્યાથી  
પ્રતિકૂળ છે, અને મારા તપનું ખંડન કરાવવા માટે આ માયાબળ ઉભી કરાઈ  
રહેલ છે, બે એમ ન હોય તો એક સાથે આટલું બધું કઈ રીતે બની શકે ?  
આથી ચોક્કસ છે કે આ બધું મૃગજળસમાન છે-આભાસમાત્ર છે-વાસ્તવમાં  
કાંઈ પણ નથી. (૨૪)

વધુમાં સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરે છે- 'સર્વવટ્ટેહિ' ઇત્યાદિ.



मूलम्—सर्ववद्वेहिं अमुच्छिष्ट, आउकालस्स पारम् ॥

तितिक्ष्वं परमं नच्चा, विमोहन्नयरं हियं ॥ २५ ॥

छामा—सर्वार्थैरमूर्च्छितः, आयुःकालस्य पारगः ॥

तितिक्षां परमं ज्ञात्वा, विमोहान्यतरं हितम् ॥ २५ ॥

टीका—‘सर्वार्थैः’—रित्यादि, स सर्वार्थैः—सर्वे च तेऽर्थाः सर्वार्थास्तैः सर्वार्थैः पञ्चविधैः शब्दादिकामगुणैस्तत्साधकधनसमूहैर्वा अमूर्च्छितः=अगृह्यः, आयुःकालस्य=यावत्कालमायुः संतिष्ठते स आयुःकालस्तस्य ‘पारगः’—पारम्=आयुष्कपुद्गलानां यावन्नाशं गच्छतीति पारगः=पूर्वोक्तविधिना पादपोपगमनपरः परिवर्द्धितकल्याणाध्यवसायवान् निजायुःकालस्यान्तगामी स्यात् । इत्थं पादपोपगमनप्रकारमभिसमाप्य साम्प्रतं सकलमरणानां क्षेत्र—काल-पुरुषावस्था-भेदात् समानतामुपसंहरन्नाह—‘तितिक्षा’—मित्यादि, सः सर्वस्मिन्नपि पूर्वोक्तमरणप्रकारे ति-

समस्त अर्थस्वरूप पांच इन्द्रियों के पांच प्रकारके शब्दादिक कामगुणोंसे, अथवा उनके साधक द्रव्यसमुदायसे अमूर्च्छित, एवं अपनी आयुके समयका पारगामी, जितने काल तक आयु रहती है वह आयु-काल है, तथा आयुके पुद्गलोंके विनाशका नाम पार है । पूर्वोक्त विधि से पादपोपगमनमें तत्पर तथा परिवर्द्धित कल्याणके अध्यवसायवाला मुनि अपनी आयुके कालका अन्तगामी होता है । इस प्रकार सूत्रकार पादपोपगमन संधारेका कथन कर अब समस्त मरणोंमें क्षेत्र, काल और पुरुष अवस्थाके भेदसे समानता का उपसंहार करते हुए ‘तितिक्ष्वं’ इत्यादि सूत्रांश कहते हैं—वह मुनि पूर्वोक्त इन भक्तपरिज्ञा आदि मरणोंके प्रकार-भेदमें अनुकूल और प्रतिकूल परीषह एवं उपसर्गों से

समस्त अर्थस्वरूप पांच इन्द्रियोना पांच प्रकारना शब्दादिक कामगु-  
णोथी, अथवा योना साधक द्रव्यसमुदायथी विरक्त, यने पोतानी आयुना  
समयने लक्षणार, जेटला काण सुधी आयु रहे छे ते आयुकाण छे यने आयुना  
पुद्गलोना विनाशनुं नाम पार छे. आगण कडेवाभां आवेल विधिथी पादपो-  
पगमनभां तत्पर, तथा परिवर्द्धित कल्याणुना अध्यवसायवाणा मुनि पोताना  
अंतकाणना लक्षणार डोय छे. आ प्रकारे पादपोपगमन संधारानुं कथन करी  
सूत्रकार डवे समस्त मरणोभां क्षेत्र, काण यने पुरुष-अवस्थाना लेहथी समा-  
नतानो उपसंहार करतां “तितिक्ष्वं” इत्यादि सूत्रांश कडे छे—ते मुनि आगण  
कडेवाभां आवेल भक्तपरिज्ञा आदि मरणोना प्रकार-लेहभां अनुकूल यने

તિશ્વામ્=અનુકૂલ-પ્રતિકૂલ-પરીષહોપસર્ગાભિભવજન્યદુઃસ્વસહનરૂપાં પરમમ્=ઉત્કૃષ્ટં  
 યથા સ્યાત્તથા જ્ઞાત્વા ' વિમોહાન્યતરં ' વિગતો મોહોઽજ્ઞાનં યેષુ તાનિ વિમોહાનિ,  
 તેષાં=પૂર્વોક્તાનાં ભક્તપરિજ્ઞેઙ્ગિતમરણપાદપોપગમનાનામ્ અન્યતરત્=ત્રયાણામન્યતમં  
 કિમપ્યેકં હિતં=કર્મનિર્જરાયાઃ સર્વત્ર સમસમ્પાદકતયા સમ્યગિષ્ટં વિદધીત । ' ઇતિ  
 બ્રવીમી '—ત્યસ્યાર્થસ્તુ પ્રથમાધ્યયનોક્તપ્રકારેણાઽવગન્તવ્ય ઇતિ ॥ સૂ. ૨૫ ॥

અધ્યયનવિષયોપસંહારઃ—

અસ્મિન્નધ્યયને લસન્તિ ચ વિમોક્ષાઽઘ્યાષ્ટમે યેઽસ્થિલા—

સ્તે સૂચ્યન્ત ઇમે ક્રમેણ વિષયાઃ સંક્ષેપતસ્તાન્ શૃણુ ॥

ઉદ્દેશે પ્રથમે ન્યરૂપિ વિરહઃ પાપણ્ડિકૈઃ સજ્જતે—

સ્તેષાં સમ્મતિહાનપૂર્વકમથ ત્યાગસ્તપો વિદ્વિષાસ્ ॥ ૧ ॥

ઉત્પન્ન દુઃસ્વોંકો સહન કરનેરૂપ તિતિશ્વાકો સર્વોત્તમ જાનકર પૂર્વોક્ત ઇન  
 ભક્તપરિજ્ઞા, ઇજ્ઞિતમરણ, ઓર પાદપોપગમન, ઇન તીનોંમેં સે કિસી એક  
 કો હિતકારી સમજ કર ધારણ કરે । ઇન તીનોંમેં કર્મોંકો નિર્જરા સર્વત્ર  
 એકસી હૈ । “ ઇતિ બ્રવીમિ ” ઇન પદોંકા અર્થ પ્રથમ અધ્યયનમેં કથિત  
 પ્રકારસે જાન લેના ચાહિયે ॥૨૫॥

હસ અધ્યયનકે વિષયોંકા ઉપસંહાર પદ્યોંસે કરતે હૈ—

હસ વિમોક્ષ અધ્યયન બીચમેં આઠ બડે ઉદ્દેશ દિયે ।

ઉનમેં વર્ણિત વિષયોંકા હમ થોડેમેં વર્ણન કિયે ॥

પ્રથમ ઉદ્દેશમેં—પહિલે—મેં પાલંડી જનકી સંગતિકા પરિહાર કહા,

ઉન્હેં ન સંમતિ દેના કુછ ભી તપ ભી ઉનકા હેય કહા ॥ ૧ ॥

પ્રતિકૂળ પરીષદ અને ઉપસર્ગોંથી આવેલા દુઃખોને સહન કરવારૂપ તિતિશ્વાને  
 સર્વોત્તમ જાણી અગાઉ કહેવાયેલ એ ભક્તપરિજ્ઞા, ઇજ્ઞિતમરણ, અને પાદ-  
 પોપગમન, ત્રણુમાંથી કોઈ એકને હિતકારી સમજ ધારણ કરે. આ ત્રણુમાં  
 કર્મોંની નિર્જરા સર્વત્ર એકસરખી છે. “ ઇતિ બ્રવીમિ ” આ પદોંનો અર્થ  
 અગાઉના અધ્યયનમાં કહેવામાં આવેલ પ્રકાર જેવો સમજવો જોઈએ. (૨૫)

આ અધ્યયનના વિષયોંનો ઉપસંહાર કરે છે

આ વિમોક્ષ નામના પ્રકરણમાં આઠ મોટા ઉદ્દેશ ભરેલા છે. એમાં  
 વર્ણવવામાં આવેલ વિષયોંનું અહિં સંક્ષિપ્ત વર્ણન કરેલ છે—

પ્રથમ ઉદ્દેશમાં—પાખંડી માણસોની સંગતનો ત્યાગ, આવા તપ વગરના માણ-  
 સોને કોઈ પ્રકારની સંમતિ ન આપવી. (૧)

શાસ્ત્રાકલ્પ્યમુપેતમન્નવસનં ત્યાજ્યં દ્વિતીયે તથા  
 આહારાદિનિષેધને ગૃહપતે રોષોપશાન્ત્યૈ વિધિઃ ॥  
 શૈત્યેનોત્થિતવેપથૌ સ્મરશરવ્યાઘાતશઙ્કા મુનૌ  
 પારાવારચલચરજ્ઞનિચયે ક્ષિપ્તા તૃતીયેઽસતામ્ ॥ ૨ ॥  
 કામાસક્તિવશોપયાતલલનાઽભ્યાસાન્નિરેતું મુને,—  
 રપ્રૌઢસ્ય મૃતિર્દ્વિધા નિગદિતોદેશે તુરીયે તથા ॥

દ્વિતીય ઉદ્દેશમે—શાસ્ત્રનિષિદ્ધ અન્નવસનાદિક મુનિજનકો હૈ કલ્પ્ય નહીં,  
 उनका दाता नहीं लेने पर हो जावे जो रुष्ट कहीं।  
 મુનિવર નહીં લેનેકા કારણ પ્રકટ ખુલાશા બતલાવે,  
 રોષશમનકા યહ વિધાન ઉદ્દેશ દૂસરા દરશાવે ॥ ૨ ॥  
 તૃતીય ઉદ્દેશમે—કંપિત મુનિવરકે શરીરકો, શીતાદિક કારણવશસે,  
 देख बने शंकित गृहस्थका मन मनोजकी जागृतिसे।  
 શીતાદિક મમ્મ ગાત્રકંપને કારણ હૈં ન મનોજવિકાર,  
 इस प्रकार कह मुनिवर उसकी शंकाका कर दे परिहार ॥ ३ ॥  
 ચતુર્થ ઉદ્દેશમે—કામાધીન-ચિત્ત લલનાજન કે સમીપસે જાનેમેં,  
 जो असमर्थ बने वह मुनिवर संयम भार निभानेमें।  
 ધરે ભાવના-વૈહાયસ અરુ ગાર્ધપૃષ્ઠ યે મરણ ખલે,  
 साथे वह तत्काल न विलमें पर संयमसे नहीं टले ॥ ४ ॥

બીજા ઉદ્દેશમાં—શાસ્ત્રમાં જેનો નિષેધ કરવામાં આવેલ છે તેવા અન્ન, વસ્ત્રા-  
 દિનો મુનિએ ગ્રહણ ન કરવો જોઈએ. આપવા ઈચ્છનાર ન લેવાથી ગુસ્સે  
 થાય તો મુનિએ ન લેવાનું કારણ ખુલાસાથી તેને સમજાવી તેના ગુસ્સાનું  
 શમન કરવું જોઈએ, તે બીજા ઉદ્દેશમાં બતાવેલ છે. (૨)

ત્રીજા ઉદ્દેશમાં—ઠંડી વગેરેના કારણથી કંપિત મુનિવરના શરીરને જોઈ શંકા-  
 શીલ બનેલ ગૃહસ્થની શંકાનું સમાધાન યોગ્ય સમજણથી કરવું જોઈએ  
 આ ત્રીજા ઉદ્દેશમાં બતાવાયું છે. (૩)

ચોથા ઉદ્દેશમાં—કામને આધીન બનેલ લલના (સ્ત્રી) જતની સામે જવામાં અસ-  
 મર્થ બનેલા મુનિજન સંયમને જાળવવા વૈહાયસ અને ગાર્ધપૃષ્ઠ, આ  
 મરણને વિના વિલાંબે સ્વીકારી લે, પરંતુ સંયમથી લેશમાત્ર હટે નહિ  
 એવું ચોથા ઉદ્દેશમાં કહેવાયેલ છે. (૪)



પૂર્વાજ્ઞીકૃતસંયમાક્ષમમુને-ગ્લાનાઘવસ્થાવશાત્ ,  
 સાધીયો મરણં વિધાનસહિતં પ્રોક્તં તથા પશ્ચમે ॥ ૩ ॥  
 એકલસ્ય ચ ભાવનેન મરણં ષ્ઠે પ્રશસ્તં કૃતં,  
 ભિક્ષુણાં પ્રતિમા મુનેરભિહિતા પાલ્યૈકમાસાદિકા ॥  
 સામર્થ્યં ગલિતે તનોર્મુનિવરૈરાહારસંભ્રેષણં,  
 કૃત્વા શાસ્ત્રવિધાનતસ્તરુસમં સ્થેયં તથા સપ્તમે ॥ ૪ ॥  
 ચારિત્રં ચરતો મુનેઃ કલયતોઽશ્વત્થા પરં સીદતો,  
 દેહત્યાગવિધિસ્ત્રિધા નિગદિતઃ સાફલ્યનીત્યૈ જનેઃ ॥

પંચમ ઉદ્દેશમે—ગ્લાનાદિક હાલતમે મુનિવર સ્વીકૃત સંયમ પાલનમે,  
 હો અસમર્થ સવિધિ વહ ધારે ભક્તપરિજ્ઞા ઉસ ક્ષણમે ॥ ૫ ॥  
 ષ્ઠ ઉદ્દેશમે—મુનિવરકા એકત્વ ભાવનાસે હૈ મરણ પ્રશસ્ત કહા,  
 રહે સુરક્ષિત સંયમ-ધન યહ નિર્મલ મનમે ભાવ ગહા ॥ ૬ ॥  
 સપ્તમ ઉદ્દેશમે—એકમાસ આદિક મર્યાદા વાલી મુનિકી પ્રતિમાઈ,  
 મુનિવર પાલે ટરે ન ઉનસે ચાહે આયેં બાધાઈ.  
 સંયમ ભાર વહન કરનેમે શક્તિહીન તન જબ જાને,  
 ષ્ઠ અષ્ટમાદિક તપક્રમસે ભોજન કૃશ કરના ઠાને.  
 શાસ્ત્રવિહિત મર્યાદા માફિક તરુસમ બન સંથાર ધરે,  
 દેહાશ્રિત સમસ્ત ક્રિયાઓંકા વહ મુનિ પરિહાર કરે ॥ ૭ ॥  
 અષ્ટમ ઉદ્દેશમે—ચિરપાલિતચારિત્ર-સાધુકી સંયમ ક્રિયા ન સધતી હો,  
 પાંચમા ઉદ્દેશમાં—રોગગ્રસ્ત હાલતમાં, સંયમ પાળવામાં અસમર્થ બની જાય  
 તેવા મુનિએ પોતે સ્વીકારેલ અભિચ્છેડના પાલન માટે ભક્તપરિજ્ઞા નામનું  
 મરણ સ્વીકારવું જોઈએ, તેમ બતાવેલ છે. (૫)  
 છઠ્ઠા ઉદ્દેશમાં—એકત્વભાવનાવાળું મુનિનું મરણ પ્રશસ્ત કહેવામાં આવેલ  
 છે સંયમ ધનનું નિર્મળ મનથી પાલન કરવાનો ભાવ સમજાવવામાં  
 આવેલ છે. (૬)  
 સાતમા ઉદ્દેશમાં—એક માસ કે તેથી વધારાની મર્યાદાવાળું મરણ મુનિજન  
 પાળે, ભલે ગમે તેટલી મુસીબતો સહેવી પડે છતાં અને શક્તિહીન બની  
 જાય તે છતાં સંયમથી જરા પણ વિચલિત ન બને, છટું-અક્રમ આદિ  
 તપક્રમથી આહારાદિક ઓછાં કરે, અને શાસ્ત્રની મર્યાદામાં બતાવ્યા પ્રમાણે  
 સંથારો કરી દેહની સમસ્ત ક્રિયાઓને મુનિજન ત્યાગી દે. (૭)  
 આઠમા ઉદ્દેશમાં—ચિરકાળથી ચારિત્રસંપન્ન સાધુ વૃદ્ધાવસ્થા કે રોગના કારણે

ઉદ્દેશેઽષ્ટમ इत्यवोचि मुनिभिश्चारित्ररत्नैषिभिः,  
 सारो ग्राह्यतरोऽनिशं विजयतां तापोपशान्त्यै नृणाम् ॥ ५ ॥ इति ।  
 ॥ अष्टमाध्ययनस्याष्टम उद्देशः समाप्तः ॥ ८-८ ॥

॥ इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्गुरु-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित-  
 कलापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनૈકગ્રન્થનિર્માપક-વાદિમાનમર્દક-શાહુ-  
 છત્રપતિ-કોલહાપુરરાજપ્રદત્ત-“ જૈનશાસ્ત્રાચાર્ય ”-પદભૂષિત-  
 કોલહાપુરરાજગુરુ-બાલબ્રહ્મચારિ-જૈનાચાર્ય-જૈનધર્મદિવાકર-  
 પૂજ્ય-શ્રી ઘાસીલાલ-વ્રતિવિરચિતાયામ્ આચારાઙ્ગસૂત્ર-  
 સ્યાઽઽચારચિન્તામણિટીકાયાં વિમોક્ષાખ્યમષ્ટમ-  
 મધ્યયનં સમ્પૂર્ણમ્ ॥ ૮ ॥

બલવિહીન હોનેસે હસસે, ઉરમેં પીડા જગતી હો ।  
 તો વહ સાધુ ત્રિવિધ મરણમેંસે કોઈ સંથાર ધરે,  
 જન્મ સફલ હો જાયે ઉસકા ભવર કા સંકલેશ ટરે ॥ ૮ ॥

॥ આઠવેં અધ્યયનકા આઠવાં ઉદ્દેશઃ સમાપ્તઃ ॥ ૮-૮ ॥

यह आचाराङ्गसूत्रके विमोक्ष नामके आठवें अध्ययनकी आचार-  
 चिन्तामणि-टीकाका हिन्दीभाषानुवाद सम्पूर्ण ॥ ८ ॥

અશક્ત બની ગયેલ હોય, અને તેનું શરીર પીડાથી રીખાતું હોય ત્યારે  
 તે સાધુ ત્રણ મરણમાંથી કોઈ એક મરણ માટે સંથારે કરે અને  
 પોતાના જન્મને સફળ બનાવી ભવના ફેરાને ટાળી દે. (૮)  
 આઠમા અધ્યયનનો આઠમો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૮-૮ ॥

આ આચારાંગસૂત્રના વિમોક્ષ નામના આઠમા અધ્યયનની આચાર-  
 ચિન્તામણિ-ટીકાનો ગુજરાતી અનુવાદ સંપૂર્ણ ॥ ૮ ॥

॥ अथोपधानश्रुताख्यस्य नवमाध्ययनस्य प्रथम उद्देशः ॥

प्रागुक्ताध्ययनाष्टके योऽर्थः प्रतिबोधितः, स वीरवर्धमानस्वामिना भगवताऽपि स्वयमाचरितस्तस्मात् साधुभिरपि तथैवाचरणीयमिति बोधयितुमिदमुपधानश्रुताख्यमध्ययनं प्रारभ्यते-उपधानस्य श्रुतस्य च प्रतिबोधकत्वादिदमध्ययनमुपधानश्रुतमुच्यते । उप=सामीप्येन धीयते=व्यवस्थाप्यते इत्युपधानं तद् द्रव्यभावभेदाद् द्विविधम्, तत्र द्रव्योपधानं शय्यादौ शिरसः समालम्बनवस्तु, भावोपधानं तु-सप्तदशविधसंयमः, स बाह्याभ्यन्तरं तपश्च, तद्धि चारित्रपरिणामरूपस्य भावस्य स्थैर्यं

॥ नववें अध्ययनका प्रथम उद्देश ॥

पहिले कहे गये आठ अध्ययनोंमें जो विषय समझाया गया है, वह वीर-वर्धमान प्रभुने स्वयं आचरित किया है, इस लिये साधुजनोंको भी वह वैसा ही आचरित करना चाहिये, इस बातको समझानेके लिये यह उपधानश्रुत नामक अध्ययन प्रारंभ किया जाता है । उपधान और श्रुतका प्रतिबोधक होनेसे यह अध्ययन भी इस नामसे कहा गया है । जो स्वयं की उपस्थितिमें किया जाता है उसका नाम उपधान है । यह द्रव्य और भावके भेदसे दो प्रकारका है । शय्या आदिमें शिरका अवलम्बनरूप तकिया आदि द्रव्य-उपधान है, इसका यहां अधिकार नहीं है । सत्रह प्रकारका संयम, एवं बाह्य और आभ्यन्तर तप, ये भाव-उपधान है । यह भावरूप उपधान चारित्ररूप भावमें स्थिरताका उत्पादक होता है ।

नवमा अध्ययनने। પહેલો ઉદ્દેશ

પહેલાં કહેવાયેલા આઠ અધ્યયનોમાં જે વિષય સમજાવવામાં આવેલ છે તે વીર-વર્ધમાન પ્રભુએ પોતેજે કહેલાં છે. સાધુજનોએ પણ એવું જ આચરણ કરવું જોઈએ. આ વાતને સમજાવવા માટે ઉપધાનશ્રુત નામના અધ્યયનનો પ્રારંભ કરવામાં આવે છે. ઉપધાન અને શ્રુતના પ્રતિબોધક હોવાથી આ અધ્યયન પણ એ નામથી કહેવાયેલ છે. જે પોતાની હાજરીમાં કરવામાં આવે છે તેનું નામ ઉપધાન છે. એ દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદથી બે પ્રકારનાં છે. સુવાની પથારી વગેરેમાં અવલમ્બનરૂપ ઓસીકા વગેરે દ્રવ્ય-ઉપધાન છે. તેનો અહીંયાં અધિકાર નથી. સત્તર પ્રકારના સંયમ અને બાહ્ય તથા આભ્યંતર તપ, એ ભાવ-ઉપધાન છે. એ ભાવરૂપ ઉપધાન ચારિત્રરૂપ ભાવમાં સ્થિરતા લાવનાર હોય છે. સંયમ



સંપાદયતિ । સંયમેન તપસા ચ જીવસ્ય જ્ઞાનાવરણીયાદિકં સર્વં કર્મરજોઽપગચ્છતિ તસ્માત્ સકલકર્મક્ષયહેતુભૂતસ્ય તસ્ય સંયમસ્ય તપસશ્ચ સમાલમ્બનરૂપત્વાદુપધાન-ત્વેન વ્યપદેશઃ । શ્રુતમપિ દ્રવ્યભાવભેદાત્-દ્વિવિધમ્, તત્ર દ્રવ્યશ્રુતમ્-અનુપયુક્તસ્ય યત્ શ્રુતમ્, દ્રવ્યાર્થં વા યત્ શ્રુતમ્, કુપ્રાવચનિકશ્રુતં ચ દ્રવ્યશ્રુતમ્ । ભાવશ્રુતં તુ-દ્વાદશાંગશ્રુતવિષયોપયોગઃ । ઉપધાનં ચ શ્રુતં ચ, इत्यनयोः समाहार उपधा-नश्रुतम्, तत्प्रतिपादकमध्ययनमुपधानश्रुताध्ययनमिति ।

इह प्रथमोद्देशे भगवतः श्रीवर्धमानस्वामिनो विहारः, द्वितीये भगवतः श-य्याऽऽसनानि, तृतीये तस्यानुकूल-प्रतिकूल-परीषहोपसर्गसहिष्णुता, चतुर्थे तु संयम और तपसे जीवके साथ अनादिकालसे लगीहुई समस्त कर्मरूपी धूलि नष्ट हो जाती है इस कारण सकल कर्मों के क्षयका कारण उस संयम और तपका आलम्बनरूप होनेसे उसमें (भाव उपधानमें) उप-धान पनेका व्यपदेश होता है । श्रुत भी द्रव्य और भावके भेदसे दो प्रकार है । अनुपयुक्त आत्माका जो श्रुत है वह, अथवा द्रव्यके लिये जो श्रुत है वह, या कुप्रावचनिकों (मिथ्यादृष्टियों) का जो श्रुत है वह, द्रव्यश्रुत है । द्वादशांगश्रुतविषयक जो उपयोग है वह भावश्रुत है । उपधान और श्रुतका जो समाहार है वह उपधानश्रुत है, इनका प्रति-पादक अध्ययन भी 'उपधानश्रुताध्ययन' इस नामसे प्रसिद्ध हुआ है ।

इस उपधानश्रुताध्ययनमें चार उद्देश हैं । उनमें प्रथम उद्देशमें श्री व-र्धमानप्रभुके विहारका, द्वितीय उद्देशमें उनकी शय्या एवं आसनादिकका, तृतीय उद्देशमें अनुकूल प्रतिकूल परीषहोंकी सहनशीलताका, और

અને તપથી જીવની સાથે અનાદિકાળથી લાગેલ કર્મરૂપી ધુળનો નાશ થાય છે. આ કારણે સકલ કર્મના ક્ષયના કારણે એ સંયમ અને તપના અવલમ્બનરૂપ હોવાથી એમાં (ભાવ-ઉપધાનમાં) ઉપધાનપણાનો વ્યપદેશ થાય છે. શ્રુત પણ દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદથી બે પ્રકારે છે. અનુપયુક્ત આત્માનો જે શ્રુત છે તે, અથવા દ્રવ્યને માટે જે શ્રુત છે તે, અથવા મિથ્યાદૃષ્ટિઓનો જે શ્રુત છે તે દ્રવ્ય-શ્રુત છે. દ્વાદશાંગશ્રુતવિષયક ઉપયોગ છે તે ભાવ-શ્રુત છે. ઉપધાન અને શ્રુત, એનું પ્રતિપાદક અધ્યયન પણ 'ઉપધાનશ્રુતાધ્યયન' આ નામથી પ્રસિદ્ધ થયેલ છે.

આ ઉપધાનશ્રુતાધ્યયનમાં ચાર ઉદ્દેશ છે, એમાં પ્રથમ ઉદ્દેશમાં શ્રી વર્ધ-માન પ્રભુના વિહારનો, બીજા ઉદ્દેશમાં એમની શય્યા અને આસન આદિનો, ત્રીજા ઉદ્દેશમાં અનુકૂળ પ્રતિકૂળ પરિષદોની સહનશીલતાનો, અને ચોથા ઉદ્દેશમાં ક્રુધા

શુત્પીડાજનિતાઽઽતઙ્કસમુદ્ભવે વિશિષ્ટાભિગ્રહપ્રાપ્તાહારેણ તત્પ્રતીકાર ઇત્યુચ્યતે, તસ્ય ભગવતસ્તપશ્ચરણવર્ણનં તૂદેશકચતુષ્ટયાનુગામિ ॥

અથ ભગવતશ્ચર્યાવિધિં બોધયિતું શ્રીસુધર્માસ્વામી જમ્બૂસ્વામિનમાહ—  
'અહાસુયં' ઇત્યાદિ ।

મૂલમ—અહાસુયં વહસ્સામિ, જહા સે સમણે ભગવં ઉદ્ઘાણ ।

સંઘાણ તંસિ હેમંતે, અહુણા પઠ્ઠવહ્ણ રીહ્ણતથા ॥ ૧ ॥

છાયા—યથાશ્રુતં વદિષ્યામિ, યથા સ શ્રમણો ભગવાન ઉત્થાય ।

સંઘ્યાય તસ્મિન્ હેમન્તે અધુના પ્રવ્રજિતોઽરીયત ॥ ૧ ॥

ટીકા—યથાશ્રુતં=યથાશ્રવણવિષયીકૃતં, તથા વદિષ્યામિ=કથયિષ્યામિ, તદ્ યથા—સઃ=લોકત્રયપ્રસિદ્ધઃ, શ્રમણો ભગવાન=મહાવીરઃ શ્રીવર્ધમાનસ્વામી, ઉત્થાય=ઉદ્યતવિહારં સ્વીકૃત્ય સર્વાભરણં વિહાય પશ્ચમુષ્ટિકં લોચં કૃત્વા ધર્મોપકરણતયા ગૃહીતવસ્ત્રઃ, સામાયિકાર્થં કૃતાભિગ્રહઃ, પ્રકટીભૂતમનઃપર્યયજ્ઞાનો જ્ઞાનાચતુર્થ ઉદ્દેશમેં શુધ્ધા-પીડાસે જનિત આતંકકે સદ્ભાવમેં વિશિષ્ટ અભિગ્રહસે પ્રાપ્ત આહારસે ઉસ શુધ્ધાજન્ય પીડાકે પ્રતિકારકા વર્ણન હૈ । ભગવાનકે તપશ્ચરણકા વર્ણન તો इन चारों उद्देशों में है ही ।

અબ—ભગવાનકી ચર્યાવિધિકો સમજાનેકે લિયે શ્રી સુધર્માસ્વામી જમ્બૂસ્વામીસે કહતે હૈ—'અહાસુયં' ઇત્યાદિ ।

પ્રમુસે જૈસા મૈને સુના હૈ વૈસા હી તુમસે કહૂંગા, વહ્ણ હસ પ્રકાર—

ઉદ્યત (ઉત્કૃષ્ટ) વિહાર સ્વીકાર કર, સમસ્ત રાજચિહ્ન આદિ આભરણોંકા પરિત્યાગ કર, ઓર પંચમુષ્ટિ કેશોંકા લુંચન કર, વસ્ત્ર કો ધર્મકા ઉપકરણ સમજકર માત્ર એક હી વસ્ત્ર ધારણકર, સંયમકે લિયે

પીડાથી થયેલ આતંકના સદ્ભાવમાં વિશિષ્ટ અભિગ્રહથી પ્રાપ્ત આહારથી એ-શુધ્ધાજન્ય પીડાના પ્રતિકારનું વર્ણન છે. ભગવાનની તપશ્ચર્યાનું વર્ણન તો એ ચારે ઉદ્દેશોમાં છે જ.

હવે ભગવાનની ચર્યા વિધિને સમજાવવા માટે શ્રી સુધર્માસ્વામી જમ્બૂસ્વામીથી કહે છે—'અહાસુયં' ઇત્યાદિ.

પ્રભુ પાસે જેવું મેં સાંભળ્યું છે તેવું જ તમોને કહીશ. ઉત્કૃષ્ટ વિહાર સ્વીકારી, સમસ્ત રાજચિહ્ન—વિગેરે આભરણોનો પરિત્યાગ કરી, અને પંચમુષ્ટિ કેશોનું લુંચન કરી, વસ્ત્રને ધર્મનું ઉપકરણ સમજી માત્ર એક જ વસ્ત્ર ધારણ

वर्णीयाद्यष्टविधकर्मरजोऽपहर्तुं तीर्थं प्रवर्तयितुं च प्रवृत्तो भूत्वेत्यर्थः, संख्याय=प्रव्रज्याकालं विज्ञाय, तस्मिन् प्रव्रज्याग्रहणविहरणयोग्यतया प्रसिद्धे, हेमन्ते=हेमन्तर्तौ, मार्गशीर्षमासे तस्य कृष्णदशम्यां पूर्वगामिन्यां छायायाम्, अपराह्नसमय इति भावः । प्रव्रजितः=गृहीतप्रव्रज्यः, अधुना=अस्मिन् काले-प्रव्रज्याग्रहणकाले, तदव्यवहितोत्तरकाल एवेति यावत्, अरीयत=विहारमकरोत् ॥ १ ॥

धर्मोपकरणतया वस्त्रं भगवता गृहीतमित्येतद् बोधयितुमाह—‘णो चेविमेण’ इत्यादि ।

मूलम्—णो चेविमेण वत्थेण, पिहिस्सामि तांसि हेमन्ते ।

से पारए आवकहाए, एवं खु अणुधम्मियं तस्स ॥२॥

छाया—नो चैव अनेन वस्त्रेण पिधास्यामि तस्मिन् हेमन्ते ।

स पारगो यावत्कथम् एतत् खु अनुधार्मिकं तस्य ॥ २ ॥

कृताभिग्रह होकर, मनःपर्यय ज्ञानकी प्राप्तिसे युक्त वन ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकारकी समस्त कर्मरूपी धूलिको उड़ानेके लिये, एवं तीर्थकी प्रवृत्ति करनेके लिये कटिबद्ध होकर लोकत्रयमें प्रसिद्ध वह भगवान् श्री महावीर स्वामीने, प्रव्रज्या काल जानकर प्रव्रज्या ग्रहण एवं विहार करनेकी योग्यतासे प्रसिद्ध ऐसे हेमन्त-मार्गशीर्ष मास-में कृष्णपक्षकी दशमी १० तिथिके दिन अपराह्न समय-दिनके पिछले प्रहरमें दीक्षित होकर उसी समय विहार किया ॥ १ ॥

‘वस्त्र भी धार्मिक उपकरण है’ ऐसा विचार कर वस्त्र ग्रहण किया, इस बातको समझानेके लिये सूत्रकार कहते हैं—‘णो चेविमेण’ इत्यादि ।

करी संयमना माटे कृताभिग्रह थर्ध मनःपर्यय ज्ञाननी प्राप्तिथी युक्त अनी ज्ञानावरणीय वगेरे आठ प्रकारनी समस्त कर्मरूपी धुणने उडाउवा माटे, अने तीर्थनी प्रवृत्ति करवा माटे कटिबद्ध थर्ध लोकत्रयमां प्रसिद्ध ते लगवान श्री महावीर स्वामीअे प्रव्रज्याकाल ज्ञाणी लर्ध प्रव्रज्याग्रहण अने विहार करवानी योग्यताथी प्रसिद्ध अेवा हेमन्त-मार्गशीर्ष मास-मां कृष्णपक्षनी दशमी तिथिना द्विसे अपराह्ण समये-दिवसना पाछवा लागमां दीक्षित थर्ध अे समये विहार कर्यो.(१)

‘वस्त्र धार्मिक उपकरण छे’ अेवा विचार करी वस्त्र धारण कर्यो, आ वात समजववा माटे सूत्रकार कहे छे—‘णो चेविमेण’ इत्यादि.



ટીકા—સ ભગવાન્ મહાવીરઃ શ્રીવર્ધમાનસ્વામી, એવં વિભાવયતિસ્મ-અનેન વલ્લેખ=તસ્મિન્ શૈત્યવર્ધકતયા પ્રસિદ્ધે હેમન્તે=હેમન્તાસ્થ્યે ઋતૌ, ન ચૈવ પિથાસ્યામિ સ્વદેહમહં નૈવ પ્રાવરિષ્યામિ, એતદુપભોગેન શીતસમયે સ્વાત્માનં સુખયિતું પ્રવૃત્તો ન ભવિષ્યામીત્યર્થઃ । ઈદશવિચારણાકરણપ્રદર્શકં તસ્ય વિશેષણં પ્રદર્શયતિ-પારગ ઇતિ, પ્રતિજ્ઞાયાઃ પારગામી, પ્રતિજ્ઞાપૂરણસમર્થ ઇત્યર્થઃ । યદ્વા—સંસારસાગરપારગમને સમર્થ ઇત્યર્થઃ । કિયન્તં કાલમપેક્ષ્ય પ્રતિજ્ઞાતં ભગવતેતિ જિજ્ઞાસાયામાહ-યાવત્કથમિતિ, યાવજ્જીવનમિત્યર્થઃ ।

ભગવાન મહાવીરને એસા વિચાર કિયા કિ ઇસ વસ્ત્રસે શૈત્યવર્ધક-પનેસે પ્રસિદ્ધ હેમન્ત ઋતુમેં મૈં અપને શરીરકો નહીં ઢકૂંગા-ઇસકે ઉપ-ભોગસે શીતસમયમેં મૈં અપનેકો સુખિત કરનેકે લિયે પ્રવૃત્ત નહીં હોઝૂંગા । ઇસ પ્રકારકી ભગવાન મહાવીરકી વિચારણાકા કારણ યહ થા કિ વે અપને અભિગ્રહકા પૂર્ણરૂપસે નિભાનેમેં શક્તિશાલી થે, યહી વાત “પારગઃ” ઇસ વિશેષણ પદસે સૂત્રકારને પ્રદર્શિત કી હૈ । ઉનકે શરીરમેં ઇતની શક્તિ થી કિ જિસકે આગે ઉસ માર્ગશીર્ષ જૈસે માસકી ઠંડકી શક્તિ ઉનકે પ્રતિ કુઠિત હો ગઈ થી । અથવા “પારગઃ” ઇસ વિશેષણ પદકા યહ ભી દૂસરા અર્થ હો સકતા હૈ કિ જબ વે ઉસી ભવસે સંસારરૂપી અથાહ સમુદ્રકો પાર કરનેમેં સમર્થ થે તથા ઉનકે સમક્ષ યહ શીતકાલ કિસ ગણનામેં થા । વસ્ત્રસે શરીરકો આવૃત નહીં કરનેકી પ્રતિજ્ઞા ભગવાનને કુછ સમયકે લિયે નિયમરૂપસે અંગીકૃત નહીં કી થી, કિન્તુ યાવત્કથ-યાવજ્જીવન યહ પ્રતિજ્ઞા ઉન્હોને સ્વીકાર કી થી ।

ભગવાન મહાવીરે એવો વિચાર કર્યો કે આ વસ્ત્રથી ઠંડી આપવામાં પ્રસિદ્ધ એવી હેમન્તઋતુમાં હું મારા શરીરને ઢાંકીશ નહીં—આના ઉપભોગથી ઠંડીના સમયમાં હું મને સુખી કરવામાં પ્રવૃત્ત નહીં થઈશ. આ પ્રકારની ભગવાન મહાવીરની વિચારણાનું કારણ એ હતું કે તેઓ પોતાના અભિગ્રહનું પાલન પૂર્ણરૂપથી નિભાવવામાં શક્તિશાળી હતા. એ વાત ‘પારગઃ’ આ વિશેષણ પદથી સૂત્રકારે પ્રદર્શિત કરેલ છે. એમના શરીરમાં એટલી શક્તિ હતી કે જેની સામે માગશર મહિનાની ઠંડીની શક્તિ પણ નિર્બળ બની ગઈ હતી. અથવા “પારગઃ” આ વિશેષણનો ખીલો એ પણ અર્થ થઈ શકે છે કે બ્યારે તે એજ ભવથી સંસારરૂપી અથાગ સમુદ્રને પાર કરવામાં સમર્થ હતા. આ સમર્થ આત્મા સામે શીત કાળની ગણતરી શું? વસ્ત્રથી શરીરને આવૃત ન કરવાનો અભિગ્રહ ભગવાને થોડા સમયને માટે નિયમરૂપથી અંગીકૃત કરેલ નહીં પરંતુ આજીવન એ અભિગ્રહ એમણે સ્વીકાર કર્યો હતો.

નનુ તર્હિ વસ્ત્રં કિમર્થમઙ્ગીકૃતમ્ ? અત્રાહ—સ્વ=નિયમેન, એતદ્=વસ્ત્રધારણં તસ્ય=ભગવતઃ, અનુધાર્મિકમ્=પૂર્વપૂર્વતીર્થઙ્કરધર્માનુકૂલમ્, અપરૈઃ પરંપરયાવતીળ-તીર્થઙ્કરૈરપિ પૂર્વ ધર્મોપકરણતયા તથાઽનુઘિતમિત્યર્થઃ ॥ ૨ ॥

દીક્ષાકાલિકાનુલિપ્તચન્દનાદિસુગન્ધલોભાદ્ ભ્રમરાદયઃ સમાગત્ય ભગવદ્-પુષિ દંશનં ચક્રુરિતિ બોધયિતુમાહ—‘ ચત્તારિ સાહિણ ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—ચત્તારિ સાહિણ માસે, બહવે પાળજાડયા આગમ્મ ।

અભિરુઝ્ઞ કાયં વિહરિંસુ આરુસિયા ણં તત્થ હિંસિંસુ ॥૩॥

છાયા—ચતુરઃ સાધિકાન્ માસાન્, બહવઃ પ્રાણિજાતયઃ આગમ્ય ।

અભિરુઝ્ઞ કાયં વિજહુઃ, આરુણ્ય સ્વલુ તત્ર જિહિંસુઃ ॥ ૩ ॥

શંકા—જવ વસ્ત્રસે શરીરકો આચ્છાદિત નહીં કરનેકા અભિગ્રહ ભગવાનને યાવજીવન અંગીકૃત કિયા તો ફિર ભગવાનને વસ્ત્રકા ગ્રહણ હી ક્યોં કિયા ?

ઉત્તર—શંકા ઠીક હૈ, પરન્તુ આચારપાલનકે લિયે હી ઉન્હોને એસા કિયા । જિસ પ્રકાર પરંપરાસે હોનેવાલે ધર્મતીર્થપ્રવર્તક તીર્થકરોને વસ્ત્રકા ધર્મકા ઉપકરણ હોનેસે ગ્રહણ કિયા હૈ । યહી બાત “અનુધાર્મિકમ્” ઇસ પદસે સૂત્રકાર પ્રકટ કી હૈ ॥ ૨ ॥

દીક્ષા સમયમેં જવ ભગવાનકે શરીરમેં ચંદનાદિ સુગંધિત દ્રવ્યોંકા ઉવટન-લેપ કિયા ગયા ઉસ સમય ઉનકી સુગંધિસે આયે હુણ ભ્રમર ભગવાનકે શરીરકો કાટને લગે, ઇસ બાતકો સમજાનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈ—‘ ચત્તારિ સાહિણ ’ ઇત્યાદિ ।

શંકા—જ્યારે વસ્ત્રથી શરીરને આચ્છાદિત ન કરવાનો અભિગ્રહ ભગવાને આજીવન અંગીકૃત કર્યો તો પછી ભગવાને વસ્ત્રોને કેમ ન તત્ત્યાં ?

ઉત્તર—શંકા ઠીક છે, પરન્તુ આચાર પાલન કરવા માટે જ તેમણે એમ કયું. જે પ્રકાર તીર્થ કરે એ વસ્ત્રને ધર્મ-ઉપકરણરૂપ માની ગ્રહણ કરેલ. આ વાત “અનુધાર્મિકમ્” આ પદથી સૂત્રકારે પ્રગટ કરેલ છે. (૨)

દીક્ષા સમયે જ્યારે ભગવાનના શરીર ઉપર ચંદનાદિ સુગંધિત દ્રવ્યોના લેપ કરવામાં આવ્યો આ સમયે તેની સુગંધથી આકર્ષાઈ ભ્રમરાઓ શરીર ઉપર બેસવા લાગ્યાં અને કરડવા લાગ્યાં, આ વાતને સમજાવતાં સૂત્રકાર કહે છે— ‘ ચત્તારિ સાહિણ ’ ઇત્યાદિ.

ટીકા—વહવઃ પ્રાણિજાતયઃ ભ્રમરાદયઃ ચતુરઃ સાધિકાન્ માસાન્ મનોજ્ઞસુ-  
ગન્ધલોભાત્ આગમ્ય કાર્યં=ભગવતઃ શરીરમ્, અભિરુઢ વિજહુઃ=નિજનિજચરણાનિ  
સપરુષસ્પર્શ ચારયામાસુઃ । તથા—તદીયરક્તાદ્યર્થિતયા ચ આરુણ્ય=પ્રકુપ્યેવ તત્ર=  
ભગવતઃ શરીરે જિહ્વિસુઃ=દદંથુઃ ॥ ૩ ॥

તદ્ વસ્ત્રં ભગવાન્ કિયત્કાલં દધારેતિ શિષ્યજિજ્ઞાસાયમાહ—‘સંવચ્છરં  
સાહિયં’ इत्यादि ।

મૂલમ્—સંવચ્છરં સાહિયં માસં, જં ન રિક્તસિ વત્થગં ભગવં ।

અવેલણ તઓ ચાઈ, તં વોસિરિજ્જ વત્થમણગારે ॥૪॥

છાયા—સંવત્સરં સાધિકં માસં, યત્ ન રિક્તવાન્ વસ્ત્રકં ભગવાન્ ।

અવેલકઃ તતઃ ત્યાગી, તદ્ વ્યુત્સૃજ્ય વસ્ત્રમનગારઃ ॥ ૪ ॥

ટીકા—ભગવાન્ શ્રીવર્ધમાનસ્વામી વસ્ત્રકં=તદ્ વસ્ત્રં સંવત્સરમ્=એકવર્ષ, તથા  
સાધિકં માસં=સાધિકૈકમાસં કિંચિદધિકત્રયોદશમાસાનિત્યર્થઃ, યત્ ન રિક્તવાન્

કુછ અધિક ચાર માસમેં બહુતસી—અનેક પ્રાણિયોંકી જાતિયાં,  
અનેક જાતિકે ભ્રમરાદિક જીવજન્તુ મનોજ્ઞ સુગંધકે લોભસે  
આકર ભગવાનકે શરીરકે આજૂ-બાજૂ મિનર કરતે હુએ અનેક શરીરકો  
કઠોર સ્પર્શ કરતે હુએ ચારોં ઓર ધૂમને લગે ઓર ક્રોધિત કી તરહ  
અનેક શરીરકો કાટર કર લોહી માંસ ખાને લગે ॥ ૩ ॥

અસ વસ્ત્રકો ભગવાનને કિતને સમયતક ધારણ કિયા? શિષ્યકી  
અસ જિજ્ઞાસાકા સમાધાન કરનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈ—‘સંવચ્છરં’  
इत्यादि ।

ભગવાનને અસ વસ્ત્રકો કુછ અધિક એક મહીનાસે યુક્ત એક વર્ષ,

થોડા અધિક ચાર મહિનામાં ઘણા પ્રાણીઓ અને ઘણી જાતના ભ્રમરા  
વગેરે જીવ જન્તુની જાતિયો મનને સુગંધથી ભરપુર બનાવી દે તેવી સુગંધના  
લોભમાં પડી ભગવાનના શરીર ઉપર તેમજ ચારે તરફ ફરી વળી ગણગણાટ  
શરૂ કરી લીધો અને જાણે ક્રોધવાળા બન્યા હોય એ રીતે તેમના શરીર ઉપર  
સુગંધ ચુસવાની ભાવનાથી લોહી તથા માંસને ખાવા લાગ્યા. (૩)

એ વસ્ત્રને ભગવાને કેટલા સમય સુધી ધારણ કર્યું? શિષ્યની આ જાણ-  
સાનું સમાધાન કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે—‘સંવચ્છરં’ इत्यादि.

ભગવાને થોડા અધિક એક મહીનાથી યુક્ત એક વર્ષ—એટલે થોડા અધિક



=ત્યક્તવાન્ તત્ 'સ્થિતકલ્પઃ' इति कृत्वा, तत् ऊर्ध्वं तद् वस्त्रं व्युत्सृज्य=अपनीय  
त्यागी=वस्त्रपरित्यागी अनगारः=भगवान् अचेलकः=अवस्त्रः, अभूदित्यर्थः ॥४॥

किञ्च--'अदु पोरिसिं' इत्यादि ।

મૂલમ્--અદુ પોરિસિં તિરિયમિત્તિં ચક્ષુ માસજ્ઞ અન્તસો જ્ઞાઈ ।

अह चक्षुर्भीया संहिया, ते हंता हंता बहवे कंदिसु ॥५॥

છાયા--અથ પૌરુષીં તિર્યગ્મિત્તિં ચક્ષુરાસાદ્ય અન્તશો ધ્યાયતિ ।

अथ चक्षुर्भीताः संहितास्ते, हत्वा हत्वा बहवश्चक्रन्दुः ॥ ५ ॥

ટીકા--અથ=અનન્તરં, તિર્યગ્મિત્તિં=પ્રવેશસ્થાને સંકુચિતામગ્રે વિસ્તીર્ણાં, પૌ-  
રુષીં=પુરુષપ્રમાણાં વીથીં ગચ્છન્ અન્તશઃ=મધ્યે અભ્યન્તરે, ચક્ષુરાસાદ્ય=જ્ઞાનદૃષ્ટિ  
નિધાય, સોપયોગો ભૂત્વા, ધ્યાયતિ=ઈર્યાસમિતો ગચ્છતિ । ઈર્યાસમિતસ્ય ગમનમેવાત્ર  
ધ્યાનમ્ ।

अर्थात् कुछ अधिक तेरह महीने तक स्थितकल्प समझकर रखा। फिर  
उसके बाद उसका परिहार कर वे अचेल-वस्त्ररहित हुए ॥४॥

फिर भी--'अदु पोरिसिं' इत्यादि ।

પ્રવેશ સ્થાનમેં સંકુચિત ઓર આગે વિસ્તૃત એસે માર્ગસે વે ભગ-  
વાન ઈર્યાસમિતિપૂર્વક ચલે । યહાં “ધ્યાયતિ” યહ ક્રિયાપદ ‘ભગવાન  
ઈર્યાસમિતિસે ગમન કરતે હુએ’ ઇસ અર્થકા બોધ કરાતા હૈ, ક્યોં કિ  
સોપયોગ ઈર્યાસમિતિ વાલેકા ગમન હી યહાં ધ્યાન હૈ । “ચક્ષુરાસાદ્ય”  
યહ પદ યહ પ્રકટ કરતા હૈ કિ વે ભગવાન જ્ઞાનદૃષ્ટિકો રચ્ચકર-ઉપ-  
યોગ સહિત હોકર ચલે । ઈર્યાસમિતિસે ચલતે હુએ મી ઉપયોગ અસ્થિર  
હો સકતા હૈ--પરન્તુ યહાં પર ભગવાનકા ઉપયોગ અસ્થિર નહીં થા યહ  
વિશેષતા પ્રકટ કરનેકે લિયે ‘ચક્ષુરાસાદ્ય’ યહ પદ સૂત્રકારને રચા હૈ ।

तेरमहिना सुधी ते वस्त्रने स्थितकल्प समञ्जने राख्युं. आ पछी तेओअे तेनो त्याग  
कर्यो अने अचेल-वस्त्ररहित थया. (४)

ફરી--'અદુ પોરિસિં' ઇત્યાદિ.

પ્રવેશસ્થાનમાં સાંકડા અને આગળ જતાં વિસ્તૃત એટલે પહોળા માર્ગ  
ઉપર ભગવાન ઈર્યાસમિતિપૂર્વક ચાલ્યા. આહિં ‘ધ્યાયતિ’ આ ક્રિયાપદ ‘ભગ-  
વાન ઈર્યાસમિતિથી ગમન કરેલ’ આ અર્થનો બોધ કરાય છે, કેમ કે સોપયોગ  
ઈર્યાસમિતિવાળાનું ગમન જ ધ્યાન છે. ‘ચક્ષુરાસાદ્ય’ આ પદ એવું પ્રગટ કરે  
છે કે ભગવાન જ્ઞાનદૃષ્ટિથી ઉપયોગસહિત એ માર્ગથી ચાલ્યા. ઈર્યાસમિતિથી  
ચાલવાવાળાનો ઉપયોગ અસ્થિર પણ થઈ શકે છે, પરંતુ ભગવાનનો ઉપયોગ અસ્થિર  
નહોતો. આ વિશેષતા પ્રગટ કરતાં ‘ચક્ષુરાસાદ્ય’ આ પદ સૂત્રકારે રાખેલ છે.

તં તથા વ્રજન્તમલોક્ય બાલકા ઉપસર્ગ ચક્રુરિત્યાહ—‘અથ ચક્ષુર્મીતાઃ’  
ઇત્યાદિ ।

અથ=અનન્તરં, ચક્ષુર્મીતાઃ=અત્ર ચક્ષુઃશબ્દેન દર્શનં ગૃહ્યતે, દર્શનાદ્મીતાઃ  
ભગવન્તં વિલોક્ય ભયમુપગતાઃ, અત એવ સંહિતાઃ=મિલિતાઃ, તે=બાલકા હત્વા  
હત્વા=ધૂલિપ્રક્ષેપાદિભિઃ પુનઃ પુનઃસ્તાડયિત્વા ચક્રન્દુઃ=અન્યાન્ બાલાનાહ્વયન્તિ સ્મ,  
‘ઇહાગચ્છત પશ્યત મુણ્ડિતોઽય ’—મિતિ, તથા—‘કિંદેશીયઃ કુતઃ સમાયા-  
તોઽય ’—મિતિ કલકલશબ્દં ચક્રુરિત્યર્થઃ ॥ ૫ ॥

કિંચ—‘સયળેહિં’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—સયળેહિં વિતિમિસ્સેહિં, ઇત્થીઓ તત્થ સે પરિજ્ઞાય ।

સાગારિયં ન સેવેઙ્ગ ય, સે સયં પવેસિયા જ્ઞાઙ્ગ ॥ ૬ ॥

છાયા—શયનેષુ વ્યતિમિશ્રેષુ સ્ત્રિયસ્તત્ર સ પરિજ્ઞાય ।

સાગારિકં ન સેવેત ચ સ સ્વયં પ્રવેશ્ય ધ્યાયતિ ॥ ૬ ॥

ટીકા—શયનેષુ=શય્યતે યત્ર તાનિ શયનાનિ=આગન્તુકાર્થવાસસ્થાનાનિ,  
તેષુ વ્યતિમિશ્રેષુ=કુતશ્ચિત્ કારણાદ્ ગૃહસ્થૈસ્તીર્થિકૈશ્ચ સંયુક્તેષુ સત્સુ તત્રાવસ્થિ-

ભગવાનકો ઇસ તરહ વિહાર કરતે હુએ દેખકર ભયસે યુક્ત હો બાલક  
મિલકર ઉનકે ઉપર ધૂલિ આદિ ઢાલર કર ઉપસર્ગ કરને લગે ઓર  
કોલાહલ કરતે હુએ કહને લગે કિ-આઓ દેખો યહ મનુષ્ય મુંડિન હૈ,  
યહ અજબ ઢંગકા આદમી કહાંસે આયા હૈ ॥૫॥

ઔર મી—‘સયળેહિં’ ઇત્યાદિ ।

આગન્તુક-પથિક જનોંકે લિયે વસને યોગ્ય સ્થાનોંકા નામ શયન હૈ ।  
ઇન શયનોંમેં અનેક પ્રકારકે વ્યક્તિ આકર ઠહરતે હૈં ઔર ચલે જાતે હૈં, એસે  
સ્થાનોંમેં યદિ મુનિજન ઠહરેં ઔર વહીં પર ગૃહસ્થજન યા અન્ય તીર્થિક-

ભગવાનને આ રીતે વિહાર કરતાં જોઈ લયલીત બનતાં બાળકોએ ધુળ  
કાંકરા વગેરે તેમના ઉપર નાંખવા માંડ્યા, અને તમાસો જોવાના નિમિત્તે બીજાં  
બાળકોને પણ જોલાવવા લાગ્યાં અને કોલાહલ મચાવી કહેવા લાગ્યાં કે—બુઓ  
બુઓ આ માણસ માથે મુંડેલ એવા અજબ ઢંગનો છે. આ માણસ અહિં  
ક્યાંથી આવેલ છે ? (૫)

ફરી—‘સયળેહિં’ ઇત્યાદિ.

આગન્તુક-માર્ગવહેતા માણસોને વસવા યોગ્ય સ્થાનોનું નામ શયન છે. આ શયનોમાં  
અનેક પ્રકારના માણસો આવી રોકાય છે, અને ચાલ્યા જાય છે. આવા સ્થાનોમાં કદીક  
મુનિ પણ રોકાય છે અને બીજા ગૃહસ્થજન અને અન્યતીર્થિક બીજા ધર્મવાળા માણસો

તઃ સન્ સ્ત્રીભિઃ પ્રાર્થિતો ભવતિ ચેત્ તદા સ સ્ત્રિયઃ પરિજ્ઞાય=જ્ઞ-પરિજ્ઞયા 'ઇમાઃ સંયમસરણિપ્રતિરોધિકાઃ' इति ज्ञात्वा, प्रत्याख्यान-परिज्ञया परिवर्जयन् 'मुनिः सागारिकं=मैथुनं न सेवेत' इत्येवं स्वधर्ममनुस्मरन् स=भगवान् महावीरः श्री वर्धमानस्वामी वैराग्यमार्गे स्वयं=स्वमात्मानं प्रवेक्ष्य ध्यायति=धर्मध्यानं करोति स्म ॥ सू० ६ ॥

यदि मार्गे गृहस्था आगत्य मिलन्ति पृच्छन्ति, तदानीमपि भगवतो ध्यानभङ्गो नाभूदित्याह—'जे के इमे' इत्यादि ।

મૂલમ્—જે કે ઇમે અગારસ્થા, મીસીભાવં પહાય સે જ્ઞાઈ ।

પુઢો વિ નાભિભાસિંસુ, ગચ્છઈ નાઈવત્તઈ અંજૂ ॥ ૭ ॥

છાયા—યે કેચિદ્ ઇમે અગારસ્થાઃ મિશ્રીભાવં પ્રહાય સ ધ્યાયતિ ।

પૃષ્ઠોઽપિ નાભ્યભાષત, ગચ્છતિ નાતિવર્તતે ઋજુઃ ॥ ૭ ॥

जन भी ठहरे हों और उनमेंसे कोई कामिनी उस मुनिसे अपनी वैषयिक अभिलाषा प्रकट करे तब वह मुनि उस स्त्रीको 'यह संयम मार्गकी प्रतिरोधिका है' ऐसा ज्ञ-परिज्ञासे जानकर प्रत्याख्यान-प्रतिज्ञासे सर्वथा उसका परिहार कर देवे, और इसकी वैषयिक अभिलाषाकी पूर्ति न करे, इस प्रकारके अपने धर्मका विचार करते हुए वे भगवान् महावीर वैराग्यमार्गमें अपने आपको ओत-प्रोत कर धर्मध्यानमें तत्पर रहे ॥ ६ ॥

मार्गमें चलते हुए भगवानको यदि गृहस्थजन आकरके मिलते और कुछ पूछते तो भी भगवान्का ध्यानभंग नहीं होता, इस बातको सूत्रकार प्रकट करते हैं—'जे के इमे' इत्यादि ।

પણ રહે છે. આમાં કોઈ સ્ત્રી આ સ્થાનમાં રોકાયેલા મુનિજનથી પોતાની વૈષયિક અભિલાષા પ્રગટ કરે એ સમયે મુનિ “સ્ત્રી સંયમમાર્ગનો અવરોધ કરનાર છે” એવું જ્ઞ-પરિજ્ઞાથી જાણી પ્રત્યાખ્યાન-પ્રતિજ્ઞાથી એનો ત્યાગ કરી દે, અને એની વૈષયિક-વિષયસંબંધી અભિલાષાની પૂર્તિ ન કરે, આ પ્રકારથી પોતાના ધર્મનો વિચાર કરતાં ભગવાન્ મહાવીર વૈરાગ્યમાર્ગમાં પોતાને ઓત-પ્રોત બનાવી ધર્મધ્યાનમાં મગ્ન રહે છે. (૬)

માર્ગમાં ચાલતાં ભગવાનને કોઈ ગૃહસ્થજન આવીને મળે અને પુછપરછ કરે તો પણ ભગવાનના ધ્યાનનો ભંગ નહિ થતો, આ વાતને સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે—'જે કે ઇમે' ઇત્યાદિ.



टीका—ये केचिद् इमे अगारस्थाः=गृहस्थाः आगत्य संमिलन्ति तैर्मिश्री-  
भावं=सहवासं प्रहाय=परित्यज्य सः=भगवान् ध्यायति=ध्यानमेवावलम्बते स्म ।  
तथा—तैः कश्चिद् विषयं पृष्टोऽप्यपृष्टो वा स ऋजुः सरलहृदयो भगवान् नाभ्य-  
भाषत, किन्तु—गच्छति ईर्यासमितः सन् मार्गे व्रजत्येव, तथा नातिवर्तते=मोक्ष-  
मार्गे ध्यानं वा न परित्यजति स्मेत्यर्थः ॥ ७ ॥

किञ्च—‘णो सुकर०’ इत्यादि ।

मूलम्—णो सुकरमेयमेगेसिं, नाभिभासए अभिवायमाणे ।

हयपुण्वे तत्थ दंडेहिं, लूसियपुण्वे अप्पपुण्णेहिं ॥८॥

छाया—नो सुकरमेतद् एकेषां नाभिभाषते अभिवादयतः ।

हतपूर्वः तत्र दण्डैः लूषितपूर्वः अल्पपुण्यैः ॥ ८ ॥

टीका—एतद्=उक्तं वक्ष्यमाणं च, भगवच्चरितं एकेषाम्=अन्येषां नो सुकरं  
=न कर्तुं शक्यम्, तदेव दर्शयति—अभिवादयतः=अभिवन्दनं कुर्वतो जनान्, नाभि-

जो कोई गृहस्थजन आकरके भगवानसे मार्गमें मिलते तो वे उनके साथ सहवास नहीं करते, और अपने ध्यान ही में मग्न रहते। उनके द्वारा किसी विषयको लेकर पूछे गये अथवा नहीं, पूछे गये वे सरल हृदयवाले भगवान् उनसे बोलते-चालते नहीं, मार्गमें ईर्यासमितिसे ही चलते रहते। मोक्षमार्ग अथवा ध्यानकी ओरसे वे अपने चित्तको नहीं हटाते थे ॥ ७ ॥

फिर भी—‘णो सुकर०’ इत्यादि ।

यह कहा हुआ और आगे कहा जाने वाला भगवानका चरित्र अन्य मनुष्योंके लिये सुकर-आचरण करना सहज-नहीं है, अन्य मनुष्य

जो कोई गृहस्थ जन आवी मार्गमें भगवानसे मिलता तो तेमनी साथे भगवान सहवास करता न डता अने पोताना ध्यानमें न मग्न रहता डता, पूछवासां आवती अथवा नही पूछवासां आवती कोई पण वातने भगवान नवाण आपता नही—कोईनी साथे बोलता आलता नही, मार्गमें ईर्यासमितिथी आलता रहता, मोक्षमार्गथी अने ध्यानना तरक्षथी तेओ पोतानुं चित्त नरा पण भील तरक्ष देवता नही, ( ७ )

क्षरी—‘णो सुकर०’ इत्यादि.

आ छोवासां आवेल अने आगण छोवासां आवनार भगवानतुं चरित्र भीन भाणुसो भाटे ओ रीतथी आचरण करवुं सहेन नथी—कोई भाणुस विचार

भाषते=न ब्रवीति, नाप्यनभिवादयद्ब्रूयश्च क्लृप्यतीत्यपि उपलक्षणार्थतयाऽवगन्तव्यम्।  
प्रतिकूलोपसर्गोपस्थितौ सत्यामपि ध्यानभङ्गो नाभूदित्याह—‘हतपूर्वः’ इत्यादि।  
तत्र=अनार्यदेशादौ विहारं अल्पपुण्यैः=हीनपुण्यैर्धर्मसंज्ञारहितैरनार्यैर्दण्डैर्हतपूर्वः  
पूर्वं हतः, तथा क्लृपितपूर्वः=हिंसितपूर्वः केशलुञ्चनादिभिः पूर्वं हिंसितो नाभिभाषते,  
न कषायभावं प्राप्तवानित्यर्थः ॥ ८ ॥

किञ्च—‘फरुसाइं’ इत्यादि।

मूलम्—फरुसाइं दुस्तिक्त्वाइं, अइअच्च मुणी परक्कममाणे।

आघायनदृगीयाइं, दंडजुद्धाइं मुट्टियुद्धाइं ॥९॥

छाया—परुषाणि दुस्तिक्त्वाणि अतिगत्य मुनिः पराक्रममाणः।

आख्यातवृत्त्यगीतानि दण्डयुद्धानि मुष्टियुद्धानि ॥ ९ ॥

चाहें कि हम भी इस प्रकारके सांचेमें अपने जीवनको ढालें तो वे नहीं  
ढाल सकते। भगवान् अपने को बंदना करनेवाले मनुष्योंसे प्रेमसे नहीं  
बोलते और उपलक्षणसे नहीं बंदनेवालों पर क्रोधी नहीं होते। भगवान्  
के ऊपर चाहे कितनेही प्रतिकूल और अनुकूल उपसर्ग आते, तो भी वे  
अपने ध्यानसे विचलित नहीं होते। अनार्य देशादिकमें विहार करते  
समय भगवान् धर्मसंज्ञारहित ऐसे हीनपुण्य अनार्यों द्वारा दण्डोंसे भी  
ताड़ित हुए, और केशलुञ्चनादिकपूर्वक उनके द्वारा दुःखित भी किये  
गये, उन पर पत्थर आदिका प्रहार भी किया गया तो भी भगवान्  
उनके प्रति कषायभावोंसे संपन्न नहीं हुए थे ॥ ८ ॥

और भी—‘फरुसाइं’ इत्यादि।

કે હું પણ આ પ્રકારે મારા જીવનને લઈ જાઉં તો એ પ્રમાણે તે કરી શકે  
નહીં—એ પ્રકારનો ઢાળ ઢાળી શકે નહીં. ભગવાનની વંદના કરવા આવતા  
માણસો સાથે તેઓ પ્રેમથી બોલતા નહીં; અને ઉપલક્ષણથી નહીં વાંદવાવાળા  
ઉપર ક્રોધ કરતા નહીં. તેમના ઉપર ગમે તેટલા પ્રતિકૂળ અને અનુકૂળ ઉપ-  
સર્ગ આવે તો પણ તેઓ પોતાના ધ્યાનથી વિચલિત થતા નહીં. અનાર્ય દેશ-  
દિકમાં વિહાર કરતી વખતે ધર્મસંજ્ઞાથી રહિત એવા હીનપુણ્ય અનાર્યોથી ભગ-  
વાનને અનેક પ્રકારનાં કષ્ટો સહેવાં પડેલાં. દંડ વિગેરેની તાડનાથી તેમજ  
માથાના વાળ પકડી ખેંચવા વિગેરેથી ભગવાનને અનેક રીતે દુઃખ પહોંચાડ-  
વામાં આવેલા કાંકરા, તેમજ પથરા વિગેરેના પ્રહારો કરવામાં આવ્યા હતા  
તો પણ એમના તરફ કષાયભાવસંપન્ન નહિ થયા. (૮)

કરી—‘ફરુસાઈ’ ઇત્યાદિ.

ટીકા—મુનિઃ=શ્રીવર્ધમાનસ્વામી, પરુષાણિ=કઠોરવચનનિ, દુસ્તિતિક્ષાણિ=અન્યૈઃ પ્રાકૃતપુરુષૈર્દુઃસહાનિ અતિગત્ય=અવિગણ્ય, પરાક્રમમાણઃ=સમ્યક્-તિતિક્ષાવાન્ ભવતિ, તથા—આખ્યાતનૃત્યગીતાનિ=આખ્યાતાનિ નૃત્યગીતાનિ ઉદિ-શ્ય કૌતુકં ન કરોતિ, તથા—દણ્ડયુદ્ધાનિ મુષ્ટિયુદ્ધાનિ દૃષ્ટ્વા શ્રુત્વા વા નાપિ રોમા-શ્ચિતો ભવતિ ॥ ૯ ॥

કિંચ—‘ગદિષ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—ગદિષ મિહોકહાસુ, સમયમિ નાયસુષ વિસોગે અદક્ષૂ ।

एयाइं से उरालाइं, गच्छइ नायपुत्ते अशरणाए ॥ १० ॥

છાયા—ગૃહઃ મિથઃકથાસુ સમયે જ્ઞાતસુતઃ વિશોકઃ અદ્રાક્ષીત્ ।

एतानि स उदाराणि गच्छति ज्ञातपुत्रः अशरणाय ॥ १० ॥

ટીકા—સમયે=અકસ્મિન્ કાલે કદાચિત્ જ્ઞાતસુતઃ=ભગવાન્ મહાવીરઃ શ્રી વર્ધમાનસ્વામી મિથઃકથાસુ=પરસ્પરં કામસંબન્ધિવાર્તાલાપેષુ ગૃહાઃ=આસક્તાઃ સ્ત્રીઃ, વિશોકઃ=રાગરહિતઃ સન્ અદ્રાક્ષીત્ । સ જ્ઞાતપુત્રઃ=ભગવાન્ અશરણાય=શરણં=

મુનિ શ્રી વર્ધમાન સ્વામી અન્ય સાધારણ પ્રાણી મી જિન્હેં સહન ન કર સર્કે એસે કઠોર વચનોંકી ઓર કુછ મી ધ્યાન ન દેકર સમ્યક્ પ્રકારસે સહન કરને વાલે હુએ—સર્વ પ્રકારસે અચ્છી તરહ સહનશીલ બને । તથા આખ્યાત ( કથા—વાર્તા ) નૃત્ય ઓર ગીતકી તરફ આશ્ચર્યસે યુક્ત ન હુએ, એવં દણ્ડયુદ્ધ ઓર મુષ્ટિયુદ્ધોંકો દેખકર યા સુનકર રોમાશ્ચિત—આશ્ચર્યચકિત મી ન બને ॥૯॥

फिर भी—‘गदिए’ इत्यादि ।

एक समय की बात है कि भगवान् महावीरने परस्पर कामसंबंधी-वार्तालापोंमें आसक्त स्त्रियोंको देखा तो भी वे उस ओरसे वीतराग

મુનિશ્રી વર્ધમાન સ્વામી અન્ય સાધારણ પ્રાણી પણ જોને સહન ન કરી શકે એવા કઠોર વચનોની તરફ જરા પણ ધ્યાન ન દઇ સમ્યક્ પ્રકારથી સહન કરવાવાળા થયા—સર્વ પ્રકારથી તેઓ સહનશીલ વૃત્તિના બન્યા, આખ્યાન(કથાવાર્તા) નૃત્યો અને ગીતોમાં તેઓને આશ્ચર્ય થયેલ નહીં, તેમ દંડયુદ્ધ અને મુષ્ટિયુદ્ધને જોઈ તથા સાંભળી રોમાંચિત—આશ્ચર્યચકિત બન્યા ન હતા. (૯)

ફરી—‘ગદિષ’ ઇત્યાદિ.

એક સમયની વાત છે કે ભગવાન મહાવીરે પરસ્પર કામસંબંધી વાર્તાલાપોમાં સ્ત્રીઓને આસક્ત બનેલી જોવા છતાં પણ એ બારામાં એઓ વીતરાગી



गृहं यत्र नास्तीत्यशरणः=संयमस्तस्मै, संयमाराधनार्थम्, एतानि=अनुकूल-प्रति-  
कूलानि परीषद्दोषसर्गरूपाणि उदारानि=अन्यजनैर्दुःसहानि गच्छति=अतिक्रामति,  
परीषद्दोषसर्गैः प्रतिबद्धो न भवतीति भावः ॥ १० ॥

तेन भगवता दीक्षाग्रहणात् पूर्वं साधिकवर्षद्वयतः शीतजलं परिवर्जितमित्याह—  
—‘अविसाहिए’ इत्यादि ।

मूलम्—अवि साहिए दुवासे, सीतोदं अभोच्चा णिक्खंते ।

एगत्तगए पिहियच्चे, से अहिन्नायदंसणे संते ॥११॥

छाया—अपि साधिके द्वे वर्षे शीतोदकम् अभुक्त्वा निष्क्रान्तः ।

एकत्वगतः पिहितार्चः स अभिज्ञातदर्शनः शान्तः ॥ ११ ॥

टीका—अपि च—स भगवान् साधिके द्वे वर्षे शीतोदकम्=सचित्तजलम्,  
अभुक्त्वा=अपीत्वा, एकत्वगतः=एकत्वभावनामाश्रितः—‘अहमेक एवासहायोऽस्मि  
नास्ति मम कश्चिदात्मकल्याणार्थं द्वितीयः सहायः, अपि च नास्ति केनाऽपि सह  
ही रहे, अर्थात् उनकी ओर भगवान्ने रागसहित दृष्टि भी नहीं रखी।  
ज्ञातपुत्र भगवान् अशरण रहे—संयमकी आराधनाके लिये अन्यजनोंका  
शरण नहीं लिया, एवं दुःसह प्रतिकूल और अनुकूल परीषद्दोषोंके आने  
पर भी अडोल रहे ॥ १० ॥

भगवान्ने दीक्षाग्रहण करनेके पहिले कुछ अधिक दो वर्षोंसे शीत  
जल—सचित्त पानीका त्याग कर दिया था, इस बातको सूत्रकार प्रदर्शित  
करते हैं—‘अवि साहिए’ इत्यादि ।

भगवान्ने कुछ अधिक दो वर्षों से सचित्तजलका त्याग करदिया था,  
अर्थात्—सचित्तजल नहीं पिया। इस एकत्व भावनासे कि—‘मैं एक  
हूँ और असहाय हूँ—आत्मकल्याणके मार्गमें आगे आनेवाले मेरे लिये

न रह्या, अर्थात् भगवान्ने तेमना तरक्क रागरहित्वा दृष्टि रडी। ज्ञातपुत्र भगवान्  
अशरण्ण रह्या—संयमनी आराधना भाटे पीण्णनुं शरण्ण न दीधुं, अने गमे तेवा  
प्रतिकूल के अनुकूल परिषद्दो—दुःसह दुःखो आववा छतां पण्ण अडोल रह्या। (१०)

भगवान्ने दीक्षा दीधा पड़ेदां मे वर्षथी पण्ण वधारे समयथी ठंडा पाणीने  
त्याग करी दीधेलो, आ वात सूत्रकार प्रदर्शित करे छे—‘अवि साहिए’ इत्यादि।

भगवान्ने मे वर्षथी पण्ण वधारे समयथी ठंडा पाणीने त्याग करी दीधेलो  
—अर्थात्—ठंडु (कायुं) पाणी पीधेल नडी। आ ऐकत्व—भावनाथी के—“हूँ ऐक छुं  
अने असहाय छुं, आत्मकल्याणना मार्गमां आगण नवावाणा भारा भाटे

शाश्वतिकः पारमार्थिकः सम्बन्धो ममे'—त्यादिरूपामेकत्वभावनामुपगत इत्यर्थः, तथा पिहितार्चः=अर्चा=क्रोधज्वाला पिहिता=उपशमिता येन स तथाविधः, तथा—अभिज्ञातदर्शनः=सम्यक्त्वभावनाभावितः, अत एव शान्तः सन् निष्क्रान्तः=दीक्षां जग्राह ॥ ११ ॥

किञ्च—'पुढविं च' इत्यादि ।

मूलम्—पुढविं च आउकायं, तेउकायं च वाउकायं च ।

पणगा य वीय-हरियाइं, तसकायं च सव्वसो णच्चा ॥ १२ ॥

छाया—पृथिवीं चापूकायं तेजस्कायं च वायुकायं च ।

पनकांश्च बीजहरितानि त्रसकायं च सर्वशो ज्ञात्वा ॥ सू० १२ ॥

टीका—भगवान् पृथिवीं=पृथिवीकायं, अपूकायं, तेजस्कायं, वायुकायं पन-  
कान्=शैवालान्, बीजहरितानि=वनस्पतीन् त्रसकायं च ज्ञात्वा='सर्व एवैते सजी-  
वाः' इत्यवबुध्य सर्वशः=सर्वप्रकारेण तदारम्भे परित्यज्यन् विहरति स्मेत्यर्थः ॥ १२ ॥

इस मार्गमें कोई और दूसरा सहायक नहीं है, मेरा किसीके भी साथ निरन्तर पारमार्थिक संबंध नहीं है" ऐसा विचार कर सदा एकत्व भावनामें तत्पर रहे । क्रोध-कषायकी ज्वालाको प्रभुने उपशमित की । सम्यक्त्वकी भावनासे भावित प्रभुने इसी लिये शान्तचित्त बन दीक्षा अंगीकार की ॥ ११ ॥

और भी—'पुढविं च' इत्यादि ।

भगवान्ने पृथिवीकाय, अपूकाय, तेजस्काय, वायुकाय, शैवाल, और बीज-हरितादिरूप वनस्पतिकाय, एवं त्रसकाय, इन छह कायके जीवोंको " ये सब ही जीवसहित हैं " ऐसा जानकर सर्वप्रकारसे उनके आरंभका परित्याग करते हुए ही विहार किया ॥ १२ ॥

आ मार्गमां केहं भीजे सहायक नथी, मारे केहं नी साथे निरन्तर पारमार्थिक संघंघ नथी" आपो विचार करी प्रभु सदा ऐकत्व भावनामां तत्पर रहेता क्रोधकषायनी ज्वालांने प्रभुजे समावी दीधी डती. सम्यक्त्वनी भावनाथी भावित प्रभुजे आने न माटे शान्तचित्त भनी दीक्षा अंगीकार करेदी (सू० ११)

इरी—'पुढविं च' इत्यादि.

भगवाने पृथ्वीकाय, अपूकाय, तेजस्काय, वायुकाय, शैवाल अने बीज-हरितादिरूप वनस्पतिकाय अने त्रसकाय, आ छ कायना लुवोने "आ भधा लुवसहित छे" ऐवुं लक्ष्मी सर्व प्रकारेथी येना आरंभना परित्याग करतां करेतां न विहार करेवो. (१२)

भगवता पृथिव्यादिषड्जीवनिकायारम्भः परिवर्जितः, इत्याह—‘एयाइं’ इत्यादि ।

मूलम्—“ एयाइं संति ” पडिलेह, चित्तमंताइं से अभिज्ञाय ।

परिवर्जित्य विहरित्था, इय संखाय से महावीरे ॥१३॥

छाया—“ एतानि सन्ति ” प्रतिलेख्य चित्तमन्ति स अभिज्ञाय ।

परिवर्ज्य विहरति स्म इति संख्याय स महावीरः ॥ १३ ॥

टीका—स भगवान् महावीरः “एतानि पृथिव्यादीनि चित्तमन्ति” सन्ति इति प्रतिलेख्य=विचार्य, तद् अभिज्ञाय स्वरूपतो ज्ञात्वा, इति=एवं संख्याय=भेद-प्रभेदाभ्यां सर्वांशतो विज्ञाय, तदारम्भं परिवर्ज्य विहरति स्म ॥१३॥

जीवानां त्रसस्थावरत्वेन भेदमुपदर्श्य तेषां परस्परानुगमनं भवतीति बोधयितुमाह—‘अदु थावरा’ इत्यादि ।

मूलम्—अदु थावरा य तसत्ताए, तसा य थावरत्ताए ।

अदुवा सव्वजोणिया सत्ता, कम्मुणा कप्पिया पुढो वाला ॥ १४ ॥

भगवानके द्वारा पृथिवी आदि छह जीवनिकार्योंका आरंभ त्यक्त हुआ, इसी विषयको सूत्रकार पुनः प्रदर्शित करते हैं—‘एयाइं संति’ इत्यादि।

भगवान् महावीरने इन पृथिवी आदि षड्जीवनिकाय के जीवोंके आरंभका परित्याग यह विचारकर किया कि—“ये समस्त पृथिवी आदिक सचित्त-सजीव हैं”। तथा “इन सबका स्वरूप क्या है?” इसे भी अच्छी तरहसे जानकर एवं इनके भेद और प्रभेदोंका सर्वांशरूपसे मनन कर उनके आरंभसे रहित हो वे प्रभु विहार करते थे ॥१३॥

त्रस और स्थावररूपसे जीवोंके भेदोंको समझाने के लिये सूत्रकार कहते हैं—“अदु थावरा” इत्यादि ।

भगवान द्वारा पृथ्वी विगेरे षड्जीवनिकायानो आरंभ तज्जवामा आवेदो, आ विषयने सूत्रकार पुनः प्रदर्शित करे छे—‘एयाइं संति’ इत्यादि।

भगवान महावीरे आ पृथ्वी विगेरे षड्जीवनिकायाना जिवाना आरंभानो परित्याग ओ विचारने करेदो के ओ अधा सचित्त-सज्जव छे. तथा आ अधानुं स्वप्न शुं छे ? ओने पणु सारी रीते ज्ञाणी ओना भेद आने प्रभेदोने संपूर्ण रीते विचारि ओना आरंभथी रहित थर्ध प्रभु विहार करता हता. (१३)

जिवाना त्रस आने स्थावररूपना भेदोने समजववां भाटे सूत्रकार कहेछे—‘अदु थावरा’ इत्यादि।



છાયા—અથ સ્થાવરાશ્ચ ત્રસતયા, ત્રસાશ્ચ સ્થાવરતયા ।

અથવા સર્વયોનિકાઃ સત્ત્વાઃ કર્મણા કલ્પિતાઃ પૃથગ્ બાલાઃ ॥૧૪॥

ટીકા—અથ=અનન્તરં સ્થાવરાઃ=પૃથિવ્યપ્તેજોવાયુવનસ્પતયઃ ત્રસતયા=કર્મ-પ્રભાવાદ્ દ્વીન્દ્રિયાદિરૂપેણ જાયન્તે, ત્રસાશ્ચ=ત્રસજીવાઃ દ્વીન્દ્રિયાદયશ્ચ સ્થાવરતયા=પૃથિવ્યાદ્યેકેન્દ્રિયરૂપેણ પુનરુત્પદ્યન્તે, અથવા સર્વયોનિકાઃ=સર્વયોનયઃ=ઉત્પત્તિ-સ્થાનાનિ યેષાં તે સર્વયોનિકાઃ=ચતુર્ગતિગન્તારઃ, સત્ત્વાઃ=જીવાઃ, બાલાઃ=મૂઢાઃ, કર્મણા=સ્વોપાત્તેનાષ્ટવિધકર્મણા પૃથક્=પૃથક્ત્વેન-સર્વયોનિગામિત્વેન ચ કલ્પિતાઃ=વ્યવસ્થિતા इति । तथा चोक्तम्—

પૃથિવી, અપ્, તેજ, વાયુ ઓર વનસ્પતિ, યે સઘ સ્થાવરકાય-એકેન્દ્રિય જીવ હૈં । યે કર્મકે પ્રભાવસે દ્વીન્દ્રિયાદિક રૂપસે પરભવમેં ઉત્પન્ન હો જાતે હૈં । દ્વીન્દ્રિય, તેજન્દ્રિય, ચોજન્દ્રિય, ઓર પંચેન્દ્રિય જીવ, યે ત્રસ હૈં, ક્યોં કિ इनके त्रस नामकर्मका उदय रहता है । ये त्रस जीव भी कर्मकी विचित्रतासे स्थावर-पृथिवी आदिक एकेन्द्रियरूपसे दूसरे भवमें उपन्न हो जाते हैं । अथवा-समस्त योनियां हैं उत्पत्तिस्थान जिन्होंकी ऐसे सर्वयोनिक-चतुर्गतिमें भ्रमण करनेवाले-जीव अज्ञानसे आवृत बन अपने-द्वारा उपात्त-ग्रहण किये गये अष्टविध कर्मके प्रभावसे भिन्न-रूपमें सर्व योनियोंमें जाने वाले होते हैं । तात्पर्य यह कि-हरएक भिन्न योनिमें रहा हुआ जीव कर्मके उदयसे परभवमें दूसरी योनिमें जन्म धारण कर सकता है । ऐसा नहीं है कि वह एक ही योनिमें नियमितरूपसे जन्म लेता रहे । सो ही कहा है—

પૃથ્વી, અપ્, તેજ, વાયુ અને વનસ્પતિ, આ બધા સ્થાવરકાય એકેન્દ્રિય જીવ છે. એ કર્મના પ્રભાવથી દ્વીન્દ્રિયાદિક રૂપથી પરભવમાં ઉત્પન્ન થઈ જાય છે. એકેન્દ્રિય, ત્રણેકેન્દ્રિય, ચારેકેન્દ્રિય, પાંચેકેન્દ્રિય જીવ એ ત્રસ છે, કેમકે એમને ત્રસનામકર્મનો ઉદય રહે છે. આ ત્રસ જીવ પણ કર્મની વિચિત્રતાથી પૃથ્વી આદિ સ્થાવર-એકેન્દ્રિય-રૂપથી બીજા ભવમાં ઉત્પન્ન થાય છે. અથવા-સમસ્ત યોનીઓ જેમનું ઉત્પત્તિસ્થાન છે એવા સર્વયોનિક-ચાર ગતિમાં ભ્રમણ કરવાવાળા જીવ અજ્ઞાનથી આવૃત બની પોતપોતાના દ્વારા ઉપાત્ત-ગ્રહણ કરવામાં આવેલ અષ્ટવિધ કર્મના પ્રભાવથી બુઢા બુઢા રૂપમાં સર્વ યોનીઓમાં જાવાવાળા હોય છે. તાત્પર્ય એ છે કે-દરેક યોનીઓમાં રહેલ જીવ કર્મના ઉદયથી પરભવમાં બીજી યોનીમાં જન્મ ધારણ કરી શકે છે. એવું નથી કે એક જ યોનીમાં નિયમિત રૂપથી તે જન્મ લેતો રહે. એ જ કહ્યું છે—

“ રક્ષ્મૂર્મિર્ન સા કાચિચ્છુદ્ધા જગતિ વિદ્યતે ।

વિચિત્રૈઃ કર્મનેપથ્યૈર્યત્ર સત્ત્વૈર્ન નાટિતમ્ ” ॥ ૧ ॥

કિન્ન—‘ભગવં’ इत्यादि ।

મૂલમ્—ભગવં ચ એવમન્નેસિં, સોવહિણ દુ લુપ્પઈ બાલે ॥

કમ્મં ચ સઠ્ઠવસો નચ્ચા, તં પહિયાઙ્ગલ્લે પાવગં ભગવં ॥ ૧૫ ॥

છાયા—ભગવાંથૈવમન્વૈષીત્ સોપધિકઃ એવ લુપ્યતે બાલઃ ।

કર્મ ચ સર્વશો જ્ઞાત્વા તત્ પ્રત્યાખ્યાતિ પાપકં ભગવાન્ ॥ ૧૫ ॥

ટીકા—ભગવાન્ મહાવીરઃ શ્રીવર્ધમાનસ્વામી એવં=વક્ષ્યમાણપ્રકારેણ અન્વૈ-  
ષીત્=અવેદીત્ બાલઃ=મોહમુગતઃ, સોપધિકઃ=ઉપધિના સહ વર્તતે इति સોપધિકઃ—  
દ્રવ્યભાવોપધિયુક્તઃ સન્ લુપ્યત એવ=છિદ્યતે મિથ્યત એવ, કર્મપ્રભાવાત્ કલેશમનુ-  
ભવત્યેવેત્યર્થઃ । તસ્માદ્ ભગવાન્ કર્મ, સર્વપ્રકારેણ જ્ઞાત્વા તત્=કર્મ, પાપકં ચ=  
કર્મનિબન્ધનં સાવચ્છવ્યાપારં ચ પ્રત્યાખ્યાતિ=નિરાકૃતવાન્ ॥ ૧૫ ॥

“ રક્ષ્મૂર્મિર્ન સા કાચિચ્છુદ્ધા જગતિ વિદ્યતે ।

વિચિત્રૈઃ કર્મનેપથ્યૈર્યત્ર સત્ત્વૈર્ન નાટિતમ્ ” ॥ ૧ ॥

જગતમેં એસી કોઈસી ભૂમિ શુદ્ધ નહીં બચી કિ જહાં પર કર્મકી  
વિચિત્ર રચનાસે યુક્ત હસ જીવને અપના નાટક ન કિયા હો ॥ ૧૪ ॥

ફિર મી—‘ભગવં ચ’ इत्यादि ।

ભગવાન શ્રી વર્ધમાન સ્વામીને યહ બાત જાનલી કિ જો અજ્ઞાની  
પ્રાણી દ્રવ્ય ઓર ભાવ ઉપાધિસે યુક્ત હૈં, વે હી કર્મકે પ્રભાવ-ઉદયસે  
છેદે ઓર ભેદે જાતે હૈં, રાત દિન અનેક કલેશોંકા અનુભવ કરતે હી  
રહતે હૈં । ઇસી લિયે પ્રમુને કર્મકા યહ વિચિત્ર પ્રભાવ સર્વપ્રકારસે

“ રક્ષ્મૂર્મિર્ન સા કાચિચ્છુદ્ધા જગતિ વિદ્યતે ।

વિચિત્રૈઃ કર્મનેપથ્યૈ, -ર્યત્ર સત્ત્વૈર્ન નાટિતમ્ ” ॥ ૧ ॥

જગતમાં એવી કોઈ પણ, ભૂમિ શુદ્ધ નથી બચી કે જ્યાં કર્મની વિચિત્ર  
રચનાથી યુક્ત આ જીવે પોતાનું નાટક ન કર્યું હોય. (૧૪)

ફરી—“ભગવં ચ” इत्यादि.

ભગવાન શ્રી વર્ધમાન સ્વામીએ આ વાત બજાવેલી કે જે અજ્ઞાની પ્રાણી  
દ્રવ્ય અને ભાવ ઉપાધિથી યુક્ત છે, તે કર્મના પ્રભાવ-ઉદયથી છેદાય અને ભેદાય  
છે. રાત દિવસ અનેક કલેશોનો અનુભવ કરતા જ રહે છે. આ માટે પ્રભુએ

કિંચ—‘દુર્વિહં’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ—દુર્વિહં સમિચ્ચ મેહાવી, કિરિયામઝ્ઝવાયઽણેલિસં નાણી ।  
આયાણસોયમઙ્ઘવાયસોયં, જોગં ચ સઠ્ઠવસો ણચ્ચા ॥૧૬॥

છાયા—દ્વિવિધં સમેત્ય મેધાવી ક્રિયામાખ્યાતવાન્ અનીદશીં જ્ઞાની ।

આદાનસ્રોતઃ અતિપાતસ્રોતઃ યોગં ચ સર્વશો જ્ઞાત્વા ॥ ૧૬ ॥

ટીકા—મેધાવી=હેયોપાદેયવિવેકવાન્, જ્ઞાની=જ્ઞાનચતુષ્ટયસંપન્નો ભગવાન્  
દ્વિવિધં ઐર્યાપથિક-સાંપરાયિકભેદાદ્ દ્વિપ્રકારકં કર્મ સમેત્ય=અવબુદ્ધ્ય, તથા—  
આદાનસ્રોતઃ=આદીયતે ગૃહ્યતે બદ્ધ્યતે કર્માનેનેત્યાદાનં દુષ્પ્રણિહિતમિન્દ્રિયં, તદ્રૂપં  
સ્રોતઃ=કર્માગમનમાર્ગઃ મિથ્યાત્વાદિરૂપસ્તત્, અતિપાતસ્રોતઃ=પ્રાણાતિપાતાદિરૂપમે

જાનકર ઉસ કર્મકા ઓર કર્મકે કારણભૂત પાપજનક સાવધ વ્યાપારકા  
સદાકે લિયે ત્રિયોગ ઓર ત્રિકરણસે પ્રત્યાખ્યાન કિયા ॥૧૫॥

ઓર મી—‘દુર્વિહં’ ઇત્યાદિ ।

હેય ઓર ઉપાદેયકે જ્ઞાનસે યુક્ત, તથા મતિ, શ્રુત આદિ ચાર જ્ઞાન-  
ધારી ભગવાન શ્રીમહાવીર સ્વામીને ઐર્યાપથિક ઓર સાંપરાયિકકે ભેદસે  
કર્મની દ્વિવિધતા સ્વયં જાનકર, તથા આદાનસ્રોતરૂપ મિથ્યાત્વ આદિ,  
અતિપાતસ્રોતરૂપ પ્રાણાતિપાતાદિ, એવં અશુભ મન વચન ઓર કાયાકો  
“ યે સર્વ સર્વ પ્રકારસે કર્મબંધકે કારણ હૈ ” એસા જાનકર સંયમકા  
અનુષ્ઠાન-પાલન કરનેરૂપ ક્રિયાકા કથન કિયા, અર્થાત્ આચરણ કિયા ।  
જિનકે દ્વારા કર્મોંકા બંધન હો વહ આદાન હૈ, ઓર વહ અશુભરૂપસે

કર્મના એ વિચિત્ર પ્રભાવને જાણી એ કર્મનું અને કર્મના કારણભૂત પાપજનક  
સાવધ વ્યાપારનું સદાને માટે ત્રિયોગ અને ત્રિકરણથી પ્રત્યાખ્યાન કરેલ. (૧૫)

ફરી—‘દુર્વિહં’ ઇત્યાદિ.

હેય અને ઉપાદેયના જ્ઞાનથી યુક્ત તથા મતિ, શ્રુત આદિ ચાર  
જ્ઞાનધારી ભગવાન શ્રી મહાવીર સ્વામીએ ઐર્યાપથિક અને સાંપરાયિકના ભેદથી  
કર્મોની વિવિધતા સ્વયં જાણી, અને આદાનસ્રોતરૂપ મિથ્યાત્વ વગેરે, અતિપા-  
તસ્રોતરૂપ પ્રાણાતિપાતાદિ, એમ જ અશુભ મન વચન અને કાયાને “ એ બધા  
સર્વ પ્રકારથી કર્મ બંધનના કારણ છે ” આવું જાણી સંયમનું અનુષ્ઠાન-પાલન  
કરવારૂપ ક્રિયાનું કથન એટલે આચરણ કર્યું જેનાથી કર્મોનું બંધન થાય છે તે  
આદાન છે, અને તે અશુભરૂપથી પ્રવૃત્ત અનેલ ઇન્દ્રિયોરૂપ હોય છે. કર્મોના આવવાના



યોગં=દુષ્પ્રણિહિતં મનોવાકાયં સર્વશઃ=સર્વપ્રકારૈઃ કર્મબન્ધાય જ્ઞાત્વા અનીદશીમ્=  
ઉત્કૃષ્ટક્રિયાં=સંયમાનુષ્ઠાનરૂપામ્ આખ્યાતવાન્=આચરિતવાનિત્યર્થઃ ॥૧૬॥

કિંચ—‘ અદ્વિત્તિયં ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—અદ્વિત્તિયં અણાઉદ્દિ, સયમન્નેસિં અકરણયાણ ।

જસિસ્ત્થીઓ પરિજ્ઞાયા, સઠ્વકમ્માવહા ડ સે અદક્ષૂ ॥૧૭॥

છાયા—અતિપાતિકામ્ અનાકુદ્દિં સ્વયમન્યેષામ્ અકરણતયા ।

યસ્ય સ્ત્રિયઃ પરિજ્ઞાતાઃ સર્વકર્માવહાઃ તુ સોડ્રાક્ષીત્ ॥૧૭॥

ટીકા—યો ભગવાન્ અતિપાતિકાં=અતિપાપેભ્યઃ=પ્રાણાતિપાતેભ્યોડતિક્રાન્તાં  
પ્રાણ્યુપમર્દનવર્જિતામ્, અનાકુદ્દિમ્=આકુદ્દિહિંસા તદન્યાડનાકુદ્દિઃ=અહિંસા, તામનુ-  
સૂત્ય, સ્વયમન્યેષાં ચ અકરણતયા—સ્વતઃ પરેણ ચ હિંસાપરિવર્જનેન પ્રવૃત્તઃ, તથા—  
યસ્ય ભગવતઃ સ્ત્રિયઃ સર્વકર્માવહાઃ=સર્વવિધકર્મબન્ધમૂલા ઇતિ પરિજ્ઞાતાઃ=જ્ઞ-  
પરિજ્ઞયા જ્ઞાતાઃ પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞયા પરિત્યક્તા ભવન્તિ, સ ભગવાન્ અદ્રાક્ષીત્=  
યથાડવસ્થિતં સંસારસ્વભાવં પરમાર્થતત્ત્વં જ્ઞાતવાન્ ॥૧૭॥

પ્રવર્તિત કી ગઈ ઇન્દ્રિયાંરૂપ હોતા હૈ । કર્મોકે આનેકે માર્ગકા નામ  
સ્રોત હૈ । વહ મિથ્યાત્વ આદિ રૂપ હૈ । આદાનરૂપ સ્રોતકા નામ  
આદાનસ્રોત હૈ ॥૧૬॥

ઔર મી—‘ અદ્વિત્તિયં ’ ઇત્યાદિ ।

પ્રાણાતિપાતરૂપ પાપોંસે રહિત હોનેસે શુદ્ધ ઁસી અહિંસાકા ભગ-  
વાનને સ્વયં અનુસરણ કરકે દૂસરોંસે મી હિંસાદિક કાર્યોંકા પરિવ-  
ર્જન કરાયા । ભગવાનને સર્વ પ્રકારસે કર્મબન્ધકા મૂલ કારણ સ્ત્રીવર્ગ  
કા, જ્ઞ-પરિજ્ઞાસે જાનકર પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞાસે પરિત્યાગ ક્રિયા, ઔર  
યથાવસ્થિત સંસારકા સ્વભાવ મી જાનલિયા ॥ ૧૭ ॥

માર્ગનું નામ સ્રોત છે, તે મિથ્યાત્વ આદિરૂપ છે. આદાનરૂપ સ્રોતનું નામ  
આદાનસ્રોત છે. (૧૬)

ફરી—‘ અદ્વિત્તિયં ’ ઇત્યાદિ.

પ્રાણાતિપાતરૂપ પાપોથી રહિત હોવાથી શુદ્ધ, ઁવી અહિંસાને ભગવાને સ્વયં  
અનુસરણ કરી, બીજાઓને પણ હિંસાદિક કાર્યોના ત્યાગ કરાવ્યો. ભગવાને સર્વ  
પ્રકારથી કર્મબન્ધનું કારણ સ્ત્રી વર્ગને જ્ઞપરિજ્ઞાથી બાણી પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞાથી  
પરિત્યાગ કરી યથાવસ્થિત સંસારના સ્વભાવને બાણી લીધો. (૧૭)

ભગવતો મૂલગુણાનભિધાયોત્તરગુણાનાહ—‘અહાકહં’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—અહાકહં ન સે સેવે, સઠ્વસો કમ્મુણો વંધં અદકવૂ ।

જં કિંચિ પાવગં ભગવં, તં અકુઠ્ઠવંવિયહં મુંજિત્થા ॥૧૮॥

છાયા—યથાકૃતં ન સ સેવતે સર્વશઃ કર્મણો વન્ધમદ્રાક્ષીત્ ।

યત્ કિંચિત્પાપકં ભગવાંસ્તદકુર્વન્ વિકૃતમશુક્લ ॥ ૧૮ ॥

ટીકા—યથાકૃતમ્=યથા યેન પ્રકારેણ પૃથ્વાપૃથ્વા વા સાધુમુદ્દિશ્ય કૃતં યથા-  
કૃતમ્ અધઃકર્માદિકદોષદૂષિતં સર્વશઃ=સર્વપ્રકારેણ, કર્મણા=જ્ઞાનાવરણીયાદિ-  
નાઽઽત્મનો વન્ધમદ્રાક્ષીત્=દૃષ્ટવાન્, તસ્માત્ સ અધઃકર્માદિદોષદૂષિતમાહારં ન  
સેવતે સ્મ । અન્યદપ્પેવમ્ભૂતં ન સેવતે સ્મેત્યાહ—‘યત્ કિંચિત્’ ઇત્યાદિ । યત્  
કિંચિત્’ પાપકં=પાપકારણં, સદોષમન્નાદિકં, તદ્ અકુર્વન્=અસ્વીકુર્વન્ અગૃહ્ણન્  
વિકૃતં=પ્રાસુકમ્ અશુક્લ=સેવતે સ્મ ॥ ૧૮ ॥

કિંચ—‘ળો સેવઈ’ ઇત્યાદિ ।

ભગવાન કે મૂલગુણોંકા કથન કર અવ સૂત્રકાર ઉત્તર ગુણોંકા  
કથન કરતે હૈ—‘અહાકહં’ ઇત્યાદિ ।

પૂછકર અથવા નહીં પૂછકર સાધુકે ઉદ્દેશ્યસે જો કિયા ગયા હો  
ઉસકા નામ યથાકૃત હૈ । યથાકૃત આહારાદિક અધઃકર્માદિદોષોંસે  
દૂષિત રહતા હૈ । ભગવાનને ઇસ યથાકૃત-અધઃકર્માદિદોષદૂષિત  
આહારાદિકા સેવન નહીં કિયા, કારણ કિ “ઇસ પ્રકારસે આહારાદિકે  
સેવનસે આત્મા કર્મોંકા ઉપાર્જન કરતી હૈ, ઓર ઉનકા વંધ કરતી હૈ”  
એસા ભગવાનને અપને જ્ઞાનચક્ષુસે દેખા । ઇસો પ્રકાર ઓર મી  
સદોષ પાપકારણ અન્ન આદિ વસ્તુ ગ્રહણ કરનેકા ભગવાનને ત્યાગ કર  
દિયા । કેવલ વે નિર્દોષ પ્રાસુક હી આહારાદિ લેતે થે ॥૧૮॥

ભગવાનના મૂળગુણોંકા કથન કરી હવે સૂત્રકાર ઉત્તરગુણોંકા કથન કરે છે—  
‘અહાકહં’ ઇત્યાદિ.

પૂછીને અથવા ન પૂછીને સાધુના ઉદ્દેશથી જે કરાયેલ છે તે યથાકૃત  
આહારાદિક છે, જે અધઃકર્માદિ દોષોથી દૂષિત રહે છે. ભગવાને આ યથાકૃત  
અધઃકર્માદિદોષદૂષિત આહારાદિકા સેવન કરેલ નથી, કારણ કે “આવા  
પ્રકારના આહારાદિકના સેવનથી આત્મા કર્મોંકા ઉપાર્જન કરે છે, અને તેનો  
વંધ પણ કરે છે” એવું ભગવાને પોતાના જ્ઞાનચક્ષુથી જોયું. આ રીતના  
બીજા પણ સદોષ પાપકારણવાળા અન્ન આદિ વસ્તુ ગ્રહણ કરવાનો ભગવાને ત્યાગ  
કર્યો, તેઓ ફક્ત નિર્દોષ પ્રાસુક જ આહારાદિક લેતા હતા. (૧૮)

मूलम्—णो सेवइ य परवत्थं, परपाए वि से ण भुंजित्था।

परिवज्जियाण ओमाणं, गच्छइ संखडिमसरणाए ॥१९॥

छाया—नो सेवते च परवत्थं, परपात्रेऽपि स नाशुङ्क्त।

परिवर्ज्यापमानं गच्छति संखडिमशरणाय ॥ १९ ॥

टीका—स=भगवान् परवत्थं न सेवते=न गृह्णाति, अपि च परपात्रेऽपि नाशुङ्क्त, अपमानं परिवर्ज्य=अगणयित्वा अशरणाय=संयमाराधनार्थमदीनमनस्कः सन् संखण्डि=संखण्ड्यन्ते उपमर्द्यन्ते प्राणिनो यत्र तां संखडिम्=आहारपाकस्थानं गच्छति=जगामेत्यर्थः। अत्र संखडि-शब्देन ज्ञातिभोजनरूपोऽर्थो न गृह्यते, तस्याः शास्त्रे निषिद्धत्वात् ॥ १९ ॥

किञ्च—‘मायण्णे’ इत्यादि।

मूलम्—मायण्णे असणपाणस्स, नाणुगिद्धे रसेसु अपडिद्धे।

अच्छिं पि नो पमाजिजा, नो वि य कंढूयए मुणीगायं॥२०॥

छाया—मात्राज्ञोऽशनपानस्य, नानुगृह्यो रसेषु अप्रतिज्ञः।

अक्षिणी अपि नो प्रमार्जयति, नापि च कण्डूयते मुनिर्गात्रम् ॥ २०॥

और भी—‘णो सेवइ’ इत्यादि।

भगवानने दूसरोंका वस्त्र अपने उपयोगमें नहीं लिया, और न दूसरोंके पात्रमें भोजन ही किया। अपने अपमानका ख्याल न कर, स्वयं भगवान संयम आराधनाके निमित्त अदीनमन होकर आहारके पाकस्थान (गृहस्थोंके यहां आहार बनानेके भोजनघर) में जाते थे। भगवानने यह ख्याल नहीं किया कि आहार लेनेके लिये जानेमें मेरा अपमान है। ऐसा करनेसे ही संयमकी अच्छी तरहसे पालना होती है, ऐसी भावनासे वे स्वयं आहार लेने जाया करते थे ॥ १९ ॥

श्री—‘णो सेवइ’ इत्यादि।

भगवाने भीष्मयोनां वस्त्रोने पोताना उपयोगमां नथी लीधां. तेमज्ज भीष्मना पात्रमां भोजन पणु कीधुं नथी. पोताना अपमाननो ज्ज्याल कर्था विना भगवाने पोते संयम आराधनाना निमित्त अदीनमन भनीने गृहस्थोने त्यां तेमना भोजनगृहे जाता हुता. आमां भगवाने ज्येवा ज्ज्याल नथी कर्था के आहार देवा ज्वामां माइ अपमान थाय छे. आहुं करवाथोज संयमनी सारी रीते पालना थाय छे. ज्येवा लावनार्थीज तेजो जाते आहार देवा जाता हुता. (१६)



ટીકા—અશનપાનસ્ય માત્રજ્ઞઃ=પરિમાણજ્ઞઃ । તથા રસેષુ=મધુરાદિષુ નાનુગૃહ્ઃ =અનાસક્તઃ, ગૃહસ્થાવસ્થાયામપિ રસગૃહ્નિરહિતત્વાદિતિ ભાવઃ, અત એવ અપ્રતિજ્ઞઃ રસવિશેષપ્રતિજ્ઞાવર્જિતઃ, ‘‘ અથ મયા મોદકા એવ ગ્રાહ્યાઃ ’’ ઇત્યાદિરૂપા પ્રતિજ્ઞા ભગવતો નાસીત્, કિન્તુ શીતલપર્યુષિતપિણ્ડનીરસપુરાણકુલત્થાદિકે સપ્રતિજ્ઞ એવ । તથા—અક્ષિણી અપિ રજઃકળકાદિનિરસારણાય ન પ્રમાર્જયતિ, અપિ ચ મુનિઃ=સર્વ-જીવસમભાવો ભગવાન્ ગાત્રં ન કળ્પ્યતે દંશમશકાદિદંશનેઽપિ હસ્તાદિના શરીર-સંઘર્ષણં ન કૃતવાનિત્યર્થઃ ॥ ૨૦ ॥

ફિર મી—‘માયળ્ણે’ ઇત્યાદિ ।

‘ભગવાન સદા અશનાદિકકા સેવન માત્રાનુસાર હી કિયા કરતે થે, ક્યોં કિ વે સ્વયં ‘ઇન્હેં કિતની માત્રામેં લેના ચાહિયે’ ઇસ વિષયસે પરિચિત થે । તથા પ્રભુ કમી મી કિસી મી રસમેં ગૃહ્ નહીં બને । ગૃહસ્થ અવસ્થામેં મી ચે રસગૃહ્નિસે રહિત રહે, ઇસી લિયે ‘ભગવાન્ કિસી રસવિ શેષકે લેનેકી પ્રતિજ્ઞા અંગીકૃત નહીં કી । “ આજ મેં મોદક હી ખાઝુંગા ” ઇત્યાદિ પ્રકારકી પ્રતિજ્ઞા ભગવાનને કમી મી ધારણ નહીં કી । શીતલ, પર્યુષિત પિણ્ડ ઓર નીરસ પુરાની કુલથી આદિકે આહાર લેનેમેં તો વે નિયમયુક્ત હી રહે । ભગવાનને અપની આંખોમેં ગિરે હુણ રજકે કળોંકો નિકાલનેકે નિમિત્ત આંખોંકો કમી કહીં ન મસલતે ઓર ન દંશમશકાદિકકે કાટને પર શરીરકો યજાતે થે ॥ ૨૦ ॥

ફરી—‘માયળ્ણે’ ઇત્યાદિ.

ભગવાન સદા અશનાદિકકુલું સેવન માત્રાનુસાર જ કરતા હતા, કેમ કે તેઓ સ્વયં ‘એને કેટલી માત્રાથી લેવાં જોઈએ’ તેનાથી પરિચિત હતા, તથા પ્રભુ ક્યારેય પણ કોઈપણ રસમાં ગૃહ્નિવાળા થયા નથી. ગૃહસ્થ અવસ્થામાં પણ તેઓ રસગૃહ્નિથી અલિપ્ત રહ્યા હતા. આ કારણે ભગવાને કદી કોઈ રસ વિશેષને લેવાની પ્રતિજ્ઞા અંગીકૃત કરેલ ન હતી. “ આજ હું લાડુ જ ખાઈશ ” ઇત્યાદિ પ્રકારની પ્રતિજ્ઞા ભગવાને કદિ પણ ધારણ કરેલ ન હતી. શીતળ, પર્યુષિત-પિંડ અને જુની કળથી વગેરેનો આહાર લેવામાં તો તેઓ પ્રતિજ્ઞાવાળા જ રહ્યા, ભગવાને પોતાની આંખોમાં પડેલા રજકણોને બહાર કાઢવા નિમિત્તે પણ આંખોને કદિ મસળી ન હતી, તેમ ડાંસ, મચ્છરના કર-ડવાથી શરીરને કદિ પણ ખંજવાળેલ નથી. (૨૦)

अन्यच्च—‘अप्पं तिरियं’ इत्यादि ।

मूलम्—अप्पं तिरियं पेहाए, अप्पं पिट्टओय पेहाए ।

अप्पं बुइए पडिभासी, पंथपेही चरे जयमाणे ॥२१॥

छाया—अल्पं तिर्यक् प्रेक्षते, अल्पं पृष्ठतः प्रेक्षते ।

अल्पमुक्तः प्रतिभाषी, पथिप्रेक्षी चरति यतमानः ॥ २१ ॥

टीका—भगवान् मार्गे गच्छन् तिर्यक्=तिरश्चीनम् अल्पं प्रेक्षते=न पश्यति स्म । अत्राल्पशब्दो निषेधार्थकः । तथा पृष्ठतोऽपि अल्पं प्रेक्षते । उक्तः=केनापि पृष्ठः सन् अल्पं प्रतिभाषी=न ब्रवीति स्म, किन्तु पथिप्रेक्षी=पन्थानं=स्वशरीर-परिमितां पुरोवर्त्तिनीं भूमिं प्रेक्षितुं=द्रष्टुं शीलमस्येति स तथोक्तः यतमानः=यतनां कुर्वाणः सन् चरति=विहरति स्म ॥ २१ ॥

पुनश्च—‘सिसिरंसि’ इत्यादि ।

मूलम्—सिसिरंसि अद्धपडिवन्ने, तं वोसिज्ज वत्थमणगारे ।

पसारित्तु बाहू परक्कमे, नो अवलंबियाण खंधंमि ॥२२॥

छाया—शिशिरेऽध्वप्रतिपन्न, स्तद् व्युत्सृज्य बल्लमनगारः ।

प्रसार्य बाहू पराक्रमते, नो अवलम्ब्य स्कन्धे ॥ २२ ॥

और भी—‘अप्पं तिरियं’ इत्यादि ।

भगवानने मार्गमें विहार करते समय न तिरछा देखते और न पीछे ही देखते, किन्तु अपने शरीरप्रमाण भूमिका ही सामने निरीक्षण करते । विहारमें किसीके पूछने पर भी प्रभु किसीसे कुछ नहीं बोलते थे, और यतनाचारपूर्वक ही प्रभु विहार करते थे ॥ २१ ॥

फिर भी—‘सिसिरंसि’ इत्यादि ।

इरी पणु—“ अप्पं तिरियं ” इत्यादि.

भगवान् मार्गमां विहार करती वपते आहुं अवणुं जेता न हुता, तेम पाछण पणु इरीने जेता न हुता, पणु पोताना शरीरप्रमाण भूमिने न जेधने जालता. विहारमां कोधना पूछवा उपर पणु प्रभु कोधथी जालता न हुता अने यतनाचारपूर्वक प्रभु विहार करता हुता. (२१)

इरी—‘सिसिरंसि’ इत्यादि.

ટીકા—અધ્વપ્રતિપન્નઃ=માર્ગારૂઢઃ અનગારો=ભગવાન્ શિશિરે=શીતકાલે તદ્ વસ્ત્રં વ્યુત્સૃજ્ય=પરિત્યજ્ય વાહુ=ભુજૌ સ્કન્ધભાગે નો અવલમ્બ્ય=શીતવાધાનિવા-  
રણાર્થં ન સંસ્થાપ્ય, કિન્તુ પ્રસાર્ય=વાહુદ્વયં વિસ્તાર્ય ચ પરાક્રમતે=પરીષહસહનાય  
યતતે સ્મ ॥ ૨૨ ॥

ઉપસંહરન્નાહ—‘એસ વિહી’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—એસ વિહી અણુવકંતો, માહ્ણેણ મઙ્ગમયા ।

વહુસો અપડિન્નેણ, ભગવયા એવં રીયંતિ-ત્તિવેમિ ॥૨૩॥

છાયા—એષ વિધિરનુક્રાન્તો માહ્ણેણ મતિમતા ।

વહુસોઽપતિજ્ઞેન ભગવતા, એવં રીયંતે, ઇતિ બ્રવીમિ ॥ ૨૩ ॥

ટીકા—માહ્ણેણ=યઃ સ્વયં હનનનિવૃત્તઃ સન્ પરં પ્રતિ ‘મા હન મા હન’ ઇત્યેવં  
વદતિ, સ માહ્ણસ્તેન, મતિમતા=હેયોપાદેયપ્રજ્ઞાવતા વહુસોઽપતિજ્ઞેન=સર્વથા નિદાન-

માર્ગારૂઢ-વિહારમેં રહે હુએ-ભગવાનેને ઉસ વસ્ત્રકા શીતકાલમેં  
પરિત્યાગ કર દિયા । શીતકો દૂર કરનેકે લિયે ઉન્હોનેં અપને દોનોં  
હાથોંકો કંધોં પર નહીં રચ્વા, અર્થાત્ શીતસે પીડિત હોને પર લોગ  
દાચે હાથકો વાંચે કંધે પર ઓર વાંચે દાથકો દાહિને કંધે પર દવા કર  
રચ્વેલેતે હૈં, ઇસસે શીતવાધા સતાતી નહીં હૈ, સો પ્રભુને શીતવાધાકી  
નિવૃત્તિકે લિયે વસ્ત્ર ત્યાગકરકે ખી એસા નહીં કિયા, પ્રત્યુત દોનોં  
ભુજાઓંકો ઝંચી કરકે વે શીત-પરીષદ્કો સહન કરતે થે ॥૨૨॥

ઉપસંહાર કરતે હુએ કહતે હૈં—‘એસ વિહી’ ઇત્યાદિ ।

સ્વયં હનનાદિકાર્યોંસે નિવૃત્ત હોકર દૂસરોંકો ખી ‘મા હન, મા હન-  
‘મત મારો, મત મારો’ ઇસ પ્રકાર કહકર ઉનસે નિવૃત્ત કરાને વાલે, તથા

માર્ગારૂઢ-વિહારમાં રહેતા-ભગવાને એ વસ્ત્રને ઠંડીના સમયે ત્યાગ કરી  
દીધેલ, ઠંડીને દૂર કરવા માટે તેઓએ પોતાના બન્ને હાથોને ખાંધ ઉપર  
રાખ્યા નથી, અર્થાત્ ઠંડીથી પિડાતી વખતે ઢોઢો ડાબા હાથને જમણા કાંધ  
પર અને જમણા હાથને ડાબા કાંધ ઉપર રાખે છે, જેથી ઠંડીની પીડા એને  
સતાવતી નથી, પરંતુ પ્રભુએ ઠંડીથી બચવા વસ્ત્રત્યાગ કર્યા પછી પણ એમ કરેલ ન  
હતું, પરંતુ બન્ને હાથોને ઉંચા કરી તેઓ શીત-પરીષદને સહન કરતા હતા. (૨૨)

ઉપસંહાર કરતાં કહે છે—‘એસ વિહી’ ઇત્યાદિ.

સ્વયં હણુવાદિક કાર્યોથી નિવૃત્ત બની બીજાઓને પણુ મા હન-મા હન-“મારો  
નહિ, મારો નહિ” આ પ્રકારનું કહીને તેનાથી નિવૃત્ત કરાવનાર, તથા હેય અને



रहितेन भगवता=श्रीवर्धमानस्वामिना एषः=प्रागुक्तः विधिः=आचारः अनुक्रान्तः= अनुसेवितः, एवम्=अनेन विधिनाऽन्येऽपि मोक्षसाधकाः साधवः सकलकर्मक्षयार्थं रीयन्ते=विहरन्ति संयममार्गे विहरेयुरिति भावः। 'इति ब्रवीमि' अस्य व्याख्या पूर्ववत् ॥ २३ ॥

॥ नवमाध्ययनस्य प्रथम उद्देशः समाप्तः ॥ ९-१ ॥

हेय और उपादेयके विवेकसे युक्त, एवं सर्वथा अप्रतिज्ञ-निदानरहित, ऐसे श्रीवर्धमानस्वामीने यह पूर्वोक्त आचार स्वयं पालन किया, अतः इसी तरहसे अन्य मोक्षसाधक साधुजन भी अपने समस्त कर्मोंका नाश करनेके लिये संयममार्गमें विचरण करे, अर्थात् इसी प्रकारसे इस विधिका पालन कर अन्य मोक्षार्थी मुनि भी अपने कर्मोंका नाश करनेके लिये संयम-मार्गमें लवलीन बनें। "इति ब्रवीमि" इन पदोंकी व्याख्या पहिले की गई व्याख्याकी तरह जान लेनी चाहिये ॥२३॥

॥ नववें अध्ययनका प्रथम उद्देश समाप्त ॥ ९-१ ॥

उपादेयना विवेकथी युक्त अने सर्वथा अप्रतिज्ञ-निदानरहित जेवा श्री वर्धमान स्वामीजे आ पूर्वोक्त आचार स्वयं पालन करैल. जेटले आ रीते जीन मोक्षसाधक ( मोक्षना अबिलाषी ) साधुजन पण पोताना समस्त कर्मोना नाश करवा भाटे विचरण करे. अर्थात्—जेवा प्रकारथी जेवी विधिन पालन करी जीन मोक्षार्थी मुनि पण पोताना कर्मोना नाश करवा भाटे संयममार्गमां लवलीन जने " इति ब्रवीमि " आ पदोनी व्याख्या अगाडिना अध्ययनोमां कडेवाया प्रमाणे समजवी जेथ जे. ( २३ )

नवमा अध्ययननो प्रथम उद्देश समाप्त ॥ ९-१ ॥

। અથ નવમાધ્યયનસ્ય દ્વિતીય ઉદ્દેશઃ ।

इहानन्तरप्रथमोद्देशके महावीरस्य भगवतो विहारः कथितः, तत्र शय्याऽऽसनानि यथा तस्याऽऽसन् तद्बोधनार्थं द्वितीयोद्देशकं कथयति । तत्र जम्बूस्वामी श्रीसुधर्मस्वामिनं पृच्छति—‘चरियासणाइं’ इत्यादि ।

मूलम्—चरियासणाइं सिजाओ, एगइयाओ जाओ बुइयाओ ।

आइक्ख ताइं सयणासणाइं, जाइं सेवित्था से महावीरो ॥१॥

छाया—चर्यासनानि शय्या एकिका या उक्ताः ।

आख्याहि तानि शयनासनानि यानि सिषेवे स महावीरः ॥ १ ॥

टीका—‘चरिया’ इति लुप्तविभक्तिकमिदम् । चर्यायां=विहारावस्थायां यानि आसनानि, याश्च, शय्या एकिकाः=एकैकप्रकारा विभिन्नरूपाः पूर्वम् उक्ताः, यानि शयनासनानि स=लोकत्रयप्रसिद्धः भगवान् महावीरः श्रीवर्धमानस्वामी सिषेवे तानि आख्याहि, इति ॥१॥

नववें अध्ययनका दूसरा उद्देश ।

इस नवम अध्ययनके प्रथम उद्देशमें श्री महावीर प्रभुका विहार वर्णित किया जा चुका है । उस विहारमें प्रभुकी शय्या और आसन जिस प्रकारके थे उन्हें समझानेके लिये सूत्रकार इस द्वितीय उद्देशका प्रारंभ करते हैं । यहां जम्बूस्वामी श्रीसुधर्मास्वामीसे पूछते हैं—‘चरियासणाइं’ इत्यादि ।

भगवन् ! यह तो कहिये कि भगवान् श्री महावीरने विहार करते समय जिन २ शय्या और आसनोंका सेवन किया है ये एक ही प्रकारके थे या भिन्न २ प्रकारके ॥१॥

નવમા અધ્યયનનો બીજો ઉદ્દેશ

આ નવમા અધ્યયનના પ્રથમ ઉદ્દેશમાં શ્રી મહાવીર પ્રભુના વિહારનું વર્ણન કરવામાં આવેલ છે. એ વિહારમાં પ્રભુની શય્યા અને આસન બે પ્રકારનાં હતાં એ સમજાવવા માટે સૂત્રકાર આ બીજા ઉદ્દેશનો પ્રારંભ કરે છે. અહિં જમ્બૂસ્વામી શ્રી સુધર્મા સ્વામીને પૂછે છે—‘ચરિયાસણાઈ’ ઇત્યાદિ.

ભગવન્ ! એ તો બતાવો કે ભગવાન શ્રી મહાવીરે વિહાર કરતી વખતે બે બે શય્યા અને આસનનું સેવન કરેલ તે એક જ પ્રકારનાં હતાં કે બુદ્ધા પ્રકારનાં ? (૧)

एवं पृष्ठः श्रीसुधर्मास्वामी जम्बूस्वामिनं प्रत्याह—‘ आवेसण० ’ इत्यादि ।

मूलम्—आवेसणसभापवासु, पणियशालासु एगया वासो ।

अदुवा पलियट्टाणेसु, पलालपुंजेसु एगया वासो ॥२॥

छाया—आवेशनसभाप्रपासु पण्यशालासु एकदा वासः ।

अथवा पलितस्थानेषु पलालपुञ्जेषु एकदा वासः ॥२॥

टीका—एकदा=कदाचित्, आवेशनसभाप्रपासु=आ=समन्ताद् विशन्ति यत्र, तदावेशनम्=शून्यगृहम्, सभा=ग्रामनगरवासिनां लोकानामास्थायिकार्थमागन्तुकानां शयनार्थं च या कुड्याद्याकृतिर्ग्रामवासिभिर्नगरवासिभिश्च क्रियते सा सभा, प्रपा=पानीयशाला, आवेशनं च, सभा च, प्रपा च, एवमितेतरयोगद्वन्द्वः—आवेशनसभाप्रपास्तासु, तथा कदाचित्—पण्यशालासु=आपणेषु भगवतो वासः अभूत् । अथवा—कदाचित् पलितस्थानेषु=पलितमिव पलितं=कर्म तस्य स्थानानि कर्मस्थानानि कर्मा-

इस प्रकार पृष्ठे जाने पर श्री सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीसे कहते हैं—  
‘ आवेसण ’ इत्यादि ।

उन त्रिलोकप्रसिद्ध श्री महावीर भगवानकी शय्या और आसन सब भिन्न२ प्रकार के थे । वे कभी आवेशन-शून्यगृहमें, कभी सभा-नगर या ग्रामवासियोंद्वारा नगर और ग्रामके लोगोंको बैठनेके लिये और पथिकोंको सोनेके लिये जो कुड्याकृति-आस्थाई (चोरा) बनाई हुई होती है उसमें, कभी२ प्याऊ-पानीकी शाला-में कभी२ पण्यशाला-दुकानोंमें, या पलिस्तथान-लुहारकी शालामें और कभी२ पलालकी बनी हुई झोंपडीमें निवास करते थे । “ पलियट्टाणेसु ” की संस्कृत छाया “पलितस्थानेषु” है । इसका अर्थ “पलितमिव पलितं=कर्म, तस्य स्थानं कर्मस्थानं=कर्मादा-

आ रीते पुछवाथी श्री सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीने कहे छे—‘ आवेसण ’ इत्यादि.

ते त्रयु लोकां प्रसिद्ध श्री महावीर भगवाननी शय्या अने आसन जुहा जुहा प्रकारनां हुतां तेओ क्यारेक उज्ज धरमां, कही सभा-नगर अथवा ग्रामवासीओओ लोकेने भेसवा माटे अने मुसाइरेने उतरवा माटे अनावेल सार्वज-निक आशमगुहोमां, क्यारेक परवोमां, क्यारे-क्यारेक कोष् दुकानोमां अथवा लुहारनी कोडमां अने क्यारेक पराणनी अनावेली जुंपडीमां निवास करेवो. “पलियट्टाणेसु” नी संस्कृत छाया “पलितस्थानेषु” छे. आनो अर्थ—पलितमिव



दानस्थानानि 'कारखाना' इति प्रसिद्धानि, तेषु लोहकारादिशालादिषु, तथा कदाचित् पलालपुञ्जेषु=पलालनिर्मितकुटीरेषु तस्य वासः अभूत् ॥२॥

किञ्च—'आगंतारे' इत्यादि ।

मूलम्—आगंतारे आरामागारे, तह य णगरे वि एगया वासो ।

सुसाणे सुण्णगारे वा, रुक्खमूले वि एगया वासो ॥३॥

छाया—आगन्त्रगारे आरामागारे तथा च नगरेऽपि एकदा वासः ।

श्मशाने शून्यागारे वा, वृक्षमूलेऽपि एकदा वासः ॥३॥

टीका—एकदा=कदाचित् आगन्त्रागारे=आगन्तृभ्यः अगारम् आगन्त्रगारं ग्रामान्नगराद् वा बहिरागन्तुकजननिवासार्थं गृहं धर्मशालेत्यर्थः, तस्मिन् भगवतो वासः =अवस्थानं बभूव । एकदा=कदाचित् आरामागारे=आरामः=उपवनं तत्रागारं=गृहं तस्मिन्, तथा कदाचित् नगरेऽपि=नगरमध्येऽपि तस्य वासो बभूव । तथा एकदा श्मशाने वा, अथवा शून्यागारे=शून्यगृहे कदाचित् वृक्षमूलेऽपि=वृक्षतलेऽपि भगवतो वासो बभूव ॥३॥

नस्थानं " इस व्युत्पत्तिके अनुसार कर्मों के आदानका स्थानभूत-कार-खाना भी होता है । पलाल-एक तरहका घास होता है ॥२॥

और भी—'आगंतारे' इत्यादि ।

कभी२ वे प्रभु ग्राम तथा नगरसे बाहर बनी हुई धर्मशालामें उतरते तो कभी २ बगीचामें ठहरते । कभी नगरमें तो कभी श्मशानमें, कभी किसी शून्यघरमें तो कभी किसी वृक्षके नीचे ही रहजाते । इस प्रकार प्रभुके ठहरनेका कोई नियमित स्थान नहीं था, जहां अवसर देखते वहां प्रासुक स्थानमें ठहर जाते ॥ ३ ॥

पलितं, कर्म, तस्य, स्थानं=कर्मस्थानं, कर्मादानस्थानं आ व्युत्पत्ति अनुसार कर्मोना आदाननुं स्थान-कारणानुं पणु थाय छे त्यां. पशण आ अेक ज्ञातनुं धास छे. (२)

इरी—"आगंतारे" इत्यादि

क्यारेक क्यारेक प्रभु गाम अथवा तो शहरनी भडार भनेली धर्मशा-  
लाओमां उतरता तो क्यारेक भगीचांमां रोकाता. क्यारेक नगरमां तो क्यारेक  
श्मशानमां, क्यारेक उज्जड धरोमां तो क्यारेक कोर्ध वृक्षना नीचे २ डी  
जता. आ रीते प्रभुना रोकावानुं कोर्ध नियमित स्थान न हुतुं, ज्यां अवसर भजतो  
त्यां प्रासुक स्थानमां रोकाध जता. (३)

भगवान् कियन्तं कालं यावत् तपःसंयमाराधनं कृतवानिति जिज्ञासायामाह—  
'एएहिं मुणी' इत्यादि ।

मूलम्—एएहिं मुणी सयणे हिं, समणे आसि पतेरसवासे ।

राइंदियंपि जयमाणे, अप्पमत्ते समाहिण् झाइ ॥४॥

छाया—एतेषु मुनिः शयनेषु श्रमणः आसीत् प्रत्रयोदशवर्षाणि ।

रात्रिदिवमपि यतमानः अप्रमत्तः समाहितो ध्यायतिः ॥४॥

मुनिः=भगवान् महावीरः श्रीवर्धमानस्वामी एतेषु=प्रागुक्तेषु शयनेषु=वसतिषु  
प्रत्रयोदशवर्षाणि=प्रकर्षेण=किंचिदधिकार्धभागेन त्रयोदशं येषु तानि तथाभूतानि  
वर्षाणि, सार्धपञ्चमासन्यूनत्रयोदशवर्षाणीत्यर्थः; रात्रिदिवमपि=अहर्निशं, यतमानः  
=संयमाराधनपरायणः, श्रमणः=तपसि समुद्युक्त आसीत् । तथा-अप्रमत्तः निद्रादि-  
प्रमादपरिवर्जितः समाहितः=विस्रोतसिकारहितः सन् ध्यायति धर्मध्यानमिति ॥४॥

किञ्च—'णिदं पि नो' इत्यादि ।

मूलम्—णिदं पि नो पगामाए, सेवइ भगवं उट्टाए ।

जग्गवइ य अप्पाणं, ईसिंसाई आसि अपडिन्ने ॥५॥

छाया—निद्रामपि नो प्रकामतया सेवते भगवान् उत्थाय ।

जागरयति चात्मानं ईषच्छायी आसीत् अप्रतिज्ञः ॥ ५ ॥

भगवानने कितने समयतक तप और संयमका आराधन किया ?  
इस प्रकारकी जिज्ञासाका समाधान करते हुए सूत्रकार कहते हैं—  
'एएहिं' इत्यादि ।

विहार अवस्थामें श्रमण भगवान् महावीर इन पूर्वोक्त वसतियोंमें  
तेरह वर्षसे कुछ कम अर्थात्—साढेबारह वर्ष और पन्द्रह दिन—रहे । वे  
रात और दिन संयमकी आराधना करते हुए तपश्चर्यामें तत्पर रहे, और  
प्रमादरहित होकर समाधिभावयुक्त वे सदा धर्मध्यानमें तत्पर रहे ॥४॥

और भी—'णिदं पि नो' इत्यादि ।

भगवाने डेटला समय सुधी तप अने संयमनी आराधन करी ? आ  
प्रकारनी जिज्ञासानुं समाधान करतां सूत्रकार कहे छे—'एएहिं' इत्यादि.

विहार अवस्थामां श्रमणु भगवान् श्री महावीर वस्तीयोमां १३ तेर  
वर्षधी थोडा थोछो समय रह्या डेटा तेओ रातदिवस संयमनी आराधना करतां  
करतां तपश्चर्यामां तत्पर रहेटा अने प्रमादरहित थर्थ समाधिभावयुक्त धर्म-  
ध्यानमां सदा ओकइय अनी रहेटा. (४)

इरी—'णिदं पि नो' इत्यादि.

टीका—भगवान्=महावीरः श्रीवर्धमानस्वामी प्रकामतया निद्रामपि नो सेवते, निद्राधीनो न बभूवेत्यर्थः । चकारस्त्वर्थे, किन्तु उत्थाय=निद्रासमागमनकाले सावधानीभूय आत्मानं जागरयति=तपःसंयमाराधने प्रवर्तयति । अप्रतिज्ञः=स्वाप-प्रतिज्ञारहितः ईषच्छाया=छद्मस्थावस्थाया अन्तिमरात्रावन्तर्मुहूर्तमात्रकालस्वप्नदर्शी आसीत्=अभूत् ॥५॥

किञ्च—‘संबुज्झमाणे’ इत्यादि ।

मूलम्—संबुज्झमाणे पुनरपि, आसिंसु भगवं उट्टाए ।

निक्खम्म एगया राओ, बहि चंकमिया मुहुत्तागं ॥६॥

छाया—संबुध्यमानः पुनरपि आसिष्ट भगवान् उत्थाय ।

निष्क्रम्यैकदा रात्रौ बहिश्चङ्क्रम्य मुहूर्तकम् ॥ ६ ॥

टीका—पुनरपि भगवान् श्रीवर्धमानस्वामी संबुध्यमानः=निद्रादोषं सम्यग् जानन् ‘निद्रा कर्मबन्धस्य कारणमस्ती’—त्यक्वगच्छन् निद्रासमागमनकाले संयमोत्थानेन उत्थाय एकदा=कदाचित् शीतकाले रात्रौ बहिर्निष्क्रम्य=बहिर्नि-

भगवान् श्री महावीर प्रभुने अधिक निद्राका सेवन नहीं किया, अर्थात् वे निद्राके अधीन नहीं हुए । जिस समय निद्रा आनेका समय होता था उस समय वे सावधान होकर अपनी आत्माको तप और संयमकी आराधना करनेमें लगा देते थे । ये स्वाप-सोनेकी प्रतिज्ञासे रहित थे । छद्मस्थावस्थाकी अन्तिम रात्रिमें अन्तर्मुहूर्तकालमात्र ही स्वप्नदर्शी बने ॥ ५ ॥

और भी—‘संबुज्झमाणे’ इत्यादि ।

श्री वीरप्रभु निद्राके आधीन नहीं हुए, क्यों कि यह वे जानते थे कि निद्रा कर्मबन्धका कारण है । यदि कभी निद्रा आने लगती तो शीत-

भगवान् श्रीमहावीर स्वामीये कही अधिक निद्रातुं सेवन कथुं नथी, अर्थात् तेजो निद्राने आधीन अन्या नथी. वे समये निद्रा आववानो समय होय ये समये सावधान अनि पोताना आत्माने तप अने संयमनी आराधनामां लगाडी हेता हुता. तेजो स्वाप-सुवानी प्रतिज्ञाथी रहित हुता, छद्मस्थावस्थानी छेवली रात्रे अन्तर्मुहूर्तकालमात्रमां स्वप्नदर्शी अन्या. (५)

श्री—‘संबुज्झमाणे’ इत्यादि.

निद्राने श्री महावीर प्रभु कर्म बंधन का कारण मानीने तेने त्याग करता हुता. कयादे निद्रा आवती तो शीतकालनी रात्रीमां भकान गहार न्ह मुहूर्त मात्र धर्मध्यानमां तत्पर अनि निद्राना विजेता अनता. (६)



गत्य मुहूर्तकं=मुहूर्तमात्रं चङ्क्रम्य=ध्याने विहृत्य धर्मध्यानावस्थितो भूत्वेत्यर्थः  
आसिष्ट-उपाविशत्-निद्रां परिवर्जयामासेति भावः । १६ ॥

किञ्च--'सयणेहि' इत्यादि।

मूलम्-सयणेहि तस्सुवसग्गा, भीमा आसी अणेगरूवा य ।

संसर्पगा य जे पाणा; अदुवा जे पक्खिणो उवचरन्ति॥७॥

छाया--शयनेषु तस्योपसर्गा भीमा आसन् अनेकरूपाश्च ।

संसर्पकाश्च ये प्राणा अथवा पक्षिण उपचरन्ति ॥ ७ ॥

टीका--शयनेषु=शय्यते=स्थीयते विविधासनादिभिर्यत्र तानि शयनानि  
आश्रयस्थानानि, तेषु तस्य भगवतः श्रीवर्धमानस्वामिनः भीमाः=घोराः अनेकरूपा  
उपसर्गा आसन्=उपस्थिता बभूवुः। तथा-ये संसर्पकाः=सरीसृपाः शून्यगृहादौ  
सर्पनकुलादयः, प्राणाः=प्राणिनः, अथवा-ये पक्षिणः=श्मशानादौ गृध्रादयस्तेऽपि  
उपचरन्ति=नानाविधमुपसर्गं कुर्वन्ति स्म, तद्वात्रचर्ममांसादिकं कृन्तन्ति स्मेत्यर्थः॥७॥

किञ्च--'अदु कुचरा' इत्यादि।

कालकी रातमें मकानसे बाहर जाकर मुहूर्तमात्र धर्मध्यानमें तल्लीन  
होकर वे उस निद्रा पर विजय प्राप्त कर लेते ॥६॥

और भी--'सयणेहि' इत्यादि ।

शयनोंमें-आश्रयभूत स्थानोंमें उन वीर प्रभुके ऊपर घोर उपसर्ग  
उपस्थित होते थे। कभी २ शून्य घरमें रहने पर सरीसृप-सर्प नकुल  
आदि प्राणी, अथवा श्मशानमें बसने पर गृध्र आदि पक्षी अनेक प्रका-  
रसे उनके ऊपर उपसर्ग करते, परन्तु वे धीर वीर सबकुछ सहन करते  
थे, यहां तक कि जब गृध्र आदि पक्षी उनके शरीरके मांसको भी नोचते  
तो भी वे समभावसे सहन करते परन्तु उनका निवारण नहीं करते ॥७॥

और भी--'अदु कुचरा' इत्यादि ।

क्षरी--'सयणेहि' इत्यादि.

शयनमां-आश्रयवाणा स्थानोमां श्री महावीर प्रभु ऊपर घोर उपसर्ग  
उपस्थित थता हुता. क्यारेक उन्नउ धरोमां रडेवाथी सर्प वगेरे प्राणी तेमज  
श्मशानमां रडेवाथी गीध वगेरे पक्षीथी अनेक प्रकारनां दुःखो सडेवां पडतां हुतां  
धीर वीर जेवा प्रभु आ अथां दुःखोने सहन करता ते त्यां सुधी के न्यारे गीध  
वगेरे पक्षीथो तेमना शरीरना मांसने खांथोथी यावता तो पणु समभावथी अधु  
सहन करता, परंतु तेनुं निवारणु करता नही. (७)

क्षरी--'अदु कुचरा' इत्यादि.

મૂલમ્—અદુ કુચરા ઉવચરંતિ, ગામરક્ષા ય સત્તિહત્થા ય ।

અદુ ગામિયા ઉવસગ્ગા, ઇત્થી ઇગ્ગિયા પુરિસા ય ॥૮॥

છાયા—અથ કુચરા ઉપચરન્તિ ગ્રામરક્ષાશ્ચ શક્તિહસ્તાશ્ચ ।

અથ ગ્રામ્યા ઉપસર્ગા સ્ત્રિયઃ એકિકાઃ પુરુષા વા ॥ ૮ ॥

ટીકા—કુચરાઃ=કુત્સિતાચરણશીલાઃ ચૌરવ્યભિચારિપ્રમુતયઃ ઉપચરન્તિ=ભગવત ઉપસર્ગ કર્વન્તિ સ્મ । સ્વસ્વકાર્યેન્તરાયં મત્વા ભગવન્તં કશા-દિમિસ્તાડયન્તિ સ્મેત્યર્થઃ । તથા—શક્તિહસ્તાઃ=શસ્ત્રવિશેષધારિણઃ ગ્રામરક્ષાઃ=પ્રાહરિકાદયઃ ઉપચરન્તિ=ચૌરલુપ્તકશબ્દ્યા ભગવન્તં પ્રહરન્તિ સ્મ । અથવા ગ્રામ્યાઃ=ગ્રામધર્માવસ્થિતાઃ કામવશગા इत्यर्थः, અત એવોપસર્ગાઃ=ઉપસર્ગકારિત્વાદુપસર્ગરૂપાઃ સ્ત્રિયઃ એકિકાઃ=એકાકિન્યઃ સમાગત્ય ઉપચરન્તિ=ભગવન્તં વિષયાર્થમુપસર્ગયન્તિ સ્મ । વા=અથવા—પુરુષા અપિ તમ્ ઉપચરન્તિ=‘હમમન-

ચૌર, વ્યભિચારી આદિ જન મી ઉનકો ઉપસર્ગ દેતે થે । ઇસકા કારણ યહ થા કિ વે ભગવાનકો અપને ૨ કાર્યોમિં વિઘ્નરૂપ માનતે થે, અતઃ વે ભગવાનકો ચાલુકસે મારતે થે । ગાંવકી રક્ષા કરનેવાલે કોટ-વાલ આદિજન મી કિ જિનકે હાથમેં શક્તિ નામકા શસ્ત્ર રહતા થા, ભગવાનકો ચોર, લુટેરા સમજકર ઉનપર પ્રહાર કરતે । કમી ૨ કામાધીન મદોન્મત્ત સ્ત્રિયાં મી ભગવાનકે પાસ અકેલી આકર ઉનસે વૈષયિક લાલસા પ્રકટ કરતી, ઇસ તરહ વે મી ભગવાનકે ઉપર અનેક પ્રકારસે ઉપદ્રવ વરસાતી । કોઈ પુરુષવર્ગ મી યહ સમજકર કિ ‘યહ અતિશયરૂપ સંપન્ન હૈ—અનન્તરૂપ ઔર લાવણ્યકા મંડાર હૈ, ઇસે દેખકર હમારી

ચોર, વ્યભિચારી વિગેરે માણસો તરફથી ભારે રીતનો ત્રાસ આપવામાં આવતો, જેનું કારણ એ હતું કે એ લોકો ભગવાનને પોતપોતાના કાર્યોમાં વિઘ્નરૂપ ગણતા, આથી તેઓ ભગવાનને આઘાતથી મારતા હતા. ગામની રક્ષા કરવા-વાળા પટેલ પસાયતા વગેરે લોકો પણ કે જેના હાથમાં શક્તિ નામનું શસ્ત્ર રહેતું હતું, ભગવાનને લૂટારા, ચોર વગેરે માનતા અને આ કારણે અવનવીન ત્રાસ આપતા. કોઈ કોઈ વખત કામથી મદોન્મત્ત બનેલી એવી સ્ત્રીઓ પણ ભગવાન પાસે એકલી આવતી અને તેમની પાસેથી વિષયભોગની લાલસા જણાવતી. આ કારણે આવી સ્ત્રીઓ પણ ભગવાનની ઉપર અનેક પ્રકારના ઉપદ્રવ વરસાવતી. કોઈ પુરુષવર્ગ પણ ભગવાનનું અતિશય લાવણ્યમય શરીર જોઈ એવી શંકા ધરાવતા કે ‘અમારી સ્ત્રીઓ આમનું લાવણ્ય-

निरूपलावण्यशालिनं विलोक्य मदीयदयिता मत्तो विरता भविष्यती'-  
ति मत्वोपसर्गं चकारेत्यर्थः ॥८॥

किञ्च--'इहलोइयाइं' इत्यादि ।

मूलम्--इहलोइयाइं परलोइयाइं, भीमाइं अणेगरूवाइं ।

अवि सुब्भि--दुब्भिगंधाइं, सद्दाइं अणेगरूवाइं ॥९॥

छाया--ऐहलौकिकान् पारलौकिकान् भीमान् अनेकरूपान् ।

अपि सुरभिदुरभिगन्धान् शब्दान् अनेकरूपान् ॥ ९ ॥

टीका--भगवान् ऐहलौकिकान्=मनुष्यकृतान्, पारलौकिकान्=देवतिर्यक्-  
कृतांश्च भीमान्=भयङ्करान् अनेकरूपान्=अनुकूलप्रतिकूलान् उपसर्गान् सहते स्म ।  
तथा--सुरभिदुरभिगन्धान्=सुरभिगन्धान्=स्रक्चन्दनजनितान्, दुरभिगन्धान्=  
पूतिगन्धान् मृतसर्पशृगालकलेवरसमुत्थान्, तथा अनेकरूपान्=मनोज्ञामनोज्ञान्  
शब्दांश्च सहते स्म ॥ ९ ॥

ललनाएँ हमसे विरक्त हो जायगीं' इस दुरभिप्रायसे उन पर उप-  
सर्ग करते ॥८॥

और भी--'इहलोइयाइं' इत्यादि ।

वे भगवान् परीषद् और उपसर्गोंकी कुछ भी परवाह न कर मनु-  
ष्यकृत अनेक भयंकर उपद्रवोंको, देवकृत एवं तिर्यश्चकृत अनेक कठोर  
उपसर्गोंको, चाहे वे अनुकूल हों चाहे प्रतिकूल हों, सहते थे। पुष्पोंकी  
माला, और मलयागिरिचंदनसे उत्पन्न सुगन्धिमें और सड़े हुए सर्प,  
शृगाल आदिके कलेवरकी दुर्गन्धिमें, तथा मनोज्ञ और अमनोज्ञ इन्द्रि-  
योंके शब्दादिक विषयोंमें उन्हें न राग था और न द्वेष था, वे सब  
अवस्थामें समभावी थे ॥९॥

भय शरीर जेई अमारथी विरक्त अनी जशे' आवो अराण विचार मनमां  
लापी अेमना उपर त्रास वरतावता. (८)

इरी--'इहलोइयाइं' इत्यादि.

भगवान् आवा दुःखो अने उपसर्गोनी वेश मात्र परवा न करतां मनुष्यो  
द्वारा करता अनेक भयंकर उपद्रवो, देव अने तिर्य्योथी करता अनेक कठोर  
उपसर्गो, चाहे ते अनुकूल होय के प्रतिकूल, तेने सहन करता. पुष्पोनी भाणा,  
मलीयागिरी चंदनथी उत्पन्न सुगंधमां, तथासडेला सर्प, तेमज अन्य भरेला  
पशुओना सडेला शरीरोनी दुर्गंधमां, तथा मनोज्ञ अने अमनोज्ञ इन्द्रियोना  
शब्दादिक विषयोमां अेमने न तो राग उतो न द्वेष, तेओ हरेक अवस्थामां  
समभावी उता. (९)



अन्यच्च—‘अहियासए’ इत्यादि ।

मूलम्—अहियासए सयासमिए, फासाइं विरुवरुवाई ।

अरइं रइं अभिभूय, रीयइ माहणे अबहुवाई ॥१०॥

छाया—अध्यास्ते सदासमितः स्पर्शान् विरूपरूपान् ।

अरतिं रतिम् अभिभूय रीयते माहनः अबहुवादी ॥१०॥

टीका—सदासमितः=पञ्चसमितिसमन्वितः विरूपरूपान्=अनेकप्रकारकान् स्पर्शान्=दुःखविशेषान् अध्यास्ते=अधिसहते स्म । अबहुवादी=अल्पभाषी माहनः=भगवान् अरतिं संयमे, तथा रतिं विषयानन्दे अभिभूय=तिरस्कृत्य निवार्येत्यर्थः, रीयते=तपःसंयमसमाराधने प्रवर्तते स्म ॥१०॥

किञ्च—‘स जणेहिं’ इत्यादि ।

मूलम्—स जणेहिं तत्थ पुच्छिसु एगचरा वि एगया राओ ।

अठ्वाहिय कसाइत्था, पेहमाणे समाहि अपडिन्ने ॥११॥

छाया—स जनैः तत्र अप्रच्छि एकचरा अपि एकदा रात्रौ ।

अव्याहृते कषायिताः प्रेक्षमाणः समाधिम् अप्रतिज्ञः ॥ ११ ॥

और भी—‘अहियासए’ इत्यादि ।

उन प्रभुने निरन्तर पांच समितियोंके पालनमें सावधान रह कर ही अनेक प्रकारके दुखोंको सहन किया। वे सदा ही हित मित प्रिय वचन बोलते। अल्पभाषण करते—बहुत थोड़ा बोलते। संयमसे अरतिभावको और विषयोंसे रतिभावको हटानेमें ये सदा जागरूक रहते और तप संयमकी ही आराधनामें सदा तत्पर रहते ॥१०॥

और भी—‘स जणेहिं’ इत्यादि ।

इरी—‘अहियासए’ इत्यादि ।

प्रभु निरन्तर पांच समितियोंना पालनमां सावधान रहेता, अने अनेक प्रकारना दुःखोने सहन करता. तेओ सदा हित मित अने प्रिय वचन बोलता, अटके अहु ब थोड़ा बोलता. संयमथी अरतिभावने अने विषयोथी रतिभावने दूर करवामां जगृत रहेता. तप अने संयमनी आराधनामां सदा तैयार रहेता. (१०)

इरी—‘स जणेहिं’ इत्यादि ।

टीका-शून्यगृहे निर्जने वा स भगवान् जनैः अपच्छिष्टः पृष्ठः, यथा-‘को भगवान्? किमत्र स्थितः? कुतः समायातः?, इत्येवं पृष्ठोऽपि तूष्णीमेवासीत्। तथा-एकचराः=एकाकिनः जारपुरुषादयः एकदा=कदाचित्, रात्रौ दिवसे वा भगवन्तं पप्रच्छुः, तदा भगवता-अव्याहते सति कषायिताः=क्रोधादियुक्ताः सन्तः भगवन्तं दण्डमुष्ट्यादिभिस्ताडयन्ति स्म। भगवांस्तु अप्रतिज्ञः=वैरनिर्यातनप्रतिज्ञारहितः समाधिं प्रेक्षमाणः=धर्मध्यानं समालम्बयन् सहते स्म ॥११॥

किञ्च—‘अयमंतरंसि’ इत्यादि।

भगवान् जिस समय विहारमें रहते हुए शून्यगृह आदिमें ठहरते तो उस समय मनुष्य अनेक प्रकारके उनसे प्रश्न करते-कोई पूछता-तुम कौन हो? क्यों ठहरे हो। कोई २ पूछता-अरे तुम कहाँसे आये हुए हो, इत्यादि। इस प्रकार पूछे जाने पर भी वे प्रभु किसीको कुछ भी उत्तर नहीं देते और मौन रहते। इसी प्रकार कभी २ व्यभिचारी पुरुष अकेले आकर जब भगवानसे कुछ पूछते तो भगवान् उस समय भी मौन रहते-उन्हें कुछ भी उत्तर नहीं देते। इस प्रकार उनके चित्तमें भगवानके प्रति कषायपरिणति जागृत हो जाती और इससे क्रोधाविष्ट हो वे भगवानको दण्ड और मुक्के आदिसे खूब पीटते-मारते, परन्तु फिर भी भगवानके चित्तमें वैरका बदला लेनेका भाव उनके प्रति जागृत नहीं होता था, प्रत्युत समाधिपूर्वक वे धर्मध्यानमें ही तल्लीन होकर उन सब उपसर्गों को सहते ॥११॥

और भी--‘अयमंतरंसि’ इत्यादि।

लगवान જે સમય વિહારમાં રહેતા અને ઉજ્જડ ઘર વગેરે સ્થળે રોકાતા તો એ સમયે માણસો આવી અનેક પ્રકારના પ્રશ્નો કરતા. કોઈ પુછતું તમે કોણ છો? અહિં કેમ રોકાયા છો? કોઈ કોઈ પુછતું કે તમે ક્યાંથી આવ્યા છો? વગેરે. આ રીતે પુછનારાઓમાંના કોઈને પણ પ્રભુ કોઈ પણ ઉત્તર આપતા નથી પરંતુ મૌન રહેતા. આજ રીતે કોઈ કોઈ વ્યભિચારી પુરૂષ એકલો આવી ભગવાનને કાંઈ પુછે તો પણ ભગવાન મૌન જ રહેતા, એને પણ કાંઈ જવાબ આપતા નહીં. આથી એ લોકોના દિલમાં ભગવાન પ્રત્યે કષાયપરિણતિ જાગી જતી અને ક્રોધયુક્ત બની આવા માણસો ભગવાનને લાકડીથી કે હાથથી ખુબ માર મારતા, છતાં પણ ભગવાનના દિલમાં તેમના પ્રત્યે બદલો લેવાની વૃત્તિ જાગતી નહીં. ગમે તેવા સમયે પણ તેઓ સમાધિપૂર્વક ધર્મધ્યાનમાં જ તદ્દલીન રહી આ બધા ઉપસર્ગોને સહન કરતા. (૧૧)

ફરી--‘અયમંતરંસિ’ ઇત્યાદિ.

मूलम्—अयमंतरंसि को इत्थ ? अहमंसिति भिक्षु आहटु ।

अयमुत्तमे से धम्मे, तुसिणीए कसाइए झाइ ॥१२॥

छाया—अयमन्तः कोऽत्र ? अहमस्मीति भिक्षुः आहत्य ।

अयमुत्तमः स धर्मस्तूष्णीकः कषायितान् ध्यायति ॥१२॥

टीका—अन्तः=मध्ये, अयं कोऽस्ति, इत्येवं दुःशीलैः कर्मकरादिभिर्वा पृष्ठः भगवान् क्वचिद् शङ्कादिदोषवारणार्थमाह स्म—‘अहं भिक्षुरस्मि’ इति। एवमुक्ते सति स्वार्थव्याघातेन कषायितास्ते भगवन्तमब्रुवन्—‘आहटु’=अयं देशीयः शब्दः शीघ्रार्थकः, शीघ्रमितः स्थानान्निर्गच्छ, ततः स भगवान् अयं=निषेधित-स्थानान्निस्सरणरूपो धर्मः=आचारः उत्तमः=श्रेष्ठः, इति कृत्वा ततो निर्जगाम। यदि ते निर्गन्तुं नाब्रुवन् तदा कषायितान् प्रति तूष्णीकः सन् ध्यायति=ध्यानस्थ एवासीत्=धर्मध्यानात् प्रच्युतो न बभूवेत्यर्थः ॥१२॥

“इस शूने घरके भीतर कौन ठहरा हुआ है” इस प्रकार जब प्रभुसे कोई दुःशील कर्मकरादि जन पूछता, तब भगवान् उसकी शंका-की निवृत्तिके लिये यही प्रत्युत्तर देते कि—मैं भिक्षु हूं। इस प्रकार प्रभुके कहने पर जब उसका किसी प्रकारका स्वार्थ उनके वहां रहनेसे घातित होता तो वह भगवान् पर क्रुद्ध होकर उनसे कहता कि—तुम यहांसे निकल कर शिघ्र ही किसी दूसरे स्थानपर चले जाओ। भगवान् भी इसकी इस प्रकारकी बातसे भी मध्यस्थभावयुक्त होकर यह समझकर कि ‘निषेध किये गये स्थानपर साधुको नहीं ठहरना चाहिये, यही साधुका उत्तम आचार है’ वहांसे निकल जाते। यदि वे वहांसे निकलनेको नहीं कहते तो भी प्रभु अपने ऊपर कषाययुक्त उन मनुष्योंके प्रति समभावी होकर धर्म-ध्यानमें ही मग्न रहते—धर्मध्यानसे कभी ये प्रच्युत नहीं होते ॥१२॥

“આ ઉજ્જડ ઘરમાં કોણ ઉતરેલ છે” એ પ્રકારથી બ્યારે પ્રભુને કોઈ પુછતું ત્યારે ભગવાન એની શંકાનું સમાધાન કરવા એટલો જ પ્રત્યુત્તર આપતા કે—હું ભિક્ષુ છું. આ જવાબ પછી પુછનારનો આમાં કોઈ પ્રકારનો સ્વાર્થ ન દેખાતો તો તે ભગવાન સામે કોઈ ધિત બની કહેતો કે તમે અહિંથી નીકળી કોઈ બીજાં સ્થાન ઉપર તાત્કાલિક ચાલ્યા જાવ. ભગવાન પણ આ પ્રકારની એની વાતથી મધ્યસ્થ ભાવયુક્ત થઈ એવું સમજીને એ સ્થાનનો ત્યાગ કરતા કે ‘બ્યાં વિરોધ કરવામાં આવે એ સ્થાનમાં સાધુએ ન રોકાવું’ એઈ એ. એ જ સાધુનો ઉત્તમ આચાર છે’ ત્યાંથી નીકળી જતા. જો તે ત્યાંથી નીકળવાનું નહિ કહેતા તો પણ પ્રભુ પોતાના ઉપર કષાયયુક્ત થતા તે માણસો પ્રત્યે સમભાવી બની ધર્મ-ધ્યાનમાં મગ્ન રહેતા. ધર્મધ્યાનથી કદી પણ તેઓ ચ્યુત ન થતા. (૧૨)



किञ्च—‘जंसिप्पेगे’ इत्यादि।

मूलम्—जंसिप्पेगे पवेयंति, सिसिरे मारुए पवायंते।

तंसिप्पेगे अणगारा, हिमवाए निवायमेसंति ॥१३॥

छाया—यस्मिन्नप्येके प्रवेपन्ते शिशिरे मारुते प्रवाति (सति)।

तस्मिन्नप्येकेऽनगारा,—हिमवाते निवातमेषयन्ति ॥१३॥

टीका—यस्मिन् शिशिरे=शिशिरऋतौ, मारुते=शीतपवने प्रवाति=प्रकर्षेण वहति सति, एके=केचन अन्ये जनाः प्रवेपन्ते=प्रकर्षेण दन्तवीणावादनपुरस्सरं कम्पन्ते। यद्वा—‘प्रवेदयन्ति’ इति छाया, शीतसमुत्थं स्पर्शदुःखमनुभवन्ति। तस्मिन्नपि काले एके=केचन अन्येऽनगाराः हिमवाते=शीतलसमीरे वहति सति निवातं=निर्वातस्थानम्, एषयन्ति=गवेषयन्ति ॥ १३ ॥

किञ्च—‘संघाडीओ’ इत्यादि।

मूलम्—संघाडीओ पवेसिस्सामो, एहा य समादहमाणा।

पिहिया व सक्खामो, अइदुक्खे हिमगसंफासा ॥१४॥

छाया—संघाटीः प्रवेक्ष्यामः, एधांसि च समादहन्तः।

पिहिता वा शक्ष्यामः, अतिदुःखान् हिमकसंस्पर्शान् ॥१४॥

और भी—‘जंसिप्पेगे’ इत्यादि।

शीतऋतुमें कि जिसमें शीतल पवनके चलने पर कई मनुष्योंके शरीरमें रोंगटे खड़े हो जाते हैं, दांतोंसे दांत बजने लगते हैं, शरीरमें खूब कपकपी छूटने लगती है, इस प्रकार बड़ी मुश्किलसे शीतका दुःख सहन होता है। कई एक अनगार तो इस शीतकालमें ऐसे स्थानकी खोजमें रहते हैं कि जहां शीतल वायुका संचार तक भी न हो और ठंडी हवासे त्राण-रक्षण-होता रहे ॥ १३ ॥

क्षरी—‘जंसिप्पेगे’ इत्यादि।

शरीरहीनी इतुमां ठंडा पवनना आलवाधी भाषुसोना शरीरमां ओनो प्रवेश थतां इवाडां उलां थधं ज्ञाय छे, दांत सामे दांत अथडाय छे, शरीरमां कं'पारी छुटे छे. आ रीते पुअञ्ज मुशकेलीथी ठंडीनुं दुःख भाषुसो सहन करे छे. केअ अनगार तो आ ठंडीथी अथवा ओवा स्थाननी तपासमां रडे:छे के ठंडा वायुनो संचार पणु न थधं शके अने ठंडीथी ओनो अथाव थधं शके. (१३)

ટીકા—તથા—કેચિદેકેડનગારાઃ=સાધવઃ ઇચ્છન્તિ-શીતાર્દિતા વયં સંઘાટીઃ= શીતનિવારણક્ષમાણિ પ્રાવરણાણિ યથાવશ્યકમેકં દ્વયં ત્રયં વા પ્રવેક્ષ્યામઃ=સ્વશરીરં તત્ર નિવેશયિષ્યામ ઇતિ, તથા કુર્વન્તિ ચ। પરતીર્થિકાસ્તાપસાદયસ્તુ એવમિચ્છન્તિ- વયમ્—અર્થાસિ=કાષ્ઠાણિ સમાદહન્તઃ અતિદુઃસ્વાન્ હિમકસંસ્પર્શાન્=શીતસ્પર્શાન્ સોઢું શક્ષ્યામઃ=પારયિષ્યામઃ, ઇતિ, તથા કુર્વન્તિ ચ। એકે કેચિદ્ ગૃહસ્થાઃ પુનરેવં વાચ્છન્તિ—વયં પિહિતાઃ=શીતનિવારણક્ષમમૃદુલકમ્બલશાલદ્વિશાલકા-દિમિરાચ્છાદિતાઃ સન્તઃ શીતસ્પર્શાન્ સોઢું શક્ષ્યામ ઇતિ, તથા કુર્વન્તિ ચ॥૧૪॥

કિન્ન—‘ તંસિ ’ ઇત્યાદિ।

મૂલમ્—તંસિ ભગવં અપહિન્ને, અહે વિગડે અહિયાસે દવિણે।

નિવલ્લમ્મ એગયા રાઓ, ચાણ્ઠ ભગવં સમિયાણ ॥૧૫॥

ઔર મી—‘ સંઘાડીઓ ’ ઇત્યાદિ।

કઈ એક સાધુજન અપને પાસમેં રહી હુઈ ઉપધિસે અપને શરીરકો ઢાંક કર શીતસે અપની રક્ષા કરતે હૈં, કમી ઝની કંબલ ઓઢ લિયા કરતે હૈં તો કમી સૂતી દો વસ્ત્રોંસે અપને શીતકા નિવારણ કર લેતે હૈં। ઇસસે મી યદિ ઠંડકા નિવારણ નહીં હો તો ઝની કંબલકે સાથ સૂતી ચદર મિલાકર શીતકી બાધાસે અપની રક્ષા કિયા કરતે હૈં। પરતીર્થિક તાપસજન તો એસે સમયમેં લકડે જલાકર ધૂની લગા લેતે હૈં ઔર ઉસકે પાસ બેઠકર તાપતે હુણ શીતકી કડકતી ઠંડીસે અપની રક્ષા કરતે રહતે હૈં। કઈ ધનિક ગૃહસ્થજન ઇસ સમય શીતનિવારણ યોગ્ય શાલ દુશાલે ઓઢકર શીતસંબંધી દુઃખોંસે અપનેકો બચાતે રહતે હૈં ॥૧૪॥

ફરી—‘ સંઘાડીઓ ’ ઇત્યાદિ.

કોઈ કોઈ સાધુજન ઠંડીના બચાવ માટે પોતા પાસે રાખેલાં વસ્ત્રાદિકથી પોતાના શરીરને ઢાંકી ઠંડીથી રક્ષણ મેળવે છે. ક્યારેક ઊની કમ્બલ ઓઢી લે છે. તો ક્યારેક સુતરાં બે વસ્ત્રોથી પોતાની ઠંડીતું નિવારણ કરી લે છે. પરંતુ બ્યારે ઠંડીનો ઉપદ્રવ વધે છે, ત્યારે ઊની કમ્બલ અને સુતરાઉ વસ્ત્રો લેવાં કરી ઓઢે છે અને ઠંડીથી પોતાનું રક્ષણ કરે છે. પરતીર્થિક તાપસજન તો આ સમયે લાકડાં બાળી ધુણી ધખાવી એની પાસે બેસી તાપે છે અને એ રીતે કડકડતી ઠંડીથી પોતાની રક્ષા કરે છે. ધનવાળા કોઈ ગૃહસ્થો આ સમયે શાલ દુશાલા ઓઢીને ઠંડીથી પોતાને બચાવે છે. (૧૪)

छाया--तस्मिन् अप्रतिज्ञः, अधोविकटे अध्यास्ते द्रविकः ।

निष्क्रम्यैकदा रात्रौ शक्नोति, भगवान् शमितया ॥१५॥

टीका--तस्मिन्=तथाभूते शिशिरे काले हिमवाते प्रवहति सति अप्रतिज्ञः=निर्वातस्थानप्रार्थनादिरूपप्रतिज्ञाविवर्जितः, द्रविकः=द्रावणात्=कर्मग्रन्थिनाशनाद् द्रवः=संयमः, सोऽस्यास्तीति द्रविकः=यथाख्यातचारित्रः, भगवान्=श्रीवर्धमान-स्वामी अधोविकटे=कुड्यादिरहिते स्थाने स्थित्वा अध्यास्ते=अतिदुःखदशीतस्पर्श-नधिसहते स्म । एकदा=कदाचित् रात्रौ निष्क्रम्य=मुहूर्त्तमात्रं बहिः स्थित्वा भगवान् शमितया=उपशान्तभावेन व्यवस्थितः सन् अतिदुःखान् हिमसंस्पर्शान् सोढुं शक्नोति=अधिसहते स्म ॥१५॥

और भी 'तंसि' इत्यादि ।

ऐसे शीतकालमें भी श्री वीर प्रभुने यह स्वप्न तकमें भी विचार नहीं किया कि मुझे कोई निर्वात स्थान मिल जाय, प्रत्युत वे इस समयमें भी चौहटे पर कि जहां चारों ओरसे शीतल पवन बहकर ठंडको खूब असह्य बना देती है, स्थित होकर यथाख्यात चारित्र की आराधनामें तल्लीन रहते हुए शीतपरीषहको सहन करते। कभी२ रात्रिमें भी वसतिसे बाहर निकल कुछ समय तक वहां ठहर कर उपशान्त भावसे वे प्रभु शीतकालके कष्टोंको सहते।

इस सूत्रमें 'द्रविक' शब्दका अर्थ--"यथाख्यातचारित्रका आराधन करने वाला" ऐसा है। "द्रावणात्=कर्मग्रन्थिनाशनाद् द्रवः" कर्मरूप

इति--"तंसि" इत्यादि.

आवा ठंडीना समयमां पणु श्री वीर प्रभुणे स्वप्ने पणु ओवो विचार नथी कर्यो के मने कोष्ठ ठंडीथी अथी शक्य तेवुं स्थान मणी नथ. आवी कडकडती ठंडीना समये पणु प्रभु तदन उघाडा के न्यां यारे तरुथी ठंडी पवननो सुसवाटो लागतो होय तेवा स्थाने स्थित अनी यथाख्यात चारित्रनी आराधनामां तद्वलीन रडी ठंडीना उपद्रवने सहन करता. क्यारेक क्यारेक आवी कडकडती ठंडीमां रात्रीना वणते वसतीथी अडार नीकणी न्ध उपशांत आवथी ठंडीना कष्टोने सहन करता.

आ सूत्रमां द्रविक शब्दने अर्थ--'यथाख्यात चारित्रनु' आराधन करवावाणा' ओवो छे. 'द्रावणात् कर्मग्रन्थिनाशनाद् द्रवः' जेनाथी कर्मग्रंथिना विनाश थाय छे ते द्रव-संयम अर्थात् यथाख्यात चारित्रछे. आ द्रव जेनामां होय छे ते द्रविक छे.



ઉદ્દેશકાર્થમુપસંહરન્નાહ—‘ એસ વિહી ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—એસ વિહી અણુક્રંતો, માહણેણ મહમયા ।

વહુસો અપડિન્નેણ, ભગવયા એવં રીયાંતિ-ત્તિવેમિ ॥૧૬॥

છાયા--એષ વિધિરનુક્રાન્તો, માહનેન મતિમતા ।

વહુશોઽપ્રતિજ્ઞેન, ભગવતા, એવં રીયન્તે ॥ ઇતિ વ્રવીમિ ॥૧૬ ॥

અસ્ય વ્યાખ્યા-અસ્યૈવાધ્યયનસ્ય પ્રથમોદ્દેશગતાઽન્તિમગાથા(૨૩)વ્યા-  
ખ્યાવદ્ વિજ્ઞેયા । ઇતિ વ્રવીમીત્યર્થસ્તુત્ત એવ ॥ ૧૬ ॥

॥ નવમાધ્યયનસ્ય દ્વિતીય ઉદ્દેશઃ સમાપ્તઃ ॥ ૧-૨ ॥

ગ્રન્થિકા જિસસે વિનાશ હો વહ દ્રવ-સંયમ, અર્થાત્ યથાખ્યાત ચારિત્ર  
હૈ, યહ દ્રવ જિસકે મૌજૂદ હો વહ દ્રવિક હૈ । યથાખ્યાતચારિત્રકી  
આરાધનાસે હી જીવ અપને અવશિષ્ટ ચાર અઘાતિયા કર્મોંકા નાશ કર  
મુક્તિસ્થાનકા પાત્ર હો જાતા હૈ, ઇસકે વિના નહીં, એસા શાસ્ત્રસંમત  
સિદ્ધાન્ત હૈ । “અધોવિકટ” શબ્દ કુહ્યાદિ-ભીત આદિરહિત સ્થાનકા  
વાચક હૈ । વહ સ્થાન કિ જિસમેં ભીત આદિકા આવરણ નહીં હો,  
ચૌહટા હી એસા હોતા હૈ, ક્યોં કિ વહ ચારોં ઓરસે ચિલકુલ ખુલા  
હુઆ રહતા હૈ, ઓર એસે હી સ્થાનમેં સબ તરફસે વહુત જોરકી હવા  
આતી હૈ । ‘શમિતા’ શબ્દકા અર્થ-ઉપશાન્ત ભાવ હૈ । રાગ દ્વેષકા  
સંબંધ જિસ ભાવમેં નહીં હોતા હૈ વહી ઉપશાન્તભાવ કહા ગયા હૈ ॥૧૫॥

અવ સૂત્રકાર ઇસ ઉદ્દેશકે અર્થકા ઉપસંહાર કરતે હુએ કહતે હૈ—  
‘ એસ વિહી ’ ઇત્યાદિ ।

યથાખ્યાત ચારિત્રની આરાધનાથીજ જીવ પોતાના અવશિષ્ટ ચાર અઘાતિયા કર્મોંનો  
નાશ કરી મુક્તિસ્થાન મેળવવા ભાગ્યશાળી બની રહે છે, એના વગર નહીં.  
એવો શાસ્ત્રસંમત સિદ્ધાંત છે. “અધોવિકટ” શબ્દ ભીત વગેરેથી રહિત  
એવા સ્થાનનો વાચક છે. એ સ્થાન કે જેને ભીત વગેરેનો બચાવ ન હોય તેને  
ઉઘાડું સ્થાન કહેવામાં આવે છે, કેમકે ચારે તરફથી તે બીલકુલ ખુલ્લું હોય  
છે અને એવા સ્થાનમાં ચારે તરફથી મોટા પ્રમાણમાં ખુલ્લી હવા આવતી હોય  
છે. શમિતા શબ્દનો અર્થ ઉપશાંત ભાવ છે. રાગ દ્વેષનો સંબંધ જે ભાવમાં  
નથી તે ઉપશાન્ત ભાવ કહેવાય છે. (૧૫)

હવે સૂત્રકાર આ ઉદ્દેશના અર્થનો ઉપસંહાર કરતાં કહે છે—‘ એસ વિહી ’  
ઇત્યાદિ.

સ્વયં હનનાદિ કાર્યો' સે નિવૃત્ત હોકર દૂસરોં કો ખી મા હન-મા હન-  
'મત મારો-મત મારો' ઇસ પ્રકાર કહ કર ઉનસે નિવૃત્ત કરાનેવાલે,  
તથા હેય ઔર ઉપાદેયકે વિવેકસે યુક્ત, એવં સર્વથા અપ્રતિજ્ઞ-નિદાનરહિત  
એસે શ્રીવર્ધમાનસ્વામીને ઇસ પૂર્વોક્ત આચારકા સ્વયં પાલન કિયા, અતઃ  
ઈસી તરહ સે અન્ય મોક્ષસાધક સાધુજન ખી અપને સમસ્ત કર્મોંકા નાશ  
કરનેકે લિયે સંયમ માર્ગમેં વિચરણ કરેં । અર્થાત્ ઇસી પ્રકારસે ઇસ  
વિધિકા પાલન કર અન્ય મોક્ષાભિલાષી સાધુજન ખી અપને કર્મોંકા  
નાશ કરનેકે લિયે સંયમમાર્ગમેં લવલીન બનેં । 'ઈતિ બ્રવીમિ' હે જમ્બૂ!  
જૈસા મૈને ભગવાનસે સુના હૂં વૈસા હી કહતા હૂં, અપની કલ્પનાસે નહીં । ૧૬।

॥ નવવેં અધ્યયનકા દ્વિતીય ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૧-૨ ॥

સ્વયં હનનાદિ કાર્યોંથી નિવૃત્ત બની બીજાઓને પણ મા હન, મા હન-  
“મારો નહિં, મારો નહિં” આ પ્રકારનું કહીને તેનાથી નિવૃત્ત કરાવનાર,  
તથા હેય અને ઉપાદેયના વિવેકથી યુક્ત અને સર્વથા નિદાનશૂન્ય, એવા શ્રીવર્ધ-  
માન સ્વામીએ આ પૂર્વોક્ત આચાર સ્વયં પાલન કરેલ, માટે આ રીતે બીજા  
મોક્ષ સાધક સાધુજન પણ પોતાના સમસ્ત કર્મોંનો નાશ કરવા માટે સંયમ  
માર્ગમાં વિચરણ કરે, અર્થાત્ એવા પ્રકારથી એવી વિધિનું પાલન કરી બીજા  
મોક્ષાભિલાષી સાધુજન પણ પોતાના કર્મોંનો નાશ કરવા માટે સંયમ માર્ગમાં  
લવલીન બને. “ઈતિ બ્રવીમિ” હે જંબૂ! જેવું મેં ભગવાનથી સાંભળ્યું તેવુંજ  
કહું છું, પોતાની કલ્પનાથી નહિં (૧૬)

નવમા અધ્યયનનો બીજો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૬-૨ ॥



## ॥ अथ नवमाध्ययनस्य तृतीय उद्देशः ॥

इहानन्तरद्वितीयोद्देशके भगवतः शय्यासनानि कथितानि । तत्रावस्थितेन ये परीषदा उपसर्गाश्च यथा भगवता सोढास्तत्प्रतिबोधनार्थं तृतीयमुद्देशकं कथयन् भगवतस्तृणस्पर्शादिसहनमाह—‘तण्फासे’ इत्यादि ।

मूलम्—तण्फासे सीयफासे य, तेउफासे य दंसमसगे य ।

अहियासए सया समिए, फासाइं विरूवरूवाइं ॥१॥

छाया—तृणस्पर्शान् शीतस्पर्शांश्च, तेजःस्पर्शांश्च दंशमशकांश्च ।

अध्यास्ते सदा समितः, स्पर्शान् विरूपरूपान् ॥ १ ॥

टीका—सदा—सर्वकाले समितः=सम्यग्भावं गतः, यद्वा—समितिसमन्वितः, भगवान् आतापनादिकाले तृणस्पर्शान्=कुशादिस्पर्शान्, शीतस्पर्शांश्च, तथा तेजः—

## नववें अध्ययनका तीसरा उद्देश ।

इससे पहिले द्वितीय उद्देशमें सूत्रकारने भगवान् श्री वीर-प्रभुके शयन और आसनोका वर्णन किया है । उस उद्देशमें यह कहा गया है कि उस अवस्थामें रहे हुए प्रभुने अनेक प्रकारके उपसर्ग और परीषहोंको सहा है । इस तृतीय उद्देशमें सूत्रकार यह स्पष्ट करेंगे कि किस २ प्रकारके उपसर्ग और परीषहोंको प्रभुने सहा है ? अतः सर्व प्रथम तृणस्पर्श आदि परीषहोंके सहन करनेके विषयमें सूत्रकार कथन करते हैं—‘तण्फासे’ इत्यादि ।

सम्यग्भाव, या पांच समितिसे युक्त वे प्रभु आतापना आदिके समयमें अनेक प्रकारके तृणस्पर्शजन्य कष्टोंको, शीतस्पर्शजन्य दुःखोंको,

## नवमा अध्ययननो त्रीन्ने उद्देश.

આ ત્રીજા ઉદ્દેશથી પહેલાં બીજા ઉદ્દેશમાં સૂત્રકારે ભગવાન શ્રી વીરપ્રભુના શયન અને આસનોનું વર્ણન કરેલ છે. તે ઉદ્દેશમાં એવું બતાવ્યું છે કે તેવી અવસ્થામાં રહેલા પ્રભુએ અનેક પ્રકારના પરિષદ અને ઉપસર્ગો સહ્યા છે. આ ત્રીજા ઉદ્દેશમાં સૂત્રકાર એ સ્પષ્ટ કરશે કે ભગવાને કેવા કેવા પરિષદ અને ઉપસર્ગો સહન કર્યા છે. આથી સર્વ પ્રથમ તૃણસ્પર્શ આદિ પરિષદો સહન કરવાના વિષયનું સૂત્રકાર કથન કરે છે—‘તણ્ફાસે’ ઇત્યાદિ.

સમ્યગ્ભાવ, અને પાંચ સમિતિથી યુક્ત તે પ્રભુ આતાપના આદિના સમયમાં અનેક પ્રકારના તૃણસ્પર્શજન્ય કષ્ટોને, ઠંડીના ત્રાસજન્ય દુઃખને,



સ્પર્શાન્=ઉષ્ણસ્પર્શાન્, તથા દંશમશકાન્=દંશમશકદંશનજનિતત્રીવ્રદુઃસહસ્પર્શાન્,  
 એતાન્ વિરૂપરૂપાન્=અનેકપ્રકારકાન્ સ્પર્શાન્ અધ્યાસ્તે=સહતેસ્મ ॥૧॥

કિન્ચ—‘અહે’-ત્યાદિ।

મૂલમ્—અહ દુચ્ચરલાઢમચારી, વજ્રભૂમિં ચ સુબ્રહ્મભૂમિં ચ ।

પંતં સિઝ્જં સેવિંસુ આસણગાણિ ચેવ પંતાણિ ॥૨॥

છાયા—અથ દુશ્ચરલાઢમચારીત્ વજ્રભૂમિં ચ શુભ્રભૂમિં ચ ।

પ્રાન્તાં શય્યામસેવિષ્ઠ, આસનકાનિ ચેવ પ્રાન્તાનિ ॥૨॥

ટીકા—અથ=અનન્તરમ્ ભગવાન્ દુશ્ચરલાઢં=દુર્ગમં લાઢનામ્ના પ્રસિદ્ધં દેશવિશે-  
 પમ્, અચારીત્=અગાત્ । લાઢદેશે દ્વિવિધભૂમિકઃ, વજ્રભૂમિકઃ શુભ્રભૂમિકશ્ચેતિ। તત્ર  
 દ્વિવિધેઽપિ દેશે ભગવાન્ વિહારં કૃતવાનિત્યાહ—‘વજ્રભૂમિં ચે’-ત્યાદિ। વજ્રભૂમિં તથા  
 શુભ્રભૂમિં ચ=લાઢાન્તર્ગતદેશવિશેષમ્, અચારીદિત્યન્વયઃ । તત્ર ચ પ્રાન્તામ્=  
 અમનોજ્ઞાં જીર્ણશૂન્યગૃહાદિરૂપાં વિવિધોપદ્રવ્યુક્તાં, શય્યાં=વસતિ, પ્રાન્તાનિ ચ  
 ઉષ્ણસ્પર્શજન્ય વ્યથાઓંકો, ઔર દંશમશક આદિકે કાટનેસે ઉત્પન્ન  
 હૃદી ત્રીવ્ર-દુઃસહ પીઢાઓંકો સહતે થે ॥૧॥

ફિર—‘અહ દુચ્ચર૦’-ઇત્યાદિ।

ભગવાન અનેક પ્રકારકે પરીષહ ઔર ઉપસર્ગોંકો સહતે હુ  
 વિહાર કરતે ૨ જિસ દેશમેં પ્રવેશ કરના મુશ્કિલ હૈ એસે લાઢ દેશમેં  
 પહુંચેં। વહાંપર વજ્રભૂમિ ઔર શુભ્રભૂમિ ઇસ પ્રકાર દો પ્રકારકી ભૂમિયાં  
 હૈં । ભગવાને ઇન દોનોંમેં વિહાર કિયા । ઇસ વિહારમેં ઉન્હેં  
 પ્રાન્ત-અમનોજ્ઞ-જીર્ણ એવં શૂન્યઘરરૂપ અનેક પ્રકાર કે ઉપદ્રવોંસે યુક્ત  
 શય્યા-વસતિ, ઔર ધૂલિ આદિસે પરિપૂર્ણ-ધૂસરિત એવં ટૂટે ફૂટે કાઠ

ઉષ્ણસ્પર્શજન્ય વ્યથાઓંકો, અને ડાંસ તથા મચ્છર આદિના કરડવાથી ઉત્પન્ન  
 થતી ત્રીવ્ર અસહ્ય પીડાઓંકો સહન કરતા હતા. (૧)

ફરી—‘અહ દુચ્ચર૦’-ઇત્યાદિ।

ભગવાન અનેક પ્રકારના પરિષદ અને ઉપસર્ગોંકો સહતા સહતા વિહાર  
 કરતા કરતા જે દેશમાં પ્રવેશ કરવો મુશ્કેલ છે એવા અનાય લાઢ દેશમાં  
 પહોંચ્યા, ત્યાં વજ્રભૂમિ અને શુભ્રભૂમિ આ પ્રકારના બે ભાગો છે. ભગવાને એ  
 બન્નેમાં વિહાર કર્યો. આ વિહારમાં તેમને પ્રાન્ત-અમનોજ્ઞ-જીર્ણ એટલે પડતર  
 એવા શૂન્ય ઘરોમાં અનેક પ્રકારના ઉપદ્રવોથી યુક્ત શય્યા-વસતી અને ધૂળ

ધૂલિશર્કરાલોષ્ટાદિપૂર્ણાનિ, દુર્ઘટિકાઘ્ઠાનિ આસનકાનિ ફલકાદીનિ ચ ભગ-  
વાનસેવિષ્ટ ॥ ૨ ॥

કિંચ—લાઢનામકેષુ દેશવિશેષેષુ ભગવતો વહવઃ પ્રતિકૂલા ઉપસર્ગા વખૂવુસ્તાન્  
ભગવાન્ સહતેસ્મ, ઇત્યાહ—‘લાઢેહિં’ ઇત્યાદિ।

મૂલમ્—લાઢેહિં તસ્સુવસગ્ગા, વહવે જાણવયા લૂસિંસુ ।

અહ લૂહ દેસિયમત્તે, કુકુરા તત્થ હિંસિંસુ નિવડંસુ ॥૩॥

છાયા—લાઢેષુ તસ્યોપસર્ગા વહવો જાનપદા અલૂષિબુઃ ।

અથ રૂક્ષદેશ્યં મત્તં કુકુરાસ્તત્ર જિહિસુઃ નિપેતુઃ ॥ ૩ ॥

ટીકા—લાઢેષુ=લાઢાણ્યેષુ દેશવિશેષેષુ, તસ્ય=ભગવતઃ, વહવઃ=વહુવિધાઃ,  
ઉપસર્ગાઃ પ્રતિકૂલરૂપાઃ વખૂવુઃ । તાન્ કથયતિ—“જાણવયા” ઇત્યાદિ । જાન-  
પદાઃ=જનપદે મત્તઃ—તદેશીયા દુશ્ચરિત્રા અનાર્યા લોકાઃ અલૂષિબુઃ=ઉલ્મુકદળ્ડમહા-  
રાદિભિર્ભગવન્તમતાડયન્ । અથ=અપિ ચ તત્ર રૂક્ષદેશ્યં=રૂક્ષકલ્પમ્ વિગતરસમ્  
આદિવાલે આસન-ફલક વગૈરહ મિલે, જિન્હેં પ્રમુને સમભાવસે અપને  
ઉપયોગમેં લિયા ॥ ૨ ॥

ઇસ લાઢનામકે દેશમેં ભગવાનકો વહુત અધિક પ્રતિકૂલ ઉપસર્ગ  
સહને પડે, ઇસ વાતકો વતલાનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતેહેં—‘લાઢેહિં’ ઇત્યાદિ।

ઇસ લાઢ નામકે દેશવિશેષમેં ભગવાનને અનેક પ્રકારકે ઉપસ-  
ર્ગોંકો સહા । જૈસે—ઉસ દેશકે અનાર્ય મનુષ્યોંને ભગવાનકે ઉપર ઉલ્મુક  
—મશાલદળ્ડ ઓર અસ્ત્ર શસ્ત્ર આદિ દ્વારા અનેક પ્રકારસે પ્રહાર કિયે—  
ઉન્હેં મારે—પીટે । વહાં ઉન્હેં અન્ત પ્રાન્ત આહાર મિલા । વહાંકે કુત્તોંને  
મી ભગવાનકે શરીરકો અપને તીક્ષ્ણ દાંતોં દ્વારા વિવિધરૂપસે ક્ષત—

વગેરેથી પરિપૂર્ણ એવાં ધુળીયાં મકાન જેનેા તુટેલ કુટેલ કાઠમાળ છે, અને એવાંજ  
આસન—ફલક વગેરે મળેલાં જેને પ્રભુએ સમભાવથી પોતાના ઉપયોગમાં લીધેલ. (૨)

આ લાઢ નામના દેશમાં ભગવાનને ધણુંજ પ્રતિકૂળ ઉપસર્ગોં સહેવા  
પડેલા. આ વાત બતાવવા માટે સૂત્રકાર કહે છે—‘લાઢેહિં’ ઇત્યાદિ.

આ લાઢ નામના દેશવિશેષમાં ભગવાને અનેક પ્રકારના ઉપસર્ગોં સહ્યા.  
જેમ—તે દેશના અનાર્ય મનુષ્યોએ ભગવાન ઉપર ઉલ્મુક—મશાલ, ઢંડ, અસ્ત્ર  
શસ્ત્ર વગેરેથી અનેક પ્રકારે પ્રહારો કર્યા—એમને માર્યા—પીટ્યા, ત્યાં તેમને અન્ત-  
પ્રાન્ત આહાર મળેલ. ત્યાં કુતરાઓએ પણ ભગવાનના શરીરને પોતાના તીક્ષ્ણ

अन्तप्रान्तं भक्तम्=अन्नम्, भगवता लब्धम् । तत्र कुकुराः=श्वानः, जिहिंसुः=भगवतः  
शरीरं दन्तैश्चिच्छिदुः, उपरि च निपेतुः=आरोहन्तः ॥ ३ ॥

किञ्च—‘अप्पे’ इत्यादि ।

मूलम्—अप्पे जणे निवारैइ, लूसणए सुणए दसमाणे ।

लुलुकरन्ति आहंतुं, समणं कुक्कुरा दसंतु—न्ति ॥४॥

छाया—अल्पो जनो निवारयति लूपकान् शुनकान् दशतः ।

लु-लु कुर्वन्ति आहत्य ‘श्रमणं कुकुरा दशन्तु’ इति ॥ ४ ॥

टीका—यः लूपकान्=उल्लुक्कदण्डादिभिर्भगवतो हिंसकान् जनान्, दशतः=भगवद्गात्रं दन्तैश्छेदयतः शुनकांश्च=कुकुरान् निवारयति=दूरीकरोति, तादृशो जनस्तत्र अल्पः=कोऽपि नासीदित्यर्थः, अल्पशब्दोऽत्राभावार्थकः । मत्स्युत जना आहत्य=ताडयित्वा “श्रमणम्=एनं मुण्डिनं कुकुराः दशन्तु” इतीच्छया लु-लु कुर्वन्ति=दंशनाय कुक्कुरान् प्रेरयन्ति स्म-भगवन्तं कुकुरैर्दशयामासुरित्यर्थः । एव-म्भूते प्रतिकूलोपसर्गकारके देशे भगवान् पण्मासपर्यन्तमवतस्थौ ॥४॥

विक्षत किया । भगवानको देखकर वे कुत्ते उन्हें काट खाते और उनके ऊपर चढ़जाते ॥३॥

और भी—‘अप्पे जणे’ इत्यादि ।

उस देशमें ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं था जो भगवानको मारने वालोंसे तथा काटने वाले कुत्तोंसे बचाता । उल्टे वहाँके लोग इसी भावनासे कि ‘इस मुण्डित श्रमणको कुत्ते काट खावें’ ऐसा विचार कर उनपर कुत्तोंको छुछकारते और उनसे उन्हें कटवाते । इस प्रकार इस प्रतिकूल अवस्थावाले देशमें भी भगवानने छ महीने तक विहार किया ॥४॥

દાંતોથી બુદ્ધે બુદ્ધે સ્થળે બટકાં ભરેલાં. ભગવાનને બેતાંજ એ એમના પરધસી આવતાં અને બટકાં ભરતાં. (૩)

ક્રી—‘અપ્પે જણે’ ઇત્યાદિ.

એ દેશમાં એવો કોઈ પણ માણસ ન હતો કે જે ભગવાનને મારવાવાળાઓથી કે કરડતા કુતરાઓથી બચાવે. ઉલ્ટા ત્યાંના લોકો એવી ભાવનાવાળા હતા કે ‘આ મુંડિત સાધુને કુતરાઓ કરડી ખાય’ એવા વિચારથી કુતરાઓને તેમના ઉપર ડચકારીને કરડાવવા માટે છોડી મુકતા. આવા પ્રતિકૂલ અવસ્થાવાળા દેશમાં પણ ભગવાને છ મહિના સુધી વિહાર કર્યો. (૪)



કિંચ—‘એલિક્ષણ’ ઇત્યાદિ।

મૂલમ્—એલિક્ષણ જના મુઝ્જો, બહવે વઝ્જભૂમિ ફરુસાસી।

લાટ્ટિં ગહાય નાલિયં, સમણા તત્થ ય વિહરિંસુ ॥૫॥

છાયા—ઈદ્દક્ષા જના ભૂયો બહવો વઝ્જભૂમૌ પરુષાશિનઃ।

યષ્ટિં ગૃહીત્વા નાલિકાં શ્રમણાસ્તત્ર ચ વિજહુઃ ॥ ૫ ॥

ટીકા—ઈદ્દક્ષાઃ=ઉક્તવિધાઃ જના યત્રાસન્, તત્ર દેશે ભગવાન્ ભૂયઃ=બહુશઃ વિહરતિસ્મ। તત્ર લાઢદેશે વઝ્જભૂમૌ=વઝ્જભૂમિનામ્નિ દેશવિશેષે બહવો જનાઃ પરુષાશિનઃ=તુચ્છભોજિનઃ, અત એવ ક્રોધસ્વભાવાઃ સન્તિ તેન તે સાધુમવલોક્ય કુકુરાદિભિઃ કદર્થયન્તિ। નન્વેવં કુકુરાદિભિઃ સાધુકદર્થને તત્રત્યાઃ શાક્યાદયઃ કથં તત્ર વિચેરુઃ ? ઇતિ જિજ્ઞાસાયમાહ—‘યષ્ટિ’—મિત્યાદિ। તત્ર ચ શ્રમણાઃ=અન્યે-શાક્યાદયઃ શ્વાદિનિવારણાર્થં યષ્ટિ=સ્વદેહપ્રમાણં દણ્ડં નાલિકાં=સ્વદેહાચ્ચતુરઙ્ગુ-લાધિકપ્રમાણં દણ્ડં વા ગૃહીત્વા વિજહુઃ=વિચરન્તિસ્મ।

ઔર भी—‘એલિક્ષણ જના’ ઇત્યાદિ।

યદ્યપિ ઇસ પ્રકારકે હી બહુતસે મનુષ્ય વહાં થે તો भी ભગવાને વહાં વિહાર બંદ નહીં કિયા—પ્રત્યુત વે બારં વહીં પર વિચરતે ઔર પ્રતિ-કૂલ પરીષદ ઔર ઉપસર્ગોકો ધૈર્યકે સાથ શાંતચિત્તસે સહન કરતે। વઝ્જભૂમિમેં બહુત મનુષ્ય તુચ્છ આહાર કરતે હૈં, ઇસલિયે ઉનકે સ્વભાવમેં ક્રોધ હી ક્રોધ સદા બના રહતા હૈ—વે વિના કિસી નિમિત્તકે भी સદા ક્રોધસે ભરે રહતે હૈં। યે સાધુ સંતોંકો દેશ્વકર દ્રેષ કરતે હૈં ઔર કુત્તે આદિકોંસે ઉન્હેં વ્યર્થમેં કષ્ટ પહુંચાતે હૈં।

શંકા—યદિ એસી વાત હૈ તો વહાં પર શાક્યાદિ સાધુ કૈસે વિચરણ કરતે હૈં ?

ફરી—‘એલિક્ષણ જના’ ઇત્યાદિ.

જો કે એવા પ્રકારના માણસો ઘણા હતા તો પણ ભગવાને ત્યાંનો વિહાર બંધ કરેલ ન હતો, અને તેઓ વારંવાર ત્યાં વિચરતા અને પ્રતિકૂલ પરિષદ તથા ઉપસર્ગને ધૈર્ય સાથે શાન્ત રીતે સહન કરતા. વઝ્જભૂમિમાં ઘણા મનુષ્યો તુચ્છ આહાર કરે છે જેનાથી તેના સ્વભાવમાં ક્રોધ જ ભરેલો રહે છે. કોઈ પણ જાતના કારણ વગર પણ તેઓ ક્રોધયુક્ત જ રહે છે. સાધુ સંતોને જોઈ તેમના ઉપર દ્રેષ કરે છે અને કુતરાઓ વિગેરેથી તેમને દુઃખ પહોંચાડે છે.

શંકા—આવી વાત છે તો ત્યાં શાક્યાદિક સાધુ કઈ રીતે વિચરી શકે છે ?

भगवदाज्ञानुवर्तिनां साधूनां तु स्थविरावस्थामन्तरेण न कल्पते दण्डधारणं, तथा चोक्तं व्यवहारसूत्रे (उ०८) “थेराणं थेरभूमिपत्ताणं कप्पइ दंडए वा०” इत्यादि; अत्र ‘थेराणं’ इत्युपलक्षणं रोगिग्लानानाम्, स्थविरादेरन्यत्र दण्डधारणं न युक्तं, भय-हिंसा-जनकत्वादागमाविहितत्वाच्च, अत एवाग्रे “निहाय

उत्तर—वहां पर वे साधु कुत्ता आदिको भगाने या उन्हें ताडनेके लिये अपने हाथोंमें अपने शरीरप्रमाण दण्ड और अपने शरीरसे चार अंगुल अधिक ऊंची नलिका-दण्डविशेष पासमें रखते हैं, और विचरण करते रहते हैं।

शंका—भगवानने भी क्यों नहीं वहां विहार करते समय अपने हाथमें दण्ड आदि रक्खा?

उत्तर—स्थविर-वृद्ध अवस्थाके सिवाय दण्ड धारण करनेकी आज्ञा भगवानके शासनमें रहने वाले साधुओंके सिद्धान्तमें नहीं है, अतः भगवानने भी उस समय वहां दण्ड आदि पासमें नहीं रक्खा, व्यवहार सूत्रमें भी यही कहा है—

“थेराणं थेरभूमिपत्ताणं कप्पइ दंडए वा०” इत्यादि। इस सूत्रमें ‘थेराणं’ यह पद रोगी ग्लान अवस्थाका भी उपलक्षक है, अतः स्थविरादि अवस्थाके सिवाय अन्य अवस्थाओंमें दण्डका धारण करना युक्त नहीं माना गया है, क्यों कि एक तो दण्डका धारण करना अन्यजीवीको भयका जनक तथा हिंसाका जनक होता है, दूसरे इस प्रकारका शास्त्रमें इसके

उत्तर—ते स्थणे तेवा साधु कुतरा वगेरेने जे लगाउवा भाटे अने तेने भारवा भाटे पोताना छाथेमां पोताना शरीरप्रमाणे लाकडी अने पोताना शरीरथी चार आंगण भाटे जेवो दंड राखे छे अने विहार करे छे.

शंका—भगवाने पणु जे देशमां विहार करतां पोताना छाथेमां दंड-लाकडी वगेरे केम न राख्यां?

उत्तर—वृद्ध अवस्था सिवाय दंड धारण करवाणी आज्ञा भगवानना शासनमां रहेवावाणा साधुज्योना सिद्धांतमां नथी, भाटे भगवाने पणु ते समय ते स्थणे दंड वगेरे पासे राखेला न छेतां. व्यवहार सूत्रमां पणु जे जे कहेल छे— “थेराणं थेरभूमिपत्ताणं कप्पइ दंडए वा०” इत्यादि.

जे सूत्रमां “थेराणं” आ पद रोगी ग्लान अवस्थानुं उपलक्षक छे, भाटे स्थविर आदि अवस्था सिवाय अन्य अवस्थाज्योमां दंडने धारण करवा जे युक्त मानेला नथी, केमके जेक तो दंडने धारण करवो ते भीज्ज जेवोने भयजनक तथा हिंसाने प्रोत्साहन आपनार छे. भीज्ज शास्त्रमां दंड धारण करवानुं कहीं पणु

દંડં' પાણેહિં' इत्यपि वदता भगवता दण्डधारणं स्वयमनाचरितं, मुनीनां च दण्ड-  
धारणप्रतिषेधायोपदिष्टमिति सुस्पष्टं ज्ञायते । ये तु दण्डिनः ' सर्वावस्थायां  
दण्डधारणं मुनिकल्पः' इति मत्वा सर्वदा दण्डेन सह वर्तन्ते तदेतत्तेषां प्रबलमोह-  
विजृम्भणमात्रम् ॥५॥

किञ्च—' एवं पि ' इत्यादि ।

મૂલમ્—एवं पि तत्थ विहरंता, पुट्टपुठ्वा अहेसि सुणएहिं ।

સંલુંચમાણા સુણણ્હિં, દુચ્ચરાણિ તત્થ લાઢેહિં ॥૬॥

છાયા—एवमपि तत्र विहरन्तः स्पृष्टपूर्वा आसन् शुनकैः ।

સંલુચ્યમાનાઃ શુનકૈઃ દુશ્વરાણિ તત્ર લાઢેપુ ॥ ૬ ॥

રખનેકા કોઈ વિધાન મી નહીં હૈ " નિહાય દંડ પાણેહિં " ઇસ સૂત્રાંશસે આગે ચલકર ભગવાને યહી સ્પષ્ટ ક્રિયા હૈ, અતઃ ઇસ અવસ્થામેં દણ્ડકા ધારણ અયોગ્ય સમજ્ઞ શ્રી વીરપ્રભુને મી દણ્ડ ગ્રહણ નહીં ક્રિયા । જબ અન્ય મુનિજનોંકો મી પૂર્વોક્ત અવસ્થાઓંકે અતિરિક્ત દણ્ડ ધારણ કરનેકી વીરપ્રભુકી આજ્ઞા હી નહીં હૈ, તો વિચારનેકી વાત હૈ કિ વે પ્રભુ સ્વયં દણ્ડ કૈસે ગ્રહણ કર સકતે થે । જો લોગ યહ સમજ્ઞકર કિ દણ્ડ ધારણ કરના મુનિયોંકા કલ્પ હૈ સદા દણ્ડ ધારણ કરતે હૈં યહ ઉનકી માન્યતા શાસ્ત્રીય માર્ગસે સર્વથા પ્રતિકૂલ હૈ, તથાપિ દણ્ડ રખતે હૈં ઇસકા કારણ સિર્ફ પ્રબલ મોહકા હી વિલાસ જાનના ચાહિયે ॥૫॥

और भी—' एवं पि ' इत्यादि ।

વિધાન નથી. " નિહાય દંડ પાણેહિં " આ સૂત્રાંશથી આગળ ચાલી ભગવાને એ સ્પષ્ટ કરેલ છે. માટે એ અવસ્થામાં દંડ ધારણ કરવો એ અયોગ્ય સમજી વીર પ્રભુએ દંડ ધારણ કરેલ ન હતો. જ્યારે બીજા મુનિયોને માટે પણ પૂર્વોક્ત અવસ્થાઓના અતિરિક્ત દંડ ધારણ કરવાની વીર પ્રભુની આજ્ઞા નથી ત્યારે વિચારવાની એ વાત છે કે જ્યાં બીજાને માટે દંડ ગ્રહણ કરવાની આજ્ઞા નથી ત્યાં પ્રભુ પોતે દંડ શી રીતે ધારણ કરી શકે? જે લોકો દંડ રાખે છે તે એવું સમજે છે કે દંડ રાખવો તે મુનિઓનો કલ્પ છે તેથી સદા દંડ ધારણ કરે છે. એમની એ માન્યતા શાસ્ત્રીય માર્ગથી તદ્દન વિરુદ્ધની છે તો પણ દંડ રાખે છે, આનું કારણ કેવળ પ્રબળ મોહનો વિલાસજ સમજવો જોઈ એ. (૫)

ફરી—“ एवं पि ” इत्यादि.



टीका—तत्र=लाढदेशेषु एवमपि=यष्ट्यादिग्रहणेनापि विहरन्तः श्रमणाः=अन्ये शाक्यादयः, शुनकैः=कुकुरैः स्पृष्टपूर्वाः=दष्टपूर्वा आसन्। तथा शुनकैः संलुच्यमानाः=इतश्चेतश्च गात्रे भक्ष्यमाणाः आसन्। दण्डैर्वार्यमाणा अपि तत्रत्याः श्वानः प्रतिनिवृत्ता न भवन्तीति भावः, अत एव तत्र=तेषु लाढेषु दुश्चराणि=सतां दुर्गमानि ग्रामादीनि सन्तीत्यर्थः ॥ ६ ॥

‘अन्ये श्रमणा यष्ट्यादिकं गृहीत्वा विजहुः’ इत्युक्तम्, भगवान् कथं तत्र लाढेषु विहारमकरोदिति दर्शयितुमाह—‘निहाय दंडं’ इत्यादि।

मूलम्—निहाय दंडं पाणेहिं तं कायं वोसिरिज्ज मणगारे।

अह गामकंटए भगवंते, अहिआसए अभिसमिच्चा ॥७॥

छाया—निहाय दण्डं प्राणिषु तं कायं व्युत्सृज्यानगारः।

अथ ग्रामकण्टकान् भगवानध्यास्ते अभिसमेत्य ॥ ७ ॥

उस लाढदेशमें इतने बलिष्ठ कुत्ते हैं कि दंडा हाथमें लेकर भी विचरण करनेवाले अन्य शाक्यादिक श्रमण उनको भगाते तो भी वे लपककर झूम जाते और काट खाते हैं, पहिले भी इनको उन्होंने कईवार काट खाया है। वहांके ग्राम इन कुत्तोंसे ही दुर्गम बने हुए हैं। अतः अपरिचित कोई भी व्यक्ति वहां नहीं जा सकता ॥६॥

जब अन्य साधुजन दण्डादिसे सज्ज होकर वहां विचरण करते हैं तब भगवान् वीर प्रभुने कैसे वहां विहार किया? इस विषयको सूत्रकार स्पष्ट करते हैं—‘निहाय दंडं’ इत्यादि।

भगवानने उस लाढदेशमें विहार करते समय अनेक प्रकारके परीषह और उपसर्गोंको कर्मोंकी निर्जराका कारण मान बड़े ही धैर्य और

लाढ देशમાં એવા બળવાન કુતરા હોય છે કે હાથમાં દંડ લઈને ચિચરણ કરવાવાળા શાક્યાદિક શ્રમણ એને ભગાડે છતાં તે સામે કુદીને કરડે છે. અગાઉ પણ ઘણા શાક્યાદિક શ્રમણોને એ કુતરાઓએ કરડી ખાધા છે. ત્યાંના ગામડાં આ કુતરાઓથી દુર્ગમ રહે છે એટલે અપરિચિત કોઈ પણ વ્યક્તિ ત્યાં જઈ શકતી નથી. (૬)

ન્યારે અન્ય સાધુજન દંડ વગેરેથી સજ્જ થઈ ત્યાં વિચરણ કરે છે ત્યારે ભગવાન વીર પ્રભુએ ત્યાં વિહાર કઈ રીતે કર્યો? આ વિષયને સૂત્રકાર સ્પષ્ટ કરે છે—‘નિહાય દંડં’ ઇત્યાદિ.

એ લાઢ દેશમાં વિહાર કરતી વખતે ભગવાને અनेक प्रकारના પરિषહ અને ઉપસર્ગોને કર્મોની નિર્જરાતું કારણ માની ખુબ જ ધૈર્ય અને સમભાવ સાથે

ટીકા—અનગારઃ=ભગવાન પ્રાણેષુ=પ્રાણિષુ દળ્હં=લકુટયષ્ટ્યાદિકં નિહાય=અગ્રહીત્વા સર્વથા પરિત્યજ્ય 'ઓહાક્ ત્યાગે' इति ધાતોર્લ્યવન્તરૂપમ્। યદ્વા-દળ્હં=દુષ્પણિહિતમનોવાકાયરૂપં નિહાય=ત્યક્ત્વા, તથા તમ્=અનાર્યકૃતોપસર્ગા-પન્નં કાયં કાય=મમત્વં વ્યુત્સૃજ્ય અથ=અનન્તરમ્ અભિસમેત્ય=સમ્યગ્ નિર્જરાં વિદિત્વા ગ્રામકષ્ટકાન્=રુક્ષભાષિણોઽનાર્યલોકાન્ તત્કૃતપરીષહોપસર્ગાનિતિ યાવત્, અધ્યાસ્તે=અધિસહતેસ્મ। દુસ્સહપરીષહોપસર્ગસમ્પ્રાપ્તૌ સત્યામપિ ભગવાન્ સર્વમેવ સહતેસ્મ, કિન્તુ-પ્રાણિભયહિંસાજનકત્વાદ્ યષ્ટિલકુટાદિકં ન ગૃહીત્વાનિતિભાવઃ॥૭૧॥

સમભાવકે સાથ સહન કિયા, પરન્તુ ફિર મી દળ્હ આદિકા ઉન્હોને ઉસ અવસ્થામેં મી ગ્રહણ નહીં કિયા, ઉસકા કારણ પ્રાણિયોંકો અમય દેના થા, યદિ વે દળ્હ વગેરહકા ઉસ સમય વહાં ઉપયોગ કરતે તો અન્ય પ્રાણિયોંકો ઉસસે મય અવદ્ય હોતા, જો જૈન મુનિયોંકે લિધે સર્વથા હેય હૈં। ભગવાન શારીરિક મમત્વસે રહિત થે। રક્ષાકે સાધનોંકા ઉપ-યોગ વે હી લોગ કરતે હૈં-જિન્હેં બાહ્ય પદાર્થોંસે અપને બિગાડકા મય હોતા હૈ, ભગવાન નિર્મય થે અતઃ ન તો ઉન્હેં ઉન અનાર્યોંસે મય હુઆ ઓર ન ઉનકે દ્વારા કૃત ઉપસર્ગ ઓર ઉપદ્રવોંસે। સૂત્રકા શબ્દાર્થ હસ પ્રકાર હૈ-શારીરિક મમતાસે રહિત વે પ્રમુ 'જીવોંકો મેરે દ્વારા મય ન હો' હસ અભિપ્રાયસે દળ્હકા અથવા મન વચન કાયકી અશુભ પ્રણિધાનરૂપ પ્રવૃત્તિકા સર્વથા પરિત્યાગ કર "યે સવ બાહ્ય ઉપસર્ગ ઓર પરિષહ મેરે કર્મોંકી નિર્જરાકે સાધક હૈં" એસા વિચાર કર ઉન્હેં અનાર્યોંકે સંસર્ગસે વિચલિત નહીં હોકર સહા ॥૭૧॥

સહન કર્યાં. પરન્તુ છતાં પણ તેમણે લાકડી સરખીએ સાથે ન લીધી, એનું કારણ પ્રાણીઓને અભય આપવાનું હતું. જો એ સમયે પ્રભુ લાકડી વગેરે રાખત તો અન્ય પ્રાણીઓને એનાથી ભય અવશ્ય લાગત જે જૈન મુનિઓને માટે સર્વથા ત્યાજ્ય છે. ભગવાન શારીરિક મમત્વથી તદ્દન રહિત હતા. રક્ષાના સાધનોનો ઉપયોગ તો એ લોકો કરે છે કે જેમને બાહ્ય પદાર્થોથી પોતાના બચાડનો ભય હોય છે. ભગવાન નિર્ભય હતા આથી એમને ન અનાર્યોનો ભય થયો કે ન તો એના તરફથી કરાયેલા ઉપસર્ગ અને ઉપદ્રવોનો, સૂત્રનો શબ્દાર્થ આ પ્રકારનો છે-શારીરિક મમતાથી રહિત એ પ્રભુ 'જીવોને મારાથી ભય ન હો.' આ અભિપ્રાયથી હંડનો અથવા મન વચન અને કાયાની અશુભ પ્રણિધાનરૂપ પ્રવૃત્તિનો સર્વથા પરિત્યાગ કરી. "આ બધા બાહ્ય ઉપસર્ગ અને પરિષહ મારા કર્મોની નિર્જરાના સાધક છે" એવો વિચાર કરી અનાર્યોના સંસર્ગથી વિચ્છલિત ન બનતાં સહન કરેલ. (૭)

સ કેન પ્રકારેણ ગ્રામકણ્ઠકૃતપરીષહોપસર્ગાન્ સહતે ? इति सट्टान्तमाह—  
'नागो' इत्यादि ।

મૂલમ્—નાગો સંગામસીસે વા, પારણ તત્થ સે મહાવીરે ।

एवं पि तत्थ लाढेहिं, अलद्धपुव्वो वि एगया गामो ॥८॥

छाया—नागः संग्रामशीर्षे इव पारगः तत्र स महावीरः ।

एवमपि तत्र लाढेषु अलब्धपूर्वोऽप्येकदा ग्रामः ॥ ८ ॥

टीका—संग्रामशीर्षे=युद्धक्षेत्रे नाग इव=हस्तीव तत्र=तेषु लाढेषु महावीरः  
पारगः=पारगामी अभूत् । यथा=हस्ती युद्धभूमौ शत्रुसेनां विजित्य तत्पारगामी  
भवति, तथा स महावीरः=भगवान् अपि लाढेषु परीषहोपसर्गानीकं विजित्य तत्पा-  
रगामी अभूत् । किञ्च=एवमपि तत्र=तेषु लाढेषु ग्रामाणामतिदूरवर्तित्वाद् एकदा=  
एकस्मिन् काले कदाचिद् भगवता ग्रामः=लोकानां वासस्थानम् अलब्धपूर्वः=पूर्वं न  
लब्धः, तेनारण्यमार्गे गच्छतो भगवतः समीपमागत्यानार्यलोकाः परीषहोपसर्गं  
चक्रुः । एतच्चानुपदमेव वक्ष्यते ॥८॥

दृष्टान्तद्वारा सूत्रकार इसी बातकी पुष्टि करते हैं—'नागो' इत्यादि।

जिस प्रकार युद्धक्षेत्रमें गजराज शत्रुसेनाको परास्त कर  
उससे पार हो जाता है, ठीक इसी प्रकार वे महावीर प्रभु भी लाढदेशमें  
उपसर्गरूपी सेनाको जीतकर उससे पार हुए। एक समयकी बात  
है कि जब भगवान विहार करते२ एक ऐसे ग्राममें आ रहे थे जो छोड़े  
हुए ग्रामसे बहुत दूर था, तथा जिसमें वे पहिले कभी नहीं आये थे,  
उस समय जंगली मार्गसे आते हुए उनके पास बहुतसे अनार्यजन  
आये और अनेक प्रकारके परीषह और उपसर्ग करने लगे ॥८॥

दृष्टान्तद्वारा सूत्रकार એ જ વાતની પુષ્ટિ કરે છે—'નાગો' ઇત્યાદિ.

એ રીતે યુદ્ધક્ષેત્રમાં જેમ ગજરાજ શત્રુસેનાને પરાસ્ત કરી એની  
આરપાર નીકળી જાય છે. બરાબર એ જ રીતે મહાવીર પ્રભુ પણ લાઢ દેશમાં  
પરિષદ અને ઉપસર્ગરૂપ સેનાને જીતી એનાથી પાર થયા. એક સમયની વાત  
છે કે જ્યારે ભગવાન વિહાર કરતાં કરતાં એક એવા ગામમાં જઈ રહ્યા હતા  
કે જે છોડેલા ગામથી ઘણો દૂર હતો અને જ્યાં અગાઉ કદી પણ ગયા ન  
હતા. એ વખતે જંગલના માર્ગથી જતાં ઘણા અનાર્ય લોકો તેમની પાસે  
આવ્યા, અને એમના ઉપર અનેક પ્રકારના પરિષદ અને ઉપસર્ગ કરવા લાગ્યા. (૮)



તદેવાહ—‘ઉવસંકમંત૦’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—ઉવસંકમંતમપડિન્નં, ગામંતિયં પિ અપ્પત્તં ।

પડિનિક્ખમિત્તુ લુસિંસુ, ઇયાઓ પરં પલેહિ-ત્તિ ॥૧॥

છાયા—ઉપસંક્રામન્તમપ્રતિજ્ઞં ગ્રામાન્તિકમપિ અપ્રાપ્તમ્ ।

પ્રતિનિષ્ક્રમ્ય અલ્લપિષુઃ એતસ્માત્ પરં પલાયસ્વેતિ ॥ ૮ ॥

ટીકા—પ્રતિનિષ્ક્રમ્ય=તેઽનાર્યલોકાસ્તસ્માદ્ ગ્રામાત્ પ્રતિનિર્ગત્ય, અપ્રતિજ્ઞં=નિયતાવસ્થાનાદિપ્રતિજ્ઞારહિતમ્—ઉપસંક્રામન્તમ્=વાસાર્થં વ્રજન્તં, ગ્રામાન્તિકે=વસતિસમીપે પ્રાપ્તમપ્રાપ્તં વા ભગવન્તમ્ અલ્લપિષુઃ=દણ્ડમુષ્ટ્યાદિભિસ્તાડયામામ્સુઃ, ઝુચુશ્ચ—‘એતસ્માત્=ઇતઃ સ્થાનાત્ પરમ્=અન્યસ્થાનં, પલાયસ્વ’ ઇતિ ॥ ૯ ॥

કિંચ—‘હયપુન્વો’ ઇત્યાદિ ।

સૂત્રકાર ઇન્हीं પરીષદ્દ ઓર ઉપસર્ગોંકો બતલાનેકે લિયે સૂત્ર કહતે હૈં—‘ઉવસંકમંત૦’ ઇત્યાદિ ।

ઉસ ગ્રામકે વે અનાર્યજન અપને ૨ ઘરસે નિકલ કર નિયમિત સ્થાન પર ઠહરનેકે અથવા એક નિયત સ્થાન પર રહને આદિકે બન્ધસે રહિત ઉન ભગવાનસે જો ઉસ સમય ઠહરનેકે લિયે ઉસ ગ્રામકી ઓર બદ રહે થે, તથા વસતિમેં આને ખી નહીં પાવે થે, ઉસ પહેલે હી પાસમેં આકર કહને લગે કિ તુમ શીઘ્ર હી યહાંસે કિસી દૂસરી જગદ્ ભાગ જાઓ । એસા કહતે હુએ ઉન લોગોંને ભગવાનકો દણ્ડ, મુષ્ટિ આદિસે સ્ત્રૂબ પ્રહાર કિયા ॥૯॥

ઓર ખી ‘હયપુન્વો’ ઇત્યાદિ ।

સૂત્રકાર એ પરિષદ્દ અને ઉપસર્ગોંને સમજાવવા માટે સૂત્ર કહે છે—‘ઉવસંકમંત૦’ ઇત્યાદિ.

એ ગામના એ અનાર્યજન પોત-પોતાના ઘરેથી નીકળી નિયમિત સ્થાન પર રોકાવાના અથવા એક નિયત સ્થાન પર રહેવા આદિના બંધનથી રહીત એવા ભગવાનથી કે જે તે સમય રહેવા માટે તે ગામની તરફ આવી રહ્યા હતા, અને વસતીમાં આવી પણ નહિ શક્યા તે પહેલાંજ સામને આવી કહેવા લાગ્યા કે તમે તાત્કાલિક અહીંથી ખીજી જગ્યાએ ભાગી જાઓ. એમ કહી એ લોકોએ ભગવાનને લાકડી, હાથની મુઠી વગેરેથી ખુબ પ્રહાર કરેલા. (૬)

ફરી—‘હયપુન્વો’ ઇત્યાદિ.

मूलम्—हयपुवो तत्थ दंडेण, अदुवा मुट्टिणा अदु कुंतफलेण ।

अदु लेलुणा कवालेण, हंता हंता बहवे कंदिसु ॥१०॥

छाया—हृत्पूर्वस्तत्र दण्डेन, अथवा मुष्टिना अथवा कुन्तफलेन ।

अथ लेण्डुना कपालेन, हत्वा हत्वा बहवः चक्रन्दुः ॥ १० ॥

टीका—तत्र=ग्रामाद् बहिः स भगवान् हृत्पूर्वः=पूर्व दण्डादिभिस्ताडित आसीत्, तथापि दण्डेन अथवा—मुष्टिना, अथवा—कुन्तफलेन=भल्लेन, अथवा—लेण्डुना=मृत्खण्डेन, कपालेन=घटखर्परादिना हत्वा हत्वा बहवः—अनार्याः, चक्रन्दुः=‘पश्यत पश्यत कीदृशोऽयं मुण्डितः’ इति कल-कल-शब्दं चक्रुः ॥ १० ॥

किञ्च—‘मंसाणि’ इत्यादि ।

मूलम्—मंसाणि छिन्नपुव्वाणि, उट्ठंभिया एगया कायं ।

परीसहाइं लुंचिसु, अदुवा पांसुणा उवकरिसु ॥११॥

छाया—मांसानि छिन्नपूर्वाणि अवष्टभ्य एकदा कायम् ।

परीषहा अलुञ्चिषुः, अथवा पांसुना उपाकिरन् ॥११॥

टीका—तत्र भगवतः शरीरे मांसानि छिन्नपूर्वाणि=पूर्व छिन्नानि आसन् तथापि एकदा=कदाचित् कायं=भगवतःशरीरम् अवष्टभ्य=आक्रम्य परीषहाः=

प्रभु जब ठहरनेके लिये उस गांवके पास आ पहुँचे तब एक तो उन अनार्योंने उन्हें गांवकी बाहर ही पहिले दण्ड मुष्टि आदिसे खूब मनमाना प्रहार किया । दण्डसे, कुन्तफल-भालेसे, मिट्टीके ढेलोंसे, खपरियोंसे प्रहार कर जब वे शांत हुए तो फिर वे चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगे कि—अरे भाईयो ! देखो देखो यह मुण्डित कैसा व्यक्ति है ? ॥१०॥

फिर भी—‘मंसाणि’ इत्यादि ।

उन अनार्य लोगोंने भगवानके शरीरको पहिले ही अनेक प्रकारसे क्षत-विक्षत कर दिया था, और उन्होंने मांसपिंड भी कहीं से काट

प्रभु ज्यारे रोकवा भाटे ओ गामनी पासे पछोन्था त्यारे ओक तो ओ अनार्योंओ तेमने गामनी भडार न हंड, मुष्टि वगेरथी मार मारेखे। हंडथी लावाथी भाटीना डेङ्गथी के ठीकराथी मार भारी शान्त थया तो इरी ते राडे पाडी पाडीने कडेवा लाज्या के अरे लाधओ ! जुओ आ मुंडित केवी व्यक्ति छे. (१०)

इरी—‘मंसाणि’ इत्यादि.

ओ अनार्य डोङ्गोओ लगवानना शरीरने पछेलेथी न लाकडीओ तथा हाथ पडे मार भारी खीरा डगरडावाणु अनार्यो देवा उपरांत केध केध

विविधप्रतिकूलपरीषहरूपा अनार्यलोकाः भगवन्तमलुञ्चिषुः=आकृष्टवन्तः, अथवा-  
पांसुना=धूलिना उपाकिरन्=भगवतः शरीरमाच्छादयामासुः ॥ ११ ॥

किञ्च—‘उच्चालइय’ इत्यादि ।

मूलम्—उच्चालइय निहणिसु, अदुवा आसणाउ खलइंसु ।

वोसट्टकाए पणयाऽऽसी, दुखसहे भगवं अपडिन्ने ॥ १२ ॥

छाया—उच्चाल्य निजघ्नुः अथवा आसनादस्वलयन् ।

व्युत्सृष्टकायः प्रणत आसीत् दुःखसहः भगवान् अप्रतिज्ञः ॥ १२ ॥

टीका—अनार्यलोकाः उच्चाल्य=उच्चैर्नीत्वा=भगवन्तमूर्ध्वमुत्थाप्य निजघ्नुः  
=भूमौ निपातयामासुः । अथवा आसनात्=गोदोहिकोत्कुटुक्वीरासनादिकात्  
अस्वलयन्=भगवन्तं निपातितवन्तः । भगवान् परीषहोपसर्गं केन प्रकारेण सेहे ?  
इत्याह—व्युत्सृष्टकाय इत्यादि । भगवांस्तु व्युत्सृष्टकायः=कायोत्सर्गस्थितः, अतः

लिया था, फिर भी उनकी भगवानको दुःखित करने की कुत्सित मनो-  
वृत्तियां शांत नहीं हुईं । वे कभी २ भगवानके शरीर पर अनेक प्रका-  
रसे आक्रमण कर उन्हें इधर उधर लोंच डालते और फिर बादमें  
उनके ऊपर अधिकसे अधिक धूलि फेंकते ॥ ११ ॥

और भी—‘उच्चालइय’ इत्यादि ।

वे अनार्यजन कभी २ भगवानको ऊपर उठाकर नीचे पटक देते थे,  
अथवा गोदोहिक आसन, उत्कुटक आसन, और वीरासन आदिसे नहीं  
चलायमान उन प्रभुको वे उन आसनोंसे चलायमान करते-हिलाकर  
पटक देते । भगवानने ये परीषह और उपसर्ग किस प्रकारसे जीते इसे  
‘वोसट्टकाए’ इस पदसे स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं—ये सब परी-

अपयपमांथी मांसना बोया पणु कापी लीधेला, आ प्रकारना डिक्कारा कृत्यथी  
पणु न संतोषातां बोही नीतरता प्रभुना शरीरने ऐक आणुथी पीणु आणु  
ठसरउवातुं तेमज धुण अने कांकराओथी वधु दुःभीत भनाववानुं करेखुं. (११)

इरी पणु—‘उच्चालइय’ इत्यादि.

ऐ अनार्य बोडोने आटवेथी पणु संतोष न थये। बोय तेम  
लगवानना क्षत-विक्षत भनी गयेला शरीरने उंचुं उपाडी ईंकावांमां पणु  
आडी शपेले नही. परंतु गोहोडिक आसन, उत्कुटक (उकडु) आसन  
अने वीरासन वगेरेथी ध्यानस्थ थयेला प्रभुने ऐ बोडो यत्तायमान करी शक्या  
नही. लगवाने आ प्रकारनां मानवताविहोणुं अनार्योद्वारा अपायेलां कण्टोने  
ऐवा प्रकारे सहुन उथी ? ऐने ‘वोसट्टकाए’ ऐ पदथी स्पष्ट करतां सूत्रकार कहे छे—



एव अप्रतिज्ञः=दुःखप्रतीकारप्रतिज्ञारहितः, अत एव दुःखसहः=परीषहोपसर्गजन्य  
दुःखसहिष्णुः सन् प्रणतः=प्र=प्रकर्षेण नतः=धर्मध्यानलीन आसीत् ॥१२॥

भगवतः परुषपरीषहसहनं सदृष्टान्तमाह—'सूरो' इत्यादि ।

मूलम्—सूरो संगामसीसे वा, संवुडे तत्थ से महावीरे ।

પડિસેવમાણે ફરસાઈ; અચલં ભગવં રીઝતથા ॥૧૩॥

છાયા—સૂરઃ સંગ્રામશીર્ષે ઇવ, સંવૃતસ્તત્ર સ મહાવીરઃ ।

પ્રતિસેવમાનઃ પરુષાન્, અચલો ભગવાન્ અરીયત ॥ ૧૩ ॥

टीका—सङ्ग्रामशीर्षे=रणभूमौ संवृतः=कवचाच्छादितकायः सूर इव=अप्रति-  
हतपराक्रमी योद्धेव स महावीरः संवृतः=वैर्यादिगुणाच्छादितमनोवाकाययोगः  
षह और उपसर्ग भगवानने धर्मध्यानमें लीन होनेसे जीते । धर्मध्यानमें  
लीनता होने पर ही कायसे ममत्वका अभाव होता है, जहां धर्मध्यान  
का सद्भाव होता है वहां दुःखादिकोंके होने पर भी आत्मा उनसे  
विचलित नहीं होती, वे प्रभु अप्रतिज्ञ—उन प्रहारादि परीषहोंके प्रतीकार  
करनेकी भावनासे रहित थे ॥ १२ ॥

भगवानने इन परुष—कठोरवचनादिजन्य परीषहोंको कैसे सहन  
किया? इस विषयका खुलाशा सूत्रकार दृष्टान्तसे करते हैं—'सूरो'  
इत्यादि ।

जिस प्रकार कवच धारण किये हुए कोई एक सबल योधा युद्धमें  
शत्रुओंके द्वारा अनेक रीतिसे किये गये भाले आदि शस्त्रों के आघातों  
से बालर वच निकलता है और विजयश्री की प्राप्तिसे सुशोभित होता

આ બધા ત્રાસ અને દુઃખો ભગવાન ધર્મધ્યાનમાં લીન હોવાથી જીતેલા.  
ધર્મધ્યાનમાં લીનતા હોવાથી જ કાયાના મમત્વનો અભાવ થાય છે જ્યાં ધર્મ-  
ધ્યાનનો સદ્ભાવ હોય છે ત્યાં ગમે તેવાં દુઃખો આવી પડે તો પણ આત્મા  
વિચલિત થતો નથી. તે પ્રભુ અપ્રતિજ્ઞ—ગમે તેવા આક્રમણ થયા છતાં તેની સામે  
અચાવ કરવાની કે સામનો કરવાની ભાવનાથી રહિત હતા. (૧૨)

ભગવાને એ અનાયોનાં કઠોર વચનોથી તથા મારથી ઉત્પન્ન થયેલ પરી-  
ષહોને 'કઈ રીતે સહન કર્યાં?' આ વિષયનો ખુલાસો સૂત્રકાર દૃષ્ટાંતથી કરે છે—  
'સૂરો' ઇત્યાદિ.

જે પ્રકારે કવચ ધારણ કરેલ કોઈ એક સખળ સૈનિક યુદ્ધમાં શત્રુઓ  
તરફથી ભાલાં, તરવાર વગેરે શસ્ત્રોથી થતા પ્રહારોની તેમ જ તેના શરીરના  
માંસના લોચા બહાર નીકળી જતાં તેની પણ દરકાર ન કરતાં વિજય ભગવ-

તન્ન=લાઢદેશે પરુપાન્=દુઃસહપરીષહાન્ પ્રતિસેવમાનઃ=સહમાનઃ, અત એવ અચલઃ= નિષ્કમ્પઃ સન્ અરીયત=વિહરતિસ્મ । યથા શૂરઃ શત્રુભિઃ કુન્તાદિશસ્ત્રૈઃ પ્રતિહન્ય- માનોઽપિ કવચાવૃતશરીરઃ સન્ ન પરાજયં પ્રાપ્નોતિ તથા ભગવાનપિ અનાર્યલોકૈ- ર્દષ્ટદુષ્ટ્યાદિવિવિધઘોરપરીષહોપસર્ગૈરુપદ્રુતોઽપિ ધૈર્યાદિગુણસંવૃતઃ સન્ ન ધર્મધ્યા- નચ્યુતિલક્ષણં પરાજયં પ્રાપેતિ ભાવઃ ॥૧૩॥

ઉદ્દેશકાર્થમુપસંહરન્નાહ--‘એસ વિહી’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્-એસ વિહી અણુક્રંતો માહણેણ મહિમયા ।

બહુસો અપહિન્નેણ ભગવયા એવં રિયંતિ-ત્તિબેમિ ॥૧૪॥

હૈ, ઉસી પ્રકાર ઉસ લાઢ દેશમેં ધૈર્ય આદિ સદ્ગુણરુપ કવચસે યુક્ત મન, વચન ઓર કાય યોગવાલે ભગવાન્ મહાવીરને ઉન દુઃસહ પરી- ષહોંકો અડોલ બન કર સહતે હુએ વિહાર કિયા । તાત્પર્ય યહ હૈ કિ— જિસ પ્રકાર કવચ પહિરે હુએ યોધા યુદ્ધમેં શત્રુઓંદ્રારા કિયે ગયે વારોં કો બચાતા હુઆ અપને લક્ષ્ય પર ડટા રહતા હૈ ઓર અન્તમેં વિજયકી પ્રાપ્તિસે જૈસે આનંદિત હોતા હૈ, ઉસી પ્રકાર ઠીક ભગવાન્ મહાવીર મી ઉસ લાઢદેશમેં હન અનાર્યોં દ્રારા કિયે ગયે અનેક પ્રકારકે મર્યંકર ઉપદ્રવોંસે યુક્ત હોને પર મી ધૈર્ય આદિ ગુણોંસે સંવૃત શરીરવાલે હોનેસે ઉન્હેં સહતે હુએ અપને ધર્મધ્યાનસે તનિક મી વિચલિત નહીં હુએ ॥૧૩॥

હિસ ઉદ્દેશકે અર્થકા ઉપસંહાર કરતે હુએ સૂત્રકાર કહતે હૈ— ‘એસ વિહી’ ઇત્યાદિ ।

વામાં જ તન્મય બની શત્રુઓને હરાવવામાં જ એટલે કે ધ્યેયની પ્રાપ્તિમાં જ મશગુલ રહે છે, અને વેદનાની કે પોતાના શરીરના લબકતા માંસના લોચાની જરા સરખીએ પરવા કરતો નથી, એ જ રીતે એ લાઢ દેશમાં ધૈર્ય વગેરે સહ- ગુણરૂપ કવચથી શોભતા અને તેમજ મન, વચન અને કાયાના યોગવાળા ભગ- વાન મહાવીરે પણ અસહ્ય એવાં દુઃખોને અટોલ રહી સહન કરતાં વિહાર કર્યો. તાત્પર્ય એ કે-જે રીતે કવચ ધારણ કરેલા યોદ્ધાને યુદ્ધમાં શત્રુએ તરફથી કરવામાં આવતા પ્રહાર-વારને અચાવતાં અચાવતાં તે યોદ્ધો પોતાના લક્ષ્યથી જરા પણ વિચલિત બનતો નથી, અને અંતે વિજય પ્રાપ્ત કરે છે, ઠીક એ જ રીતે ભગવાન મહાવીર પણ એ લાઢ દેશમાં અનાર્યોં દ્વારા કરવામાં આવેલ અનેક પ્રકારના ભયંકર ઉપદ્રવો આવવા છતાં પણ ધૈર્ય વગેરે ગુણોથી શોભતા શરીરવાળા હોવાથી આવી પડેલા ઉપદ્રવોને સહવા છતાં પોતાના ધર્મધ્યાનથી લેશ માત્ર પણ ચલિત બનેલ ન હતા. (૧૩)

આ ઉદ્દેશના અર્થનો ઉપસંહાર કરતાં સૂત્રકાર કહે છે-‘એસ વિહી’ ઇત્યાદિ.

छाया—एष विधिरनुक्रान्तः माहनेन मतिमता ।

बहुशः अप्रतिज्ञेन भगवता एवं रीयन्ते, इति ब्रवीमि ॥१४॥

टीका—अस्य व्याख्याऽत्रैवाध्ययने प्रथमोद्देशेऽभिहिता, तत एवावगन्तव्या । इति ब्रवीमीत्यस्यार्थस्तूक्त एव ॥ १४ ॥

नवमाध्ययनस्य तृतीय उद्देशः समाप्तः ॥ ९-३ ॥

इस सूत्रकी व्याख्या इसी अध्ययनके प्रथम उद्देशमें की जा चुकी है, अतः वहांसे समझ लेनी चाहिये । 'इति ब्रवीमि' इसका अर्थ पहले किया जा चुका है ॥ १४ ॥

नववें अध्ययनका तीसरा उद्देश समाप्त ॥९-३॥

આ સૂત્રની વ્યાખ્યા આ અધ્યયનના પ્રથમ ઉદ્દેશમાં કહેવામાં આવી ગઈ છે, માટે ત્યાંથી સમજ લેવી જોઈએ. 'इति ब्रवीमि' આનો અર્થ પહેલાં આવી ગયેલ છે. (૧૪)

નવમા અધ્યયનનો ત્રીજો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥૯-૩॥



## ॥ अथ नवमाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देशः ॥

इहानन्तरतृतीयोद्देशके भगवतः परीषहोपसर्गसहनं प्रतिबोधितम् । अथ चतुर्थोद्देशके रोगातङ्कपीडाप्रतीकारपरिहारेण परीषहोपसर्गाणामतीव सहनं तपश्चर्या-प्रवृत्तिं च भगवतः कथयन्नाद्यं सूत्रमाह—‘ओमोयरियं’ इत्यादि ।

मूलम्—ओमोयरियं चाण्ड, अपुष्टेऽपि भगवं रोगेहिं ।

पुष्टे वा अपुष्टे वा, नो से साइज्ज तेइच्छं ॥१॥

छाया—अवमौदरिकां करोति अस्पृष्टोऽपि भगवान् रोगैः ।

स्पृष्टो वा अस्पृष्टो वा नो स स्वदते चिकित्सा ॥ १ ॥

टीका—भगवान् रोगैरस्पृष्टोऽपि=वातादिप्रकोपरहितोऽपि, अवमौदरिकां=न्यूनोदरतां करोतिस्म, लोका हि रोगाऽऽक्रान्ताः सन्तस्तत्प्रशमनार्थं न्यूनोदरतां करोति, भगवांस्तु रोगानाक्रमणेऽपि कर्मनिर्जरार्थं तां कर्तुं प्रवृत्त इति भावः । यद्यपि स भगवान् अस्पृष्टो वा=कासश्वासादिभिरनाक्रान्त आसीत्, किन्तु स्पृष्टो वा=कुकुरादिभिः क्षतगात्रोऽपि सन् चिकित्सां=औषधादिभिस्तत्प्रतीकारं नो स्वदते=नाभिलषतिस्म ॥१॥

## ॥ नववें अध्ययनका चौथा उद्देश ॥

तृतीय उद्देशमें भगवानने किन२ परीषह और उपसर्गोंको सहा ? यह प्रकट किया गया है । इस चतुर्थ उद्देशमें भगवानद्वारा आचरित तपश्चर्याका वर्णन किया जायगा, अतः सर्व प्रथम सूत्रकार अवमौदर्य तपका कथन करते हैं—‘ओमोयरियं’ इत्यादि ।

भगवान यद्यपि किसी भी वातादिकके प्रकोपसे उत्पन्न होने वाले रोगसे सदा रहित थे तो भी ऊनोदर नामक तपको करते थे, कारण कि कर्मोंकी निर्जराका प्रधान साधन तप ही है । तपके बिना कर्मोंकी निर्जरा

## नवमा अध्ययनने चौथो उद्देश

तृतीया उद्देशमां भगवाने केवा केवा परिषह अने उपसर्गो सह्या तेनुं वर्णुन करवाभां आवेल छे. आ चौथा उद्देशमां भगवाने आचरेदी तपस्यानुं वर्णुन करवाभां आवशे. आ माटे सर्व प्रथम सूत्रकार अवमौदर्य तपनुं कथन करे छे—‘ओमोयरियं’ इत्यादि.

भगवान जे के कोठपणु वात आदिना प्रकोपथी उत्पन्न थवावाणा रोगथी सह्य रहित हुता तो पणु ऊनोदरी तप करता हुता, कारण के कर्मोनी निर्जरां प्रधान साधन तप न छे, तप वगर कर्मोनी निर्जरा

નહીં હો સકતી હૈ । તપસે દો લાભ હોતે હૈ-૧કતો સંચિત કર્મોંકી નિર્જરા ઓર દૂસરા સંવરકી પ્રાપ્તિ, હસી લિયે મોક્ષાર્થિયોંકો મોક્ષ પ્રાપ્તિકે લિયે તપશ્ચર્યાકી અનિવાર્ય આવશ્યકતા હૈ । ભગવાનને મી હસી અભિ-પ્રાયસે તપશ્ચર્યા કરનેમેં થોડી મી કર્મી નહીં રહ્વી, ઓર જ્યાદાસે જ્યાદા તપશ્ચર્યા કરને મેં હી અપને આપકો સંલગ્ન કિયા, હસ વિષયમેં ઉન્હેં અનેક પરીષદ્ધ ઓર ઉપસર્ગોંકો સહને પડે-જો સામાન્યજનકે લિયે અસહ્ય હોતે હૈ ।

ભાવા ૧-પ્રાયઃ યદ્ વાત દેશ્વી જાતી હૈ કિ મનુષ્ય જબ કિસી રોગ આદિસે આક્રાન્ત હોતા હૈ, તબ વદ્ ઝનોદર રહતા હૈ જિસસે ઉસકે રોગ શમિત હોં, પરન્તુ ભગવાન તો જન્મસે હી રોગાદિકસે રહિત થે, ફિર મી તપ કરનેમેં જો ઉન્હોંને કરકસર નહીં રહ્વી, ઉસકા કારણ સિર્ફ કર્મોંકી નિર્જરા કરના થા । હસી પ્રકાર શ્વાસ કાસ (શ્વાંસી) આદિસે ભગવાન રહિત થે । ઉન્હેં ત્રિલોકમેં મી કોઈ એસી ચીજ-વસ્તુ નહીં થી જો દુર્લભ હોતી, પરન્તુ ફિર મી જબ ઉનકે ઉપર કુત્તે આદિ ઉપસર્ગ કરતે, ઉનકે શરીર પર ઇપટકર જબ ઉન્હેં કાટ શ્વાતે તબ મી વે કિસી મી ઔષધિકા ઉપચાર નહીં કરતે ॥ ૧ ॥

બની શકતી નથી. તપથી બે લાભ થાય છે-એક તો સંચિત કર્મોંની નિર્જરા અને બીજી સંવરની પ્રાપ્તિ, આ માટે મોક્ષાર્થિઓએ મોક્ષપ્રાપ્તિ માટે તપશ્ચર્યા કરવી જોઈએ એ અનિવાર્ય છે. ભગવાને પણ આ અભિપ્રાયથી તપસ્યા કરવામાં જરા પણ બાકી રાખેલ નથી, અને વધારેમાં વધારે તપસ્યા કરવામાં પોતે પોતાના આત્માને જોડેલો. આ બારામાં એમને અનેક પ્રકારનાં પરિષદ્ધ અને ઉપસર્ગોં સહવા પડ્યા બે સામાન્ય માણસો માટે અસહ્ય હોય છે.

ભાવાર્થ-આથી એ વાત જોવામાં આવે છે કે જ્યારે કોઈ રોગ વગેરેથી પીડા ઉભી થાય છે ત્યારે તે બુખ્યો રહે છે એથી તેનો રોગ ઓછો થાય, પરંતુ ભગવાન તો જન્મથી જ રોગાદિકથી રહિત હતા, તો પણ તપ કરવામાં તેઓએ જરા પણ ઉણપ રાખી નથી, તેનું કારણ ફક્ત કર્મોંની નિર્જરા કરવાનું હતું. આ પ્રકારે ખાંસી-ઉધરસ વગેરેથી ભગવાન રહિત હતા. તેમના માટે ત્રણ દોઢમાં એવી કોઈ પણ વસ્તુ ન હતી કે જે તેમને માટે દુર્લભ હોય, તો પણ જ્યારે કુતરાઓ વગેરે તેમના ઉપર આક્રમણ કરતા અને ઉપસર્ગ આવતા, તેમના શરીર ઉપર ઇપટ મારી કરડતા-બચકાં ભરતા ત્યારે કોઈ પણ ઔષધિનો ઉપચાર પ્રભુ કરતા નહીં. (૧)

तदेव दर्शयितुमाह—‘ संसोहणं च ’ इत्यादि ।

मूलम्—संसोहणं च वमणं च, गायबभंगणं च सिणाणं च ।

संवाहणं च न से कप्पे, दंतपक्खालणं च परिज्जाए ॥२॥

छाया—संशोधनं च वमनं च गात्राभ्यञ्जनं च स्नानं च ।

संवाहनं च न तस्य कल्पते दन्तप्रक्षालनं च परिज्ञाय ॥२॥

टीका—परिज्ञाय=अशुचि, अशुचिसंभवमौदारिकशरीरमिति विदित्वा संशोधनं=वस्तिकर्मणौषधप्रयोगेण वा मलकोष्ठस्य सम्यक् शोधनं, तस्य भगवतो न कल्पत इत्यन्वयः । एवमग्रेऽपि वमनादिषु योजनीयम् । वमनं=वमनजनकौषधप्रयोगेण शरीरान्तर्वर्तिकफादिनिःसारणं, तथा गात्राभ्यञ्जनं=शतपाकसहस्रपाकतैलादिभिश्चन्दनकुङ्कुमकेसरादिभिर्वा गात्रोद्वर्तनं, तथा-स्नानं=द्रव्यस्नानं=अप्रासुकेन-प्रासुकेन वा जलेन स्नानम् । तद् द्विविधं-देशस्नानं सर्वस्नानं चेति । तत्र हस्ताद्यधिष्ठानादिशौचातिरेकेणाऽक्षिपक्ष्मप्रक्षालनमपि देशस्नानम् । सर्वस्नानं-सर्वाङ्गप्र-

इसी बातको और स्पष्ट करते हैं—‘ संसोहणं च ’ इत्यादि ।

भगवानने कभी भी संशोधन-वस्तिकर्म-इमेमा अथवा विरेचक औषधि आदिद्वारा मलकोष्ठकी शोधनक्रिया, वमनकारक औषधिके उपचारसे शरीरके भीतरके कफादिक मैलका संशोधन-बाहर निकालना, शतपाकवाले, अथवा सहस्रपाकवाले तैलसे मर्दन, अथवा चंदन, कुङ्कुम और केशर आदिसे शरीरका उबटन और प्रासुक अथवा अप्रासुकजलसे द्रव्यस्नान करना, ये समस्त क्रियाएँ बिल्कुल नहीं कीं, कारण कि इस प्रकारकी क्रियाओंका करना उनके आचारसे उन्हें कल्प्य नहीं था । द्रव्यस्नान-देशस्नान और सर्वस्नानके भेदसे दो प्रकारका है । हाथ पैर आदिकी शुद्धिके सिवाय आंखों और उनकी पलकोंका प्रक्षालन करना देशस्नान,

आ वातने वधु स्पष्ट करवाभां आवे छे—‘ संसोहणं च ’ इत्यादि ।

भगवाने कही पण संशोधन-वस्तिकर्म-इमेमा अथवा विरेचक औषधी वगेरे द्वारा भणशुद्धिनी किया, कथ-उलटी करावनाश औषधोना उपचारथी शरीरनी अंदरना कइ वगेरे भेलने अंडार काढेवा, शतपाकके सहस्रपाक तेलथी मर्दन, अथवा चंदन, कुङ्कु के केशर वगेरेथी शरीरनुं लेपन, गरम अथवा ठंडा पाणीथी द्रव्यस्नान करवुं, आवी अधी कियाओना भगवाने सर्वथा त्याग कर्यो छेतो; कारण के आ प्रकारनी कियाओ करवा भाटे तेमना आचारथी तेमना कइय न छेतो द्रव्यस्नान-देशस्नान तथा सर्वस्नानना लेहथी जे प्रकारना छे । हाथ पग वगेरेनी शुद्धिना सिवाय आंखो अने तेनी पापणुनुं पण प्रक्षालन करवुं जे देश-स्नान,



ક્ષાલનમ્-અપ્રાસુકજલેન સ્નાનકરણેઽપ્કાયાદિવિરાધનયા તપઃસંયમવિનાશાત્,  
પ્રાસુકજલેનાપિ સ્નાનકરણે શુષિરવિદીર્ણભૂમિવર્તિજન્તૂનામુત્પ્લાવનેન પ્રાણિવિરા-  
ધનાયાઃ સદ્ભાવાત્ સાધોઃ સ્નાનં ન કલ્પત્તિત્ત્વમિતિ ભાવઃ । ઉક્તશ્ચ—

નોદકક્લિન્નગાત્રોઽપિ, સ્નાત્ત્વમિધીયતે ।

સ સ્નાતો યો દમસ્નાતઃ, સ બાહ્યાભ્યન્તરઃ શુચિઃ ॥૧॥

ચિન્તમન્તર્ગતં દુષ્ટં, તીર્થસ્નાનૈર્ન શુદ્ધયતિ ।

શતશોઽપિ વપુર્ધૌતં, સુરામાણ્ડમિવાશુચિ ॥ ૨ ॥

ઔર સમસ્ત અંગ ઉપાંગ સહિત શરીરકા પ્રક્ષાલન કરના સર્વસ્નાન  
હૈ । અપ્રાસુક જલસે સ્નાન કરનેપર અપ્કાયકે જીવોંકી વિરાધના હોતી હૈ,  
ઇસસે સ્નાન કરનેવાલેકે તપ ઔર સંયમકા વિધાત હોતા હૈ । પ્રાસુકજલસે  
ભી સ્નાન કરનેસે જીવોંકી વિરાધના ઇસલિયે હોતી હૈ કિ વહ પાની  
વહકર જમીનમેં ખીતર સમા જાતા હૈ ઔર હેદોંમેં ખરજાનેસે અને  
ખીતર રહે હુઅ જીવ ઉસસે મર જાતે હૈ । ઇસ પ્રકાર ઉન્હેં કષ્ટકા કારક  
હોનેસે વહ પ્રાસુકજલ દ્વારા કિયા ગયા સ્નાન ભી સાધુઓંકે લિયે  
હેય હૈ । કહા ખી હૈ—

નોદકક્લિન્નગાત્રોઽપિ સ્નાત્ત્વમિધીયતે ।

સ સ્નાતો યો દમસ્નાતઃ, સ બાહ્યાભ્યન્તરે શુચિઃ ॥૧॥

ચિન્તમન્તર્ગતં દુષ્ટં તીર્થસ્નાનૈર્ન શુદ્ધયતિ ।

શતશોઽપિ વપુર્ધૌતં સુરામાણ્ડમિવાશુચિ ॥૨॥

અને સમસ્ત અંગ ઉપાંગો સહિત શરીરનું પ્રક્ષાલન કરવું તે સર્વ—સ્નાન.  
અપ્રાસુક જલથી સ્નાન કરવામાં અપ્કાય જીવોની વિરાધના થાય છે, જેથી સ્નાન  
કરનારને તપ તેમજ સંયમનો વિધાત થાય છે. પ્રાસુક જળથી પણ સ્નાન કરવાથી  
જીવોની વિરાધના એ રીતે થાય છે કે તે પાણી વહેતું-વહેતું જમીનમાં સમાઈ  
જાય છે, તેમજ જમીનના છિદ્રોમાં ઉતરી જતું હોવાથી તેમાં રહેલા જીવો મરે છે,  
આ પ્રકારે તેના કષ્ટનું કારણ હોવાથી તેવા પ્રાસુક જળથી કરાયેલ સ્નાન પણ  
સાધુ માટે ત્યાજ્ય હોય છે. કહ્યું પણ છે—

નોદકક્લિન્નગાત્રોઽપિ, સ્નાત્ત્વમિધીયતે ।

સ સ્નાતો યો દમસ્નાતઃ, સ બાહ્યાભ્યન્તરે શુચિઃ ॥૧॥

ચિન્તમન્તર્ગતં દુષ્ટં તીર્થસ્નાનૈર્ન શુદ્ધયતિ ।

શતશોઽપિ વપુર્ધૌતં સુરામાણ્ડમિવાશુચિ ॥ ૨ ॥

અન્યચ્ચ-સ્નાનં મદદર્પકરં, કામાર્જ્જ્ઞં પ્રથમં સ્મૃતમ્ ।

તસ્માત્કામં પરિત્યજ્ય, નૈવ સ્નાન્તિ દમે રતાઃ ॥૧॥

અપરંચ-“મલમઇલપંકમઇલા, ધૂલીમઇલા ન તે નરા મઇલા ।

જે પાવપંકમઇલા, તે મઇલા જીવલોયંમિ ” ॥ ૧ ॥

છાયા-“મલમલિનાઃ પદ્મમલિના, -ધૂલીમલિના ન તે નરા મલિનાઃ ।

યે પાપપદ્મમલિના, -સ્તે મલિના જીવલોકે ॥૧॥ ” ઇતિ ।

તથા સંવાહનં=હસ્તાદિના શરીરપરિકર્મ, અસ્થ્યાદિસુસ્વાર્થં ગાત્રનિષ્પીડનમ્ ।  
તથા-દન્તપ્રક્ષાલનં=કાળેન ચૂર્ણાદિના વા દન્તમાર્જનં ચ તસ્ય ભગવતઃ શ્રીવર્દ્ધમાન-  
સ્વામિનો ન કલપતે ॥ ૨ ॥

और भी-स्नानं मददर्पकरं, कामार्ज्ज्जं प्रथमं स्मृतम् ।

तस्मात् कामं परित्यज्य, नैव स्नान्ति दमे रताः ॥१॥

फिर भी-मलइलपंकमइला, धूलीमइला न ते नरा मइला ।

जै पावपंकमइला, ते मइला जीवलोयंमि ॥१॥

भावार्थ-પાણીનો શરીર પર ઢાલના, અથવા ઉસસે શરીરનો ઘીલા કરના ઇસકા નામ સ્નાન નહીં હૈ । એસે લૌકિક સ્નાનસે ન બાહ્ય શરીરકી શુદ્ધિ હોતી હૈ ઓર ન આભ્યન્તર આત્માકી હી । ઇન દોનો પ્રકારકી શુદ્ધિકા કારણ દમસ્નાન હૈ । પાંચ ઇન્દ્રિય ઓર મનકો વશ કરનેકા નામ દમ હૈ । ઇસસે ( પાંચ ઇન્દ્રિયોંકે વશ કરને સે ) શરીરકી, ઓર મનકો વશ કરનેસે આત્માકી શુદ્ધિ હોતી હૈ, ઇસીકા નામ બાહ્ય ઓર આભ્યન્તર શુદ્ધિ હૈ । દમ કો સ્નાન ઇસ લિયે કહા હૈ કિ જિસ પ્રકાર જલ સ્નાનસે શરીર આદિકે ઉપરકા લગા હુઆ મૈલ દૂર હો જાતા હૈ

इरी पणु-स्नानं मददर्पकरं, कामार्ज्ज्जं प्रथमं स्मृतम् ।

तस्मात् कामं परित्यज्य, नैव स्नान्ति दमे रताः ॥१॥

इरी पणु-“मलमइलपंकमइला, धूलीमइला न ते नरा मइला ।

जै पापपंकमइला, ते मइला जीवलोयंमि ” ॥१॥

ભાવાર્થ:-પાણીને શરીર ઉપર ઢોળવું, અથવા તેનાથી શરીરને ઘોળું તેનું નામ સ્નાન નથી પણ એવા લૌકિક સ્નાનથી નથી બાહ્ય શરીરની શુદ્ધિ થતી કે નથી તેમ અંદરના આત્માની પણ, આ બન્ને પ્રકારની શુદ્ધિનું કારણ દમસ્નાન છે. પાંચ ઇન્દ્રિયો અને મનને વશ કરવાનું નામ દમ છે. આથી પાંચ ઇન્દ્રિયોને વશ કરવાથી શરીરની અને મનને વશ કરવાથી આત્માની શુદ્ધિ થાય છે. તેનું નામ આભ્યંતર શુદ્ધિ છે. દમસ્નાન આ માટે કહેવાયેલ છે કે જે પ્રકારે જળસ્નાનથી શરીર વગેરે ઉપર લાગેલો મેલ દૂર થઈ જાય છે એ પ્રકારે આ દમક્રિયાથી

કિંચ-‘વિરણ’ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—વિરણ ય ગામધર્મમેહિં, રીયઙ્ માહણે અવહુવાઈ ।

સિસિરંમિ ઇગયા ભગવં, છાયાણ ઙ્ઙાઈ આસીય ॥૩॥

છાયા—વિરતશ્ચ ગ્રામધર્મેભ્યો, રીયતે માહનઃ અવહુવાદી ।

શિશિરે ઇકદા ભગવાન્, છાયાયાં ધ્યાયતિ આસિત્વા ॥૩॥

उसी प्रकार इस दम-क्रियासे इन्द्रिय आदिकी निरर्गल प्रवृत्तिसे उत्पन्न हुई शारीरिक और आत्मिक अपवित्रता भी जो एक भैल जैसी मानी गई है नष्ट हो जाती है। दमस्नानके बिना इस अन्तर्गत चित्तकी दुष्टता चाहे हजारों भी तीर्थोंमें स्नान क्यों न कर लिया जाय कभी नष्ट नहीं हो सकती है। जिस प्रकार मदिराके रखनेका वर्तन अनेक बार धोने पर भी शुचि-पवित्र नहीं होता है, उसी प्रकार सैकड़ों बाहिरी उपायसे धोया गया यह शरीर भी कभी पवित्र नहीं हो सकता है। इसलिये जो दमस्नान करनेमें रत साधु हैं वे इस मद और दर्पकारी तथा कामके प्रधान कारणभूत इस जलस्नानसे दूर रहते हैं। इसी लिये प्रभु इन सब बातोंसे परे रहे और आत्मिक शुचिताकी वृद्धिकी ओर अग्रेसर हुए। भगवानने इसी प्रकार ‘शरीरको सुख मिले’ इस भावनासे दूसरोंको प्रेरित कर कभी भी किसीसे अपना शरीर नहीं दबवाया और न अपने दांतोंका प्रक्षालन-दन्तधावन ही किया, क्योंकि ये सब बातें जैनदीक्षामें हेय-त्याज्य-मानी जाती हैं ॥२॥

ઇન્દ્રિય વગેરેની નિર્ણળ પ્રવૃત્તિથી ઉત્પન્ન થયેલ શારીરિક અને આત્મિક અપવિત્રતા પણ જેને ભેલ જેવી મानी લેવાયેલ છે તે નાશ પામે છે. દમસ્નાન વિના અન્તર્ગત ચિત્તની દુષ્ટતા હજારો તીર્થોમાં સ્નાન કરવાથી પણ નાશ પામતી નથી. જે રીતે દારૂ રાખવાનું કામ અનેક વખત સાફ કરવા છતાં પણ તે તેની વાસથી મુક્ત થઈ પવિત્ર બનતું નથી, તેવી રીતે બહારના સેંકડો ઉપાયોથી ધોવામાં આવેલ આ શરીર પણ કદી પવિત્ર થતું નથી, માટે જે સાધુ દમસ્નાન કરવામાં મસ્ત છે તેવા સાધુ આવા મદ અને દર્પકારી તથા કામના પ્રધાન કારણભૂત આ જળસ્નાનથી દુર રહે છે. આથી જ પ્રભુ આવી રીતથી દુર રહ્યા અને આત્મિક શુદ્ધિની વૃદ્ધિને માટે અગ્રેસર રહ્યા. ભગવાને આવી રીતે ‘શરીરને સુખ મળે’ આ ભાવનાથી બીજાઓને પ્રેરિત કરી કદી પણ કોઈથી પોતાનું શરીર દબાવરાવ્યું નહિ, અને પોતાના દાંતોનું ધોવું એટલે દાંતણુ કરવું વગેરે પણ કરેલ નહીં, કારણ કે આ બધી વાતો જૈનદીક્ષામાં હેય-ત્યાજ્ય-માનેલ છે. (૨)



टीका—ग्रामधर्मेभ्यः=शब्दादिविषयेभ्यः, विरतः=निवृत्तः, माहनः=अहिंसो-  
पदेशी, अबहुवादी=अल्पभाषी, भगवान् रीयते=विहरतिस्म। एकदा शिशिरे  
भगवान् छायायां वृक्षलतामण्डपादेरधस्ताद् आसित्वा=उपविश्य ध्यायति=ध्यान-  
लीनो बभूव ॥ ३ ॥

किञ्च—‘आयावह’ इत्यादि।

मूलम्—आयावह य गिम्हाणं, अच्छइ उक्कुडुए अभितावे ।  
अदु जावइत्थ लूहेणं, ओयणमंथुकुम्मासेणं ॥४॥

छाया—आतापयति च ग्रीष्मेषु, तिष्ठति उत्कुडुकः अभितापम् ।

अथाऽयापयद् रुक्षेण, ओदनमन्थुकुलमाषेण ॥ ४ ॥

टीका—भगवान् ग्रीष्मेषु आतापयति=सूर्यातापनां सेवतेस्म । केन प्रकारेणे-  
त्याह—‘तिष्ठती’—इत्यादि । उत्कुडुकः=उत्कुडुकासनो भूत्वा अभितापं=सूर्याभिमुखं  
तिष्ठति । अथ=समुच्चये, तथा रुक्षेण=नीरसेनान्तप्रान्तेन पर्युषितेन च ओदनम-  
न्थुकुलमाषेण, ओदनः=कोद्रवोदनादिः, मन्थु=बदरचूर्णादिकं, कुलमाषः=कुलत्थादिः,  
एषां समाहारः ओदनमन्थुकुलमाषं, तेन अयापयत्=शरीरयात्रां निर्वहतिस्म ॥४॥

फिर भी—“विरय” इत्यादि ।

शब्दादिक पांच इन्द्रियोंके विषयोंसे सर्वथा विरक्त वे भगवान्  
सदा जीवोंको अहिंसा धर्मका उपदेश देनेवाले थे । बहुत कम बोलते  
थे । यदि बोलनेका अवसर आता तो सदा हित मित और प्रिय वचन  
बोलते थे । कभीर शिशिर ऋतुमें भगवान् वृक्ष, लता-मण्डप आदिके  
नीचे बैठ कर ध्यानमें लीन होते थे ॥३॥

और भी—‘आयावह य’ इत्यादि ।

ग्रीष्मऋतुमें प्रभु सूर्यके संमुख उत्कुडुक ( उकडु ) आसनसे  
बैठकर आतापना लेते । तथा अन्त प्रान्त और पर्युषित कोद्रवका अन्न

इरी—‘विरय’ इत्यादि.

शब्दादिक पांच इन्द्रियोंका विषयोंकी सर्वथा विरक्त वेवा भगवान् सदा  
जीवोंकी अहिंसाना उपदेशक होता था । बहुत कम बोलता था । कदाच भी बोलनेका अवसर  
आवता तो सदा हित मित अने प्रिय वचन कहता था । कहीं कहीं शिशिर ऋतुमें  
भगवान् वृक्ष, लतामण्डप वगैरेकी नीचे ऐसी ध्यानमें लीन होता था । (३)

इरी पणु—‘आयावह य’ इत्यादि.

ग्रीष्मऋतुमें प्रभु सूर्यकी सामे उत्कुडुक ( उकडु ) आसनकी ऐसी आतापना  
लेता था, तथा अन्त प्रान्त अने पर्युषित कोद्रव अन्न वगैरे, ग्रीष्म ऋतु

भगवान् कियन्तं कालं रूक्षोदनादीनि सेवते स्मेत्याह—‘एयाणि’ इत्यादि।  
मूलम्—एयाणि तिन्नि पडिसेवे, अट्टमासे य जावए भयवं ।

अवि इत्थ एगया भगवं, अट्टमासं अदुवा मासंपि ॥५॥

छाया—एतानि त्रीणि प्रतिसेवते, अष्टमासांश्च यापयति भगवान् ।

अप्यत्र एकदा भगवान्, अर्द्धमासमथवा मासमपि ॥ ५ ॥

टीका—भगवान् एतानि=पूर्वोक्तानि त्रीणि=ओदनादीनि यथाप्राप्तं प्रति-  
सेवतेस्म। एवं कृत्वाऽष्टौ मासान् यापयति=शरीरयात्रां निर्वहतिस्म। अथ  
भगवतस्तपो वर्णयति—‘अवि इत्थ’ इत्यादि। अपिच—एकदा भगवान् अत्र=छद्म-  
स्थावस्थायाम् अर्द्धमासमथवा मासमपि चतुर्विधाहारपरित्यागेन तपश्चकार ॥ ५ ॥

किञ्च—‘अवि साहिए’ इत्यादि ।

मूलम्—अवि साहिए दुवे मासे, छप्पि मासे अदुवा विहरित्था ।

राओवरायं अपडिन्ने, अन्नं गिलायमेगया भुंजे ॥६॥

आदि, बैरों-बोरोंके चूर्ण आदि तथा कुलथी आदिसे अपने शरीरका  
निर्वाह करते। यह सब रूक्ष आहार है ॥ ४ ॥

भगवानने कितने दिनों तक रूक्ष आहारका सेवन किया? इसे सूत्र-  
कार प्रकट करते हैं—‘एयाणि’ इत्यादि ।

भगवानने इन ओदन-कोद्व, मंथु-बेरचूर्ण और कुलथी, ये तीन  
प्रकारके पयुषित रूक्ष आहार जिस समय गोचरीमें जो मिल जाता था  
वही लेते थे, इस प्रकार आठ मास तक रूक्ष आहार सेवन किया ।  
भगवानने अपनी इस छद्मस्थावस्थामें कभी २ अर्ध मास या एक मास आदि  
अनेक चौविहार तपश्चर्या की ॥५॥

वगेरे तथा कण्ठी वगेरेथी पोताना शरीरनो निर्वाह करता. आ अथा रूक्ष  
आहार छे. (४)

भगवाने केटला द्विसे। सुधी रूक्ष आहारतुं सेवन कयुं? अने सूत्रकार  
प्रकट करे छे—‘एयाणि’ इत्यादि.

भगवाने ओ ओदन-कोद्व, मंथु-बोरचुर्ण अने कुलथी, ओ त्रयु  
प्रकारना पयुषित-वासी रूक्ष आहार जे समय गोचरीमां जे मणी जतु ते देता  
हुता. आ प्रकारे आठ मास सुधी रूक्ष आहारतुं सेवन कयुं. भगवाने पोतानी  
ओ छद्मस्थ अवस्थामां कही कही अर्धमास, अगर ओकमास आदि अनेक  
चौविहार तपश्चर्या करी. (५)

छाया--अपि साधिकौ द्वौ मासौ षडपि मासान् अथवा विजहार ।

रात्रोपरात्रमप्रतिज्ञः, अन्नं ग्लानमेकदा भुङ्क्ते ॥ ६ ॥

टीका--अपि च-साधिकौ द्वौ मासौ=सार्धमासद्वयम् । अथवा षण्मासान् अपि पानीयमप्यपीत्वा अप्रतिज्ञः=पानप्रतिज्ञारहितः सन् रात्रोपरात्रम्=अहर्निशं विजहार=तपश्चर्यायां विहरतिस्म । तथा-एकदा=तपःपारणादिवसे ग्लानं=पर्युषित-मन्तप्रान्तम्, अन्नम्=ओदनादिकं भुङ्क्तेस्म ॥ ६ ॥

किञ्च--'छट्टेण' इत्यादि ।

मूलम्-छट्टेण एगया भुंजे, अदुवा अट्टमेण दसमेण ।

दुवालसमेण एगया भुंजे, पेहमाणे समाहिं अपडिन्ने ॥ ७ ॥

छाया--षष्ठेन एकदा भुङ्क्ते अथवा अष्टमेन दशमेन ।

द्वादशेन एकदा भुङ्क्ते प्रेक्षमाणः समाधिमप्रतिज्ञः ॥ ७ ॥

टीका--अप्रतिज्ञः=इहलोकपरलोकप्रतिज्ञारहितः समाधि=संयमसमाधिं प्रेक्ष-माणः=पर्यालोचयन् भगवान् एकदा=कदाचित् षष्ठेन=षष्ठभक्तेन भुङ्क्तेस्म । अथवा अष्टमेन, एकदा द्वादशेन=द्वादशभक्तेन च भुङ्क्तेस्म । षष्ठभक्तादीनां पारणां चकारेत्यर्थः ॥ ७ ॥

और भी--'अवि साहिए' इत्यादि ।

इतना ही नहीं-किन्तु कभी २ ढाई २ मास तक अथवा छह छह मास तक चौविहार तपश्चर्या करके भगवान् तपमें लवलीन रहे । पार-णाके दिन अन्त-प्रान्त और पर्युषित ओदनादिका आहार ग्रहण करते थे ॥ ६ ॥

और भी--'छट्टेण एगया' इत्यादि ।

कभी भगवान् छठ ( बेला ) करते थे, कभी अट्टम ( तेला ) करते, कभी द्वादशभक्त (पचोला) करते हुए समाधि भावमें लीन रहते थे ॥ ७ ॥

इरी पणु--'अवि साहिए' इत्यादि ।

अट्टम ४ नही पणु केरि केरि वणते अण्णे अही अही भडिना सुधी अथवा छ छ भडिना सुधी चौविहार तपस्या करीने भगवान् तपमां लवलीन रह्या । पारणाना द्विवसे अन्त प्रान्त अने वासी ओदनादिनुं सेवन करता हुता । (६)

इरी--'छट्टेण एगया' इत्यादि ।

क्यारेक भगवान् छठ करता हुता, क्यारेक अठम करता हुता, क्यारेक द्वादशभक्त करता समाधी भावमां लवलीन रहेता हुता । (७)



किञ्च—‘णच्चा णं’ इत्यादि।

मूलम्—णच्चा णं से महावीरे, नो वि य पावगं सयमकासी।

अन्नेहिं वा ण कारित्था, कीरंतं पि नाणुजाणित्था ॥८॥

छाया—ज्ञात्वा खलु स महावीरः नापि च पापकं स्वयमकर्षीत्।

अन्यैर्वा नाकारयत्, कुर्वन्तमपि नान्वज्ञासीत् ॥ ८ ॥

टीका—अपि च—समहावीरः ज्ञात्वा हेयोपादेयमवबुध्य पापकं कर्म=हिंसा-  
दिरूपं न स्वयमकर्षीत्, अन्यैर्वा तत्पापकं कर्म नाकारयत्। कुर्वन्तं=पापकर्म  
समाचरन्तमन्यमपि नान्वज्ञासीत्=नान्वमोदयत् ॥ ८ ॥

अथ भगवतो ग्रासैषणाविधिमाह—‘गामं पविस्स’ इत्यादि।

मूलम्—गामं पविस्स नगरं वा, घासमेसे कडं परट्ठाए।

सुविसुद्धमेसिया भगवं, आयतजोगयाए सेवित्था ॥९॥

छाया—ग्रामं प्रविश्य नगरं वा ग्रासमेषयति कृतं परार्थाय।

सुविशुद्धमेषयित्वा भगवान् आयतयोगतयाऽसेविष्ट ॥ ९ ॥

टीका—भगवान् ग्रामं नगरं वा प्रविश्य ग्रासमन्वेषयतिस्म। कीदृशं ग्रासमि-  
त्याकाङ्क्षायामाह—‘कडं परट्ठाए’ इत्यादि। परार्थाय कृतम्=उद्गमदोषरहितं,

और भी—‘नच्चा णं’ इत्यादि।

हेय और उपादेय तत्त्वके ज्ञाता भगवान् महावीरने कभी भी न  
स्वयं पापकर्म किया, न किसीसे कराया और न पापकर्म करते हुए का  
अनुमोदन किया ॥ ८ ॥

अब भगवान् की ग्रास-एषणाविधिको कहते हैं—‘गामं पविस्स’ इत्यादि।

ईर्ष्यासमितिपूर्वक विहार करनेवाले प्रभु महावीरने ग्राम अथवा  
नगरमें प्रवेश कर उद्गम और उत्पादनाके दोषोंसे रहित शुद्ध आहार

करी—‘नच्चा णं’ इत्यादि।

हेय अने उपादेय तत्त्वना ज्ञाता भगवान् महावीरने कदि पणु पोते पापकर्म  
कर्या नथी, अने गीला पासे कराव्या पणु नथी, तेमज पापकर्म करवावाणानुं अनु-  
मोदन पणु कर्युं नथी. (८)

डवे भगवाननी ग्रास-एषणाविधिने कडे छे—‘गामं पविस्स’ इत्यादि।

गाम अगर नगरमां प्रवेश करी उद्गम अने उत्पादनाना दोषोथी रहित  
शुद्ध आहारनी गवेषणा करी. गवेषणा करी आदमां ज्ञानयत्तुष्टयथी मन पचन

તથા—સુવિશુદ્ધમ્=ઉત્પાદનાદોષવર્જિતમ્, એષયિત્વા=એષણાદોષ પરિહરન્ અન્વેષ્ય, મગવાન્ આયતયોગતયા=આયતશ્ચાસૌ યોગશ્ચ-આયતયોગઃ=જ્ઞાનચતુષ્ટયેન સમ્યગ્ મનોવાકાયલક્ષણયોગપ્રણિધાનમ્, તસ્ય ભાવઃ આયતયોગતા, તયા=ગ્રાસૈષણાદોષ-પરિવર્જનેન સમ્યક્ શુદ્ધમાહારમ્ અસેવિષ્ટ ॥ ૯ ॥

પુનરપિ ગ્રાસૈષણાવિધિં ગાથાત્રયેણાહ—‘અદુ વાયસા’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—અદુ વાયસા દિગિંછિયા, જે અન્ને રસેસિણો સત્તા ।

ઘાસેસણાણ ચિદ્દંતિ, સયયં ણિવત્તિણ ય પેહાણ ॥૧૦॥

છાયા—અથ વાયસા બુદ્ધક્ષિતા યેડન્યે રસૈષિણઃ સત્ત્વાઃ ।

ગ્રાસૈષણયા તિષ્ઠન્તિ સતતં નિપતિતાંશ્ચ પ્રેક્ષ્ય ॥૧૦॥

ટીકા—અથ મિશ્કાર્થં ગચ્છતો મગવતઃ પથિ બુદ્ધક્ષિતાઃ=શ્રુત્પીઢિતાઃ રસૈષિણઃ=પિપાસાકુલાઃ વાયસાઃ=કાકાઃ, તથા યેડન્યે સત્ત્વાઃ પારાવતાદયઃ કી ગવેષણા કી । ગવેષણા કર વાદમેં જ્ઞાનચતુષ્ટયસે મન, વચન ઓર કાય, ઇન ત્રીન યોગોંકી શુભ પ્રવૃત્તિપૂર્વક ઉસ આહારકા જો ગ્રાસ-એષણાકે દોષોંકે પરિહારસે ભલીભાંતિ શુદ્ધ થા સેવન કિયા ॥૯॥

ગ્રાસ-એષણા કી વિધિકા કથન સૂત્રકાર ત્રીન ગાથાઓંસે પ્રકટ કરતે હૈં—‘અદુ વાયસા’ ઇત્યાદિ ।

મગવાન્ જિસ સમય આહારકે લિયે વિચરણ કરતે થે, ઉસ સમય મૂલસે વ્યાકુલ ઓર પ્યાસસે દુઃખિત કૌવા તથા કબૂતર આદિ જો અપની બુદ્ધક્ષાકે શમનાર્થ ઇંધર ઉધરસે આકર જહાં સંમિલિત હોતે રહતે, ઉનકો જરા મી કષ્ટ ન હો, આહાર પા કર યે ઉડ ન જાયેં, ઇસ

અને કાય, આ ત્રણ યોગોની શુભપ્રવૃત્તિપૂર્વક એ આહાર કે જે ગ્રાસૈષણાના દોષોના પરિહારથી સારી રીતે શુદ્ધ હોય તેનું સેવન કરેલું. (૯)

ગ્રાસ-એષણાની વિધિનું કથન સૂત્રકાર ત્રણ ગાથાઓથી પ્રગટ કરે છે,— ‘અદુ વાયસા’ ઇત્યાદિ.

ભગવાન આહાર માટે જે સમયે વિચરણ કરતા હતા એ સમયે ભૂખથી વ્યાકુળ અને તરસથી દુઃખી એવા કાગડા તથા કબૂતરો વગેરે જીવો કે જે ભૂખને સંતોષવા રસ્તામાં જહીં કહીંથી આવી જ્યાં એક જગ્યાએ મળતા હતા. અને ખીબા પણ વધુ સંખ્યામાં આવી તેમની સાથે ભળતાં હતાં. આવા પક્ષિઓ ઉડી ન જાય અને તેને જરા પણ કષ્ટ ન પહોંચે આ રીતે સંભાળપૂર્વક એમની

पक्षिणः ग्रासैषणया=भक्षणपानेच्छया भूम्युपरि तिष्ठन्ति=विचरन्ति, तथा सत-  
तम्=प्रतिक्षणं निपतितान्-आकाशाद् भूमितलमागतान् प्रेक्ष्य=दृष्ट्वा भगवान्-तेषां  
प्रतिरोधमकुर्वन् पार्श्वभागतः शनैर्गच्छन् ग्रासमन्वैषीदिति तृतीयगाथया सम्बन्धः॥१०॥

किञ्च—‘अदुवा’ इत्यादि । ‘वित्तिच्छेयं’ इत्यादि ।

मूलम्—अदुवा माहणं च समणं वा, ग्रामपिण्डोलगं च अतिहिं वा।  
सोवागं मूसियारिं वा, कुक्कुरं वा वि चिट्ठियं पुरओ ॥११॥  
वित्तिच्छेयं वज्जंतो, तेसिमप्पत्तियं परिहरंतो ।  
मंदं परक्कमे भगवं, अहिंसमाणो वासमेसित्था ॥१२॥

छाया—अथवा ब्राह्मणं च श्रमणं वा ग्रामपिण्डोलकं चातिथिं वा ।

श्वपाकं मूषिकारिं वा कुक्कुरं वापि स्थितं पुरतः ॥ ११ ॥

वित्तिच्छेदं वर्जयन् तेषामप्रत्ययिकं परिहरन् ।

मन्दं पराक्रमते भगवान् अहिंसन् ग्रासमन्वैषीत् ॥ १२ ॥

टीका—अथवा-ब्राह्मणं तथा श्रमणं=शाक्याऽऽजीवकपरिव्राजकतापसनिर्ग्रन्था-  
नामन्यतमं, तथा-ग्रामपिण्डोलकं=भिक्षुकं, अतिथिम्=अकस्मादागतं, श्वपाकं=चाण्डालं,

रीतिसे अपने आपको संभालते हुए उन्हींके समीपसे धीरे-निकल  
जाते । तात्पर्य यह है कि-प्रभु जिस समय आहार लेनेके लिये  
निकलते थे, उस समय उनके गमनसे किसी भी जीवको कष्ट नहीं  
पहुंचता था । यहां तक कि जो कबूतर आदि जीव मार्गमें चुगते हुए  
इधर-उधर फिरा करते उस समय उनके नजदीकसे यत्नापूर्वक भगवान्  
निकल जाते ॥१०॥

फिर भी—‘अदुवा’ इत्यादि । ‘वित्तिच्छेयं’ इत्यादि ।

इसी प्रकार ब्राह्मण, श्रमण, शाक्य, आजीवक, परिव्राजक,  
तापस, भिक्षुक, और अकस्मात् आया हुआ चाण्डाल एवं मार्जार-दुग्धका

आनुमांथी धीरे धीरे नीकणी जाता तात्पर्य ये छे के—प्रभु ने समये आहार  
लेवा नीकणीता हुता त्पारे ऐमना जवा आववाथी केछ पणु एवने कष्ट पडोयतुं  
नहीं, त्यां सुधी के ने कबुतर वगेरे एव मार्गमां यणु यणुतां आम-तेम  
इरतां ये समये लगवान ऐमनी नलुकथी सावधानीपूर्वक नीकणी जाता. (१०)

इरी—‘अदुवा’ इत्यादि.

आ रीते ब्राह्मण, श्रमण, शाक्य, आजीवक, परिव्राजक, तापस अने भिक्षुक,  
आमांथी केछने पणु तेमना तरइथी नउतर थतां नहीं. अने अकस्मात्



મૂષિકારિ=દુગ્ધાર્થિનં માર્જારં, અપિ ચ કુકુરં=શ્વાનં વા પુરતઃ અગ્રે સ્થિતં દૃષ્ટ્વા તેષાં વૃત્તિચ્છેદં વર્જયન્, અપ્રત્યયિકમ્=અપ્રતીતિં પરિહરન્ ભગવાન્ મન્દં પરાક્રમતે= પાર્શ્વભાગતઃ શનેર્ગચ્છતિસ્મ । તથા અર્હિસન્=કુન્થુપ્રમૃતીનપિ જન્તૂન્ અપીડયન્ ગ્રાસમન્વૈષીત્=ઘ્ણનાશુદ્ધચા ભિક્ષાર્થમટતિસ્મ ॥૧૧॥૧૨॥

કિન્ન—‘અવિ સૂઝયં’ इत्यादि ।

મૂલમ્—અવિ સૂઝયં વા સુવકં વા, સીયં પિંડં પુરાણકુમ્માસં ।

અદુ વુક્કસં પુલાગં વા, લઘ્વે પિંડે અલઘ્વે દ્રવિક ॥૧૩॥

છાયા—અપિ સૂચિતં વા શુષ્કં વા, શીતં પિંડં પુરાણકુલ્માષમ્ ।

અથ વુક્કસં પુલાકં વા, લઘ્વે પિંડે અલઘ્વે દ્રવિકઃ ॥ ૧૩ ॥

ટીકા—અપિ ચ—સૂચિતં=વ્યાઘારિતં હિઙ્ગુજીરકાદિના સંસ્કૃતં વ્યજ્જના-  
દિયુક્તં તક્રાદૌ નિશ્ચિતં મુદ્રવણકાદિવટકાન્નં ‘દહીવડા’ इति भाषा-  
અર્થો ચિલાવ, ઔર કુત્તા આદિકો દેશ્વ કર ભગવાન્ ઇન કિસીકો વિઘન  
નહીં કરતે હુણ યત્નાપૂર્વક ધીરે ૨ નિકલ જાતે । ડનકે ચલનેસે કુન્થુ  
આદિ સૂક્ષ્મ જીવોં તકકો મી કોઈ કષ્ટ ન પહુંચતા ॥૧૧-૧૨॥

ઔર મી—‘અવિ સૂઝયં’ इत्यादि ।

ભગવાન્ કો ભિક્ષા નિમિત્ત જાતે સમય જો મી ગૃહસ્થોંકે યહાં  
શુદ્ધ નિર્દોષ આહાર મિલ જાતા થા, વે ડસે હી લે લેતે, ચાહે વહ ચિલ-  
કુલ રૂક્ષ મી કયોં ન હો । હીંગ ઔર જીરે આદિસે સંસ્કૃત, વ્યજ્જનાદિ  
સે યુક્ત ઇવં તક્ર-છાંછમોં પડે હુણ, મૂંગ ઔર ચના આદિકી  
મીલી દાલકો વાંટ તૈલમોં તલ કર તયાર કિયે પદાર્થકા નામ સૂચિત હૈ ।  
ભાષામોં ઇસે “દહીંવડા” कहते हैं । सूचित पदसे राईता, करम्बा

આવી ચડેલ ચાંડાલ, તેમજ દુધની લોખી ખીલાડી, કુતરા વગેરેને જોઈ ભગવાન  
એ કોઈને વિઘનરૂપ ન થતાં યતનાપૂર્વક ધીરે ધીરે નીકળી જતા. એમના ચાલવાથી  
કુથવા કે કીડી, મકોડી વગેરે સૂક્ષ્મ જીવોને પણ કોઈ કષ્ટ થતું નહીં. (૧૧-૧૨)

ફરી—‘અવિ સૂઝયં’ इत्यादि.

ભગવાને ભિક્ષા નિમિત્તે જવાના સમયે જે પણ ગૃહસ્થોને ત્યાં શુદ્ધ નિર્દોષ  
આહાર મળી જતો તેને ગ્રહણ કરતા, ચાહે તે ખીલકુલ રૂક્ષ પણ કેમ ન હોય.  
હીંગ અને જીરૂ વગેરેથી વધારેલા વ્યજ્જનાદિથી યુક્ત એમજ તક્ર-છાસમાં  
પડેલા મગ અને ચણાની ઢાળને લીજાવી વાટી તૈયાર કરવામાં આવેલા પદાર્થનું  
નામ સૂચિત છે. ભાષામાં એને “દહીવડા” કહેવામાં આવે છે, સૂચિત-પદથી

પ્રસિદ્ધં, કરમ્બાદિકં વા, 'રાઈતા' इति भाषाप्रसिद्धं वા, तथा-शुष्कं वા भर्जितचणकादिकं, तथा शीतं=पर्युषितं वા पिण्डम्=आहारम्, तथा पुराणकुल्माषं=पुरातनमाषकुलत्थादि बहुदिवससिद्धस्थितकुल्माषमित्यन्ये। अथ-बुक्सं वા नीरस-धान्यौदनं वા, यद्वा-पुरातनसक्तुपिण्डं वા, तथा पुलाकं वા=यवधानादिकं 'जवधानी' इति भाषाप्रसिद्धं लब्ध्वा, तथाऽन्यस्मिन्नपि निर्दोषे पिण्डे=लब्धेऽप्यलब्धे वા द्रविक एव=संयममना एवासीत्। अयं भावः-लब्धे सति यथालब्धपर्युषित-

आदि भी लिये जाते हैं। भुंजे हुए चने आदि अन्नका नाम शुष्क है। पर्युषित (वासी), आहार-शीत और पुरानी उडदकी दाल तथा कुलथी आदिको कहते हैं। नीरस धान्यके चावल अथवा पुराना सक्तुपिण्ड-बुक्स, और यव-धान आदिक जिसे भाषामें 'जवकी धाणी' कहते हैं और वही पुलाक कहलाता है। आहारमें प्रभुको दहीवड़ा आदि पदार्थ मिल जावे तो कोई हर्ष नहीं और भुंजे हुए चने आदि शुष्क पदार्थ मिल जावें तो कोई शोक नहीं। इनके अतिरिक्त और भी चाहे कोई पदार्थ क्यों न मिल जाय यदि वह निर्दोष एवं शुद्ध होता तो प्रभु उसे अपने आहारमें ग्रहण कर लेते। वे किसी भी पदार्थको जो शुद्ध निर्दोष होता वह ले लेते थे। नहीं मिलने पर भी वे संयमसे अपने मनको विचलित नहीं करते। आहार मिले तो ठीक, नहीं मिले तो ठीक, इस प्रकार दोनोंमें समभाव रखते थे। मिलने पर वे उस गृहस्थकी अथवा उस गांवकी प्रशंसा नहीं करते

રાયતા, કરંબા વિગેરે પણ લેવાય છે. શેકેલા ચણા વગેરે અન્નનું નામ શુષ્ક છે. પર્યુષિત (વાસી) આહારને, ટાઢી અને ભુની અડદની દાળ અને કળથી વગેરેને કુલ્માષ કહે છે નીરસ ધાન્યના ચોખા, અથવા લાંબા વખતથી બનાવેલા સક્તુપિંડ-બુક્કસ, અને યવધાન વગેરે, જેને ભાષામાં "જવની ધાણી" કહે છે, એનેજ પુલાક કહે છે. આહારમાં પ્રભુને દહીવડાં વગેરે મળી જાય તો હર્ષ નહીં અને શેકેલા ચણા વગેરે શુષ્ક પદાર્થ મળે તો કોઈ શોક નહીં. આનાથી બીજી જાતનો કોઈ પણ પદાર્થ લેવો મળે પણ તે નિર્દોષ અને શુદ્ધ હોય તો પ્રભુ એને પોતાના આહાર માટે ગ્રહણ કરી લેતા શુદ્ધ અને નિર્દોષ એવો કોઈ પણ પદાર્થ પ્રભુ પોતાના આહાર માટે ગ્રહણ કરી લેતા, ન મળવાથી પણ સંયમથી પોતાના મનને ચલિત થવા ન દેતા. આહાર મળે તો ઠીક ન મળે તો ઠીક, આ રીતે બન્નેમાં સમભાવ રાખતા. મળવાથી તેઓ આપનાર

मन्तप्रान्तादिकं निर्दोषमशनादिकं रागद्वेषरहितः सन् भुङ्क्तेस्म, अलब्धे च ग्रामादिकं गृहस्थमात्मानं वा न निन्दतिस्मेति ॥१३॥

किञ्च—‘अवि झाइ’ इत्यादि।

मूलम्—अवि झाइ से महावीरे, आसनस्थे अकुक्कुए झाणं।

उड्डं अहे तिरियं च, पेहमाणे समाहिमपडिन्ने ॥१४॥

छाया—अपि ध्यायति स महावीरः आसनस्थः अकौत्कुचः ध्यानम्।

ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् च प्रेक्षमाणः समाधिमप्रतिज्ञः ॥१४॥

टीका—अपि च—स महावीरः भगवान् आसनस्थः=उत्कुडुकगोदोहिकावीरासनाद्यासनस्थितः, अकौत्कुचः=मुखविकारादिरहितः, तथा—अप्रतिज्ञः=शरीरशुश्रूषादिप्रतिज्ञारहितः समाधिम्=आत्मशान्तिं प्रेक्षमाणः=भावयन् ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्=लोक-और नहीं मिलने पर अपनी एवं गृहस्थ और उस ग्रामकी निन्दा नहीं करते, समभाव वन अपने संयममार्गमें दत्तचित्त रहते थे ॥१३॥

फिर भी—‘अवि झाइ’ इत्यादि।

वे भगवान् महावीर, उत्कुडुक (उकडु) आसन, गोदोहिका-आसन एवं वीरासन, इनमेंसे किसी एक आसनसे विराजमान होकर ध्यानमें तल्लीन होते। ध्यान करते समय उनका शरीर निष्कंप रहता। मुख नेत्र आदि किसी भी अवयवमें उनके हलन-चलनादिरूप विकृति नहीं होती। शारीरिक शुश्रूषाकी भावना उनके भीतर देखने तकको भी नहीं मिलती। सदा वे आत्मशान्ति की ही भावना भाते रहते। ध्यानमें वे उर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक, इन तीनों लोकोंके स्वरूपका, तथा

गृहस्थनी अथवा એ ગામની પ્રસંશા ન કરતા, અને ન મળતાં પોતાની કે, ન આપનાર ગૃહસ્થની અથવા એ ગામની નિન્દા ન કરતા. સમભાવથી સંયમ માર્ગમાં એકચિત્ત રહેતા. (૧૩)

ફરી પણ—‘અવિ જાઈ’ ઇત્યાદિ.

ભગવાન મહાવીર, ઉત્કુડુક (ઉકડુ) આસન, ગોદોહિકાઆસન, અને વીરાસન, આમાંના કોઈ એક આસનથી વિરાજમાન થઈ ધ્યાનમાં તદ્દલીન રહેતા. ધ્યાન કરતી વખતે તેમનું શરીર નિષ્કંપ રહેતું. મુખ, નેત્ર વગેરે કોઈ પણ અવયવની હલન ચલનની ક્રિયા થતી નહીં. શરીરની શુશ્રૂષાની ભાવના એમનામાં કદી પણ થતી ન હતી. સદા આત્મશાન્તિની જ ભાવના રાખતા. ધ્યાનમાં ઉર્ધ્વલોક, મધ્યલોક અને અધોલોક, આ ત્રણે લોકના સ્વરૂપના તથા



त्रयविषयकं ध्यानं=जीवाजीवादपदार्थानां द्रव्यगुणपर्यायनित्यानित्यादिरूपतया चिन्तनरूपं ध्यायति=करोतिस्म ॥ १४ ॥

किञ्च—‘अकसाई’ इत्यादि ।

मूलम्—अकसाई विगयगेही य, सद्वरूवेसु अमुच्छिष्टे झाइ ।

छउमत्थोऽविपरक्कममाणो, न पमायं सइं पि कुठ्वित्था ॥१५॥

छाया—अकषायी विगतगृद्धिश्च शब्दरूपेषु अमूर्च्छितो ध्यायति ।

छद्मस्थोऽपि पराक्रमाणो न प्रमादं सकृदप्यकार्षीत् ॥१५॥

टीका—अकषायी=क्रोधादिकषायरहितः, अत एव—विगतगृद्धिः=विषयाऽऽसक्तिरहितः, अत एव—शब्दरूपेषु=उपलक्षणार्थत्वात् शब्दरूपगन्धरसस्पर्शेषु, अमूर्च्छितः=ममत्वभावरहितः सन् ध्यायतिस्म, तथा—छद्मस्थोऽपि भगवान् पराक्रममाणः=तपःसंयमे विहरन् सन् प्रमादं सकृदपि=एकवारमपि नाकार्षीत्=न इनके भीतर रहे हुए जीव और अजीव आदि पदार्थों के द्रव्य गुण और पर्याय की अपेक्षासे नित्य और अनित्यरूप स्वरूपका विचार करते ॥१४॥

और भी—‘अकसाई’ इत्यादि ।

क्रोध आदि कषायपरिणतिसे रहित भगवान् महावीरने विषयोंमें आसक्तिसे और शब्द, रूप, रस, एवं गन्ध आदि पौद्गलिक गुणोंकी ममतासे रहित हो कर ध्यानका अवलम्बन किया । यद्यपि भगवान् चार ज्ञानके धारी थे, अतः छद्मस्थावस्थामें वर्तमान थे, फिर भी तप और संयममें अपनी शक्तिकी स्फूर्ति करते हुए उन्होंने केवलज्ञानकी प्राप्ति तक एक बार भी प्रमादका सेवन नहीं किया । जबसे दीक्षा धारण करी

એની અંદર રહેતારા જીવ અને અજીવ આદિ પદાર્થોના દ્રવ્ય ગુણ અને પર્યાયની અપેક્ષાથી નિત્ય અને અનિત્યરૂપ સ્વરૂપનો વિચાર કરતા. (૧૪)

ફરી પણ—‘અકસાઈ’ ઇત્યાદિ.

ક્રોધ વગેરે કષાય પરિણતિથી રહિત ભગવાન મહાવીર વિષયોની આસક્તિથી અને શબ્દ, રૂપ, અને ગંધ વગેરે પૌદ્ગલિક ગુણોમાં મમતાથી રહીત રહી ધ્યાનનું અવલમ્બન કરતા. જો કે ભગવાન ચાર જ્ઞાનના ધારક હતા આથી છદ્મસ્થ અવસ્થામાં વર્તમાન હતા તો પણ તપ અને સંયમમાં પોતાની શક્તિની સ્ફૂર્તિ કરીને તેઓએ કેવળજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ સુધી એક-વાર પણ પ્રમાદ સેવ્યો નથી. જ્યારથી દીક્ષા ધારણ કરી ત્યારથી કેવળજ્ઞાન

કૃતવાન્, દીક્ષાગ્રહણાનન્તરં યાવત્કેવલપર્યાયં પ્રાપ્તવાન્ તાવચ્છદ્ધસ્થાવસ્થાયામપિ ભગવાન્ લેશતોઽપિ પ્રમાદં ન ચકારેતિ ભાવઃ ।

કેચિત્તેવં વદન્તિ-एतद्वचनं भगवतः प्रशंसापरं, परमार्थतो भगवान् षड्लेश्या-  
धारी प्रमादवान् संयमे स्खलित इति, तथा 'भगवान् चूके' इति भाषायामपि प्रल-  
पन्ति, तन्निर्मूलं प्रबलमोहोदयजनितकल्पनामात्रम्, आगमरहस्यानभिज्ञानात्,  
तथाहि-सर्वे तीर्थङ्कराः स्वस्वगणधरेभ्यः स्वयमनुष्ठितं तपःसंयमविधिकथयन्ति-यद-  
न्येऽपि मोक्षाभिलाषिणः सोत्साहमनुष्ठाय मोक्षपदं प्रयान्तु-इति। सर्वस्मिन्नागमेऽपि परं-

તથાસે કેવલજ્ઞાન પ્રાપ્ત હોનેકી અવસ્થા તકા ઉન્હોને અપની છદ્ધસ્થાવ-  
સ્થામેં મી કમી મી પ્રમાદકો અંશતઃ મી અપને પાસ તકા નહીં આનેદિયા ।

કોઈ૨ હસ ગાથાકે “સકૃદપિ પ્રમાદં નાકાર્ષીત્” હસ વચન  
કો કેવલ ભગવાન્ કી પ્રશંસાપરક હી માનતે હૈં । પ્રશંસા પ્રાયઃ  
વસ્તુસ્થિતિસે રિક્ત હોતી હૈ । ઉસકા કારણ હે યહ બતલાતે હૈં કિ “ભગ-  
વાન્ ષડ્લેશ્યાધારી થે, તથા પ્રમાદસહિત ઔર સંયમસે મી સ્ખલિત-  
ચ્યુત થે, હસી લિયે હે લોગ “ભગવાન્ ચૂકે” ઈસા કહ દિયા કરતે હૈં”  
સો ઉનકા હસ પ્રકારકા કથન નિર્મૂલ હૈ-સત્યસે રહિત હૈ । માલૂમ  
હોતા હૈ કિ હસ પ્રકારકી કલ્પના કરનેવાલે વ્યક્તિકો આગમકા રહસ્ય  
જ્ઞાત નહીં હૈ કિ સમસ્ત તીર્થંકર અપને દ્વારા અનુષ્ઠિત તપ ઔર સંયમ  
કી વિધિકો અપને ૨ ગણધરોંસે કહતે હૈં । હસ પ્રકારકે કથન કરનેકા  
ઉનકા ઉદ્દેશ સિર્ફ યહી હોતા હૈ કિ અન્ય મોક્ષાભિલાષી મુનિ મી ઉનકે

પ્રાપ્ત થવાની અવસ્થા સુધી તેઓએ પોતાની છદ્ધસ્થ અવસ્થામાં પણ કોઈ  
વખત પ્રમાદનો અંશ પણ પોતાની પાસે આવવા હીધો નથી.

કોઈ કોઈ આ ગાથાના “સકૃદપિ પ્રમાદં નાકાર્ષીત્” આ વચનને કેવળ  
ભગવાનની પ્રશંસાપરક માને છે. પ્રશંસા પ્રાયઃ વસ્તુસ્થિતિથી રિક્ત હોય  
છે. એનું કારણ પણ આ બતાવે છે કે ભગવાન છલેશ્યાધારી હતા, પ્રમાદ-  
સહિત અને સંયમથી પણ ચ્યુત હતા, આ કારણે તે લોકો “ભગવાન ચૂક્યા” એવું  
કહ્યા કરે છે” તેઓનું આ પ્રકારનું કહેવું નિર્મૂળ છે-સત્યથી રહિત છે. માલુમ  
પડે છે કે આ પ્રકારની કલ્પના કરવાવાળા માણસોને આગમનું આ રહસ્ય જાણ-  
વામાં આવ્યું નથી કે સમસ્ત તીર્થંકર પોતાના દ્વારા અનુષ્ઠિત તપ અને સંયમની  
વિધિને પોતપોતાના ગણધરોને કહે છે, આ પ્રકારનું કથન કરવાનો ઉદ્દેશ ફક્ત  
એજ હેતુ છે કે બીજા મોક્ષાભિલાષી મુનિ પણ તેમના આ પ્રકારના તપ અને

પરયા ગણધરૈસ્તદીયચરિતં સૂત્રરૂપેણ સંગ્રથિતં, તદેવ ચાત્રોપધાનશ્રુતાધ્યયનં મુનીના-  
મુપકારાર્થં પ્રવૃત્તં, તસ્માત્કથમપિ નાસ્ત્યત્ર પ્રશંસાપરકત્વશક્કાવસર ઇતિ, ઉક્તઞ્ચ-

“ સઘ્વે તિત્થયરા સ્વલુ, નિયચરિયં જં કહેંતિ ઉવહાણે ।

ગંથંતિ ગણહરા તં, તહેવ નો નૂળમઞ્મહિયં ॥૧॥ ” ઇતિ ।

છાયા--સર્વે તીર્થકરાઃ સ્વલુ, નિજચરિતં યદ્વદન્તિ ઉપધાને ।

ગ્રંથનન્તિ ગણધરાસ્તત્, તથૈવ નો ન્યૂનમઞ્મધિકમ્ ॥૧॥ ઇતિ ।

હસ પ્રકારકે તપ ઔર સંયમકી અનુષ્ઠિત પ્રવૃત્તિકો સુનકર, અથવા જાનકર  
મુક્તિમાર્ગમેં ઉત્સાહશીલ બને ઔર મુક્તિકા લાભ કરતે રહેં, અતઃ સમસ્ત  
આગમોં મેં ગણધરોંને જો તીર્થઙ્કરોંકે ચરિતકા સૂત્રરૂપસે વર્ણન કિયા હૈ  
વહી હસ ઉપધાનશ્રુત નામક અધ્યયનમેં અન્ય મુનિજનોંકે ઉપકાર નિમિત્ત  
વર્ણિત કિયા ગયા હૈ--હસમેં ડનકી પ્રશંસા કી કલ્પના કરનેકી વાત હી  
કોન સી હૈ, હસ વિષયમેં ડનકી પ્રશંસાપરતા કી કલ્પના કરના બિલકુલ  
નિર્મૂલ હી હૈ । કહા મી હૈ--

“ સઘ્વે તિત્થયરા સ્વલુ, નિયચરિયં જં કહેંતિ ઉવહાણે ।

ગંથંતિ ગણહરા તં, તહેવ નો નૂળમઞ્મહિયં ” ॥ ૧ ॥

યહ આગમપ્રસિદ્ધ વાત હૈ કિ અપને ૨ ગણધરોંકે પ્રતિ જો સમસ્ત  
તીર્થઙ્કર અપને ૨ ચરિતકા કથન કરતે હૈં, વે ગણધર ઉપધાનમેં ડસ  
ચરિતકા ડસી રૂપસે ( ન કમ ઔર ન અધિક ) ગ્રંથન કરતે હૈ ॥૧॥

સંયમની અનુષ્ઠિત પ્રવૃત્તિને સાંલળીને અથવા જાણીને મુક્તિમાર્ગમાં ઉત્સાહશીલ  
બને અને મુક્તિનો લાભ કરતા રહે. માટે સમસ્ત આગમોમાં ગણધરોએ જે  
તીર્થંકરોના ચરિત્રનું સૂત્રરૂપે વર્ણન કરેલ છે તે આ ઉપધાનશ્રુત નામના  
અધ્યયનમાં અન્ય મુનિજનોના ઉપકાર નિમિત્ત વર્ણન કરેલ છે. આમાં તેમની  
પ્રશંસા કરવાની વાત જ ક્યાં છે ? આ વિષયમાં તેમની પ્રશંસા અંગેની કલ્પના  
કરવી ખીલકુલ નિર્મૂળ જ છે. કહ્યું પણ છે--

“ સઘ્વે તિત્થયરા સ્વલુ, નિયચરિયં જં કહેંતિ ઉવહાણે ।

ગંથંતિ ગણહરા તં, તહેવ નો નૂળમઞ્મહિયં ” ॥ ૧ ॥

આ આગમપ્રસિદ્ધ વાત છે કે પોતપોતાના ગણધરો પાસે સમસ્ત તીર્થંકર  
પોતપોતાના ચરિત્રનું કથન કરે છે. તે ગણધર ઉપધાનમાં તે ચરિત્રનું એ જ રૂપથી  
( ન ઓછું ન વધારે ) ગ્રંથન કરે છે. (૧)



માવતઃ પદ્મલેશ્યાવત્ત્વં તુ ભગવતઃ કથમપિ ન સંભવતિ, ધર્મપ્રકૃતિકસ્ય તસ્ય ધર્મલેશ્યામાત્રસદ્ભાવાત્, ધર્મલેશ્યા હિ તિસ્રઃ સન્તિ, તથા ચોક્તમ્—“ તેજ પમ્દા સુકા, તિન્નિ ઇયાઓ ધમ્મલેસ્સાઓ । ” ઇતિ । અધર્મસ્ય તુ તત્ર લેશતોઽપિ શઙ્કા નાસ્તિ, અસ્મિન્નેવોદેશકે—

“ળચ્ચા ણં સે મહાવીરે, ણો ચિય પાવગં સયમકાસી ।

અન્નેહિં વા ણ કારિત્થા, કીરંતં પિ નાણુજાણિત્થા (૯-૮)” ॥

ઇત્યષ્ટમગાથાયાં ભગવતા ન સ્વયં પાપં કૃતં, નાન્યૈઃ કારિતં, કુર્વન્તમન્યં પ્રતિ નાનુમોદિતમિત્યેવં ત્રિકરણત્રિયોગૈર્ભગવતઃ પાપસમ્બન્ધાભાવો बोधितः । एवं च तस्मिन्नधर्मलेश्यात्रयस्य स्थानं नोपपद्यते ।

यह जो कहा गया है कि भगवान छह लेश्यावाले थे सो भी कथन युक्तिसंगत नहीं है, कारण कि स्वभावतः धर्मप्रकृतिसम्पन्न प्रभुके सिर्फ धर्मलेश्या मात्रका ही सद्भाव होता है, पापलेश्याका नहीं । तेज, पद्म और शुक्ल, ये तीन लेश्याएँ धर्मलेश्या कही जाती हैं कृष्ण, नील और कापोत, ये अधर्मलेश्या ( पापलेश्या ) हैं । इन अधर्मलेश्याओंका तो वहां अंशतः भी सद्भाव नहीं पाया जाता है, क्योंकि इसी उद्देशमें—

“ णच्चा णं से महावीरे, णो चिय पावगं सयमकासी ।

अन्नेहिं वा न कारित्था, कीरंतं पि नाणुजणित्था ” ॥ ( ९-८ )

इस आठवीं गाथा द्वारा यही बात स्पष्ट की गई है कि-जब भगवानने स्वयं कभी पाप नहीं किया और न दूसरोंसे ही कराया, तथा करनेवालों की अनुमोदना भी नहीं की, इस प्रकार वे तीन करण और

આ જે કહેવાયું છે કે ભગવાન છ લેશ્યાવાળા હતા તે પણ કહેવું યુક્તિસંગત નથી, કારણ કે સ્વભાવતઃ ધર્મપ્રકૃતિસંપન્ન પ્રભુને ફક્ત ધર્મલેશ્યા માત્રનો જ સદ્ભાવ હોય છે, પાપ-લેશ્યાનો નહીં. તેજ, પદ્મ, અને શુકલ, આ ત્રણ લેશ્યાઓ ધર્મલેશ્યા કહેવાય છે. કૃષ્ણ, નીલ અને કાપોત એ, અધર્મ-લેશ્યા ( પાપ-લેશ્યા ) છે. એ અધર્મ-લેશ્યાઓનો ત્યાં લેશ માત્ર પણ સદ્ભાવ દેખવામાં આવતો નથી. કેમકે એ જ ઉદ્દેશમાં—

“ ણચ્ચા ણં સે મહાવીરે, ણો ચિય પાવગં સયમકાસી ।

અન્નેહિં વા ન કારિત્થા, કીરંતં પિ નાણુજાણિત્થા ॥” (૯-૮)

આ આઠમી ગાથા દ્વારા એ વાત સ્પષ્ટ કરેલ છે કે જ્યારે ભગવાને પોતે કદી પાપ કરેલ નથી, અને ન બીજાથી કરાવેલ, તથા કરવાવાળાઓને અનુમોદન પણ આપ્યું નથી. આ પ્રકારે જ્યારે તેઓ ત્રણ કરણ અને ત્રણ યોગથી પાપના

‘ પ્રમાદવશેન સંયમે સ્વલિતઃ ’ इत्यपि तेषां कथनमुन्मत्तप्रलपनम्, “ छउमत्थो वि परक्कममाणो न पमायं सइं पि कुव्वित्था ” इति यदत्र गाथायां सुस्पष्टं वचनं येषां दृष्टिपथं नारोहति ते प्रबलमोहान्धाः सम्यग्दृष्टिभिर्दयनीया इत्यलं विस्तरेण ॥१५॥

ત્રીન યોગસે પાપકે ત્યાગી રહે તો ફિર ઉનમેં પાપકા ( પાપલેશ્યાઓંકા ) સમ્બન્ધ કલ્પિત કરના બિલકુલ મૂર્ખતાપૂર્ણ હૈ, ઇસ લિયે યહ બાત અવશ્યર માનની ચાહિયે કિ ભગવાનમેં અધર્મલેશ્યાકે લિયે કિંચિન્માત્ર ભી સ્થાન ઘટિત નહીં હોતા હૈ ।

તથા ‘ ભગવાન ચૂકે ’ ઇસ પ્રકાર કહ કર જો યહ બાત સિદ્ધ કરના ચાહતે હૈં કિ ‘ ભગવાન પ્રમાદકે વશસે સંયમસે સ્વલિત હુણ હૈં ’ યહ ભી કથન એક તરહ ઉન્મત્તકા પ્રલાપ જૈસા હી હૈ, કયોં કિ “ છઉમત્થો વિ પરક્કમમાણો ન પમાયં સઈં પિ કુવ્વિત્થા ” માલૂમ હોતા હૈ યહ આગમ વચન ઉનકી દૃષ્ટિમેં નહીં આયા હૈ, નહીં તો વે ઇસ પ્રકારકા વ્યર્થ પ્રલાપ નહીં કરતે । ઇસકો જાન બૂઝકર ભી જો અપની હઠગ્રાહિતા નહીં છોડે તો ઉનકે લિયે હમ ક્યા કહેં-એસે જીવ પ્રબલ મોહસે હી અન્ધે બને હુણ હૈં, જો જાન-બૂઝકર ભી વાસ્તવિક વસ્તુસ્થિતિસે અજાન હો રહે હૈં, એસે જીવોં પર સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવ કેવલ દયાકે સિવાય ઓર ક્યા અપની ઓર સે પ્રકટ કર સકતે હૈં । અબ ઇસ વિષયમેં ઓર અધિક કહને કી જરૂરત નહીં હૈ ॥૧૫॥

ત્યાગી રહ્યા તો પછી તેમનામાં પાપલેશ્યાઓનો સંબંધ કલ્પિત કરવો તે બીલકુલ મૂર્ખતાપૂર્ણ છે. આ માટે એ વાત અવશ્ય માનવી જોઈએ કે ભગવાનમાં અધર્મલેશ્યા માટે જરાસરખુએ સ્થાન સંભવિત નથી.

“ ભગવાન ચુક્યા ” આ પ્રકારનું કહીને જે એ વાત સિદ્ધ કરવા ઇચ્છે છે કે ભગવાન પ્રમાદવશથી સંયમથી સ્વલિત થયા છે. આ કહેવું પણ એક તરેહના ઉન્માદનો પ્રલાપજ છે, કેમકે-“ છઉમત્થો વિ પરક્કમમાણો ન પમાયં સઈં પિ કુવ્વિત્થા ” માલૂમ થાય છે કે આવું આગમનું વચન તેની દ્રષ્ટીમાં આવ્યું નથી, નહીં તો તે આ પ્રકારનો વ્યર્થ પ્રલાપ ન કરત. આવી રીતે જાણ્યા પછી પણ જે પોતાની હકાગ્રહતા ન છોડે તો તેને માટે કહેવાનું શું હોય ? એવા જીવ પ્રબળ મોહથી અંધ બનેલા છે, જે જાણીપુજીને પણ વાસ્તવિક વસ્તુસ્થિતિથી અજાણ રહે છે. એવા જીવો ઉપર સમ્યગ્દ્રષ્ટી જીવ કેવળ દયા સિવાય પોતાના તરફથી બીજું શું કરી શકે ? હવે આ વિષયમાં અધિક કહેવાની જરૂરત નથી. (૧૫)

કિંચ—‘સયમેવ’ ઇત્યાદિ।

મૂલમ્—સયમેવ અભિસમાગમ્, આયતજોગમાયસોહીષ્ણ ।

અભિનિવ્વુડે અમાઙ્હલ્લે, આવકહં ભગવં સમિયાસી ॥૧૬॥

છાયા—સ્વયમેવાભિસમાગમ્ય આયતયોગમાત્મશોધ્યા ।

અભિનિર્વૃતઃ અમાયાવી યાવત્કથં ભગવાન્ સમિત આસીત્ ॥૧૮॥

ટીકા—અમાયાવી=માયારહિતઃ ભગવાન્ સ્વયમેવ=આત્મનૈવ, અભિસમાગમ્ય=સંસારસ્વરૂપં વિદિત્વા સ્વયંબુદ્ધઃ સન્ તીર્થપ્રવર્તનાર્થમુદ્યતો બભૂવેત્યર્થઃ । યદ્યપિ ભગવાન્ સ્વયમેવ તીર્થપ્રવર્તનાર્થમુદ્યુક્ત આસીત્ તથાપિ લોકાન્તિકા દેવા ભગવદન્તિકં સમાગત્ય પરમ્પરાગતાચારમાલમ્બ્ય ભગવન્તં તીર્થપ્રવર્તનાય પ્રાર્થયામાસુઃ ।

और भी—‘सयमेव’ इत्यादि ।

માયાચારીકી પ્રવૃત્તિસે સર્વથા રહિત ભગવાન્ મહાવીરને અપને આપ હી હસ સંસારકા સ્વરૂપ ભલીભાંતિ જાન કર પરિત્યાગ કિયા, ડન્હોંને સંસારકી અસારતાકા પાઠ કિસી દુસરેકે પાસસે નહીં સીંચા, ક્યોં કિ તીર્થઙ્કર સ્વયંબુદ્ધ હોતે હૈં । સાંસારિક અસારતાકે ચિત્તમેં ચઢને પર દીક્ષાકે ભાવ હોતે હી લોકાન્તિક દેવોંકા શીઘ્ર હી આગમન હોતા હૈ । યે આ કર તીર્થપ્રવૃત્તિ કરનેકે લિયે પ્રભુસે પ્રાર્થના કરતે હૈં । યદ્યપિ ભગવાન્ તીર્થપ્રવૃત્તિ કરનેકે લિયે પહિલેસે હી તય્યાર રહતે હૈં, ફિર ખી લોકાન્તિક દેવોંકા એસા હી પરમ્પરાગત નિયોગ-આચાર-હૈ કિ પ્રભુ જબ દીક્ષા લેનેકે લિયે ઉદ્યત હોતે હૈં તબ યે આ કર અપને પરમ્પરાગત હસ નિયોગ કી પૂર્તિ કરતે હૈં । કહા ખી હૈ—

इरी पणु—‘सयमेव’ इत्यादि.

માયાચારીની પ્રવૃત્તિથી સર્વથા રહિત ભગવાન મહાવીરે પોતાની બાંતે આ સંસારનું સ્વરૂપ ભલી-ભાંતિથી બાણી પરિત્યાગ કર્યો. તેઓએ સંસારની અસારતાનો પાઠ બીજા કોઈ પાસેથી શીખેલ ન હતા. કેમકે તીર્થંકર સ્વયંબુદ્ધ હોય છે. સાંસારિક અસારતા ચિત્તમાં ચડતાં દીક્ષાના ભાવ થતાં જ લોકાન્તિક દેવોનું શીઘ્ર આગમન થાય છે. એ આવીને પ્રભુથી તીર્થ-પ્રવૃત્તિ કરવા માટે પ્રાર્થના કરે છે બે કે ભગવાન તીર્થપ્રવૃત્તિ કરવા માટે પહેલેથી જ તૈયાર રહે છે તો પણ લોકાન્તિક દેવોનો એવો પરમ્પરાગત નિયોગ-આચાર-છે કે પ્રભુન્યારે દીક્ષા લેવા માટે ઉદ્યત હોય છે ત્યારે તે આવીને પોતાની પરમ્પરાગત આ નિયોગની પૂર્તિ કરે છે. કહ્યું પણ છે—



उक्तञ्च--

“आदित्यादिर्विबुधविसरः सारमस्यां त्रिलोक्या,-

मास्कन्दन्तं पदमनुपमं यच्छिवं त्वामुवाच।

तीर्थं नाथाऽलघुभवभयच्छेदि तूर्णं विधत्स्वे,-

त्येतद् वाक्यं त्वदधिगतये नाकिनां स्यान्नियोगः ॥ १ ॥” इति।

तीर्थप्रवर्तनार्थं कथं प्रवृत्तोऽभूदिति दर्शयितुमाह-‘आत्मशोध्या’ कर्मणः  
क्षयोपशमादुपशमात् क्षयाच्चात्मनः शोधिस्तया, आयतयोगं=सुमणिधानयुक्तमनो-

“आदित्यादिर्विबुधविसरः सारमस्यां त्रिलोक्या,-

मास्कन्दन्तं पदमनुपमं यच्छिवं त्वामुवाच।

तीर्थं नाथाऽलघुभवभयच्छेदि तूर्णं विधत्स्वे,-

त्येतद्वाक्यं त्वदधिगतये नाकिनां स्यान्नियोगः” ॥ १ ॥

हे भगवन् ! सारस्वत आदित्य आदि आठ प्रकारके लोकान्तिक देव,  
अनुपम एवं तीनों लोकमें सारभूत ऐसे शिवपद-मोक्षपदको प्राप्त करने  
के लिये उद्यत हुए आपके पास आ कर इस प्रकार प्रार्थना करते हैं कि  
-“ हे नाथ ! इस संसाररूपी महाभय को नष्ट करनेवाले तीर्थकी आप  
शीघ्र स्थापना करें ” यह उनकी प्रार्थना आपके लिये निवेदनमात्र है,  
क्यों कि आप तो स्वयंबुद्ध हैं। उन देवोंका यह केवल परम्परागत  
आचार है ॥ १ ॥

भगवान् अपने चारित्रमोहनीयरूप कर्मके क्षयोपशम, उपशम और सर्वथा

“आदित्यादिर्विबुधविसरः सारमस्यां त्रिलोक्या,

मास्कन्दन्तं पदमनुपमं यच्छिवं त्वामुवाच।

तीर्थं नाथाऽलघुभवभयच्छेदि तूर्णं विधत्स्वे,

त्येतद्वाक्यं त्वदधिगतये नाकिनां स्यान्नियोगः” ॥ १ ॥

हे भगवान् ! सारस्वत आदित्य आदि आठ प्रकारका लोकान्तिकदेवो अनु-  
पम अने त्रिषु लोकमां सारभूत अथवा शिवपद-मोक्षपद-ने प्राप्त करवा माटे  
उद्यत-तैयार थयेल आपनी पासे आवीने आ प्रकारे प्रार्थना करे छे-“ हे  
नाथ ! आ संसाररूपी महाभयने नष्ट करवावाणा तीर्थनी आप शीघ्र स्थापना  
करे ” आ प्रकारनी तेजोनी प्रार्थना आपने माटे निवेदनमात्र छे, केमके  
आप तो स्वयंबुद्ध छे. ते देवोना आ केवल परंपरागत आचार छे. (१)

भगवान् पोताना चारित्रमोहनीयरूप कर्मना क्षयोपशम, उपशम अने

વાકાયયોગં વિધાય, અભિનિર્વૃતઃ=કષાયાનલપ્રશમેન શીતીભૂતઃ, અત એવ યાવત્કથં= યાવજીવં સમિતઃ=સમિતિપશ્ચકસમન્વિતઃ, તથા ગુપ્તિત્રયસમન્વિતશ્ચાસીત્ ॥૧૬॥

ઉપસંહરન્નાહ-‘ એસ વિહી ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્-એસ વિહી અણુવકંતો, માહણેણ મઈમયા ।

બહુસો અપહિન્નેણ, ભગવયા એવં રીયંતિ-ત્તિવેમિ ॥૧૭॥

છાયા-એષ વિધિરનુક્રાન્તઃ, માહનેન મતિમતા ।

બહુશોડપ્રતિજ્ઞેન, ભગવતા એવં રીયન્તે-ઇતિ બ્રવીમિ ॥૧૬॥

ટીકા-અસ્ય વ્યાખ્યા પ્રથમોદ્દેશકેઽભિહિતા તત એવાધિગન્તવ્યા । ‘ ઇતિ બ્રવીમિ ’ અસ્ય વ્યાખ્યાઽપિ પૂર્વં ગતા ॥ ૧૭ ॥

॥ નવમાધ્યયનસ્ય ચતુર્થ ઉદ્દેશઃ સમાપ્તઃ ॥૧-૪॥

ક્ષયસે આત્માકી શુદ્ધિ કર ચારિત્ર અંગીકાર કર મન, વચન ઓર કાયકી પ્રવૃત્તિકો સુપ્રણિધાનયુક્ત કરતે હુએ કષાયરૂપી અગ્નિકે પ્રશમસે અત્યંત શીતલ હુએ ઓર જીવનપર્યન્ત પાંચ સમિતિ એવં ત્રીન ગુપ્તિસે યુક્ત શોભિત હુએ ॥૧૬॥

અવ સૂત્રકાર ઉપસંહાર કરતે હુએ કહતે હૈં-‘ એસ વિહી ’ ઇત્યાદિ ।

હસ સૂત્રકી વ્યાખ્યા પ્રથમ ઉદ્દેશમેં કી જા ચુકી, હૈ અતઃ વહીસે જાન લેની ચાહિયે ॥૧૭॥

॥ નવવેં અધ્યયનકા ચૌથા ઉદ્દેશ સમ્પૂર્ણ ॥૧-૪॥

સર્વથા ક્ષયથી આત્માની શુદ્ધિ કરી ચારિત્ર અંગીકાર કરી, દીક્ષા ધારણ કરી મન, વચન અને કાયની પ્રવૃત્તિને સુપ્રણિધાનયુક્ત કરતાં કરતાં કષાયરૂપી અગ્નિના પ્રશમથી અત્યંત શીતળ બન્યા અને જીવનપર્યન્ત પાંચ સમિતિ અને ત્રણ ગુપ્તિથી યુક્ત શોભિત થયા. (૧૬)

હવે સૂત્રકાર ઉપસંહાર કરતાં કહે છે-‘ એસ વિહી ’ ઇત્યાદિ.

આ સૂત્રની વ્યાખ્યા પ્રથમ ઉદ્દેશમાં કહેવાઈ ગયેલ છે, એટલે ત્યાંથી સમજ લેવી જોઈએ. (૧૭)

નવમા અધ્યયનનો ચોથો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૬-૪ ॥

**અધ્યયનવિષયોપસંહારઃ—**

શ્રીવર્ધમાનસ્ય વિમોર્વિહારં, શય્યાસનં ધોરપરીષદ્વાંશ્ચ ।  
વિલક્ષણાભિગ્રહલબ્ધશુક્તિં, પ્રોચે નવાઙ્કાધ્યયને મુધર્મા ॥ ૧ ॥  
માઘશુક્લત્રયોદશ્યાં, ગુરૌ પુણ્યે ચ વૈક્રમે ।  
દ્વચધિકદ્વિસહસ્રેઽન્દે, ટીકેયં પૂર્ણતામગાત્ ॥ ૨ ॥  
॥ ઇત્યાચારાઙ્ગસૂત્રસ્યાચારચિન્તામણિટીકાયામુપધાનાચ્યં  
નવમમધ્યયનં સમ્પૂર્ણમ્ ॥ ૧ ॥

**અધ્યયનકે વિષયોંકા ઉપસંહાર—**

હસ અન્તિમ શ્લોકદ્વારા ટીકાકારને હસ નવમેં અધ્યયનકે ચાર ઉદ્દેશોંમેં વર્ણિત વિષયકા ઉપસંહાર રૂપસે કથન કિયા હૈ, વે બતલાતે હૈં કિ શ્રીસુધર્માસ્વામીને પ્રથમ ઉદ્દેશમેં ભગવાન્ કે વિહાર કા, દ્વિતીય ઉદ્દેશમેં ડનકે શયન ઓર આસનકા, તૃતીય ઉદ્દેશમેં ધોર પરીષદ્ ઓર ઉપસર્ગોંકે સહનેકા ઓર ચતુર્થ ઉદ્દેશમેં નાનાં પ્રકારકે કઠિન અભિગ્રહોંસે પ્રાપ્ત આહારકા વર્ણન કિયા હૈ ॥૧॥

વિક્રમ સંવત્ ૨૦૦૨ માઘશુક્લ ૧૩ વૃહસ્પતિવાર પુણ્ય નક્ષત્રમેં યહ ટીકા પૂર્ણ હુઈ હૈ ॥ ૨ ॥

યહ આચારાઙ્ગસૂત્રકે ઉપધાનશ્રુત નામકે નવવેં અધ્યયનકી આચાર-  
ચિન્તામણિ-ટીકાકા હિન્દીભાષાનુવાદ સમ્પૂર્ણ ॥ ૧ ॥

**અધ્યયનના વિષયોના ઉપસંહારઃ—**

આ અંતિમ શ્લોકદ્વારા ટીકાકારે આ નવમા અધ્યયનના ચોથા ઉદ્દેશમાં વર્ણવવામાં આવેલા વિષયના ઉપસંહાર રૂપે કથન કરેલ છે. તેઓ બતાવે છે કે શ્રી સુધર્માસ્વામીએ પહેલા ઉદ્દેશમાં ભગવાનના વિહાર બાબત, બીજા ઉદ્દેશમાં એમના શયન અને આસન બાબત, ત્રીજા ઉદ્દેશમાં ધોર પરિષદ અને ઉપસર્ગો સહેવા બાબત, અને ચોથા ઉદ્દેશમાં ઘણા પ્રકારના કઠણ અભિગ્રહોથી મળેલ આહારનું વર્ણન કરેલ છે. (૧)

વિક્રમ સંવત ૨૦૦૨ મહાસુદ ૧૩ શુક્રવાર પુણ્ય નક્ષત્રમાં આ ટીકા પૂર્ણ થઈ છે. (૨)

આ આચારાંગસૂત્રના ઉપધાનશ્રુત નામના નવમા અધ્યયનની આચાર-  
ચિન્તામણિ-ટીકાનો ગુજરાતી અનુવાદ સંપૂર્ણ ॥ ૬ ॥



## शास्त्रप्रशस्तिः—

तस्मै श्री-वर्द्धमानाय, केवलालोकशालिने ।

दयालवे सदा भूयाद्, घासीलालकृता नतिः ॥१॥

उद्यद्दीरजरामरस्य महतः पूज्यस्य गच्छाश्रितः,

शान्तो दान्त उदारचित्तकमलः शब्दागमन्यायवित् ॥

नम्रो जीवदयाकरो मुनिवरो गच्छाधिपो भासुरः,

श्रीमानस्ति गुलाबचन्द्र-विबुधः पद्मानुपट्टाश्रितः ॥ २ ॥

शान्तो दान्त उदञ्चितामलयशश्चन्द्रो महान् पण्डितः,

सेवासद्विनयैर्वशीकृतजगद्विद्यागुणैर्मण्डितः ॥

धर्माचारनिदेशपूतधरणिर्भव्यैकचिन्तामणिः,—

लोकानन्दकरो विभाति धनजी-स्वामी सदा सन्मुनिः ॥३॥

गणेऽस्मिन् प्रमुख्यः सुधीवृन्दबन्धो,—

भ्रमन् देशदेशान्तरं पावयन् यः ॥

भविस्थापितस्वीयधर्मप्रबोधो,—

मुनिर्नानचन्द्रः कवीन्द्रः सुबोधः ॥ ४ ॥

अत्रत्यः प्रियधर्मको दृढतरं धर्मं दधानस्तथा,

श्रीसङ्घोऽतितरामुदारचरितो बन्धादिवोधे क्षमः ॥

पुण्यापुण्यनिरूपणेऽपि निपुणो जीवानुकम्पापरो,—

जीवाऽजीवमुखं च तत्त्वमभितो विद्वान् सदा राजते ॥५॥

चारित्र-श्रुतयुग्मकेन सुषमा जैनानुशास्तेर्यथा,

सङ्घाभ्यां जिनशासनस्य च तथा सा लिम्बडीपत्तने ॥

एवं स्थानकवासिसङ्घ उभयोऽन्योऽन्यानुरागोन्ततो,—

जानन्नास्रव-संवरादिकमयं रत्नत्रये तत्परः ॥ ६ ॥

बालोऽपि धर्मी स्थविरोऽपि धर्मी,

समागतः प्राघुणकोऽपि धर्मी ॥

प्रायोऽत्र सङ्घे सकलोऽपि धर्मी,

धन्या जनन्यो जनयन्ति तौ ॥ ७ ॥

श्रीमान् घादवजी-स्वामी, सेवाभावी विनीतिमान् ।

मुनिव्रतधरो धीमान्, साम्प्रतं राजतेतराम् ॥ ८ ॥

जिनागमज्ञः प्रियमञ्जुभाषी,  
विहाय दोषान् गुणतो विलासी ॥

तपःक्रियाज्ञाननिरस्ततन्द्रः,  
सदा मुनिश्चञ्चति रूपचन्द्रः ॥९॥

श्रीमान् केशवलालजीमुनिवरः स्वामी सतां सेवकः,  
शीलं विश्ववशीकरं च विनयं संधारयन् यत्नतः ॥  
धर्मादेशरतो दयाद्रुतमनाश्चारित्ररक्षापरो,-

धीरं वीरवरं सदा परिचरन् शान्तोऽधुना राजते ॥१०॥  
शान्तिमान् मूलजीस्वामी, भद्रभावसमन्वितः,  
दान्तो दयापयाराशिः, स्थानवासी विराजते ॥११॥  
मुनिः श्रीनागजीस्वामी, व्याख्यानामृततोषकः ।  
शान्तो मृदुस्वभावश्च, दयालुः शोभते भुवि ॥ १२ ॥  
नवलचन्द्रमुनिर्विनयान्वितो,-

मृदुलचित्त उदारमतिः सदा ॥  
सकलसाधुनिषेवणतत्परो,-  
विशदबोधकलार्जन उद्यतः ॥१३॥

विनीतः मुशान्तो दयाराजितान्तः,  
सदा सत्पथे विद्यमानोऽतिदान्तः ॥  
तपःसंयमाचारनिष्ठाविशालः,  
सुधीवृन्दसेवी मुनिश्चुन्निलालः ॥१४॥

मृदुस्वभावो विनयी गुणज्ञः  
सदा सदाचारलसत्समज्ञः ॥

निरन्तरध्यानलसज्जिनेन्द्रः  
मुशोभते धीविभवो महेन्द्रः ॥१५॥ इति ॥

॥ इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्गुरु-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित-  
कलापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-शाहू-  
छत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-" जैनशास्त्राचार्य "-पदभूषित-  
कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-  
पूज्य-श्रीघासीलाल-व्रतिविरचितायाम् आचाराङ्गसूत्र-  
स्याऽऽचारचिन्तामणिटीकायां प्रथमः श्रुतस्कन्धः  
सम्पूर्णः ॥ १ ॥





[૧]

શ્રી અખિલ ભારત શ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી

જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ.

ગરેડીઆ કુવા રોડ-ગ્રીન લોજ પાસે

રાજકોટ.

\*

સમિતિની શરૂઆત તા. ૧૮-૧૦-૪૪ થી  
તા.-૨-૧૧-૫૭ સુધીમાં દાનવીર મહાશયો  
તરફથી મળેલી રકમોની નામાવલી.

\*

( રૂા. ૨૫૦ થી ઓછી રકમો આ યાદીમાં સામેલ કરેલી નથી. )

\*

## આધ મુરખીશ્રી-૪

( યોછામાં યોછી રૂા. ૫૦૦૦ ની રકમ આપનાર )

૧૦૦૦૦	શેઠ શાંતિલાલ મંગળદાસભાઈ, પ્રમુખ સાહેબ	અમદાવાદ
૬૦૦૦	શેઠ હરખચંદ કાલીદાસભાઈ	
	( હા. શેઠ લાલચંદભાઈ, જેયંદભાઈ, નગીનદાસભાઈ, વૃજલાલભાઈ તથા વલ્લભદાસભાઈ )	ભાણુવડ
૫૨૫૧	કોઠારી જેયંદભાઈ અજરામર હા. હરગોવીંદભાઈ જેયંદ	રાજકોટ
૫૦૦૧	શેઠ ધારશીભાઈ જીવનભાઈ	સોલાપુર

## મુરખીશ્રીઓ-૨૧

( યોછામાં યોછી રૂા. ૧૦૦૦ ની રકમ આપનાર )

૩૬૦૫	વકીલ જીવરાજ વર્ધમાન હા. કોઠારી કહાનદાસભાઈ તથા વેણીલાલભાઈ	જેતપુર
૩૬૦૪	દોશી પ્રભુદાસ મુળજીભાઈ	રાજકોટ
૩૨૮૯૧૧-૧૧	મહેતા ગુલાબચંદ પાનાચંદ	રાજકોટ
૩૨૫૦	મહેતા માણેકલાલ અમુલખરાય	ઘાટકોપર
૩૧૦૧	સંઘવી પીતામ્બરદાસ ગુલાબચંદ	જામનગર
૨૫૦૦	શેઠ શામજીભાઈ વેલજી વીરાણી	રાજકોટ
૨૦૦૦	નામદાર ઠાકોર સાહેબ લખધીરસીંહજી બહાદુર	મોરબી
૨૦૦૦	શેઠ લહેરચંદ કુવરજી હા. શેઠ ન્યાલચંદભાઈ લહેરચંદ	સિદ્ધપુર
૨૦૦૦	શાહ છગનલાલ હેમચંદ વસા હા. મોહનલાલભાઈ તથા મોતીલાલભાઈ	મુંબઈ
૧૬૬૩	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	મોરબી
૧૦૦૧	શેઠ આત્મારામ માણેકલાલ	અમદાવાદ
૧૦૦૧	શેઠ માણેકલાલ ભાણુજીભાઈ	પોરબંદર
૧૦૦૦	શેઠ સોમચંદ તુલસીદાસ	રતલામ
૧૦૦૦	કોઠારી છબીલદાસ હરખચંદ	મુંબઈ
૧૦૦૦	કોઠારી રંગીલદાસ હરખચંદ	શીહોર
૧૦૦૨	બગડીઆ જગજીવનદાસ રતનશી	જામનગર
૧૦૦૧	શ્રીમાન ચંદ્રસિંહજી મહેતા ( રેલ્વે મેનેજર સાહેબ )	કલકત્તા
૧૦૦૧	મહેતા પોપટલાલ માવજીભાઈ	જામનગર
૧૦૦૧	મહેતા સોમચંદ નેણશીભાઈ	(કરાંચીવાળા) મોરબી
૧૦૦૧	શાહ હરીલાલ અનુપચંદ	ખંભાત
૧૦૦૨	દોશી કપુરચંદ અમરશી હા. દલપતરામ કપુરચંદ દોશી	જામનગર

## સહાયક મેમ્બરો-૨૬

(ઓછામાં ઓછી રૂ. ૫૦૦ ની રકમ આપનાર)

૭૫૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હા. શેઠ ઝુંઝાભાઈ વેલસીભાઈ	વઢવાણ શહેર
૭૫૦	મોદી કેશવલાલ હરિચંદ્ર	સાબરમતી
૭૦૦	શેઠ નરોત્તમદાસ ઓધડભાઈ	જોરાવરનગર
૫૦૧	શેઠ શીવલાલ ડમરભાઈ	લીંમડી
૫૦૦	કામદાર તારાચંદ પોપટલાલ ધોરાજીવાળા	રાજકોટ
૫૦૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	થાનગઢ
૫૦૦	શેશ તારાચંદ જી પુખરાજી	ઔરંગાબાદ
૫૦૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	ઔરંગાબાદ
	૧૫૦ શેઠ શેષમલજી જીવરાજજી	
	૧૨૫ ,, અનરાજજી લાલચંદજી	
	૧૨૫ ,, ધુકડચંદજી રૂપચંદજી	
	૧૦૦ ,, દગડુમલજી ચાંદમલજી	
	૫૦૦	
૫૦૦	મહેતા મોહનલાલ કપુરચંદ	રાજકોટ
૫૦૦	શેઠ ગોવીંદજી પોપટભાઈ	રાજકોટ
૫૦૦	મહેતા મુળચંદ રાઘવજી હા. મગનલાલભાઈ તથા દુર્લાલજીભાઈ ધ્રાફા	
૫૦૧	શેઠ હરખચંદ પરસોત્તમ હા. ભાઈ ઇન્દુકુમાર	ચોરવાડ
૫૦૧	શેઠ ખીમજી બાવાભાઈ હા. તેમના પુત્ર કુલચંદભાઈ	
	નાગરદાસભાઈ, શુભાખચંદભાઈ, તથા જમનાદાસભાઈ	મુંબઈ
૫૦૧	શેઠ મણીલાલ મોહનલાલ ડગલી હા. શેઠ મુળજીભાઈ મણીલાલ મુંબઈ	
૫૦૧	શેઠ ઇશ્વરલાલ પુરંપોત્તમદાસ	અમદાવાદ
૫૦૧	શેઠ ચંદુલાલ છગનલાલ	અમદાવાદ
૫૦૧	સ્વ. કાંતીલાલભાઈના સ્મરણાર્થે હ. શેઠ બાલચંદ સાકરચંદ	મુંબઈ
૫૦૦	અ. સૌ. બેન મણીગૌરી મગનલાલ તે મહેતા સોમચંદ તુલસીદાસનાં ધર્મપત્નિ	રતલામ
૫૦૧	સ્વ. પીતાશ્રી નંદાજીના સ્મરણાર્થે હ. વેણીચંદ શાંતિલાલ (ભાગુઆવાળા)	મેઘનગર



૭૫૧	શાહ રંગજીભાઈ મોહનલાલ	અમદાવાદ
૫૦૧	કામદાર રતીલાલ દુર્લભજી જેતપુરવાળા	મુંબઈ
૫૨૭	ખાટવીયા ગીરધર પ્રમાણુદ હસ્તે અમીચંદ ગીરધરભાઈ— ખાખીજીખીયા	
૫૧૧	મોરખીવાળા સંઘવી દેવચંદ નેણશીભાઈ તથા તેમનાં ધર્મપત્નિ અ. સૌ. મણીભાઈ તરફથી. હા. મુળચંદ દેવચંદ કરાચીવાળા	મલાડ
૫૦૧	શેઠ કેસરીમલજી વસતીમલજી ગુગલીયા	રાણાવાસ
૫૦૧	સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હસ્તે ખાટવીયા અમીચંદ ગીરધરભાઈ ખાખીજીખીયા	
૫૦૨	વોરા મણીલાલ પોપટલાલ	અમદાવાદ

### પ્રથમ વર્ગના મેમ્બરો—૨૭૭

(ઝોછામાં ઝોછી રકમ રૂ. ૨૫૦ આપનાર)

૪૦૨	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	ધ્રાક્ષ
૪૦૦	ધી વાડીલાલ ડાઈંગ એન્ડ પ્રિન્ટંગ વર્ક્સ	રાજકોટ
૩૫૩	શેઠ રતનશી હીરજીભાઈ હા. ગોરધનદાસભાઈ	જામજોધપુર
૩૦૧	શેઠ જેચંદભાઈ માણેકચંદ	ભાણુવડ
૨૫૧	સંઘવી માણેકચંદ માધવજી	ભાણુવડ
૨૫૧	શેઠ લાલજીભાઈ માણેકચંદ (લાલપુરવાળા)	ભાણુવડ
૨૫૧	શેઠ રામજી ઝીણાભાઈ	ભાણુવડ
૨૫૧	પંચમીયા લવાનભાઈ કાળાભાઈ	વડીઆ
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	વાંકાનેર
૨૫૧	શેઠ રતીલાલ ન્યાલચંદ	રાજકોટ
૨૫૦	ખાખુ પરશુરામ છગનલાલ શેઠ (ઉદેપુરવાળા)	રાજકોટ
૨૫૧	શેઠ મગનલાલ છગનલાલ વિશ્રામ (ધ્રાક્ષવાળા)	રાજકોટ
૨૫૧	શેઠ જેઠલાલ ગોરધનદાસ	ઉપલેટા
૨૫૧	સ્વ. બહેન સંતોક કચરા હા. ઓતમચંદભાઈ, છોટાલાલભાઈ તથા અમૃતલાલભાઈ વાલજી (કલ્યાણવાળા)	ઉપલેટા
૨૫૧	શેઠ ખુશાલચંદભાઈ કાનજીભાઈ હા. શેઠ પ્રતાપભાઈ	ઉપલેટા
૨૫૧	શેઠ છોટાલાલ કેશવજી	જામનગર

૨૫૧	શાહ લક્ષ્મીચંદ કપુરચંદ	જેતલસર જંકશન
૨૫૧	શાહ ચતુરદાસ ઠાકરશીભાઈ	જામનગર
૨૫૧	ખંડેરીયા કાન્તિલાલ ત્રંબકલાલ (સ્ટેશન માસ્તર)	વાંકાનેર
૨૫૧	શાહ કેશવલાલ જેચંદ	વેરાવળ
૨૫૧	શાહ ખીમચંદ શૌભાગ્યચંદ વસનજી	વેરાવળ
૨૫૧	સ્વ. બાબડા વચ્છરાજ તુલસીદાસનાં ધર્મપત્નિ કમળબાઈ	
	તરફથી હા. માણેકચંદભાઈ તથા કપુરચંદભાઈ	ગોંડલ
૨૫૧	શેઠ છગનલાલ નાનજીભાઈ	મુંબઈ
૨૫૧	ઘેલાણી ત્રીકમજી લાધાભાઈ	જુનારદેવ
૨૫૧	શેઠ ગીરધરલાલ કરમચંદ	અમદાવાદ
૨૫૧	શેઠ છોટાલાલ વખતચંદ	અમદાવાદ
૨૫૧	ગોસલિયા હરિલાલ લાલચંદ	અમદાવાદ
૨૫૧	શેઠ પ્રેમચંદ માણેકચંદ	અમદાવાદ
૨૫૧	શેઠ માણેકલાલ ભગવાનદાસ	ખંભાત
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હ. પટેલ કાન્તીલાલ અંબાલાલ ખંભાત	
૨૫૧	શેઠ રમણીકલાલ એ. કપાસી	કેલડાપુર
૨૫૧	ખડેન સુરીખડેન (લક્ષ્મીબેન)	
	હા. મહેતા હરીલાલ પીતામ્બરદાસ	પાલનપુર
૨૫૦	શેઠ વાડીલાલ નેમચંદ વકીલ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ વીંડલદાસ મોદી માસ્તર	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ નાગરદાસ માણેકચંદ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ મણીલાલ જીવણલાલ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ નાગરદાસ વાઘજીભાઈ	અમલનેર
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	અમલનેર
૨૫૧	શેઠ મનુભાઈ મુળચંદ (ઈન્જનીયર સાહેબ)	રાજકોટ
૨૫૧	શેઠ શાંતિલાલ પ્રેમચંદ	
	[તિમનાં ધર્મપત્નીના વરસીતપ પ્રસંગે ખુશાલીના]	રાજકોટ
૨૫૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હા. ચંપાલાલજી મારવે	ડોંડાઈચા
૨૫૧	શેઠ મોતીલાલજી રણજીતલાલજી હીંગડ	ઉદેપુર
૨૫૦	શેઠ બાદરમલજી સુરજમલજી બેન્કર્સ	યાદગીરી
૨૫૦	શેઠ ગોપાલજી મીઠાભાઈ	હાટીના માળીયા
૨૫૧	ઉદાણી ન્યાલચંદ હાકોમચંદ (વકીલ)	રાજકોટ

૨૫૧	શેઠ પ્રભારામ વીઠલજી	રાજકોટ
૨૫૧	શેઠ મેઘરાજજી દેવીચંદજી મહેતા	મદ્રાસ
૨૫૧	પટેલ ગોવિંદલાલ ભગવાનજી	કોલકી
૩૦૨	પટેલ ખીમજી જેઠાભાઈ વાઘાણી	કોલકી
૨૫૧	શેઠ હકમીચંદ દ્વીપચંદ ગોંડલવાળા [ સ્ટેશન માસ્ટર ભક્તિનગર ]	રાજકોટ
૨૫૧	શેઠ વસનજી નારણજી	ભમખંભાળીયા
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	ભમખંભાળીયા
૨૫૧	શેઠ કીશનલાલ પૃથ્વીરાજ	ખીચન (પાલી)
૨૫૧	શેઠ પદમસી ભીમજી ફેફરીયા	ભાણુવડ
૨૫૧	અ. સો. બહેન બચીબહેન બાણુભાઈ	ધોરાજી
૨૫૧	શેઠ નેમચંદ સવજીભાઈ મોદી	લાલપુર
૨૫૦	શ્રી સ્થા. જૈન સંઘ હા. પ્રમુખ શેઠ પ્રેમચંદ ભગવાનલાલ નંદુરખાર	
૨૫૧	શેઠ અમૃતલાલ હીરજીભાઈ જસાપરવાળા હા. નરભૈરામભાઈ જેતપુર	
૨૫૧	દોશી છોટાલાલ વનેચંદ	જેતપુર
૨૫૧	કામદાર લીલાધર જીવરાજના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્ની બાઈ ઝબકબહેન તરફથી હા. ભાઈ શાંતિલાલ	જેતલસર
૨૮૭	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	ભમજોધપુર
૨૫૧	સ્વ. બહેન વિજયાગૌરી રાયચંદ હા. શેઠ રાયચંદ પાનાચંદ ધોરાજી	
૨૫૦	ગાંધી પોપટલાલ જેચંદભાઈ	ધોરાજી
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હા. પ્રમુખ રાયચંદ વૃજલાલ અજમેરા	વીંછીયા
૨૫૧	શેઠ મુળચંદ પોપટલાલ હા. મણીલાલભાઈ તથા જેસીંગલાલભાઈ	લાલપુર
૨૫૧	શેઠ મણીલાલ મીઠાભાઈ હા. હરીલાલભાઈ ( હાટીના માળીયાવાળા )	બુનાગઢ
૨૫૧	સ્વ. વસાણી હરગોવિંદદાસ છગનલાલના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્ની બાઈ છબલબેન તરફથી	ખોટાદ
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	ચુડા (ઝાલાવાડ)
૨૫૧	શેઠ મગનલાલજી બાગરેયા	ઉદેપુર
૨૫૧	શેઠ ચાંપશીભાઈ સુખલાલ	સુરેન્દ્રનગર



- ૨૫૧ સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ બોટાદ
- ૨૫૧ સ્વ. પૂજ્ય માતુશ્રી સમરતબાઈના સ્મરણાર્થે  
હા. ડોકટર સાહેબ નરોત્તમદાસ ચુનીલાલ કાપડીયા રાણપુર
- ૨૫૧ સ્વ. તુરખીયા લહેરચંદ માણેકચંદ સુદામડાવાળાના સ્મરણાર્થે  
તેમનાં ધર્મપત્ની જીવતીબાઈ તરફથી હા. જયંતિલાલ લહેરચંદ ડાલાસ
- ૨૫૧ શ્રી સ્થા. જૈન મોટા સંઘ ધ્રાંગધ્રા
- ૨૫૧ શાહ દીલપકુંવર સવાઈલાલ  
હા. શેઠ સવાઈલાલ ત્રંબકલાલ વઢવાણ શહેર
- ૨૫૧ શેઠ છોટુભાઈ હરગોવિંદદાસ કટોરીવાળા મુંબઈ
- ૨૫૧ રા. રા. નાથાલાલ ડી મહેતા મોરબાસા
- ૨૫૧ સંઘતી પ્રાણલાલ લવજીભાઈ જામખંભાણીયા
- ૨૫૧ બાવીશી મણીલાલ ચત્રભુજના સ્મરણાર્થે  
તેમનાં ધર્મપત્ની બાઈ મણીબેન તરફથી  
હા. ભાઈ રસીકલાલ, અનીલકાંત તથા વિનોદરાય આસનસોલ
- ૨૫૧ ભાવસાર બોડીદાસ ગણેશભાઈ ધંધુકા
- ૨૫૧ શાહ પોપટલાલ ધનજીભાઈ ધંધુકા
- ૨૫૧ સ્વ. ગુલાબચંદભાઈના સ્મરણાર્થે  
હા. વેરા પોપટલાલ નાનચંદ ધંધુકા
- ૨૫૧ શેઠ ચત્રભુજ વાઘજીભાઈ વસાણી ધંધુકા
- ૨૫૧ સ્વ મોહનલાલ નરસીદાસના સ્મરણાર્થે  
તેમનાં ધર્મપત્ની સુરજબેન મોરારજી તરફથી બરવાળા
- ૨૫૧ શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ પાણસણા (લીંબડી)
- ૨૫૧ સંઘાણી મુળશંકર હરજીવનભાઈના સ્મરણાર્થે  
હા. તેમના પુત્રો જયંતિલાલભાઈ તથા સમણીકલાલભાઈ ઉપલેટા
- ૨૫૧ શાહ મગનલાલ ગોકળદાસ  
હા. રતીલાલ મગનલાલ કામદાર વઢવાણ શહેર
- ૨૫૧ સંઘવી મુળચંદ બેચરભાઈ  
હા. જીવનલાલ ગફલદાસ વઢવાણ શહેર

૨૫૧	ખડેન સુર્યબાળા નૌતમલાલ જસાણી [વરસતીપનાં પારણાંની ખુશાલીમાં]	રાજકોટ
૨૫૧	શાહ રાયચંદ ઠાકરશીના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ શાંતીલાલ રાયચંદ	લખતર
૨૫૧	ભાવસાર હરજીવનદાસ પ્રભુદાસના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ ત્રીભોવનદાસ હરજીવનદાસ	લખતર
૨૫૧	શાહ તલકશી હીરાચંદના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ અમૃતલાલ તલકશી	લખતર
૨૫૧	શાહ ચુનીલાલ માણેકચંદ	લખતર
૨૫૧	શેઠ વૃજલાલ સુખલાલ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	શેઠ કાંતિલાલ નાગરદાસ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	વોરા ચત્રભુજ મગનલાલ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	સંઘવી શીવલાલ હીમજીભાઈ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	શાહ દેવશીભાઈ દેવકરણ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	શાહ બદવજી ઓઘડભાઈ સદાદવાળાના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ શાંતિલાલ બદવજી	લખતર
૨૫૧	ભાવસાર ચુનીલાલ પ્રેમચંદભાઈ	સુરેન્દ્રનગર
૨૫૧	શ્રી વર્ધમાન શ્વેતામ્બર સ્થા. શ્રાવક સંઘ હા. શેઠ કેસરીમલજી અનોપચંદજી ગુગળીયા મલાડ (મુંબઈ)	
૨૫૧	દોશી ઠાકરશી ગુલાબચંદના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્ની સમસ્તબેન વૃજલાલ તરફથી હા. જયંતીલાલ ઠાકરશી	લખતર
૩૦૦	શાહ અમુલખભાઈ ઉર્ફે અચુભાઈ નાગરદાસનાં ધર્મપત્ની અ. સૌ. બેન લીલાવંતીના વરસીતપનાં પારણાંની ખુશાલીમાં હા. ભાઈ કાંતીલાલ નાગરદાસ	વીરમગામ
૨૫૧	કામદાર કેશવલાલ હીમતરામ પ્રોફેસરસાહેબ (ગોંડલવાળા) વડોદરા	
૨૫૧	શેઠ ડુંગરશી હંસરાજ વીસરીયા	મુંબઈ
૨૫૧	શેઠ ધનરાજ મુળચંદ મુથા	લોનાવાલા (પુના)
૨૫૧	મહેતા નાનાલાલ છગનલાલનાં ધર્મપત્ની સ્વ. ચંચળબેન તથા પુરીબેનના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ મનહરલાલ નાનાલાલ	મુ. વણી (વીરમગામ)

૨૫૧	દોશી ચુનીલાલ કુલચંદ મોરબીવાળા મુ. શાલબની (બંગાળ)	
૩૦૧	શાહ હીરાચંદ છગનલાલ હા. શાહ ચીમનલાલ હીરાચંદ સાણંદ	
૨૫૧	શેઠ મોહનલાલ જેઠાભાઈના સ્મરણાર્થે	
	હા. શેઠ આત્મારામ મોહનલાલ	કલોલ
૨૫૧	શાહ રમણીકલાલ કાળીદાસ તથા અ. સૌ. કાંતાબેન રમણીકલાલ (ધ્રાંગધ્રાવાળા)	મુંબઈ
૨૫૧	ડોક્ટર મયાચંદ મગનલાલ હા. ડો. રતનચંદ મયાચંદ	કલોલ
૨૫૧	સ્વ. શાહ નાથાલાલ ઉમેદચંદના સ્મરણાર્થે	
	હા. શાહ રતીલાલ નાથાલાલ	કલોલ
૨૫૧	શ્રી સ્થા. દરોયાપુરી જૈન સંઘ હા. બાવસાર દામોદરદાસ ઈશ્વરભાઈ	કડી
૨૫૧	શાહ મણીલાલ તલકચંદના સ્મરણાર્થે	
	હા. મારફતીયા ચંદુલાલ મણીલાલ	કલોલ
૨૫૧	અ. સૌ. ચંપાબેન હ. શેઠ જીવરાજ લાલચંદ દોશી	સાણંદ
૨૫૧	પટેલ મહાસુખલાલ ડોસાભાઈ	સાણંદ
૨૫૧	શાહ સાકરચંદ કાનજીભાઈ	સાણંદ
૨૫૧	શાહ હીમતલાલ હરજીવનદાસ	મુંબઈ
૨૫૧	શાહ જીતેન્દ્રકુમાર વાડીલાલ માણેકચંદ (રાજસીતાપુરવાળા)	સાબરમતી
૨૫૧	અ. સૌ. સમરતબેન પ્રેમચંદ C/o પ્રેમચંદ માણેકચંદ (રાજસીતાપુરવાળા)	સાબરમતી
૨૫૧	શા. કાંતિલાલ ત્રીલોચનદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	સ્વ. શેઠ ઉજ્જમશી નાનચંદના સ્મરણાર્થે	
	તેમના પુત્રો તરફથી હા. શેઠ ચુનીલાલ નાનચંદ	વીરમગામ
૨૫૧	સ્વ. શાહ મણીલાલ લક્ષ્મીચંદના સ્મરણાર્થે	
	તેમના પુત્રો તરફથી હા. ખીમચંદભાઈ	વીરમગામ
૨૫૧	સ્વ. શેઠ હરીલાલ પ્રભુદાસના સ્મરણાર્થે	
	હા. શેઠ અનુભાઈ હરીલાલ	વીરમગામ
૨૫૧	સંઘવી જેયંદભાઈ નારણદાસ	વીરમગામ



૨૫૧	સ્વ. શાહ વેલશીભાઈ સાકરચંદના સ્મરણાર્થે હા. ચીમનલાલ વેલશી કત્રાજવાળા	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ પોચાલાલ પીતામ્બરદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	પારેખ મણીલાલ ટોકરશી લાતીવાળા તરફથી મોટીબેનના સ્મરણાર્થે	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ નારણદાસ નાનજીભાઈના સુપત્ર વાડીભાઈના ધર્મપત્ની અ. સૌ. નારંગીબેનના વરસીતપ નિમિત્તે હા. શાંતીભાઈ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ પોપટલાલ મોહનલાલ	અમદાવાદ
૨૫૦	શેઠ પ્રેમચંદ સાકરચંદ	અમદાવાદ
૩૫૧	લાલ પુરણચંદજી જૈન (સેન્ટ્રલબેંકવાળા)	દીલ્હી
૨૫૧	સ્વ. છબીલદાસ ગોકળદાસના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્નિ કમળાબેન તરફથી હા. મંજુલાકુમારી	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ રતીલાલ વાડીલાલ	અમદાવાદ
૨૫૧	શેઠ લાલભાઈ મંગળદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	અ. સૌ. કમળાબેન તે કામદાર ગોરધનદાસ મગનલાલનાં ધર્મપત્નિ (વઢવાણવાળા)	રંજુન
૨૫૧	વોરા ડોસાભાઈ લાલચંદ સ્થા. જૈન સંઘ હા. વોરા નાનચંદ શીવલાલ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	વોરા ધનજીભાઈ લાલચંદ સ્થા. જૈન સંઘ હા. વોરા પાનાચંદ ગોખરદાસ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	સ્વ. અમૃતલાલ વર્ધમાનના સ્મરણાર્થે હા. કહાનજીભાઈ અમૃતલાલ દેશાઈ	અમદાવાદ
૨૫૧	શ્રી વીરમગામ સ્થા. જૈન શ્રાવિકા સંઘ	વીરમગામ
૨૫૧	સ્વ. ત્રિલોચનદાસ દેવચંદ તથા સ્વ. અ. સૌ. ચંચળબેનના સ્મરણાર્થે હા. ડોકટર હિંમતલાલ સુખલાલ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ મુલચંદ કાનજીભાઈ તરફથી હા. શાહ નાગરદાસ ઓઘડભાઈ	વીરમગામ
૨૫૧	શેઠ મોહનલાલ પીતામ્બરદાસ હા. ભાઈ કેશવલાલ તથા મનસુખલાલભાઈ	વીરમગામ

૨૫૧	શાહ રતનશી મોણીશીની કું	મુંબઈ
૨૫૧	ભાવસાર ભોગીલાલ જમનાદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	શાહ શીવજી માણેકભાઈ	બેરાળા (કચ્છ)
૨૫૧	શાહ લુણાજી ગુલાબચંદ	સંજેલી (પંચમહાલ)
૨૫૧	શ્રી સ્થા.જૈન સંઘ હા. શાહ પ્રેમચંદ	દલીચંદ
		સંજેલી (પંચમહાલ)
૨૫૧	શાહ કુંવરજી ગુલાબચંદ	લીમડી (પંચમહાલ)
૨૫૧	શાહ પાનાચંદ સંઘજીભાઈ હા. ત્રંબકલાલ રતીલાલ	મુંબઈ
૩૦૧	શાહ અમુલખભાઈ મુળજી હા. પ્રકાશચંદ અમુલખ	હારીજ
૩૦૧	સ્વ. બેન ચંદ્રકાંતાના સ્મરણાર્થે હા. અમુલખ મુળજીભાઈ	હારીજ
૨૫૧	સ્વ. પદમશી સુરચંદના સ્મરણાર્થે હા. શીવલાલ પદમશી મેસાણા	
૨૫૧	શાહ ગોકળદાસ શામજી ઉદાણી	એડન કેમ્પ
૨૫૧	શ્રીમતી અ. સૌ. બેન ચંદ્રાવતી તે શ્રીમાન બહોતલાલજી	
	નાહરનાં ધર્મપત્નિ હા. શેઠ રણજીતલાલજી હીંગડ	ઉદેપુર
૨૫૧	સ્વ. શેઠ વીરચંદભાઈ જેસીંગ લખતરવાળાના સ્મરણાર્થે	
	હા. કેશવલાલ વીરચંદ શેઠ	મુંબઈ
૨૫૧	છાજેડ ઘાસીરામ ગુલાબચંદ	લીમડી (પંચમહાલ)
૩૫૧	મહેતા પ્રભુદાસ મુળજીભાઈ	ધોરાજી
૩૦૧	શ્રીમતી હીરાબેન નથુભાઈના વરસીતાપ નીમીત્તે	
	હા. નથુભાઈ નાનચંદ શાહ	વીરમગામ
૨૫૧	સ્વ. મણીયાર પરસોત્તમ સુદરજીના સ્મરણાર્થે	
	હા. સાકરચંદ પરસોત્તમ	વીરમગામ
૨૫૧	શેઠ મણીલાલ શીવલાલ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ ત્રીભોવનદાસ ભગવાનજી પાનેલીવાળા	જામજોધપુર
૨૫૧	શાહ નટવરલાલ ચંડલાલ	અમદાવાદ
૩૦૧	શાહ ત્રીભોવનદાસ છગનલાલ	ગોધરા
૨૫૧	શાહ નરસીદાસ ત્રીભોવનદાસ	અમદાવાદ
૩૦૧	બીપીનચંદ્ર તથા ઉમાકાંત ચુનીલાલ ગોપાણી	
	હા. ગોપાણી ચુનીલાલ માણેકચંદ	રાણપુર

- ૨૫૧ શ્રી શાહપુર, દરીયાપુરી આડકોટી સ્થા. જૈન ઉપાશ્રય  
હા. વહીવટ કરનાર શેઠ ઇશ્વરદાસ પુરુષોત્તમદાસ અમદાવાદ
- ૨૫૧ શ્રી છીપાપોળ દરીયાપુરી આડકોટી સ્થા. જૈન સંઘ  
હા. શેઠ ચંદુલાલ અમૃતલાલ અમદાવાદ
- ૨૭૭ શ્રી સ્થાનકવાસી છકોટી જૈન સંઘ  
હા. મહેતા ચુનીલાલ વેલજી માંડવી (કચ્છ)
- ૨૫૧ વકીલ મણીલાલ કેશવલાલ શાહ વડોદરા
- ૨૫૧ શાહ ચીનુભાઈ બાલાભાઈ C/o શાહ બાલાભાઈ મહાસુખરામ  
અમદાવાદ
- ૨૫૧ શાહ ભાઈલાલ ઉજમશી અમદાવાદ
- ૨૫૧ સ્વ. કેશવલાલ મુળજીભાઈનાં ધર્મપત્ની, સ્વ. અમૃતબાઈના  
સ્મરણાર્થે હા. ભાઈલાલ કેશવલાલ થાનગઢવાળા સુરેન્દ્રનગર
- ૨૫૧ પુરીબેન ચીમનલાલ કલ્યાણજી સંઘવી લીમડીવાળાના સ્મરણાર્થે  
હા. વાડીલાલ મોહનલાલ કોઠારી સાણંદ
- ૨૫૧ પારેખ નેમચંદ મોતીચંદ મુળીવાળાના સ્મરણાર્થે  
હા. ભીખાલાલ નેમચંદ સાણંદ
- ૨૫૧ સંઘવી નારણદાસ ધરમશીના સ્મરણાર્થે  
હા. જયંતીલાલ નારણદાસ સાણંદ
- ૨૫૧ શા. પ્રવિણચંદ્ર નરસીદાસ સાણંદવાળા બોડેલી (ગુજરાત)
- ૨૫૧ માસ્તર જેઠાલાલ મોનજીભાઈ હા. મહેતા  
અમૃતલાલ જેઠાલાલ સીવીલઈન્જનીયર સાહેબ લાખેરી (રાજસ્થાન)
- ૨૫૧ શ્રી સુખલાલ ડી. શેઠ  
હા. ડા. કુ. સરસ્વતી ખેડેન શેઠ અમદાવાદ
- ૨૫૧ શ્રી સૌરાષ્ટ્ર સ્થા. જૈન સંઘ  
હા. શાહ કાંતીલાલ જીવનલાલ અમદાવાદ
- ૨૫૧ સ્વ. શેઠ કાળુલાલજી લોઢાના સ્મરણાર્થે  
હા. શેઠ દોલતસિંહજી લોઢા ઉદેપુર
- ૨૫૧ સ્વ. મહેતા કુંવરજી નાથાભાઈના સ્મરણાર્થે  
હા. તેમનાં ધર્મપત્તિ કુંવરબાઈ હરખચંદ તરફથી  
( માનકુવા સ્થા. જૈન સંઘને માટે ) માનકુવા (કચ્છ)



૨૫૧	મોઢી નાથાલાલ મહાદેવદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	શાહ મોહનલાલ ત્રીકમદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	સ્વ. શેઠ પ્રતાપમલજી સાખલાના સ્મરણાર્થે હા. પ્રાણુલાલ હીરાલાલ સાખલા	ઉદેપુર
૨૫૧	શ્રી છકોટી સ્થા. જૈન સંઘ હા. શાહ પોચાલાલ પીતામ્બરદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	દોશી વીરચંદ સુરચંદ હા. દોશી નાનચંદ ઉજમશી	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	સ્વ. વોરા મણીલાલ મગનલાલ હા. વોરા ચત્રભુજ મગનલાલ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	શાહ પોપટલાલ હંસરાજના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ બાબુલાલ પોપટલાલ	અમદાવાદ
૨૫૧	શાહ કુંવરજી હંસરાજ	મુંબઈ
૨૫૧	દેશાઈ અમૃતલાલ વર્ધમાન બાપોદરાવાળા હા. ભાઈલાલ અમૃતલાલ દેશાઈ	અમદાવાદ
૨૫૧	દેશાઈ અમૃતલાલ વર્ધમાન બાપોદરાવાળા હા. દલીચંદ અમૃતલાલ દેશાઈ	મુંબઈ
૨૫૧	શાહ સાકરચંદ મોહનલાલ	ખંભાત
૨૫૧	શાહ નવનીતલાલ અમુલખરાય	અમદાવાદ
૨૫૧	શાહ મણીલાલ આશારામ	અમદાવાદ
૨૫૧	શેઠ ચીનુભાઈ સાકરચંદ	અમદાવાદ
૨૫૧	અ. સૌ. ચંપાબેન ગોસલીયા હા. ગોસલીયા હરીલાલ લાલચંદ	અમદાવાદ
૨૫૧	શ્રી વટામણ સ્થા. જૈન સંઘ હા. શ્રી ઉદ્યાભાઈ હલુભાઈ	વટામણ (ધોળકા)
૨૫૧	કેઠારી ડાલરકુમાર વેણીલાલ	જેતપુર
૨૫૧	શાહ વરજીવનદાસ ઉમેદચંદ	અમદાવાદ
૨૫૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	સાબરમતી
૨૫૧	શેઠ અમરચંદ છગનલાલ બાગરેયા	નાથદ્રારા

૨૫૨	ઘેલાણી પ્રભુદાસ ત્રિકમજી	મુંબઈ
૩૦૧	સ્વ. સંઘવી મનસુખલાલ મોહનલાલના સ્મરણાર્થે હા. ધીરજલાલ મનસુખલાલ	પાલેજ
૩૦૦	મહેતા ગુલાબચંદ ગંભીરમલ	ઘોલવડ (થાણા)
૨૫૧	શાહ ખીમચંદ મુળજીભાઈ	વલસાડ
૨૫૧	શાહ હરજીવનભાઈ કેશવજી	મુંબઈ
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જન સંઘ હા. છોટુભાઈ અલેચંદ શાહ	સુરત
૨૫૧	શાહ મોહનલાલ પોપટલાલ પાનેલીવાળા	ઉમરગામરોડ
૨૫૧	શાહ રવજીભાઈ તથા ભાઈલાલની કુાં.	કાંદેવલી
૨૫૧	શાહ રજનીકાન્ત કસ્તુરચંદ	અમદાવાદ
૨૫૧	સંઘવી જીવણલાલ છગનલાલ (સ્થા. જૈન)	અમદાવાદ
૩૦૧	સ્વ. માતુશ્રી માણિકભાઈના સ્મરણાર્થે હા. શાહ વલભદાસ નાનજી પોરબંદરવાળા	મુંબઈ
૨૫૧	શેઠ દેવરાજજી જીતમલજી પુનમીઆ સાદડીવાળા	મુંબઈ
૩૦૧	શાહ ચુનિલાલ નારણજી	આટકોટ
૨૫૧	એક સદ્ગુહસ્થ હા. શેઠ સુંદરલાલ માણિકચંદ	મુંબઈ
૨૫૧	અ. સૌ. બહેન પાનખાઈ હા. શેઠ પદમસી નરશીભાઈ	મલાડ
૨૫૧	શ્રી સરસપુર દરીઆપુરી આઠકોટી સ્થા. જૈન ઉપાશ્રય હા. ભાવસાર ભોગીલાલ છગનલાલ	અમદાવાદ
૨૫૧	ભાવસાર ભોગીલાલ છગનલાલ	અમદાવાદ
૩૦૧	સ્વ. પિનાશ્રી નાગશીભાઈ સેજપાલના સ્મરણાર્થે હા. શાહ રામજી નાગશી ગુંદાળાવાળા	મલાડ
૨૫૧	શાહ રામજીભાઈ કરશનજી થાનગઢવાળા	મુંબઈ
૨૫૧	શાહ ઠાકરશી કરશનજી	થાનગઢ
૨૫૧	શાહ જેઠાલાલ ત્રીભોવનદાસ	થાનગઢ
૨૫૧	શાહ ધારશી પાશવીર	થાનગઢ
૨૫૧	શાહ નગીનદાસ કલ્યાણજી વેરાવળવાળા	મુંબઈ
૨૫૧	શેઠ શીવલાલ ગુલાબચંદ	મુંબઈ

૨૫૧	શાહ હીરાચંદ્રજી વનેચંદ્રજી કટારીઆ	હુબલી (ધારવાડ)
૩૦૧	સ્વ. જટાશંકર દેવજી દોશીના સ્મરણાર્થે	
	હા. દોશી રણછોડદાસ (બાબુભાઈ) જટાશંકર ટંકારાવાળા સુબંધ	
૨૫૧	સ્વ. શેઠ વણારસી ત્રીલોવનદાસ ગોડાના સ્મરણાર્થે	
	હા. જગજીવન વણારસી સરસઈવાળા	મલાડ
૨૫૧	સ્વ. પિતાશ્રી કાનજી મુળજીના સ્મરણાર્થે તથા માતૃશ્રી દિવાળીભાઈના સોળ ઉપવાસના પારણા પ્રસંગે	
	હા. દોશી જયંતીલાલ કાનજી કાળાવડવાળા	મલાડ
૨૫૧	સ્વ. અજમેરા ત્રીલોવનદાસ વ્રજપાલ વીંછીઆવાળાના સ્મરણાર્થે	
	હા. અજમેરા હરગોવીંદદાસ ત્રીલોવનદાસ	મુબંધ
૨૫૦	શેઠ ખુશાલભાઈ ખેંગારભાઈ	મુબંધ
૨૫૧	શાહ પ્રેમજી માલશી ગંગર	મલાડ
૨૦૧	સ્વ. પિતાશ્રી રામશી વેલજીના સ્મરણાર્થે	
	હા. શાહ દામજી રામશી	મુબંધ
૩૦૧	શાહ વેલજી જેસીંગભાઈ છાસરાવાળા (તેમનાં ધર્મપત્નિ સ્વા. નાનબાઈના સ્મરણાર્થે)	મલાડ
૨૫૧	સ્વ. પિતાશ્રી પતુભાઈ મોનાભાઈના સ્મરણાર્થે	
	હા. શાહ કાનજીભાઈ પતુભાઈ કચ્છ ગુંદાળાવાળા	મુબંધ
૨૫૧	શેઠ ત્રંબકલાલ કસ્તુરચંદ (લીંમડીવાળા તરફથી અજરામરજી શાસ્ત્રભંડારને લેટ)	માટુંગા
૩૦૧	સ્વ. પિતાશ્રી ભીમશી કેરસી તથા માતૃશ્રી પાલાભાઈના સ્મરણાર્થે	
	હા. શાહ ઉમરશી ભીમશી કચ્છપત્રીવાળા	મલાડ
૨૫૧	મેસર્સ સવાણી ટ્રાન્સપોર્ટ કંપની	
	હા. શેઠ માણેકલાલ વાડીલાલ	મુબંધ
૨૫૧	શાહ ન્યાલચંદ હરખચંદ	સુરેન્દ્રનગર
૨૫૧	શેઠ ચુનિલાલ નરભેરામ વેકરીવાળા	મુબંધ
૨૫૧	સ્વ. માતૃશ્રી જીવીભાઈના સ્મરણાર્થે	
	હા. શાહ શામજી શીવજી કચ્છગુંદાળાવાળા	ગોરેગાંવ
૨૫૧	શાહ વરભંગભાઈ શીવજી	મલાડ
૨૫૧	સ્વ. માતૃશ્રી ઝકલભાઈના સ્મરણાર્થે	
	હા. દેશાઈ વ્રજલાલ કાળીદાસ	બગસરાભાયાણી



૨૫૧	શાહ શાન્તીલાલ માણેકચંદ	અમદાવાદ
૩૦૧	શેઠ જવાનમલજી નેમીચંદજી હા. ગાંધી રીખચંદજી	રાણાવાસ
૨૫૧	શેઠ ગુલાબચંદ ભુદરભાઈ	ખારરોડ
૨૫૧	શાહ ખીમજી મુળજી પુંજ	મલાડ
૨૫૧	સાવળા શામજી હીરજી	
	સદાનંદી બન મુનિશ્રી છોટાલાલજી મહારાજના ઉપદેશથી	
	સુવર્ધ સ્થા. જૈન સંઘના જ્ઞાન લંકારને ભેટ. સુવર્ધ (કચ્છ)	
૨૫૧	ઘેલાણી વલભજી નરભેરામ હા. નરશીદાસ વલભજી ઘેલાણી મુંબઈ	
૨૫૧	અ. સૌ. સમતાબેન શાંતિલાલ	
	C/o શાંતિલાલ ઉજ્જમશી શાહ	મલાડ
૨૫૧	તેજાણી કુબેરદાસ પાનાચંદ	મુંબઈ
૨૫૧	કપાસી મોહનલાલ શીવલાલ	મુંબઈ
૨૫૧	શ્રી લોકાગચ્છ સ્થા. માગી જૈન પુસ્તકાલય.	
	હા. મહેતા મણીલાલ ભાઈચંદ	પાલનપુર
૨૫૧	સ્વ. પિતાશ્રી કેશવલાલ વછરાજ કોઠારીના સ્મરણાર્થે	
	હ. પૂ. માતુશ્રી સુરજબેનનીવતી તનમુખલાલ કેશવલાલ	મલાડ
૨૫૧	દડીયા અમૃતલાલ મોતીચંદ	ઘાટકોપર
૨૫૧	અ. સૌ. લાચૂબેન.	
	હા. શાહ રવજી શામજી	કાંદેવલી
૨૫૧	શાહ શેરમલજી દેવીચંદજી જસવંતગઢવાળા	
	હ. પૂનમચંદજી શેરમલજી બોલ્યા	મનોર (થાણા)
૨૫૧	શેઠ સરદારમલજી દેવીચંદજી કાવેડીયા	મુંબઈ
૨૫૧	દોશી ચત્રભુજ સુંદરજી	ઘાટકોપર
૨૫૧	દોશી ભુગલકીશોર ચત્રભુજ	ઘાટકોપર
૨૫૧	દોશી પ્રવીણચંદ્ર ચત્રભુજ	ઘાટકોપર
૨૫૧	મહેતા રતિલાલ ભાઈચંદ	મુંબઈ
૨૫૦	સ્વ. શાહ ત્રિભોવનદાસ માનસીંગ દોઢીવાળાના	
	સ્મરણાર્થે હ. શાહ હરખચંદ ત્રિભોવનદાસ	મુંબઈ
૨૫૦	શાહ જેઠાલાલ ડામરશી ધાંગધ્રાવાળા,	
	હ. વાડીલાલ જેઠાલાલ	મુંબઈ
૨૫૧	શાહ ચંદુલાલ કેશવલાલ	મુંબઈ

[૧૭]

૨૫૧	શાહ પ્રેમજી હીરજી ગાલા	મુંબઈ
૩૦૧	સ્વ. પિતાશ્રી શામજી કલ્યાણજી ગોંડલવાળાના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા. વ્રજલાલ શામજી	મુંબઈ
૨૫૧	શાહ ચંદુલાલ હરીલાલ ( સકરાભાઈના રૂ. ૧૫૧ મળીને )	ખંભાત
૨૫૨	શાહ શાંતિલાલ મોહનલાલ ધાંગધ્રાવાળા	અમદાવાદ
૩૦૧	પિતાશ્રી ભગવાનજી હીરાચંદ જસાણીના સ્મરણાર્થે હા. લક્ષ્મીચંદભાઈ તથા કેશવલાલ ભગવાનજી	મુંબઈ
૨૫૧	સ્વ. પિતાશ્રી હંસરાજ હીરાના સ્મરણાર્થે. હ. દેવશી હંસરાજ	કચ્છ બિડાલાવાળા-મલાડ
૨૫૧	અ. સૌ. બેન રતનબાઈ નાદેયા હ. શાહ ઘુલાજી ચંપાલાલજી	અમદાવાદ
૨૫૧	શાહ હરીલાલ જેઠાલાલ ભાડલાવાળા	અમદાવાદ
૨૫૧	શેઠ પોપટલાલ રાઘવજી રાઈડીવાળા હ. માનસીંગ પ્રેમચંદ, રાઈડીવાળા	બગસરાભાયાણી
૨૫૧	શેઠ ગાંગજી કેશવજી ( જ્ઞાનભંડાર માટે )	કચ્છબેરાબા

\*

કુલ્લ મેમ્બરોની સંખ્યા ૪૧૦

૪ આઘ મુરબીશ્રીઓ	૨૭૭ પ્રથમ વર્ગના મેમ્બરો
૨૧ મુરબીશ્રીઓ	૮૨ બીજા વર્ગના મેમ્બરો
૨૬ સહાયક મેમ્બરો	૪૧૦ કુલ મેમ્બરો

( બીજા વર્ગને સહંતર બંધ કરવામાં આવેલ છે. )

રાજકોટ તા. ૨-૧૧-૫૭

સેંકડો સર્ટીફિકેટો ઉપરાંત હાલમાં મળેલા

કેટલાક તાજા અભિપ્રાયો

## શાસ્ત્રો દ્વારા ના કાર્યને વેગ આપો

તંત્રીસ્થાનેથી ( જૈનજ્યોતિ ) તા. ૧૫-૬-૫૭

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ ઠાણા ૪ હાલમાં અમદાવાદ મુકામે સરસપુરના સ્થા. જૈન ઉપાશ્રયમાં બિરાજમાન છે. તેઓશ્રી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય ખૂબ જ ખાતર અને ઉત્સાહથી વૃદ્ધવયે પણ કરી રહ્યા છે. તેઓશ્રી વૃદ્ધ છે છતાં પણ આખો દિવસ શાસ્ત્રની ટીકાઓ લખી રહ્યા છે. આજ સુધીમાં તેમણે લગભગ ૨૦ જેટલાં શાસ્ત્રોની ટીકાઓ લખી નાખી છે અને બાકીનાં સુત્રોની ટીકા જેમ અને તેમ જલદી પૂર્ણ કરવી તેવા મનોરથ સેવી રહેલ છે. સ્થા. જૈન સમાજમાં શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા લખવાનો આ પ્રથમ જ પ્રયાસ છે અને તે પ્રયાસ સંપૂર્ણ અને એવી અમે શાસનદેવ પ્રત્યે પ્રાર્થના કરીએ છીએ. આજ સુધી ઘણા મુનિવરોએ શાસ્ત્રોનું કામ શરૂ કરેલ છે પણ કોઈએ પૂર્ણ કરેલ નથી. પૂજ્યશ્રી અમુલખજીજી મહારાજે બત્રીસે શાસ્ત્રો ઉપર હિંદી અનુવાદ કરેલ અને સંપૂર્ણ બનેલ, ત્યારબાદ આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ હિંદી ટીકા કેટલાક શાસ્ત્રો ઉપર લખેલ પણ ઘણાં શાસ્ત્રો બાકી રહી ગયાં. પૂજ્ય હસ્તિમલજી મહારાજે એક બે શાસ્ત્રો ઉપરની ટીકાઓના અનુવાદો કરેલ. પૂજ્ય શ્રી જવાહિરલાલ મહારાજશ્રીએ સૂચગડાંગ સૂત્ર ટીકા સહિત હિન્દી અનુવાદ સાથે કરેલ. શ્રી સૌભાગ્યમલજી મહારાજે આચારાંગની હિંદી ટીકા લખેલ. પણ સંપૂર્ણ શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા હજી સુધી સ્થા. જૈન સાધુઓ તરફથી થયેલ નથી. જ્યારે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ ૨૦ શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા તેનો હિંદી ગુજરાતી અનુવાદ કરાવેલ છે આથી હવે આશા બંધાય છે કે તેઓશ્રી બત્રીસે બત્રીસ શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા લખવામાં સફળ થશે અને શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ આજ સુધી ૧૦ થી ૧૨ શાસ્ત્રો છપાવી પણ દીધાં છે અને હજી પણ તે શાસ્ત્રો વિશેષ જલદી છપાવ ને માટે શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સંપૂર્ણ પ્રયત્ન કરી રહેલ છે તે ધન્યવાદને પાત્ર છે.

જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના ડૉ. ૨૫૧૭ ભરીને લાઇફ મેમ્બર થનારને શાસ્ત્રો તમામ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી ભેટ મળે છે. આ રીતે એક પંથ અને દો કાળ. બન્ને રીતે લાભ થાય તેમ છે. ડૉ. ૨૫૧ માં ૫૦૦ રૂપિયાની કિંમતમાં શાસ્ત્રો મળે એ પણ મોટો લાભ છે અને પ્રવચનની પ્રભાવના કરવાનો ધર્મ-લાભ પણ મળે છે.



આ સાથે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સુશિષ્ય પં. મુનિશ્રી કન્હૈયા-  
લાલજી મહારાજ મલાડ મુકામે ચાતુર્માસ બિરાજે છે અને તેઓશ્રી શાસ્ત્રોના  
મેમ્બરો કરવા માટે અથાગ પ્રયત્ન કરીને પ્રવચનની સેવા બજાવી રહ્યા છે. અને  
અત્યાર સુધીમાં મુંબઈ તેમજ પરાઓના લગભગ ૪૦ જેટલા ગૃહસ્થો લાઈફ  
મેમ્બર બની ગયા છે અને મુંબઈમાં લગભગ ૩૦૦ જેટલા મેમ્બરો થાય તે  
ઈચ્છવા યોગ્ય છે. શ્રીમંત ગૃહસ્થો હજારો રૂપિયા પોતાના ઘર ખર્ચમાં તેમજ  
મોજશોખના કામોમાં તેમજ વ્યવહારિક કામોમાં વાપરી રહ્યા છે તો આવા  
શાસ્ત્રોદ્ધાર જેવા પવિત્ર કાર્યમાં રૂપિયા વાપરશે તો ધર્મની સેવા કરી ગણાશે.  
અને બદલામાં ઉત્તમ આગમસાહિત્યની એક લાયબ્રેરી બની જશે. જેનું વાંચન  
કરવાથી આત્માને શાંતિ મળશે અને શાસ્ત્રઆજ્ઞા પ્રમાણે વર્તવાથી જીવન સફળ થશે.



શતાવધાની મુનિશ્રી જ્યંતિલાલજી મહારાજશ્રીનો અમદાવાદનો પત્ર “સ્થાનકવાસી જૈન” તા. ૫-૯-૫૭ ના અંકમાં છપાયેલ છે જે નીચે મુજબ છે.

સૂત્રોના મૂળ પાઠોમાં ફેરફાર હોઈ શકે ખરો ?

તા. ૭-૮-૫૭ના રોજ અત્રે બિરાજતા શાસ્ત્રોદ્ધારક આચાર્ય મહારાજશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પાસે, મારા ઉપર આવેલ એક પત્ર લઈને હું ગયો હતો, તે સમયે મારે પૂ. મ. સા. સાથે જે વાતચીત થઈ તે સમાજને બાણ કરવા સાફ લખું છું.

‘શાસ્ત્રોત્તુ’ કામ એક ગહન વસ્તુ છે. અપ્રમાદી થઈ તેમાં અવિરત પ્રયત્નો કરવા જોઈએ. સંપૂર્ણ શાસ્ત્રોત્તુ જ્ઞાન તેમજ દરેક પ્રકારની ખાસ ભાષાઓનું જ્ઞાન હોય તોજ આગમોદ્ધારકનું કાર્ય સફળતાથી થાય છે. આ પ્રકારનો પ્રયત્ન હાલ અમદાવાદ ખાતે સરસપુર જૈન સ્થાનકમાં બિરાજતા પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કરી રહ્યા છે. શાસ્ત્ર લેખનનું આ કાર્ય થઈ રહ્યું છે, તેમાં અનેક વ્યક્તિઓને અનેક પ્રકારની શંકાઓ થાય છે તેમાં શાસ્ત્રોના મૂળ પાઠમાં ફેરફાર થાય છે? કરવામાં આવે છે? એવો પ્રશ્ન પણ કેટલાકને થાય છે અને તેવો પ્રશ્ન થાય ને સ્વાભાવિક છે; કેમકે અમુક મુનિરાજો તરફથી પ્રગટ થયેલ સૂત્રોના મૂળ પાઠમાં ફેરફાર થયેલા છે. જેથી આ કાર્યમાં પણ સમાજને શંકા થાય.

પણ ખરી રીતે જોતાં, અત્યારે જે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ ચાલી રહ્યું છે તે વિષે સમાજને ખાત્રી આપવામાં આવે છે કે, શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી અત્યાર સુધીમાં પ્રગટ થયેલાં આગમોના મૂળ પાઠમાં જરાપણ ફેરફાર કરવામાં આવેલ નથી અને ભવિષ્યમાં જે સૂત્રો પ્રગટ થશે તેમાં ફેરફાર થશે નહિ તેની સમાજ નોંધ લે.

લી.

શતાવધાની શ્રી જ્યંતિ મુનિ-અમદાવાદ

\*

## શ્રી અખિલ ભારત શ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી

### જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનો ટુંક પરિચય

સ્થાનકવાસી સમાજની આ એકની એક સંસ્થા છે કે જેણે અત્યાર સુધીમાં તેર સૂત્રો છપાવી બહાર પાડી હીધાં છે. સાત સૂત્રો છપાય છે અને બીજાં કેટલાક છાપવા માટે તૈયાર થઈ ચૂક્યા છે.

આ પ્રમાણે આ સંસ્થાએ મહાન્ પ્રગતિ સાધી છે તેનો ટુંક પરિચય આ પત્રિકામાં આપેલ છે તે વાંચી જઈ સર્વ સ્થા. જૈન ભાઈમહેનોએ આ સંસ્થાને યથાશક્તિ મદદ કરી તેના કાર્યને હજી વિશેષ વેગવાન બનાવવાની જરૂર છે.

ખાલી ઘડો વાગે ઘણો એમ સ્થા. કેન્દ્રસ્થ જેમ જોડાં બાણુગાં કુંકનારી સંસ્થાની કેઈ કિંમત નથી, ત્યારે નક્કર કામ કરનારી આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને દરેક પ્રકારે ઉત્તેજન આપવાની દરેક સ્થાનકવાસી જૈનની અનિવાર્ય ફરજ છે.

અને આ સર્વ સૂત્રો તૈયાર કરનાર પૂજ્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનો સ્થાનકવાસી સમાજ ઉપર ઘણો મહાન ઉપકાર છે. વયોવૃદ્ધ હોવા છતાં તેઓશ્રી જે મહેનત લઈ સૂત્રો તૈયાર કરાવે છે તેવું કામ હજી સુધી બીજા કોઈએ કર્યું નથી અને બીજું કોઈ કરી શકશે કે નહિ તે પણ શંકાભર્યું છે. પૂજ્ય મુનિશ્રીના આ મહાન્ ઉપકારનો કિંચિત બદલો સમાજે આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને બની શકતી સહાય કરીને વાળવાનો છે. સ્થાનકવાસી સમાજ જ્ઞાનની કદર કરવામાં પાછો હોઈ તેમ નથી એવી અમે આશા રાખીએ છીએ.

“જૈનસિદ્ધાંત પત્ર” એપ્રિલ ૧૯૫૭

\*



## શાસ્ત્રોની માહિતી

### છપાયેલાં શાસ્ત્રોનાં નામ

- (૧) શ્રી ઉપાસક દશાંગ સૂત્ર
- (૨) ,, દશવૈકલિક ,, (ભાગ પહેલો અને બીજો)
- (૩) ,, વિપાક ,,
- (૪) ,, આચારાંગ ,, (ભાગ પહેલો અને બીજો)
- (૫) ,, અન્તકૃત દશાંગ ,,
- (૬) ,, આવશ્યક ,,
- (૭) ,, અનુત્તરોપપાતિક ,,
- (૮) ,, દશાશ્રુત સ્કન્ધ
- (૯) થી (૧૩) શ્રી નિરયાવલિકા,, (એકથી પાંચ ભાગ)

ઉપાસક દશાંગ અને દશવૈકલિક ભાગ પહેલો, પહેલી આવૃત્તિ ખલાસ થતાં બીજી આવૃત્તિ પ્રસિદ્ધ કરવામાં આવેલ છે.

### તુરતમાં પ્રસિદ્ધ થનારાં શાસ્ત્રોનાં નામ

- ૧ આચારાંગ સૂત્ર ભાગ ૩ જે
- (૧૪) ૨ ઉવવાઈ (ઔપપાતિક) સૂત્ર
- (૧૫) ૩ કલ્પ સૂત્ર
- ૪ આવશ્યક સૂત્ર (બીજી આવૃત્તિ)

### પ્રેસમાં છાપવા આપેલાં બીજા સૂત્રોનાં નામ

- (૧૬) ૧ નંદી સૂત્ર
- ૨ આચારાંગ સૂત્ર ભાગ ૧ લો (બીજી આવૃત્તિ)
- ૩ વિપાક સૂત્ર (બીજી આવૃત્તિ)
- ૪ અન્તકૃત સૂત્ર (બીજી આવૃત્તિ)

### બીજી આવૃત્તિ છાપવા આપવાનાં સૂત્રોનાં નામ

- ૧ દશાશ્રુત સ્કન્ધ (બીજી આવૃત્તિ)
- ૨ અનુત્તરોપપાતિક (બીજી આવૃત્તિ)

### લખેલાં તૈયાર સૂત્રોનાં નામ

- (૧૭) ૧ ઉત્તરાધ્યયન સૂત્ર (સંસ્કૃત-હિન્દી-ગુજરાતી તૈયાર)
- (૧૮) ૨ જ્ઞાતા ,, (સંસ્કૃત-હિન્દી તૈયાર. સંશોધન તથા ગુજરાતી ખાકી)

(૧૯) ૩ સમવાયાંગ સૂત્ર	(સંસ્કૃત-હિન્દી તૈયાર. સંશોધન તથા ગુજરાતી બાકી)
(૨૦) ૪ પ્રશ્ન વ્યાકરણ ,,	(સંસ્કૃત-હિન્દી તૈયાર. સંશોધન ચાલુ ગુજરાતી બાકી)
(૨૧) ૫ અનુયોગદ્વાર ,,	(સંસ્કૃત તૈયાર. હિન્દી અનુવાદ ચાલુ ગુજરાતી બાકી)
(૨૨) ૬ રાયપસેણી ,,	(સંસ્કૃત તૈયાર. હિન્દી ગુજરાતી બાકી)
(૨૩) ૭ સ્થાનાંગ ,,	(સંસ્કૃત તૈયાર. હિન્દી ગુજરાતી બાકી)

### ચાલુ કામ

- (૨૪) ૧ જમ્બુદ્વીપ પ્રજ્ઞપિત સૂત્રની સંસ્કૃત ટીકા ચાલુ છે.  
 (૨૫) ૨ સુયગડાંગ સુત્રની સંસ્કૃત ટીકા ચાલુ છે.

### લખવાનાં બાકી શાસ્ત્રોનાં નામ

(૨૬) ૧ ભગવતી સૂત્ર	(૩૦) ૫ ચંદ્ર પ્રજ્ઞપિત સુત્ર
(૨૭) ૨ જીવાભિગમ ,,	(૩૧) ૬ વ્યવહાર ,,
(૨૮) ૩ પ્રજ્ઞાપના ,,	(૩૨) ૭ બૃહદ્કલ્પ ,,
(૨૯) ૪ સુર્યપ્રજ્ઞપિત ,,	(૩૩) ૮ નીશીથ ,,

બત્રીસ સૂત્રો તથા એક કલ્પસૂત્ર મળી સૂત્રોની સંખ્યા ત્રેત્રીસ થયેલ છે. જે જાણવા માટે ઉપર ૧ થી ૩૩ ના આંક આપવામાં આવેલ છે.

નોટ—અત્યારે મેમ્બર થનારને તૈયાર શાસ્ત્રો હાલમાં જે સ્ટોકમાં છે તે તુરત મોકલવામાં આવે છે અને પાછળથી બીજાં તૈયાર થયે રવાના કરવામાં આવશે.

## શ્રી દશવૈકલિક તથા ઉપાસક દશાંગ સૂત્રો

ગુજરાતી ભાષામાં અનુવાદ થયેલાં પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ વિરચિત શ્રી ઉપરોક્ત બે સૂત્રો જૈન ધર્મ પાળતા દરેક ઘરમાં હોવા જ નેઈએ. તે વાંચવાથી શ્રાવક ધર્મ અને શ્રમણ ધર્મના આચારનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત થઈ શકે છે અને શ્રાવકો પોતાની નિરવધ અને એષણિય સેવા શ્રમણ પ્રત્યે બજાવી શકે છે. વર્તમાનકાળે શ્રાવકોમાં તે જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે અંધશ્રદ્ધાએ શ્રમણ વર્ગની વૈયાવચ્ચ તો કરી રહેલ છે. પરંતુ ‘કલ્પ શું અને અકલ્પ શું’ એનું જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે પોતે સાવધ સેવા અર્પી પોતાના સ્વાર્થને ખાતર શ્રમણ વર્ગને પોતાને સહાયક થવામાં ઘસડી રહ્યા છે અને શ્રમણ વર્ગની પ્રાયઃ કુસેવા કરી રહ્યા છે. તેમાંથી બચી લાભનું કારણ થાય અને શ્રમણને યથાતથ્ય સેવા અર્પી તેમને પણ જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રની આરાધના કરવામાં સહાયક થઈ પોતાના જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રની આરાધના કરી સુગતિ મેળવી શકે. શ્રમણની યથાતથ્ય સેવા કરવી તે અવશ્ય ગૃહસ્થની ફરજ છે.

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મ. શાસ્ત્રોદ્ધારનું અનુવાદન ત્રણ ભાષામાં રૂડી રીતે કરી રહ્યા છે અને રૂપિયા ૨૫૧૭ ભરી મેમ્બર થનારને રૂ. ૪૦૦-૫૦૦ ની લગભગ કીંમતના બત્રીસે આગમો ફ્રી મળી શકે છે તો તે રૂ. ૨૫૧૭ ભરી મેમ્બર થઈ બત્રીસે આગમો દરેક શ્રાવક ઘરે મેળવવા નેઈએ. બત્રીસે શાસ્ત્રોના લગભગ ૪૮ પુસ્તકો મળશે. તો તે લાભ પોતાની નિર્જરા માટે પુન્યાનુબંધી પુન્ય માટે જરૂર મેળવે. ઉપરોક્ત બંને સૂત્રોની કીંમત સમિતિ કંઈકે ઓછી રાખે તો હરકોઈ ગામમાં શ્રીમંત હોય તે સૂત્રો લાવી અરધી કીંમતે, મફત અથવા પૂરી કીંમતે લેનારની સ્થિતિ નેઈ દરેક ઘરમાં વસાવી શકે.

—એક ગૃહસ્થ

નોંધ-ઉપરની સુચનાને અમે આવકારીએ છીએ. આવાં સૂત્રો દરેક ઘરમાં વસાવવા યોગ્ય તેમજ દરેક શ્રાવકે વાંચવા યોગ્ય છે. તંત્રી-

“રત્નજ્યોત” પત્ર

તા. ૧-૧૦-૫૭

